॥ श्रीः ॥

श्रीकाशीवासीमहामहोपाध्याय-

श्रीकमलाकरभट्टसंगृहीत-

निर्णयसिन्धु ।

मुरादाबादनिवासिभारतधर्ममहामण्डलमहोपदेशकविद्यावा-
रिधिश्रीपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसेतुनामक-
भाषाटीकासहित ।

जिसमें

देवप्रतिष्ठा, द्वादशमासोंके उत्सव, संक्रान्ति, प्रदोष, मलमासविधि, व्रत, उद्यापन, संध्या, ग्रहण, सूतक.गर्भाधानादि सब श्रौत स्मार्त संस्कार, चारों आश्रम, चारों वर्णोंके लक्षण, कर्म, श्राद्ध, अशौचप्रकरण आदि समस्त प्रयोजनीय कृत्योंका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशितकिया ।

संवत् १९७०, शके १८३५.

टीकाकार-पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्र.



समर्पणपत्र.

स्वस्तिश्रीमन्महाराजाधिराज प्रबलप्रतापी गुणज्ञाननिधान न्याय-परायण धर्मधुरीण क्षत्रवंशावतंस लोकमान्य गुणिजनमण्डली मण्डन सज्जनमनरञ्जन सनातनधर्मप्रतिपालक वीरेन्द्र-टिहरी गढवाल नरेश श्रीयुत श्री १०८.

श्रीमहाराजाकीर्तिशाहजू महोदय

G. C. S. I. के करकमलमें

यह "निर्णयसिन्धु" ग्रन्थ धर्मसम्बन्धसे सादर समर्पित है।

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११।१।०९

निवेदक–
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

भूमिका।

चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके आचार, विचार तथा सम्पूर्ण लोकव्यवहार, दायभाग, संस्कार, व्रतानुष्ठान, महीनोंके उत्सव, संक्रान्तिविधान, व्रतादिके निर्णय, दानादिका समय और फल, ग्रहणसमयके कृत्य, पापोंके प्रायश्चित्त, यह सब भिन्न २ स्थलोंमें धर्मशास्त्र और पुराणोंमें वर्णन किये हैं, एवं एक ही धर्मशास्त्र वा पुराणमें सर्वविषयकी पूर्ति नहीं पाई जाती, एकके साथ दूसरेकी अपेक्षा लगी रहतीहै, और कभी २ व्रत तथा उत्सवोंके निर्णयमें वडी झंझट पडती है इन अभावोंके दूर करनेके लिये महानुभावोंने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र तथा पुराणोंका सार संग्रह करके बडे २ निवन्धोंकी रचना की है, उनमें कृत्यकल्पतरु और हेमाद्रि आदि बडे २ निबन्ध हैं, परन्तु यह इतने वृहत् होगये हैं कि, न तो सर्वसाधारणको उनकी उपलब्धि ही होसक्ती है और न विना पूर्ण विद्वत्ताके उनको कोई समझ सकता है, उन निवन्धोंका बृहदाकार देखकर ही प्रसिद्ध स्मृतिशास्त्रज्ञाता **कमलाकरभट्टने** इन बृहत् निवन्धों तथा धर्मशास्त्र, पुराणोंका सार संग्रह करके प्रयोजनीय समस्त विषयोंसे पूर्ण " निर्णयसिन्धु " नामक ग्रंथकी रचना की, इसमें इन पंडितवर्यका पांडित्य भी पूर्णरूपसे झलकता है परन्तु साधारण मनुष्योंको इसका अर्थभी सुलभ नहीं है, इन्होंने जहाँ तहाँ अपने ग्रन्थमें गौडमन्तव्योंका खण्डन कियाहै इससे विदित होता है कि, यह गौडनिवन्धोंके सर्वथा सहमत न थे। अस्तु, तो भी यह ग्रन्थ धर्मनिवन्धोंमें बहुत उत्कृष्ट समझा जाता है, इसकी रचनाभी न्याय मीमांसासे गर्भित है,और कहीं कहीं इसकी पंक्तियें कठिनता लिये हुए हैं, 'धर्मसिंधु' नामक एक वार्तिक संस्कृत ग्रंथ इसका टीकारूप समझा जाता है, परन्तु वहभी संस्कृतमें ही होनेके कारण सर्व साधारणको उपयोगी नहीं समझा जाता. इसकारण यह आवश्यकता हुई कि, सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंके प्रयोजनीय धर्मकर्मके साररूप इस ग्रंथका हिन्दी भाषामें सबके समझने योग्य टीकाका निर्माण किया जाय। यद्यपि यह कार्य दीर्घकालसाध्य और विशेष परिश्रमसापेक्ष था तो भी सर्व साधारणका उपकार विचार कर इसकी टीका करनेका परिश्रम कुछ विशेष न समझा और इसका सरल सुगम सबकें समझने योग्य ऐसा अनुवाद लिखाहै कि, इसकी कठिन पंक्तिभी भलीप्रकार सर्वसाधारणकी समझमें आसकेंगी, और कर्मकाण्डमें जो कहीं कहीं वैदिक मंत्रोंकी प्रतीकें इसके मूलमें थीं मैंने नोटमें वह पूरे-मंत्र पतेसहित लिखदिये, और इसकी रचनाको अंकोंमें विभक्तकर अंक डालकर नीचे उसका तिलक लिखाहै, जिससे समझनेमें किसीप्रकार भी कठिनाई न पडे इसप्रकार इसग्रंथका भाषानुवाद होनेसे हिन्दीभाषाके भंडारमें एक अनुपम ग्रंथकी वृद्धि हुई है।

यथामति इस ग्रंथके अलंकृत करनेकी चेष्टा कीगई है यदि कहीं कुछ भ्रमवश रहगया हो तो पाठकगण क्षमा करगे।

इस प्रकार यह ग्रंथ सब स्वत्त्वसहित जगद्विख्यात **"श्रीवेङ्कटेश्वर"** (स्टीम्) यंत्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महोदयको समर्पण करदिया गया है, आशा है कि, महात्माजन इसके अवलोकनसे प्रसन्न होंगे।

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११।१।०९

अनुगृहीत—
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

ग्रंथकारका परिचय ।

विख्यात स्मृतिसंग्रहकार कमलाकरभट्टजी रामकृष्णभट्टजीके पुत्र नारायणभट्टके पौत्र और दिनकर भट्टके सहोदर थे, बहुतसे धर्मग्रंथ इनके निर्माण कियेहुए हैं अपने समयमें यह एक प्रधान स्मार्त थे,इनके बनाये हुए निम्न लिखित ग्रंथ प्रधान हैं–तत्त्वकमलाकर १, पूर्त्तकमलाकर २, तीर्थकमलाकर ३, संस्कारप्रयोग४, संस्कारपद्धति ५, कार्तवीर्यार्जुनदीपदानप्रयोग ६, शान्तिरत्न ७, शूद्रधर्मतत्त्व ८, सहस्रचण्डयादिविधि ९, निर्णयसिन्धु १०, विवादताण्डव ११ इन ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि, यह सन १५३४ ई० में विद्यमान थे ।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धुकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

इत्याश्विनमासः ।

अथ कार्त्तिकमासः.

इति कार्त्तिकमासः ।

अथ तृतीयपरिच्छेदः ।

इति संस्कारप्रकरणम्।

अथ क्षुद्रकालाः।

अथोत्तरार्द्धानुक्रमणिका ।

श्राद्धप्रकरणम् ।

निर्णयसिन्धुकी विषयानुक्रमणिका ।

इति तीर्थे श्राद्धविधिः।

अथाशौचप्रकरणम्।

३

इति निर्णयसिन्धोर्विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

ऋद्धिसिद्धीश्वराय नमः ।



अथ निर्णयसिन्धुः ।

भाषाटीकासमेतः ।

प्रथमः परिच्छेदः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । अविघ्नमस्तु । कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंबिशाखिनं वन्दे ॥ १ ॥

भाषाटीकाकारकृतमङ्गलाचरणम् ।

दोहा ।

सिद्धिसदन आनन्दघन, गणपति गिरा मनाय । निर्णयसिन्धुसुग्रन्थकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥
करुणानिधि सीतारमण, कौशिकसुखदातार । प्रेमसहित वन्दौं सदा, दशरथराजकुमार ॥ २ ॥
लक्ष्मीयुत सुरतरुतले, गोगणरंजनहार । बर्हापीडश्यामघन, वन्दौं बारहिंवार ॥ ३ ॥
शिवासहित शिवपदकमल, वन्दौं सब सुखदान । तीन काल चहुँ युगनमें, भक्तन सुखप्रद जान ॥ ४ ॥
वेदधर्मरक्षाकरन, मायामनुजशरीर । पितामहशिवदयालुको, वन्दौं धर्मसुधीर ॥ ५ ॥
जिन चरणनकी वन्दना, सकलसुमंगलखान । मिश्रसुखानँदपितुचरण, वन्दौं सब सुखदान ॥ ६ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । धर्मसेतुटीका रचत, बुध ज्वालापरसाद ॥ ७ ॥

दयाके एकही स्थान सीतारूपी लतासे संयुक्त, विश्वामित्रके वंशरूपी लताके आश्रित रामरूपी वृक्षको प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥

लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतरलं जितगोकुलम् ॥ बर्हापीडं घनश्यामं महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥ वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥ पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥ यत्पादसंस्मृतिः सर्वमङ्गलप्रतिभूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णाख्याञ्छ्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥ सर्वकल्याणसंदोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ द्युनदीसोदरीमंबामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥ बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥

हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ॥ श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काल यथामति विनिर्णयमातनोति ॥ ७ ॥ सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमुष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥

लक्ष्मीसे युक्त कल्पवृक्षके नीचे गौओंके वंशको प्रसन्न करनेवाले मोरपुच्छका गुच्छा धारण करनेवाले घनकी समान श्याम (कृष्ण) की उपासना करतेहैं ॥ २ ॥ वेदके अर्थ और धर्मकी रक्षाके निमित्त मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हरिरूप पितामह भट्टनारायणको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३ ॥ जिनके चरणारविन्दोंका स्मरण सम्पूर्ण मंगलोंका प्रतिनिधि है, उन रामकृष्णभट्ट श्रीपिताजीके चरणोंको प्रणाम करताहूं ॥ ४ ॥ जिनके दोनों चरणकमल सम्पूर्ण कल्याणके पात्रके आदिकारण हैं उन गंगाकी सगी भगिनी उमानाम अपनी माताके चरणोंको प्रणाम करताहूं ॥ ५ ॥ विन्दुमाधवके चरणकमलोंके आश्रितशरीरवाले बडे भ्राता भट्ट दिवाकरकी उपासना करताहूं ॥ ६ ॥ हेमाद्रि और माधवके मतको भलेप्रकार विचार तथा दूसरे ग्रन्थकारोंके मतको भलेप्रकार विचारकर श्रीरामकृष्णका पुत्र मैं कमलाकरभट्ट समयपर बुद्धिके अनुसार निर्णयका विस्तार करताहूं ॥ ७ ॥ यद्यपि विद्वान् और उनके बनाये ग्रन्थभी बहुत हैं तौभी इसकी पण्डिताई कोई कोई ही जाननेको समर्थ हैं ॥ ८ ॥

अथ कालायनादिनिर्णयः ।

तत्र संक्षेपतः कालः षोढा—अब्दोयनमृतुर्मासः पक्षो दिवस इति ॥ तत्राब्दो माधवमते पञ्चधा—सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥ गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः ॥ स च ज्यौतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ॥ हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्त्रिस्र एव विधा आह ॥ तत्र वक्ष्यमाणैः सावनादिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् ॥ मलमासे तु सति षष्टिदिनात्मक एको मास इति द्वादशमासत्वमविरुद्धम् ॥ तथा च व्यासः 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः ' इति ॥ तत्र चान्द्रोब्दः षष्टिभेदः ॥ तदाह गार्ग्यः—

निबन्धके अनुसार समय संक्षेपसे छःप्रकारका है । वर्ष, अयन, ऋतु, मास पक्ष और दिन । माधवके मतसे वर्षके पांच भेद हैं । सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य । बृहस्पतिकी मध्यम अर्थात् एकराशि भोगनेसे बार्हस्पत्य वर्ष होताहै, वह ज्योतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध है, और हेमाद्रिने पीछेके दोनोंके धर्मशास्त्रके उपयोगी न होनेसे तीनही प्रकारका माना है, सो आगे कहनेयोग्य सावनादि बारह महीनोंमें तिस २ का वर्ष होताहै, और मलमास होनेसे साठदिनका एक महीना होताहै इससे द्वादशमास कहनेमें विरोध नहीं है, यही व्यासजी कहतेहैं कि ६० दिनका एक मलमास होताहै, उसमें चन्द्रवर्षके साठ भेद हैं यही गर्ग कहतेहैं ॥

"प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ प्रजापतः । अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धातेश्वरस्तथा ॥ बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोऽथ वृषस्तथा । चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥हेमलम्बो विलम्बोथ विकारी शार्वरी प्लवः । शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् । परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥ पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती । दुंदुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः " ॥ इति ६० ॥

प्रभव १ विभव २ शुक्ल ३ प्रमोद ४ प्रजापति ५ अंगिरा ६ श्रीमुख ७ भाव ८ युवा ९ धाता १० ईश्वर ११ बहुधान्य १२ प्रमाथी १३ विक्रम १४ वृष १५ चित्रभानु १६ सुभानु १७ तारण १८ पार्थिव १९ व्यय २० सर्वजित् २१ सर्वधारी २२ विरोधी २३ विकृति २४ खर २५ नन्दन २६ विजय २७ जय २८ मन्मथ २९ दुर्मुख ३० हेमलम्ब ३१ विलम्ब ३२ विकारी ३३ शार्वरी ३४ प्लव ३५ शुभकृत् ३६ शोभन ३७ क्रोधी ३८ विश्वावसु ३९ पराभव ४० प्लवंग ४१ कीलक ४२ सौम्य ४३ साधारण ४४ विरोधकृत् ४५ परिधावी ४६ प्रमाथी ४७ आनन्द ४८ राक्षस ४९ अनल ५० पिंगल ५१ काल्युक्त ५२ सिद्धार्थ ५३ रौद्र ५४ दुर्मति ५५ दुन्दुभि ५६ रुधिरोद्गारी ५७ रक्ताक्ष ५८ क्रोधन ५९ क्षय ६० ॥

यद्यपि ज्यौतिषे गुरोर्मध्यमराशिभोगेन प्रभवादीनां माघादौ प्रवृत्तिरुक्ता, तथापि प्रभवादीनां चान्द्रत्वमप्यस्ति ॥ 'चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे' इति माधवोक्तेः ॥ तेन चान्द्रः प्रभवादिश्चैत्रसिते प्रवर्तते, बार्हस्पत्यस्तु माघादौ ॥ तयोर्विनियोगो ज्योतिर्निबन्धे ब्रह्मसिद्धान्ते "व्यावहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु। योज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे ॥" आर्ष्टिषेणः–"स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा। नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥" इति ॥ अयनं तु सौरर्तुत्रयात्मकम्। 'सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टमयनम्' इति दीपिकोक्तेः ॥ तत् द्विविधं दक्षिणमुत्तरं चेति ॥ कर्कसंक्रांतिर्दक्षिणायनं मकरेऽन्त्यम् ॥

यद्यपि ज्योतिश्शास्त्रमें गुरुके मध्यमराशिके भोगसे प्रभवादिवर्षोंकी माघादिमें प्रवृत्ति कहीहै तौभी प्रभवादिवर्षोंको चान्द्रत्वभी है, अर्थात् चन्द्रमासेभी मानेजातेहैं कारण कि, माधवने यह कहाहै कि, प्रभव आदि चान्द्रवर्षोंके पांचवें २युगमें होतेहैं इससे चान्द्र प्रभव आदि वर्ष चैत्रके शुक्लपक्षसे प्रवृत्त होताहै, और बार्हस्पत्य तो प्रभव आदि माघकी आदिमें प्रवृत्त होताहै, उन दोनोंका विनियोग ज्योतिर्निबंधके ब्रह्मसिद्धान्तमें वर्णन कियाहै कि, व्यावहारिकसंज्ञावाला यह काल (चान्द्रवर्ष) स्मृति अर्थात् शास्त्रोक्त सर्व कर्मोंमें सदैव मानना चाहिये, बार्हस्पत्यवर्षको नर्मदासे उत्तर मानना चाहिये। आर्ष्टिषेण कहतेहैं-सर्वत्र कर्मादिमें चान्द्रवर्षकोही लेना चाहिये, अन्य नहीं. कारण कि, इसीकी वत्सर आदिमें प्रवृत्ति कहीहै, सूर्यकी तीन ऋतुओंको अयन कहतेहैं, यही इसप्रकारके वचनसे दीपिकाग्रन्थमें लिखाहै, उस अयनके दक्षिण और उत्तर दो भेद हैं, कर्ककी संक्रान्तिमें दक्षिणायन और मकरकीमें उत्तरायण होताहै ॥

अनयोर्विनियोगमाह मदनरत्ने सत्यव्रतः–'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ। दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥' वैखानसः–'मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहंत्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥' वैशब्दोऽप्यर्थे न तु दक्षिणायन एवेति नियमः। पूर्ववचने दक्षिणायने निषिद्धाया देवप्रतिष्ठाया देवविषये प्रतिप्रसवमात्रात् ॥ रत्नमालायाम् 'गृहप्रवेशस्त्रिदशप्रतिष्ठा विवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम्। सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ॥' इति ॥ अस्यापवादः काशीखण्डे–'सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम्। सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम् ॥' इत्ययनम् ॥

मदनरत्नग्रन्थमें सत्यव्रतने इन दोनोंका विनियोग कहाहै कि, देवताकी प्रतिष्ठा, बाग, बावडी आदिकी प्रतिष्ठा उत्तरायणसूर्यमें करनी चाहिये। कारण कि, दक्षिणायनमें करनेवालेको उसका फल नहीं मिलताहै. वैखानसऋषि कहतेहैं कि, मातृ, भैरव, वराह, नारसिंह, त्रिविक्रम, महिषासुरघातिनी देवीकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमेंभी

करदे। इस श्लोकमें (वै) शब्दका (अपि) अर्थ है: दक्षिणायनमेंही करे यह नियम नहीं, कारण कि पहले वचनमें दक्षिणायनमें निषेध कीहुईभी देवप्रतिष्ठाका मातृ आदि देवविशेषोंमें इस वाक्यसे (निषेध) का निषेध है यही रत्नमालामें कहाहै कि, गृहप्रवेश, देवताकी प्रतिष्ठा, विवाह, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म उत्तरायणमें करने चाहिये और गर्हित जो कर्म हैं वे दक्षिणायनमें करने । इसका भी अपवाद काशीखण्डमें लिखाहै कि, काशीके रहनेवाले सत्पुरुषोंको सदाही कृतयुग, सदाही उत्तरायण और सदाही महोदय होताहै, आशय यह कि, उनको दक्षिणायन भी उत्तरायणही है । इति अयनप्रकरणं समाप्तम् ॥

ऋतुनिर्णयः ।

ऋतुर्मासद्वयात्मा ॥ मलमासे तु मासद्वयात्मक एको मासस्तेन मासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम्। स द्वेधा–चान्द्रः सौरश्च । चैत्रारम्भो वसन्तादिश्चान्द्रः, मीनारम्भो मेषारम्भो वा सौरः । 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः ' इति बौधायनोक्तेः । अनयोर्विनियोगमाह त्रिकाण्डमण्डनः–"श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु । तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ " स द्विविधोपि षोढा । वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धेमन्तः शिशिरः । इत्यृतुः ॥

दो महीनेका ऋतु होताहै, मलमासमें तो दो महीनेका एक मास होताहै, इस कारण दो मासका ऋतु कहना विरुद्ध नहीं है । उस ऋतुके दो भेद हैं चान्द्र और सौर, चैत्रका आरंभ वसन्तकी आदि चान्द्रऋतु है, मीन वा मेषका आरम्भ सौरऋतु कहाताहै, कारण कि, बौधायन ऋषिने मीन और मेषकी वा मेष और वृषकी संक्रान्तिको वसन्तऋतु वर्णन कियाहै । इन दोनों ऋतुओंका विनियोग त्रिकाण्डमण्डनमें यह वर्णन किया है कि, सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्रकी कही क्रिया चान्द्रऋतुओंमें करनी चाहिये । यदि उनमें मुहूर्त न बनै तो सौर ऋतुओंमें करनी चाहिये यह ज्योतिषियोंका मत है, वह दो प्रकारका भी ऋतु छः प्रकारका है वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमंत और शिशिर । इति ऋतुप्रकरणम् ॥

मासश्चतुर्धा । सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इति ॥ त्रिंशद्दिनः सावनः । अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यवधिः सौरः ॥ यद्यपि हेमाद्रिमाधवकालादर्शाद्यालोचनेन 'मेषसंक्रान्त्यां समाप्तामावास्यकत्वं चैत्रत्वम् ' इति लक्षणाच्च मेषसंक्रान्तेश्चैत्रत्वं प्रतीयते, तथापि मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्यात्तत्पूर्वभावित्वेन मीनस्यैव चैत्रत्वं युक्तम् । एवं मेषादयो वैशाखाद्याः । अतो मीनसंक्रान्त्यामधिगतपौर्णमासिकत्वम्, आद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः ॥ एवं वैशाखादयोपि मेषाद्या ज्ञेयाः ॥

मास चार प्रकारका है सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र । ३० दिनका सावन और सूर्यकी संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक सौरमास होताहै, यद्यपि हेमाद्रि, माधव, कालादर्श आदि ग्रन्थोंके देखनेसे मेषसंक्रान्तिकी समाप्ति होनेपर अमावस्यातक चैत्र होताहै, इस लक्षणसे मेषकी संक्रान्तिही चैत्र प्रतीत होती है, तथापि जब मेषकी संक्रान्तिमें दो अमावस आजाँय तो वैशाखकी अधिकतासे और पूर्व होनेसे मीनकोही चैत्र मानना युक्तिसंमत होसकता है, इसी प्रकार मेष आदि संक्रान्तिसे वैशाख आदि जानने उचित हैं, इससे मीनकी संक्रान्तिके बीचमें जिसकी पूर्णमासी हो वह अथवा वर्षकी प्रथमकी तिथि जिसके आदिमें हो वह चैत्र कहाता है, इन लक्षणोंसे मीनही सौर चैत्र है इसी प्रकार वैशाख आदिभी मेष आदि जानने ॥

संक्रान्तिनिर्णयः ।

सौरमासप्रसङ्गात्संक्रांतिनिर्णय उच्यते ॥ तत्र 'पूर्वतोपि परतोपि संक्रमात्पुण्यकाल-

घटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः ॥ विशेषस्तूच्यते ॥ अत्र मामकाः संग्रहश्लोकाः–"प्रागूर्ध्वा दश पूर्वतः षडवनिस्त्वद्धत्पराः पूर्वतस्त्रिंशत्षोडश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश । पूर्वाः षोडश चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात्खवेदाः पुनः पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः ॥" अस्यार्थः । मेषे प्रागूर्ध्वं च दश घटिकाः पुण्यकालः, वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वा दश, वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे चत्वारिंशत्पराः । इदं च हेमाद्रिमतेनोक्तम् । माधवमते त्वत्र परा विंशतिः पुण्याः, कुंभे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडशेति ॥ "याप्युत्तरा पुण्यतमा मयोक्ता सायं भवेत्सा यदि सापि पूर्वा । पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात् ॥ अर्वाङ्निशीथाद्यदि संक्रमः स्यात्पूर्वेह्नि पुण्यं परतः परेह्नि । आसन्नयामद्वयमेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥ कर्के झषेप्येवमिति ह्युवाच हेमाद्रिसूरिश्च तथापरार्कः । झषः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ॥ प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः ॥ " अत्र मूलवचनानि माधवापरार्कहेमाद्र्यादिषु द्रष्टव्यानि ॥ सर्वासु संक्रांतिषु दानविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्डे उक्तः ॥

अब सौरमासके प्रसंगसे संक्रान्तिनिर्णय लिखतेहैं, संक्रान्तिके प्रारम्भसे पहिले और पीछे सोलह घडी पुण्यकाल सामान्यरीतिसे सबने लिखाहै, विशेष भी कहतेहैं । इस विषयमें मेरे संग्रह किये हुए यह श्लोक हैं, कि मेषकी संक्रान्तिमें प्रथम और पीछे दश २ घड़ी पुण्यकाल है, वृषमें पहली सोलह और मिथुनमें पिछली सोलह, कर्कमें पहली तीस, सिंहमें पहली सोलह और कन्यामें पीछेकी सोलह घड़ी और तुलामें पहली और पिछली दश और वृश्चिकमें पहली सोहह घड़ी और धनमें पिछली सोलह घड़ी, और मकरमें पिछली चालीस घड़ी तक पुण्यकाल है, यहभी हेमाद्रिके मतसे लिखाहै, माधवके मतमें तो पिछली बीस घड़ी पुण्यकाल है। जिस संक्रान्तिकी पिछली घड़ी पुण्यतम मैंने कहीहैं, यदि वह संक्रान्ति संध्याके समय हो तो उतनीही पहली घड़ी पुण्यकाल जानना, और जिस संक्रान्तिका पूर्व पुण्यकाल कहाहै वह यदि सूर्योदयके समय होय तो उतनीही घडी पिछली पुण्यकाल जानना । कारण कि, रात्रिमें पुण्यका निषेध है, यदि आधीरातसे पहिले संक्रान्ति होय तो पहले दिनके पिछले दो प्रहरमें और यदि आधीरातसे परे संक्रान्ति होय तो पिछले दिनके पहले दो प्रहरमें पुण्यकाल होताहै । कर्क और मीनकी संक्रान्तिमें भी इसी प्रकार जानना, यह वार्ता हेमाद्रिसूरि और अपरार्कने लिखीहै, यदि मीनकी संक्रान्ति प्रदोष वा आधीरातके समय होय तो पर दिनमें पुण्यकाल जानना, और कर्ककी संक्रान्ति सूर्योदय वा आधीरातके समय होय तो पूर्वदिनमें पुण्यकाल जानना, यह माधवाचार्य लिखतेहैं, इनमें मूलके वचन माधव, अपरार्क, हेमाद्रि आदिमें देखने योग्य हैं । सब संक्रान्तियोंमें दानविशेष हेमाद्रिग्रन्थके दानकाण्डमें लिखा है ॥

मेषसंक्रान्तौ दानविशेषः ।

विश्वामित्रः–"मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम् । वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ वस्त्रान्नपानदानानि मिथुने विहितानि तु । घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेपि विशिष्यते ॥ ससुवर्णं छत्रदानं सिंहेपि विहितं सदा । कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च ॥ तुला-

प्रवेशे तिलानां गोरसानामपीष्टदम् । अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम् ॥ अन्नकी वृश्चिकः । धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम् । झषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च ॥ कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च । मीनप्रवेशे स्थानानां मालानामपि चोत्तमम् ॥ " इति ॥

विश्वामित्र कहतेहैं कि, मेषकी संक्रान्तिमें मेषके दानका महान् फल है, इसी प्रकार वृषकी संक्रान्तिमें गौका दान और वस्त्र, अन्न, (पान) का दान मिथुनमें कहाहै, घीकी गऊका दान कर्कमें बहुत श्रेष्ठ है, सुवर्ण सहित छत्रका दान सिंहमें उत्तम कहाहै, कन्याकी संक्रान्तिमें वस्त्र और घरका दान कहाहै, तुलाकी संक्रान्तिमें तिल और गोरसका दान मनोरथको देताहै, वृश्चिककी संक्रान्तिमें दीपकदानका बड़ा फल है और धनुकी संक्रान्तिमें वस्त्र और पानके दानका महान् फल है, मकरकी संक्रान्तिमें काष्ठ और अग्निके दानका महान् फल है, कुम्भकी संक्रान्तिमें गौ, जल और तृणके दानका बड़ा फल है, मीनकी संक्रान्तिमें खट्टा अन्न तथा मालाका महान् फल है ॥

अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः–'अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः । स्नात्वा यस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत् ॥ ' अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः–' अयने संक्रमे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । अहोरात्रोषितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥' अत्रोपवासः संक्रमदिने, दानादि तु पुण्यकालदिने इत्याचार्यचूडामणिः ॥ विधिलाघवात् पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः ॥ इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम् । 'आदित्येहनि संक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथा ॥' इति जैमिनिवचनात् ॥ अत्र श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे– 'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते ॥ '

हेमाद्रिग्रन्थमें आपस्तम्बने संक्रान्तिमें उपवास कहा है कि, दक्षिणायन उत्तरायण और विषुव (मेष तुला) संक्रान्तिमें जो मनुष्य तीन रात्रि उपवास स्नान करके सूर्यका पूजन करता है, वह सब कामनाओंके फलको प्राप्त होता है, और यदि सामर्थ्य न होय तो वृद्धवसिष्ठ यह कहते हैं कि, दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें एक दिनरात व्रत और स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है, यह व्रत तो संक्रान्तिके दिन करना चाहिये, और दान आदि पुण्यकालके दिन करना । यह आचार्य चूडामणि कहते हैं, कि विधिके लाघवसे पुण्यकालके दिनही व्रत, स्नान दोनों करने चाहिये । यह वार्त्ता उसी गृहस्थीके निमित्त है जिसके पुत्र न हो क्योंकि, जैमिनि ऋषिने यह कहा है कि, रविवारके दिन संक्रान्ति और सूर्य चन्द्रमाके ग्रहणमें पुत्रवाले गृहस्थीको व्रत नहीं करना चाहिये और संक्रान्तिके हेमाद्रिग्रन्थके विष्णुधर्ममें श्राद्ध करना भी कहा है कि, हे राजन् ! सूर्यकी संक्रान्तिमें श्राद्ध बहुत उत्तम है ॥

अपरार्केपि विष्णुः–आदित्यसंक्रमणं, विषुवद्वयम्, विशेषेणायनद्वयम्, व्यतीपातः, जन्मर्क्षम्, अभ्युदयश्च । 'एतांस्तु श्राद्धकालान्वै काम्यानाह प्रजापतिः' इति ॥ द्वादशादिदिनैरर्वागयनाशप्रवृत्तावपि पुण्यं वक्तुमयनग्रहणम् । अन्यथा संक्रमेण सिद्धेरयनग्रहणं व्यर्थं स्यादित्य-

---

१ अहोरात्र कहनेसे भूतकाल विवक्षित नहीं है, अमावास्या, द्वादशी, संक्रान्ति यह तिथि और भानुवार श्रेष्ठ है । इसमें स्नान जप होम देवताका पूजन उपवास दान करना परमपवित्र है यह सांवर्तक वाक्य है, वास्तवमें सांवर्तसंक्रान्तिके अधिकरण उपवासका विधान है ।

तथाच "अमावस्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः । एताःप्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च । अत्र स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् ॥ "

परार्कः ॥ हेमाद्रावपि गालवः—"अयनांशकतुल्येन कालेनैव स्फुटं भवेत् । मृगकर्कादिगे सूर्ये याम्योदगयने सति ॥ तदा संक्रान्तिकाले स्युरुक्ता विष्णुपदादयः ॥" इति ॥ अयनांशच्युतिरूपे संक्रान्तिकालेपि विष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते । तेन तत् प्रयुक्तं पुण्यकालादि तत्रादि ज्ञेयमिति स एव व्याचख्यौ ॥ तच्च मेषायनं वृषायनमित्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ माधवीयेपि जाबालिः—"संक्रान्तिषु यथा कालस्तदीयेप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा ॥" इति ॥ मकरायणे पूर्वाः विंशतिघटिकाः पुण्याः, मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः पुण्याः । अन्यत्रायने तत्संक्रान्तिवदित्यर्थः ॥

अपरार्कग्रन्थमें विष्णुने यह कहा है कि, सूर्यकी संक्रान्ति विषुव और दोनों अयन जन्मका नक्षत्र और अभ्युदय इतने श्राद्धके समय प्रजापतिने काम्य कहे हैं, अर्थात् पुत्र आदिकी कामनावाला पुरुष इनमें श्राद्ध करै, जब बारह दिन पहले अयनांशकी प्रवृत्ति होती है, तब भी पुण्य कहनेके लिये अयन पढा है, नहीं तो संक्रान्तिके ग्रहणसेही सिद्ध रहा, अयनका ग्रहण व्यर्थ होजाता, यह अपरार्क ग्रन्थमें कहा है । हेमाद्रि ग्रन्थमें भी गालवऋषिका यह वचन है कि जब अयनांशके तुल्य समयसे मकर और कर्कके सूर्यमें दक्षिणायन और उत्तरायण यह दोनों स्फुट होंय तब संक्रान्तिके समयमें विष्णुपद आदि नाम संक्रान्तिके कथन किये हैं, और उन्हीं गालवऋषिने यह व्याख्या की है कि, अयनांशके बीतनेपर जो संक्रान्तिका समय है उसीमें उस संक्रान्तिका पुण्यकाल समझना, और वह काल मेषायन वृषायन इस प्रकार सब संक्रान्तियोंमें जानना चाहिये । और माधवीयग्रन्थमें भी जाबालि ऋषिने कथन किया है कि, संक्रान्तिमें जैसा पवित्र काल होता है, वैसाही उसके अयनमें होता है, मकरके अयनमें पहली वीस घडी और मकरकी संक्रान्तिमें पिछली वीस घडी पुण्यकाल होताहै ॥

विष्णुपदादिनिर्णयः ।

विष्णुपदादिस्वरूपं च दीपिकायामुक्तम्—हर्यङ्घ्रिर्वृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्य यः संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयुक्षु षडशीत्याख्यं तुलामेषयोः । प्रोक्तं तद्विषुवं झषेयनमुदक्कर्कटके दक्षिणम् ॥" इति ॥ हर्यङ्घ्रिर्विष्णुपदम्, नृयुक् मिथुनम् ॥ अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् ॥ तथा चापरार्के मात्स्ये—"अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । संक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते ॥" इति ॥ श्राद्धशूलपाणिस्तु अस्य निर्मूलत्वात्, समूलत्वेपि "ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि ॥" इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्प एव इत्याह ॥ तन्न ॥ अस्य पार्वणानुवादकत्वेन पिण्डाविधायकत्वात् ॥ पिण्डो व्यक्तिः ॥ अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वषट्कर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः ॥ तथा चोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः ॥ त्रिपिण्डशब्देनैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम् ॥ मङ्गलकृत्येषु विशेषमाह ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"त्याज्याःसूर्यस्य संक्रांतेः पूर्वतः परतस्तथा । विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश ॥" इति ॥ एतत् पुण्यकालोपलक्षणम् ॥ 'भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः ।' इति ज्योतिःप्रकाशे वर्ज्येषु परिगणनात् ॥ अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम् । "अह्नि संक्रमणे कृत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ पूर्णे

चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः । प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥" इति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या "रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम् । पूर्वस्मात्परतो वापि प्रत्यासन्नस्य तत्फलम् ॥" इति वसिष्ठवचनाच्चार्थाद्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतेः ॥

और संक्रांतियोंके अयनमें तिस २ संक्रान्तियोंके तुल्य विष्णुपद आदि प्रवृत्त होतेहैं ऐसा जानना, तिससे तिस २ संक्रान्तियोंका पुण्यसमय तिस २ अयनमें भी जानना । विष्णुपद आदि संक्रान्तियोंका स्वरूप दीपिकाग्रन्थमें इसप्रकार लिखाहै कि, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ इनकी संक्रांतिको विष्णुपद कहतेहैं, कन्या, मीन, धनु, मिथुन इनकी संक्रातिको षडशीत्यानन कहते हैं, तुला और मेषकी संक्रांतिको विषुव कहते हैं । मकरकी संक्रांतिको उत्तरायण और कर्ककी संक्रान्तिको दक्षिणायन कहते हैं, और संक्रांतिके दिन पिंडरहित श्राद्ध करना चाहिये । कारण कि, अपरार्कमें मत्स्यपुराणका यह वचन है कि, दोनों अयन और दोनों विषुव और सब संक्रांतियोंमें पिंडको त्यागकर श्राद्ध करना चाहिये और श्राद्धशूलपाणिका तो यह कथन है कि, यह वचन अप्रमाण है और यदि यह वचन मूलसहित होय तो भी इस मत्स्यपुराणके मतसे इसके मानने और न माननेमें विकल्प हो सकताहै । कारण कि, उससे लेकर संक्रांति और सूर्य चन्द्रके पर्वोमें ३ पिंडका श्राद्ध करै, और मृत्युमें एकोदिष्ट श्राद्ध करै, इस मत्स्यपुराणके कहनेसे ग्रहण और अग्रहणसे विकल्प आता है, सो ठीक नहीं कारण कि, यह वचन पार्वणश्राद्धका अनुवाद (कहेका कहना) है, पिण्डका विधायक नहीं है, पिंड नाम यहांपर व्यक्ति (प्रगटता) का है, यदि और अर्थ मानोगे तो पिंडका अनुवाद और पिंडकी विधि दोनों माननेसे उसका प्रकार दो प्रकार होगा, जैसे वषट् करनेवालेके प्रथम भक्षयमें होताहै अर्थात् जो यज्ञमें वषट्करै वह प्रथम भोजन करै, और अन्य ऋत्विज पीछेसे करैं इसप्रकार दोनोंके समूल होनेमें पिंडरहित पार्वण करना यह दोनों वचनोंका अर्थ है, त्रिपिंड शब्दसे एकोदिष्टका व्यावर्तन मात्र है, मंगलकृत्यमें विशेष कहा है सो ज्योतिर्निबंधमें नारदजीका वचन है, सूर्यकी संक्रांतिसे पहिले और पीछेकी सोलह २ घड़ी विवाहादि कार्योमें छोड़देनी चाहिये । यह भी पुण्यकालका जतानेवाला है अर्थात् जिस संक्रांतिका जितना पुण्य हो उतना ही त्यागदे कारण कि, सूर्यकी संक्रांतिके भोग कुलिक और अर्द्धयामको छोड़देना चाहिये, इस वाक्यसे ज्योतिःप्रकाशग्रन्थमें निषिद्धोंमें सर्व संक्रांतिके भोगको गिना है, दक्षिणायन और उत्तरायणकी पहिली संक्रांतिसे भिन्न दश संक्रांतियोंमें रात्रिके समय स्नान और श्राद्ध आदि करना न चाहिये, कारण कि, दिनमें संक्रांति होय तो सम्पूर्ण दिन पुण्य कहा है और रात्रिको संक्रांति होय तो आधादिन स्नानदानमें पुण्यका होताहै । जो संक्रांति आधी रातसे प्रथम होय तो मध्याह्नसे ऊपर कर्म करै, आधीरातसे पीछे संक्रांति होय तो सूर्योदयसे दो प्रहरतक अगले दिन पुण्यकाल है, और जो पूर्ण आधीरातके समय संक्रांति होय तो मकर और कर्कको छोड़कर दोनों दिनमें पुण्यकाल है, इसप्रकार इन वृद्धवसिष्ठादिके वचनोंसे दिनको ही पवित्र कहा है । यदि सूर्यकी संक्रांति रात्रिके समय होय तो समीपके पहले वा पिछले दिनमें कर्म करै, इस वसिष्ठके वाक्यसे रात्रिमें स्नान आदिका निषेध विदित होता है ॥

यानि तु-"विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु । तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा ॥" इति ॥ "राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥" इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानि, तानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि ॥ 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति तयोर्दिवानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः॥ वस्तुतस्तु

प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेहनि' इत्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः अहःपुण्यत्वानुपपत्त्या कल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्यक्षरात्रिविधिना बाधात्सर्वसंक्रांतिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः ॥ स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इति युक्तः पन्थाः॥ अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणे माघे च वक्ष्यते ॥

और जो कि, विवाह यज्ञोपवीत संक्रान्ति प्रतिष्ठा यज्ञ जन्म ग्रहण और यात्रा आदिमें स्नान दान करनेमें रात्रि शुभ है। राहुका दर्शन, संक्रान्ति, विवाह, मरण, वृद्धिकामनाके व्रत इनमें रात्रिके समय भी स्नान दान करै यह विष्णुगोभिलादि महर्षियोंके वचन हैं। ये दोनों वचन मकर और कर्ककी संक्रांतिके विषयमें जानने चाहिये कारण कि, मकर और कर्कको त्यागकर दोनों दिन पुण्यकाल है, इस वाक्यसे मकर और कर्ककी संक्रांतिमें दिनमें कर्मानुष्ठान करना निषेध किया है, यह हेमाद्रि माधव आदि कथन करते हैं। यथार्थ तो यह है कि, पहले कहेहुए वचनमें मकर और कर्ककी संक्रांतिके विषय दोनों दिन पुण्यकाल करनेका निषध है, इससे मकर और कर्कमें भी अगलेमें स्नान और दान करै, इस वचनसे दिनको पुण्य कहनेसे, और दिनके पुण्यत्वके विना रातमें निषेध नहीं हो सकता, और जहां रात्रिमें पुण्यका विधान किया है उससे रात्रिमें पुण्यनिषेधकी बाधा होनेसे सब संक्रांतियोंमें रातमें कर्मानुष्ठान करनेका विकल्प है अर्थात् करै और न करै और वह विकल्प देशाचारसे माननेके योग्य है यही मार्ग उचित है। इन मकर और कर्ककी संक्रांतियोंमें जो विशेष कथन है, वह आगे माघ और श्रावणके निर्णयमें हम वर्णन करैंगे ॥

ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत्। तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैर-क्लेशधनक्षयाः॥ तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः। स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम्॥' हेमाद्रौ–'अह्नि चेद्रात्रियुग्मं स्याद्रात्रौ चेद्वासरद्वयम्। संक्रांतिः पक्षिणी ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥' यत्तु गौडाः–'संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे। सायं-संध्यां न कुर्वीत कुर्वंश्च पितृहा भवेत्॥' इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तेः सायं पुण्यकाले संध्यानिषेधमाहुः॥ तन्निर्मूलम्॥ अन्यच्च बहु वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते॥ इति संक्रान्तिनिर्णयः॥

ज्योतिर्निबन्धग्रन्थमें गर्गऋषिने यह कथन किया है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें सूर्यकी संक्रांति हो उस महीनेमें उस मनुष्यके यहां वैर दुःख होकर धनका नाश होता है, उस मनुष्यको उचित है कि, तगर, कमल, हलदी सरसों, पठानीलोधको पकाकर जलमें स्नान करै तो जन्मनक्षत्रकी संक्रांति शुभदायक होती है। हेमाद्रिग्रन्थमें यह कहा है कि, यदि दिनमें दो रात्रि भोगैं और रात्रिमें दो दिन भोगैं तो वह संक्रांति दान, पढनेके कर्ममें पक्षिणी जाननी, अर्थात् एकरात्रि और अगला पिछला दो दिन उसका पुण्यकाल होता है, जो गौड यह कहते हैं कि, संक्रांति, पूर्णिमा, मावस, द्वादशी और श्राद्धके दिनमें सायंसन्ध्या न करनी, करनेसे पितृहत्यारा होता है यह कर्मोपदेशनीमें व्यासकी उक्ति है, सन्ध्यापुण्यकालमें जो संध्याका निषेध कहा है वह निर्मूल है, और भी बहुत कहते, पर विस्तारके भयसे नहीं कहते। इति संक्रांतिनिर्णयः ॥

---

१ विषुवअयनके दिनमें संक्रमण होनेपर पूर्व पर रात्रियें वह दिन अध्यापन वा अध्ययनमें वर्जित हैं रात्रिकी संक्रान्तिमें पूर्व पर दिनकी वह रात्रियें त्याग देनी, इस प्रकार पक्षिणी संक्रान्ति है, बारह पहरतक अनध्याय यह तात्पर्य है।

चान्द्रमासनिर्णयः ।

पक्षयुगजश्चान्द्रो मासः ॥ स द्वेधा शुक्लादिरमान्तः, कृष्णादिः पूर्णिमान्तश्चेति ॥ तथा च त्रिकाण्डमण्डनः–'चान्द्रोपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वेति च द्विधा ।' इत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह–'कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वन्ति केचन । येपीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे ॥' इति ॥ विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते ॥ तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिर्गौणः ॥ शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः । तदुक्तं दीपिकायाम्–'चान्द्रोऽब्दो मधुशुक्लगप्रतिपदारम्भः' इति ॥ न हि ये कृष्णादिं मन्यन्ते तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते ॥ अतः शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिना मलमासासंभवाच्च ॥ चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः ॥

दो पक्षोंका चान्द्रमास होताहै, शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे वह दो प्रकारका है । अर्थात् शुक्लपक्षसे मावसतक और कृष्णपक्षसे पूर्णिमातक, यह त्रिकाण्डमण्डन कहते हैं कि, चन्द्रमा शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे दो प्रकारका है, यह कहकर देशाचारसे उसकी व्यबस्था कहीहै कि, कोई कृष्णपक्षादिमासको स्वीकार नहीं करते और जो स्वीकारभी करतेहैं वे विन्ध्याचलके दक्षिणमें नहीं मानते, इस कथनसे विन्ध्याचलके दक्षिणमें कृष्णपक्षादि मासका निषेध करनेसे विन्ध्यके उत्तरमें दोनोंके माननेकी अनुज्ञा प्राप्त हुई । उनमेंभी शुक्लपक्षादिमास मुख्य और कृष्णादि गौण हैं । शास्त्रोंमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदा ही चान्द्रसंवत्सरके आरंभमें कहीहै, सोई दीपिकामें कहाहै कि, चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरंभवाला चान्द्र वर्ष है और जो कृष्णपक्षादि महीना मानतेहैं, उनके मतमें भी वर्षके आरंभका भेद नहीं है, इससे शुक्लादि मुख्य है । कृष्ण आदि माननेसे मलमास भी प्राप्त न हो सकैगा, चन्द्रमाके सम्पूर्ण नक्षत्रोंके भोगसे नाक्षत्रमास होताहै ॥

सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते–'अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद्ब्राह्मणस्य तु । संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः ॥' अत्र ब्राह्मणादीनां यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिवन्मास उक्तः तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्म्मसु दर्शान्त एवेति ॥ वृष्ट्याद्यर्थसौभरे हीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् । त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावनादीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः ॥ ज्योतिर्गर्गः–'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः । आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥' ऋष्यश्रृङ्गः–'विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते । पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके ॥' स्मृत्यन्तरे–'एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ ॥' ज्योतिर्गर्गः–'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा । सावनेनैव कर्त्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना ॥' विष्णुधर्मे–'नक्षत्रसत्राण्ययनानि चेन्दोर्मासेन कुर्याद्गणात्मकेन' इति ब्राह्मे ॥ 'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च । विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥'

हेमाद्रिके ब्रह्मसिद्धान्तमें सावनादि वर्षोंकी व्यवस्था वर्णन की है । ब्राह्मणका अमावस्यातक, क्षत्रिय और वैश्यका संक्रांति और पूर्णिमातक मास मानना । यहां ब्राह्मणादिका जिस कर्मविशेषमें वचनान्तरसे वसन्तऋतुमें ब्राह्मण अग्निस्थापन करे इत्यादि महीना कहाहै । वहां अमावास्यातक महीना माननेका

नियम है. न कि संपूर्ण कर्मोंमें मावसतक माननेका। कारण कि, वृष्टि आदिके निमित्त जैसे पशुकल्पका नियम है इसी भाँति विधिकी लाववतासे और द्विजातियोंके सब कर्मोंमें मासविशेषके विधानसे सावनादि महीने शूद्र अनुलोमादिकोंके माननीय हैं, यह गुरुचरण कहतेहैं। ज्योतिर्गर्गका कथन है कि, विवाहादिमें सौरमास यज्ञादिमें सावन और पिताके आब्दिक (क्षयाह) के दिन चान्द्रमास श्रेष्ठ है। शृंगऋषिका कथन है कि, विवाह, यज्ञोपवीत, यज्ञ इनमें सौर मास पार्वण अष्टकाश्राद्ध आदिकमें चान्द्रवर्ष मानने योग्य है और स्मृतिमें लिखा है कि, एकोद्दिष्ट विवाहादि और ऋणादिमें सौर और सावनमास मानने उचित हैं। ज्योतिर्गर्ग कहते हैं कि अवस्था दायविभाग प्रायश्चित्त क्रिया तथा शत्रुसेवा सावनमासमें करनी चाहिये। विष्णुधर्ममें लिखा है, नक्षत्रोंका यज्ञ और दोनों अयन यह दोनों २७ नक्षत्रोंके भोगरूप चान्द्र माससे करे। ब्राह्मपुराणमें लिखा है कि, तिथिके कार्यमें कृष्णपक्ष आदि और यज्ञोपवीतमें शुक्लपक्ष आदि और विवाह आदिमें सौर आदि मासको मानना चाहिये॥

अथ मलमासक्षयमासनिर्णयः

अथ मलमासः। तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः॥ एकमात्रसंक्रान्तिराहित्यमसंक्रांतत्वेन संक्रांतिद्वयवत्त्वेन च भवतीति। मलमासो द्वेधा–अधिमासः क्षयमासश्चेति॥ तदुक्तं काठकगृह्ये–'यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः॥' इति॥ सत्यव्रतोपि–"राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः। नाधिमासो भवेदेष मलमासस्तु केवलम्॥"इति॥ अधिकमासस्य कालनियममाह वसिष्ठः–'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः॥' इति॥ एतच्च सावनादिमानेन सम्भवार्थं, न तु नियमार्थम्॥ अन्यथा षोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लानित्वभंगापत्तेः। तेन न्यूनाधिककाले मलमासपातेपि न दोषः॥ अत एवोक्तं माधवीये–'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' इति॥

मलमासका निर्णय कहते हैं कि, एक मात्र संक्रान्तिसे रहित जो शुक्लपक्ष आदि चान्द्रमास है, उसको मलमास कहते हैं, एक मात्र संक्रान्तिसे रहित वह होगा कि, जिसमें सर्वथा संक्रान्ति न हो, वा दो संक्रांति हों। उस मलमासके दो भेद हैं, एक अधिकमास दूसरा क्षयमास। यही वार्त्ता काठकगृह्यने कही है कि, जिस महीनेमें संक्रांति न हो वा दो संक्रांति हों, वह तेरहवां मलमास जानना उचित है। सत्यव्रतभी कहतेहैं कि, जिस महीनेमें सूर्य दो संक्रांतिको भोगै वह केवल अधिकमासही नहीं होता है, मलमास होताहै। और अधिकमासके कालका नियम वसिष्ठजीने यह वर्णन किया है कि, बत्तीस महीने और सोलह दिन और चार घडीके बीतनेपर अधिक मास पड़ता है, यह बात भी सावन आदि मानसे सम्भवके निमित्त है, मानके निमित्त नहीं। अन्यथा सोलह दिन और बत्तीस मासके अनन्तर कृष्णपक्ष आनेके नियमसे मलमासको शुक्लपक्ष आदि माना है, वह दूर होजायगा। तिससे पूर्वोक्तसे अधिक व न्यूनमें मलमास आपड़े तो कुछ दोष नहीं होगा, इसीसे माधवीयग्रन्थमें कहा है कि, तीसवें महीनेमें मलमास होता है॥

क्षयस्यापि ज्योतिःशास्त्रे–'असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च॥' एकः क्षयात्पूर्वः, परतश्चैक इत्यधिमासद्वयं भवतीत्यर्थः। अत्र विशेषमाह जावालिः–'मासद्वयेऽब्दमध्ये

तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत् । प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्थतोत्तरः ' ॥ इति ॥ उत्तर एव कालाधिक्यं, न पूर्वस्मिन्नित्यर्थः ॥ यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते–'चैत्रादर्वाङ् नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत् ' इति ॥ तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तिद्वये पूर्वो नाधिकः, किं तु पर इत्यर्थः ॥ यच्च ज्योतिःसिद्धान्ते–'घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धन्विनि । मकरे वाथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते ॥ ' इति ॥ तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वम्, तुलाकन्यागते सूर्ये क्षयात् पूर्वं कालाधिक्यनिषेधार्थं, न त्वधिकमात्रस्य । 'दशानां फाल्गुनादीनां प्रायो माघस्य च क्वचित् । नपुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः ॥ ' इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मविरोधात् मलमासेष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च ॥ ' मकरे वाथ कुम्भे वा ' इति दृष्टान्तार्थप्राप्त्यभावाच्च ॥ क्षयस्यागमनकाल उक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ–' गतोऽब्ध्यद्रिनंदैर्गते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः । गजाद्यग्निभूभिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च ॥ '' इति ॥ अब्धयश्चत्वारः, अद्रयः सप्त, नन्दाः नव, एषां प्रातिलोम्येन पाते ९७४ तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्वं जात इत्यर्थः । तिथयः पञ्चदश ईशा एकादश एवं १११५ मिते याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः । अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्याः १२ एकत्र १२५६, गजाः ८ अद्रयः ७ अग्नयः ३ भूः १ एकत्र १३७८, कुः १ वेदाः ४ इंदुः १ एकत्र १४१, गावः ९ कुः १ एकत्र १९ एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः ॥

ज्योतिश्शास्त्रमें क्षयमासका भी कथन है, कि जिस महीनेमें संक्रांति न होय वह अधिकमास और जिस मासमें दो संक्रांति यदि होजाँय वह क्षयमास होता है, और वह क्षयमास कार्त्तिक आदि तीन महीनोंमें होता है, औरमें नहीं । और जिस वर्षके मध्यमें क्षयमास होता है, उसमें दो अधिकमास होते हैं, एक क्षयसे पूर्व और एक पश्चात् होता है । और इसमें जाबालिऋषिने यह विशेष कथन किया है कि, जिस वर्षके मध्यमें दो महीनोंमें संक्रांति न हो उन दोनों मासोंमें पहिला प्राकृत और दूसरा अधिकमास होता है । और दूसरेमें ही अधिक समय होता है पहलेमें नहीं । यह इसका अर्थ है, और जो ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, चैत्रसे पहिले अधिकमास नहीं होता और परे होता है, इसका यह अर्थ है कि, चैत्रसे पहिले दो मासोंमें संक्रांति न होय तो पहिला अधिकमास नहीं होता किन्तु दूसरा होता है । और जो ज्योतिस्सिद्धान्तमें कथन किया है कि तुला, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ राशियोंपर सूर्य होय तो अधिकमास नहीं होता, इन पूर्वोक्त दोनों वचनोंमें पहला वचन वृश्चिक आदि चार राशियोंमें मलमास होनेपर जानना चाहिये । और दूसरा वाक्य तुला और कन्याके सूर्यमें क्षयमाससे पहिले होनेवाले अधिकमासके अधिक कालकाही निषेध करता है, अधिकमासका नहीं, कारण कि, फाल्गुन आदि दश और कचित् माघ यह ग्यारह महीने ही प्रायः संक्रांतिरहित होते हैं, यह शास्त्रका सिद्धान्त है । इस हेमाद्रिमें विष्णुधर्मके कहे वचनसे विरोध होगा, और मलमासमें अष्टका श्राद्धका निषेध भी संगत न होगा और पूर्व कहे मकर वा कुम्भमें अधिक मास नहीं होता, यह वचन दृष्टान्तके निमित्त है, निषेधके निमित्त नहीं, कारण कि इन दोनों संक्रांतियोंमें अधिकमासकी प्राप्तिही नहीं होती । क्षयमासके आनेका समय सिद्धांतशिरोमणि ग्रंथमें इसप्रकार कहा है कि, अब्धि ४ अद्रि ७ नन्द ९ इतने (९७४) शक बीतनेपर कोई क्षयमास बीतगया । और तिथि १५ ईश ११ इस (१११५) शाकेके बीतनेपर कोई क्षयमास होगा । और अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्य, १२ इतने (१२५६) शाके बीतनेपर और गज ८ अद्रि ७

अग्नि ३ भू १ (१३७८) इतने शाके बीतनेपर कु १ वेद ४ इन्दु १ (१४१) इतने वर्ष बीतनेपर गो ९ कु १ (१९) इन वर्षोंके बीतनेपर कोई क्षयमास होगा ॥

मलमासे कार्याकार्यनिर्णयः ।

अथ मलमासे कार्याकार्यं निरूप्यते ॥ तत्र जाबालिः—"नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिम्लुचे । तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन ॥" अयं च काम्यनिषेधो आरम्भसमाप्तिविषयः । "असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमतः । व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समापनम् ॥" इति तेनैवोक्तत्वात् ॥ असूर्या अधिकमासा इत्यर्थः । तत्र 'मण्डलं तपते रविः' इति वचनात् ॥ कारीर्यादेः काम्यस्य त्वारम्भसमाप्ती भवत एवेत्यादिरन्यत्र विस्तरः ॥ काठकगृह्येपि—'मलेऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्' इति ॥ तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि—'यन्नैमित्तिकमग्निनष्टचनुगताग्न्याधानमर्चासु वा संस्कारादिविलोपने सति पुनः प्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति ॥ गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव । तत्र कर्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे—"द्वादशाहं सपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः । सीमन्ते पुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च ॥ रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धव्रतानि च । प्रायश्चित्तनिमित्तस्य वशात्पूर्वे परत्र च ॥ अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु । श्राद्धं दर्शेप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम् ॥ मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । श्राद्धं तु पूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेव युगादिषु ॥ मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनं दिनं च यत् । तिलगोभूहिरण्यानां संध्योपासनयोः क्रिया ॥ पर्वहोमश्चाग्रयणं साग्नेरिष्टिश्च पर्वणि । नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवतातिथिपूजनम् ॥ स्नानं च स्नानविधिनाप्यभक्ष्यापेयवर्जनम् । तर्पणं वा निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च ॥" इति ॥ एतौ पुंसवनसीमन्तौ ॥ एतच्च गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारोपलक्षणम् ॥ तदुक्तं दीपिकायाम्—"गर्भाधानमुखं च चौलविधितः प्राग्जातयागं विना कृच्छ्रेष्वाग्रयणं गजेन्द्रपुरतश्छाया मघानङ्गयोः । तीर्थेंदुक्षययोश्च पित्र्यमधिके मास्येवमाचरेत् ॥" इति ॥ अलभ्ययोगेऽर्धोदयपद्मकादौ काम्यान्यपि व्रतादीनि कार्याणीत्यर्थः ॥ पूर्वं परत्र मले शुद्धे चेत्यर्थः ॥ महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः ॥ दर्शश्राद्धं मलेपि कार्यम् ॥ यत्तु ऋष्यशृङ्गः—"संवत्सरातिरेकेण मासो यः स्यान्मलिम्लुचः । तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिंदुसंक्षये ॥" इति ॥ तत् काम्यदर्शश्राद्धविषयम् 'काम्यं नैव कदाचन' इति वचनात् ॥ दर्शे च काम्यं श्राद्धं "कन्यां कन्यावेदिनश्च" इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तम् । नित्यं तु मलेपि भवत्येव "दर्शेप्यहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम् । गोभूतिलहिरण्यानां मासेपि स्यान्मलिम्लुचे ॥" इति मात्स्योक्तेरिति हेमाद्र्यादयः ॥ दिवोदासीयेपि—"अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरिवारो बुधाष्टमी । नाधिमासे परित्याज्याः सीमन्तान्नाशने शिशोः ॥" इति ॥ अनिन्दुर्दर्शः ॥ 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न कार्यम्' इत्यपरार्कः 'अत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्' इत्युक्तेः ॥ 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः' इति शुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्तेर्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति प्राचीनगौडाः । शूलपाणिश्च संवत्सरप्रदीपेपि—"एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत् । दर्शश्राद्धं तदादौ स्यान्न परत्र मलिम्लुचे ॥" अत्रापि नित्यकाम्यभेदेन प्राग्व्यवस्था ॥

अब मलमासमें करने और न करनेका विचार करतेहैं । जाबालिऋषि कहतेहैं कि, मालमासमें नित्यकर्म (संध्या आदि) और नैमित्तिक (जातकर्म आदि) कर्म और श्राद्ध कर्मको करै और तिथि, नक्षत्र और वारमें कहेहुए काम्यकर्म फलकी इच्छासे कभी न करै, यह काम्यकर्मका निषेधभी उसी काम्य-कर्मका है जिसके प्रारम्भ और समाप्ति दोनों मलमासमेंही होजायँ, कारण कि, जो मास सूर्यरहित (मल) हैं, उनमें व्रत और यज्ञोंका आरम्भ और पूर्ति मुझे सम्मत नहीं है, यह उन्हीं जाबालिका वचन है कि, मलमासोंमें सूर्यका मण्डल तपताहै, कारीरी आदि यज्ञोंका तो प्रारम्भ और पूर्ति इसीमें होजातीहै, इसका विस्तार दूसरे ग्रन्थोंमें है, काठकगृह्य सूत्रमें यह कहाहै कि, मलमासमें अनन्य गति होनेसे उस नित्य नैमित्तिक कर्मको करै जो फिर हो सकै और वे नैमित्तिक कर्म दीपिकामें लिखेहैं कि, अग्निके नष्ट होनेपर अग्निका स्थापन और प्रथमसंस्कारके नाश होनेपर दूसरी वार कहेहुए प्रतिष्ठा आदि नैमित्तिक कर्म मलमासमें भी करलेने, कारण कि, ये तत्काल करने उचित हैं और जो सोम आदि फिर हो सकतेहैं वे छोडदेने, मलमासमें कर्म, ग्रहण, जातकर्म, सीमंत और पुंसवनसंस्कार इन चारोंमें करने योग्य श्राद्ध और दोनों सीमंत और पुंसवनसंस्कार रोगमें शान्ति और अलभ्य योगमें श्राद्ध व्रत और प्रायश्चित्तके निमित्त कर्म पहले मलमासमें वा पिछले शुद्धमासमें करने उचित हैं । और क्षयतिथिके दिन घटदान और मन्वादि महालय अर्थात् (कन्यागत वा मघा त्रयोदशी) युगादि और अमावस इनमें श्राद्ध और नित्यश्राद्ध और ऊनमासिक श्राद्ध मलमासमें करै, और मलमाससे अन्यमासमें मृतकोंका वार्षिकश्राद्ध करै और पहिले कहेहुए तीर्थ और युगादि तिथियोंमें भी श्राद्धको करै, और जो दान मन्वादि तिथि-योंका और यव, तिल, गौ, भूमि, सोना इनका नित्य दान है, सन्ध्या और पूजनकर्म मावस आदि कर्मका होम अगहनकी पूर्णमासीका यज्ञ, और अमावस आदि पर्वमें अग्निहोत्रीका यज्ञ, और अग्निहोत्रका नित्यहोम, देवता अतिथिका पूजन स्नान विधिसे स्नान अभक्ष्य अपेयका त्याग, यह मलमासमें करने योग्य हैं । और इसलोक और परलोकमें नित्य होनेसे तर्पणको भी न त्यागै इन श्लोकोंमें पुंसवन और सीमंतसे गर्भाधान आदि अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कार समझने, सो यही दीपिकामें कहाहै कि, गर्भाधान आदि संस्कार मुण्डनसे पहले जातकर्मके विना दुःखमें अगहन १९ यज्ञ गज यक्षतीर्थ और अमावस्यामें पितरोंका श्राद्ध इत्यादि कर्म मलमासमें करने चाहियें, अर्द्धोदय पद्मकादि अलभ्य योगोंमें काम्यव्रत आदि भी करने, और अमावसका श्राद्ध मलमासमें भी करना, महालय शब्दसे मघा त्रयोदशी लेनी चाहियें । जो ऋष्यशृंगने यह कहाहै कि, वर्षके अनन्तर जो मलमास होय तो उस तेरहवें महीनेमें अमावसके दिन श्राद्ध न करै, यह उनका कथन काम्य दर्शश्राद्धके विषयका है, कारण कि, काम्यश्राद्धको कदाचित् भी न करै, ऐसा वाक्य है कि, अमावसके दिन काम्यश्राद्ध और कन्यागत श्राद्ध कन्यामें करै इत्यादि याज्ञवल्क्य महर्षिका कहा हुआ नित्यश्राद्ध तो मलमासमें भी होताहै । कारण कि, अमावस

१ और जो कहते हैं मलमासके प्रवृत्त होनेसे पहले काम्यकर्म समाप्त न हुआ हो तो मलमासके आनेपर उसकी समाप्ति होजाती है इसमें सन्देह नहीं, यह सावनमासमें प्रवृत्त कृच्छ्रचान्द्रायणादिपर जानना, यह माधव कहतेहैं जिसका अन्यमासक अनुष्ठानमें कालके अतिक्रमसे प्रायश्चित्तापत्ति हो, विहि-तकालके प्राप्त न होनेसे वा लोप हो ॥

२ इसमें बीज यह है, महालयशब्दकी माघत्रयोदशीमें लक्षणा व्यर्थ है, वृद्धिश्राद्ध, सोमयाग, अग्न्याधान, महालय, राज्याभिषेक काम्यव्रत सूर्यके लंघित होनेपर न करै, इस प्रकार भृगुकथित निषेधकालातिपात महालयके विषयमें है।

"प्रवृत्तं मलमासात्प्राक्काम्यं कर्म समापितम् । आगते मलमासेऽपि तत्समाप्तिर्न संशयः ॥
वृद्धिश्राद्धं तथा सोमसग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते" ।

और प्रतिदिनका श्राद्ध और गौ, भूमि, तिल, सुवर्णका प्रतिदिन दान यह मलमासमें भी होतेहैं, यह मत्स्यपुराणका वाक्य है तथा हेमाद्रि आदिका कथन है, दिवोदासीय ग्रन्थोंमेंभी लिखाहै कि अमावस, पूर्णिमा, द्वादशी, बुधाष्टमी यह सब सीमंत और बालकके अन्नप्राशन मलमासमें भी न लागने चाहिये। अपरार्क तो यह कहतेहैं कि, अमावस्याके दिन दोनों प्रकारका श्राद्ध (अपात्रिक और पात्रिक) न करै, कारण कि मलमासकी अमावसके दिन जो कहाहै सो अगले मासमें करै, और जब साठदिनका एक मास है, उसमें शुद्धमासके दिनभी शास्त्र चरितार्थ था, इससे अमावसका श्राद्ध मलमासमें नहीं करना, यह प्राचीन गौड़ कहते हैं, शूलपाणि संवत्सरप्रदीपग्रन्थमें कहते हैं कि, सूर्यके एकराशिमें स्थित होनेपर यदि दो अमावस होजायँ तौ अमावसका श्राद्ध पहली अमावसको करना दूसरीको नहीं, और इसमें भी नित्य काम्यके भेदसे पूर्वके समानही व्यवस्था है, अर्थात् काम्यश्राद्ध न करै, नित्यका दोष नहीं लिखाहै ॥

तत्र आब्दिकश्राद्धनिर्णयः।

यद्यपि कालादर्शे–'सर्वं वार्षिकं मासद्वये कार्यम्' इत्युक्तम्। तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमतात् प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे, द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव कार्यम्। "असंक्रान्तेपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः। तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा॥" इति हारीतोक्तेः॥ "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे। चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम्॥" इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च॥ पुनराब्दिकं द्वितियादिवार्षिकं त्रयोदशे मासऽतीते चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः॥ यत्तु सत्यव्रतः–"वर्षेवर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि। मलमासे न तत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा॥" इति॥ तद्द्वितीयादिवार्षिकविषयम्। 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे' इति पूर्वोक्तवचनात्॥ यत्र द्वादशं मासिकं शुद्धे मासे भवति तत्र त्रयोदशेधिक एवाद्याब्दिकं कार्यम्। यत्र त्वधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्ध एव प्रथमाब्दिकं इति निष्कर्षः। तेन द्वितीयादिशुद्धमास एव पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदनपारिजाते चैवम्॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यम्। यथा पैठीनसिः–"मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम्। मलमासेपि कर्तव्यं नान्येषां तु कथंचन॥" इति॥ हेमाद्रौ व्यासोपि–"मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्। स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु॥" अत्राधिकमृतस्य न द्वितीयाद्यब्देपि सौरविधिः, द्वितीयादावन्याधिके वा पूर्वनियमविधिवैरूप्यात्, किंतु प्रथमाब्दिकस्य मले नियमात्॥ सत्यव्रतेन तद्भिन्नस्य सर्वस्याधिके प्रतिप्रसवमात्रे लाघवात्॥ अतो न द्वितीयादौ सौरमासप्रसङ्गः। 'चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके। मासपक्षतिथिस्पष्टे' इत्यादि विरोधाच्च॥

यद्यपि कालादर्शग्रन्थमें सम्पूर्ण वार्षिकश्राद्ध दोनों मासमें करना, तोभी हेमाद्रि, माधव और अपरार्कके मतसे पहला आब्दिक श्राद्ध तेहरवें मलमासमें और द्वितीय वार्षिक आदि तो शुद्धमासमें करने चाहिये, कारण कि, हारीतऋषिने यह कहाहै कि, संक्रान्ति रहित (मल) मासमें प्रथम वार्षिक, मासिक सपिंडीकरण श्राद्ध करने, और अन्यस्मृतिमें भी यह कहाहै कि, पहले वार्षिकश्राद्धको मलमासमें भी करलेना

चाहिये । और जब चतुर्दश मास आजायँ तब द्वितीय वार्षिक आदि १४मासके प्रथम दिनमें करै,जो सत्यव्रतने कथन कियाहै कि, माता पिताके मरनेके दिन वर्ष २ में जो श्राद्ध है वह व्याघ्रऋषिके वचनानुसार मलमासमें न करना चाहिये,यह कथन द्वितीय आदि वर्षविषयक है,कारण कि, प्रथम वार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी करना चाहिये । यह पूर्वोक्त वचन है, जिस प्राणीकी वर्षी शुद्धमासमें ही आजाय वहाँ तेरहवें अधिकमासमें ही प्रथम वार्षिक श्राद्ध करलेना, और जिसकी वर्षी अधिकमासके मध्यमें हो वहां उस मासको (दूना) करके शुद्ध चौदहवेंमें ही प्रथमवार्षिक श्राद्ध करना यह सिद्धान्त है । तिससे द्वितीय आदि शुद्धमासहीमें करना चाहिये, और पृथ्वीचन्द्रोदय, दिवोदासीय, मदनपारिजातमें भी यही है कि, जो प्राणी मलमासमें ही मृतक हुए हों, और वही मलमास उनके क्षयाहके दिन आनपडै, तौ उसका श्राद्ध मलमासमें ही करदे, यही पैठीनसिका वचन है, कि जो प्राणी मलमासमें मृतक हुए हों उनका प्रतिवार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी करदे, औरोंका किसी प्रकार न करै, हेमाद्रिमें व्यासका भी कथन है कि, मलमासमें मृतक हुओंका सौरमान कल्पना करै, उनके श्राद्ध पिण्डादिका वही दिन है । यहां अधिकमासमें मरेकी दूसरे वर्ष सौरविधि नहीं है, कारण कि, द्वितीयादिमें अन्य अधिक वा पूर्व नियमकी विधि विरूप होनेसे । किन्तु पहले वर्षका तो मलमें होनेसे नियम है । सत्यव्रतने उससे भिन्न सबके अधिकमासके प्रति प्रसक्त होनेसे लाघव कहाहै इससे द्वितीयादिमें सौरमासका प्रसंग नहीं है। आब्दिकमें चान्द्रमास इष्ट है । मास, पक्ष, तिथिके स्पष्टमें करै, इत्यादि वाक्योंसे विरोध होगा ॥

मासिकश्राद्धनिर्णयः ।

यत्तु वृद्धवसिष्ठः–" श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि । मासद्वयेपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति ॥ " यच्च व्यासः–" उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः " इति तन्मासिकादिविषयम् ॥ ' यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च ॥" इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ तैर्थिकं तीर्थश्राद्धं, तच्च मासद्वयेपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टः । केचित्तु–" प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि ॥" इति मरीचिवचनात् ॥ "वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि । मासद्वयेपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥ " इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः ॥ तत्तुच्छम् ॥ प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम् । प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धम्, इति मरीचिवचसो मदनरत्नेन व्याख्यानात् ॥ गालवीयस्य च ' मासद्वयात्मके क्षयमासे ' इति माधवेन व्याख्यानात् ॥ यच्च कैश्चिदुक्तं प्रथमाब्दिकं मासद्वयेकार्यम् । " आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । त्रयोदशे च संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥ " इति यमोक्तेः, तदपि चिन्त्यम् । पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशेऽतीते चतुर्दशे कुर्यात् ॥ अन्यथा–'सांवत्सरं न वर्धेत श्राद्धं तत्र मृतेऽहनि ' इति पैठीनसिविरोधः स्यात् इति हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ॥ एतेन न वर्धेत न च्छिन्द्याच्छुद्धेपि कुर्यादेवेत्यनन्तभट्टव्याख्या मानाभावात् परास्ता ॥ पूर्वव्याख्यायां तु हारीतीये प्रथमग्रहणमेव मानम् ॥ यदपि निर्णयामृते पूर्वोक्तकालादर्शवचनात् मलमासे श्राद्धदिनस्य वन्ध्यत्वनिरासार्थं पित्रुद्देशेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा शुद्धमासे सपिण्डकं श्राद्धं कुर्यात् । ' पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्तौ पिण्डसंयुतम् । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेव

म्मासद्वयेपि च ' इति वृद्धपराशरोक्तेः ॥ तदपि चिन्त्यम् । पूर्वोक्तवचनस्य क्षयपूर्वभाव्यधिकमासविषयत्वात् । तत्र हि मासद्वये श्राद्धमुक्तम् । तदाह सत्यतपाः-"एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः । मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेपि शस्यते ॥ " इति ॥ मासद्वयगतं पूर्वसंक्रान्तिगतं क्षयगतं च । मलमासे । क्षयमासे । अपिशब्दात् पूर्वाधिमासे चेति हेमाद्रिः । दीपिकायामपि-"तत् प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्तत्रत्यसांवत्सरं तस्मिञ्छुद्धतया क्षये च वचनात् कुर्याद्द्वयोः कोविदः " इति ॥ कालादर्शोप्येतद्विषय एवेत्यलं बहुना ॥

और जो वृद्धवसिष्ठने यह कथन किया कि, यदि श्राद्धके दिन आनेपर अधिकमास होय तो दोनों मासोंमें श्राद्ध करै, इसप्रकार करनेसे मोहको प्राप्त नहीं होता, और जो व्यासने यह कहाहै कि, दूसरे मासमें देवताओंके कर्म और दोनोंमें पितरोंके कार्य करने, यह पूर्वोक्त दोनों वचन मासिकश्राद्ध विषयके हैं कारण कि, स्मृतिचंद्रिकामें लिखा है कि, यज्ञ आदि और मासिकश्राद्ध और कृष्णपक्षका श्राद्ध, मन्वादि तिथिका श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध इन सबको दोनों मासमें भी करै, और त्रिस्थलीसेतु ग्रन्थमें भट्टोंने भी यही कथन किया है । कोई तो यह कहते हैं कि, प्रतिमासका और प्रतिवर्षका श्राद्ध और मन्वादि और युगादि तिथिका श्राद्ध ये सब दोनों मासोंमें होते हैं, इस मरीचिके वचनसे और माता पिताके मरनेके दिन जो वर्ष २ में श्राद्ध है उसको व्याघ्रके वचनानुसार दोनों मासोंमें करै, इस गालवऋषिके वाक्यसे प्रतिवार्षिक श्राद्धको दोनों मासमें करना चाहिये, वह उनका कहना निकृष्ट है कारण कि, प्रतिमास मरनेके दिन जो कियाजाय वह मासिक और प्रतिवर्ष जो उक्त दिनमें कियाजाय वह आब्दिक श्राद्ध होता है, यह मरीचिके वचनसे मदनरत्नने अर्थ लिखा है और गालवके वचनमें वे दो मास लिये हैं । मासद्वय २ रूप क्षयमास हो यह अर्थ माधवने लिखा है, जो किसीने यह कहा है कि, प्रथमवार्षिक श्राद्ध दोनों मासोंमें करना, जो प्रथमवर्षका श्राद्ध है उसको मलमासमें करले और तेरहवें मासमें फिर वार्षिक श्राद्ध करै, यह जो यमने कहा है, सो भी उचित नहीं कारण कि, पुनराब्दिक पदका यह अर्थ है कि द्वितीयवार्षिक आदि श्राद्धको तेरहवेंके बीतनेपर चौदहवें मासमें करै, अन्यथा मरनेके दिन वार्षिकश्राद्ध नहीं बढ सकता, इस पैठीनसिके वचनका विरोध होगा, यह हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, इस (प्रमाण) के अभावसे यह अनन्तभट्टकी व्याख्या भी खंडित होगई कि "न वर्द्धेत" इसका यह अर्थ है कि, उसका छेदन न करै किन्तु शुद्धमासमेंही उसको करले, पहिले व्याख्यानमें तो हारीतके वचनमें पहिले पदका ग्रहण ही प्रमाण है, यद्यपि निर्णयामृतमें कालादर्शके कथनसे मलमास श्राद्धदिन (निष्फल) न हो, कारण कि, इसमें पिताके निमित्त ब्राह्मणोंको जिमाकर शुद्धमाससें पिंडसहित श्राद्ध करै कारण कि, जिसमें संक्रांति न हो उसमें पिंडके विना और जिसमें संक्रान्ति हो उसमें पिंडसहित श्राद्ध करै यह वृद्ध पराशरने कहा है, इसी प्रकार दोनों मासोंमें करै, सोभी ठीक नहीं, कारण कि, पूर्वोक्त वाक्यका विषय उस अधिकमाससे है, जो क्षयमाससे प्रथम हो, और उसमें दोनों महीनोंका श्राद्ध कहाहै, सोई सत्यतपाने कहा है कि, जब दो संक्रान्तियोंसे युक्त एक मास हो तो उस मलमास (क्षयमासमें) दोनों महीनोंका श्राद्ध उत्तम है । हेमाद्रिने और दीपिकाने यही अर्थ लिखा है कि, संक्रातिवाले मासका और क्षयमासका श्राद्ध यह दोनों करै, दीपिकामें यह कथन किया है कि, यदि पहले अधिकमास होजाय तो उसका श्राद्ध वार्षिकश्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्यको उस शुद्धमासमें और क्षयमासमें करना चाहिये, कालादर्शमें भी यही कहा है, अब बहुत विस्तार करना उचित नहीं है ॥

मलमासवर्ज्यानि ।

मलमासे वर्ज्यान्युक्तानि कालादर्शे–"अनित्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम् । अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरेक्षणम् ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठा मौञ्जिबन्धनम् । आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः ॥ राजाभिषेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानि च । अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम् ॥ स्नानं विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः । व्रतारम्भसमाप्ती च कर्म काम्यं च पाप्मनाम् ॥ प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत् । उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् ॥ अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां बलिरष्टकाः । ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ॥ दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः । पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम् ॥ " इति ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ दिवोदासीयेपि–"यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेव च । मलमासे न कुर्वीत व्याघ्रस्य वचनं यथा " इति ॥

कालादर्शग्रन्थमें ये मलमासमें वर्जने योग्य कहे हैं कि, जो कर्म नित्य न हो, जिसका कोई निमित्त न होवे और महादान, अग्निका आधान, यज्ञ, अपूर्वतीर्थयात्रा, अपूर्व देवताका दर्शन, देव, वापी वा सरोवरको प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, संन्यास आदि–आश्रमोंका स्वीकार, कामनाके निमित्त वृषोत्सर्ग, बालकको प्रथम घरसे बाहर निकालना, राजाका अभिषेक, प्रथम मुण्डन, व्रत, अन्नप्राशन, गृहोंका आरम्भ और प्रवेश, स्नान, विवाह, नामकरण, देवताका महोत्सव, व्रतका आरम्भ और पूर्ति, काम्यकर्म और पापोंका प्रायश्चित्त इनको मलमासमें न करै, उपाकर्म और उत्सर्ग, पवित्रियोंका ग्रहण, दमनका अर्पण, और हेमंतऋतुका (उत्सव) सर्पोंकी बलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशानदेवताकी बलि, विष्णुशयन, (करवट लेना) दुर्गा, इन्द्रका स्थापन और उत्थान, इन्द्रकी ध्वजाका उठाना ये सब मल वा अधिकमासमें न करै, इन सबके प्रमाणवचन हेमाद्रि और माधव आदिमें देखलेने । दिवोदासके ग्रन्थमें भी लिखा है, यात्रा, उत्सव, देवताकी सौगन्ध और दिव्यकर्मको मलमासमें न करै, यह व्याघ्रने कहा है ॥

क्षयमासेपि वर्ज्यावर्ज्यं ।

अयं निर्णयः क्षयमासेपि ज्ञेयः–"रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिः स्मृतः । स एव तु द्विसंक्रांते मलमासेप्युदीरितः ॥ " इति काठकगृह्योक्तेः ॥ क्षयमासमृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ–"तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेर्द्धे तथोत्तरः । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥ " आब्दिकवर्धापनेपि ज्ञेयम् ॥

यही निर्णय क्षयमासमें भी जानना कारण कि, काठकगृह्यने कथन किया है कि, सूर्यकी संक्रांतिके सहित मासमें जो त्यागने और करने योग्य कर्मोंकी विधि कही है वही विधि दो संक्रान्तिवाले मासमें कही है । जो प्राणी क्षयमासमें मृतक हुए हैं उनके प्रतिवार्षिक श्राद्धमें हेमाद्रिमें यह अधिक कहा है कि, जो तिथिके पूर्वार्द्धमें मरा हो उसका पूर्व और जो उत्तरार्द्धमें मरा हो उसका उत्तरमास क्षयमासके दोनों मासोंमें जानना. और वर्षगांठमें भी वार्षिकके समान जानना ॥

भृगुगुर्वस्तादिवर्ज्यानि ।

यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम् । तदाह बृहस्पतिः–"बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ।" इति ॥"अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत् ॥ "आवृत्ततीर्थे दोषाभावमात्रम्,

न तु फलम्, इति वाचस्पतिमिश्राः । तन्न । असति बाधके फलहेतुत्वाक्षतेः ॥ लल्लोपि-"नीचस्थे वक्रसंस्थेप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जीबन्धोंगगानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥" इति ॥ दीक्षा यागदीक्षा आगमदीक्षा च ॥ तथा-"उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्राश्च वधूप्रवेशः । तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात् ॥" दिवोदासीये-"गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे । गृहकर्म व्रतं यात्रां मनसापि न चिन्तयेत् ॥" अस्यापवादस्तत्रैव ब्राह्मे-"मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ । कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम् ॥"

जो मलमासमें वर्जना कहा है वह शुक्र और गुरुके अस्त आदिमें भी समझना, सोई बृहस्पतिने कहा है, कि, शुक्र वा बृहस्पतिके बालक वृद्ध और अस्त होनेपर मलमासके समान इन कर्मोंको और सब देवदर्शनको त्यागदे, और शुक्रअस्तमें अनादिदेवताओंको देखकर मनुष्य पवित्र होजाते हैं, और मलमासमें भी उस तीर्थकी यात्रा पहिले कभी की हो उसमें कुछ दोष नहीं और न कुछ फल है, यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है सो सत्य नहीं, कारण कि, जब कुछ बाधक नहीं तो फल किस कारणसे न होगा ? यही लल्लने भी कहा है कि, यदि बृहस्पति नीचका हो, वक्री हो, अतिचारी हो,बालक, वृद्ध वा अस्त हो और सिंहराशिका हो तो संन्यास, देवयात्रा, व्रतके नियमकी विधि, कर्णवेध, यज्ञ और वेदकी दीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह, वास्तु (घर) और देवताओंकी प्रतिष्ठा, इतने कर्म सज्जन मनुष्य त्यागदे, और बाग लगाना, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, यात्रा, वधूप्रवेश, तालाब, कूप, देवताकी प्रतिष्ठा यह कर्म सिंहके बृहस्पतिमें न करै, दिवोदासीयग्रन्थमें लिखा है कि, घरका प्रारम्भ आदि कर्म, यज्ञोपवीत, यात्रा इतने कर्मोंकी चिन्ता गुर्वादित्ययोगमें, सिंहके गुरुमें, शुक्रके अस्तमें, मलमासमें, मनसे भी न करै, इसका अपवाद भी उसी ग्रन्थमें इस ब्राह्मपुराणके वचनसे लिखा है कि, मुंडन, उपवास इन दोनोंका सिंहके गुरुमें गौतमी नदीके तीरपर और कन्याके गुरुमें कृष्णानदीके तटके रहनेवाले न करैं ॥

सिंहगुरौ गोदावरीस्नानम् ।

तथा-"आद्यासौ गौतमी गङ्गा द्वितीया जाह्नवी स्मृता । सर्वतीर्थफलं स्नानाद्गौतम्यां सिंहगे गुरौ ॥" संहिताप्रदीपे-"स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बालत्वमह्नां दशकं च वार्धम् । वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ ॥" वसिष्ठः-"अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादिकार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥"

और वह गौतमी आदिकी गंगा है और दूसरी गंगा जाह्नवी है, इससे सिंहराशिके गुरुमें गौतमीके स्नानसे सब तीर्थोंका फल होता है । और संहिताप्रदीप ग्रन्थमें लिखा है कि, गुरु और शुक्र सातदिन बालक और दश दिन वृद्ध होते हैं और ये दोनों वृद्ध तो अशुभ होते हैं और बालक इस कारण शुभ होते हैं कि, आगे बढनेवाले हैं, वसिष्ठने कहाहै कि, यदि बृहस्पति अतिचारी होजाय तो उसदिनसे अट्ठाईस २८ दिन व्रत और विवाह आदि कार्योंको त्यागदे ॥

ग्रहाणां बाल्यादिलक्षणम् ।

बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते-"रविणा सत्तिरन्येषां ग्रहाणामस्त उच्यते । ततोऽर्वाग्वार्धकं प्रोक्तमूर्ध्वं बाल्यं प्रकीर्तितम् ॥" इति ॥ बाल्यादिपरिमाणं च वृत्तशते-"बालः

शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैंद्र्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शुचिरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥" पश्चिमत उदये दश दिनानि बालः । अस्ते पञ्चदिनानि वृद्धः । पूर्वतो दिनत्रयं बालः पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः । जीवो गुरुः ॥ अन्यत्र त्वन्यथोक्तम् । "प्राक्पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः । विपरीतं तु वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि ॥" इति ॥ एषां च पक्षाणां व्यवस्थामाह मिहिरः–"बहवो दर्शिताः काला ये बाल्ये वार्धकेपि वा । ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा देशभेदादुतापदि ॥" इति ॥

ग्रहोंके बाल्य आदिका लक्षण ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, सूर्यके संग अन्य ग्रहोंका अस्त कहा है, उस अस्तमें प्रथम वृद्ध और उदयसे पीछे बाल्य और वृत्तशतमें बाल्य आदिका प्रमाण लिखा है, कि यदि शुक्र पश्चिममें उदय होय तो दस दिन बालक और अस्त होय तो पांचदिन वृद्ध होता है, और पूर्वके उदयमें तीन दिन बालक और अस्तमें पक्षभर वृद्ध होता है और बृहस्पतिको भी इसी प्रकार बालक और बूढा जानना, और कोई २ तो इन दोनोंको पक्षभर बालक और दशदिन वृद्ध और सातदिन बूढा कहते हैं, और अन्य ग्रन्थोंमें तो इस प्रकार अन्यथा कहा है कि, पूर्व और पश्चिममें उदय हुआ शुक्र वा गुरु क्रमसे पांच और सात दिन बालक और इससे विपरीत बूढा होता है, इन सब पूर्वोक्त पक्षोंकी व्यवस्था बराहमिहिर आचार्यने इसप्रकार कही है, कि जो बहुतसे काल बालक और वृद्धके दिखाये हैं उनमें अधिक काल ग्रहण करने और शेष देशभेदसे वा आपत्कालमें मानने योग्य हैं ॥

देशभेदश्च मदनरत्ने गार्ग्यः–"शुक्रो गुरुः प्राक्च पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् । वंगेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे च देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥" इति ॥ अस्तादेरपवादः काशीखण्डे–"न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये ।" त्रिस्थलीसेतौ वायवीये–"गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥" ग्रहणद्वये तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः ॥ तदाह त्रिस्थलीसेतौ लल्लः–"उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यषष्ठ्याम् । सुरासुरेज्यास्तमयेपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः ॥" 'न मूढदोषो न च रात्रिदोषो न चाधिमासो न मृतिर्न सूतिः' एवमप्युत्तरार्धं पठंति ॥ इत्यलं बहुना ॥

और वह देशभेद मदनरत्नमें गर्गके वचनानुसार कथन किया है कि, शुक्र और गुरु पूर्व वा पश्चिममें विंध्याचलके प्रान्तमें दशदिन और उज्जयनके प्रान्तमें सातदिन, और वंगदेशमें छः दिन, हूंणदेशमें पांचदिन, और शेषके देशोंमें तीन दिन बालक होता है, और अस्त आदिका निषेध भी काशीखण्डमें कहाहै कि, काशीमें ग्रहोंके उदय अस्तका दोष नहीं है, त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें वायुपुराणका यह वचन कथन किया है कि गोदावरी, गंगा, श्रीशैलपर्वत, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें दान आदि, इनमें सुरगुरु बृहस्पति और असुरगुरु शुक्रके अस्त आदिका दोष नहीं है, ग्रहणसे चन्द्र सूर्यके दोनों ग्रहण लेने और उनके निमित्त कुरुक्षेत्र यात्रा दानादि करनी, यही त्रिस्थलीसेतुमें लल्ल कहते हैं कि, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, अर्द्धोदयमें और कपिलाषष्ठी और संक्रांति इनमें गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर भी तीर्थयात्राकी विधि उत्तम है, न

मूढ दोष न रात्रिदोष, न अधिकमास, न मरण, न जीवन इसका दोष नहीं । इस उत्तरार्धको पढते हैं, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं ॥

मलमासे व्रतनिर्णयः ।

मलमासे च व्रतविशेष उक्तो हेमाद्रौ पाद्मे–" अधिमासे तु संप्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च । त्रयस्त्रिंशदपूपानि दातव्यानि दिनेदिने ॥ साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासे नृपोत्तम । अधिमासे तु संप्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः ॥ उद्दिश्याऽपूपदानेन पृथ्वीदानफलं लभेत् । त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च ॥ सघृतं सहिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विष्णुरूपी सहस्रांशुःसर्वपापप्रणाशनः ॥ अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु । नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक ॥ व्रतेनानेन पुत्रांश्च संपदं चाभिवर्धय । यस्य हस्ते गदाचक्रे गुरुडो यस्य वाहनम् ॥ शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु । कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना ॥ यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः । कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्व द्विजो हरिः ॥ पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम । मलानां च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर । मंत्रेणानेन यो दद्यात्त्रयस्त्रिंशदपूपकान् ॥ प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥" इति निर्णयसिन्धौ मलमासनिर्णयः ॥

यहाँ हेमाद्रि ग्रन्थमें मलमासमें व्रतविशेष पद्मपुराणके वचनसे कथन किया है कि, जब मलमास प्राप्त होय तब तेतीस देवताओंके (निमित्त) गुड घीके ३३ मालपुए प्रतिदिन देने, और हे राजन् ! मलमासमें घी और गुडसे मिले तेतीस मालपुओंको देवताओंके निमित्त देनेसे पृथ्वीदानका फल होता है ३३ मालपुए कांसीके पात्रमें रखकर घी और सोनेसहित ब्राह्मणको दे और ऐसा कहे कि, विष्णुरूपी सूर्य अपूप अन्न देनेसे मेरे पापोंको दूर करो, हे जगतके कारण नारायण सूर्यरूप ! इस व्रतसे मेरे पुत्र और सम्पदाओंको वर्धित करो, जिनके हाथमें गदा और चक्र है, गरुड जिनका वाहन है, जिनके हाथमें शंख है वह विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो, कला और काष्ठा, निमेष घटी आदि रूपसे जो सर्व प्राणियोंको वंचित करते हैं, उन कालरूप विष्णुको नमस्कारहै, और यह देश कुरुक्षेत्रके तुल्य और काल पर्वके तुल्य है और यह ब्राह्मण हरि है, हे पुरुषोत्तम ! पृथ्वी समान इस दानको ग्रहण करो, और हे सूर्य ! मलोंकी शुद्धि और पापोंके नाश और पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धिके निमित्त तुमको यह दान देताहूं, इस मंत्रको पढ़कर जो तेतीस पुए देताहै वह बहुत धन और पुत्र पौत्र आदि सम्पत्तिओंको प्राप्त होताहै ॥

(इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां मलमासक्षयमासनिर्णयः)

तत्र पक्षतिथिवेधनिर्णयौ ।

पक्षनिर्णयस्तु–' दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते' इति माधवेनोक्तः ॥ अथ तिथिनिर्णयः–तत्र तिथिर्द्वेधा–शुद्धा विद्धा च ॥ दिने तिथ्यन्तरसंबन्धरहिता शुद्धा । तद्रहिता विद्धा ॥ तत्र शुद्धायामसंदेहाद्विद्धा निर्णीयते ॥ तत्र सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठीनसिः–" पक्षद्वयेपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् । त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योयं विधिः स्मृतः " इति ॥ हेमाद्रिमदनरत्नादौ द्विमुहूर्तोऽप्युक्तः–" उदिते दैवतं

भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च सा तिथिर्हव्यकव्ययोः ॥'' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ द्विमुहूर्त्तत्वं चानुकल्पः-'द्विमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी' इति दक्षेणापि शब्दोक्तेः ॥ अयं वेधः प्रातरेव ॥

पक्षका निर्णय तो माधव यह कहतेहैं कि, देवकर्ममें शुक्लपक्ष और पितृकर्ममें कृष्णपक्ष मुख्य होताहै, अब तिथिका निर्णय कहते हैं कि, तिथिके दो भेद हैं शुद्धा और विद्धा, वेधसे रहित शुद्धा और वेधसहितको विद्धा कहतेहैं, उन दोनोंमें शुद्धामें तो सर्वथा सन्देह नहीं है इससे विद्धाका निर्णय वर्णन करतेहैं-माधवीय ग्रन्थमें पैठीनसिने सामान्यरीतिसे वेध कहाहै कि, दोनों पक्षोंमें सब तिथि अपनेसे पहली और पिछली तिथिको तीन मुहूर्त (६ घटी) से वींधती हैं, यह सामान्य विधि मानीहै, और हेमाद्रि मदनरत्न आदिमें तो दो मुहूर्त भी कहेहैं कि, सूर्यके उदयसे दो मुहूर्ततक तिथिमें देवकर्म और अस्तसे तीन मुहूर्ततक तिथि होय तौ पितृ कर्म और शेष दिन हव्य कव्यमें उत्तम हैं, यह विष्णुधर्ममें लिखा है और ये दो मुहूर्त भी हैं, कारण कि, दक्ष ऋषिके (अपि) शब्दसे अधिक मुहूर्त भी कथन कियेहैं कि, जो तिथि बढनेवाली हो उसके दो मुहूर्तमें भी कर्मको करै, और यह वेध प्रातःकालमेंही जानना चाहिये ॥

सायं तु त्रिमुहूर्तो वेध एवं-'' यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः । सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ॥ '' इति स्कान्दोक्तेः ॥ दीपिकापि-' त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायें' इति ॥ यानि तु-' व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत् ॥ उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥ ' इत्यादीनि स्कान्दादिवचनानि, तानि वैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्या त्रिमुहूर्तप्रशंसापराणि ॥

सन्ध्याको तो तीन मुहूर्तका वेध होताहै, जिस तिथिको प्राप्त होकर सूर्य अस्त होजाय, तीन मुहूर्तभी वह तिथि उस दिन हो तो स्कन्दपुराणके मतसे उस दिन वही तिथि जाननी । दीपिकाग्रन्थमें भी लिखाहै कि, जो सायंकाल तीन मुहूर्ततक हो वह सम्पूर्ण तिथि जाननी और व्रत, उपवास, स्नान आदिमें वह तिथि लेनी, जो उदयके समय एक घडीभी हो, और पितृकर्ममें इससे विपरीत लेनी, इत्यादि स्कंदपुराणादिके वचन हैं, वे वचन वैश्वानराधिकरण न्यायके अनुसार अवयवकी स्तुतिसे तीन मुहूर्तकेही बोधक हैं ॥

तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे-' नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा । भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥ ' इति ॥ अयं चोपवासातिरिक्तविषय इति वक्ष्यते ॥ इति वेधः ॥

स्कंदपुराणमें वेधका भेद तिथिविशेषोंमें कहाहै कि, नाग सप्तमी ७ बारह घडीसे और दशमी और पंचमी दश नाडियोंसे, और चतुर्दशी अठारह घडीसे अग्रिमतिथियोंको वींधकर दुष्ट करतीहैं, यह वेधव्यवस्था व्रतसे भिन्न कार्योंमें जानना, यह आगे कहेंगे ॥ इति वेधः ॥

तत्र सर्वा तिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनी सैव ग्राह्या ।'कर्मणो यस्य यःकालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यान्निर्णयः । तस्य पूर्वाबाधेनोपपत्तेः । कर्मकालस्य

प्रधानांगत्वाच्च । युग्मवाक्यं तु निगमः । "युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥ प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ " इति ॥ अत्र रन्ध्रान्ताः शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथिवाचकाः । रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयायुता सा च द्वितीयायुतेति सप्त युग्मानीत्यर्थः ॥ इदञ्च शुक्लपक्षे अमाप्रतिपद्युग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति केचित् ॥ तत्त्वं त्वमावास्याप्रतिपद्युग्मात् कृष्णपक्षलिङ्गात् पक्षद्वयपरमिदम् । तत्तद्विशेषवाक्यैः कृष्णे तिथिविशेषोऽपोह्यत इति ॥

जो तिथि कर्मके समयतक जिस दिन रहै वही लेनी, कारण कि, विष्णुधर्ममें यह कथन कियाहै कि, जिस कर्मका जितना समय हो उस कालभर व्यापिनी (रहनेवाली) तिथिमें कर्मोंको करै. बढना और घटना कारण नहीं है, यदि वह तिथि दो दिन हो वा एक किसी समयमें होय तो युग्म वाक्यसे निर्णय करै. वह निर्णय पहली तिथिके बाधसे होगा वा कर्मके समयकी प्रधानतासे जानना,—द्वितीया—तृतीया—चतुर्थी—पंचमी—षष्ठी—सप्तमी—अष्टमी—नवमी इन ९ तिथियोंके, इसप्रकार सात युग्मकी द्वितीयासहित तृतीया और तृतीयासहित द्वितीया आदि और एकादशीसे युक्त द्वादशी और चतुर्दशीसे युक्त पूर्णिमा और प्रतिपदासे युक्त अमावस—इन तिथियोंका युग्मयोग महाफलको देताहै । और उलटा होय तो महादोष है, और पूर्व किये पुण्यको नष्ट करताहै—यह रंध्रान्तशब्द द्वितीयासे नवमी तिथितकके वाचक हैं, रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयासे युक्त सात युग्म वर्णन किये, यह युग्म शुक्लपक्षमें समझना । अमावस और प्रतिपदाका योग और पूर्णिमा शुक्लपक्षमेंही होतेहैं ऐसा कोई कहतेहैं, सिद्धान्त वाक्य तो यह है कि, अमावस और प्रतिपादके योगसे कृष्णपक्षके लिंगसे ये वचन, दोनों पक्ष विषयक हैं, और तिन २ विशेष वाक्योंसे कृष्णपक्षकी तिथिविशेषमें इसका अनुवाद है ॥

दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये—'संपूर्णे दशमी कार्या मिश्रिता पूर्वयाथवा' इति संपूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता—'त्रयोदशी तु कर्त्तव्या द्वादशी सहिता मुने ' इति ॥ कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः "प्रतिपत्सद्वितीया स्याद्द्वितीया प्रतिपद्युता । चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा ॥ पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद । कृष्णपक्षेष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् । दशमी च प्रकर्त्तव्या-सदुर्गा द्विजसत्तम ॥ षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी । एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः ॥ " इति ॥

पुराणसमुच्चयमें दशमी कहीहै कि, शुक्लपक्षमें पूर्व (६) तिथिसे युक्त दशमी करनी । और सुमंतु ऋषिने सम्पूर्ण शुक्लपक्षमें त्रयोदशी कही है कि, हे मुने ! द्वादशीसहित त्रयोदशी करनी—कृष्णपक्षमें तो आपस्तम्ब ऋषिने यह लिखा है कि, द्वितीयासहित प्रतिपदा प्रतिपदासहित द्वितीया—और चतुर्थीसहित जो तृतीया है वह महान् फलको देतीहै; और हे नारद ! पंचमी षष्ठीसे युक्त करनी । और कृष्णपक्षमें अष्टमी और चतुर्दशी ये दोनों सप्तमी और त्रयोदशीसे युक्त करनी, पूर्वविद्धा करनी, परतिथियोंसे युक्त किसी प्रकार न करनी. हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! नौमीसे युक्त दशमी और षष्ठी—अष्टमी अमावस और कृष्णपक्षकी त्रयोदशी ये परतिथियोंसे युक्त पूजने योग्य होती हैं ॥

यत्तु व्याघ्रः—"खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् । खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी ॥ " इति ॥ खर्वः साम्यम्, दर्पो वृद्धिः, तयोः परा । हिंसा क्षयस्तत्र

पूर्वेत्यर्थः ॥ एतच्छ्राद्धादिविषयम् । "द्वितीयादिषु युग्मानां पूज्यता नियमादिषु । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना ॥" इति व्यासोक्तेः ॥ नियमादिषु व्रतदानादिदैवकर्मसु । एकोद्दिष्टादितिथेर्वृद्ध्यादावित्यर्थः ॥ कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमकालगैव ग्राह्या—'कर्मोपक्रमकालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यानि तु—"यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः । सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥" इत्यादीनि ॥ तानि त्रिमुहूर्त्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली ॥

और जो व्याघ्रका कथन है कि, खर्व, दर्प और हिंसा ये तीन तिथियोंके लक्षण हैं, अर्थात् साम्य, वृद्धि, क्षय और मारना इनमें खर्व और दर्पमें परतिथि और हिंसामें पूर्वतिथि पूजनीय होती है, यह व्याघ्रऋषिका कथन इस व्यासके कथनानुसार श्राद्ध आदि विषयक है कि, द्वितीयामें युग्म श्रेष्ठ है, और व्रतदान आदि देवकर्म और एकोद्दिष्ट आदि तिथिकी वृद्धिमें क्षय और वृद्धिका विचार है, ऐसा व्यासजी कहते हैं, अर्थात् कर्मके सम्पूर्ण कालतक तिथि न रहै तो कर्मके प्रारम्भकालकी तिथि ही दीपिकाके इस कथनानुसार ग्रहण करनी चाहिये कि, कर्मके प्रारम्भकालकी तिथि ही पंडितोंको ग्रहण करनी । युग्मका आदर न करना, और जो यह वचन है कि, जिस तिथिको प्राप्त होकर सूर्य उदय हो, वह तिथि दान, पठन आदि कर्मोंमें पूरी जाननी । ये सब वचन तीन मुहूर्त्त आदि तिथिकी स्तुति करनेवाले हैं, यही निर्णयका मार्ग है ॥

एकभक्तनिर्णयः ।

अथैकभक्तम् ॥ तत्कालः पाद्मे—'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः' इति ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधा विभक्तदिनतृतीयांशः ॥ तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते तथापि 'दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्याद्दिवैव हि ॥' इति स्कान्दोक्तेः ॥ षोडशसप्तदशादिदण्डौ मुख्यः कालः ॥ दीपिकायां तु—'मध्याह्नात्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्' इति ॥ ततः सूर्यास्तपर्यन्तं गौणः । 'दिवैव हि' इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्यैतत्परत्वात् ॥ अत्र पूर्वेद्युर्व्याप्तिः परेद्युरुभयेद्युर्व्याप्तिः तदभावेंऽश व्याप्तिः । तत्रापि साम्यं वैषम्यं चेति षट् पक्षाः ॥ तत्राद्ययोरसंदेह एव तृतीये तु पूर्वेह्नि गौणमुख्यप्राप्तेः सत्त्वात् पूर्वेति माधवः, युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः । चतुर्थपक्षे पूर्वैव गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् । वैषम्येणांशव्याप्तौ याऽधिका सा ग्राह्या । साम्ये पूर्वा॥ अयं च स्वतन्त्रैकभक्तनिर्णयः । अन्याङ्गे उपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण निर्णयः ॥

अब एकभक्तको कहते हैं, उसका समय पद्मपुराणमें यह कहा है कि, एकवार भोजनमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । मध्याह्न पांच प्रकार विभाग किये दिनका तीसरा भाग होता है, वह यद्यपि बारह घडी के पीछे प्राप्त होता है तो भी आधे दिनके बीतने पर नियमसे भोजन करते हैं, इससे इसको एकवार भोजन कहते हैं । और वह दिनमें ही होता है यह स्कंदपुराणमें कहा है । सोलह और सत्रह घड़ी मध्याह्नका मुख्य काल है दीपिकामें तो यह लिखा है कि, मध्याह्नके पीछे जब त्रिभाग दिन रहै तब एकभक्त होता है, इसके पीछे सूर्यास्तपर्यंत गौणकाल है,(दिवैव हि) इस वाक्यके व्यर्थ होनेके भयसे । दीपिकाके वाक्यका पूर्वोक्त अर्थ ठीक है,इसमें पहलेदिन सब तिथिकी व्याप्ति और अगले दिन दोनों दिनकी व्याप्ति,एक भागमें व्याप्ति,तिथिका साम्य और वैषम्य इस प्रकार छः पक्षहैं, इन छः पक्षोंमें पहले दोनोंमें कुछ सन्देह नहीं,तीसरे

पक्षमें पूर्व दिन एकभक्त करे तो गौण होता है, सत्त्व होनेसे पूर्वमें करना ऐसा माधव कहते हैं कारण कि, उसमें मुख्यतिथिमेंही एकभक्त पाया जाता है, हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, युग्मवाक्यसे निर्णय करे, चौथे पक्षमें संकल्पकालमें होनेसे परतिथि लेनी, यह कोई कहते हैं कारण कि, चौथे पक्षमें गौण व्याप्ति है और विषमतासे अंशव्याप्ति होय तो जिस दिन अधिक हो वह तिथि लेनी चाहिये, दोनों दिन (एकसी) होंय तो पूर्वतिथि लेनी यह निर्णय स्वतन्त्र एकबार भोजनका है, व्रतके स्थानमें जो एकभक्त है उसका निर्णय उपवासके अनुसार होता है ॥

अथ नक्तम् ॥ तच्च दिनानशनपूर्वरात्रिभोजनम् ॥ तत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा' इति वत्सोक्तेः ॥ प्रदोषस्तु–"त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति । नक्तं तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥" इति मदनरत्ने व्यासोक्तेः। तत्रापि त्रिदण्डोत्तरं कार्यम् 'सायंसंध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः' इति स्कांदोक्तेः दण्डत्रयस्य संध्यात्वात् ॥ तत्र । "चत्वारीमानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम् ॥" इति ॥ मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात् ॥ "मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप ॥" इति माधवीये भविष्योक्तेश्च ॥ गौडास्तु–'प्रदोषोस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' इति वत्सोक्तः प्रदोषः । संध्या च दिनरात्र्योः संधौ मुहूर्तः । "अर्धास्तमया संध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिवशाद्भानोरर्धोदयं यावत् ॥" इति वराहोक्तेरित्याहुः ॥ तन्न । अस्य संध्यावन्दनाध्यायादिपरत्वात् ॥ अत एव तत्र खण्डमण्डलस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण ॥

अब रात्रिव्रत कहते हैं, वह दिनमें भोजनको न करके रात्रिमें भोजन होता है, उसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि इस वत्स वचनके अनुसार सदैव लेनी चाहिये कि, नक्तव्रतमें सदैव प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी, व्यासवचनसे सूर्यके अस्त होनेपर तीन मुहूर्त्त प्रदोष होता है, उसमें रात्रिव्रत करना यह शास्त्रका निश्चय है, यह मदनरत्नमें व्यासका वाक्य है। और वह भी तीन घडीके उपरान्त मानना, कारण कि, स्कन्दपुराणके इस वचनसे कि, सूर्यके अस्त होनेके अनन्तर तीन घडी सायंकालकी संध्या होती है, और उस संध्याके समय मार्कण्डेयके इस वचनसे भोजनका निषेध है कि, संध्याके समय इन चार कर्मोंको त्यागदे, भोजन मैथुन, निद्रा और पढना और माधवीय ग्रन्थमें भविष्यपुराणका भी यह वचन है कि, एक मुहूर्त न्यून दिनको बुद्धिमान् मनुष्य नक्त कहते हैं, और हे गणेशजी ! नक्षत्रोंके दर्शन होनेपर मैं नक्त 'रात्रि' मानता हूँ, गौड तो इस वत्सके वाक्यसे यह कहते हैं कि, सूर्यास्तसे पीछे दो घडी प्रदोष हमको माननीय है। और संध्या ये दोनों दिन रात्रिके संधिमें एक मुहूर्त्त होते- हैं, कारण कि, वाराहपुराणमें यह लिखा है कि, अस्तसे पहिले और तारोंके प्रगट होनेसे पहलेतक इतने सूर्यके तेजकी हानि न हो तबतक और प्रातःकाल सूर्यके अर्द्ध उदय होनेतक संध्या होती है सो यह गौडोंका कहना सत्य नहीं है, कारण कि यह वचन संध्यावंदन और अनध्यायके विषयमें कहे हैं, इसीसे विज्ञानेश्वरने खण्ड हुए सूर्यके मण्डलको ही संध्या कहा है ॥

यच्च मदनरत्ने–नक्तस्य वेधत्वाद्रागप्राप्तभोजनगोचरो निषेध इत्युक्तम् ॥ तन्न । विधेर्निषेधाविरोधात् ॥ अन्यथा कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योधिकानां हिंसनं स्यात् ॥ सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोषस्पर्शे ज्ञेयम् । "अतथात्वे परत्र स्यादस्तादर्वाग्यतो हि सा" इति

जाबालिवचनात् । 'प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते । आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे । तन्नक्तं नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशि भोजनम् ॥" इति स्कान्दाच्च ॥ यत्यादीनामपि सायाह्ने "नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः । यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम् ॥" इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात् ॥ इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम् ॥ पुत्रवतस्तु रात्रावेव ॥ 'अनाश्रमोप्याश्रमी स्यादपत्नीकोपि पुत्रवान्' इति संग्रहोक्तेः ॥ सौरनक्तं तु दिवैव-"त्रिमुहूर्त्तस्पृगेवाह्नि निशि चैतावती तिथिः । तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम् ॥" इति सुमन्तूक्तेः ॥

और मदनरत्नने यह कहा है कि, नक्तव्रत शास्त्रविहित है इससे रात्रिके भागमें प्राप्त हुए भोजनका यह निषेध है–सो भी ठीक नहीं; कारण कि, विधिका निषेधके संग विरोध न होना चाहिये। अन्यथा कपिंजलान् इस स्थलमें तीनसे अधिककी हिंसा होजायगी । सन्ध्याकालके समय तब नक्त होता-है जो दोनों दिन प्रदोषका स्पर्श होय, अन्यथा होय तो नक्त अस्तसे परे होता है कारण कि, सन्ध्या अस्तसे प्रथम होती है, यह जाबालिऋषिने कहा है, और स्कन्दमें यह लिखा है कि, यदि तिथि प्रदोष-व्यापिनी न हो तो दिनमेंही नक्त करलेना चाहिये । जिस समय अपने शरीरसे दूनी छाया हो और सूर्य मन्द होजाय उसीका नाम नक्त है, रात्रिमें भोजनको नक्त नहीं कहतेहैं । और सन्यासी आदिकाभी नक्त सायंकालमें होता है और गृहस्थ रात्रिमें विधिपूर्वक नक्त करै और संन्यासी और विधवा दिनमें करैं । यह वहांही स्मृति अन्तरमें लेख है, यह वचन पुत्रकी हीनतामें उपलक्षणमात्र करता है । पुत्रवान् तो रात्रिहीमें करै कारण कि, संग्रहमें कहा है । अनाश्रम भी आश्रमी हो वा आश्रमहीन हो वा आश्रमवाला पत्नीरहित हो वा पुत्रवाला होय तो रात्रिमें नक्त करना चाहिये । और सौरनक्त तो दिनमेंही होता-है, जो तिथि दिन और रात्रिमें तीन मुहूर्त हो उसमें सूर्यका नक्त होता है । उसमें दिनमेंही भोजन करना चाहिये, यह सुमन्तु कहते हैं ॥

हरिनक्तनिर्णयः ।

हरिनक्ते विशेषः कालादर्शे स्कान्दे-'उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः' इति अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यादावपि रात्रावेव । निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन वेधाबाधकत्वात् ॥ दिनद्वयव्याप्तौ परा "उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः । तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः ॥" इति कालादर्शे जाबालिवचनात् ॥ अन्यपक्षेषु एकभक्तवन्निर्णयः ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे-"हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्या नक्तभोजी षडाचरेत् ॥" अग्निकार्यं व्याहृतिहोमः ॥ इति नक्तम् ॥ अयाचिते तु विशेषवचनाभावात् पक्षे उपवासे प्राप्ते उपवासवन्निर्णयः ॥ अथ नक्षत्रव्रतकालनिर्णयः ॥ विष्णुधर्मे-"उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः । युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शशिना सह ॥" इति ॥ माधवीये स्कान्दे-"तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत् । उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः ॥"

भगवान्के नक्तमें कुछ विशेष है, कालादर्शमें स्कंदपुराणका वचन है कि हरिनक्तके व्रत करनेवालेको सदा उदयातिथि लेनी चाहिये । दूसरे देवताओंका नक्त तो संक्रान्ति आदिमें भी रात्रिकोही होताहै कारण कि, रागप्राप्त भोजनका निषेध है, इसकारण यह विधिको बाधकरनेमें समर्थ नहीं हो सकता । दोनों

दिनकी व्याप्तिमें परतिथि करनी चाहिये। और यदि दोनों तिथियोंमें प्रदोषव्यापिनी तिथि हो उनमें अगली तिथिमें नक्त करना कारण कि, वह दोनों दिन है, इस प्रकार कालादर्शमें जाबालिका कथन है, दूसरे पक्षमें एकभक्तकी समान निर्णय है इसमें विशेष मदनरत्नमें गरुडपुराणका वचन है, हविष्यभोजन, स्नान, सत्य, अल्पाहार, अग्निकार्य, हवन, भूमिशयन, नक्तभोजीको इन छः वस्तुओंका आचरण करना चाहिये, (इति नक्तम्) और विना मांगे मिलनेमें विशेष वचनोंके अभावसे उपवासकी तुल्य निर्णय किया जाता है। अब नक्षत्रव्रतके समयका निर्णय करतेहैं—विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होवे अथवा जो नक्षत्र अर्धरात्रिके समय चन्द्रमाके साथ हो उसमें व्रत करे। माधवीयमें स्कन्दका वचन है कि, जो नक्षत्र अर्धरात्रिसे प्रथम हो उसमें व्रत करे, और जो नक्षत्र उपवासमें होता है वही एकभक्त और नक्तमें हुआ करताहै॥

अथ व्रतपरिभाषा ॥ तत्राधिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये—"अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते। व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप॥" अनग्निग्रहणमुपवासाविषयम्। अत एव देवलः—"आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः। अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम्॥" एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः॥ शूद्रस्याप्यधिकारः—"शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना॥" इति व्यासोक्तेः॥ प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्विरात्राधिकोपवासनिषेधः। "वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते॥ चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते। त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः॥" इति हेमाद्रौ वचनादित्याहुः॥ यावदुक्तनिषेध इत्यन्ये॥ तत्त्वं तु निर्मूलमिति प्रकरणान्महातपोविषय इति युक्तम्॥ एवं स्त्रीणामपि॥

अब व्रतकी परिभाषा लिखते हैं। उसके अधिकारी मदनरत्नमें भविष्यपुराणके मतसे लिखेहैं कि, जो ब्राह्मण अग्नि अर्थात् अग्निहोत्रादिसे रहित हैं, हे राजन्! उनका कल्याण व्रत, नियम और दानसे होताहै। अग्निका ग्रहण उपवासके विषयमें है, इसी बातको देवल कहते हैं कि, अग्निहोत्री बैल और ब्रह्मचारी इन तीनों-की सिद्धि भोजनसे होती है, भोजनके विना नहीं। और एकादशी आदिमें तो वचनसे विना भोजनकेही सिद्धि होती है। यह आगे वर्णन करेंगे, शूद्रकाभी अधिकार है, जैसा कि व्यासजी कहते हैं कि, चौथा वर्ण शूद्रभी वर्णमें होनेसे धर्मके योग्य है, उसको केवल वेदमंत्र स्वधा स्वाहा और वषट्कार करना न चाहिये। और प्राच्य तो यह कहते हैं कि, वैश्य और शूद्रको दो रात्रिसे अधिक उपवासका निषेध है ऐसा हेमाद्रिमें लिखाहै कि, जो वैश्य और शूद्र अज्ञानसे तीन वा पांचरात व्रत करतेहैं उनको फल प्राप्त नहीं होता, वैश्य और शूद्रको चौथे कालमें भक्षण करना कहा है। वेदके जाननेवाले धर्मज्ञोंने तीन रातका व्रत उनको नहीं कहाहै। कोई कहतेहैं, जो उक्त निषेध है वह निर्मूल है, प्रकरण होनेसे महातपके विषयका है, इसी प्रकार स्त्रियोंकोभी जानना चाहिये॥

भर्त्रनुज्ञैव स्त्रीणां व्रतम्।

यत्तु स्कान्दे—"नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्तभ्यर्चनं सत्क्रियां च। तस्यार्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुंक्ते भर्तृशुश्रूषयैव॥" आदित्यपुराणे—"नारी-

१ एकभक्तमें जो तिथि बीस घडी हो वह सम्पूर्णतिथि जाननी वा जो रात और सन्ध्यामें संगत हो वह सब जाननी। तथाच—एकभक्तायाचितयोर्या विंशघटिकावधिः। सा तिथिःसकला ज्ञेया नक्ते सायाह्नसंगता. इति मयूखे।

खल्वननुज्ञाता भर्त्रा वापि सुतेन वा । विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥" इति ॥ और्ध्वदेहिकं पारलौकिकम् ॥ तद्भर्त्रनुज्ञाविषयम् । 'भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा' इति कात्यायनोक्तेः ॥ अत्र विशेषो हरिवंशे—"स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् । स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती ॥' तथा—"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा । गोशृङ्गं दक्षिणं सिंच्य प्रगृह्णीयाच्च तज्जलम् ॥" औदुम्बरं ताम्रमयम् । "ततो भर्त्तुः सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च । आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम् । उपवासेषु कर्त्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च ॥" इति ॥ सर्वव्रतेषु संकल्पविधिश्च भारते—"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः । उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्बुधः ॥" हस्तेनैवेत्यर्थः ॥

जो स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, स्त्रियोंको पृथक् यज्ञविधि, उपवास, व्रत नहीं है, यह केवल स्वामीकी सेवासे ही यथेष्टलोकोंको गमन करती हैं, कारण कि जो कुछभी पति देवता और पितरोंके निमित्त पूजा और सत्कार करताहै, पतिमें अनन्यचित्तवाली स्त्री उसका आधा फल स्वामीकी सेवाकरनेके कारण प्राप्त करतीहै । आदित्यपुराणमें लिखा है, भर्त्ता वा पुत्रकी आज्ञाके विना स्त्री जो कुछ परलोकके निमित्त कर्म करतीहै वह निष्फल होताहै, यह वचन विना स्वामीकी आज्ञाके करनेके विषयमें है कारण कि, कात्यायनऋषि कहते हैं कि, पतिकी अनुमति लेकर सदा व्रतादिका आचारण करै । इसमें हरिवंशमें विशेष लिखाहै कि, शिरसे स्नान केरनेसे स्त्री विशेष फलको प्राप्त होती है. सती स्त्री प्रभातकाल उठकर स्नान कर पतिसे प्रार्थना करै तथा कुश और अक्षत तांबेके पात्रमें ग्रहण कर उसके जलसे गौके दक्षिण सींगको सिंचन करै, उस जलको ग्रहण कर फिर नियममें तत्पर स्नान किये हुए अपने पतिको वह जल दे पीछे वह जल अपने शिरके ऊपरभी छिड़कै, व्रत और उपवासमें यह बात करनी चाहिये । सब व्रतोंमें अनेक संकल्प हैं, भारतमें लिखाहै, जलसे पूर्ण ताम्रपात्रको लेकर उत्तरकी ओर मुख कर जिस फलकी इच्छा हो उसके निमित्त अपने हाथसे जल लेकर संकल्प करै और उपवास ग्रहण करै ॥

व्रतारम्भकालनिर्णयः ।

अथ व्रतारम्भकालः ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः—"अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ॥" रत्नमालायाम्—"सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः । भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति ॥" तथा—"विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः । सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोऽप्यरिष्टः परिघस्य चार्धम् ॥ तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले । गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥" संग्रहे—"कृष्णेऽग्निदिशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः । शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः ॥" श्रीपतिः—"न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषाग्निघातादिकमत्र सिद्धम् ॥ " व्यवहारसमुच्चये—"दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं, हरिद्यौसप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीयाराकायां खयमघटिकाभ्यः परभवं, शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे ॥" तत्रैव—"सर्पिणी तु सिते पक्षे कृष्णे चैव तु वृश्चिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥ "

अब व्रतारंभका समय कहतेहैं। मदनरत्नमें गर्गका वचन है कि, गुरु, शुक्रके अस्त होनेमें तथा बाल, वृद्ध होनेमें और मलमासमें व्रतोंका प्रारम्भ और उद्यापन न करै। रत्नमालामें लिखा है कि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र यह चार दिन सब कार्योंमें सिद्धि देनेवाले होते हैं। रवि, मंगल और शनिके दिन वही कर्म सिद्ध होता है जिसके करनेके निमित्त कहा है तथा जो योगविरुद्ध हैं उनका प्रथम चरण निषिद्ध कहा है और उनमें भी वैधृति,व्यतीपातका सम्पूर्ण और परिघका आधा भाग यह सब निषिद्ध है. विष्कंभ और वज्रकी तीन, व्याघातकी नौ, शूलकी पांच, गंड और अतिगण्डकी छः घडी सबकार्योंमें त्यागदेनी चाहिये। अब भद्राका निर्णय लिखते हैं कि, संग्रहमें लिखा है, कृष्णपक्षमें तीज और दशमीको पीछेकी सात और चौदसको प्रथमकी तीस घड़ी, इसी प्रकार शुक्लपक्षमें चौथ और एकादशीको पिछली अष्टमी तथा पूर्णिमाको यह पहिली तीस घड़ी भद्रा होती है। श्रीपति कहते हैं कि भद्रामें जो कार्य किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता ह विष और शत्रुघातादि सिद्ध होते हैं। व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है, दशमी और अष्टमीकी पहली पांच घड़ीके उपरान्तकी, एकादशी और सप्तमीको बारह घड़ी पीछेकी, तीज और पूनोंके पीछेकी दशघडी, चौदस और चौथकी अन्तकी तीन घडी भद्राका पुच्छ होता है, वहीं लिखा है, शुक्लपक्षकी भद्रा सर्पिणी और कृष्णपक्षकी वृश्चिकी होती है। सर्पिणीका मुख और वृश्चिकीकी पीठ त्यागदेनी चाहिये॥

व्रतारम्भे विशेषः।

माधवीये–'विष्टिर्यदाहनि तिथेरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे॥' ब्रह्मयामले–"दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा। न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः॥ श्रीपतिः–"षट् पौष्णतो द्वादश शांकराच्च पौरंदराद्भानि नव क्रमेण। पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरंतनैर्ज्यौतिषिकैः स्मृतानि॥" व्रतारम्भे च विशेषो मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः–"उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक्। सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥" इति॥ देवलः–"अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः। सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्॥"

माधवग्रन्थमें लिखा है, जो भद्रा तिथिके अन्तभाग दिनमें लगे और रातमें तिथिके पूर्वार्धमें प्राप्त हो तो पुच्छमें मंगलदायक होती है। ब्रह्मयामलमें लिखा है, जो रातकी लगी भद्रा दिनमें हो और दिनकी लगी रातमें हो तो वह शुभकार्योंमें नहीं त्यागनी, ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं। श्रीपति कहते हैं रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वभागी और आर्द्रासे लेकर बारह नक्षत्र मध्यभागी, ज्येष्ठासे लेकर नौ नक्षत्र परभागी पुरातन ज्योतिषियोंने स्वीकार किये हैं। मदनरत्नमें सत्यव्रतने व्रतके आरम्भमें विशेष कहा है, यदि दिनके मध्यभागमें उदयकी तिथि न हो वह तिथि खण्डित कही है, उसमें व्रतका आरम्भ और पूर्ति न करनी चाहिये. देवल कहते हैं कि प्रभातकाल स्नान करके भोजनको विना किये सूर्य और देवताओंकी प्रार्थना करके व्रतका आचरण करना चाहिये॥

मदनरत्ने भविष्ये–"क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिंद्रियनिग्रहः। देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम्। सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥" अग्निहोमस्तद्दैवत्यः, व्याहृतिहोमो वेति वर्धमानः, यत्तु तेनोक्तम्–सर्वपदमेतत्पुराणोक्तकृतव्रतपरम्। व्रतान्तरे तु विध्यन्तरसत्त्वे होमोऽन्यथा न। अत एवैकादश्यां शिष्टानां होमानाचरणमिति॥ तन्न। 'जपो होमश्च' इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य काम्यव्रतसमाप्तिपरत्वात्॥ तत्त्वं तु साप्त-

दश्यस्य पशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्येनैव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्योपसंहार इति ॥ विष्णुधर्मे–"तज्जप्यजपनं ध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम् । तदर्चनं च तन्नामकीर्त्तनश्रवणादयः ॥ उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥" कौर्मे–"बहिर्ग्रामान्त्यजान्सूतिं पतितं च रजस्वलाम् । न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासरे ॥"

मदनरत्नमें भविष्यका वचन है–क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, संतोष और अस्तेय (चोरी न करना) इन सब व्रतोंमें सामान्यसे यह धर्म कहा है, वर्धमानके कथनानुसार देवताओंके मंत्रोंसे वा व्याहृतिसे होम करै और जो उसीने यह कहा है कि, यह सब पुराणोंमें लिखे हुए व्रतोंके विषयमें है, अन्य व्रतोंमें यदि कोई और विधान होय तो हवन करे अथवा न करै और इसी कारणसे शिष्टलोग एकादशीको हवन नहीं करते । यह वर्धमानका कथन उचित नहीं है कारण कि, जप और होम करै । इस आगे कहे वचनके संग एकवाक्यता करनेको यह वाक्य कामनायुक्तव्रतके विषयमें है । तत्त्व तो यह है कि, सत्रह पशुमित्रविन्द आदि प्रकरणमें जिस प्रकार जिस २ विशेष हवन और विधिका उपसंहार है इसीप्रकार इस हवनविधिको भी जानै । जिस हवनकी जहाँ विधि है वह वहीं करै. विष्णुधर्ममें लिखा है कि, उसी देवताके मन्त्रका जप उसीका ध्यान उसीकी कथाश्रवण उसीका पूजन और उसीके नामका कीर्त्तन श्रवणादि करै. बुद्धिमानोंने उपवास करनेवालोंके इतने गुण कथन किये हैं । कूर्मपुराणमें लिखा है कि, व्रतके दिन ग्रामके बाहरके अन्त्यजजाति, सूतिका, पतित और रजस्वलाका स्पर्श न करै, न इनको देखै और न इनसे भाषण करै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे–"स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्त्तयः । पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना ॥ जपो होमश्च सामान्यं व्रतान्ते दानमेव च । चतुर्विंशद्द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव च ॥ विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥" अत्र विप्रा इति पुँल्लिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्याः । न तु स्त्रियः ॥ एवं सहस्रभोजनादावपि । विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात् ॥ अत एव–द्वयोर्यजमानयोः प्रतिपदं 'कुर्यात् बहुभ्यो यजमानेभ्यः' इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात् पत्न्यभिप्रायं द्वित्वं बहुत्वं वा न संभवतीत्युक्तमाचार्यैः । पार्थसारथिना च ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वाक्य है । व्रत करनेवाले सब व्रतोंमें स्नान करके भूमिपर शयन करैं और सुवर्णमयी अपने देवताकी प्रतिमा शक्तिसे निर्माण कर पूजन करैं । सामान्यतासे व्रतके उपरान्त जप होम और दान करैं । चौवीस, बारह, पांच वा तीन, यथाशक्ति ब्राह्मणोंको जिमाकर दक्षिणा दें, विप्रशब्दसे ब्राह्मणोंको ही जिमाना, उनकी स्त्रियोंको नहीं इसी प्रकार सहस्रके भोजनादिमें पुरुषोंकोही भोजन करावे, कारण कि, व्याकरणसे विरूप स्त्री पुरुषोंका एकशेष प्रमाणके न मिलनेसे अयुक्तही है । इसी कारण दो वा अनेक यजमानोंका कर्म क्रमपूर्वक करना इस कथनसे आचार्योंने यह जताया है कि, भार्याके आशयसे द्वित्व वा बहुत्व नहीं होता तथा पार्थसारथिने भी यह लिखा है ॥

एतेनैकस्य ब्राह्मणस्यावृत्त्या भोजनं परास्तं बहुत्वस्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन भोजनान्वयाभावादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ शूद्रस्य तु प्रतिष्ठादिवद्विप्रद्वारा व्याहृतिहोम इति वर्धमानः ॥ व्रतमूर्तयो व्रतदेवताप्रतिमाः ॥ प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये–"अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप । सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तिकी

तथा ॥ चित्रजा पिष्टलेखोत्था निजवित्तानुरूपतः। आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्या शाठ्यविवर्जितैः॥" तत्रैव ब्राह्मे-"आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते। मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः॥" मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः प्रजापतिश्च देवतेति कल्पतरुः। वर्धमानधृतदेवीपुराणे-"होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्ति विधीयते॥" मदनरत्ने-'अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरंशतम्' वर्धमानधृतवृद्धशातातपः-"उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम्। कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते॥"

इससे यह बात कटगई कि, ब्राह्मणकी दो वारादि आवृत्तिसे भोजन मानकर द्वित्व बन सकैगा, कारण कि, जिस पदके आगे बहुत्व है उसका अन्वय उसके अर्थ ब्राह्मणमें ही होगा, भोजनमें नहीं. दूसरे ग्रन्थोंमें इसका विस्तार लिखा है। प्रतिष्ठाकी समान शूद्रको भी ब्राह्मणद्वारा व्याहृतियोंके होमका अधिकार है, ऐसा वर्धमान कहते हैं। व्रतमूर्तिका अर्थ व्रतके देवताकी प्रतिमाका करना, मदनरत्नमें भविष्यके वचनसे प्रतिमाका स्वरूप लिखा है। हे राजन्! देवताकी प्रतिमाका द्रव्य वा संख्या नहीं है, सुवर्ण, चांदी, ताम्र, वृक्ष, मृत्तिका, चित्र, चून इनकी हो वा लिखी हो, अपने धनके अनुसार एकमासेसे लेकर ३ टके पर्यन्त बनावे, धनकी शठता न करै, वहीं ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जहाँ हवनका द्रव्य नहीं कहा वहां घी लेना, और जहाँ देवताका उल्लेख नहीं किया वहाँ प्रजापति देवता जानना और यदि मन्त्र न कहा होय तो सात व्याहृतिरूप सम्पूर्ण मन्त्र और प्रजापति देवता जानना, ऐसा कल्पतरुमें कहा है। वर्धमानमें देवीपुराणका वाक्य है, होम और गृहादि पूजामें १०८, अट्ठाईस वा आठ मंत्रोंसे हवन करे। मदनरत्नमें लिखा है कि, जहां संख्या न कही हो वहां १०८ आहुति देनी। वर्धमानमें लिखा वृद्धशातातपका वचन है कि, द्विज उपवास करके फिर ब्राह्मणभोजन करावे तो इसका उपवास सफल होता है॥

व्रतोद्यापने विशेषः।

व्रतोद्यापनानुक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये नन्दिपुराणे-"कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम्। उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत्॥ यदि चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत्। वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते॥ गाश्चैव काञ्चनं दद्याद्व्रतस्य परिपूर्त्तये॥" अशक्तौ नारदीये-"सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना। विप्रवाक्यं स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्त्तये॥" तत्रैव-"यथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभम्। अदत्त्वा दक्षिणां पापः स याति नरकं ध्रुवम्॥" भारते-"वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा। सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम्॥" बैजवापः-"शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्। अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥" टोडरानन्दे देवीपुराणे-"व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः। परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्॥"

जहां व्रतका उद्यापन न लिखा हो वहां पृथ्वीचन्द्रोदयमें नन्दिपुराणके वचनसे यह जानै कि, जो व्रतकी समाप्तिमें लिखा है वही उद्यापन करै. कारण कि, उद्यापनके विना व्रत निष्फल होता है और जो व्रतका उद्यापन न कहा हो तो व्रतके तुल्य जपादि करै और व्रतके अनुसार शक्तिपूर्वक दान दे, व्रतकी

पूर्तिके निमित्त गौ और सुवर्ण देना चाहिये, अशक्तिमें नारदीयपुराणमें कहा है कि, यदि कुछभी धन न हो और शास्त्रोक्त विधि न कर सके तो ब्राह्मणका वचन ही यज्ञकी पूर्तिके निमित्त बहुत है और जो मनुष्य ब्राह्मणके वचनको विना दक्षिणा दिये ग्रहण करता है वह मूढ अवश्य नरकको जाता है । भारतमें लिखा है कि, वेद उपनिषद्‌पाठ सब कर्मोंमें सर्वत्र मैने भूमि, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा कही है । बैजवाप कहते हैं–जिस कारण कि, शिवके नेत्रसे उत्पन्न चांदी पितरोंको प्यारी है, इससे वह देवकार्यमें मंगलीक नहीं है, इससे उसको सब कामोंमें त्यागदे । टोडरानंदमें देवीपुराणका वाक्य है, हे देवी ! व्रत तीर्थ अध्ययन श्राद्ध इनमें पराया अन्न भोजन न करे कारण कि, जिसका भोजन हो उसीको फल मिलता है ॥

व्रते नियमः ।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे–"नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः । क्षारं क्षौरं च लवणं मधु मांसं च वर्जयेत् ॥" क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः "तिलमुद्गादृते शैम्ब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ । धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् ॥ स्विन्नधान्यं तथा पुण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ॥" गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः–"व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायः सतिलं पयः । श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ॥ कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकपालंकीज्योत्स्निकास्त्यजेत् । चतुर्भैक्षं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु ॥ श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मूलतन्दुलम् । हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ॥ मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम् ॥" इति ॥ शमीधान्यं माषादि । पालंकी मध्यदेशे (पोई) इति प्रसिद्धा । ज्योत्स्निका कोशातकी । मिताक्षरायां गौतमः–"चतुर्भैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पयो दधि घृतं च गव्यम्" इति ॥ अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यन्ते ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वचन है कि, नित्यस्नान करनेवाला, परिमित भोजन करनेवाला गुरु, देवता, ब्रह्मणका पूजन करै तथा खारी पदार्थ, हजामत, लवण, मधु और मांसको त्यागदे । क्षार वहीं लिखे हैं । तिल और मूंगको छोडकर सामनी अन्न गेहूं, कोदों धान, देवधान, उर्द, गन्ना, स्विन्नधान्य और विकतेहुए मूल यह सब क्षार कहे हैं और वहां ही यह वचन गेहूंके विषयमें तो निषेधका निषेध है । व्रीहि सट्ठीके चावल, मूंग, कलाय, तिल सहित दूध, समाके चावल, नीवार और गेहूं आदि यह सब व्रतमें हितकर हैं । काशीफल घिया बैंगन पोई कोशातकी इनको न खाना चाहिये । चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तुकण, शाक, गौका दही घी मीठा सामक वनके चावल नीवार जौ मूलतण्डुल और हविष्यअन्न यह क्रमसे नक्तव्रत आदिमें उत्तम कहे हैं और अग्निकार्यमें भी हितकारी हैं, मद्य और मांसको छोडकर भिन्न वस्तु व्रतमें हितकर हैं । मिताक्षरामें गौतमजी कहते हैं–चरु भिक्षाका अन्न सत्तुकण, जौ, शाक, गौका दूध, दही, घी, मूल, फल, जल और हवि यह क्रमक्रमसे उत्तम कहे हैं इनमें विशेष एकादशी और चातुर्मास्यादिके प्रकरणमें कहेंगे ॥

गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः–"पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो न चरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ॥" तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निगारुडपुराणयोः–"क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि । दिनत्रयं न भुञ्जीत

मुण्डनं शिरसोऽथवा॥" इति॥प्रायश्चित्तस्नानादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्यते॥यत्तु-'प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत्।' इति वचनात् यच्चातिक्रान्तमपि व्रतं कार्यमेवेति शूलपाणिः, तन्मध्ये लोपे व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम्॥ एतच्च शक्तविषयम्॥ अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे-"उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत्। तावद्धनादि वा दद्याद्भुक्तस्य द्विगुणं तथा॥ सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान्। कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यातुरो नरः॥" इति॥ शुद्धितत्त्वे मात्स्ये-'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते॥' मदनरत्ने वायवीये-'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥'

महात्मा छागलेय ग्रहण किये व्रतके त्यागमें कहते हैं कि, जो कोई पहले व्रतको ग्रहण कर फिर कामसे मोहित हो उसे त्याग दे वह जीतेही चाण्डाल है और मरकर श्वान होता है। उसका प्रायश्चित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्नि और गरुडपुराणके मतसे लिखाहै क्रोध प्रमाद वा लोभसे यदि व्रतभंग हो जाय तो तीन दिन भोजन न करे। अथवा शिरका मुण्डन करावे जब व्रतभंग हो जाय तो शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तके विना उसको न करे और यह जो लिखा है प्रायश्चित्तको करके फिर व्रती हो इस वचनसे भंग हुये व्रतको करै यह शूलपाणि कहते हैं यह तबके निमित्त हैं जब मध्यमें व्रतका लोप होजाय और कुछ दिन व्रतके शेष रहे हों और यह भी सामर्थ्यवानके निमित्त है असामर्थ्यमें तो कालहेमाद्रिमें कहे पुराणान्तरका वचन है यदि उपवासमें अशक्य हो तो एक ब्राह्मणको भोजन करावे वा उतना उसे धनदे और जो ब्राह्मणको विना जिमाये भोजन कर लिया हो तो उससे दूना धन दे और यदि रोगी हो तो प्राणायाम कर सहस्र गायत्रीका जप करै। अथवा बारह प्राणायाम करै शुद्धितत्त्वमें मत्स्यपुराणका वचन है जो उपवासमें असमर्थ हो वह रात्रिमें भोजन करले, मदनरत्नमें वायुपुराणका वाक्य है द्रव्यका दान करनेवाला उपवासके फलको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं॥

तथापरार्के देवलः-"ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम्। व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः॥" मात्स्ये-"तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्। वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप॥" अन्ये च नियमास्तत्रतत्रान्वेषणीयाः॥ अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते। तत्र हेमाद्रौ व्रतकाण्डे गारुडे-"गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्॥" इति॥ इदं च सभर्तृकोपवासविषयम्। "अञ्जनं च सताम्बूलं कुंकुमं रक्तवाससी। धारयेत्सोपवासापि अवैधव्यकरं यतः॥ विधवा यतिमार्गेण कुमारी वा यदृच्छया॥" इति॥ तत्रैव भविष्योक्तेः॥ तथा विष्णुधर्मे-"सर्वेषु तूपवासेषु पुमान्वाथ सुवासिनी। धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च। विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत्॥" मनुरपि-"पुष्पालंकारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्॥" मदनरत्ने व्यासः-'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेप्यस्या न दुष्यति' इति॥ यद्यपीदं सर्वोपवासविषये प्रतीयते, तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाणनवरात्रत्रिरात्राद्युपवासविषयमेव॥ न त्वेकादश्यादिविषयम्॥ "असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्। उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥" इत्यपरार्के देवलेन तन्निषेधात्॥ न चास्य पुंविषयत्वेन सावकाशत्वात् स्त्रीणां ताम्बूलादि प्राप्नोतीति वाच्यम्। ताम्बूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात्॥ यत्तु हरिवंशे-"अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान्सुम-

नसस्तथा । व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ शिरसोभ्यञ्जनं सौम्ये नैवमेतत्प्रशस्यते । न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥" इति ॥ तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयम् । नतु सर्वत्र । पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ तत्रैव-"अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहस्य कृतिस्तथा । उपवासाद्व्रताद्वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियम् ॥" स्त्रियमित्युपलक्षणम् ॥

अपरार्कमें देवल कहते हैं ब्रह्मचर्य, पवित्रता, सत्य बोलना और मांसत्याग व्रतमें यह चार वस्तु विशेष हैं यह निश्चय है । मत्स्यपुराणमें लिखा है इससे उपवास करनेवाला शरीरमें उबटन लगाकर स्नान न करे, यह प्रयत्नसे वर्जना चाहिये कारण कि, यह व्रतमें रूपका नाश करनेवाला है, और दूसरे नियम भी वहां वहां खोज लेने । अब स्त्रीके व्रतोंमें विशेष लिखते हैं । हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें गरुडपुराणका वचन है, सुगन्धि लगाना, गहने पहरना, ताम्बूल, फूलमाला, चन्दन, दन्तधावन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते यह वार्ता सौभाग्यवतीके उपवासमें जाननी, कारण कि, वहां भविष्यपुराणका यह वाक्य है, अंजन पान कुंकुम लालवस्त्र यह सौभाग्यकरनेवाले हैं, इस कारण इनको उपवासमें भी धारण करै, विधवा यतिमार्गसे व्रतकरै, और कुमारी अपनी इच्छासे व्रत करै । विष्णुधर्ममें लिखा है सब उपवासोंमें पुरुष वा सौभाग्यवती स्त्री लालवस्त्र और श्वेत पुष्प धारण करै और विधवा एकही श्वेत वस्त्र धारण करै मनु भी कहते हैं फूलोंकी माला, अलंकार, वस्त्र, धूप, अनुलेपन, दतोन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते हैं । मदनरत्नमें व्यासजीका वचन है, स्त्रियोंके व्रतमें दतौन और पुष्पादिका निषेध नहीं है, यद्यपि यह सब उपवासके विषयमें प्रतीत होता है तोभी शिष्टाचारसे सौभाग्यके निमित्त किये जाते नवरात्र त्रिरात्रादिउपवासके विषयमें है एकादशी आदिके विषयमें नहीं कारण कि, अपरार्कमें देवलका वाक्य इसके निषेधकाहै वारंवार जलपान तथा एकहीवार ताम्बूल चर्वणकरने, दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट होजाताहै । यदि कहो कि, यह वचन पुरुषोंके निमित्त है स्त्रियोंके ताम्बूल सेवनमें दोष नहीं तो ऐसा कहना ठीक नहीं कारण कि, ताम्बूल भक्षणका कथन करनेवाला वचनही एकादशीसे भिन्न व्रतोंमें क्यों न माना जाय और जो हरिवंशमें यह लिखाहै कि, अंजन, गौरीचन्दन, सुगंधि, फूल इनको व्रत और उपवासमें सदा त्यागदे । शिरसे स्नान चरण और देहका तेल आदिसे मलनाभी श्रेष्ठ नहीं है, यह मर्यादा है, यह वचन हरिवंशमें लिखे हुए पुण्यकव्रतकेही विषयमें है सर्वत्र नहीं. कारण कि, पूर्वोक्त वचनसे विरोध पडैगा, यह मदनरत्नमें कहा है वहाँही कहाहै कि, अश्रुपात करना, क्रोध, क्लेश यह उपवास वा व्रतमें करनेसे स्त्रियोंके व्रत वा उपवास तत्काल भंग होजातेहैं । यहां स्त्रीपद पुरुषका भी उपलक्षण है ॥

---

१ स्त्रियोंके प्रेक्षण स्पर्श आलाप और अऋतुमें संगम करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होताहै दृतिमें जल गौका छोड़कर अन्यदूध सस्यमें मसुर फलमें जम्भीरी नीबू शुक्तिचूर्ण आरनाल यह व्रतमें मांसरूप हैं, स्मरण. कीर्तन केलि दर्शन गुह्यभाषण संकल्प अध्यवसाय क्रियाकी निर्वृत्ति यह आठ प्रकारका मैथुनहै । इनसे भिन्न ब्रह्मचर्यहै।

तथा च-"स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिः संकथनादपि ॥ विपद्यते ब्रह्मचर्यं स्वदारेऽनृतुसंगमात् ॥ १ ॥ आमिषं दृतिपानीयं गोवर्ज्यं क्षीरमामिषम् ॥ मसूरमामिषं सस्ये फले जम्बीरमामिषम् ॥ २ ॥ आमिषं शुक्तिकाचूर्णमारनालं तथामिषम् ॥ ३ ॥"इति स्मृत्यंतरार्के च-"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥ ४ ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ॥ विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणात् ॥ ५ ॥"

मदनरत्ने शिवधर्मे–"दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः। यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥" अथ सूतकादौ निर्णयः। तत्र शावसूत्याशौचयोः सर्वस्मात्कर्मनिवृत्तिर्निबन्धेषु स्पष्टैव ॥ गौडास्तु शौचादावपि तामाहुः। "जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्यकर्म न चाचरेत्। नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ॥ लौतके च समुत्पन्ने ज्वरकर्मणि मैथुने। धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत् ॥ द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च नैव भुक्त्वापि किंचन। कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ॥" इति कालिकापुराणात् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः। तथा हेमाद्रौ पाद्मे–"गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदान्येन कारयेत्प्रयता स्वयम् ॥" इति ॥ पुंसोप्येष विधिः। लिङ्गस्याविवक्षितत्वात् ॥ तेन–'यस्मिन्व्रते यत्पूजाद्युक्तं तदन्येन कारयेत्। शारीरनियमान्स्वयं कुर्यात्' इति हेमाद्रिर्व्याचख्यौ ॥ 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेश्च ॥ आरम्भस्तु न भवत्येव ॥ शुद्धितत्त्वे विष्णुः–"बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि। सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति ॥" एतत्काम्यपरम्। नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यमिति गौडाः ॥ मदनरत्ने–"पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्त्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥" माधवीये कौर्मे–"काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥" इति ॥ एतेन साधिकाराद्व्रताङ्गदेवपूजादि कार्यमिति वर्धमानोक्तिः परास्ता ॥ प्रारब्धं पूजादि कार्यमेव ॥ नवरात्रे तु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः ॥ एवं रजस्वलापि ॥ यत्तु सत्यव्रतः–"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्। न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचन ॥" इति ॥ तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम् ॥ तदुक्तं मदनरत्ने मात्स्ये–'अन्तरा तु रजोयोगे पूजामन्येन कारयेत्' इति। प्रतिनिधयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः–"भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ॥ असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥" स्कान्देपि–"पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा। एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥"

मदनरत्नके शिवधर्ममें लिखाहै दान व्रत नियम ज्ञान ध्यान हुत जप यह यत्नसे सम्पादन करनेसेभी क्रोधीके नाश हो जातेहैं अर्थात् वृथा होजातेहैं, अब सूतकादिका निर्णय करतेहैं, इसमें मरण और जन्मसूतकमें स्मृतियोंमें लिखे सब कर्मोंका न करना, सब ग्रन्थोंमें स्पष्टही लिखाहै, गौड तो घावके अशौचमें सब कर्मोंका त्याग लिखते हैं, कि, घुटनोंमें वा ऊर्ध्वमें घाव होजानेमें नित्यकर्म न करै, और घुटनोंसे नीचेके रुधिरस्रावमें नैमित्तिक कर्मका त्याग कहाहै, मांस निकलनेपर, ज्वर, मैथुन, धूम, डकार उवान्तिके होनेमें नित्यकर्म छोडदे, यदि किसी वस्तुके भोजन करनेसे अजीर्ण होजाय, तो कुछभी भोजन न करै, भोजनके उपरान्त सूतक वा मृत्युमें नित्यकर्म न करना, यह कालिकापुराणके वचन हैं, यथार्थमें तौ हम प्रथमसे देवीपूजाका प्रकरण होनेसे यह वचनभी देवीपूजाके विषयमेंही जानतेहैं, इसी प्रकार हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचनहै कि, गर्भिणी सूतिका कुमारी रोगिणी जब अशुद्ध हो तब दूसरेसे व्रत धरादै। यही विधि पुरुषोंके निमित्त है, कारण कि, इसमें लिंगकी विवक्षा नहीं है, इससे जिस व्रतमें जो पूजादि कही है वह दूसरेसे करादे, शरीरके नियमोंको स्वयं करै यह हेमाद्रिने व्याख्या की है और व्रतवालोंके व्रतमें

विष्णुनेभी यही कहाहै कि, सूतक आदिमें व्रतका आरंभ नहीं होता शुद्धितत्वमें विष्णुका कथन है । यदि पहले बहुत कालका संकल्प कियाहो अर्थात् बहुत कालके व्रतका संकल्प लियाहो तो सूतक और मृत्युमें वह व्रत दूषित नहीं होता, यह वाक्य काम्य व्रतमें जानना और विना प्रारम्भ कियेभी नित्यकर्म करले ऐसा गौड कहते हैं । मदनरत्नमें कहा है जिस व्रतका व्रतके नियम करानेवालेने प्रथमसे संकल्प कर रक्खाहै वह शुद्धमनुष्य उस व्रतको दान और अर्चनके विना करै माधवीयमें कूर्मपुराणका कथन है, यदि काम्य उपवासके आरम्भमें मध्यमें मरण वा सूतक होजाय तौ दान और अर्चनके विना काम्य व्रतका अनुष्ठान करै इससे वर्द्धमानका यह कहना खण्डन होगया कि, सांगव्रतमें अधिकार होनेसे उस २ व्रतके अङ्गभूतदेवता आदिका तौ पूजन करै आरम्भ किये व्रतके पूजन तो करैही । नवरात्रमें तो वही विशेष कहैंगे, इसी प्रकार रजस्वलाभी व्रत करै, और जो सत्यव्रत यह कहते हैं कि, दीर्घव्रतके प्रारंभमें यदि स्त्री रजोवती होजाय तौ उसका व्रत नहीं रुक सकता, यह वचन प्रतिनिधिसे करवादेनेके विषयमें है ऐसाही मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वचन है कि, यदि व्रतमें रजोधर्म होजाय तौ दूसरेसे व्रत करादे । इस प्रकार प्रतिनिधि निर्णयामृतमें पैठीनसीके वाक्यसे कहेहैं, भार्या पतिका और पति भार्याका व्रत करदे, इनके सामर्थ्य न होनेपर दूसरेके व्रत करनेसे व्रतभंग नहीं होता, स्कन्दपुराणमें भी लिखाहै, नम्रतायुक्त पुत्र बहन भ्राता इनको अथवा इनके अभावमें ब्राह्मणको प्रतिनिधि करना चाहिये ॥

पित्राद्यर्थे उपवासव्रतनिर्णयः ।

कात्यायनः–"पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः । उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे । कृते ते तु फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः ॥ " मदनरत्ने प्रभासखण्डे–"भर्त्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च । यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः ॥ एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ॥" तत्रैव वायवीये–'स्वयं कर्त्तुमशक्तश्चेत्कारयेत पुरोधसा ॥' इदं च सर्ववर्णसाधारणम् । अविशेषात् ॥ यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह–शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः "जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥ " इति मरीचिवचनाद् इति ॥ तत्तुच्छम् । प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसंभवात् 'विषये प्रायदर्शनाद् ' इति न्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात् ॥ यदापि–'उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम् ' इति पूर्वार्द्धे पाठस्तदापि स एव दोषः 'स्त्रीशूद्रपतनानि षड्' इति मानवीये जपनिषेधात् "ब्राह्मणो हीनवर्णस्य यः कुर्यात्कर्म किंचन । स तां जातिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥" इति कालहेमाद्रौ मरीचिनिषेधाच्च ॥ वस्तुतस्तु । संपूर्णतावाचनमात्रमत्रोच्यत इति प्रतिनिधेः का वार्तेत्यलम् ॥ अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः–"काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः । काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु । स देशकालयोर्नास्ति नारणेरग्निरेव सा ॥ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥ " हिरण्यकेशिसूत्रेपि–"न स्वामित्वस्य भार्यायाः पुत्रस्य देशस्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते " इति ॥ अथ व्रतादिसंनिपाते निर्णयः । तत्र तिथिद्वयसंनिपाते तत्रोक्तं दानहोमादिक्रमेणानुष्ठेयम् । अविरोधात् ॥ इदं पूर्वारब्धेष्वेव॥एकमध्येन्यकाम्यकर्मारम्भस्तु न भवत्येव गुणफलादृते–'यस्य यज्ञे प्रततेन्तरा यज्ञस्तायते तं यज्ञं निर्ऋतिर्गृह्णाति' इति रा-

णकधृतश्रुतेः। यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रम्। अनङ्गेन व्यवधानदोषस्य सर्वत्र साम्यात्॥ शिष्टास्तु माघकार्त्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोमतुलाभारतश्रवणाद्याचरन्ति तन्नित्यमध्ये, न तु काम्यमध्ये॥

कात्यायन कहते हैं, पिता माता भ्राता पति और विशेष कर गुरुके निमित्त उपवास करनेसे सौगुना पुण्य होताहै मातामहादिके उद्देश्यसे एकादशीमें उपवास करनेसे समग्र फलकी प्राप्ति होतीहै। मदनरत्नके प्रभासखण्डमें लिखा है कि, भर्ता पुत्र पुरोहित भ्राता पत्नी सखा, यात्रा और धर्मकार्यमें प्रतिनिधि होते हैं हे महादेवि! इनका किया हुआ स्वयंही किया हुआहै, वहीं वायुपुराणका वाक्य है कि, यदि स्वयं करनेमें अशक्य हो तो पुरोहितसे करादे विशेष न कहनेसे यह सब वर्णोंके निमित्त साधारण है और जो किसी महोक्ष (बलीवर्द) ने यह कहाहै, शूद्रके ब्राह्मणादिही प्रतिनिधि युक्तहैं, शूद्र नहीं होसकते। जप तप तीर्थसेवा संन्यास मन्त्रसाधन जिसका ब्राह्मण सम्पादन करते हैं उसका पूरा फल मिलताहै यह मरीचिका वचन है सो तुच्छ है, कारण कि, संन्यासादिका होना शूद्रमें सम्भव नहीं, और यह न्यायसंगत भी है कि, कर्मोंके विषय द्रष्टापन ब्राह्मणका है। इससे यह वचनभी ब्राह्मणके विषयमें जानना, और जो उसने लिखाहै कि, प्रथमका आधाश्लोक यह है उपवास व्रत हवन तीर्थ जप तौभी वही दोष आता है कारण कि, स्त्री और शूद्र जपादिसे पतित होतेहैं, इस कारण शूद्रको जपका निषेधहै, ऐसा मनुमें है और कालहेमाद्रिमें मरीचिके वचनसे इस प्रकार निषेधभी है। जो ब्राह्मण शूद्रवर्णके निमित्त कुछ कर्म करे तो वह इस लोक और परलोकमें उसजातिको ही प्राप्त होता है, यथार्थ तो यह है जब पूर्णजातिका होनाही यहां लिखा तौ प्रतिनिधिकी क्या बात है बहुत विस्तार नहीं करते हैं, त्रिकाण्डमण्डनने यहाँ यह विशेष लिखा है कि, काम्यकर्ममें प्रतिनिधि नहीं होता नित्य नैमित्तिकमें ही होता है। कोई आचार्य आरम्भके उपरान्त काम्यकर्ममें भी प्रतिनिधि मानते हैं, इससे मन्त्र स्वामी देवता और अग्निकर्ममें प्रतिनिधि होता है, देश काल तथा अरणीके मथनमें प्रतिनिधि नहीं होता कारण कि, वह अग्निही है और निषिद्ध वस्तुको भी कहीं प्रतिनिधि करै। हिरण्यकेशीसूत्रमें कहा है स्वामी स्त्री बेटा देश काल अग्नि देवता कर्म और शब्द इनका प्रतिनिधि नहीं होता अब व्रतादिके मेलमें निर्णय करते हैं। यदि व्रतमें दो तिथियोंका संयोग होजाय तो उस २ तिथिमें कथन किये दान हवन आदि विरोध न होनेमें करने चाहिये, और यह भी पहले आरम्भ किये व्रतोंमें जानना। एकके बीचमें दूसरे काम्य कर्मका आरम्भ तो नहीं होता, और गौणफल तो प्राप्त होता है। जिस यज्ञके आरम्भमें दूसरे यज्ञका विस्तार किया जाय उस यज्ञको राक्षस ग्रहण करलेते हैं, यह राणकमें श्रुति लिखी है इससे यज्ञव्रत आदि सब कर्मोंमें अनंग (यज्ञके अंगके सम्बन्धसे रहित) कर्मके व्यवधानक दोष सब स्थानमें तुल्य है शिष्ट पुरुष तो कार्त्तिकस्नानादिके मध्यमें लक्षहवन तुलादान भारतादिका श्रवण करते हैं यह उनका कर्त्तव्य नित्यकर्मविषयक है काम्यमें नहीं है॥

यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम्। नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम्। समकालीनविरुद्धव्रतादौ त्वेकं स्वयं कृत्वान्यद्भार्यादिना कारयेदिति माधवः॥ यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाऽह्नि भोजनं प्राप्तम्। "भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि। एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥" इति तन्निषेधश्च॥ तत्र पारणाया वैधत्वाद्दिवैव भोजनम्। निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः। एवमष्टम्यादिनक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ संकष्टचतुर्थ्यां च रात्रौ भोजनम्॥

यत्र त्वष्टम्यादौ दिवाभुजिनिषेधः, संक्रमे च रात्राविति निषेधद्वयम् ॥ तत्रोपवास एव कार्यः ॥ यद्यपि पुत्रिण उपवासो निषिद्धः । तथापि 'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत्' इति वचनात्किंचिद्भक्षयित्वोपवासः कार्यः ॥ चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु भोजनं कार्यमेव । चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात् । अबाधेन गत्यसम्भवाच्च ॥ एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत् 'आपो वा अशितमनशितं च' इति श्रुतेः ॥ एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्धप्रदोषादिषु ज्ञेयम् ॥ एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥

और जहाँ एकभक्तादिमें तथा नक्तादिमें विरोध हो वहाँ प्रथम होनेसे एकभक्त आदि करना चाहिये और नक्त तो दूसरे दिन गौण तिथिमें करना चाहिये, और एकहीकालमें विरुद्ध दो व्रत आन पड़ें तो एक स्वयं करै और एकको भार्या आदिसे करादे यह माधव कहते हैं और जहाँ शिवरात्रि तिथिमें पारणके निमित्त दिनमें भोजन प्राप्त है और निषेध है कि चतुर्दशी और अष्टमीको दिनमें पर्वमें रात्रिको और एकादशीको दिनरातमें भोजनकर चान्द्रयण करे । उस स्थलमें पारणाको शास्त्रोक्त होनेसे दिनमें भोजन करना, और उस निषेधको रागप्राप्त भोजनमें जानना, इस प्रकार अष्टमी आदि नक्तव्रत संक्रांति आदि रवि संकष्ट चतुर्थीमें रात्रिको भोजन करना और जिस स्थलमें अष्टमी आदिमें दिनके भोजनका निषेध है कि, संक्रांतिमें रातको भोजन न करै, वहाँ उपवास करनाही जानना, यद्यपि पुत्रवालोंको उपवासका निषेध है, तथापि उपवासके निषेधमें भी कुछ भोजन करले, इस वाक्यसे कुछ भोजन करके ही उपवास करे और चान्द्रायणमें भी एकादशीको तो भोजन करनाही चाहिये कारण कि, चान्द्रायण काम्य होनेसे नित्यका बाधक है । और विना बाध माने दूसरा मार्गही नहीं है एकादशी को एकान्तरे आदि व्रतकी पारणा आ पड़े तो जलसे पारण करके उपवास करै कारण कि, (आपो वा अशितमनशितं च) इस श्रुतिके अनुसार जलका भक्षण अभक्षणही है । इसी प्रकार द्वादशी मासोपवास श्राद्ध प्रदोषादिमें जानना, इस प्रकारसे काम्य नैमित्तिक नित्य आदि व्रतोंमें बल अबल स्वयं बिचार लेना यह संक्षेपसे कहा है ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां व्रतपरिभाषा समाप्ता ।

अथ प्रतिपदादितिथिनिर्णयः ।

शुक्लप्रतिपदपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या । युग्मवाक्यात् 'प्रतिपत्संमुखी कार्य्या या भवेदापराह्णिकी' इति स्कान्दोक्तेः ॥ 'शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्सापराह्णे भवेत्' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ अपराह्णश्च पञ्चधा भक्ते दिने चतुर्थो भागः ॥ तदभावे सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः ॥ कृष्णा तु परा । 'कृष्णा तूत्तरतोखिला' इति दीपिकोक्तेः ॥ 'कृष्णापि पूर्वैव' इत्यनन्तभट्टाः ॥ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि मुहूर्त्तदीपिकायाम्–"कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा तैलं चामलकं दिवं प्रवसतां शीर्षं कपालान्त्रकम् । निष्पावांश्च मसूरिकान्फलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश ॥" शीर्षं नारिकेलम् । कपालम् अलाबु । अन्त्रं पटोलकम् ॥ भूपालः–"कूष्माण्डं बृहतीं क्षारं

मूलकं पनसं फलम् । धात्रीशिरःकपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत्" नखं शिंबी । चर्म मसूरिका ॥

अब प्रतिपदाका निर्णय करते हैं, जो शुक्लपक्षकी प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी होवे तो पूर्वकी ग्रहण करनी कारण कि, इसके दो वाक्य मिलते हैं। स्कंदपुराणमें लिखा है, जो प्रतिपदा अपराह्णमें हो तो निःसंदेह उसीको करै । शुक्ला प्रतिपत्तिथि होती है वह जो अपराह्णमें हो तो पहली होती है, यह दीपिकामें लिखा है। अपराह्ण, पांच भक्त दिनका चतुर्थ भाग है यदि वह न प्राप्त हो तो संध्यामें व्यापनेवाली तिथि ग्रहण करनी, ऐसा माधव कहते हैं। कृष्णा प्रतिपादा तो आगेकी लेनी, ऐसा दीपिकामें लिखा है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा भी पहलीही होती है, ऐसा अनन्तभट्ट कहते हैं। मुहूर्त्तदीपिकामें सब तिथियोंमें निम्नलिखित वस्तु वर्जित की हैं, कूष्माण्ड, कटेरी, लवण, तिल, खटाई, तेल, आंवले, नारियल, तोंबा, पटोल, निष्पाव (पसाईके चांवल), मसूर, बैगन, शहत, द्यूत, स्त्रीगमन इन सोलह वस्तुओंको क्रमसे प्रतिपदादि तिथियोंमें त्यागदे । भूपाल कहते हैं—कूष्माण्ड कटेरी क्षार मूल पनसका फल आमले नारियल कपाल (अलाबू) पटोल नख (शिम्बीशाक) मसूर तिल हजामत बनवाना इनको प्रतिपदा आदि तिथियोंमें त्यागदे ॥

द्वितीयानिर्णयः ।

'द्वितीया तु कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा' इति हेमाद्रिः ॥ 'कृष्णाद्वितीयादिमा, पूर्वाह्णे यदि सा सिता तु परतः सर्वा' इति दीपिकोक्तेः । माधवानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा । तथा च माधवः—"पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा । सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोन्यथा ॥ " इति ॥

और द्वितीयाके विषयमें तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी दूसरी ग्रहण करनी चाहिये, यह हेमाद्रिका मत है, कारण कि, दीपिकामें भी यही लिखा है कि, जो पूर्व दिनमें हो तो कृष्णपक्षकी द्वितीया पहली और शुक्लपक्षकी तो सब प्रकार दूसरीही होती है, अनन्तभट्ट कहते हैं सब द्वितीया पहलीही करनी चाहिये । माधव भी यही कहते हैं कि प्रभातकाल जो प्रथम दिन न हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त हो वह द्वितीया उपवासमें दूसरीही लेनी, और यदि ऐसी न हो तो प्रथम तिथि प्रतिपदासे विद्धा लेनी चाहिये ॥

तृतीयानिर्णयः ।

तृतीया तु सर्वमते रम्भाव्यतिरिक्ता परैव ॥ तेन युग्मवाक्यं रम्भाव्रतविषयम् "रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीया द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गुणयुक्ता प्रशस्यते ॥ " इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः "मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥ " इति ॥

रम्भातीजको छोडकर सबके मतमें अगलीही तृतीया होती है, उसमें दो वाक्य रम्भाव्रतके विषयमें हैं । हे द्विजसत्तम ! रम्भा नामक तीजको छोडकर और सबकार्योंमें चतुर्थीयुक्त तृतीया श्रेष्ठ है, ऐसा ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है, गौरीव्रतमें माधव विशेष कहते हैं, मुहूर्त्तमात्र होनेसे भी दूसरेही दिन गौरीव्रत करना चाहिये, और यदि शुद्ध तृतीयाकी वृद्धि हो जाय तो भी चतुर्थीमें योगकी प्रशंसा होनेसे परदिनमें ही करनी ॥

चतुर्थीनिर्णयः ।

चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । "एकादशी तथा षष्ठी

अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ता ः पराः पूर्वेण संयुताः ॥ " इति माधवीये बृहद्वसिष्ठोक्तेश्च ॥ 'नागचतुर्थी तु मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीयुता च ग्राह्या ' इति निर्णयामृते । माधवीये चोक्तम्–"युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् । क्षीरेणाप्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत्प्रयतो नरः । विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान्हिंसन्ति पन्नगाः ॥" इति माधवीये देवलोक्तेः ॥ युगं चतुर्थी । पूर्वत्र मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वा । अन्यपक्षेषु परैव पञ्चम्यां पूजोक्तेः ॥ गणेशव्रते तृतीयायुतैव चतुर्थी । "चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्त्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी ॥ " इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात् ॥ माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्नव्यापिनी मुख्या । "चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥ " इति बृहस्पतिवचनात् ॥ "प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप" इति तत्कल्पेऽभिधानाच्च । तेन परदिने सत्त्वे परा । अन्यथा पूर्वेत्युक्तम् । वस्तुतस्तु । यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्ता तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि, न तु सार्वत्रिकाणि ॥ संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः । तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धम् ॥ संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वेति केचित् ॥ अन्ये तु दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्याभावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्नव्यापिसत्त्वात्सम्पूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते ॥ दिनद्वये तदभावे तु परैव ॥ गौरीव्रते तु पूर्वैव । " गणेशगौरीबहुला व्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः ॥ " इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥

और गणेशचतुर्थीको छोडकर सबके मतमें पहलीही चतुर्थी लेनी । इसमें भी युग्म वाक्य है, माधवीयमें वृद्धवसिष्ठका वचन है कि, एकादशी छठ अमावस्या चौथ यह उपवास करनेमें परतिथिसे संयुक्त लेनी और नागचतुर्थी तो मध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी, ऐसा निर्णयामृत और माधवीयने कहा है । नागतिथिमध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी, जिस दिन मध्याह्नमें चतुर्थी हो उस दिन उपवास करके पञ्चमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराय जो इनकी पूजा करता है उसके विष दूर होते हैं और उनको सर्प नहीं काटते हैं, ऐसा माधवीयमें देवलका वचन है । मध्याह्नसे प्रथम पंचमी आजाय तो पहली न होकर परली होती है, कारण कि, पूजा पंचमीमें लिखी है । और गणेशव्रतमें तृतीयायुक्त चतुर्थी लेनी । कारण कि, तृतीयामें चतुर्थी महापुण्यकी देनेवाली है, वही गणेशजीके प्रसन्न करनेको करनी चाहिये ऐसा हेमाद्रिमें ब्रह्मवैवर्तका वचन है, और माधवीयमें तो गणेशव्रतमें मध्याह्नव्यापिनी ही मुख्य कही है कि, गणेशचतुर्थी तृतीयायुक्त श्रेष्ठ है और जो वह मध्याह्नव्यापिनी हो परे होय तो अगले दिन होती है, ऐसा बृहस्पतिका वचन है । हे राजन् ! प्रातःकाल श्वेततिलोंसे स्नान कर मध्याह्नमें पूजन करै । ऐसा उसके कल्पमें विधान किया है इससे परदिन होनेसे परा करनी अन्यथा पूर्व करनी यह कहाहै और जहां भाद्र शुक्ल चौथमें गणेशव्रत विषयमें मध्याह्नकी पूजा कही है उसके विषयके पहले ही बचन कहदिया है, वह सर्वत्रके नहीं हैं, कारण कि, संकष्टचतुर्थी आदिमें बहुतसे कालका बाध होजायगा, इससे गणेशव्रतमें सर्वत्र पहलीही लेनी, यह सिद्ध हुआ और यह कहते हैं कि, संकष्टचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी और यदि दोनों दिन चन्द्रयोग होय तो तृतीयाका योग होनेसे प्रथमहीकी ग्रहण करनी । और तो यह कहतेहैं कि यदि प्रथम दिन तीन मुहूर्त

आदि तृतीयाका योग न होय और अगले दिन माधवकी कही मध्याह्नव्यापिनी हो तो सम्पूर्ण चतुर्थी होनेसे परली स्वीकार करनी, और यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी न हो तो परली करनी, और गौरीव्रतमें तो पहलीही लेनी कारण कि, गणेश गौरी बहुला इनसे अतिरिक्त जो चतुर्थी है वह दूसरे देवताओंके व्रतमें पंचमी युक्त लेनी चाहिये ऐसा मदनरत्नमें ब्रह्मवैवर्त्तका वचन है ॥

पञ्चमीनिर्णयः।

पञ्चमी तु माधवमते सर्वापि पूर्वा—"चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु। दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथासिता ॥" इति हारीतोक्तेः। हेमाद्रिमते तु कृष्णा पूर्वा सिता परा। 'कृष्णा पूर्वयुता सिता परयुता स्यात्पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया ॥ "प्रतिपत्पञ्चमी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा। नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः ॥" इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ यत्तु—"पञ्चमी तु प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद" इत्यापस्तम्बीयं तत्स्कन्दव्रतपरम् ॥ "स्कन्दोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता" इति वाक्यशेषादिति माधवः ॥ तन्नागपूजाविषयमित्यनन्तभट्टनिर्णयामृतादयः ॥ चमत्कारचिन्तामणौ च—"पञ्चमी नागपूजायां कार्य्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरासु चतुर्थिका ॥" इति ॥ तेन नागपूजादौ परैव ॥ यत्तु मदनरत्नदिवोदासीययोः—"श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ॥ तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः ॥" इति संग्रहोक्तेः ॥ "गणेशस्कन्दयोगाभ्यां क्रमान्नागः शुभाशुभः। मित्रामित्रे तयोः पत्रे नागानामाखुबर्हिणौ ॥" इति षट्त्रिंशन्मताच्च ॥ श्रावणपञ्चम्यातिरिक्ताया नागपञ्चम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तम्॥तदुपवासादिविषयम्॥पत्रे वाहने

माधवने सबही पंचमी पहली लेनी लिखी हैं चतुर्थीसे युक्त पंचमी करनी षष्ठीसे युक्त नहीं चाहै दैव चाहै पित्र्यकर्महो चाहै शुक्ल चाहै कृष्णपक्ष हो ऐसा हारीतने कहा है, हेमाद्रिके मतसे तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी अगली ग्रहणे करनी कारण कि यही दीपिकामें कहा है, कृष्ण पंचमी चौथसे युक्त और शुक्लपक्षकी छठसे युक्त लेनी, यथार्थमें तो हारीतका वचन उपवासके विषयमें है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है प्रतिपदा पंचमी सावित्री चौदश पूनौ नवमी दशमी यह जब परतिथिसे युक्त हों तो इनमें उपवास न करै, और जो आपस्तंबमें यह लिखा है कि हे नारद! पंचमी षष्ठीसे युक्त करनी चाहिये, यह वाक्य स्कन्दव्रतके विषयमें है, इसमें माधव का यह विशेष वचन है कि, स्कन्दव्रतमें पञ्चमी युक्त षष्ठी लेनी चाहिये अनन्तभट्ट निर्णयामृतादि इसको नागपूजाविषयक कहते हैं, चमत्कारचिन्तामणिमें भी लिखा है कि, नागपूजामें षष्ठीयुक्त पंचमी करनी कारण कि उसमें नाग प्रसन्न होते हैं, और शेष चतुर्थीयुक्त करनी इससे नागपूजामें परही करनी। और जो मदनरत्न दिवोदासीयमें लिखा है कि ,श्रावण शुक्लमें जो नागपंचमी है उसको छोडकर और पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी उत्तम हैं, यह संग्रहका वचन है, कि चतुर्थीके योगसे क्रमसे नाग शुभ और अशुभ होते हैं, कारण कि चौथ और छठमें नागोंके वाहन मित्र और अमित्र आखु और बर्हि होते हैं, इस प्रकार षट्त्रिंशका भी मत है, श्रावणशुक्ल पंचमीसे अतिरिक्त पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी यह उपवासके विषयमें है ॥

षष्ठीनिर्णयः ।

षष्ठी सर्वमते स्कन्दव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । 'नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन' इति स्कान्दाच्च ॥

स्कन्दव्रतके विना सबके मतमें षष्ठी परली ही ग्रहण की है इसमें युग्मवाक्य है, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, पंचमीविद्धा छठ कभी न करे ॥

सप्तमीनिर्णयः

निर्णयामृते-"षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदंशुमालिनः । योगोयं पद्मको नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः ॥" सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'षष्ठ्या युता सप्तमी च कर्त्तव्या तात सर्वदा' इति स्कान्दाच्च ॥

निर्णयामृतमें लिखा है, जो षष्ठी सप्तमी रविवारके दिन हो यह पद्मक नामक योग सौकरोड सूर्यग्रहणके समान है, युग्मवाक्यसे सप्तमी पहली ही होती है, स्कन्दमें लिखा है, हे तात ! सदा सप्तमी छठके सहित करनी चाहिये ॥

अष्टमीनिर्णयः ।

अष्टमी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा सिता परा । 'व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा' इति माधवोक्तेः ॥ परयुक् शुक्लाष्टमी पूर्वयुक् कृष्णा इति दीपिकोक्तेश्च ॥ शिवशक्त्युत्सवे च कृष्णाप्युत्तरा । 'पक्षद्वयेप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे' इति माधवोक्तेः ॥

और अष्टमी सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली होती है, ऐसा माधव कहते हैं, दीपिकामें भी यही लिखा है कि कृष्णपक्षकी अष्टमी सप्तमीसे युक्त और शुक्लपक्षकी नवमीसे युक्त लेनी । और शिवा शिवके उत्सवमें दोनों पक्षमें नवमी युक्त लेनी चाहिये, ऐसा माधव कहते हैं ॥

बुधाष्टमीनिर्णयः ।

दिवोदासीये भविष्ये-"यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत्कचित् । तदातदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप ॥ संध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने । बुधाष्टमी न कर्त्तव्या हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥" अंत्यं पद्यं हेमाद्रौ न धृतम् ॥

दिवोदासीयमें भविष्यका वचन है, जब जब शुक्लाष्टमी बुधवारी होय हे राजन् ! तब तब एकभक्तवाले मनुष्यको वह ग्रहण करनी चाहिये, सन्ध्याकाल चैत्र जनार्दनके शयनमें बुधाष्टमी न करनी चाहिये करनेसे पुरातन पुण्यको हरण करती है हेमाद्रिमें अन्तका पद नहीं लिखा है ॥

नवमीनिर्णयः ।

नवमी तु सर्वमते पूर्वा युग्मवाक्यात् । 'न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन' इति स्कान्दाच्च ॥

नवमी तो सबके मतमें अष्टमीसे युक्त पहली ही लिखी है, युग्मवाक्य होनेसे, स्कन्दपुराणका वचन है हे तात दशमीयुक्त नौमी कभी न करनी चाहिये ॥

दशमीनिर्णयः।

दशमी तु पूर्वा परा च इति हेमाद्रिः॥ 'कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येवं व्यवस्थिता' इति माधवः॥ वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव ग्राह्या। 'दशमी तु प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम' इत्यापस्तम्बोक्तेः॥ यत्तु–'सम्पूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाथवा' इत्यङ्गिरसोक्तम्॥ तन्नवमीयुक्तालाभे औदयिकी ग्राह्येत्येवं नेवम्॥

हेमाद्रि कहते हैं कि, दशमी पहली वा परली होती है। कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली करनी ऐसा माधव कहते हैं। यथार्थमें तो मुख्य नौमीयुक्तही ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि, हे द्विजश्रेष्ठ! नौमीसे युक्त दशमी करनी ऐसा आपस्तम्बका वाक्य है, और जो यह अंगिराने कहाहै–सम्पूर्ण दशमी पूर्व वा परसे युक्त करनी चाहिये, यह वचन तब जानना जब नवमीयुक्त न मिले॥

एकादशीनिर्णयः।

अथैकादशी॥ तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा–निषधेपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च॥ तत्राद्यः– "न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्मसूकरौ। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥" इति कौर्मदेवलाद्युक्तेः॥ अग्निपुराणेपि–"गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥" इति॥ न चात्र पर्युदासेन व्रतविधिः, तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात्॥ व्रतरूपस्तु ब्रह्मवैवर्ते–"प्राप्ते हरिदिने सम्यग्विधाय नियमं निशि। दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम्॥" इति॥ इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम्। 'वैष्णवो वाथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्' इति शिवधर्मोक्तेः॥ 'वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोप्येतत्समाचरेत्' इति सौरपुराणाच्च॥ सोपि द्वेधा नित्यः काम्यश्च। 'उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि' इति गारुडोक्तेः॥ 'पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्' इति नारदोक्तेश्च नित्यता॥ "यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमात्मनः। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥" इति कौर्मादिषु फलश्रुतेश्च काम्यता॥ उभयैकादशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम्॥ गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यं, न कृष्णायाम्। "एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। वनस्थयतिधर्मोयं शुक्लामेव सदा गृही॥" इति देवलोक्तेः॥ न चानेन निषेधपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंह्रियते, न तु व्रतमिति वाच्यम्। अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात्॥ अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारोक्त्या विरोधः स्यात्॥ निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात्। अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च॥ तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये उपसंहारान्न गृहस्थस्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः॥

अब एकादशीका निर्णय कहते हैं। एकादशी उपवासके दो भेद हैं, एक निषेधपालन, एक व्रतरूपसे, पहला निषेधपालनात्मक कहते हैं। एकादशीके दिन शंखसे जल न पीये, कूर्म और शूकरको न खाय और दोनों पखवारोंमें एकादशीको भोजन न करै, यह कूर्मपुराण और देवलादिका वचन है। अग्निपुरा-

णमें लिखा है–गृहस्थ, ब्रह्मचारी, अग्निहोत्री यह दोनों एकादशीको भोजन न करैं । यहां कोई कहै कि भोजनके निषेधसे व्रतकी विधि प्राप्त होजायगी, सो उचित नहीं कारण कि, व्रतविधिका हेतु कोई व्रतादि शब्द उन वचनोंमें नहीं है । व्रतका स्वरूप तो ब्रह्मवैवर्तने लिखा है । एकादशीके प्राप्त होनेपर रात्रिमें सम्यक् प्रकारसे नियम करके नियमपूर्वक दशमीके दिनही वैष्णव व्रतका संकल्प करै । यह व्रत शिवके भक्तोंकोभी करना उचित है, शिवधर्ममें लिखा है–वैष्णव शैव कोई हो, एकादशीव्रत करना चाहिये । सौर-पुराणमें लिखा है–वैष्णव, शैव, सूर्यभक्त कोई हो, यह व्रत करना चाहिये । यह भी नित्य और काम्यभेदसे दो प्रकारका है । गरुडमें लिखा है, दोनों पक्षकी एकादशीमें नित्य उपवास करना नित्य है । नारदभी कहते हैं प्रत्येक पक्षमें एकादशीका उपवास करना चाहिये, यह नित्यपरत्व है । जो विष्णुके सायुज्यकी इच्छा हो, अपने कल्याणकी इच्छाहो, श्री और सन्तानकी इच्छा हो तो एकादशी दोनों पखवारेकीमें भोजन न करै, इस प्रकार कूर्मपुराणादिकी फलश्रुतिसे काम्यता भी है । दोनों एकादशीका व्रत गृहस्थसे अतिरिक्तोंकोही नित्य है । गृहस्थको तो शुक्लमें ही नित्यव्रत है, कृष्णमें नहीं कारण कि देवल कहते हैं, दोनों पक्षकी एकादशीमें भोजन न करै, यह वनवासी और यतियोंका धर्म है, और गृहस्थीको शुक्लका व्रत करना चाहिये । यदि कोई कहै कि इस वचनसे वानप्रस्थ और संन्यासीके विषयमें निषधके पालनकाही उपसंहार करतेहैं व्रतका नहीं, सो उचित नहीं कारण कि, यह वाक्य पर्युदासद्वारा व्रतकी विधिका कहने-वाला है, यदि यह न मानोगे तो अग्निपुराणके वचनमें निषेधपालनमें जो गृहस्थीको अधिकार लिखाहै उससे विरोध होगा इस कारण निषेधको निवृत्तिका कथन करनेवाला होनेसे विशेषकी अपेक्षा नहीं है, और इसीसे उपसंहारका अयोग है, और अभाव कभी किसीका धर्मभी नहीं हो सक्ता इस कारण इस वच-नके द्वारा सम्पूर्ण सामान्य वाक्य जो एकादशीव्रतके बोधक हैं उनका वनवासी और संन्यासीके विषयमें उपसंहार होनेसे गृहस्थको नित्यव्रतकी विधि कृष्णपक्षमें प्राप्त नहीं होती ॥

कथं तर्हि "संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्र-वान्गृही ॥" इति नारदादिवचनेषु कृष्णानिषेधः, प्राप्त्यभावादिति चेच्छ्रूयताम्–"शय-नीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदा-चन ॥" इति पाद्मे गृहस्थस्य आषाढीकार्त्तिकी मध्यस्था या कृष्णा विहिता सा पुत्र-वतो निषिध्यते ॥ अन्यकृष्णायां तु न विधिः । सर्वविधीनां वनस्थयतिषूपसंहारात् निषेधः प्राप्त्यभावात् ॥ शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्यनन्तभट्टहेमाद्र्यादि-ग्रन्थाः ॥ दीपिकापि–"असिता तु शयनीबोधान्तरस्थाप्यथो न स्यात्सात्मजिनोपि" इति ॥ मदनरत्ने भविष्ये–"यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा प्रिया । शुक्ला गृहस्थैः कर्त्तव्या भोगसन्तानवर्धिनी । मुमुक्षुभिस्तथा कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता ॥" इति ॥ निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां सर्वगृहिणां भवत्येव । "पुत्रवांश्च सभा-र्यश्च बन्धुयुक्तस्तथैव च । उभयोः पक्षयोः काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम् ॥" इति नार-दोक्तेः ॥ एतच्च सर्वं कालादर्शे उक्तम् "विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये ॥ उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः । भुजेर्निषेधः कृष्णायां सिद्धिस्तस्य ततो व्रते ॥" इति ॥ प्राच्यास्तु वैष्णवगृहस्थानां कृष्णापि नित्या । "नित्यं भक्ति-समायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥ सपुत्रश्च

सभार्यश्च सुजनो भक्तिसंयतः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥ " इति नारदोक्तेरित्याहुः ॥ पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः ॥

और यदि ऐसा है तो क्यों नारदजी ऐसा कहते हैं कि, संक्रांति कृष्णपक्षकी एकादशी सूर्य चन्द्रमाका ग्रहण इसमें पुत्रवान् गृहस्थी उपवास न करै, इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि, निषेध प्राप्तिके विना नहीं होसकता ऐसी शंकापर यह समाधान है कि, देवशयनी और देवोत्थान इन दोनों एकादशियोंके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी है वही गृहस्थको करनी चाहिये दूसरी नहीं, इस पद्मपुराणके वाक्यसे आषाढ और कार्तिकके मध्यमें जो कृष्णपक्षीय एकादशी हैं उनमें उपवास करना कहाहै और पुत्रवालेको पूर्व कहे वचनसे उसकाही निषेध कहाहै और कृष्णएकादशीका तो विधान नहीं है, सब विधियोंमें वान प्रस्थ और संन्यासीके विषयमें समाप्ति होनेके कारण अभावसे निषेध नहीं है और पूर्वोक्तदेवशयनी देवोद्बोधिनी आदि जो वचनहै वह पुत्री गृहस्थीके विषयमें जानने यह अनन्तभट्ट हेमाद्रि आदि ग्रन्थ कहते हैं । दीपिकामेंभी लिखाहै कि, शयनी बोधनीके बीचमेंकी कृष्णा एकादशीको पुत्रवालाभी गृहस्थी करै मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वचनहै । जैसी शुक्ल वैसीही कृष्णा द्वादशी मुझको सदा प्यारी है, शुक्ला गृहस्थियोंको करनी चाहिये यह भोग और सन्तानकी बढानेवाली है, मुमुक्षुओंको कृष्णा करनी चाहिये जो २ उनके आचार्यने कही है । निषेधका पालन और काम्यव्रत तो सब कृष्णा एकादशियोंमें सब गृहस्थी करैं; कारण कि, नारद यह कहतेहैं कि, पुत्रवान् भार्यायुक्त और बन्धुसम्पन्न गृहस्थी विष्णुके काम्यव्रतको दोनों पखवारेमें करै, यह सब कालादर्शमें कहा है कि, विधवा, वानप्रस्थ और संन्यासी यह दोनों एकादशी और पुत्रवान् गृहस्थी शुक्लामें व्रत करै और भोजनका निषेध तो गृहस्थीको कृष्णामेंभी है, इससे उसका व्रत सिद्ध होताहै, प्राच्योंका यह कथनहै कि, वैष्णवगृहस्थियोंको कृष्णा एकादशीभी नित्यहै, कारण कि, नारदने यह लिखाहै कि, विष्णुकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य प्रत्येक पक्षमें एकादशीका व्रत करै, पुत्र स्त्री बंधु सम्पन्न भक्तिमान् मनुष्यभी दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत करैं, इन वाक्योंमें पुत्रशब्दसे सन्ततिमात्रका कथन जानना ॥

नारायणवृत्तौ–' पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन् ' इत्यत्रापत्यमात्रवाचित्वोक्तेः ॥ ' जनयेद्दुहपुत्राणि ' इति लिङ्गात् । ' पौत्री मातामहस्तेन ' इति मनूक्तेः । पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु " स्त्रीभ्यो ढक् " इति पौत्रेय इत्यापत्तेः ॥ ' पुमान् पुत्रो जायते ' इति च ॥ उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः–"उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किंचित्प्रकल्पयेत् ॥ न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥ " भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्–" नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम् । यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥ " इत्यलम् ॥

नारायणवृत्तिमें कहाहै कि, पुरुषही मेरे अपत्य हों इसमें अपत्यमात्रका वाची पुत्रशब्द कहाहै और मनु भी कहते हैं कि, नानाभी उस पुत्रके पुत्रसे पोतेवाला होताहै पुत्रके पुत्रको पौत्र कहते हैं यदि बेटीका जो अपत्य ऐसा अर्थ होता तो (स्त्रीभ्यो ढक्) इस अष्टाध्यायीके सूत्रसे ढक् प्रत्यय होनेसे पौत्रेय पद होता और पुमान् पुत्र सन्तान होता है ऐसा भी कहा है इससे भी पुत्रपद अपत्यका बोधक विदित होता है वायुपुराणमें उपवासके निषेधमें कहा है कि, यदि कोई वस्तु उपवासके निषेधमें भक्षण करले तो उपवासके न करनेसे वह दूषित नहीं होता, और उसको उपवासका फल प्राप्त होता है, भक्ष्य वस्तु वही कही है कि, नक्त, हविष्य, अन्न, चावल, फल, तिल, दूध, जल, घी, गौका दूध, वायु इनमें क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जानने, विस्तारसे अलम् ॥

दशमीवेधनिर्णयः ।

तत्र दशमीवेधो द्वेधा–अरुणोदयवेधः, सूर्योदयवेधश्चेति ॥ आद्यो गारुडे–" दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम् ॥ " इति ॥ अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे–'उदयात्प्राक्चतस्रस्तु घटिका अरुणोदयः' इति । यदपि–" उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥" इति गारुडसौधर्मादिवचनम् । यच्च भविष्ये–" आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता ॥ " इति ॥ तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ यत्तु ब्रह्मवैवर्ते–" चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः । चतुष्टयविभागोत्र वेधादीनां किलोदितः ॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् । अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासंदर्शनाद्रवेः ॥ " महावेधोपि तत्रैव दृश्यते । " तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः " इति ॥ तदप्यवयवद्वाराऽरुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च ॥ अन्त्यस्तूदयवेधः॥

दशमीका वेध एकादशीविषयमें दो प्रकारका है, पहला अरुणोदयका और दूसरा सूर्योदयका वेध, प्रथम गरुडपुराणमें इस प्रकार कहा है । यदि दशमीके शेषमें अरुणोदय होय तो वैष्णव एकादशीव्रत न करें और माधवीयमें स्कंदके वचनसे इस प्रकार अरुणोदयका स्वरूप कहा है कि, सूर्योदयमें प्रथम चार घडी अरुणोदयकाल होता है, और गरुड और धर्मादिका जो यह वाक्य है कि, हे ब्राह्मण ! यदि उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी होती है, गृहस्थीको उसमें ही व्रत करना चाहिये, और जो भविष्यका यह वाक्य है कि, सूर्यके उदयसे प्रथम दो मुहूर्त होय तो वह एकादशी सम्पूर्ण जाननी, और इसके सिवाय विद्धा जाननी, उपसंहारके न्यायसे यह दोनों वाक्य भी चार घडीके विषयमें ही जानने, हेमाद्रिमें भी यही है और जो ब्रह्मवैवर्तमें यह लिखाहै कि, प्रभातसमय चारघडी अरुणोदयका निश्चय है, और चार प्रकार वेधादिका विभाग कहा है, १ साढे तीन घडी अरुणोदय है, २ सूर्यकी प्रभा दीखनेसे दो घडी अतिवेध है, ३ सूर्यका दर्शन हो वा नहो वह महावेध भी वहां ही है, चौथा वेध वहां यह लिखा–है कि, जो दशमी सूर्य उदयके समय हो । यह वचन भी अवयवके द्वारा अरुणोदयवेधपरही है यह माधवीय और मदनरत्नमें लिखा है, इनसे भिन्न उदयवेध जानना ॥

तथान्येपि वेधाः ॥ हेमाद्रौ माधवीये च गारुडे–" उदयात्प्राक् त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा । संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ उदयात्प्राङ्मुहूर्त्तेन व्यापिन्येकादशी यदा । संयुक्तैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये ॥ " हेमाद्रौ--रात्रेरन्त्योऽष्टमो भागोप्यरुणोदय उक्तः ॥ "निशः प्रान्ते तु यामार्धे देववादित्रवादने । सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते ॥ " इति स्मृतेः ॥ अत्रैके--एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्त्तद्वयेन क्रोडीकारात् ' निशः प्रान्ते' इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयोनेकेऽरुणोदयाः । तदाह हेमाद्रिः--' सार्धघटिकात्रयोक्तिरष्टाविंशतिघटीमितरात्रिविषया । महत्तरास्तु–'रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिकाः–इत्युक्तमिति" इत्याहुः॥तन्न । अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः॥ न च मुहूर्त्तद्वयमर्थः॥दण्डद्वयैकमुहूर्त्तादिवेधानां तथाप्यनुपपत्तेः॥ न हि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति । मुहूर्त्तद्वयस्य यामार्द्धस्य च चतस्रो घटिका इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः न च 'सार्द्धं तु घटिकात्रयम्' इत्यनेनापि तदापत्तिः शङ्क्या । तेन चतुर्दण्डवेधस्यैवोक्तेः । चतुर्दण्डेर्धघटीदशमीसत्त्वे हि वेधस्तदर्थः । द्विघटिकादौ तदयोगाच्च ॥ यत्तु मतम्–किय-

तारुणोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्द्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेऽर्धघटिकातो न्यूनदशमीसत्त्वे न दोष इति ॥ तत्तुच्छम् ॥ द्विदंडादावपि तदापत्तेः । "दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥" इति गारुडे भविष्ये च योगमात्रनिषेधात् ॥ नारदीयेपि—"लववेधेपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत् । सुराया बिंदुना स्पृष्टं गङ्गांभ इव निर्मलम् ॥" स्कान्देपि—"कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो । एकादश्यां न कर्तव्यं व्रतं राजन्कदाचन ॥" इति ॥

इसी प्रकार और वेध भी हेमाद्रि, माधव और गरुडपुराणमें कहे हैं, जो उदयसे पहले एकादशी तीन घडी व्यापिनी हो यह संदिग्धा एकादशी है, धर्मकी वृद्धिवालोंको यह त्यागनी चाहिये और जो एकादशी उदयसे पहले एकमुहूर्त हो वह संयुक्त एकादशी है धर्मवृद्धिके अर्थ उसे भी छोडदे, हेमाद्रिमें रात्रिके अन्तका आठवां भाग अरुणोदय लिखा है, रात्रिके अन्तमें वह आधा पहर जब देवताओंके निमित्त बाजे बजें अथवा जब सरस्वतीका अनध्याय हो तब अरुणोदय होता है, ऐसी स्मृति है । किन्होंका इसमें यह कहना है कि, इन सब पक्षोंसे दो मुहूर्त आनेसे और 'निशः प्रान्ते' इस स्मृतिके वचनसे रात्रिमानके अनुसार तीन घडी आदि अनेक अरुणोदय होते हैं यही हेमाद्रि कहते हैं कि, साढे तीन घडीके वेधका कहना तब जानना जब अट्ठाईस घडी रात्रिका माने हो और यदि इससे अधिक रात्रिका

---

१ पूर्णा खण्डा और विद्धाके भेदसे एकादशी तीन प्रकारकी है उसमें ३२ मुहूर्तव्यापिनी पूर्ण, जो सूर्यके उदयसे प्रतिपदा आदि चली आवै वह एकादशीको छोडकर और पूर्णा कहाती है, ऐसा स्कन्दमें निषेध होनेसे लिखा है कि, हे विप्र जो उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो वह पूर्णा एकादशी व्रतके योग्य है यह गरुडमें कहा है इसमें विशेष भी है कि सूर्योदय ६० घडीपर्यन्त एकादशी हो तो सम्पूर्ण एकादशी धर्मफल वालोंको करनी चाहिये यह गरुडमें लिखा है अरुणोदयव्यापिनी परदिनमें न्यून होनेसे खण्डा कहाती है अरुणोदयव्यापिनी विद्धा होती है आदित्यके उदयसे दो मुहूर्त पहले तक होनेसे एकादशी सम्पूर्ण होती है इससे भिन्न विद्धा होती है यह भविष्यमें लिखा है। विद्धा भी संदिग्ध और संयुक्त भेदसे दो प्रकारकी है। पुत्र और राजकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें उपवास कर त्रयोदशीसें पारण करनेसे सौ यज्ञका फल मिलता है यह काम्य उपवास कहकर विधान किया। अब संदिग्धामें लक्ष देकर निषेध करते हैं। पुत्रपौत्रकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें व्रत करै त्रयोदशीमें पारणासे सौ यज्ञका फल है यह विहित काम्य उपवास व्रतका लक्ष कर निषेध करते हैं। उदयादिति–यह दोनों वाक्य वैष्णवोंसे भिन्न दूसरोंके विषयमें हैं। वैष्णवोंके प्रति (नैवोपोष्यं वैष्णवेन) इस वचनसे व्यर्थ होनेसे इसप्रकार साधारणसेही निवृत्तिसाधारणद्वारा निषेध होनेसे कहा॥

"तथा च–एकादशी त्रेधा–पूर्णा, खण्डा, विद्धा चेति भेदात् ॥ तत्र या द्वाविंशन्मुहूर्त्तव्यापिनी सा पूर्णा 'प्रतिपत्प्रभृतिः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः । सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिता' इति स्कान्दे हरिवासरपर्युदासा तत्र 'उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । सम्पूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही' इति गारुडात् । अत्र विशेषापेक्षायाम् 'आदित्योदयवेलायां आरभ्य षष्टिनाडिकाः । सम्पूर्णैकादशी नाम कार्या धर्मफलेप्सुभिः' इति गारुडं द्रष्टव्यम् ॥ अरुणोदयव्यापिन्याः परदिने न्यूनत्वे खण्डा ॥ अरुणोदयाव्यापिनी तु विद्धा 'आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता ।' इति भविष्यात् ॥ विद्धापि द्वेधा–संदिग्धा संयुक्ता च ॥ तत्र 'पुत्रराज्यप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति विहितं काम्योपवासं संदिग्धां लक्षयित्वा तत्र निषेधति–उदयादिति ॥ 'पुत्रपौत्रप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति विहितं काम्योपवासं संयुक्तां लक्षयित्वा तत्र निषेधति–उदयादिति ॥ एतच्च वाक्यद्वयं वैष्णवेतरविषयम् । वैष्णवान्प्रति तन्निषेधवैयर्थ्यात् 'नैवोपोष्यं वैष्णवेन' इति सामान्यत एव निवृत्त्य साधारण्येन निषिद्धत्वात् ॥ इति टीका ॥"

मान होय तो उसकी अपेक्षासे चार घडीका अरुणोदय जानना ऐसा जो कहना है सो ठीक नहीं कारण कि, ऐसा कहनेसे अरुणोदय पदके अनेक अर्थ हो जायँगे और जो कहै कि, अरुणोदयका अर्थ दो मुहूर्त है यह भी ठीक नहीं इसमें भी दो घडी वा एक मुहूर्तका वेध न बनसकेगा, कारण कि उनको आधा पहर और अरुणोदय नहीं बन सकते, और दो मुहूर्त तथा आधे पहरकी चार घडी मानकर जो पूर्ती की है वह अर्थयोग्य नहीं है और यदि कहो कि, साढेतीन घडीके वचनसे अरुणोदय होजायगा सो भी ठीक नहीं है कारण यहाँ इस प्रकार चारघडी पर वेध लिखा है कि जो चारघडीके आरंभमें आधीघडी दशमी होय तो वेध होता है यह दो घडीके अरुणोदयमें नहीं होसकता और जो किसीने यह स्वीकार किया है कि, वेध कितने अरुणोदयपर होता है यह अपेक्षा प्राप्त होने पर अरुणोदयमें साढे तीन घडीके नियमसे आधी घडीसे न्यून दशमी होय तो कुछ दोष नहीं यह मन्तव्य तुच्छ है कारण कि, दो घडीके अरुणोदयमें भी यही बात होगी । जिस दिन अरुणोदयमें दशमी शेष हो वैष्णवोंको उस दिन एकादशीव्रत न करना चाहिये इस गरुड और भविष्यपुराणके सतसे दशमीके योगमात्रमें व्रतका निषेध है नारदपुराणमें लिखा है हे राजन् ! जो दशमीका एकादशीसे लवमात्र भी वेध हो तो उसे त्यागन करदे जैसे सुराकी बूंदसे निर्मल गंगाजल अपेय होजाता है तद्वत् छोड दे, स्कन्दपुराणमें भी लिखा है हे राजन् ! यदि काष्ठा कलायुक्त भी दशमी हो तो एकादशीका व्रत कभी न करै ॥

तत्रकलादिवेधनिर्णयः ।

माधवोप्याह–सोऽयं कलादिवेधोऽरुणोदयवेधे सूर्योदयवेधे च समान इति ॥ निगमेपि–'सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः' इति ॥ अत एव माधवेन–'अरुणोदयाग्रदंडेऽल्पदशमीस्पर्शे संपृक्ता, कृत्स्नघटीयोगे संदिग्धा, मुहूर्त्तव्याप्तौ संयुक्ता, उदये संकीर्णा' इत्युक्त्वा । "अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता । संपृक्तैकादशीं तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः " इति गोभिलाद्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवेधो निषिद्धः ॥ यत्त्वष्टमभागोरुणोदय इति हेमाद्रिणोक्तम्, यच्च महत्तरा रात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव दूषितम्, अन्तेप्युक्तम् । वेधतारतम्यं च दोषतारतम्यादुपपद्यत इति ॥ दोषतारतम्यं च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते तच्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे– "अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कुर्वन्नेकादशीं नरः । दशमीशेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत् ॥ कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां च दद्यात्सवत्सकाम् । सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम् ॥ " विधानान्तरं तत्रैव–"ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशद्गां च दद्यात्सवत्सकाम् । धरणस्यार्धकं देयं तिलद्रोणमथापि वा ॥ " इति ॥ अत्र वेधतारतम्याद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः । 'निशःप्रान्ते' इत्यपि दोषाधिक्यार्थमेव ॥ तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम् । तेन षट्पञ्चाशद्दण्डानंतरं दशमीप्रवेशेरुणोदयवेध उक्तो भवति ॥ अत्योपि तत्रैव कण्वेनोक्तः–"उदयोपरि विद्धा तु दशम्यैकादशी यदि । दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान्पाकशासनः ॥ " इति स्मृत्यन्तरेपि ॥ "दशम्याः प्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः । तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तत् ॥ " ॥ इति ॥

माधवने भी लिखा है सो यह कला आदिका भेद अरुणोदय और सूर्यके वेधमें तुल्य है, निगममें भी लिखा है यह सवप्रकारकाही वेध उपवासका दूषक है इसीकारण माधवने यह कहकर कि, अरुणो-

दयकी प्रथम घडीमें थोडाभी दशमीका स्पर्श होय तो सम्पृक्ता, पूरी घडीका योग होनेसे सन्दिग्धा, मुहूर्तकी व्याप्तिमें संयुक्ता और उदयमें दशमी होय तो यह एकादशी संकीर्णा होती है, फिर इस गोभिलके वचनसे यह कहा है कि अरुणोदयके समय दशमीका संग होनेसे सम्पृक्ता एकादशी होती है, प्रभुने उसे मोहिनीको दिया है और पूर्वमें कहे गरुडादिके वचनसे भी सामान्य और विशेष रीतिसे भी अरुणोदयका वेध निषिद्धहै, और जो हेमाद्रिने अरुणोदयको रात्रिका आठवां भाग लिखा है और जो दीर्घरात्रिमें चारघडी वेध कहा है वह स्वयंही दूषित कियाहै और पीछे लिखाहै कि, वेधका न्यून अधिकता दोष न्यूनाधिक्यसे सिद्ध होताहै और दोषकी न्यूनता और अधिकाई प्रायश्चित्तकी न्यूनाधिकतासे जानी जाती है यह हेमाद्रिमें और स्मृतिके वचनसे लिखा है जो मनुष्य अज्ञान वा मोहसे दशमी-शेष एकादशीको करताहै वह चौथाई कृच्छ्र करके वत्ससहित गौ आधा सुवर्ण और द्रोण (३२ सेर) तिल देकर प्रायश्चित्त करै इन प्रायश्चित्तोंमें वेधकी न्यूनाधिकतासे व्यावस्था है । यह हेमाद्रिका कथन है निशिप्रान्ते यह पूर्वोक्त वचनभी दोषकी अधिकताके निमित्तहै इससे यह सिद्धहै कि, चार घडीकाही अरुणोदय होता है, इससे छप्पन घडीके उपरान्त दशमीके प्रवेशमें अरुणोदय लिखागया है कण्वके इस वचनसे और वेधभी वहीं कहा गया है, यदि दशमीमें सूर्योदयके उपरान्त एकादशी हो उसका फल इन्द्रने दानवोंकी प्रसन्नताके निमित्त प्रदान कियाहै और स्मृतियों-मेंभी लिखाहै यदि दशमीके अन्तमें सूर्योदय हो तो वह दशमीमिश्रित दिन राक्षसोंको मिलताहै, अर्थात जम्भ असुरके निमित्तहै ॥

तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः । तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात् ॥ तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे-"परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ॥ विष्ण्वर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥" इति ॥ यद्यपि पित्रादेरा-गमदीक्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादेः तथापि स्वपारम्पर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्त्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः ॥ अत्रान्येषामतिप्रसक्तेरव्यभिचाराद्वैष्णवदीक्षावत्त्वमेव वै-ष्णवत्वम् ॥ तत्त्वसागरे भविष्ये-"यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥" केचित्तु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । उदयवेधस्तु परिशेषात् स्मार्त्तगोचरः । तदाह माधवः-"अरुणोदयवेधोत्र वेधः सूर्योदये तथा । उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्त्तयोः क्रमात् ॥" हेमाद्रिस्तु केषां चिदर्धरात्रेपि दशमीवेधमाह-"अर्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध उच्यते । कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥

उसमें अरुणोदयवेध वैष्णवोंके विषयमें है कारण कि, उनवाक्योंमें वैष्णवपदका ग्रहणहै, उसका स्वरूप तो माधवीयमें स्कन्दपुराणके वचनसे लिखाहै कि, जिसको वैष्णवी दीक्षा है वह चाहें परम आपत्ति और परम हर्षको प्राप्त होवै एकादशी न त्यागे जिसने अपने सम्पूर्ण आचार विष्णुको अर्पण कर दियेहैं उसको वैष्णव कहते हैं, यद्यपि पिता आदिको शास्त्रसे विष्णुकी दीक्षा होय तौ पिताही वैष्णव होगा, उसके पुत्र आदि वैष्णव न होंगे तौभी निज कुलकी परम्परासे प्रसिद्धिके कारण वृद्ध उनको वैष्णव और स्मार्त मानते हैं, परन्तु यथार्थमें व्यभिचारके अभावसे वही वैष्णव होसकताहै, जिसे विष्णुकी दीक्षाहो । तत्वसागरमें भविष्यका वचन है जो शुक्ल और कृष्ण एकादशियोंको तुल्य मानताहै उसको वैष्णव कहतेहैं । कोई दशमीमें नौमीका वेध होतो इसको भी त्यागन करतेहैं परन्तु इसमें प्रमाण खोजना चाहिये, और

उदयवेध तो परिशेष होनेसे स्मार्तोंके निमित्तहै सोई माधवने कहाहै दशमीके अरुणोदयमें और सूर्योदयमें दोनों वेध क्रमसे वैष्णव और स्मार्तोंके निमित्त हैं, और हेमाद्रि तौ ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनसे किसीके मतमें अर्धरातमें दशमीका वेध इष्ट कहते हैं परन्तु वह कहतेहैं इसको भगवानके प्रिय आचार्य कपालवेध कहते हैं यह मेरा मत नहीं है कारण कि, रात्रि तीन पहरकी ही इष्ट है ॥

अस्यार्थः--'अनद्यतने लङ्' इत्यत्रातीताया रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागामिन्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च स काल एषोद्यतनः। स काल इत्युक्तं महाभाष्ये स एष वर्त्तमानः काल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः। तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या। अत एव हेमाद्रौ "दशम्याः संगदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु। वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा ॥" इति दोष उक्तः॥ चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः। स्वमते तु रात्रेस्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः। तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः। सोप्यरुणोदय एव। 'सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः' इति मार्कण्डेयपुराणात्। 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः' इति कोशादरुणोदयमारभ्य सूर्यांशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः। तेन मतभेदाद्व्यवस्थेति केचित् ॥ कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयं स्तुतिरिति तु माधवः ॥ यस्तु-'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इति वेधः स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः ॥ "सर्वप्रकारवेधोयमुपवासस्य दूषकः॥ सार्धसप्तमुहूर्त्तस्तु योगोयं बाधते व्रतम् ॥" इति निगमादित्यलम् ॥ अत्र माधवमते-वैष्णवैररुणोदयविद्धा त्याज्या ॥

इसका यह अर्थ है (अनद्यतने लङ्) अनद्यतन कालमें लङ् लकारहो इसपर महाभाष्यमें यह लिखाहै कि, बीतीहुई रात्रिके पिछले दो पहर और आनेवाली रातके पहले दो पहर और मध्यका सारा दिन अद्यतन काल है, इसीको वर्तमान कहते हैं इसी अहोरात्र समयमें एकादशीका व्रत करना चाहिये यदि उसमें दशमीका प्रवेश होजाय तौ विद्धा एकादशी त्याग देनी चाहिये, इसीसे उसके विषयमें हेमाद्रिने दोष लिखाहै कि, आधीरातसे उपरान्त दशमीके संग दोषसे दिनके चारपहरोंका संकल्प और पूजनमें सदा त्यागदे, और अपने मतमें तौ निशा तीन पहरकी होनेसे रातको तीन पहरही पूर्वका शेष होजाताहै, इससे चौथे पहरमेंही वेध युक्तहै और वहभी अरुणोदयमेंही जानना, कारण कि, सूर्योदयके विना स्नान दानादिका क्रम नहीं होता ऐसा मार्कण्डेयपुराणमें लिखा होनेसे और 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः ऐसा कोषसे अरुणोदयसे आरंभ करके सूर्यकी किरण जबतक प्रवृत्त हों तबतक उसमेंही वेधका निषेधहै, इससे कोई इसकी मतभेदसे व्यवस्था करतेहैं, कैमुतिकन्यायसे यह अरुणोदयवेधकी ही स्तुतिहै। और जो दश पन्द्रह घडीका वेध किसीने लिखा है, वह उपवाससे भिन्नमें जानना, कारण कि, निगममें यह लिखाहै कि, यह सब प्रकारका वेध उपवासको दूषित करताहै, और साढेसात घडीका वेध व्रतको दूषित करताहै, विस्तार नहीं करतेहैं, इसमें वैष्णवोंको माधवके मतसे अरुणोदयवेधवाली एकादशी त्यागनी चाहिये ॥

एकादशीद्वादशीवृद्धौ विशेषः।

यदा त्वेकादश्येव शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी वा उभयं वा तदा परोपोष्या। "एकादशी द्वादशी वाधिका चेत्त्यज्यतां दिनम्। पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः॥" इति माधवोक्तेः ॥ स्मार्त्तैस्तु-सूर्योदयविद्धा त्याज्या ॥ यदा त्वेकादशी शुद्धा सती वर्धते द्वादशी च समा न्यूना वा तदा गृहस्थैः पूर्वा, यतिभिरुत्तरा कार्या। "प्रथमेहनि सम्पूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता। द्वादश्यां च तथा तात दृश्यते पुनरेव च॥ पूर्वा कार्या गृहस्थै-

श्च यतिभिश्चोत्तरा विभो ॥" इति स्कान्दोक्तेः ॥ वर्धमानोप्येवमेवाह ॥ उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां परैव । " सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥ " इति नारदोक्तेः । द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव । "न चेदेकादशी विष्णौ द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्यैकादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम् ॥" इति नारदोक्तेः । "द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते । शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्त्तनिर्णय ईदृशः ॥ " इति माधवोक्तेश्च ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु–" विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धापि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि ॥ " इति हेमाद्रौ पाद्मवचनम् ॥ तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम् । तदुक्तं माधवेन–"एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ॥ तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम् ॥ " इति ॥

और जब शुद्ध एकादशीहीकी वृद्धिहो वा द्वादशी बढै अथवा दोनों बढजांय तो माधवके कहे अनुसार दूसरे दिन व्रत करना, अर्थात् एकादशी वा द्वादशी तिथि बढ जाय तौ पहले दिनको त्यागदे अगले दिन व्रत करै यह वैष्णवोंका निर्णय है और स्मार्तोंको तौ सूर्योदयविद्धा एकादशी त्यागनी चाहिये और जब शुद्ध एकादशी बढै द्वादशी उसके समान हो वा न्यून हो तो प्रथम दिन गृहस्थ और दूसरे दिन संन्यासी उपवास करैं यदि एकादशी पहले दिन सम्पूर्ण अहोरात्रव्यापिनी होय और हे तात ! द्वादशीमेंभी दीखे तो गृहस्थियोंको पहली और संन्यासियोंको पिछली करनी चाहिये ऐसा स्कन्दपुराणमें लिखा है, वर्द्धमान भी कहते हैं यदि दोनोंकी वृद्धि होय तो शुद्ध हो चाहै विद्ध सबकी पहली ही होती है । जब एकादशी पूर्ण दिन हो और प्रभातमें फिर भी होतो सबको दूसरे दिन व्रत करना चाहिये, जो उससे अगले दिन द्वादशी होय तो यह नारदने कहा है । यदि द्वादशी मात्रकी वृद्धि होतो प्रथमही होती है, कारण कि, यह भी नारदजी ही कहते हैं एकादशीकी वृद्धि न हो और अगले दिन द्वादशी होतो परमपदकी इच्छावालेको उस एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये, माधव कहते हैं केवल द्वादशी मात्रकी वृद्धि हो तौ स्मार्तोंने इस शुद्ध विद्धाकी व्यवस्थामें ऐसा निर्णय कहा है कि, पहली शुद्धा और दूसरी विद्धा होती है, मदनरत्नमें भी यही लिखा है और हेमाद्रिमें जो पद्मपुराणका यह वचन है कि यदि परे द्वादशी न होय तो विद्धा भी एकादशी अविद्धा जाननी चाहिये और द्वादशी होय तो अविद्धा भी विद्धा जाननी चाहिये एकादशी की वृद्धिमें यह वचन है सोई माधव कहते हैं जो एकादशी द्वादशी दोनों की वृद्धि होय तौ स्मार्तोंको पहला दिन छोड़कर दूसरे दिन करनी चाहिये ॥

द्वादशीमात्रवृद्धौ निर्णयः ।

विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा । पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः । " एकादशीविवृद्धौ चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः । उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥ " इति प्रचेतसोक्तेः ॥ एतच्छुद्धाविद्धातुल्यमिति माधवः ॥ " त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किंचन । उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि च ॥ " इति स्कान्दात् ॥ " अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु । मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ॥" इत्यृष्यशृङ्गोक्तेश्च । मुहूर्तपञ्चकमरुणोदयमारभ्य ज्ञेयम् । अन्यथोत्तरेऽह्नि एकादश्यभावासम्भवात् ॥ तथा च स एव–"सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा मा भूद्यस्मान्नित्यमुपोषणम् ॥" यदपि हेमाद्रिणा–'शुद्धसमा शुद्धन्यूना वा अधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेत्युक्तम्' तदपि वैष्णवविषयम् ॥ स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्यविरोधः ॥

यदि एकादशी विद्धा होय द्वादशीमात्रकी वृद्धि होय तो सबके मतमें परली होती है और यदि एकादशीमात्रकी वृद्धि हो तो गृहस्थको पहली यतिको परली करनी चाहिये। यह पूर्वोक्त पक्षका वचन है । और प्रचेता भी कहते हैं कि शुक्लपक्षमें कृष्णपक्षमें एकादशीकी वृद्धि होय तो पहली गृहस्थी और यति अगली करै यह वचन शुद्धा और विद्धामें तुल्य है ऐसा माधव कहते हैं यदि द्वादशी कुछभी त्रयोदशीमें न मिलै तो दशमीसंयुक्त एकादशीमें भी व्रत करले यह स्कन्दमें लिखा है और ऋष्यशृङ्ग यह कहते हैं कि, निसिद्रोंसे विना विधे बहुधा दिन नहीं मिलते हैं इससे एकादशी तिथि पांच मुहूर्तोंसे विद्धा हुई भी ग्रहण करलेनी चाहिये, अरुणोदयसे आरम्भ कर पांच मुहूर्त लेने नहीं तो अगले दिन करै एकादशीके अभावकी असंभवता प्राप्त होगी उनका ही यह कहना है कि मनुष्यों-को सर्वत्र द्वादशीसे मिली एकादशी करनी चाहिये प्रभातकालमें हो वा न हो कारण कि, उपवास नित्य है और जो हेमाद्रिने यह लिखा है कि शुद्धके तुल्य शुद्धसे न्यून अधिक द्वादशीयुक्त एकादशी होय तो परली ही सबके मतमें होती है यह भी वैष्णवोंके विषयमें है । और स्मार्तोंकी तो प्रथमही की होती है इसमें कोई विरोध नहीं ॥

हेमाद्रिमते तूच्यते तत्र–"शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः ॥" इत्यष्टादशैकादशीभेदाः ॥ तत्र शुद्धाधिकन्यूनद्वादशिका शुद्धाधि-कसमद्वादशिका च सकामैः पूर्वा, निष्कामैरुत्तरा कार्या। 'प्रथमेहनि सम्पूर्णा' इति पूर्वो-क्तस्कान्दात् । ऊनद्वादशिकायां तु विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यम्। "सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत् ॥ उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः ॥" इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ शुद्धन्यूना शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना विद्धसमा वाधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः ॥ मदनरत्ने तु शुद्धाधिका परा । 'सम्पूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः । अन्या पूर्वा । "शुद्धा यदा समा हीना समा हीनाधिकोत्तरा । एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि ॥" इति स्कान्दात् । शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी। 'न चेदेकादशी विष्णौ' इति नारदोक्तेश्च॥ यत्तु–'अविद्धापि च विद्धा स्यात्' इति पाद्मम् । तच्छुद्धाधिकापरम् ॥

हेमाद्रिके मतमें तौ यह लिखा है कि एकादशीके यह अठारह भेद हैं, वह इस प्रकार हैं शुद्धा विद्धा–यह प्रत्येक न्यून सम और अधिक होनेसे छः भेद हुए फिर द्वादशीसे सम न्यून और अधिक यह तीनप्रकार हुए प्रत्येकके साथ यह तीन मिलानेसे ६×३ = १८ भेद हुए जिसमें शुद्धासे अधिक वा न्यून द्वादशी होतौ सकाम पुरुष पहली और कामनारहित पिछली एकादशी (प्रथमेहनि सम्पूर्णा) इस स्कन्दके वचनसे करे । यदि एकादशीसे न्यून द्वादशी होय तो भगवानके प्रियकरनेवाले भक्तोंको दो व्रत करने चाहिये, कारण कि, वृद्धवसिष्ठ कहते हैं कि, जब सम्पूर्ण एकादशी हो और प्रभातकालमें फिर भी द्वादशीकी हानि हो जाय तो उपवास कैसे करे तो ऐसे स्थलमें नारायणके प्रियकारीको दो उपवास करने चाहिये । और शुद्धसे न्यून, अधिक, वा सम हो तो तथा विद्धसे न्यून विद्धके तुल्य वा अधिक द्वादशीवाली एकादशी सबके मतसे परली ही होती है यह हेमाद्रिका कथन है मदनरत्नमें तो यह लिखा है शुद्धाधिका एकादशी परली ही होती है (सम्पूर्णैकादशी यत्र) इसमें यह वचन प्रमाण है और इससे भिन्न होय तो पहली करनी चाहिये, कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि जब समहीन शुद्धा एका-दशी हो। अथवा समहीन अधिक द्वादशी हो तो उस शुद्ध एकादशीका वैष्णव भी उपवास न करैं शुद्धा

एकादशी उत्तरा द्वादशी, (न चेदेकादशी विष्णौ) इस नारदजीके कथनसे यह विदित है कि, अविद्धाकोभी ऐसे स्थलमें विद्धा जाने, यह पद्मका वचन शुद्धाधिकाके विषयमें जानना चाहिये ॥

यत्तु "सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि। उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम् ॥" इत्यादि तद्वैष्णवपरम्। स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ विद्धन्यूना समद्वादशिका तु मुमुक्षूणां पुत्रवतां च परा, अन्येषां पूर्वा ॥ पुत्रवतोपि पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः ॥ मुमुक्षूणां परा, अन्येषां पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः पराऽन्यैः पूर्वा कार्या "दशमीमिश्रिता पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते। शुद्धवद्द्वादशीं राजन्नोपोष्या मोक्षकांक्षिभिः ॥" इति व्यासोक्तेः। मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव। "सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः। प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यमुपोषणम् ॥" इति पाद्मोक्तेः ॥ विद्धाधिका समद्वादशिका च सर्वेषां पूर्वैव। "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत्। तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥" इति-ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ॥

और जो यह कथन है कि, यदि आगे द्वादशी होय तो सम्पूर्ण एकादशीको छोड़दे, और शुद्ध द्वादशीमेंही उपवास और पारणा करै यह वचन वैष्णवोंके विषयमें है। यह पहलेही कह दिया है स्मार्तोंको पहली होती है, जो एकादशी विद्धासे न्यून द्वादशीके तुल्य हो वह मुक्तिकी इच्छावालोंको और पुत्रवालोंको परली करनी चाहिये, औरोंको पहली करनी चाहिये। मदनरत्नमें लिखा है कि, पुत्रवालेकी भी पहली ही होती है। हेमाद्रिका यह कथन है कि, जो एकादशी विद्धासे न्यून और न्यून द्वादशीवाली है वह सबको करनी चाहिये। मदनरत्नमें कहते हैं मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये। और विद्धाके तुल्य द्वादशीके तुल्य वा जिससे द्वादशी न्यून हो ऐसी एकादशी मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये, व्यासजी कहते हैं यदि द्वादशी घटजाय तो हे राजन् दशमीसे मिली पहली ही शुद्ध द्वादशी है मुक्तिकी इच्छावालोंको उसमें व्रत करना चाहिये. इसमें मोक्षकी इच्छावालोंको ऐसा कहनेसे यह जताया कि, औरोंकी प्रथमकी होती है। कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखाहै कि, सर्वत्र मनुष्य द्वादशीमिश्रित एकादशी करै। प्रभातकालमें हो वा नहो कारण कि, उपवास नित्य है। विद्धसे अधिक और द्वादशीकी समान तौ सबकीही पहली होती है यदि द्वादशी पारणाके दिन एककलाभी न मिलै तौ दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास कर लेना, ऐसा ऋष्यशृंगने कहा है ॥

माधवमते तु—अत्र गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षपापक्षयविष्णुप्रीतिकामैः परा कार्या। गृहस्थेन तु नक्तं कार्यम्। "एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी। उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥" इति कौर्मे दिनक्षये उपवासनिषेधात् ॥ "दशम्यैकादशीविद्धा द्वादशी च क्षयं गता। क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः स्मृतम् ॥" इति वृद्धशातातपोक्तेश्च ॥ गृहिणः पूर्वत्रोपवासः ॥ एकादश्याः शुद्धन्यूनत्वे, शुद्धसमत्वे, वा द्वादश्या न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः ॥ यानि तु "दशम्यनुगता हन्ति द्वादशी द्वादशीफलम्। धर्मापत्यधनायूंषि त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥" इति कौर्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि तानि विहितभिन्नपराणि ॥

अत्र मूलवचनानि तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया ॥ यत्तु कालहेमाद्रौ—" बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा । द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः । 'संदिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत्' । तथा—" विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम् । पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकीः मुने ॥ " इति पाद्मोक्तेश्च वेधसंदेहे ज्योतिर्विदां विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम् ॥ तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना ॥

माधवके मतमें गृहस्थियोंकी पहली संन्यासियोंकी अगली होती है विद्धासे अधिक और द्वादशीसे हीन एकादशी मुक्ति, पापकी नष्टता, विष्णुकी प्रीति देनेवाली है । इन वस्तुओंकी जिसको इच्छा हो वह परली करै गृहस्थियोंको तो नक्तव्रत करना चाहिये, कारण कि, कूर्मपुराण और वृद्धशातातपके यह दो वचन क्रमसे लिखेहैं कि, यदि एकादशी और द्वादशी हो और त्रयोदशी रातके शेषमें होय तो पुत्र पौत्रवाला उपवास न करै इससे उपवासका निषेध दिनके क्षयमें है यदि एकादशी दशमीसे विधी हो और द्वादशी घटी होय तो ऐसे अवसरमें वह द्वादशी क्षीण कहाती है उसीमें गृहस्थीको नक्तव्रत करना लिखाहै । और गृहस्थीको पहलीमें उपवास करना कहाहै, यदि एकादशी शुद्धासे कमती वा तुल्य हो । वा द्वादशी कमती और तुल्यहो तो एकादशी में व्रतकरै और कूर्मपुराणादिके दशमी वेध और त्रयोदशीमें पारणके निषेधादि जो वचनहैं कि, दशमीसे मिश्रित एकादशी और तेरसमें पारणा करनी, द्वादशी एकादशीके पुण्यको और धर्म तथा सन्तानको नष्ट करती है वे जिसका शास्त्रसे विधान नहीं है उनके निषेध हैं, इनके मूलवचन और उनकी व्यवस्था बडे ग्रन्थोंमें जाननी चाहिये, और जो काळहेमाद्रिमें यह लिखाहै कि, जब बहुत वाक्योंके विरोध होनेसे सन्देह हो तो द्वादशीमें व्रत और त्रयोदशीमें पारणा करनी, यह मार्कण्डेयका कथनहै कि, सन्देहके वाक्य हों तो द्वादशीमें उपवास करै और पद्मपुराणका यह वचन है कि, सब विवाद होनेसे द्वादशीमें व्रत करै, और त्रयोदशीमें पारणा करै, हे मुने ! यह मेरी आज्ञाहै, इस पद्मपुराणके वचनसे वेधके सन्देहमें ज्योतिषियोंके विवादमें अगली करनी चाहिये, यह दिखलाया सो यह वैष्णवोंके विषयमें है विस्तारसे अलम् ॥

अथात्रोपयुक्तं किंचिदुच्यते । तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं कार्यम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात् ॥ 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति देवलोक्तेश्च ॥ केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वेद्युरेकभक्तविधानाद्विधिस्पृष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रताङ्गे भोजननिषेधः प्रवर्तते । तेनैकादशीमध्येपि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः ॥ अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः— "अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥ " इति ॥

अब कुछ उपयोगी कहते हैं, दशमीका एकादशीसे योग हो तो दशमीके मध्यमें भोजन करलेना, कारण कि, एकादशीमें भोजन न करै उसमें यह निमित्त है, निषेध तो निवृत्तिरूप कालमात्रकी अपेक्षा रखताहै, ऐसा देवल कहतेहैं, और कोई तो एकादशीके व्रताङ्गत्वके कारण प्रथम दिन भोजनके निषेधकी विधिसे युक्त कालमें भोजनके निषेधका अनवकाश कहतेहैं, इससे काम्यव्रतके अंगमें भोजनका निषेध प्राप्त होताहै, इससे पूर्वदिन एकादशीके मध्यमेंभी भोजन करले यह प्राप्त हुआ, इसमें अधिकारी माधवीयमें कात्यायनके वचनसे कहा है आठवर्षसे अधिक और ८० वर्षतकका मनुष्य एकादशी उपवास दोनों पक्षमें करै ॥

स्त्रीणां भर्तुरनुज्ञया व्रतविधिः ।

भविष्ये–'ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही' इति ॥ यत्तु विष्णुः–"पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥" इति । तद्भर्त्रनुज्ञाविषयमिति प्रागुक्तम् ॥ उपवासासामर्थ्ये तु मार्कण्डेयकौर्मयोः–"एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥" अत्र–'एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतं चरेत्' इत्येकभक्तादिषूपवासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः ॥ संकल्पमंत्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति मदनरत्ने॥तथाऽसामर्थ्ये प्रतिनिधिना कारयेदिति प्रागुक्तम् ॥ व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः–"अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" इति ॥ अथ काम्यव्रतविधिः ॥ लघुनारदीये–"दशम्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत् । गन्धताम्बूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महायशाः ॥ तत्र दशम्यां विधिः कौर्मे–"कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान् । शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसंस्त्रियम् ॥" तथा–"शाकं मांसमसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने । द्यूतमत्यंबुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ॥" मदनरत्ने नारदीये–"अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः । अवनीतलपशयनाः प्रियासंगमवर्जिताः ॥" व्रतघ्नान्याह हेमाद्रौ देवलः–"असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥" अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः–'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति' अत्यये कष्टे॥विष्णुरहस्ये–"गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् । व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम्॥"एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे–"स्तेनहिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् । प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्रयम् ॥ मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोम्बुनिषेवणे । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥" तत्रैव पैठीनसिः–"ताम्बूलचर्वणे स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे । व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावद्धुजिवर्जनम् ॥" इति । कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावपि न दोष इत्यर्थः ॥ संभोग ऋतुकालादन्यत्र । 'रेतःसेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः' इति कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ वसिष्ठः–"उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥" काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्ठाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । विष्णुरहस्ये–" श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति ॥" । निर्णयामृते व्यासः–'वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेप्यौषधं सदा' इति ॥

भविष्यपुराणमें लिखा है ब्रह्मचारी स्त्री और गृहस्थी शुक्ला एकादशीमें व्रत करै और जो विष्णु कहते हैं जो स्त्री पतिके जीवित रहते उपवास कर व्रत करती है वह स्वामीकी आयु हरण करतीहै तथा नरकको जाती है यह स्वामीकी आज्ञाके विना व्रत करनेमें है, ऐसा पहलेही कहचुकेहैं, उपवासके असमर्थ

१व्यासः 'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा ॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्'इतिमयूखः । पैठीनसिः 'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने ॥ पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव च' ॥

निषिद्ध तिथिमें बारह कुल्लेकरले दतौन न करै यह व्यास कहते हैं । वा पत्तेसे मुख शुद्ध करले ।

होनेमें मार्कण्डेय और कूर्मपुराणमें लिखा है, एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास और दान इनसे भी एकादशी व्रत होताहै, इनमें जो मनुष्य एकभक्तसे उपवास व्रत करता है, इसमें उपवास शब्द इस कारण है कि, उसमें उपवासके धर्म करने उचितहैं, इससे उसके प्रतिनिधिमें भी उपवासके सब धर्म होतेहैं और केवल संकल्पमात्रमें उपवासके स्थानमें एकभक्त उच्चारण करै ऐसा मदनरत्नमें लिखाहै । और सामर्थ्य न होनेसे प्रतिनिधिसे करावे यह पहलेही कह चुकेहैं, व्रतके न करनेमें माधवमें कात्यायनके वचनसे प्रायश्चित्त लिखाहै, रविवार अमावस पूर्णिमामें तो रात्रिमें चौदश और अष्टमीको दिनमें और एकादशीको दिन रातमें किसी समय भोजन करै तो चान्द्रायण व्रत करना होताहै । अब काम्यव्रतकी विधि कहते हैं, लघुनारदीयमें लिखा है कि,हे राजन् ! दशमी, एकादशी, द्वादशी तीन दिनतक गन्धसेवन,ताम्बूलका खाना, पुष्पादिधारण और स्त्रीसम्भोग त्यागदे । उसमें दशमीमें कर्तव्य विधि कूर्मपुराणमें लिखी है, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, शहत, पराया अन्न और स्त्री इनको व्रती त्याग दे । तथा शाक, मांस, मसूर, पुनर्भोजन, मैथुन, द्यूत, बहुत जलका पीना यह वैष्णव दशमीको त्यागन करै मदनरत्नमें नारदीयका वचन है सब प्रकारके खारी और लवण यह व्रती न खाय और हविष्यान्नका भोजन करै, भूमिमें शयन करै, प्रियाके संगको वर्जित करै । देवल कहतेहैं वारंवार जलपान, एकही बार ताम्बूल भक्षण दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट होजाता है । अशक्तिमें तो मदनरत्नमें देवल कहते हैं कि, कष्टमें जलमात्रपानसे उपवास नहीं नष्ट होता, विष्णुरहस्यमें लिखा है शरीर और शिरमें उबटन लगाना, ताम्बूल खाना सुगन्ध लगाना तथा और भी निषिद्ध वस्तुओंको व्रतमें व्रतीको त्यागना चाहिये । निर्णयामृतसंग्रहमें इनका प्रायश्चित्त लिखाहै, हिंसक और चोरकी मित्रताई चोरी और हिंसा करनी इनको व्रती मनुष्य त्यागदे यदि करै तो तीन सौ नाम भगवानके जपै । असत्यभाषण दिनमें शयन और वारंवार जलपान अष्टाक्षर मन्त्रको व्रती १०८ वार जपे (ओं नमो नारायणाय) यह अष्टाक्षरमन्त्र है, वहीं पैठीनसी स्मृतिका वचन है, ताम्बूलचर्वण, स्त्रीसंभोग, मांससेवन इनसे जो व्रतलोप न होनेकी इच्छा करे तो कृष्ण एकादशीकी समान भोजनको छोडदे, अर्थात् एकादशीकी समान भोजनके निषेध मात्र परिपालनमें तो ताम्बूलचर्वणादिमें भी दोष नहीं है, और संभोगका निषेध ऋतुमात्रको त्याग करलेना कारण कि, कात्यायन कहते हैं रेतका सींचन ऋतुके विना अपने सुखके निमित्त करनेसे उपवासका लोप करता है, हेमाद्रिमें वसिष्ठका वचन है, उपवास और श्राद्धमें दतोन न करै, दांतोंसे काष्ठका संयोग सात कुलको दग्ध करता है काष्ठके ग्रहणसे मृत्तिका ढेले आदिका निषेध नहीं है, यह हेमाद्रि कहते हैं, विष्णुरहस्यमें लिखा है, श्राद्ध और उपवासके दिन दँतोनको चाबकर सौ गायत्री पढ जलका आचमन करनेसे फिर शुद्ध होता है । निर्णयामृतमें व्यास कहते हैं पारणमें मांस और व्रतके दिन औषधीको कभी न खाय ॥

तत्र श्राद्धनिर्णयः ।

एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन आह--"उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम्" इति ॥

एकादशीमें श्राद्ध आपडे तो माधवीयमें कात्यायनका वचन है कि, उपवास तो नित्य और श्राद्ध नैमित्तिक है तो पितरोंको दिये पदार्थको सूंघकर उपवास करले यदि माता पिताके क्षयाहमें एकादशी आजाय तो पितृ देवतोंका पूजन करके पितरोंके दिये पदार्थको सूंघले ।

हेमाद्र्यादिसर्वनिबन्धेष्वप्येवम् ॥ एतेन एकादशीनिमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ॥ किंच महालये-"स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति" इति श्रुतं षोडशत्वम् । पौषैकादश्यां च मन्वादिश्राद्धं, क्षयाहापरिज्ञाने च तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं बाधितमेव स्यात् ॥ यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति-"अन्नाश्रितानि पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव च । मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः॥" इति ॥ तस्यापि रागप्राप्तभुजिगोचरस्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां महत्साहसमित्यलम् ॥ योपि 'अकृतश्राद्धनिचया जलपिण्डं विना कृताः' इति । लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः स मातापितृभिन्नविषयः । पूर्ववाक्ये तद्ग्रहणात् । निचयः प्रतिग्रहः ॥

हेमाद्रि आदि सब निबन्धोंमें भी यही लिखा है इससे एकादशी निमित्तक श्राद्ध द्वादशीमें करना चाहिये ऐसा कहनेवाले परास्त हुये और महालयमें भी अर्थात् कन्यागतमें भी वह पक्ष सम्पूर्ण सोळह श्राद्धके कारणसे सत्कार योग्य है. इसप्रकार सोलह संख्या सुनीहुई और मन्वादिक श्राद्ध पूषकी एकादशीको और मृत्युदिनके अज्ञातमें उसपक्षकी एकादशीमें श्राद्ध करना, इन सबका बाध होजायगा । यद्यपि स्मृतिचन्द्रिकाकार यह वाक्य पढते हैं कि, एकादशीको भोक्ता और दाताके पाप अन्नमें निवास करते हैं उसमें दाता भोक्ताके पितर बहुत कालतक नरकमें रहते हैं यह वचन अनुरागसे प्राप्त हुए भोजनका निषेधक है, इसको शास्त्रकथित श्राद्धमें माननेवाले मानों बडाही साहस करते हैं, और जो लघुनारदीयमें यह लिखा है कि, एकादशीको व्रती मनुष्य श्राद्धमें प्रतिग्रह न ले, तथा जलपिण्ड न करै यह जो श्राद्धका निषेध है वह माता पिताके भिन्नविषयमें है. कारण कि, पूर्ववाक्यमें माता पिताकाही ग्रहण है ॥

व्रतघ्ननिर्णयः ।

व्रतघ्नान्याह मदनरत्ने देवलः-"सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् । अव्रतघ्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः ॥ स्कान्देपि-"अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥" इदं चातिसंकटविषयम् ॥ नारदीये-"अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनी । मूलं फलं पयस्तोयमुपभोज्यं भवेच्छुभे॥ न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्" इति ॥ अस्यापवादः-"शयने च मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने । नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत् ॥" एते चाविरोधिनो निर्णयाः सर्वव्रतेषु ज्ञेयाः ॥ तत्रैकादश्यां संकल्पः-"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः । उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा वार्येव धारयेत्" इति माधवीये वाराहोक्तेः । मन्त्रस्तु विष्णूक्तः-"एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहमपरेहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत" इति ॥ शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे-"सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत्" ॥ शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ॥ वाराहे-'इत्युच्चार्य्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् ॥' ततस्तज्जलं पिबेत् । "अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम् । उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम्" इति कात्यायनोक्तेः ॥ मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ संकल्प इति माधवः ॥ "दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोस्तदा ॥ विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च तदाचरेत्" इति नारदीयोक्तेः ॥ तत्रैव पूजामभिधाय 'देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती' ॥

मदनरत्नमें लिखे देवलके वाक्यसे व्रतघ्न वर्णन करते हैं कि, सब प्राणियोंसे भय, व्याधि, प्रमाद-गुरुकी आज्ञा यह सब एकबार होनेसेही शास्त्रके अनुसार व्रतको नष्ट नहीं करते हैं । स्कन्दमें कहा है यह आठवस्तु व्रतनाशक नहीं हैं—जल, मूल, फल, दूध, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और औषधि परन्तु अतिसंकट पडनेपर इनका प्रयोग है । नारदीयमें लिखा है कि, हे पार्वति ! रोगी मनुष्यको व्रतमें यह अनुकल्प लिखे हैं, मूल, फल, दूध, थोडा भोजन यह उत्तम है किन्तु भोजनके निमित्त किसीने भी एकादशीको नहीं लिखा है, इसका अपवादभी है कि, मेरे सोने जागने और करवट लेनेमें जो मनुष्य मूल फलका आहार करता है वह मेरे हृदयमें शल्य अर्पण करता है, यह भी आरोग्यतामें जानना और विरोधरहित यह निर्णय सब व्रतोंमें जानने, एकादशीमें इसप्रकार संकल्पहै कि, जलसे पूर्ण उदुम्बर वा ताम्र पात्रको लेकर उत्तरमुख हो व्रतग्रहण करे अथवा जलमात्रही ग्रहण करे, यह माधवीयमें वाराहपुराणका वचन है और विष्णुने इसप्रकार संकल्पका मंत्र कहा है कि, हे भगवन् ! मैं एकादशीमें निराहार रहकर द्वादशीमें भोजन करूंगा. हे पुण्डरीकाक्ष ! आपही मेरी गति हो और शैवादिक तो हेमाद्रिमें सौरपुराणके मतसे कहा है कि, सावित्री अथवा नामसेही संकल्प करे शिवादिकी गायत्री यजुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकमें सब लिखी है. वाराहपुराणमें ऐसा कहाहै कि, फिर विद्वान् इसप्रकार उच्चारण कर पुष्पाञ्जलि समर्पण करे फिर जलपान करे तीनवार अष्टाक्षर मंत्र पढकर और अभिमंत्रित करके उपवासके फलकी इच्छावाला मनुष्य वह जलपान करले ऐसा कात्यायनने कहा है । आधीरातमें वा उदयमें दशमीका वेध होय तो रात्रिमें ही संकल्प करे यह माधव कहते हैं. नारदपुराणमें यह लिखा है यदि आधीरातसे आगे दशमीके संगका दोष होय तो पूजन और संकल्पमें चार प्रहरोंको छोडदेना चाहिये, और दशमी विद्धाके उपवासमें दिनको त्यागकर रात्रिमें सावधानीसे विष्णुका पूजन और संकल्प करे और उसी स्थलमें पूजनको करनेके पश्चात् कहा है कि, व्रती देवताके सन्मुख सावधानीसे जागरण करे ॥

द्वादश्यां निवेदनमन्त्रविधिः ।

द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन—"अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव" इति ॥ नारदीये "ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां ततः ॥ " स्कान्देपि—"कृत्वा चैवोपवासं तु योऽश्नीयाद्द्वादशीदिने । नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ " द्वादश्यां च वर्ज्यान्याह बृहस्पतिः—"दिवानिद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने । क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥ " हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे—"पुनर्भोजनमध्यायो भार आयासमैथुने । उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी ॥ " स्कान्दे—'परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं वितथभाषणम् ॥' वर्जयेदिति शेषः । विष्णुधर्मे—"असंभाष्यान्हि सम्भाष्य तुलस्यतसिकादलम् । आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुध्यति ॥ " बृहन्नारदीये—"रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा । सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् ॥ व्रतादिमध्ये शृणुयाद्यद्येषां ध्वनिमुत्तमः । अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् ॥ " एतद्व्रतं सूतकेपि कार्य्यम् । "सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् " इति विष्णूक्तेः ॥ तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम् ! "सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते" इति मात्स्योक्तेः ॥ रजोदर्शनेपि कार्यम्—'एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टेरजस्यपि ' इति

---

१ श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च ॥ पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृदिति वचनं तु निर्मूलम् ॥ अर्थात्—

श्वशुर; गुरु; मातुल; चाचा;भाईके पुत्र इनके परान्न दोषकारक नहीं है यह वचन निर्मूलहै ।

पुलस्त्योक्तेः ॥ यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः। "शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता। तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां च पारणम्" इति नारदीयोक्तेः ॥ एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः। नित्यव्रते सति सम्भवे कार्याः। "शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम्" इति कात्यायनोक्तेः ॥ अशक्तौ तु माधवीये ब्रह्मवैवर्ते ॥

द्वादशीमें निवेदनका मंत्र कात्यायनने लिखा है—हे केशव! अज्ञानरूपी अंधकारसे अन्धे मेरे इस व्रतके करनेसे प्रसन्न होकर आप मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान कीजिये. नारदीयमें लिखा है कि, शक्तिसे ब्रह्मणोंको भोजन कराय दक्षिणादे, स्कन्दपुराणमें भी लिखा है उपवास करके जो द्वादशीके दिन भोजन करता है और तुलसीमिश्रित नैवेद्य पाता है उसकी अनेक कोटिहत्या दूर होजाती हैं। बृहस्पतिने द्वादशीमें यह वर्जित कियेहैं, दिनमें शयन, परान्नभोजन, पुनर्भोजन, मैथुन, शहत, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, तेल, यह आठवस्तु द्वादशीको वर्जित करनी चाहिये। हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वचन है कि, दूसरी बार भोजन, पढना, बोझ उठाना, परिश्रम करना, मैथुन, दिनमें सोना यह पांच वस्तु उपवासका फल नष्ट करतीहैं स्कन्दमें कहाहै परान्न, काँसीके पात्रमें भोजन, पान, लोभ, असत्यभाषण इनको व्रती त्यागदे। विष्णुधर्ममें लिखा है कि, असम्भाषोंके साथ वार्ता कर तुलसी अलसी पत्र आंवले इनको खाकर शुद्ध होताहै. बृहन्नारदीयमें लिखाहै रजस्वला, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, जूँठन, धोबी, यदि व्रती व्रतादिमें इनकी ध्वनिको श्रवण करले तौ १०८ वेदमाता गायत्रीका जप करै, यह व्रत सूतकमेंभी करना, द्वादशीका व्रत सूतक और मृतक (पातक) में भी न छोड़ना ऐसा विष्णु कहते हैं और सूतकमें छोड़े हुए दानादि सूतकके पश्चात् करने मत्स्यपुराणमें लिखा है मनुष्य सूतकके अन्तमें स्नान कर और जनार्दनका पूजनकर विधिपूर्वक दानदेकर व्रतका फल प्राप्त करताहै. पुलस्त्य कहते हैं एकादशीका व्रत रजोदर्शनमेंभी करना चाहिये। रजोदर्शन होनेपरभी स्त्री एकादशीको भोजन न करै। और जो द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र हो तो शुद्ध एकादशीको छोड़कर उसमेंही व्रत करै। शुक्ला वा कृष्णा एकादशी जो श्रवणनक्षत्रसे युक्त हो तो उसी द्वादशीमें उपवास करके तेरसको पारणा करै ऐसा नारदीयमें कहा है। यह नियम काम्यव्रतोंके जानने और नित्यव्रतमें होसकैं तोभी करने, कारण कि कात्यायन कहते हैं कि, शक्तिमान् मनुष्य पूर्णरूपसे नियम करै और शक्ति न हो तो माधवीयमें ब्रह्मवैवर्तका कथन है ॥

व्रतंकर्तुमशक्तौ निर्णयः।

"इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम्। विशेषानियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः" इति॥ अथाष्टौ महाद्वादश्यः। तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनीसंज्ञा। द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते चेत्सा वञ्जुली ॥ वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा। अग्रे पर्वणः सम्पूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी। पुष्यर्क्षयुता जया। श्रवणयुता विजया। पुनर्वसुयुता जयन्ती। रोहिणीयुता पापनाशिनी। एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत्। अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम्॥ एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः। पार्थक्ये तु शक्तस्योपवासद्वयम्। 'एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्' इति विष्णुरहस्यात् ॥ अशक्तौ तु द्वादश्यामेव। "एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्। पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" इति तत्रैवोक्तेः ॥ यदा त्वल्पा द्वादशी तदोक्तं मात्स्ये-"यदा भवति अल्पापि द्वादशी पारणादिने। उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा ॥" नारदीयेपि-"अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ॥ स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः" इति ॥ संकटे तु

माधवीये देवलः--" संकटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् ॥ अद्भिस्तु पारणां कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत् " इति ॥

संकटे त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ ॥ अत्र केचिदाहुः--अपकर्षवाक्यान्यनाहिताग्निविषयाणि । अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षायोगादिति ॥ द्वादश्यां च प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम् । " द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः " इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णुधर्मोक्तेः । अत्र केचित्संगिरन्ते । यदा भूयसी द्वादशी, तदापि प्रातर्मुहूर्तत्रये पारणं कार्यम् " सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम् " इति वचनात् ॥ अस्मद्गुरवस्तु--बहूनां कर्मकालानां विना कारणं बाधापत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्यामेवापकर्षविधानादपराह्ण एव कार्यम् । प्रातःशब्दस्तु--" सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् " इतिवदपराह्णवाचित्वेऽप्युपपन्नः । न च वाक्यवैयर्थ्यं, पुनर्भोजनसायंपारणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः ॥ प्रमादेन एकादश्युपवासातिक्रमे अपरार्के वाराहे " एकादशी विप्लुता चेद्द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम् " इति ॥ कैश्चित्तु--" विष्णुना चेत् " इति पठितम् ॥ अत्राविरोधिनो नियमाः सर्वव्रतेषु बोद्धव्याः । अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ एकादशीनिर्णयः ॥

यह जानकर एकादशीके दिन व्रतको अवश्य करै यदि विशेष नियम न निभसकै तो अहोरात्रका व्रत छोड़ना चाहिये. अब आठ महाद्वादशी लिखतेहैं, जो द्वादशी शुद्ध अधिक एकादशीसे युक्त हो वह उन्मीलिनी, और जो शुद्धद्वादशीही अधिक होजाय तो वंजुली, जो तीन वारोंको स्पर्श करै वह त्रिस्पृशा, आगे सम्पूर्ण पर्व १२ ही अधिक हो तो पक्षवर्द्धिनी, पुष्यनक्षत्रयुक्त विजया, श्रवणयुक्त विजया पुनर्वसुयुक्त जयन्ती, रोहिणी युक्त पापनाशिनी, जिसको पापक्षयपूर्वक मुक्तिकी अभिलाषा हो इनमें उसको व्रत करना चाहिये इसका मूल हेमाद्रिमें लिखाहै यदि द्वादशी एकादशी एक होजाँय तो उसही दिन उपवास करले और पृथक् होय तो शक्तिअनुसार दोनों व्रत करै. कारण कि, विष्णुरहस्यमें कहा है कि, एकादशीमें उपवास करके द्वादशीमें उपवास करै और शक्ति न होय तो द्वादशीमेंही व्रत करै कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, जो एकादशीको भोजनकर द्वादशीमें उपवास करै वह अवश्यही पूर्व दिनके पुण्यको प्राप्त करता है और द्वादशी थोड़ी हो तब मत्स्यपुराणमें यह कहाहै जो पारणाके दिन थोड़ीभी द्वादशी हो तो प्रभात और मध्याह्नके दोनों कृत्य प्रभातहीमें करले नारद कहते हैं हे ब्राह्मणोत्तम ! यदि अरुणोदयमें थोड़ी द्वादशी हो तो उसी समय स्नान, दान, हवन, पूजन आदि क्रिया करले और संकट होनेपर माधवीयमें देवलका कथनहै यदि कठिन संकट होय तो द्वादशीमें कैसे पारण करै वहां लिखाहै जलसे पारणा करने उपरान्त फिर भोजनका दोष नहीं है, यहां संकटशब्दसे त्रयोदशीमें श्राद्ध प्रदोषादिका ग्रहण करना. इसमें किसीका तो यह कथन है कि, यह अल्प विधायकवाक्य अग्निहोत्रियोंसे भिन्नोंके निमित्त है कारण कि, वेदोक्त होनेसे अग्निहोत्रमें अल्पता नहीं है और पारणा द्वादशीका प्रथम चरण त्यागकर करै । द्वादशीका पहला चरण हरिवासरसंज्ञक है विष्णुभक्तको उसके उपरान्त पारणा करनी चाहिये यह निर्णयामृतमें लिखाहै और मदनरत्नमें विष्णुधर्मकाभी यही कथन है, इसपर कोई कहते हैं जो बहुत द्वादशी हो तब भी प्रभातसमय तीन मुहूर्त्त-तक पारणा करले कारण कि, ऐसे लेखहैं कि, सब उपवासोंकी पारणा प्रभातमें होती हैं, और हमारे गुरुका तो यह कथनहै कि, बहुतसे कर्मोंका एकही समय विना कारण बाध होजायगा, इससे पूर्वमें कहे

वचन थोड़ी द्वादशीमेंही जानकर अल्पके विधानसे अपराह्णमें पारणा करनी चाहिये, और प्रभातका कथन करनेवाला प्रातःशब्द तो इसके तुल्य अपराह्णमें संगत होगा कि, सन्ध्यासमय और प्रभातसमय द्विजातियोंको भोजन करना वेदमें लिखाहै, यदि कोई सन्देह करै कि, वाक्योंकी व्यर्थता होजायगी सो भी नहीं कारण कि, वे वाक्य तो पुनर्भोजन सायंकालकी पारणा वृत्तिके विषयवालेहैं, यदि प्रभातसे एकादशीका उपवास न हुआ हो तो अपरार्कमें वाराहपुराणका कथन है कि, यदि एकादशी छुटगई हो तो द्वादशीमें उपवास करना, और कोई इस वाक्यमें "विष्णुना चेत्" पढतेहैं इसमें सब व्रतोंमें अविरोधके नियम जानने, दूसरे वचन नवरात्रोंमें लिखेंगे यह दिक्मात्र कहा है ॥

इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायामेकादशीनिर्णयः ।

द्वादशीनिर्णयः ।

द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'द्वादशी तु प्रकर्त्तव्या एकादश्या युता प्रभो' इति स्कान्दाच्च ॥

युग्मवाक्यसे द्वादशी पूर्वा करनी चाहिये और स्कन्दपुराणमेंभी लिखा है हे प्रभो ! एकादशीयुक्त द्वादशी करनी चाहिये ॥

त्रयोदशीनिर्णयः ।

त्रयोदशी तु सर्वमते शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोत्थोऽ-

---

१ अत्र प्रदोषव्रतम्--ब्रह्मोत्तरखण्डे--'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्दिवा । घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः । कृतसंध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत्' इति व्रतमभिधाय 'एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्' इति दिनेनाहारकर्तृकं शिवपूजाप्रधानकं व्रतं स्मर्यते ॥ अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तत्रैव पूजा विधानात् । प्रदोषस्त्रिमुहूर्तमित्यभिप्रायः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा 'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशी सहिता मुने' इति सुमन्तूक्तिरिति मयूखकृतः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ, तदव्याप्तौ, साम्येन तदेकदेशास्पर्शे, च उत्तरा संकल्पकाले सत्त्वात् । वैषम्ये तदेकस्पर्शे तदाधिक्यवती ग्राह्येति विवेचनानुसारिणः ॥ इदं च मन्दवारे कृष्णपक्षेऽतिप्रशस्तम् 'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन्कृष्णपक्षे समागतः' इति तत्रैवोक्तेः ॥ आरम्भश्च शनिप्रदोषे कार्यः 'यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता । आरभेत व्रतं तत्र संतानफलसिद्धये' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इति ॥ अर्थात्–

प्रदोषव्रत ब्रह्मोत्तरखण्डमें लिखा है दोनों पक्षकी त्रयोदशीको दिनमें निराहार हो फिर अस्तसे तीन घड़ी पहले स्नान करै । श्वेतवस्त्र पहर वाणीको रोक नियममें तत्पर हो सन्ध्या जपविधि कर शिवका पूजन करै । इसप्रकार व्रत कहकर 'इसप्रकार गिरजापतिकी प्रदोषमें आराधना करके फिर ब्राह्मणोंको जिमाय दक्षिणा दे' इस वचनसे दिनमें अनाहारपूर्वक प्रधान शिवपूजनका व्रत है। इसमें प्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्रहण करनी । प्रदोष तीन मुहूर्तका लेना, दोनों दिनमें प्रदोषकी व्याप्ति अव्याप्ति हो तो पहली करनी मयूखमें सुमन्तुका कथन है हे मुने! त्रयोदशी द्वादशीयुक्त करनी और जो प्रदोष दोनों दिन हो वा दोनों दिन न हो साम्यतासे एक देशमें स्पर्श हो तो संकल्पकालमें होनेसे उत्तरा करनी विषमता तथा एकस्पर्शमें वा अधिकवती होनेसे अधिक लेनी । यह प्रदोष शनि भौमवारका कृष्णपक्षमें हो तो उत्तम है मन्दवारका प्रदोष सब देहधारियोंको दुर्लभ है और कृष्णपक्षका तो अधिकही दुर्लभ है । यह वहीं लिखा है शनि प्रदोषसे इसका आरम्भ करै वहीं लिखा है जो शुक्लात्रयोदशी शनिवारी हो तो सन्तान फलकी सिद्धिके निमित्त उस समय व्रत आरम्भ करै ।

थासितः पश्चात् ' इति दीपिकोक्तेः । 'शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी ' इति माधवाच्च ॥

और त्रयोदशी तो शुक्ल और कृष्णपक्षकी सबके मतमें तेरस पिछली होतीहै कारण कि, दीपिका और माधवके यह वाक्य हैं सबके मतमें उपवासमें शुक्लपक्षकी पहली और कृष्णपक्षकी पिछली होती है ॥

चतुर्दशीनिर्णयः ।

चतुर्दशी सर्वमते कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा ॥ उपवासे तु द्वय्यपि परेति मदनरत्ने ॥

सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहिली शुक्लपक्षकी पिछली उपवास व्रतमें दोनों पक्षकी पिछली चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा मदनरत्नमें कहा है ॥

पूर्णिमानिर्णयः ।

पौर्णमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये । "भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन । वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम् " इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥

पूर्णिमा और अमावास्या यह दोनों तिथि सावित्रीव्रतको छोडकर परली ही लेनी, कारण कि ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है हे मुनिराज ! सावित्रीके श्रेष्ठव्रतको त्यागकर अमावास्या और पूर्णिमा यह पूर्वविद्धा न करनी चाहिये ॥

अमावास्यानिर्णयः ।

अमायां योगविशेषमाहाऽपरार्के शातातपः-"अमावास्यां भवेद्वारो यदा भूमिसुतस्य वै । जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी । चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम् ॥ २ ॥" तत्रैव व्यासः-"सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत् । गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं वै मौनिना कृतम् ॥" हेमाद्रौ बृहन्मनुः-"श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके । यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥" नागदैवतमाश्लेषा । मस्तको मृगशिरः । प्रथमपाद इत्यन्ये । स च सर्वेषाम् ॥ अथेष्टिकालः गोभिलः-"पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याः' इति । उपवासोन्वाधानम् । तत्र मध्याह्ने तत्पूर्वं वा पर्वप्रतिपत्संधौ तद्दिने यागः । "पूर्वाह्णे वाथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते ॥" इति लौगाक्षिवचनात् ॥ तत्र द्वेधा विभागः-"आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः । मध्याह्नस्तु तयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यते" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ मध्याह्नादूर्ध्वं संधौ माधवमते परेऽह्नि यागः "अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते", इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ हेमाद्रिस्त्वपराह्णसंधावपि परदिने प्रतिपच्चतुर्थांशे चन्द्रोदये च सति द्वितीयाद्विष्वत्यन्तक्षये सति पूर्वेद्युर्यागः "पर्वणोंशे द्वितीये तु यष्टव्यं तु द्विजातिभिः । द्वितीयासहितं यस्माद्दूषयंत्याश्वलायनाः " इति ॥

शातातपने अमावास्यामें विशेष योग लिखा है कि, यदि मंगलवारी अमावस होय तो उसदिन गंगाके स्नानमात्रसे सहस्र गोदानका फल होता है जब अमावस सोमवारी और सप्तमी रविवारी हो तो और चतुर्थी मंगलवारी हो तो इनमें मेष और तुलासंक्रांतिकी समान फल मिलता है वही व्यासजी कहते हैं यदि चन्द्रमायुक्त अमवास और जिसमें चन्द्रमा न दीखे ऐसी अमावस सोमवती होय तो मौन होकर स्नान

करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है हेमाद्रिमें बृहन्मनुका कथन है कि, श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, श्लेषा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र होय और रविवारहो वा रविवारी अमा हो तो व्यतीपात होता है कोई कहते हैं इनका प्रथम पाद व्यतीपात होताहै अब इष्टि (यज्ञ) का समय लिखते हैं । गोभिलका वचन है कि, पक्षकी अन्तकी तिथियोंमें उपवास और आदिकी तिथियोंमें यज्ञ करना चाहिये उपवाससे अग्निहोत्रका ग्रहण करना इससे मध्याह्नमें वा उससे पूर्व दोनों पर्व और प्रतिपदाकी संधि होय तो उसमें यज्ञ करना.लौगाक्षि कहते हैं कि, पूर्वाह्नमें वा मध्याह्नमें पर्व समाप्त होजाय तो प्रथमदिन उपवास करके उसीदिन यज्ञ करै, दो प्रकारसे इसका विभाग है, आरंभसे पूर्वाह्न और उसके उपरान्त पराह्न होता है इनकी संधीका नाम मध्याह्न है उसीको आवर्तन कहा है, यह मदनरत्नका कथन है, मध्याह्नसे ऊर्ध्वसन्धिके विषयमें माधवके मतसे परले दिन यज्ञ करना चाहिये, अपराह्न वा रात्रिमें यदि पर्वकी समाप्ति होजाय तो उसदिन उपवास करके अगले दिन यज्ञ करना चाहिये. यह लौगाक्षिका कहना है । हेमाद्रिका तो यह कहना है कि, यदि सन्धि अपराह्नमें हो और प्रतिपदाके चौथे अंशमें चन्द्रोदयहो, और द्वितीया आदिका क्षय हुआ होय तो प्रथम दिनही यज्ञ करै ऐसे वाक्यहैं कि, द्विजाति पर्वके दूसरे अंशमें याग करैं कारण कि, द्वितीयाके सहित यज्ञको आश्वलायन दूषित करते हैं ॥

द्वितीये त्विति कैमुतिकन्यायेन तुर्यांशपरम् । तुरीयेत्विति शूलपाणौ पाठः स्पष्टार्थ एव। तथा--"भूता पञ्चदशी पूर्णा द्वितीया क्षयगामिनी । चरुरिष्टिरमायां स्याद्भूते कव्यादिकी क्रिया" इति बौधायनवचनाच्चेत्यूचिवान् ॥ मदनरत्नेपि--"चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते । श्वोभूते प्रतिपच्चेत्स्यात्पूर्वा तत्रैव कारयेत्" इति ॥ यत्तु माधवः-"यस्तु वाजसनेयी स्यात्तस्य संधिदिनात्पुरा । न क्वाप्यन्वाहितिः किंतुः सदा संधिदिने हि सा " इत्याह । यच्च कालादर्शेप्युक्तम्-"आवर्तनादधःसंधिर्यद्यन्वाधाय तद्दिने । परेद्युरिष्टिरित्याहुर्विप्रा वाजसनेयिनः" इति । यच्च मदनरत्ने-"मध्यंदिनात्स्यादहनीह यस्मिन् प्राक्पर्वणः संधिरियं तृतीया । सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोष्याथ परेद्युरिष्टिः" इति । एतत् पौर्णमासीपरमिति तत्रैव । आवर्तनोर्ध्वमर्वागस्ताद्रात्रौ वा समाप्तौ द्वे, मध्याह्नादर्वाक् समाप्तौ तृतीयेत्यर्थः ॥ तत्कर्कभाष्यदेवजानीअनन्तभाष्यादिसकलतच्छाखीयग्रन्थविरोधाद् वृद्धानादराच्चोपेक्ष्यम् । पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्यायनः-"संधिश्चेत्संगवादूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्तनाद्रवेः । सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ नरैः ॥ " अमायां विशेषमाह बौधायनः "द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत् प्रतिपद्यापराह्निकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्॥"कात्यायनश्च-"यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते । तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्द्विजातये' इति । एतच्च बौधायनवाजसनेयिविषयम् ॥ तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि याग उक्तः ॥

(द्वितीये तु) यह पद इस वचनमें कैमुतिकन्यायसे चौथे अंशका जतानेवालाहै जिससे कि, (तुरीये तु) ऐसा चौथे अंशका बोधक पद शूलपाणिने स्पष्ट लिखाहै । बौधायन कहते हैं पूनो और चौदश पूरी हो और द्वितीयाका क्षय होनेवाला हो तो चरुयज्ञ और अमावास्यामें कव्यकर्म पितरोंके निमित्त करना चाहिये, मदनरत्नमें भी लिखाहै यदि चौदश चार प्रहर हो और अमावस घटजाय और प्रतिपदा अगले दिन हो तो प्रथमदिनही करै और माधव जो कहतेहैं कि, वाजसनेयिशाखावाले पुरुषोंका अग्न्याधान सन्धिदिनसे प्रथम नहीं होता, किन्तु सदा सन्धिके दिनही होता है और जो कालादर्शमें भी यह लिखा है

कि, वाजसनेयिब्राह्मणोंका यह कथनहै कि, जो मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो उस दिन अग्न्याधान करके अगले दिन योग करै और मदनरत्नमें जो लिखा है कि, जिस दिन मध्याह्नसे पहले पर्वकी सन्धि प्राप्त हो, वाजसनेयियोंके मतसे वह तीज खर्विका कहाती है उसदिन उपवास करके अगले दिन इष्टि करै यह तीनोंका कहना पूर्णिमाके विषयमें जानना, और उसी स्थलमें यहभी कहाहै कि, मध्याह्नसे उपरान्त वा अस्तसे प्रथम वा समाप्तिके उपरान्त सन्धि होय और तृतीया मध्याह्नसे प्रथम समाप्त होजाय यह पूर्वोक्त वचनका अर्थ है, यह सब वाक्य कर्कभाष्यदेवजानी श्रीअनन्तभाष्य और उस २ शाखाके सम्पूर्ण ग्रन्थ इनके विरोध और वृद्धोंके अनादरसे उपेक्षा करने योग्यहैं कात्यायनने पूर्णिमामें यह विशेष लिखा है कि, यदि सूर्योदयके उपरान्त और मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो शीघ्रकालकी विधिमें मनुष्योंको वही पूर्णिमा माननी चाहिये बौधायनने अमावास्यामें विशेष लिखाहै यदि प्रतिपदा अपराह्णमें हो और द्वितीया तीन मुहूर्त हो तो चौथेमें अन्वाधान करै, कारण कि, आगे चन्द्रमाका दर्शन होगा, और कात्यायनने भी लिखाहै कि, यदि यागके दिन चन्द्रमाका पश्चिममें दर्शन हो तो व्याहृतियोंसे हवन करके द्विजातियोंको दण्डदे, यह बौधायनवाजसनेयिशाखावालोंके विषयमें कहते हैं और तैत्तिरीयश्रुतिमें तो चन्द्रदर्शनमेंभी याग कहाहै ॥

अमायां चन्द्रदर्शनेपि यागनिर्णयः ।

"एषा वै सुमनानामेष्टिर्यामभ्यजानन् । पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोकेर्धुकं भवति" इति । श्रुत्यन्तरेऽपि–'यदहः पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाँल्लोकानभ्युदेति' इति । इदं बह्वृचापस्तम्बविषयम् ॥ मदनरत्नेप्येवम् । आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहेप्येवम् ॥ अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्राद्व्यवस्थेति तत्त्वम् ॥ 'दूषयन्त्याश्वलायनाः' इति तु पूर्वाह्णसंधिविषयमिति माधवः ॥ शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः– "प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते । पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः ॥" गृह्याग्नेर्नायं नियम इति मदनपारिजातः ॥ एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्र्योंऽशा यागकाल उक्तः ॥ क्वचित् प्रतिपत्तुर्यांशेऽपि यागः–"संधिर्यद्यपराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेहनि । कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेपि न दुष्यति" इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥ एतत्पूर्णिमापरमिति मदनरत्ने ॥ पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्द्धं प्रक्षिप्य संधिर्ज्ञेयः । तदाह माधवः–"वृद्धिः प्रतिपदो यास्ति तदर्धं पर्वणि क्षिपेत् । क्षयस्यार्धं तथा क्षिप्त्वा संधिर्निर्णीयतां सदा" इति ॥ कात्यायनोपि–"परेह्नि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च याः । क्षिप्त्वा तदर्धं पूर्वस्मिन् ह्रासवृद्धी प्रकल्पयेत्" इति ॥ एवं स्मार्तस्थालीपाकेपि ज्ञेयम् ॥ तत्रेष्टिस्थालीपाकान्वाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ, न तु दर्शे ॥

कि, यह सुमना नामहै जिस इष्टिको करते हुए पीछे चन्द्रोदय हो इस यज्ञसे यजमानको निश्चल पुण्य होताहै और श्रुतियोंमें भी कहा है कि, जिस दिन यज्ञके उपरान्त चन्द्रोदय हो उस दिन यज्ञका करनेवाला इन लोकोंको प्राप्त होताहै, यह आपस्तम्बबह्वृचोंके विषयमें कहतेहैं मदनरत्नमेंभी ऐसाही कहाहै आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहमें भी यहीहै इसकारण दोनों पक्षोंकी व्यवस्थाके सिद्धान्तको जो आश्वलायनने दूषित किया है वह पूर्वदिन सन्धि होनेसे जानना यह माधवका कहना है । माधवीय ग्रन्थमें गर्गने शेषपर्वोंके यज्ञमें यह विशेष लिखाहै कि, प्रतिपदा आनेसे पहले २ यदि यज्ञ समाप्त होजाय तो यज्ञके जाननेवाले फिरसे उस सम्पूर्ण इष्टिको करैं. मदनरत्नमें पारिजातका यह कथनहै कि, गृह्य अग्निमें यह नियम नहीं है इसप्रकार पर्वका अन्त्यपाद और प्रतिपदाका पहला, तेरहवां भागभी यज्ञका समय कहाहै और

किसी स्थलमें तो पडवाके प्रथम चतुर्थ भागमें यज्ञ करना कहाहै कारण कि, वृद्धशातातप यह कहतेहैं कि, यदि अपराह्णमें सन्धि होय तो दूसरे दिन प्रतिपदाके चौथे भागमें यज्ञ करनेका दोष नहीं है, मदनरत्नमें लिखाहै कि, यह वाक्य पूर्णिमाविषयक हैं प्रतिपदाकी पर्वमें वृद्धि और क्षयके अर्धभागको मिलाकर सन्धि जाननी, और यही माधवने लिखा है कि, प्रतिपदाकी वृद्धिके आधेको पर्वमें मिलादे और इसी भाँति क्षयके आधेको मिलाकर सदा सन्धिका निर्णय करै, कात्यायन भी कहतेहैं जो घटी परदिनमें न्यून हो वा अधिक हो उसका अर्धभाग करके पर्वमें न्यून वा वृद्धि करले यही विधान स्मार्तोंके स्थालीपाकमें जानना उसमें इष्टि और स्थालीपाक यह दोनों उस पूर्णिमामें प्रारम्भ करने जो अग्न्याधान और गृहप्रवेशके हवनके उपरान्त आई हो । अमावास्यामें न करने ॥

मलमासादावप्यारम्भः ।

यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरुशुक्रास्तादिं भवति तदाप्यारम्भः कार्यः ॥ यानि तु–"उपरागोधिमासश्च यदि प्रथमपर्वणि । तथा मलिम्लुचे पौषे नान्वारम्भणमिष्यते । गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥" इति संग्रहवचनानि ॥ तानि आलस्यादिनातिक्रान्तशुद्धकालप्रारम्भविषयाणि ॥ "नामकर्म च दर्शेष्टिं यथाकालं समाचरेत् । अतिपाते सति तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभे ॥" इत्यपरार्के गर्गवचनादिति प्रयोगपारिजाते। उक्तं चैतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः ॥ कालादर्शे तु–'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति पाठः । याज्ञिकास्तु–"आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा । तस्यामारम्भणीयादीन्न कुर्वीत कदाचन ॥" इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छुद्धकाल एव विभ्रष्टेष्टिं कृत्वारम्भं कुर्यादित्याहुः ॥ कालादर्शे स्मृतिसंग्रहेपि–"आरम्भे दर्शपूर्णेष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठाः पञ्चकर्माद्या मलमासे विवर्जयेत् ॥" इति ॥

जो मलमास पौषमास तथा गुरुशुक्रादिका अस्त हो तो ऐसे समयमें भी आरंभ करदे, और जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण मलमास यह प्रथम पर्वमें हो वा अधिकमास पौष गुरु और शुक्रका अस्त होय तो प्रारंभ न करना यह संग्रहके वचन हैं, यह उस विषयमें जानने चाहिये जब आलस्यसे शुद्ध काल बीत गया हो तो अशुद्धमें प्रारंभ न करके शुद्धमें करे, अपरार्कमें गर्ग यह कहते हैं नामकर्म अमावस्याकी इष्टि यह शुद्धकालमें करै और यदि ऐसे कालमें न होसके तो किसी उत्तम मास और पवित्र नक्षत्रमें प्रारंभ करै । प्रयोगपारिजात और प्रयोगरत्नमें भट्टभी ऐसा ही कहते हैं । कालादर्शमें तो नामकर्म और जातकर्म यह दो पाठ हैं और याज्ञिक तो यह लिखते हैं कि, जो पूर्णिमा अग्न्याधानके उपरान्त मलमासमें होय उसमें किसी प्रकारके यज्ञकार्य आरंभ न करै, त्रिकाण्डमण्डनके वचनसे शुद्धकालमें ही नष्ट यज्ञको प्रारंभ करना चाहिये, कालादर्शमें स्मृतिसंग्रहका वचन है कि, अमावस पूर्णिमाका यज्ञ प्रथम अग्निहोत्र और प्रतिष्ठा पंचकर्मादिको मलमासमें त्याग देना चाहिये ॥

विकृतीष्टिनिर्णयः ।

अथ विकृतीष्टिः । तत्रापस्तम्बः–'यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा' इति ॥ अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेपि सद्यस्कालता विधेया । तृतीयायां साङ्गत्वेनोक्तेः ॥ अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यां तदन्त्यक्षणो गृह्यते । तेन तद्वत्यहोरात्रे इत्यर्थमाह रामाण्डरः ॥ माधवोपि–'इष्ट्यादिविकृतिः सर्वा पर्वण्येवेतिनिर्णयः' इति । अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः कात्यायनश्च–"आवर्तनात् प्राग्यदि पर्व-

संधिः कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः । तदैव यागः परतो यदि स्यात्तस्मिन्विकृत्या प्रकृतेः परेद्युः ॥ " इति ॥ धूर्तस्वाम्यादयोप्येवमाहुः । 'यदीष्ट्येति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनात् प्राक् संधौ संधिमभितो यजेत' इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात् प्रकृत्यन्तरप्रतिपदि विकृत्ययोगात् पूर्वेद्युर्विकृतिरित्युक्तं तन्त्ररत्ने पार्थसारथिना यद्यपि–'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्ते स्यात् ' इत्यापस्तम्बेनोक्तम् ॥ तथापि हेतुवादेन श्रुतिमूलत्वाभावात् 'अङ्गं वा समभिव्याहारात् ' इतिवदप्रामाण्यमिति तदाशयः ॥ आग्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ अन्वारम्भणीया तु चतुर्दश्यां कार्येति हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये ॥ अन्येषां पर्वण्येव ॥ पशौ सोमे च कालान्तरमप्याह बौधायनः– 'अमावास्येन वा हविषेष्ट्वा नक्षत्रे च ' इति ॥ शुक्लपक्षे कृत्तिकादिविशाखान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी व्याचख्यौ ॥

अब विकृतियज्ञका वर्णन करते हैं इसमें आपस्तम्ब कहते हैं कि, जो मनुष्य प्रधान यज्ञकी सिद्धिके निमित्त इष्टि अग्नीषोमीयपशु वा सोमयज्ञ करना चाहे उसे अमावस्या और पूर्णिमामें करना चाहिये इसमें प्रकृतिका समय सिद्धभी था, परन्तु शीघ्रकालमें करनी यह सांगत्यने तृतीयामें कहा है यहां पूर्णिमा और अमावसशब्दोंसे इनके अन्त्यका क्षण ग्रहण करना, इससे अन्त्यक्षणवाले अहोरात्रमें करना यह अर्थ रामाण्डरने लिखा है और माधव भी यह कहतेहैं कि, यह निर्णय है कि, इष्टि आदि सब विकृति पर्वमें ही होती हैं यह निर्णय है। इसमें विशेष त्रिकाण्डमण्डन और कात्यायनने कहा है कि, यदि पर्वकी संधि मध्याह्नसे पहले की हो तो उस दिन पहले विकृतिकी प्रकृतिको करके पीछेसे यज्ञ होता है, उसदिन विकृतिसे दूसरे दिनमें विकृतिकी प्राप्ति होसकतीहै इसी प्रकार धूर्तस्वामी आदिभी कहतेहैं। (यदीष्ट्या) इस वाक्यसे पर्वकालमें अंगसहित विकृतिकोही होनेसे मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो यज्ञ दोनों दिन करना इस वाक्यसे प्रकृतिकी पूर्तिका प्रतिपदाको नियमहै, यदि प्रकृतिके पीछे प्रतिपदा आवे तो विकृति नहीं होसकती, तन्त्ररत्नमें पार्थसारथि यह कहतेहैं कि, पहले दिन विकृति होती है यद्यपि प्रकृतिको पहले होनेसे अपूर्व अन्तमें होताहै यह आपस्तम्ब लिखतेहैं तथापि हेतुवादसे यह वार्ता श्रुतिप्रमाण न होनेसे जिस प्रकार असमभिव्याहार होनेसे अंगको अप्रमाणताहै इसी प्रकार यहभी अप्रमाण होजायगा यह उसका आशयहै, विशेष आग्रयण यज्ञमें लिखेंगे और अन्वारम्भणयाग तो चतुर्दशीमें करना, यह वार्ता हिरण्यकेशिवृत्ति और मातृदत्तीयमें लिखी है औरोंके मतमें यहभी पर्वमेंही करना, बौधायन पशु और सोमयाग अन्यसमयमेंभी कहतेहैं कि, अमावस्याको हविष इष्टिसे नक्षत्रमें करै और शुक्लपक्षमें कृतिका आदि विशाखातक देवनक्षत्रोंमें करै केशवस्वामीने ऐसी व्याख्या की है ॥

चातुर्मास्येष्वपि इष्ट्यारम्भनिर्णयः।

चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्यारम्भः ॥ यावज्जीवत्सांवत्सरप्रयोगयोस्तु फाल्गुन्यां चैत्र्यां वारम्भः ॥ पशौ तु विशेषमाह कात्यायनः–"अर्धादह्नो भवति नियतं पर्वसंधिः परस्तात्कृत्वा तस्मिन्नहनि तु पशुं सद्य एव द्व्यहं वा । आरभ्याथ प्रकृतिरथ चेत्पर्वसंधिः पुरस्तात्कृत्वा तस्मिन्प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य एव ॥ " अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेण सवनीयेन वा समानतन्त्रो वा कार्य इति त्रिकाण्डमण्डनः॥ सोमे त्वाहापस्तम्बः–"अमावास्याया दीक्षायजनीये वामावास्यायां यजनीये वा सुत्यमहः, पौर्णमास्या दीक्षायजनीये वा पौर्णमास्यां यजनीये वा सुत्यमहः ॥" इति ॥

लाट्यायनसूत्रेपि–'पूर्वपक्षस्य प्रथमेहनि दीक्षेत दृष्ट्वा वा नक्षत्रयोगे च' इति ॥ पूर्वपक्षः शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगे चेति।अयमर्थः–'चैत्र्यादिपूर्णिमायाश्चित्रानक्षत्रयोगे दीक्षेत'इति ॥

चातुर्मास्यमेंभी कर्मानुसार द्वादश दिनतक नक्षत्रोंमेंभी प्रारंभ करै, यदि जीवनपर्यन्त वा एकवर्षका प्रयोग होय तो फाल्गुन और चैत्रकी अमावस्याको प्रारम्भ करना चाहिये, अग्नीषोमीय पशुयागमें कात्यायनने विशेष लिखा है कि, यदि नियमसे आयेदिनसे आगे पर्वकी संधि हो; तो उसमें उसीकालमें वा दो दिनतक पशुयाग आरंभ करके प्रकृतिको निष्पादन करै यदि मध्याह्नसे प्रथमपर्वकी संधि होय तो उसी दिन प्रकृतिको निष्पादन करै सवही पशुयाग करै त्रिकाण्डमण्डन कहतेहैं कि, अधिकार पशुयागको तो अग्नीषोमीयके वा सवनीयके संग करै वा एकसाथही करे सोमयागमें तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि, अमावस्याको दीक्षाले, और अमावस्यामें वा यज्ञके दिन स्तुतिका दिन होता है लाट्यायनसूत्रमें भी लिखा है कि, नक्षत्रके योगको देखकर वा शुक्लपक्षके प्रथम दिनमें दीक्षा ले, और चैत्र पूर्णिमाकी चित्रादि नक्षत्रके योगमें दीक्षा लेनी ॥

आधानकालनिर्णयः ।

आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्व नक्तं 'गार्हपत्यमादधीत' इत्यादिकर्मकालव्यापि ग्राह्यम् ॥ दिनद्वये तत्त्वे परं ग्राह्यम् । संकल्पस्य पर्वणि लाभात् । पूर्वत्र नक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् ॥ यत्र त्रीणि सन्निपतितान्यृतुर्नक्षत्रं च पर्व तत्समृद्धं 'विप्रतिषेधे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्यकेशिसूत्रात् ॥ ऋतुः'वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिः ॥ रेणुकारिकायां तु "माघादिपञ्चमासेषु श्रावणे वाश्विने तथा । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथ कारयेत् ॥" इत्युक्तम् ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे–'कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वोत्तरापूर्वाषाढोत्तराषाढाहस्तचित्राविशाखाऽनुराधाश्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति ॥ सोमपूर्वाधाने विशेषमाहापस्तम्बः–'सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो नर्तून्सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्' इति ॥ अत्र प्रकरणादाधानकालबाधः । तेन सोमस्य वसंतकालता न बाध्यत इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् ॥ तन्त्ररत्ने वार्तिके च–'ते वा एते उभये अपहतपाप्मानो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्य एषां पाप्मनोपहन्ता । यदेवैनं कदाचन यज्ञमुपनमेदथादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं दैवं दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमृतुत्रयं सोमाधाने शतपथे विशिष्य विहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्तरेपि–'नर्तून्सूर्क्षेद्' इत्यत्र सोमकालबाध एव । आधानकालबाधस्य–'यदेवैनं श्रद्धोपनमेत्तदादधीत' इत्यस्यां शाखायां वाक्यान्तरेणासिद्धत्वात्सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तम् ॥

आधान तो पर्व वा नक्षत्रोंमें भी लिखा है इसमें पर्व नक्तको उसेही माने गार्हपत्य अग्निका आधान करै इस आदिकर्मकालका व्यापीहो जो दोनों दिन होय तो परदिनमें माननी चाहिये, कारण कि, पर्वमें संकल्पका लाभ होगा, और यदि प्रथमही संकल्पका योग होय तो उसकोही माने और जहां ऋतु नक्षत्र पर्व यह तीनों प्राप्त होजांय वह श्रेष्ठ है विरोधमें ऋतु नक्षत्रका बल विचारकर कार्य करै हिरण्यकेशिसूत्रका कथन है कि, ऋतु वह है कि, वसन्तमें ब्राह्मण अग्न्याधान करै इत्यादि और रेणुकारिकामें यह लिखा है कि, माघआदि पांच महीने श्रावण आश्विन और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें अग्न्याधान करै पर इसमें प्रमाण खोजना चाहिये, आपस्तम्बमें यह आधानके नक्षत्र लिखेहैं कि, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण और उत्तरा भाद्रपदा यह नक्षत्रहैं ।

और आपस्तम्बने सोमपूर्वक आधानमें विशेष लिखा है कि, सोमयागकर्ताको आधानमें ऋतु, और नक्षत्रोंके पूछनेकी आवश्यकता नहीं यहां प्रकरणसे आधानकालका बाध प्राप्तहै इससे सोमको वसन्तकालका बाध नहीं है यह वार्ता रुद्रदत्तवृत्ति और नारायणवृत्तिमें कही है तन्त्ररत्नवार्त्तिकमें भी लिखाहै यह दोनों उत्तरायण दक्षिणायन पापरहित ऋतुहैं यह उदय होताहुआ सूर्य इनका पाप दूर करनेवाला है जो इनमें कभी यज्ञ करै और आधान करै इस प्रकार उत्तर नारायणरूप दैव और दक्षिणायनरूप पितृकार्य यह दोनों और तीनों ऋतु सोमाधानमें शतपथब्राह्मणने विशेष लिखीहैं, सो एकवाक्यता होनेसे शाखान्तरमें भी ऋतु और नक्षत्रको न देखे यह सोमकालका बाधही है, आधानके कालका बाध यह है कि जब यह श्रद्धासे युक्तहो तब आधानकरै, इस शाखामें वाक्यान्तरसे सिद्ध होनेसे यह सोमकालके बाधके निमित्तही है ऐसा कहाहै ॥

धूर्तस्वामी तु-'सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि न सूर्क्षेत्' इति लिखनादुभयकालबाधं मन्यते ॥ श्रीरामाण्डारस्तु-'कालान्तरविधानं वा सर्वकालाऽनादरो वा' इति पक्षद्वयमुक्तवान् । तत्राद्ये कृत्तिकादिकालान्तरस्य यथाधाने वसन्ताद्यबाधेन विधानम् । तथा-'सोमेप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसंनिपाते यज्ञकालानादेशः' इति छन्दोगसूत्रोक्तोदगयनबाधेन सोमाभिसंधिरूपकालान्तरविधानादुदगयनं त्वपेक्षत इत्युक्तम् ॥ द्वितियपक्षे तु 'यदैवैनं यज्ञ उपनमेत्' इति सर्वकालानादर उक्तः इति भारद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य च 'विश्वजित्सर्वपृष्ठः' इतिवद्वयोरप्रयोगात् सर्वकालबाध इति ॥ तेन दक्षिणायनेपि भवतीत्युक्तम् ॥ षड्गुरुभाष्ये देवत्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्वपि ऋतुषु भवतीत्युक्तमिति दिक् ॥

धूर्तस्वामीका तो यह लिखनाहै कि, सोमकी जो ऋतु है उसकीभी परीक्षा न करै इस लिखनेसे दोनों कालका बाध मानतेहैं, श्रीरामाण्डार तो दूसरे कालकी विधि वा समयोंका अनादर मानना इन दोपक्षोंको कहतेहैं, उनमें प्रथम पक्षमें कृत्तिका आदि समयान्तरका विधान अग्न्याधानमें वसन्तादिके बाध विना होताहै, इसी प्रकार सोमयागमेंभी उत्तरायण पूर्वपक्ष पुण्याह इन सबके संयोगमें पुण्यसमय वहां होता है जिस स्थलमें कोई विशेष विधान न हो इस प्रकार छान्दोग्यसूत्रके लिखे हुए उदगयन अर्थात् उत्तरायण सोमयज्ञके प्रारंभरूप कालान्तरके विधानसे उत्तरायणकी तो अपेक्षा होती है इस प्रकार लिखाहै, दूसरे पक्षमें जब कालान्तरमें यजमानको यागप्राप्ति हो तभी और सबसमयोंका अनादर जानना, इस प्रकार भारद्वाजके सूत्रानुसार सर्वशब्दको (विश्वजित् सर्वपृष्ठ) विश्वजित यज्ञ सबसे अधिक है इसके तुल्य दोनों प्रयोग न होनेसे सबकालका बाध प्राप्त होताहै, इससे यह जताया कि, दक्षिणायनमेंभी यज्ञ होता है षड्गुरुभाष्य देवत्रातभाष्य, और तन्त्ररत्नमें लिखा-है कि, छहों ऋतुओंमें यज्ञ होताहै.यही संक्षेपसे मार्ग कहा ॥

दर्शश्राद्धकालः ।

श्राद्धे त्वमावास्या त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशे योऽपराह्णभागस्तद्व्यापिनी साग्निकैर्ग्राह्या । "पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । वासरस्य तृतीयेंशे नातिसंध्यासमीपतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः ॥ "दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम् । अपराह्णे पितॄणां च तत्र दानं प्रशस्यते ॥" इति शातातपोक्तेश्च ॥ दिनद्वये तत्र सत्त्वे सर्वापराह्णव्यापी दर्शो ग्राह्यः ॥ 'यद्युभयेद्युरेष विहितः सर्वापराह्णस्थितः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यत्तु कार्ष्णाजिनिः-"भूतविद्धाममावस्यां मोहादज्ञानतोपि वा । श्राद्ध-

कर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते ॥ " इति । तदपराह्णे चतुर्दशीवेधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः ॥ अपराह्णव्याप्तिपरमिति माधवः ॥ 'दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेंऽशतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वा' इति हेमाद्रिः । "यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत् । अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ " इति कात्यायनोक्तेः ॥ चतुर्दश्याश्चतुर्थं यामं दर्शः पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः ॥ क्षीयमाणा परदिनेऽपराह्णव्यापिनी नेत्यर्थः ॥ व्यतिरेकमाह–"वर्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि । यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ " ततः श्राद्धं च ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौ तिथिवृद्धौ च हारीतः–"त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा खर्वा च बह्वृचैः । कुहूरध्वर्युभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः ॥ " त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेत्यर्थः ॥

श्राद्धमें इस प्रकार अमावस्याका ग्रहण है कि, एक दिनके तीन विभाग करके तीसरे भागके अपराह्ण भागमें व्याप्त होनेवाली अमावस ग्रहण करनी वही अग्निहोत्रियोंको ग्रहण करनी चाहिये, कात्यायन लिखते हैं कि, सपिण्डश्राद्ध दिनके तृतीयभाग अमावस्यामें करना उत्तम है और जब सन्ध्यासमय बहुत निकट आगया हो तो न करै, शातातप कहते हैं अमावसके श्राद्धकोही पार्वण कहते हैं उसके अपराह्णमें पितरोंको दिया दान अति श्रेष्ठ है । जो दोनों दिन अपराह्ण होय तो वह ग्रहण करनी जो सम्पूर्ण अपराह्णव्यापिनी हो दीपिकामें कहा है कि, दोनों दिन श्राद्धकी विधि प्राप्त होतो सब अपराह्णमें स्थितको ग्रहण करै और कार्ष्णाजिन यह कहतेहैं कि, जो मनुष्य मोह वा अज्ञानसे चतुर्दशीविद्धा अमावास्याको करते हैं उनकी आयु क्षीण होतीहै यह वार्ता अपराह्णमें चतुर्दशीके वेध होनेपर जानना, यह श्राद्धहेमाद्रिका कथन है । माधव कहते हैं जो अपराह्णव्यापिनी होय तो मानै जो दोनों दिन अपराह्णमें व्याप्त नहो अथवा किसी अपराह्णके भागमें वर्तती हो अथवा तिथिका क्षय हुआ हो तो प्रथमहीकी करनी. यह हेमाद्रिका कथन है । कारण कि, कात्यायन कहते हैं जिसदिन चौदसके चतुर्थ पहरको अमावस्या पूर्णकरदे और अमावस अगले दिन अपराह्णमें न हो क्षीण होतो चतुर्दशीकोही श्राद्ध करलेना, इसका अभाव लिखाहै कि, जो अगले दिनमें तीनपहर अथवा अधिक पहरतक बढती हुई अमावास्याको देखै तो पितृयज्ञ होता है जो दोनों दिन पराह्णव्यापिनी होय वा तिथिकी वृद्धि होय तो हारीत यह कहते हैं कि, चन्द्रकलायुक्त अमावसके तीन मुहूर्त होनेपर भी बह्वृचोंको पहली करनी चाहिये, और जिसमें चन्द्रकला नहो उसको अध्वर्यु करै, और सामवेदी इच्छानुसार चाहै जिसे करै जो पहले दिन तीन मुहूर्तपर्यन्त न होतो न करै ॥

पिण्डपितृयज्ञः ।

पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युः कार्यः 'पूर्वो वाङ्गत्वात् पिण्डपितृयज्ञः 'इति तत्सूत्रात् ॥ व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैः पूर्वएवदर्शात् पिण्डपितृयज्ञो, न पश्चात् ।कुतः अङ्गत्वात् । तथा च श्रुतिः–"तस्मात्पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान्यजन्ते " इति । 'पूर्वेद्युः पितृभ्यो यज्ञं निपृणीय प्रातर्देवेभ्यः प्रतनुते ' इति च तेन तन्मते अङ्गमेवासौ तदुक्तम्–"अङ्गं वासमभिव्याहारात् " इति । तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पिण्डपितृयज्ञ इति ॥ श्रीअनन्तभाष्ये तु–'परेद्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र द्वेधाप्याचारो दृश्यते ॥ आपस्तम्बानां तु परदिने मुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः । तदाह आपस्तम्बः–"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते " इति ॥ अस्य रुद्रदत्तीया व्याख्या पिण्डैर्युक्तः पितृयज्ञः पिण्डपितृयज्ञः स च कर्मान्तरं न तु दर्शशेषः । यथा वक्ष्यति–'पितृयज्ञः स्वकालविधानादनङ्गं स्यात् ' इति । 'तं च यदह-

श्चन्द्रमसं न पश्यति पश्चद्दर्श्यां प्रतिपदि वा तदहः कुरुते । यदहस्तयोः संधिस्तदहरित्यर्थः ' इति ॥ रामाण्डारोप्याह—'पिण्डपितृयज्ञस्तु पर्वसंधिमदहोरात्रापराह्ने ' इति ॥ अतः पर्वसंधिदिने पितृयज्ञः ॥ शतपथश्रुतिरपि—"यदैवैष नापुरस्तान्न पश्चाद्दृश्यतेथ पितृभ्यो ददाति " इति ॥ पर्वसन्धिदिने हि पूर्वतः पश्चाद्वा चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः॥ सत्याषाढोपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य 'दृश्यमाने तूपोष्य श्वोभूते यजते ' इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु अमावास्याशब्दस्तिथिवचन एव । पूर्वोक्तापस्तम्बसूत्रे यदुक्तं न पश्यन्ति इति तत्र क्षयोभिप्रेतः । अतश्चतुर्दश्यां चन्द्रमसश्च क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शे पितृयज्ञः ' पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रेक्षयेऽग्निमान् ' इति मनूक्तेः ॥ "यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः। तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ " इति । यदुक्तं 'दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया' इति च कात्यायनोक्तेः । 'दृश्यमानेप्येके ' इति गोभिलोक्तेः ॥ "तस्यां सन्ध्यागतः सोमो मृणालमिव दृश्यते।अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम्॥"इति हारीतोक्तेश्च।चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन-"अष्टमेंशे चतुर्दश्याःक्षीणो भवति चंद्रमाः। अमावास्याष्टमेंशे तु पुनः किल भवेदणुः॥" इति ॥ तेन पूर्वेद्युरेव पितृयज्ञ इत्यूचिवान् ॥

कात्यायन महर्षिने पिण्डपितृयज्ञ यागदिनसे पहले करना लिखा है यह उनका सूत्र है कि, यज्ञाङ्ग होनेसे पिण्डपितृयज्ञको प्रथम करना चाहिये, कर्काचार्यने इस प्रकार इसकी व्याख्या की है कि, पिण्डपितृयज्ञ अंग होनेसे अमावस्यासे पहले करै पीछे न करै श्रुतिहै कि, पहले दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करना दूसरे दिन देवताओंके निमित्त, प्रथम दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करके दूसरे दिन प्रभातमें देवताओंके निमित्त करै, इस कथनसे उनके मतमें पितृयज्ञ देवयज्ञका अंगही विदित होता है, यही लिखा भी है कि, समभिव्याहारके कारण प्रथम अंगकोही करना चाहिये, इससे कर्काचार्यके मतमें चतुर्दशीसे युक्त अमावास्याको पिण्डपितृयज्ञ होना चाहिये, श्री अनन्तभाष्यमें लिखाहै कि, पहले दिन करै, लोकमें दोनों प्रकारकाही आचार देखा जाताहै और आपस्तम्बोंके मतमें यदि दूसरे दिन अमावस मुहूर्तमात्र होतो भी उसी दिन पितृयाग होताहै । वह कहतेहैं जब अमावसमें चन्द्रमा न हो तब उस दिन पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये, इसपर जो रुद्रदत्तने व्याख्या की है कि, जो पितृयज्ञ पिण्डोंसे युक्त होनेसे पिण्डपितृयज्ञ कहाता है यह कर्म दूसरा है कुछ अमावस्याका शेष नहीं है यही आगे कहेंगे, स्वकालमें अनुष्ठान करनेसे अमावस्याके श्राद्धका पितृयज्ञ अंग नहीं है जिस दिन चन्द्रमाको पूर्णिमा वा प्रतिपदामें न देखे उसी दिन करे तात्पर्य यह है कि, जब इन दोनोंकी संधि होय तब करै श्रीरामाण्डारभी कहते हैं कि, पिण्डपितृयज्ञ भी पर्वकी संधिवाले अहोरात्रके अपराह्णमें होता है, इससे पितृयज्ञ पर्वकी संधिके दिन होता है, शतपथब्राह्मणकी श्रुति है कि, यजमान जब पर्वकी संधिके दिनसे पहले वा पीछे दिनमें चन्द्रमा न देखे तब पितरोंके निमित्त दे अर्थात् यज्ञ करे पितृयज्ञके प्रकरणमें सत्याषाढ कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते हुए चतुर्दशीको उपवास करके फिर दूसरे दिन प्रभातमें याग करै, हेमाद्रितो यह लिखते हैं कि, अमावस्या शब्दका यहां तिथि अर्थ है और पूर्वोक्त आपस्तम्बमें जहां लिखा है कि, जब चन्द्रमा न दीखे वहां चन्द्रमाका क्षय लेना, इस कारण चन्द्रमाके क्षीण होनेसे चतुर्दशीको भी चतुर्दशीयुक्त अमावसको भी पितृयज्ञ करना चाहिये अग्निहोत्री ब्राह्मण चन्द्रमाके क्षीण होनेमें पितृयज्ञ करै फिर अन्यकर्म करै यह मनु कहते हैं और यह जो कहा है कि, जब चन्द्रमा दर्शन न दे और क्षीणचन्द्रमा हो तब यज्ञ करै यह सब क्षयकी अपेक्षासे जानना, और यह जो कहा कि, चन्द्रमाके दर्शन होनेसे उपवास करके चतुर्थीकी अपेक्षासे समझना यही कात्यायनने लिखा है कोई कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते भी पितृयाग होता है यह गोभिलजीने लिखा है,

हारीत महर्षि कहते हैं कि, संध्यासमय जिस तिथिको चन्द्रमा कमलतन्तुके समान दीखे उसके अपराह्णमें क्षय होता है उसमें अवश्य पिण्डदान करै, कात्यायनने चन्द्रमाके क्षयका यह समय कहा है कि चौदशके अष्टम भागमें चन्द्रमा क्षीण होता है और अमावस्याके आठवें भागमें अणु होजाता है इससे पिण्डपितृयज्ञ प्रथम दिनही करना चाहिये ॥

कर्काचार्यैरपि—'अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम्' इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः 'तस्मिन् क्षीणे ददाति' इति श्रुतेः ॥ अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्सिद्धः ॥ तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैरनभ्युपगमात्कातीयबौधायनादिविषयम् ॥ आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः ॥ तथा च सूत्रम्—'अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः' इति ॥ अत्र नारायणवृत्तिः—अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः संधिवचनोप्यत्रापराह्णशब्दसमन्वयात्तद्वत्यहोरात्रे वर्तते । तस्यापराह्णेऽह्नश्चतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः । औपवसथ्ययजनीये वाहनि ॥ यदा त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदौपवसथ्ये एवाह्नि क्रियत इति ॥ अत एव—"मुहूर्त्तमप्यमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भवेत् । तद्दत्तमक्षयं ज्ञेयं पर्वशेषं तु पूर्ववत् ॥" इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञपरमुक्तं प्रयोगपारिजाते । अयं च स्मार्ताग्निमता संपूर्णे दर्शे श्राद्धव्यतिषङ्गेण कार्यः । व्यतिषङ्गोनामोभयोः सहानुष्ठानम् । एतच्च 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमद्धृत्य' इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम् ॥ खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः—'पूर्वेह्नि पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धं कृत्वा परेह्नि केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः' ॥ वृत्तिकृता तु—"अन्वाष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु—'स्थालीपाकादुद्धृत्याग्नौकरणम्' इत्युक्तेर्दर्शश्राद्धस्थालीपाको नियत इति गम्यते ॥ स्थालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिषङ्गः प्रसिद्धः प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्राद्धादेरपि व्यतिषङ्गः उक्तः किमुत दर्शश्राद्धस्य न्यायविदस्त्वाहुः । सूत्रस्य वृत्तेश्च संपूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवलं श्राद्धं परदिने च केवलः पितृयज्ञः कार्यः ॥ अतएवोक्तं वृत्तिकृता नात्र पूर्वस्थालीपाकश्चोद्यते सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गादिति ॥ प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव ॥ पूर्वदिने च श्राद्धेग्नौकरणमेव न पाणिहोमः । "चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥" इति परिशिष्टे नियमात् ॥ न च लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः । 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुयात्' इति निषेधात् ॥ मैवम् 'श्राद्धस्य गृहत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा कर्त्तव्यत्वात्' तस्मात् पूर्वेद्युः केवलं श्राद्धं न व्यतिषङ्गः ॥ इदमेव च युक्तम् आहिताग्निना तु सर्वाधानिनार्धाधानिना वा सम्पूर्णे खण्डे वा दर्शे श्रौताग्नौ पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो, न तु दर्शश्राद्धव्यतिषङ्गेणेति विस्तरभीतेर्विरमामः ॥

कर्काचार्यने भी अमावस्याके अपराह्णमें चन्द्रमाके न दीखनेपर पिण्डपितृयज्ञ करना कहा है और चन्द्रमाके न दीखनेपर ही कात्यायनसूत्रमें भी क्षय लिखा है कि, चन्द्रमाके क्षीण होनेपर देना. ऐसी श्रुति है इस कारण उनके मतमें चतुर्दशीयुक्त अमावसके होनेमें पितृयज्ञ होनेपर परदिनमें यज्ञ सिद्ध है सो यह सबसे उत्कृष्टभी हेमाद्रि और कर्कादिका व्याख्यान आपस्तम्बोंके न माननेसे कातीय और बौधायनादिके निमित्त जानना और आश्वलायनोंका भी पिण्डपितृयज्ञ पर्वके शेषमें होताहै ऐसाही सूत्र है कि, अमावस्याको अपराह्णमें

पिण्डपितृयज्ञ करना, इसपर नारायणीवृति है कि, अमावसशब्द प्रतिपदा और पंचदशीकी संधिका कहनेवालाभी अपराह्नके मेलसे संधियुक्त अहोरात्रमें वर्तता है उस दिनरात अपराह्न चतुर्थभागमें पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये अथवा यजन योग्य औपवसथ्यके दिन करै जब अहोरात्रकी संधिमें तिथिकी संधि होय तब प्रथमके दिन यज्ञ करै इसीसे यदि प्रतिपदामें मुहूर्तमात्रभी अमावस्या हो तो उसमें जो दिया जाता है वह अक्षय होता है कारण कि, यह पर्वका शेष भी पर्वकी सदृश होता है यह हेमाद्रिका वचन पिण्डपितृयज्ञपर प्रयोगपारिजातमें लिखा है और यह स्मार्त अग्निसम्पन्न पुरुष इस यागको पूर्णा अमावस्याके दिन श्राद्धके संगही करै व्यतिषंगसे दोनोंका अनुष्ठान करै यह वार्ता स्थालीपाकके सहित पिण्डोंके निमित्त निकालकर श्राद्धकरै इससूत्रमें वृत्तिकारने कही है खण्डपर्वमें तो किसीका यह कथन है कि, श्राद्ध प्रथम दिन पिण्डपितृयज्ञके साथ करके दूसरे दिन केवल पिण्डपितृयज्ञ करै और वृत्तिकार तो यह कहते हैं कि, अन्वष्टकाश्राद्ध "जो मार्गशिरकी अष्टमीको होता है" को प्रथम दिन और प्रत्येकमहीने पार्वण, अभ्युदयकाम्यश्राद्ध और आठवां एकोद्दिष्ट होता है यह कथन करके पहलेके चारोंमेंसे स्थालीपाकको निकालकर अग्नौकरण करै इस उक्तिसे दर्शश्राद्धमें भी स्थालीपाकका नियम है तथा पितृयज्ञकाही नाम स्थालीपाक है इससे पहले दिनमें दोनोंकी सन्धि सिद्ध हुई और प्रयोगपारिजातमें क्यों यह वार्षिक श्राद्धमें भी मेल कहा है । फिर अमावसश्राद्धकी तो बातही क्या उसमें न क्यों हो । और न्यायके ज्ञाता तो यह कहते हैं कि, सूत्र और उसकी वृत्ति यह सब अमावस्याविषयक है खण्डपर्वमें पूर्वदिनमें केवल श्राद्ध और परदिनमें केवल पितृयज्ञ करना इसी कारण वृत्तिकार यह कहते हैं कि, इस स्थलमें अकथित पूर्व स्थालीपाक नहीं कहा है कारण कि, स्थालीपाकका प्रसंग सब श्राद्धोंमें होता है । और प्रयोगपारिजातकी उक्तिभी इसी विषयमें है पूर्वदिनमें श्राद्ध करै तो अग्नौकरण करना चाहिये पाणिहोम (ब्राह्मणके करमें होम) न करै कारण कि, परिशिष्टमें कहा है कि, प्रथम चार श्राद्धोंमें अग्निहोत्रीको अग्निमें हवन करना चाहिये यह नियम है, और पितृकर्ममें अगले चारोंमें भी ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करै यदि शंका हो कि, लौकिक अग्निमें पाचित किये द्रव्यका हवन विवाहकी अग्निमें कैसे नहीं होसकता है कारण कि, अन्य अग्निमें पाचित किये द्रव्यका दूसरी अग्निमें हवन निषेध किया है यह शंका यहां नहीं हो सकती, कारण कि, श्राद्ध गृह्यकार्य होनेसे स्मार्त वा पाक अग्निमें करने योग्य है इस कारण प्रथम दिन श्राद्ध करना, व्यतिषंग न करना; और यह युक्त भी है कि, अग्निहोत्रका ग्रहण करनेवाला चाहै सर्वाधानी वा अर्धाधानीहो अर्थात् जिसने सम्पूर्ण अग्नि वा एक दो का आधान किया हो वोह पूर्ण वा खण्डित अमावसमें श्रुतिकी अग्निमें पृथक्ही पितृयज्ञ करै दर्शश्राद्धके संग न करै अब विस्तारभयसे बस करतेहैं ॥

सम्पूर्णे दर्शे च विशेषमाह–लौगाक्षिः–"पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्य्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥" इति पक्षान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् ॥ अयमेव साग्नेर्जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञकालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन होमान्तमनारम्भो वा इत्याम्नानात् ॥

लौगाक्षिने पूर्ण अमावस्यामें विशेष लिखा है कि, पक्षान्तकर्म और बलिवैश्वदेव करके अग्निहोत्री ब्राह्मणको पिण्डयज्ञ करना चाहिये पक्षान्तकर्म अन्वाधान है अन्वाहार्यक दर्शश्राद्ध है, फिर बुद्धिमान् दर्शश्राद्ध करै, और जीवितपितावाले अग्निहोत्रीका भी पिण्डपितृयज्ञका यही समय जानना, कात्यायन कहते हैं वह भी होमके अन्ततक आरम्भ न करै ॥

पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः–"पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेपि च । भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥" इत्यलम् ॥

प्रकृतमनुसरामः निरग्निकादिभिस्त्वमावास्यापराह्णव्याप्त्यभावे तु कुतुपकालव्यापिनी ग्राह्या । "भूतविद्धाप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा । पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतुपकालिकी ॥" इति हारीतोक्तेः ॥ इदं च निरग्निकादिविषयम् । "सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि । स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः ॥" इति लौगाक्षिवचनात् ॥ अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ कुतुपश्चापराह्णव्याप्त्यलाभेऽनुकल्पः—"अपराह्णद्वयव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । अहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता ॥" इति जाबालिनाऽभावे विधानात् ॥ तेन साग्नीनां निरग्नीनां वापराह्णव्यापिन्येव मुख्या ॥ तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः । वैषम्येऽधिका दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे कुतुपव्यापिनीति माधवः इदमेव युक्तम् ॥

पराशरमाधवीय ग्रन्थमें पिण्डपितृयज्ञके न करनेमें कात्यायनने प्रायश्चित्त लिखा है कि, यदि पितृयज्ञ और बलि वैश्वदेव न करै और नवयज्ञके किये बिना नवाहमें भोजन करले तथा पतितका अन्न भोजन करले तो अग्निमन्त्रसे निर्माण किये चरुसे हवन करै, यही बहुत है, अब प्रकरणपर चलतेहैं कि, जो अग्निहोत्री नहीं हैं यदि उनको अमावास्या अपराह्णव्यापिनी न मिले तो कुतुपकाल अर्थात् मध्याह्नकी दो घडी व्यापनेवाली ग्रहण करलें कारण कि, हारीत कहतेहैं, जो अमावस चौदसविद्धा हो वा प्रतिपदासे संयुक्तहो तो पितृकालमें बुद्धिमान्को वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि वह कुतुपकालव्यापिनी होय तो यह भी उन्हींके निमित्त है यदि वे अग्निहोत्र करनेवाले नहों कारण कि, लौगाक्षि कहतेहैं कि, पितरोंके कार्यमें अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको सिनीवाली लेनी चाहिये । स्त्री, शूद्र तथा दूसरे जो अग्निहोत्री नहीं उन ब्राह्मणोंको कुहू अमावस्यामें करना चाहिये । कोई यहां अग्निपदसे उपासनाग्निका ग्रहण करते हैं । यह मदनपारिजातमें लिखा है और यदि अपराह्णमें कुतुपसमय न मिले तो कुतुपके समान लेलेना कारण कि, जाबालिने कुतुपके अभावमें यह विधान कहाहै यदि अमावस्या तिथिके क्षयमें दोनों अपराह्णमें व्याप्त हों तो अग्निहोत्रीको सिनीवाली जिसमें चन्द्रमा दीखे और अग्निहोत्ररहितको कुहू माननी चाहिये इस साग्नि और निरग्नियोंको अपराह्णमें व्याप्त होनेवाली ही मुख्य तिथि है, तुल्यता वृद्धि क्षय इनसे यदि समव्याप्ति होय तो खर्वादिसे निर्णय करना, विषमतामें अधिकता दोनोंदिन अपराह्णमें न होतो कुतुपकालव्यापिनी लेनी यह माधव कहतेहैं और यही युक्त है ॥

हेमाद्रिमते कुतुपव्यापिन्येव निरग्न्यादेर्मुख्या । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ सिनीवाली दृष्टचन्द्रा । तथा च व्यासः—'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता' इति ॥ पूर्वदिने परदिन एव वा तद्व्यापित्वे सैव ग्राह्या । अंशव्यापित्वे वैषम्येऽधिककालव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वयेंऽशतः समव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा वृद्धौ साम्ये च परा । "तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता । साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥" इति प्रचेतोवचनात् ॥ दिनद्वये सम्पूर्णकुतुपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धावेव भवतीत्यनन्तरवचनात् परैवेति ॥ कुतुपस्तु—'अह्नो मुहूर्ता विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः ॥" इति मात्स्योक्तेः ॥ तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र विस्तरः ॥

हेमाद्रिके मतमें कुतुपव्यापिनी ही अग्निहोत्रीको छोडकर मुख्य है, यही साग्नि और उपासनाग्नि भी मदनापरिजातमें कही है जिसमें चन्द्रदर्शन हो उसे सिनीवाली कहतेहैं । यही व्यास कहते हैं जिसमें चन्द्रमा दीखै वह सिनीवाली और जिसमें चन्द्रदर्शन न हो उसे कुहू कहतेहैं पूर्वदिनमें अथवा परदिनमें कुतुपकालव्यापिनी सोही ग्रहण करना चाहिये । और जो किसी अंशमें व्यापिनी होनेसे विषमता होय तो अधिककालव्यापिनीको ग्रहण करना चाहिये यदि दोनों दिन अंशोंमें समान रूपसे व्याप्त हो तो वा तिथिकी क्षय वृद्धि अथवा दोनों दिन समानता होयतो परली ग्रहण करनी चाहिये कारण कि, प्रचेता यह कहतेहैं कि, वेद वेदांगके जाननेवालोंने तिथिके क्षयमें सिनीवाली और वृद्धि समानतामें कुहू ग्रहण करनी कही है । और वृद्धि होनेमें तिथि दोनों दिन कुतुपकालव्यापिनी होतीहै, यह आगेका वचन है इससे परलीही होतीहै । मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, सदाही दिनके मुहूर्त पन्द्रह जानने उनमें आठवें मुहूर्तका नाम कुतुपहै, और तुलादान और पितृदेवताकी प्रीतिके निमित्त उपवासादिमें अगलीही ग्रहण करनी इसका विस्तार अन्यत्रहै ॥

दर्शे अन्यश्राद्धप्राप्तौ निर्णयः ।

दर्शे च मासिकवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शे विशेष उक्तः "दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि । नित्यस्य चाब्दिकस्यापि वार्षिकाब्दिकयोरपि ॥" इत्युक्त्वा । "संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् । निमित्तानि यतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्" इति ॥ अत्र क्रमो निर्णयदीपे उक्तः—"नष्टचन्द्रे यदा काले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात् प्राग्दर्शकर्मणः ॥"

अमावसमें मासिक वा वार्षिकश्राद्ध आपडे तो कालादर्शमें विशेष लिखा है, अमावस्या और घटदानका, अमावस्या और मासिकका, नित्यश्राद्ध और वार्षिकश्राद्धका, तथा अमावस्या और वार्षिकश्राद्धका संयोग एक दिन आनपडे तो देवताभेदसे दो श्राद्ध करै, और इनमें निमित्त ही पहले श्राद्ध करनेमें कारण जाना जाताहै जिसका प्रथम निमित्त होय उसे पहले करै, यह निर्णयदीपमें लिखाहै अमावस्याको यदि क्षयाह दिन आनपडे तो दर्शकर्मसे पहले बलिवैश्वदेव और क्षयाह श्राद्ध करै ॥

अनुपनीतानां शूद्राणां च श्राद्धनिर्णयः ।

अमाश्राद्धं चानुपनीतोपि कुर्यात् । श्राद्धशूलपाणौ—"अमावास्याष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीषु च । इत्युपक्रम्य "एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ भार्याभिरहितोप्येतत् प्रवासस्थोपि नित्यशः । शूद्रोप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥" इति मात्स्योक्तेः ॥

और अनुपनीत पुरुष भी अमावस्याका श्राद्ध करै श्राद्धशूलपाणिमें लिखा है कि, अमावस्या अष्टका कृष्णपक्षकी अमावस यहांसे चलकर कहतेहैं कि, इनको यज्ञोपवीतसे हीन होकर भी सबपर्वोंमें करना चाहिये यह साधारण नामक श्राद्ध सब कामनाओंको देता है, यह श्राद्ध भार्याहीन तथा नित्यप्रवासी पुरुषभी करै, और मन्त्ररहित शूद्र भी इसको करै ऐसा मत्स्यपुराणका वाक्य है ॥

अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तनिर्णयः ।

अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—"न्युषूवाचं जपेन्मत्रं शतवारं दिने दिने । अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥"

अमावस्यामें श्राद्ध न करनेसे ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त कहाहै, यदि अमाश्राद्ध न करै तो 'न्युपूवाचं' इस मंत्रको प्रतिदिन सौ वार जपनेसे उसकी पूर्ति होजाती है "ऋग्वेद १।४।४५" में मंत्र है॥

अत्र पूर्वोक्तसाग्निकपदेनाहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्च गृह्यते। विच्छिन्नाग्निकादिश्च निरग्निकः॥ तथा च हेमाद्रिरग्नौकरणप्रकरणे–" साग्निरग्नावनाग्निस्तु द्विजपाणावथाप्सु वा। कुर्यादग्नौ क्रियां नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम्॥" इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य यस्त्वस्वीकृतौपासनतया समुच्छिन्नाग्नितया भार्याविधुरतया वाग्निरहितस्तस्य द्विजपाणौ जलादौ होम इति व्याचचक्षे॥ मदनपारिजातेप्येवम्॥इदमेव साग्निकानग्निकस्वरूपं सर्वत्र ज्ञेयम्॥

यहाँ पूर्वोक्त साग्निपदसे आहिताग्नि और स्मार्ताग्निका ग्रहण है और नष्टअग्निवाला निरग्निक कहाता है यही हेमाद्रि अग्निप्रकरणमें कहतेहैं कि, साग्निक ब्राह्मणको अग्निमें और निरग्निक ब्राह्मणको हाथ, जल, वा लौकिक अग्निमें सदा अग्नौकरण करना चाहिये इस प्रकार इसस्मृतिके वचनको लिखकर उसकी इस प्रकार व्याख्या की है कि, जो औपासनअग्निके स्वीकार न करनेसे अग्निके नाश वा स्त्रीके अभावसे अग्निरहित है वह ब्राह्मणके हाथ वा जलादिमें हवन करै यही मदनपरिजातमें लिखाहै साग्निक और निरग्निकका सब स्थानमें यही स्वरूप जानना॥

ग्रहणनिर्णयः।

अथ ग्रहणं निर्णीयते॥ तत्र चन्द्रग्रहणे यस्मिन्यामे ग्रहणं तस्मात् पूर्वं प्रहरत्रयं न भुञ्जीत। सूर्यग्रहे तु प्रहरचतुष्टये न भुञ्जीत। "सूर्य्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना॥" इति माधवीये वृद्धगौतमप्रोक्तेः॥ "ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधि यामतः। भुञ्जीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः॥" इति मार्कण्डेयोक्तेश्च॥ अधि ऊर्ध्वम्। ननु चन्द्रग्रहे यामचतुष्टयनिषेध उचितः, न तु सूर्यग्रहे। सूर्योदयात् प्राग्भोजनाप्राप्तेः। मैवम्। वचनस्य प्रथमयामे सूर्यग्रहे सति पूर्वेद्युः पूर्वरात्रे भोजननिषेधपरत्वात्। चन्द्रग्रहे विशेषमाह माधवीये वृद्धवसिष्ठः–'ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्' इति॥ द्वयोर्ग्रस्तास्ते तु माधवीये व्यासः–'अमुक्तयोरस्तगयोरद्यादृष्ट्वापरेहनि' इति॥ विष्णुधर्मेपि "अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥" अहोरात्रनिषेधः सूर्यग्रस्तास्ते॥ मदनरत्ने गार्ग्यः–"सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। तदहे नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन॥" सायंसंध्यायाः सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेह्नि रात्रौ च न भोक्तव्यम्। प्रातःसन्ध्यायां चन्द्रग्रस्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरेह्नि च न भोक्तव्यमित्यर्थः॥चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने सन्ध्याहोमादौ न दोषः। तदाहोशनाः—"ग्रस्ते चास्तं गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम्। स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः॥" एतदनाहिताग्निविषयम्॥

---

१ 'न्यूपूवाचं प्रमहेभरामहेगिरइन्द्राय सदने विवस्वतः। नूचिद्धिरत्नं ससतामिवाविदन्नदुष्टुतिर्द्रविणोदेषुशस्यते॥' ऋ० १।४।४५॥

१ नाश्नीयादथ तत्कालग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः॥ मुक्तयोश्च कृतस्नानः पश्चाद्भुञ्ज्यात्स्ववेश्मनि॥ चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें भोजन न करै मोक्ष होनेपर स्नान करके फिर अपने घर स्नान करै पराया अन्न न खाय॥

अब ग्रहणका निर्णय करते हैं चन्द्रग्रहण जिस पहरमें होय उससे पहलेके तीन पहरोंमें और सूर्यग्रहणसे पहले चार पहरोंमें भोजन न करै कारण कि, माधवीयमें वृद्धगौतम कहतेहैं कि, सूर्यग्रहणमें चार पहर पहले और चन्द्रग्रहणमें तीन पहर पहलेमें वृद्ध बालक और रोगी इनको छोडकर अन्य भोजन न करै, मार्कण्डेयपुराणमें यह लिखाहै कि, जो चन्द्रग्रहण प्रथम पहरसे पीछे हो तो मध्याह्नसे प्रथम भोजन करले और जो रात्रिके प्रथम पहरमें होय तो उससे उपरान्त भोजन करै, यदि कहो कि, चन्द्रग्रहणमें चार पहरका निषेध करना चाहिये, सूर्य ग्रहणमें नहीं कारण कि, सूर्योदयसे प्रथम तो कोई भोजनही नहीं करता, सो यह ठीक नहीं कारण कि, प्रथम पहरमें सूर्यका ग्रहण होय तो पहले दिनकी रात्रिमें भोजनका निषेध है माधवीय-ग्रन्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें वृद्धवसिष्ठ यह विशेष कहतेहैं कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तोदय होय तो प्रथम दिन भोजन न करै । और दोनोंके ग्रस्तास्तमें तो माधवीय ग्रन्थमें व्यासजी इस प्रकार कहतेहैं कि, यदि चन्द्र सूर्य दोनों ग्रस्तास्त होजायँ तौ फिर चन्द्र सूर्यका दर्शन करके स्नानकर भोजन करना चाहिये विष्णुधर्ममें कहा है कि, चन्द्र सूर्यके ग्रहण होनेमें एक दिनरात भोजन न करै किन्तु राहुसे जब मुक्त होजायं तब दर्शन कर स्नानके उपरान्त अपने घरकाही भोजन करै, इसमें अहोरात्रका निषेध सूर्यग्रहणग्रस्तास्तमें जानना । मदनरत्नमें गर्ग कहतेहैं कि, जब सन्ध्यासमय राहु चन्द्र वा सूर्यका ग्रास करै तब उस दिन रात्रिमें किसी प्रकार भोजन न करना चाहिये, अर्थात् सायंकालमें सूर्य ग्रस्तास्त होजाय तो प्रथम दिन और रात्रिमें भोजन न करै । और प्रभातकी सन्ध्यामें चन्द्रमा ग्रस्तास्त होजाय तो प्रथम रात्री और अगले दिन भोजन करना उचित नहीं चन्द्रमा ग्रहण होते २ अस्त होजाय तो अगले दिन हवन सन्ध्यादि करनेका दोष नहीं है यही उशनाने लिखाहै कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तास्त होजाय तो शास्त्रसे उसका मोक्ष जानकर स्नान हवनादि करले परन्तु भोजन तो फिर चन्द्रोदयपरही करना चाहिये, यह वार्ता निरग्नियोंके निमित्त है ॥

'अपराह्णे व्रतोपायनीयमश्नीत' इति कात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात् ॥ अद्भिर्व्रतं कुर्यादिति निर्णयदीपः । रागप्राप्तभोजने कालनियमोयम् । तेन ज्वरादाविव न भोजनमिति कर्कानुसारिणः ॥ बालवृद्धातुराणां तु ग्रहयामात्पूर्वमेकयामो निषिद्धः । "सायाह्णे ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् । अपराह्णे न मध्याह्णे मध्याह्णे न तु संगवे ॥ भुञ्जीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ इदं च बालादिविषयम् । 'बालवृद्धातुरैर्विना' इति पूर्वोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा पक्वमन्नं त्याज्यम् । "सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥" इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ शृतमिति तदन्तरितस्योपलक्षणम् । 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्' इति मिताक्षरायां वचनात् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः-"आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ॥" मन्वर्थमुक्तावल्याम्-"अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति ॥" जले त्वदोषो गाङ्गविषयः ॥ 'ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत्' इति तत्रैव चतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं माधवीये कात्यायनेन-"चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति । तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति" इति ॥ ग्रहणे च त्रिरात्रमेक

रात्रं वोपवासः श्रेयोर्थिना कार्यः । " एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः । कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः ॥ त्रिरात्रं समुपोष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह ॥ " इति हेमाद्रौ लैङ्गोक्तेः ॥ इदं च पुत्र्यतिरिक्तविषयम् । "आदित्येहनि संक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥ " इति जैमिनिवचनात् ॥ यदा तु रवेर्ग्रस्तास्तस्तदा पुत्रिणः प्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः । 'सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात् इति पूर्वोक्तमार्कण्डेयवचनात् ॥

यदि व्रत होय तो अपराह्ण तीसरे पहरमें जलपान करलेना चाहिये इस प्रकार कात्यायनके वचनसे व्रतकी प्रबलता वेदोक्त होनेके कारण है निर्णयदीपमें लिखा है कि, जलसेही व्रत करलेना चाहिये परन्तु यह नियम रागप्राप्त भोजनमें है इसकारण ग्रहणमें भोजन ज्वरादिके समान न करना चाहिये । यह कर्काचार्यके अनुसार वर्तनेवालोंका कथनहै और ग्रहणसे एक पहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी व्रत रक्खैं भोजन न करैं कारण कि, मार्कण्डेयका यह कथन है कि, यदि सन्ध्यासमय ग्रहण होय तो अपराह्णमें, अपराह्णमें होय तो मध्याह्नमें, मध्याह्नमें होय तौ संगवमें और संगवमें होय तो उससे प्रथम भोजन त्याग दे, यह वचन बालादिके विषयमें जानने, कारण कि, बालवृद्धातुरोंके बिना करै ऐसा पहले कह आयेहैं। वेधकाल अथवा ग्रहणमें पक्वान्न भी न खाना चाहिये, सब वर्णोंको राहुदर्शनमें सूतक लगता है इसमें स्नान करके कर्म करै, और पक्वान्न न खाय ऐसा हेमाद्रिमें षट्त्रिंशके मतसे लिखा है पक्वान्नसे ग्रहणके मध्यमें वह न खाना जो पहला पक्व कियाहो यह उसीका उपलक्षण है, कारण कि, मिताक्षरामें लिखाहै नवश्राद्धके शेष और ग्रहणके बासी अन्नको न खाय, मेधातिथिने भार्गवार्चनदीपिका और ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है नरसल, दूध, मट्ठा, दही, घृतका पक्वान्न और मणिमें स्थित जल यह राहुदर्शनमें दूषित नहीं होता, मन्वर्थमुक्तावलीमें लिखाहै कि, पक्वान्न और घरमें सवस्त्र स्नान इनको त्याग देना चाहिये, और जल, मट्ठा, कन्द, नरसल यह वस्तु तिल और कुशाके डालनेसे दूषित नहीं होता, जलका अदोष गंगाजलविषयकहै, घरमें रहे जलको पीनेसे चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये, वहांही चतुर्विंशतिके मतसे और जलका दोष कहा है वेधकाल वा ग्रहणके भोजनमें प्रायश्चित्त लिखा है माधवीयमें कात्यायनका वचन है, चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें भोजन करके प्राजापत्यव्रतसे शुद्ध होताहै, और उसीदिन भोजन करके त्रिरात्र व्रतसे शुद्ध होताहै, इस कारणसे कल्याणकी इच्छावालेको एकरात वा तीनरात उपवास करना चाहिये । एक रात उपवास करके शक्ति अनुसार कुछ दानदेकर कैंचलीसे सर्पकी समान पापोंसे छूट जाताहै चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तीनरात व्रत करके विधिपूर्वक स्नान दान करके ब्रह्माके संग प्रसन्न होताहै, ऐसा हेमाद्रिमें लिंगपुराणका वचन है यह पुत्रवालोंको छोडकर अन्योंके निमित्त वचन है,

---

१ सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् । न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः' इति वचनात् । निद्रायां जायते रोगो मूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात् । पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामसूकरः । अभ्यङ्गे च भवेत् कुष्ठी भोजने स्यादधो गतिः । वञ्चने च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत्, इति निगदोक्तेश्च इति अर्थात्–

ग्रहणमें सोने आदिका निषेध है जबतक सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण हो जपादि करते रहे न सोवै न भोजन करै । मुक्ति होनेपर स्नानकर भोजन करै सोनेसे रोग होता है मूत्र करनेसे दरिद्र, पुरीष करनेसे कृमियोनि, मैथुनसे ग्रामसूकर, उबटनेसे कुष्ठी, भोजनसे अधोगति होती है, ठगई करनेसे सर्प और वधसे बन्धन होता है ॥

रविवार, संक्रांति, चन्द्रसूर्यका ग्रहण इनमें पुत्रवालेको उपवास करना न चाहिये, यह जैमिनि कहते हैं जब कि, सूर्यका ग्रस्तास्त हो तब दो पहर छोडकर पुत्रवान् भोजन करले उपवास न करै कारण कि, यह पूर्वोक्त मार्कण्डेयपुराणके वचन हैं कि, सायाह्नमें ग्रहण होय तो इत्यादि ॥

"सायाह्ने संगवेऽश्नीयाच्छारदे संगवादधः । मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे ॥" इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः । शारदोऽपराह्णः ॥ माधवमते तु पुत्रिणोऽपि तत्रोपवास एव– 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति पूर्वोक्तनिषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात् उपवासनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः । कृष्णैकादशीनिषेधवदिति ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ इदमेव च युक्तम् ॥ वर्धमानस्तु–'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति शातातपीयोक्तेः । 'सूर्याचन्द्रमसोर्लोकानक्षयान्याति मानवः' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने उपवासः काम्यः । न त्वयं निषेध इत्याह तन्न । तत्र व्रतत्वेऽपि प्रागुक्तविष्णुधर्मे निषेधावश्यंभावात् ॥ तथा च व्यासः–"रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । चूडामणिरिति ख्यातस्तत्र दत्तमनन्तकम् ॥ वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ तत्पुण्यं कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम् ॥"

और स्मृतिमें भी कहा है कि, सायाह्नके ग्रहणमें संगवमें अपराह्नमें होयतो संगवसे प्रथम मध्याह्नमें होय तो उससे परे भोजन करना चाहिये, हेमाद्रिका यह कथन है कि, सूर्यग्रहणमें उपवास न करै माधवने तो ग्रहणमें पुत्रवालेको भी उपवास कहा है । दिन रातके भोजन करनेका निषेध पुत्रवालेको भी मानना चाहिये और यह उपवासका निषेध तो कृष्णपक्षकी द्वादशीके तुल्य व्रतरूप उपवासमें जानना, इसी प्रकार मदनरत्नमें भी लिखाहै और यह युक्त भी है और वर्द्धमान कहतेहैं कि, दिनरात नहीं भोजन करना चाहिये यह शातातपीयकी उक्ति है । सो अहोरात्रमें भोजन न करनेवाला सूर्य और चन्द्रमाके अक्षयलोकोंको प्राप्त होताहै, इस फलश्रुतिसे चन्द्र सूर्यकी राहुसे मुक्तिके विना दर्शन किये उपवास फलके निमित्त हैं और यह निषेध नहीं है सो वर्धमानका यह कथन ठीक नहीं जिससे कि, यहां व्रतके प्राप्त होनेपर भी पूर्वमें कहे विष्णुधर्ममें निषेधका होना अवश्यंभावि है, और यही व्यास भी कहतेहैं कि, रविवारको सूर्य और चन्द्रवारको चन्द्रग्रहण होय तो यह चूडामणियोग है इसमें दिया हुआ अनन्त होता है जो और वारोंमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें दान जपका फल है उससे चूडामणियोगमें करोड गुण फल है ॥

तत्र स्नाननिर्णयः ।

अत्र चाद्यन्तयोः स्नानं कुर्यात् । "ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥" इति हेमाद्रौ वचनात् । 'स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम्' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । "सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत् ॥" इति वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च ॥ सचैलं मुक्तिस्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां चतुर्विंशतिमते–"मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः ॥" इदं च स्नानममन्त्रकं कार्यमिति स्मृतिरत्नावल्याम् । तत्र तीर्थविशेषो भारते–"गङ्गास्नानं तु कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥"

ग्रहणके आदि अन्तमें स्नान करना चाहिये, ग्रस्यमानमें स्नान ग्रस्त होनेपर हवन, मुक्त होनेपर दान और मुक्त होजानेमें फिर स्नान करना चाहिये यह हेमाद्रिमें कहा है, ब्रह्मवैवर्तमें भी लिखाहै ग्रहणकी आदिमें स्नान मध्यमें हवन और देवताअर्चन करना चाहिये, वृद्धवसिष्टने भी कहा है राहुदर्शनमें सब

वर्णोंको सूतक लगता है, इसमें सचैलस्नान होता है, सूतकमें अन्न वर्ज देना चाहिये सचैलस्नान मुक्त होनेपर करना चाहिये ऐसा मदनरत्नमें लिखा है मार्गवार्चनदीपिकामें चतुर्विंशतिके मतसे लिखा है जो ग्रहणके सूतक और मुक्तिमें स्नान नहीं करता है, वह दूसरे ग्रहणतक सूतकी रहताहै स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है यह स्नान विना मन्त्रके करना चाहिये वह तीर्थकी विशेषतासे भारतमें लिखा है चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें गंगास्नान करै अथवा दूसरी महानदियोंमें विधिपूर्वक स्नान करै ॥

स्नानमाहात्म्यम् ।

महानदीष्वपि मासविशेषे काश्चिच्छ्रेष्ठाः—"प्रयागं देविका रेवा संनिहत्या च वारणम् । सरस्वती चन्द्रभागा कौशिकी तापिका तथा । सिन्धुर्गण्डकिका चैव सरयूः कार्तिकादितः ॥" मूलं हेमाद्रौ । व्यासः—"इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः । गङ्गातोये तु सम्प्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश । गवां कोटिसहस्रस्य यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं लभते मर्त्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ असम्भवे तु माधवीये शंखः—"वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि ॥ उष्णोदकेन वा स्नायाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः ॥

महानदियोंमें किसी २ महीनेमें कोई २ श्रेष्ठ कहीं है, प्रयाग, देविका, रेवा, संनिहत्या, वारणा, सरस्वती, चन्द्रभागा, कौशिकी तापिका, सिन्धु, गण्डकी, सरयू, यह क्रमसे कार्तिकादि महीनोंमें ग्रहण और स्नानके लिये श्रेष्ठ हैं, इसका प्रमाण हेमाद्रिमें देखना । व्यासजी कहतेहैं चन्द्रमाके ग्रहणमें लाखगुणा पुण्य, सूर्यका उससे दशगुणा पुण्यहै जब गंगाजी ऐसे समय प्राप्त होजाँय तो चन्द्रमाका करोड गुणा और सूर्यका उससे दशगुणा फल वहां स्नान करनेसे होता है, जो फल कोटि सहस्र गोदानसे मनुष्यको मिलता है वह फल मनुष्यको चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें मिलता है, यह गंगादि नदियें न मिलसकैं तो माधवीयमें व्यासका वाक्य है, बावडी, कूप, तडाग, पर्वत, प्रस्रवण, झरने, नदी, नद, देवखात (पुष्कर आदि) सरोवर सींचा हुआ वा कूपादिसे निकाला जल वा गरम जलसे चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान करै इसमें तारताम्य मार्कण्डेयजी कहतेहैं ॥

स्नानतारतम्यनिर्णयः ।

शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात् । भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥ ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् । तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु पावनम् ॥ ततस्ततोऽपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यस्ततोऽम्बुधिः ॥ " इति ॥ उष्णोदकमातुरविषयम् ॥ तथा—" गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते । सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते तमोभूते महामुने । नर्मदातोयसंस्पर्शे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे—"गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि कनकं मही । सम्प्रदाय कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरः । तदिन्दुग्रहणेऽम्भोधौ स्नानाद्भवति षड्गुणम् ॥ " तत्रैव सौरपुराणेऽम्बुधिस्नानमुपक्रम्य—"दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः । तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ देवीपुराणे—" गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागः पुष्करं तथा । कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ " स्नानाऽसम्भवे स्मरणं वा कार्यम् "स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम् ॥ पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तु पीत्वा सौत्रामणेर्लभेत् ॥ स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः । रविचन्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा ॥ " इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥

उष्ण जलसे शीतल जल, दूसरेके जलसे निजका जल, उद्धृतसे भूमिका जल, पृथ्वीके जलसे पर्वतके झरनेका, उससे सरोवरका, उससे नदीका, उससे तीर्थका, उससे महानदीका, उससे गंगा और

गंगाजलसे सागरका जल पवित्र है, गरम जल रोगीके निमित्त है हे महामुने ! चन्द्रग्रहणमें गोदवारीका, सूर्यग्रहणमें नर्मदाका जल स्नानमात्रसे कृतकृत्य करदेता है, पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभासखण्डमें कहा है गौ, हाथी, तिल, अन्न, रत्न, सोना और भूमि कुरुक्षेत्रमें प्रदान करनेसे जो फलकी प्राप्ति होती है वह चन्द्रग्रहणपर सागरमें स्नानका छः गुना फल है, वहीं सौरपुराणमें सागरके स्नानप्रकरणमें कहा है जितने दान जगत्‌में बुद्धिमानों द्वारा प्रसिद्धहैं चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान दानसे उन सबका फल मिलता है देवीपुराणमें लिखा है गंगा, पवित्र कनखल, प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र यह सूर्यग्रहणमें महापुण्यदायक हैं, कुरुक्षेत्र महापवित्र है यदि यहां स्नानको न आसके तो उस अवसरमें स्मरण करले :स्मरणसे सौ यज्ञका फल और दर्शनसे सबपापनाश, छूनेसे गोमेधका पुण्य और पानसे सौत्रामणियज्ञकी प्राप्ति और स्नानसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं यह फल चन्द्रसूर्यके ग्रहण और उत्तरायणमें जानना । ऐसा मार्कण्डेयका कथन है ॥

ग्रहणे श्राद्धम् ।

अत्र श्राद्धमाह ऋष्यश्रृङ्गः—" चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् । तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥ " भारते—" सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने । अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति ॥ " विष्णुः—' राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम् ' इदं चामान्नेन हेम्ना वा कार्यं न त्वन्नेन " आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा ॥ " इति शातातपोक्तेरिति हेमाद्रिमाधवादयः ॥ अपरार्कस्तु—एतद्द्विजातीनां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत् । ' पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते । ' इति सुमन्तूक्तेः ॥

इसमें स्पर्शके समय ऋष्यशृंग श्राद्ध करना कहतेहैं,[1]जो चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है मानो उसने ब्राह्मणके हाथमें सब पृथ्वी प्रदान करदी । भारतमें लिखा है कि, राहुदर्शनमें सब प्रकारसे श्राद्ध करना और नास्तिकतासे न करनेमें कीचमें फंसी गौकी समान दुखी होता है, विष्णु कहते हैं राहुग्रस्त समय जो श्राद्ध कियाजाय चन्द्रसूर्यकी स्थितिपर्यन्त उसका फल है; यह कच्चे अन्न वा सुवर्णसे करना और अन्नसे नहीं कारण कि, आपत्तिमें अग्निके अभावमें, तीर्थ, चन्द्र सूर्यके ग्रहण इनमें कच्चे अन्न वा सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये, यह शातातपने कहा है और यही हेमाद्रि और माधव आदिका कथन है, अपरार्क तो यह कहते हैं कि, यह श्राद्ध तीनों द्विजातियोंको तीर्थश्राद्धवत् पाकके अभावमें जानना चाहिये कारण कि, सुमन्तु यह कहतेहैं पाककी जब प्राप्ति नहीं तब कच्चे अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये ॥

गजच्छायनिणयः ।

" सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत् ॥ " इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह ॥ विज्ञानेश्वरोप्याह-' ग्रहणश्राद्धे भोक्तुर्दोषो दातुस्त्वभ्युदय ' इति ॥ " सूतके मृतके भुंक्ते गृहीते शशिभास्करे । छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ " इत्यापस्तम्बेन भोजननिषेधाच्च ॥ अयं च निषेधः श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात् ॥ अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रान्त्यादिनैमित्तिकानां सिद्धिः । 'दार्शिकालभ्ययोरपि' इति काला-

१ स्पर्शसमय देवता और पितर तृप्त होते हैं मध्यकालमें मनुष्य और मोक्षकालमें राक्षस तृप्त होते हैं यह वृद्धवसिष्ठका कथन है ॥

दर्शोक्तेः ॥ अत्राशौचमध्येपि स्नानश्राद्धादि कार्यमेव " सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥ " इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ 'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' इति व्याघ्रपादोक्तेश्च ॥ कालादर्शे अंगिराः-" सर्वे वर्णाः सूतकेपि मृतके राहुदर्शने । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठयविवर्जितम् ॥ " मदनपारिजातेप्येवम् ॥ तेन-'स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम्' इति निर्मूलं वदन्तो गौडाः परास्ताः ॥ इयं च शुद्धिरविशेषान्मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे-" न सूतकादिदोषोस्ति ग्रहे होमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृतवारिणा ॥ " इति ॥ अत्र च-"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ " इत्यादिमिताक्षरोक्तो विधिर्ज्ञेयः । ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादि कार्यम् । " ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ॥ " इत्यपरार्के व्यासः । 'चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते' इति देवलोक्तेश्च ॥ यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चंद्रग्रहो, रात्रौ च सूर्यग्रहस्तदा स्नानादि न कार्यम् । "सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् " इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥

जिस समय पर्वसन्धिमें राहु सूर्यका ग्रास करै उसका नाम गजच्छाया है उसमें श्राद्ध करना चाहिये, घृतविशेषसे ब्राह्मणोंको जिमावै और घृतही भूमिपर डालना । यह वायवीयपुराणका कथन है, विज्ञानेश्वर भी यह कहते हैं कि, ग्रहणश्राद्धमें भोजन करनेवालेको दोष है दाताका तो प्रताप बढता है, कारण कि, आपस्तम्बमें इस अवसरमें भोजनका निषेध कहा है, सूतक, मरण चन्द्रसूर्यग्रहण और गजच्छाया इनमें जो भोजन करताहै वह फिर पुरुष नहीं होता, यह निषेध गजच्छायाके साथ पढनेसे श्राद्ध खानेवालेको है, यहां ग्रहणके निमित्त किये हुए श्राद्धसेही अमावास्या और संक्रान्ति आदिके निमित्त किये हुए श्राद्धोंकी भी सिद्धि जाननी । कारण कि, कालादर्शमें यह कहाहै कि, संक्रान्ति और अमावसमें भी श्राद्ध करै ग्रहण होते समय अशौचमें भी स्नान और श्राद्ध करै कारण कि, माधवीयमें वृद्धवसिष्ठ यह कहते हैं सूतक और मृतक इन दोनोंका राहुदर्शनमें दोष नहीं जब तक ग्रहण मुक्त न हो तबतक सूतक और पातकवाले शुद्ध रहतेहैं, व्याघ्रपाद भी यह कहतेहैं, राहुके सूतकको छोडकर स्मार्त कर्म न करै, कालादर्शमें अंगिरा कहतेहैं सूतकी और पातकी सबही मनुष्य राहुदर्शनमें स्नान कर श्राद्ध करैं और शठतासे रहित होकर दान करैं कृपणता न करैं यही मदनपारिजातमें लिखा है, इस वचनसे "स्नानमात्र करके श्राद्धके बिना दान करै" इस निर्मूल वचनको कहते हुए गौड परास्त हुए और यह विशेषता रूप शुद्धिके अभावसे मन्त्रदीक्षा पुरश्चरणादि सब स्मार्तकार्योंमें जानना, मदनरत्नमें भी ऐसाही लिखाहै, भार्गवार्चनदीपिकाके सूर्योदयनिबन्धमें लिखा है कि, ग्रहणमें रजस्वलाको होमजपादिका दोष नहीं है ग्रस्तमें तीर्थमेंसे जल निकालकर पृथक् स्नान करै, इसमें यदि ग्रहणमें नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति हो और स्त्री रजस्वला हो तो पात्रमें धरे जलसे स्नान करने उपरान्त व्रत करना, इत्यादि मिताक्षरामें कही हुई यह विधि जाननी और ग्रहणके दिन रातमें भी श्राद्ध करै कारण कि, अपरार्कमें व्यासजी कहते हैं ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, रोग, जन्म इनमें जो दान है वह नैमित्तिक होता है इसके रात्रिके करनेमें भी दोष नहीं है, देवलभी कहते हैं कि, रात्रिको चन्द्रग्रहणमें स्नान दान करना उत्तम है, और जब ज्योतिःशास्त्रके अनुसार दिनमें चन्द्रग्रहण

और रात्रिमें सूर्यग्रहण हो तो स्नान दानादि नहीं करना चाहिये, यही षट्त्रिंशत् कहते हैं रात्रिमें सूर्यग्रहण दिनमें चन्द्रग्रहण हो तो उसमें स्नान दानकी आवश्यकता नहीं ॥

ग्रहणदिनेवार्षिकश्राद्धनिर्णयः ।

ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः–"दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम् । अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ॥ " इति ॥ अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः । न्यायसाम्यात् ॥ तेन चन्द्रग्रहेपि सापिण्डादि वार्षिकमन्नादिना तद्दिन एव कार्यमिति मदनपारिजाते व्याख्यातम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ तेन यानि– 'आमश्राद्धं प्रकुर्वीत माससंवत्सराहते' इति । 'अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित्' इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचनानि, तानि ग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि ॥ यानि तु ' ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे' तथा–" ग्रस्तोदये यदा चन्द्रे प्रत्यब्दं समुपस्थितम् । तद्दिने चोपवासः स्यात्प्रत्यब्दं तु परेहनि ॥ " तथा–"ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि । प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेहन्येव सर्वदा ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च तथा श्राद्धं परेहनि ॥ " इत्यादीनि वचनानि । तानि महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भान्निर्मूलानि ॥ प्रत्युत पूर्वोक्तनिबन्धेषु तद्दिन एव श्राद्धमुक्तमित्यलम् ॥

ग्रहणदिनमें वार्षिक श्राद्धकी प्राप्तिमें तो प्रयोगपारिजातमें गोभिल कहते हैं यदि अमावस्याको सूर्य ग्रहण आपड़े और उसी दिन आब्दिक श्राद्ध हो तो पक्वअन्नके द्वारा न बन सके तो सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये । वा कच्चे अन्नसे करै, इन वाक्योंसे न्यायकी समतासे अमावास्या आदित्यवार पिता पुत्र क्रमसे इनके वाचक दर्श, रवि, पितृ, सुत यह शब्द दिखानेके निमित्त हैं इससे चन्द्रग्रहणमें भी सपिण्ड आदि वार्षिक श्राद्धको अन्नादिसे उसी दिन करना, यह मदनपारिजातमें कहा है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकारका लेख है इससे वे वचन मरीचि लौगाक्षि आदिके हैं, वे ग्रहणदिनसे पृथक्में जानने । मासिक और वार्षिक श्राद्धके विना कच्चे अन्नसे श्राद्ध करै वार्षिकश्राद्धको पक्वान्न वा सुवर्णसे करै और आमान्नसे कभी न करै निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार लिखा है और यह जो कथन है कि, ग्रहणसे दूसरे दिन और रजस्वला दोषसे पांचवें दिन और चन्द्रमाके ग्रस्तोदयमें वार्षिकश्राद्ध आनकर प्राप्त होजाय तो उसदिन उपवास करै और अगले दिन श्राद्ध करना तथा चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें परदिन श्राद्ध करै यह वचन बड़े २ ग्रन्थोंमें न मिलनेके कारण निर्मूल हैं किन्तु पूर्वोक्त ग्रन्थोंमें उसी दिन श्राद्ध करना कहाहै, बहुत कहनेसे बस करते हैं ॥

ग्रहणेदीक्षानिर्णयः ।

ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता । शिवार्चनचन्द्रिकायां ज्ञानार्णवे— "मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । ग्रहणाद्वापि देवेशि कालः सप्तदिनावधिः ॥ " इति ॥ रत्नसागरे–" सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणि । मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ " अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम् । "सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् । सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥ न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ " इति तत्रैव कालोत्तरवचनात् । "चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा ग्र-

व्रतचारिणाम् । वनस्थस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥ " इति तत्रैव योगिनीतन्त्रे निषेधाच्च ॥ ग्रहणं च जन्मराश्यादौ निषिद्धम् । तदुक्तं ज्यौतिषे-"त्रिषड्दशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद्ग्रहणं रवीन्द्वोः । द्विसप्तनन्देषुसु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ " इति ॥ आय एकादश । नन्दा नव । इषुः पञ्च ॥ मदनरत्ने गर्गः-"जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेपि च ॥ रिःफं द्वादशम् । अंका नव । निधनं सप्तमतारा ॥

ग्रहणसे सातदिनतक रामगोपालादि शास्त्रमें कहे हुए मन्त्रोंका उपदेश शिवार्चनचन्द्रिकाके ज्ञानार्णव प्रकरणमें लिखा है कि, हे गिरिजा ! चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें अथवा ग्रहणसे सातदिन पर्यंत मन्त्र आदिका आरंभ करना, रत्नसागरमें लिखाहै कि, अच्छे तीर्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तथा बालशिक्षाके समय मन्त्र लेताहुआ पुरुष महीने नक्षत्रका विचार न करै, इसमें सूर्यग्रहणही मुख्य है, सूर्यके ग्रहण समय और कोई बात नहीं देखी जाती सूर्यग्रहणकी समान और कोई समय नहीं है, सूर्यपर्वमें मास, तिथि, वारका शोधन न करै यह वहांही कालोत्तरके वचन हैं । चन्द्रग्रहणमें जो दीक्षा है तथा जो दीक्षा व्रतचारियोंकी है और जो वानप्रस्थकी दीक्षा है वह सात जन्मतक दरिद्र करती है (यह सूर्यदीक्षाके प्रशंसापरत्व वाक्य हैं) इस प्रकार योगिनीतन्त्रमें चन्द्रदीक्षाका निषेध है ग्रहण जन्मराशि आदिमें निषिद्ध है यही ज्योतिषमें लिखा है । सूर्यचन्द्रग्रहण मनुष्योंको तीसरे छठे दशमें ग्यारहवें वा पांचवें राशिमें हो तो सुखदाई है । दूसरी सातवीं राशिमें मध्यम और १ । ४ । ८ । १२ राशियोंमें मुनियोंने मध्यम कहा है, मदनरत्नमें गर्गजी कहते हैं । १ । ७ । ८ । ९ । १० वीं राशिपर चन्द्रमा होय उसदिन ग्रहण हो अथवा जन्मनक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे अष्टमस्थानपर हो तो रोग करता हैं ॥

ग्रहणनक्षत्रजातानां पीडा तथा तच्छांतिनिर्णयः ।

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे-"यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥ " तत्रैव पुराणान्तरे-"सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथ वा मृतिः ॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भविष्यति ॥ स्वर्णेन वाथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् । ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः ॥ " जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते । जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति केचित् । सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः ॥ अद्भुतसागरे भार्गवः-"यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभङ्गः सुहृन्नाशो मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥ " राज्यस्य नक्षत्रम् अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिःसागरे-'सौवर्णं कारयेन्नागं पलेनाथ पलार्धतः । तदर्धेनतदर्धेन फणायां मौक्तिकं न्यसेत् ॥ ताम्रपात्रे निधायाथ घृतपूर्णे विशेषतः । कांस्ये वा कान्तिलोहे वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् ॥ चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम् । नागं रुक्ममयं सूर्यग्रहे बिम्बं च हेमजम् ॥ तुरंगरथगोभूमितिलसर्पिश्च काञ्चनम् ॥ " कालविवेकेपि-"सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः । उपरागभवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ॥ " मन्त्रस्तु-'तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन । हेमतारप्रदानेन मम शान्तिप्रदो

भव ॥ विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत । दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयाद् ॥ " इति ॥ अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौ मात्स्ये–"यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंभवः । स्नानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥ चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । संपूज्य चतुरो विप्रान्छुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सलिलान्वितान् ॥ गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निःक्षिपेत् ॥ पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्च त्वक् पञ्चपल्लवम् । रोचनं पद्मकं शंखं कुंकुमं रक्तचन्दनम् ॥ शुक्तिस्फटिकतीर्थाम्बुसितसर्षपगुग्गुलून् । मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ॥ बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरचन्दनम् ॥ एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान् । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः । योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ॥ सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु । मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ॥ चन्द्रोपरागसंभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु । यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ॥ यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखा है, जिस नक्षत्रमें स्थित होकर राहु सूर्य, चद्रमाका ग्रास करता है उस नक्षत्रमें जन्मे हुए मनुष्यको दुःख होता है और यदि शान्ति न करै तो पुराणान्तरमें लिखा है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें वा जन्मनक्षत्रसे प्रथम पीछे सूर्यकी संक्राति अथवा सूर्यचंद्रग्रहण हो तो उसको रोग अथवा मृत्यु होती है, उसके निमित्त दान, होम, देवार्चन, जप, ग्रहणमें मंत्रोंसे अभिषेक करै तो शान्ति होती है सुवर्णकी वा आटेकी मूर्ति सर्पाकार बनाकर ब्राह्मणको दे तो रोगादिका विघ्न नहीं होता, किन्हीका यह कथन है कि, जन्मसे दशवाँ वा उन्नीसवां नक्षत्र निषिद्ध है, अद्भुतसागरमें भार्गव कहते हैं जिसके राज्यअभिषेकके नक्षत्रमें ग्रहण होय तो राज्यभंग सुहृदोंका नाश और मरण होता है, भार्गवार्चनदीपिकामें ज्योतिस्सागरका वाक्य है, एकतोले सुवर्णका सर्पनिर्माण करके अथवा दो तोलेका बनाकर उसके फनपर छः वा तीन मासेका मोती रक्खे घृतसे पूर्ण कर तांबे कांसे वा कांतिसार लोहके पात्रमें उसको रक्खे, दक्षिणापूर्वक ब्राह्मणको दे । चन्द्रग्रहणमें चाँदीके चन्द्रमाका बिम्ब बनाय दक्षिणासहित ब्राह्मणको दे सूर्यग्रहणमें सोनेके नाग वा सोनेके चन्द्रमाको अथवा घोड़ा, रथ, भूमि, गौ, तिल, घी सुवर्णको प्रदान करै, कालविवेकमें कहा है सुवर्ण, नाग वा सतिल कांस्यपात्र यह दक्षिणा और वस्त्रसहित ब्राह्मणको दे, ग्रहणदोषशान्तिके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सोने वा चांदीकी सूर्य चन्द्रमाकी मूर्ति बनाय ब्राह्मणको देनी चाहिये । मंत्र यह है–हे अन्धकारमय महाभयंकर सोमसूर्यके मर्दन करनेवाले सुवर्ण तारदानसे मुझे शान्ति दो हे सिंहिकानन्दन च्युत न होनेवाले चन्द्रको कष्टदायक हे राहो इस सुवर्णनागके दानसे मेरी ग्रहणके भयसे रक्षा करो । हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणके वचनसे इसकी शान्ति कही है कि जिसकी राशिपर ग्रहण हो उसको मंत्रौषधि सहित स्नान कहताहूं । चन्द्रग्रहण होनेपर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढवाय श्वेत माला और चन्दनसे चारब्राह्मणोंका पूजन कर ग्रहणसे पहलेही औषधी आदि लाकर स्वच्छ चार बडे जलसे भरे स्थापन करै, उनमें हाथी, घोडे, गली बामी दो नदियोंके संगमकी, कुण्ड, गोष्ठ, राजद्वार इतने स्थानोंसे मृत्तिका लाकर डाले, और पंचपल्लव, पंचगव्य, पंचरत्न, पंचत्वचा, गोरोचन, पद्मक, शंख, कुंकुम, लालचन्दन, सीपी, स्फटिक, तीर्थजल, सफेदसरसों, गूगल, महुआ, देवदारु,

विष्णुक्रांता, शतावर, वला, सहदेई, दोनों हलदी, हाथीदांत, उशीर, चन्दन इन सबको इन घडोंमें डालकर देवताओंका आवाहन करै कि, सब सागर, नदी, तीर्थ, मेघ, नद यजमानके पाप नाश करनेवाले यह सब घटोंमें आनकर प्राप्त हो आदित्योंके पति वज्रधारी सहस्रनेत्र इन्द्र इन ग्रहोंकी पीड़ाको दूर करो, सब देवताओंके मुखरूप सहस्रज्वाला युक्त अप्रमाण कान्तियुक्त अग्निदेवता चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीड़ाको दूर करो, जगत्के शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी, महिषवाहन धर्मरूप यम चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीड़ाको दूर करै॥

रक्षोगणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः। खड्गहस्तोतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ॥ स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु। प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः ॥ वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु। योसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ॥ चन्द्रोपरागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु। योसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥ चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः। त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ब्रह्मविष्णवर्करुद्राश्च दहन्तु मम पातकम्। एवमावाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः ॥ एतानेव तथा मन्त्रान्स्वर्णपट्टे विलेखयेत्। ताम्रपट्टेऽथवालिख्य नववस्त्रे तथैव च ॥ मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः। कलशान्द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् ॥ गृहीत्वा स्नापयेद्भद्रं भद्रपीठोपरि स्थितम्। पूर्वैरेव तु मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः ॥ अभिषेकं ततः कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः। आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत्॥ आचार्यदक्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः। होमं वापि प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ॥ दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम्। सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मंत्रांश्च कीर्तयेत् ॥ अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत्। न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥ २९ ॥" इति ग्रहणशान्तिः ॥

रक्षोगणोंके अधिपति नीलांजन पर्वतकी समान कान्तिमान् खड्गधारी भयंकररूप निर्ऋति ग्रहपीड़ाको दूर करो, नागपाशधारी देव सदा मकरपर चढनेवाले जलके अधिपति देव वरुण ग्रहपीड़ाको दूर करैं। लोगोंके प्राणरूप कृष्णमृगको सदा प्यारकरनेवाले वायु चंद्रग्रहणसे उत्पन्न हुई ग्रहपीड़ाको दूर करो। जो यह निधिपतियोंके देवता खड्ग, शूल, गदा धारणकरनेवाले कुबेरसो ग्रहपीड़ाको दूर करो। जो यह चन्द्रविम्बधारी पिनाकी वृषभवाहन देव हैं वह शंकर चन्द्रग्रहणसे उत्थितहुए पापोंको दूर करैं, त्रिलोकीमें जितने स्थावर जंगम प्राणी हैं वह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य मेरे पातकोंको नष्ट करैं, इस प्रकार वरुणमंत्रोंसे देवताओंका आवाहन करै और इन मंत्रोंको सुवर्णपट्टपर लिखै, ताम्रपट्ट अथवा नये वस्त्रमें लिखाकर वे ब्राह्मण श्रेष्ठ यजमानके मस्तकमें रक्खैं अनेक रूप सम्पन्न पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्त उन घडोंको निज हाथमें ग्रहण करके मंगलके आसनपर बैठे हुए यजमानको पूर्वोक्त मंत्रोंसे स्नान करावै और यह वारुण सूक्तके मंत्र पढ़े। फिर आचार्यको वरण करके स्वर्णपट्ट निवेदन करै। आचार्यको दक्षिणा और स्वशक्तिसे गोदान करै तिलोंसे व्याहृति पढकर हवन करै और अपना हित करनेके निमित्त शक्तिसे दान करै और सूर्यग्रहणमें सूर्यके नामके मंत्र पढकर मंत्रकीर्तन करै इस प्रकारसे जो ग्रहणमें स्नान करता है उसको ग्रहणमें कभी दोष नहीं लगता है। इति ग्रहणशान्तिः ॥

ग्रहणदर्शननिर्णयः।

भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते—" सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणैः। ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥ "

भार्गवार्चनदीपिकाके ब्रह्मसिद्धान्तमें लिखाहै कि, ग्रहणको आकाशमें जो देखैं तो वे सब वस्त्र, तेल, जल, दर्पणमें देखैं और गर्भवती स्त्रीको तो नेत्रोंके आगे वस्त्र डालकर देखना चाहिये अन्यथा कभी न देखै ॥

तत्रमंगलेवर्ज्यदिननिर्णयः ।

तथा मङ्गलकृत्येषु वेधविशेषो हेमाद्रौ-" त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ " प्रकारान्तरं तत्रैवोक्तम् -" द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः । एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥ " इदं च पूर्णग्रासे । ' त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः । ' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इदं च-' ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम् ' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्ग्रस्तास्तभिन्नग्रहणपरम् ॥

इसी प्रकार हेमाद्रिमें मंगल कार्योंमें वेधका विशेष लिखा है कि, चन्द्रसूर्य ग्रहणमें तेरससे नौदिनतक सम्पूर्ण मंगलकार्योंको त्यागदे और वहीं दूसरा प्रकार यह लिखाहै कि, द्वादशीसे तृतीया तक चंद्रग्रहणमें, एकादशीसे चतुर्थी तक सूर्यग्रहणमें वेध लगता है, परंतु सम्पूर्ण ग्रासमें यह वेध जानना, कारण कि, खण्डग्रहणमें उसी ग्रंथमें तीन दिन ग्रहण कहा है और यह वार्ता भी ग्रस्तास्तको छोड़कर दूसरे ग्रहणमें जाननी, कारण कि, नारदने ग्रस्तास्तसे प्रथम तीन दिन वेधकी विशेषता कही है ॥

ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः-"ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च रविणा भुक्त्वा मुक्तं भं दग्धकाष्ठवत् ॥ " अन्यानि चाग्नेयानि मण्डलानि, तत्फलं वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥

ज्योतिर्निबंधमें च्यवन ऋषि कहतेहैं कि, तीन ऋतुपर्यन्त ग्रहणके और उत्पातके नक्षत्रको मंगलकार्यमें छोड़ देना चाहिये और जबतक सूर्य उस नक्षत्रको भोगकर न छोड़े तबतक दग्ध काष्ठकी समान उसको त्यागदे इससे अन्य आग्नेयादिके मण्डल उनके फल और वर्णविकारादियोंके फल ज्योतिषियोंसे पूछकर जानने चाहियें ॥

तत्र पुरश्चरणम् ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्-" चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम् । तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल ॥ तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च । नमोन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ॥ द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु । तोयैरञ्जलिना शुद्धैरेभिः सिञ्चेत्स्वमूर्धनि ॥ मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत् । जपोर्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम् ॥ भूदेवपूजनं पञ्चप्रकारोक्ता पुरस्क्रिया ॥ " तथा-" होमाशक्तो जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम् । एवंकृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ॥ "

पुरश्चरणचन्द्रिकामें कहाहै कि, चंद्रसूर्यग्रहणमें सावधानीसे स्नान करके राहुके स्पर्शसे मोक्षतक मनको रोककर मंत्र जपै, मंत्र जितना पढा हो उससे दशांश हवन उससे दशांश तर्पण और तर्पणसे दशांश मार्जन करै, जिस देवताका मंत्र जपै उसको और अपनी आत्माको पूजन कर मंत्रके अंतमें नमः लगाकर मन्त्रको जपै, और द्वितीया विभक्ति देवताके अंतमें लगाकर कहै मैं अमुक देवताको स्नान कराता हूं (अहंसूर्यमभिषिञ्चामि) यह पढकर शुद्ध जलोंको अपने मस्तकपर छिडकै, और जितना मार्जन किया हो उसके दशांशसे ब्राह्मणोंको

जिमावै प्रथम करनेका कर्म पांच प्रकार लिखाहै, जप, पूजन, हवन, तर्पण, अभिषेक । ब्राह्मणोंका सत्कार भोजन करावै यदि हवनकी सामर्थ्य न होय तो हवनसे चौगुना जप करै ऐसा करनेपर मन्त्रकी उत्तम सिद्धि होती है ॥

कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहेप्रायश्चित्तम् ।

ग्रहणप्रसङ्गात् कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्यते । तत्रारुणस्मृतौ–" प्रतिग्रही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत् । तथापि मनसः शुद्ध्यै प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यादैन्दवेन समन्वितम् ॥ सत्रेण वा यजेताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम् ॥ वापीकूपतडागादिखननैर्विसृजेद्धनम् ॥ "इति ॥ एतच्च " यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति दानेन तपसैव च ॥" इति मनूक्तेरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति दिक् ॥

ग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेसे प्रायश्चित्त लगता है, यह अरुणस्मृतिमें लिखाहै कि, कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेवाला फिर पुरुष नहीं होता है, तो भी मनकी शुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्त करै । दो तप्तकृच्छ्र व्रत इंदुकृच्छ्र व्रतके सहित करै, अथवा सत्रद्वारा यजन करै वा सात लाख मन्त्रका जप करै, अथवा बावडी, कूप, सरोवरादिके खोदनेके अर्थ कुछ द्रव्य दे, यह प्रायश्चित्त भी इस मनुके वाक्यसे उसके धन त्यागनेके उपरान्त जानना । कि, जिस द्रव्यको ब्राह्मण निन्दितकर्म करके संग्रह करतेहैं, उसके त्याग वा दान तपस्यासे शुद्ध होते हैं यही नियम है ॥

ग्रहणेन्तरिते पूर्वसंकल्पितस्य द्वैगुण्यम् ।

ग्रहणान्तरितस्य पूर्वसंकल्पितद्रव्यस्य द्वैगुण्यं भवतीति शिष्टाः पठन्ति च लघुब्रह्मवैवर्ते– "दातव्यमिति नो काश्यां वक्तव्यं कुत्रचित्क्वचित् । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥ दशोत्तरं पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् । सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेऽनन्तकं स्मृतम् ॥" इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

प्रथम संकल्प किये द्रव्यके मध्यमें जो ग्रहण आजाय और वह न दियाजाय तो दूना होजाताहै यह शिष्टोंका कथन है लघुब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, काशी वा अन्य किसी क्षेत्रमें दूंगा ऐसा कभी न कहै कारण कि, अहोरात्र बीतनेपर दान दूना होजाता है । पर्वमें दशगुणा, चंद्रग्रहणमें सौगुणा और सूर्यग्रहणमें सहस्रगुणा और मरणमें अनंत होजाता है, इसमें मूल विचारने योग्य है ॥

तत्र केचिन्मतखण्डनम् ।

अत्र केचिद्वौद्धतुल्या आहुः ग्रहणस्य निमित्तत्वेन तन्निश्चयस्य प्रयोजकत्वात् । ज्योतिःशास्त्रादिना जातस्य ज्ञानस्य निमित्तत्वे प्राप्तेपि "स्नानं दानं ततः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरम् ॥" इति जाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चाक्षुषज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेन निमित्तत्वम् । अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात् । तेन मेघाच्छादनेन्धादीनाम् । ' जन्मसप्ताष्ट ' इत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्राद्धादौ नाधिकार इति ॥ कल्पतरुरप्याह दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते न ज्ञानमात्रम् । अज्ञानस्य निमित्तत्वासंभवान्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन दर्शनपदवैयर्थ्यापत्तेः । तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः पुण्यः । योग्यत्वं च प्रयत्नानपनेयचाक्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यं तेन मेघच्छन्ने योग्यताभावान्न स्नानादीति ॥ निर्णयामृतेप्येवम् ॥ तदेतत्तुच्छम् । यदि चाक्षुषज्ञानं निमित्तं स्यात्तदा–"सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् ॥" इति वाक्यं व्यर्थं स्यात् ।

चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभावात् । तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य ॥ न चेदं ग्रस्तास्तपरम् । रविचन्द्रयोरस्तानन्तरं रात्रिदिवाग्रहत्वादिति वाच्यम् । तत्र पदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगात् । निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्तकस्नानादेरस्तात् प्रागप्यभावापत्तेः ॥ अथ तत्रेति रात्रिदिने उच्येते–' सा वैश्वदेवी ' इतिवद्गुणभूते अपि । तन्न । तादृशमन्त्रलिङ्गाभावात् तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वे वाऽन्यप्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च ॥ किंच–" नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन। नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥" इति मनुवचनं बाध्येत । 'दृष्टो रिष्टप्रदो राहुः ' इत्यादि च । न चात्र विहिते दर्शने विषेधाप्रवृत्तिवत् पर्युदासनीयतापि न युक्तेति वाच्यम् । दर्शनस्यानुवादेन विधेयत्वाभावात् । एतच्चाग्रे वक्ष्यामः । तत्त्वे वा विरुद्धत्रिकद्वयापत्तेः ॥

इसपर कोई बौद्धोंकी समान कहतेहैं, ग्रहणके निमित्तत्व होनेसे दान जप आदिमें दान निमित्त है और वह निश्चयके विना नहीं हो सकता, ज्योतिःशास्त्रादिसे उत्पन्न हुआ ग्रहणका ज्ञान यद्यपि निमित्त हो सकताहै तथापि स्नान, दान, तप यह राहुके दर्शनमें अनंत होताहै चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जबतक दर्शन हो तो इस जाबालिके वचनसे दृष्ट प्रयोग होनेसे नेत्रोंसे देखनेको ही अंतमें न्यायसे निमित्तता हुई, ऐसा न करनेसे ग्रहणमें दर्शनकी लक्षणा माननी होगी, इससे मेघके आच्छादन होनेसे अंधोंको और नेत्रवालोंको जन्म, सातवीं और आठवीं राशियोंके निषिद्ध ग्रहणके देखनेसे स्नान और श्राद्धादिमें अधिकार नहीं रहैगा, कल्पतरुमें भी लिखाहै कि, दर्शनशब्दसे नेत्रोंसे देखनेका ग्रहण करना ज्ञानमात्र नहीं, अज्ञातकी निमित्तता नहीं हो सकती, अन्यथा ज्ञानकी प्राप्ति तो निमित्तकी महिमासेही होजाती, फिर दर्शनपद धरना वृथा था, इस कारण जिसकालमें ग्रहण नेत्रोंसे दीखने योग्य हो वही समय शुद्ध है, उसकी योग्यता यही है कि, प्रयत्नसे प्राप्त किये पदार्थसे नेत्रोंके दृष्टज्ञानके प्रति अवरोधक न हो इस कारण मेघाच्छादित आकाशमें नेत्रोंसे देखनेकी योग्यता नहीं है इसी कारण स्नान आदि नहीं होते निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार कहा है परंतु यह सब बौद्धोंकी समान कथन तुच्छ है, कारण कि, यदि निमित्त नेत्रावलोकनही होता तो यह कथन "सूर्यग्रहण रात्रिमें होय, दिनमें चन्द्रग्रहण होय तो न स्नान करै और न दान दे" व्यर्थ होजाता । कारण कि, नेत्रदर्शनके न होनेसे स्नान आदिकी स्वयंही प्राप्ति नहीं थी, और प्राप्त वस्तुका निषेध होता है और जो यह शंका करो कि, यह निषेध ग्रस्तास्तमें है, तो सूर्य चंद्रमाके अस्तके अनंतर भाविरात्रि और दिनका ग्रहण है सो यह शंकाभी ठीक नहीं है कारण कि, यह ग्रहपद ग्रहणका वाचक है, उसको ग्रस्तास्त समयपर नहीं मानाजा सकता, और यदि निमित्तका बोधक मानोगे तो अस्तसे प्रथम भी ग्रहणके निमित्त स्नान आदि न होंगे और यदि कहो कि, उक्तवचनमें तंत्र पदसे 'सावैश्वदेवी' (विश्वदेवादेवतावाली) आमिक्षाके तुल्य गौणभी रात्रि दिन कहेहैं सोभी यथार्थ नहीं इस प्रकार कोई मन्त्ररूप प्रमाण नहीं और जो रात अथवा दिनको निमित्त वा अधिकरण मानोगे तो दूसरेके निमित्त भी स्नानादिका अभाव प्राप्त होजायगा, और उदय वा अस्त हो तो राहुसे संयुक्त जलमें प्रतिबिम्ब, और मध्याह्नके सूर्यको आकाशमें न देखै इस मनुवचनका बाध होजायगा, ग्रहणके समय देखनेसे रोग करता है इत्यादि । और जैसे शास्त्रमें लिखे दर्शनमें निषेधकी प्राप्ति नहीं तैसेही निषेध मानना भी युक्त नहीं, ऐसी शंका करनी न चाहिये । कारण कि, निमित्तरूप दर्शनकी अनुवादता होनेसे वह शास्त्रोक्त नहीं कहा जा सकता और यह वार्ता आगे वर्णन करेंगे, और जो निमित्तको भी विधेय कहोगे तथा स्नानविधि मानोगे तो परस्पर विरुद्ध दो स्थानमें तीन तीन मानने पडेंगे ॥

अस्तु सकृद्दर्शनविधानेन संकोच इति चेन्न ॥ 'मुक्तिं दृष्ट्वा ततः स्नायात्' इति मुक्तिस्नानेपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः ॥ अस्तु किं नश्छिन्नमिति चेत् न । ग्रस्तास्ते तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिरिति दर्शनोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य पूर्ववेधकाल इव यावद्दर्शनं भोजननिषेधापत्तिः ॥ मध्येन्धीभूतस्य सुतरां यावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसङ्गश्च । अथान्नलोलुपतया तत्र ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते, तत् पूर्वमपि निर्लज्जेन स्वीक्रियताम् ॥ एतेन यत् केनचिदुक्तं स्पर्शस्नानं मुक्तिस्नानं च यस्य दर्शनं तेनैव कार्यम् । नान्येन । 'क्त्वाप्रत्ययेन समानकर्तृकत्वावगतेः' इति तन्निरस्तम् ॥ का तर्हि तस्य गतिः । दृशेरुद्देश्यविशेषणत्वात् ग्रहैकत्ववदविवक्षयार्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्वं सुस्थम् ॥ अंगुलाद्यनादेश्यग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम् ॥ न चोक्तयोग्यतापि साध्वी दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताभावापत्त्या दानाद्यभावापत्तेः ॥ तेन तत्तद्देशावच्छेदेन ज्योतिःशास्त्रवेद्यत्वमेव योग्यता ॥ किंच–' रजसो दर्शने नारी त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसङ्गः ॥ यत्तु वर्धमानेनोक्तम्–'ज्ञानोत्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले' । स्नानकाले ज्ञानाभावात् । एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्तमस्त्येव योग्यतेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम् ॥ किंच ग्रस्तास्ते–'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाऽभ्यवहरेच्छुचिः' इत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः । चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये स्नानसिद्धेः ॥ ननु मुक्तिस्नाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं न चाक्षुषम् ॥ "चन्द्रसूर्यग्रहे नाऽद्यात्तस्मिन्नहनि पूर्वतः । राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम्" इति वृद्धगौतमेन विज्ञायेति ज्ञानमात्रोक्तेः ॥ यत्तु–'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्' इति तदपि ज्ञानमात्रपरम् । "मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते । आकलय्य तु तं कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः" इति गौडनिबन्धे वचनात् ॥ मैवम् । अज्ञातस्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलभे वाक्यवैयर्थ्यात् । ग्रस्तास्तेपि तदापत्तेश्च ॥

अस्तु एकवार दर्शनके विधिसे संकोच मानना भी यथार्थ नहीं कारण कि, राहुसे मोक्ष देखकर स्नान करै, इस मोक्षसे भी नेत्रदर्शनकी निमित्तता प्राप्त होगी; जो कहो इसमें हमारी क्या हानि है, सोभी उचित नहीं कारण कि ग्रस्तास्त होनेपर ग्रहणके अगले दिन दर्शन कर शुद्ध हो भोजन करे इस वाक्यके अनुसार पश्चात् भोजन करना कहा है इससे जिसप्रकार पूर्ववेधमें अन्धे मनुष्यको भोजनका निषेध है इसी प्रकार चन्द्र सूर्यके देखने तक भोजनका निषेध होजायगा, जो मनुष्य मध्यमें अन्धा हुआ है उसको जबतक दर्शन न हो तबतक उपवास करना होगा (बहुत सूर्यके दर्शनसे नेत्रज्योति मलीन होजाती है)। यदि कोई अन्नके लोभसे दर्शनसे ज्ञानमात्रका ग्रहण करे सोभी ठीक नहीं. कारण कि, यह अलज्जावाला उससे प्रथमभी ज्ञानमात्रको पहले क्यों नहीं मान लेता, इससे यह वार्ता भी परास्त हुई । जो कोई कहतेहैं कि, स्पर्श और मुक्तिका स्नान उस मनुष्यको करना चाहिये जिसने देखा हो दूसरेको नहीं । जिससे कि, क्त्वाप्रत्यय दृष्ट्वाके सदृश दर्शन और स्नानका कर्ताही प्रतीत होता है तो इसकी दशा क्या होगी, ऐसा कहनेपर इसकी गति यह है कि, दर्शन उद्देश्यका विशेषण है ग्रहणके एकत्वकी समान इसकी विवक्षासे अर्थात् प्राप्तज्ञानमात्रके अनुवाद दर्शनको स्वीकार करनेसे सम्पूर्ण यथार्थ है, अंगुली आदिके

विना बताये ग्रहणके निषेधसेही दर्शनपद सफल होजायगा, और पूर्वोक्त दर्शनकी योग्यता ठीक करनेकी शंका उचित नहीं. कारण कि, दर्शनके पश्चात् मेघोंसे आच्छादित होजाय तो दर्शनकी योग्यताके अभावसे दान आदिका भी अभाव प्राप्त होजायगा, इससे ज्योतिःशास्त्रसे उस रेखामें ग्रहणके अज्ञानको अदर्शनकी योग्यता कही है, रज दीखनेसे स्त्री तीन रात अपवित्र होती है इस वाक्यमें अन्धी स्त्रियोंको अशौच न होगा, और जो वर्द्धमान यह कहतेहैं कि, ज्ञान होनेके पीछे स्नानका अधिकार होगा कारण कि, स्नानके समयमें ज्ञानका अभाव है इसीप्रकार दर्शनसे राहुग्राससे मुक्तिपर्यन्त योग्यता है, यह वर्द्धमानका वाक्य प्रतिज्ञामात्र जानना यथार्थमें नहीं कारण कि, ग्रस्तास्ते—अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रस्तास्तमें दोनोंको देख शुद्ध हो भोजन करै, नेत्र विषयकज्ञान होनेसे अन्यथा अनुपपत्तिसेही उदयमें स्नान सिद्ध है, यदि कहो राहुसे मोक्षके स्नानमें शास्त्रीय ज्ञान निमित्त है, नेत्रसे नहीं, सोभी ठीक नहीं. कारण कि, चन्द्र सूर्य ग्रहणमें उस दिन प्रथम भोजन न करै, किन्तु राहुमुक्तिको जानकर स्नानके उपरान्त भोजन करना चाहिये, विज्ञायपदसे वृद्धगौतमने ज्ञानमात्र अर्थ किया है और जो गौडनिबन्धमें यह लिखा है कि, पुनः राहुसे मोक्षको देख स्नान करने-उपरान्त भोजन करे और जो मेघोंके आच्छन्न रहनेसे मुक्ति न दीखे तो मोक्षके समयको शास्त्रसे जान स्नानके उपरान्त मौन हुएही भोजन करै, यह गौडनिबन्धका कथन ठीक नहीं कारण कि, जब अज्ञानकी निमित्तता हुई तो उसके निमित्तकी महिमासेही ज्ञानकी प्राप्ति होजायगी तो वाक्य व्यर्थ होजायगा, और ग्रस्तास्तमें भी भोजनकी प्राप्ति होजायगी ॥

किं च दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा ॥ नाद्यः ॥ दर्शनावच्छिन्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात् । दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहणनिमित्तं स्यात् ॥ नान्त्यः । 'यावद्दर्शनगोचरः' इति यावत्पदवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च ज्ञानपक्षेप्येष दोषस्तुल्य इति चेत् । मूर्खोसि । यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयते ततस्तस्यान्वयो विचार्येत ॥ दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम् ॥ कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते । 'संक्रान्तौ स्नायात्' इतिवदर्थादित्यवेहि ॥ अश्रुतत्वादेव नोद्देश्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोपि ॥ अस्तु तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत् । ग्रस्तास्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः ॥ विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् । 'यावद्दर्शनगोचरः' इति वचनेन तन्निषेधात् ॥ तत्त्वन्यग्रह इव ग्रस्तास्तेपि स्यात् ॥ किं च दर्शनस्य विधिरपवादो न वा । आद्ये । ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिः, न तु दर्शनविशिष्टस्नानविधिः, उत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः ॥ नाद्यः ॥ ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शनविधाने च वाक्यभेदात् ॥ एतेन द्वितीयोपि परास्तः ॥ न तृतीयः स्नानस्याप्राप्तेः । दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च ॥ अन्यथा सोमवमनादौ प्रसज्जनविधिः केन वार्येत ॥ अथ नानावाक्येषु क्वचिद्दर्शनविशिष्टस्नानविधिः क्वचिच्च प्राप्तं दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नानमात्रविधिः ॥ तन्न ॥ स्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शनप्राप्तिः तस्यां च निमित्ते सति स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधानस्नानविधौ तदङ्गदर्शनविधिः । एवमधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् ॥ दृष्ट्वेति उक्तार्थपूर्वकालत्वविधौ चास्त्येव वाक्यभेदः । अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमङ्गं स्यात् ॥ न द्वितीयः ॥ तत्रापि दर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः । दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसङ्गात् । दर्शनविशिष्टग्रहस्य

विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः ॥ न च हविरार्तिवद्विशिष्टं निमित्तमिति वाच्यम् ॥ आर्त्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निर्निमेषाद्यार्तेरपि तत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभङ्गाद्युक्तं विशिष्टोद्देशत्वम् ॥ इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न काचित् क्षतिः ॥ तस्माद्दर्शनवाक्यानां ग्रस्तास्तविषयत्वादनादेश्यग्रहपरत्वाद्वा ज्ञानस्य स्वार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तं तेन मेघाद्याच्छादनेऽन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवेत्यलं वेदबाह्यैः संलापेन ॥ इति ग्रहणनिर्णयः ॥

दर्शन पुरुषका विशेषण या उपलक्षण है, विशेषण अपने विशेष्यमें स्थित रहकर दूसरेको हटाता है, इसमें पहला विशेषण नहीं होसकता. कारण कि, ग्रहण दर्शनसे युक्तकालमें स्नान और तुलादानादि नहीं होसकते, और जब दर्शनका अभाव अर्थात् सूर्यग्रहणकी ओरसे दृष्टि हटी हुई है तब इस विचारसे कियेहुए स्नानादिमें ग्रहण निमित्त न होगा, दूसरा उपलक्षण भी ठीक नहीं. कारण कि, जबतक दीखे इसमें यावत् पद व्यर्थ होजायगा, और दृष्टग्रहणके पश्चात् भी स्नान तुलादानादि करने होंगे, यदि कहो यह दोष तो ज्ञानपक्षमें भी तुल्य है, तो यह अज्ञता है, कारण कि, ज्ञानवाचकपद वाक्यमें दृष्ट होनेसे किसप्रकार ज्ञान प्राप्त होगा सो ठीक नहीं, संक्रान्तिमें न्हाना चाहिये, जिसप्रकार यहां संक्रांतिका ज्ञान ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दर्शनसे दर्शनका ज्ञान ग्रहण करते हैं इसप्रकार जानना चाहिये। और वाक्यमें अश्रूयमाण होनेसे विशेषतासे जब देवताके निमित्त विवक्षाकी उस समयभी वाक्यभेद तो होगाही, यदि कोई शंका करे जो ऐसा है तो दर्शनको ही ग्रहणमें निमित्त मानो तो ग्रस्तास्तके उपरान्त भी स्नानकी प्राप्ति होगी, और विशेषणके सहितको उद्देश्य स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद होगा। जो शंका करो तुम्हारे मतमें भी यह समान है सो ठीक नहीं, कारण कि जबतक, दर्शन हो इस वाक्यसे हमारे मतमें तो दर्शनके अभावमें स्नानकी मनाई है। हां तुम्हारे मतमें दूसरे ग्रहणकी समान ग्रस्तास्तमें भी स्नानकी प्राप्ति होगी, और यह तो कहो यहां दर्शनका विधान है वा अनुवाद ? पहला नहीं होसकता कारण कि, ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनकी विधि है अथवा दर्शनके सहित स्नानकी विधि है वा स्नानके उद्देश्यसे दर्शनका विधान है इन तीनोंमें भी प्रथमका विधान नहीं होसकता जो ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनका विधान तथा स्नानविधान स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद आवेगा, इससे दूसरा पक्षभी खण्डित हुआ, तीसरा पक्षभी ठीक नहीं. कारण कि, जब स्नानही प्राप्त नहीं और दर्शनका निमित्त होनेसे निषेध भी संभव नहीं होसकता, अन्यथा सोमवमनमें प्रसंगविधिको कौन निवारण कर सकता है। यदि कहो विविध वाक्योंमें कहीं तो दर्शनके सहित स्नानकी विधि है, और कहीं प्राप्तदृष्टको निमित्त मानकर स्नानमात्रका विधान है, सो यह कथन ठीक नहीं. कारण कि, इसमें अन्योन्याश्रयदोष प्राप्त होता है कि, प्रधान स्नान विधिके विना प्राप्त हुए उसके अंग दर्शनकी प्राप्ति नहीं होसकती, और यदि दर्शनको निमित्त स्वीकार करो तो स्नानकी प्राप्ति होगी इसप्रकारसे दर्शनविधि होवेगी, तो उसके निमित्तवाले स्नानकी विधि प्राप्त होगी, और प्रधान स्नानकी विधि होनेपर उसके अंगदर्शनका विधान प्राप्त होगा, और अधिकारक प्रेरक स्वीकार करनेमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। तथा दृष्ट्वा इस पूर्वोक्त पदमें क्त्वाप्रत्ययके अर्थसे पूर्वकालकी विधिमें वाक्यभेद अवश्य होताही है, नहीं तो स्नान अंगके पीछे भी दर्शन अंगकी प्राप्ति होजायगी, दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, यदि उसमें दर्शन और ग्रहणको निमित्त मानोगे तो दो स्नानकी प्राप्ति होगी, यदि दर्शनकी आवृत्ति स्वीकार करोगे तो उसके नैमित्तिककी आवृत्तिका प्रसंग होजायगा, और यदि दर्शनविशिष्ट ग्रहणको अनुवाद स्वीकार करो तो वाक्यभेद होगा और जो यह कहो कि, दुःखमें हविकी समान विशिष्टको निमित्त स्वीकार करेंगे, यह पक्ष भी ठीक नहीं कारण कि, दुःखमात्रको निमित्त माननेसे

निमेषके दुःखको भी निमित्तताकी प्राप्ति होगी तब निमित्तकता भंग होगी; इससे विशिष्टको उद्देश्यतायुक्त मानना पडेगा । और इस स्थलमें तो ग्रहणका निमित्त स्वीकार करनेमें कोई क्षति नहीं है इसकारण दर्शन वाक्योंका ग्रस्तास्त विषय होनेसे वा अनुद्दिश्य (जो कहीं कथन न किया हो) ग्रहणका विषय होनेसे अर्थसे ज्ञानही प्राप्त है, इसकारण यही निमित्त है, इसी कारणसे बादलोंके घिरे रहनेसे भी अन्ध आदिकोंको स्नानादिक करनेही पडेंगे । अब वेदबाह्य चलनेवालोंके साथ बहुत वार्ता नहीं करते । इति ग्रहणनिर्णयः ॥

समुद्रस्नाननिर्णयः ।

अथ समुद्रस्नानम् ॥ आश्वलायनः–"समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः । पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन् ॥ भृगुभौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत् ॥" भारते–"अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्प्रष्टव्यौ कदाचन । अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये स्कांदे–"पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः । कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि ॥" अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखण्डे–"पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे । सेतुबन्धे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयुतः ॥ एवमादिषु सर्वेषु मध्येऽन्ये तु स्वकर्मणि ॥" तथा–"विना मंत्रं विना पर्व क्षुरकर्म विना नरैः । कुशाग्रेणापि देवेशि न स्प्रष्टव्यो महोदधिः ॥" तथा 'न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि ॥' तद्विधिश्च तत्रैव–"पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे । पाषाणस्ते मया दत्त आहारार्थं प्रकल्प्यताम्" इति पाषाणं प्रक्षिप्य "विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते । सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि ॥ नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते । नमो जलधिरूपाय नदीनां पतये नमः ॥ नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर । देव देहि ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे ॥ त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम् । सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥ ४ ॥ " "अग्निश्च योनिरनिलश्च देहे रेतोधा विष्णुरमितस्य नाभिः । एतद्ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् " इति भारतोक्तमन्त्रान् पठित्वा विधिवत्स्नात्वा । "सर्वरत्नो भवाञ्श्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः । सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहणार्घ्यं महोदधे ॥ " इत्यर्घ्यं दत्त्वा तर्पयेत् ॥ यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे–"पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं जीविकेश्वरम् । वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम् ॥ वाल्मीकिं नारदं चैव वालखिल्यांस्तथैव च । नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् ॥ जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा । मैन्दं च द्विविदं चैव ऋषभं शरभं तथा ॥ रामं च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम् । एतांस्तु तर्पयेद्विद्वाञ्जलमध्ये विशेषतः ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छतु ॥ ५ ॥ इति ॥

इति श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

अब समुद्रस्नान कहते हैं । आश्वलायन कहते हैं–समुद्रमें पर्वमें और विशेषकर अमावस्याको स्नान करै तो उसके सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं शुक्र और मंगलको कभी सागरमें स्नान न करै, भारतमें कहा है पीपल और सागरकी सेवा करै पर इनको छुवै नहीं, शनिको पीपल और पर्वमें सागरको स्पर्श करै । पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पर्वमें स्नान और तर्पण करनेसे समुद्र पवित्र करताहै, और इसके विना स्नान न करै वहीं प्रभासखण्डमें इसका अपवाद लिखा है कि, पर्वके प्राप्त होनेपर नदियोंके

संगम, सेतुवन्ध, तीर्थ तथा और सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पवित्रता होती है, तथा दूसरे कर्म करनेसे भी पवित्र हैं. तथा हे पार्वति ! विना मन्त्र विना पर्व और विना क्षौर कराये कुशाके अग्रभागसे भी मनुष्योंको सागरका स्पर्श करना न चाहिये, तथा समुद्रके स्नानमें सेतुवन्धपर कालका नियम नहीं है उसी स्थलमें स्नानका विधान भी कहाहै । हे पिप्पलादसे प्रगट राक्षसी ! लोकोंको भयदेनेवाली ! मैं यह पाषाण तुझे देताहूं तू इसे भोजनके निमित्त कल्पना कर, इस प्रकार सागरमें पाषाण फैंककर इन भारतके मन्त्रोंको उच्चारण करै, हे विश्वाचि, हे घृताचि, हे विश्वके कारण जगत्के रक्षक ! क्षार समुद्रमें तुम इस समय विराजो, हे विश्वरक्षक विष्णु, जलोंके स्वामी, सागररूप नदियोंके पति ! आपको प्रणाम है, हे जगत्के आधार शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! आपको प्रणाम है, हे देवस्व ! तीर्थ सेवनके निमित्त मुझे आज्ञा दीजिये, तीन तत्त्वस्वरूप ईशान विष्णु और शिवको प्रणाम है. हे देवेश ! इस क्षारसमुद्रके जलमें सन्निधि करो, जो भगवान अग्नि और वायुके कारण हैं अमृतके स्थान और वीर्यके देनेवाले हैं वे प्राप्त हों. हे पाण्डव ! इसप्रकार सत्यवाक्योंको उच्चारण कर सागरमें स्नान करै इस प्रकार भारतके मन्त्र पढ विधिपूर्वक स्नान करके इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर तर्पण करै. हे सागर ! आप सब रत्नोंके देनेवाले श्रीमान् और रत्नोंके आकर सब रत्नोंके प्रधान हैं, हे सागर हमारा अर्घ्य ग्रहण करो इस प्रकार अर्घ्य दे तर्पण करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणके वचनसे यह तर्पण लिखाहै कि, पिप्पलाद, विकण्व, कृतान्त, जीविकेश्वर, वशिष्ठ, वामदेव, पराशर, शिव, वाल्मीकि, नारद, वालखिल्य, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, जाम्बवंत, हनूमान, सुग्रीव, अंगद, मैन्द, द्विविद, ऋषभ, शरभ, राम, लक्ष्मण, यशस्विनी सीता, विद्वान् इनको जलके मध्यमें स्थित हो विशेषकर तर्पण करै, ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त जो कुछ चराचर हैं वह सब इस हमारे दिये जलसे तृप्ति प्राप्त करैं ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ कान्यकुब्जवंशावतंसमिश्रसुखानंदसूरिसूनुपण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतनिर्णयसागरसेतुनामके भाषानुवादे प्रथमःपरिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

इति निर्णयसिन्धोः प्रथमपरिच्छेदः ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय–बंबई.

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ–

द्वितीयपरिच्छेदः २.

दोहा–राम लखन सीतासहित, भरतचरण शिर नाय ॥
तिथिनिर्णयतिथिकृत्यकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

अब संवत्सरकी प्रतिपदासे प्रारम्भ कर प्रायः इस ब्रह्मपुराणके कथनानुसार तिथिनिर्णय और तिथियोंका कृत्य लिखतेहैं:–

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य । "तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्" इति ब्राह्मं प्रायशोनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते । तत्र मीनसंक्रान्तौ पश्चात् षोडश घटिकाः पुण्यकालः। रात्रौ तु निशीथात्प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनार्धं पुण्यम् । निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादवसेयम् ॥

तिथियोंके कार्यमें कृष्णपक्षसे और व्रतोंमें शुक्लपक्षसे और विवाह आदिमें संक्रान्तिसे मासको माने, वहां मीनसंक्रान्तिमें पिछली सोलह घड़ीका पुण्यकाल होता है, और रात्रिमें आधी रातसे प्रथम संक्रान्ति होय तो पूर्वदिनमें और आधीरातसे परे होय तो पर निर्णयसे जानना चाहिये । और आधीरातमें होनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होताहै यह सामान्य निर्णय है ॥

तिथिनिर्णये चैत्रशुक्लप्रतिपन्निर्णयः ।

अथ तिथिनिर्णयः ॥ तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारम्भः तत्रौदयिकी ग्राह्या । "चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ॥ शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति" इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे–"चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः ॥ उदयद्वितये पूर्वा नोदययुगलेपि पूर्वः स्यात् ॥ यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः" इति " वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः" इति ॥ वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ "चैत्रमासस्य या शुक्लप्रथमा प्रतिपद्भवेत् ॥ तदाह्नि ब्राह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम् ॥ संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनन्दन" इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः ॥ यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा दैवकार्यस्य

तत्र निषिद्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः ॥ निष्कर्षस्तु—'शुक्लादेर्मलमासस्य सोंतर्भवति चोत्तरे' इत्यादिवचनादग्रिमवर्षान्तःपातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयं प्रतीमः ॥ ननु शुक्रास्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावायुक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम् । मलमासे तु शुद्धप्रतिपदन्तरस्य सम्भवात् शुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत् भ्रान्तोसि न हि प्रतिपदन्तरसत्वं प्रयोजकं द्विःकरणापत्तेः वर्षद्वयापत्तेश्च । अपि तु वत्सरारंभः स तु मलमासेपीत्युक्तम् प्राक् ॥

चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको वर्षका प्रारम्भ होता है उसमें उदय समयकी प्रतिपदा लेनी. कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका यह कथन लिखा है कि, चैत्रमहीने प्रथम दिन शुक्लपक्षमें सूर्योदयके समय ब्रह्माने सब जगत्को रचा है, यदि दोनों दिन सूर्योदयमें हों वा दोनों दिन सूर्योदयमें न हों तो पहली माननी, यही ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयमें जो दिन हो वही वर्षका राजा होता है, यदि दोनों दिन सूर्योदयमें प्रतिपदा हो वा दोनों दिन न होय तो प्रथम प्रतिपदाका दिनही राजा होता है. कारण कि, चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको सूर्योदयसेही वर्ष आदिका प्रारम्भ होता है, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि, वत्सर और वसंतकी आदिमें और बलिके राज्यमें बुद्धिमान् मनुष्यको पूर्वविद्धा ही प्रतिपदा करनी चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, हे भृगुनन्दन ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी जो प्रथम प्रतिपदा होय उसी दिन ब्रह्माका अर्चन और व्रत करनेसे मनुष्य वर्षदिनतक सुखको प्राप्त करता है । यह किन्हीका मत है. सिद्धान्त तो यह है कि, शुक्लपक्ष आदि मलमासके अन्तर्गत वह अगला मास आजाता है, इत्यादि वाक्यसे अग्रिम वर्षके अन्तरमें आयेहुए मलमाससेही वर्षकी प्रवृत्ति होती है, इससे मलमासमेंही शुक्र आदिके अस्तके तुल्य वर्षका प्रारम्भ करना यह हम जानते हैं, यदि कोई शंका करे कि, शुक्रास्त आदिमें चैत्रकी दूसरी शुक्लपतिपदा नहीं है, इससे शुक्र आदिके अस्तके मध्यही वर्षका आरम्भ करते हैं, मलमासमें तो शुद्धप्रतिपदा प्राप्त हो सकती है इससे शुद्धमेंही वर्षका आरम्भ उचित है, इस शंका करनेवालेको कहना चाहिये कि, तुम भ्रान्त हो कारण कि, दूसरी प्रतिपदाका होना पूजन और उपवासमें प्रयोजक नहीं है, अन्यथा दो बार पूजन करना पडेगा । वर्षके नृपति दो होजायंगे किन्तु वर्षका आरम्भही पूजनमें प्रयोजक है, वा मलमासमें भी होता है यह पहिले कह आये हैं ॥

न हि 'चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेन्तर्भवति' इति ब्रह्मणापि सुवचम् ॥ तत्र तैलाभ्यङ्गो नित्यः । "वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इति वसिष्ठोक्तेः ॥ अस्यामेव नवरात्रारम्भः ॥ तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ' इति तत्र परयुतैव ग्राह्या—" अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता " इति देवीपुराणात् ॥ "तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनंदन । कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत" इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः पराः परयुताः । अत्र विशेषः । पारणानिर्णयश्च शारदनवरात्रे वक्ष्यते ॥ अत्र प्रपादानमुक्तमपरार्के भविष्ये—"अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत्" इत्युपक्रम्य । "ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः । अनिवाय ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्" इति ॥ तथा—"प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना । प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ॥ ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।" तत्र

मंत्रः-"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥" "अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोपि प्राप्नोतीह न संशयः" इति ॥

चैत्रशुक्ल आदि मलमास पूर्ववर्षमें नहीं होते, यह ब्रह्माभी नहीं कह सकते हैं। वर्षके प्रारम्भ होनेमें तेलका मलना नित्य है, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह कहा है कि, वर्ष और वसंतके आरम्भमें और बलिके राज्यमें जो तेल न मले वह नरकमें जाता है, इस प्रतिपदामेंही नवरात्रका आरम्भ होता है, यही मार्कण्डेयपुराणमें लिखाहै कि, शरत्कालमें और वर्षके प्रारम्भमें जो पूजा होजाती है उसमें मेरे माहात्म्यको पढना चाहिये, नवरात्रके आरम्भमें दूसरी (२) तिथिसे युक्त प्रतिपदा ग्रहण करनी. कारण कि, देवीपुराणमें लिखा है कि, चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाका ग्रहण न करना. किन्तु द्वितीया आदिके गुणोंसे युक्त मुहूर्तमात्र प्रतिपदाभी होय तो वही करनी, और हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, हे कुरुनन्दन ! ये तीनों प्रतिपदा तिथि परतिथियोंसे युक्त करनी चाहियें, कि कार्तिक आश्विन और चैत्रकी इनमें विशेष और पारण आदिका निर्णय शरदृतुके नवरात्रमें लिखेंगे, इसमें प्रपाका दानभी अपरार्कमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फाल्गुन महीनेके बीतनेपर और चैत्रके महोत्सवके आनेपर ब्राह्मणके बताये पवित्र दिनमें प्रपाके दानका प्रारम्भ करे यह लिखकर कहा है कि, फिर इस मन्त्रसे प्रपादान करे, कि प्रपा सब प्राणियोंके निमित्त सामान्यरीतिसे कीहुई है, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों, चार मासतक जल देना और किसीको निषेध न करे इसीप्रकार कहाहै, कि जो मनुष्य प्रपाके देनेमें अशक्त है और धर्मकी इच्छा करता है, वह वस्त्रसे ढककर शीतल और निर्मल जलसे भरा घडा ब्राह्मणके घरमें प्रतिदिन पहुँचादे उसका मन्त्र यह है कि, ब्रह्मा बिष्णु शिवरूप यह धर्मघट आपको दिया है, इसके दानसे मेरे मनोरथ सब पूर्ण हों, इस विधिसे जो धर्मघटको देते हैं, वहभी इस लोकमें प्रपादानसे फलको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥

चैत्रशुक्लतृतीयानिर्णयः ।

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतां संपूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् । तदुक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे-"तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् । कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥ स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः । आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवोमातुष्ट्ये सदा" इति ॥ अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या 'मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे' इति माधवोक्तेः ॥ अत्रैव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं मात्स्ये-"वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखेप्सुभिः" इति । तत्रापि परयुतैव ॥ इयं च मन्वादिरपि ॥

चैत्रशुक्ला तृतीयाको शिवजीसे युक्त गौरीका पूजन करके दोलोत्सव करे यही निर्णयामृतमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, तृतीयामें शंकरसे संयुक्त देवीका कुंकुम, अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, गन्ध, धूप, दीपसे और विशेषकर मौलसरीके फूलोंसे पूजन करै, फिर शिव और पार्वतीकी प्रसन्नताके निमित्त झुलावे माधव कहते हैं यह चतुर्थी युक्त लेनी मुहूर्तमात्रभी होनेपर दिनमें गौरीव्रत करै इसी तिथिको मत्स्यपुराणमें सौभाग्यशयनव्रत लिखा है कि, वसंत मासकी तृतीयाको मनुष्योंको प्रिय शयन पुत्रसुखकी इच्छावाली स्त्रीको अपने सौभाग्यके निमित्त करना चाहिये । इनमें भी चतुर्थीयुक्त तृतीयाका ग्रहण करना, और यह मन्वादि भी है ॥

मन्वादिनिर्णयः ।

अत्रैव प्रसङ्गात्सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते । ताश्चोक्ता दीपिकायाम्-

"तिथ्यग्नी न तिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहः । तिथ्यर्कौ न शिवोऽश्वो मा तिथी मन्वादयो मधोः" इति ॥ तिथिः पूर्णिमा । अग्निस्तृतीया नेति वैशाखे नास्तीत्यर्थः" आशा दशमी ॥ कृष्णेभः कृष्णाष्टमी ॥ अनलस्तृतीया ॥ ग्रहो नवमी ॥ अर्को द्वादशी ॥ नेति मार्गशीर्षे नास्तीत्यर्थः । शिव एकादशी । अश्वः सप्तमी । मधोश्चैत्रादारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्र्यादौ ज्ञेयानि ॥ एताश्च मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः पौर्वाह्णिकाः कृष्णपक्षस्था आपराह्णिका ग्राह्याः । "पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः ॥" इति गारुडवचनात्' ॥ 'अथो मन्वादि युगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया आपराह्णिकाश्च बहुले' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ कालादर्शे त्वपराह्णव्यापित्वं मन्वादिषूक्तं तत्त्वयुक्तमिति युगादिनिर्णये वक्ष्यामः ॥ अत्र च श्राद्धमुक्तं मात्स्ये–"कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत् ॥" इति । मन्वादिश्राद्धं च मलमासे सति मासद्वयेपि कार्यम् । 'मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे–"विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु । विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥" इति ॥ मन्वादिश्राद्धं नित्यम् । अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने–"स्रुवं स्रुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः॥" इति ॥ एवं यत्र प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि षण्णवतिश्राद्धानि नित्यानि ॥ तानि तु "अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः ॥ अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥" इत्युक्तानि ॥ चकारादष्टकाग्रहणम् । द्वासप्ततिः पुत्रकाम्यानि श्राद्धानि–"पित्रोः क्षये त्वमावस्या ऋतुसंक्रान्त्ययनन्तकाः । अपरपक्षे नवान्ने द्वे मन्वादिषु युगादिषु ॥ आषाढी कार्तिकी माघी वैशाख्यमित्ययनन्तकाः ॥" २ । १२ । ६ । १२ । १६ । २ । १४ । ४ । ४ । मिलित्वा द्वासप्ततिः ॥

यहांपरही प्रसंगसे सब मन्वादि तिथियोंका निर्णय लिखते हैं, और वे दीपिकामें लिखी हैं कि, चैत्रमें पूर्णिमा, और तृतीया, ज्येष्ठमें पूर्णिमा, और आषाढमें पूर्णिमा और दशमी, श्रावणमें कृष्णपक्षकी अष्टमी, भाद्रपदमें तृतीया, आश्विनमें नवमी, कार्तिकमें पूर्णिमा और द्वादशी, पौषमें एकादशी, माघमें सप्तमी, फाल्गुनमें अमावस्या, और पूर्णिमा यह चौदह तिथि चैत्रसे लेकर मन्वादि होती हैं । और वैशाख और मार्गशिरमें नहीं होती इनके प्रमाणके वाक्य हेमाद्रिमें लिखे हैं, और ये मन्वादितिथि हेमाद्रिके मतसे शुक्लपक्षकी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी कारण कि, गरुडपुराणका यह वाक्यहै कि, मनु आदि और युगआदि तिथि शुक्लपक्षकी सदैव पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी सदा अपराह्णमें, देव और पितरोंके कर्ममें ग्रहण करनी । और दीपिकामें भी यही लिखा है कि, मन्वादि और युगादि कर्म तिथि शुक्ल पक्षमें पूर्वाह्णकी और कृष्णपक्षमें अपराह्णकी जाननी चाहिये कालादर्शग्रंथमें तो यह लिखाहै कि, मन्वादि तिथि अपराह्णव्यापिनी भी लेनी सो युक्त नहीं है, यह युगादि निर्णयमें लिखेंगे, इन तिथियोंमें श्राद्ध करना भी मत्स्यपुराणमें लिखाहै, मन्वादि और युगादि तिथिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करनेसे दो सहस्र वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है और मलमास होय तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें करना चाहिये, कारण कि, स्मृतिचंद्रिकामें यह लिखाहै कि,

मन्वादि श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध दोनों महीनोंमें करै और इनमें पिंडरहित श्राद्ध करै, यही कालादर्शमें कहा है कि, विषुव (तुला मेष) और अयनकी संक्रान्ति और मन्वादि और युगादिमें पिण्डदानको त्यागकर सम्पूर्ण श्राद्ध करै, और मन्वादि नित्य लिखाहै कारण कि, इसके न करनेमें प्रायश्चित्त लिखा है, यही ऋग्विधानमें लिखाहै कि, जो पुरुष मन्वादिकोंको पिण्डरहित श्राद्ध नहीं करता है वह त्वंभुवः प्रति, इस मंत्रको जलमें सौ १०० बार जप करै इसप्रकार प्रायश्चित्तके देखनेसे दर्श आदि अनन्त पर्यन्त छानवे ९६ श्राद्ध नित्य करने लिखे हैं । और वे इस प्रकार कहे हैं कि, अमावस्या १२, युगादि ४, संक्रान्ति १२, वैधृति १२, व्यतिपात १२ । महालय (कन्यागत) १६, अन्वष्टका १२, ये बानवे लिखे हैं और चकारसे चार अष्टका ग्रहणहैं, और बहत्तर श्राद्ध पुत्रकाम्य कहे हैं कि, माता पिताके मरनेके दिन २, अमावस्या १२, ऋतु ६, संक्रान्ति १२, अनन्य आषाढ, कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमासी ४ अपरपक्ष (कन्यागत) १६, नवान्न २, मन्वादि १४, युगादि ४, ये सब जोडनेसे बहत्तर होतेहैं ॥

दशावतारजयन्त्यः ।

चैत्रशुक्लतृतीयैव मत्स्यजयन्ती ॥ अत्रैव प्रसंगाद्दशावतारजयन्त्यो निर्णीयन्ते । तत्र पुराणसमुच्चये-" मत्स्योऽभूद्धुतभुग्दिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे, वाराहो गिरिजासुते नभसि यद्भूते सिते माधवे । सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद्रामो नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण ॥ अह्नोर्मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ॥ कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे " ॥ २ ॥ इति ॥ केचित्तु स्फुटान् श्लोकान् पठन्ति । तथा-"चैत्रे तु शुक्लपक्षस्यां भगवान्मीनरूपधृक् ॥ ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥ चैत्रे कृष्णे नवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् ॥नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके॥मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः । राधशुक्लतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः । नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरिः ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोभूल्लोकरक्षकः । ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति ॥ " इति ॥ कौंकणास्तु वराहपुराणस्थानि वाक्यानि पठन्ति-"आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ। जयन्ती मत्स्यनाम्नीति: तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥ नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् । नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका ॥ वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृसिंहः समपद्यत । मासि भाद्रपदे शुक्लैकादश्यां वामनो हरिः ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां भृगूद्वहः । चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौसल्यायां परः पुमान् ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥ पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्बौद्धस्य पूजनम् ॥ माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः ॥ प्रातः प्रातस्तु मध्याह्ने सायं सायं तथा निशि ॥ मध्याह्ने मध्यरात्रे च सायं प्रातरनुक्रमात् " ॥ ६ ॥

---

१ त्वंभुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्यबृहतः पतिर्भूः विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वासत्यव्यद्धानकिरन्यस्त्वावान् ऋ० १।४।१४।१३.

इति ॥ तदत्र समूलत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या ॥ एताश्च तदुपासकानां नित्याः अन्येषां तु काम्याः ॥ जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥

चैत्रशुक्ल तृतीयाही मत्स्यजयंती होती है, यहांही प्रसंगसे दश अवतारोंकी जयन्तियोंका निर्णय लिखते हैं। वे पुराणसमुच्चयमें लिखी हैं, कि, चैत्रशुक्ल तृतीयाके दिन मत्स्य, वैशाखकी अमावस्याके दिन कूर्म, श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन वाराह, वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन नृसिंह, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीके दिन वामन, वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीके दिन रामचन्द्र, भाद्रपद शुक्ल अष्टमीके दिन श्रीकृष्ण, आश्विन शुक्ल दशमीके दिन बुद्ध और श्रावण शुक्ल छठिके दिन कल्की अवतार क्रमसे हुए होंगे। और वामन, परशुराम, रामचन्द्र ये तीनों मध्याह्नमें, मत्स्य, वराह अपराह्नमें, कूर्म, नरसिंह, बुद्ध, कल्की ये चारों सायंकालमें जानने और श्रीकृष्णचन्द्र अर्द्धरात्रके समय हुए, कोई आचार्य इन स्फुट (प्रकट) श्लोकोंको इस प्रकार पढ़तेहैं कि, चैत्रशुक्ल पंचमीको भगवान् मत्स्यरूप, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको कच्छपरूप, चैत्र शुक्ल नवमीको वाराहरूप, वैशाख शुक्ल द्वादशीको नरसिंहजी, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनजी, वैशाख शुक्ल तृतीयाको परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीको राजा रामचन्द्रजी, भाद्रपदकी द्वितीयाको बलरामजी, श्रावण कृष्ण अष्टमीको लोकोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रजी, और जेष्ठ शुक्लद्वितीयाको बुद्ध और कल्की अवतार होंगे, कौंकण देशके वासी तो वाराहपुराणके इन वाक्योंको कहते हैं कि, आषाढ शुक्ल एकादशी महातिथि मत्स्यनाम जयँती है उसमें व्रत करै, श्रावणकी तृतीयामें कच्छप भगवान्का व्रत करै, और भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीको वाराहजयन्ती, वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको नृसिंह जयन्ती, वैशाखशुक्ल एकादशीको वामन जयंती, चैत्रशुक्ल नवमीको रामचन्द्रजयंती, श्रावणकृष्ण अष्टमीको श्रीकृष्णचन्द्र जयंती होती है, पौष शुक्ल सप्तमीको बौद्धका, माघ शुक्ल तृतीयाको कल्की भगवानका पूजन करना चाहिये, और ये पूर्वोक्त दशों अवतार क्रमसे उक्त तिथियोंमें हुएहैं कि, प्रातःकाल १, प्रातःकाल २, मध्याह्न ३, सायंकाल ४, सायंकाल ५, रात्रिमें ६, मध्याह्नमें ७, अर्द्धरात्रि ८ सायंकाल ९ प्रातःकाल १० तिससे यहां प्रमाणका निर्णय होनेपर कल्पके भेदसे व्यवस्था देखनी चाहिये और ये अवतारोंकी तिथि तिस २ अवतारके उपासकोंको नित्य हैं (सदैव करनी चाहिये) और दूसरोंको काम्य हैं अर्थात् कामना होय तो करनी, जन्माष्टमी आदिकोंमें विशेष लिखेंगे ॥

चैत्रशुक्लपञ्चमीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये–"ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता ॥ वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च ॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवांत्या तथापरा ॥ शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् ॥

चैत्रशुक्ल पंचमी कल्पादि है, सोई हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, ब्रह्माके दिनकी प्रथम तिथि कल्पादि कहलाती है वैशाख शुक्ल तृतीया और फाल्गुन कृष्ण तृतीया और चैत्रमासकी दोनों पंचमी, माघ शुक्ल त्रयोदशी, और कार्तिककी सप्तमी और मार्गशिरकी नवमी इन सातोंका मैं स्मरण करता हूं ॥

"कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ अत्र सर्वोपि निर्णयो मन्वादिवज्ज्ञेयः । हेमाद्रौ ब्राह्मे–"शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना । श्रीर्ब्रह्मलोकान्मानुष्यं सम्प्राप्ता केशवाज्ञया ॥ अतस्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ॥"

कारण कि, यह सातों कल्पकी आदि हैं, इनमें दान करनेका अक्षय फल होताहै, इन सबका निर्णय मन्वादि तिथियोंके तुल्य जानना चाहिये हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, चैत्रशुक्ल पंचमीके दिन लक्ष्मीने ब्रह्मलोकसे मनुष्यलोकमें आगमन किया, उसदिन जो कोई लक्ष्मीका अर्चन करता है उसको कभी लक्ष्मी नहीं त्यागती ॥

चैत्रशुक्लाष्टमीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः ॥ तत्र नवमीयुता ग्राह्या । 'अष्टमी नवमीयुता' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अत्र भवानीयात्रोक्ता काशीखण्डे-"भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः । न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥" इति॥ अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे-"अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥ चैत्रे मासि सितेष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥" प्राशनमन्त्रस्तु-"त्वामशोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् । पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥" इति । अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः-"पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी । प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥" इति ॥ तिथितत्त्वे कालिकापुराणे-"चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः । स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रे तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः । लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥" ॥ २ ॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः ॥ ॥ मन्त्रस्तु-"ब्रह्मपुत्र महाभाग शंतनोः कुलसंभव । अमोघगर्भसम्भूतं पापं लौहित्य मे हर ॥"

चैत्रशुक्ल अष्टमीको भवानीकी उत्पत्ति हुई वह नवमीयुक्त लेनी चाहिये, कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें यह लिखा है कि, अष्टमी नवमी संयुक्त, और नवमी अष्टमी संयुक्त, लेनी और इससे भवानीकी यात्राभी काशीखण्डमें लिखी है कि, जो मनुष्य चैत्र शुक्ल अष्टमीको भवानीका दर्शन करता है, वह कभी भी शोकको प्राप्त नहीं होता, सदा आनन्दमय रहता है, इसीमें अशोक वृक्षकी कलिकाभी भक्षण करनी । हेमाद्रिमें लिंगपुराणके कथनसे कहाहै जो मनुष्य पुनर्वसु नक्षत्रमें और चैत्रशुक्ल अष्टमीके दिन आठ अशोककी कलिकाओंको भक्षण करते हैं वे शोकको नहीं प्राप्त होते और अशोकका मंत्र यह है कि, अशोक वर चैत्रमें उत्पन्न हुए तुमको अपने अभीष्ट शोकसे तप्त हुआ मैं पान करता हूं, तुम मुझे सदैव अशोक करो, इसमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुने सिद्धिके निमित्त लिखाहै कि, पुनर्वसु और बुधसे युक्त चैत्रशुक्ल अष्टमीको प्रभातकाल विधिसे स्नान करके वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, तिथितत्वमें कालिकापुराणका कथन है कि, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर चैत्रशुक्ल अष्टमीको ब्रह्मपुत्रके जलमें स्नान करता है उसकी ब्रह्मलोकमें गति होती है जो मनुष्य मनको नियम कर भरचैत्र ब्रह्मपुत्रमें स्नानकरताहै उसकी मुक्ति होतीहै, स्नानका मंत्र यह है कि, हे शंतनुके वंशमें उत्पन्न हुए ब्रह्मपुत्र हे अमोघके गर्भसे उत्पन्न मेरे पापको दूरकरो ॥

श्रीरामनवमीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी । तदुक्तमगस्त्यसंहितायम्-"चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ । उदये गुरुगौराश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये॥आविरासीत्सकलया कौसल्यायां परः पुमान्॥तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा॥तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि"॥३॥इति ॥ इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या

" चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ " इति तत्रैवोक्तेः ॥ तथा–"चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः । पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ॥ " तथा–" केवलापि सदोपोष्या नवमी शब्दसंग्रहात् । तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् ॥ "

चैत्रशुक्ल नवमीको रामनवमी होतीहै वही अगस्त्यसंहितामें लिखाहै कि, चैत्रशुक्ल नवमीको मध्याह्नमें प्रथम पवित्र पुनर्वसुनक्षत्रमें और बृहस्पति तथा सूर्यके उदयमें और पांचग्रहोंके उच्चस्थके समयमें मेषके सूर्य, कर्क लग्नमें अपनी कलाओंसहित परमात्मा कौसल्याके उदरमें प्रगटहुए, उसदिन सदैव व्रतकरना और भगवानका भक्त उसदिन पृथ्वीपर शयनकर जागरणकरै और यह मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण कीहै, कारण कि यह वहांही लिखाहै कि, चैत्रशुक्लपक्षकी नवमी जो पुनर्वसुनक्षत्रसे युक्त होय तो वह मध्याह्नके योगसे अत्यन्तपवित्र होतीहै, इसीप्रकार ये वाक्यहैं कि, चैत्रमासकी नवमीको रामचन्द्रभगवान् स्वयं प्रकटहुए और पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त वह तिथि सब मनोरथोंको देतीहै, वही श्रीरामनवमी सूर्यके कोटियों ग्रहणोंसे अधिक पुण्यफलयुक्त होतीहै, लिखाभीहै कि केवल नवमीका भी सदैव व्रत करै, कारण कि, जहांतहां वाक्योंमें नवमी यह शब्द पढ़ाहै इससे भली प्रकार श्रद्धासे नवमीका व्रतकरै ॥

पूर्वेद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वृक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या ॥ तदुक्तं माधवीयेऽगस्त्यसंहितायाम्–नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ॥ उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥ " इति ॥ अष्टमीविद्धा सऋक्षापि नोपोष्येति माधवः ॥ रामार्चनचन्द्रिकायामपि–" विद्धैव चेदृक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत् ॥ विद्धा निषिद्धश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः ॥ वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि ॥ दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ॥ तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् " ॥ २ ॥ इति ॥ अत्र–'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इति । 'तदन्येषाम्' इति च वदन् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासात् नवमीव्रतांगपारणालोपः स्यात् । अतोऽष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोपप्रसङ्ग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति ॥ 'दशमी वृद्ध्यभावेऽष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्या' इत्यर्थसिद्धम् ॥

यदि पहले दिनही मध्याह्नका योग होय तो कर्मसमयमें होनेसे वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि दोनों दिन मध्याह्नमें पूर्ण हो वा नहीं होयतो पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त भी प्रथमदिनकी नवमीको छोड़कर परलीही करनी चाहिये सोई माधवीयग्रन्थमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे लिखाहै कि, विष्णुके भक्तोंको अष्टमीसे मिली नवमी नहीं करनी और नवमीको व्रत और दशमीको पारणा करै, माधवने भी लिखाहै कि, नक्षत्रसहित भी अष्टमीसे विद्ध नवमीको व्रत न करै, रामार्चनचन्द्रिकामें भी कहाहै कि, अष्टमीसे विद्धाभी नवमी नक्षत्रयुक्त होय तो उसमें व्रत किसप्रकार हो विद्धाके निषेध सुननेसे और नवमी इस वाक्यसे और वैष्णवोंको विशेषसे विष्णुके भक्त भी दशमीआदिकी वृद्धि होय तो वैष्णवोंको विद्धा तो छोड़नीही चाहिये और वैष्णवोंसे और सबको भी इन दो वाक्योंसे यह कथन किया कि, जब प्रातःकालमें नवमी

तीन मुहूर्त्त हो और दशमी क्षयके वशसे सूर्योदयसे प्रथमही पूर्ण होजाय तब स्मार्त्तोंको एकादशीका व्रत उसी दिन होनेसे नवमीके व्रत अंग पारणाका लोप होजायगा, इससे स्मार्त्तोंको अष्टमीविद्धा नवमीका व्रत करना चाहिये, वैष्णवोंको तो अरुणोदयविद्धा एकादशीका त्याग है इससे पारणाके लोपका प्रसंग नहीं है इससे वे दूसरीही करें और दशमीकी वृद्धि न होय तो अष्टमीसे विद्धाके तुल्य मध्यह्नव्यापिनी हो वा क्षय होय तो वैष्णवोंको भी विद्धाकाही व्रत करना यह बात अर्थसिद्ध है ॥

इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च ॥ तदुक्तं हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—" उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥ सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः ॥ अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ॥ पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः ॥ यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः ॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ तथा—" अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥ व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् ॥ प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः ॥ उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते " ॥ २ ॥ अत्र केचित्—' तदुपासकानामेवेदं नित्यं न त्वन्येषाम् ' इत्याहुः । अन्ये तु—'अकरणे दोषश्रवणात् (तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम्) इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव नित्यतां वक्तुः को वारयिता ' इत्याहुः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—"आचार्यं चैव संपूज्य वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥ श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येहं द्विजोत्तम ॥ भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव च ॥

और यह व्रत संयोग (अष्टमीका मेल) और पृथक्त्व (केवलत्व) न्यायसे इष्टहै, और नित्य है, सोई हेमाद्रिमें अगस्त्यसहिताका कथन है कि, व्रत, जागरण, पितरोंका तर्पण इनको ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्य नवमीके दिन करैं, भुक्ति और मुक्तिके निमित्त यह सबके निमित्त धर्म कहाहै, अशुद्ध हो वा पापात्मा हो इस श्रेष्ठ व्रतको करके मनुष्य सब प्राणियोंका रामचन्द्रकी समान पूज्य होता है, जो मूढबुद्धि रामनवमीके दिन अज्ञानसे भोजन करताहै, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है, इसमें सन्देह नहीं, कहाभी है कि, सब व्रतोंमें श्रेष्ठ रामनवमीके व्रतको त्यागकर जो मनुष्य और व्रतोंको करताहै उसको उनका फल नहीं मिलता जो मूर्ख मनुष्य रामनवमीके दिन व्रत नहीं करता वह कुम्भीपाक नरकोंमें पकजाताहै, इसमें किसीने यह कहाहै कि, रामचन्द्रके उपासकोंकोही यह व्रत नित्य करना चाहिये, औरोंको नहीं, और दूसरे तो यह कहते हैं कि, न करनेमें दोषके सुननेसे सब प्रकार सबकोही नवमीव्रत करना चाहिये इस पूर्वोक्त वाक्यसे जन्माष्टमी आदिके तुल्य यहभी सबको नित्य करनी है, अन्यथा जन्माष्टमी आदिकोभी कृष्णके उपासकोंकोही नित्यकथन करनेवाला कौन निषेध करैगा, इसमें विशेष हेमाद्रिमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे कहाहै कि, आचार्यका पूजन और प्रार्थना करके वरण करै कि, हे द्विजोंमें श्रेष्ठ मैं श्रीरामचन्द्रकी प्रतिमाका दान भक्तिपूर्वक करूंगा, तुम मेरे आचार्यहो और आपही श्रीराम हो ॥

श्रीरामपूजाविधिः ।

तथा—" स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम् ॥ शंखचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥ गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम् ॥ गदाखड्गांगदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥ पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेर्यां समलंकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्काढ्यवेदिकायुक्तमा-

यतम् ॥ ततः सङ्कल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने। अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः॥ उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि। इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते। प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च। ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः॥ निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम्। बिभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने॥ वामेनाधः करेणाराद्देवीमालिंग्य संस्थिताम्। सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते॥९॥ तथा-"अशक्तो यो महाभाग स तु वित्तानुसारतः। पलेनार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वा मुने॥ सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम्। पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ॥ चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत्। दक्षिणाङ्के दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम्॥ मातुरङ्कगतं रामसिंद्रनीलसमप्रभम्। पञ्चामृतस्नानपूर्वं संपूज्य विधिवत्ततः"॥४॥ कौसल्यामन्त्रस्तु-"रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत्। अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तुते॥ नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः। अत्र दशावरणपञ्चावरणादिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया। अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः॥ दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च। राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोनघ॥ पुष्पांजलिं पुनर्दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत्। दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः॥ ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः। समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने॥ ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः॥ लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं ततः। साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः॥ ततो भक्त्या सुसन्तोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने। ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयेत्॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम्। चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः। इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां शुभम्। ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः"॥ १६ ॥ इति॥

इसीप्रकार अपने घरकी उत्तरदिशामें दानका उज्ज्वल मण्डप इसप्रकार बनावै जिसके पूर्वद्वारके आगे शंख, चक्र, महावीरकी प्रतिमा शोभितहो और दक्षिणके द्वारपर गरुड़, शार्ङ्ग बाण शोभित हो, और पश्चिमका द्वार गदा, खड्ग, अंगदसे शोभितहो, उत्तरका द्वार पद्म, स्वस्तिक, नीलमणिसे शोभितहो, जिसका मध्यभाग चार हाथ तथा और वेदियोंसे युक्त हो, हे मुने फिर रामचन्द्रका स्मरण करता हुआ देव रामचन्द्रका संकल्प करै कि, इस रामनवमीको रामकी सेवामें तत्पर मैं आठप्रहर उपवास और यथाविधि पूजन करके इस स्वर्णकी प्रतिमाको प्रयत्नसे श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त बुद्धिमान् रामचन्द्रके भक्तके निमित्त देताहूं, प्रसन्नहुए रामचन्द्र मेरे बहुत और अनेक जन्मोंके किये बड़े २ पापोंको दूर करो, फिर सुवर्णकी एक पलकी इस प्रकार प्रतिमाको बनावै जिसके दो भुजा हों और बायें अंगमें जानकी हो, और जानकीके दक्षिण करमें हे महामुने इस प्रकार ज्ञानमुद्रा हो जो बांये हाथके नीचेसे देवी (जानकीका) स्पर्श किये स्थितहो, और जो मूर्ति दोपल सुवर्णसे बने हुए सिंहासनपर स्थितहो, तैसेही हे महाभाग जो निर्धन हो वह अपने वित्तके अनुसार पल (चारकर्ष वातोले) वा पलका आधा वा उसके भी आधेसे हे मुने सोने वा चांदीके ऐसे रामचन्द्रको निर्माण करै, जिनके पास छत्र धारण किये भरत और

शत्रुघ्न हों, और दो धनुष धारण किये लक्ष्मणजी हों, और पुत्रोंके देखनेमें तत्पर दशरथ दक्षिण भागमें हों, और माताकी गोदीमें स्थित इन्द्रनीलमणिके तुल्य श्रीरामचन्द्रजी स्थितहों, फिर पंचामृतसे न्हवानेके उपरान्त विधिसे पूजन करके कौसल्याके इस मन्त्रको उच्चारण करै, तुम रामकी माता हो और यह सब जगत् रामरूप है इससे मैं पूजन करता हूं, हे लोककी माता तुमको नमस्कार है, फिर 'दशरथाय नमः' इस मन्त्रसे पिताका पूजन करना चाहिये, यहां दश आवरण और पांच आवरण आदिकी पूजा और ग्रन्थोंमें लिखी जाननी चाहिये, बुद्धिमान् मनुष्य अशोकके फूलोंसे युक्त इस मन्त्रसे अर्घ दे कि, रावणके मारने और धर्मकी स्थिति, और राक्षसोंके और दैत्योंके नाशके निमित्त और साधुओंकी रक्षाके निमित्त रामचन्द्र भगवान् प्रगट हुए, हे पापहीन राम मेरे दिये हुए इस अर्घको माताओं सहित आप ग्रहणकीजिये, फिर पुष्पांजलि देकर प्रत्येक प्रहरमें पूजन करै इस प्रकार विधिसे दिनमें करके रात्रिको जागरण करै फिर सबेरेही उठकर स्नान सन्ध्या आदि कर्मोंको पूर्ण करके विधिसे रामचन्द्रका पूजन करै फिर मन्त्र जाननेवाला मूल मन्त्रसे पूर्वोक्त पद्मकुण्डमें वा वेदीपर लौकिक अग्निमें विधिसे एकसौ आठ १०८ होमको घीसहित खीरसे करै, और रामचन्द्रका सावधानीसे स्मरण करै, फिर हे मुने ! भक्तिसे आचार्यको सन्तुष्ट करके पूजन करै, फिर रामका स्मरण और इस मन्त्रको पढता हुआ यह कहै कि, इस शोभित और सुवर्णकी चित्र वस्त्रोंसे युक्त प्रतिमाको जो रामरूप मैं और राघवरूप आपको श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त देताहूं उससे श्रीराम मेरे ऊपर प्रसन्न हों, इस प्रकार विधिसे प्रदानकर भूमिकी दक्षिणा देनेसे ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥

तत्र मलमासप्राप्तौ व्रतनिषेधः ।

इयं मलमासे न कार्या । "सुजन्मप्यजन्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत्" इति 'न कुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च' इति च माधवीये संग्रहवचनात् ॥ ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेपि कर्तव्यता स्यादिति चेत् ॥ अत्र ब्रूमः– 'नैकादश्युपवासस्य व्रतत्वेन प्राप्तिः । किं तु–' एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ' इत्यादिनिषेधस्य मलमासेपि पालनीयत्वात् कृष्णैकादश्यां पुत्रवद्गृहिण इवार्थादुपवासः प्रसज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्तिर्वाच्या । सा च निषिद्धेत्यप्रसङ्गः । ' स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले ' इति निषेधाच्च ॥ एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्धव्यम् ॥ इति रामनवमी ॥

यह रामनवमी मलमासमें न करनी कारण कि, माधवग्रन्थमें संग्रहका यह वाक्य लिखाहै जो मलमासमें रामनवमीका व्रत करता है उसका जप और व्रत दोनों वृथा होते हैं । इसमें कोई यह लिखते हैं कि, रामनवमीके व्रतको नित्य होनेसे एकादशीके तुल्य मलमासमें भी करना चाहिये । इसशंकाके उत्तरमें हमको यह कहनाहै कि, एकादशीके व्रतकी प्राप्ति व्रत होनेसे नहीं किन्तु दोनों पक्षकी एकादशीको भोजन न करै यह निषेध मलमासमें भी मानने योग्य है, तिससे जैसे कृष्णपक्षकी एकादशीको पुत्रवाले गृहस्थीको करना लिखा है, इसी प्रकार यहां नहीं । तिससे रामनवमीका व्रत होनेसे मलमासमें प्राप्ति कहोगे, वह निषिद्ध है, इस कारण मलमासमें रामनवमीका प्रसंग ही नहीं होसकता, और यह निषेधभी है कि, जिस व्रतका महीना स्पष्ट लिखा हो उसको मलमासमें त्यागदेना चाहिये, इसी प्रकार जन्माष्टमी आदिमें भी जानना चाहिये । इति रामनवमी ॥

चैत्रशुक्लैकादशीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे-" चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः । आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः " इति ॥

चैत्रशुक्ल एकादशीको ब्रह्मपुराणमें हिंडोलेका उत्सव लिखाहै कि, चैत्रसुदी एकादशीको वैष्णव लोग लक्ष्मीसहित विष्णुको बडे प्रेमसे झुलावैं ।

चैत्रशुक्लद्वादशीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः । " द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् " इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । " ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥ " इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ॥ शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् । " तत्र स्यात्स्वीयतिथिषु वह्न्यादेर्दमनार्पणम् " इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिःप्रकाशेपि-" स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा । पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्तिथिर्बुधैः ॥ " तिथयस्तु-" वह्निर्विरिञ्चो गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः । दुर्गान्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु पूज्याः " इत्युक्ताः ॥

चैत्रसुदी द्वादशीको दमनका उत्सव होताहै, कारण रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है, चैत्रसुदी द्वादशीको बौधायन आदिके लिखे हुए दमनोत्सवको प्रतिवर्षमें करना चाहिये, और वहांही पद्मपुराणका यह वाक्य है कि, कार्तिकमें व्रत, चैत्रमें हिंडोला, श्रावणमें तन्तुपूजन, चैत्रमें दमनारोप जो मनुष्य नहीं करते वह नरकमें जाते हैं। शिवजीके भक्त आदिको तो चतुर्दशी तिथि आदिमें दमनारोप करना चाहिये. कारण कि, उसीस्थलमें यह कहाहै कि, अपनी २ तिथिमें अग्निआदिदेवताओंका दमनार्पण होता है ज्योतिःप्रकाशमेंभी लिखाहै कि, अपने देवताओंकी प्रतिष्ठा मंत्रग्रहणमें पवित्र दमनारोपणमें वही २ तिथि लेनी, प्रतिपदा आदि तिथियोंको क्रमसे अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, सर्प, स्वामिकार्तिक, सूर्य, शिवजी, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, हरि, कामदेव, शिवजी, चन्द्रमा ये देवता पूजने चाहिये कारण कि, उपरोक्त तिथियोंके यही देवता हैं ॥

दमनारोपणविधिः ।

अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधिः। रामार्चनचन्द्रिकायां-"तत्रैकादश्याम् । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते ॥ ३ ॥ " इति देवं संप्रार्थ्य दमनमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वारिणा प्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्रे वा ॥

वेदोक्त दीक्षावालेको दमनारोपणकी विधि रामार्चनचंद्रिकामें कही है सो लिखते हैं । हे प्रभो ! एकादशीको कर्मलोपकी विधिके निमित्त जो तुमने कहाहै वह विघ्न मुझे इस कर्ममें नहो, हे प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करो और सबप्रकार सब कालमें मेरी गतिहो. हे देव ! हे जगत्के पति ! हे स्वामिन् ! मैं तुम्हें व्रतसे प्रसन्न करता हूं व्रत नष्ट करनेवाले काम क्रोध आदि मुझे नहों, आजसे लेकर जबतक देव शयन हो

तवतक हे जगत्पते ! तुम सब जगत्की पालना करो इसप्रकार देवकी प्रार्थना करके दमनको ले पञ्चगव्यसे सींचे जलसे धोकर अशोकवृक्षकी जडमें अथवा देवताके आगे यह मन्त्र पढकर इनका पूजन करे और कहै ॥

"अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन। शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे।" इत्यशोकम्। "त्रुट्यादिकालपर्यन्तः कालरूपो महाबलः। कलते चैव यः सर्वं तस्मै कालात्मने नमः॥" इति कालम्॥ "वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय। सहस्रमुखसंवास कामरूप नमोस्तुते॥" इति वसन्तम्। "कामभस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत। ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोस्तुते॥" इति दमनं च संपूज्य। "नमोस्तु पञ्चबाणाय जगदाह्लादकारिणे। मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते"॥ इति दमनमुपस्थाय। ॐ कामाय नम इति संपूज्य निशायां देवताग्रे पञ्चवर्णैः चन्दनेन वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुंभं संस्थाप्योपरि दमनं पूजयित्वा। "पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः। मदन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः।" ॐ क्लीं कामदेवाय नमः। ॐ ह्रीं रत्यै नमः इत्यावाह्य। दिक्षु पूर्वादितः स्मरशरीराय नमः। अनङ्गाय०, मन्मथाय०, कामाय०, क्लीं वसन्तसखाय०, स्मराय०, इक्षुचापाय०, पुष्पास्त्राय नमः। इति पूजयित्वा। 'ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्'। इत्यष्टोत्तरशतं संमंत्र्य पूजयित्वा। 'ह्रींनमः' इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा। "नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे। मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते॥" इति नत्वा। "आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव॥ क्षीरोदधिमहानाग शय्यावस्थितविग्रह। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम्। सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे"॥ ३॥ इति देवं संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, अस्त्रेण चक्रमन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात्। ततः प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुक्तं दमनमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा। "देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक। हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम कामेश्वरीप्रिय॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात्। इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय"॥ २॥

कि हे अशोक! हे कामदेवकी स्त्रीके शोक नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है, मेरे शोकको नष्ट करो और प्रसन्नताको दो इस मन्त्रसे अशोकको त्रुटि (तीन क्षण) से लेकर जो महाबलकाल पर्यंत कालरूप सबको नष्ट करता है उस कालरूपी ईश्वरके निमित्त नमस्कार है, इस मन्त्रसे कालको, वृक्ष, गुल्म, लता इनके आश्रय और सहस्र मुख सबमें निवासकरनेवाले कामरूप वसंतको नमस्कार है, इस मन्त्रसे वसंतको, हे दमन कामदेवकी भस्मसे तुम उत्पन्न हुये हो रतिके आँसुओंसे युक्त और ऋषि गन्धर्व देवताओंको मोहित करनेवाले आपको नमस्कार है इस मन्त्रसे भलीप्रकार दमनका पूजन करके जगत्के आनन्द करनेवाले जगत्के नेत्र रतिके प्रिय कामदेवको नमस्कार है, इस मन्त्रसे दमनकी प्रार्थना करके, 'ॐ कामाय नमः' इस मन्त्रसे पूजन करके रात्रिको देवताके आगे पञ्चरत्न वा चन्दनसे अष्टदल निर्माण करे उसके बाहिर चौकोन और चौकोरसे बाहर तीन गोल आकारनिर्माण करे, उन

तीनोंके बाहर एक चौकोर दल बनाकर वहां घटको स्थापन करे, घटके उपर अष्टदलपर दमनका पूजन करके यह मंत्र पढे कि, देवताओंके देव लक्ष्मीके पति प्रभुकी पूजाके निमित्त हे दमन ! तुम यहां आओ और निकटवर्ती हो तुमको नमस्कार है। फिर ओं क्लीं कामदेवको और ओं ह्रीं रतिको नमस्कार है, इस मन्त्रसे आवाहन करके पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे इन मन्त्रोंसे पूजा करके कि, क्लीं कामदेवको, क्लीं भस्म शरीरको, क्लीं अनंगको क्लीं मन्मथको क्लीं वसन्तके मित्रको, क्लीं स्मरको, क्लीं इक्षुधनुषवालेको, क्लीं पुष्परूपअस्त्रधारीको, फिर ब्रह्मस्वरूपको हम जानते हैं, कामदेवका ध्यान करतेहैं, वह अनंग काम हमारी श्रेष्ठ कामोंमें प्रेरणा करो, इस मन्त्रको अष्टोत्तर शत १०८ जप कर ह्रीं नमः इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर पुष्पबाणधारी, जगत्के आनन्दकारी, और जगत्के नेत्र, रतिकी प्रीतिवाले कामदेवको नमस्कार है. इस मंत्रसे नमस्कार करके हे देवताओंके पति ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! आप आमंत्रित हो आपका प्रातःकाल पूजन करता हूं, तुम मेरे निकट हो आपको नमस्कार है, इस श्रेष्ठ दमनको आपके निमित्त निवेदन करताहूं, हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें मेरे ऊपर प्रसन्न हो, आपको नमस्कार है, इसप्रकार देवकी स्तुतिकर और पुष्पांजलि देकर अस्त्रसे वा चक्रमन्त्रसे रक्षा करे, फिर प्रभातकाल नित्य पूजाके उपरान्त देवताको पूजकर दूर्वा, गन्ध, अक्षतसे युक्त दमनको लेकर और मूलमन्त्रको उच्चारण कर, हे देवदेव, हे जगन्नाथ, हे वांछितफलके देनेवाले, हे कामेश्वरीके प्रिय ! मेरे हृदयकी इच्छा पूर्ण करो । और मेरे ऊपर कृपा करके इस दमनको स्वीकार करो हे भगवन् ! इस वर्ष दिनकी पूजाको पूर्ण करो ॥

इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत् । ततो अङ्गदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत् । "मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताऽजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज" ॥ ४ ॥ मन्त्रहीनमिति च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः सम्पूज्य नीराज्य पारयेदिति ॥ दीक्षारहितानां तु नाम्नैव समर्पणम् ॥ अत्र च द्वादशीमतंत्रीकृत्य पारणाहे ग्राह्यम् । "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ॥ तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्र दमनार्पणे" इति तत्रैवोक्तेः ॥ गौणोपि काल उक्तस्तत्रैव–"हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि । वैशाखे श्रावणे वापि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥ श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः ॥" इति पाठान्तरम् ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति कालादर्शे मलमासवर्ज्येषु परिगणनात् । "उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा । उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वे तन्निष्फलं भवेत्" इति माधवीये प्रजापतिवचनाच्च ॥ शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव । पूर्वोक्तवचनात् ॥ "उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ॥ कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येपीति विनिश्चयः" इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च ॥ इति दमनारोपः ॥

इस मन्त्रके अन्तमें फिर मूलमन्त्रसे देवताको अर्पण करे, फिर अंगदेवताओंको भी उस २ के मन्त्रसे देकर स्तुति करै. हे गरुडध्वज ! मणिमूँगेकी माला और मन्दारके पुष्पोंकी मालाओंसे कीहुई ये वर्ष दिनकी पूजा आपकी हो, हे विष्णो ! जैसे वनमाला और कौस्तुभमणिको अपने हृदयमें सदा धारण करतेहो इसीप्रकार यह दमन (अशोक) के फूलोंकी माला आप अपने हृदयमें धारण करो, जाने वा विना जाने

जो आपकी पूजा न की हो हे रमापाते ! वह सब आपकी प्रसन्नतासे पूर्ण हो. हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुष ! हे सबसे प्रथम प्रगट होनेवाले ! आपकी जय हो और आपको नमस्कार है. मन्त्र क्रियाविधिसे जो हीन हो वह सब पूर्ण हो इस मंत्रसे प्रार्थना और फिर पंचोपचार पूजाको पूर्ण करके पारणा करै, जिनको वेदोक्तदीक्षा नहीं वे नामसेही समर्पण करदें, इसकी पारणाका दिन द्वादशीके मतको स्वीकार करले कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, यदि पारणाके दिन घडीभर भी द्वादशी न मिलै तो त्रयोदशी लेनी, और गौणकाल भी वहांही लिखाहै कि, जो विघ्नसे चैत्रमें विष्णु-का दमनारोपण न होय तो वैशाख वा श्रावणमें उसी तिथिमें दमनका आरोप करना चाहिये । कारण कि, कालादर्शमें मलमासमें त्यागने योग्योंमें उपाकर्म उत्सर्ग पवित्र दमनार्पणको लिखाहै, और माधवग्रन्थमें प्रजापतिका यह वाक्य है कि, उपाकर्म हव्य कव्य और पर्वके उत्सवको नियमसे उत्तर (शुद्ध) महीनेमें करै पूर्व (मल) मासमें किया हुआ निष्फल होताहै, और शुक्रास्त आदिमें पूर्वोक्त वाक्यसे अवश्य करना चाहिये । और विष्णुका शयन और परिवर्तनको शुक्र और बृहस्पतिके अस्तमें भी करना चाहिये, यह शास्त्रका निश्चय जानना चाहिये. यह ज्योतिर्निबन्धमें वृद्धगार्ग्यका कथनहै । इति दमनारोपः ॥

अनङ्गव्रतनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनङ्गव्रतम् । हेमाद्रौ भविष्ये-"चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासे कामत्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम् । पत्न्या सहार्च्य पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौभाग्य रूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात् ॥" तत्र सा पूर्वा ग्राह्या । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सिते' इति दीपिकोक्तेः ॥

चैत्रसुदी त्रयोदशीको अनंगका व्रत हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके इस वाक्यसे लिखा है कि, सम्पूर्ण जगत्के मनको आनन्ददायक चैत्रके उत्सवमें त्रयोदशी तिथिको वसंत और रतिसहित कामदेवको पूजकर पुरुष अथवा स्त्री सौभाग्यरूप सुखसे सदैव संयुक्त होती है, उस पूजामें पहली त्रयोदशी ग्रहण करनी कारण कि, दीपिकाके इस कथनमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशी पहली लिखी है ॥

चैत्रशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या-"मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी । सा रात्रि-व्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन" इति हेमाद्रौ बौधायनोक्तेः ॥ परा पूर्वाह्णगा-मिनी इति वा पाठः । अत्र केचिद्यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति ॥ "निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः । अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत् ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥

चैत्र सुदी चतुर्दशी पहली लेनी कारण कि, हेमाद्रिमें बौधायनका यह कथनहै कि, चैत्र और श्रावणमासकी जो शुक्लचतुर्दशी है वह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी और कदाचित् न लेनी अथवा यह पाठ है कि, परली वह लेनी जो पूर्वाह्णव्यापिनी हो, इसमें कोई वाक्यमें चतुर्दशीके सुननेके अनुसारही अर्थका वर्णन करते हैं कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणका यह वाक्य है कि, रात्रिमें भूतशक्तियोंके सहित महादेव विचरतेहैं, इससे रात्रि चतुर्दशीमें ही उनका पूजन होताहै ॥

हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्येवम् ॥ सम्प्रदायविदस्त्वाहुः-"चतुर्दशी तु कर्तव्या त्रयो-दश्या युता विभो ॥" इति स्कान्दउत्सर्गः । तदपवादश्च-"तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्ल-पक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता" इति नारदीयवचनम् । तदपवा-दश्च 'मधोः श्रावणमासस्य' इति तत्रापवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य स्थितिरिति

न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति सिध्यति ॥ ब्रह्मवैवर्तं तु सामान्यरूपमन्त्रसावकाशमिति तेन पूर्वदिने मुहूर्तत्रयवेधे पूर्वा, अन्यथोत्तरेति ॥

हेमाद्रि और माधवका कथन भी इस प्रकारहै, सम्प्रदायके जाननेवाले तो यह लिखतेहैं कि, त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशी करनी, यह उत्सर्ग है अर्थात् सिद्धान्त नहीं है। और इसका बाधकभी यह नारदका कथन है कि, तृतीया, एकादशी, षष्ठी और शुक्लपक्षकी चतुर्दशी ये पूर्व तिथिसे विद्धा नहीं लेनी, परतिथिसे संयुक्त करनी चाहिये, और इसका अपवाद पूर्वोक्त बौधायनका कथनहै, तिसमें अपवादके अभावमें उत्सर्गकी स्थिति होती है इस न्यायसे पूर्वविद्धाही करनी यह सिद्धान्त होता है, सामान्यरूप ब्रह्मवैवर्तका वाक्य तो और स्थानमें चरितार्थ होजायगा, तिससे पहले दिन एक तीन मुहूर्तका वेध होय तो पूर्वा लेनी अन्यथा अगली लेनी ॥

चैत्रशुक्लपूर्णिमानिर्णयः ।

चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात् परैव ॥ अत्र विशेषो निर्णयामृते विष्णुस्मृतौ–"चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति' इति । तथा ब्राह्मे–'मन्दे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ॥ तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत् ॥" इति ॥ अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता । तत्रैव वायवीये–"संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाखिलान्सुरान् । दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम्" इति ॥ अत्र स्वीयतिथ्या समुच्चय इति केचित् । स्वीयतिथ्यामकरणेऽत्र दमनपूजनमित्यन्ये ॥ दीक्षिततदितरविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे । इयं मन्वादिरपि सा च पूर्वमुक्ता ॥

चैत्रकी पूर्णिमा सामान्य निर्णयसे अगली ही लेनी, इसमें विशेष निर्णयामृत और विष्णुस्मृतिमें लिखाहै कि, जो चैत्रकी पूर्णिमा चित्रानक्षत्रसे युक्त होय तो उसमें चित्र विचित्र वस्त्रके दानसे सौभाग्य प्राप्त होता है, इसी प्रकार कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, यदि चैत्रकी पूर्णिमाको शनि, सूर्य, गुरुवार होय तो स्नान और श्राद्ध आदि करनेसे अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होताहै, और वहांही वायुपुराणके इस वाक्यसे सब देवताओंका दमनसे पूजन करना लिखा है कि, वर्षदिनमें कीहुई पूजाकी सफलताके निमित्त सम्पूर्ण देवता और सदाशिवकी पूजा चैत्रकी पूर्णिमाको करै, इसमें कोई यह लिखतेहैं कि, अपनी २ तिथिका इसमें समुच्चय करना चाहिये. और कोई यह कहते हैं कि, अपनी २ तिथिमें न किया होय तो चैत्रकी पूर्णिमाको करै, ये दोनों व्यवस्था दीक्षावाले और विना दीक्षावालोंके विषयमें जाननी यह मन्वादि भी है वह प्रथम लिख आयेहैं ॥

चैत्रकृष्णत्रयोदशीनिर्णयः ।

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञो योगो गौडेषु प्रसिद्धः । तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कान्दे–"वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ॥ गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि । महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ ३ ॥" तत्रैव ज्योतिषे–"चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे । योगे शुभे सा महती महत्या गंगाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या"

इति ॥ त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्माण्डपुराणे-"वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी । गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा " इति ॥ कल्पतरौ ब्राह्मे-"मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषा युता । वारुणीति समाख्याता शुभे तु महती स्मृता " ॥

चैत्रवदी त्रयोदशीको महावारुणीयोग गौडोंमें प्रसिद्ध है यही वाचस्पतिके बनाये और शूलपाणिग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्यहै कि, शतभिषा नक्षत्रसे युक्त चैत्रकृष्णवारुणी त्रयोदशीको गंगास्नान मिले तो सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य फल है । यदि शनिवारसंयुक्त होय तो महावारुणी होती है यदि उसमें गंगास्नान प्राप्त होय तो सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य फल होता है, यदि शुभयोग शनिवार शतभिषा नक्षत्र तीनोंका योग होय तो महामहा वारुणी होती है, वह गंगास्नानसे तीन कोटि कुलोंका उद्धार करती है. उसीमें ज्योतिषका वाक्य है कि, चैत्र कृष्णत्रयोदशीको शतभिषा नक्षत्र शनिश्चरयुक्त शुभ योग होय तो वह महामहावारुणी होती है, वह गंगाजलमें सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य होती है, यह त्रिस्थलीसेतुमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी गंगामें मिले तो सूर्यग्रहणके समान होतीहै । कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, चैत्रकृष्ण त्रयोदशी शनिवारको शतभिषानक्षत्र युक्त होनेसे वारुणी कहलाती है और महाशुभदायक है ॥

चैत्रकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः ।

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः पृथ्वीचंद्रोदये पुलस्त्यः-"चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ । न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां तु विशेषतः " इति ॥ अत्र पूर्वा ग्राह्या ॥ कृष्णपक्षत्वात् ॥ गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्यामित्येवं देवलीयत्वेन पठितम् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिंधौ चैत्रमासः ॥

चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें पुलस्त्यके कथनसे लिखा है कि, चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको जो शिवके निकट स्नान करता है, वह प्रेत नहीं होता और गंगामें स्नान करे तो विशेष करके प्रेत नहीं होता, गौडोंने तो यही पुलस्त्यका वाक्य चैत्रशुक्ल चतुर्दशीको देवलीयत्वसे पाठ किया है ॥

इति श्रीरामकृष्णसूनुकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां चैत्रमासः ॥

वैशाखमासः ।

(मेषसंक्रमनिर्णयः)

मेषसंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् । अत्र धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये पाद्मे-"तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् । दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥ माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ॥ " ॥

मेषकी संक्रांतिमें प्रथमकी और पीछेकी दश २ घडी पुण्यकालकी होती है रात्रिमें मेषसंक्रांतिका पुण्यसमय तो प्रथम कह आये हैं, इसमें धर्मघट आदिका दान करना । पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तीर्थमें प्रतिदिन स्नान और तिलोंसे पितरोंका तर्पण, धर्मघट आदिका दान, भगवान्‌का पूजन मधुसूदनके प्रसन्न करनेवाले यह कृत्य वैशाखमासमें करने चाहिये ॥

वैशाखस्नानम् ।

अथ वैशाखस्नानम् । तत्र पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः ॥ "तुलामकरमेषेषु

प्रातःस्नानं विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥" इति सौरमास उक्तः॥ अन्यत् पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव पाद्मे—"मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः। पंचदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥ वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्" ॥ २ ॥ तत्र मंत्रः। "वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः। प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात्। निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम्॥ माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन। प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन्" ॥ ३ ॥ इति ॥ तीर्थविशेषोपि तत्रैवोक्तः—"मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः। महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥ देवखातेऽथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये। दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन्॥ २॥" इति संकल्पे च तत्तत्तीर्थनाम ग्राह्यम्। अज्ञाने तु विष्णुतीर्थमिति वदेत् ॥ "यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः। तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥ तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः" इति तत्रैवोक्तेः। तथान्योपि विशेषस्तत्रैव पाद्मे—"तुलसीकृष्णगौराख्या तयाभ्यर्च्य मधुद्विषम्। विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत्" ॥

अब वैशाखस्नान वर्णन करते हैं उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और पद्मपुराणके वचन हैं कि, तुला मकर और मेष संक्रान्तिमें प्रभातस्नान करना, हविष्य अन्नका भोजन, और ब्रह्मचर्य करनेसे महापातक नष्ट होते हैं, सौरमास और दोपक्ष पहले लिख आये हैं वहांही पद्मपुराणका कथन है कि; चैत्रशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमा वा मेषसंक्रान्तिको हे वीर व्रत करके ब्रह्मणोंकी आज्ञासे मधुसूदनका पूजन करके संकल्पपूर्वक वैशाखस्नानका नियम करे, उसका मंत्र यह है कि, वैशाखका सम्पूर्ण महीना और मेषकी संक्रांतिको नियमसे प्रभात समय ही स्नान करूंगा, इससे मधुसूदन प्रसन्न हो, मधुदैत्यके मारनेवाले हरिकी प्रसन्नता और ब्राह्मणोंकी कृपासे मेरा प्रतिदिन वैशाखस्नान निर्विघ्नसे पूर्ण हो वैशाखमें मेषकी संक्रान्तिभर हे मुरारे ! हे मधुसूदन! हे पाप हरनेवाले ! मेरे प्रातःकालके स्नानका तुमही फलदो। तीर्थविशेषभी वहांही लिखा है मेषकी संक्राति और वैशाखमासमें महानदी, नदी, तीर्थ, नद, सरोवर, झरने, देवताओंके खोदे सरोवरमें अथवा जैसा मिले वैसे जलस्थानमें डावर कूप और बावड़ियोंमें सावधान होकर नारायणका स्मरण करता हुआ स्नान करे और संकल्पमें जहां न्हाय उसीतीर्थका नाम ले नामका ज्ञान न होय तो विष्णुतीर्थ कहना चाहिये कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, हे ब्राह्मणों ! यदि तीर्थका ज्ञान न होय तो वहां विष्णुतीर्थ यह उच्चारण करे, कारण कि सब स्थानमें तीर्थोंके देवता विष्णुहैं इसमें संदेह नहीं इसीप्रकार वहां औरभी विशेष पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जो मनुष्य काली श्वेत तुलसीसे भगवान् मधुसूदनका अर्चन करता है वह और विशेषकर वैशाखके महीनेमें पूजन करनेवाला नारायणका रूप होता है ॥

माधवं सकलं मासं तुलस्या योर्चयेन्नरः। त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्ति तस्य पुनर्भवः॥२॥ तथा। "प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रियम्। योऽश्वत्थमूलमासिंचेत्तोयेन बहुना सदा ॥ कुर्यात्प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः। पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम् ॥ योश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समंततः। कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः ॥ कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम्। कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवा-

प्नुयुः ॥ ४ ॥" तथा । "एकभक्तमथो नक्तमयाचितमतंद्रितः । माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥ वैशाखे विधिना स्नानं देवनद्यादिके बहिः । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः । व्रतं दानं दमो देवि मधुसूदनपूजनम् । अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम्" ॥ ३ ॥ मदनरत्ने स्कांदे–"प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलंतिका । उपानद्व्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चंदनम् ॥ जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भफलान्यपि ॥ २ ॥ तिथितत्त्वे–"ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनंबुघटान्वितान् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥ इति तथा–"वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने । ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥" एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं वा स्नायात् ॥ तदुक्तं तत्रैव पाद्मे–"त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां वा दिनत्रयम् । अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोपि वा ॥ प्रातः स्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जो मनुष्य वैशाखकी पौर्णमासीभर तुलसीसे मधुसूदनका त्रिकालमें पूजन करते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता तैसे ही प्रातःकाल विधिसे स्नानपूर्वक वैशाखमें जो मनुष्य पीपलके मूलमें बहुत जलसे भगवान्की प्रीतिके निमित्त सींचता है, और सब देवतारूपी पीपलकी प्रदक्षिणा करता है वह चर अचर पितर और मनुष्योंको तृप्त करता है । जो मनुष्य पीपलको चारों तरफ जलसे सींचते हैं वह दशसहस्र कुलोंको तारते हैं इसमें संदेह नहीं । गौकी पीठको खुजाने और स्नानके उपरान्त पीपलके नीचे तर्पण करके गोविन्दका पूजन करनेसे मनुष्यको दुर्गति नहीं होती, एकवार भोजन अथवा रात्रिमें भोजन अयाचित (विना मांगे मिले) व्रतको वैशाखके महीनेमें सावधानीसे करता है उसको सब मन इच्छित फल प्राप्त होते हैं । वैशाखमें विधिपूर्वक देव नदी आदिमें ग्रामसे बाहर विधिसे स्नान, हविष्य, भोजन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, नियमसे रहना, व्रत दान इन्द्रियोंका निग्रह मधुसूदनकी पूजा करना हे देवी यह सब सहस्र जन्मके किये हुए पापको नष्ट करतेहैं । मदनरत्नमें स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, वैशाखमें प्याऊ लगानी, देवताको माला देनी, जूता, पंखा, छत्री, सूक्ष्मवस्त्र, चंदन, जलके पात्र, फूलोंके घर और जो कोई चित्र विचित्र पदार्थ मुनक्का केलेकी फली इन सबको देना चाहिये । तिथितत्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य मेषसंक्रांतिके आदिमें जलके घडेसहित सत्तुओंको पितरोंके निमित्त ब्रह्मणोंको देतेहैं वह सब पापोंसे छूटते हैं इसीप्रकार जो मनुष्य भरेघडेको भोजनसहित ब्राह्मणको देता है हे सुरराजेन्द्र ! उसको परमगति प्राप्त होती है इसीप्रकार सम्पूर्ण वैशाखभर स्नान करनेकी सामर्थ्य न होय तो तीन दिन स्नान करे । यही वहां पद्मपुराणके वाक्यमें लिखाहै कि, त्रयोदशी १३ चतुर्दशी १४ वैशाखकी पूर्णिमा इन तीनों दिन भली प्रकार विधि और नियमसे स्नान करनेसे स्त्री हो या पुरुष सब पापोंसे मुक्त होजाते हैं ॥

मलमासेपि स्नाननिर्णयः ।

यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्त्तव्याः । मासोपवासचांद्रायणादि तु मलमासे एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्–"नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । मलिने मासोपवासव्रतम्" इति ॥ अत्र दानविशेष उक्तोऽपरार्के वामनपुराणे–"गन्धाश्च माल्यानि तथा

वैशाखे सुरभीणि च । देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥ " एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम् । तदुक्तं तत्रैव–

जब वैशाखमें मलमास होय तौ उसमें काम्यकर्मकी पूर्तिके निषेधसे दोनों महीने स्नान और नियम करना चाहिये । मासव्रत और चान्द्रायण व्रतकी पूर्ति तो मलमासमें ही करदेनी चाहिये, सोई दीपिकामें लिखाहै ३० दिनका नियम होनेसे अच्छे महीनेमें आरंभ करके मलमासमेंही मासोपवास व्रतकी समाप्ति करदे । वैशाखमें दानका विशेष अपरार्कग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, गन्ध, सुगन्धित पुष्पमाला ये सब मधुसूदनकी प्रसन्नताके निमित्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये । इस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त उद्यापन करना, सोई वहां लिखा है ॥

उद्यापनविधिनिर्णयः ।

"मासमेवं बहिः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले ॥ एकादश्यां च द्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतो भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः । मंडपं कारयेदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः । शक्त्या वा कारयेद्देवं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ॥ लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदासने बुधः । भूषणैश्चन्दनैः पुष्पैर्दीपैर्नैवेद्यसंचयैः ॥ एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत् । श्वोभूते कृतमैत्रोथ ग्रहवेद्यां ग्रहान्यजेत् ॥ होमं कुर्यात्प्रयत्नेन पायसेन विचक्षणः । तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वापि स्वशक्तितः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा । प्रतद्विष्णुरनेनैव इदं विष्णुरनेन वा ॥ व्रतसंपूर्तिसिद्ध्यर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम् । पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं तथा। शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा । ब्राह्मणान् भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ कलशाञ्जलसंपूर्णांस्तेभ्यो दद्याद्यवांस्तथा । एवं कृते माधवस्य चोद्यापनविधौ शुभे ॥ फलमाप्नोति सकलं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्" ॥ एवावत्यशक्तौ तत्रैवोक्तम्– "वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश । कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः" ॥ इति ॥

इसप्रकार ग्रामसे बाहिर नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके एकादशी, द्वादशी वा पूर्णिमाको व्रत करके और सावधान हो बुद्धिमान् मनुष्य उद्यापन करै मण्डप निर्माण करै और कलशको स्थापन करै । निष्कके आधे वा चौथाई सुवर्णकी मधुसूदन भगवान्की मूर्ति शक्तिके अनुसार बनाय और लक्ष्मीसहित जगत्पतिको आसनपर बैठाय भूषणसहित चन्दन, पुष्प, दीप, नैवेद्य इनसे पूजन करना चाहिये । और बुद्धिमान् मनुष्यको खीर तिल, घी, यवसे पृथक् २ वा संयुक्तकर अपनी शक्तिके अनुसार हवन करना चाहिये, १०८ एकसौ आठ अथवा एक सहस्र और २ हवन करै हवनका मन्त्र यह है कि, प्रतद्विष्णु[1] अथवा इदंविष्णुं[2] और व्रतकी पूर्तिके निमित्त एक दुधारी गौ, खडाऊं, जूता, बीजना, छत्र, सामग्री सहित शय्या, दीपक, दर्पण इन सबको गुरुके निमित्त दे और ३० ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और उनको दक्षिणा, जलसे पूर्ण घट और यव देना चाहिये । इसप्रकार वैशाखकी श्रेष्ठ उद्यापनकी विधिके करनेसे सम्पूर्ण फल और विष्णुकी सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है । इतने करनेकी शक्ति न, होय तौ

---

१ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा य० अ० ५ मं० २० । २ इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदंसमूढमस्यपाश्सुरे ॥ यजु०॥

चहांही यह लिखा है कि, वैशाखकी पूर्णिमाको विधिसे स्नान करके ब्राह्मणोंको खिचड़ी जिमावै, तो सब पापोंसे रहित होताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥

वैशाखशुक्लतृतीयानिर्णयः ।

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते । सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेपि तद्व्याप्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये–" वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ॥ दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥ रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धाविवर्जिता ॥ भक्त्या कृतापि मांधातः पुण्यं हंति पुराकृतम् ॥ गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता । विनापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा ॥ ३ ॥ इति ॥

वैशाखसुदी तृतीयाको अक्षयतृतीया होतीहै वह पूर्वदिनमें व्यापिनी ग्रहण करनी । यदि दोनों दिन पूर्वदिनमें होय तो अगली करनी यही निर्णयामृतग्रन्थमें नारदपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें रोहिणी बुधवार सोमबार युक्त तृतीया मिलनी दुर्लभ है, रोहिणी और बुधवारसे युक्त भी तृतीया द्वितीयासे विद्धा होय तो त्याज्य है. हे मान्धाता ! भक्तिसे कीहुई भी वह प्रथम किये हुये पुण्यको दूर करती है और चतुर्थी से युक्त तृतीया चाहे रोहिणी और बुधसे युक्त हो और चाहे रोहिणीसे रहित होय तोभी वह कोटि पुण्यकी देनेवाली है ॥

युगादिनिर्णयः ।

इयं युगादिरपि सा चोक्ता रत्नमालायाम्–"माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी । तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः " इति ॥ यत्तु गौडाः–'माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम् ' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ " वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥" इति विष्णुपुराणे । चकारेण तमिस्रपक्षानुषङ्गेपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव गेया । द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमित्याहुः ॥ तन्न ॥ 'दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्' इति भविष्यविरोधात् ॥ एतेन ब्राह्मानुसारात् पूर्णिमायामेव युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः ॥

यह तृतीया युगादि भी है. यह रत्नमालामें लिखाहै कि, माघवदी अमावस १५ श्रावणवदी १३ वैशाख वदी ३ और कार्तिकसुदी नवमी ९ ये चारोंतिथि क्रमसे युगादि हैं. और जो गौड़ यह लिखतेहैं कि, माघकी पूर्णिमाको घोर कलियुग प्रारंभ हुआ इस ब्रह्मपुराणके कथनसे वैशाखमहीनेकी तृतीया, कार्तिकशुक्लकी नवमी श्रावणवदी त्रयोदशी तथा माघकी पूर्णिमा इस विष्णुपुराणके वाक्यमें चकारके बलसे कृष्णपक्षका भी सम्बन्ध है तो भी पूर्णमासीही जाननी कारण कि, शुक्लपक्षकी दो तिथि लेनी यह सब निर्मूल है यह गौड़ोंका कथन यथार्थ नहीं. कारण कि, माघकी अमावस्याको द्वापरयुग प्रवृत्त हुआ, इस भविष्यपुराणके वाक्यका इसमें विरोध होता है इससे ब्रह्मपुराणके कथनानुसार पूर्णिमामेंही युगादि श्राद्धको वर्णन करते हुए शूलपाणि परास्त हुए ॥

तेन कल्पभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् ॥ एतेन–'कार्तिक नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा' इति बृहन्नारदीये व्याख्यातम् ॥ निर्मूलत्वोक्तिर्नारदीयाज्ञानकृता ॥

तिससे कल्पभेदसे व्यवस्था करनी यही सिद्धान्तहै इससे इस नारदपुराणके वाक्यकाभी यथार्थ अर्थ लगगया कि, कार्तिकशुक्ल नवमी और माघकी पूर्णिमा युगादि हैं, निमूर्ल कहना नारदके वाक्यको विना जाने है ॥

तत्र श्राद्धनिर्णयः ।

अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये-"कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत्" इति ॥ भारतेपि-"या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु माधव । स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्" इति ॥ श्राद्धेपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । "पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिका ॥" इति पाद्मोक्तेः ॥ "द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादीः कवयो विदुः ॥ शुक्ले पौर्वाह्णिके ग्राह्या कृष्णे चैवापराह्णिके ॥" इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च । दीपिकापि-"अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्णिकाश्च बहुले" इति ॥ स्मृत्यर्थसारेपि-युगादिमन्वादिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । 'कृष्णपक्षेऽपराह्णव्यापिनी' इति ॥ दिवोदासीये गोभिलः-"वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णंति कव्यं च पितरस्तथा" इति ॥ गोविन्दार्णवेप्येवम्-तेनेयं पूर्वाह्णव्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः ॥ अनन्तभट्टस्तु-"सर्वैधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा । सम्मुखा उपवासे स्युर्दानादावंतिमाः स्मृताः" इत्याह ॥ दानादाविति श्राद्धसंग्रहः । उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ माधवस्तु-'व्यतीपातः श्राद्धेपराह्णव्यापी ग्राह्यः इत्याह ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'कुतुपकालयोगी' इत्युक्तम् ॥ यत्तु मार्कण्डेयः-"शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षापराह्णे हि रौहिणं तु न लंघयेत् ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः ॥ निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शेऽमाश्राद्धमापराह्णिकमुक्त्वा-'एष मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः' इत्युक्तत्वात् ॥ द्वे शुक्ल इत्यादिवचनं विष्णुपूजनविषयम् । श्राद्धे त्वापराह्णिक्ये वेति व्यवस्थां जगदुः ॥

अक्षयतृतीयाको मत्स्यपुराणमें श्राद्ध करनाभी लिखाहै कि, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें अनुष्ठित श्राद्ध दो सहस्रतक पितरोंकी तृप्तिका करनेवाला होताहै, महाभारतमें भी लिखाहै कि, मन्वादि और युगादि मनुष्यको स्नान, हवन, जप, दानको करनेसे अनन्त फल मिलताहै, इसलिये श्राद्धमें पूर्वाह्णव्यापिनी तिथि लेनी. कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखा है कि; शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि सदा पूर्वाह्णमें और कृष्ण पक्षकी अपराह्णमें या देव और पितृकर्ममें लेनी चाहिये । और हेमाद्रिमें नारदपुराणका यह लेख है कि, पण्डितोंने दो शुक्लपक्षकी और दो कृष्णपक्षकी युगादि लिखीहैं । शुक्ल पक्षकी पूर्वाह्णमें और कृष्ण पक्षकी अपराह्णमें करनी. हेमाद्रि और नारदके वचनसे दीपिकामें भी कहाहै कि, शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी अपराह्णमें करनी चाहिये । स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, युगादि और मन्वादि शुक्लपक्षकी उदय व्यापिनी और कृष्णपक्षकी अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी । दिवोदासीयग्रन्थमें गोभिलका वाक्य है कि, जो मनुष्य वैशाखकी तृतीयाको पूर्वविद्धा तिथि करता है उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते गोविन्दार्णवमें भी यही है इससे यह पूर्वाह्णव्यापिनी करनी और

दोनों दिन पूर्वाह्णमें होय तो अपराह्णमें लेनी, यह धर्मतत्वके जाननेवाले हेमाद्रि आदि लिखते हैं. अनन्तभट्टने यह लिखा है कि, वैधृति और व्यतीपात युगादि और मन्वादि तिथि व्रत उपवासमें पहली और दान आदिमें पिछली लिखी है । इसमें आदि पदसे श्राद्ध ग्रहण करना, व्रतको तो आगे लिखेंगे. हेमाद्रिआदिमेंभी यही लिखा है. माधव तो व्यतीपातश्राद्धमें अपराह्णव्यापी ग्रहण करते हैं । स्मृत्यर्थसारमें कुतुपकाल उपयोगी कहा है जो कि, मार्कण्डेयने लिखा है कि, बुद्धिमान् मनुष्य शुक्लपक्षके पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षके अपराह्णमें श्राद्ध करे । और नौमें मुहूर्तका लंघन न करे, इसमें शूलपाणिका यह कथन है कि, शुक्लपक्षमें युगादिका श्राद्ध पूर्वाह्णमें करना, निर्णयामृत आदितो कालादर्शमें यह लिखते हैं कि, अमावसके श्राद्धको अपराह्णमें कहकर और मन्वादि और युगादिके इस निर्णयको कहकर पूर्वोक्त (द्वे शुक्ले) इस नारदके वाक्यको विष्णुपूजाके विषयमें और श्राद्धको अपराह्ण तिथिमें मानना इस व्यवस्थाको लिखते हैं ॥

सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैयर्थ्याच्च स्वाच्छंद्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया ॥ किं च । कालादर्शोक्तिर्न्यायमूला वचोमूला वा । नाद्यः–युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोऽपराह्णव्याप्तावपि वचनेन तस्य बाधात् । नांत्यः । अतिदेशादेवापराह्णप्राप्तेर्वचनवैयर्थ्यात् ॥ अप्राप्ते 'शास्त्रमर्थवत्' इति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा, तर्हि न्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक् ॥ पूर्वाह्णस्तत्रद्वेधाभक्तदिनपूर्वार्धः 'द्वेधा भक्तदिनांशकोऽत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ' इति दीपिकोक्तेः माधवादयोप्येवम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् । यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् ॥ २ ॥ इति ॥

सो यह उनकी व्यवस्था अनेक कथनोंके विरोधसे और पूर्वाह्णमें देवकर्म करे इसी वाक्यसे सिद्धथी और वाक्यके व्यर्थ होनेसे अपनी इच्छाके विलास मात्रसे लेखहै, इससे यह व्यवस्था अमान्य है, और कालादर्शका कथन न्यायमूल है, अथवा वाक्यमूल है, न्यायमूलतो नहीं लिखसक्ते कारण कि, युगादि श्राद्धको अमावस्या श्राद्धका विकृति (अंग) होनेसे न्यायसे अपराह्णव्यापीमें भी वाक्यसे उसको बाधक है, और वाक्यमूलभी नहीं कह सकते, अतिदेश (कथन) सेही अपराह्णकी प्राप्तिथी, वाक्य व्यर्थ होजायगा. कि, जहां प्राप्त न हो वहां ही वाक्य सार्थक होताहै यही न्याय है । इससे किसीप्रकार श्रद्धाकी मूर्खतासे कालादर्शकी उक्तिके समाधान करनेकी इच्छा होय तो कृष्णपक्षकी युगादि तिथियोंके विषयसे व्यवस्था करनी चाहिये यही मार्गहै । यहीं संक्षेपसे कहा है दो प्रकार भक्त दिनका पूर्वार्ध पूर्वाह्ण है वही प्राह्ण अपराह्ण भी कहाता है, यह दीपिकामें कहा है माधवादिभी यही कहतेहैं इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखमें और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको गंगाजलमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होताहै, और उसदिन यवोंसे हवन और यवोंसे विष्णुका अर्चन करै और ब्राह्मणोंको यव दे और स्वयंभी यवही भक्षण करे ॥

तत्र दाननिर्णयः ।

अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये इमां प्रक्रम्य । "उदकुंभान्सकनकान्त्सान्नान्त्सर्वरसैः सह । यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा ॥ ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते" इति देवीपुराणेपि–"तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य तु । उदकुंभप्रदानेन

शिवलोके महीयते॥"मन्त्रस्तु–"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः॥अस्य प्रदानात्तृप्यंतुपितरोपि पितामहाः॥गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम्॥पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु" ॥ २॥ इति अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्–" अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च सर्वेषु पिंडनिर्वपणादृते" ॥ इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात् ॥ अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने–" रात्रौ भुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु । अभिस्ववृष्टिं मन्त्रं च जपेद्दशनपातके " इति ॥ अपरार्के यमः–" कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च । दास्यंत्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः " इति॥ वैशाखे मलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्यः । तथा च हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः–" दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः " इति ॥ एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम् ॥ ' कन्याचंद्रे वृषे रवौ ' इत्यादि सौरमासोक्तेरित्यर्थः॥

इससे दानका विशेषभी भविष्यपुराणके कथनसे हेमाद्रिमें लिखा है। सुवर्ण, अन्न, सम्पूर्ण रसों सहित जलके घडे, यव, गेहूं, चने, सत्तू, भात और गरमीके उपकारी सम्पूर्ण वस्तु इस दानमें श्रेष्ठ हैं. देवीपुराणमें भी कहाहै कि, वैशाखकी तृतीया और रोहिणी नक्षत्रमें जलके घडेको पूजकर दान करनेसे शिवलोकमें सत्कार पाता है, उसका मंत्र यह है कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप यह घडा मैंने दिया, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों। गन्ध, जल, तिल, अन्न, फलोंसे युक्त घटको पितरोंके निमित्त देताहूं, उनको अक्षय मिलो। इसमें श्राद्धभी पिंडरहित करना. कारण कि, हेमाद्रिमें पुलस्त्यका यह कथन है कि, दक्षिणायन और उत्तरायण तुला और मेष की संक्रांति और सब युगादितिथियोंमें पिंडदानको त्यागकर श्राद्धकरे, इसमें रात्रिमें भोजन करनेका ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखा है, कि जो मनुष्य मन्वादि और युगादि तिथियोंमें रात्रिको भोजन करता है वह भोजनके पाप दूर करनेके निमित्त अभिस्ववृष्टि मंत्रको जपे अपरार्कग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंके दिन व्रत करके अन्नसहित जलदान करतेहैं उनको उत्तम २ लोक प्राप्त होतेहैं यदि वैशाखही मलमास होजाय तो उसमेंही युगादि तिथि करनी, सोई हेमाद्रिमें ऋष्यशृंगने कहा है कि, दशहरा और चारों युगादि और उपाकर्म और उत्सर्गमें उत्कर्ष नहीं (शुद्धही मास लेना यह नियम नहीं) कारण कि, यह सब वृष आदिकी संक्रान्तिसे माने जाते हैं. कारण कि, कन्याके चन्द्रमा और वृषके सूर्य आदिसे सौरमास कहाहै ॥

कालादर्शेपि–' अब्दोदकुंभमन्वादिमहालययुगादिषु। ' इति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च ॥ महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः ॥ स्मृतिचंद्रिकायां तु मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम्–" यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च " इति ॥ अपरपक्षः कृष्णपक्षः, न तु महालयः ॥ तस्य तत्र निषेधात् । मदनरत्नेपि मरीचिः–" प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि " इति ॥ प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कलपादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ ॥

---

१ अभिस्ववृष्टिंमदे अस्ययुध्यतोरध्वीरिव प्रवणेसस्रुरूतयः । इन्द्रो यद्वज्री घृषमाणो अन्धसाभिनद्वलस्य परिधीं रिवात्रतः ऋ० १ । ४ । १२ ॥

कालादर्शमें भी जलदान, जलका वडा, मन्वादि, महालय युगादि ये मलमासोंमें करने योग्य लिखे हैं, यहां महालय शब्दसे मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशी ग्रहण करनी । स्मृतिचन्द्रिकामें तो यह लिखा है कि, दोनों महीनोंमें करना. कारण कि, युगादि मासिक श्राद्ध और कृष्णपक्षके श्राद्ध और मन्वादि और तीर्थ श्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करने चाहिये । यहां अपरपक्षसे कृष्णपक्ष ग्रहण किया है. महालय नहीं. कारण कि, महालयमें कृष्णपक्षका निषेध है, मदनरत्नमें मरीचिका यह वाक्य लिखा है कि, प्रत्येक महीनेका श्राद्ध और प्रतिवर्ष क्षयीश्राद्ध मन्वादि और युगादिश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें होतेहैं, और उसनेही यह अर्थ लिखाहै, कि, प्रतिवर्ष करने योग्य कल्पादिश्राद्ध प्रतिवर्ष कहाताहै ॥

अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् ।

अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने–" न यस्य द्यावामन्त्रं च शतवारं तदा जपेत् । युगादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः " इति ॥ अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे–" युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ । गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् । तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् " इति ॥ अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः । इति युगादिनिर्णयः ॥

इसमें श्राद्ध न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखा है, जो मनुष्य युगादिश्राद्ध न करै वा कुछ न्यूनता श्राद्धमें होजाय तो नयस्यद्यावामंत्रका १०० वार जप करै, इसमें समुद्रका स्नान भी उत्तम है सोई पृथ्वीचन्द्रोयमें सौरपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंमें क्षारसमुद्रमें स्नान करता हैं वह उस फलको प्राप्त होता है जो सहस्र गौ और पृथ्वीके दानका फल कुरुक्षेत्रमें लिखा है, यह निर्णय सब युगादि तिथियोंमें जानना चाहिये । इति युगादि निर्णयः ॥

परशुरामजयन्तीनिर्णयः ।

इयमेव तृतीया परशुरामजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायां स्कांदभविष्ययोः–" वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ । निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः ॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते । रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम् " ॥ २ ॥ इति । दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा॥ अन्यथा पूर्वैव । तदुक्तं तत्रैव भविष्ये–" शुक्लतृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये । निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका " इति ॥

यही तृतीया परशुरामजयंती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी । यही भार्गवार्चनचंद्रिकामें स्कंद और भविष्यके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके प्रथम प्रहरके समय रामनाम हरिने रेणुकाके गर्भसे अवतार लिया, और उस समय उच्चके छःग्रह और मिथुनका राहु था, यदि दोनोंदिन प्रदोष व्यापिनी होय वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी होय तो पिछली लेनी, नहीं तो प्रथमही ग्रहण करनी, सोई वहांही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखशुक्ल तृतीया व्रतमें वह लेनी जो दोनोंदिन पवित्र हो यदि रात्रिके प्रथम प्रहरमें होय तो पिछली लेनी, न होय तो पहली लेनी ॥

---

१ न यस्य द्यावापृथिवी न धन्वनान्तरिक्षन्नाद्रयः सोमो अक्षाः यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीलुरुजतिस्थिराणि ऋ० ८ । ४ । १५ ॥ २ व्रतहेमाद्रिमें भी लिखा है कि, वैशाखशुक्ल तृतीयाको भगीरथब्रह्मलोकसे गंगाजीको ले आये ॥

वैशाखशुक्लसप्तमीनिर्णयः ।

वैशाखशुक्लसप्तम्यां गङ्गोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–"वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा ॥ क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्" इति ॥ अत्र शिष्टाचारात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा युग्मवाक्यात् ॥

वैशाखशुक्ल सप्तमीको गंगाकी उत्पत्ति हुई है. यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, वैशाख शुक्ल सप्तमीको जह्नुऋषिने क्रोधसे पीकर फिर दाहिने कर्णके छिद्रसे गंगाजी त्यागदीं, उस सप्तमीको आकाश की मेखलारूप गंगादेवीकी पूजा करै, इसमें शिष्टोंके आचारसे मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी लेनी । यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा एक देशव्यापिनी होय तो प्रथम दोनों कथनोंसे लेनी ॥

वैशाखशुक्लद्वादशीनिर्णयः ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योतिःशास्त्रे–"पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ॥ पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥" इति ॥ पञ्चाननः सिंहः पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करभो हस्तः ॥

वैशाखशुक्ल द्वादशीको हेमाद्रिमें विशेष योग इस ज्योतिःशास्त्रके वाक्यसे लिखा है कि, बृहस्पति और मंगल सिंहके हों मेषका सूर्य और शुक्लपक्ष हो और हस्तनक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो यह व्यतीपात-योग होता है । इस योगमें गौ, भूमि, सोना और वस्त्र इनके दानसे सब पापको नष्ट करके देवताभाव, इन्द्रत्व और रोगके अभावको और सब प्राणियोंकी मुख्यताको पुरुष प्राप्त होता है ॥

वैशाखशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ।

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे–"वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे ॥ मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ वर्षेवर्षे तु कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम्" इति ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा । विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती दिनद्वयेप्यव्याप्तौ परा । परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वदिने च तदभावात् । यत्तु–'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ॥' इत्युपक्रम्य 'परिधाय ततो वासो व्रतकर्म समारभेत्' इति तत्रैवोक्तम् ॥ तत्संकल्परूपव्रतोपक्रमविषयम् ॥ नत्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ॥ ग्राह्येति भ्रमितव्यम् ॥ पूर्वोक्तवचनविरोधात् "वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके ॥ अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः" इति टोडरानन्दे स्कान्दात् । 'कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्' इति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयवचनाच्चेति केचित् ॥ तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात् हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे–'मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।' इत्युपक्रम्य । "स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे तु मद्व्रतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ एतदन्यतरे

योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥ केवलेपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ॥ अन्यथा नरकं यांति यावच्चन्द्रदिवाकरौ" ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा 'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले' इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते । सन्ध्यायां जन्म तु काप्यनुक्तेर्मौर्ख्यकृतम् ॥ तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति ॥ इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता । तदुक्तं तत्रैव "स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्व्रतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोस्ति मद्व्रते । मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः ॥ तथा—सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः ॥ तथा—"विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लंघयेत्पापकृन्नरः॥ स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ"॥ इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च ॥

वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहजयन्ती होती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी, सोई हेमाद्रिमें नृसिंहपुराणके वाक्यसे कहाहै कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें चतुर्दशीके दिन प्रदोषके समय मेरे जन्मका पवित्र व्रत सब पापोंको नष्ट करता है । मेरे संतोषका विधायक यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिये । यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्यापिनी हो वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी होय तो अगली लेनी. एक दिन न्यून एक दिन अधिक व्यापिनी ग्रहण करनी दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी न होय तो एकदिन अगली लेनी। कारण कि, अगले दिनमें गौणकालमें है, और पहिले दिन नहीं है. जो कहीं यह लिखाहै कि, फिर मध्याह्नके समय नदी आदिके निर्मलजलमें स्नान करनेके उपरान्त वस्त्रोंको धारण करके व्रतके कर्मोंका आरम्भ करै यह सब संकल्परूप व्रतके प्रारम्भके विषयमें है, इतनेसे यह भ्रम नहीं करना चाहिये । कारण कि, मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । कारण कि, इसमें पूर्वोक्त वाक्यका विरोध आता है, और टोडरानन्दमें भी स्कन्दपुराणका कथन है कि, वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको चन्द्रवार, कृत्तिका नक्षत्र, प्रदोषके कालमें हे ब्राह्मणो ! नृसिंहका अवतार हुआ और पुराणसमुच्चयमें भी लिखा है कि, कूर्म, नृसिंह, बुद्ध, कल्की ये अवतार प्रदोषके समय हुए, यह कोई कहते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि, पहले कथनोंको सिद्धान्त ग्रन्थोंके न होनेसे निर्मूलताहै, इससे नृसिंहपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें यह लिखा है कि, मेरे जन्मका पवित्र व्रत पापोंको नाश करता है, वह प्रारम्भ करके और यह कहै कि, स्वातिनक्षत्रका योग, शनिवार, सिद्धियोग और वणिज करणके योगसे पुरुषोंके बडे सौभाग्य और दैवयोगसे मेरा व्रत प्राप्त होताहै यदि पूर्वोक्त सब योग होंय तो करोडों हत्याओंका विनाश होता है, और इनमें कोईसा योग होय तो भी पाप दूर करनेवाला होता है । और केवलभी मेरे दिनमें यह व्रत करना चाहिये । और जो नहीं करता वह तबतक नरकमें रहता है, जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहै, फिर मध्याह्नमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करै इत्यादि वाक्यसे मध्याह्नमें ही व्रत करनेका विधान है,इससे चतुर्दशीके उत्तरार्द्ध और वणिजकरणमेंही मध्याह्नकालमें नृसिंहका जन्म स्पष्ट प्रतीत होता है । सन्ध्याके समय जन्म तो कहीं भी नहीं लिखा इससे मूर्खतासे किये उसके वशसे यह उनका निर्णय त्यागने योग्य है, यही चतुर्दशी योगविशेषसे अत्यन्त श्रेष्ठ है, यही नृसिंहपुराणमें लिखा है कि, स्वातिनक्षत्र वणिजकरण सिद्धियोग यदि इनका योग होय तो मेरा व्रत होता है यह पुरुषोंके बड़े भाग्य और दैवयोगसे प्राप्त होताहै, इस प्रकार कहा है कि, इन योगोंके विनाभी मेरा दिन सब पापोंको दूर करता है, इसीप्रकार मेरे व्रतमें सब वर्णोंको अधिकार है और मुझमें तत्पर मेरे भक्तोंको तो विशेषकर इस व्रतको करना चाहिये । और सोनेका सिंह मेरे सन्तोषके निमित्त दे, और

जो पापी मनुष्य मेरे दिनको जानकर उल्लंघन करता है वह चन्द्रमा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त नरकमें जाता है। यह व्रत योगोंके मिलने और न मिलनेसे भी काम्य है॥

तत्र विशेषः।

अथात्र विशेषः। मध्याह्ने मृद्गोमयतिलामलकस्नानं कृत्वा॥ "नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे। उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः॥" इतिमन्त्रेण संकल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले–"हैमी तु तत्र मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥" इत्युक्तम्॥ नृसिंहमूर्तिं शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि सम्पूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः पुनः सम्पूज्य।"नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते। अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः॥" इत्याचार्याय दत्त्वा। "मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे। तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात्॥ पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखांबुवारिभिः। तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे॥ करावलंबनं देहि शेषशायिन् जगत्पते। श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन॥ क्षीराम्बुधिनिवासिस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन। व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव"॥ ४॥ इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः॥

अब इसमें विशेष लिखते हैं कि, मध्याह्नमें मृत्तिका, गोमय, तिल, आँवलेसे स्नान करके हे नृसिंह! हे देवताओंके देवताके भी ईश्वर! तुम्हारे शुभ जन्मदिनमें सब भोगोंको त्यागकर व्रत करूंगा, इस मन्त्रसे संकल्प करके और किसीको आचार्य बनाकर सायंकालके समय मेरी और लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापन करै, वह पलभरकी वा आधे पलकी वा चौथाई पलकी होनी चाहिये। यह अपनी श्रद्धाके अनुसार करै, और इसमें धनका संकोच न करै यह लिखा है। और नृसिंहकी मूर्ति और शक्तिसे निर्माण किये हुए सोनेके सिंहकी मूर्ति कलशके ऊपर पूजा करके रात्रिमें जागरणकर प्रभातमें फिर पूजकर इस मन्त्रसे आचार्यको प्रदान करै कि, हे नृसिंह! हे अच्युत! हे देवताओंके ईश, हे लक्ष्मी और जगत्के पति! इस पूजित मूर्तिके दानसे मेरे मनोरथ पूर्ण हों, इसप्रकार यह प्रार्थना करै कि, मेरे कुलमें जो मनुष्य उत्पन्न हुए हैं, और जो होंगे उनका तुम इस दुस्सह संसारसागरसे उद्धार करो और पापोंके सागरमें डूबे हुए और बड़े कठिन व्याधि दुःखोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुए महान् दुःखरूपी मुझे हे शेषशायी! हे जगत्पति! हे नृसिंह! हे लक्ष्मीपति! हे भक्तोंके भयनाशक मुझे हाथका अवलम्बन दो आपका क्षीरसागरमें निवास है, आपके हाथमें चक्र है हे देवताओंके ईश्वर! इस व्रतसे मेरी भुक्ति मुक्ति करो ऐसी प्रार्थना करै। इति संक्षेपः॥

वैशाखपूर्णिमायां विशेषः।

वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोपरार्के जाबालिः–"शृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः। निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात्॥ सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च। तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति"॥ २॥ इति॥ उदकुम्भदानमन्त्रस्त्वक्षय्यतृतीयाप्रकरणे उक्तः॥ भविष्येपि–"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोतीव पूजिताः। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन"॥ अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम्। तथा च विष्णुः–"कृष्णाजिने तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं

तरति दुष्कृतम् " इति ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिन्धौ वैशाखमासः समाप्तः ॥

वैशाखकी पूर्णिमाको अपरार्कग्रन्थमें जाबालिऋषिने विशेष लिखाहै कि, जो मनुष्य पक्वान्न जलका घडा धर्मराज निमित्त वैशाखकी पूर्णिमाको देताहै, उसे गौदानका फल मिलताहै, जो मनुष्य सुवर्ण और तिलयुक्त जलके पात्रोंसे पांच वा सात ब्राह्मणोंको तृप्त करता है उसकी ब्रह्महत्या दूर होती है । घटदानका मन्त्र तो अक्षय तृतीयाके प्रकरणमें लिख आये हैं, भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि–वैशाख, कार्तिक, माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजित है, हे पाण्डुनन्दन ! इनको स्नान और दानके विना न बिताना चाहिये, इसमें काले मृगचर्मका दान करना, सोई विष्णुने लिखा है कि, जो मनुष्य श्याममृगचर्म, काले तिल, सुवर्ण, शहत, घी ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करताहै उसके सब पाप दूर होजातेहैं ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वैशाखमासः समाप्तः ।

ज्येष्ठमासः ।

वृषभसंक्रान्तिनिर्णयः ।

वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ संक्रमे सति प्रागेवोक्तम् ॥

वृषकी संक्रान्तिमें प्रथमकी षोडश १६ घडीका पुण्यकाल है, रात्रिकी संक्रांतिमें पुण्यकाल तो प्रथम लिख आये हैं ॥

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतनिर्णयः ।

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतमुक्तं माधवीये भविष्ये–"भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् । ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा " इति ॥ सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ "बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी । कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः " इति स्कान्दोक्तेः ॥

ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको रम्भाका व्रत भविष्य और माधवके वाक्यसे लिखा है कि, हे भद्रे ! ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको नियममें तत्पर हुई स्त्री यत्नसे रम्भाके श्रेष्ठव्रतको करे, यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, बडी रम्भा सावित्रीका व्रत, पितरोंकी तिथि, कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी यह तिथि प्रथम ग्रहण करनी ॥

ज्येष्ठशुक्लदशमीनिणयः ।

ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–"ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता " इति ॥ वाराहेपि–"दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेहनि । अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा ॥ हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता " । इति ॥ स्कान्दे तु दशयोगा उक्ताः । तथा–"ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ॥ व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते " इति ॥ अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं सैव ग्राह्या । योगाधिक्ये फलाधिक्यात् । ज्येष्ठे मलमासे सति

तत्रैव दशहरा कार्या।न तु शुद्धे।'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति हेमाद्रौ ऋष्यशृंगोक्तेः॥तथा स्कांदे-"यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्याद्दर्भ्यं तिलोदकम्।मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः॥"अत्र विशेषः काशीखंडे-'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम्। दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः।आशुक्लपक्षदशमीं प्रतिजन्मावमुत्सृजेत् ॥ २ ॥ तथा-" लिंगं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ । दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः ॥ " तथा च भविष्योत्तरकाशीखंडयोः-" निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः । पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया ॥ तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः । स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥ दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान् सर्पिश्च वै जले । सक्तुपिंडान् गुडपिंडान् दद्याच्च दशसंख्यया ॥ ततो गंगातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा तथा । गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् ॥ संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदापि च । अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत् पिष्टेन वै भुवि ॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः" ॥

ज्येष्ठशुक्ल दशमी तिथि दशहरा कहाती है, वही ब्रह्मपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें लिखाहै कि, ज्येष्ठशुक्ला दशमी हस्तयुक्त दश प्रकारके पापोंको दूर करतीहै, तिससे दशहरा कहाती है । वाराहपुराणमें भी कहा है कि, ज्येष्ठशुक्ल दशमी मंगलवार हस्त नक्षत्रको गंगाजी स्वर्गसे आई हैं, और दश पापोंको दूर करती हैं. इससे दशहरा कहातीहै । स्कंदपुराणमें तो दश योग लिखे हैं कि, ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षकी दशमीको बुध, हस्त, व्यतीपात, गर, आनन्द, कन्याका चन्द्रमा, वृषका सूर्य इन दशयोगोंमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होताहै यहां बुधवार और मङ्गलवारका कथन कल्पभेदसे समझना चाहिये । और यह वह दशमी माननी जिसमें योग बहुतहों. कारण कि, योगोंकी अधिकतामें फल अधिक होताहै, यदि ज्येष्ठमें मलमास होय तो उसमेंही दशहरा करना; शुद्धमें न करना कारण कि, हेमाद्रिमें ऋष्यशृङ्गने यह लिखा है कि, चारों युगोंमें दशहरामें उत्कर्ष (श्रेष्ठ) का नियम नहीं, इसीप्रकार स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, चाहै जिस नदीको प्राप्त होकर तिल और जलसे अर्घ देनेसे महापातकोंके तुल्य भी दश पापोंसे मनुष्य मुक्त होताहै इसमें विशेष काशीखण्डमें लिखा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा तिथिको दशाश्वमेधघाटमें स्नान करके सब पापोंसे छूटते हैं । इसीप्रकार सम्पूर्ण तिथियोंको शुक्लपक्षकी दशमी पर्यंतके स्नान करनेसे मनुष्यके जन्म २ के पाप दूर होते हैं, तैसेही दशहराके दिन दशाश्वमेधेश्वर लिंगका दर्शन कर दश जन्मके संचित पाप दूर होते हैं. इसमें संदेह नहीं है । तैसेही भविष्योत्तर और काशीखण्डमें कहाहै, कि भक्तिपूर्वक रात्रिमें जागरण और व्रत करके पुष्प, गन्ध, नैवेद्य और दश फल, दीपक पान, दश बार गंगामें भक्तिसे स्नान करके गंगाकी पूजा करै, और दश अंजलीभर तिल और घी, सत्तू और गुडके दश २ पिंड गंगाजलमें दे, फिर गंगाके मनोहर किनारेपर सोने वा चांदीकी वह प्रतिमा निर्माण करै, जिसका स्वरूप आगे लिखेंगे मूर्त्तिको स्थापन करके पूजा करै, सुवर्ण चांदी न मिलै तो मृत्तिकाकी निर्माण करनी चाहिये और उसके भी निर्माण करनेमें असमर्थ होय तो चूनसे भूमिपर लिखकर आगे लिखे मन्त्रसे विशेषकर पूजा करै॥

" नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा ॥ भगीरथं च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम् । गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत् ॥ दशप्रस्थांस्तिलान् दद्याद्दशसंख्यागवीस्तथा" । प्रस्थः षोडशपलानि । पलं तु-'मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्' इति महार्णवे उक्तम्।

" मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् ॥ हंसकारंडवबकचक्राटिट्टिभसारसान् । कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा ॥ तदलाभे पिष्टमयानभ्यंर्च्य कुसुमादिभिः । गंगायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत् ॥ पुष्पाद्यैः पूजयेद्गङ्गां मन्त्रेणानेन भक्तितः " । ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै नमोनमः ॥ इति मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन् दिवानिशम् । जपेत्पञ्चसहस्राणि दशधर्मफलं लभेत् ॥ काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः । " नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः । दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै ॥ स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवेद्विंशाक्षरो मनुः । पूजा दानं जपो होमोनेनैव मनुना स्मृतम् " ॥ १४ ॥ इति ॥ अत्र गंगास्तोत्रपाठमपि दशवारं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये–" तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः । यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः " इति स्तोत्रं च प्रतिपदादिदशमीपर्यंतं दिनवृद्धिसंख्यया पाठनीयमिति शिष्टाः ॥ अत्र च सर्वोपि विस्तरः स्तोत्रादि च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः ॥ विस्तरभीतिस्तु न लिख्यते ॥ एवं कुर्वतः फलमुक्तं काशीखण्डे– " एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते । " इति च ॥ अस्यां सेतुबन्धरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या । तदुक्तं स्कांदे सेतुमाहात्म्ये–" ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिंगरूपधरं हरम् ॥ रामो वै स्थापयामास शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ २ ॥" इति दशहरा ॥

और नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ राजा, हिमवान् पर्वतकी भी गंध पुष्प आदिसे यथाशक्ति पूजा करै । और दश ब्राह्मणोंको दश प्रस्थ (१६ मुट्ठी) भर तिल देने चाहिये और दश प्रस्थ यव और दश गौ देनी । मत्स्य, कच्छप, मेंडक, मकर आदि जलके जीवोंकी सुवर्ण वा चांदीकी प्रतिमा बनावै इसमें समर्थ नहो तो चूनकी बनाकर और पुष्प आदिसे पूजनकर गंगाजीमें मिला दे और घृतके दीपकोंको भी बहादे, और पुष्प आदिसे गंगाजीका इस मंत्रसे पूजन करै कि, ॐ शिवा, नारायणी, दशहरा, गंगाको प्रणाम है । जो मनुष्य दिनमें वा रात्रिदिनमें पांच सहस्र उक्त मन्त्रको जपता है वह दश प्रकार धर्मके फलको प्राप्त होता है, काशीखण्डमें तो और मन्त्र कहा है ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै, गंगायै स्वाहा, यह बीस अक्षरका मंत्र है, इससे ही पूजन दान जप होम करना लिखा है, गंगाजलमें बैठकर दरिद्री वा धनी जो मनुष्य दशबार इस मंत्रको पढता है वह भी भक्तिसे गंगापूजनके फलको प्राप्त होताहै, और प्रतिपदासे दशमीतक दिन वृद्धिक्रमसे स्तोत्रका पढ़ना यह शिष्ट कहते हैं, इसका सम्पूर्ण विस्तार और स्तोत्र आदि भट्टनिर्मित त्रिस्थलीसेतुमें देखना चाहिये, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते, इसप्रकार करनेवालेका फल काशीखण्डमें लिखा है कि, धनका संकोच त्यागकर विधिसे इसप्रकार अनुष्ठान करके उपवास करनेवाले मनुष्यके दश पाप छूटते हैं, और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है, तथा मरकर ब्रह्ममें लीन होता है । इसको सेतुबंध रामेश्वरकी प्रतिष्ठाका दिन होनेसे उसमें उक्त रामेश्वरकी पूजा विशेषरूपसे करनी चाहिये, सोई स्कंदपुराण सेतुके माहात्म्यमें लिखा है कि, ज्येष्ठ महीनेकी शुक्लपक्ष दशमी, बुध, हस्तनक्षत्र, गर, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याके चन्द्रमा, वृषके सूर्य इन दश योगोंमें सेतुमें लिंगरूपधारी महादेवकी रामचन्द्रने स्थापना कीथी यह शिवलिंग सर्व श्रेष्ठ है ॥ इति दशहराविधिः ॥

१ यह स्थापनाका समय कल्पान्तरविषयक है ।

ज्येष्ठशुक्लैकादशीनिर्णयः।

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला। तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो जलकुंभान् दद्यादिति निर्णयामृते उक्तम्। मदनरत्ने स्कान्दे-" ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा। निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान्॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ॥ "

ज्येष्ठशुक्ल एकादशी निर्जला होती है, उसमें निर्जल व्रत करके ब्राह्मणोंको जलके घडोंका दान दे, यह निर्णयामृतमें लिखा है, मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, हे राजाओंमें श्रेष्ठ ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी शुभ एकादशीमें निर्जल व्रत करके खांड सहित जलके घडे ब्राह्मणोंको देकर विष्णुके निकट आनन्द भोगता है॥

ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमायां सावित्रीव्रतनिर्णयः।

ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम्॥ तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः-' ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे ' इत्युपक्रम्य। ' व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रिं स्थिरा भवेत् ' इति अन्तेप्युपसंहृतम्॥ " ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम्। चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप॥ " इति॥ दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते॥ एतच्चामावास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये-" अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत्॥ " मदनरत्ने त्विदं वाक्यम्॥ ' पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे ' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामुक्तम्॥ तथा " अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया। अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम्॥ " इति॥ तत्तु पाश्चात्त्या आद्रियन्ते॥ हेमाद्रिसमयोद्द्योतादिषु तु भाद्रपदपूर्णिमायामुक्तम्। तत्तु नेदानीं प्रचरति॥ गौडास्तु-" मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत्॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः॥ वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः॥" इति॥ पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवेत्याहुः। तन्निर्मूलम्॥ अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये। " भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा॥ वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥ " इति ब्रह्मवैवर्तात्॥ स्कान्देपि-" भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत्। वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन॥ " इति॥ मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तेपि-" प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपूर्णिमा। नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः॥ " इति॥ यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी तदा परा ग्राह्या। " पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथिः। नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चेत्तच्च परेऽहनि॥ " इति माधवः॥ वस्तुतस्तु-' भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ' इत्यस्य व्रतांतरे सावकाशत्वाद्विशेषप्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन तस्य बाधादष्टादशनाडीवेधेपि पूर्वैवेत्ययं पन्थाः साधुः॥ अत्र पूर्णिमानुरोधेनैव यथा त्रिरात्रिसम्पत्तिर्भवति। तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम्। तस्याः प्रधानत्वात्॥ अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः। पारणं तु पूर्णिमांते कार्यम्॥ अथ स्त्रीव्रतेषु विशेषः परिभाषायामुक्तः॥

ज्येष्ठकी पूर्णिमाको सावित्रीव्रत होता है, यही स्कंद और भविष्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासकी शुक्ल द्वादशीको संध्याके समय, यह (प्रथम कहकर) तीन रात्रिके व्रतके निमित्त रात, दिन स्थिर रहै, और फिर अन्तमें जाकर पूर्ण भी करदिया है कि, ज्येष्ठमहीनेकी शुक्लपूर्णिमाका व्रत बड़ी भक्तिसे मैंने प्रथम किया और हे नृप ! तुमसे वर्णन किया है और दक्षिणी ब्राह्मण इसकाही आदर करतेहैं, और यह निर्णयामृतमें भविष्यपुराणके मतसे अमावस्याको भी कहाहै कि, ज्येष्ठकी अमावस्याको वटके मूलमें सती-स्त्रीको तीन दिन व्रत करना चाहिये । फिर इसी विधिसे पूजा करै मदनरत्नमें तो इस वाक्यको (पंच-दश्यां तथा ज्येष्ठे) ऐसा पढकर ज्येष्ठकी पूर्णिमासीको भी व्रत लिखा है, इसी प्रकार जो यह लिखा है कि, अशक्त और जितेन्द्रिय स्त्री त्रयोदशीको रात्रि और चतुर्दशीको अयाचित पौर्णमासीको व्रत करै, उसका पश्चिमके निवासी आदर नहीं करते हैं । हेमाद्रि समयोद्योत आदि ग्रन्थोंमें तौ भादोंकी पूर्णिमामें भी यह व्रत करना लिखा है, परन्तु उसका इन दिनों प्रचार नहीं है, गौड़ तो यह कथन करते हैं कि, मेष वा वृष राशिमें होनेवालेको सावित्री कथन करते हैं जो स्त्री सावित्रीका पूजन व्रत करके ज्येष्ठ शुक्ल १४ को वटकी मूलमें पूजन करती हैं वे विधवा नहीं होतीं, इस पराशरके कथनसे चतुर्दशीमेंही प्रदोषकालमें, व्रत करै, यदि दोनों दिन प्रदोषमें होय तो अगले दिन करै यह गौडोंका कथन निर्मूल है । सावित्रीके व्रतको त्यागकर, अमावास्या और पूर्णिमा चतुर्दशीसे विद्धा अमावस्याको व्रत न करै, हे शिखिवाहन ! सावित्रीव्रतको त्यागकर और प्रतिपदा, पञ्चमी, चतुर्दशी, सावित्री वटपूर्णिमा नवमी दशमी परतिथिसे विद्धामें व्रत न करै, यदि १८ घड़ी चौदस होय तो दूसरे दिनमें करै, माधवने यह कहा है कि, सावित्रीके व्रतमें पूर्णमासी पहले दिन विद्धा है यदि १४ चौदस अठारह घड़ी होय तो अगले दिन करै, सिद्धान्त तो यहहै कि, चतुर्दशी १८ घड़ीसे अगली तिथिको दूषित करती है, यह वाक्य और व्रतोंके मध्यमें सावकाशहै, इससे विशेषकर पूर्वविद्धा सावित्रीके बोधक वाक्योंसे इसका बाध होनेसे १८ घडीके वेधमेंही प्रथम सावित्री करनी यही मार्ग उत्तमहै । यहां पूर्णिमाके अनुरोधसे जैसे तीन रात्र व्रत होसकै तैसे त्रयोदशीको श्रेष्ठ होनेसे त्रयोदशीको व्रत ग्रहण करै । यह निर्णय अमावस्यामें भी जानना चाहिये, पारणा तो पूर्णिमाके अन्तमें करनी चाहिये, इस सावित्रीव्रतमें स्त्रियोंके निमित्त परिभाषाग्रन्थमें लिखा है ॥

सावित्रीपूजाविधिः ।

अत्र विशेषो भविष्ये–" गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर । ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ॥ सावित्रीप्रतिमां कुर्यात्सौवर्णीं वापि मृन्मयीम् । सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः ॥ रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुंकुमकेशरैः " । पूजये दिति शेषः । रजनी हरिद्रा । कण्ठसूत्रं सौभाग्यतन्तुः ॥ "सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयीत द्विजोत्तमैः । रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः ॥ तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ " मन्त्रस्तु–"सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती । ब्रह्म-णः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित् ॥ " इति ॥ ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे–" ज्येष्ठे मासि तिलान् दद्यात् पौर्णमा-स्यां विशेषतः । अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः ॥" विष्णुरपि–'ज्येष्ठीज्येष्ठायुता चेत्स्यात्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नराधिपत्यमाप्नोति ' इति ॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे–" ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा । पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता ॥ "

इति ॥ इयं मन्वादिरपि । सा पौर्वाह्निकी ग्राह्या । विशेषस्तु चैत्र उक्तः ॥ तथाऽपरार्के वामनपुराणे–"उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम् । त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु ॥ " इति ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ ज्येष्ठमासः समाप्तः ॥

भविष्य पुराणमें यह विशेष लिखाहै कि, हे युधिष्ठिर ! प्रस्थभर बालू बांसके पात्रमें लेकर और दो वस्त्रोंसे लपेटकर सुवर्ण वा मृत्तिकाकी सावित्री साध्वी सत्यवतीकी मूर्ति निर्माण करै और फल, नैवेद्य, दीपक, हल्दी, सौभाग्य सूत्र (लाल) कुंकुम केशरसे उसका अर्चन करै, और ब्राह्मणसे सावित्रीके इतिहासको श्रवण करै रात्रिको जागरण और प्रातःकालको निर्मल जलमें स्नानकर ब्राह्मणको मूर्ति देकर प्रणाम करके क्षमाकी प्रार्थना करै उसका मन्त्र यह है कि, ब्राह्मणकी प्रसन्नताके निमित्त यह सुवर्णसहित उत्तम सावित्री प्रदान की है, इसको तुम ग्रहण करो । हे राजेन्द्र ! इस व्रतको करनेसे स्त्री कभी भी विधवा नहीं होती, ज्येष्ठकी पूर्णिमाको विशेष आदित्य पुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासमें और विशेषकर पूर्णिमाको तिलका दान करके मनुष्यको अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । विष्णुने कहाभी है कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे संयुक्त पूर्णिमा होय तो उसमें छत्र जूतेके दानसे मनुष्योंका अधिपति होता है। हेमाद्रिग्रन्थमें ज्योतिषका यह वचन लिखा है कि, ज्येष्ठका बृहस्पति वा चन्द्रमा होय और रोहिणी नक्षत्रपर सूर्य होय तो वह पूर्णिमा महाज्येष्ठी कही है, यह मन्वादिभी है, सो पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी इसका विशेष चैत्रके निर्णयमें लिखदिया है । अपरार्कमें वामनपुराणका कथन है कि, जलके घड़े और जल, तालका फल और चन्दनको त्रिविक्रम भगवान्की प्रीतिके निमित्त देना चाहिये ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां ज्येष्ठमासः ।

आषाढमासः ।

मिथुनसंक्रान्तिनिर्णयः ।

मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ तु प्रागेवोक्तम् ॥

मिथुनकी संक्रान्तिमें अगली सोलह घड़ी पवित्र काल है, रात्रिमें संक्रान्तिका पुण्यकाल तो पहले लिखआये हैं ॥

आषाढशुक्लद्वितीयानिर्णयः ।

आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः । तदुक्तं तिथितत्त्वे स्कान्दे–"आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून् ॥ " तथा–"ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्रासौ मम पुण्यदा ॥ "

आषाढशुक्ल द्वितीयाको रथयात्राका उत्सव होताहै यही तिथितत्त्वग्रन्थमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, आषाढशुक्ल द्वितीयाको सुभद्रासहित मुझ रामको बैठाकर यात्राका उत्सव करना चाहिये और बहुतसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै लिखाभी है कि, पुष्यनक्षत्र न होय तो तिथियोंमें ही मेरी प्रसन्नताके निमित्त रथयात्रा करनी चाहिये ॥

आषाढशुक्लदशमीनिर्णयः ।

अषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः । सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्येति प्रागुक्तम् ॥

आषाढ शुक्ल दशमी और पूर्णिमा मन्वादि है वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी यह पहले लिख आयेहैं ॥

आषाढशुक्लद्वादशीनिर्णयः ।

आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये—"आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् ॥ " अस्यार्थः—आषाढभाद्रपदकार्तिकशुक्लद्वादशीष्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्यादिति ॥ अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तम् । तथाप्यनुराधाप्रथमपाद एव वर्ज्यः । तदुक्तं विष्णुधर्मे—"मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति ॥ श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ॥ " इति ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचनमिदं च निर्मूलम् ॥

अनुराधा नक्षत्रके योगसे हीन आषाढशुक्ल द्वादशीको पारणा करै, यही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आषाढ, भाद्रपद, कार्तिककी शुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवतीका योग होय तो भोजन न करै । यदि भोजन करै तो द्वादश एकादशीका फल नष्ट होता है । यद्यपि इस वाक्यमें सम्पूर्ण अनुराधा लिखाहै तथापि अनुराधाका प्रथम चरणही वर्जित है, यही विष्णुधर्ममें लिखाहै अनुराधाके प्रथम चरणमें विष्णु सोतेहैं रेवतीके प्रथम चरणमें जागतेहैं श्रवणके मध्यमें करवट लेते हैं इससे सोना, जागना, करवट लेनेहीका भोजनके समयमें निषेध है, सिद्धान्तसे तो यह है कि, प्रथमका यह वाक्य निर्मूल है ॥

तत्र विष्णुशयनोत्सवनिर्णयः ।

अत्रैव विष्णुशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे—"एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः । भुजंगशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ॥ " इति ॥ कल्पतरौ यमः—"क्षीराब्धौ शेषपर्यंके आषाढ्यां संविशेद्धरिः । निद्रां त्यजति कार्त्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेवं व्यपोहति । हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः ॥ प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः" ॥ २ ॥ टोडरानंदेपि स्कांदे—'आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम् ' ॥ अयं द्वादश्यामप्युक्तः । "आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः । निशि स्वापो दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम् ॥ " अत्र पादयोगेपि द्वादश्यामेव कारयेत् ॥ "आभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च । द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥ " इति भविष्योक्तेः । "द्वादश्यां संधिसमये नक्षत्राणामसंभवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम् ॥ " इति वाराहोक्तेश्च ॥ द्वादश्यामित्यत्रापि पारणाहोममात्रं विवक्षितम् । 'पारणाहे पूर्वरात्रे घंटादीन्वादयन्महः ' इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेन व्यवस्था ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । 'ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्' इति कालादर्शे निषेधात् । यदपि—"एकादश्यां तु गृह्णीयात्संक्रान्तौ कर्कटस्य च । आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम् ॥ " इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तम् ॥ तदपि मलमासे सति द्रष्टव्यम् ॥

इसमेंही विष्णुशयनका उत्सव हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके मतसे लिखाहै कि, आषाढशुक्ल एकादशीको शेष शय्यापर भगवान् क्षीरसागरके जलमें निरन्तर शयन करते हैं। कल्पतरुग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, आषाढकी एकादशीको भगवान् क्षीरसागरमें शयन करते हैं, और कार्तिकशुक्ल एकादशीको जागते हैं। इससे इन दोनोंमें जो मनुष्य विष्णु भगवान्का सदैव पूजन करते हैं उनके ब्रह्महत्यादि पाप सब दूर होते हैं। जो मनुष्य सोने और जागनेके दिन केशव भगवान्का पूजन करता हैं, उसको हिंसारूप यज्ञोंसे क्या प्रयोजनहै, टोडरानन्दग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, आषाढ़शुक्ल एकादशीको विष्णुशयनका उत्सव करना चाहिये, यह उत्सव द्वादशीमें भी लिखा है. कारण कि, भविष्यपुराणका वाक्य है कि आषाढ, भाद्रपद, कार्तिकशुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्रोंके आदि, मध्य और अन्तके चरणोंमें क्रमसे सोने, करवट लेने और जागनेका उत्सव करै उनमें शयनका उत्सव रात्रिमें और जागनेका उत्सव दिनमें और करवट लेनेका उत्सव सन्ध्यामें करना चाहिये अन्य समयभी पूर्वोक्त चरणोंका होय तो भी पूर्वोक्त उत्सवको द्वादशीमें ही करना चाहिये. आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक आदि महीनोंमें और मिथुन आदिके सूर्यमें भगवान्के शयन आदिका उत्सव शुक्लद्वादशीको करना चाहिये। वाराहपुराणमें लिखा है कि, द्वादशीको सन्ध्याके समय जबतक नक्षत्रोंका उदय न हो तबतक आषाढ, भाद्रपद, कार्तिकमें विष्णुके शयन आदिका उत्सव करना यहां द्वादशी पदसे पारणाका दिन ग्रहण करना, कारण कि, रामार्चनचंद्रिकामें लिखा है कि, पारणाके दिन पहली रात्रमें घण्टा आदिको वारम्वार बजावै, यहाँ एकादशी और द्वादशीकी व्यवस्थ देशभेदसे जाननी चाहिये। इस उत्सवको मलमासमें न करना चाहिये, कारण कि, कालादर्शमें शिवकी बली और विष्णुका शयन और करवट लेना वर्जित है, और जो यह लिखा है कि, कर्ककी संक्रांति और आषाढकी एकादशीको मनुष्य भक्तिपूर्वक चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करै, यह ब्रह्मवैवर्त्तका कहा मलमास होय तो जानना चाहिये॥

"मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत्। द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥" इति तत्रैव मोहचूलोत्तरोक्तेः।

कारण कि, उसी हेमाद्रिग्रन्थमें मोहचूडोत्तरका यह वाक्य है कि, जब मिथुनका सूर्य दो अमावस्याओंको स्पर्श करै, उसीको दो आषाढ कहते हैं, और विष्णु कर्ककी संक्रांतिमें शयन करते हैं॥

तत्र चातुर्मास्यव्रतनिर्णयः।

अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारंभ उक्तो भारते-"आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः। चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः" इति॥ अस्य नित्यत्वं तत्रैवोक्तम्। "वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत् केनचिन्नरः। व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम्॥ असंभवे तुलार्केपि कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः" इति। तेनाषाढशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां पौर्णमास्यां वारम्भः। समाप्तिस्तु कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेव। तदुक्तं हेमाद्रौ भारते-"चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्" इति॥ अस्यारंभः शुक्रास्तादावपि कार्यः। "न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः। खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः" इति हेमाद्रौ वृद्धगार्ग्योक्तेः॥ इदं च द्वितीयाद्यारम्भविषयकम्। प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव। आशौचमध्येपि द्वितीयाद्यारम्भो भवति। "अशुचिर्वाशुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान्। व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः" इति भार्गवार्चनदीपिकायां स्कान्दोक्तेः। 'आरब्धे सूतकं न स्या-

दनारब्धे तु सूतकम्' इति विष्णुवचनाच्च ॥ यत्तु–"असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि । मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः" इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यप्रकरणे भविष्यवचनम् । तत् पूषानुमन्त्रवदसंबद्धं मध्ये पठितमिति ज्ञेयम् । अन्यथा पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य विवाहादेश्च चातुर्मास्यव्रते कः प्रसंगः । प्रकरणनिवेशेपि वा प्रथमारम्भविषयं ज्ञेयम् । केचित्तु प्रतिवर्षं चातुर्मास्यव्रतप्रयोगानां भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न भवत्येव इत्याहुः ॥ तन्न "प्रतिवर्षं च यः कुर्याद्देवं वै संस्मरन् हरिम् । देहान्तेतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्चसा ॥ मोदते विष्णुलोकेसौ यावदाभूतसंप्लवम् ।" इति हेमाद्रौ भविष्यवचनादित्यास्तां विस्तरः ॥

इसी एकादशीको चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करना कहा है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको व्रत करके मनुष्य सावधानीसे किसी न किसी चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करे और इस व्रतको नित्यत्व भी भारतमेंही लिखा है कि, मनुष्यको वर्षाके चार महीने किसी न किसी व्रतसे व्यतीत करने चाहिये, न करै तो वर्ष दिनके पापको प्राप्त होता है । अर्थात् वर्ष दिनका पाप नष्ट नहीं होता, वर्षामें न होय सकै तो तुलाकी संक्रांतिमें भी व्रतादि करना इससे आषाढशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करै, समाप्ति तो कार्तिकशुक्ल द्वादशीको करनी, यही हेमाद्रिमें भारतका वाक्य है कि, मनुष्य चार प्रकारके चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करके कार्तिकशुक्ल द्वादशीको पूर्ण करै, शुक्रके अस्त आदिमें भी इसका आरम्भ करदे. कारण कि, हेमाद्रिमें गर्गने कहा है कि, शुक्र और गुरुका बाल्य और अस्त और तिथिकी हानि इनकी चिन्ता मनुष्यको चातुर्मास्यके व्रतारम्भमें न करनी, यह भी दूसरे आरम्भमें है प्रथम आरम्भ तो शुक्रास्तमें नहीं हो सकता. भार्गवार्चनदीपिकामें स्कन्दपुराणका यह वाक्य लिखा है कि, अशौचके मध्यमें भी दूसरा आरम्भ होसकता है, अशुद्ध हो वा शुद्ध हो स्त्रीहो वा पुरुष हो इस व्रतको करके मनुष्य सब पापोंसे छूटता है. विष्णुने भी कहा है कि, आरम्भ किये व्रतमें सूतक नहीं और जिसका आरम्भ न कियाहो उसमें सूतक लगता है, और जो यह हेमाद्रिमें भविष्यका कथन है कि, संक्रांतिरहित महीने और मलमास और अशौचको बुद्धिमान् मनुष्य देव और पितृकर्ममें छोड दे, यह वाक्य चातुर्मास्यव्रतके प्रकरणमें पूषानुमन्त्रण मन्त्रके समान असंगत बीचमें पढदिये हैं, यह जानना. नहीं तो पूर्वोक्त पितृकर्म और विवाह आदिकका क्या प्रसंग था, और प्रकरण होभी तो प्रथमारम्भमें जानना. कोई यह कहते हैं कि, प्रतिवर्ष चातुर्मास्य व्रतके करनेको पृथक् २ होनेसे अशौच आदि आपडै तो उनमें द्वितीय आदि कहना नहीं बनसक्ता, सो उचित नहीं है, जो मनुष्य हरिका स्मरण करता हुआ देवकर्मको प्रतिवर्ष करता है वह सूर्यके प्रकाश सदृश विमानमें बैठकर प्रलय पर्यन्त विष्णुके संग आनन्द भोगता है, यह हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है, इतनाही विस्तार बहुत है ॥

तत्र शैवादीनामपि व्रतनिर्णयः ।

इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । "शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके । कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये--"महापूजां ततः कुर्याद्देवदेवस्य चक्रिणः । जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे च विबुद्ध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः । प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि । इमं

करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ' निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत् । तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे मृतो ह्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" ॥ ७ ॥ इति ॥ तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायां च भविष्ये-" श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा । दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत् " इति ॥ स्कान्देऽपि चातुर्मास्यकल्पे-" चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम् । प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् । पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ॥ द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं च विवर्जयेत् । नित्यान्येतानि विप्रेंद्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ जम्बीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम् । कूष्माण्डं चेक्षुदंडं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः" ॥४॥ तथा- "विशेषाद्बदरीं धात्रीं कूष्माण्डं तिन्तिडीं त्यजेत् । जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित्कायशोधनम् " इति ॥ तीर्थसौख्ये स्कांदे-" वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्दने । मंचखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधुपरौदनम् । पटोलं मूलकं चैव वृंताकं च न भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम् । राजमाषान् कुलत्थांश्च आशुधान्यं च संत्यजेत् ॥ शाकं दधि पयो माषान् श्रावणादिषु संत्यजेत् " ॥ ४ ॥ अत्र त्यजेदितिवर्जनसंकल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः। व्रतोपक्रमात् ॥ अत्र केचित् 'शाकाख्यं पत्रपुष्पादि' इत्यमरकोशस्य शक्यतेऽशितुमनेनेति शाक इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् ॥

शिवजीके भक्तोंको भी इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, शिवजी वा सूर्य वा गणेशकी भक्तिवाला मनुष्य होय तो इस व्रतको करके यथोक्त फलको भोगता है । व्रतके ग्रहण करनेका प्रकार तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फिर देवताओंके देव चक्रधारी भगवान् की पूजा करै और जुहीके फूलोंकी मालासे पूजन करै हे जगन्नाथ ! तुम जब शयन करते हो तब सम्पूर्ण जगत् सोता है और जब तुम जागते हो तब सब जगत् जागता है, इससे हे अच्युत ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो इसप्रकार विष्णुकी प्रतिमाका पूजन करके प्रातःकालके समय विष्णुके आगे कर जोड़कर प्रार्थना करै कि, वर्षाके चार मास देवके उठने पर्यंत इस व्रतको करता हूं, हे अच्युत ! मेरे व्रतको निर्विघ्न करो, यह व्रत मैंने आपके आगे ग्रहण किया है, सो हे केशव ! आपकी कृपासे निर्विघ्न सिद्ध हो, यदि इस व्रतके ग्रहण करनेपर मेरा मरण हो जाय तो भी हे जनार्दन ! आपकी प्रसन्नतासे व्रत पूर्ण होजाय । हे देव ! यदि व्रतकी पूर्ति ग्रहण न होनेतक मैं मरजाऊं तौ भी हे जनार्दन! आपकी कृपासे पूर्ण हो, यह सब भार्गवार्चनदीपिका और नृसिंहचर्य्यामें भविष्यपुराणके वाक्योंसे लिखा है । श्रावणमें शाक, भादोंमें दही और आश्विनमें दूध और कार्तिकमें द्विदल (दाल) इनको वर्जना चाहिये । स्कंदपुराणके चातुर्मास्य कल्पमें लिखा है कि, चारों आश्रम और चारों वर्णोंको ये चार नित्य जानने अर्थात् सदा करने चाहिये कि, प्रथम महीनेमें शाकव्रतको, दूसरेमें दधिव्रतको, तीसरेमें दूधव्रतको और चौथेमें द्विदल और बहुत बीजवाले बैंगन आदिको, मनुष्योंको त्यागना चाहिये । हे विप्रेन्द्र बुद्धिमानोंने यह नित्यव्रत लिखे हैं, जम्बीरीनीम्बू, लोबिया, मूली और लालमूली (सलगम) काशीफल,

गन्नेको चार्तुमास्यमें मनुष्य त्याग करै इसमें प्रमाण नहीं मिलता, इसीप्रकार विशेषसे आंवला, काशीफल, इमली इनको वर्जदे, जो किसीप्रकार देहकी शुद्धि (जुलाब) करनी होय तो पुराने आंवले ग्रहण करले तीर्थसौख्यमें स्कंदपुराणका कथन है कि, जनार्दनके शयन अर्थात् वर्षाके चार महीनेभर भक्तिमान् मनुष्य मञ्च और खट्वाको वर्जदे, और ऋतुकालको त्यागकर भार्या (स्त्री) को वर्जदे । मांस, शहत, पराया भात, पटोल, मूली बैंगन न खाय । अभक्षको त्यागदे, मसूर, श्वेतसरसों, कुलथी, आसूधान्य, (समा आदि) को त्यागदे और शाक, दधि, दूध, उडदको श्रावण आदि महीनोंमें त्यागदे, इसमें त्यागसे वर्जनेका संकल्प समझना, यहीं कोई शाकपदसे जिसके संग अन्न लगाकर खाया जाय इस अमरकोशकी व्युत्पत्ति और क्षीरस्वामीके व्याख्यानके व्यंजनमात्रका निषेध कथन करते हैं ॥

व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते ॥ अन्ये तु शाकशब्दस्य पत्रादिदशविधशाके योगरूढत्वात्, योगाच्च रूढेर्बलीयस्त्वात् सूपादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत् प्रत्याचक्षते । तेन–"मूलपत्रकरीराग्रफलकांडाधिरूढकाः । त्वक् पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्" ॥ इति क्षीरस्वामिनोक्तस्य शाकस्य निषेध इति ॥ अधिरूढकः अंकुरः ॥ वस्तुतस्तु–"तत्तत्कालोद्भवाः शाका वर्जनीयाः प्रयत्नतः । बहुबीजमबीजं च विकारि च विवर्जयेत्" ॥ इति भविष्यवचनात्तत्कालोत्पन्नानां दशविधशाकानां निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवजातीयत्वं विवक्षितम् । तेनातपादिशोषितानां वर्षांतरोद्भवानामपि निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवत्वमात्रं विवक्षितं न तु तन्मात्रकालोद्भवत्वं गौरवात् । तेनान्यकालोद्भवानां तत्कालोद्भवानां च विंवादीनां निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवा इति वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः । बहुबीजमित्यनेकबीजमिति केचित् । इतरावयवापेक्षया बीजावयवा यत्र बहवस्तदित्यन्ये ॥ अबीजं कन्दलादि ॥ वस्तुतस्तु । इदं महानिबन्धे स्वभावान्निर्मूलमेव ॥ आचारप्रदीपे–"वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौदुम्बरभिःसटाः । उदरे यस्य जीर्यंते तस्य दूरतरो हरिः" ॥ तथापरार्के देवलः–"ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः" ॥ आमिषाणि चोक्तानि रामार्चनचंद्रिकायां पाद्मे–"प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम् । अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥ दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम् । रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्" ॥ २ ॥ पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये–"गोछागीमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादि चामिषम् । धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा । ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः" ॥ ३ ॥

और तो यह कहतेहैं कि, पत्ते आदिकोंके बने हुये दश प्रकारके शाकमें शाकपद रूढ़ है और योगसे रूढ़ी बलवान् है अन्यथा दाल आदिकोंका निषेध भी होजायगा । इससे पूर्वोक्त कथन सत्य नहीं तिससे मूल, पत्र करीर फल और डालियोंपर चढ़ी बेल, त्वचा, पुष्प, छत्राक (ढाल) क्षीरस्वामीके कहे हुए दश प्रकारके शाकका निषेध है, डालोंपर चढ़ी हुई बेलोंका जो दश प्रकारका शाक कहा है उसकाही निषेध है, अधिरूढ पदसे अंकुर ग्रहण करलेते हैं सिद्धान्त तो यहहै कि, उस उस कालमें उत्पन्न हुए शाक यत्नसे

वर्जने और बहुबीज बीजरहित और विकारीको भी त्याग देना चाहिये। इस भविष्यपुराणके वाक्यसे तिस कालमें उत्पन्न हुए दश प्रकारके शाकोंका निषेध है और वेभी उसकालमें उत्पन्न हुएके सजातीय लेने, न कि, उस कालके उत्पन्न हुये, तिससे अन्य वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुए और धूपमें सुखाये हुए शाकोंको भी त्यागना चाहिये। और उसकालमें उत्पन्न हुओंके सजातीयही शाक लेने चाहिये। कुछ उसी समय पैदा हुए ग्रहण न करने उनके लेनेमें गौरव है, और यहां उस उस समय उत्पन्न हुए वीप्सा (दो बार पढना) के वशसे अपने २ समयमें उत्पन्न हुए सब शाकोंका निषेध है यह सब सिद्धांत है और कोई बहुबीज शब्दसे अनेक बीज ग्रहणकरना कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि, दूसरे अवयवोंकी अपेक्षा, जिसमें अवयव बहुत हों उसे बहुबीज कहते हैं, और अबीज पदसे कन्द आदि ग्रहण करने सिद्धान्त तो यह है कि, यह बडे २ ग्रन्थोंमें न मिलनेसे यह अप्रमाण है आचारदीपमें कहा है कि, बैंगन, कलिंग, बेर, गूलर ये जिसके उदरमें पचकर रहजांय उससे नारायण दूर रहते हैं अपरार्कमें देवलने कहा है कि, व्रतोंमें ये चार व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ हैं कि, ब्रह्मचर्य, शौच, सत्यबोलना, मांसका त्याग रामार्चनचन्द्रिकामें पद्मपुराणके वाक्यसे इतने आमिष लिखे हैं, कि प्राणीके अंगका चूर्ण, चमडेका जल, जम्बीरी, बिजौरा, यज्ञसे नहीं शेष रहा अन्न, मसूर यह आठ प्रकारका आमिषही है उस उस देशमें मिलने योग्य और रोचक इनको देवके शयनकालमें त्याग देना चाहिये कार्तिकमाहात्म्यमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, गौ, बकरी, भैंसके दूधसे अन्य दूधभी आमिष कहाता है और अन्नमें मसूर और बासी अन्न तथा ब्राह्मणसे खरीदे हुए सम्पूर्ण रस और भूमिमें उत्पन्न लवण ताम्बेके पात्रमें स्थित गौका दूध, दही, घी छोटे सरोवरका जल अपने निमित्त पकाया अन्न यह सब पण्डितोंने आमिष कहे हैं॥

तथा—"निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं सन्धितानि च। वृन्ताकं च कलिङ्गं च सुप्ते देवे विवर्जयेत्॥" सन्धितानि लवणशाकादीनि तत्रैव विष्णुधर्मे—'चतुर्ष्वपीह मासेषु हविष्याशी न पापभाक्'॥ हविष्याणि तु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये—"हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः। कलायकंगुनीवारवास्तुकं हिलमोचिका॥ षष्टिकाकालशाकं च मूलकं केमुकेतरत्। कंदः सैंधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी। पिप्पली जीरकं चैव नागरंगं च तिन्तिणी॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्। अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते"॥ ४॥ इति॥ सितास्विन्नम् अनूष्मपक्वं धान्यं च तंदुलाः॥ केमुकं 'केमुत' इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कंदः॥ 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः 'बटुरी' इति प्रसिद्धं धान्यम्। मदनरत्नेप्येवम्॥ अगस्त्यसंहितायाम्। हैमन्ताद्युक्त्वा—"नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा। आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी॥ व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्वते बुधाः॥ अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ भविष्ये—"स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकान्॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तॄणां पृथक् पृथक्। मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात्॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुन्दरांगः प्रजायते। कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात्। तांबूलवर्जनाद्भोगी रक्तकंठश्च जायते॥ घृतत्यागाच्च लावण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत्। शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वादोऽमलो भवेत्॥ भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत्॥ एकांतरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते॥ धारणान्नखरोम्णां च गंगास्नानफलं लभेत्।

मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञास्खलिता भवेत् ॥ भूमौ भुंक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ॥ हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् । अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्यान्विशेषतः ॥ षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति । पर्णेषु यो नरो भुंक्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥ गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्युतं ताम्रभाजनम् । सहिरण्यं नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः ॥ सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्गणमर्चयेत् । पंचवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा ॥ स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात्" ॥

और सफालोबिया, मसूर, सणका साग, बैंगन, कलिंग इनको देवशयनमें त्याग देना । वहांही विष्णुधर्मका कथन है कि, जो मनुष्य चातुर्मास्यमें हविष्य भोजन करता है वह पापभागी नहीं होता, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यपुराणके वाक्यसे हविष्य ये लिखेहैं, कि, हेमन्तकी खांड, बिनाअग्नि पकाया अन्न, चावल, मूंग, यव, तिल, कलाय (सतोनक) जिसको मटर कहते हैं, कांगनी, नीवार, बथुवा, हिलमोचिका, शाठी, कालशाक, मूलीके मुकसे भिन्न कन्द, शैला, समुद्रझाग, दही, घी, गौका दूध, पनस (कटहल) हरड, पीपल, जीरा, नागरमोथा इमली केला, लवली, आवले, गुडसे भिन्न इक्षुका विकार विनातेल पकाये हुए इनको मुनिजन हविष्य कहते हैं । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखाहै, अगस्त्यसंहितामें भी पूर्वोक्त हेमन्तआदिको कहकर यह कहा है कि, नारियल, केला, लवली, आम्र, आंमला, पनस, हरड और अन्यव्रतोंमें प्रसिद्ध (ताल आदि) कोभी पण्डितजनोंने हविष्य कहा है, और भी फल हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे इस प्रकार लिखे हैं, कि, स्त्री वा मनुष्य मेरा भक्त दृढ संकल्प करके दन्तधावन (दतोन) करके इन नियमोंको ग्रहण करै, उनके करनेवालेके फलोंको भिन्न २ कहताहूं, कि, गुडके त्यागनेसे मधुरस्वरवाला राजा होता है, तैलके त्याननेसे सुन्दरवर्ण मिलताहै, कडुवे तेल त्यागनेसे शत्रुनाश होतेहैं, जो योगका अभ्यास करै वह ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै, ताम्बूलके त्यागनेसे भोगवान् और लालकण्ठ होताहै, घृतके त्यागसे शोभी और चिकना शरीर होताहै, पके हुए शाकोंके भोजनसे भोगी, और कच्चोंके खानेसे उज्ज्वल होताहै, भूमिके बिछोनेपर सोनेवाला ब्राह्मण मुनियोंमें श्रेष्ठ होताहै, एकान्तव्रत (तृतीयदिनभोजन) से ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होताहै, नख और केशोंके धारणसे गंगास्नानका फल मिलताहै, जो मौनव्रत धारण करताहै, उसकी आज्ञा सब पालन करते हैं, जो सदैव भूमिपर भोजन करता है, वह भूमिका पति होताहै, और स्तोत्रपाठ करता है वह भूमिका पति होताहै और स्तोत्रपाठ करता हुआ जो सौ प्रदक्षिणा करता है, वह हंसोंके विमानमें बैठकर विष्णुके लोकमें गमन करता है, अयाचितके भक्षणसे धर्मवाले पुत्रोंको प्राप्त होताहै जो छठे समयमें भोजन करताहै वह स्वर्गमें एक कल्पतक निवास करताहै, जो मनुष्य पत्तोंमें भोजन करता है उसे कुरुक्षेत्र स्नानका फल मिलता है, गुडत्यागनेवाला मनुष्य गुडसे भरे सोने सहित तांबेके पात्रको दान करै हे नरश्रेष्ठ ! लवणकी भी यही विधि है, देवशयनके समय जो विष्णु और शिवजीके आंगनकी ऐसी पूजा करताहै, जिसमें पांच रंगके स्वस्तिक (पद्मके चिह्न) हों, वह रुद्रलोकमें जाकर गणोंका पति होताहै ॥

व्रतान्ते दाननिर्णयः ।

अथैषां समाप्तौ कार्त्तिक्यां दानानि । एकभुक्तव्रते दंपती संपूज्य धेनुर्देया । नक्ते वस्त्रयुगम् । एकांतरोपवासे गौः । भूशयने शय्या । षष्ठकालभोजने गौः । व्रीहिगोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि । कृच्छ्रे गोयुग्मम् । शाकाशने गौः पयोव्रते च । दधिमधुघृतव्रतेषु वासो गौश्च । ब्रह्मचर्ये स्वर्णमूर्तिः । ताम्बूलव्रते वासोयुगम् । मौने घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च ॥ देवाग्रे रंगमालिककरणे धेनुर्हेमपद्मं च । दीपिकाव्रते दीपिका वासोयुगं च

भूमिभोजने पर्णभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च । चतुष्पथदीपे गोग्रासे च गोवृषौ । प्रदक्षिणाशते वस्त्रम् । अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च ॥ इत्यादि हेमाद्रौ ज्ञेयम् । तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे-"शयनीबोधिनीमध्ये शमीदूर्वापमार्गकैः । भृंगराजेन देवांस्तु नार्चयीत कदाचन ॥ " हेमाद्रौ पाद्मे-"आषाढादिचतुर्मासानभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः । समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम् ॥ आषाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम् । वृंताकं गृञ्जनं चैव मधुसर्पिर्घटोचितम् ॥ कार्त्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्" ॥ ३ ॥ अन्यान्यपि केशकर्तनादिवर्जनसंकल्पानुरूपाणि पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि । टोडरानन्दे स्कान्दे-"एकान्तरं द्व्यन्तरं वा कुर्यान्मासोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा" ॥

इसके उपरान्त इन व्रतोंकी समाप्ति होनेपर कार्तिककी पूर्णमासीको दान कहतेहैं कि, नक्तव्रतमें दो वस्त्र, एकान्तर व्रतमें गौ, भूमिपर सोनेमें शय्या, छठे काल भोजनमें गौ, चावल और गेहूंके त्यागमें सोनेके तन्दुल आदि, कृच्छ्रव्रतमें दोगौ, शाकभोजन और दूधके व्रतमें गौ, मधु, दही, घीके व्रतमें वस्त्र, और गौ, ब्रह्मचर्यमें सोनेकी मूर्ति, ताम्बूलके व्रतमें दो वस्त्र, मौनमें घीका घट और दो वस्त्र और घण्टा, देवके आगे चित्राम करनेमें गौ और सोनेका पद्म दीपकके व्रतमें, दीवट और दो वस्त्र, भूमि और पत्तोंके भोजनमें कांसीका पात्र, और गौ, चौराहेमें दीपक और गोग्रासमें गौ और बैल, सौ प्रदक्षिणामें वस्त्र दे । जिनका दान नहीं कहा उनमें सोना और गौका दान करै इत्यादिक सब हेमाद्रिमें लिखा है, वहां देखलेना । तैसेही भार्गवार्चनदीपिकामें पद्मपुराणका वाक्य है कि, शयनी बोधिनी एकादशियोंके बीचमें मनुष्य शमी (जांड) दूब, चिरचिटा, भांगरा इनसे देवताओंका पूजन कदाचित् भी न करै, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, आषाढ आदि चार मासोंमें मनुष्य उबटना न लगावै और समाप्तिमें तिलके भरे घड़ेका दान करै आषाढ आदि चार महीनोंमें नखोंको न कटवावै और बैंगन गाजरको भी न खाय और कार्तिककी पूर्णिमाको मधु और घीसे युक्त सोनेका घड़ा ब्राह्मणको दे और भी संकल्पसे त्यागने योग्य पदार्थ पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखेहैं वो देखने चाहिये, टोडरानन्दमें स्कन्दपुराणका लेख है कि, एकान्तर वा दो अन्तर वा दो महीनोंका व्रत, चावलका त्याग, फलाहार नक्तव्रत इनको करै ॥

तप्तमुद्राधारणनिर्णयः ।

अत्रैव तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां भविष्ये-"शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च । शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः" ॥ इति । 'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते' इति ऋग्वेदात् । "सहोवाच याज्ञवल्क्यस्तस्मात् पुमानात्महिताय हरिं भजेत् । सुश्लोकमौलेर्वर्माण्यग्निना संदधते" इति शतपथश्रुतेः ॥ "प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्मांभोधी तर्तवे चर्षणींद्राः ॥ मूले बाह्वोर्दधन्ये पुराणात्तु लिङ्गान्यंगेतप्तायुधान्यर्पयंतः" ॥ इति सामवेदात् ॥ अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम्" ॥ इति पद्मपुराणाच्चेति ॥ "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः । शंखमुद्रांकिततनुस्तुलसीमञ्जरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः" इति काशीखण्डात् ॥

इसमेंही तप्तमुद्राका धारण रामार्चनचन्द्रिकामें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, शयनी वा

बोधिनी को और चक्रतीर्थमें शंखचक्रकी विधिसे मनुष्य अग्निसे पवित्र होजाय और ऋग्वेदमें भी कहा है कि, जो तप्त शरीर नहीं वह मोक्षको प्राप्त नहीं होता, और शतपथकी भी यह श्रुतिहै कि, याज्ञवल्क्य कहने लगे कि, तिससे पुरुष अपने हितके निमित्त हरिको भजन करै। और हरिके चक्रोंको अग्निसे तपाय अंगोंमें धारण करै, हे विष्णो! भवसागरके तरनेके निमित्त जो तुम्हारे शंख चक्रसे तपते हैं वे स्वर्गमें इन्द्र होतेहैं, भुजाओंके मूलमें जो तुम्हारे सनातन लिंगोंको धारण करतेहैं वह तुम्हारे भक्त होतेहैं, यह सामवेदका वाक्य है। और पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, ब्राह्मणके निमित्त अग्निहोत्र वेदका पढ़ना जैसे नित्यहै तैसे तप्तमुद्रिकाका धारण करना भी नित्यहै, और काशीखण्डमें भी लिखा है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा अन्यजाति जो मनुष्य शंख, चक्र, तुलसीकी मञ्जरी गोपीचन्दनको अपने अंगमें धारण करतेहैं उनके पाप कहां॥

तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकातो ज्ञेयः॥ पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु—"यस्तु सन्तप्तशंखादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः। स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु॥ द्विजं तु तप्तशंखादिलिङ्गांकिततनुं नरः। सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश"॥ २॥ इति बृहन्नारदीयोक्तेः॥ "शंखचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा। एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मनः॥ शंखचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा। स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥ यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु। तथा चक्रांकितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः"॥३॥तथा—"शिवकेशवयोरङ्कांञ्छूलचक्रादिकान् द्विजः। न धारयेत मतिमान्वैदिके वर्त्मनि स्थितः" इति विष्णवाश्वलायनादिवचनात् ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वात् चक्रादिधारणं शूद्रविषयमित्यूचुः नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी यद्यपिनिषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वाद्विधिं विना च तदयोगादुपजीव्यविरोधेन 'न तौ पशौ करोति इतिवद्विकल्पो युक्तस्तथापि एकजातेरयं धर्म इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहरात्द्विजातिनिषेधो नित्यानुवाद इति तदाशयः॥ अत्र शिष्टाचार एव सङ्कटपाशानिःसरणसरणिरिति संक्षेपः॥

शंख चक्र लेनेकी विधि तो रामार्चनचंद्रिकामें लिखी है, पृथ्वीचन्द्रोदय आदि तो यह कहतेहैं कि, अग्निसे तपाये हुये शंख चक्रसे अंकित शरीरवालेके संग सम्भाषण करनेवाला मनुष्य इतने समय

---

१ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्नतदामो अश्नुते शृता स इद्वहन्त स्तत्समा शत। ऋ० ७। ३। ८॥

सायनभाष्य—हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्य स्वामिन् सोम ते पवित्रं शोधकं अंगं विततं सर्वत्र विस्तृतं सप्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरंगाणि पर्येषि परिगच्छसि विश्वतः सर्वतः तव तत्पवित्रं अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असंतप्तगात्रः आमः अपरिपक्वोनाश्नुते न व्याप्नोति शृता स इत् शृता एव परिपक्वा एव वहन्तो यागं निर्वहन्तः तत्पवित्रं सभाशतं व्याप्नुवन्ति॥

भाषार्थः—हे मन्त्रके स्वामी सोम आपका पवित्र अंग सब ओर विस्तृत है समर्थ आप सबकी पालना करते हो आपके पवित्रस्वरूपको पयोव्रत ब्रह्मचर्यादिसे रहित अपरिपक्व आत्मावाला पुरुष नहीं प्राप्त होता और जो तपसे शुद्ध हैं वे तपका आचरण करते हुए उस शुद्धस्वरूपको भली प्रकार पाते हैं इस मन्त्रमें शरीर दगानेका कुछभी प्रसंग नहीं है॥

रौरवनरकमें जाताहै जबतक चौदह १४ इन्द्र भोगैं, यह बृहन्नारदस्मृतिमें लिखाहै, शंख चक्रसे अंकित होना, गाना और नाचना यह शूद्रका धर्म है, द्विजातियोंका नहीं है ।: जो मनुष्य मृत्तिकासे वा तपाये लोहेसे अपने शरीरपर शंख चक्र अंकित करतेहैं, वह द्विजातियोंके सम्पूर्ण कर्मसे शूद्रके समान बाहर करनेयोग्य हैं। जैसे श्मशानकी भूमिका काष्ठ सब कर्मोंके अयोग्य है, इस प्रकार शंख चक्रसे अंकित ब्राह्मण भी कर्मके अयोग्यहै,तैसेही विष्णु और आश्वलायनका कथन है कि, द्विज, शिव और विष्णुके शूल चक्र आदि अंक (चिह्न) को वैदिक कर्ममें स्थित और बुद्धिमान् होकर न करै, इससे पूर्वोक्त ऋग्वेद आदि श्रुतियोंका और ही अर्थ है और अन्यश्रुति नहीं है, इससे चक्र आदिका धारण शूद्रोंके निमित्त है, श्रीधरस्वामीने किसीके कहनेसे निषेध कहाहै, यद्यपि प्राप्तिके विना निषेध नहीं होसकता, उनको पशु नहीं करता, इसके समान विकल्प युक्त है, तथापि एक जातिका यह धर्म है, इससे सब. सामान्य वाक्योंकी (पूर्ति) होनेसे द्विजातिको चक्रांकित होनेका निषेध नित्यानुवाद (अर्थात्सिद्ध) है इस संकट पाशके काटनेके निमित्त शिष्टाचारही अंकुश है, इति संक्षेपः ॥

आषाढशुक्लपूर्णिमायां कोकिलाव्रतविधिः ।

आषाढपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये–" आषाढपौर्णमास्यां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥ स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यं करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥" इति ॥ अस्य नक्तव्रतत्वात् सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥

आषाढकी पूर्णिमाको कोकिलाका व्रत हेमाद्रिग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमाको संध्याकालके समय यह संकल्प करै कि, मैं नियमसे: ब्रह्मचर्ययुक्त होकर प्रतिदिन स्नान, रात्रिमें भोजन, भूमिपर शयन, प्राणियोंपर दया करूंगी, इसको रात्रिव्रत होनेसे यह सायाह्नव्यापिनी करनी।

तत्र शिवशयनोत्सवनिर्णयः ।

अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ वामनपुराणे–" पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे। वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहिवर्ष्मणा ॥ " मदनरत्नेप्येवम् । इयं च प्रदोषव्यापिनी ॥

इसी दिन शिवजीका शयन भी हेमाद्रिग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, पौर्णमासीको शिवजी जटाभारको सांपके शरीरसे बांधकर व्याघ्रचर्मके विस्तरपर शयन करते हैं, मदनरत्नमें भी यही कहाहै, यह भी प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी ॥

व्यासपूजानिर्णयः ।

अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र त्रिमुहूर्ता चेत् परैवेति संन्यासपद्धतौ–'त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्व क्षौरप्रणामयोः' इति वचनात् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आषाढमासः समाप्तः ॥

इस दिनही व्यासकी पूजा लिखी है संन्यासपद्धतिमें यह लिखा है कि, तीन मुहूर्त होय तो अगली लेनी. कारण यह है कि, पर्व क्षौर और प्रणाममें तीन मुहूर्तसे अधिक तिथि लेनी चाहिये ॥

इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिन०कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाषाढमासः समाप्तः ॥

अथ श्रावणमासः ।

कर्कसंक्रांतिनिर्णयः ।

कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशद्दंडाः पुण्यकालः । सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यं रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमेऽपरार्के हेमाद्र्यनन्तभट्टादिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । "धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमते रविः ॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः । उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि" ॥ २ ॥ इति स्कान्दोक्तेः ॥ पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्क-भिन्नसंक्रान्तिपरम् । वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ तेनायमर्थः–रात्रौ पूर्व-भागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । रात्रावपरभागे कर्कटे दिनान्ते पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । विषुवतोस्तु पूर्वदिने पञ्चापरदिने च पञ्चेति वाक्यान्तरानुरो-धात् । तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनानां चाविरोधः । माधवमते तु अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥' इति वृद्ध-गार्ग्योक्तेः । "मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः । प्रभाते वा निशीथे वा तदा पुण्यं तु पूर्वतः ॥" इति भविष्योक्तेश्च पूर्वदिने एव पुण्यं दाक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्रियन्ते । अत्र रात्रावपि स्नानादि भवतीत्युक्तं प्राक् । अत्र दानोपवासादि पूर्वमुक्तम् । तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम् । "कुम्भे कर्कटके वापि कन्यायां कार्मुके रवौ । रोमखण्डं गृहस्थस्य पितॄन् प्राशयते यमः" ॥ इति सुमन्तुवचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥

कर्कको संक्रांतिमें पहली तीस घडीका पुण्यकाल है । सूर्योदयके पीछे संक्रांति होय तो अपरार्क हेमाद्रि अनन्तभट्ट आदिके मतसे प्रथम और पिछले दिन पांच घडी पवित्र काल है । कारण कि, स्कन्द-पुराणमें लिखा है कि, धनु, मीन, कन्या, मिथुनको त्यागकर रात्रिके पथम वा पिछले भागमें सूर्यकी संक्रांति होय तो पांच घडी दिनके पीछे और पांच घडी सूर्यके उदयमें, देवता और पितरोंके कर्ममें पुण्य कही हैं और रात्रिके प्रथम वा पिछले दिनमें यह वाक्य भी मकर और कर्कसंक्रांतिसे भिन्न संक्रांतिके विषयमें आगे कहे वाक्यके विरोधसे जानना. यह मदनरत्नमें लिखा है, तिससे यह अर्थ है कि, रात्रिके पूर्वभागमें मकरकी संक्रांति होय तो उदयकी पांच घडी और रात्रिके पिछले भागमें कर्कको संक्रांति होय तो दिनके अन्तको पांच घडी पवित्रकाल है और विषुव (तुला और मेष) संक्रांतियोंसे प्रथम दिन और पिछले दिन पांच घडी इस वाक्यान्तरका भी अनुरोध है तिससे हेमाद्रि, माधव और सब वाक्योंका कुछभी विरोध नहीं. माधवके मतमें तो अर्धरात्रि वा उसके पीछे उदयसे प्रथम दक्षिणायन होय तो पूर्व दिनही ग्रहण करना. यह वृद्धगर्गका कथन है । और यह भविष्यकाभी वाक्य है कि, मिथुनके उपरान्त यदि सूर्यकी कर्कसंक्रांति होय तो चाहे प्रभातकाल हो वा अर्द्धरात्रमें तो पुण्यकाल पूर्वदिनमें होता है दाक्षिणात्य भी इस वचनकाही आदर कथन करते हैं, इसमें रात्रिमें भी स्नान आदि करते हैं यह पहले कह आये हैं, इसमें दान और व्रत आदि प्रथम लिख आये हैं, तैसेही कर्कमें केश आदिका कटवाना भी निषिद्धहै. कारण कि, सुमंतुने कहा है कि, कुंम्भ कर्क कन्या और धन संक्रांतियोंमें गृहस्थोंके कटवाये बालोंको यमराज पितरोंको भोजन कराते हैं जीवत्पितृकनिर्णयमें गुरुओंने भी कहा है ॥

---

१ धनकुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं यदि त्यजेत् । कर्कटस्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत् ।
धनकुम्भको दो भाग करके पूर्व भाग छोड दे, कर्कका अन्तिम भाग और कन्याका सब भाग याग दे यह कहते हैं ॥

नदीनां रजोदोषनिर्णयः ।

अथ नदीनां रजोदोषः ॥ हेमाद्रावत्रिः–"सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः ॥ " इदं च क्षुद्रनदीषु । " सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः" इति व्याघ्रोक्तेः । मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम् । "यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशाविभूषणः । तावद्रजो महानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः–"करतोया अल्पतोयाः । तथा कात्यायनः– "याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि । तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे ॥ " इदं चापादि । स्मृतिसंग्रहे–"धनुः सहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ "

अब नदियोंके रजोदोषको कथन करतेहैं । हेमाद्रिमें अत्रिका वाक्य है कि, सिंह और कर्कके मध्यमें सम्पूर्ण नदी रजस्वला होती हैं उनमें मनुष्योंको स्नान आदि कर्म न करना चाहिये, यह निषेध क्षुद्रनदियोंमें है, इसका कारण व्याघ्रने लिखा है कि, सिंह कर्कके मध्यमें सब नदी रजस्वला होती हैं उनमें समुद्रमें जानेवाली नदियोंको त्यागकर स्नान न करै, मत्स्यपुराणमें तो अगस्त्यके उदय पर्यन्त लिखा है कि, इतने दक्षिणदिशाके भूषण भगवान् अगस्त्यका उदय न हो उतने कालतक नदियोंमें रज वहती है और अल्पतोय कहाती हैं. यही कात्यायनने लिखा है कि, जो निंदित नदी भूमिपर ग्रीष्मऋतुमें सूख जाती हैं उनमें वर्षाके समय इतने काल तक स्नान न करै, जबतक दशदिन पूर्ण नहों, यहभी आपत्कालमें है, स्मृतिसंग्रहमें कहा है कि, जिनका प्रवाह आठ सहस्र धनुषतक नहीं वह नदी नहीं किन्तु गर्त कहाती हैं ॥

महानदीषु विशेषः ।

महानदीषु तु भाविष्ये उक्तम्–"आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः । त्रिदिनं च चतुर्थेऽह्नि शुद्धा स्युर्जाह्नवी यथा ॥ "

महानदियोंमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, कर्ककी आदिसे हे देवि ! महानदी भी रजस्वला तीन दिन होती हैं चौथे दिन गंगाके समान शुद्ध होजाती हैं ॥

महानदीनां नामानि ।

महानद्यश्च ब्राह्मे–"गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका । तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः–भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च विहस्ता च विन्ध्यस्योत्तरसंस्थिताः ॥ द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः" ॥ २ ॥ मदनरत्ने पुराणान्तरे–"महानद्यो देविका च कावेरी वंजरा तथा । रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ त्र्यहं नृप ॥"कात्यायनः–"कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्रयम् । चन्द्रभागा सती सिन्धुः सरयूर्नर्मदा तथा ॥" इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम् । "गंगा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती । रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ॥ शोणसिंधुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः । शतद्रूश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः" ॥ २ ॥ इति देवलोक्तेः ॥ यत्तु–"प्रथमं कर्कटे देवि त्र्यहं गङ्गा रजस्वला ' इत्यादिवचनम् । तज्जाह्नवीभिन्नगो-

दावर्यादिगङ्गान्तरपरमिति मदनरत्ने। अन्ये त्वन्तर्गतरजोविषयम् ।"गङ्गा धर्मद्रवः पुण्या यमुना च सरस्वती । अन्तर्गतरजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः ॥"इति निगमोक्तेः । तीरवासिनाम् तु रजोदोषो नास्ति । 'नतु तत्तीरवासिनाम्' इति निगमोक्तेः । रजोदुष्टमपि जलं गङ्गाजलयोगे पावनम्। 'गङ्गाम्भसा समायोगाद्दुष्टमप्यम्बु पावनम्' इति मात्स्योक्तेः ॥ नूतनकूपादौ तु योगियाज्ञवल्क्यः—"अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका । भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥"इति ॥ क्वचित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः—"अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम् । रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति ॥"गौडास्तु—'अन्येनापि समुद्धृतः इति द्वितीयपादे पाठः । तेनोद्धृते न दोषः । तथा च तासु स्नानं नेति प्रागुक्तमित्याहुः । वसिष्ठोऽपि—" उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ " इत्यलं विस्तरेण ॥

महानदी ब्रह्मपुराणमें लिखी हैं, गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी ये विंध्याचलके दक्षिण भागमें कही हैं, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, विहस्ता ये विंध्याचलके उत्तरभागमें स्थित हैं, देवता ऋषियोंके क्षेत्रोंसे उत्पन्न हुई ये बारह महानदी हैं। मदनरत्नमें और पुराणका वाक्य है कि देविका, कावेरी, वंजरा ये महानदी कर्क आदि संक्रांतिमें तीन दिन रजस्वला होती हैं, कात्यायनने कहा है कि, कर्कआदि संक्रांतिमें गोमती, चन्द्रभागा, सिन्धु, सरयू, नर्मदा ये तीन दिन रजसे दुष्ट होती हैं। यह गंगासे भिन्न नदियोंमें जानना कारण कि, देवलने कहा है—कि, गंगा, यमुना, प्लक्षजाता सरस्वती और जो नदसंज्ञक हैं इतनी रजसे दूषित नहीं होती, शोण, सिन्धु, हिरण्य, कोकिलहित, घर्घर, शतद्रू ये सात पवित्र करनेवाले नद कहाते हैं. जो यह वाक्य है कि, कर्कसंक्रांतिमें प्रथम तीन दिन गंगा रजस्वला होती है सो गंगासे भिन्न गोदावर्य्यादि गंगाके विषयमें है यह मदनरत्नमें लिखा है, कोई तो अन्तर्गत रजका दोष है यह कहते हैं गंगा धर्मद्रव और पवित्र है ऐसेही यमुना और सरस्वती है। यह अन्तर्गत रजोदोष होनेसे सब अवस्थाओंमें निर्मल हैं, और ये सब अवस्थाओंमें पवित्र हैं और निकटके वसनेवालोंको तो इस शास्त्रके वाक्यसे रजका दोष नहीं लगता कि,तटके वासियोंको रजका दोष नहीं लगता रजसे दूषितभी जल गंगाजलके संयोगसे शुद्ध होता है कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, दूषितजलभी गंगाजलके योगसे शुद्ध होता है। नये कूपआदि जलमें तो योगी याज्ञवल्क्यका यह कथन है कि, बकरी, गौ, भैंस और प्रसूता ब्राह्मणी यह दशरात्रमें पवित्र होती हैं, और कहीं तो व्याघ्रपादने दोष नहीं लिखा कि, जहाँ कूप और बावडी न मिलै और जिसका जल सदैव रहै ऐसी नदीके जलमें ग्रामका भोग दूषित नहीं होता, गौड तो यह लिखते हैं कि, औरके लाये हुएमें दोष है, और स्वयं लानेमें दोष नहीं है तिससे उनमें न न्हाय यह प्रथम कथन करआये हैं वसिष्ठने भी कहा है कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रेतका स्नान, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें रजका दोष नहीं लगता विस्तारसे अधिक प्रयोजन नहीं ॥

श्रावणशुक्लतृतीयानिर्णयः ।

श्रावणशुक्लतृतीया मधुस्रवाख्या । मधुस्रवा गुर्जरेषु प्रसिद्धा ॥ सा परयुता ग्राह्येति दिवोदासः ॥

श्रावणसुदी ३ मधुश्रवा गुर्जरोंमें प्रसिद्ध हैं उसको परसंयुक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदासने कहा है ॥

श्रावणशुक्लचतुर्थीनिर्णयः ।

श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता 'मातृविद्धा गणेश्वरः' इत्यादिवचनात् ॥

श्रावणसुदी ४ गणेशजीका व्रत तृतीयाके वेधमें होता है, इस कथनसे पूर्वतिथिसंयुक्त लेनी ॥

श्रावणशुक्लपञ्चमी-(नागपञ्चमीनिर्णयः)।

श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सामान्यनिर्णये उक्तम् ॥ चमत्कारचिन्तामणौ "पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका"॥ इति ॥ "श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः" इति ॥ मदनरत्नेभिधानाच्च । तेन परैवेति । अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये- "श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप । द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्वणाः । पूजयेद्विधिवद्वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः । गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः । न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित्" इति ॥

श्रावणसुदी ५ नागपूजा आदिमें अगली लेनी यह सामान्यनिर्णयमें लिख आयेहैं. चमत्कारचिन्तामणिमें लिखाहै कि, नागपूजामें षष्ठीसे युक्त पञ्चमीव्रत करना चाहिये उसमें नाग प्रसन्न होतेहैं, और सब पञ्चमी चतुर्थीसे युक्त लेनी चाहिये । मदनरत्नमें भी लिखाहै कि, श्रावणशुक्ला पञ्चमी नागपंचमी लिखी है, उसे छोड़कर और चतुर्थीसे युक्त श्रेष्ठहैं, तिससे अगलीही लेनी इसका विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! श्रावणशुक्ल पञ्चमीको गृहके द्वारके दोनोंओर गोबरसे लीप सर्पोंको काढैं और हे वीर ! दही, दूर्वा, कुश, गन्ध, फूल, भेंट ब्राह्मणभोजनसे विधिपूर्वक उनका अर्चन करैं । जो मनुष्य भक्तिसे इस पञ्चमीको नागोंका पूजन करतेहैं, उनको कभी भी नागोंसे भय नहीं होता ॥

श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतनिर्णयः ।

श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतं प्रागुक्तम् । तक्रादीनां त्वनिषेधः । तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते ॥

श्रावण शुक्लद्वादशीको दधिव्रत (दहीका निषेध) प्रथम कह आयेहैं, और मट्ठेमें दहीका व्यवहार न होनेसे तक्र (मट्ठा) का निषेध नहीं, यह लिखेंगे ॥

पवित्रारोपणनिर्णयः ।

अत्रैव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये-"श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे । द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम् ॥ द्वादश्यां श्रवणे वापि पञ्चम्यामथ वा द्विज । आनुकूल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा" ॥ २ ॥ इति ॥ शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे-"आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम्" ॥ इति ॥ अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते । अधिवासनं तु दीपिकायाम्-'गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युर्वाधिवासनम्' इति । गौणकालो रामार्चनचन्द्रिकायाम्-"पवित्रारोपणं विद्वाञ्छ्रावणे न भवेद्यदि । कार्त्तिक्यवधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति

नारद् " ॥ "हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः । कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥ कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् । तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥ साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् । उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् । कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम् । षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद्द्वादशेति च केचन । चतुर्विंशद्द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः " ॥ ९ ॥

इसी द्वादशीको विष्णुका पवित्रारोपण हेमाद्रि और विष्णुरहस्यमें लिखा है कि, श्रावणशुक्ल द्वादशी कर्कके सूर्यमें वासुदेवका पवित्रारोपण लिखा है, द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें अथवा पूर्णिमामें जब अपने योग्य बने तब पवित्रारोपण करै, शिवजीका पवित्रारोपण तो हेमाद्रिमें कालोत्तरके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढके उपरान्त चतुर्दशी और श्रावण भाद्रपदकी दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको शिवजीका पवित्रारोपण तुल्य है और देवोंका पवित्रारोपण लिखेंगे. अधिवासन तो दीपिकामें लिखा है कि, गोदोहनके समय प्रथम दिन अधिवासन करै. रामार्चनचन्द्रिकामें गौणकालभी लिखा है कि, यदि श्रावणमें पवित्रारोपण विघ्नके कारण न होय तो कार्तिक तक शुक्रास्तमें भी करलेना यह नारदने कहा है. सोना, चांदी, तांबा, पाट, रेशम, पद्म, कुश,कुशा, काश, कपास और ब्राह्मणीका काताहुआ सूत इनका पवित्रारोपण शुभ है, सूतको तिगुना करके फिर तिगुना करे उनमें तीनसे साठ ३६० तारोंका उत्तम और २७० दोसौ सत्तरका मध्यम और १८० एकसौ अस्सी तारोंका निकृष्ट पवित्रा निर्माण करै और छोटी २ पवित्रा तीन २ सूतकी बनावै जिसमें १०० ग्रंथि होयँ वह उत्तम और पचास का मध्यम और ३६ का निकृष्ट होता है और कोई ३६ का उत्तम, २४ का मध्यम, १२ का निकृष्ट कहते हैं ॥

हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये त्वन्यथोक्तम्–"अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिरेवाथ ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ उत्तमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते " ॥ २ ॥ शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे–"एकाशीत्यथ वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥ द्वादशांगुलमानानि व्यासादष्टांगुलानि वा । लिङ्गविस्तारमानानि चतुरंगुलकानि च ॥ २ ॥ इति ॥

हेमाद्रिग्रन्थमें विष्णुरहस्यमें और प्रकार लिखाहै कि, एकसौ आठ १०८ वा ५४ चौवन वा २७ सत्ताईस सूत्रोंसे क्रमसे उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रा बनावे उत्तम नाभिपर्यन्त, मध्यम जंघापर्यन्त, परन्तु जानुपर्यन्त निकृष्ट है, यह प्रमाणमें कहा है, शिवजीका पवित्रा तो हेमाद्रिग्रन्थमें शैवागमवाक्यसे लिखाहै कि, इक्यासी ८१ वा ३८ वा ५० सूत्रोंसे ऐसी पवित्री बनावै, जिसकी ग्रन्थि और मध्यभाग तुल्य हों, और जिसका प्रमाण बारह १२ वा ८ वा ४ अंगुल हो अथवा महादेवके लिंगके तुल्य हों, हेमाद्रिग्रन्थमें कालोत्तर और युगधर्ममें यह लिखाहै कि, सतयुगमें मणि, त्रेतामें सुवर्ण, द्वापरमें पद, कलियुगमें कपासकी पवित्री कही है ॥

पवित्रारोपणे अधिकारिनिर्णयः ।

अधिकारिणोपि तत्रैव विष्णुरहस्ये–"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च । स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् " ॥ तथा–"अतोदेवेतिमन्त्रेण द्विजो

विष्णौ निवेदयेत् । शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्धरिम् ॥ " एतच्च नित्यम्–"न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षेवर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः " ॥ २ ॥ इति तत्रैवोक्तेः ॥ देवताविशेषे तिथयोपि तत्रैव–"धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराड् गुहः । भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः ॥ चक्रपाणिर्ह्यनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च " ॥ ३ ॥ इति ॥ यथा हेमाद्रौ कालोत्तरे–'चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत् ' इति ॥ तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां यथा–"ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पटले शुभे । संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत् ॥ अरत्निसंमितां वेर्णी कुर्यात् षट्त्रिंशता कुशैः । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम् । न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन देव त्वां तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः ॥ अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् । तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोस्तु ते " ॥ ६ ॥ इति देवं सम्प्रार्थ्य कुम्भं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे ॥ " ॐ सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः । विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोस्तुते " ॥

अधिकारी भी हेमाद्रिमें विष्णुरहस्यसे लिखेहैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अपने धर्ममें स्थित हुए भक्तिसे पवित्री करैं, इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों देव इस मन्त्रसे विष्णुको पवित्रा समर्पित करैं और शूद्र मूलमन्त्रसे अथवा जिस मन्त्रसे विष्णुकी पूजा करै उस मन्त्रसे निवेदन करै । यह नित्य विधान जानना चाहिये कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मनुष्य विधिसे पवित्रारोपण नहीं करता उसकी वर्षदिन की पूजा निष्फल होती है इससे भक्तिमान् विष्णुके भक्त वर्षदिनमें विष्णुको पवित्रारोपण करैं, देवता विशेषोंकी भिन्न २ तिथि भी उसी २ स्थलमें लिखी हैं कि, कुबेर, लक्ष्मी, गौरी, गणेश, चन्द्रमा, गुह, सूर्य, चण्डिका, अम्बा, वासुकि, ऋषि, चक्रपाणि, अनंग, शिव, ब्रह्मा ये देवता प्रतिपदा आदि तिथियोंमें पूज्य हैं, य श्रावणके शुक्लपक्षमें तिथि वर्णन की हैं, तैसेही हेमाद्रिके कालोत्तर प्रकरणमें लिखा है कि, चतुर्दशी और अष्टमीको सब देवताओंका तुल्य पवित्रारोपण होता है, उसका प्रकार तो रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है, फिर उन पवित्रोंको बाँसके श्रेष्ठ दोनोंमें और शुद्ध वस्त्रमें लपेटकर देवताके आगे रक्खै, छत्तीस अंकुशोंकी बिलस्तभर वेणी करै, हे प्रभो ! कर्म लोप न करनेके निमित्त जो तुमने लिखाहै, हे देव ! आपकी प्रसन्नताके निमित यह पवित्री मैंने की है, हे नाथ ! मेरे विघ्न न हो मुझपर कृपा करो, हे विष्णो ! सब प्रकारसे सम्पूर्ण समयमें तुम मेरी परमगति हो. हे देव ! हे जगत्पते ! व्रतसे आपको प्रसन्न करता हूं, काम क्रोध आदि भी मेरे व्रतको नष्ट न करैं, आजसे लेकर जबतक शेषका दिन हो, तबतक आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिये आपको प्रणामहै । इसप्रकार देवकी स्तुति और घटकी स्थापना करके उस घटपर वंशके पात्रमें 'ओं इस वर्ष दिनकी यज्ञकी सिद्धिके और पवित्र करनेके निमित्त विष्णुलोकसे इस पवित्रीमें आवो आपको प्रणाम' है ॥

अनेन मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्त्वरजस्तमांसि वेदत्रयं वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रन्थिषु क्रिया पौरुषी वीरा विजया

ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य सम्पूज्य । "ॐ संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदोपि यत् । पवित्रारोपणायैतत्कुरु कन्धर ते नमः ॥ विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् । सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् " ॥ २ ॥ इति देवकरे मङ्गलसूत्रं बद्ध्वा देवं सम्पूज्य निमन्त्रयेत् । "आमन्त्रितोसि देवेश पुराण पुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत्पवित्रकम् ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे " ॥ ३ ॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यादिति अधिवासनम् ॥

इस मन्त्रसे वा मूलमन्त्रसे आवाहन करके और उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रोंमें क्रमसे विष्णु, ब्रह्मा, रुद्रोंका और सत्व, रज, तमका और तीन वेदोंका और वनमालामें प्रकृतिका आवाहन करके तीन सूत्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु रुद्रोंका और ग्रन्थियोंमें क्रिया, वीरा, विजया, ईशा, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्ति देवीका आवाहन और पूजन करके, ॐ वर्ष दिनमें सम्पादन कीहुई पूजाके सम्पूर्ण फल देनेवाले उस पवित्रारोपणके निमित्त आप सफल करो. हे कुधर ! आपको प्रणामहै, हे देव ! विष्णुके तेजसे उत्पन्न रमणीय सब पापोंके नाशक सब कामनाओंके दाता इस पवित्रेको आपके अंगमें मैं धारण करता हूं, इस मन्त्रसे देवताके हाथमें मङ्गलसूत्रको बांधकर और देवकी पूजा करके निमन्त्रण करै कि, हे देवताओंके ईश ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे केशव ! आपको मैं निमन्त्रण देता हूं, प्रातःकाल आपका पूजन करूंगा, आप मेरे निकट हूजिये. हे विष्णो ! इस पवित्रेको प्रातःकाल आपको निवेदन करूंगा. हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें आपको नमस्कार है । मेरे ऊपर प्रसन्न हो फिर पुष्पांजलि देकर रात्रिको जागरण करै इति अधिवासनम् ॥

प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमादाय । "ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर " ॥ मूलसंपुटितेनानेन दत्त्वांगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य । मणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा । गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा स्वयं धारयेत् । तथा—"मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा । देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया" ॥ अकरणे तु तत्रैव । "पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन । तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः" इत्युक्तम् । इति पवित्रारोपः ॥

फिर प्रातःकाल नित्य पूजन करके गन्ध, दूर्वा, अक्षतसे युक्त पवित्रेका ग्रहण करै. हे देवताओंके देव ! आपको नमस्कार है, इस पवित्रेको ग्रहण करो, जो पवित्र करनेके निमित्त वर्षदिनकी पूजाके फलका दाताहै और जो मैंने पाप किया है उससे मुझे आज पवित्र करो, हे देवताओंके ईश्वर ! आपकी प्रसन्नतासे पवित्र होता हूं मूलमंत्रसे सम्पुट और इस मन्त्रसे पवित्रेको प्रदान कर. अंग देवताओंके नाम ले २ कर अर्पण करके और महानैवेद्यको देकर और आरती करके (मणिविद्रुममालाभिः) इत्यादि दमनारोपणमें लिखे हुए मन्त्रोंसे स्तुति करके गुरु और ब्राह्मणोंको पवित्रे देकर स्वयं भी धारण करै, उस सूत्रको मास, पक्ष, एकदिन वा तीन दिन, देवके देहमें धारण करै, न करै तो वहांही यह कहा है कि, जो किसीप्रकार समयपर पवित्रारोपण न करै, तब दश सहस्र मन्त्र और स्तोत्र सावधान होकर जपै, इति पवित्रारोपः ॥

श्रावणशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ।

श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या ॥ अत्र वक्तव्यो विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः ॥

श्रावणशुक्ल चतुर्दशी पूर्वतिथिसे युक्त लेनी, इसमें विशेष कहने योग्य चैत्रकी चतुर्दशीमें लिख चकेहैं ॥

उपाकर्मनिर्णयः ।

अथोपाकर्म । तत्र बह्वृचानां प्रयोगपारिजाते शौनकः" अथातः श्रावणे मासे श्रवणर्क्षयुते दिने । श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते ॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम् । अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रोपासनवह्निना " ॥ इति ॥ अत्र पौर्णमास्युपसंहारन्यायेन यजुर्वेदिपरेति हेमाद्रिः । अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता । कारिकापि-तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते " इति केवलपञ्चम्यां हस्तयुतेन्यस्मिन् दिने, इति तु हेमाद्रिः ॥

वहां बह्वृचोंका प्रयोगपारिजातमें शौनकके वाक्यसे लिखा है कि, इसके उपरान्त श्रावणके मासमें श्रवण नक्षत्रसे युक्त दिनमें अथवा श्रावणकी पूर्णिमाको वा हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमीको शास्त्रोक्तके अनुसार उपाकर्म करै पढे हुये वेदोंका उपाकर्म उपासनाकी अग्निमें करै. हेमाद्रि यह लिखतेहैं कि, इसमें पूर्णिमा उपसंहार समाप्तिमें लिखनेसे यजुर्वेदियोंके निमित्तहै, इसमें जो हस्तनक्षत्र युक्त पञ्चमी लिखी है उसमें यह कारिकाका वाक्य भी प्रमाण है कि, अथवा उस महीनेमें हस्तनक्षत्र युक्त पञ्चमीमें उपाकर्म इच्छितहै, हेमाद्रि तो यह लिखतेहैं कि, केवल पञ्चमीको वा हस्तनक्षत्रयुक्त अन्य दिनमें भी उपाकर्म कर्म करना चाहिये ॥

उपासनवह्निनेति तु कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वत इति। कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्पते ॥ तत्र-' अध्याप्यैरन्वारब्धः ' इति सूत्रात् । सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ-' नान्यस्याग्नावन्यो जुहुयादिति निषेधाल्लौकिक एव तदभावे तु स्मार्ते ' इति निगर्वः । यद्यपि दीपिकायाम्-' वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे ' इति शुक्लपक्षोपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः । वक्ष्यमाणगार्ग्यवचनेन छांदोगान् प्रति विहितस्य तस्याविरोधिनः सर्वान् प्रति प्रवृत्तिश्च । तथापि श्रावणमाससंबन्धस्य सूत्रोक्तत्वात् । कृष्णपक्षेपि कार्यमिति वृद्धाः । तथाच सूत्रम्-' अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य पंचम्यां हस्तेन वा' । अत्र श्रवणो मुख्योऽन्ये गौणाः । तस्याहर्द्वययोगे हेमाद्रौ व्यासः-" धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् । तत्कर्म सकलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ श्रवणेन तु यत्कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम् । संवत्सरकृतोध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ २ ॥ इति गार्ग्योपि-" उदयव्यापिनीत्वेव विष्णवर्क्षे चांद्रिकाद्वयम् । तत्कर्म सकलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम् ॥" इति पूर्वेद्युरुत्तराषाढयोगे परेद्युः श्रवणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पञ्चम्यादौ कार्यम् । न तु पूर्वविद्धायां संगवमात्रे। अपवादाभावात् ॥ किं च । परेद्युः संगवास्पर्शे निषिद्धपूर्वाग्रहणे किं मानम् । संगववाक्यं श्रवणवाक्यं चेतिं चेत् तर्हि व्रीहिवाक्यादश्वशफवाक्याच्च माषमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पाण्डित्यं

निषेधानुप्रवेशान्नैरपेक्ष्यबाधा नेति चेत् । इहापि तुल्यम् ॥ एतेन पर्वाप्यौदयिकं व्याख्यातं निषेधानुप्रवेशस्योभयत्र तुल्यत्वात् ॥

उपासना अग्निमें करनी, इसमें तो इस कारिकाके वाक्यसे विकल्प आताहै कि, कोई आचार्य लौकिक अग्निमें करतेहैं, उसमें भी शिष्योंसहित गुरु उपाकर्म करै, इस सूत्रसे शिष्यसहित गुरुको उपाकर्मका अधिकार प्राप्त होनेसे आचार्यकी अग्निमें शिष्य भी करले, और दूसरेकी अग्निमें और कोई होम न करै, इस निषेधसे लौकिकअग्निमेंही करना वह न मिलै तो स्मार्त्त अग्निमें करै यह सबका सिद्धान्त है यद्यपि औषधियोंके उपजनेपर श्रावणमें वेदोंका उपाकर्म करै इस दीपिकाके कथनसे शुक्लपक्ष सबका मुख्य समय लिखा है और छांदोगोंके निमित्त आगे कहने योग्य गर्गके वाक्यसे शुक्लपक्षकी प्रवृत्तिमें भी सबके निमित्त विरोध नहीं तो भी श्रावण महीनेका सम्बन्ध सूत्रमें लिखाहै इससे कृष्णपक्षमें भी करना चाहिये । यह वृद्ध कहते हैं, सोई यह सूत्र है कि, इसके अनन्तर वेदोंका उपाकर्म औषधियोंके उत्पन्न होनेपर श्रवणनक्षत्र अथवा श्रावणकी हस्तनक्षत्रयुक्त पंचमीमें करना चाहिये, इसमें श्रवणका योग मुख्य कहाहै और गौणहै, उस श्रवणका योग दो दिन होय तो हेमाद्रिमें व्यासजीने यह लिखाहै कि, श्रवणनक्षत्रका कर्म धनिष्ठा नक्षत्रसे युक्त किया जाय तो उस उपाकर्मको सफल जानना चाहिये । यदि वह श्रावणमासका कार्य उत्तराषाढ नक्षत्रसे संयुक्त किया जाय तो वर्षदिनका किया वेदपाठ उसी क्षणमें नष्ट होताहै, प्रयोगपारिजातमें गर्गका कथन है कि, यदि सूर्योदयमें श्रवणकी दो घडी होय तो वह कर्म सफल जानना चाहिये, और उसका अनन्त फल जानना चाहिये । यदि प्रथम दिन उत्तराषाढ नक्षत्रका योग हो और दूसरे दिन श्रवणका अभाव हो वा दो घडी न्यून होय तौ पंचमी आदिमें उपाकर्म करना चतुर्दशीसे विद्धा पूर्णिमाको न करना, संगवमें कोई निषेध नहीं मिलता है, और दूसरे दिन संगवका स्पर्श नहो तो निषिद्ध पहली तिथिके ग्रहणमें प्रमाणहै । यदि संगववाक्यसे श्रवणवाक्य ग्रहण करोगे तो व्रीहिवाक्यसे अश्वशाक वाक्यसे माषयुक्त तिथियोंका भी ग्रहण होजायगा, यह तुम्हारा बडा पाण्डित्य होगा, इससे पर्वभी उदय कालका लिखा है कारण कि, निषेधकी प्रवृत्ति दोनोंमें समानहै ॥

तत्र ग्रहणसंक्रांत्यादौनिर्णयः ।

श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ तु-" उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः । ग्रहसंक्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु" इति । हेमाद्रौ निषेधात् पञ्चम्यादयो ग्राह्याः ।मदनरत्नेपि- "यदि स्याच्छ्रावणं पर्वग्रहसंक्रान्तिदूषितम् । स्यादुपाकरणं शुक्लपञ्चम्यां श्रावणस्य तु"॥ स्मृतिमहार्णवे-" संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते । तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते "॥ तत्रापि प्रयोगपारिजाते वृद्धमनुकात्यायनौ-" अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं तदा । उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत् " इति ॥

श्रवणयुक्त दिनमें संक्रांति आदि होय तो क्रमसे साम, ऋक्, यजुर्वेदी उपाकर्म नहीं करते. कारण कि, हेमाद्रिमें यह निषेध लिखा है कि, ग्रहण संक्रांतिसे युक्त हस्त श्रवण पूर्णिमामें न करना, इससे पंचमी आदि ग्रहण करनी, इसमें एक तो यह वाक्यार्थ है कि, ग्रहण और संक्रांतिके दिन उन सबको उपाकर्म करना चाहिये जिनको प्राप्त हो तिससे अथर्ववेदियोंको भी निषेध है, नहीं तो हस्त आदि तीनमें प्रत्येक ग्रहण वा संक्रांति होय तो छः वाक्योंकी कल्पना करनी पडैगी, मदनरत्नमें भी कहा है कि, यदि श्रवणनक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा ग्रहण वा संक्रांतिसे दूषित होजाय, तो श्रावणशुक्ल पंचमीको

उपाकर्म करना, स्मृतिमहार्णवमेंभी कहाहै कि, जिस पर्वमें ग्रहण वा संक्रांति होजाय तो उस महीनेकी हस्तयुक्त पंचमीको उपाकर्म करना, प्रयोगपारिजातमें वृद्धमनु और कात्यायनका वाक्य है कि, अर्द्धरात्रिसे प्रथम संक्रांति ग्रहण होय तो उपाकर्म न करै, पीछे होय तो कुछ दोष नहीं है करले॥

मदनरत्ने गार्ग्योपि–"यद्यर्धरात्रादर्वाक् तु ग्रहः संक्रम एव च। नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेपि वा॥" एतेन ग्रहणसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे निषेधो नार्वागिति मूर्खशङ्का परास्ता। ग्रहविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशैः वाक्यभेदात्। पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाभावापत्तेश्च। तेनार्धरात्रात् पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एव। यत्तु–"प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्तराषाढसंयुते। श्रवणे श्रावणं कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते" इति। प्रतिपन्मिश्रनिषेधकं वचनं तन्निर्मूलम्। अत्र च–"वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ। उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके" इति वचनं देशान्तरविषयम्। "नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके। कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे" इति बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनोक्तम्॥ पराशरमाधवीयेप्येवम्। सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदुपसंहियते। तेषामेव देशव्यवस्था न तु बह्वृचादिपरम्। तेषां सूत्रे चान्द्रश्रावणोक्तेः॥ सौरे पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः॥ यत्तु कालादर्शे–"अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः। बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि॥ सहस्तशुक्लपञ्चम्यां वातग्रहणसंक्रमे। असिंहार्के प्रौष्ठपद्यां श्रवणेन व्यवस्थया"॥ २॥ इति॥ तन्मूलालेखनाच्चिन्त्यम्। श्रावणे सस्यानुद्गमादौ तु बह्वृचपरिशिष्टे–"अवृष्टयौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत्। तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तदिष्यते" इति॥ 'तत्राप्यनुद्गमे तु कुर्यादेव तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इति सूत्रात्। वर्षर्तौ भवं वार्षिकम्॥ एतच्च शुक्रास्तावपि कार्यम्। 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति दमनारोपे लिखितवचनात्। "नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते" इति प्रयोगपारिजाते संग्रहोक्तेः॥ 'पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवेधाभावं वक्तुमिदम्,। तेन पर्वणि ग्रहणेपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः॥

मदनरत्नमें गर्गका कथन है कि, आधीरातसे प्रथम ग्रहण और संक्रान्ति होय तो पूर्णिमा श्रवणमें उपाकर्म न करना चाहिये, इससे यह शंका दूर हुई कि, ग्रहणके समयही श्रवण होनेपर दोष है, प्रथम दोष नहीं. कारण कि, ग्रहणसे युक्त हस्त, श्रवण, पूर्णिमा भिन्न निषेध होगा और उनमें उपाकर्मका निषेध होगा तो सबके उद्देशमें वाक्यका भेद होजायगा, और पंचमीमें संक्रान्ति न होय तो निषेध प्राप्त होगा तिससे अर्द्धरात्रिके प्रथम ग्रहण के होनेपर उपाकर्मका निषेधहै, कुछ हस्त आदिके प्रयोगमें नहीं, और जो यह प्रतिपदाके मूलमें उपाकर्मके निषेध को कहाहै कि, उत्तराषाढसे युक्त ग्रहण और संक्रांतिसे वर्जित श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म न करै, और प्रतिपदा युक्तमें भी उपाकर्म न करै, वह वाक्य निर्मूलहै. कारण कि, हेमाद्रिमें शास्त्रका यह वाक्य है कि, ग्रहणका योग गुरुको, संक्रांतिका योग शिष्यको, और उत्तराषाढका योग दोनोंको विष्णुके उपाकर्ममें नष्ट करतेहैं, इसमें जो यह कथन है कि, वेदोंके उपाकर्मके समयमें सूर्य कर्कका

होय तो उपाकर्म न करना चाहिये, सिंहकेमें करना यह वाक्य देशान्तरके निमित्तहै. कारण कि, प्रयोगपारिजातमें बृहस्पतिने यह कहाहै कि, नर्मदाके उत्तर तटमें, सिंहके सूर्यमें, और नर्मदा नदीके दक्षिण तटमें कर्कके सूर्यमें उपाकर्म करै. पराशर और माधवग्रंथमें भी इसी प्रकार कहाहै हम तो यह जानते हैं कि, सिंहके सूर्यमें सामवेदियोंको उपाकर्म करना लिखा है उनके निमित्त पुरोडाशके चार प्रकार करनेके तुल्य यह वाक्य है कि, कालादर्शमें लिखा है कि, तैत्तरीय शाखावालोंको वेदोंका उपाकर्म श्रावणकी पूर्णिमाको बहृचोंको श्रवणनक्षत्रमें करना चाहिये । यदि सिंहका सूर्य हो और हस्तयुक्त श्रावणशुक्ला पंचमी हो पूर्णिमाको ग्रहण वा संक्रांति होय तो सिंहके सूर्य न होनेपर भाद्रपदकी पूर्णिमाको वा श्रवणमें व्यवस्थासे करना, इस वाक्यका कालादर्शमें मूल नहीं लिखा है, और इसमें सूत्रसे विरोध आता है, इससे वह वाक्य असंगतहै । कारण कि, सूत्रमें श्रावणके नामद्वारा श्रवण कहनेसे चान्द्रमास ग्रहण कियाहै सौर नहीं. कारण कि, उसमें पंचमीका अभाव पडताहै, यदि श्रुति और लक्षणसे दोनों मास लो तो दो वृत्ति (अर्थ) माननेमें विरोधहै, तिससे सिंहका सूर्य होय और कर्कमें ग्रहण वा संक्रांतिहो, तो सिंहके सूर्यको त्यागकर श्रावण शुक्ल पंचमीको बहृच शाखावालोंको उपाकर्म करना चाहिये और तैत्तिरीयशाखावालोंको भाद्रपदकी पूर्णिमा करनी चाहिये । कारण कि, उनको सूर्य महीनेका नियम नहीं है, श्रावणमें सस्य उत्पन्न न होय तो बहृच परिशिष्टमें यह कहाहै कि, यदि वर्षाके अभावसे श्रावणमें औषधी उत्पन्न न होंय तो भाद्रपदके श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म करना श्रेष्ठहै भाद्रपदमें भी उत्पन्न न होंय तो उसको इस सूत्रके अनुसार वार्षिक लिखनेसे उसमें उपाकर्म कर देना कि, भाद्रपदको वर्षाऋतुमें होनेवाला कहते हैं शुक्रके अस्त आदिमें भी उपाकर्मकरना चाहिये कारण कि, दमनारोप प्रकरणमें यह वाक्य लिख आये हैं कि, उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रा दमनका अर्पण ये शुक्रास्त आदिमें भी करने चाहिये । प्रयोगपारिजात हेमाद्रिमें संग्रहका कथन है कि, नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञ, क्रिया, उपाकर्म, उत्सर्गमें ग्रहोंका वेध नहीं मानना चाहिये, पर्वके दिन ग्रहण होय तो उसके पहले तीन दिन वेध नहीं मानना चाहिये इससे यह कथनहै तिससे पर्वके दिन ग्रहण होनेमें तो श्रवणयुक्त चतुर्दशीमें उपाकर्म करना, यह हेमाद्रिका कथन है ॥

अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति-"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्द्धकेपि वा तथाधिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विजे ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाशकृत् ॥" इति तत्रैव काश्यपोक्तेः । अत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं कुर्यादिति नारायणवृत्तौ ॥ एतच्चाधिमासे न कार्यम् । "उपाकर्म तथोत्सर्गः प्रसवाहोत्सवाष्टकाः । मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥" इति ज्योतिःपराशरोक्तेः । "उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षो युगादिषु ॥" इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ यत्तु-'उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' इति ऋष्यशृङ्गवचनम् । तत्सामगविषयम् । तेषां सिंहार्क एवोक्तेः ॥ एतच्चापराह्ने कार्यम्-'उपाकर्मापराह्ने स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु' इति । "अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्काले पराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥" इति च हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु-'भवेदुपाकृतिः पौर्णमास्यां पूर्वाह्ण एव तु' इति प्रचेतसो वचनात् । पूर्ववाक्यं सामगविषयम् । तेषामपराह्ण एवोक्तेरित्यनुपदं वक्ष्यते ॥ दीपिकापि-'अस्य तु विधेः पूर्वाह्णकालः स्मृतः' इति ॥ याजुषास्तु पर्वणि कुर्युः । तच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत् । "पर्वण्यौदयिके

कुर्युः श्रावणे तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः ग्रहणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते ॥" इति गार्ग्योक्तेः। "संप्राप्तवांच्छ्रुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः । अतो भूतदिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते।" इति कालिकापुराणाच्च ॥ "अथ चेद्दोषसंयुक्ते पर्वणि स्यादुपाक्रिया । दुःखशोकामयग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन् द्विजातयः ॥" इति ॥ मदनरत्ने हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः । अत्र शिंगाभट्टीये विशेषः । "श्रवणः श्रावणं पर्व संगवस्पृग्यदा भवेत् । तदैवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत् ॥" पराशरमाधवीयेपि गार्ग्यः—"श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात् परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत् ॥"

उपाकर्मका प्रथम आरम्भ न करै. कारण कि,—हेमाद्रिमें कश्यपने कहाहै कि, गुरु और शुक्रके अस्तमें तथा बाल्य वृद्ध अधिकमास और मलमासमें प्रथम उपाकर्मको न करै, करै तो नाश होता है. उपाकर्मके प्रथम आरम्भमें नारायणी श्राद्ध करना यह नारायणवृत्तिमें कहा है और यह अधिकमासमें न करना. कारण कि, ज्योतिःपराशरमें लिखाहै कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, जातकर्म, अष्टकाश्राद्ध ये सब मासवृद्धिमें परमासमें करने चाहिये, और पितृश्राद्धको त्याग दे, कालकी वृद्धि होय तो उपाकर्म आदि कर्ममें उत्कर्ष (श्रेष्ठका ग्रहण) होताहै, अभिषेक आदि वृद्धियोंमें और युगादि तिथियोंमें उत्कर्ष नहीं होता यह कात्यायनने लिखाहै और जो यह ऋष्यशृंगने कहा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें यह (श्राद्ध) वृष आदि संक्रान्तिसे ग्रहण है वह सामवेदियोंके निमित्त है. कारण कि, उनको सिंहके सूर्यमेंही लिखा है, यह पराह्णमें करना. कारण कि, हेमाद्रिमें गोभिलका कथन है कि, पराह्णमें उपाकर्म और प्रातःकाल उत्सर्ग होता है, वेदोंका उपाकर्म पराह्णकालमें करै, उत्सर्ग पूर्वाह्णकालमें करै, यह वेदके ज्ञाता मानते हैं. सिद्धान्त तो यह है कि, उपाकर्म पूर्णिमाको पूर्वाह्णकालमें होताहै, इस प्रचेताके कथनसे प्रथम वाक्य सामगोंके निमित्त है कारण कि, उनको पराह्णही लिखाहै यह शीघ्रही कहेंगे. दीपिकामें भी लिखाहै कि, इस उपाकर्म विधिका काल पूर्वाह्ण है यजुर्वेदियोंको तो पूर्णिमामें करना चाहिये और आपस्तंब उदय समयको मान्ते हैं और दूसरे पूर्वको मानते हैं. कारण कि, गर्गका कथन है कि, तैत्तिरीयशाखावाले रविके दिन उदयके समयमें और बह्वृच श्रवणके दिन उपाकर्म ग्रहण और संक्रांतिको त्याग दें. कालिकापुराणमें लिखाहै कि, पूर्णिमाको उदयके कालमें ब्रह्माजीको वेद प्राप्त हुए हैं, इससे चतुर्दशीके दिन उपाकर्म करना उचित नहीं. मदनरत्नमें गर्गने कहाहै कि, उपाकर्म किसी दोषसे युक्त होय तो उस राज्यके द्विजाति दुःख, शोक और रोगसे युक्त होतेहैं. शिङ्गाभट्टीय ग्रन्थमें विशेष लिखाहै कि, श्रवण और श्रावणका पर्व इनमें संगवका स्पर्श होय तो उदयकाल लेना अन्यथा नहीं लेना. पराशरमाधवमें गर्गने लिखाहै कि, श्रावणकी पूर्णिमा सङ्गवसे परे होय तो उदयकालकी ग्रहण करनी अन्यथा न लेनी ॥

उपाकर्मकालनिर्णयः ।

कर्मकालमाह कालादर्शे निगमः—"श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा प्रतिपत् षण्मुहूर्तकैः । विद्धा स्याच्छन्दसां तत्रोपाकर्मोत्सर्जनं भवेत् ॥" अत्र पौर्णमासी श्रवणहस्तयोरुपलक्षणम् । तेन तावपि संगवस्पृशौ । "उदये संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे । कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रः ॥

कर्मका समय कालादर्शग्रन्थमें निगमने यह लिखाहै कि, श्रावणकी वा भाद्रदकी पूर्णिमा छः मुहूर्त भी प्रतिपदासे विद्ध होय तो उसमें वेदोंका उपाकर्म और उत्सर्ग होताहै यहां पूर्णिमासे श्रवण और हस्तभी ग्रहण करना कारण कि, उनमें भी संगवका स्पर्श होताही है पृथ्वीचन्द्रने यह लिखा है कि, यदि उदयके कालमें श्रवण और पर्वमें छः घडीका स्पर्श कर्कसंक्रांतिमें होय तो भाद्रपदमें ऋक्, यजु, सामवेदियोंको क्रमसे उपाकर्म करना चाहिये, सो ठीक नहीं है ॥

तेनोदयसंगवोभयव्यापिनी मुख्या । परेद्युः संगवाभावे पूर्वेद्युरुभयाभावे चैकैकसत्त्वे पूर्वेद्युश्चतुर्दशीवेधनिषेधात्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता ग्राह्या । न पूर्वा । संगवनिमित्तपूर्वविद्धापवादाभावात् । नान्यदौदयिकी इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात् । तेन भाद्रादौ कालान्तरे स्यान्न तु निषिद्धे । न हि व्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम् ॥ अत एव परेद्युः संगवव्याप्तौ पूर्वविद्धानिषेधः । तदभावे तु न इति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैषम्यात् । माषनिषेधेपि तथापत्तेश्च । पूर्वविद्धावचनसत्वे हि सा युज्यते । एवं श्रवणेपि ज्ञेयम् ॥ 'विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्' इति पूर्वोक्तविरोधात् । तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम् । तत्त्वंतु—'एतच्छुद्धाधिकपरम् । तेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालबाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वानुष्ठानम् । यथा वा व्रीह्यश्वशकाद्यभावे यागाक्षिप्तानिषिद्धवर्जद्रव्येण । तथात्र संगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौदयिके कालान्तरे वानुष्ठानं न तु कदाचिन्निषिद्धे ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः । कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्णव्याप्तौ एकदेशस्पर्शे वा पूर्वैवेति हेमाद्रिः ॥ यदपि—"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति ब्रह्मवैवर्तम् ॥ 'तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणकर्मादिदैवकर्मविषयम्' इति हेमाद्रिः ॥ अत एव वचनात् कुलधर्मव्रतादावपि पूर्वैव ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ मदनपारिजातेपि पूर्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने तु—'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः' इति बह्वृचपरिशिष्टात् बह्वृचान् प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्तेः । तत्र तैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात् पूर्वोक्तकालिकापुराणादौ सामान्यत औदयिकपर्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवणविधिना तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात् तस्य च प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदिमात्रपरत्वात् सर्वयजुर्वेद्युपलक्षणार्थम् 'अवयुत्यानुवादोवा'न तु विधायकं येन विशेषविधिनोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वालक्षणा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृविशिष्टे वा औदयिकपर्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः ॥

इससे उदय संगवमें उभयव्यापिनी मुख्य है. कारण कि, श्रवणनक्षत्रकी दो घड़ी इस पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है, सामान्यवाक्यसे तो कर्मके योग्य उदयकालकी पूर्णिमा ग्रहण करनी, पहली न लेनी, संगवके निमित्त पूर्वविद्धाका निषेध नहीं पायाजासक्ता भाद्रपद आदि कालांतरमें होय तो उसका निषेध नहीं है, कुछ व्रीहिके न प्राप्त होनेपर निषिद्ध उरदोंका ग्रहण करना उचित नहीं, इससे यह मूर्खोंकी कीहुई व्यवस्था खण्डित हुई कि, दूसरे दिन संगवव्यापिनी होय तो पूर्वका निषेध है, न होय तौ निषेध नहीं और विधिके वैषम्यसे माषनिषेधमें भी इसी व्यवस्थाकी प्राप्ति होगी पूर्वविद्धामें कोई वाक्य होय तो वह युक्त होसक्ती है, इसी प्रकार श्रवणमें भी जानना चाहिये । यह वाक्य उस विषयमें है जहां शुद्धपूर्णिमा अधिक हो, इससे जैसे अग्निहोत्र आदिका सायं-

काल और प्रातःकाल बाध होजाय तो सामान्यवाक्यके बलसे और समयमें अमावस्याके यज्ञका करना, और व्रीहि अश्वशफ (अश्वका खुर) आदिके अभावमें योग्य निषिद्धको त्याग श्रेष्ठद्रव्यसे यज्ञ होताहै. इसी-प्रकार यहांभी संगवके अभावमें निषिद्ध भिन्न कर्मयोग उदयसमयमें वा दूसरे समयमें उपाकर्म करै, जिस किसी निषिद्ध समयमें न करै. कारण कि, अपवादके अभावमें उत्सर्गकीही प्राप्ति होती है, तिससे प्रशंसाके निमित्त यह वाक्यहै. कात्यायन आदिकोंको तो पूर्णिमा दोनों दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो वा एकदेशव्यापिनी हो तो पहली ग्रहण करनी यह हेमाद्रिने कहा है, और जो यह ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, होली, दूर्वाष्टमी, शिवरात्रि, वामनद्वादशी, यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी, यह वाक्य ब्रह्मपवित्रा, श्रवणकर्म, दैवकर्म, विषयमें कहा है यह हेमाद्रिमें कहा है । इसी वाक्यसे कुलधर्म व्रत आदिमें प्रथमही ग्रहण करनी, मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहा है. मदनपारिजातमें भी कहा है कि, वाजसनेयियोंको पूर्वविद्धा श्रावणीमें उपाकर्म करना लिखाहै. मदनरत्नमें तो लिखा है कि, तैत्तिरीयशाखावाले पूर्णिमाको उदयके समय उपा-कर्म करैं, बह्वृचपरिशिष्टग्रन्थमें बह्वृचोंकी कर्म विधिके निमित्त प्रवृत्ति होनेसे उसमें तैत्तिरीयशाखावालोंकी कर्मविधिका योग नहीं है, इससे पूर्वोक्त कालिकापुराण आदिके सामान्यवाक्योंसे उदयकालके पर्वकीही प्राप्तिहै, इससे निषेधसे बह्वृचोंके श्रवणका विधान है, इससे तैत्तिरीयपद अनुवाद होनेसे सम्पूर्ण यजुर्वेदि-योंका बोधक है, कारण कि, अनुवाद प्राप्तिके अधीन हुआ करताहै, और प्राप्ति सम्पूर्ण यजुर्वेदियोंको आती है, अथवा मिलकर अनुवाद है. कुछ विधायक नहीं है, जिससे विशेष विधिसे उपसंहार होचुके, अनुवाद होनेसे लक्षणाकाभी दोष नहीं आता, नहीं तो उदयकालके पर्वविशिष्ट (युक्त) कर्मके उद्देशसे कर्ताका विधान करोगे वा कर्ता विशिष्टमें उदयकालके कर्मका विधान करोगे तो वाक्यके भेदकी प्राप्ति होगी ॥

तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया सर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्वेत्युक्तम् ॥ तन्न ॥ न तावत् परिशिष्टे बह्वृचान् प्रत्येव विधिः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम् ' ॥ इत्यादित-दुदाहृते एव परिशिष्टे वेदान्तरधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोयं कालिकापुराणात् बह्वृचादीनामपि तदापत्तेः । कुर्युरित्यस्य विधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादि-त्वाच्च । न च तैत्तिरीयकाणां गृह्ये तद्विधिरस्ति । येनानुवादः स्यात् न च वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देशत्वायोगेन हविरार्तिवदष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीते-तिवच्चागत्याविशिष्टस्योद्देशत्वात् । अन्यथोत्तरार्धे बह्वृचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रवणस्य सर्वसाधारण्यापत्तेः । तस्माद्धेमाद्रिमतमेव युक्तम् इति दिक् ॥ इदं च 'शिष्यानध्याप-यतः आवसथ्येग्नौ । अनध्यापयतो नाधिकारः ' इति कर्कः ॥ श्रावण्यामपि ग्रहणादि-दुष्टायां कातीयभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम् । तैस्तु श्रावणपञ्चम्याम्—"संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि पौर्णमास्यां यदा भवेत् । उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः " इति स्मृतिम-हार्णवे वाजसनेयिग्रहणाद् इति हेमाद्रिः ॥ इदं च सूत्रोक्तकालपरत्वात् बह्वृचपरमपि सांख्यायनैस्तु हस्ते कार्यम् । आपस्तम्बैराथर्वणैश्च प्रौष्ठपद्याम् ॥ यत्तु बौधायनः— 'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्येत्यूचे तत् प्रौष्ठपद्यामपि दोषे आषाढ्यां कार्य-मित्येवमर्थम् । तच्छाखीयविषयं वा ॥ सामगास्तु श्रावणे हस्ते कुर्युः बह्वृचाः श्रवणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः ' इति निर्णयामृते गोभिलोक्तेः । सोप्युत्तरः—"धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम् । श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः ॥ " इति मदनरत्ने

परिशिष्टोक्तेः ॥ गार्ग्योऽपि-"सिंहे रवौ तु पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णेऽविवरे बहिः । छन्दोगा मिलिताः कुर्युरुत्सर्गं स्वस्वच्छन्दसाम् ॥ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्णिकम् " इति ॥ अविवरे ग्रहादिदोषहीने । विचरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः । पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णे उत्सर्गः । अपराह्णिकमुपाकर्मेत्यन्वयः । अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः । प्रयोगपारिजाते गोभिलः ॥

इससे तैत्तिरीयपदकी अविवक्षासे सब यजुर्वेदियोंके निमित्त पर्वके उदयकालका समयही है, यह मदनरत्नका कथन सत्य नहीं. कारण कि, परिशिष्टकी प्रवृत्ति कुछ बहृचोंके निमित्त नहीं है. कारण कि, धनिष्ठा नक्षत्र, प्रतिपदा चित्रानक्षत्रसे युक्त समयमें भी इत्यादि उनकेही लिखे हुये परिशिष्टमें और वेदोंके धर्मोंकी विधियोंको देखतेहैं, और अनुवादभी यह नहीं. कारण कि, कालिकापुराणसे बहृचोंकोभी उसकी प्राप्ति आवैगी, कुर्युः (करै) इसको विधि न होनेसे उसकाही अर्थवाद होनेसे यह प्राप्तकाही अनुवाद जानना । यदि कोई कहै कि, तैत्तिरीयोंके गृह्यमें उसकी विधिहै, जिससे अनुवाद होजायगा, यदि कहो वाक्यभेद होजायगा, सोभी नहीं, तैत्तिरीयपदको वा सब कर्मोंको उद्देश्य न होनेसे हविः प्रदानके तुल्य वा आठ वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै इसके तुल्य संयुक्तकाही उद्देश्य है, नहीं तो उत्तरार्द्ध (पिछले दोपद) में बहृचपदकी भी विवक्षा न होनेसे श्रावणही सबके निमित्त साधारणरीतिसे होजायगा, इससे हेमाद्रिकाही यह मत युक्त है, मदनरत्नका नहीं यह मार्ग है, इस उपाकर्मको वह घरकी अग्निमें करै जो शिष्योंको अध्ययन कराता हो, और:जो न पढाता हो उसको अधिकारही नहीं, यह कर्कका कथनहै, यदि श्रावणी ग्रहण आदिसे दूषित होजाय तो कातीय ब्राह्मणोंके विना और सबको भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म करना चाहिये । और कातीय तो श्रावणकी पञ्चमीको करैं, हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, जब पूर्णिमाको संक्रान्ति वा ग्रहण होय तो वाजसनेयीजनोंको पञ्चमीको उपाकर्म करना चाहिये, यह स्मृतिमहार्णवमें वाजसनेयी पदका ग्रहण है, इसको अपने सूत्रमें लिखे कालका बोधक होनेसे बहृचोंके निमित्तभी जानना, सांख्यायनको तो हस्तमें करना चाहिये आपस्तंब और आथर्वण भाद्रपदकी पूर्णिमाको करैं, जो बौधायनने लिखा है कि, श्रावण वा आषाढकी पूर्णिमाको उपाकर्म करै, वह बौधायनका कहना इसकारण है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको भी दोष होय तो आषाढकी पूर्णिमाको करना, अथवा उनकी शाखाकेही विषयमें वह वाक्यहै, सामवेदी तो श्रवणमें हस्तनक्षत्रमें करै. कारण कि, निर्णयामृतमें गोभिलने कहाहै कि, श्रवणनक्षत्रमें बहृच और हस्तनक्षत्रमें सामवेदी करैं, वहभी श्रेष्ठ है. कारण कि, मदनरत्नमें परिशिष्टका यह वाक्यहै कि, धनिष्ठा प्रतिपदा, चित्रा नक्षत्रसे युक्त समयमें ऋक्, यजुः, सामवेदियोंको उपाकर्म करना उचितहै, गार्ग्यका भी कथन है कि, सिंहका सूर्य, पुष्यनक्षत्र, ग्रहण आदिसे निर्दोष समयमें सम्पूर्ण वेदपाठीजनोंको मिलकर अपने २ वेदोंका उत्सर्ग ग्रामसे बाहिर तीर्थ आदिपर करना चाहिये, और शुक्लपक्षमें तो हस्तनक्षत्रमें पराह्णमें करै, यहां अविवरे यह पाठ है, जो विवरेत् यह पाठ करैं वह आज्ञानकृत है, और विशेष तो प्रथम कहआयेहैं, प्रयोगपारिजातमें गोभिलने कहा है ॥

" उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनाङ्गत्वाद्गृहिणां ब्रह्मचारिणाम्॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च । अकृत्वावेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः ॥ " सर्वथा लोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च । 'वेदोदितानां नित्यानाम् ' इति मनुना भोजनोक्तेः । एवमुत्सर्गेऽपि ॥

कि, वानप्रस्थ, गृहस्थी, ब्रह्मचारियोंको भी उपाकर्म इससे करना चाहिये कारण यह वेदोंकी धारणा और पढ़नेका अंगहै, वेदोंके उत्सर्ग और उपाकर्मको न करनेसे मनुष्यको जपका फल प्राप्त नहीं होता, यदि इन दोनोंका सबप्रकार लोप होजाय तो कृच्छ्र और व्रत करै कारण कि, वेदमें लिखे नित्य-कर्मोंके त्यागमें मनुजीने भोजनका अभाव लिखाहै, इसीप्रकार उत्सर्गमें भी जानना ॥

उत्सर्जननिर्णयः ।

अथ प्रसङ्गादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते । तच्च पौषमासे रोहिण्यां तत्कृष्णाष्टम्यां वा कार्यम् । "पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा । जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः" इति याज्ञवल्क्योक्तेः । श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां चोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम् । 'अर्धपञ्चमान्मासानधीयत इति तेनैवोक्तेः । अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्यर्थः॥ यत्तु हारीतः–' अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत् । पञ्चार्धषष्ठान्वा ' इति । तदाषाढ्युपाकर्मविषयम् ॥ बौधायनास्तु पौष्यां माघ्यां वा कुर्युः ' पौष्यां माघ्यां चोत्सृजेत्' इति तत्सूत्रात् ॥ तैत्तिरीयैस्तु–तैष्यां कार्यं ' तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत् ' इति तत्सूत्रात् बह्वृचैस्तु माघ्यां कार्यम् । ' अध्यायोत्सर्जनं माघ्यां पौर्णमास्यां विधीयते ' इति कारिकोक्तेः ॥ कातीयास्तु भाद्रपदे कुर्युः । ' उत्सर्गश्चेति नन्दादितिथ्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ' इति कात्यायनोक्तेः ॥ सामगास्तु सिंहार्के पुष्ये कुर्युः । 'तथा च सिंहे रवौ तु' इति गार्ग्यवचनं पूर्वमुक्तम् । सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम् । पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथवा ' इति हेमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः । यदा सिंहस्थे सूर्ये सति तन्मध्यहस्तनक्षत्रात् प्राक् पुष्यः कर्कटस्थो भवति तदा तस्मिन् पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपाकर्म सामगाः कुर्युः । " मासे प्रौष्ठपदे हस्तात्पुष्यः पूर्वो भवेद्यदा । तदा च श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः" इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः ॥ अत्र द्वावपि सौरौ मासौ ज्ञेयौ तेषां सौरस्यैवोक्तेः । अत्र विशेषमाह कार्ष्णाजिनिः उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च । ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः " इति ॥ उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रम् । ' पक्षिणीमहोरात्रं वानध्यायः ' इति मिताक्षरायामुक्तम् ॥ अत्र नदीनां रजोदोषो नास्ति । ' उपाकर्मणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते' इति गार्ग्योक्तेः ॥

यहांही प्रसंगसे उत्सर्गको लिखतेहैं वह पौषमासके रोहिणीनक्षत्रमें वा पौषवदी अष्टमीमें करना चाहिये कारण कि, याज्ञवल्क्यमें यह लिखाहै कि, पौषमासकी रोहिणीनक्षत्र वा अष्टकाको जलके निकट ग्रामसे बाहिर जाकर विधिसे वेदोंका उत्सर्ग करना चाहिये; श्रावणी वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म कियाहोय तो क्रमसे पौषशुक्ला वा माघशुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्ग करै. कारण कि, उसनेही यह लिखाहै कि–साढ़ेचार मास अध्ययन करै, इस कथनमें अर्द्धपंचका अर्थ यह है कि, आधाहै पांचवाँ जिनमें ऐसे साढेचार. जो हारीतने यह लिखा है कि साढेपांच महीने पढ़कर फिर उत्सर्ग करै अथवा पांच हैं आधे जिसमें ऐसे वा षष्ठान् पढ़कर उत्सर्ग करै, यह हारीतका कहना आषाढकी पूर्णिमाको उपाकर्मके विषय जानना चाहिये. बौधायन तो यह लिखते हैं कि पौष वा माघकी पूर्णिमाको उत्सर्ग करै । कारण कि, यही उनका सूत्र है, तैत्तिरीयोंको तो पौषमें करना चाहिये कारण कि, पौषपूर्णिमा व रोहिणीनक्षत्रमें वेदाध्ययनका विराम करदे यही उनका सूत्र है बह्वृचोंको तो माघकी पौर्णिमाको करना चाहिये. कारण कि

कारिकामें यह लिखा है कि, वेदपाठका त्याग माघकी पूर्णिमाको करना चाहिये, कातीयोंको तो भाद्रपदमें करना चाहिये, कारण कि कात्यायनने यह कहा है कि, पौषकी तिथि वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्याग करें, सामवेदियोंको तो सिंहके सूर्य पुष्यनक्षत्रमें करना चाहिये। तैसेही सिंह सूर्यमें करै यह गर्गका वाक्य प्रथम लिख आये हैं, अथवा सम्पूर्ण उपाकर्मके दिनही करैं, कारण कि, हेमाद्रिमें खादिर गृह्यका वाक्य है कि, पुष्यनक्षत्रमें अथवा उपाकर्मके दिन त्याग करैं. जब सिंहके सूर्यके मध्यमें वर्तमान हस्त नक्षत्रसे प्रथम पुष्य कर्कके सूर्यमें हो तब उस पुष्यमें उत्सर्ग करके उससे अगले हस्तमें सामवेदी उपाकर्म करैं, कारण कि, हेमाद्रिमेंही परिशिष्टका कथन है कि, यदि भाद्रपदमासमें हस्तसे पहले पुष्य हो तब ब्राह्मण श्रावणमें उत्सर्ग करें, इसमें दोनों सूर्यमास लेने कारण कि, सामवेदियोंको सौरमासही लिखा है, इसमें कार्ष्णाजिनिने विशेष लिखा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें शास्त्रोंमें कहे समयमें एकत्र होकर कुशाओंके ऋषि निर्माण कर पूजे और तर्पण करै, उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन दिन पक्षिणी (दोरात एक दिन) वा अहोरात्र (१ दिन रातका) अनध्याय मिताक्षरामें लिखा है, इसमें नदियोंके रजका दोष नहीं है. यह गार्ग्यने लिखा है कि, उपाकर्ममें रजका दोष नहीं है ॥

रक्षाबन्धनम् ।

अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तम् । हेमाद्रौ भविष्ये-" संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये । स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते ॥ उपाकर्मणि कर्तव्यं ऋषीणां चैव पूजनम् । ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम् ॥ कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः ॥ ३ ॥ इति ॥ अत्रोपाकर्मानन्तर्यस्य पूर्णातिथौ वार्षिकस्यानुवादो न तु विधिः गौरवात् प्रयोगविधिभेदे च क्रमायोगाच्छूद्रादौ तदयोगाच्च ॥ तेन परेद्युरुपाकरणेपि पूर्वेद्युरपराह्णे तत्करणं सिद्धम् ॥ इदं भद्रायां न कार्यम् । "भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी " इति संग्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रावपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते ॥ इदं प्रतिपद्युतायां न कार्यम् ॥ " नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते " इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥ भविष्ये-" उपलिप्ते गृहमध्ये दत्तचतुष्के न्यसेत्कुम्भम् । पीठे तत्रोपविशेद्राजामात्यैश्च सुमुहूर्ते ॥ तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत मन्त्रेण ॥ " इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वात् भद्रावर्ज्यग्रहणदिनेपि कार्यं होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् । ' सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने' इति तत्कालमात्रनिषेधाच्च । " त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः " इति यो निषेधः सोप्यनियतकालीनकर्मपर एव । नत्वन्यत्र। अन्यथा होलिकायां का गतिः ॥ अत एव-" नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते " इति ॥ नियतकालीने तदभाव इति दिक् ॥ उपाकर्मणि तद्दिनभिन्नपरं तत्र तन्निषेधादित्युक्तं प्राक् मन्त्रस्तु-" येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः । कर्तव्यो रक्षिताचारो द्विजान् संपूज्य शक्तितः " इति ॥

इसमेंही रक्षाबन्धन हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणकी पूर्ति होनेपर पूर्णिमाको सूर्योदयके समय श्रुति और स्मृतिकी विधिसे स्नान करना चाहिये और उपाकर्म ऋषियोंका तर्पण और पूजन करे, शूद्रोंका स्नान दान मंत्ररहित है। फिर अपराह्णके समयमें शुभ रक्षाकी पोटली इसप्रकार बाँधे जो सुवर्णसे शोभित चावल और सरसोंसे युक्त हो, यहां अर्थात् सिद्ध उपाकर्मके उपरान्तका अनुवाद है विधान नहीं। कारण कि, विधि माननेमें गौरव आता है, प्रयोगविधिके भेदसे क्रमका अयोग होनेसे और शूद्र आदिमें उपाकर्मका योग न होनेसे विधि नहीं, इससे दूसरे दिनमें उपाकर्म होनेपरभी पहले दिनमें अपराह्णके समय रक्षाबन्धन करना सिद्ध है, यह रक्षाबन्धन भद्रामें नहीं करना चाहिये. इसका कारण संग्रहमें लिखा है कि, श्रावणी और होली ये दोनों भद्रामें न करनी चाहिये करे तो श्रावणी राजाको और होली ग्रामको दग्ध करती है, भद्रा होय तो भद्राके उपरान्त रात्रिमें भी रक्षाबन्धन करले, यह निर्णयामृतमें कहा है। यह प्रतिपदामें न करनी नन्दामें दर्शन रक्षा बलिदान दशाओंमें और भद्रामें गोकुलक्रीडा देशनाशके निमित्त होती है, ऐसा मदनरत्नमें ब्रह्मवैवर्तसे लिखा है। भविष्यमें है कि, घर लीपकर चौकपूर उसपर घट रक्खै, चौकी बिछाकर राजा और अमात्य शुभमुहूर्तमें बैठें फिर पुरोहित राजाके हाथमें रक्षाबन्धन करे। यह रक्षाबन्धन नियतकालमें होनेसे भद्राको छोड़कर ग्रहणके दिन भी होलीकी समान करना, ग्रहसंक्रान्ति आदिमें रक्षाका निषेध न होनेसे सब वर्णोंको राहुदर्शनमें सूतक होता है इससे कालमात्रका निषेध करनेसे त्रयोदशीसे नौ दिनपर्यन्त चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें नौ दिन सब मंगलकार्योंमें त्यागदेने यह निषेध अनियत कालकर्मपर है। और जगह नहीं तो होलीकी क्या गति होगी? इससे नित्य नैमित्तिक जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म और उत्सर्गमें ग्रहवेध नहीं लगताहै. इस प्रकार नियत कालमें उसका अभाव है, यह संक्षेपसे कहा, उपाकर्ममें उस दिनसे भिन्नपर है, वहां उसके निषेध होनेसे यह पहले कह दिया है। रक्षाका मन्त्र तो यह है कि, जिससे दानवोंका राजा महाबली बलिराजा बांधागयाहै. 'रक्षे' इस कारणसे तुझे बांधताहूं, तू चलायमान न होना, अचल रहना। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दूसरे मनुष्य यथाशक्ति ब्राह्मणोंको पूजकर रक्षाबंधनका आचार करें॥

हयग्रीवोत्पत्तिः।

अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः। तदुक्तं कल्पतरौ–" श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम्॥ स्नात्वा संपूजयेत्तं तु शंखचक्रगदाधरम्॥

इसीदिनही हयग्रीवअवतार हुआ है, यही कल्पतरुमें लिखाहै कि, श्रावणीको श्रवणनक्षत्रमें प्रथम समयमें हयग्रीव भगवान् प्रगट हुए जिन्होंने सब पापोंका नाशक सामवेद उच्चारण किया इसमें स्नान करके उस शंख, चक्र, गदाधारीका पूजन करे॥

श्रवणाकर्मनिर्णयः।

अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मोक्तम्। 'श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म' इति। तत्रास्तमययोगिनी ग्राह्या। 'अस्तमिते स्थालीपाकं श्रपयित्वा' इति सूत्रात्। अत इवाष्टौ निशीथौ दर्शप्रयोगान्तःपातनियमात्तदङ्गैः प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे। अन्यथा परेद्युः प्राप्तौ कः प्रसङ्गः प्रसङ्गस्य॥ याज्ञिकास्तु पूर्णिमादर्शशब्दयोः पर्वान्त्यक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्येति विकृतित्वाच्छेषपर्वेच्छन्ति॥

आश्वलायनने श्रवण कर्म लिखा है कि, श्रावणकी पूर्णिमाको श्रवणकर्म करै, उसमें वह पूर्णिमा ग्रहण करनी जो अस्तकालमें हो कारण कि, सूत्रमें यह लिखाहै कि, अस्तके कालमें स्थालीपाकको

पकाकर, इसीसे रात्रिके यज्ञमें दर्श (अमावस) प्रयोगके मध्यमें प्राप्त हुओंके नियमसे अंगोंमें प्रसंगसिद्धि बारहमें कही है, नहीं तो परदिनमें प्राप्तिका कौन प्रसंग था. याज्ञिकोंका तो यह कथनहै कि, पूर्णिमा और दर्शशब्दोंमें जो शब्द हैं वे पर्वके अन्तक्षणवाले अहोरात्रके वाचक होनेसे उसदिन रातमें कर्मकालकी व्याप्ति (करना) जाननी इससे विकृति होनेसे शेष पर्वकी इच्छा करतेहैं ॥

श्रावणकृष्णद्वितीयायामशून्यव्रतनिर्णयः ।

श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यव्रतम् । तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी । दिनद्वये सत्त्वे परेति निर्णयामृते ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्रावणमासः समाप्तः ॥

श्रावण आदि चार महीनोंके कृष्णपक्षकी द्वितीयाओंमें अशून्य शयनव्रत लिखा है, यह चन्द्रोदयव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनोंदिन चन्द्रोदयव्यापिनी होय तो परलीही लेनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है ॥

इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्रावणमासः समाप्तः ।

भाद्रपदमासः ।

सिंहसंक्रातिनिर्णयः ।

सिंहे पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

सिंहसंक्रान्तिमें अगली सोलहघड़ी पुण्यकाल हैं, और सब पूर्ववत् समझनी ॥

गोप्रसवे शान्तिः ।

अत्र गोप्रसवेऽद्भुतसागरे नारदः–"भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते । मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम् । प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः । आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ ३ ॥ व्याहृतिभिश्चायं होमः । 'सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्' इति ॥ "सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् । पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ॥ तदानिष्टं भवेत् किंचित्तच्छान्त्यै शांतिकं चरेत् । अस्यवामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् । मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम् ॥ श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः । मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा ॥ ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत्" ॥ ४ ॥ एवं श्रावणे वडवाप्रसवो दिने निषिद्धः । तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे "माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा । सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायिकाः" इति ॥ अत्र तदुक्ताऽमृताख्या शान्तिः कार्या ॥

सिंहमें गौका प्रसव होय तो अद्भुतसागरमें नारदने यह लिखा है कि, सिंहके सूर्यमें जिसकी गौका प्रसव होय उसका ६ महीनेमें मरण लिखा है इसमें सन्देह नहीं । जिससे शुभ होय उसकी शान्ति लिखते हैं प्रसूतागौको उसी समय ब्राह्मणको देदेना और श्वेत सरसोंमें घी मिलाकर फिर होम करै, और उन घृताक्त आहुतियोंको १०,००० दशसहस्र व्याहृतियोंसे दे फिर प्रयत्नसें व्रत करके ब्राह्मणको दक्षिणादे. इसी प्रकार

सिंहके सूर्यमें जब गौ प्रसूता होय, और पौषमें महिषी और दिनमें घोडी प्रसूता हो तब उसको अनिष्ट होता है उसकी शांतिके निमित्त शांति करै (अस्य वाम) इस सूत्रसे अथवा (तद्विष्णोः) इस मन्त्रसे तिल और आज्य की १०८ आहुति दे, और मृत्युञ्जयकी विधिसे दशसहस्र आहुती दे फिर श्रीसूक्त अथवा शांतिसूक्तसे स्नान करै रात्रिमें अथवा अपने घरमें जो गौ रम्भावे तो उसकी शान्ति पूर्ववत् करनी, इसी-प्रकार श्रावणके दिनमें घोडीका प्रसव निषिद्ध कहा है; सोई अथर्ववेदियोंके मार्गपरिशिष्टमें लिखा है कि, माघ और बुधवारको भैंस, श्रावणको दिनमें घोड़ी, सिंहमें गौका व्याना होय तो यह स्वामीकी मृत्यु कहतेहैं इसको परिशिष्टमें लिखी हुई अमृत शांति करनी।

भाद्रपदकृष्णतृतीयाकज्जलीसंज्ञानिर्णयः।

भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये उक्तम्। वचनं हरितालिका प्रकरणे वक्ष्यामः॥

भादौं वदी ३ को कजली कथन, करते हैं वह परली लेनी यह वचन हरितालिका प्रकरणमें कहेंगे दिवोदासीय ग्रन्थमें लिखा है कि—

भाद्रपदकृष्णचतुर्थीबहुलानिर्णयः।

भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा। सा सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा ग्राह्या "गौर्याश्चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिके च॥ वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम्" इति दिवोदासीयवचनात्॥ अत्र वत्सपूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजाशब्देन बहुलाख्या गृह्यते इति स एव व्याचख्यौ॥ मदनरत्नेप्येवम्। अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम्॥

भादौं वदी ४ बहुलानामसे मध्यदेशमें प्रचलित है वह पराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये। दोनों दिन पराह्ण व्यापिनी होय तो पहली लेनी, कारण कि, दिवोदासीयमें यह लिखाहै कि, गौरी चतुर्थी वटधेनु-पूजा, दुर्गाका अर्चन, दुर्भरहोली, वत्सपूजा, शिवरात्रि परतिथिसे युक्त ये सब देश और राजाको नष्ट करती हैं, यहां वत्सपूजाके भिन्न कहनेसे धेनुपूजा शब्दसे बहुलापूजा लेनी यह अर्थभी दिवोदासीयनेही कहाहै मदनरत्नमेंभी यही लिखा है इसमें गौपूजा और जौका भोजन भी दिवोदासीयमें कहा है॥

भाद्रपदकृष्णहलषष्ठीनिर्णयः।

भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी सा सप्तमीयुतेति दिवोदासः॥

भाद्रपदवदी षष्ठी हलषष्ठी कथन की है वह सप्तमीसे संयुक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदास लिखतेहैं॥

भाद्रपदकृष्ण (शीतला) सप्तमी।

भाद्रकृष्णसप्तम्यां शीतलाव्रतम्। तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ॥

भादोंवदी ७ को शीतलाव्रत होता है वह पहली लेनी चाहिये, यह हेमाद्रिका कथन है॥

---

१ अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्। ऋ० २।३।१४॥

२ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। य० अ० ६ मं० ५॥

जन्माष्टमीनिर्णयः ।

अथ जन्माष्टमी । सा च कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी ।" तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे । अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः" इति कल्पतरौ ब्राह्मोक्तेः । अत्रेदं माधवमतम् । अष्टमी द्वेधा । जन्माष्टमी जयन्ती चेति । तत्राद्या केवलाष्टमी ।"ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । ते भवन्ति नराः प्राज्ञ व्याला व्याघ्राश्च कानने"इति स्कान्दात् । दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी कला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् " इति पुराणान्तरात् । " श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः " इति भविष्योक्तेश्च । केवलाष्टम्यां एवोपोष्यत्वावगतेः सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती । " कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः " इति वह्निपुराणात् । "अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता । भवेत्प्रोष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता "इति विष्णुरहस्यादिवचनाच्च ॥ ज्योतिरादिवत्संज्ञया कर्मभेदः ॥ रोहिणी योगश्चाहोरात्रे मुख्यः । निशीथमात्रे मध्यमः । दिवसादावधमः " अहोरात्रे तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत् "इति वसिष्ठसंहितोक्तेः । "अर्धरात्रे तु योगोयं तारापत्युदये सति ।" नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत् "इति विष्णुधर्मोक्तेः । " वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पापि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः" इति पुराणान्तराच्च । विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेपीदम् । 'श्रावणे वा नभस्ये भवेद्ध्रुवम्' इति वक्ष्यमाणात् ॥ गौडास्तु–निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः ॥ तन्न । 'वासरे निशायां' इति विरोधात् ॥ योगविशेषाद्गुणात् फलमित्यन्ये । तेप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्ष्याः ॥

वह कृष्णपक्ष आदि माससे भाद्रपदकी अष्टमी होती है. कारण कि, कल्पतरुग्रन्थमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, भादोंवदी कृष्णाष्टमीको देवकीजीके पुत्र यह कृष्ण २८ वें कलियुगमें उत्पन्न हुए, इसमें माधवका मत यह है कि, अष्टमी दोप्रकारकी है, जन्माष्टमी और जयंती उन दोनोंमें पहली केवल अष्टमी है, कारण कि, स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, जो जानकर कृष्णाष्टमीका व्रत नहीं करते वे वनमें सर्प, और व्याघ्र होते हैं । और किसी और पुराणकाभी वाक्य है कि, दिन वा रात्रिमें घडीभरभी रोहिणी न होय तो चन्द्रोदयके समय वर्तमान रात्रिकी अष्टमीको करै, भविष्यपुराणका भी वाक्य है कि, श्रावणके शुक्लपक्षमें जो मनुष्य कृष्णाष्टमी नहीं करता वह क्रूर राक्षस होताहै, केवल अष्टमीकोही व्रत करना लिखाहै यदि वह रोहिणीयुक्त होय तो वह जयन्ती कही है उसका यत्नसे व्रत करै, ऐसा अग्निपुराणका वाक्यहै और विष्णुरहस्य आदिका वाक्यभी है कि, यदि कृष्ण पक्षकी अष्टमी रोहिणीसे युक्त भाद्रपदमें होय तो वह जयन्ती नामकी लिखी है, इसमें ज्योतिआदिके तुल्य संज्ञासे कर्मका भेद है रोहिणीका योग रातदिनमें मुख्य, अर्धरात्रिमें मध्यम और केवल दिनमें अधम होताहै, कारण कि, वसिष्ठसंहिताका वाक्य है कि, यदि इस अष्टमी और रोहिणीका योग अहोरात्रमें पूर्ण न होय तो मूहूर्तमात्रभी अहोरात्रके योगमें उसका व्रत करै, विष्णुधर्मका यह वाक्यहै कि, चन्द्रोदयके समय अर्द्धरात्रमें रोहिणीके योगमें सावधान और शुद्धिसे स्नान करके पूजामें प्रवृत्तहो (लगै) पुराणांतरकाभी वाक्य है कि, दिनमें वा

रात्रिमें अष्टमी रोहिणी होय तो बुद्धिमान् मनुष्य श्रावणमासमें उसीका व्रत करै इस वाक्यमें 'विशेषण' इस पदसे भाद्रपदमें भी यह होतीहै कारण कि, आगे श्रावण वा भाद्रपद दोनोंमें लिखेंगे, गौड तो यह लिखते हैं कि, अर्धरात्रिके समयही रोहिणीके योगमें जयन्ती होतीहै, और तरह नहीं, यह कथन करतेहैं सो उचित नहीं, कारण कि, दिनमें हो वा रात्रिमें हो इस वाक्यका उसमें विरोध है योगविशेषके गुणसे फल होताहै यह और कोई कहते हैं, न करनेमें दोष सुनाहै इससे वेभी वर्जने योग्य हैं ॥

तत्र व्रतनिर्णयः ।

तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं पूर्वोक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः । "वर्षेवर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने" इति स्कान्दे वीप्साश्रुतेश्च । 'न करोति नरो यस्तु' इति पूर्वसुक्तेरत्र स्त्रीलिङ्गमतन्त्रम् । मदनरत्ने स्कान्दे त्वत्र फलमप्युक्तम् । "जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । कारयन्त्यथ वा लोकाँल्लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमीव्रते ।" इति ॥ जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च। "महाजयार्थं कुरुतां जयन्तीं मुक्तयेनव । धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव ॥ ददाति वाञ्छितानर्थान् ये चान्येप्यतिदुर्लभाः" इति स्कान्दादौ फलश्रुतेः ॥ "शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने । तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः ॥ न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसंभवं व्रतम् । यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्" ॥ २ ॥ इत्यकरणे निन्दाश्रुतेश्च । यदा च पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । न तु जन्माष्टमी व्रतं पृथक्कार्यम् । विष्णुशृंखलवत् । तदुक्तं माधवेनैव—"यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेप्येवम् । हेमाद्रिस्तु—"रोहिणीसंयुतोपोष्या सर्वाघौघविनाशनी । अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत् ॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी" इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात् मुहूर्तमपि लभ्येतेत्यादीनां चार्धरात्रयोगेप्युपपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम् । तत्त्वं तु हेमाद्रिमतेपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव । 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्तीपरत्वोक्तेः ॥ किं च "रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्" इति विष्णुधर्मोक्तेः । "समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे राजसत्तम । समजायत गोविन्दो बालरूपी चतुर्भुजः ॥ तस्मात्तं पूजयेत्तत्र यथा वित्तानुरूपतः" इति ॥ वह्निपुराणाच्चार्द्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते ॥

इसमें जन्माष्टमी व्रत नित्य है कारण कि, पूर्वोक्त कथनोंसे न करनेमें निन्दा सुनी जाती है और स्कन्दपुराणके इस वाक्यमें वीप्सा (दोवार पढना) सुननेसे भी यह व्रत नित्यहै कि, जो नारी साल सालमें इस जन्माष्टमीको नहीं करती वह हे महाप्राज्ञ वनकी सर्पिणी होती है इस वाक्यमें नारी यह स्त्रीलिंग अविवक्षितहै, कारण कि, पहले जो नर नहीं करता इस वाक्यमें पुरुषको भी नित्य लिखाहै, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे इसका फलभी लिखाहै कि, जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ जन्माष्टमी व्रतको करते वा कराते हैं, उनके यहां निरन्तर लक्ष्मी स्थिर रहती है और इस व्रतके करनेसे सबही कार्य सिद्ध होतेहैं । जयंतीका व्रत

तो नित्यहै, और काम्यहै कारण कि, स्कंदपुराण आदिमें इसका यह फल श्रवण कियाहै कि, महाजय, मुक्ति, धर्म, काम, मोक्षके निमित्त जयन्ती व्रतको जो करतेहैं उनके अत्यन्त दुर्लभभी वांछित अर्थ इस व्रतके करनेसे सफल होतेहैं, और न करनेमें यह निन्दाभी श्रवण की है कि, जो मनुष्य जयंतीसे विमुख हुआ, विष्णुके जयंतीव्रतको नहीं करता, हे कुंती! उसको वह पाप लगता है जो शूद्रान्नके और मुर्देके हाथके भोजनसे होताहै, और यमराजके वश होकर वह नरकके दुःखोंको प्राप्त होता है, अब प्रथम वा अगले दिन रोहिणीका योग होजाय तब जन्माष्टमी भी जयन्तीके मध्यमें आजातीहै, तब जन्माष्टमीका व्रत पृथक् विष्णुशृंखलके तुल्य नहीं करना सोई माधवने लिखाहै कि, जिसवर्ष जयन्तीका योग जन्माष्टमीमें होय तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी प्रशंसामें जाननी चाहिये। मदनरत्न निर्णयामृत ग्रन्थोंमें गौड़ मैथिलोंके मतमें भी इसी प्रकार लिखाहै, हेमाद्रि तो रोहिणीसे युक्त सब पाप समूहके नाश करनेवाली जन्माष्टमी व्रतके योग्य कहतेहैं, चाहै आधीरातसे प्रथम वा पीछे एक घडी होय वह जयन्ती सब पाप नाश करनेवाली कहीहै इस अग्निपुराणके कथनसे आधीरात्रिके समयही रोहिणीयोगकी प्रशंसासे पूर्वोक्त मुहूर्त मात्रभी रोहिणी मिले तो इत्यादि वाक्योंको अर्द्धरात्रके योगमें भी चरितार्थ होनेसे जयन्तीव्रत पृथक् नहीं है. सिद्धान्त तो यहहै कि, हेमाद्रिके मतमें जयन्तीव्रत पृथक् है. कारण कि हेमाद्रिने उदयमें अष्टमी होय इस पूर्वोक्त वाक्यको जयन्ती व्रतके विषयमें वर्णन किया है और विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, आधीरातके समय रोहिणीमें यदि अष्टमी होजाय तो उसमें कृष्णका पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होतेहैं। अग्निपुराणमें लिखाहै कि, हे राजाओंमें श्रेष्ठ! आधीरातमें रोहिणीके योगमें बालरूपी चतुर्भुजी गोविन्द उत्पन्न हुए तिससे उससमय अपने धनके अनुसार गोविन्दका पूजन करै, इस वाक्यसेभी आधीरातमें कर्मका काल प्रतीत होता है ॥

अतः 'कर्मणो यस्य यः काल' इत्यादिवचनात् पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोपि रोहिणीयोगस्य न प्रयोजकत्वम्। अन्यथा बुधवारादेरपि तत्त्वापत्तेः। किं च। जयन्तीशब्दो रात्रिविशेषवचनः। "अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी। मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः" इति ब्रह्माण्डपुराणात्। तेन तद्योगिरोहिण्यां गौणत्वान्न व्रतभेदः। यत्तु–'वासरे वा निशायां वा' इति तत्कैमुतिकन्यायेन निशीथयोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेर्धरात्रयोगाभावे प्राशस्त्यार्थम्। यद्यपि–"दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेर्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता। तथापि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेपि जयन्तीव्रतं कार्यम्। इत्येवंपरमिति तदाशयः। अत्र हि–"सत्रायापूर्य विश्वजिता यजेत। एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः" इतिवद्रोहिणीयोगाभावे विधानात्तत्कार्यापत्तिः स्यात् ॥ अत एवोक्तम्। जयन्ती नाम शर्वरी' इति। यत्र स्कान्दे–"उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि। भवते बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाथवा न वा" इति ॥ यच्च पाद्मे "प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता ॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा"२ ॥ इति ॥ तद्दानादिविषयम् ॥

उपवासाश्रवणादित्यनन्तभट्टः । जयन्तीपरमिति हेमाद्रिः । उदये चन्द्रोदय इति केचित् । तन्न । चंद्रोदयसत्त्वसंदेहात् 'नवमी सकला ' इत्ययोगान्मानाभावाच्च । तेन पूर्वेद्युः सप्तमीवेधे परदिने सूर्योदये घटिकापि ग्राह्या । 'पूर्वविद्धाष्टमी ' इति पाद्मोक्तेः । इति युक्तम् । अतो न व्रतभेदो नाप्यन्तर्भाव इत्यूचिवान् । गौडास्तु । नवमीक्षयपरमिदं वचनम् । 'नवमी सकला यदि ' इति विशिष्योक्तेः । एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः जयन्त्यादिसर्वापवादोयमिति चूडामण्यादयः । वयं तु सत्यं व्रतभेदः । लोकास्तु जन्माष्टमीमेवानुतिष्ठन्ति ॥

इससे जो जिस कर्मका काल उसमेंही उसको करना इत्यादि वाक्यसे प्रथमदिन प्राप्त होय तो रोहिणीमें परदिनमें रोहिणीका योग कुछ प्रयोजक नहीं है, अन्यथा बुधवार आदिभी प्रयोजक हो जायँगे और जयंतीशब्द रात्रिके शेषका कहनेवाला है. कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका कथन है कि, अभिजित् नाम नक्षत्र और जयन्ती नाम रात्रि, विजय नाम मुहूर्त है, इसमें कृष्णचन्द्र प्रगट हुए तिससे अष्टमीके योगवाली रोहिणीमें गौण होनेसे व्रतका भेद नहीं है, और दिनमें वा रात्रिमें रोहिणी हो यह पूर्वोक्त वाक्य कैमुतिकन्यायसे आधीरातमें योगकी प्रशंसाके निमित्त है अथवा पहले दिन अर्द्धरात्रमें योग न होय तो अगले दिन उसकी स्तुतिके निमित्त है. और तो यह कहते हैं कि, यद्यपि दिनमें वा रात्रिमें रोहिणीकी कला न होय तो चन्द्रोदयसे युक्त और रात्रिमें जन्माष्टमीयुक्त व्रतको विशेषकर करना चाहिये, इस वाक्यसे रोहिणीयोग न होय तो अर्द्धरात्र व्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनी लिखी है, तथापि जिस वर्षमें जयन्ती योग नहीं उसमें जयन्ती व्रतका लोप न होजाय इससे अष्टमीमात्रमें भी जयन्तीव्रत करना यही उसका आशय है । यह परपक्षकी निन्दा करके विश्वजित् यज्ञ करै, वह न होसकै तो द्विज वैश्वानरी यज्ञ करै इसके समान रोहिणीयोगके अभावमें उसकी विधिसे उसका करनाही स्पष्ट है, इसी कारण प्रथम जन्माष्टमीको जयन्तीनाम रात्रि लिखी है और जो स्कन्दपुराणमें कहा है कि, उदयमें कुछ भी अष्टमी हो और सम्पूर्ण दिन नवमी हो बुधवार और रोहिणी नक्षत्रका योग हो ऐसी जन्माष्टमी सौ १०० वर्षमें मिले वा न मिले अर्थात् महाउत्तम है. और जो पद्मपुराणमें कहाहै कि, जिन्होंने श्रावणमें रोहिणी बुधवार और सोमवारयुक्त अथवा कोटिकुलोंकी मुक्ति देनेवाली नवमी युक्त जन्माष्टमीका व्रत कियाहै वे प्रेतयोनिको प्राप्त हुए अपने पितरोंको भी प्रेतयोनिसे मुक्त करतेहैं । यह पद्मपुराणके वाक्य दान आदिके विषयमें जानने. कारण कि, इनमें व्रतपद नहीं लिखाहै, यह अनन्तभट्टका कथन है । और हेमाद्रिका तो यह कथनहै कि, यह वचन जयन्तीके विषयमें है, किन्हींका यह कथनहै कि, उदयके समय चन्द्रोदय हो सो ठीक नहीं चन्द्रोदयके होनेपर असन्देहसे सम्पूर्ण नवमीका दिनमें होना अयुक्त है, और इसमें प्रमाण नहीं है, इसकारण प्रथम दिन सप्तमीका वेध होनेपर परदिनमें सूर्योदयमें घड़ीभरभी ग्रहण करनेयोग्यहै, और पद्मपुराणमें सप्तमीविद्धा अष्टमी लिखी है, इससे न व्रतका भेदहै और न जन्माष्टमीमें जयन्तीका अन्तर्भावहै । गौडोंका तो यह कथनहै कि, नवमीके क्षय होजानेपर ऐसा लिखाहै कारण कि, जो सम्पूर्ण नवमी हो यह विशेष लिखाहै, इससे प्रथम दिन जयन्तीके अभावमें ही पूर्वोक्त वाक्यहै, और आचार्यचूडामणि आदिका यह कथन है कि, जयन्ती आदि सम्पूर्ण व्रतोंका निषेधक यह वाक्य है, हमारा तो यह कथन है कि, यह बात सत्य है, कि व्रतभेद है, परन्तु मनुष्य तो जन्माष्टमी व्रतको करते हैं ॥

जयन्तीनिर्णयः ।

न हि–"श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी । यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जय-

न्तीति कीर्तिता ॥ श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद्ध्रुवम् '' इति माधवीये वसिष्ठसंहितोक्तावपि भाद्रे जयन्ती केनापि क्रियते ॥ अतः पूर्वेद्युरेवोपवासः । यद्वा गुणात्फलम् ॥ 'सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममुपनयेत् ' इतिवदित्यन्ये ॥ तन्न । नित्यत्वानुपपत्तेः । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास इत्यन्ये ॥ तन्न । एकवाक्ये उभयनिर्देशे वा शब्दद्वयायोगात् ॥ अतो जयन्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवासद्वयं कार्यमिति ब्रूमः ॥ अत एव हेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम् ॥ भिन्नकालत्वात्सर्वथा तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम् ॥ यदपि पूर्वा परा वाल्पापि रोहिणीयुतैव कार्येति ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव । इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः तद्दूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ नित्यं काम्यमिति तु बहवः । ननु यथा विष्णुशृंखलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयन्त्यादिसर्वसिद्धिः । यथा वैकादशी स्वल्पापि परा । तथा—"कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि " ॥ इत्यादि वचनाद्धौंदयादिवद्योगाधिक्ये फलाधिक्यात् परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तामात्थ न हि तत्र व्रतभेदो द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः । इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदाद्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव ॥ एकदैवत्वाच्छ्रवणद्वादशीवन्न पारणालोपदोषोपि ॥ तेन व्रतद्वयमेव युक्तम् । द्वयोरपि नित्यत्वात् ॥ केचित्तु "त्रेतायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा । रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता ॥ अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ । जन्मना वासुदेवस्य भविता व्रतमुत्तमम् '' ॥ २ ॥ इति हेमाद्रौ वह्निपुराणात् कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव, न जयन्तीव्रतमित्याहुः ॥ तन्न ॥ 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः परमश्रेयोहेतोरस्य कलौ पापिनां दुर्लभत्वमुच्यते ॥ तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति । किं तु धन्या एवेत्यर्थः । अन्यथा–'शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति कलौयुगे ' इत्यादौ विधिकल्पनापत्तेः ॥ अत्र निशीथवेध एव ग्राह्यः । पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकालत्वोक्तेः ॥

और श्रावण वा भाद्रपदमें रोहिणीयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी मिले तो उसका नाम जयन्ती लिखा है, श्रावणमें योग न होय तो भाद्रपदमें निश्चय होगा इस माधवग्रन्थमें वसिष्ठसंहिताकी लिखी हुई भाद्रपदकी जयन्तीको कोई नहीं करता और इससे पूर्वदिनमेंही उपवास करै अथवा ब्रह्मतेजकी कामनावाला सातवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करै, इसके तुल्यगुणसे फल प्राप्त होता है इसीप्रकार यह वाक्य समझना यह दूसरे कहते हैं सो योग्य नहीं. कारण कि, यह व्रत नित्य न होगा यहां गौण और मुख्य चांद्रमासोंसे एकही मास दो महीनेका है, यह दूसरोंका कथन है, सो ठीक नहीं. एकवाक्यतासे दोका बोध होना तो दोबार शब्दोंका पढना अयुक्त था, इससे जयन्तीव्रतको भी नित्य होनेसे दो व्रत करने चाहियें । यह हमारा निश्चय है, इसीसे हेमाद्रि और मदनरत्न आदिमें जयन्ती और जन्माष्टमीका व्रत पृथक् २ लिखा है और पृथक् समयमें होनेसे उसका सर्वथा अन्तर्भाव नहीं होसकता, यह बात सिद्ध हुई । यद्यपि पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणी युक्तही करनी यही ग्रन्थोंका आशय विदित होता है वह भी जयन्तीके विषयमें जानना चाहिये, और अनन्तभट्टने तो इस व्रतको काम्यही लिखा है उसके दूषण हेमाद्रिमें लिखेहैं. और इस व्रतको नित्य और काम्य तो बहुत कहते हैं. कोई शंका करते हैं कि, जैसे विष्णुशृङ्खल योगसे श्रवणद्वादशी वामनजयन्ती

आदि सबकी सिद्धि होती है, और थोडी भी एकादशी पर मानीजातीहै. इसी प्रकार घडी, क्षण, मुहूर्त भी कृष्णाष्टमी तिथि नवमीयुक्त होय तो वही ग्रहण करनी चाहिये। सप्तमी युक्त नहीं इत्यादि वाक्यमें अर्द्धोदय योगकी समान फल अधिक होताहै, इससे प्रथमही जन्माष्टमी युक्तहै यह उनका कहना ठीकहै, परन्तु यहां व्रतका भेद दोनोंको नित्य वा न करनेमें दोष यह श्रवण नहीं किये हैं, यहां तो संज्ञाभेद, धर्मभेद, फलभेद इन तीनों कारणोंसे व्रतका भेद स्पष्टही है और दोनों व्रतोंकी एक देवता होनेसे श्रवणद्वादशीके तुल्य पारणाके लोपका दोष भी नहीं तिससे दोही व्रत युक्तहैं, और दोनोंकोही नित्य प्राप्तिहै. कोई यह कहते हैं कि, इस हेमाद्रिमें वह्निपुराणके, इस वाक्यसे कि, हे राजन् ! त्रेता, द्वापर, सतयुगमें रोहिणीसहित अष्टमीमेंही विद्वानोंने व्रत किया. हे महीपति ! इसके आगे तामस कलियुगके आनेपरभी वासुदेवके जन्मका उत्तम व्रत होगा, इससे कलियुगमें जन्माष्टमीव्रत है, जयन्तीव्रत नहीं है, सो कहना किसी प्रकार ठीक नहीं है. 'तामसे कलौ' यह कहनेसे कलियुगमें परम-कल्याणका हेतु यह व्रत पापियोंको महाकठिनहै, यह बात इससे कही, इससे कलियुगमें तमोगुणी न करैंगे और महात्मा मनुष्य करैंगे यह इसका अर्थ है। अन्यथा शूद्रभी कलियुगमें ब्राह्मणोंके समान आचरण करनेवाले होजांयगे इत्यादिमेंभी विधिकी कल्पना करनी पड़ैगी, इस व्रतमें आधीरातका वेधही ग्रहण करना चाहिये। कारण कि, पूर्वोक्त वाक्योंमें वही मुख्य समय कहा है ॥

"अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि। दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता" ॥ इति माधवीये पुराणान्तरात्। "अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्" इति भविष्योक्तेः। "अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धे दृश्यते यदि। मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्" इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च ॥ तत्राष्टमी द्वेधा रोहिणीरहिता तद्युता च। आद्यापि चतुर्धा पूर्वेद्युरेव निशीथयोगिनी परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्चेति। तत्राद्ययोरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः। "जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्" इति भृगूक्तेश्च ॥ अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोपि सिद्धः। अन्त्ययोः परैव। प्रातः सङ्कल्पकालव्याप्तेराधिक्यात्। 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी' इति ब्रह्मवैवर्त्ताच्च। एवमंशतः समव्याप्तावपि ॥ विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः। रोहिणीयुतापि चतुर्धा—पूर्वेद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्च। अत्राप्याद्ययोरसंदेहः 'कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी' इति पाद्मोक्तेः ॥ 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इति गारुडाच्च। "सप्तमीसहिताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि। भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ" इति वह्निपुराणाच्च ॥ द्वितीये त्वसन्देह एव। तृतीयपक्षे परैव। "वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी। सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी" इति ब्रह्मवैवर्तात्। चतुर्थ्यापि त्रेधा—'पूर्वेद्युर्निशीथेष्टमी परेह्नि रोहिणी परेह्न्यष्टमी पूर्वाह्नि रोहिणी ॥ उभयेद्युरुभयस्य निशीथसम्बन्धो वा इति ॥ आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात् परैवेति माधवः ॥ तदुक्तं तेनैव—"यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा। अन्तर्भूता जयन्त्यां स्याद्दक्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने। मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमीभवेत् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता न

हि" ॥ २ ॥ इति पाद्मोक्तेश्च ॥ हेमाद्रिस्त्वाह–अष्टम्याः प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापित्वात् पूर्वैव । पाद्मं तु पूर्वेह्नि निशीथेऽष्टम्यभावे ज्ञेयम् । अन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खदन्धणामात्रमिति ॥

माधवीयमें किसी पुराणका यह वाक्य भी लिखा है कि, अष्टमी वा शिवरात्रि आधीरात्रिसे प्रथम घड़ीभर ही दीखै तो पूर्वविद्धा कही है. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधीरातके समय रोहिणी होय तो उसमें कृष्णका पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होतेहैं. और वसिष्ठसंहितामें लिखा है कि, यदि रोहिणीयुक्त अष्टमी आधीरातको हो तो वही मुख्यकाल कहा है. कारण कि, हरि उसमें स्वयं प्रगट हुए हैं तिसमें अष्टमी दो प्रकारकी है, रोहिणीयुक्त और रोहिणीसे रहित, पहली चारप्रकारकी है, १ पहलेदिन जो आधी रातमें हो, २ अगले दिन हो, ३ वा दोनों दिन आधीरात्रमें हो, ४ दोनों दिन अर्धरात्रमें न हो, इन चारोंमें प्रथम दोनोंमें कर्मकालव्यापिनी होनेसे सन्देह नहीं. कारण कि, भृगुने लिखा है कि, जन्माष्टमी,रोहिणी, शिवरात्रि यह पूर्वतिथिसे विद्धाही करनी चाहिये, तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी इस वाक्यसे रोहिणीका व्रतही सिद्ध है । पिछली दोनोंमें पहलीही ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि, उसमें प्रातःकाल संकल्पकालव्यापिनी है, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, सप्तमीसंयुक्त अष्टमी प्रयत्नसे त्यागदेनी इसप्रकार अंशसे समानव्यापिनी होय तो कुछ डर नहीं न्यूनाधिक व्यापिनी होय तो अधिक व्याप्तिसे निर्णय करना चाहिये । रोहिणीसे युक्तभी चार प्रकारकी हैं. १ पहले दिन अर्ध रात्रिमें रोहिणीसे युक्त, २ अगले दिन, ३ वा दोनों दिन आधीरातमें रोहिणीसे युक्त, ४ वा दोनों दिन रोहिणीसे संयुक्त, इनमें भी पहली दोमें सन्देह नहीं कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, सप्तमी विद्धाभी अष्टमी रोहिणीयुक्त करनी चाहिये गरुडपुराणमें लिखाहै कि, पूर्वविद्धा जन्माष्टमीमें व्रत करै वह्निपुराणमें लिखाहै कि, सप्तमीयुक्त अष्टमीको आधीरातमें रोहिणी होय तो वह अष्टमी तवतक पवित्रहै जबतक सूर्य चन्द्रमाहैं, दूसरे व्रतमें कुछ सन्देह नहीं । तीसरे पक्षमें अगली लेनी कारण कि, परदिनमें यत्नसे सप्तमीयुक्त अष्टमीको त्यागदे. ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि, रोहिणीयुक्त भी सप्तमीसे युक्त अष्टमीको न करना चाहिये, चौथी भी तीन प्रकारकी है १ पहले दिनसे आर्धारातमें अष्टमी परदिनमें रोहिणी, २ अष्टमी परदिनमें पूर्वदिन रोहिणी, ३ दोनों दिन अष्टमी और रोहिणी दोनों आधी रातमें नहों , पहलीमें परदिनमें जयन्तीयोग होनेसे अगली होती है यह माधवका कथनहै माधवने कहाहै कि, जिस वर्षमें जयन्तीयोग हो तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी स्तुतिसे जाननी चाहिये । पद्मपुराणमें लिखाहै कि, यदि पूर्वविद्धा अष्टमी नवमीके उदयकालमें मुहूर्तमात्रभी होय तो वह सम्पूर्ण अष्टमी होतीहै. घड़ी, कला, मुहूर्त्त मात्रभी, कृष्णाष्टमी नवमीसे युक्त स्वीकार करनी सप्तमीयुक्त न लेनी । कोई तो यह कहतेहैं कि, ऐसा पद्मपुराणमें लिखाहै हेमाद्रिमें अष्टमीकी प्रधानतासे और उसके पहले दिन कर्मकालव्यापिनी होनेसे पहलीही ग्रहण करनी, पद्मपुराणका कथन तो उस काल मानना जो प्रथम दिन आधीरातमें अष्टमी न हो, अन्तर्भावका[१] कहना तो मूर्खोंका कामही है ॥

अन्ये तु पूर्वविद्धाष्टमीवाक्येन जन्माष्टम्यां सूर्योदये सप्तमीवेधनिषेधात् । कला घटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'कार्या विद्धापि सप्तम्या' इति जयन्तीपरम् । 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इत्येकवाक्यत्वात् । तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येव । यदा तु केवलाष्टमी शुद्धाधिका तदा त्यागहेतोः सप्तमीवेधस्या-

भावात् पूर्ववं । यदि वा विद्धन्यूना तदा परदिने ग्राह्यतिथेरभावात् पूर्ववं । एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि सप्तमीवेधपराणि । "जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि । विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत्" इति व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः । दशमीवेधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः ॥ ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः । 'मुहूर्तमपि संयुता' इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः । तिथ्यन्तपारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः । न च जयन्तीपराणि शुद्धाधिकापराणि वा तानि । भृग्वाद्यैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि तिथ्यन्ते पारणोक्तेः । तेन 'कलाकाष्ठा' इति वाक्यान्तरवशाज्जयन्तीपरमेतत् । तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः । "दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति । पूर्वोक्तवाक्यै रोहिणीयोगाभावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वापरा वाल्पापि रोहिणीयुता ग्राह्या । माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्टगौडमैथिलग्रन्थादिष्वप्येवमिति ॥ युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यम् । द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम् ॥ अन्त्ययोः परैव । "सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम । प्राजापत्यं द्वितीयेह्नि मुहूर्तार्द्धं भवेद्यदि ॥ तदाष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा" इति स्कान्दात् । "मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत् । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" इति पाद्माच्चेति दिक् ॥ निम्बादित्योपासकास्तु जन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वाह्नि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा त्रिद्विमुहूर्ता परैव तिथिर्ग्राह्या । "उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे । निम्बार्को भगवान्येषां वांछितार्थफलप्रदः" इति ॥ हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः ॥ तन्न । "यदि द्वितीये दिवसे तु ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्यान्न तदोपवासः । पूर्वं प्रकुर्याद्दिवसे द्वितीये दिनेशभक्तोथ तदा व्रताद्यम्" इति मात्स्यवाक्येन तत्रैव उपसंहारात्सर्वार्थत्वेन मानाभावात् ॥ ऋक्षतिथ्योर्हस्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचारान्नेति चेत् । न । तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं क्वापि निम्बार्कोपासनाभावाच्चेति संक्षेपः ॥

और तो यह कहतेहैं कि, पूर्वविद्धा अष्टमी इस वाक्यमें जन्माष्टमीको सूर्योदयके समय सप्तमीवेधका निषेध कहाहै कला घडी मात्रभी उदयकालकी अष्टमी लेनी और सप्तमीविद्धा भी जन्माष्टमी करनी यह वाक्य जयन्तीके विषयमें जानने. कारण कि, इस वाक्यके साथ इसकी एकवाक्यता है कि, पूर्वविद्धा जयन्तीमें व्रत करै तिससे दोनोंको नित्य होनेसे और कालभेद होनेसे दोही व्रत होंगे और जब केवल अष्टमी शुद्ध हो वा अधिक होय तो सब त्यागके कारण वेधके अभावसे प्रथमही करनी और जो विद्धासे न्यून होय तो अगलीही ग्रहण करनी और अष्टमी तिथि न होय तो अगलीही करनी. इसीप्रकार सम्पूर्ण उदयकालके वाक्य सप्तमी वेधके विषयमें जानने और जो यह कहतेहैं कि, सप्तमीसे विद्धा और रोहिणीसे युक्त और सम्पूर्ण अष्टमीको त्यागकर शुद्ध नवमीको व्रत करै, इस व्यासके वाक्यसे विद्धा अष्टमीके क्षयमें दशमीसे विद्धा एकादशीके समान शुद्ध नवमीको व्रतका कथनहै । उनका यह कथन अमूलक होनेसे त्यागने योग्यहै कारण कि, मुहूर्त्तमात्रभी संयुक्त होय इस वाक्यसे रोहिणीयोगमेंही त्याग लिखाहै और तिथिके अन्तमें जो पारणाके वाक्य हैं वे भी चरितार्थ न होसकैं. यदि कोई कहै कि, वह वाक्य जयन्तीके विषयमें हैं वा अधिक अष्टमीके विषयमें हैं, सो ठीक नहीं. कारण कि, भृगु आदिने पूर्वविद्धा अष्टमीमें भी तिथिके अन्तमें पारणा लिखी है तिससे कला काष्ठा इस वाक्यान्तरके वशसे जयन्तीके विषयमेंही यह

वाक्य जानने; तत्व तो यहहै कि, अष्टमीको कर्मकाल व्यापिनी होनेसे दिन वा रात्रिमें जो रोहिणीके कलामात्रमी न होनेसे रातमें स्थित अष्टमीको करै इस पिछले वाक्यमें रोहिणीयोगके अभावमें भी जन्माष्टमीको ग्रहण करना चाहिये, इस वाक्यसे कर्मकालव्यापिनीको छोड़कर पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणीयुक्तही जयन्तीमें ग्रहण करनी चाहिये । माधव, मदनरत्न, निर्णयामृत, अनन्तभट्ट, गौड, मैथिलग्रन्थोंमें भी इसी प्रकारसे लिखाहै, यथार्थ तो यहहै कि, दोनोंको नित्य होनेसे दोनोंही व्रत करने यह हमारा कथन है, अन्य दोनोंमें परलीही करनी चाहिये, स्कंद और पद्मपुराणके ये वाक्य हैं कि, सप्तमीसंयुक्त अष्टमीको रोहिणीनक्षत्र होकर यदि दूसरे दिन आधी मुहूर्त्त भी होय तो अष्टप्रहरतक पुण्यकाल व्यास आदिकोंने लिखाहै मुहूर्त्तमात्रसे युक्तभी अष्टमी संपूर्ण होती है और अनेक कुलको मुक्ति देनेवाली नवमी युक्त होय तो क्या कहना है, ऐसा पद्मपुराणमें लिखाहै । निम्बादित्योपासकोंका तो यह कथनहै कि, जन्माष्टमी रामनवमी शिवरात्रि आदिमें पहले दिन कर्मकालमें विद्यमान तिथिको छोड़कर दो वा तीन मुहूर्त्ततक पहले दिनकीही लेनी कारण कि, हेमाद्रिमें कहे हुए मत्स्यपुराणोक्त सप्तमीव्रतमें भविष्यपुराणका यह कथनहै कि, निम्बार्क भगवान् जिनके मनोरथ देनेवालेहैं तिनके कुलमें व्रतमें उदयव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । यह निम्बार्कोंका कथन उचित नहीं. कारण कि हेमाद्रिग्रन्थमेंही मत्स्यपुराणके इस कथनसेही यह उपसंहार कियाहै कि, यदि दूसरे दिन नक्षत्र तिथिका योग होय तो उस व्रतको न करै, किन्तु निम्बार्कका भक्त प्रथम उत्तम दिनमें व्रत आदि करै सर्वार्थ होनेमें कोई प्रमाण नहीं नक्षत्र और तिथि हस्त और सप्तमी लेनी, अन्यथा ऋषिपंचमी आदिमें भी यही माना जायगा. यदि कोई कहै कि, शिष्टाचारसे नहीं माना-जायगा सो उचित नहीं कारण कि, न्याय और वाक्यके विरोधमें शिष्टाचार त्यागने योग्यहै और आज-कल कहीं भी निम्बार्ककी उपासना नहीं होती है । यह संक्षेपसे कहाहै ॥

जन्माष्टमीपारणम् ।

पारणं तु-"तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम्" इति ब्रह्मवैवर्तात् । "तिथ्यर्क्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेऽथवा कुर्यात्पारणं त्वपरेहनि" । इति हेमाद्रौ वचनाच्चार्धरात्रेप्युभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति मुख्यः पक्षः । 'सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते' इति ब्रह्मवैवर्तं त्वन्यविषयम् । दिने मुख्यकाललाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम् । गौडास्तु-"न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात् । तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम्" इति ब्रह्माण्डपुराणाद्रात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यमित्याहुः ॥ 'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः' ॥ तथा-'मध्यमप्रहरे मात्रे विज्ञेया तु महानिशा' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम् ॥ कामधेनौ गर्गस्तु-'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्' इत्याह । वृद्धशातातपस्तु-'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः' इत्याह ॥ वेदपाठपरमेतदित्यन्ये । 'महानिशायामन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम् । 'अपरेहनि' इति पारणोत्तरदिनपरत्वात् । उभयान्तापेक्षणादित्याहुः ॥ तत्त्वं तु महानिशातोर्वागन्यतरान्तलाभे महानिशानिषेधः । महानिशायामेव लाभे तत्रैव पारणमिति ॥ दिवोदासस्तु-" रजनीप्रहरं यावत्प्रवृत्तिः कर्मणो मता । पारणं तावदेवेष्टं प्रमादान्न भवेद्यदि" इति स्कान्दादूर्ध्वं निषेधमाह ॥ तन्निर्मूलम् । अशक्तौ तु वह्निपुराणे-

'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम्' इति ॥ गारुडे विष्णुधर्मे च–"जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । "तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥" अशक्तौ तु–"तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामद्वयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा" ॥ स एवोत्सवान्त इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः ॥

पारणा तो इस ब्रह्मवैवर्तके कथनसे आठगुने पुण्यको तिथि और चौगुने पुण्यको नक्षत्र नष्ट करताहै इससे तिथि और नक्षत्र दोनोंके अन्तमें प्रयत्नसे पारणा करनी चाहिये और हेमाद्रिमें भी लिखाहै कि, तिथि और नक्षत्रकी जब हानि हो वा नक्षत्रका अन्त होय तो पहले दिन आधी रातमें पारणा करै, इससे आधी रातके समय दोनोंके अन्तमें वा एकके अन्तमें पारणा करै यही मुख्य पक्षहै । सब व्रतोंमें दिनमेंही पारणा श्रेष्ठहै यह ब्रह्मवैवर्तका कथन तो जन्माष्टमी छोडकर अन्य व्रतोंके विषयमें है, अथवा दिनमें मुख्य काल न मिले तो नक्षत्र वा तिथि इनमें एकके अन्तमें पारणा करनी, गौडोंका तो यह कथनहै कि, रोहिणीव्रतको छोडकर रात्रिमें पारणा न करै, रोहिणीव्रतमें तो महानिशाको त्यागकर रात्रिमें भी पारणा करै, इस ब्रह्माण्डपुराणसे डेढ प्रहरके मध्यमें रात्रिमें करै, मध्यके दो प्रहरोंके मध्यको महानिशा वर्णन करतेहैं किसी और स्मृतिमें यह लिखा है कि, बीचका एक प्रहर महानिशा जानना । कल्पतरु और मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखाहै कामधेनु ग्रन्थमें गर्गका यह कथनहै कि, मध्यके दो प्रहर महानिशा काहतेहैं वृद्धशातातपका तो यह कथनहै कि, रात्रिके मध्य दो प्रहरोंकी पिछली और आदिकी दो घडी महानिशा कहतीहैं कोई इसे वेदपाठके विषयमें लिखतेहैं, महानिशामें नक्षत्र और तिथि इनमें एकके उपरान्तमें तीसरे दिन पारणा करै, कारण कि, अपरेहनि, इसमें अपरशब्द उत्तरदिनका बोधकहै और जयन्तीमें दोनोंकी अपेक्षा प्राप्तहै, तत्व तो यह है कि, यदि महानिशासे प्रथम दोनोंसे एकका अन्त न मिले तब महानिशाका निषेध जानना और महानिशामें अन्त मिलजाय तो उसीमें पारणा करलेनी, यह सब जयन्तीव्रतमें है. कारण कि, उसमें नक्षत्र और तिथि इन दोनोंके योगमें व्रत होताहै, जन्माष्टमी व्रतमें तो तिथिके उपरान्तमें पारणा करै, दिवोदास तो कहतेहैं रात जितने प्रहर हो तबतक कर्मकी प्रवृत्ति होती है जो प्रसाद न हो तो तबतक पारणा करलेनी यह स्कन्दसे ऊर्ध्व निषेध कहाहै सो निर्मूल है अशक्तिमें वह्निपुराणमें यह कहाहै कि, हे भारत नक्षत्र वा तिथिके अन्तमें पारणा श्रेष्ठ है, गरुड और विष्णुधर्ममें यह लिखाहै कि, पूर्वविद्धा जयन्तीमें व्रत करै, और व्रतवालोंको तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करनी चाहिये, असमर्थ होय तो तिथि वा नक्षत्रके अन्तमें पारणा जहां लिखीहै वहां साढेतीन प्रहरतक तिथि होय तो पारणा करले, कारण कि, प्रातःकालही उत्सवका अन्तहै. कालादर्शमें भी यही लिखाहै कि, व्रती तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करै । इति संक्षेपः ॥

तत्र विशेषः ।

अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"ततोष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले । सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ॥ तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ॥ वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिताथ वा । सर्वलक्षणसंपूर्णा पर्यङ्के च पटावृते ॥ देवकीं तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे । प्रसुप्तां च प्रसूतां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ॥ मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे ॥ तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतवरकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवोयमदितिश्चैव देवकी ॥ शेषो वै बलभद्रोऽयं यशोदा

क्षितिरन्वभूत् । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ॥ गौर्धेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः । लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ॥ इत्येवमादि यत्किंचिच्छक्यते चरितं मम । लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः ॥ मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः । गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैः । शृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरकृतकरैः किङ्करैः सेव्यमाना । पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कान्तरूपा ॥ पादौ संवाहयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै इति ॥ अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा । नाडीवर्धापनं षष्ठी नामादेः करणं मम ॥ ततो मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः । शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ॥ जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् । क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम । ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते ॥ नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् । यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा॥ तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे" ॥ इति देवक्यर्घः ॥ "ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा यामे यामे प्रपूजयेत् । प्रभाते ब्राह्मणान् शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः ॥ ॐ नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत्" ॥ २ ॥ इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे–"प्रतिमासं च ते पूजामष्टम्यां यः करिष्यति । मम चैवाखिलान् कामान् स सम्प्राप्स्यत्यसंशयम् ॥" तथा–"अनेन विधिना यस्तु प्रतिमासं नरेश्वर । करोति वत्सरं पूर्णं यावदागमनं हरेः ॥ दद्याच्छय्यां सुसंपूर्णां गोभी रत्नैरलंकृताम् ॥ इति जन्माष्टमीव्रतम् ॥

अष्टमीमें यह विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, फिर अष्टमीको नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके श्रेष्ठस्थानमें देवकीका सूतिकागृह कल्पित करै, उसके मध्यमें प्रतिमाको स्थापन करै वह प्रतिमा आठ प्रकारकी लिखी है, कि, सुवर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, मट्टी, वृक्ष और मणि इनकी अथवा रंगोंसे लिखी गई सब लक्षणोंसे पूर्ण उस प्रतिमाको कपडोंसे ढके हुए पलंगपर रक्खे और एक स्थानमें शय्यापर ऐसी देवकीको स्थापन करै, जिसके स्तनोंसे दूध टपकता हो और जिसके प्रसव हुआहो और स्तन पीते और सोते हुए मुझ बालकको उसी शय्यापर पौढावे और हे पार्थ प्रगट श्रेष्ठ कन्यावाली यशोदाको भी उसी सूतिकागृहके किसी देशमें कल्पना करै, यह वसुदेव कश्यपहैं और यह देवकी अदितिहैं यह बलदेवजी शेषहैं, यशोदा क्षितिहै नन्द दक्षप्रजापतिहैं, गर्ग ब्रह्माहैं, इनको लिखै और बछडे गौ आदि हाथी और शस्त्र हाथमें लिये दानवोंको लिखै, और यमुनाके कुण्डमें कालियकी मूर्ति बनावे इत्यादि मेरे चरित्रको जितना लिखसके उतना लिखकर भक्तिमें तत्पर हो मनुष्य प्रयत्नसे पूजा करै, और हे कौन्तेय इस मन्त्रसे मनुष्य देवकीकी पूजा करैं, और जो गाते हुए किन्नरादिसे निरन्तर युक्त प्रवृत्त और वेणु, वीणा बजाते हुए और शृङ्गार शीशा घट हाथमें लिये किन्नरोंसे सेवित और भलीप्रकार बिछे हुए पलंगपर भलीप्रकार स्थिर सुन्दर पुत्र और रूपवाली और देवमाता देवकी जयवाली हो, देवकीके चरणोंके समीप चरणोंको दाबतीहुई कमलपर बैठीहुई लक्ष्मीकी भी इस प्रकार पूजा करै, कि, लक्ष्मीदेवीको प्रणाम हैं. पुष्प, कुशा, चन्दनसहित जलको शंखमें भरकर और गोडोंसे पृथ्वीको छू करके चन्द्रमाको अर्घ दे, गुड और घीसे आधीरातके समय वसोर्धारा दे, और मेरा नाल छेदन षष्ठी नामकरण को करै, फिर इस मन्त्रसे चन्द्रमाको सावधानतापूर्वक अर्घ दे कि, हे क्षीरसागरसे वा अत्रिके नेत्रसे प्रादुर्भूत हुए

चन्द्रमा रोहिणीसहित मेरे इस अर्घ्यको आप स्वीकार करो. हे प्रकाश और ज्योतियोंके पति ! आपको प्रणाम है, और हे रोहिणीके पति ! मेरे इस अर्घ्यको ग्रहण करो, फिर इस मन्त्रसे देवकीको अर्घ्य दे कि, जैसे कृष्णरूप पुत्र प्राप्त होकर तुमको आनन्द हुआ है वही सुख मुझे दो, और श्रेष्ठ पुत्र दिखाओ, फिर पुष्पांजलि देकर प्रहर २ भरमें पूजन करै, फिर शक्तिसे भक्तिमान् मनुष्य प्रातःकाल ब्राह्मणोंको भोजन करावै, गो ब्राह्मणके हितकारी वासुदेवको नमस्कारहै, मेरे शांति हो और कल्याण हो यह कहकर मेरा विसर्जन करै, यह व्रत प्रतिमास कृष्णपक्षकी अष्टमीकोभी मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जो मनुष्य प्रतिमहीनेमें अष्टमीको मेरी पूजा करताहै वह सब कामनाको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं, हे नरोंके ईश्वर ! जो मनुष्य भगवान्के जन्मदिनतक सम्पूर्ण वर्षतक पूजा करताहै वह गौ और रत्नोंसे भूषित पूरी शय्याका दान करताहै वह सुखी होताहै । इति जन्माष्टमीव्रतम् ॥

कुशग्रहणम् ।

भाद्रामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीते च–"मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनःपुनः" ॥ नभाः श्रावणः । तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते । मदनरत्ने तु–' मासे नभस्येऽमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ' इति मरीचिवाक्यमुक्तम् ॥ नभस्यो भाद्रपदः । तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव दर्श इत्यन्ये ॥

भाद्रपदकी अमावस्याको कुशाओंका ग्रहण हेमाद्रिमें हारीतके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणके महीनेकी अमावस्याको कुशाका संग्रह लिखा है श्रेष्ठ कुशा वारंवार कर्मोंमें ग्रहण करने योग्य हैं, इस वाक्यमें नभाः पदसे श्रावण अमान्त मासका ग्रहण किया है तिससे जन्माष्टमीके उपरान्तकी अमावस्या ग्रहण करनी. मदनरत्नमें तो मरीचिका यह वाक्य लिखा है कि, नभस्य (भाद्रपद) महीनेकी अमावस्याको कुशाओंका संचय लिखा है तिससे अमान्तमास होनेसे महालयके अन्तर्गत अमावस्या प्राप्त होती है कोई तो यह लिखते हैं कि, गौण और मुख्य चंद्रमाससे एकही अमावस्या ग्रहण करनी चाहिये ॥

हरितालिकाव्रतम् ।

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम् । तत्र परा ग्राह्या–" मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्" इति माधवोक्तेः । चतुर्थीयुक्तायां फलाधिक्यं माधवीये आपस्तम्बः–" चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा । अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी" । द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स एव–" द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता । सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः " इति ॥ "आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका । चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ॥ तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता । भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका " ॥ २ ॥ इति दिवोदासोदाहृतवचनाच्च ॥

भाद्रपदशुक्ला ३ को हरतालिका व्रत होता है, उसमें अगली तृतीया ग्रहण करनी. कारण कि, माधवने कहा है कि, मुहूर्तमात्र होनेपर भी गौरीका व्रत परदिनमें करना चाहिये । माधवीयमें आपस्तम्बने चतुर्थीयुक्तका विशेष फल कहा है कि, चतुर्थीसहित तीज अधिक फल देती है यह स्त्रियोंको सौभाग्य करने और पुत्र पौत्रकी बढानेवाली है और जो मोहित होकर द्वितीयासे संयुक्त करती है वह वैधव्यको

प्राप्त होती है ऐसा विद्वान् कहते हैं। और गणचतुर्थी, योगकी प्रशंसासे शुद्ध और अधिकमें भी किसी प्रकार होती है, भाद्रकृष्ण तीजको, मधुश्रावणिका (कजली तीज) और शुक्लको हरितालिका कहते हैं, स्त्रियोंको उसे करना चाहिये, जो दिन वा रात्रिमें चतुर्थीसंयुक्त होय, श्रावणशुक्ल तृतीयाको मधुश्रावणिका और भाद्रपदकृष्णको कजली, और शुक्लको हरितालिका वर्णन करते हैं यह दिवोदासने कहा है ॥

भाद्रपदशुक्लवरदचतुर्थी ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । ' प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ' इति हेमाद्रौ भविष्ये । तत्रैव पूजोक्तेः ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् । परदिने एवांशेन साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या । तथा च बृहस्पतिः— "चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि " इति ॥ " मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥ " इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च ॥

भाद्रपदशुक्ल चतुर्थीको सिद्धिविनायकका व्रत होता है, वह मध्याह्नव्यापिनी करनी चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे मध्याह्नमें ही पूजा लिखी है कि, हे राजन् ! प्रातःकाल श्वेततिलोंसे स्नान करके मध्याह्नमें पूजन करै, मदनरत्नमें भी यही लिखा है । यदि परदिनमें अंशसे वा सम्पूर्णतासे, मध्याह्नव्यापिनी न होय तो सब प्रकार सब पक्षोंमें पहिलीही करनी, यही बृहस्पतिने लिखा है कि, मध्याह्नव्यापिनी होय तो तृतीयाविद्धा गणेशचतुर्थी मध्याह्नमें होय तो तृतीयासे विद्धा उत्तम होती है ऐसा माधवीयमें और स्मृतियोंका वचन है परे होय तो पंचमीसे विद्धा उत्तम होती है ॥

तत्र गणेशरूपं स्कान्दे—"एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् " इति इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । " भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥ " इति निर्णयामृते वाराहोक्तेः ॥ अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् ॥ तथा चापरार्के मार्कण्डेयः—" सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा " इति ॥ चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः ॥ प्रधानक्रियान्वयलाभात् । तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः । गौडा अप्येवमाहुः ॥ पराशरोपि—" कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ॥ तद्दोषशान्तये सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत् " इति श्लोकस्तु विष्णुपुराणे—सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः " इति ॥

वहां गणेशजीका रूप इस स्कंदपुराणके वाक्यसे इसप्रकार लिखा है कि, एकदांत, शूपवत् कान, सर्पोंका यज्ञोपवीत धारे, पाश, अंकुशधारी सिद्धिविनायक गणेशका ध्यान करै, सूर्य और मंगलवार इस व्रतमें अत्यन्त श्रेष्ठ कहे गये हैं कारण कि, निर्णयामृतमें वाराहपुराणका कथन है कि, भाद्रपद शुक्लचतुर्थी मंगल वा रविवारसे युक्त होय तो बडी श्रेष्ठ है, उसमें विघ्नेश्वरका पूजन करके मनुष्य मनोवांछित फलको प्राप्त होता है, इसमें चन्द्रमाका दर्शन करना निषिद्ध है, यही अपरार्कमें मार्कण्डेयका कथन है कि, सिंहके सूर्यके शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, तिससे उस दिन चन्द्रमाका

देखना अच्छा नहीं, प्रधान क्रियामें अन्वयसे चतुर्थीको न देखे ऐसे अन्वय करना इससे चतुर्थीमें उदय हुए चन्द्रमाका पंचमीमें देखना दोष नहीं करता. गौडोंने भी इसी प्रकार कहा है, पाराशरने भी कहा है कि, कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, इससे उस दिन चन्द्रमाको न देखना यदि देखे तो उसके दोषशांतिके निमित्त (सिंहः प्रसेनमवधीत्) इस श्लोकको जपै, कि सिंहने प्रसेनको मारा, और सिंहको जांबवानने मारा, हे सुकुमार बालक तू मत रोवे, तेरीही यह स्यमंतक मणि है यह विष्णुपुराणमें लिखा है ॥

भाद्रपदशुक्लऋषिपञ्चमीव्रतनिर्णयः।

भाद्रपदशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः ' इति माधवीये हारीतोक्तेः ॥ दिनद्वये सत्त्वे हेमाद्रिमते परा । 'सिता परयुता स्यात् पञ्चमी ' इति दीपिकोक्तेः ॥ माधवमते पूर्वा । ' सर्वत्र पञ्चमी पूर्वा ' इत्युक्तेः ॥ युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु युक्तः ॥ ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः॥ अत्र ऋषीन् प्रतिमासु पूजयित्वाऽकृष्टभूमिजशाकेन वर्तनम् । एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु प्रतिमासु सम्पूज्य परेह्नि तत्तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्त ब्राह्मणान् भोजयेदिति निर्णयामृते ॥

भाद्रपदशुक्ल ५ ऋषिपंचमी होती है, वह मध्याह्नव्यापिनी लेनी. कारण कि, माधवीयमें हारीतका कथन है कि, सम्पूर्ण पूजा और व्रतोंमें तिथि मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनों दिनमें मध्याह्नव्यापिनी होय तो हेमाद्रिके मतसे अगली लेनी कारण कि, दीपिकाका वाक्य है कि, शुक्लपक्षकी पंचमी परतिथिसे संयुक्त होतीहै माधवके मतमें पहली स्वीकार कीहै जिसमें दो ऋषियोंके वाक्य मिलें उससे निर्णय करना युक्तहै, दिवोदास तो इसप्रकार कहतेहैं कि, षष्ठीसे युक्त ऋषिपंचमी लेनी, इससे प्रतिमाओंमें ऋषियोंका पूजन करके बिना जोते उत्पन्न हुए शाक (परवाड आदि) का भक्षण करे, इस प्रकार ७ वर्षतक करके ७ घडोंपर ७ प्रतिमाओंका अर्चन करके दूसरे दिनमें तिस तिस ऋषिके मंत्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर ७ ब्राह्मणोंको जिमावै यह निर्णयामृतमें लिखाहै ।

भाद्रपदशुक्लसूर्यषष्ठीनिर्णयः।

भाद्रपदशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी सा सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः ॥ " शुक्लभाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम् । प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम् " इति वचनात् ॥ कल्पतरौ भविष्ये–"येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ । योऽस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥ " गाङ्गेयः स्वामिकार्तिकेयः ॥

भाद्रपदशुक्ल ६ सूर्यषष्ठी होती है, वह सप्तमीसे युक्त लेनी. कारण कि, दिवोदासने यह लिखाहै कि, भाद्रपदशुक्ल षष्ठीको स्नान और सूर्यका पूजनकर पंचगव्यके पीनेसे अश्वमेधसे भी अधिक फल प्राप्त होताहै, कल्पतरुमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे भरतश्रेष्ठ ! इस भादौं महीनेकी छठमें जो मनुष्य दक्षिण देशनिवासी गंगापुत्र कार्त्तिकेयका दर्शन करता है वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥

भाद्रपदशुक्लमुक्ताभरणसप्तमीनिर्णयः।

भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम् । तत्र सप्तमी पूर्वायुता ग्राह्या । 'षण्मुन्योः ' इति युग्मवाक्यात् ॥

भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको मुक्ताभरणव्रत होताहै उसमें 'षण्मुन्योरिति' इसवाक्यसे पूर्वयुत सप्तमी लेनी ॥

भाद्रपदशुक्लदूर्वाष्टमीनिर्णयः ।

भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी सा पूर्वा ग्राह्या–"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ॥ पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः ॥

भाद्रपद शुक्ला ८ अष्टमीको दूर्वाअष्टमी होती है वह पहली ग्रहण करनी. कारण कि, हेमाद्रिमें बृहद्यमने कहाहै कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वा, होली, शिवरात्रि, बलिका दिन यह सब पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये ॥

"शुक्लाष्टमीतिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत् । दूर्वाऽष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते" इति पुराणसमुच्चयाच्च ॥ यत्तु–"मुहूर्ते रौहिणेऽष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा परा । दूर्वाष्टमी तु सा कार्या जेष्ठां मूलं च वर्जयेत्" इति तत्रैव परा कार्येत्युक्तम् । तत्पूर्वदिने ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् ॥ 'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठामूलर्क्षसंयुता ॥' तथा–"ऐंद्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हंत्यपत्यानि नान्यथा । भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत्" इति तत्रैव तन्निषेधात् ॥ इदमगस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम् । "शुक्लभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी । सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन ॥ सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनिसत्तमे" इति मदनरत्ने स्कांदोक्तेः । "अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदमृतोद्भवाम् । वैधव्यं पुत्रशोकं च दश वर्षाणि पंच च" इति तत्रैव दोषोक्तेश्च । भाद्रपदशुक्लाष्टम्यामगस्त्योदये भाविनि सति पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव कुर्यादिति हेमाद्रिः । दीपिकायामप्येवम् ॥ इदं च व्रतं स्त्रीणां नित्यम् । "या न पूजयते दूर्वां मोहादिह यथाविधि । त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ॥ तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः" इति पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् । "कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत्" इति ।

पुराणसमुच्चयमें लिखाहै कि, भाद्रपदमासकी शुक्लाष्टमी तिथि दूर्वाष्टमीहै वह पिछली नहीं करनी चाहिये जो किसीने यह लिखाहै कि, प्रातःकालके मुहूर्त्तमें अष्टमीको पूर्वा हो वा परा हो वह दूर्वाष्टमी करनी, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रको त्यागदेना चाहिये । और वहांही जो यह लिखाहै कि, दूसरी करनी यह कथन पहले दिन यदि ज्येष्ठा आदिका योग होय तो जानना चाहिये. कारण कि, वहांही इस वाक्यसे यह भी लिखाहै कि, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रसे युक्त सदा त्याग देनी तैसेही वहांही यह निषेध है कि, ज्येष्ठानक्षत्रमें दूर्वापूजन करनेसे सन्तानको और मूलमें पूजनेसे पतिकी अवस्थाको नष्ट करतीहै, तिससे मूलको वर्जदे, इस दूर्वाष्टमीको अगस्त्यके उदयमें और कन्याके सूर्यमें न करना कारण कि, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका यह कथनहै कि, भाद्रपद मासमें शुक्लाष्टमीका दूर्वा नामहै, वह सिंहके सूर्यमें करनी चाहिये, कन्याके सूर्यमें किसीप्रकार न करनी चाहिये. कारण कि, सिंहके सूर्यमें और अगस्त्यमुनिके उदय न होनेपर वह श्रेष्ठ होती है, और वहांही यह दोष लिखाहै कि, अगस्त्यके उदय होनेपर जो स्त्री दूर्वाका पूजन करतीहै वह पन्द्रह वर्षतक वैधव्य और पुत्रके शोकको प्राप्त होतीहै, हेमाद्रिने तो यह लिखाहै कि, जो भाद्रपद शुक्लाष्टमीको अगस्त्योदय होनेवाला होय तो कृष्णाष्टमीको दूर्वाष्टमी पूजन करै दीपिकामें भी

इसी प्रकार लिखाहै, यह व्रत स्त्रियोंको नित्य करना चाहिये कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखाहै कि, जो स्त्री जगत्में विधिसे दूर्वाका पूजन अज्ञानतासे नहीं करती वह तीन जन्मतक निःसन्देह विधवा होती है, इससे स्त्रीजनोंको दूर्वाका प्रतिवर्ष पूजन करना चाहिये, जब ज्येष्ठा आदिके विना अष्टमी मिले तब वहांही यह लिखा है कि, जब ज्येष्ठा वा मूल होय तब एकसमय व्रत करके भक्तिसे दूर्वाका पूजन करै, और दिनको वृथा न वितावै वह पुराणसमुच्चयमें लिखा है ॥

तत्र विधिः ।

अत्र विधिर्मदनरत्ने भविष्ये–"शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम । स्थाप्य लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्त्रिलोचने । दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः" ॥ २ ॥ मन्त्रस्तु–"त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः । सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले । तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरम्" ॥ २ ॥ इति ॥ अत्रानग्निपक्वं भक्षयेत् । "अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा । अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनान्वितम्" इति तत्रैव भविष्योक्तेः ॥

इसकी विधि मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखीहै, कि, शुद्धदेशमें उत्पन्न हुई दूर्वाके ऊपर शिवलिंगको स्थापन करके हे ब्राह्मणोत्तम ! गन्ध, पुष्प, धूपसे पूजन करै, और दहीसे तथा चावलसे शिवजीको अर्घ्य दे. दूर्वा और शमीसे श्रद्धापूर्वक विधिसे पूजन करै, उसका मन्त्र यह है कि, हे दूर्वे ! तुम्हारा अमृतसे जन्महै देवता और राक्षस तुम्हारी वन्दना करते हैं मुझे सौभाग्य सन्तान दो मेरे सब कार्योंको पूर्ण करो, और जैसे तुम अपनी शाखाओं और प्रशाखाओंसे व्याप्त होती हो इसीप्रकार मुझे भी अजर और अमर सन्तानको दो, इसमें वह वस्तु भक्षण करै, जो अग्निसे पक्व न हो. कारण कि, वहांही भविष्यपुराणका कथनहै कि, हे ब्रह्मन् ! अग्निसे नहीं पका अन्न दधि जिसमें क्षार और लवण न पडा हो मीठे सहित उसको भक्षण करै ॥

भाद्रपदेऽधिमासे सति निर्णयदीपे स्कान्दे–" अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये मुनेः । अर्वाग्दूर्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित् ॥

यदि भाद्रपद अधिकमास होजाय तो निर्णयदीपकग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह लिखाहै कि, यदि भाद्रपद अधिक मास होय और अगस्त्यका उदय होजाय तो प्रथमही दूर्वाव्रत करले, परे अगले कदाचित् भी न करै ॥

ज्येष्ठापूजाव्रतम् ।

अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कान्दे–"मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता । रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्" इति ॥ इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या ॥ दिनद्वययोगे परा । पूर्वेद्युः रात्रियोगे पूर्वैव । "नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः । मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्" इति तत्रैवोक्तेः । अस्यापवादः–" यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः । तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना चेत्पूर्ववासरे " इति ॥ इदं केवलतिथौ

नक्षत्रे चोक्तम्। तत्राद्यं केवलतिथौ कार्यम्। अंत्यं केवलर्क्षे। तदुक्तं मात्स्ये–"प्रत्याब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम्। प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि॥ तिथावेवाचरेदाद्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः" इति॥ अत एव मदनरत्ने भविष्ये नक्षत्रमात्रे उक्तम्–"मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत्। रात्रौ जागरणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत्" इति॥ दाक्षिणात्यास्त्वृक्ष एव कुर्वन्ति। हेमाद्रौ स्कान्देपि–"मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते। यस्मिन्कस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्" इति॥ तथा–"मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत्॥ मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम्" इति॥ मन्त्रस्तु–"एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते। ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव" इत्यावाह्य 'तामग्निवर्णाम्' इति संपूज्य। "ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमोनमः॥ शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शांकर्यै ते नमोनमः। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि। एह्येहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति"॥ २॥ इत्यर्घ्यम्॥ भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात्। 'आभाकासितपक्षेषु' इति दिवोदासोदाहृतवचनात्। "उपोष्यैकादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि। करोति हंति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम्" इति तत्रैव स्कान्दाच्च॥ अस्य तत्रैव प्रतिप्रसवः। मार्कण्डेयः–"विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि। तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लंघयेन्न हि" इति केचित्तु–यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम्॥ तदुक्तं विष्णुधर्मे–"श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्" इति॥ केचिच्चतुर्धा विभज्य मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः। अत्र मूलं चिन्त्यम्॥

इसीमें माधवग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे ज्येष्ठाकी पूजा लिखीहै भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त रात्रि होय उसदिन ज्येष्ठाका पूजन करै, यह ज्येष्ठाके योगवशसे पहली वा आगली ग्रहण करनी दोनों दिन ज्येष्ठाका योग होय तो अगली लेनी और पहले दिन रात्रिमें हो तो पहले दिन लेनी. कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, नवमीसहित अष्टमी करनी, इसमें संशय नहीं। और भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त रात्रि होय उसमें ज्येष्ठाका पूजन करना चाहिये, इसका अपवादभी है कि, जिस दिन मध्याह्नसे परे ज्येष्ठा नक्षत्र कुछ भी होय उसी दिन हविष्य भोजन और पूजा करै, और मध्याह्नसे प्रथम होय तो पूर्वदिनमें करै, यह केवल तिथि वा केवल नक्षत्रमें लिखाहै उनमें पहिला केवल तिथिमें करना वा केवल नक्षत्रमें करना सोई मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठादेवताका व्रत प्रतिवर्ष तिथिमें जिसप्रकार वर्णन किया है और ज्येष्ठाका व्रत जो केवल नक्षत्रमें लिखाहै इन दोनोंमें प्रथमको तिथिमें करै, और दूसरेको नक्षत्रमें करै, इसी निमित्त मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे केवल नक्षत्रमें व्रत लिखाहै कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठानक्षत्र होय तब रात्रिको जागरण करके इन मन्त्रोंसे पूजन करै, दाक्षिणात्य तो नक्षत्रमें ही करतेहैं, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका वाक्य भी है कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त जिस किसी दिनमें ज्येष्ठाका अर्चन करै, तैसेही लिखाहै कि, अनुराधामें देवीका आवाहन करै, ज्येष्ठामें पूजन और मूलमें विसर्जन करै। ये तीनों दिन श्रेष्ठ व्रतहैं, मन्त्र यह है कि, हे महाभागे! हे देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत सब देवताओंमें ज्येष्ठे! तुम आओ मेरे निकटमें प्राप्त हो, इस मन्त्रसे अवाहन करके (तामग्निवर्णां) इस ऋचासे पूजन करके इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, ज्येष्ठा (बडी) श्रेष्ठा (उत्तमा) तुमको नमस्कार है। शर्वाको नमस्कारहै, और शांकरीको प्रणामहै. हे श्रेष्ठे! हे ज्येष्ठे! हे

तपोनिष्ठे हे ब्रह्मिष्ठे हे महाभागे हे सत्यवादिनि हे सरस्वति ! तुम आओ और अर्घ्यको ग्रहण करो, भाद्रपद-शुक्ल द्वादशीको श्रवणनक्षत्रका योग न होय तो पारणा करै. कारण कि, पूर्वोक्त (आभाकसितपक्षेषु) इस दिवोदासके लिखे हुए वाक्यसे श्रवणनक्षत्रके योगमें पारणाका निषेधहै, वहांही स्कंदपुराणका कथनहै कि, जो मनुष्य एकादशीको व्रत करके मोहसे श्रवणमें पारणा करताहै वह बारह द्वादशीका पुण्य नष्ट करताहै, वहां ही इसका निषेध भी मार्कण्डेयपुराणके इस वाक्यसे है कि, हे महीपति ! यदि श्रवण नक्षत्र बढजाय और तिथिका क्षय होजाय तो भोजन न करै, और द्वादशीका लंघन न करै, कोई तो यह कहते हैं कि, जब ऐसा योग होय कि, श्रवण नक्षत्र न हटसकै जब तीन प्रकारके भाग किये हुए श्रवण नक्षत्रके मध्यकी २० घडी छोडकर पारणा करै सोई विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, श्रवणके मध्यमें विष्णु करवट लेते हैं, और सोना जागना करवट लेनाही छोडने योग्यहै, कोई यह कथन करतेहैं कि, श्रवणनक्षत्रके चार भाग करके मध्यके दो चरण त्यागदे, इसमें प्रमाण नहीं है ॥

परिवर्तनोत्सवनिर्णयः।

अत्रैव विष्णुपरिवर्तनोत्सवं कुर्यात् । सन्ध्यायां विष्णुं सम्पूज्य प्रार्थयेत् । मन्त्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः । "ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव । पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव" इति ॥

इसी दिन विष्णुके परिवर्तनका उत्सव करै कि, संध्याके समय विष्णुका अर्चन करके प्रार्थनाकरै, और उसका मन्त्र तिथितत्त्वमें यह लिखाहै कि, हे वासुदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे माधव ! यह आपकी द्वादशी आई इसमें करवट लो और सुखसे शयन करो ॥

शक्रध्वजोत्थापनम्।

अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तमपरार्के गर्गेण । द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा ॥ शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे" ॥

इसी दिन इन्द्रकी ध्वजाका उठानाभी अपरार्कग्रन्थमें गर्गके वाक्यसे लिखाहै कि, हे राजन् ! भाद्रपदशुक्ल द्वादशीको इन्द्रध्वजाको उठावै यदि अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र होवे तो ॥

श्रवणद्वादशीनिर्णयः।

इयमेव श्रवणद्वादशी । तत्रैकादश्यां द्वादशी श्रवणयोगे सर्वोपाष्या । 'एकादशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत् । तद्विष्णुशृंखलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्" इति विष्णुधर्मोक्तेः । नारदीयेपि-"संस्पृश्यैकादशीं राजन् द्वादशीं यदि संस्पृशेत् । श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि । स एवं वैष्णवो योगो विष्णुशृंखलसंज्ञितः" ॥ २ ॥ इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तेश्च । दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेपि पूर्वा ॥ निर्णयामृते त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम् । 'द्वादशीं श्रवणर्क्षं च स्पृशेदेकादशी यदि' इति ॥ तेन हेमाद्रिमते एकादश्याः श्रवणयोगाभावेपि तद्युक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुशृंखलं भवति ॥ निर्णयामृतमते तु-'श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुशृंखलं नान्यथेति ।' यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं भवति । तदापि पूर्वैव॥

तदुक्तं तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य-"तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप । द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः" इति ॥ "द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः । न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते" इति ॥ मदनरत्ने मात्स्याच्च ॥ दिवोदासीये तु-"रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे । तदा पूर्वामुपवसेत्प्रातर्भान्ते च पारणम्" इत्युक्तम् ॥

इसीको श्रवणद्वादशी कहतेहैं, वह एकादशीको द्वादशी और श्रवणका योग होय तो उसी दिनही व्रत करै. कारण कि, विष्णुधर्ममें यह लिखाहै कि, एकादशी और द्वादशी होय और श्रवणनक्षत्र भी वहां होय तो यह विष्णुशृंखल नाम योग विष्णुकी सायुज्य करनेवाला होता है. नारदपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन्! यदि ज्योतियोंमें श्रेष्ठ श्रवणनक्षत्र एकादशी का स्पर्श करके द्वादशीका भी स्पर्श करले तो ब्रह्महत्याओंको दूर करताहै. हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्यहै कि श्रवणनक्षत्रसे मिली द्वादशी एकादशीका स्पर्श करले तो वह वैष्णवोंका विष्णुशृंखलयोग होताहै, दोनों दिन द्वादशी और श्रवणयोगमें भी प्रथमही ग्रहण करनी चाहिये निर्णयामृतमें तो पूर्वका आधा श्लोक और प्रकारसे पढा है कि, यदि द्वादशी और श्रवणनक्षत्र एकादशी स्पर्श करले, तिससे हेमाद्रिके मतमें एकादशीका श्रवणयोगके अभावमें भी श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशीके योग मात्रसे विष्णुशृंखल योग होताहै निर्णयामृतमें तो एकादशी और द्वादशी दोनोंमें श्रवणयोग होनेपर विष्णुशृंखलयोग होताहै अन्यथा नहीं जब आधी रातके पीछे सूर्योदयतक घडी मात्रभी श्रवणनक्षत्र हो तबभी पहलीही ग्रहण करनी, सोई वहांही नारदके वाक्यसे इसी तिथिके प्रकरणमें लिखाहै कि, हे राजन्! तिथि और नक्षत्रका योग, योग कहाताहै यदि वह दो घडी भी प्राप्त हो तो आठ प्रहरका योग होताहै, योगपदसे शिवरात्रि आदिमें आर्द्रानक्षत्र आदि समझना चाहिये कृष्णपक्षकी द्वादशी श्रवणके स्पर्शसेही अत्यन्त पवित्र होती है । कुछ सम्पूर्णही श्रवण नक्षत्रसे युक्त पवित्र नहीं । यह मदनरत्नमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, दिवोदासीयमें तो यह लिखाहै कि, यदि एकादशीके प्रथम चरणमें श्रवणनक्षत्र होय तब पहिली तिथिको व्रत करै और प्रातःकाल नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै ॥

इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । इयं बुधवारेऽति प्रशस्ता । "बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद्द्वादशी भवेत् । अत्यन्तमहती सा स्याद्दत्तं भवति चाक्षयम्" इति । हेमाद्रौ स्कान्दात् । यानि तु पठन्ति । "उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणा मध्याह्नगापि वा । आसुरी सैव तारा स्याद्धन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिकायुता । विश्वर्क्षसंयुता सा च नैवोपोष्या शुभेप्सुभिः" ॥ २ ॥ इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कान्दभविष्यादीनि वचनानि तानि निर्मूलानि । यदपि स्मृत्यर्थसारे । 'उदयव्यापिनी ग्राह्या' इत्युक्तम् । यच्च बृहन्नारदीये-'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' इति ॥ तद्यदा शुद्धाधिका द्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः पूर्वेद्युश्च तद्भिन्ने कालयोगस्तत्परम् ॥ दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव । बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तं मदनरत्ने ॥ यदा त्वेकादश्येव श्रवणयुता न द्वादशी, तदापि पूर्वैव । "यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् । एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता" इति मदनरत्ने नारदीयोक्तेः ॥ यदा परैवर्क्षयुता तदा परा । तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् । "एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः" ॥ इति भविष्योक्तेः ॥ यत्तु

विष्णुधर्मे–"पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् । असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद्व्रतान्तरम्" इति ॥ तदेतद्भिन्नपरम् । अत्र गौडाः–'शृणु राजन्परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतम्' ॥ इति स्थूलशीर्षवचनात् काम्यमेवेदम् । तेनाशक्तस्य नित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यते । "द्वादश्यामुपवासेन शुद्धात्मा नृप सर्वशः ॥ चक्रवर्तित्वमतुलं सम्प्राप्नोत्युत्तमां श्रियम्" ॥ इति गौडनिबन्धे मार्कण्डेयोक्तेश्च । दाक्षिणात्यास्तु–"एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात् । व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥ इति वाराहवामनपुराणोक्तेः । श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः । भुक्त्वेति फलाद्याहारपरम् । न त्वन्नपरम् । 'अन्नाश्रितानि पापानि' इति निषेधात् । "उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि । प्रथमेह्नि फलाहारी निराहारोऽपरेहनि" इति दिवोदासीये भविष्योक्तेश्च ॥ अशक्तौ तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रत्युक्तं मात्स्ये–"द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नक्षत्रं श्रवणं यदि । उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्" इति । पूजयेन्न तूपवसेदित्यर्थः ॥

यह तो निर्मूल और पूर्वसे विरुद्ध होनेसे त्यागने योग्य है यह बुधवारमें अत्यन्त श्रेष्ठ होतीहै कारण कि, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथनहै कि, बुध और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी होय तो वह अत्यन्त श्रेष्ठ होती है उसमें दिया दान करनेसे अक्षय होताहै, जो इन वाक्योंको पढते हैं कि, उत्तराषाढनक्षत्रसे युक्त श्रवण मध्याह्नमें भी होय तो वह आसुरी तारा पूर्व किये पुण्यको नष्ट करतीहै, द्वादशीसे युक्त श्रोणा उदयव्यापिनी ग्रहण करनी जो वह उत्तराषाढ नक्षत्रसंयुक्त होय तो कल्याणके अभिलाषी उसमें व्रत न करैं. इत्यादि विष्णुधर्म, स्कन्द, भविष्यके वाक्य निर्मूलहैं, और जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहा है कि, उदयव्यापिनी ग्रहण करनी, और जो बृहन्नारदीयमें लिखाहै कि, व्रतमें श्रवणद्वादशी उदयव्यापिनी लेनी, वह तब है जब द्वादशी शुद्ध वा अधिकहै, और परदिनमें उदयके समय श्रवण योगहै, और पूर्वदिन उससे भिन्नकालमें श्रवणनक्षत्रका योग हो, दोनों दिन श्रवणयोग होय तो पूर्ण होनेसे प्रथमही ग्रहण करनी. श्रवणद्वादशीका व्रत तो श्रवणयुक्त द्वादशीके न मिलनेपर श्रवण युक्त एकादशीमेंही करना कारण कि, मदनरत्नमें नारदका यह वाक्य है कि, यदि कभी द्वादशीको श्रवण नक्षत्र न मिले तो पापनाशकरनेवाली श्रवणसे युक्त द्वादशीकोही सदा व्रत करै, यदि अगलीही नक्षत्र युक्त होय तो अगलीही लेनी, ऐसे समयपर समर्थ मनुष्य दो व्रत करै, कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, एकादशीका व्रत करके द्वादशीका व्रत करै, इसमें विधिका लोप नहीं कारण कि, दोनों तिथियोंके देवता भगवान् हैं, जो विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, पारणाके अन्ततक व्रत जानना चाहिये । और व्रतके अन्तमें ब्राह्मणभोजन होता है । और प्रथम व्रतके पूर्ण न होनेपर दूसरा व्रत न करै यह वाक्य इससे भिन्न व्रतोंमें समझना चाहिये, इसमें गौड यह मानते हैं कि, हे राजन् ! श्रेष्ठ और काम्य श्रवण द्वादशीव्रतको श्रवण करो इस स्थूलशीर्षके वाक्यसे यह काम्यही है. तिससे अशक्त पुरुष नित्य एकादशी व्रतको ही करै, गौड निबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, हे नृप ! द्वादशीके व्रतसे सब प्रकार शुद्धमन मनुष्य उत्तम चक्रवर्ती राजा होता है, और महालक्ष्मीको प्राप्त होता है, दाक्षिणात्य तो यह लिखते हैं कि, मनुष्य एकादशीको भोजन और द्वादशीके व्रतको करके दो व्रतोंके सम्पूर्ण पुण्यको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं. इस वाराह वामनपुराणके कथनसे श्रवणद्वादशीका व्रतही है, इसमें भोजनपदसे फलाहार लेना और नहीं. कारण कि, अन्नके आश्रयमें पाप होतेहैं इससे अन्नका निषेध है. कारण कि, दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका कथनहै कि, यदि मनुष्य दो व्रत करनेको समर्थ न होय तो प्रथमदिन फलाहारी और परदिन निराहारी रहै, अश-

क्तिमें तो जिसने एकादशी व्रत ग्रहणकर रक्खा हो उसके प्रति मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, यदि शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रवण नक्षत्रहो तब एकादशीको व्रत करके द्वादशीको हरिपूजन करे, अर्थात् केवल पूजा करै व्रत न करै ॥

अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत् । "एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" इति नारदीयोक्तेः ॥ 'पारणं तूभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कुर्यात् तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्' इति स्कान्दात् । "तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत् । पारणं तु न कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः" इति नारदीयादिति हेमाद्रिः ॥ यद्यप्यत्र नक्षत्रमात्रान्तेपि पारणं प्रतिभाति तथापि तिथिमात्रान्ते ज्ञेयम् । न त्वृक्षान्ते तिथिमध्येपि । "याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः । ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना श्रवणरोहिणीम्" इति । विष्णुधर्मे-श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात् ॥ रोहिण्यां तु-'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि' इति वह्निपुराणात् तदन्तेप्यस्तु न त्वत्रैवमस्तीति न ऋक्षान्तोऽनुकल्प इति मदनरत्ने ॥ असंभवे तु 'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥" इति ज्ञेयम् । यत्तु मदनरत्ने-द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात् । "पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात् । वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते ॥" इति वह्निपुराणादित्युक्तम् ॥ तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रवणयुक्तैकादश्यां विहितं विजयैकादशीव्रतपरं न तु श्रवणद्वादशीपरमिति मदनरत्ने ॥ गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः ॥

यदि एकादशीव्रत ग्रहण न कर रक्खा होय तो एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रत करना चाहिये, इसीप्रकार यह नारदका वाक्यहै कि, एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रतकरै वह प्रथम दिनके समस्त पुण्यको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं. पारणा तो दोनोंके वा किसी एकके अन्तमें करना, स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, तिथि और नक्षत्रके नियममें तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै, जब तिथि और नक्षत्रके संयोगमें व्रतहो तबतक पारणा न करै, जबतक एकका क्षय नहो. यह नारदपुराणीका वाक्य हेमाद्रिमें लिखाहै, यद्यपि यहां नक्षत्रके अन्तमें भी पारणा प्रतीत होतीहै तो भी तिथिमात्रके अन्तमें जानना चाहिये, और तिथिके बीचमें नक्षत्रके अन्तमें न जानना चाहिये. कारण कि, विष्णुधर्ममें श्रवणके अन्तमात्रमें पारणाका निषेधहै कि, नक्षत्रके योगसे जो शुद्ध तिथि कही हैं उनमें श्रवण और रोहिणीको छोडकर नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै. इस वह्निपुराणके वाक्यसे तिथिके अन्तमें भी पारणाहै और यहांसे नहीं इससे नक्षत्रका अनुकल्प (गौण) है यह मदनरत्नमें कहाहै, असम्भव होय तो तिथि वा तिथि-नक्षत्रकी पूर्तिमें पारणा जहां कथन कियाहै वहां यदि तिथि तीनप्रहरसे अधिक होय तो प्रात समयही पारणा जाननी चाहिये, जो मदनरत्नमें यह कथनहै कि, द्वादशी वा श्रवण नक्षत्रकी वृद्धिमें श्रवणके अन्तमेंही पारणा करै. कारण कि, वह्निपुराणका वाक्यहै कि, तिथिकी वृद्धि होय तो द्वादशीमें नक्षत्रके क्षय होनेपर पारणा करै, नक्षत्रकी वृद्धि होय तो त्रयोदशीको पारणा करै, यह वाक्य उस विजया एकादशीके व्रतमें है. जो इसी श्रवणयुक्त एकादशीमें कथन है कुछ श्रवणद्वादशीके व्रतमें नहीं, मदनरत्नमें गौड तो यह कहते हैं कि, श्रवणद्वादशीके विषयही यह वाक्य है ॥

तत्र विधिः ।

अत्र विधिर्मदनरत्ने विष्णुधर्मे-'तस्मिन् दिने तथा स्नानं यत्र क्वचन सङ्गमे' ॥

तथा " दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे। वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च॥ न दुर्गतिमवाप्नोति गतिमग्र्यां च विन्दति ॥ " मन्त्रस्तु भविष्ये—घटे जनार्दनपूजामभिधाय "नमोनमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः॥"

यही विधि मदनरत्नमें विष्णुधर्मप्रकरणमें कथन कीहै, उसदिन जिस किसी संगममें स्नान करै और दही चावल इनसे युक्त जलसे भरे वस्त्रसे ढके घटको और छत्री जूता ब्राह्मणको देकर मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है, किन्तु श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होताहै, मन्त्रतो भविष्यपुराणमें यह लिखाहै कि, घटमें भगवान्की पूजा करके कहै कि, हे गोविन्द! आपको नमस्कारहै, तुम बुध और श्रवणकी द्वादशीमें पापोंके समूहको नष्ट करके सम्पूर्ण सुख देनेवालेहो देवताओंके देवभी ईश्वर मेरे सन्देहके नाशक मेरे पापोंको दूर करो॥

वामनद्वादशीव्रतनिर्णयः।

वामनावतारनिमित्तोपवासस्तु व्रतहेमाद्रौ भविष्ये—" द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर। सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता। विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा " ॥ २ ॥

वामनावतारके निमित्त व्रत तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे कहाहै कि, हे युधिष्ठिर ! श्रवण युक्त द्वादशीकी सब पापोंकी नाशक सब सुखोंकी दायक विधि तुम्हारे आगे कही जब श्रवणयुक्त एकादशी हो वह भक्तोंको विजय देनेवाली होती है उसका विजया नामहै॥

इत्युपक्रम्य। " अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी भवेत्। सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम्॥ " इत्युक्त्वा " एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां युधिष्ठिर। तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव। पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता॥" इत्युपसंहारादेकादश्यामेव व्युष्टिः फलम्। भागवतेऽष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता—"श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः। ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप। विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥ " श्रोणायां चन्द्रे॥ अभिजिच्छ्रवणप्रथमांशः॥ गौडा अप्येवम्। अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था॥ तद्विधिश्च हेमाद्रौ वह्निपुराणे—नदीनां संगमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम्। सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशांगुलमुच्छ्रितम्॥ " ततो विधिवत्संपूज्य। "हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः। नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने॥ तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे। नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे॥ महाहवरिपुस्कन्धधृतस्कन्धाय चक्रिणे। नमः शार्ङ्गसीरबाणपाणये वामनाय च॥ यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमोनमः। देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः। एवं संपूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः॥ शृंगारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्। वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते॥ वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये॥" इति॥ अनन्तभट्टोप्याह। 'श्रवणैकादश्यां जनार्दननामा विष्णुः पूज्यते। श्रवणैकादश्यां वामनावतार' इति। श्रवणयुतशुक्लैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धापि श्रवणयुता कार्या। " दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः।

श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा ॥ " इति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ पूजा च मध्याह्ने कार्या । ' अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ ' इति पूर्वोक्तवचनात् ॥

यह प्रारम्भ करके फिर बहुतकाल समाप्त होनेपर वह अदिति गर्भवती हो और नवमें मासमें वामनहरिको उत्पन्न करती हुई. यह कहकर यह समस्त हे युधिष्ठिर ! एकादशीको हुआ तिससे देवताओंके देवता वामनदेवको यह विजयातिथि इष्टहै मैंने तुझसे यह एकादशीका फल कहा और श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशी तो पहलेही कथन करदी यह उपसंहार (समाप्त) करके एकादशीमेंही व्रत होता है । भागवतके अष्टमस्कन्धमें द्वादशीको वामनकी उत्पत्ति कथन कीहै. श्रवण नक्षत्रयुक्त श्रोणा द्वादशीको अभिजित् मुहूर्तमें भगवान् हुए, उनके जन्मको ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि दहिने करते हुए द्वादशीको सूर्य मध्यदिनमें स्थित रहे । जिसमें हरिका जन्म हुआ वह तिथि हे नृप ! विजया लिखी है श्रवणके चन्द्रमामें श्रवणके प्रथम पादको अभिजित् कथन करतेहैं, यहां कल्पभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये । इसकी विधि हेमाद्रिमें अग्निपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, नदियोंके संगममें स्नान करै, वस्त्रसहित बारह अंगुल ऊंचे सुवर्णके वामनका अर्चन करै, फिर विधिसे पूजन करके यत्नसे सुवर्णके पात्रसे अर्घ्य दे और इन मन्त्रोंसे स्तुति करै कि, नाभिमें पद्मवाले जलमें शयन करनेवाले आपको नमस्कार है, बालवामनरूपी आपको प्रणामहै, आपको अर्घ्य देताहूं, बड़े २ संग्राममें शत्रुओंके स्कन्धमें स्कन्ध रखनेवाले, कमलके किंजल्कोंके समान पीले वस्त्र धारे चक्र हाथमें लिये आपको अर्घ्य देता हूं, शार्ङ्गधनुषधारी हल बाण हाथमें लिये यज्ञके भोक्ता और फलके दाता वामनजीको प्रणामहै देवताओंके ईश्वर देवरूप देवताओंके उत्पन्न करनेवाले सब देवताओंके प्रकाशक वामनजीको प्रणाम है, इसप्रकार वामनकी पूजाकरके द्वादशीको सूर्योदयके समय शृंगारसहित उस मूर्त्तिको ब्राह्मणके निमित्त दान करै और यह कहै कि, वामनही प्रतिग्रह लेते हैं और वामनही मैं देताहूं, सब प्रकार मंगलके दाता ब्राह्मणको मैं प्रदान करताहूं. अनन्तभट्टने भी लिखा है कि, श्रवणद्वादशीको जनार्दन विष्णुकी और श्रवण एकादशीको वामन देवकी अर्चा होती है, यदि श्रवणयुक्त पवित्र एकादशी न प्राप्तहो तो श्रवणयुक्त दशमीविद्धा भी ग्रहण करनी. कारण कि, मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे यह लिखाहै कि, दशमीविद्धा एकादशी होय तो व्रत न करै, यदि वह श्रवणनक्षत्रयुक्त होय तो सब कामनाओंको प्रदान करती है । इसका पूजन मध्याह्नके समयमें करना. कारण कि यह वाक्य भागवतमें कहा है कि, दिनके मध्यमें वामन और दोनों राम प्रगट हुए हैं ॥

दुग्धव्रतनिर्णयः ।

अत्रैव दुग्धव्रतं संकल्पयेत् । तदुक्तं-' दुग्धमाश्वयुजे मासि ' इति । अत्रेदं चिन्त्यते- दुग्धव्रते पायसादि वर्ज्यं नवेति । नेति केचित् । न हि प्रकृतिवर्जने विकारवर्जनं युक्तम् । दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः ॥

इसमें दुग्धव्रतकाभी संकल्प करै, सोई कहा है, आश्विनके महीनेमें दुग्धव्रत करना चाहिये इसमें यह कथन (विचार) करते हैं कि, दुग्धव्रतमें खीर आदिका निषेध है कि नहीं, कोई यह कहतेहैं कि, वर्जित नहीं है कारण कि, प्रकृतिके वर्जनेमें विकारका वर्जना युक्त नहीं होय तो दधि घृतआदिकाभी त्याग होजायगा ॥

न च यत्र प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम् । मांसविकारस्यौष्ट्रदध्यादेश्चावर्जनापत्तेः । तस्माद्दध्यादिकं पायसादि भक्ष्यमिति ॥ अत्र प्रब्रूमः । यत्र विकारे

प्रकृतिरसोपलंभस्तत् प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः । अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा मांसत्वानपायात् । यत्तु । औष्ट्रदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति । तन्न । औष्ट्रमिति विकारस्तद्धितेन निषेधात् । तथा च विज्ञानेश्वरः–"औष्ट्रमेकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् " ॥ इत्यत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपि निषेध इत्याह ॥ नन्वेवं 'सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् ' इति सन्धिन्यादिक्षीरनिषेधेपि दध्यादिग्रहणं स्यात् । सत्यं प्राप्तम् । वचनेन परं निषेधः । तदाहापरार्के शंखः–"क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः " ॥ इति ॥ व्रतं गोमूत्रयावकम् । तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम् । अत एवामिक्षायां दधिसत्त्वेपि माधुर्योपलम्भात् पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः । तदुक्तं–'पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते ' इति ॥ दध्यादिषु तु तदभावादवर्जनमिति ॥ एवं दध्यादिव्रते न तक्रादीनां निषेधः । उक्तोभयहेत्वभावादिति केचित् । पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेध इति युक्तं प्रतीमः ॥ इति दुग्धव्रतम् ।

यदि कोई यह कहै कि, जिसमें प्रकृतिका रस मिले उसीका त्याग है सो ठीक नहीं । मांसका विकार उष्ट्रके दहीआदिका वर्जन नहीं होगा, तिससे दहीके तुल्य पायसआदि भी भक्ष्य हैं, वर्जित नहीं, इसमें हम यह लिखते हैं कि, जिस विकारसें उस प्रकृतिकी उपलम्भना हो वा सादृश्य हो वहां विकारका भी निषेध कहा है मांसके विकारमें मांसके न होनेसे मांसकी तुल्यता है. जो यह कहा है कि, ऊंटके दही आदिका निषेध न होगा सो भी उचित नहीं, वहां औष्ट्रपदसे ऊंटके विकारकाभी निषेध है. कारण कि, विकारमें तद्धितका अण् प्रत्यय औष्ट्रपदमें है इससे उष्ट्रके विकारको औष्ट्र कहते हैं, सोई विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, ऊंट, घोड़ा, स्त्री, वनके पशु इनके दूधको त्यागदे इस वाक्यमें विकारसें अण्प्रत्यय होनेसे इनके मलमूत्र आदिका निषेध नहीं है, यदि कोई शंका करै कि, इसीप्रकार जो गौ गाभनभी दूध देती हो वा जिसको ब्याये दशदिन न हुए हैं, जिसका बछडा मृतक होगया हो उसके दूधको त्यागदे, यहांपरभी दही आदिका स्वीकार होगा यह शंका सत्य है कि, दही आदिका ग्रहण पाया तथापि दूसरे वाक्यसे निषेध है. यही अपरार्कमें शंखने लिखा है कि, भक्षण करने योग्य जो दूध हैं उनके विकारको भक्षण करै तो प्रयत्न और सावधानीसे सात दिन गोमूत्र यावक व्रतकरै, तिससे खीरमें दूधके रस मिलनेसे निषेध है, इसीसे शिखरनमें दहीके होनेपर भी मधुरताके मिलनेसे मीमांसकोंने आमिक्षाको दूधरूप वर्णन किया है, सोई लिखा है (करते) घनीभूत हुए दूधको भी आमिक्षा कहतेहैं, दही आदिमें दुग्ध आदिका रस नहीं मिलता इससे उसका त्याग नहीं होता, इससे दहीके निषेधमें तक्रका निषेध नहीं है, कोई कहते हैं दोनोंमें तुल्य हेतु हैं, पूर्वोक्त शंखके वचनसे सब प्रकारका निषेध प्राप्त है, यह हम जानते हैं ॥

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतनिर्णयः ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम् । तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी ग्राह्येति माधवः । तदुक्तम् 'उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः ' इति ॥ 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम् ' इति कथायां श्रवणात्, 'उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवद्विधिकल्पनात् ।'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः । ' इति माधवीयवचनात् ' मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ' इति तु दिवोदासः । प्रतापमार्तण्डेप्येवम् । इदमेव च युक्तम् । निर्णयामृते तु–'घटिकामात्राप्यौदयिकी' इत्यु-

क्तम् । "तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम । पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्" इति भविष्योक्तेः ॥ "मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । संपूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम्" इति स्कान्दाच्चेति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् । द्व्यहे औदयिकत्वे पूर्णत्वात् पूर्वेति युक्तम् । तत्त्वं तु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायोगात् ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्दशीको अनन्तव्रत कहाहै, वह तीन महूर्तभी हो तो उदयकाल ग्रहण करना यह माधवका मत है. सोई लिखा है कि, अनन्तव्रतमें उदयकी तीन मुहूर्तभी तिथि ग्रहण करनी, मध्याह्नमें भोजनके समय पूजन करै, यह कथामें लिखा है । और मध्याह्नसे ऊपर देवताओंको दे इसके तुल्य विधिकी कल्पनासे और सम्पूर्ण पूजाओंके व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्रहणकरनी, इस माधवके कथनसे मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी, यह दिवोदासका मतहै, प्रतापमार्तण्डमें भी इसीप्रकार लिखाहै. निर्णयामृतमें तो यह लिखाहै कि, घडीभरभी उदयकालकी तिथि लेनी कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, भाद्रपदके अन्तमें और पूर्णिमाके योगमें हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! अनन्तव्रत करना, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदमें पूर्णिमामें मुहूर्त्तमात्रभी चतुर्दशी होय तो उसको सम्पूर्ण जानना, और उसमें अविनाशी विष्णुका पूजन करना चाहिये । इन दोनों वाक्योंका मूल नहीं है, सिद्धान्त तो यहहै कि, जहाँ विधिवाक्य और अर्थवाद वाक्योंका भिन्न २ अर्थ होय तो वहां एक वाक्यता नहीं होती है ॥

संदिग्धेषु एकवाक्यत्वात् इति न्यायेन पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या ॥ माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव ॥ अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावान्निबन्धान्तरेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति ।

इससे और जहाँ शंका हो वहां वाक्यशेषसे निर्णय करना चाहिये, इस वाक्यसे प्रथम वा पिछली मध्याह्न व्यापिनी तिथिही मुख्यहै, माधव तो सामान्य वाक्योंसे निर्णय करतेहुए यहां भ्रान्तहैं, और दूसरे पुराणों और ग्रन्थोंमें अनन्तका व्रत नहीं है, इससे यह वाक्य अप्रमाणहै, दोनों दिन उदयव्यापिनी होय तो पूर्ण होनेसे प्रथमकीही ग्रहण करनी यही युक्तहै ॥

अथागस्त्यार्घ्यः । तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये–"कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने । कन्यायां समनुप्राप्ते ह्यर्घकालो निवर्तते" ॥ तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः ॥ यत्पाद्मे–"आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण । यावत्समाः सप्त दशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ।" यमस्यागस्त्यस्य । उदयकालश्च दिवोदासीये उक्तः । "उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमेत्यगस्त्यः । स सप्तमेस्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरभ्यभाणि ॥" अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये–"काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणेः । प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे स्वलंकृताम् ॥ कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥ ॥ २ ॥" पूजा च वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण कार्या । "प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् । निशावसाने तां पश्यञ्जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः ।" मात्स्ये तु–'अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।' पूर्वं काशमयत्वमशक्तौ "चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्तांकुरसंयुतानि।

सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तमंत्रेण दद्याद्द्विजपुंगवाय ॥ धेनुं बहुक्षीरवतीं च दद्यात्सवस्त्रघंटाभरणां द्विजाय ॥ " भविष्ये–' विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रनिधापितैः। सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा ॥ मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीं गतः ॥ " विष्णुरहस्ये–"अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुनेः। अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे मंत्रविधिस्त्वयम् ॥ काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसंभव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोस्तुते ॥ विंध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह। रत्नवल्लभ देवेश लंकावास नमोस्तुते ॥ वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा। लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योसौ तस्मै नमोनमः॥ येनोदितेन पापानि विलयं यांति व्याधयः। तस्मै नमोस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥

अब अगस्त्यका अर्घ्य लिखतेहैं उसका समय व्रतहेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जबतक कन्याका सूर्यहो उससे सात दिन प्रथम अर्घ्य दे, और जब कन्याके सूर्य आजायँ तब अर्घ्यका समय निवृत्त हो जाताहै, तिससे अगस्त्योदयके पीछे सात दिनके मध्यमें अर्घ्य देना यही अर्थहै। यही पद्मपुराणमें कहाहै कि, अगस्त्योदयसे सातरात्रतक मनुष्यको अर्घ्य देना चाहिये और वर्ष पर्यंत दे और कोई यह कहतेहैं कि, उसके उपरान्त भी दे, उदयका काल दिवोदासीय ग्रन्थमें कहाहै कि, अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशामें सिंहसंक्रांतिसे इक्कीस २१ दिन उदय होतेहैं, और वृषकी संक्रांतिसे सातवें दिनपर अस्त होजातेहैं, यह गर्ग आदि मुनियोंने लिखाहै इसकी विधि विष्णुरहस्यमें लिखीहै। काशके फूलोंकी रमणीक अगस्त्यकी मूर्ति बनाकर प्रदोषके समय उसका अलंकार करके जलसे पूर्ण घटपर उसे स्थापन करै घडेपर रक्खी हुई उसको फूल, धूप, चन्दनसे अर्चन करै, दही और चावलकी बलि दे, रात्रिको जागरण करै, पूजा उस मन्त्रके अर्घ्यसे करै जो आगे लिखैंगे प्रातः कालके समय उसको लेकर पवित्र जलाशय (नदी आदि) में जाय, जलके निकट प्रभातके समय अगस्त्यमुनिकी प्रतिमाको दर्शन करता हुआ भलीप्रकार व्रतकर अगस्त्यमुनिको अर्घ्यदे, मत्स्यपुराणमें तो यह लिखा है कि, अँगूठेके प्रमाण की ऐसी सुवर्णकी मूर्त्ति बनावे जिसकी लम्बी भुजाहों चतुर्भुजी उस मूर्तिको घटपर रखकर सात दूबके अंकुर और अन्न, काश, फूल, चावल सीपीसे युक्त उस मूर्तिको ब्राह्मणके निमित्तदे पहिले काशकी मूर्ति जो कही वह शक्तिहीनतामें जाननी और वस्त्र घण्टा भूषणसहित और बहुत दूध देती हुई गौ ब्राह्मणको दे, भविष्यपुराणमें कहाहै कि, वंशपात्रमें रक्खे हुये सप्तधान्योंसे सुवर्ण वा चांदीके पात्रको मस्तकपर रखकर नम्र होकर गोडोंको पृथ्वीपर रखकर विष्णु रहस्यमें लिखे हुये इस (अगस्त्यः खनमान इत्यादि) वाक्यसे अगस्त्यको अर्घ्यदे कि, अगस्त्यको प्रणामहै यह मन्त्रविधि शूद्रके निमित्तहै कि, काश फूलके तुल्य प्रकाशमान वह्निमारुतसे जन्म मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्यजीको प्रणामहै, हे विंध्याचलकी वृद्धिके क्षय करनेवाले, हे मेघजलोंके विषको दूर करनेवाले, हे रत्नोंके प्रिय, हे देवताओंके ईश्वर, हे लंकाके निवासी! आपको प्रणाम हैं जिन्होंने वातापीको भक्षण किया, और पूर्वसमुद्रको शोषलिया उन लोपामुद्राके पतिके नीमित्त प्रणामहै, जिनके उदयसे पाप और व्याधि नष्ट होतीहैं, शिष्य पुत्रों सहित उनको नमस्कारहै ॥

"अगस्त्यः खनमानेति विप्रोर्घ्यं विनिवेदयेत्। राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने ॥ लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्। दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमोऽगस्त्यमहर्षये। ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे ॥ विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत्। अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्यो-

स्मिन् घटे स्थितः ॥ अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः ॥ १० ॥" दानमन्त्रः-- अगस्त्यः सप्तजन्मार्घं नाशयत्वावयोरयम् । अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने॥" प्रतिग्रहमन्त्रः विष्णुरहस्ये-" त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् । होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्" ॥ होमश्चार्घ्यमन्त्रेणाज्येन । भविष्ये-" दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव । ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथिवीपतिः ॥ वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत् । यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति " ॥ २ ॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः ॥

'अगस्त्यः खनमान' इसमन्त्रसे ब्राह्मण अर्घ्यदे, हे राजपुत्रि, हे महाभागे ! हे ऋषिपत्नी, हे लोपामुद्रे, हे सुमुखि ! आपको प्रणामहै मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करो. हे कुरुवंशी युधिष्ठिर ! इसप्रकार अर्घ्यदे और प्रणाम करके फिर विसर्जन करै, यथाशक्ति आपका मैंने पूजन किया, महर्षि अगस्त्यको प्रणामहै इसलोक और परलोकके कार्योंकी सिद्धिको देकर आप गमन करैं. इसप्रकार अगस्त्यमुनिका विसर्जन करके ब्राह्मणको देना, दानका मन्त्र यहहै कि, अगस्त्य मेरे मनमें स्थितहो घटमें अगस्त्य स्थितहैं अगस्त्यही द्विजरूपसे सत्कारपूर्वक ग्रहणकर अगस्त्य हम दोनोंके सप्तजन्मके पाप नष्ट करो.. हे महामुने ! अतुल और निर्मल सुख दीजिये. यह प्रतिग्रहका मन्त्रहै विष्णुरहस्यमें कहाहै कि, अगस्त्यमुनिके निमित्त एक अन्न फल रसको त्याग देना और होमके पश्चात्से मनुष्य फलको त्यागै और होम अर्घ्यके मन्त्र और घीसे करै, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, हे पांडव ! इसप्रकार सातवर्षतक अर्घ्यदेकर ब्राह्मण चतुर्वेदी, क्षत्रिय राजा, वैश्य अन्नका अधिपति और शूद्र धनवान् होताहै, और जो अवस्थाभर अर्घ्यदे उसको परब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै । इति अगस्त्यार्घ्यः ॥

भाद्रपौर्णमास्यां श्राद्धम् ।

भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कण्डेययोः-" नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा" इति ॥ नान्दीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे-" पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नांदीमुखा नांदी समृद्धिरिति कथ्यते " ॥ २ ॥ एतच्च ' प्रत्यब्दम्' इत्युक्तेः ॥ पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते ॥ अत्र मातामहा अपि कार्याः । ' पितरो यत्र पूज्यंते तत्र मातामहा अपि ' इति धौम्योक्तेः । पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात् । वार्षिके तु वचनान्निवृत्तिः । न च जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां मातृश्राद्धे तदापत्तिः । इष्टापत्तेः । अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ ॥ एतज्जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः ॥ केचित्तु-अजहल्लक्षणया पित्रादयो यत्र तत्र मातामहस्तेनात्र नेत्याहुः ॥ न चात्र नाम्ना नान्दीश्राद्धधर्मातिदेशः । वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात् । नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणम् । पारिभाषिकत्वादिति दिक् । तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः-" पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम् । वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीं यथा दर्शस्तथैव सा" इति ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाद्रपदमासः समाप्तः ॥

भाद्रपदकी पूर्णिमाको प्रपितामहसे अगले तीनका श्राद्ध करै, सोई हेमाद्रिमें ब्रह्म और मार्कण्डेय-पुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, वाराहके कथनानुसार कन्याराशिके सूर्यमें नान्दीमुख पितरोंका श्राद्ध पूर्णिमाको प्रतिवर्ष करना, ब्रह्मपुराणमें नान्दीमुख ये लिखेहैं कि, पिता, पितामह, प्रपितामह यह तीन पितर अश्रुमुख लिखेहैं, इनसे पहिले जो तीन प्रजावाले और सुखसे बढेहैं, वे पितर नान्दीमुख कहेहैं जिसको नान्दी और समृद्धि कहतेहैं। यह श्राद्ध प्रतिवर्ष कहनेसे, पक्षश्राद्धके पक्षमें एकवार और महालयमें करना आवश्यकहै यह प्रयोगपारिजातमें लिखाहै, इसमें मातामहोंका भी श्राद्ध करै, कारण कि, धौम्यऋषिने लिखा है कि, जहां पितरोंका पूजनहै, वहां मातामहोंकाभी पूजनहै, यदि पितृशब्दको जनकपरही मानोगे तो 'पितरः' यह बहुवचन नहीं बनसकैगा इससे पितृशब्द पितृत्वधर्मका बोधकहै, वार्षिक श्राद्धमें तो वाक्यसे निवृत्तिहै। यदि कोई शंका करै कि, जिसका पिता जीवताहै उसके अन्वष्टका मातृश्राद्धमें भी निवृत्ति प्राप्त होजायगी, उसका उत्तर यही है कि, वहां भी निवृत्तिही इष्ट है, इसीसे मातृश्राद्ध लिखाहै, श्राद्धोंमें अपनी माता और मातामहको देना और मदनरत्न और कालादर्शमें कहाहै यह जीवत्पितृक-श्राद्धमें कहैंगे जो कोई कहै कि, अजहल्लक्षणासे पित्रादिक जहां तहां मातामहहैं सोभी नहीं। यदि कोई सन्देह करै कि, यहां नामसे नान्दीश्राद्धके धर्मको मानेंगे सो भी उचित नहीं, वैष्णव आदि शब्दके समान देवतावाची शब्द कर्मका बोधक नहीं होसकता और नान्दीमुखशब्द पितृशब्दका विशेषण भी नहीं होसकता कारण कि, नान्दीमुख शब्द पारिभाषिक संकेत है सोई निर्णयदीपमें गर्गका कथनहै कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्यागकर सब पूर्णिमाओंमें पिण्डदानका निषेधहै वह तो अमावस्याके समान जानना चाहिये ॥

इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां भाद्रपदमासः समाप्तः॥

अथाश्विनमासः।

कन्यासंक्रांतिनिर्णयः।

कन्यासंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः शेषं प्राग्वत् ॥

कन्याकी संक्रान्तिमें अगली सोलह घड़ी पुण्यकालहै शेष पहली संक्रान्तियोंके समान जानना ॥

अथ महालयनिर्णयः।

तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः–" आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। कांक्षन्ति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम् ॥ " कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाट्यायनिः–' कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोत्यन्तं पुण्यमुच्यते' इति ॥ अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः–"मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्रविः। स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति ॥ " तथा ब्रह्माण्डमार्कण्डेययोः–" कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥"तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि–"कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश। ऋतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत् ॥ " अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ। तिथिवृद्ध्या पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वं श्राद्धवृद्ध्यर्थमेकः पक्षः। भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः। आश्विनशुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः॥ अन्त्य एव तु युक्तः। " अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह। चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता" इति देवलोक्तेः॥ तत्र पञ्चपक्षाः। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–" आश्वयु-

कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा " ॥ दिने-दिने इति पक्षपर्यन्तत्वमुक्तम् । त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः । त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः । त्रिभागहीनमिति चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः ॥ अत्र दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् । तेन पञ्चदशतिथिव्यापि श्राद्धं सिद्ध्यति । तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः ॥ तन्न ॥ ' श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ॥ ' इत्यादिविरोधात् ॥

अथ महालयका निर्णय लिखतेहैं—उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धमुनने लिखाहै कि, आषाढ़की पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें पितर अन्न और जलकी प्रतिदिन इच्छा करतेहैं, कन्याके योगमें शाठ्यायनिमुनिने अत्यन्त पुण्य लिखाहै कि, कन्याराशिके सूर्यसे युक्त पक्ष अत्यन्त शुद्ध लिखाहै इसमें विशेष वृद्धमनुने लिखा है कि, मध्यमें वा अन्तमें जब कन्याका सूर्य प्राप्त हो तो सोलह श्राद्धोंके निमित्त सब पक्ष श्रेष्ठहै । इसीप्रकार ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराणमें कहाहै कि, कन्याके सूर्यमें पन्द्रहदिनोंमें पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये, तैसेही वहां सोलह दिन लिखेहैं कि, कन्याके सूर्यमें जो सोलह दिन लिखेहैं वे यज्ञोंके समान हैं यह नारायणदेवने लिखा है, इसमें हेमाद्रिने यह कहा है कि, सोलह तीन प्रकारके होतेहैं कि, १ तिथिके बढ़नेसे पक्षके सोलह दिन होजायँगे तो १ श्राद्ध वृद्धिको प्राप्त होजायगा, २ भाद्रपदकी पूर्णिमाके मिलानेसे दूसरा प्रकार, ३ आश्विनशुक्ल प्रतिपदको मिलाकर तीसरा प्रकार, इन तीनोंमें तीसरा पक्ष युक्त है. कारण कि, देवलने कहा है कि, शुक्लपक्षकी प्रतिपदासहित सोलह दिनहैं. कारण कि, उसमें चन्द्रमाका क्षय होनेसे पडवाभी अमावस्यारूप कही है, इसमें पांच पक्षहैं यही हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करै, वा त्रिभागहीन (पञ्चमीसे) में करै वा पक्षभर करै, वा त्रिभाग (दशमीसे) करै वा अर्द्ध (अष्टमीसे) करै. 'दिनेदिने' इससे पक्षपर्यन्त कहाहै, त्रिभागहीन इससे दशमी आदिहै. कल्पतरु तो यह लिखतेहैं कि, त्रिभागहीनसे चतुर्दशी सहित प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका त्यागनहै यहां दिनपद तिथिपरत्वहै वीप्सा (दिने २) से उसपक्षकी सम्पूर्णतिथि श्राद्धकी हैं यह सिद्ध हुआ तिससे पन्द्रहतिथियोंमें व्यापक (पूर्ण) श्राद्ध सिद्ध होताहै, तिससे निषेध चतुर्दशीका और पक्षकी तिथिकाहै इसका नहीं यह गौड़ोंका मतहै, सो ठीक नहीं, कारण कि, इसमें इसवाक्यका विरोधहै कि, शस्त्रसे मृतकका श्राद्ध महालयकी चतुर्दशीको होताहै ॥

यत्त कश्चित् पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षस्तृतीयभागमेकादश्यादि तदर्धं त्रयोदश्यादि उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति ॥ तन्न । गौतमादिवचनेन मूलकल्पनालाघवात् । पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च । ' पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोप्यति ' इति विष्णुधर्मोक्तेः । षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेयाविति तत्त्वम् ॥ कालादर्शेपि—" पक्षाद्यादि च दर्शांतं पञ्चम्यादि दिगादि च । अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम् ॥ " पक्षादिः प्रतिपत् । दिग्दशमी । दर्शांतमिति सर्वत्र । गौतमोपि—' अथापरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् पञ्चम्यादिदर्शांतमष्टम्यादिदशम्यादिसर्वस्मिंश्च' इति ॥ तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं हैमाद्रौ नागरखंडे—" आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे ॥ तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्" इति ॥ अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्राञ्चः ॥ तन्न । तद्वाचकपदाभावात् त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्यः । तत्रैव निंदाश्रुतेः । ब्राह्मे—एवकारेण तस्यैव पञ्चमपक्षायोगव्यव-

च्छेदोक्तेरिति गौडाः ॥ तन्न । 'एकस्मिन्नपि' इति विरोधात् । तेन फलभूयार्थिनान्यानि कार्याणीति तत्त्वम् ॥ तत्र चतुर्दशीश्राद्धाभावे पञ्चम्यादिदशम्यादिपक्षौ तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ । एवं चतुर्दश्यभावे द्वादश्यादिः । तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरिति व्यवस्था ॥

जो कोई यह कहते हैं कि, पूरणप्रत्ययके लोपसे तीसरे भागसे हीन षष्ठी आदि पक्ष और तृतीयभाग एकादशी आदि और उसका अर्थ त्रयोदशी आदि पक्ष उत्तरोत्तर क्रमसे लघु लेना कहाहै सो ठीक नहीं । गौतम आदिके वचनसे और लाघवसे न्यूनकी कल्पना नहीं करसक्ते और इसमें पक्षकाभी अन्वय यथार्थ नहीं होगा और विष्णुधर्ममें यह लिखाहै कि, पञ्चमी और दशमीसे उपरान्त श्राद्ध करके षष्ठी और एकादशी आदि भी पक्ष हैं यह निचोड है. कालादर्शमें भी कहाहै कि, प्रतिपदासे अमावस्यातक वा ५ पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक कृष्णपक्षमें श्राद्ध करै, गौतमने भी कहाहै कि, अपरपक्षमें पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक वा सम्पूर्ण दिनोंमें पितरोंको श्राद्धदेना तैसेही एक दिनभी श्राद्ध हेमाद्रिके नागरखण्डमें लिखाहै कि, आषाढ़की पूर्णिमासे पांचवें पक्ष और कन्याके सूर्यमें जो मनुष्य एकदिनभी श्राद्ध करताहै, उसके पितर एकवर्षतक निश्चय तृप्त होतेहैं इसमें प्राचीनोंने यह कहाहै कि, यह व्यवस्था समर्थ और असमर्थके भेदसे है सो ठीक नहीं, क्योंकि समर्थ और असमर्थका वाची कोई पद नहीं होता त्रयोदशी पक्षही नित्यहै वहांही निन्दा न करनेमें श्रवण कियाहै ब्रह्मपुराणके वाक्यमें पढे हुए एवकारसे उसकोही पांचवां पक्ष अयोग निश्चयसे लिखाहै यह गौडोंका कथनहै सो उचित नहीं, इसमें एक दिन भी करै इस पूर्ववाक्यका विरोध है तिससे अधिक फलके अभिलाषी और श्राद्धोंको न करैं यही निचोड है तहाँ चतुर्दशी श्राद्धके अभावमें पंचमी आदि और दशमी आदि पक्ष ग्रहण करने, और चतुर्दशी श्राद्धभी होय तो षष्ठी एकादशी आदि ग्रहण करने इसप्रकार चतुर्दशीके अभावमें द्वादशी आदि और चतुर्दशी होय तो त्रयोदशी आदि पक्ष ग्रहण करने यही व्यवस्था है ॥

विधवाकर्तृकश्राद्धनिर्णयः ।

विधवायास्तु विशेषः स्मृतिसंग्रहे-"चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि । स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥" तथा-'श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च' इति ॥ अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्-"स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥" विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वान्यब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते ॥ सकृन्महालये च वर्ज्यतिथ्याद्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदयप्रयोगपारिजातादिषु । वसिष्ठः-"नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥" जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानि ॥ वृद्धगार्ग्यः-"प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ॥" प्राजापत्यं रोहिणी पौष्णं रेवती । पित्र्यं मघा । अन्यान्यपि प्रत्यरादीनि तत्रैव ज्ञेयानि ॥

विधवाके निमित्त विशेष तो स्मृतिसंग्रहमें यह लिखाहै कि, विधवाको सदैव चारपार्वण लिखे हैं कि, अपने पति और श्वशुर आदिकोंका माता पिताओंका मातामहोंका श्राद्ध करै, और तैसेही श्वश्रू और नानीका श्राद्ध करै, सामर्थ्य न होय तो स्मृतिरत्नावलीमें यह लिखा है कि, अपने पतिआदि तीन और अपने पिता आदि तीनके श्राद्धको आलस्य त्यागकर विधवाको करना चाहिये । अर्थात् आप संकल्प करके

ब्राह्मणद्वारा श्राद्ध करवायदे प्रयोगपारिजातमें यही लिखाहै, महालयमें वर्जने योग्य तिथि आदि पृथ्वीच न्द्रोदय, माधव, प्रयोगपारिजात आदिमें लिखीहैं. वसिष्ठका वाक्यहै कि, शुक्रवारकी नन्दाको और उस चतुर्दशीको जिसमें अपने जन्मका नक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे पहिला वा पिछला नक्षत्र हो गृहस्थी श्राद्ध न करै। करनेसे पुत्र तथा धनका क्षय होताहै. वृद्ध गार्ग्यने कहाहै कि, रोहिणी, रेवती, मघा, शुक्रवारको जो श्राद्ध करताहै उसका पुत्र नष्ट होताहै, और भी प्रत्यरा आदि नक्षत्र वहांही जानने ॥

केचित्तु–"नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ॥ गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः" इति संग्रहात् ॥ नन्दा प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः । अश्वः सप्तमी । कामस्त्रयोदशी । आरो भौमः ॥ भृगुः शुक्रः । अग्निभं कृत्तिका ॥ कालभं भरणी । तत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः ॥ तत्र मूलं मृग्यम् । एतच्च सकृन्महालयविषयम् ॥ "सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेखिलेषु च । अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये नारदोक्तेः । अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च–"अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत् ।" पराशरमाधवीयमदनपारिजातादिषु चैवम् ॥ निर्णयदीपिकायां तु–'पितृमृताहे निषिद्धदिनेपि सकृन्महालयः कार्यः' इत्युक्तम् ॥ "आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । मृताहानि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः । तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्" इति नागरखण्डोक्तेः ॥ "या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते । सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विना शौचं यदृच्छया । पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि ॥ ३ ॥" इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

कोई तो यह कहतेहैं कि, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, सूर्य, मंगल, शुक्र, कृत्तिका, मघा, भरणी, गण्ड, वैधृति, व्यतिपातमें पुत्रकी इच्छावालेको पिंड न देना चाहिये इन वाक्योंका मूल नहीं मिलता यह बातभी सकृत् (एकदिनके) महालयमें है. कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदय ग्रन्थमें नारदका यह वाक्यहै कि, एकदिनके महालयमें काम्यश्राद्धमें और दुवारा श्राद्धमें और भूलेश्राद्धमें इन सबकी चिन्ता करै, इसका अपवाद हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयग्रन्थमें कहाहै कि, अमापात, भरणी, द्वादशी, पक्षमध्यमें तिथि नक्षत्र और वारका विचार न करै, और पराशर माधवीय, मदनपारिजात आदिमें भी इसीप्रकार लिखाहै. निर्णयदीपिकामें तो यह कहाहै कि, पिताके मृत्युके दिन निषेध दिनमें भी सकृन्महालयको करै. कारण कि, नागरखण्डमें यह लिखाहै कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्ष, कन्याके सूर्यमें पिताके मरनेके दिन जो मनुष्य श्राद्ध करताहै उसके पितर वर्षदिनतक अवश्य तृप्त होतेहैं मनुष्यकी मृत्युके दिन मासकी जो तिथि हो वही तिथि पितृपक्षमें प्रयत्नपूर्वक पूजने योग्यहै अशौचके विना उसका विच्छेद (न करना) अपनी इच्छासे न करै, पिंडश्राद्ध करै और विच्छेद न करै. कात्यायनने कहाहै कि जो असमर्थ मनुष्य पक्षके मध्यमें एक दिनही श्राद्ध करै उसका निषिद्ध दिनमें भी यथाविधि पिंडदान करना उचितहै इस वाक्यका मूल नहीं मिलता ॥

पक्षश्राद्धे नन्दादिषु न पिण्डनिषेधः ।

तथा पक्षश्राद्धकरणेपि न नन्दादिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्ष्णाजिनिः–

"नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने। नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी" इति॥ अत्र श्राद्धमित्येकवचनात् 'दिनेदिने' इति वीप्सावशाच्च सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरमिदम्। अतः–'प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्' इति याज्ञवल्कीयं प्रयोगभेदपरं न तु पञ्चम्यादिपक्षविषयम्। 'प्रतिपत्प्रभृतिषु' इति विशिष्योक्तेः। निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदनपारिजाते चैवम्॥

पराशर माधवीय ग्रन्थमें कार्ष्णाजिनिने पक्षश्राद्ध करनेमें नन्दा आदिका निषेध नहीं लिखाहै कि, भाद्रपदके अपरपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना उचितहै और इस नन्दा आदिका निषेध है और न चतुर्दशी निन्दितहै, यहाँ श्राद्ध इस एक वाक्य और दिने २ इस वीप्साके वशसे सोमयज्ञके तुल्य एक श्राद्धके अभ्याससे अनेकबार प्रयोग करनेका कहनेवाला यह वाक्यहै, इससे प्रतिपदासे लेकर एक चतुर्दशीको छोडकर श्राद्ध करै यह याज्ञवल्क्यका वाक्य प्रयोगभेद कहताहै पंचमीआदि पक्षविषयक नहीं है कारण कि, यह पृथक् कथनहै कि, प्रतिपदा आदि तिथिमें श्राद्ध करै, निर्णयदीप, पृथ्वीचन्द्रोदय, मदनपारिजातमें भी ऐसेही लिखाहै॥

अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम्। एतत्परत्वेनैव निन्द्या चतुर्दशी इति विरोधादिति गौडाः॥ तन्न॥ 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' इति विरोधात्। तत्त्वं तु–"तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः। स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ" इति दिवोदासीये वृद्धगार्ग्योक्तेस्तन्निमित्ते पक्षांतरे च ज्ञेयः॥ सकृन्महालये तु वचनान्निषेधः। अन्यत्र क्वापि न निषेधः। कार्ष्णाजिनिस्मृतेरिति॥ अतो नन्दादौ सपिण्डश्राद्धे पुत्रवतोप्यधिकारः। अत्रिरपि–"महालये क्षयाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि। तीर्थेपि निर्वपेत्पिण्डांस्त्रिविवारादिकेष्वपि॥" पूर्वोक्तनन्दानिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः॥ यत्तु स्मृत्यर्थसारे–"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्" इति॥ तस्यात्रापवादो दिवोदासीये बृहस्पतिः–"तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये। पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे॥ महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेहनि। कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा" ॥ २ ॥ इति निर्णयदीपे तु नन्दानिषेधः प्रत्यहभिन्नश्राद्धविषयः। षोडशाहव्यापिश्राद्धप्रयोगकत्वे तु प्रत्यहं पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम्॥ तदयमर्थः सम्पन्नः षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न पिण्डनिषेधः॥ मृताहे सकृन्महालयेपि तथा इति केचित्। तत्रापि निषेधस्तु युक्तः प्रत्यहं श्राद्धभेदेपि व्यतीपातादौ तथा। अन्यमृताहातिक्रमे महालयातिक्रमे च पिण्डनिषेधः॥

जो गौडोंका कथनहै कि, याज्ञवल्क्यका वाक्य दूसरे कृष्णपक्षका बोधकहै, इस पक्षका नहीं. कारण कि, इसमें चतुर्दशी निन्द्य नहीं इसका विरोधहै यह उनकी बात ठीक नहीं. कारण कि, शस्त्रसे मृतकका श्राद्ध महालयकी चौदशको करना इसमें इस बचनका विरोधहै। सिद्धान्त तो यहहै कि, तिथि, वार, नक्षत्र आदिका जो निषेध कियाहै वह तिस तिस निमित्तसे किये हुए श्राद्धका है प्रसंगसे किये हुए श्राद्धका नहीं है। दिवोदासीयमें लिखे इस वृद्धगार्ग्यके कथनसे उसके निमित्त श्राद्धमें और पक्षांतरमेंही निषेध जानना, सकृन्महालयमें तो वाक्यसे निषेध नहीं, महालयमें कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिसे कोई भी निषेध नहीं

लिखा इससे नन्दाआदि तिथिमें पुत्रवान्को भी सपिण्डश्राद्धका अधिकारहै, अत्रिने भी कहाहै कि, महालय, मरणदिन, अमावस्या, पुत्रजन्म, तीर्थ इनमें रविवार आदिको भी पिंडदान करै, पूर्वोक्त नन्दा आदि तिथियोंका निषेध तो मरनेके दिनके अवलंघनमें पूर्णिमाके दिन मृतकके श्राद्धमें वा तन्निमित्तक श्राद्धमें समझना, जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहाहै कि, विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डनसे ६ महीनेतक वा तीन महीनेतक पिंडदान, मृत्तिकासे स्नान, तिलोंसे तर्पण न करै, इस वाक्यका यहां अपवाद दिवोदासीयग्रन्थमें बृहस्पतिके वाक्यसे लिखाहै कि, तीर्थ, सम्वत्सर, प्रेत, पितृयाग, महालय इनमें पिंडदान युगादि, मरणी, मवा होय तो भी करै. महालय, गयाश्राद्ध, मातापिताका मरणदिन इनमें पिंडदान वह भी सदा करै जिसका विवाह हुआहो, निर्णयदीपमें तो नन्दा आदि तिथियोंका निषेध प्रतिदिन भिन्न श्राद्ध विषयमें लिखाहै सोलह दिनतक रहनेवाले श्राद्धप्रयोगको एक मानो तो प्रतिदिन पिण्डदान करै. यह पहलेही लिख आयेहैं तिससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि, सोलह दिनतक श्राद्धके यज्ञमें पिण्डका निषेध नहीं है मृताह और सकृन्महालयमें भी निषेध नहीं । कोई यह कहते हैं, वहांभी निषेध तो युक्त है, और तैसेही प्रतिदिन श्राद्धभेदमें और व्यतीपात आदिमें निषेधहै तथा श्राद्ध और मरणदिनके अतिक्रम (भूलना) में पिंडका निषेध है ॥

संन्यासिनां महालयनिर्णयः ।

संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं कार्यम् । "यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः" इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः—"हंसे कन्यासु वर्षास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पञ्चम्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः" ॥ आश्विनकृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्य इत्यर्थः । तत्राप्यसंभवे भविष्ये—"येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितॄणां वै महालये ॥" तत्राप्यसम्भवे भारते—"यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः । शून्यं प्रेतपुरं तावद्वृश्चिके यावदागतः ॥" ब्राह्मे—"वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥

संन्यासियोंका श्राद्ध द्वादशीको करना चाहिये. कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्यहै कि, यदि वानप्रस्थ और विशेषकर वैष्णवको कृष्णपक्षमें और द्वादशीको विशेषकर श्राद्ध लिखाहै । इस पक्षमें श्राद्ध करनेका गौणकाल हेमाद्रिग्रन्थमें यमने लिखाहै कि, वर्षाकालमें जब कन्याका सूर्य होय तब गृहमें रहते हुए मनुष्यको आश्विनकी दोनों पञ्चमियोंके उपरान्त शाकसेभी श्राद्ध करना उचितहै, उसमें भी नहो- सकै तो भविष्यपुराणमें यह कहाहै कि, हे राजन् ! जो यह दीपयुक्त पञ्चदशी (दिवाली) पृथ्वीमें प्रसिद्ध है उस मनुष्यको उसमें पिंडदान करना चाहिये, जिसने महालयमें पितरोंको न दियाहो, उसमें भी न होसके तो भारतमें यह कहाहै कि, जबतक सूर्य कन्या और तुलापर रहैं तबसे वृश्चिककी संक्रांतितक यमपुरी शून्य होजाती है, ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, वृश्चिकके समाप्त होनेपर श्राद्धादि न करनेपर देवताओंके सहित पितर श्वास लेकर दारुणशाप देकर फिर जाते हैं ॥

यत्तु जातूकर्ण्यः—"आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः । तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्" इति ॥ तत्फलातिशयहानिपरम् ॥ 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इति तुर्यपादे वा पाठः ॥ तेन कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम् । अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम् ॥ इदं च श्राद्धमन्नेनैव कार्यं नामान्नादिना । "मृताहं च सपिण्डं च

गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् " इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः ॥

और जातूकर्ण्यने यह लिखाहै कि, पांचवें पक्षमें पितरोंको इच्छा होती है, तिससे उसी पक्षमें देना चाहिये, अन्यत्र दिया हुआ निष्फल होताहै, वह अधिक फलकी हानिका कहनेवाला वाक्यहै । अथवा जातूकर्ण्यके श्लोकमें चौथे चरणका यह अर्थ है, चाहै सूर्य कन्याका हो वा नहो तिससे कन्याके सूर्यमें बडाई मात्र लिखी है, इससे श्राद्धविवेकमें लिखेहुए दो श्राद्ध त्यागने चाहिये, इस श्राद्धको पकान्नसे करै कचेसे न करै. कारण कि, स्मृतिदर्पणमें गालवका कथनहै कि, क्षयीश्राद्ध, सपिंडी, गयाश्राद्ध, महालयको मनुष्य आपत्तिमेंभी कच्चे अन्नसे न करै, किन्तु पक्के अन्नसेही करै ॥

तत्र देवतानिर्णयः ।

अथात्र देवताः संग्रहे—"तातांम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननी स्वभ्रातरस्तत्स्त्रियः । तातांम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥ " अस्यार्थः तातत्रयी पितृत्रयी । अम्बात्रयी च । स्मृत्यर्थसारेपि महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्रशस्तमिति ॥ अत्र विशेषः स्मृतिदर्पणे गालवः—"अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके ॥ अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत् । " जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् । श्राद्धदीपकलिकायां तु पार्वणमुक्तम् । "अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम् । पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत् " इति बृहन्मनूक्तेः । सस्त्रीति मातामहानां सपत्नीकत्वेपि विभवे सति मातामहीनां पृथक्कार्यम् । "महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे मौष्ठे मघासु च " इति निगमोक्तेः ॥ हेमाद्रिमते त्वत्र नवदैवत्यमेव । महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमन्वष्टे शेषं षट्पौरुषं विदुः " इति विष्णुधर्मोक्तेः । तातभ्राता पितृव्यः । जननीभ्राता मातुलः । तत्स्त्रियः । पितृव्यस्त्री, मातुलानी, भ्रातृजायाः पितृष्वसृमातृष्वसृस्वभगिन्योपत्यभर्तृयुक्ताः । तेन सापत्न्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः । एतासु सतीषु न तद्भर्त्रादेर्दानम् । द्वारलोपात् । जायापिता श्वशुरः श्वश्रूरप्यत्रोपलक्ष्या । अत्र मूलं स्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम् ॥

अब यहां संग्रहके वाक्यसे देवता लिखतेहैं कि, पितामाता इनके तीनतीन माताकी सपत्न मातामह आदि तीन और उनकी स्त्री, स्त्री पुत्र आदि, पिताकी जननी, अपने भाई, और उनकी स्त्री, पिता माता और अपनी भगिनी और इनकी सन्तति और पती, जायापिता, श्रेष्ठगुरु, आप्त शिष्य ये महालयविधिमें, तीर्थ में, तर्पणमें, पितर होतेहैं. स्मृत्यर्थसारमें भी कहाहै कि, महालयमें माताका श्राद्ध भिन्न करना अच्छाहै, इसमें विशेष स्मृतिदर्पणमें गालवके वाक्यसे लिखाहै कि, जिसके अनेक माताहों वह दूसरे पक्षके श्राद्धमें अर्घदान भिन्नतासे करैं और पिण्ड एक दे, जिसकी माता जीवित हो वह अपनी माताकी सौतका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण न करै श्राद्धदीपकलिकामें तो पार्वण लिखाहै कारण कि, बृहन्मनुने यह लिखाहै कि, अन्वष्टकाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, मातृश्राद्ध, महालय, माताकी सपत्निका श्राद्ध इनको पार्वणके तुल्य करै, यद्यपि मातामह आदि पत्नीसहित हैं, तोभी सपत्नीपदसे यह जतायाहै कि, जिसके पास

धन होय तो वह नानी आदिका श्राद्ध भी पृथक् करै, कारण कि शास्त्रमें कहा है कि; महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध अन्वष्टकाश्राद्ध तीर्थ, भाद्रपद, मघाके श्राद्धोंमें द्वादश देवता होतेहैं, हेमाद्रिके मतमें तो यहां नौ देवताहैं, कारण कि, धर्मका कथनहै कि, महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धि अन्वष्टकामें नव देवता होतेहैं, शेषोंमें छःपुरुषोंतक जानना, पिताका भाई पितृव्य माताका भाई मातुल उनकी पत्नी चाची और मामी पिता और माताकी भगिनी ये सब सन्तान, पतियोंसे युक्त ग्रहण करनी चाहिये, ये होंय तो इनके भर्ता आदिको पिण्ड न देना. कारण कि, इसमें द्वारका लोप है अर्थात् भर्ताके द्वारा पत्नीको प्राप्त होसकताहै पत्नीके द्वारा पतिको नहीं मिल सकता । जायाका पिता श्वशुर और उससे श्वश्रू (सास) का ग्रहण करना इसका मूल स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है ।

तत्र पार्वणैकोद्दिष्टादिव्यवस्था ।

अत्र पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुराणांतरे-"उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः । श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्च्छिष्यपोषकाः ॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः । पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा । सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये । एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः" ॥ ३ ॥ इति ॥ इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम् ॥ अत्र क्रमान्यत्वेन्याचाराद्व्यवस्था ॥

इसमें पार्वण और एकोद्दिष्टश्राद्धकी व्यवस्था हेमाद्रिमें पुराणान्तरके वाक्यसे लिखीहै कि,(पढानेवाला) गुरु, सास, चाचा, आचार्य, मामा, श्वशुर, भाई, भाईके पुत्र, पोते, ऋत्विक्, पालना करनेवाले, शिष्य, भगिनी, स्वामी, पुत्री, जामाता, भानजे, पिताकी स्त्रियोंके पितर, पिता और माताकी बहन, मित्र, द्रव्यका दाता, शिष्य आदि ये सब महालय तीर्थमें एकोद्दिष्टकी विधिसे प्रयत्नसे पूजनके उचित हैं इनके सिवाय पित्रादिकोंका पार्वण सिद्धहै इसमें क्रमका भेदही है, तोभी कुलाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये ॥

तत्राशक्तौ निर्णयः ।

अशक्तौ तु पृथिवीचंद्रोद्भवे चतुर्विंशतिमते-"एकस्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूजयेत् । दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु ॥" एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः "एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्" इति । अत्रैकपाको वैश्वदेवतन्त्रपिण्डं बर्हिश्चैकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥

अशक्तिमें तो पृथ्वीचन्द्रोदय और चतुर्विंशतिमतमें लिखा है कि, एक ब्राह्मणमें सम्पूर्ण आचार्यादिकोंका पूजन करै, दश वा बारह पिण्डदे, और न करनेको न करै, एकोद्दिष्टका स्वरूप याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, एकोद्दिष्टश्राद्धमें विश्वेदेवा नहीं होते, और एक अर्घ्य एक पवित्री होती है. आवाहन अग्नौकरण नहीं होते, और अपसव्य युक्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, एकोद्दिष्टमें एक पाक, एक विश्वेदेवा, एक पिण्ड और एक बर्हि होती है ॥

पाणिहोमः ।

अत्र पाणिहोमः पिण्डाश्च द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः-"काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् । चतुर्ष्वेषु करे होमः पिंडाश्चात्र द्विजान्तिके" इति ॥ पार्वणैकोद्दिष्टयोः समानतन्त्रत्वे तु अग्निसमीप एव अत्र धूरिलोचनौ वैश्वदेवौ । 'अपि कन्यागते

सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ।' इति हेमाद्रावादित्यपुराणात् । अत्र प्रतिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो वा प्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रौ उक्तम् ॥ एतच्च संन्यस्तपितृकादिना जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ॥ "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः । यत्तु कौण्डिन्यः—"दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥" इति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् । काम्यश्राद्धपरं वा ॥ अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयम् ॥ एतच्च जीवत्पितृकेण पिण्डरहितं कार्यम् । 'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च " इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात् ॥ अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ तथा छागलेयः । "पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथञ्चन । साङ्कल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः ॥" ॥

प्रयोगपारिजातमें आचार्यको ब्राह्मणके हाथमें होम और ब्राह्मणके समीप पिण्डदान करना लिखा है । कारण यह लिखाहै कि, काम्यश्राद्ध, अभ्युदयश्राद्ध, अष्टमीश्राद्ध, एकोद्दिष्टश्राद्ध इन चारोंमें हाथमें होम और ब्राह्मणके निकटही पिण्ड होताहै, यदि पार्वण एकोद्दिष्ट एकबारही कियेजाँय तो अग्निके निकटही पिण्ड होताहै और इसमें धूरि और लोचन नामके विश्वेदेवा होतेहैं, कारण कि, हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथनहै कि, कन्यागत सूर्यमें और काम्यश्राद्धमें धूरिलोचन विश्वेदेवा कहेहैं. महालयमें प्रतिदिन प्रयोगका भेद होनेसे दक्षिणाका भेद प्राप्त होताहै, अथवा सोलह दिनका एक प्रयोग होनेसे अन्तमें दक्षिणा होतीहै, यह हेमाद्रिमें कहाहै, यह श्राद्ध उसमें भी करना चाहिये, जिसका पिता जीवित हो वा संन्यासी होगया हो. कारण कि, कात्यायनने कहा है कि, वृद्धि तीर्थश्राद्धमें पिताके संन्यासी वा पतित होनेमें जिनको पिता पिण्डदान करै उनको पुत्रभी करै, जो कौंडिन्यने यह कहाहै कि, अमावास्याका श्राद्ध, और महालयश्राद्ध गयाश्राद्ध, इनको और तिलोंसे तर्पण उस मनुष्यको न करना चाहिये जिसका पिता जीताहो, यह वाक्य संन्यासीसे भिन्न पिताके विषयमें लिखेहैं । अथवा काम्यश्राद्धके विषयमें जानने जो हमें इसमें अधिक कहनाहै वह हमारे श्रीमत्पिताके किये जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें देखलेना, जीवत्पितृकमनुष्य इसको पिंडरहित करै, कारण कि, दक्षके इस कथनसे उसको पिण्डका निषेधहै कि, मुण्डन, पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको ये दोनों न करैं, जिसका पिता जीवित हो और जो गर्भवतीका भर्ता हो, अन्वष्टकाश्राद्ध और माताका वार्षिकश्राद्ध इनमें तो और वाक्यसे होता है, यह आगे लिखेंगे सोई छागलेय ऋषिने कहा हैं कि, जहाँ किसी प्रकार मघा आदिमें पिंडकी :निवृत्ति होजाय तो वहां ब्रह्मवादीको नियमसे संकल्प करना चाहिये ॥

सांकल्पस्वरूपं च वक्ष्यते ॥ अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम् । सकृन्महालये तु परेद्यि कार्यम् । तदुक्तं नारदीये—"पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिनेदिने । सकृन्महालये चैव परेहनि तिलोदकम् ॥" गर्गोपि—'पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्' इति ॥ तथा प्रयोगपारिजाते गर्गः—"कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेपि तर्पणम् । सकृन्महालये चैव स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥" इदं निषिद्धदिनेपि कार्यम् । 'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा ॥'

इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः । "तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम्" इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च ॥

सांकल्पका स्वरूप आगे लिखेंगे यहां श्राद्धके अंगका तर्पण पक्षके श्राद्धमें प्रतिदिन श्राद्धके उपरान्त करै एकदिनही किसीदिन महालय करै, तो अगले दिन करै सोई नारदने लिखाहै कि, पक्षश्राद्ध करै तो प्रतिदिन तर्पण करै सकृन्महालयमें अगले दिन तिलांजली दे, गर्गने भी कहाहै कि, पक्षश्राद्ध और सुवर्ण-श्राद्धमें पीछेसे तिलांजलि देनी, तैसेही प्रयोगपारिजातमें गर्गने कहाहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होताहै और निषिद्धदिनमें भी प्रतिदिन तर्पण होताहै, और सकृन्महालयमें अगले दिन और निषिद्धदिनमें अगले दिन तर्पण करना चाहिये । तिथि तीर्थविशेषमें सर्वथा तर्पण करना चाहिये यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै स्मृतिरत्नावलीमें लिखाहै कि, तीर्थ और तिथिविशेषमें गया और प्रेतपक्ष (महालय) में निषिद्ध दिनमें भी तिलोंको मिलाकर तर्पण करे ॥

मलमासे श्राद्धनिषेधनिर्णयः ।

एतच्च श्राद्धं मलमासे न कार्यम् । तदाह भृगुः-"वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते"॥ इति हेमाद्रौ नागरखण्डे-"नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः ॥ एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतम्" इति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः ॥ इदं च नित्यं काम्यम् । "पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामान् सुपुष्कलान्" इति जाबाल्युक्तेः ॥ "वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निश्वस्य प्रतिगच्छंति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥" इति कार्ष्णाजिनि-वचनात् ॥

यह श्राद्ध मलमासमें न करना यही भृगुजीने लिखाहै कि, वृद्धिश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्निका आधान, महालय, राजगद्दी ये मलमासमें न करनी चाहिये । हेमाद्रिके नागरखण्डमें भी कहाहै कि, श्रावण वा भाद्रपदमें मलमास होजाय तो पितरोंका पक्ष सातवाँ पक्ष होताहै, और अन्यत्र पांचवां होताहै । त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें भट्टने तो यह लिखा है कि, माता पिताकी मृत्युपर प्रथमवर्षमें नकिये श्राद्धके विषे यह कथनहै यह श्राद्ध नित्य है और काम्यभी है कारण कि, जाबालिने कहा है कि, पांचवें पक्षमें पितरोंके निमित्त देकर मनुष्य पुत्र, अवस्था, आरोग्य, उत्तमऐश्वर्य और सम्पूर्ण श्राद्धोंकी कामनाओंको देताहै, और कार्ष्णाजिनिने यह कहाहै कि, वृश्चिक संक्रांतिके बीतनेपर पितर श्वास लेकर और दारुण शाप-देकर पितृलोकको चले जातेहैं ॥

महालयश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तम् ।

तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-"दुरो अश्वस्य मन्त्रं च दशमासं द्विमासयोः। महालयं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥" इति द्विमासयोः कन्यातुलयोर्महालयश्राद्धं यदा हीनमित्यर्थः ॥

यह श्राद्धके अवहेलनमें ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखाहै कि, जब वर्षदिनके दशमास और कन्या और तुलाकी संक्रांतिके दो महीनोंमें महालय श्राद्ध न्यून होजाय तो (दुरोऽश्वस्य) इस मन्त्रसे जप करनेसे

१ दुरोअश्वस्यदुर इन्द्रगोरसिदुरोयवस्य वसुनइनस्पतिः । शिक्षानरः प्रदिवोअकामकर्शनः सखासखिभ्यस्तमिदं गृणीमासि ॥ ऋ० १ ॥ ४ ॥ १५ ॥

वह सम्पूर्ण होजाताहै, जो कुछ फलकी इच्छासे हो वह काम्य होताहै, और जिसके न करनेमें कुछ प्रायश्चित्त हो वह नित्य होताहै ॥

भरणीश्राद्धनिर्णयः ।

अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये–"भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥" पृथिवीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः–"नभस्यापरपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे । तृतीया चाग्नितारामिः सहिता प्रीतिदा पितुः" ॥

महालयमें भरणीनक्षत्रमें श्राद्ध करना अत्यन्त श्रेष्ठहै यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, पितृपक्षमें भरणी बड़ी श्रेष्ठ कही है । इसमें जिसने श्राद्ध किया वह गयाश्राद्ध करनेके तुल्य होता है, श्रीधरके निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहस्पतिका वाक्यहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको भरणी नक्षत्र और तृतीयाको कृत्तिका नक्षत्र होय तो यह तिथि पिताको प्रीति देनेवाली कही है ॥

एतत्पक्षे षष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा । तदुक्तं वाराहे–"नभस्ये कृष्णपक्षे तु रोहिणी पातभूसुतैः । युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता" ॥

महालयपक्षमें षष्ठीकी योगोंकी विशेषतासे कपिलासंज्ञा लिखीहै, यही वाराहपुराणमें कहाहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षकी छठको रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात, मंगलवार होय तो कपिलासंज्ञा है ॥

व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् । कपिलां च द्विजाग्र्याय दत्त्वा क्रतुफलं लभेत्" ॥२॥ पुराणसमुच्चये–"भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते । पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥" अत्र दर्शांतत्वेन महालयो भाद्रपदकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च ॥ हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः । 'संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना' इति तत्रैवोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कांदे–"देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलां मनःशिलाम् । पत्रकं पद्मकं यष्टिमधु गव्येन पेषयेत् ॥ क्षीरेणालोड्य कल्केन स्नानं कुर्यात्समंत्रकम् । आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम् । पंचगव्यकृतस्नानः पञ्चभंगैस्तु मार्जयेत्" ॥ ३ ॥ पंचभंगैः पञ्चपल्लवैः ॥ तथा–"रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं कारयेद्रविम् । शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोपि वा ॥ सौवर्णमरुणं कुर्यान्नौकां चैव तथा रथम्" ॥ तथा–'अल्पवित्तोपि यः कश्चित्सोपि कुर्यादिमं विधिम् ॥' प्रभासखंडे–"स्थापयेदव्रणं कुंभं चन्दनोदकपूरितम् । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥ रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः । सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य कारयेत्" ॥ २ ॥ ततः सूर्यं कपिलां च षोडशोपचारैः संपूज्य दद्यात् । "दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः । कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी । प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव" ॥ २ ॥ इति ॥ विशेषांतरं तत्रैव ज्ञेयमिति दिक् ॥

उसमें व्रत उपवास और नियमसे सूर्यका पूजन करै और ब्राह्मणको कपिला गौ देनेसे यज्ञका फल मिलता है । पुराणसमुच्चयमें कहाहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें जब हस्तनक्षत्रमें सूर्य होय तो व्यतीपात, रोहिणीनक्षत्र, मंगलवारका योग होय तो वह षष्ठी "कपिला" कहाती है यहां अमावस्यान्त मास लेनेसे महालय

भाद्रपदका कृष्णपक्ष जानना चाहिये यह निर्णयामृत हेमाद्रिमें कथन कियाहै। हस्तका सूर्य तो अधिक फलके निमित्त है कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, हस्तका सूर्य व्यतीपात योग, मंगलवार, रोहिणी नक्षत्र इनके योगसे परमेष्ठीने कपिलाषष्ठी लिखीहै इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, देवदारु, उशीर, चन्दन, कुंकुम, इलायची, मनशिल, पतरज, पद्माख, मुलहटी इनको शहत और पञ्चगव्यमें पीसै और दूधमें मिलाकर सबके कल्क (चूर्ण) से मिलाकर मन्त्रोंसहित स्नान करै कि, हे देवेश सूर्य ! तुम जलरूप हो और ज्योतियोंके स्वामी हो हे देव ! मेरे वाणी, मन, काया, कर्मसे किये पापको नष्ट करो पञ्चगव्यसे स्नान करो तैसेही यह कहाहै कि, नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त सुवर्णका सूर्य निर्माण करै शक्ति होय तो एक पलका वा उसका आधा बनावै वा कर्क (चांदी) का बनावै और सोनेका अरुण सारथि और सोना चांदीका रथ बनावै, थोडा धनहो तो भी मनुष्य इस विधिको करै, प्रभासखण्डमें कहाहै कि, चन्दन और जलसे भरेहुए ऐसे घडेको स्थापन करै जिसमें छेद नहो, और जो लालवस्त्रसे ढका, और तांबेके पात्रसे युक्त हो, जिसमें एक चित्रहो ऐसा पलभर चांदीका रथ बनावै, और पलभर सुवर्णकी सूर्यकी प्रतिमा निर्माण करै, फिर सूर्य और कपिलाका षोडशोपचारसे पूजनकर भक्तिसे दान करै, और इसप्रकार प्रार्थना करै कि, हे सूर्य ! तुम दिव्यमूर्ति जगत्के नेत्रहो, तुम्हारे बारहरूपहैं दिनके करनेवाले हो प्रकाशरूप हो कपिलासहित तुम मुझको मुक्तिदो, हे कपिले ! तुम पवित्र हो और सब जगत्की पवित्र करनेवाली हो जिससे सूर्यके साथ दान कीहुई मुझे मुक्ति दो, अन्यविशेष हेमाद्रिमें ही जानना यही मार्ग है ॥

चन्द्रषष्ठीनिर्णयः ।

इयमेव चन्द्रषष्ठी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा । तदुक्तं भविष्ये-" तद्वद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे । चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे चापरेहनि । चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः" ॥ २ ॥ इति ॥

इसकोही चन्द्रषष्ठी कहतेहैं वह दोनों दिन चन्द्रव्यापिनी लेनी चाहिये, दोनोंदिन चन्द्रोदयव्यापिनी होय तो पहली ग्रहण करनी सोई भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, तैसेही भाद्रपदमासकी कृष्णपक्षकी षष्ठीको चन्द्र षष्ठीका व्रत करना चाहिये, उसमें पूर्वतिथिका वेध श्रेष्ठ है, पहलेदिन वा परलेदिन जो चन्द्रोदयके समय षष्ठी हो वहही भाद्रपदके कृष्णपक्षकी चन्द्रषष्ठी होती है, उसीको प्रयत्नसे व्रत करै ॥

माघ्यावर्षसंज्ञश्राद्धनिर्णयः ।

अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञं श्राद्धमुक्तम् । एतेन माघ्यावर्ष प्रौष्ठपद्या अपरपक्ष इति । इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहःसु कार्यमिति नारायणवृत्तिः हरदत्तस्तु मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति व्याचख्यौ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-"आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माघ्यष्टमी स्मृता । त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥"

अष्टमीको आश्वलायन ऋषिने मघावर्षश्राद्ध लिखाहै कि, भाद्रपदके प्रथम पक्षमें अष्टमीको माघ्यावर्ष श्राद्ध होताहै, यह सप्तमी आदि तीन तिथियोंमें करना चाहिये, यह नारायणवृत्तिमें लिखाहै, हरदत्तने तो मघानक्षत्र युक्त वर्षामें होनेवाली त्रयोदशी श्राद्धको माघ्यावर्ष कहाहै यह व्याख्या की है। पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें माघ्याष्टमी गयाकी समान कही है, त्रयोदशी और गजच्छाया पितृश्राद्धमें गयाके तुल्यहै ॥

महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः।

आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम्। तत्र निर्णयामृते पुराणसमुच्चये–"श्रियोर्चनं भाद्रपदेऽसिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये। समापयेत्तत्र तिथौ च यावत्सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्या" इति॥ तत्रैव–"कन्यागतेर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोर्चनम्। हस्तप्रान्तदलस्थेर्के तद्व्रतं न समापयेत्॥ पूजनीया गृहस्थानामष्टमी प्रावृषि श्रियः। दोषैश्चतुर्भिः संयुक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः"॥ २॥ तथा–"पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्तिता। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ॥ विशेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि" इति॥ दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम्। "त्रिदिने चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत्। पुत्रहा नवमी विद्धा स्वघ्नी हस्तोर्ध्वगे रवौ" इति॥ त्रिदिनावमदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्–"यत्रैकः स्पृशति तिथिद्वयावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः। यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्नां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम्"॥ एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारंभविषयाः मध्ये तु सति संभवे ज्ञेयाः। व्रतस्य षोडशाब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात्। इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। तत्रैव पूजाद्युक्तेः॥ परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव कार्या। अन्यथा पूर्वैव॥ "पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा। त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी" इति॥ मदनरत्ने निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः। "अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः। तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा" इति वचनाच्चेति संक्षेपः॥ इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः।

आश्विनकृष्णाष्टमीको महालक्ष्मीका व्रत होताहै, निर्णयामृतमें पुराणसमुच्चयका कथनहै कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीको लक्ष्मीके पूजनका प्रारम्भ करके जबतक कन्याका सूर्य प्राप्त न हो तबतक समाप्त करदे, अथवा जबतक उस तिथिमें सूर्य कन्याके पूर्वार्द्धमें हो तबतक पूर्णकरै, वहांही यह लिखाहै कि, कन्याके सूर्यमें प्रारंभ करके लक्ष्मीका पूजन करै, और जब हस्तनक्षत्रके चौथे चरणमें सूर्यहो तबतक लक्ष्मीके व्रतको पूर्ण न करै, गृहस्थीको वर्षाऋतुमें लक्ष्मीका अष्टमीको पूजन करना चाहिये। वह अष्टमी संपदा करनेवाली है कि, जिसमें चार दोष नहीं हैं, तैसेही पुत्र, सौभाग्य, राज्य, आयु नष्टकरनेवाली वह अष्टमी कहीहै तिससे सम्पूर्ण यत्नसे कन्याके सूर्यमें त्यागने योग्यहै, और नवमीसे दूषित होय तो विशेषकर त्यागने योग्यहै, अष्टमीके चार दोष वहांही लिखेहैं. तीन दिनमें और अवममें व्रत न करे नवमीसे विद्धा अष्टमी पुत्रको मारती है आधे हस्तनक्षत्रपै जब सूर्य होय तब अष्टमी धनको नष्टकरती है त्रिदिन और अवमका लक्षण रत्नमालामें यह लिखाहै कि, जहां वार एकबार दोतिथियोंके अन्तका स्पर्श करे वह त्रिदिन कहाहै, ये दोनोंही श्रेष्ठ नहीं हैं, यह सब निषेध महालक्ष्मीव्रतके प्रथम प्रारम्भके विषयमें लिखे हैं, मध्यमें तो सम्भव होय तो जानने कारण कि. यह व्रत सोलहवर्षतक होताहै, उसके बीचमें त्यागना नहीं चाहिये, यह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी कारण कि, चन्द्रोदयके समयही पूजा आदि लिखी है, यदि परदिनमें चन्द्रोदयके उपरान्त तीनमुहूर्त व्यापिनी होय तो अगली लेनी, अन्यथा पहलीही लेनी, कारण कि, मदनरत्न और निर्णयामृतमें संग्रहका वाक्यहै कि, पहली या पर विद्धा होय तो चन्दोदयके समयकी ही लेनी यदि चन्द्रोदयके उपरान्त तीनमुहूर्त होय तो वहही पूजने योग्यहै, यहभी लिखाहै कि, आधीरातके पीछे अगली तिथि वर्त्ते तो उसतिथिमें महालक्ष्मीका व्रत निरन्तर करै। इति संक्षेपः। इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः॥

अन्वष्टकाश्राद्धनिर्णयः ।

अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः-"अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहांतकम् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे- "पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः " ॥

अब नवमीको अन्वष्टकाश्राद्ध लिखतेहैं कि, उसमें कात्यायनने यह लिखाहै कि, अन्वष्टकामें नव ९ पिंडोंसे श्राद्धलिखाहै, पिता आदि ३, माताआदि ३, मातामह आदि ३, पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्माण्ड पुराणका यह कथन है कि, पहले पितरोंको दे उसके पीछे माताआदिको और उसके पीछे मातामह- आदिको देना यह अन्वष्टका श्राद्धमें क्रम लिखाहै ॥

श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः"केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः । अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः ॥" दीपिकायां तु मातृश्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तम् । मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः इति ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मेपि-'अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते' इति । अत्र शाखाभेदेन व्यवस्थेति पृथ्वीचद्रोदयः ।.जीवत्पितृकविषयमिति निर्णयदीपः । इदं च जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । तदुक्तं निर्णयामृते मैत्रायणीयपरिशिष्टे "आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति॥" यद्यपि जीवत्पितृकस्य पञ्चान्वष्टका अवश्यं कर्तव्याः । तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी ॥ 'प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । "सर्वासामेव मातॄणां श्राद्धं कन्यागते रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः ॥" इति सूतेनावश्यकत्वोक्तेश्च । अत्र सर्वासामित्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सपत्नमातृभ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥

श्राद्धहेमाद्रिमें छागलेयका कथन है कि, क्षयीश्राद्धमें केवल माताओंका पूजन करै, वृद्धिश्राद्धमें आदिमें, और अन्वष्टकाश्राद्धमें मध्यमें, और अन्तमें कभी न करै. दीपिकामें तो यह लिखाहै कि, मातृश्राद्ध आदिमें करना. कारण कि, यह कथन है कि--मातृकाओंका पूजन अन्वष्टकामें आदिमें करे, हेमाद्रिमें ब्रह्म- पुराणका कथनहै कि, अन्वष्टकाओंमें क्रमसे मातृपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये । यहां शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये । यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै. निर्णयदीपमें यह कहा है कि, जीवत्पितृकही मातृपूर्वक श्राद्ध करै, यह श्राद्ध जीवत्पितृकको भी करना चाहिये । सो निर्णयामृतके परिशिष्ट मैत्रायणीयशाखामें लिखाहै कि, गयाकी प्राप्तिके समयमें अन्वष्टकाश्राद्ध और मरनेके दिनका क्षयीश्राद्ध करना, इस माताके श्राद्धको पुत्र पिताके जीवतेभी करै, यद्यपि जीवत्पितृकको पांचों अन्वष्टकाश्राद्ध अवश्य कर्तव्यहैं, तथापि असमर्थमनुष्यको यह अन्वष्टका श्राद्ध आवश्यकहै कारण कि, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका लेख है कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, इस वाक्यसे सूतनेभी इसको आवश्यक लिखाहै कि, कन्याके सूर्यमें सब माताओंका श्राद्ध नवमीको करना, जिससे उनको ब्रह्माका वर प्राप्तहै, इस वाक्यमें सब माताओंका कहनेसे अपनी माताके जीवते हुए भी माताकी सपत्नीको देना माताकी मृत्यु होनेपर और माताकी सपत्नीको दे, यह बात जीवत्पितृकनिर्णयमें हमारे गुरुने लिखी है ॥

अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैको ब्राह्मणोर्घ्यः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादिप्रयोगे इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ॥ अन्वष्टकाश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव, न सर्वासु । 'अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ' इति छान्दोगपरिशिष्टात् ॥ अत्र भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः पठन्ति च। 'श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तरि लुप्यते' इति तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रम् । श्राद्धदीपकलिकायां ब्राह्मे–"पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित्तु मृताः स्त्रियः । श्राद्धार्हा मातरो ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते" इति ॥ अत्र देशाचाराद्व्यवस्था । इदं चानुपनीतेनापि कार्यम् । तदुक्तं श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये–'अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च' इत्यभिधाय "एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः" ॥

यहां सबका नाम लेकर एक ब्राह्मण, एक अर्घ्य और एक पिण्ड दे, दोमाताओंका एक नाम होय तो द्विवचन आदि प्रयोग करै, यह नारायणवृत्तिमें कहाहै. अन्वष्टका श्राद्ध और उसका त्याग गोभिलियोंको मध्यमामें है सब तिथियोंमें नहीं है कारण कि, छांदोग्यपरिशिष्टका यह लेखहै कि, अन्वष्टकाश्राद्ध मध्यमामें करना यह गोभिल और गौतम कहतेहैं, यहां पतिके मरनेके उपरान्त पहले मृतक हुई माताका श्राद्ध न करना चाहिये, यह कोई कहते और पढते भी हैं माताका श्राद्ध नवमीको करना और भर्ता मृतक होजाय तो उसका लोप होजाताहै, सो यह सब निर्मूल होनेसे मूर्खोंको वंचनामात्र है सिद्धान्त नहीं जानना । श्राद्धदीपकलिकामें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि. पिता और माताके कुलमें उत्पन्न हुई जो स्त्री मरी हों, वह सब श्राद्धके योग माता जाननी चाहिये उनको श्राद्ध नवमीको दिया जाताहै इसमें देशके आचारसे व्यवस्था जाननी उचित है । यह श्राद्ध उसको भी करना चाहिये कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआहो, श्राद्ध तो शूलपाणिने मत्स्यपुराणसे लिखा है कि, अमावस्या, अष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीको कहकर लिखाहै कि, सब पर्वोंमें यज्ञोपवीत नहीं होनेपर भी इसको करै सब कामना और फलके देनेवाले साधारण श्राद्धको भार्यारहित परदेशमें स्थितको भी नित्य करना चाहिये ॥

"शूद्रोप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥" इति तेन साग्नेरेवेदमिति परास्तं अन्वष्टकातः पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम् । लाघवेन मूलैक्यादष्टकापदाविशेषाच्च । तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्र प्रधानत्वं वचनात् । अवेष्टेरिव राजसूयांतर्गतायाः । एतयान्नाद्यकामं याजयेत् इति फलार्थत्वम् । अत्र अष्टकान्वष्टका पूर्वानुरोधात् । तथाग्निपुराणे–"अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥" अपस्तम्बानां–'त्वष्टकासु च वृद्धौ चेत्' इति भाष्यकारैः पाठादष्टकायां मातृकाश्राद्धम् । छान्दोगैस्त्वत्र मातृमातामहश्राद्धे न कार्ये किन्तु त्रिपुरुषमेव । "न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानादिनादृते । कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम्॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् । अन्वष्टकासु तेषां कर्षूविधानादिति शूलपाणिः ॥ यत्तु–"तमिस्रपक्षे नवमी पुण्या भाद्रपदे हि या । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः" इति तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम् । इदं जीवत्पितृकेणापि सपिण्डं कार्यम् । हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे–'अन्वष्टकासु च

स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च' इत्युपक्रम्य 'पिण्डनिर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम' इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनं यस्य जीवत्पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धं तस्य तत्प्राप्त्यर्थमिति श्रीतातचरणाः ।

और मन्त्रोंके विना बुद्धिमान् शूद्रभी इसी प्रकारसे करै इससे इस बातका निषेध हुआ कि, अग्निहोत्रीही इस श्राद्धको करै, और अष्टकासे भिन्नही यह मातृकाश्राद्ध है, यहभी निषेध हुआ कारण कि, इसमें लाघव आता है और सबका मूल एकहै और अष्टकापदसे कुछ विशेष नहीं । इससे और श्राद्धोंमें अंग (अप्रधान) अन्वष्टका श्राद्धको यहां वाक्यसे प्रधानता प्राप्त है, राजसूययज्ञके भीतर अवेष्टिके समानकी अवेष्टीयज्ञ उसे कराना चाहिये, जिसको अन्न आदिकी इच्छा हो, यहां पूर्ववाक्यके अनुरोधसे अष्टकासे अन्वष्टका ग्रहण करनी सोई अग्निपुराणमें कहाहै कि, अन्वष्टका, वृद्धि, गया, और क्षयीश्राद्धमें माताका पृथक् श्राद्ध होताहै, और अन्यत्र पतिके सङ्ग होताहै, आपस्तम्बोंके मतमें तो (अष्टकासु वृद्धौ चेत्) यह भाष्यकारोंके पाठसे अष्टकामें भी मातृश्राद्ध होताहै. छन्दोगोंका तो यह कथनहै कि, अष्टकामें माता और मातामहके श्राद्ध न करने चाहिये, किन्तु तीन पुरुष पर्यन्त करने. कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, मृत्युके दिनको त्यागकर स्त्रियोंको पृथक् न दे, कर्षसे युक्त श्राद्धको त्यागदे उसमें सोलह श्राद्ध होतेहैं । शूलपाणिका यह मतहै अष्टकामें उनके भी कर्षकी विधिहै जो यह किसीका कथनहै कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी नवमी पवित्र है उसमें पितृपक्षके चार पार्वण बुद्धिमान् मनुष्यको करने चाहिये, यह देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचितहै, इसको जीवत्पितृकभी सपिण्ड करै, हेमाद्रिके विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै कि, इसीप्रकार अन्वष्टकाओंमें स्त्रियोंका श्राद्ध करै यह प्रारम्भ करके यह कथन है कि, हे नृपोत्तम ! उसमें भी पिण्डदान करै, श्राद्धविधिसे पिण्डदान प्राप्तहीथा. फिर उसका कथन इस कारण है कि, जिसको पिताके जीने और गर्भिणी स्त्री आदिसे पिण्डदान निषेधहै उसको भी पिंडदानका अधिकारहै यह हमारे पिताजीके चरण कहते हैं ॥

तत्र सुवासिनीभोजननिर्णयः ।

अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे-"मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम् । सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" 'भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता । तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रः सह सुवासिनीम् ॥ तत्रैव मदालसावाक्यम्-"स्त्रीश्राद्धे पुत्र देयाः स्युरलङ्काराश्च योषिते । मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकङ्कणादयः" इति ॥

यहां सुहागिनको भोजनकरना मार्कण्डेयपुराणमें लिखाहै कि, माताके श्राद्धआनेपर ब्राह्मणोंके संग सुवासिनियोंको भी भोजनदेना यह शातातपने लिखाहै, जो स्त्री पतिके आगे मृतकहुई हो वा सतीहुई हो उसके स्थानमें ब्राह्मणोंके संग सुवासिनीको भी युक्त करना, वहांही मदालसाने कहाहै कि, स्त्रीके श्राद्धमें स्त्रीको भूषण, मञ्जीरे, मेखला, कर्णिका, कंकण आदि देना उचित है ॥

अशक्तौ श्राद्धकरणे निर्णयः ।

अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः-'अनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्' इति । हेमाद्रौ पितामहः-"अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥"

इसमें शक्ति न होय तो आश्वलायनने अनुकल्प लिखाहै कि, आठवें प्रहरमें बैलके निमित्त घास लावे, वा अग्निसे तृणको जलावै, इनसेभी अष्टकाश्राद्ध होताहै । हेमाद्रिमें पितामहने कहाहै कि, अमावस्या, व्यतीपात, पौर्णमासी, अष्टकामें श्राद्ध न करनेसे नरकमें जाना होता है ।

अकरणे प्रायश्चित्तनिर्णयः ।

अकरणे च प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने–"एभिर्द्युभिर्जपेन्मत्रं शतवारं तु तद्दिन । आन्वष्टक्यं यदा शून्यं सम्पूर्णं याति सर्वथा" इति ॥ एतत्पक्षे द्वादश्यां विशेषः पृथिवी चन्द्रोदये वायवीये–"संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत्" इति ॥

न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखाहै कि, जब अन्वष्टकाश्राद्ध न होसके तब उसदिन (एभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौवार जपना चाहिये तो अवश्य पूर्ति होतीहै, इस पक्षकी द्वादशीमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें वायुपुराणके वाक्यसे कहाहै कि, पुत्रको संन्यासीपिताका भी वार्षिक श्राद्ध देना चाहिये और महालयमें जो द्वादशी श्राद्ध है वह पार्वण है ॥

मघात्रयोदशीश्राद्धनिर्णयः ।

अथ त्रयोदशीश्राद्धम् । तत्र चन्द्रिका–"त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यंति पितरस्तस्यां स्वयं पञ्चशतं समाः ॥ मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । तृप्यंति पितरस्तद्वद्वर्षाणामयुतायुतम्" ॥ २ ॥ प्रयोगपारिजाते शंखः–"प्रौष्ठमद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छंति पितामहाः" ॥ २ ॥ एतन्नित्यमपि पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे–'प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी' इत्युक्त्वा ॥ "एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः । श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इत्युक्तेः ॥ एतच्चाविभक्तैरपि पृथक्कार्यम् ॥ तथा च हेमाद्रौ–"विभक्ता वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः । मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना" इति ॥

इसमें त्रयोदशीश्राद्ध होताहै, उसमें चन्द्रिकाका कथन है कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी त्रयोदशी मुख्य और पितरोंको प्रियहै, उसमें पितर श्राद्धसे पांचसौ वर्षतक तृप्त होतेहैं, और मघानक्षत्रसे युक्त उसको पानीय आदिसे भी प्रसन्न किये पिता लक्षों वर्षतक तृप्त होते हैं, प्रयोगपारिजातमें शंखका वाक्यहै कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके बीतनेपर मघायुक्त त्रयोदशीको मधु और पायससे श्राद्ध करना चाहिये । तो इच्छित प्रजा यश, स्वर्ग, आरोग्य उनको प्रसन्न हुए पितामह देतेहैं । पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें यह नित्यभी लिखाहै कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके उपरान्त कृष्णपक्षकी त्रयोदशी है, यह लिखकर कहाहै कि, श्राद्धके इतने नित्यकाल ब्रह्माने कहेहैं इनमें श्राद्ध न करनेसे नरक होताहै, इसको इकट्ठे रहतेभी भ्राता भिन्न २ करे. सोई हेमाद्रिमें लिखाहै कि, विभक्त हों वा इकट्ठे हों पुत्र मघानक्षत्रमें भिन्न २ श्राद्ध करे, और अन्यत्र भिन्न २ अधिकार नहीं है ॥

---

१ एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिंगोभिरश्विना इन्द्रेणदस्युंदरयन्तइन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषारभेमहि ऋ० १ । ४ । १५ ॥

तत्र गजच्छायानिर्णयः ।

अपरार्के वायवीये-"हंसे हस्तास्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥" अत्र च । "अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च" । इति विष्णुमनुवचने ॥ केवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः ॥ शूलपाणिस्तु-केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौ च मघायोगश्रुतेर्विधिलाघवात् विशिष्टमेव निमित्तमित्याह ॥

अपरार्कमें वायुपुराणका वाक्यहै कि, हस्तके सूर्यमें मघायुक्त त्रयोदशी वैवस्वती नाम तिथिहै, और गजच्छाया है, और हमारे कुलमें जो वह हो तो उसमें और गजकी प्राक्छायामें मधु, और घीसे युक्त पायस देनी इस मनुवाक्यमें त्रयोदशी लिखी है इससे मघा गौणपक्षहै यह कल्पतरुमें कहाहै । शूलपाणिने तो यह लिखाहै कि, केवल तिथि वाक्योंको अर्थवाद होनेसे और विधिमें मघायोगके सुननेसे और विधिमें लाघवसे, मघा और त्रयोदशी दोनोंही श्राद्धमें निमित्तभूत हैं ॥

वस्तुतस्तु-" मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च । एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च " इति ॥ वसिष्ठवचने केवलमघाश्रुतेर्विनिगमकाभावादुभयं भिन्ननिमित्तम् । पूर्वोक्तवचनाच्च योगाधिक्ये फलाधिक्यम् ॥ अत एव याज्ञवल्क्यः-' तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः ' इति ॥ त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम् । अन्यत्काम्यम् । अत्र त्रयोदश्यां बहुपुत्रा युवमारिणस्तु भवंतीत्यापस्तंबोक्तेर्युवमारित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तधनार्थिनो वाधिकार इति कल्पतरुः ॥ अपत्यनिंदया तदर्थिनां नाधिकारात् । ' फलान्तरकामस्यैवाधिकारः' इति हलायुधः । एतत् पिण्डरहितं कार्यम् । " मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः । ससंतानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः" इति बृहत्पराशरोक्तेः ॥ इदं मलमासेपि कार्यम् । " मघात्रयोदशी श्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् । अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलिम्लुचे ॥ " इति काठकगृह्योक्तेः । यानि तु अंगिराः-" त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः । पंचत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥ " वामनपुराणे-" त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ' इत्यादीनि वचनानि तानि पुत्रवद्विषयाणि वा महालयस्य भिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा काम्यश्राद्धविषयाणि वा सपिण्डकश्राद्धविषयाणि वेति केचित् ॥ हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेकवर्गश्राद्धविषयाणि-" श्राद्धं नैवैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् । न तृप्तास्तत्र ये यस्य प्रजा हिंसंति तस्य ते " इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ यद्यपि-'पितरो यत्र पूज्यंते तत्र मातामहा अपि' इति धौम्योक्तेर्न केवलपितृवर्गस्य प्राप्तिस्तथापि व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोयमित्याहुः ॥ वयं तु पश्यामः । पुत्रवद्विषयाण्येवेति । " असंतानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी । संतानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत् " इति हेमाद्रौ नागरखण्डोक्तेः । पूर्ववाक्यमप्यसंतानस्यैवैकवर्गनिषेधकमिति ॥ अत्र मघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगः ॥ न तु प्रसङ्गसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥

सिद्धान्त तो यह है कि, मधु, घी, दूध, पायससे यह पुत्र हमको वर्षा और मघानक्षत्रमें श्राद्धदेगा, इस वसिष्ठके कथनमें केवल मघाही श्रवण कियाहै विनिगमनाके अभावसे और पूर्वोक्त वाक्यसे दोनों भिन्न २ ही निमित्त हैं. कारण कि, प्रयोगकी अधिकतासे फल भी अधिक मिलताहै, इसीसे याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, तैसेही वर्षा त्रयोदशी और विशेषकर मघामें श्राद्ध देना, त्रयोदशीका श्राद्ध नित्यहै, और श्राद्ध काम्यहै, इस त्रयोदशीमें उसको अधिकार है जिसके निर्दोष बहुतसे पुत्रहों, इस आपस्तम्बके कथनसे जो संतानके दोषको सहसकै और संतानमात्रकी इच्छावाला वा केवल धनकी इच्छावाला है. हलायुधमें तो यह कहाहै कि, संतानकी निंदासे संतानार्थीका अधिकार नहीं है और फलकी कामनावालेका अधिकार है। यह श्राद्ध पिंडरहित करना चाहिये. कारण कि, बृहत्पराशरने कहाहै कि, मघायुक्त त्रयोदशीको सन्तानसहित ब्राह्मण पिण्डदान न करे यह नित्य कविजन जानते हैं. इसको मलमासमें भी करना कारण कि, काठकगृह्यमें लिखाहै कि, मघात्रयोदशी श्राद्धमें प्रत्युपस्थिति (मिलना) ही कारण है इससे अनन्य-गति होनेसे मलमासमें भी श्राद्ध करना, जो ये अंगिरा आदिके वाक्यहैं कि, जो मनुष्य त्रयोदशी कृष्ण-पक्षमें श्राद्ध करताहै, उसके ज्येष्ठ पुत्रका निश्चय मरण जानना. वामनपुराणमें लिखाहै कि, पुत्रवाला गृहस्थी त्रयोदशीको श्राद्ध न करै, ये वाक्य पुत्रवाले गृहस्थीके वा महालयसे भिन्न त्रयोदशीके काम्यश्राद्धके वा सपिण्डक श्राद्धके विषयमें है, कोई यह कहते हैं कि, हेमाद्रि आदिका तो यह कथन है कि, एकवर्गके श्राद्ध विषयमें है कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, त्रयोदशीमें एकवर्गके श्राद्धका प्रारम्भ न करै, करै तो तृप्त न होनेसे पितर उसकी प्रजाकी हिंसा करतेहैं, यद्यपि जहां पितरोंका पूजन होताहै वहां मातामहोंका भी होताहै इस धौम्यकी उक्तिसे केवल पितृवर्गकी प्राप्ति नहीं तथापि व्यामोह (भ्रम) से प्राप्तका यह निषेध है। किन्हींका यह कथनहै. हमतो यह कहते हैं कि, पुत्रवाले गृहस्थीके विषयमें है. कारण कि, हेमा-द्रिमें नागरखण्डका वाक्यहै कि, जिसके सन्तान नहो उसके श्राद्धमें त्रयोदशी लिखीहै और जो सन्तान-युक्त करै तो उसके कुलका क्षय होताहै, पूर्व वाक्य भी सन्तानहीनकोही हो एकवर्गका निषेधक है, इसमें मघा, त्रयोदशी, महालय युगादि श्राद्धको एकतन्त्रसे (इकट्ठे) करै क्रमसे नहीं (इत्यन्यत्र विस्तरः) इसका और जगह विस्तारहै ॥

कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रादिहतानां श्राद्धनिर्णयः ।

अथ चतुर्दशी—पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः—" वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्ज्वलविषाग्निभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी ॥" ब्राह्मे--" युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः । तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥ " नागरखण्डे-" अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा । श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥" एतच्च-'प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणं एकयोगनिर्देशात् । " सर्वेषां तुल्यधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते। सर्वेषां तत्समं ज्ञेयमेकरूपा हि ते स्मृताः " इत्युशनसोक्तेश्च ॥ तच्च कृतक्रियाणामेवेति वक्ष्यामः । मरीचिः—" विषशस्त्रश्वापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रियाः कार्या अन्येषां तु विगर्हिताः ॥" अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो, न तु ब्रह्महा । तस्य पतितत्वादिति शूलपाणिः ॥ अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात् । स्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यं, न पार्वणमिति श्रीदत्तोपाध्यायः ॥ ' इदं विषादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानाम् ' इति वाचस्पतिः ॥

यत्तु शाकटायनः–" जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि । श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम्" इति ॥ तत्प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे उक्तम् ॥ अत एव वैधत्वात् सहगमनेपि न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ एतच्च दैवयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्यमित्युक्तं प्रयोगपारिजाते–"प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः । एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत् " ॥ २ ॥ भविष्येपि–" समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च । चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये ॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते । एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः " ॥ २ ॥ इति ॥ संवत्सरप्रदीपे हारीतः–" विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादितोऽमलान् । ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतंद्रितः ॥ " अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वम् । समूलत्वेपि पार्वणाशक्तपराणि । विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात् कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः ॥ तन्न । वाक्येन प्रकरणस्य बाधात् । पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडार्वाञ्चः ॥ तन्न ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेताका कथनहै कि, जो मनुष्य वृक्षपर चढनेसे लोह, बिजली, जल, विष, अग्नि, नख और दाढवाले जीवोंसे मरेहों उनके श्राद्धमें चतुर्दशी श्रेष्ठहै. ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, जिसके युवा पितर मरेहों वा शस्त्रसे मरेहों उनकी तृप्तिकी इच्छा करता हुआ मनुष्य उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करै. नागखण्डमें लिखाहै कि, जिनकी अपमृत्यु वा शस्त्रसे मृत्यु हुई हे राजन् ! उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करना, यह पूर्वोक्तकथन गौतमके कहे इन दुर्मरणोंके भी उपलक्षणवालाहै कि, अनशनव्रत, शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बंधन, वृक्षआदिसे गिरना जानकर जो इनसे मरेहों, कारण कि एक योग (इकट्ठे) से सब लिखेहैं, और उशनाने भी लिखाहै कि समानधर्मवाले सबके बीचमें एकको भी जो कहाजाय वह सबको तुल्य जानना. कारण कि, सब एकरूप लिखेहैं वह उनकाही होताहै जिनकी क्रिया होचुकीहै, वह आगे लिखैंगे, मरीचिने कहाहै कि, विष, शस्त्र, भेडिया, तिर्यक्योनि, ब्राह्मणसे जो मरेहोंय उनकी क्रिया चतुर्दशीको करनी इनसे अन्योंकी निंदितहै, इस श्लोकमें ब्राह्मणघाती पदसे ब्रह्महत्यारेका ग्रहण नहीहै कारण कि, वह पतितहै यह शूलपाणिने कहाहै, यहां उद्देश्यके विशेषण पुँल्लिंगकी अविवक्षासे शस्त्रआदिसे मृतकहुई स्त्रियोंका भी एकोद्दिष्ट करना, पार्वण न करना. यह श्रीदत्तोपाध्यायका कथनहै, विषआदिसे मृतकहुई स्त्रियोंका यह श्राद्ध करे और जो जननसे मृतकस्त्री हों उनका नहीं यह वाचस्पतिमिश्रका कथनहै. जो शाकटायनने यह लिखाहै कि, जल, अग्नि, संन्यास घरसे जो मरेहों उनका श्राद्ध चतुर्दशीको त्यागकर करे, यह प्रायश्चित्तके निमित्त जलआदिसे मृतकहुओंके निमित्तहै, यह आकरमें कथनहै, इसीप्रकार हेमाद्रिने लिखाहै कि सतीहोनेमें शास्त्रोक्तहोनेसेभी नकरे यह श्राद्ध विश्वेदेवाओंसे युक्त एकोद्दिष्ट करना चाहिये । यह प्रयोगपारिजातमें लिखाहै, मनुनेभी लिखाहै कि, यदि वह श्राद्ध दैवहीन होय तो पुत्र, दारा, धनका क्षयकरताहै, प्रेतपक्षकी चतुर्दशीको विधिसे दैवयुक्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे तो पितरोंको अक्षयप्राप्त होताहै, एकोद्दिष्ट दैवयुक्त होताहै, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, समताको प्राप्तहुए और शस्त्रसे मृतकहुए पिताका महालयकी चतुर्दशीको एकोद्दिष्ट करे सपिंडीकरनेके पीछे चतुर्दशीमें जो श्राद्धहै वह एकोद्दिष्टविधिसे उसका करना जो शस्त्रसे मृतकहुआ हो सम्वत्सरप्रदीपमें हारीतने कहाहै कि, वहांभी निर्म्मल विश्वेदेवाओंकी पूजा करके जो शस्त्रसे मरेहैं उनका आलस्यको त्यागकर श्राद्धकरे, इसमें एकोद्दिष्टश्राद्धके बोधक वाक्य निर्मूलहैं.

और मूलसहित भी मानो तो उसके निमित्तहैं जो पार्वणश्राद्धकरनेमें समर्थ नहींहै. कारण कि, विष्णु-आदिके वाक्योंके प्रकरणसे कृष्णपक्षमें पार्वणही प्रतीतहोताहै यह शूलपाणिका कथनहै, सो उचित नहीं, कारण कि, वचनसे प्रकरणका बाध होजाताहै पिछले गौड तो यह लिखतेहैं कि, पिताआदिकोंका पार्वण, भ्राता आदिकोंका एकोद्दिष्ट होताहै सो उचित नहीं ॥

पितुरित्यनेन विरोधात् ॥ विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च । अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो, न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति । 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' ॥ इति कालादर्शात् । वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च । तेन महालये एव दिनांतरे पार्वणं माता-महादितृप्त्यर्थं कार्यमेव । पितामहोपि शस्त्रहतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृ-त्यन्तरे-'एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्' । इति । त्रिशस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम् । यत्तु देवस्वा-मिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यम् । न तु पार्वणमाहत्य वचनाभा-वादिति । तदयुक्तम् । "पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात् । स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथक्पृथक्" ॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः । "एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विद्युच्छ-स्त्रेण वा हते । एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्त्रयाणां दर्शवद्भवेत् ॥" इति स्मृत्यन्तराच्चेति पृथ्वीच-न्द्रोदये उक्तम् ॥ अपरार्के हेमाद्रौ चैवम् ॥ यत्तु अत्रैव शस्त्रादिना हतस्तस्य वार्षिक-मेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यं न तु श्राद्धद्वयम् । प्रसङ्गसिद्धेरिति पृथ्वीचन्द्रोदये ॥

कारण कि, (पितुः) इस पूर्वोक्तवाक्यसे विरोधहै, और विशेषवाक्यभी व्यर्थहोजाँयगे, यहां शस्त्रसे मृतककाही चतुर्दशीको करना यह नियमहै, और चतुर्दशीकोही शस्त्रसे मृतकका यह नियम नहीं. कारण कि, महालयमें शस्त्रहतकाही चतुर्दशीको श्राद्धकरना कहाहै, पितामह भी यदि शस्त्रसे मराहोय तो दो एकोद्दिष्ट करे, सोई हेमाद्रिमें किसीस्मृतिका वाक्यहै कि, एकतिथिमें दोकाभी एकोद्दिष्ट होताहै, यदि तीनशस्त्रसे मृतकहुए होंय तो पार्वणही करना, जो देवस्वामीमें लिखाहै कि, यदि तीन शस्त्रसे मरे होंय तो तीनदिन एकोद्दिष्ट भिन्न २ करे, पार्वण नकरे. कारण कि, कोई भिन्नवाक्य नहींहै, सो उचित नहीं जिसके पिताआदि तीन शस्त्रसे मरे हों वह चतुर्दशीको पार्वणकरै, और प्रतिवर्ष क्षयाके श्राद्ध भिन्न २ करै यह बृहत्पाराशरने लिखाहै, और यह अन्यस्मृतिका भी कथनहै कि, एक वा दो बिजली वा शस्त्रसे मरे होंय तो पुत्र एकोद्दिष्ट करै, और तीनका अमावस्याके तुल्य पार्वणश्राद्ध करै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कथन कियाहै. अप-रार्क और हेमाद्रिमें भी इसीप्रकार लिखाहै, जो किसीने यह लिखाहै कि, इसीतिथिमें जो शस्त्रआदिसे मृतकहै उसका वार्षिकमें पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना और प्रसंगसे दोश्राद्ध न करने यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै ॥

श्राद्धाकरणे निर्णयः ।

अत्र श्राद्धाकरणेऽग्रिमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम् । यद्यपि-"शस्त्र-विप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥" इति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धम् । तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यम् । वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम् ॥ यत्तु-'चतुर्दश्यां तर्पणीया लुप्त-पिण्डोदकक्रियाः ॥' इति ब्राह्मे ॥ तद्गौणमिति शूलपाणिः ॥ लक्षणायां मानाभा-वात् । "पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च ॥" इति गयादिवद्विशेषविधि

बलात् पतितानामपि कार्यमिति नव्यगौडाः । तत्त्वं तु समत्वमागतस्य इत्यादिवशात् कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः ॥ यत्तु मनुः-"न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते" इति ॥ अत्र पूर्वार्द्धं हेतुत्वेनोक्तम् । तद्यथाश्रुतमेव मन्वते पृथ्वीचन्द्रोदयादयः । आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु सांकल्यादेरपीत्यस्मद्गुरवः ॥

यदि इसतिथिमें श्राद्ध नहोसकै तो अगले कृष्णपक्षमें वा और दिनमें पार्वणही करै. यह यहांही लिखाहै यद्यपि शस्त्र, ब्राह्मण, सींगवाले, और दाढवाले, सर्पसे जो मृतकहुएहैं और जिन्होंने शरीरका स्वयं त्यागकियाहै उनका श्राद्ध नकरे, यह छागलेयआदिऋषियोंने शस्त्रआदिसे मृतकहुओंका श्राद्धमें निषेधकिय है । तथापि प्रमादसे जो मृतकहुएहैं उनको श्राद्धकी योग्यताहै इससे करना. वृद्धआदिसे भिन्न जो जानकर मरेहैं उनका नकरना जो ब्रह्मपुराणमें यह लिखाहै कि, चतुर्दशीमें मरोंका तर्पणकरे, और पिंडदान नकरे, यह गौणपक्ष है. यह शूलपाणिका कथन है, लक्षणामें प्रमाणका भाव नहींहैं, इससे पतितभी श्राद्धकरे, और पतितकाभी करना इसकथनसे गयादिके समान विशेष विधिके बलसे पतितोंका भी करना यह गौडोंका कथनहै. सिद्धान्त तो यहहै कि, समताको प्राप्तहुए (संन्यासी) इत्यादि वाक्यके वशसे जिनकी क्रिया होचुकीहो उनका श्राद्धकरना औरोंका नहीं यह हम जानतेहैं जो मनुने यह लिखाहै कि, पितृयज्ञका होम लौकिकअग्निमें नहीं करे और अमावस्याके विना अग्निहोत्रीका श्राद्ध न करे. इसमनुके कथनमें पूर्वार्द्ध हेतु लिखाहै तिससे मेरे मतमें पृथ्वीचन्द्रोदयका कथन यथाश्रुतहै, हमारे गुरुजीका तो यह कथनहै कि, अग्निहोत्रीको पिंड पितृयज्ञकी विधिसे श्राद्ध निषेधके निमित्त यह कथनहै, संकल्पके निमित्त नहीं ॥

कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति तु वयम् । दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न ॥ तेन क्वापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति हरिहरः ॥ इति चतुर्दशी ॥

हमारा तो यह कहनाहै कि, अग्निहोत्रीको कृष्णपक्षका श्राद्ध जो और दिनोंमें प्राप्तहै वह अमावस्याकोही करना चाहिये, यह इस वाक्यसे नियम करतेहैं. हरिहरका तो यह कहनाहै कि, दर्शपदसे पार्वणका ग्रहण है तिससे अग्निहोत्रीको पार्वणही करना, एकोद्दिष्ट वार्षिक आदि कभीभी न करने ॥ इति चतुर्दशी ॥

आश्विनकृष्णामावस्यायां गजच्छायानिर्णयः ।

अमायां विशेषमाहापरार्के यमः--"हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता । सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत् । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्" ॥ २ ॥ भारते--"अजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ॥" श्राद्धं दद्यादिति शेषः ॥

अपरार्कमें यमने अमावस्याको विशेष लिखाहै कि, हस्तनक्षत्रके सूर्यमें जो हस्तनक्षत्रसंयुक्त अमावस्या है वह गजच्छाया जाननी यह बौधायनने लिखाहै, वनस्पतिमें प्राप्त चन्द्रमामें जो छाया पूर्वमुखी हो वह गजच्छाया लिखीहै उसमें श्राद्ध करना भारतमें लिखाहै कि, अज और सर्वलोहसे वर्षाके दिनोंमें सावधान होकर गजच्छायामें विधिसे वीजनेसे वायु करके श्राद्ध दे ॥

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रश्राद्धनिर्णयः ।

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य मातामहश्राद्धमुक्तम् । हेमाद्रौ संग्रहे च-" जातमात्रोपि

दौहित्रो विद्यमानेपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते" इति ॥ इयं संगवव्यापिनी ग्राह्येति निर्णयदीपे उक्तम् । "प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् । श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सदा ॥ जातमात्रोपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले । प्रातः संगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद्भवेत्" ॥ २ ॥ इति वचनात् । अत्र समूलत्वं विमृश्यम् ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । "स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले" इति निषेधात् ॥ इदं च जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः ॥ इदं च शिष्टाचारात्सपिंडकं कार्यमिति केचित् ॥ पिंडरहितं तु युक्तं जीवत्पितृकस्य--"मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च" इति दक्षेण पिंण्डनिषेधात् आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेति संक्षेपः । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ महालयनिर्णयः ॥

आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको दौहित्र मामाके जीवित होतेभी आश्विनशुक्ल १ को मातामहका श्राद्ध करै, यह संगव व्यापिनी लेनी, यह निर्णयदीपमें लिखाहै कारण कि, यह कथनहै कि, आश्विन शुक्ल १ प्रतिपदाको दौहित्र १ एक पार्वणश्राद्ध मातामहका संगव कालमें सदैव करै, उत्पन्न हुआभी दौहित्र मामाके होते भी प्रातःकाल और संगवके मध्यमें प्रतिपदामें श्राद्ध करै, इसमें मूल नहीं मिलता, यह मलमासमें न करना चाहिये, कारण कि, यह निषेधहै जहां मासविशेषका नाम स्पष्टहो उसको मलमासमें त्यागदे, इसको जीवत्पितृकही करै यह शिष्टोंका कथन और शिष्टोंके आचारसे यह पिण्डसहित करना । कोई यह कहते हैं कि, पिण्डरहित करना तो युक्तहै, कारण कि, जीवत्पितृकको इस दक्षके वाक्यसे पिण्डका निषेधहै और अन्वष्टका श्राद्धके तुल्य कोई विशेष वाक्य नहीं कि, मुण्डन, पिण्डदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीका पति न करै, यह संक्षपसे कहाहै ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां महालयनिर्णयः ।

अथ नवरात्रारंभस्तन्निर्णयः ।

अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भस्तन्निर्णयः ॥ तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे सुमेधा उवाच -"शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चंडिकापूजनक्रमम् । आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सुशुभे दिने" इत्युपक्रम्योक्तम् । "शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी । आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडशद्वादशापि वा॥अपराह्णे च कर्तव्यं शुभसंततिकांक्षिभिः ।" इदं चापराह्णयोगिन्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदाभावे ज्ञेयम् । तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतंत्रे च देवीवचः--"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपत्पूजने मम । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ॥ आद्याः षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः ॥ कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् " ॥ २ ॥ मार्कंडेयदेवीपुराणयोः--"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी । नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता । देशभंगो भवेत्तत्र-दुर्भिक्षं चोपजायते । नंदायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम्" ॥ २ ॥ इति ॥ स्कांदेपि--"प्रतिपद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत् ॥ भाद्रपंचदशी कृष्णा तथा युक्ता न शस्यते ॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभयावहा" इति ॥ तथा--"वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव । द्वितीयादिगुणैर्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा" ॥ तथा देवी-

पुराणे--"यो मां पूजयते नित्यं द्वितीयादिगुणान्विताम् । प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥ यदि कुर्यादमायुक्तां प्रतिपत्स्थापने मम । तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम्॥आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम।तस्य संपद्विनाशःस्याज्ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥ अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चंडिकार्चने । धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥ न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चंडिकार्चने । उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयदायिनी ॥ इति ॥

इसके पीछे आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको नवरात्रका आरम्भ और उसका निर्णय कथन करते हैं, सोई मार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणमें सुमेधाका कथनहै कि, हे राजन् ! सुनो चण्डिकाके पूजनका क्रम वर्णन करतेहैं आश्विनके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा और शुभदिनमें यह प्रारम्भ करना चाहिये. प्रारम्भ करके लिखाहै कि, शुद्धतिथिमें करना जब प्रतिपदा ऊर्ध्वगामिनी होय तो प्रथम सोलह और बारह घड़ियोंको छोडदे और शुद्धसन्तानकी इच्छावालेको अपराह्णमें करनी चाहिये, यह वाक्य उस प्रतिपदामें जानना जो सन्ध्या समय श्रेष्ठहो और दूसरे दिन प्रतिपदा न हो इस प्रकार वहांही देवीपुराणमें डामरका वाक्यहै कि, मेरे पूजनमें अमावस्यायुक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और द्वितीया आदि गुणोंसे युक्त मुहूर्त्तमात्रभी ग्रहण करनी जो मनुष्य प्रथम सोलह घडीमें कलशको स्थापन करताहै उसको अवश्य अरिष्ट होताहै, मार्कण्डेय और देवीभागवतमें लिखा है कि, आश्विन शुद्धप्रतिपदा पूर्वविद्धामें शुभकी इच्छावाले मनुष्यको व्रत न करना चाहिये, अमावस्यासे युक्त नन्दामें जहां मेरी पूजा होतीहै वहां देशका भंग और दुर्भिक्ष होताहै । स्कन्द-पुराणमें भी लिखाहै कि, आश्विनमासकी प्रतिपदा शुद्ध होय तो शुभ फलदायक होतीहै और भाद्रपदकी अमावस्या प्रतिपदासे युक्त होय तो उत्तम नहीं. कारण कि, वह विपरीत फलकी दाता और पुत्र और स्त्रीको भयदायक होती है. इसी प्रकार कहा है कि, जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा प्रयत्नसे छोड दे और द्वितीयाआदि गुणोंसे युक्त प्रतिपदामें जानकर पूजा करताहै वह अविनाशी सुखको भोगता है जो मनुष्य अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाको मेरी पूजा करताहै, उसको मैं सहस्रों शाप देकर भस्म करदेती हूं, जो आग्रहपूर्वक मेरे कलशको स्थापन करताहै उसकी सब सम्पदा नष्ट होजाती है और ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु हो जातीहै, चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा धनके अर्थियोंको विशेषकर न करनी. कारण कि, वंशकी हानिभी होती है, और द्रव्य भी नष्ट होजाताहै, चण्डिकाके पूजनमें अमा० (३०) की कलासे भी युक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और उदयकालमें दो मुहूर्त्त भी होय तो ग्रहण करनी ॥

देवीपुराणे--" या चाश्वयुजि मासे स्यात्प्रतिपद्भद्रयान्विता । शुक्ला ममार्चनं तस्यां शतयज्ञफलप्रदम् ॥" रुद्रयामले--" अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निंदिता मता । तत्र चेत्स्थापयेत्कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ प्रतिपत्सद्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि" इति ॥ यद्यपि रुद्रयामलं डामरं च निर्मूलं तथाप्यविरोधात् प्रचाराच्च तद्वचनानि लिख्यन्ते

देवीपुराणमें लिखाहै कि, द्वितीयासे युक्त आश्विनशुक्ल प्रतिपदामें जो मेरा पूजन करताहै उसको सौ १०० यज्ञका फल प्राप्त होताहै. रुद्रयामलमें लिखाहै कि, अमावास्यासे युक्त प्रतिपदा सदा निंदित मानीहै, उसीमें घटका स्थापन करै तो अवश्य दुर्भिक्ष होताहै, द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा घटस्थापनमें उत्तम है, यद्यपि रुद्रयामल और डामर ये दोनों ग्रन्थ निर्मूलहैं तथापि अविरोधसे और प्रचारसे उनके वाक्य लिखतेहैं ॥

तिथितत्त्वे देवीपुराणेपि—" प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥ " तत्रैव—" शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ॥ सा कार्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता ॥ " तथा—" कुहूकाष्ठोपसंयुक्तां वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम् । राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निंदिता चाश्वपूजने " इति ॥ एषु वचनेषु कलशस्थापनग्रहणात् तदेव प्रथमदिने निषिध्यते । न तूपवासादि । तस्य—' प्रतिपद्यप्यमावास्या ' इति युग्मवाक्यात् । 'शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः' इति दीपिकोक्तेः ॥

तिथितत्त्व और देवीभागवतमें लिखाहै कि, प्रातःकाल देवीका आवाहन करै, और प्रातःकालही प्रवेश करै और प्रभातही पूजन करके विसर्जन करै. वहांही कहाहै कि, शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा की जातीहै वह उदयकालकी तिथिमें करनी चाहिये । उसमें दोतिथिके योगका नियम नहीं है. कहाभीहै कि, अमावस्याकी एक घड़ीसे युक्तभी प्रतिपदातिथिको त्यागदे. कारण कि, वह राज्यनाशके निमित्त कथन कीहै इससे अश्वोंके पूजनमें निन्दितहै इनवाक्योंमें कलशस्थापनके ग्रहणसे घटस्थापनकाही प्रथमदिन निषेधहै, व्रतआदिका नहीं, कारण कि, व्रतकी प्रतिपदामें भी अमावस्या होय तो इस युग्मवाक्यसे और व्रतमें शुक्लकी पहलीतिथि होतीहै, यह दीपिकाके कथनसे है ॥

' शुक्लपक्षे दर्शविद्धा' इति माधवोक्तेश्च । पूर्वदिने प्राप्तस्य बाधे मानाभावादिति केचित् । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चनपूजाग्रहणादुपवासादेश्चाङ्गत्वात् प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तम् ॥ कलशस्थापनग्रहणं तूपलक्षणम् । अत एव देवलः—" व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् । सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके " इति ॥ अत्र घटिका मुहूर्त इति ॥ गौडाः ॥ यदा तु पूर्वदिने सम्पूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्धते तदा सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव ॥ यानि च द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि केचित् पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकानिषेधपराणि । परदिने प्रतिपदोत्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुतापि पूर्वैव ग्राह्या । तदाह लल्लः—' तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् ' इति ॥ यानि तु—' अमायुक्ता प्रकर्तव्या ' इत्यादीनि नृसिंहप्रसादे वचनानि ॥ तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि । अत्रेदं तत्त्वम् । पूर्वोक्तवाक्यानां सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेः सामान्यनिर्णयात् । पूर्ववत् प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी ग्राह्या । तत्रापि ' घटिका ' इत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतित्वोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या । ' उदिते दैवतं भानौ ' इत्यत्र ' द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च इति औदयिक्या द्विमुहूर्तत्वनियमात् । तेन ' उदये द्विमुहूर्तापि ' इत्याद्यनुसारोपि ' मुहूर्तमात्रा कर्तव्या' इति द्विमुहूर्तस्तुतिः अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् । केचित्तु—' मुहूर्तमात्रा' इति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः ॥ गौडा अप्येवम् ॥

और शुक्लपक्षमें अमावस्यासे विद्धा प्रतिपदा ग्रहणकरनी, इस माधवके कथनसे पूर्वदिनमें प्राप्त उस व्रतके न करनेमें प्रमाण नहीं है यह कोई लिखतेहैं. सिद्धान्त तो यहहै कि, पूर्वोक्तवाक्योंमें चंडिकाके पूजनका ग्रहणहै, और व्रतभी पूजनका अंग है, इससे प्रधान देवीपूजा आदिमें भी अगली लेनी यह युक्तहै, घटके स्थापनका ग्रहण तो उपलक्षण है इसीसे देवलने लिखाहै कि, व्रत और उपवासके नियममें जो एकघड़ी

भी हो वह तिथि उसदिन पूजनेयोग्य है, और इससे विपरीत पितृकर्ममें पूज्यहै, यह घटिकाके मुहूर्त्तसे ग्रहणकरना यह. गौडोंका कथनहै, जब प्रथमदिन सम्पूर्ण और शुद्धहोकर परदिनमें प्रतिपदा बढजाय तब सम्पूर्ण होनेसे अमावस्यायोगके नहोनेसे पहलीही ग्रहणकरनी, और जो कोई द्वितीयायोगके निषेधकरनेवाले वाक्योंको पढतेहैं वेभी शुद्धासे अधिकके निषेधकरनेवाले हैं, यदि दूसरेदिनमें प्रतिपदा सर्वथा न होय तो अमावस्यासे युक्त प्रथमही लेनी. सोई ललने लिखाहै कि, शरीर, कारण,: साधन, प्रमाण, तिथिहीहै और जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा करनी इत्यादि नृसिंहप्रसादके वाक्यहैं वेभी समूल होंय तो उसी प्रतिपदाके विषयमें हैं, यहां यह तत्वहै कि, पूर्वमें कहे सब वाक्योंको हेमाद्रिआदिमें न लिखनेसे निर्मूल होनेसे और उन्होंने भी और निर्णय नहींकरा इससे सामान्यनिर्णयसे पहलेके समान प्राप्तिहोय तोभी गौडग्रन्थोंमें विशेषनिर्णयसे उदयकालकी ग्रहणकरनी, और वहांभी एकघडी हो उसे द्विमुहूर्त्त कहनाचाहिये । यह स्तुतिके निमित्तहै, इससे द्विमुहूर्त ग्रहण करनी कारण कि, सूर्यके उदयपर देवकर्म करना, यहां दिनके दोमुहूर्त्त लेनी इससे दोमुहूर्त्तका नियमहै इससे उदयमें दोमुहूर्त्त लेनी इसका भी अनुसारहै, मुहूर्तमात्र करनी यह तो दोमुहूर्त्तकी प्रशंसा है, अन्यथा दोमुहूर्त्तकी विधि व्यर्थपडैगी. कोई तो यह कहतेहैं कि, मुहूर्त्तमात्र हो इसकथनसे इससे न्यूनहोय तो अगली न करनी, गौडोंका भी यह कथनहै ॥

अत्र देवीपूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गम् । " अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः " इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसंबन्धात् । ' नवमीतिथिपर्यंतं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ' इति तत्रैव देवीपुराणात् । ' शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी' इति मार्कण्डेयपुराणाच्च । पूर्ववचनादष्टमीपूजैव प्रधानमन्यत्सर्वमंगमिति गौडाः ॥ एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे–" यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यामथ साधकः । पूजयेद्वरदां देवीं महाविभवविस्तरैः " इति ॥

यहां देवीकी पूजाही प्रधानहै, व्रत आदि उसके अंगहैं, कारण कि, हेमाद्रिमें इस भविष्यपुराणके कथनमें पूजाकाही सम्बन्ध है कि, अष्टमी वा नवमीमें जगत्की माता अंबिकाका पूजनकरके मनुष्य शोकसे रहितहोताहै, देवी और मार्कण्डेयपुराणमें लिखाहै कि, नवमीतिथिपर्यन्त वृद्धिसे पूजा और जपआदि करना शरत्कालमें जो मेरी वार्षिकपूजा कीजातीहै प्रथमके वाक्यसे अष्टमी वा नवमीमें पूजाकरनाही प्रधानहै और सब अंगहैं, यह गौडोंका कथनहै । एकदिनकी पूजाका पक्षभी कालिकापुराणमें लिखाहै । साधक मनुष्य अष्टमी वा नवमीको वरकी दात्री देवीका अपने धनके अनुसार पूजन करै ॥

तत्त्वं तु–राजसूयेन्ययागैः समप्रधानायाः सहिताया अप्यवेष्टेः एतयान्नाद्यकामं याजयेदित्येकत्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो बहिः प्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थाया अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक् प्रयोगः ॥ रूपनारायणधृतदेवीपुराणे–" महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका ॥ सर्वेषु वत्स वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता ॥ कृत्वाप्नोति यशोराज्यपुत्रायुर्धनसंपदः ॥ " सा च काम्या नित्या च । " एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं प्रपूजनम् । विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम् " इति ॥ " यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे । न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यत्र भैरव । क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै" इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः ।'वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च विसर्जनम्' इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च ॥

सिद्धान्त तो यहहै जैसे राजसूययज्ञमें और यज्ञोंके तुल्य और प्रधानअवेष्टि यज्ञका अन्नकी इच्छावाला अवेष्टियज्ञ करै, इसवाक्यसे एकवाक्यता और मध्यमें विधिहोनेसे फलके निमित्त प्रयोगहै तैसेही नवरात्रमें अष्टमी नवमीका फलके निमित्त पृथक्प्रयोग है, रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका कथनहै कि, हे पुत्र ! सबकामनाओंकी दायक यहपूजा भक्तिसे तुमसे वर्णन कीहै इसको करके यश, राज्य, पुत्र, आयु, धन, सम्पदाको प्राप्तहोताहै, यह व्रत काम्य और नित्य जानना कारण कि, कालिकापुराणमें इनवाक्योंसे फल और निन्दा दोनों सुनीहैं कि, इसीप्रकार और मनुष्यभी अतुलधनके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी दाता देवीके पूजनको नवरात्रमें करे जो मनुष्य मोह आलस्य, दम्भ, द्वेषसे महोत्सवमें देवी दुर्गाका पूजन नहीं करता, तो उसपर क्रुद्धहुई भगवती उसके मनोवांछितकार्योंको नष्टकरतीहै, तिथितत्वमें देवीपुराणका कथनहै कि, वर्षवर्षमें देवीका स्थापन और विसर्जन करे ॥

तत्रोपवासादिनिर्णयः।

अत्रोपवासादिकमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये--"एवं च विंध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ॥ गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः" ॥ ३ ॥ इति ॥ यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये–'एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः' इति ॥ तत्तामसपूजापरम् । 'विना मन्त्रैस्तामसी स्यात्किरातानां तु संमता' इति तत्रैवोक्तेः ॥ मदनरत्ने देवीपुराणेपि--"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ॥ अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाम्बुदः । भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा । वस्त्रालङ्कारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत् । त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः" ॥ ३ ॥ इति नन्दिका प्रतिपत्तिथिः इति मैथिलाः । षष्ठीति गौडाः ॥

इसमें व्रतआदिभि हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखेहैं कि, इसीप्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रतसे एकवारभोजन, रात्रिभोजन अथवा अयाचितभोजनसे स्थान २, पुर २, घर २, ग्राम २, वन २ में शक्तिमान् प्रसन्न और आनन्दहुए ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे संयुक्त म्लेच्छ और दूसरेभी मनुष्य देवीका पूजनकरैं, जो रूपनारायणीयग्रन्थमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, इसीप्रकार देवीको सम्पूर्ण म्लेच्छोंके गण और सब चौर पूजतेहैं वह वाक्य तामसीपूजाके विषय जानना कारण कि, वहांही लिखाहै कि, मंत्रोंके विना तामसी पूजा होतीहै, वह भीलोंके योग्य है, मदनरत्नमें देवीपुराणका वाक्य है कि, हे इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी नन्दासे लेकर विना मांगे प्राप्तहुए अन्नको भोजनकर एकवार भोजन, रात्रिभोजन अथवा जलपान करै । भूमिपर सोवे, न्योतकर कुमारियोंको आनन्दसे भोजन करावे और उनको वस्त्र, अलंकार देकर प्रतिदिन प्रसन्न करना चाहिये, और भात, उर्द, मांसकी प्रतिदिन बलि दानकरे, जप और स्तुति करता हुआ, त्रिकाल देवीका पूजनकरे, इनवाक्योंसे नन्दासे प्रतिपदा मैथिल ग्रहणकरतेहैं और गौड षष्ठी ॥

रात्रौ पूजानिर्णयः।

तत्र पूजनं रात्रौ कार्यम् । "आश्विने मासि मेघान्ते महिषासुरमर्दिनीम् । निशासु

पूजयेद्भक्त्या सोपवासादिकः क्रमात्" इति देवीपुराणात् ॥ संग्रहेपि–"आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत् । तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं च पूजयेत् ॥ रात्रिरूपा यतो देवी दिवारूपो महेश्वरः । रात्रिव्रतमिदं देवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वकामप्रदं नृणां सर्वशत्रुनिबर्हणम् । रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते ॥ नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः" ॥ इत्यादिवचनाच्च रात्रिव्रतत्वमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम्–तस्य नक्तव्रतत्वादिति ॥ न तु रात्रिभोजनात् ॥ ननु–"मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः । संपूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात्समाहितः ॥ नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम् । आरंभे नवरात्रस्य" इत्यादिस्कान्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेन्न ॥ 'नवरात्रोपवासतः' इत्यादेरनुपपत्तेः । तेन पाक्षिकनक्तानुवादोयम् । नित्यानित्यसंयोगविरोधात् । न ह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य दध्ना जुहोतीत्यस्येंद्रियकामहोमेनुवादो घटते । नित्यवदनुवादायोगादित्युक्तं वार्तिके तथात्रापि । तेनात्र तद्वदेव गुणात् फलमिति ज्ञेयम् ॥ ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वैव प्रतिपत् प्राप्नुयात् ॥ मैवं न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्बाधात् । यथा पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापिनीमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि परैव रामनवमीति प्रागुक्तम् । यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वां जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता परैवेति माधवेनोक्तं तथात्रापि । वस्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्यलिखनात् । समूलत्वं विमृश्यमेव । 'त्रिकालं पूजयेत्' इत्यादिपूर्वविरोधाच्च माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम् । तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम् ॥ अत्र केचिन्नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः "वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां ह्रासेऽमाप्रतिपन्निशि । प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोर्थवत्" इति देवीपुराणादित्याहुः । तन्न । अतिह्रासवृद्ध्योर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः । अत्र मूलाभावाच्च तेन तिथिवाच्येवायम् । तदुक्तं–" तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् । अष्टरात्रे न दोषोयं नवरात्रतिथिक्षये" इति ॥ स च नवरात्रशब्दः क्वचिल्लक्षणया कर्मवाची ॥

यह पूजन रात्रिमें करना कारण कि, देवीपुराणमें लिखाहै कि, आश्विनमास और वर्षाके अन्तमें महिषासुरमर्दिनी देवीका व्रत करके भक्तिसे रात्रिमें पूजन करै, संग्रहमें भी लिखाहै कि, आश्विनमास और वर्षाके पीछे जो प्रतिपदा तिथि है उसमें रात्रिव्रतकरै । और रात्रिमें देवीकी पूजा करै, कारण कि, देवी रात्रिरूपहै और महेश्वर दिनरूपहै, हे देवि ! यह रात्रिका व्रत मनुष्योंके सब शत्रुओंको और सब पापोंको नष्ट करताहै, और सबकामनाओंको प्रदान करताहै, जिससे यह रात्रिव्रतहै तिससे यह रात्रिमें करै, यदि न करै तो नरकमें पडे, रात्रि व्रतको ही जानकर माधवने यह रात्रिव्रत लिखाहै कुछ रात्रिभोजनसे नहीं। यदि कोई शंका करै कि, आश्विन मासके शुक्लपक्षमें विशेषकर नवरात्रमें नवदुर्गाकी पूजा करके सावधानीसे रात्रिव्रत करै यह नवरात्रका कर्म नवरात्रके प्रारम्भमें नक्तव्रत माना है,इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे और माधवके कथनसे रात्रिही प्रधानहै व्रत नहीं सो ठीक नहीं. कारण कि, नवरात्रका व्रत करै. इत्यादि वाक्यसे असंगत होजायँगे, यदि कोई कहै कि, पाक्षिक (कभी) नक्तव्रतका यह अनुवादहै, सो उचित नहीं । नित्य और अनित्यके संयोगका विरोध है जैसे अग्निहोत्रके दशमपक्षमें(दशदिनका) दहीसे भोजन करके इन्द्रियोंकी इच्छावाला हवनकरै इसका अनुवाद नहीं घटताहै सोई वार्तिकमें लिखाहै कि, नित्यके तुल्य अनुवादका योग नहीं है.

इसीप्रकार यहांभी जानना तिससे यहां उसीप्रकार गुणसे फल होताहै, यह जानना। यदि कोई शंका करै कि, रात्रिही यदि कर्मका समय है तो रात्रिव्यापिनीही प्रतिपदा प्राप्त होगी सो उचित नहीं। कारण कि, न्यायसे प्राप्तभी है तोभी पूर्वोक्तवाक्योंसे इसका बोध होताहै जैसे प्रथम दिन कर्मकालव्यापिनीको भी छोड़कर थोडीभी पहलीही नवमी पहिले कहीहै, और जैसे अर्धरात्रव्यापिनी जन्माष्टमीको छोड़कर रोहिणीसे युक्त अगलीही माधवने लिखीहै तैसेही यहांभी जानना चाहिये. सिद्धान्त तो यहहै कि, रात्रिको कर्म कालके वाक्य हेमाद्रि आदिमें नहीं लिखे इससे उनका मूल खोजना चाहिये। और त्रिकाल पूजा करै इत्यादि पूर्वोक्तवाक्यों-से इसका विरोधभी आताहै, माधवका कथन तो पाक्षिक रात्रिका अनुवादहै यह प्रथम कह आये हैं तिससे सब पक्षोंमें पहलीही प्रतिपदा ग्रहण करनी यह सिद्ध हुआ, इसमें कोई इस देवीपुराणके वाक्यसे यह कहतेहैं कि, यहां नवरात्रशब्द नौरातदिनका कथन करताहै कोई तिथि बढजाय तो अष्टमीको व्रतकी पूर्तिकरै और घटजाय तो अमावस्याको रात्रिमें प्रतिपदाके समय नवचंडीका प्रारम्भ करै, इसीसे नवरात्रशब्द सार्थक है सो उचित नहीं। कारण कि, अत्यन्त घटनेसे वा बढनेसे न्यूनता प्राप्त होजायगी, और इस वाक्यमें कोई मूलभी नहीं, तिससे नव तिथिके कहनेवाला यह नवरात्रशब्द है सोई लिखा है कि, तिथिकी वृद्धि वा घटनेमें नवरात्रशब्दका कुछ अर्थ नहीं। इससे नवरात्र तिथिके क्षयमें आठ तिथिका दोष नहीं. वह नवरात्रशब्द लक्षणासे कर्मका कथन करता है॥

यथा-'प्रारम्भो नवरात्रस्य' इत्यत्रेति दिक्॥ प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे-"त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने॥ तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गृहे" इति॥ चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीयायुक्ता चेत्सैव ग्राह्येत्युक्तम्॥ दुर्गोत्सवे-"भद्रान्विता चेत्प्रतिपत्तु लभ्यते विरुद्धयोगैरपि सङ्गता सती। सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः" इति॥ यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन-"प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः। आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम्" इति॥ भविष्येपि-"चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप। त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्" इति॥ रुद्रयामलेपि-"वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम्। तस्मान्न स्थापयेत्कुंभं चित्रायां वैधृतौ तथा॥ सम्पूर्णा प्रतिपद्देव चित्रायुक्ता यदा भवेत्। वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यंदिने रवौ॥ अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते"॥ ३॥ इति चित्रादिनिषेधे मूलं चिन्त्यम्॥

जैसे नवरात्रका प्रारम्भ करै यहां है, यही मार्ग है प्रतिपदामें वैधृति आदि योगका निषेध भार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, चण्डिकाके पूजनमें चित्रा और वैधृतिसे युक्त प्रतिपदा होय तो उनके उपरान्तमें घटस्थापन करे, चित्रा वैधृतिसे युक्त भी द्वितीयासहित होय तो वही ग्रहण करनी यह दुर्गोत्सवमें लिखाहै कि, विरुद्धयोगोंसे भी युक्त द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा मिलजाय तो बुद्धिमान्को लक्ष्मी, पुत्र, राज्य आदिके बढानेवाली है उसकोही अपराह्णमें करना चाहिये। जब वैधृति आदिके विना प्रतिपदा न प्राप्तहो तो उस समय वहांही कात्यायनने यह लिखाहै कि, आश्विनमासकी प्रतिपदाको वैधृति, चित्रा होय तो आदिके दो चरण छोडकर नवरात्रका आरम्भ करै, भविष्यपुराणमें भी लिखाहै कि, हे राजन्! चित्रा वैधृति पूर्ण प्रतिपदा होय तो आदिके तीन अंशको छोडकर चौथे अंशमें पूजन करै. रुद्रयामलमें भी कहा है

है कि, वैधृतिमें पुत्रका नाश, चित्रामें धनका क्षय होताहै, तिससे चित्रा और वैधृतिमें घटका स्थापन न करै इसीप्रकार यदि सम्पूर्ण प्रतिपदाही चित्रा वा वैधृतिसे युक्त होय तो मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्त्तमें घटस्थापन करना श्रेष्ठ है, चित्रा आदिके निषेधमें प्रमाण नहीं है ॥

रात्रौ कलशस्थापननिषेधनिर्णयः ।

इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् 'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्' इति मात्स्योक्तेः । "भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः । प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु" इति विष्णुधर्मोक्तेश्च रुद्रयामले—"स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् । शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥ यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् । तत्र संस्थापयेत्कुंभं विधिना मन्त्रपूर्वकम् ॥सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा" ॥ ३ ॥ इति ॥

यह कलशका स्थापन रात्रिमें न करै कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, रात्रिमें घटका स्थापन और पूजन न करै सूर्योदयसे १० घडीतक स्थापन और प्रारम्भमें प्रातःकालमेंही लिखाहै यह विष्णुधर्ममें कहा है, रुद्रयामलमें कहाहै कि, मांगलिक स्नान करके देवीकी पूजा करै, पहले शुभ मिट्टीसे वेदी निर्माण करै वहां गेहूंसे मिले यव बोवै, वहां मन्त्रोंसे विधिपूर्वक घटका स्थापन करै, वह घट सुवर्ण, चांदी, ताँबा वा मृत्तिकाका होना चाहिये ॥

अथ पूजाविधिनिर्णयः ।

स च जयन्तीमन्त्रेण नवाक्षरेण कार्यः । तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—'कुर्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिः' इत्युक्त्वा—"जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ तु कारयेत्" इति ॥ "ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इति नवाक्षरः । तत्र प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा । देशकालौ सङ्कीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थं शारदनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि करिष्ये" इति सङ्कल्प्य ॥

वह जयन्ती मन्त्रसे वा नवाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये । सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, देवीके मन्त्रसे दूध वा घृत आदिसे देवीकी पूजाकरै यह कहकर इस मन्त्रसे जप और होम करै, कि, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, धात्री, स्वधा, स्वाहारूप आपको नमस्कार है " ॐ दुर्गेदुर्गेरक्षिणिस्वाहा " यह नवअक्षरोंका मंत्र है, तथा प्रतिपदाके दिन अभ्यंगपूर्वक स्नानकरके और देश और समयका संकीर्त्तन (संकल्प) करे कि, मेरे इसजन्ममें दुर्गाकी प्रीतिसे सम्पूर्ण आपत्तियोंकी शान्ति हो, दीर्घआयु अवस्था, विपुलधन, पुत्रपौत्रआदिकी निरन्तर संतानकी वृद्धि, स्थिरलक्ष्मी, कीर्त्तिका लाभ, शत्रुका पराजय, श्रेष्ठ अभीष्टकी सिद्धिके निमित्त शरत्कालके नवरात्रोंकी प्रतिपदाको कहा घटस्थापन, दुर्गापूजा और कुमारीपूजाआदि करताहूं इसप्रकार संकल्पकरै ॥

महीद्यौः-इति भूमिं स्पृष्ट्वा । 'ओषधयः सम्' इति यवान्निक्षिप्य । 'आकलेषु' इति कुम्भं संस्थाप्य । 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य—'गन्धद्वाराम्' इति गन्धम्,-

'या ओषधिः' इति सर्वौषधीः-'काण्डात् काण्डात्' इति दूर्वाः, 'अश्वत्थे' इति पञ्चपल्लवान्, 'स्योना पृथिवि' इति सप्तमृदः,-'याः फलिनीः' इति फलं, 'सहि रत्नानि' इति पञ्च रत्नानि, हिरण्यं क्षिप्त्वा। 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्टय। 'पूर्णादर्वि' इति पूर्णपात्रं निधाय-तत्र वरुणं सम्पूज्य, जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ॥ तद्यथा। पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा-"आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि। पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ॥ सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम्। इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह ॥ दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय। बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह" ॥ ३ ॥ इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा। माषभक्तबलिं कूष्माण्डादिबलिं वा निवेदयेत् ॥

महीद्यौः० इसमंत्रसे भूमिको स्पर्शकरे, ओषधयः सं० इसमंत्रसे यवबखेरकर, आकलशेषु० इसमन्त्रसे घटस्थापनकरके, इमंमेगंगे० इसमंत्रसे घटको जलसे पूर्णकरके, गन्धद्वारां० इसमंत्रसे गंध, या ओषधी० इसमंत्रसे सर्वौषधी, काण्डात् काण्डात्० इसमंत्रसे दूर्वा, अश्वत्थे० इसमंत्रसे पंचपल्लव, स्योनापृथिवी० इसमन्त्रसे सातस्थानोंकी मट्टी, याःफलिनी० इसमन्त्रसे फल, सहिरत्नानि० इस मंत्रसे पंचरत्न और सोना घडेमें डालकर, और युवासुवासाः० इसमन्त्रसे वस्त्रसे लपेटकर पूर्णादर्वि० इसमन्त्रसे घडेके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उसघटको, वरुणकी पूजाकरके पुरानी वा नवीन प्रतिमामें दुर्गाका आवाहन करे उसका प्रकार यहहै कि, पूर्वोक्त मन्त्रको उच्चारणकर इसप्रकार आवाहनकरै कि, हे वरदायक! दैत्योंके अभिमान खण्डन-करनेवाली तुम आओ और पूजाको ग्रहणकरो हे सुमुखि! हे शंकरकी प्रिया! तुमको प्रणामहै, सब तीर्थोंका इसमें जलहै और सब देवताहैं, सबदेवताओंके गणोंसहित तुम इसमें आकर टिको. हे देवि दुर्गे! तुम इसमें आओ और आठोंशक्तियोंसहित बलिग्रहण करो इसप्रकार आवाहनकरके और पूर्वोक्तमंत्रसे षोड-शोपचार पूजनकरके उरद और भात वा कूष्मांड और पेठेकी बलि देनी चाहिये ॥

कुमारीपूजाविधिनिर्णयः।

ततः कुमारीपूजा। तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे-"एकैकां पूजयेत्कन्यामेकवृद्ध्या तथैव च। द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं तु वा" ॥ तथा-"नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु। एकवृद्ध्या लभेत्क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थे तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते" ॥ २ ॥ तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षापर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः। तासां च क्रमेण कुमारीका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डि-का शाम्भवी दुर्गा सुभद्रा इति नामभिः पूजा कार्या। आसां च प्रत्येकं पूजामन्त्राः फल-विशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः। सामान्यतस्तु-"मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्। नवदु-र्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ एवमभ्यर्चनं कुर्यात्कुमारीणां प्रयत्नतः। कंचु-कैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत्पायसादिभिः" ॥ २ ॥ तथा-"ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गी रक्तपूयव्रणाङ्किताम्। जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्" तथा-"ब्राह्मणीं

सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् । लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् । दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः" इति ॥

इसके उपरान्त कुमारीपूजा करे, यही हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, एक २ कन्याकी पूजाकरै, वा एक २ की वृद्धिसे करै, वा दूनी, वा तिगुनी, वा प्रतिदिन नवकी पूजा करे. कथनभीहै कि, नौ कन्याओंसे भूमिलाभ, दूनीसे ऐश्वर्य, एकवृद्धिसे कुशल, एक २ से लक्ष्मी प्राप्तहोतीहै, एकवर्षकी जो कन्याहो उसको पूजामें त्यागदे, कारण कि, उसको गन्धपुष्पफलआदिकी प्रीति नहीं है तिससे दोवर्षसे प्रारम्भकर दशवर्षपर्यन्तकी कन्याही पूजनीयहै और उनकी क्रमसे इननामोंसे पूजाकरे कि, कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा, सुभद्रा इन प्रत्येकोंकी पूजा मंत्र, फल-विशेषसे वहांहीसे जाननी चाहिये । सामान्यसे तो ये हैं कि, मंत्रके अक्षररूप लक्ष्मी, मातृओंकी रूपधा-रिणी नवदुर्गारूपकन्याओंका मैं बुलाना कहताहूं नानाप्रकारके भक्ष्यभोज्यआदिसे भोजनकरावे तैसेही यह कहाहै कि, ऐसी कन्याको त्यागदेना कि, जिसके ग्रंथि निकलरहीहों जिसका अंग गिराहो, जो रुधिर, रादवाले व्रणसे युक्त, जो जन्मान्धहो, जिसके नेत्र कायरेहों, कानी, कुरूपा, देहपर रोमवाली, जो रोगिणी हो, जो दासीसे उत्पन्न हो उसे न बुलावे. कहाभीहै कि, ब्राह्मणीको सबकामोंमें, जयके निमित्त क्षत्रियकी, लाभके निमित्त वैश्यकी, पुत्रके निमित्त शूद्रकी और मारणमें चाण्डालकी कन्याको विधिसे पूजन करै ॥

तत्र वेदपारायणनिर्णयः ।

अत्र वेदपारायणमप्युक्तं रुद्रयामले-"एवं चतुर्वेदविदो विप्रान्सर्वान्प्रसादयेत् । तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै" इति ॥ तथा-"एकोत्तराभिवृद्ध्या तु नवमी यावदेव हि। चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥" तिथितत्त्वे वाराहीतन्त्रे-"प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत् । अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः ॥ आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्सुधीः । हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलं भवेत् ॥ स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत् । अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ॥ ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत्स्तोत्रविचक्षणः। स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत्॥ सर्वत्र पाठ्ये विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत्" ॥ ९ ॥ एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे-"यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् । द्विगुणं तद्द्वितीयेह्नि त्रिगुणं तत्परेहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्" इति ॥ एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गमिति गम्यते । तिथिह्रासे तु तिथिद्वय-निमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवदेकदिने आवृत्त्या कार्यम् । वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः ॥ ततो नवरात्रोपवासादिसङ्कल्पं कुर्यात् । स्वस्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत् । 'स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत्पूजयीत वा' इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात् ॥

इसमें वेदका पारायण करनाभी रुद्रयामलमें लिखाहै कि, इसीप्रकार चारवेदोंके ज्ञाता सबब्राह्म-णोंको प्रसन्न करना चाहिये वेदपारायणके निमित्त उनका वरण करे, इसीप्रकार एकोत्तरवृद्धिसे नवमी-पर्यन्त चण्डीको जपै, व विधिपूर्वक जपवावे. तिथितत्त्व और वाराहीतंत्रमें कहाहै कि, आदिमें ॐकार

उच्चारणकर स्तोत्र वा संहितापाठ करै और अन्तमें प्रणवको दे यह आदिपुरुषने लिखाहै, पाठ आदिके आधारपर पुस्तक रखकर बुद्धिमान् मनुष्यको बाँचना चाहिये। कारण कि हाथमें स्थापनसेही फलहीनता होतीहै, जो पुस्तक अपनी लिखी हो वा शूद्रकी लिखी वा ब्राह्मणसे भिन्नकी लिखीहो वह भी निष्फलहै; बुद्धिमान मनुष्य ऋषिच्छन्द आदिका न्यासकरके स्तोत्रपाठ करे, जिसस्तोत्रका न्यास नहो वहां ॐकारका न्यासकरे यह सब पाठोंमें जानना चाहिये। अन्यथा करनेसे निष्फल होताहै, इसप्रकार नवमीपर्यन्त प्रतिदिन पूजनकरै इसमें विशेष हेमाद्रिमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जो चंडिकाकी पूजाआदि पहलेदिनमें करे दूसरेदिन उससे दुगुनी, तीसरेदिन तिगुनी करै, इसीप्रकार नवमी तिथितक वृद्धिसे पूजा और जपआदि करना चाहिये। इससे नवरात्रमें पूजाही प्रधानहै, व्रतआदि अंगहैं यह जानागया, तिथिकी हानि होय तो दोतिथियोंका पूजन आदि महालयश्राद्धके समान एकदिनमेंही आवृत्तिसे करले, वृद्धिमें भी उसीप्रकार आवृत्ति करनी चाहिये। फिर नवरात्रआदिसे व्रतआदिका संकल्प करना चाहिये, अपनी शक्ति न होय तो दूसरेसे व्रतआदि करादेना. कारण कि, तरंगिणीमें देवीपुराणका वाक्यहै कि, आप पूजाकरे, वा दूसरेसे पूजा करावे ॥

शुक्रास्तादावपि देवीपूजननिर्णयः।

इदं च देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम्। तदुक्तं धर्मप्रदीपे–"नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः" इति। मलमासे तु वचनाभावान्न भवति ॥

यह देवीपूजन शुक्रास्त आदिमें भी करना यही धर्मप्रदीपमें लिखाहै कि, शुक्र वा बृहस्पति अस्तका हो वा सिंहका बृहस्पति हो तोभी कुलधर्मसे अपनी देवीका पूजन प्रतिवर्ष करना चाहिये। मलमासमें वाक्यके न मिलनेसे पूजा नहीं होती ॥

तत्राश्वपूजननिर्णयः।

अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तं मदनरत्ने देवीपुराणे–"आश्वयुक् शुक्लप्रतिपत्स्वातीयोगे शुभे दिने। पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत्॥ तस्मात्साश्वैर्नरैस्तत्र पूज्योसौ श्रद्धया सह। पूजनीयाश्च तुरगा नवमी यावदेव हि॥ शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने-दिने। धान्यं भल्लातकं कुष्ठं वचा सिद्धार्थकास्तथा॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थिं तेषां तु बन्धयेत्। वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शाक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः॥ वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कार्यो दिनेदिने"॥ ४॥ कल्पतरौ त्वेतदग्रेऽन्यदपि–"ज्येष्ठे योगे पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः। पृथिवीमवहन्पूर्वं सशैलवनकाननाम्॥ कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः। सुप्रतीकोञ्जनो नीलस्तस्मात्तांस्तत्र पूजयेत्॥ शाक्राद्दक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत्" ॥ ३॥ अश्ववद्धोमादीत्यर्थः॥

इसमें अपने घोड़ेकी पूजा मदनरत्नमें देवीभागवतके वाक्यसे लिखी है कि, आश्विनकी शुक्र प्रतिपदा स्वाति नक्षत्रके योगसे अच्छे दिनमें प्रथम उच्चैःश्रवानाम अश्व लक्ष्मीको लाये थे, तिससे अश्ववाले मनुष्यको श्रद्धापूर्वक अश्वका पूजन करना चाहिये। जबतक नवमी हो तबतक घोड़ोंका पूजन करै, और प्रतिदिन उनकी शांति और स्वस्तिवाचन करै, और धनियां, भिलावा, कूठ, वच, सरसोंकी पचरंगे सूत्रसे घोड़ोंके ग्रंथि बांधै, और वायु, वरुण, सूर्य, देवी, विष्णुके मन्त्रोंसे प्रतिदिन होम करना चाहिये, कल्पतरुमें इससे आगे और भी लिखाहै, प्रथम ज्येष्ठाके योगमें वहां आठ महाबली हाथी, पर्वत, वन, कानन सहित पृथ्वीको धारण करतेहैं. उनके नाम ये हैं कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, नील

इस कारणसे इनकी इस स्थलमें पूजा करनी चाहिये, ज्यष्ठा नक्षत्रसे लेकर नवमीपर्यन्त पूर्वके तुल्य करे और अङ्गके सदृश होम आदि करै ॥

अथ प्रतिपदादिविशेषनिर्णयः ।

अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये–"केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात्प्रतिपद्दिने । पक्वतैलं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे" । पट्टादोरमिति गौडपादः ॥ "दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा । मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम् ॥ पञ्चम्यामङ्गरागं च शक्त्यालंकरणानि च । षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं संध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूजयेत् । उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥ नवम्यामुग्रचण्डायाः पूजां कुर्याद्बलिं तथा । संपूज्य प्रेषणं कुर्याद्दशम्यां सारवोत्सवैः ॥ अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः । स्कन्दवत्पालयेद्देवी तं पुत्रधनकीर्तिभिः" ॥ ॥ ९ ॥ कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे–"कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभेपि वा । नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः ॥ शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः ॥ षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ॥ पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः । विसर्जनं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमंगलैः" ॥ ४ ॥ अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः ॥ फलभूमार्थिनः समुच्चय इत्यन्ये । नवम्यां मन्त्रः कालिकापुराणे "इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत्पूजां करोम्यहम् ॥" अत्र स्त्रीव्रते विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः ॥

अब प्रतिपदा आदि तिथियोंमें विशेष लिखतेहैं दुर्गाभक्तितरंगिणी ग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, प्रतिपदाके दिन संस्कारके द्रव्यदे, केशोंके थमनेके निमित्त पकाहुआ तेल द्वितियाको देना, गौडोंने पक्व तैलके स्थानमें रेशम डोरा लिखाहै, दर्पण सिन्दूर लाखका रंग तीजको देना, मधुपर्क, तिलक, नेत्रोंका मण्डन चतुर्थीको देना, अंगका रंग और शक्तिअनुसार भूषण पञ्चमीको देना, षष्ठीको बेल वृक्षके नीचे और सन्ध्याकालमें जागरण करै, सप्तमीको प्रातःकाल आनकर घरमें पूजा करै, अष्टमीको व्रत और अपनी शक्तिसे पूजन करै, नवमीको उग्रचण्डीकी पूजा और बलि देनी चाहिये । और दशमीको श्रेष्ठ उत्सवोंमें पूजा करके प्रेषण करनी चाहिये । जो मनुष्य इस विधिसे देवीको पूजनेसे प्रसन्न करता है, उसकी पुत्र धनकीर्तिसे देवी कार्तिकेयकी तुल्य पालना करतीहै । कृत्यतत्त्वार्णवमें लिंगपुराणका वाक्यहै, कि, कन्याके कृष्णपक्षमें आर्द्रा नक्षत्रमें पूजाकर नवमीको बडे धनके विस्तारसे देवीका जागरण करै और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको देवीके केश उतरवावे और पञ्चमीको प्रातःकाल श्रेष्ठ जलोंसे स्नान करावे, छठको सन्ध्यासमय बेलके वृक्षके नीचे सुवावे, सप्तमीको बेलपत्रसे पूजा और अष्टमीको व्रत करै, और नवमीको जागरण पूजन और विधिसे बलि देनी चाहिये, दशमीको विहारउत्साह मंगलसे विदाकरै, यहां जागरणकी सामर्थ्य न होय तो छठको जागरण करै और कोई यह कथन करतेहैं कि, अधिकफलकी इच्छावाला समुच्चय करै, अर्थात् एकदिन दो कार्य करै, नवमीका मन्त्र कालिकापुराणमें कहाहै कि, आश्विनमासके कृष्णपक्षकी नवमीको आर्द्रा नक्षत्रमें जबतक तुम्हें बेलके वृक्षके नीचे बोधन कहताहूं यहां स्त्रीके व्रतमें यह विशेष है ॥

तत्राशौचनिर्णयः ।

अथाशौचे विशेषो निर्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे–"आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नव-

रात्रके। शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः। सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः। देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः। सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेषतः॥ देवीमुद्दिश्य कर्त्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते" ॥ ३ ॥ इति कालादर्शे विष्णुरहस्येऽपि– "पूर्वसङ्कल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम्" इति गौडनिबन्धे। तिथितत्त्वेप्युक्तम्। आश्विनकृष्णनवम्यादिशुक्लप्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, चैकं कर्म। अतश्च मध्ये अशौचपातेपि न दोषः ॥ 'सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेरिति॥ आरब्धं स्वयमेव कार्यम्। अनारब्धं त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः॥ रजस्वला त्वन्येन कारयेदिति सूतकादिवद्विशेषवचनाभावात्॥ स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति ॥ तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ गारुडे–"गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्" इति॥ एतत्सभर्तृकोपवासविषयम्॥ अन्यश्चात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः॥

अत्र अशौचमें विशेष निर्णयामृत और विश्वरूपनिबन्धमें कहा है कि, आश्विनके शुक्लपक्ष नवरात्रके आरम्भमें मरणाशौच होजाय तो बुद्धिमान् मनुष्य किसप्रकार कर्म करै और सूतक वर्तमान होय तो किसप्रकार करना सूतक उत्पन्न होय तो बुद्धिमान् मनुष्यको पशुयज्ञविधिसे देवीकी पूजा करनी चाहिये, सूतकके विषय पूजन और दान विशेष कर लिखाहै वह देवीके निमित्त करनी उसमें दोष नहीं है, यह कालादर्शमें कहा है, विष्णुरहस्यमें भी कहाहै कि, व्रतके नियमवालोंने जिस व्रतका प्रथम संकल्प करलियाहै उस शुद्ध व्रतको मनुष्यको करना चाहिये, परन्तु दान और पूजन न करै, गौडनिबन्ध और तिथितत्त्वमें भी लिखाहै कि, आश्विनकृष्ण नौमीसे वा शुक्लप्रतिपदा वा छठसे वा सातैंसे एक २ कर्म हैं, इनके बीचमें अशौच होजाय तो कुछ दोष नहीं है. कारण कि, व्रतयज्ञका संकल्प होताहै, यह विष्णुने लिखाहै प्रारम्भ किये व्रत आदिको स्वयं करै और जो आप प्रारम्भ न किया होय तो औरसे करवाना चाहिये। यह दिवोदासने कहाहै, रजस्वला आदि स्त्री सूतक आदिके तुल्य विशेष वाक्यके न मिलनेसे औरपै करवायदे स्त्रियोंको नवरात्रमें ताम्बूल आदिका चर्वण होताहै सोई व्रत हेमाद्रिमें गरुडपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, गन्ध, भूषण, पान, पुष्पमाला, चन्दन, दतौन, अञ्जन इनका इस व्रतमें दोष नहीं, यह सुहागिनके व्रतमें है और भी इसमें विशेष परिभाषामें लिखाहै॥

उपाङ्गललिताव्रतनिर्णयः।

आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम् ॥ तत्र यद्यपि कथायां कालविशेषो नोक्तस्तथापि–'रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः' इति रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजाया रात्रौ प्राशस्त्याच्च रात्रिव्यापिनी ग्राह्येति केचित् ॥ वस्तुतस्तु वचनं विना रात्रिपूजायां मानाभावात् जागरस्य चाङ्गत्वाद्युग्मवाक्यात्। "भुक्त्वा जागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्घ्यव्रते तथा। ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते" इति॥ कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या॥ रात्रिशब्दः पूर्वविद्धावचन इति हेमाद्रिः। अस्य च भुक्त्वा जागरणरूपत्वादिति साधु प्रतीमः॥ भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः॥ अन्यथा भुक्त्वेत्यसङ्गतेः। दिवोदासीयेप्येवम्॥

आश्विनशुक्लपंचमीको उपांगललिताका व्रत महाराष्ट्रोंमें विख्यात है यद्यपि कथामें उसका कोई समय नहीं लिखा तोभी गीत वादित्र शब्दोंसे रात्रिमें जागरणकरे इसकथनसे रात्रिमें जागरण लिखाहै और शक्तिकी पूजा रात्रिमें श्रेष्ठहै इससे रात्रिव्यापिनी यह तिथि ग्रहणकरनी, यह किन्हींका कथनहै । सिद्धान्त तो यहहै कि, वाक्यके विना रात्रिपूजामें कोई प्रमाण नहींहै और जागरण अंग है, प्रधान नहीं युग्म (युग्मानि युग०) वाक्यसे और कालहेमाद्रिमें इसवाक्यने कि, रात्रिव्रत चन्द्रआदिका, अर्थ व्रत और सम्पूर्ण ताराव्रतोंमें भोजनके उपरान्त जागरणमें रात्रिका योग श्रेष्ठहै, इससे पूर्वविद्धाही ग्रहणकरनी कारण कि, रात्रिशब्द पूर्वविद्धाका कथन करनेवालाहै इससे और इसको भोजनके उपरान्त जागरण रूप होनेसे हमको उचित जानपडताहै, अथवा जहां भोजन करके जागरणहै उस व्रतमें यह एकपादका अर्थहै । अन्यथा भुक्त्वा (भोजनकरके) यह पद असंगत होजायगा, दिवोदासीयमें भी इसीप्रकार कहाहै ॥

सरस्वत्यावाहनानिर्णयः ।

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे सरस्वतीस्थापनम् । यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे-"मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् । उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्" इति ॥ रुद्रयामलेपि-"मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद्वैष्णव-मृक्षकम् ॥ नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः" ॥ २ ॥ संग्रहे-"आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् । मूलेनावाह-येद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्" मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः ॥ श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत् । "आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा भवेत् । सम्प्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः" ॥ इति चिन्तामणौ ब्रह्माण्डपुराणात् ॥

आश्विनके शुक्लपक्ष मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका स्थापन करना चाहिये, सोई निर्णयामृतमें देवी-पुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे इन्द्र ! मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका पूजन करना और श्रवणपर्यन्त पूजन करतारहै और विद्याका अभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ पुस्तकोंकी स्थापनाके पीछे न पढावे न लिखे न पढे संग्र-हमें भी कहाहै कि, बुद्धिका अभिलाषी पुरुष आश्विनशुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रमें देवीका आवाहन करे. और श्रवणमें विसर्जन करै, शिष्ट तो यह कहतेहैं कि, मूलके प्रथमपादमें आवाहन और श्रवणके प्रथमपादमें विसर्जन करे कारण कि, चिन्तामणिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्यहै कि, जब श्रवणका प्रथमभाग रात्रिमें होय तो देवीका विसर्जन दशमीके महोत्सवमें करना चाहिये ॥

अथ षष्ठीनिर्णयः ।

गौडनिबन्धे देवीपुराणे-"ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् । सप्तम्यां मूल-युक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥ पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् । उत्तरेण नव-म्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥ श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ३ ॥" कालिकापुराणे-"बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् । जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि ॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् । विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै सारवोत्सवैः ॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः" ॥ ४ ॥ अत्र सर्वत्र

तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः । तदभावे तु तिथिरेव ग्राह्या । "तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् । तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना " ॥ इति विद्यापतिलिखितवचनात् । " तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् । योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्माणि " इति तत्रैव देवलोक्तेश्च ॥ अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वेद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेऽधिवासनं कार्यम् । सायंकालेत्यन्तासत्त्वे त्वधिवासनलोपः–'षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम् ' इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुः । सायंश्रुतिः फलातिशयमात्रार्था । न तु कर्मलोप इत्याचार्यचूडामणिः ॥

गौडनिबंधमें देवीपुराणका वाक्यहै कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे युक्त छठको बेलको निमंत्रणदेना मूलक्षत्रसे युक्त सप्तमीको बिल्वपत्रका प्रवेशकरना उचितहै । पूर्वाषाढसे संयुक्त अष्टमीको पूजा, होम, व्रतआदि करे, फिर नवमीको बलिदानपूर्वक भवानीका पूजनकरे, श्रवणयुक्त दशमीको नमस्कारयुक्त विसर्जनकरे. कालिकापुराणमें लिखाहै कि, छठको बेलकी शाखा और फलोंमें देवीका बोधनकरे, सप्तमीको बेलकी शाखाको छेदनकर पूजनकरे, फिर अष्टमीको विशेषकर पूजाकरे जागरण और आधीरात्रिको स्वयं बलिदानकरे नवमीको विधिसे विशेषकर बलिदान करना दशमीको शरत्कालके उत्सव धूल और पंकफेंकनेकी क्रीडा और आनन्दके मंगलसे बिसर्जन करे । इन सब वाक्योंमें तिथि और नक्षत्रके योगको मानना मुख्य हेतुहै, वह न मिले तो तिथिही ग्रहण करनी. कारण कि, विद्यापतिने यह वाक्य कहाहै कि, देवताका शरीर तिथिहै, और तिथिमेंही नक्षत्र स्थित रहताहै, तिससे तिथिकी ही बडाईहै और तिथिविना नक्षत्रकी प्रशंसा नहींहै, वहांही देवलने कहाहै कि, तिथि और नक्षत्र दोनोंके योगमें दोनोंको माने, दोनोंका योग न होय तो देवीके पूजनमें तिथिही ग्रहण करनी, यहां बिल्वपत्रके प्रवेशसे प्रथमदिन सायंकालमें षष्ठी न होय तो अधिवासनका अभाव जानना चाहिये । प्रथम यह वाक्य कहआयेहैं कि, षष्ठीको सायंकाल बिल्ववृक्षके नीचेमें अधिवासन करे, यह कल्पतरु लिखतेहैं आचार्य्यचूडामणिका तो यह कथनहै कि, सायंकालका सुनना अधिकफलके निमित्त है कुछ कर्मका लोप नहीं होसकता ॥

तत्र पूजाक्रमनिर्णयः ।

अत्र क्रमः ॥ बिल्वसमीपं गत्वा देवीं बिल्वं च सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥ तत्र मंत्रः–"रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥ अहमप्याश्रितः षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः । श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः ॥ नेतव्योसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः " ॥ २ ॥ इति ॥ एवं देवीमधिवास्य परदिने निमन्त्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ लैंगे–"मूलाभावे तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् । युग्माभ्यां नवबिल्वस्य फलाभ्यां शाखिकां तथा ॥ तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेशयेत् ॥ "

इसमें क्रम यह है कि, बेलके निकट जाकर देवी और बेलका पूजन करके इसमंत्रसे प्रार्थना करे कि, हे बेल ! रावणके मारने और रामचन्द्रके अनुग्रहके निमित्त असमयमें ब्रह्माने तुमसे देवीका बोधन कियाथा, इससे मैंभी संध्यासमय षष्ठीके दिन तेरे आश्रयसे देवीको बोधनकरताहूं, हे श्रीशैलशिखरपै उत्पन्न; हे लक्ष्मीके मूल, इस स्थानसे तुझे अपने घर लेजाऊंगा तुम मेरे संग चलो मैं तुम्हारा दुर्गारूपसे पूजन करूंगा, इसप्रकार देवीका अधिवासन करके पहलेदिनमें न्योतीहुई बिल्वशाखापत्रीका प्रवेशकरके अर्चन करना, सोई

हेमाद्रिमें लिंगपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, मूलनक्षत्र न होय तो केवल सप्तमीमें प्रवेशकरे, नवीन दो बेलके फल और शाखा और इसीप्रकार देवीकी प्रतिमाको स्नानकराय और जलसे छिड़काकर प्रवेशकरै ॥

अत्र चोपवासपूजादावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या । न तु युग्मवाक्यात् पूर्वा । "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ॥ रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता " इति कृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनात् ॥ "भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः ॥" इति तिथितत्त्वे नन्दिकेश्वरपुराणाच्च ॥ दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम् ॥ तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा न कार्या । 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् ' इति देवलोक्तेरिति गौडाः ॥ दाक्षिणात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात् पूर्वां कुर्वन्ति ॥

यहां व्रत और पूजा आदिमें उदयकालकी सप्तमी ग्रहणकरनी, और युग्मवाक्यसे प्रथम नहीं लेनी, कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें यह वाक्य लिखाहै कि, युगादितिथि, वर्षवृद्धि, पार्वतीकी प्रिया सप्तमी ये सूर्यके उदयको देखतीहैं इनमें दोतिथियोंका योग नहीं मानना, तिथितत्वमें नन्दिकेश्वरपुराणका वाक्यहै कि, भगवतीके प्रवेशसे विसर्जनपर्यन्त जितने कार्य हैं वे सब बुद्धिमान् मनुष्यको उदयगामिनीतिथिमें करने चाहिये, वहांभी घटिकासे न्यून होय तो अगलीलेनी, कारण कि, देवलने यह कहाहै कि, व्रत और उपवासके नियममें वह तिथि ग्रहण करनी जो एकभी घड़ी हो, दाक्षिणात्य तो पूर्ववाक्यको न देखकर युग्मवाक्यसे पहलीही करतेहैं ॥

पत्रिकापूजानिर्णयः ।

पत्रिकापूजा च पूर्वाह्णे एव कार्या । न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तम् । पत्रिकास्तु-"रम्भा कवी हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ । अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि नव पत्रिकाः " इति तत्रैवोक्ताः ॥

पत्रिकाकी पूजा पूर्वाह्णमें करनी चाहिये, मूलके अनुरोधसे मध्याह्नमें न करनी, यह कृत्यतत्त्वार्णवमें लिखाहै पत्रिका तो यह यहांही लिखीहै कि, केला, कवी, हलदी, जयंती, बेल, अनार, अशोक, मानवृक्ष, धान्यआदि ये नव पत्रिकाहैं ॥

देवीत्रिरात्रनिर्णयः ।

अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ ॥ प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिनत्रये वा कुर्यात् ॥ तदाह धौम्यः-"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादि क्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् । " अत एव हेमाद्रौ देवीपुराणे मङ्गलव्रते-"आश्विने वाथ वा माघे चैत्रे वा श्रावणेपि वा । कृष्णाष्टम्यादि कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधि हरेः ॥ यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः । दानं होमो जपः पूजा कन्या भोज्यास्तथान्वहम् ॥ महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये । पूजनीया विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु ॥ ३ ॥ " इति मासचतुष्टयेऽभिधाय ॥ अन्यत्रापि-"अथवा नवरात्रं च सप्तमं च त्रिकं दिवा । एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात् " इति ॥" पूजयेताश्विने शक्र यावच्छुक्लाष्टमी-

भवेत् । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति शक्र नास्त्यत्र संशयः " इत्युक्तं दिवेत्येकरात्रमुक्तम् । देवीपुराणे-"नवरात्रव्रते शक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम् । व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम् " इति ॥ तत्रापि सप्तम्याः पूजने पूर्वोक्तो निर्णयः ॥ अथ तिथियौगपद्ये तन्त्रेणोपवासः ॥ तिथिद्वयनिमित्तं पूजादिकं तु भेदेन ॥

इसी सप्तमीको देवीका त्रिरात्र हेमाद्रिमें लिखाहै कि, प्रतिपदा आदि नौ ९ तिथियोंमें व्रत आदि करनेकी शक्ति न होय तो सप्तमी आदि तीन दिनमेंही करै यही धौम्यने लिखाहै कि, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे क्रमसे नवमीतक करै अथवा सप्तमीसे तीनरात्र करै. इसीकारण हेमाद्रिमें देवीपुराणके मङ्गलाव्रतमें लिखाहै कि, आश्विन, माघ, चैत्र वा श्रावणमें हे हरे! कृष्णपक्षकी अष्टमीसे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक व्रतकरै, और दान, होम, जप, पूजा, कन्याओंका भोजन प्रतिदिन करावे ग्राम और पुत्र आदिमें महाभैरवरूपसे जो अस्थियोंकी माला धारण करनेवाले हैं उनका विशेषकर वस्त्र आदिसे पूजन करना चाहिये । यह चार मासमें कहकर यह लिखाहै कि, अथवा नवरात्र सात पांच तीन अथवा एक दिन एक समय भोजन नक्त अयाचित व्रतके क्रमसे शुक्लअष्टमी पर्यन्त आश्विन मासमें पूजन करता रहै तो हे इन्द्र ! सबकार्यकी सिद्धि होती है इसमें किसीप्रकार सन्देह नहीं है । देवीभागवतमें लिखाहै कि, जो शक्तिमान् भक्त तीनरात्रि वा एकरात्रि व्रत करताहै उसको मैं यथेच्छ देतीहूं तिनमें भी सप्तमीके पूजनमें पूर्वोक्त निर्णय जानना इसमें भी दोतिथि एकवार आनपडैं तो तन्त्र (एक) से व्रतकरै, और दो तिथियोंका पूजनादिक तो भिन्न २ करना॥

तत्र विशेषः ।

अत्र विशेषो निर्णयामृते भविष्ये-"सप्तम्यां नव गेहानि दारुजानि नवानि च । एवं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः ॥ दुर्गागृहं प्रकर्तव्यं चतुरस्रं सुशोभनम् । तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभाम् ॥ तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बलाजिनसंयुतम् । तत्र दुर्गां प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भी रुचिरैर्दशभिर्वा विभूषिताम् । सप्तहाटकवर्णाभां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥ अनेककुसुमाकीर्णां कपर्देन सुशोभिताम् । नितम्बबिम्बसन्नद्धकिंकिणीक्वाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापासिधारिणीम् ॥ घण्टाक्षमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् ॥ तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं रुधिराप्लुतम् ॥ निःसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् ॥ देवीधृतकरग्रीवं शूलेनोरसि ताडितम् । नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् ॥ वमद्रुधिरवक्त्रेण धुन्वतोर्ध्वं सटाच्छुषा । सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमानां सुरैस्तथा ॥ ९ ॥" इति ॥ " तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा ॥ मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गे शूले च पूजयेत्" । वार्क्षी दारुमयी देवी ॥

इसमें विशेष तो निर्णयामृतमें यह कहाहै कि, सप्तमीको काठके नवीन नौ ९ घर अथवा अपने चित्तके भावसे सावधानीसे एकघर निर्माण करावै, यह दुर्गाका घर चौकोर सुन्दर निर्माण करै, और उसके मध्यमें चार हाथकी श्रेष्ठ वेदी निर्माण करै उसमें रेशमके वस्त्र, कम्बल, मृगचर्मसे युक्त सिंहासन निर्माण करै, सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त चार वा दशभुजाओंसे शोभित दुर्गाका स्थापन करके जिसकी कान्ति तपाये सुवर्णकी तुल्यहो जिसके तीन नेत्र चन्द्रमा मस्तकपर हो अनेक पुष्पोंसे आच्छादित हो और जटाजूटसे शोभित हो, और नितम्बपर कौंधनी बँधीहुई उसके शब्दसे शब्दायमानहो, और जो शूल, चक्र, दण्ड, शक्ति, वज्र, पांत, खड्गको धारे हाथमें घण्टा अक्षमाला लिये पानपात्रसे शोभित दुर्गाके आगे इसप्रकार भैंसा बनावै जिसका

शिर कटरहाहो रुधिरसे भररहा हो आधा शरीर निकररहाहो कण्ठके नालमें ढाल और तलवार लटक रहीहों जिसकी गर्दन भगवतीने हाथमें पकड़ रक्खी हो नागपाशसे फेंकाहो सिंहद्वारा आक्रान्त और मुहसे रुधिरको वमन करता हुआ गर्दनके बालोंको क्रोधसे कंपित करताहो और वहां देवीकी सुवर्ण वा चांदीकी मृत्तिका वा वृक्षकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मूर्ति निर्माण करै जिसके चारों ओर मातृ और देवता सेवा करतेहों, देवीके खड्ग और शूलका भी पूजन करना ॥

मूर्तिस्थापने निर्णयः ।

मूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे-"याम्यास्या शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्धिनी । पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी ॥

देवीकी मूर्तिके स्थापनमें दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यमें यह विशेष वर्णन कियाहै कि, दक्षिणको मुख किए दुर्गा शुभदा और पूर्वाभिमुखी दुर्गा जयवर्द्धिनी होती है, और पश्चिम ओर मुखकिए सदा स्थापनेके योग्य होती है, और उत्तरको मुख किए दुर्गा स्थापन न करनी ॥

प्रतिमाभावे निर्णयः ।

प्रतिमाभावे विशेषस्तत्रैव-"हेमराजतमृद्धातुशैलचित्रार्पितापि वा । खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥ यद्यद्यस्यायुधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां प्रतिपूजयेत् ॥ देवी भक्त्यार्चिता पुंसां राज्यायुःसुतसौख्यदा ॥ २ ॥ कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे-"लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च ॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् ॥ बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः ॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः । भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतिकैः । भगलिङ्गक्रियाभिश्च प्रीणयेद्वरचण्डिकाम् ॥ परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ॥ तस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात्सुदारुणम्" ॥ ४ ॥ चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे तत्रैवोक्तम्-'अन्तिके स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेथ वा ' इति ॥

प्रतिमा न होय तो वहांही विशेष यह लिखाहै सोना, चांदी, धातु, मृत्तिका, पाषाणकी अथवा चित्रमें लिखी हुई भी देवी खड्ग और शूलकी पूजा करनेसे सब मनोरथोंके फलको दान करती है, और जो २ शस्त्र जिस २ देवका लिखा है उस २ में उसकी पूजा करै, भक्तिसे पूजन कीहुई देवी राज्य, आयु, सुख, पुत्रको देतीहै, कृत्यतत्त्वार्णवमें कालिकापुराणका कथनहै कि, लिंगमें स्थित देवीका पूजन करना अथवा मण्डल पुस्तक प्रतिमा चित्रामें त्रिशूल खड्ग जलमें भी स्थित देवीका पूजन करना, बिल्वपत्र जातीके फूल नानाप्रकारके मालपुवे नैवद्य और मनोहर धूपदीपसे देवीकी अर्चा करनी, और भगके लिंगोंका कथन गान और कहनेसे श्रेष्ठ चण्डिकाको प्रसन्न करै, जिसकी कोई निन्दा न करै और जो किसीकी निन्दा न करै उसपर क्रुद्ध हुई देवी कठिन शाप देती है, चित्रमें और मृत्तिकाकी प्रतिमामें स्नान आदि न होसकै तो वहांही यह लिखाहै कि, निकटमें रक्खे हुए खड्गमें अथवा दर्पणमें पूजन करै ॥

अथ सप्तमीपूजाविधिनिर्णयः ।

प्रतिपद्युक्तविधिना फलसंकीर्तनान्ते नवपत्रिकामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये इति

१ यह शब्द आश्लीलरूपसे उच्चारण नहीं हैं किन्तु प्रकृति पुरुषके द्योतक हैं ।

संकल्प्य पूर्वनिमन्त्रितबिल्वसमीपं गत्वा सम्पूज्य। 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमंत्रं पठित्वा। "बिल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय। गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्यहम्। शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो। गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या दुर्गेति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रके देवि सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण सकलामस्माकं वरदा भव॥ मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ। जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः" ॥ ४ ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ 'ॐ हुंछिंधि फट् फट्। 'ॐ फट् स्वाहा इति छित्वा संपूज्य। ॐ चामुण्डे चल चल' इति वाद्यघोषेण देवीं तां च गृहं प्रवेश्य। "आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मय्यां श्रीफलेपि च। स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव" इति स्थिरीकृत्य, रम्भादिपत्रिकाः पञ्चगव्येन च पञ्चामृतेन च स्नापयित्वा, वस्त्रेणावेष्ट्य, स्थापयेत्। इतः पूर्ववत्संकल्पं कृत्वाऽक्षतानादाय देवीमावाहयेत् ॥ तत्र मन्त्रः–"आवाहयाम्यहं देवि मृन्मय्यां श्रीफले तथा। कैलासशिखराद्देवि विंध्याद्रेर्हिमपर्वतात् ॥ आगत्य बिल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम्। स्थापितासि मया दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तुते। दुर्गे दुर्गस्वरूपासि सुरतेजोमयेऽर्चिते ॥ सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये। एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे ॥ भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते। पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ॥ पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे। दुर्गे देवि इहागच्छ सांनिध्यमिह कल्पय ॥ यज्ञभागान्गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह" ॥ ६ ॥ ततो मूलमन्त्रेण इति। पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः संपूज्य। ततः–"अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शंकरस्य सदाप्रियम्। बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि" इति बिल्वपत्रम् ॥ "ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रियम्। तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये" इति द्रोणपुष्पं निवेद्य। धूपादिदक्षिणान्तां पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत् ॥

अब सप्तमीकी पूजाविधि लिखतेहैं कि, प्रतिपदामें कीहुई विधिसे फल संकीर्त्तनके उपरान्त नव पत्रिकासे मृत्तिकाकी दुर्गाका पूजन करके हे सर्वकल्याणि ! तुम आओ इस पूर्वोक्त मन्त्रको पढकर यह स्तुति करै कि, हे बिल्ववृक्ष ! हे महाभाग ! तुम सदा शंकरके प्यारे हो तुम्हारी शाखाको लेकर मैं देवीकी अर्चा करताहूं शाखाके काटनेसे हे प्रभो ! तुम्हें दुःख न करना चाहिये. कारण कि, धर्मशास्त्रमें तुम्हारी शाखा लेकर दुर्गाकी पूजा करनी लिखीहै. हे पत्रिके ! हे देवी ! तुम सर्वकल्याणके निमित्त उठो. और हमारी सब पूजाको ग्रहण करो और हमें वरके देनेवाली हो, हे श्रीफल (बिल्व) वृक्ष ! तुम मेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमवान् पर्वतोंके शिखरोंपर उत्पन्न हुएहो और अंबिका तुमको निरन्तर प्यार करतीहै इस प्रकार प्रार्थना करके ॐ छिंधि फट् फट् ॐ हुंफट्स्वाहा इस मन्त्रसे छेदन और पूजन करके ॐ चामुण्डे चल २ इस मन्त्रसे बाजोंके शब्दसे देवी और शाखाका घरमें प्रवेश करके हे दुर्गे ! तुम मृत्तिका और श्रीफलपर स्थापित हो, घरमें निरन्तर स्थिर होकर मनोरथ देनेवाली हो इस मन्त्रसे स्थिर करके केले आदिके पत्तोंको पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय और वस्त्रसे लपेटकर स्थापना करै फिर पूर्वके सदृश संकल्प करके चावल लेकर देवीका आवाहन करै कि, हे देवि ! मैं मृत्तिका और बेलके फलपर आपका आवाहन करताहूं हे देवि ! कैलासके शिखर विन्ध्याचल हिमाचल पर्वतसे यहां आकर निकटमें आओ. हे दुर्गे ! मैंने आपको स्थापन कियाहै मैं आपकी अर्चा करताहूं तुम प्रसन्नहो, और अवस्था, आरोग्य,

ऐश्वर्यको मेरे निमित्त दो आपको प्रणाम है, हे दुर्गे ! तुम दुर्गरूपाहो देवताओंका तेजरूप हो और सबसे पूजित हो पत्रोंमें स्थित हुई आपको बेलपत्र, फल और मनोहर पुष्पोंसे पूजन करताहूं मेरे ऊपर प्रसन्न हो, हे दुर्गे देवि ! यहां आओ, और यहां सन्निधि करो, कोटियों योगिनीसहित आप यज्ञके भागोंको स्वीकार करो, फिर मूलमन्त्रसे पाद्य आदि गन्धके उपचार पर्यन्त पूजन करके, हे सुरेश्वरि ! अमृतसे उत्पन्न और महादेवको सदैव प्रिय यह बेलका वृक्षहै इस पवित्र बिल्वपत्रको देताहूं, इस मन्त्रसे बिल्वपत्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको द्रोणपुष्प सदा प्रिय है हे दुर्गे ! उसको सब कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त आपको देताहूँ, इसमन्त्रसे द्रोणपुष्प निवेदन करके, और धूप आदि दक्षिणा पर्यन्त पूजाको मूलमन्त्रसे करके इसप्रकार स्तुति करै ॥

ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु-ते ॥ कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे" ॥ ३ ॥ 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इति च सम्प्रार्थ्य पत्रिकाः पूजयेत् ॥ कदल्यां ब्रह्माणीम् ॥ दाडिमे रक्तदन्तिकाम् । धान्ये लक्ष्मीम् । हरिद्रायां दुर्गाम् । माने चामुण्डाम् । कचौ कालिकाम् । बिल्वे शिवाम् । अशोके शोकरहिताम् । जयन्त्यां कार्तिकीं चावाह्य सम्पूज्य दुर्गायै बलिं दद्यात् ॥

कि, हे महिषासुरमर्दिनि ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! मुण्डमालावाली ! अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्य दीजिये. हे देवि ! आपको प्रणामहै; कुंकुमलगाए चन्दन लेपनकिए बेलपत्रके गुच्छेसे युक्त हे दुर्गे ! आपकी मैं शरणहूं, रूप दो. यश दो, ऐश्वर्य्य दो, हे भगवती ! मुझे पुत्र दो, धन दो और सबकामना दो, सबमंगलोंकी तुम मंगलरूपहो इनमन्त्रोंसे प्रार्थनाकरके पत्रिकाका पूजनकरे, केलोंमें ब्रह्माणीका, अनारमें रक्तदंतिकाका धान्यमें लक्ष्मीका, हरिद्रामें दुर्गाका, मानमें चामुण्डाका, केविकापुष्पमें कालिकाका, बिल्वमें शिवाका, अशोकमें शोकरहिताका, जयन्तीमें कार्त्तिकीका आवाहन और पूजनकरके दुर्गाको बलि देनी ॥

शस्त्रादिपूजानिर्णयः ।

अत्र शस्त्रादिपूजा वक्ष्यते ॥ ततः स्तुतिं वदेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये-"दुर्गां शिवां शांति-करीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् ॥ मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥ विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम् । प्रणतोस्मि सदा दुर्गां संसारा-र्णवतारिणीम् ॥ य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः ॥ स मुक्तः सर्वपापैस्तु मो-दते दुर्गया सह" ॥ ६ ॥

यहाँ शस्त्रआदिकी पूजा कहेंगे, फिर स्तुति पढे यह शिवरहस्यमें लिखाहै कि, दुर्गा, शिवा, शांतिकरी, ब्रह्माणी, ब्रह्माकी प्रिया, सर्वलोकोंकी रचनेवाली सदाशिवाको मैं प्रणाम करताहूँ. मंगला: शोभना, शुद्धा, निष्कला, परमकला, जगत्की ईश्वरी और माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करताहूँ; सबदेवमयी सब रोगोंके भय-नाशक ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे वंदित उमाको सदैव नमस्कार करताहूँ विंध्याचलमें स्थित, विन्ध्याचल स्थान-

वाली, दिव्य २ स्थानोंमें विलासकरनेवाली योगिनी और योगकी माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करताहूं, ईशानकी माता, देवी, ईश्वरी, ईश्वरकी प्रिया संसाररूप दुर्गके तारनेवाली दुर्गाको मैं निरन्तर प्रणाम करताहूं, जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढताहै वा सुनताहै वह सबपापोंसे छूटकर दुर्गाके संग आनन्दकरताहै ॥

महाष्टमीव्रतनिर्णयः।

अथ महाष्टमी। सा च परयुता।"शुक्लपक्षेऽष्टमी चैवशुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे–"शरन्महाष्टमी पूजा नवमीसंयुता सदा। सप्तमी संयुता नित्यशोकसंतापकारिणी। जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी। इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी। वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ सप्तमी शल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा। महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत्। तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम्" ॥ ९ ॥ तथा–"पुत्रान्हन्ति पशून्हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम्। हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी॥" तेन नात्र त्रिमुहूर्तवेधः। तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या। 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेः। गौडा अप्येवमाहुः। अत एवोक्तं भोजराजेन–'न च सप्तमी शल्यसमोपहता' इति॥ इयं भौमेऽतिप्रशस्ता।"अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत्। कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ "सप्तमी शल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी। स्तोकापि सा महापुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत्" इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचनात् ॥ 'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता' इति पाद्मवचनाच्च ॥ इयमेव मूलयुक्ता चेन्महानवमीसंज्ञा ॥

अब महाअष्टमीका निर्णय कथनकरतेहैं वह परयुता ग्रहणकरनी कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखाहै कि, शुक्ल पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, परतिथिसे युक्त करनी, मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका कथनहै कि, शरत्कालकी महाष्टमी निरन्तर नवमीसे युक्त पूजनी, सप्तमीसे संयुक्त तो नित्य शोक संतापदायक होतीहै जम्भने सप्तमीसे युक्त महाष्टमी पूजीथी तिससे उस दानवोंमें श्रेष्ठ जम्भको इन्द्रने मारदिया, तिससे सबप्रयत्नोंसे सप्तमीसे मिश्रित अष्टमीको शुभकी आकांक्षावाले मनुष्य प्रयत्नसे त्यागदें, सप्तमीरूप कांटेसे युक्त महाष्टमीको मोह वा अज्ञानसे जो करतेहैं वह नरकमें जातेहैं, जहां एककला सप्तमीहो और फिर अष्टमी हो तिससे यह कांटा पुत्र पौत्रोंका नाश करनेवाला लिखाहै, इसी प्रकार पुत्र, पशु, देश, राज्य और उत्पन्न और न उत्पन्न हुओंको सप्तमीसहित अष्टमी मारतीहै, तिससे तीन मुहूर्त्तका वेध है तब घडीभरभी उदयकालकी ग्रहण करनी. कारण कि, देवलने यह लिखाहै कि, व्रत, उपवास, नियममें वह तिथि लेनी जो एक घडी भी हो गौडभी इसी प्रकार कथन करतेहैं, इसीसे भोजराजने लिखाहै कि, सप्तमीरूप शल्यसे युक्त अष्टमीको करै, यदि यह मंगलवार हो तो अत्यन्त उत्तमहै. कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखाहै कि, अष्टमीमें सूर्योदय हो दिनके उपरान्तमें अष्टमी हो और मंगल होय तो वह प्रयत्नसे पूजनी चहिये। मदनरत्नमें स्मृतिसमुच्चयका कथन है कि, सप्तमीरूपशल्यसे, विद्धा अष्टमी सदैव त्यागनी, जिसमें सूर्योदय हो वह अल्प भी महापवित्रहै, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, अष्टमी नवमीसे युक्त हो और नवमी अष्टमीसे युक्त हो और यही अष्टमी मूलनक्षत्रसे युक्त होय तो उसकी महानवमी संज्ञाहै, कारण कि, ॥

"आश्वयुक्च्छुक्लपक्षे याष्टमी मूलेन संयुता । सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा" इति हेमाद्रौ स्कान्दात् । मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्त्याज्यैवेत्युक्तं निर्णयामृते दुर्गोत्सवे-"मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याऽष्टमी बुधैः । लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता" इति ॥ महाष्टमी । पूर्वेद्युः पूर्वाह्णव्यापित्वे पूर्वान्यथा . परैवेति निर्णयदीपमतम् । एतच्च तुच्छत्वादुपेक्ष्यम् ॥ रूपनारायणधृते देवीपुराणे-"सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी । पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥ " यत्तु-"सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याष्टमी भवेत् । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहनि " इति ॥ विश्वरूपनिबन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम् । "कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाष्टमीदिने । नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादत्रनिःस्वनैः" इति देवीपुराणे ॥ तत्रापि पूजोक्तेरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम् ॥ यानि तु-"भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया । तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधः " इति ॥ यच्च मोहचूलोत्तरे ब्राह्मे च-"आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती । भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता" इति ॥ तथा-"तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी कोटिभिः सह " इति ॥ यच्च मदनरत्ने-"महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी ॥ सप्तम्यापि युता कार्या मूलेन तु विशेषतः". इति ॥ तानि परदिनेऽष्टम्यभावविषयाणीति मदनरत्ने उक्तम् ॥ यत्तु तत्रैव परदिनेऽष्टमीसत्त्वेपि पूर्वविद्धाविधायकं वचनम् ॥

हेमाद्रिमें स्कंदपुराणका मत है कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी त्रिलोकीमें दुर्लभ महानवमी लिखीहै, मूलयुक्तभी सप्तमीसे युक्त होय तो वर्जी योग्यहै, यह निर्णयामृतके दुर्गोत्सवमें लिखाहै कि, जो सप्तमीके लेशमात्रसेभी दूषित हो मूलसे युक्तभी वह अष्टमी बुद्धिमानोंको सदा छोडनेयोग्यहै, पूर्वदिनमें पूर्वाह्णमें होय तो महाअष्टमी प्रथम भी लेनी, नहीं तो परली लेनी, यह निर्णयदीपका मतहै, यह तुच्छहोनेसे छोडने योग्यहै, रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका वाक्यहै कि, जिन्होंने सप्तमी वेधसे युक्त महाष्टमी कीहै वे पुत्र, स्त्री, धनसे हीन हुए पिशाचके तुल्य भ्रमणकरतेहैं, जो यह विश्वरूपनिबन्धका वाक्य है, कि सप्तमीमें सूर्योदय होकर फिर जो अष्टमीहै उसमें दुर्गाका उत्सवकरे, परदिनमें न करे सो आश्विनकृष्णअष्टमीके विषयमें है, कन्याके सूर्य और कृष्णपक्षमें जो अष्टमी उसदिन पूजकर गीतबाजोंके शब्दोंसे नवमीके दिन अर्चाकरे इस देवीपुराणके कथनसे उसमें भी पूजा लिखीहै यह हेमाद्रि और निर्णयामृतमें लिखाहै जो ये वाक्यहैं कि, भद्रा और भद्रकालीके मध्यमें पूजाकार्य होताहै तिससे बुद्धिमान मनुष्य सप्तमीविद्धा दुर्गाष्टमी करैं, जो मोहचूलोत्तरमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, आश्विनसुदी अष्टमीको आधीरात्रके समय पूर्वाषाढनक्षत्रमें भद्रकालीरूपसे पार्वती प्रगटहुई, तैसेही तहां दक्षयज्ञके नाशकरनेवाली भद्रकाली कोटियोंयोगिनीसहित महाघोररूपसे प्रगटहुईहै, जो मदनरत्नमें यह लिखाहै, कि, आश्विनमहीनेके शुक्लपक्षकी कल्याणकारिणी महाष्टमी सप्तमीसे और विशेषकर मूलनक्षत्रसे युक्तभी करनी, ये सब वाक्य दूसरे दिनमें अष्टमीके न होनेके विषयमें हैं यह मदनरत्नमें लिखाहै, जो वहांही यह वाक्य परदिनमें अष्टमी होनेपर भी पूर्वविद्धाका करनेवालाहै ॥

"यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहनि ॥ दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते" इति ॥ तत् परदिने दशम्यां नवम्यभावविषयम् । "यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेहनि । तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप" इति तत्रैव स्मृतिसंग्रहोक्तेः ॥ "उत्तरास्तिथयो यत्र क्षयं यांति नराधिप । पूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत्" इति दुर्गोत्सवोक्तेश्चेति मदनरत्ने ॥ वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयम् । अष्टमीनवम्योः सूर्योदयद्वयसंबन्धपरम् ॥ 'अत एव नवमी च' इति चकारादष्टमी च ॥ तिथय इति बहुवचनादष्टमीनवमीदशम्युक्ता ॥ अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक् ॥ यत्तु-"अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरन्तरं क्वचित् । सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्रायामर्चिता ह्यहम्" इति देवीपुराणे तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम् । "विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः । तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता" इति तत्रैवोक्तेरिति निर्णयामृते ॥ तथा कालिकापुराणे-"सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् । पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः" इति ॥

कि, जब अष्टमीमें सूर्यास्त हो उसदिन दुर्गोत्सव करे अगलेदिन न करे, जहां नवमीमें पूजा हो वहां दुर्भिक्षजाने यह वचन दूसरेदिनमें दशमी नवमीमें न होय तो तब जानना. कारण कि, वहांही स्मृतिसंग्रहका वाक्यहै कि, हे राजन् जब सूर्योदयकालमें परदिन नवमी नहो तब सप्तमीसहित भी अष्टमीको करे यह वहां स्मृतिसंग्रहका कथनहै मणिरत्नमें दुर्गोत्सवका वचन है कि, हे राजन् ! जहां उत्तरतिथिका क्षय होजाय वहां पूर्वाष्टमीको करना अन्यथा अशुभ फल होताहै, सिद्धान्त तो यहहै कि, ये दोनों वाक्य उससमयके हैं जब अष्टमी और नवमीको दोनोंदिन सूर्यका संबंध नहो, इसीसे (नवमी च) इस चकारसे अष्टमी और (तिथयः) इस बहुवचनसे अष्टमी, नवमी, दशमी तिथि लिखीहैं अन्यथा पूर्वोक्तका विरोध प्राप्तहोयगा यही मार्गहै जो देवीपुराणमें यह लिखाहै कि, मैं भद्रारूपहूं और भद्रा मेरा रूपहै, हम दोनोंमें कुछ अन्तर नहींहै भद्रामें पूजी मैं सबसिद्धियोंको देतीहूं, वह वाक्य विष्टिकर्णमें मध्यमें पूजाके निमित्त है. कारण कि, वहांही निर्णयामृतमें यह लिखाहै कि, भद्राको त्यागकर जो महाष्टमीमें मेरी पूजा करताहै, उसको पूजाका फल नहीं मिलता कारण कि, उसने मेरा तिरस्कार किया इसीप्रकार कालिकापुराणमें लिखाहै कि, सप्तमीको पत्रिकाकी पूजा, अष्टमीको व्रत और नवमीको पूजा, जागरण और विधिपूर्वक बलि देना चाहिये ॥

पुत्रवतामष्टम्यामुपवासनिषेधनिर्णयः ।

अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः । "उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत् । यथातथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्" इति तत्रैवोक्तेः ॥ रूपनारायणीये ब्राह्मे-"अतोर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः । उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः ॥ पशुभिः पानकैर्हृद्यै रात्रौ जागरणेन च । दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पण्डितैः ॥ वाद्यभाण्डानि चिह्नानि कवचान्यायुधानि च" ॥ ३ ॥

अष्टमीका व्रत पुत्रवाला न करे कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, अष्टमीको पुत्रवाला व्रत न करे जैसे तैसे पवित्रआत्मावाला व्रती देवीकी पूजाकरे, रूपनारायणमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, इसनिमित्त

उसदिन व्रती पंडितजन वस्त्र, माला, रत्न, धूप, चंदन, पशु, मनोहर पानसे रात्रिमें जागरणपूर्वक देवीकी पूजा करे, और दुर्गाके घरमें शस्त्र, बाजे, पात्र, चिह्न, कवच, आयुधका भी पण्डितजन पूजन करैं ॥

तत्र विशेषः ।

अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये-"आश्वयुक्छुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ॥ कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता । मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता॥नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम् । सा पुण्या सा पवित्रा च सा धन्या सुखदायिनी ॥ तस्यां सदा पूजनीया चामुण्डा मुण्डमालिनी" । सदेत्युक्तेर्नित्यतापि । "तस्यां ये ह्युपयुज्यंते प्राणिनो महिषादयः ॥ सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते । यावन्न चालयेद्गात्रं पशुस्तावन्न हन्यते ॥ न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा सन्तुष्यते मेषैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी ॥ एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभुक्तेन नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे । गृहेगृहे भक्तिपरैर्ग्रामेग्रामे वनेवने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः । स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु । जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी" ॥१०॥ इति ॥ लौहाभिसारिककर्मविधानं तत्रैवोक्तम् । "प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम् । मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं परम्"॥ षोडशहस्तमित्यर्थः ॥ आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् । मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्वत्थदलाभया ॥ राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च । आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् ॥ ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः॥ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्जुहुयाद्घृतम् ॥ शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरङ्गाणां राजानमुपहारयेत् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम् । धृतपल्ययनानश्वान्गजांश्च समलंकृतान् ॥ भ्रामयेन्नगरे नित्यं बन्दिघोषपुरःसरम् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा संपूज्य पितृदेवताः ॥ पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः । यस्याभिसरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः ॥ पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव । यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ९ ॥

इसमें विशेष हेमाद्रि निर्णयामृतके वाक्यसे कहाहै कि, आश्विनके शुक्लपक्षके मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी महानवमी कहीहै, वह त्रिलोकीमें दुर्लभ कहीहै, कन्याके सूर्यमें कृष्णपक्षअष्टमीसे मूलनक्षत्रसे युक्त नवमी लिखीहै, नवमीमें पूजित देवी वाञ्छितफलको देतीहै, वह पुण्य, पवित्र, धन्य, सुखदायिनी है, उसमें मुण्डमालिनी चामुण्डाका सदा पूजनकरे इस कथनमें सदा कहनेसे यह व्रत नित्यभीहै उसदिन भैंसेको आदिलेकर जिन प्राणियोंकी पूजा होतीहै वे सब स्वर्गमें गमनकरतेहैं और मारनेवालोंको दोष नहीं प्राप्तहोता जबतक पशु अपने शरीरको न हिलावे तबतक उसे विशसन न करै । तैसे बलिदानसे पुष्प, धूप, चन्दनसे विन्ध्यवासिनी प्रसन्न नहीं होती जिसप्रकार मेष और भैंसोंके द्वारा प्रसन्नहोती है, इससे विन्ध्य-

वासिनीमें नवरात्रके व्रत एकभक्त, नक्त और अयाचितसे अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्य देवीका स्थान २ पुर २ घर २ में और ग्राम २ वन २ में स्नान करके प्रसन्नहुये ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे युक्त म्लेच्छ और दूसरे मनुष्य और स्त्री हे कुरुओंमें श्रेष्ठ पूजनकरैं, उसकी यह विधि तुम सुनो जयका अभिलाषी राजा प्रतिपदाके क्रमसे अष्टमीपर्यन्त लौहाभिसारिककार्य करावे अर्थात् लोहेसे पशुओंको विशसन करे, लौहाभिसारिककर्मका विधान वहांही लिखाहै कि, पूर्व वा उत्तरको नीचे देशमें पताकाओंसे शोभित दिव्य नौ सात (सोलह) हाथका मंडप निर्माणकरे और उसमें आग्नेयदिशामें सुन्दर हाथभरका इसप्रकार कुण्ड निर्माण करे जिसमें तीनमेखला हों. और पीपलके पत्तेके तुल्य योनि हो और राजाके चिह्न जितने अस्त्र वा शस्त्रहैं उन सबको लाकर उसमण्डपमें रक्खै, फिर ब्राह्मण स्नानकरके श्वेतवस्त्र पहने, और शुद्ध होकर ॐकारपूर्वक ऐसे पशुलिंगके मन्त्रोंसे (जिनमें पशुपद हो) घृतका हवन करै, और घीमिली खीरसे होम करै, और होमसे बचेको तुरंगों (घोडे) के राजाको भोजन करावै, तिससे यह लौहाभिसारिक कर्म ऋषियोंने लिखा है, लगाम लगे घोडे और अलंकृत हाथियोंको बन्दीजनोंके बाजे सहित नगरमें नित्य घुमावै, राजा नित्यप्रति स्नान करके पितर और देवताओंका पूजन करके फल, पुष्प, चन्दनसे राजाके चिह्नोंका पूजन करै, जिसके करनेसे राजाकी विजय होतीहै, पुराणोंमें लिखे पूजाके मन्त्रोंको मैं तुमसे कहताहूँ जिनके पूजन किएके चिह्न कीर्ति; आयु, यश, बलको देतेहैं ॥

अथ विष्णुधर्मोत्तरोक्ता मन्त्राः ।

छत्रस्य–"यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् । तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ॥ " चामरस्य–"शशाङ्ककरसंकाश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ" ॥ अश्वानां वृद्ध्यर्थं रेवंतपूजनमहं करिष्ये । " सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनंदन । शांतिं कुरु तुरंगाणां रेवन्ताय नमोनमः ॥ " अनेन मन्त्रेण पूजा ॥

(अथ मन्त्राः) विष्णुधर्ममें लिखाहै छत्रका यह मन्त्र है कि, जैसे मेघ कल्याणके निमित्त इस पृथ्वीको ढकतेहैं, इसी प्रकार विजय, आरोग्य, वृद्धिके निमित्त तुम राजाको ढको । (चमरका मन्त्र) चन्द्रमाकी किरणोंके तुल्य दूधके झागोंके तुल्य श्वेत, हे निर्मल और दुर्लभ चामर ! शीघ्र पापको नष्टकरो, घोडोंकी वृद्धिके निमित्त मैं रेवंतका पूजन करताहूं हे सूर्यपुत्र ! हे मयाबाहो ! हे छायाके हृदयके नन्दन घोडोंकी शांतिकर रेवंतको प्रणाम है, इस मन्त्रसे पूजा करै ॥

अथाश्वस्य–" गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान् । तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च । स्मर त्वं राजपुत्रं त्वं कौस्तुभं च मणिं स्मर ॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा । भ्रूणहाऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ॥ सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यन्ति दुष्कृतम् । व्रजाश्व तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव ॥ निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरंगम । रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव " ॥ ६ ॥ इति ॥

(अथ अश्वकी पूजा) हे अश्व ! तुम गन्धर्वकुलसे उत्पन्न हुए हो, कुलको दूषित मत करियो, ब्रह्माके और चन्द्रमा वरुणके सत्यवाक्यसे और अग्निके प्रभावसे घोडोंकी तुम वृद्धि करो, सूर्यके तेज और मुनियोंके तप और रुद्रके ब्रह्मतेज, और पवनके बलसे, युक्त तुम राजपुत्र हो उसका और कौस्तुभमणिका

स्मरण करो, जिस गतिको ब्राह्मण माता, पिता, भ्रूण इनका हत्यारा, झूठा, पराङ्मुख क्षत्रिय, प्राप्त होतेहैं, सूर्य, चन्द्रमा, वायु इतने पापको देखतेहैं, ये सब पाप शीघ्र न चलनेसे तुमको होंगे । हे अश्व ! यदि तुम युद्धके शब्दको सुनकर तिरस्कारसे चलोगे तो ऐसा होगा इससे तुम शीघ्र चलो संग्राममें शत्रुओंको जीतकर अपने स्वामीसहित सुखी हो ॥

अथ ध्वजस्य–"शक्रकेतो महावीर्य श्यामवर्णार्चयाम्यहम् । पत्रिराज नमस्तेस्तु तथा नारायणध्वज ॥ काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन । अप्रमेय दुराधर्ष रणे देवारिसूदन ॥ गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः । सारवन्त्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह " ॥ ३ ॥

(ध्वजाका मन्त्र) हे इन्द्रकी ध्वजा ! हे महावीर्य ! हे श्यामवर्ण ! मैं तुम्हारा पूजन करताहूं, हे पितृराज ! तुम्हें नमस्कारहै, हे नारायणकी ध्वजा ! हे अरुणके भ्राता, हे नागोंके शत्रु, हे विष्णुके वाहन, हे प्रमाणरहित, हे सहनेके अयोग्य, हे संग्राममें शत्रुनाशक, तुम गरुड हो वायुके तुल्य तुम्हारी गति है सारवाले शस्त्रोंकी तुम रक्षा और शत्रुओंका दाह करो ॥

अथ पताकायाः–"हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥ प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥ प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समंततः ॥ पतंतूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा । हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा । कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्रिपुरघातने । शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर ॥ नीलाञ्छ्वेतानिमान्दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥ पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता । दहत्वाशु रिपून्सर्वान्पताके त्वं मयार्चिता" ॥ ७ ॥

(पताकाका मन्त्र) अग्नि, वसु, रुद्र, वायु, चन्द्रमा, महान् ऋषि, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष-भूतोंके गण, ग्रह, प्रथम, सूर्य भूत, ईश, मातर, इन्द्र, सेनाका पति स्वामि कार्तिक, वरुण ये सब तुम्हारेमें आश्रितहैं, यह सब शत्रुओंको हनते हैं, और राजाकी विजय हो जो शस्त्र चारों तरफसे शत्रुओंने फेंके हैं वे शत्रुओंके ऊपर पडते हुए तुम्हारे तेजसे नष्टहों, हिरण्यकशिपुके युद्धमें, देवता असुरके युद्धमें, कालनेमिके मरनेमें और त्रिपुरके मरनेमें जैसे तुम्हारी शोभा हुई इसीप्रकार अब हमारी शोभा करो और हमें स्मरणकर, नील और श्वेत इन पताकाओंको देखकर शीघ्र राजाके शत्रु नष्टहों, नाना प्रकारकी घोर व्याधि और शस्त्रोंसे युद्धमें जीतै पूतना रेवती और कालरात्रि ये सब शीघ्र शत्रुओंको दग्ध करै, हे पताके ! मैंने तुम्हारा पूजन किया ॥

अथ गजस्य–"कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः । सुप्रतीकोंजनो नील एतेष्टौ देवयोनयः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः । मन्दो भद्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥ वनेवने प्रसूतास्ते यूथानि सुमहांति च । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ॥ भर्तारं रक्ष नागेंद्र स्वामिवत्प्रतिपाल्यताम् । अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज ॥ श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोनिलात् । स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् ॥ युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा " ॥ ६ ॥ इति ॥

(अथ हाथीका मन्त्र) कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, नील ये आठ हाथी देवयोनिहैं, इनके पुत्र और पौत्र जो आठ बनोंमें रहतेहैं, जैसे मन्द्र, भद्र, मृग, गज, संकीर्ण जो वन २ में उत्पन्न हुए हैं उनकी योनिको स्मरण करो. वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, तुम्हारी रक्षा करो. हे नागेन्द्र ! अपने पालन करनेवालेकी रक्षा कर और स्वामीके समान पालना करो, और युद्धमें जयकी प्राप्ति हो तथा यात्रामें हमारा कल्याण करो, चन्द्रमासे तुम्हारी लक्ष्मी, विष्णुसे बल, सूर्यसे तेज, पवनसे वेग, मेरुसे स्थिरता, रुद्रसे जय, इन्द्रदेवसे यश तुम्हारा प्राप्त रहै, और नागदेवताओं सहित दिशा, तथा गन्धर्वों सहित अश्विनीकुमार एकत्र होकर तुम्हारी चारों ओरसे रक्षा करें ॥

अथ खड्गमन्त्रः–"असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥ एतानि तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा। नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः। पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥ नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः। भावशुद्धोमर्षणश्च अतितेजास्तथैव च ॥ इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः। तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः" ॥ ९ ॥

(अब खड्गका मन्त्र कहतेहैं) हे खड्ग ! असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मधार ये तुम्हारे नामहैं और ब्रह्माने स्वयं कहेहैं, कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र गुरुदेव महेश्वर हैं, तुम्हारा शरीर रोहिणी है, जनार्दन देवताहै, तुम पितापितामह देवहो, तुम मेरी सदा पालना करो, नील-मेघके तुल्य तुम्हारा रूपहै तुम्हारी तीक्ष्ण दाढेहैं, कृश पेटहै, भाव शुद्धहै, सहनेके अयोग्य अत्यन्त तेजवान् हो, इस पृथ्वीको जिसने धारण किया है और महिषासुरको माराहै उस तीक्ष्णधारावाले शुद्ध खड्गको प्रणाम है ॥

अथ छुरिकायाः–"सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना। शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् ॥ चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणी। तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥ सर्वसत्वाङ्गभूतासि सर्वाऽशुभनिबर्हिणि। छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोस्तुते" ॥ ३ ॥

(छुरीका मन्त्र) हे छुरी ! सब शस्त्रोंसे प्रथम महादेवने तुम्हें शूल आयुधसे निकालकर और शुभ मुष्टिधर बनाकर निर्माण कियाहै, और चण्डिकाको दी है, तुम सब दुष्टोंकी नाश करनेवाली हो, देवीने ऐसाही तुम्हारा विस्तार किया, और देवताओंको दी, सब जीवोंके अंगसे उत्पन्न सब अशुभोंको नष्ट करनेवाली, हे छुरिके ! मेरी नित्य रक्षा करो, और शान्ति दो तुम्हें नमस्कारहै ॥

अथ कट्टारकपूजा–"रक्षाङ्गानि गजान्रक्ष रक्ष वाजिधनानि च। मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोस्तु ते" ॥ कट्टारको मध्यदेशे कटारीति प्रसिद्धा ॥

(कटारकी पूजा) हे कटार ! गौ, हाथी, घोडे, धनकी रक्षाकर, और मेरे देहकी निरन्तर रक्षा-कर. हे कटार ! तुम्हें नमस्कारहै, कटारको कोई मध्यदेशमें 'कटारी' कहतेहैं ॥

अथ धनुःपूजा ॥ "सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन। चाप मां समरे रक्ष साकं शर-वरैरिह ॥ धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च। त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम्" ॥ २ ॥

(धनुषकी पूजा) हे सबआयुधोंमें महान् ! हे सब्रदेव शत्रुओंके नाशक ! हे धनुष ! बाणोंसहित संग्राममें हमारी रक्षाकर, रक्षाके निमित्त कृष्णने और संहारके निमित्त महादेवने तुझे धारणकिया. तीनों-मूर्त्तियोंमें तेरा तेजहै मैं धनुषअस्त्रको प्रणाम करताहूं ॥

अथ कुन्तपूजा—"प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया । गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षताम्" ॥

(भालेकी पूजा) हे भाल ! तुम शत्रुओंको गिराओ, इस देवमायासे उनके प्राणको ग्रहण करो । और मेरी सेनाकी रक्षा करो ॥

अथ चर्मपूजा—"शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोद्य मे । रक्ष मां रक्षणीयोहं तापनेय नमोस्तुते" ॥

(अब चर्म ढाल की पूजा कहतेहैं) हे चर्म ! तू संग्राममें सुखदेनेवाली है, आज मेरी सेनाके यशकी रक्षाकर, मैं तुम्हारी रक्षाके योग्यहूं, हे तपानेवाले ! तुमको नमस्कारहै ॥

अथ कनकदण्डमन्त्रः—"प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयस्व रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोस्तुते" ॥ २ ॥

(अब सुवर्णके दण्डका मंत्र कथन करते हैं) कि, दुष्टोंके भगाने, और साधुओंकी रक्षाके और व्यवहारको प्रसिद्धके निमित्त ब्रह्माने तुम्हें रचाहै. राजाको यश, सुख, जय देनेवाले हो, सब शत्रुओंको ताडनकर हे सुवर्णके दंड तुझको प्रणामहै ॥

अथ दुन्दुभिमन्त्रः—"त्वं दुन्दुभे सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः ॥ यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोस्माकं मुदावहः ॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथात्र तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे" ॥ ३ ॥

(दुन्दुभिका मंत्र) हे दुन्दुभे ! तू भयानक है, और शत्रुओंके हृदय आकर्षणकरनेवाला है, जैसे मेघके शब्दसे मोर प्रसन्न होतेहैं इसप्रकार तुम्हारे शब्दसे हमको प्रसन्नताहो जिसप्रकार मेघके शब्दसे स्त्रियोंको डर होताहै तैसेही तेरे शब्दसे युद्धमें हमारे शत्रुओंको त्रासहो ॥

अथ शंखमन्त्रः ॥ "पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव" ॥

(अब शंखका मंत्र कथन करतेहैं) हे शंख ! तू पुण्योंका पुण्य और मंगलोंका मंगलहै, विष्णु भगवान् तुझे नित्य धारणकरतेहैं इससे हमें शान्ति दो ॥

अथ सिंहासनमंत्रः ॥ "विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभङ्करः । दुःखहा धर्मदः शांतः सर्वारिष्टविनाशनः ॥ एते वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं देवैर्मंत्रैश्च गीयसे ॥ त्वयि स्थितः शिवः शांतस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः । नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः ॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोस्तु ते । तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि पूज्यानि शिल्पिभिः ॥ लोहाभिसारिकं कर्म कृत्वैवं मंत्रपूर्वकम् । कृत्वा नियममष्टम्यां पूर्वाह्ने स्नानमाचरेत् ॥ कुंकुमचंदनचम्पकचतुरामैः शैलपिष्टैश्च । चर्चितगा-

त्रीं देवीं कुसुमैरभ्यर्चयेद्बहुभिः ॥ कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः । मांसैर्बलयुपहारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः ॥ विहितच्छत्रैर्यानैः स्यन्दनसितशस्त्रधारिजनलोकैः । तुष्टैः पश्वस्त्रादि च निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै ॥ दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिने द्रोणपुष्पकैः । ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये ॥ इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः । पुनःपुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन्हृदये शिवाम् ॥ सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि । नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम् ॥ एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते अरुणोदये । घातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकंधरान् ॥ शतमर्धशतं वापि तदर्धं वा यथेच्छया । सुरासवधृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥ कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजने तथा । ततोऽपराह्णसमये नवम्यां वै रथे स्थिताम् ॥ भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा सशब्दवान् । कश्चिच्चोपोषितो वीरो विधृतोन्येन खड्गवान् ॥ भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मंत्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ त्रींस्त्रीन्वारान्समूहेन दिग्विदिक्षु किरेद्बलिम् " ॥ १७ ॥ मंत्रश्च—"बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः । दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । मा विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥ ४ ॥ " इति ॥ इति महाष्टमीनिर्णयः ॥

अब सिंहासनका मंत्र कहतेहैं विजय, जयका देनेवाला, शत्रुओंका जीतनेवाला, रिपुका मारनेवाला, शुभका कर्ता, दुःखका नाशक, धनदाता, शान्तरूप, सब अरिष्टोंका नाशकहै, जिससे यह आठ महाबली सिंह तुम्हारे निकटहैं तिससे वेद और मंत्रमें तुम्हें सिंहासन कहाहै, तुममें शान्त शिव स्थितहैं, तुममें इन्द्र स्थितहैं, हे सर्वतोभद्र तुम्हें प्रणामहै, तुम राजाको वरदेनेवाले हो. हे त्रिलोकीके जयके सर्वस्वसिंहासन ! तुझे प्रणामहै, तैसे शिल्पी अपने कामके चिह्नोंका पूजन करैं, इसप्रकार मंत्रपूर्वक लौहाभिसारिक कर्मको समाप्तकरके अष्टमीको नियमपूर्वक पूर्वाह्णमें स्नानकरे, कुंकुम, चंदन, चम्पा, लाखको चन्दनमें पीसकर शरीरपर चर्चे, और बहुत फलोंसे गायत्रीकी अर्चाकरे, कुमुद, पद्मके फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, मांसबलि भेंट बडे २ मंगलके शब्द, बनाये छत्र, पान, रथ, पैने शस्त्र धारणकरनेवाले लोक प्रसन्नमन होकर इन सबका भगवतीके प्रति निवेदनकरे, और उसदिन दुर्गाकी द्रोणके फूलोंसे पूजा करे, फिर शत्रुओंके मारनेके निमित्त खड्गको प्रणाम करके राजा अपने विजय राज्य सुभिक्षकी इच्छा करे, वारंवार खड्गको नमस्कार करके शिवाका हृदयमें स्मरण करता हुआ पूजन करे. हे कुरुवंशी ! इन सब कृत्योंको करके अष्टमीको रात्रिमें नटोंके नृत्य गीतोंसे बडे उत्साहसे जागरण करे.इसप्रकार प्रसन्नतासे रात्रिको विताय कर प्रातःकाल अरुणोदयके समय देवीके आगे झुकाये कन्धेवाले भैंसे और मेढे सौ, पचास, पचीस, अपनी इच्छासे बलि दिवावे, और सुराके आसबसे भरे घडोंसे परमेश्वरीकी अर्चा करे, वह मांस कापालिकोंको देदेना और दास दासियोंको देदे, फिर अपराह्ण कालमें नवमीको रथमें बैठाकर भवानीको अपने राष्ट्र (देश) में स्वयं भ्रमण करावे, जो कोई व्रती वीर खड्गवान् किसी दूसरेने पकड रक्खाहो मांससहित सब भूतोंको बली इस मंत्रसे दे, रुधिर जलसहित गंध, पुष्प, अक्षतोंसे युक्त अन्न तीन २ वार मूलमंत्र पढकर दिशा और विदिशाओंमें उस अन्नकी बलिदेनी. मंत्र यह है देवता, आदित्य, वसु, मरुत्, अश्विनीकुमार,

१ यह कल्पान्तरका विषयहै ।

रुद्र, सुपर्ण, पन्नग, ग्रह, असुर, यातुधान, पिशाच, उरग, राक्षस, डाकिनी, यक्ष, वेताल, योगिनी, पूतना, शिवा, जंभिका, सिद्ध, गन्धर्व, माला, विद्याधर, नाग, दिक्पाल, लोकपाल तथा जो विघ्न और विनायक हैं और जगत्की शांति करनेवाले ब्रह्मा, आदि महर्षि हैं, वे सबही इस बलिको स्वीकार करें, और मेरा विघ्न न हो, पाप न हो, शत्रु न हों और सुख देनेवाले सब भूत प्रेत मुझे सौम्य होजाँय ॥ इति महाष्टमीनिर्णयः ॥

महानवमीनिर्णयः ।

महानवमी तु पूर्वयुता ग्राह्या । पूर्वोक्तवचनात् । 'नवमी दुर्गाव्रते श्रावणी' इति दीपिकोक्तेः । "श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च ॥ भविष्येपि-"आश्वयुक्छुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा" इति ॥ मूलमुपलक्षणम् । "दुर्गापूजा तु नवमी मूलाद्यृक्षत्रयान्विता । महती कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषमर्दिनी" इति मदनरत्ने लैङ्गात् । अत्र पूजयेदित्यग्रे शेषः । यानि तु 'सा कार्योदयगामिन्यां' 'तिथावुदयगामिन्याम्' इत्यादिप्रागुक्तानि । तानि नवमीभिन्नतिथिपराणि । नवम्यां विशेषोक्तेः । वेधश्च मुहूर्तत्रयेणैव ज्ञेयः । यद्यपि हेमाद्रिमते मुहूर्तद्वयात्मापि वेधोस्ति । तथापि सूर्योदय एव सः ॥ सायं तु त्रिमुहूर्त एव । तदुक्तं दीपिकायां 'त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायं' इति ॥ माधवोपि-'सायं तूत्तरया तद्वन्न्यूनया न तु विद्ध्यते' इति ॥ तेन त्रिमुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी । पूर्वोक्तवचनात् । 'न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन' इति स्कान्दे परानिषेधाच्च ॥ त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि परैव कार्येति निष्कर्षः ॥ यत्तु-"नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणेपि वा" इति संग्रहोक्तेः ॥ 'व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः' इति देवीपुराणाच्च ॥

महानवमी पूर्वोक्तवाक्यसे पूर्वयुक्त ग्रहण करनी. कारण कि, दीपिकामें यह लिखा है कि, दुर्गाव्रतकी नवमी और श्रावणी पूर्वयुता ग्रहण करनी. हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि-श्रावणी, दुर्गानवमी दूर्वाष्टमी, होली, शिवरात्री, वामनद्वादशी यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आश्विनशुक्ल पक्षकी मूलसंयुक्त अष्टमी महानवमी कही है, यह त्रिलोकीमें भी दुर्लभ है,मूलनक्षत्र उपलक्षण है कारण कि, मदनरत्नमें लिंगपुराणका कथन है कि, दुर्गापूजामें नवमी मूलआदि तीन नक्षत्रोंसे युक्त बडी लिखी है, उसमें महिषमर्दिनी दुर्गाकी पूजा करे और जो यह वाक्य है कि, उदयगामिनी तिथिमें वह करनी चाहिये । यह पूर्वोक्तवाक्य नवमीसे भिन्न तिथिके विषयमें लिखे हैं कारण कि, नवमीमें विशेष लिखा है, वेध तीन मुहूर्तसे जानना चाहिये । यद्यपि हेमाद्रिके मतमें दो मुहूर्तका भी वेध लिखाहै तो भी सूर्योदयमें वह जानना, सायंकालको तो तीन मुहूर्त्तकाही वेध होताहै यही दीपिकामें लिखाहै कि, सायंकालकी तीनमुहूर्त्त भी तिथि होय तो सम्पूर्णही जाननी, माधवकाभी यही कथन है कि, सायंकालके समय न्यूनभी अगली तिथिसे वेध नहीं होता इससे तीनमुहूर्तके योगमें पूर्वोक्तवाक्यसे प्रथम नवमी ग्रहण करनी, स्कन्दपुराणमें यह निषधभी है कि, हे तात ! दशमीमें नवमीको कभी भी न करै तिससे तीन मुहूर्त्तका योग न होय तो निषिद्ध भी अगली करनी यही सिद्धान्तहै । जो किसीने संग्रहके वाक्यसे यह लिखाहै कि, श्रवणमें जप और होम नवमीको पूर्ण करै नवमीमें विधिपूर्वक व्रत, जागरण, बलिदान करै यह देवी पुराणमेंहै ॥

तत्र होमबल्यादिनिर्णयः ।

नवम्यां होमबल्यादिविहितं तत्र-" आश्वयुक्छुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः " ॥ इति सौरपुराणात् । "सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि । बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभावहम् ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभङ्गो भवेन्नृप"॥ इति मदरत्ने देवीपुराणाच्च ॥ बल्यादौ परा कार्या ॥ उपवासादौ तु पूर्वेति मदनरत्ने उक्तम् । प्रतापमार्तण्डेप्येवम् । यत्तु—'अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद्ध्रुवम्' इति कालिकापुराणे । तत्संधिपूजापरम् ।'अष्टमीनवमीसंधौ तृतीया खल कथ्यते ' इति तत्रैव तदुक्तेः ॥ कामरूपनिबन्धे—"अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च । तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला॥ " अष्टमीमात्रे भवत्येव । "आश्विने पूजयित्वा तु अर्धरात्रेष्टमीषु च । घातयंति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः " ॥ तथा—"कन्यासंस्थे रवावीशे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः ॥"

यहां नवमीको होम बलिदान लिखाहै, उसमें इस सौरपुराण और देवीपुराणके वाक्यसे बलिआदिमें दूसरी और व्रतआदिमें पहली करनी यह मदनरत्नमें लिखाहै कि, आश्विनशुक्ला नवमी मुहूर्त्त वा कलामात्र होय तो वह विद्या, लक्ष्मी, जयकी इच्छावालोंको सम्पूर्ण जाननी चाहिये, सूर्योदयमें नवमी होय और आगे दशमी होय तो देशमें शुभ देनेवाले बलिदानको करना. हे राजन्! अष्टमीमें बलिदान करनेसे पुत्रका नाश होताहै, और प्रतापमार्तण्डमें भी इसीप्रकार लिखाहै, जो यह कालिका पुराणमें कहाहै कि, अष्टमीको बलिदानसे अवश्य पुत्रनाश होताहै वह वाक्य सन्धिपूजाकी प्रशंसाके निमित्त है. कारण कि, उसी स्थलमें उसने यह लिखा है कि, अष्टमी और नवमीकी सन्धिमें पूजा करनी कामरूप निबन्धमें भी कहाहै कि, अष्टमीका शेषभाग और नवमीका पूर्वभाग उसमें कीहुई पूजा महाफलकी देनेवाली होती है, केवल अष्टमीमें भी यह होती है आश्विनकी अष्टमीमें आधीरातके समय पूजा करके जो भक्तिसे पशुओंका वध करते हैं वे महाबलको प्राप्त होतेहैं, कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्टमीको व्रत करके आधीरातमें बडे धनके विस्तारसे पूजा करै ॥

तथा—"पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा" इति ॥ रूपनारायणीये देवीपुराणात् ॥ तत्रैव भविष्ये—"तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी । उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः ॥" निर्णयदीपे तु। महानवमी परदिने पराह्णव्यापित्वे परा ॥ अन्यथा पूर्वा ॥"आवर्तनात्पूर्वकाले नवमी स्यात्परेहनि । दुर्गार्चा तत्र पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि" इति धौम्यवचनादित्युक्तम् ॥ अस्य तु शारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम् ॥ यानि तु—" नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम् । भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति" इति ॥ "नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते । दशमीं वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा" इति ॥ "नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दिशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते " ॥ ' ब्रह्मवैवर्तनारदादिवचनानि शुद्धाधिकनिषेधपराणि' इति मदनरत्ने ॥ तथा कालिकापुराणे—" नवम्यां बलिदानं तु कर्त्तव्यं वै यथाविधि । जपं होमं च विधिवत्कुर्यात्तत्र विभूतये " ॥ केचित्तु—' पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् ' इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः ॥ अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति ॥ समुच्चयस्तु

युक्तः ॥ रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः ॥ तत्तु निर्मूलम् ॥ दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिगौडग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः ॥

इसीप्रकार पशुका घात और नीलपशु और मेषका घात करै, रूपनारायणीयमें यह देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है वहांही भविष्यपुराणका यह वाक्य लिखाहै कि, तिससे महापुण्य और पापनाशिनी यह नवमी बड़े यत्नसे सब राजाओंको व्रत रहनेयोग्य है. निर्णयदीपमें तो यह लिखाहै कि, महानवमी परदिनमें अपराह्णव्यापिनी होय तो परली लेनी अन्यथा पहली करनी. कारण कि, यह धौम्यने कहा है कि, आवर्त्तन (मध्याह्न) से नवमी पूर्व कालमें परले दिन होय और जो अष्टमी पहलेदिन पूर्वाह्णमें होय तो दुर्गाकी पूजा प्रथमदिन करै इस वाक्यको, शरद्नवमीविषयमें मानना चाहिये । और इसमें प्रमाणभी विचारने योग्य है, जो ब्रह्मवैवर्त नारद आदिके यह वाक्यहैं कि, नन्दामें अग्निहोत्र, पूर्णामें पशुवध, भद्रामें गौओंकी क्रीडा करै तो राज्य नष्ट होता है, नवमीके दिन अपराह्णमें बलिदान उत्तम है और दशमीको निषेधहै इसमें विचार नहीं करना, नन्दामें राज्यदर्शन रक्षाबन्धन दिशाओंमें बलिदान करना, भद्रामें क्रीडाहोय तो देशका नाश होताहै, ये पूर्वोक्त वाक्य शुद्रासे अधिकके निषेधके विषय लिखेहैं, यह मदनरत्नमें कहा है इसीप्रकार कालिकापुराणके वाक्यहैं कि, नवमीको विधिसे बलिदान करै, और अपने ऐश्वर्यके निमित्त विधिसे जप होम करै, कोई तो इस पूर्वोक्त देवीपुराणके वाक्यसे अष्टमीको होम कहते हैं कि, पूर्वाषाढसे युक्त अष्टमीको पूजा, हवन, व्रत करै, और तो दोनों प्रकारके वाक्योंसे अष्टमीसे आरम्भ करके नवमीको पूर्ण करते हैं, इनकी एकता तो युक्त है, रुद्रयामलमें तो विकल्प लिखाहै सो निर्मूल है, दुर्गाभक्तितरंगिणी आदि गौडग्रन्थोंमें तो नवमीको हवन लिखाहै ॥

होमे विशेषः ।

होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे-"पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् । होमयेद्विधिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम ॥ रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् । तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत्" ॥ २ ॥ यद्वा सप्तशतीजप्यहोममन्त्रो नवाक्षरः । 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इति नवाक्षरः' इति केचित् ॥ पूजोक्तो ग्राह्य इति तु युक्तम् ॥ रुद्रयामलेपि ॥ "प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा । किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजदूर्वाङ्कुरैरपि ॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा । रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात् । नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च" इति ॥ रहस्ये तु-'प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा' इत्युक्तम् । दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां तु तिलैर्जयन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः-'पुरश्चरणकार्ये तु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः' इति ॥ कालिकापुराणाद्बिल्वपत्रैश्चेति स्मार्ताः ॥ तन्न ॥ अत्र मानाभावात् ॥

और हवनमें विशेष डामरतन्त्रमें यह लिखाहै कि, हे राजन् ! घीसे और श्वेत तिलोंसे मिली खीरका भक्ति और विधिसे दशांश हवनकरै, जैसे रुद्राध्यायमें एक मन्त्रसे हवन होताहै इसीप्रकार स्तोत्रके जपमें एक श्लोकसे हवन करै, अथवा सप्तशती (दुर्गापाठ) जपमें 'ऐंह्रींक्लीं चामुण्डायैविच्चे' इस नवाक्षरसे वा पूर्वोक्त पूजाके नवाक्षर मन्त्रसे हवन करै यह युक्तही है, रुद्रयामलमें तो यह लिखाहै कि, खीर और तिल पूजाके प्रधान द्रव्यहैं और केशू, सरसों, सुपारी, खील, दूर्वा, यव, श्रीफल, नानाप्रकारके दिव्य फल,

लालचन्द्रनके खण्ड, मनोहर गन्ध इन सब द्रव्योंसे प्रतिश्लोकसे वा नवाक्षरसे वा (नमोदेव्यै) इससे हवन करै, रहस्यमें तो यह लिखा है कि, घीमिली खीरसे प्रतिश्लोक पढकर होम करै, दुर्गाभक्तितरंगिणीमें तो जयन्तीमन्त्रसे तिलोंका होम करना कहा है, पुरश्चरणके कार्योंमें तो विल्वपत्रसे मिले तिलोंसे होम करना कहा है इस कालिकापुराणसे बेलपत्रसे होम करना कहाहै यह स्मार्त्त कहते हैं सो उचित नहीं कारण कि, इसमें प्रमाण नहीं है ॥

अथ बलिदानम् ॥ तत्राश्वमेषछागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरं प्राशस्त्यं फलविशेषश्चान्यतोवसेय इति दिक् ॥ बलिप्रकारस्तु देवीपुराणे–"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । द्रोणपुष्पैश्च बिल्वाम्रजातीपुन्नागचम्पकैः ॥ पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम् । विधिवत्कालिकालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् " ॥ २ ॥ 'ॐ कालिकालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः ' इति मन्त्रः ॥ 'तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूजनादिषु ॥' आदिशब्दात् चरकीविदारीपापराक्षस्यः । 'नैर्ऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम्' । मन्त्रस्तु वक्ष्यते ॥ तथा–"तस्याग्रतो नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु पैष्टिकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः " ॥ अशक्तौ ब्राह्मणेन च कुष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् ॥ तदुक्तं कालिकापुराणे–"कुष्माण्डमिक्षुदण्डं च मांसं सारसमेव च । एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ॥ " रुद्रयामलेपि–"छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् । वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना " ॥ तथा–"ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्मांडं बलिकर्मणि । श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥ छेदे विकल्पः ॥ माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता ॥ " कालिकापुराणे–"उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा । निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् । चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोस्तु ते ॥ यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोवधः ॥ ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्वरूपिणम् । चिन्तयित्वा न्यसेत्पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव ॥ रसना त्वं चण्डिकाया सुरलोकप्रसाधकः " ॥

अब बलिदान कहतेहैं तिसमें मेष, बकरी, भैंसा, अपना मांस, उत्तरोत्तर श्रेष्ठहैं इसका फल विशेष दूसरे ग्रन्थोंसे देखलेना यही मार्ग है । बलिका प्रकार तो देवीपुराणमें यह लिखा है कि, हे इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्टमीको द्रोणके फूल, बेल, आम, जाती, पुन्नाग, चम्पासे तथा लक्षणसे युक्त गन्ध पुष्पसे पांचवर्षके पशुकी पूजाकरे, और विधिसे (ॐकालिकालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः) इस मंत्रको जपकर खड्गसे वधकरे उसके निकले हुए रुधिर और मांसको लेकर पूतना चरकी विदारी पापराक्षसी राक्षस इनको महाकौशिकमंत्र (जो आगे लिखैंगे) पढकर दे. इसीप्रकारसे मन्त्रहै उसके आगे राजा स्नानकरे, और पिट्ठीके शत्रुको बनाकर खड्गसे मारकर स्कंद और विशाखाके निमित्त प्रदानकरै शक्ति न होय तो ब्राह्मणके द्वारा पेठा आदिसे बलिकरनी चाहिये, यही कालिकापुराणमें लिखाहै कि कूष्माण्ड (पेठा) गन्ना, सारसका मांस ये बलिके तुल्य कहेहैं और तृप्तिमें सदा बकरेके तुल्यहैं. रुद्रयामलमें भी लिखाहै कि, छाग न होय तो कूष्माण्ड वा मनोहर नारियलको वस्त्रसे लपेटकर छुरीआदिसे छेदनकरावे, इसीप्रकार हे इन्द्र ! ब्राह्मणोंको

सदैव बलिकर्ममें कूष्माण्ड वा श्रीफल देना चाहिये और उसका छेदन न करावे, छेदन करनेमें विकल्पहै,ज्ञानी ब्राह्मण उर्द अन्नसे बलिदे, कालिकापुराणमें कहाहै कि, आप उत्तराभिमुख होकर और बलिको पूर्वाभिमुख करके देखे और साधक भक्त पीछेसे इस मंत्रको उच्चारण करे तू पशु मेरे भाग्यसे बलिरूप प्राप्त हुआ है सर्व रूपी और बलिरूप तुझे मैं प्रमाण करताहूं चंडिकाको प्रीतिदानसे तू दाताकी आपत्तियोंको हरता है चामुंडाके बलिरूप तुम्हें मैं प्रमाण करताहूं, ब्रह्माने यज्ञके निमित्त स्वयं पशु रचे हैं, इससे तुझे मैं आज वध करताहूं तिससे यज्ञमें मारना नहीं मारनेकी समान है, ऐंह्रींश्रीं इस मंत्रसे उस बलिको देवतारूपी चिन्तन करके हे भैरव उसके मस्तकपर फल रक्खे, तू चण्डिकाकी जिह्वा इन्द्रलोक देनेवाली है ॥

"ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् ॥ पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ हुंफडिति मन्त्रकैः । गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्बलिमुत्तमम् ॥ ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतामिति । बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः" ॥ ८ ॥ मत्स्यसूक्ते-"नवम्यां पूर्ववत्पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता । दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥

ह्रींह्रीं इस मन्त्रसे ध्यान करके खड्गकी पूजा करे पूजित खड्गको ॐहुंफट्, इस मन्त्रसे लेकर उस उत्तम बलिका छेदन करे, फिर (ॐ ह्रींऐंह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतां) इस मन्त्रसे बलि देनी, दुर्गाके बलिदानमें सब स्थानमें यह विधि कथन की है, मत्स्यसूक्तमें लिखाहै कि, धनकी इच्छावाले मनुष्यको नवमीके दिन पूर्वके तुल्य पूजन करना तथा दक्षिणा और दो वस्त्र आचार्यको देने चाहिये ॥

शतचण्डीविधाननिर्णयः ।

अथात्र प्रसङ्गाच्छतचण्डीविधानमुच्यते रुद्रयामले-"शतचण्डीविधानं च प्रोच्यमानं श्रृणुष्व तत् । सर्वोपद्रवनाशार्थे शतचण्डीं समारभेत् ॥ षोडशस्तंभसंयुक्तं मण्डलं पल्लवोज्ज्वलम् । वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्यात्त्रिभागतः ॥ पक्केष्टकचितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम् । तत्र वर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम् ॥ पञ्चवर्णवितानं च किंकिणीजालमण्डितम् । आचार्येण समं विप्रान्वरयेद्दश सुव्रतान् ॥ ईशान्यां स्थापयेत्कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । वारुण्यां च प्रकर्तव्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥ मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै । तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते ॥ अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाष्टकरामपि । पट्टकूलयुगच्छन्नां देवीं मध्ये निधापयेत् ॥ देवीं सम्पूज्य विधिवज्जपं कुर्युर्दश द्विजाः । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मत्रं नवार्णवम् ॥ चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोयमुदाहृतः । एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् ॥ रूपाणि क्रमशस्तद्वत्पूजनादिकमाचरेत् । पञ्चमीदिवसे प्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः । गुडूचीं पायसं दूर्वां तिलाञ्छुक्लान्यवानपि । चण्डीपाठस्य होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः ॥ होमं कुर्याद्ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरून् क्रमात् । हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्द्विजेभ्यो दक्षिणां क्रमात् ॥ कपिलां गां नीलमणिं श्वेताश्वं छत्रचामरे । अभिषेकं ततः कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः । एवं कृतेऽमरेशान सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥"

अब प्रसंगसे शतचंडीकी विधि लिखते हैं रुद्रयामलमें लिखा है कि, मेरे कहेहुए शतचंडीविधानको सुनो सब उपद्रव नाशके निमित्त शतचंडीका आरम्भ करना चाहिये । पत्तोंसे उज्ज्वल सोलह

स्तम्भोंका मंडप निर्माण करे उसके मध्यके त्रिभागमें आठ कोणकी ऐसी वेदी निर्माण करे जो पक्की ईटोंसे चुनीहो मनोहर और एक हाथ ऊंची हो उसपर पांच रंगोंसे सुन्दरमंडप निर्माण करे, पांच वर्णका चँदोआ झालरसहित उपर लगावे, आचार्य सहित सुन्दर व्रतवाले दश ब्राह्मणोंका वरणकरना. हे इन्द्र ! ईशानदिशामें पूर्वोक्त विधिसे घड़ेको स्थापन करे, और लक्षणोंसे युक्त कुण्ड दक्षिणदिशामें बनावे, सुवर्णके एक पलकी वा आधेकी वा उससे आधेकी वा उससे आधेकी ऐसी मूर्त्ति बनवावे, जिसके अठारह वा आठ भुजाहों, और रेशमके दो वस्त्रोंसे ढकी हो देवीको मध्यमें स्थापन करे, विधिसे देवीकी पूजा करके दशों ब्राह्मण विधिपूर्वक जप करें, और आदिअन्तमें सौ सौ नवार्ण मंत्रका और मध्यमें सप्तशती चंडीका जप करें, यह संपूर्ण कहा है. एक, दो, तीन, चार पाठ चारदिनतक क्रमसे करने उसीप्रकार पूजन करे, पांचवें दिन विधिसे पूजन करे, पांचवें दिन विधिसे हवन करे, चंडीपाठका होम प्रतिश्लोक दशांशसे, गिलोय, खीर, दूर्वा, श्वेततिल, यवसे होता है, और समिधा, घृत, चरु इनसे ग्रहोंके निमित्त हवन करे, और होमके पीछे ब्राह्मणोंको कपिलागौ, नीलमणि, श्वेतछत्र, चामरकी दक्षिणादे, फिर ऋत्विजको यजमानका अभिषेक करना चाहिये. हे इन्द्र ! ऐसे करनेसे सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥

सहस्रचण्डीनिर्णयः ।

अथ सहस्रचण्डी । सा च तत्रैवोक्ता–"सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु विष्णो महामते । राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये ॥ गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा । इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा । जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्धस्तश्च मण्डपः ॥ भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् । गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च । सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् । पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या वार्धमानतः ॥ अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता । अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं प्रभो ॥ शतं वा नियताहारः पयः पानेन वर्तयेत् । एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥ तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा" ॥ ७ ॥ इति ॥ एतद्द्वयं यद्यपि महानिबन्धेषु नास्ति तथापि प्रचरद्रूपत्वादुक्तमिति दिक् ॥ वाराहीतंत्रे–"संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा । जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेप्यायुषो नाश आगते ॥ वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये । तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवोपपातके ॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः संपद्यते शुभम् । श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा ॥ मनसा चिन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात् ॥ सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा । भुक्त्वा मनोरथान्कामान्नरो मोक्षमवाप्नुयात् । चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः" ॥ इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः ॥

अब सहस्रचण्डीकी विधि कथन करते हैं–यह भी रुद्रयामलमें ही लिखी है. हे महामते विष्णो ! सहस्र चंडीको विधानसे सुनो कि, राज्यभ्रष्ट, महान् उत्पात, जनोंका मरना, महान् भय, हाथी और घोडोंकी महामारी परायेचक्रका भय, क्षयरोगआदिका भय, इत्यादि अनेक दुःखोंकी प्राप्तिहो तो सहस्रचंडीका जप करे वा करावे, इसके जापक सौ कहे हैं और बीस हाथका मंडप बनाना लिखा है, एक सहस्र ब्राह्मण भोजन करावे, और सौ १०० गौकी दक्षिणा दे, और गुरुको दूनी दक्षिणा, शय्यादान, सप्तधान्य, भूमिदान, श्वेत रमणीय घोडा दे और पांच निष्कभर वा ढाई निष्कभर सुवर्णकी अठारह भुजायुक्त सब आयुधोंसे विभूषित देवीकी मूर्ति बनावै. हे विभो ! प्रतिदिन सहस्र ब्राह्मणोंको या सौ ब्राह्मणोंको निरन्तर

अन्नदान करना चाहिये और प्रमितदुग्ध पानसे यजमान रहै, इस प्रकारसे जो चण्डिकाके सहस्र पाठ करता है उसके कार्यकी सिद्धि होती है, इसमें विचार नहीं करना । यद्यपि यह दोनों विधान बड़े २ ग्रन्थोंमें नहीं लिखे हैं तथापि इनका प्रचार अधिक होनेसे इस ग्रन्थमें लिखेहैं. इति दिक् । वाराहीतन्त्रमें कहा है कि, संकटकी प्राप्ति चिकित्साके अयोग्य रोग जाति वंश अवस्थाका नाश वैरी और व्याधिकी वृद्धि, धननाश, क्षयीरोग, तीनप्रकारके उपद्रव, और उपपातकमें यत्नसे शतचंडी करनी चाहिये तो शुभ होताहै चण्डीसे कल्याण और राज्यकी वृद्धि होती है, हे देवी ! शतपाठसे मनोरथ सिद्धहोतेहैं सहस्र-चण्डीसे स्वयं आनकर लक्ष्मी प्राप्त होती है सम्पूर्ण मनोरथ और कामनाओंको भोगकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै, चण्डीसे सब सिद्धि होती हैं । (इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः) ॥

नवरात्रपारणानिर्णयः ।

अथ नवरात्रपारणा ॥ सा च दशम्यां कार्या–"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यां हि यथाक्रमम् " इति हेमाद्रौ धौम्यवचनात् ॥ 'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादि-कम् ' इति ॥ प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्त-त्वात् ॥ आदिशब्देनोपवासोक्तेः पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ॥ न च पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वम् । विष्णुत्रिरात्रादौ तथाप्रसक्तेः ॥ न चात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम् । " एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवा-याचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे " इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः ॥ नवरात्रसमाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ॥ ननु तिथिह्रासेऽष्टावप्युपवासा भवन्तीति कथं समाख्या ॥ तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः ॥ अत एवोक्तं देवीपुराणे "तिथि-वृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम्" इति चेन्न । तिथिह्रासेपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नव-रात्रत्वाक्षतेः ॥ एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् ह्रासे अमामादाय नवत्वमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥

अब नवरात्रके पारणाका निर्णय लिखतेहैं—वह पारणा दशमीमें करना चाहिये. कारण कि, हेमा-द्रिमें धौम्यके वाक्यसे नवमी तिथिपर्यन्त व्रत लिखाहै कि, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे नवमीतक नवरात्र करने वा सप्तमीसे लेकर नवमीतक त्रिरात्र करने, और वृद्धिसे पूजा व्रतआदि करने, पहले कहे इन वाक्योंसे नवमी पर्यन्त प्रधान पूजा लिखी है और व्रत आदि पूजाके अंगहैं, कारण कि, आदि-शब्दसे व्रत लिखाहै और पूर्वोक्त त्रिरात्रव्रतमें नवमीको भी व्रत प्राप्त होताहै, यदि कोई शंका करै कि, पारणाके अन्ततक त्रिरात्र होंगे सो उचित नहीं कारण कि, विष्णुके त्रिरात्रमें भी इसीप्रकार होजायगा. इसमें भी कोई शंका करै कि, यहां व्रतमें प्रमाण नहीं सोभी यथार्थ नहीं. कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्य-पुराणके वाक्यसे यह लिखाहै कि, इसप्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रत, एकवार भोजन, नक्त, अया-चितव्रतसे मनुष्यको स्थान २ और पुर २ में व्रत करना चाहिये, और नवरात्रके नामसे नवमी भी व्रतकरने-योग्य है, यदि कोई शंका करै कि, तिथिके घटनेमें आठव्रत तो नवरात्रनाम किसप्रकार होसकता है इससे कर्म विशेषमें नवरात्रशब्द रूढहै इसीसे देवीपुराणमें लिखाहै कि, तिथिकी वृद्धि और हानिमें नवरात्र नाम सत्य नहीं है सो ठीक नहीं. कारण कि, तिथिके घटनेमें भी नौ तिथियोंमें व्रत होनेसे नवरात्र नाममें कोई हानि नहीं होती इससे यह मूर्खोंका कथन खण्डितहुआ कि, रात्रि प्रधानहै, वह घटजायं तो अमाव-स्याको लेकर नवरात्र पूरे करने ॥

यत्तु देवीपुराणे । "कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथ वैकाशी नक्ताशी वाथवाम्ब्वदः ॥" इति व्रतचतुष्टयमुक्तं तल्लौहाभिसारिकविषयम् । तस्य "जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् । लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी" इति भविष्येऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः ॥ रूपनारायणेन तु नन्दादिव्रतप्रयोगं पृथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् ॥ यदपि निर्णयदीपे—"आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमीमिश्रिता न चेत् ॥ दशमीमिश्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविनाशिनी" ॥ २ ॥ इति ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनं यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति—"अष्टम्या सह कार्या स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहाद्दशमीवेधो नवम्यां चण्डिकां यजेत् ॥ पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् । नवम्यां पारिता देवी कुलवृद्धिं प्रयच्छति ॥ दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै। तस्मात्तु पारणं कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप" ॥ ३ ॥ इत्यादीनि ॥ तानि यदि समूलानि तदा लौहाभिसारिकनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि । तस्याऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् ॥ अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां ता (पा) रणाविधाने पूर्वनिबन्धैर्विरोधो दुर्वारः स्यात् ॥ यानि तु कैश्चिल्लिखितानि नवम्यां पारणाविधायकानि वचनानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि ॥ समूलत्वेपि यदा दिनद्वये नवमी, तदा द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न किं तु नवमीमध्ये कार्येत्येवं नेयानि शिवरात्रिपारणावत् ॥ अत्र केचित्पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पारणां कुर्यादित्याहुः ॥ तन्मंदम् ॥ "काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके । तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्" इति माधवीये कौर्मोक्तेः ॥ "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्" ॥

जो देवीपुराणमें यह चारव्रत लिखेहैं कि, कन्याके सूर्यमें शुक्ल छठसे लेकर अयाचित, एकवार भोजन, नक्त व्रतको करै, सो पूर्वोक्त लौहाभिसारिक कर्मके विषय जानना, कारण कि, वह कर्म भविष्यमें अष्टमीपर्यन्तही लिखाहै कि, जयकी, इच्छावाला राजा अष्टमीपर्यन्त लौहाभिसारिक कर्म सम्पादन करै, रूपनारायणने तो नन्दा आदि प्रयोगको कथनकर उसका नवमीमें पारण लिखाहै । जो निर्णयदीपमें ब्रह्मपुराण नामसे यह कहाहै कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें नौ ९ दिन व्रत करके दशमी युक्त न होय तो नवमीको हीं पारणा करै, यदि पारणामें दशमी युक्त नवमी हो तो दुःख दारिद्र्यकी देनेवाली और व्रतकी नाशक जाननी. जो रुद्रयामलमें यह लिखाहै कि, पारणाके दिन अष्टमीयुक्त नवमी करनी चाहिये, जो अज्ञानसे दशमीविद्धा नवमीको पूजते हैं वा पारणा करतेहैं उनका पुण्य व्यर्थ होजाताहै, नवमीमें पारणा करनेसे देवी वंशकी वृद्धि करतीहै और दशमीमें पारणासे वंशका नाश करतीहै, तिससे हे इन्द्र ! नवमीमें पारणा करनी चाहिये, इत्यादि वाक्य यदि प्रमाणयुक्त हैं तो लौहाभिसारिक नन्दा आदि चारव्रतोंके विषयमें जानने यह प्रथम कहआयेहैं अन्यथा परविद्धा अष्टमीको पारणा करोगे तो पूर्व (ग्रन्थों) के संग विरोध नहीं करसकोगे जो यह वाक्य किसीने नवमीमें पारणा आदिके विषयक लिखे हैं, वे हेमाद्रि आदिके विरुद्धहोनेसे निर्मूल हैं, यदि समूलभी होंय तो वे इसप्रकार लगाने योग्यहैं, जब दोदिन नवमी होय तब दूसरे दिन व्रतकरके तिथिके उपरान्तमें पारणा न करै, किन्तु शिवरात्रिके तुल्य नवमीके बीचमेंही करले, जो कोई यहां यह कथनकरतेहैं कि, पारणाके दिन सूतक आदि आपडै तो सूतककी निवृत्ति होनेपर पारणा करनी, सो मन्दताहै,

कारण कि, माधवीयमें कूर्मपुराणका लेखहै कि, काम्यव्रतके प्रारम्भसे मरण वा सूतक होजाय तो वहां दान और पूजनको त्यागकर काम्य व्रत करना और व्रत, यज्ञ, विवाह, होम, श्राद्ध, पूजन, जपके प्रारम्भके उपरान्त सूतक नहीं. और प्रारम्भके पहिले सूतक है ॥

इति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येपि तत्कर्तव्यतावगतेः ॥ पारणान्तत्वाद्व्रतस्य ॥ प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः "प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः । नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ रुद्रयामलेपि–"सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः" इति ॥ तदन्ते सूतकान्ते एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् । 'संप्रवृत्तेपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' इति माधवीये ऋष्यशृङ्गवचनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् ॥ "प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन" इति । तत्रैव सत्यव्रतवचनात् ॥ किं च । एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते मासान्ते पारणापत्तिः ॥ मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासम्भवश्च ॥ यत्तु–"नियमस्था यदा नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रीः स्नात्वा शेषं चरेद्व्रतम्" इत्यङ्गिरोवचनम् । यच्च हारीतवचनम्–"नियमस्था व्रतस्था स्त्री रजः पश्येत्कथञ्चन ॥ त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं व्रतशेषं समापयेत् ॥" तद्विधवोपवासविषयम् ॥ तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित् ॥ वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतपसामिति विशेषणोपादानाद्द्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं निषेधः । त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु तु रजोमध्ये पारणा इति ब्रूमः ॥ आशौचमध्ये सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम् अथ चोपवासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोद्धव्य इत्यलं भूयसा ॥

इस विष्णुके वाक्यसे पारणान्त व्रत होनेसे पारणान्तव्रतही प्रतीत होताहै, प्रारम्भ तो सूतकमें नहीं लिखाहै कारण कि, यह वाक्य है कि, प्रारम्भ, वरण, यज्ञ, और सत्रमें व्रतका संकल्प, विवाह आदिमें नांदीमुखका संकल्प, श्राद्धमें पाक ये सूतकमें न करने चाहिये, रुद्रयामलमें यह लिखाहै कि, नवमीका सूतकमें भी हवन करके पारणा करै और सूतकके पीछेमें ब्राह्मण जिमावे, और शक्तिसे दानदे, इसीप्रकार स्त्रीभी रजोदर्शनके उपरान्तमें पारणा करले, कारण कि, माधवीयमें ऋष्यश्रृंगने कहाहै कि, रजके होनेपरभी स्त्री द्वादशीके व्रतको न त्यागे द्वादशीव्रत और व्रतोंका भी उपलक्षणहै. कारण कि, वहांही सत्यव्रतका कथनहै कि, दीर्घ तपके प्रारम्भ करनेपर यदि स्त्रियोंको रजोदर्शन होजाय तो वहाँ भी किसी प्रकार व्रतका उपरोध नहीं होता, और यहभी लिखाहै कि, एकादशी आदि व्रतोंमें पांच छः आशौचोंके लगातार आनेपर महीनेके पीछेमें पारणा होगी, और मासोपवासके मध्यमें पांच छः आशौच होनेपर जीवनका भी असंभव प्राप्त होगा, जो ये अंगिरा और हारीतके वाक्य हैं कि, नियममें स्थितहुई यदि स्त्री रजको देखले तो उनरात्रियोंमें व्रत स्नान करके शेष व्रतको करना । नियम और व्रतमें स्थित स्त्री यदि किसीप्रकार रजको देखे तो तीन रात्रके वितानेपर शेष व्रतको पूर्ण करै, ये वाक्य विधवाके व्रतमें हैं कारण कि विधवाओंको ऋतुमें भोजनका निषेध कहाहै कोई यह कहते हैं, परन्तु हम तो यह कहते हैं पूर्वोक्त सत्यव्रतके कथनमें (दीर्घतपसां) इस विशेषण देनेसे द्वादशीसे सिवाय एक दिनके सब व्रतोंके विषयमें यह निषेध है, तीनरात्र नवरात्र आदि दीर्घव्रतोंके विषयमें तो रजके मध्यमें भी पारणा करले, अशौचके बीचमें तो पूर्वोक्त कूर्मपुराणके वाक्यसे सब पारणा होती हैं यह व्रतके पारणका निर्णय सब व्रतोंमें जानना अधिक कहनेसे क्या यहीं बस करते हैं ॥

दशम्यां देवीविसर्जननिर्णयः ।

दशम्यां देवीं विसर्जयेत् ॥ तदुक्तं दुर्गाभक्तितरंगिण्यां देवीपुराणे--"ततः प्रातः पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् । संप्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य देवीं तु ततश्चोत्थापयेद्बुधः । उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥ कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह । गच्छगच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥ व्रज स्रोतो जलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह" ॥ ९ ॥ इति जलं नीत्वा । "दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम् । रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्" ॥ २ ॥ इति जले प्रवाहयेत् ॥

दशमीको देवीका विसर्जन करे, सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तिससे पीछे दशमीके दिन प्रातः काल पूजनकर गीतबाजेके शब्दोंसे (विसर्जन) करे. हे भगवति ! रूप, यश, ऐश्वर्य पुत्र, धन और सब कामनाओंको मुझे दीजिये, हे महिषघ्नि ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! हे मुण्डमालिनि ! हे देवि ! अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्य दीजिये आपको प्रणाम है. इस प्रकार प्रार्थना करके बुद्धिमान् देवीको उठावै, हे देवि ! हे चण्डेशि ! श्रेष्ठ पूजाको ग्रहण करके उठिये और आठ शक्तियों सहित, मेरा कल्याण कीजिये. हे देवि ! हे चण्डिके ! अपने श्रेष्ठ स्थानको गमन करो वृद्धिके निमित्त स्रोतके जलमें गमन करो, और इस जलमें जाओ, इस मन्त्रसे उठाकर और लेजाकर जलमें प्रवाह करदे कि, हे दुर्गे ! हे देवि ! हे जगन्मातः ! वर्षदिनके पीछे रक्षाके निमित्त फिर आनेके निमित्त पूजाकी हुई तुम अपने स्थानको जाओ ॥

विजयादशमीनिर्णयः ।

इयमेव विजयादशमी ॥ सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वा ग्राह्या ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे-"दशम्यां तु नरैः सम्यक्पूजनीयाऽपराजिता । ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः ॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्यापराजिता । क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः ॥ नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता । ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी" ॥ ३ ॥ तथा-"आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः । एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्" इति ॥ यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः, परदिने चाल्पापि तद्योगिनी, तदा परैव ॥ तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः-"उदये दशमी किंचित्संपूर्णैकादशी यदि । श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उल्लंघयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः" ॥ २ ॥ इति ॥ कालेऽपराह्णे ॥ परदिनेऽपराह्णे ॥ श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव ॥ मदनरत्नेप्येवम् । ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे च नारदः-"ईषत्संध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः ॥ ईषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् ।

श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने॥सूर्योदये यदा राजन्दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः" ॥ ३ ॥ अत्रायं निर्गलितोर्थः ॥ अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः ॥ तत्रैव पूजाद्युक्तेः ॥ प्रदोषो गौणः ॥ तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् ॥ दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् ॥ इदं शुद्धतिथौ अन्यकाले श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे तु पूर्वा ॥ तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ॥

यही विजया दशमी है वह दूसरे दिन श्रवणका योग न होय तो पहली ग्रहण करनी सोई हेमाद्रिमें स्कंदके वाक्यसे लिखा है कि, दशमीको मनुष्य भलीप्रकार कल्याणकी प्राप्तिके निमित्त और पूर्वोक्तविधिसे अपराजिता देवीका पूजन करे, नवमीके शेषयुक्त दशमीमें पूजा करनेसे जयवर्द्धिनी अपराजिता जय देतीहै, इसी प्रकार आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमीमें मनुष्यको अपराजिताका पूजन करना चाहिये और एकादशीमें न करे यदि प्रथमदिन श्रवणका योग न होय और अगलेदिन यदि श्रवणसे युक्त थोडीभी तिथि होय तो अगलीही लेनी इसी प्रकार हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें कश्यपने लिखा है कि, यदि उदयकालमें दशमी किंचित्मात्रभी हो और आगे सम्पूर्ण एकादशी हो तब यदि अपराह्ण समयपर श्रवण नक्षत्र होय तो वह विजयादशमी कहाती है, जिससे श्रवण नक्षत्रमें दशमीके दिन रामचन्द्रने प्रस्थान किया है इससे मनुष्य उसदिन श्रवण नक्षत्रमें ग्रामकी सीमाको लंघन करे, यदि परलेदिन श्रवण नक्षत्र न होय तो सब पक्षोंमें प्रथमही लेनी, इसीप्रकार मदनरत्नमें भी कहाहै, ज्योतिर्निबन्धमें रत्नकोशमें नारदका वाक्य है कि, जिस समय थोडी सन्ध्या बीतीहो और कुछ तारे उदय हुए हों उस समय जो विजयमुहूर्त कहतेहैं वह सब कार्य और अर्थोंकी सिद्धिको देताहै । आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमी यदि श्रवण नक्षत्र युक्त हो तोभी राजाओंको पट्टाभिषेक (राज्यगद्दी) में पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, आश्विनके शुक्लपक्षमें सूर्योदयमें यदि दशमी तिथिहो तो उसे पंडित विजयादशमी कहते हैं, यहां यह मुख्य अर्थ है कि, अपराह्णमें पूजा आदिके कथनसे कर्ममें अपराह्ण मुख्य समय है और प्रदोष गौणहै, तिसमें यदि दोनोंदिन दशमी अपराह्ण (व्यापिनी न होय तो प्रदोषकी व्याप्ति सम्बन्धकी अधिकतासे (ग्रहण करनी, और दोनोंदिन प्रदोष व्यापिनी न होय तो, अपराह्णकी व्याप्तिकी अधिकतासे) अगलीहीं लेनी, यह शुद्धितिथिके विषयमें जानना, अन्य कालमें तो श्रवण रोहिणीके समान अप्रयोजक है कि, यदि दोनोंदिन अपराह्णव्यापिनी न हो वा होय तो श्रवणसे युक्त प्रथमकीही ग्रहण करनी और यदि तिसमें भी परलेदिन अपराह्णमें श्रवण होय तो थोडी भी परलीही लेनी, यह संक्षेपसे कहाहै ॥

तत्र विशेषः ।

अत्र विशेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये-"शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तानामभयङ्करम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥" शमीमन्त्रस्तु हेमाद्रौ गोपथब्राह्मणे-"अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येहं शमीं शुभाम् ॥" तथा भविष्ये-"शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका । धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ १ ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते "॥ २ ॥ इति ॥ तथा-" गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमी-

मूलगतां मृदम्। गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति । ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह" इति ॥

यहाँ भार्गवार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणमें यह विशेष लिखा है कि, भक्तोंको अभय करनेवाले शमीसे युक्त जगन्नाथको पूजन कर फिर शमीकी पूजा करे, शमीकी पूजाका मन्त्र हेमाद्रिमें गोपथब्राह्मणमें यह कहाहै मैं अमंगल (दुःख) और पापोंके दूर करनेवाली और दुःस्वप्नोंके नष्ट करनेवाली धन्य और शुभरूप शमीकी शरणको प्राप्त हुआ हूं और इसप्रकार भविष्य पुराणमें लिखा है कि, जो लालकांटे तथा अर्जुनके बाणोंको धारण करनेवाली है और रामको प्रियवादिनी है ऐसी शमी पापोंको नष्ट करती है, समयपर जो मैं यात्रा करूंगा उसमें हे श्रीरामपूजिते ! तू निर्विघ्न अर्थात् विघ्नका अभाव करनेवाली हो, इसीप्रकार अक्षतोंसहित गीली शमीत्याग करके मूलकी मृत्तिकाको लेकर गीत बाजेके शब्दोंसहित घरलावे, फिर अपने मनुष्यों सहित भूषण वस्त्रआदिको पहरे ॥

बलिनीराजनम्।

अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं कृत्यरत्ने ॥ तत्र मंत्रः—"चतुरङ्गबलं मह्यं निररिष्टं व्रजत्विह । सर्वत्र विजयो मेऽस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि" इति ॥ गौडनिबन्धे ज्योतिषे—"कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम्। शोभनं खञ्जनं पश्येज्जलगोगोष्ठसंनिधौ"॥ अस्य फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः ॥

तिसमें कृत्यरत्नमें बलिनीराजन (सेनाकी आरती) लिखी है तिस आरतीका यह मन्त्र है कि, चतुरंगव्यूह मेरी सेना अरिष्टके विना गमन करो, और हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी कृपासे सर्वत्र मेरी विजय हो, गौडनिबन्धमें ज्योतिषका यह कथन है कि, राजा क्रमसे सेनाकी वृद्धिके निमित्त नीराजन करके जल गौ वा गोशालाके निकट खंजन (ममोले) पक्षीको देखे, इसका फल और शुभाशुभ देशतो वहींसे ही जानले ॥

आश्विनपौर्णमासीनिर्णयः।

आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या । 'सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः ॥ अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे लैङ्गे । "आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि । कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये ॥ कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम्। सुगंधिर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत्" ॥ २ ॥ तथा—"निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी । तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः" इति ॥ अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलायनेन—'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति तच्छेषपर्वणि कार्यम्। विकृतित्वात्तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दैवकर्मत्वात् । आग्रयणं तु पर्वणि कार्यम् 'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' इति शौनकोक्तेः ॥ तत्रापि शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम् ॥ तच्च—"व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः" इति श्रुत्या दर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमाद्दर्शेष्ट्याः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्यादयः ॥

आश्विनकी पूर्णमासी अगलीही लेनी. कारण कि, दीपिकामें लिखा है कि, सावित्रीव्रतके विना अमावस्या पौर्णमासी दूसरी होती है, यहां तिथितत्त्वमें लिंगपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखाहै कि, आश्विनकी पौर्णमासीको रात्रिमें जागरण करना, और उसे कौमुदी कहाहै, मनुष्य अपने ऐश्वर्य्यके निमित्त उसे

करै, कौमुदीके विषय लक्ष्मी और ऐरावतपर स्थित इन्द्रका पूजन करै, और रात्रिके समय सुगन्ध लगाकर द्वेषबुद्धिसे (पाँसोंसे) जागरण करै अर्थात् तिन्होंसे खेलता हुआ रात्रि व्यतीत करै, इसी प्रकार अर्द्धरात्रके समय वरके देनेवाली लक्ष्मी यह कहती है कि, कौन जागताहै और उसको मैं धन दूंगी जो कि, पाँसोंसे खेल करताहै, इसीमें आश्वयुजीकर्म आश्वलायनने लिखाहै कि, आश्विनकी पूर्णमासीको आश्वयुजी कर्म करै, वह विकृति (अंग) होनेसे शेष अर्थात् (तिथिके अन्त) पर्वमें करना, और आग्रयण तो इस शौनकके वाक्यसे पूर्वमें करै, शरदमें आग्रयण नाम यज्ञपर्वमें होताहै उसे आग्रयण कथन करतेहैं, वहभी पर्वके शेष (अन्त) में करना, यह शेष प्रथम कह आयेहैं, उसको अमावस्या और पूर्णिमामें एककर्म होनेसे उसमें एकही द्रव्यका नियम लिखाहै कि व्रीहियोंसे यज्ञ करके यवके स्थानमें व्रीहियोंसे यज्ञ करै, यवसे यज्ञ करके व्रीहियोंके स्थानमें यवसे यज्ञकरै, अर्थात् प्रधान पर्वका कर्म जिस द्रव्यसे कियाहै उसी द्रव्यसे शेष पर्वको करना चाहिये. यह हेमाद्रि आदि कहतेहैं ॥

'दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तद्' इति दीपिकोक्तेश्च । तच्चाग्रयणं त्रेधा व्रीह्याग्रयणं यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति ॥ एषां कालः श्रुतौ–"गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्कालेनान्येन पुराणैर्वा" इति ॥ आपस्तम्बोपि–'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तुवेणुयवैः' इति ॥ तत्रापि श्यामाकाग्रयणमनित्यम्, इतरे तु अनाहिताग्नेर्नित्ये यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्तवृत्तावुक्तत्वात् । सूत्रे व्रीहियवदेवतासंबद्धानामत्र मन्त्राणामाम्नानाच्च । आहिताग्नेस्तु यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम् । 'अपि वा क्रिया यवेषु' इति सूत्रात् । यद्वा व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रता । श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम् । यदि वा तदपि समानतन्त्रमित्यादिनारायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम् ॥

दीपिकामें भी यह लिखाहै, दर्शपूर्णिमाके यज्ञके उपरान्त शेष कर्म होताहै जो आग्रयण, (अगहनकी) पूर्णिमाका यज्ञ तीन प्रकारका लिखाहै. व्रीहियोंका आग्रयण, यवका आग्रयण, श्यामा (समे) का आग्रयण इनके करनेका काल श्रुतिमें यह लिखा है कि, गृहस्थीको शरद् और वसंतमें व्रीहि, और यवोंसे वर्षामें समे और नीवारोंसे यज्ञ करना चाहिये, अथवा आपत्कालमें पुराने अन्नसे वा और किसी अन्नसे यज्ञ करै, आपस्तम्बका वचन है कि, वर्षामें समेसे शरद्में व्रीहिसे, वसन्तमें यवोंसे यज्ञ करै वा सब ऋतुओंमें इन्द्र जौ वा बांसके निकले धान्यसे यज्ञकरै, इन तीनों आग्रयणोंमें भी समयका आग्रयण अनित्य (अनावश्यक) है, और दोनों अग्निहोत्रीसे भिन्न को नित्यहीहै अर्थात् इनको अवश्य करना चाहिये । कारण कि, स्मार्तवृत्तिमें यह लिखाहै कि, यवाग्रयण तो करै, और सूत्रमें भी व्रीहि और यवके देवताओंसे मिलेही मन्त्र कहेहैं, अग्निहोत्रीको तो यवाग्रयण भी अनित्य है; कारण कि, यह सूत्र है कि, वा यवसे भी कर्म करले, अथवा व्रीह्याग्रयणके समान यवाग्रयण है (समे) से तो प्रस्तार करना अथवा समा भी व्रीहियोंके समान है यह परिश्रमवालोंको नारायणवृत्तिग्रन्थमें मिलसक्ताहै ॥ (इति अलम्) ॥

इदं च पर्वाभवे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रके कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ बौधायनीये केशवस्वामिनाप्येवमुक्तम् ॥ परिशिष्टे–"श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः । प्राग्यष्टुं युज्यतेऽवश्यं न ह्यत्राग्रयणात्ययः ॥" त्रिकाण्डमण्डनोप्येवम् । यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणोऽस्य च

समानतन्त्रता भवति तदेतद्वृत्तिकृता—'एकबर्हिरिध्माज्या' इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् ॥ अस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन—"नित्ये यज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत्" । कारिकापि—"अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः । वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा" इति ॥ ऋग्विधाने तु—"समिन्द्ररायामन्त्रं च वर्षेवर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत्" इत्युक्तम् ॥ एतच्चापदि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् ॥ अन्योप्याहिताग्न्यादिविशेषः शौनकादेर्ज्ञेयः इत्यलं बहुना ॥ इति श्री कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आश्विनमासः समाप्तः ॥

यह कर्म पर्वमें न होसके तो शुक्लपक्षमें कृत्तिकासे विशाखा नक्षत्रपर्यन्त देवनक्षत्रोंमें करना चाहिये, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै, बौधायनीयग्रन्थमें भी केशवस्वामीका भी इसीप्रकार कथन है, परिशिष्टमें भी कहाहै कि, प्रथम परस्पर अन्नोंके समयमें समा व्रीहियवसे अवश्य यज्ञ करै, इसमें आग्रयणका न होना नहीं होता. त्रिकाण्डमण्डनमें भी इसीप्रकार लिखाहै, जब आग्रयण आश्विनकी पूर्णिमाकोही किया जाय तब एकसमयमें होनेसे आश्वयुजी और इसकी समानतन्त्रता प्राप्त होती है, अर्थात् दोनों एकदिन होतेहैं, तिसमें यह वृत्तिकारने (एकबर्हिरिध्माज्या) इस सूत्रमें स्पष्ट लिखेहैं इसके न करनेमें प्रायश्चित्त स्मृतिचन्द्रिकामें कात्यायनने लिखाहै कि, नित्य यज्ञ और दोनों वैश्वदेवके बीतजाने और यजन न करनेसे नव यज्ञके विना यजन किये नये अन्नप्राशनमें पतित अन्नके भोजनमें वैश्वानर (अग्नि) का चरु होताहै, कारिकामें भी कहाहै कि, यदि मनुष्य आग्रयणके विना किये नये अन्नको खाय तो अग्निके निमित्त चरु वा पूर्णाहुति करै, ऋग्विधानमें तो यह कहाहै कि, आग्रयण न होसके तो वर्ष २ में 'समिंद्ररायां' इस मन्त्रको सौवार जपनेसे उसकी पूर्ति होजाती है, यह जपभी तब है जब आग्रयण मलमासमें करनाहो, यह प्रथम कहआयेहैं और भी अग्निहोत्री आदिका विशेष शौनक आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिये, यही बहुत है ॥

(इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाश्विनमासः)

अथ कार्त्तिकमासः ।

तुलासंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् ॥

अब कार्तिकका निर्णय लिखते हैं, तुलाकी संक्रान्तिमें पहली और पिछली दश २ घड़ीका पवित्र काल है रात्रिका पुण्यकाल प्रथम कह आये हैं ॥

अथ कार्त्तिकस्नाननिर्णयः ।

तत्र पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः—"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्" इति सौरमास उक्तः । प्राच्याश्चैतदेवाद्रियन्ते । दाक्षिणात्यास्तु—"आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्त्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः" इति पाद्मोक्तेः ॥ भार्गवार्चने च—"प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः । प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्त्तिकभास्करः" इति विष्णुरह-

---

१ समिन्द्रराया समिषारभेमहिसंवाजेभिः पुरुषश्चन्द्रैरभिद्युभिः सन्देव्याप्रमत्यावी रशुष्मयागो अग्रवावत्यारभेमहि ऋ० १ । ४ । १५ ॥

स्योक्तेः ॥ हेमाद्रावादित्यपुराणे--'पूर्ण आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः' इत्युक्त्वा 'मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्याम्' इत्यन्तेऽभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वारभ्य कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा समापयेदित्याहुः । मदनपारिजाते विष्णुः--"कार्त्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेंद्रियः । जपन्हविष्यभुक्छान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अथ कार्तिकस्नान उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और पद्मपुराणका कथन है कि, तुला, मकर, मेषकी संक्रातिमें प्रभातही स्नान, हविष्यभोजन, ब्रह्मचर्य करै तो महापातकोंका नाश होताहै, इसमें सूर्यमासभी कहा है प्राच्यभी सौरमासकाही सत्कार करते हैं, दक्षिणियोंका तो यह कथनहै कि, इस पद्मपुराणके वाक्यसे कि, आश्विनशुक्ल एकादशीमें बुद्धिमान् मनुष्योंको कार्तिकके व्रतोंका प्रारम्भ करना उचितहै और भार्गवार्चनमें विष्णुरहस्यके इस वाक्यसे कि, मनुष्य आश्विनशुक्ल एकादशीको प्रारम्भ करके कृत्तिकाके सूर्यतक प्रातःस्नान करै, हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके इस कथनसे कि, आश्विनमासके पूर्ण होनेपर पूर्णिमाको सावधानीसे प्रारम्भ करै यह कथनकर अन्तमें यह कहनेसे कि, पूरे महीनेभर परमभक्तिसे स्नानकर कार्तिककी पूर्णिमाको पूर्णकरै इन सब वाक्योंसे आश्विनशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करके कार्तिकशुक्लद्वादशी वा पूर्णिमाको पूर्णः करै, मदनपारिजातमें विष्णु कहाहै कि, सम्पूर्ण कार्तिकमें नित्यस्नान, हविष्यभोजन, जप करना चाहिये और जितेन्द्रिय और शान्त रहै तो उसके सब पाप दूर होजाते हैं ॥

तत्र देशविशेषः ।

अत्र देशविशेषः पाद्मे कार्त्तिकं प्रक्रम्य-"कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गंगायामपि तत्समः । ततोधिकः पुष्करे स्याद्द्वारवत्यां च भार्गव ॥ पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो मथुराधिकां । दुर्लभः कार्त्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह ॥ यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति " ॥ ३ ॥ इति ॥ इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदेप्यतिप्रशस्तम् । "शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्प्राप्यते फलम् । तत्कार्त्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ कार्त्तिके बिंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः । स्नास्यत्यनुदिते भानौ भानुजातस्य भीः कुतः " ॥२॥ इत्यादि काशीखण्डोक्तेः ॥ भानुजो यमः । इदं च प्रातःस्नानं संध्यां च कृत्वा कार्यम् । तेन विनेतरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः । यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः तथापि वचनबलादनुदितहोमवद्भविष्यति ॥

इसमें देशविशेषमें पद्मपुराणमें कार्तिकीके प्रकरणमें यह लिखा है कि, हे भार्गव ! कुरुक्षेत्र और गंगामें करोडगुना, पुष्कर और द्वारकामें उससे अधिक पुण्य मिलता है, ये सातपुरी पवित्र हैं हे मुनियों ! इनमें मथुरा विशेष है मनुष्योंको इस लोकमें मथुरामें कार्त्तिकस्नान दुर्लभ है जहां पूजितहुए कृष्ण भक्तोंको अपना रूप देतहैं, यह स्नान काशीकी पंचगंगामें भी अतिउत्तमहै, कारण कि, काशीखण्डमें यह लिखा है कि, जो फल सौ वर्षतक तपकरके सतयुगमें मिलताहै वह कार्तिकमें पंचगंगाके एकवार स्नानसे प्राप्त होताहै, जो ब्रह्मचारी होकर कार्तिकमें बिन्दुतीर्थमें सूर्योदयके समय प्रतिदिन स्नान करते हैं उनको यमका भय न होगा, यह प्रातःस्नान संध्याकरके करना चाहिये, संध्याके विना और कर्मका अधिकार नहीं यह

वर्धमानका कथन है यद्यपि प्रातःसंध्याकी सूर्योदयमें पूर्ति होतीहै तो भी सूर्योदयसे प्रथम हवनके समान उदयसे प्रथमही संध्या होजायगी ॥

तत्रस्नानादिमन्त्राः ।

स्नानमन्त्रश्च तत्रैव–"कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन । प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायाद्व्रती नरः" इति ॥ अर्घ्यमन्त्रोपि तत्रैव–"व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेंद्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापनाशने । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति । सुवर्णरत्नपुष्पांबुपूर्णशंखेन पुण्यवान् ॥ सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः" ॥ ३ ॥ इति ॥ एवं सम्पूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात् । "वाराणस्यां पंचनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्त्तिके । अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः" ॥ इति काशीखण्डोक्तेः ॥

स्नानमंत्रभी वहांही कहाहै कि, हे जनार्दन ! मैं प्रातःकाल स्नान करताहूं, हे दामोदर ! इससे आपके संग मेरी सायुज्य मुक्ति हो, इस मंत्रको पढ और मौन होकर व्रती मनुष्यको स्नान करना चाहिये, अर्घ्यका मन्त्रभी वहांही है कि, हे दैत्येन्द्रोंके वधकर्ता ! हे कृष्ण ! कार्तिकमें विधिसे स्नान करनेवाले मेरे दिये अर्घ्यको स्वीकार करो । हे कृष्ण ! नित्य और नैमित्तिक और पापनाशक कार्तिकमें मेरेदिये अर्घ्यको राधासहित ग्रहण करो इन दोमन्त्रोंको पढकरके जो पुण्यात्मा सुवर्ण, रत्न, पुष्प, जल भरकर शंखसे अर्घ्य, देताहै उसने सुवर्णभरी पृथ्वी दान की इसमें संदेह नहीं, इस प्रकार कार्तिकके पूरेस्नानमें शक्ति न होय तो तीन दिन स्नान करे, कारण कि, काशीखंडमें यह लिखाहै कि, काशीकी पंचगंगाका स्नान जो तीन दिनभी करते हैं वे पुण्यके भागी होकर अत्यन्त निर्मल होते हैं ॥

अथ मालाधारणम् ।

तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये–" निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् । वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम् " ॥ २ ॥ विष्णुधर्मे–" स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमालां कलौ नृणाम् । तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसम्भवम् । वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटि दिवं वसेत् ॥ तुलसिकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये । बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् । एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पिताम् । धारयेत्कार्त्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् " ॥ ४ ॥ इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तथा काशीखण्डे–"कार्त्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः । बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः ॥ " भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपुराणे–" अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नाश्नुते नरः ॥ विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्त्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत्" ॥ २ ॥ स्कान्दे कार्त्तिकमाहात्म्ये–" मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः । समासहस्रं सुप्रीतो भवेत्तु मधुसूदनः ॥ " पृथ्वीचन्दोदये पाद्मे–"कार्त्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः।जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥ "

तथा–"कार्त्तिके केशवे पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृताः । ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥ तुलसीदललक्षेण कार्त्तिके योर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥"

अब मालाका धारण करना कहते हैं, उसमें स्कंदपुराणके द्वारकामाहात्म्यमें कहा है कि, तुलसीके काष्ठकी माला केशवको निवेदन करके जो मनुष्य भक्तिसे धारण करते हैं उनका पातक नहीं रहता है, तुलसीकी माला और आंवलेकी माला महापातकोंका नाश करने और धर्म, अर्थ, कामकी देनेवाली है, इस कारण तुलसीकी मालाको मनुष्यको न त्यागना चाहिये, विष्णुधर्ममें लिखा है कलिमें आंवलेकी माला मनुष्योंके जितने रोमोंको स्पर्श करतीहै उतनेही वर्षतक उसका वैकुण्ठमें बास होताहै, तुलसी और आंवलेकी दोनों मालाओंको जो कण्ठमें धारण करता है वह कोटियों कल्पतक स्वर्गमें रहताहै, हे तुलसी काष्ठसे उत्पन्न हुई कृष्णभक्तकी प्रिय माला ! तुझे कण्ठमें धारण करताहूं, मुझे कृष्णका प्यारा करो, इस प्रकार विधिसे प्रार्थना करके कृष्णके गलेमें पहराई हुई मालाको जो धारण करता है वह विष्णुके पदको प्राप्त होताहै, इसमें प्रमाण नहीं है, इसी प्रकार काशीखण्डमें लिखाहै कि, कार्तिकमासमें बिन्दुतीर्थके व्रत स्नानसे जिन भक्तिमान् मनुष्योंने मेरी अर्चा की है उनको मुक्ति दूर नहीं है, प्राप्तही है, भार्गवार्चनदीपिकामें नृसिंहपुराणका वाक्य लिखाहै कि, अगस्त्यके फूलोंसे जो भगवान्को पूजताहै तिसके दर्शनसे मनुष्यको नरक नहीं मिलता सम्पूर्ण फूलोंको छोडकर जो मुनिपुष्पों (अगस्त्य) से कार्तिक मासमें भक्तिसे कृष्णकी पूजा करता है उसको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होताहै, स्कंदपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखाहै कि, मालतीकी मालासे वा केतकीके फूलोंसे पूजे हुए मधुसूदन सहस्रवर्षतक प्रसन्न रहतेहैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथनहै कि, कार्तिकमासमें जिन्होंने कमलोंसे कमलेक्षण विष्णुकी पूजा नहीं की तिनके घर करोड जन्मोंतक लक्ष्मी नहीं आती, कार्तिकमासमें जिनके नामसे पुत्रोंने भगवान्की पूजा कीहै वे यमराजका तिरस्कार करके सदा वैकुण्ठमें निवास करतेहैं जो मनुष्य लक्ष तुलसीदलसे विष्णुकी पूजा करै हे मुनिश्रेष्ठ ! मह पत्ते पत्तेसे मोतियोंके चढानेके फलको प्राप्त होताहै ॥

तथा स्कान्दे कार्त्तिकमाहात्म्ये–"धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात्पिण्डदानं महा मुने । मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥ धात्रीफलविलिप्तांगो धात्रीफलविभूषितः । धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योर्चयेच्चक्रधारिणम् । पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः" ॥ ३ ॥ तथा स्कान्दे–"कार्त्तिके मासि विप्रेंद्र धात्रीवृक्षोपशोभिते । वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ॥ मूलेन पायसेनाथ होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः"॥२॥ इति

स्कन्दपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें कहाहै कि, हे महामुने ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करताहै उसके पितरोंको भगवान्के प्रसादसे मुक्ति मिलितीहै, वह मनुष्य नारायणरूप होताहै जिसने आँवलेके फलको लपेटा, पहना, वा भोजन किया है आँवलेकी छायामें जो भगवान्की पूजा करताहै वह मनुष्य प्रतिफूलसे अश्वमेधके फलको प्राप्त होताहै हे विप्रेन्द्र ! कार्तिकमासमें आँवलेके वृक्षोंसे शोभित वनमें जो दामोदर विष्णुभगवान्का पूजन और विचित्र अन्नोंसे भगवान्को प्रसन्न करतेहैं और मूलमन्त्रसे खीरका हवन करतेहैं वह भी उक्तफलको प्राप्त होतेहैं शक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और बन्धुओंसहित स्वयं भोजन करै ॥

तत्र द्विदलादिवर्जनम् ।

तथा कार्त्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तं 'कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति ॥ पाद्मेपि कार्त्तिक-

माहात्म्ये–"राजिकामादकं चैव नैवाद्यात्कार्त्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च तथान्यन्मतिदूषितम्" ॥ स्कान्देपि–"कार्त्तिके वर्जयेत्तद्वद्द्विदलं बहुबीजकम् । माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः ॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम् । नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्" ॥ २ ॥ अत्र केचिदुत्पत्तिसमये दलद्वयं यस्य भवति तद्भूतपूर्वगत्या द्विदलमित्युच्यत इत्याहुः ॥ उदाहरन्ति च–"बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चांकुरं विना । दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं तन्निगद्यते" इति ॥ अन्ये तु लक्षणायां मानाभावाद्वचनस्य निर्मूलत्वाद्द्विदलात्मकं यस्य स्वरूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः॥तथा नारदीये–"कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्जयेन्मधु । कार्त्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्त्तिके शुक्तसन्धितम्॥" कांस्यं तत्पात्रभोजनम् । शुक्तं पर्युषितम् । सन्धितं लवणशाकः ॥

इसीप्रकार कार्तिकमें द्विदलको वर्जदे इस वाक्यसे द्विदलका व्रत पहले लिखाहै, पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें भी लिखाहै कि, राई, मादकपदार्थ, दाल, तिल, तेल और जो मतिदूषकपदार्थ, हों इनको कार्तिकका व्रती न खाय, स्कन्दपुराणमें भी कहाहै कि, कार्तिकमें इसी प्रकार द्विदल तथा बहुत बीजवाले (बैंगन आदि) और उर्द, मूंग, मसूर, चना, कुलथी, निष्पाव, राजमाष, (अरहर) यहभी द्विदल लिखेहैं इससे ये नये हों वा पुराने हों इनसबको व्रतीको त्यगना चाहिये, यहां कोई यह कहतेहैं कि, उत्पत्तिके समय जिस अन्नके दो दलहों उसेही भूतपूर्वगति (उत्पत्तिसे पूर्व) (जिसके दो दल नहों) उसे द्विदल कहते हैं, कोई यहकहते हैं कि, अंकुरके विना उत्पन्न हुआ बीजही जिन (खेतियोंमें) का द्विदल दीखे उन्हें द्विदल कहतेहैं और किन्हीका यह कथनहै, कि, इस वाक्यको निर्मूल और लक्षणमें कोई प्रमाण न होनेसे स्वरूपसेही जिसमें दोदल हों उसेही त्यागना चाहिये, तैसेही नारदपुराणमें कहाहै कि, कार्तिकमासमें तैल, शहत, कांसेके बर्तनमें भोजन, पर्य्युषित (बासी) अन्न, लवणमिश्रित शाकको व्रती त्यागदे ॥

दीपदानम् ।

तत्रैव–'कार्त्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानाद्दिवं व्रजेत् ॥' तथा–'कार्त्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी ।' तथा–"कार्त्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा । एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोपि वा ॥ षड्वा द्वादश पक्षे वा मासं वा वरवर्णिनि । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ उपवासेन भैक्ष्येण व्रजेत परमं पदम्" ॥ २ ॥ अन्येपि नियमाः प्रागुक्ताः ॥

तहांही यहभी कहाहै कि, कार्तिकमासमें विष्णुकी मूर्तिके आगे दीपक बालनेसे स्वर्ग मिलताहै इसीप्रकार कार्त्तिकमासमें कृच्छ्रव्रत वा प्राजापत्यव्रतमें तत्पर होकर वा एकान्तरोपवासी (मध्यमें एकदिन न खाना) वा तीनरात्रि जिसने व्रत किया हो वह और जो छः वा बारह दिन वा एकपक्ष वा महीनेतक एक वार भोजन नक्तव्रत करै और जो विना मांगे मिले वा भिक्षाके अन्नका खानेवाला हो और जो व्रतकरै उसको परमगति प्राप्त होती है, और भी नियम पहले कह आये हैं ॥

तत्र ग्राह्यधान्यनिर्णयः ।

ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे–"व्रीहयो यवगोधूमाः प्रियंगुतिलशालयः । एते हि सात्त्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥" काशीखण्डे–"ऊर्जे यवान्नमश्नीयाद्देवान्नमथ वा पुनः । वृंताकं

सूरणं चैव शुकशिंबीश्च वर्जयेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे-'नोर्जो वन्ध्यो विधातव्यो व्रतिना केनचित्क्वचित्' ॥ तथा नारदीये-"अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् । तिर्यग्योनिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥" अन्यान्यपि ताम्बूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणि प्रागुक्तानि ॥

स्कन्दपुराणमें ग्रहण करने योग्य धान्य ये कहे हैं कि, व्रीहि, यव, गोधूम, (गेहूं) प्रियंगु (कांगनी) तिल, शट्टीके चावल ये स्वर्ग मोक्षके देनेवाले सात्विक अन्नहैं, काशीखण्डमें लिखाहै कि, कार्तिकमें यवान्न और देवान्न (व्रीहिआदि) का भोजन करै, और बैंगन और जिमीकन्दको जपी न खाय, पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथनहै कि, किसी व्रतीको कार्तिकको कदाचित्भी न छोडना चाहिये, इसी प्रकार नारदपुराणमें लिखाहै कि, जो दामोदरके प्रीतम :कार्तिकमासमें व्रत नहीं करता उसको तिर्य्यक्योनिकी प्राप्ति होतीहै, इसमें सन्देह नहीं करना, और भी तेल ताम्बूल, क्षौर आदिके वर्जनका संकल्प करना, पूर्व लिख आयेहैं ॥

आकाशदीपः ।

तथा कार्त्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे-"तुलायां तिलतैलेन सायङ्काले समागते । आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्" इति ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रावादित्यपुराणे-"दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम् । यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि । यवाङ्गुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकासु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥ तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे ॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः" ॥ ३ ॥ इति । अपरार्के त्वन्यो मन्त्रः उक्तः । यथा-"दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह । प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनंताय वेधसे" ॥ इति ॥

कार्तिकमें आकाशदीप निर्णयामृताग्रन्थमें पुष्करपुराणके वाक्यसे वर्णन कियाहै तुलाकी संक्रांतिमें तिलके तेलसे सायंकालके समय एकमहीनेभर नारायणके निमित्त जो आकाशदीप देता है, वह महालक्ष्मीरूप सौभाग्यसंपदाको प्राप्त होताहै, उसकी विधि हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके वाक्यसे कहीहै कि, जब सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होते हों तब घरसे थोड़ीदूर पुरुषके प्रमाणसे यज्ञके काष्ठका यूप निर्माणकर गाड़े, उस यूपकी भूमि और मस्तकपर जौ भर अंगुलके छिद्रके बीचमें और दोहाथलम्बी पदिकाओंमें चार दलकी आठ आकृति निर्माणकरै, जिनसे आठ दिशा प्रतीतहों, उसकी कर्णिका (बीच) में बड़ा दीपक रक्खै, इसी प्रकार उसके आठ दलोंमें आठ दीपक धर्म, हर, भूमि, दामोदर, धर्मराज, प्रजापति, पितर, प्रेतको क्रमसे दे, अपरार्कमें तो और मन्त्र यह लिखेहैं कि, लक्ष्मीसहित दामोदरके निमित्त तुलाराशिमें आकाशदीपको देताहूं हे अनन्त ! जगतके रचनेवाले तुम्हें नमस्कारहै ॥

कार्त्तिककृष्णकरकचतुर्थी ।

कार्त्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा तत्रैव पूजायाम्नानात् ॥

कार्तिकवदी चतुर्थी करकचतुर्थी होतीहै, वह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिये, दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी होय तो पहली ग्रहण करनी ॥

गोवत्सद्वादशी ।

कार्त्तिककृष्णद्वादशी गोवत्ससंज्ञा । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा । युग्मवाक्यात् । 'वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेऽहनि' इति निर्णयामृतेऽभिधानाच्च ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने भविष्ये—"सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम् । चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः । पादमूले तु दद्याद्वै मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥ क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते । सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोनमः ॥ ततो माषादिसंसिद्धान्वटकान्विनिवेदयेत् । सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता ॥ सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस । ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि" ॥ ६ ॥ इति प्रार्थयेत् ॥

कार्तिक वदी द्वादशीको गोवत्सनाम उत्सवहै वह तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो प्रथमकी लेनी कारण कि, दोप्रकारके वचन मिलते हैं, और निर्णयामृतमें लिखाहै कि, वत्स पूजा वट ये दोनों प्रथम दिन करनी इसमें विशेष मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, सवत्सा एक वर्णकी, सुशील, दूधदेती गौको चन्दन आदिसे चर्चितकर पुष्पमालासे पूजै, हे पाण्डव ! तांबेके पात्रमें फूल अक्षत तिलोंसहित अर्घ्य बनाकर गौओंके खुरोंमें इस मन्त्रसे दे कि, हे क्षीरसागरसे प्रगट हुई ! हे देवता और राक्षसोंके नमस्कृत ! हे सर्वदेवरूप ! हे मातः ! इस अर्घ्यको ग्रहण करो, तुम्हें नमस्कारहै । फिर उडद आदिके वडे बनाकर इस मन्त्रसे निवेदन करै, कि, हे सुरभी ! हे जगन्मातः ! हे देवि ! तुम विष्णुके चरणमें स्थितहो हे सर्वदेवरूपे ! मेरे दिये इस ग्रासको भोजन करो, फिर इस मन्त्रसे स्तुति करै कि, हे सर्वदेवरूपे ! हे सर्वदेवोंसे शोभित ! हे मातः ! हे नन्दिनी ! मेरे मनोरथोंको सफल करो ॥

तथा—"तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर । गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्" ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिषूक्तः सर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥ नीराजयेयुर्देवांस्तु विप्रान्गाश्च तुरंगमान् । ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः" इति ॥

इसी प्रकार कहाहै कि, हे युधिष्ठिर ! उसदिन तेलका पका खाली टोकनीका पका गौ दूध, दही, घृत, मट्ठा न खाय, ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें द्वादशी आदि पांचतिथियोंमें पूर्वरात्रको नीराजन (आरती) करना चाहिये, देवता, ब्राह्मण, गो, घोडे, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, छोटे माताको आदि लेकर स्त्रीजनोंकी आरती करै ॥

यमदीपः ।

निर्णयामृते स्कान्दे—"कार्त्तिकस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति" ॥ मन्त्रस्तु—"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम" इति ॥

निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणका वाक्यहै कि, कार्तिक वदी १३ को घरसे बाहर प्रदोषके समय यम-दीपकदेय तो अकालमृत्यु नष्ट होतीहै, उसका मन्त्र यह है कि, मृत्यु, पाश, दण्ड, काल, श्यामा सहित यमराज त्रयोदशीके दीपदानसे मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥

अभ्यंगस्नानम् ।

कार्त्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । तदुक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च भविष्योत्तरे–"कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥ " इनश्चन्द्रः । मदनरत्ने–'विधूदये' इति पाठः 'दिनोदये' इति पाठात् सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्ते स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञतैव । "पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्त्तिकस्य सितेतरे । पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः" इति ॥ स्मृतिदर्पणेपि "चतुर्दशी चाश्वयुजश्च कृष्णा स्वात्यर्थयुक्ता च भवेत्प्रभाते । स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः" इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे–"आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये । तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणा" इति ॥ 'कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः' इति कालादर्शे पाठः । उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यान्तमासमभिप्रेत्योक्तम् ॥

कार्तिक वदी, १४ को सवेरेही चन्द्रोदयके कालमें उबटना करे, सोई हेमाद्रि और निर्णयामृतमें भविष्योत्तरपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको इन (चन्द्र) के उदयमें नरकसे डरते हुये मनुष्यको अवश्य स्नान करना चाहिये, मदनरत्नमें दिनोदयके स्थानमें विधूदय पाठ कहा है और जो 'दिनोदये' इस पाठसे सूर्योदयके उपरान्त ३ मुहूर्त्तमें स्नान कहते हैं यह गौडोंकी और उनके अनुयायियोंकी मूर्खता है, कारण कि, गौडोंका यह कथन है कि, कार्तिकके कृष्णपक्षकी पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें प्रयत्नसे स्नान करना, स्मृतिदर्पणमें भी कहा है कि, आश्विन कृष्णपक्षमें स्वातिनक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रभात समय विभूतिकी कामनावाले मनुष्य सुगन्धके तेलसे उबटना करके स्नान करें पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, आश्विन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें नरकसे भय पातेहुए मनुष्य चन्द्रोदयमें तेलसे स्नान करें कालादर्शमें यह लिखा है कि, नरकसे भय मानता मनुष्य मंगल स्नान करे, यहां दोनों वाक्योंमें आश्विनका समय लिखना अमावस्यान्त मासके अभिप्रायसे लिखा है ॥

तथा–'तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम् ।' प्राप्येति शेषः । 'प्रातःस्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति' इति दिनद्वयेपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेप्यरुणोदये सम्पूर्णे खण्डे वा दिनद्वये चतुर्दशीसमत्त्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । 'पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्' इतिवचनात् । पूर्वदिने परदिन एव वा सत्त्वे सैव ग्राह्या । दिनद्वयेप्यसत्त्वे अरुणोदयदयव्यापिनी ग्राह्या 'पक्षे प्रत्यूषसमये' इत्युक्तेः । वक्ष्यमाणवचनाच्च । तदभावे तु चतुर्दशीह्रासं पूर्वेद्युः प्रवेश्य पूर्वेह्नि त्रयोदशीमध्य एवाभ्यङ्गं कुर्यादिति दिवोदासः ॥

इसी प्रकार दिवालीकी चतुर्दशीको तेलमें लक्ष्मी, जलमें गंगा निवास करती हैं, जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करता है, वह यमलोकको नहीं जाता, दोनों दिन चन्द्रोदयमें चतुर्दशी होय वा दोनोदिन न होय वा अरुणोदयमें पूर्ण वा किंचित् हो वा दोनोंदिन चतुर्दशी होय तो प्रथमदिन अभ्यंग करे, कारण कि,

पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें करे ऐसा वाक्य है पहलेदिन होय तो वहही लेनी और दोनोंदिन न होय तो अरुणोदयकी ग्रहण करनी. कारण कि, पहले प्रातःकालके समय लिख आये हैं, और आगेभी वाक्यसे लिखेंगे, प्रातःकालके समय भी न होय तो चतुर्दशीके घटनेको प्रथम दिन मानकर त्रयोदशीके बीचमेंही उबटन करे. यह दिवोदासका कथन है ॥

केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति–'तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् ह्रासो वृद्धिः परेहनि । तावान् ग्राह्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोपि स्वकर्मणि" इति । तन्मन्दम् । न हीदं वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते । नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वप्रसङ्गात् ॥ किं तु । यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यांतरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तम्, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदम् । न चात्र तदस्तीति यत्किंचिदेतत् । तेन चतुर्थयामगामिनी ग्राह्या । अत एव सर्वज्ञनारायणः–"तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा । यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते" इति । "मृगांकोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शे वा मंगलस्नानं दुःखशोकभयप्रदम्" इति कालादर्शे त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः । यथाग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वम् । तथात्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति ॥ यदपि दिवोदासीये–"त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाभ्यङ्गे त्रयोदशी" इति वचनं तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम् । समूलत्वेपि चतुर्दश्याः सूर्योदयद्वयासंबंधितरूपः क्षयोत्र विवक्षितः सूर्योदयात् प्राक् समाप्तौ चन्द्रोदयकालसत्त्वे च तथैवाङ्गीकारात् । किं तु अभ्यङ्गकालात् प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र ह्रासः क्षयशब्देन विवक्षितः । स चारुणोदयात् चतुर्थयामाद्वा प्राक् यदा ह्रासस्तत्परमिदम् । अत एव सर्वज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम् ॥ तथा चोदाहृतम्–'तथा कृष्णचतुर्दश्याम्' इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदोपि–"इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्" ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुः तेषामाशयं न विद्म इत्यलं भूयसा ॥ यदपि–"अरुणोदयतोन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः । तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः" इति दिवोदासीये भविष्यवचनम् ॥

कोई इसमें साधक वाक्य भी कहते हैं कि, अगले दिन तिथि आदिकी जितनी हानि वा वृद्धि हो उतना समय विनादेखे भी अपने कर्ममें प्रथमदिन ग्रहण करना चाहिये सो तुच्छ है. कारण कि, यह वाक्य पहलेदिनके अपूर्व माननेको नहीं कहता रात्रिके जन्माष्टमी व्रत आदिमें दोनोंदिन कर्म कालतक व्यापिनी न होय तो और वाक्यसे प्रथमदिन मानना लिखा है, वहां मुख्य समयमें वह तिथि नहीं भी है, तथापि उसमेंही व्रत करनेका कहनेवाला वाक्यहै सो बात यहां नहीं है, इसीसे यह कुछभी नहीं तिससे रातके चौथे प्रहरगामिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी, इसीसे सर्वज्ञनारायणमें लिखा है कि, इसी प्रकार आश्विन-कृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे प्रथम तैल मलना श्रेष्ठ है, कालादर्शमें इस वाक्यसे त्रयोदशीका निषेधभी कहा है कि, चन्द्रोदयके समयमें त्रयोदशी वा अमावस्याको मंगल स्नान करे तो यह स्नान दुःख, शोक,

भयको देता है. इससे यह सिद्धान्त है कि, जैसे अग्निहोत्रमें जीवनपर्यंत संध्या समय, और प्रभातकालमें व्याप्यकालका गुरुत्व है इसीप्रकार यहां चतुर्दशीका चौथा प्रहर अरुणोदय चन्द्रोदयमें भी पिछलेको व्यापक होनेसे श्रेष्ठतावाला है और जो दिवोदासीयमें भी लिखाहै कि, प्रभातकालके समय होय और चतुर्दशीकी हानि हो रात्रिके शेषमें अमावस्या होय तो त्रयोदशीमें तेल मले, यह वाक्य हेमाद्रि निर्णयामृत आदिमें लिखे न होनेसे निर्मूल हैं और समूल भी होय तो चतुर्दशी सूर्योदयपर दोनोंसे सम्बन्धवाली है यहां क्षय विवक्षित है सूर्योदयसे समाप्तिपर्यन्त चन्द्रोदयकालमें होनेपर इसीप्रकार अंगीकार किया है । किन्तु अभ्यङ्गकालसे पहले समाप्तिरूपह्रास क्षयशब्दसे विवक्षितहै । वह—अरुणोदयसे और चौथे प्रहरसे हीन होय उस समयमें जानना, इसीसे सर्वज्ञनारायणने कृष्णचतुर्दशीके चतुर्थप्रहरमें स्नान लिखा है. ज्योतिर्निबंधमें नारदने भी लिखा है कि, आश्विनकृष्ण चतुर्दशीको और अमावस्याको और स्वातिनक्षत्रयुक्त कार्तिकमें दीप मालिका जो होती है, उसमें निरन्तर तीन दिन दीपोत्सव करे, जो त्रयोदशीके बीचमें स्नान कहते हैं उनका आशय हमको विदित नहीं होता अर्थात् वे मंद हैं, बहुत कहनेसे क्याहै दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अरुणोदयको त्यागकर जो मनुष्य रिक्तातिथिमें स्नान करता है, उसका वर्षभरका कियाहुआ धर्म नष्ट होजाता है ॥

तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नातव्यमित्येवंपरमिति सर्वं सिद्धम् । 'चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदयः' इति तत्रैवोक्तम् । मदनरत्ने पाद्मे—"अपामार्गमथो तुंबीं प्रपुन्नाटमथापरम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥" प्रपुन्नाटश्चक्रमर्दः । मन्त्रस्तु—"सितालोष्ठसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः" इति अस्यामेव प्रदोषे दीपान् दद्यादित्युक्तं हेमाद्रौ स्कांदे—"ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च" । इति ॥ दिवोदासीये ब्राह्मे "अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गाधिकारेभ्यो मुच्यते कार्त्तिके नरः॥" खण्डतिथौ तु पूर्वेह्नि प्रदोषे दीपान् दत्त्वा परेद्युः स्नायादिति दिवोदासीये उक्तम् ॥

यह वाक्य मुख्यसमयमें चतुर्दशीका अभावभी होय तोभी चतुर्दशीमें स्नान करना इस निमित्त है, इससे सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, चार घड़ीका अरुणोदय होता है, यह वहांही लिखाहै मदनरत्नमें पद्मपुराणका कथन है कि, (चिरचिटा) तुम्बी चक्रमर्दको स्नानके समय नरकके नाशके निमित्त चारों ओर भ्रमावे, उसका मंत्र यह है कि, हे अपामार्ग ! सिताके दलोंसे और कांटेवाले दलोंसे संयुक्त वारंवार भ्रमानेसे तुम मेरे पापको दूर करो, इसी चतुर्दशीको सायंकालके समय दीपदान करे, यह हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फिर प्रदोषकालमें सुन्दर दीपक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके मन्दिरोंमें और मठोंमें बाले. दिवोदासीयमें ब्रह्म पुराणका कथन है कि, कार्तिककी अमावस्या और चतुर्दशीको दीपदान करनेसे मनुष्य यममार्गके अन्धकारसे छूटजाता है, तिथि खंडित होगई होय तो प्रथमदिन प्रदोषमें दीपदान कर प्रथमदिन स्नान करे यह दिवोदासीयमें कहा है ॥

तत्र चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानम् ।

अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानं कार्यम् । तत्र मंत्रः—"दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया । चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये" ॥ तत्रैव लिंगे—"माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः । प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥"

इसदिन नरकनिवृत्तिके उद्देशसे चार वर्तियोंका दीपक देना चाहिये. उसका यह मंत्र है कि, नरकोंकी प्रसन्नता और सब पापोंको दूर करनेके निमित्त चार बत्तियोंका दीपक मैंने दिया है. वहांही लिंगपुराणका यह वाक्य है कि, उस दिन मनुष्य उरदके पत्तोंके सागको भोजन करनेंसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥

अथ यमतर्पणम्।

अत्र यमतर्पणमुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना–'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्' ॥ मदनरत्ने ब्राह्मे–"अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि। ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुंबराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः" ॥ ३ ॥ इति ॥ तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ–"एकैकेन तिलैर्मिश्रान्दद्याच्च त्रीञ्जलाञ्जलीन्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥" तथा मदनरत्ने स्कान्दे। "दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः। देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः ॥" तथा 'यज्ञोपवीतिनाकार्यं प्राचीना वीतिना तथेति।' इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेः ॥ अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तं दिवोदासीये तत्प्रकारस्तु माघे वक्ष्यते ॥ इति नरकचतुर्दशी ॥

इसमें यमका तर्पणभी मदनपारिजातमें वृद्धमनुने लिखाहै कि, चतुर्दशीको दीपोत्सव और यमतर्पण करना चाहिये। मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, अपामार्गके पत्तोंको अपने शिरपर भ्रमण करावे, फिर यमराजके इन नामोंसे तर्पण करै कि–यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठि, चित्रगुप्त, वृकोदर चित्रके निमित्त नमस्कार है. तर्पणका प्रकार तो हेमाद्रिमें यह लिखाहै कि, एक एकको तिलोंसे मिली ३ अंजली दे तो वर्षदिनका संचित किया पाप क्षणभरमें दूर होजाताहै, इसीप्रकार मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, दक्षिणकी ओर मुख करके सव्यहोकर सावधानीसे तिलोंसे तर्पण करना चाहिये इस तर्पणमें यमराजको देव होनेसे देवतीर्थसे और प्रेतोंका राजा होनेसे तिलोंसे तर्पण करे, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि–'यज्ञोपवीती' अथवा 'प्राचीनावीती' होकर तर्पण करना यह जीवत्पितृकको भी करना चाहिये. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि–जिसका पिता जीवित हो वह यम और भीष्मका तर्पण करे, यहां दिवोदासीयमें भीष्मका तर्पण लिखाहै उसका प्रकार माघके निर्णयमें लिखेंगे। इति नरकचतुर्दशी ॥

कार्त्तिकामावास्यानिर्णयः।

कार्त्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गं कुर्यात् ॥ तदुक्तं कालादर्शे–"प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यङ्गादिमङ्गलः। भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये ॥" अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पञ्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः। तदुक्तं पुष्करपुराणे–"स्वातीस्थिते रवाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत्। पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यङ्गविधिर्नरः ॥ नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयञ्छ्रियमश्नुते ॥" आश्वयुग्दर्श इति दर्शशब्दः प्रत्यूषस्वातियुक्ततिथिपरः। तदुक्तं ब्राह्मे–"ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिऋक्षगे। मानवो मङ्ग-

लस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ॥ " तत्रैव-"इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने । यदा स्वाती तदाभ्यङ्गस्नानं कुर्यादिनोदये ॥ " कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्श प्रक्रम्य-"इन्दुक्षयेपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये " इति ॥ स्वातीयोगं विनाऽप्यभ्यङ्ग उक्तः । मात्स्ये-" दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता ॥"

कार्तिककी अमावस्याको प्रातःकाल तेल मले यही कालादर्शमें लिखा है कि, आश्विनकी अमावस्याको प्रातःकालके समय तेल मलना आदि मंगलस्नानको संपादन करके भक्तिसे अलक्ष्मीकी निवृत्तिके निमित्त देवोंकी पूजा करै, इस कथनके व्याख्यानमें आदिशब्दसे पंचत्वचाके स्नानका ग्रहण करना चाहिये । यही पुष्करपुराणमें लिखा है कि, स्वातीके सूर्यमें स्वातीका चन्द्रमा होय तो पंचत्वचाके जलमें स्नान करके और तेल मल करके मनुष्य आरती करे, और महालक्ष्मीकी पूजा करे तो लक्ष्मीको भोगता है, (आश्वयुग्दर्शे) इस पदमें दर्शशब्द प्रातःकाल स्वाती नक्षत्रयुक्त तिथिका जतानेवाला है, यही ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको स्वातीनक्षत्रमें मंगल स्नान करे तो मनुष्य लक्ष्मीसे हीन कभी नहीं होता, आश्विनकी चतुर्दशी और अमावस्याको और कार्तिकके प्रथम दिन जब स्वातीनक्षत्र हो तब सूर्योदयमें तेल मले, उबटन करे, फिर स्नान करे यह वहांही लिखाहै. कश्यपसंहितामें तो दिवालीकी अमावस्याको आरम्भ करके स्वातीनक्षत्र योग विना भी अभ्यंग करना लिखा है कि-क्षयतिथि, संक्रान्ति, आदित्यवार, व्यतीपात, दिनका क्षय, इनमें प्रभात समय अभ्यंग करनेका दोष नहीं है किन्तु पाप नाश होता है. मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इसमें दीपकोंसे नीराजन (आरती) होती है इससे इसे 'दीपावली' कहा है ॥

तत्र विशेषः ।

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-" दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् । प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ॥ दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ॥" तत्रैवाभ्यङ्गमभिधाय-" एवं प्रभातसमये त्वमावास्या नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥ दीपान्दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना " ॥ २ ॥ अयं प्रदोषव्यापी ग्राह्यः-" तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् " इति ज्योतिषोक्तेः दिनद्वये सत्त्वे परः-" दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका " इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात् ॥ दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् । " अर्धरात्रे भवत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दापजागरजनोत्सवाः ॥ सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः" इति ब्राह्मोक्तेश्च । प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या एकैकव्याप्तौ परैव ॥ प्रदोषस्य मुख्यत्वादर्धरात्रेनुष्ठेयाभावाच्च । यस्तु-" अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन् कर्तव्या दीपमालिका " इति क्रमः । स संपूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः । तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्बलवत्त्वात्संपूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्याविध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तम् ॥

इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, बालक और आतुरमनुष्योंके विना दिवालीको दिनमें किसीको भी भोजन न करना चाहिये, प्रदोषके समय लक्ष्मीका क्रमानुसार पूजन करके देवताओंके मन्दिरमें शक्तिपूर्वक दीपवृक्ष देने, फिर वहांही अभ्यंगको लिखकर हे राजन् ! इस प्रकार अमावस्याको प्रभात कालमें दधि, खीर, घृत आदिसे पार्वणश्राद्ध करके और दीप देकर प्रदोषमें लक्ष्मीका यथाविधि पूजन करके श्वेत वस्त्रोंको धारणकर और अलंकार धारणकर भोजन करै यह पूजनभी प्रदोषसमय करना तुलाकी संक्रान्तिमें चतुर्दशी और अमावस्याको प्रदोषमें उल्का हाथमें धारणकर मनुष्य पितरोंके मार्गको दिखावें, यह ज्योतिषका वाक्य उसमें प्रमाण है, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो अगले दिन करना कारण कि, तिथितत्त्वमें ज्योतिषका वाक्यहै कि, एक घडी रात्रिका योग होय तो अमावस्या दूसरे दिन होती है, तब प्रथम दिन छोडकर अगलेदिन सुख रात्रि होती है, दिवोदासीयमें तो प्रदोषको कर्मका समय होनेसे और ब्रह्मपुराणके इस वाक्यसे कि, अर्द्धरात्रमें जानेके निमित्त लक्ष्मी घरोंमें घूमतीहै इससे मनुष्य भलीप्रकार अलंकार और चंदन लगाकर दीपकके चांदनेमें उत्सवपूर्वक जागते रहैं, और श्वेततासे धवल और फलोंकी मालासे शोभित रहैं. इससे प्रदोष और अर्द्धरात्रव्यापिनी मुख्य है (यदि प्रदोष वा अर्द्धरात्रमें एक २ व्यापिनी होय तो अगली लेनी चाहिये, प्रदोष मुख्य है) और आधीरात्रमें कर्म करने योग्य नहीं । जो किसीने यह क्रम कहाहै कि, पितरोंके भक्त मनुष्योंको अपराह्णमें श्राद्ध करना चाहिये, और हे राजन् ! प्रदोषके समय दीपमालिका करैं, इस क्रमका सम्पूर्ण तिथिके बीचमें प्राप्तिका अनुवाद जानना, विधि नहीं जाननी. कारण कि, तिस २ कर्म कालमें तिथिका होना बलिष्ठ है औरं सम्पूर्ण तिथिमें प्राप्त हो खण्डमें न प्राप्तहो इससे विधि और अनुवादका परस्पर विरोधहै, यह प्रथम कह आये हैं ॥

अत्राऽलक्ष्मीनिवारणम् ।

अत्रैव दर्शे पररात्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तं मदनरत्ने भविष्ये—"एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः । निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्" ॥

दिवालीकी अमावस्याको पिछली रातको दरिद्रका घरसे निकालना मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, इसप्रकार जब आधीरात बीतजाय और मनुष्योंके नेत्रमें आधी निद्रा रहै, तब नगरके नरनारियोंको सूप और बाजोंको बजाकर आनन्दित होकर अपने घरके आँगनसे दरिद्रको निकालना चाहिये ।

कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्निर्णयः ।

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते—अस्यामेव रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौ भविष्ये—"कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः । पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे ॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः । गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥ लोकश्चापि गृहस्यांतः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु पूजयेत्" ॥ ३ ॥ मन्त्रास्तु पाद्मे—"बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित । इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव" इति ॥ तथा—"बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन । यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैवं सम्प्रदर्शितम्" इति ॥ तदेतत्पूर्वविद्धप्रतिपदि कर्तव्यम् । 'पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्' इति हेमाद्रौ पद्मोक्तेः । माधवोपि—'बल्युत्सवं च पूर्वेद्युरुपवासवदाचरेत्' इति । निर्णयामृतेपि—"या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप । पूजनात्त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः" इति ।

तथा–'भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति ॥' भद्रायां द्वितीयायाम् ॥ तथा– "प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोर्चनम् । क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्" इति तथा–"प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् । परविद्धेषु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः" इति ॥ देवलवचनाच्च ॥

कार्तिकशुक्ल प्रतिपदाको गौओंकी क्रीडा निर्णयामृतमें लिखी है और इसीमें बलिकी पूजा रात्रिको हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, रात्रिके विषय इस सम्पूर्णकृत्यको करके रात्रिको दैत्योंके पति बलिकी पूजा अपने घरकी भूमिमें राजाको करनी चाहिये । पांचरंगोंसे दैत्यपति बलिको लिखकर घरके मध्यकी उत्तम शालामें बलिकी पूजा करनी चाहिये, जगत्‌भी अपने घरके बीचमें शय्यापर श्वेत चावलोंके ऊपर बलिराजाको स्थापन करे, पुष्प और धूपसे बलिका पूजन करे. उसका मंत्र पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, हे बलिराज ! हे दैत्य दानवोंके प्रणाम योग्य ! हे इन्द्र और देवताओंके शत्रु ! मुझे विष्णुकी निकटता दीजिये. तैसेही यह लिखा है कि, हे कुरुनन्दन ! बलिके निमित्त जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय होतेहैं यह मैंने दिखायाहै सो यह व्रत, पूजा, पूर्वविद्धा प्रतिपदामें करनी चाहिये. कारण कि हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि, शिवरात्रि और बलिदिन पूर्वदिनमें करना. माधवमें भी लिखा है कि, प्रथमदिन बलिका उत्सवभी व्रतके तुल्य करे, निर्णयामृतमें भी कहा है कि, प्रतिपदासे मिली अमावस्यामें गौओंके पूजनेसे राजाके प्रजा गौ और राज्य तीनोंकी वृद्धि होतीहैं. इसीप्रकार वाक्य है कि,जहां भद्रा (द्वितीया)को गौओंकी क्रीडा होती है वह देश नष्ट होता है. तैसेही लिखा है कि, प्रतिपदाको अग्निहोत्र करना द्वितीयाको गौओंकी पूजा हो तो छत्रभंग धननाश कुलक्षय होताहै ॥ तैसेही देवलने यह कहा है कि, प्रतिपदा अमावस्याके योगमें गौओंकी क्रीडा करानी चाहिये. परविद्धातिथिमें जो क्रीडा करे उसके पुत्र, स्त्री, धनका क्षय होताहै ॥

एते च विधिप्रतिषेधाः । पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्नव्यापित्वे द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसंभवे च ज्ञेयाः । "गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा" इति पुराणसमुच्चयात् । दिनद्वये सायाह्नव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या। "वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका । द्वितीयावृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते" इति ॥ तथा–'त्रियामगा दर्शतिथिर्भवेच्चेत्सार्द्धत्रियामा प्रतिपद्द्विवृद्धौ । दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे अतोन्यथा पूर्वयुते विधेये" इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः॥ सार्द्धत्रियामिकेत्यनेन चन्द्रदर्शनाभाव उक्तः ॥

ये पूर्वोक्तविधि और निषेध पूर्वदिनमें प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो और दूसरेदिन चन्द्रमाके दर्शनका संभव हो तो जाननी चाहिये । कारण कि, पुराणसमुच्चयमें यह लिखाहै कि, जिस दिन रात्रिमें चन्द्रमाका दर्शन हो उसदिन गौओंकी क्रीडा करे तो सोमराजा गौओंके पूजन करनेवालेको और पशुओंको हनते हैं दोनोंदिन संध्याव्यापिनी होय तो अगले दिन करनी. कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, बढ़नेवाली तिथिमें यदि साढ़ेतीन प्रहर नन्दा होय तो द्वितीयाकी वृद्धि होनेवाली है, इससे वहां उत्तरतिथि ग्रहणकी है. इसी प्रकार वाक्य है कि, अमावस्या तीन प्रहरहो और साढ़े तीन प्रहर प्रतिपदा होय तो ये दोनोंतिथि मुनियोंने दीपोत्सवमें लिखीहैं, ये दो ऐसी न होंय तो दोनों तिथि पूर्वविद्धा करनी, यह पुराणसमुच्चयसे निर्णयामृतमें लिखाहै, साढ़े तीन प्रहर प्रतिपदा कहनेसे चन्द्रमाके दर्शनका अभाव वर्णन कियाहै ॥

द्वितीयायाः पञ्चधा विभक्तदिनचतुर्थांशरूपापराह्णव्याप्तावेव चन्द्रदर्शनसम्भवात् । वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासम्भवे वेदितव्यमिति ब्रूमः ॥ दिनद्वयेप्रतिपदः सायाह्नव्याप्त्यभावे तु पूर्वैव । रात्रौ बलिपूजाविधानेन कर्मकालव्यापित्वात् । परदिने चन्द्रोदये तन्निषेधादिति दिक् । मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा ॥ नीराजनमङ्गलमालिके तूत्तरत्र कार्ये–"कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका । यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत् । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ २ ॥ इति ब्राह्मोक्तेः ॥ "लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद्धटिकाद्वयम् । तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका" इति भविष्योक्तेः । "प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्धटिका शुभा । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्यावटीद्वयम् । देशभङ्गभयान्नैव कुर्यान्मिङ्गलमालिकाम्" ॥ २ ॥ इति देवीपुराणाच्चेत्युक्तम् ॥

द्वितीयाके पांच भाग करनेपर जब चतुर्थ भाग प्रतिपदाके अपराह्णका पूरा आजाय तो पडवामें चन्द्रदर्शन होसकता है. हम तो ये दोनों वाक्य पूर्वविद्धाके असम्भवमें जानने चाहिये ऐसा कहते हैं. दोनों दिन प्रतिपदा प्रदोषव्यापिनी न होय तो प्रथमकी लेनी कारण कि, रात्रिमें बलिपूजाकी विधिसे कर्मकालव्यापिनी लिखीहै, और परदिनमें चन्द्रोदय होय तो बलिपूजाका निषेध है, इति दिक् । मदनरत्नमें तो पूर्वविद्धामें गोक्रीड़ा, नीराजन और मंगलकी माला यह सब उत्तरतिथिमें करने चाहिये ऐसा कहाहै । कारण कि, ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें दो विधि होतीहैं, प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको मंगलामालिका करना जिसदिन प्रतिपदा थोड़ी होय तो स्त्री द्वितीयाको प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको मंगल मालिका करैं. भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, जो प्रातःकाल दो घड़ी प्रतिपदा भी मिले तो उसमें नीराजन और सायंकालको मंगलमालिका करलेनी, देवीपुराणमें लिखा है कि, प्रातःकाल शुद्धप्रतिपदा घडीभरभी मिले तो द्वितीयाको सायंकालमें मंगलमालिका करनी चाहिये । कार्त्तिकके शुक्लपक्षके आदिमें अमावस्या दो घडी मात्र होय तो उसदिन देशभंगके भयसे मंगलमालिका न करनी ॥

तत्र विशेषः ।

अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे ॥ बलिप्रतिपदं प्रक्रम्य–"तस्मिन्द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत् । दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा" ॥ २ ॥ इति ॥

इसमें विशेष, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे बलिप्रतिपत्प्रकरणमें लिखा है कि, दिवालीके दिन मनुष्योंको प्रभातके समय जुआँ खेलना उचितहै, उसमें जिसका जयहो उसका वर्षदिनतक जय होताहै, और जिसका विरोध वा पराजय होता है उसके लाभका नाश होता है, इससे मनुष्य उस रात्रिको स्त्रियोंके साथ द्यूतक्रीडामें बितावें ॥

गोवर्धनपूजननिर्णयः ।

अत्र गोवर्धनपूजादि चोक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कांदे–"प्रातर्गोवर्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत् । भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः ॥" गोवर्धनश्च गोमयेन

कार्यश्चित्रेण वा । मन्त्रस्तु-"गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारण । बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥" गोमन्त्रस्तु-"लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु" तत्रैव स्कांदे-"ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत । मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुंगे स्तंभेथ पादपे ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लंबकैर्बहुभिर्मुने । दर्शयित्वा गजानश्वान्सायमस्यास्तले नयेत् ॥ कृतहोमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥ नीराजनश्च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः । मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः" ॥ ९ ॥ तत्रैवादित्यपुराणे-"कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः । जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम्" ॥ २ ॥ इति ॥

उसमें गोवर्द्धनपूजा आदि और देवमार्गपालीकी पूजा आदि हेमाद्रिमें निर्णयामृतमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, प्रातःकाल गोवर्द्धनकी पूजा करके जुआँ खेले और गौओंको सज्जित करे और यान तथा गोदोहनीकी पूजा करनी, और गोमय वा चित्रामका गोवर्द्धन रचे, उसका मंत्र यह है कि, हे गोवर्द्धन ! हे गोकुलके रक्षक ! हे बहुत भुजाओंसे छाया करनेवाले कोटि गौओंके दाता ! आपको प्रणाम है. गौओंका मंत्र यह है कि, जो सम्पूर्ण लोकपालोंकी लक्ष्मी गोरूपसे स्थित है, और यज्ञके निमित्त घृतको धारण करती है, वह मेरे पापको दूर करो. वहांही स्कंदपुराणमें कहाहै कि, तिससे अपराह्णके समय पूर्वदिशामें ऊँचे स्तंभोंपर वा वृक्षपर कुशा वा काशोंके लम्बे २ सूतोंसे मार्गपालीको बांधे, हाथी और घोड़ेको दिखाकर संध्याके समय उसके नीचेको लेजांय, और ब्राह्मण जब हवन करले तब मार्गपाली बांधे, हे सुव्रत इस मंत्रसे नमस्कार करे कि, हे मार्गपालि ! हे सर्वलोकसुखदायिनी ! तुमको प्रणाम है पुत्र और स्त्रियोंके और मेरे व्रतकी पूर्णताके निमित्त फिर आना, और वहांही राज्यके जय देनेवाला नीराजन करे. राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्रजाति मार्गपालीको लंघकर प्रसन्न होतेहैं, वहांही आदित्यपुराणमें कहाहै कि, कुश और काशकी दृढ़ रस्सी निर्माण करे, उसको एक ओर राजाके पुत्र और एक ओर हीनजाति अपने बलके अनुसार बारम्बार खैंचे, खीचनेमें हीन जातियोंकी जय होजाय तो वर्षदिनतक राजाको जय प्राप्त होती है ॥

यमद्वितीयानिर्णयः ।

यमद्वितीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ । यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हेमाद्रिः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे-"ऊर्जशुक्लद्वितियायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति" ॥ इति "ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । वेष्टितः किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वांछितम् ॥" यथा भविष्ये-"प्रथमा श्रावण मासि तथा भाद्रपदेतरा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्त्तिके भवेत् ॥ श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीर्मला। आश्विने प्रेतसंचारा कार्त्तिके याम्यका मता" ॥ २॥ इत्युक्त्वा, प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा । चतुर्थ्यामुक्तं-"कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अतो

यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता । अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः ॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् । दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ॥ स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः । सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः"॥ ४ ॥ प्रतिपन्नाः मातृभगिन्य इति हेमाद्रिः । "पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ॥ मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां तथा नृप ॥ पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात् । भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हतस्तः परम् ॥ सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम् । यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतिजगत्स्वसृसौहृदेन । तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखधान्यमनुत्तमं सः " ॥ ४ ॥ गौडास्तु-"यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत् । अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः" ॥ मन्त्रः-"एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश । भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते ॥ भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभ । प्रीतये यमराजस्य यमुनायां विशेषतः" ॥ २ ॥ ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः ॥ इत्यन्नदानमित्यप्याहुः ॥ ब्रह्माण्डपुराणेपि-"या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत्तत्र कर्हिचित्" ॥ इति ॥

अथ यम द्वितीया, यह प्रतिपदासे युक्त ग्रहण करनी यह निर्णयामृतमें लिखाहै. कारण कि-हेमाद्रिने यह कहा है कि, यमद्वितीया पूर्वविद्धा और मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको अपराह्नमें यमराजका पूजन करना चाहिये, और यमुनामें स्नान करनेसे यमलोकको देखना नहीं पडता, कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको पूजा और तर्पण करनेसे प्रसन्न हुए किन्नरोंसहित यमराज मनुष्यके सम्पूर्ण मनइच्छित फलको देतेहैं, इसीप्रकार भविष्यपुराणका कथन है कि, श्रावण मासकी प्रथमा और भाद्रपदकी अपरा (२) और आश्विनकी तृतीया और कार्तिक चतुर्थी इन चार महीनोंकी द्वितीयाओंको क्रमसे कलुषा, गर्मिला, प्रेतसंचारा, याम्यका नामवाली कहाहै यह कहकर पहलीमें व्रत, दूसरीमें सरस्वती पूजा, तीसरीमें श्राद्ध कहकर चौथी कार्तिकशुक्ल द्वितीयामें लिखाहै कि, हे युधिष्ठिर ! यमुनाने अपने घरमें पूजन करके यमराजको सत्कारसे भोजन कराया, इससे यह तीनों लोकोंमें यमद्वितीया नामसे प्रसिद्ध है. हे विप्र ! इसमें मनुष्यको अपने घरमें भोजन न करना किन्तु अपनी पुष्टि बढानेवाले मनुष्यको स्नेहसे भगिनीके हाथसे भोजन करना, और विधिसे भगिनियोंको दक्षिणा देना, और स्वर्ण, अलंकार, वस्त्र, अन्न, पूजा, सत्कार भोजनसे भगिनियोंकी पूजा करनी चाहिये, भगिनी न होय तो प्रतिपन्नोंकी पूजा करनी, माताकी भगिनियोंको प्रतिपन्न कहते हैं, यह हेमाद्रिमें वर्णन किया है, पिताकी बहिनीके हाथसे श्रावण शुक्ल २ द्वितीयाको और मामाकी लडकीके हाथसे भादों शुक्ल २ को मौसी और फूफीकी लडकीके हाथसे आश्विन शुक्ल २ को और सगी बहिनके हाथसे कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको भोजन करना चाहिये, सब द्वितीयाओंको बल बढानेवाले, बहिनीके हाथसे भोजन करैं, जिस तिथिको यमुनाने यमराजदेवका सब जगत्की भगिनियोंके प्यारसे भोजन करायाहै उस तिथिको जो बहिनीके हाथसे भोजन करताहै वह श्रेष्ठ रत्न धान्यको प्राप्त होताहै, गौड तो यह कथन करते हैं कि, यम और चित्रगुप्त और यमके दूतोंकी पूजा करनी और दोनों पुत्रोंके सहित यमराजको अर्घ्यदे मन्त्रतो यह है कि, हे सूर्यपुत्र हे हाथमें पाश धारण किये हे यम ! हे अन्तक ! हे लोकधर ! हे अमरेश ! भैया दोयजमें कीहुई देवपूजा और अर्घ्यको स्वीकार करो हे भगवन् ! आपको नमस्कार है, हे भ्राता ! मैं

तुम्हारी छोटी बहिनीहूं तुम इस सुन्दर भोजनको यमराज और विशेषकर यमुनाकी प्रसन्नताके निमित्त भक्षण करो, स्मार्त्त यह कहते हैं कि, हे ज्येष्ठ ! हे अग्रजात ! इस प्रकार कहै और अन्न दान भी करै, ब्रह्माण्डपुराणमें भी यह कहाहै कि, जो स्त्री द्वितीया तिथिमें भ्राता (भाई) को भोजन कराती है, और पानोंसे पूजन करती है, वह कभी विधवा नहीं होती, हे राजन् ! भाईकी अवस्थाका कभी नाश नहीं होता ॥

कार्त्तिकशुक्लनवमीनिर्णयः ।

कार्त्तिकशुक्लनवमी युगादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । शुक्लपक्षस्थत्वात् । अत्रापि पिण्डरहितं श्राद्धं कर्तव्यम् । अन्यत्प्रागुक्तम् ॥

कार्तिक शुक्ल ९ युगादि है, वह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये इसमें पिंडरहित श्राद्ध करना और निर्णयतो प्रथम कह आयेहैं ॥

विष्णुत्रिरात्रम् ।

अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे-"कार्त्तिक शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम्" ॥ २ ॥ इति ॥

इसमेंही विष्णुका व्रत त्रिरात्रके हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखाहै, कि, कार्तिकशुक्ल ९ नवमीको जितेन्द्रिय होकर हरि और तुलसी बनाकर तीनदिन व्रत करके विधिपूर्वक पूजन करै, फिर विवाहके शास्त्रोक्त विधानसे तुलसीके संग विष्णुका विवाह करै ॥

कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकम् ।

कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तम् नारदीये-" अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपंचकम् । कार्त्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः । एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम्" इति ॥ तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्नाप्य संपूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा । 'ॐ नमो विष्णवे' इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् व्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् । एवं पंचदिनेषु कुर्यात् ॥ विशेषस्त्वाद्येह्नि हरेः पादौ कमलैः संपूज्य त्रिर्गोमयं प्राश्यम् । द्वितीयेह्नि बिल्वपत्रैर्जानुनी संपूज्य गोमूत्रम् । त्रयोदश्यां भृङ्गराजेन नाभिं संपूज्य क्षीरम् । चतुर्दश्यां करवीरैः स्कंधं संपूज्य दधि । पौर्णमास्यां होमान्ते लौहीं पापप्रतिमां खड्गचक्रहस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थतिलोपरिस्थां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः संपूज्य । "यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः । तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात्" इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा । कृष्णप्रतिमां च संपूज्य, विप्राय दत्त्वा, विप्रान् संभोज्य, दक्षिणां दत्त्वा, पञ्चगव्यं प्राश्य, पौर्णमास्यां नक्तं भुंजीतेति लघुनारदीये ॥ पञ्चगव्यप्राशनं षडक्षरेणेति हेमाद्रिः । हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्नैर्वा पञ्चाहं वर्तनमुक्तम् । अन्तेप्युक्तं " यद्भीष्मपंचकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशी-

निरुद्धम् ॥ सुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा " इति ॥ तथा पाद्मे-"पश्चाहं पश्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पश्चसु । अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने । भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ वैय्याघ्रपद्यगोत्राय " ॥ २ ॥ इति च ॥ 'सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ' इति ॥

कार्तिक शुक्ल ११ को भीष्मपंचकव्रत नारदीयपुराणमें लिखाहै कि, इससे मनुष्य प्रयत्नसे भीष्मपञ्चक करै, कार्तिकके शुक्लपक्षमें अच्छीप्रकार व्रतमें स्थितहोकर मनुष्य स्नान करके ११ को पांच दिनका व्रत ग्रहण करै, उसकी विधि इसप्रकार है कि, गोबरसे स्नान करके मौन होकर पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय पूजा करके और खीरको निवेदन करके अष्टोत्तरशत द्वादशाक्षर मन्त्र जपसे (ॐनमो विष्णवे) इस षडक्षर मन्त्रसे घृतमें मिले हुये यव और व्रीहियोंसे १०८ आहुति देकर भूमिपर शयन करै. इस प्रकार पांच दिन करै. विशेष तो यह है कि, प्रथम दिन विष्णुके चरणोंकी पूजा करकै तीनबार गोबरका भक्षण करै, दूसरे दिन बेलपत्रोंसे जानुओंकी पूजा करके गोमूत्र पानकरै त्रयोदशीको भाँगरेसे नाभिकी पूजा करकै दूधका पान करै, चतुर्दशी १४ कनेरसे स्कन्दकी पूजा करके दहीका भक्षण करै, पूर्णिमाको होमके पीछे लोहेकी पापकी प्रतिमा निर्माण करै जिसके खड्ग चक्र हाथमें हो कालावस्त्र लिपटा हो प्रस्थभर तिलोंके ऊपर रक्खी हो धर्मराजके नामोंसे कनेरके फूलोंसे उसका पूजन करके इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर कि, और जन्म वा इस जन्ममें जो पाप कियेहैं वह सब तुम्हारे पूजनेसे दूरहों, कृष्णकी प्रतिमाका पूजन करके ब्राह्मणोंको देकर भोजन कराय दक्षिणादे पंचगव्यको भोजनकर पूर्णिमाको रात्रिमें भोजन करे, यह लघुनारदीयपुराणमें कहा है पंचगव्यका भक्षण षडक्षर मंत्रसे करे, यह हेमाद्रिमें लिखा है, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे तो शाक वा मुनियोंके अन्नसे पांच दिन वर्तना लिखा है और अन्तमें भी लिखाहै कि, ११ से पूर्णिमातक जो पृथ्वीपर भीष्मपंचक प्रसिद्ध है, । उसमें जो मनुष्य मुनियोंके भोजनमें तत्पर रहता है उसको हे पांडव ! शार्ङ्गधन्वा भगवान् वांछित फल देते हैं, इसी प्रकार पद्मपुराणमें लिखाहै कि, पांचदिन पंचगव्यका भोजन और पांचोंदिन भीष्मको इस मंत्रसे अर्घ्यदे कि, सत्यव्रत पवित्र गंगाके पुत्र, परममहात्मा, जन्मसे ब्रह्मचारी वैयाघ्रपद गोत्री भीष्मको अर्घ्य देताहूं, और सम्पूर्ण वर्णोंको इसी मंत्रसे तर्पण करना चाहिये ॥

कार्त्तिकशुक्लद्वादशीनिर्णयः ।

कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कार्यम् । तदुक्तं-"आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् " । इति ॥ यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते तदा रेवत्याश्चतुर्थपादं वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तम्॥ लघुनारदीये-"कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चैकादशीं नरः । प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्प्रयाति हरिमन्दिरम् " ॥ मदनरत्ने वाराहे-"एकादशी सोमयुक्ता कार्त्तिके मासि भामिनि । उत्तराषाढसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता ॥ तस्यां यत्क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते " ॥

कार्तिक शुक्ल १२ रेवती नक्षत्रके योगसे रहित होय तो पारणा करना, यही हेमाद्रिमें लिखा है कि, आषाढ भाद्रपद कार्तिकके शुक्लपक्षमें क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्र होयतो इनके संगममें भोजन न करे और करे तो १२ एकादशीका फल व्यर्थ होताहै, जब रेवतीयोगसे रहित द्वादशी सर्व-

१ "ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" यह द्वादशाक्षर मन्त्र है ।

प्रकार नमिले तो तब रेवतीके चौथे पदको त्यागदे, इसका वाक्य पहले लिख आये हैं, लघुनारदीयमें लिखाहै कि, कार्तिकशुक्लपक्षकी एकादशीको करके मनुष्य प्रातःकाल घटका दान करे तो हरिके मंदिरको जाताहै, मदनरत्नमें वाराहपुराणका लेख है कि, हे भामिनी ! कार्तिक महीनेमें ११ सोमवारकी और उत्तराषाढ नक्षत्र होय तो अनन्ता नाम कथनकी है, हे कल्याणी ! उसमें जो कर्म किया जाताहै वह सब अनन्तफलदायक होता है ॥

तत्र देवोत्थापनम् ।

अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–"एकादश्यां च शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः" इति ॥ मदनरत्ने भविष्ये– "कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः" ॥ रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तं 'पारणाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन्वादयेन्मुहुः' इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । "तत्रैव देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः ॥" मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः–"ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय । बुद्ध्यस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव । गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव । इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्र उत्थापने हरेः" ॥ ९ ॥ इति ॥ एवं देवमुत्थाप्य तदग्रे चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् ॥

इसी रात्रिमें देवोत्थापन हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल एकादशीकी रात्रिको श्रद्धा और भक्तिसे युक्त मनुष्य केशवको जगावे, मदनरत्नमेंभी भविष्यपुराणका लेख है कि, हे कुन्तीके पुत्र ! कार्तिक शुक्ल ११ को हे राजेन्द्र ! इसमंत्रसे ब्राह्मण परम देवका उत्थापन करे, रामार्चनचंद्रिकामें तो द्वादशीको देवोत्थापन लिखा है कि, पारणाके दिन पूर्वरात्रिमें घंटे आदिका देवोत्थापन करे, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है उसीमें देवका प्रथम महान् स्नान करावे और फिर महापूजा करके देवदेवको उठावे, मन्त्रतो वाराहपुराणमें ये लिखे हैं कि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, कुबेर, रुद्र, सूर्य, सोम आदिके नमस्कार करने योग्योंको भी प्रणाम करने योग्य है. हे देवेश ! हे जगत्के निवास ! हे देव मंत्रके प्रभावसे सुखपूर्वक उठो, हे देव ! यह द्वादशी सब जगत्के मंगलके निमित्त शेषके ऊपर सोनेवाले आपनेही निर्मित्त कीहै. हे गोविंद ! उठो उठो हे जगत्पते ! निद्राको छोडो त्यागो, हे जगत्पति ! आपके शयनसे यह जगत् शयन करजाता है और तुम्हारे उठनेसे चेष्टा करने लगता है इससे हे माधव ! उठो उठो मेघ जाते रहे आकाश और दिशा निर्मल हुई. हे केशव ! मेरे दिये शरदृतुके फूलोंको स्वीकार करो, विष्णुके उठानेका 'इदं विष्णु०' यह मंत्र लिखाहै, इस प्रकार देवको उठाकर उनके आगे चातुर्मास्य व्रतकी पूर्ति करै ॥

चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः ।

तदुक्तं भारते–"चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥" लघुनारदीये–"चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्त्तिके स्मृता ॥"

---

१ चार महीने देवशक्ति शयन कर जातीहै जो पालनाधार कहातीहै यही देवशयन है ।

मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः "इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" इति ॥

यही भारतमें लिखाहै कि, मनुष्य पुराने और किये हुये चातुर्मास्य व्रतको कार्तिकशुक्ल द्वादशीको सम्पूर्ण करे, लघुनारदीयमें कहा है कि, चातुर्मास्य व्रतोंकी पूर्ति कार्तिकमें लिखी है, मंत्रतो निर्णयामृतमें सनत्कुमारने लिखा है कि, हे देव ! आपकी प्रसन्नताके निमित्त यह व्रत मैंने किया हे जनार्दन ! आपके प्रसादसे पूर्णहो ॥

बोधिनीविधिः ।

अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः—एकादश्यां रात्रौ कुंभे घृतपात्रोपरि हैमं माषमितं मत्स्यं पंचामृतेन संस्नाप्य, कुंकुमपीतवस्त्रयुगपद्माद्यैः संपूज्य, मत्स्यादिदशावतारान् संपूज्य, जागरं कृत्वा, प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः सम्पूज्य, "जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान् । जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः" इति नत्वा, दक्षिणां दत्त्वा, ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ तथा ब्राह्मे—"महातूर्यरवे रात्रौ भ्रामयेत्स्यन्दने स्थितम् । उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमं यस्य यत्कृतम् । कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम्" ॥ २ ॥ यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्द्रव्यं दद्यादित्यर्थः इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् । आशौचे तु पूजामन्येन कारयेत् ॥ कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । अन्यत् प्रागुक्तम् ॥

अब वाराहपुराणमें लिखी बोधिनीका वर्णन करते हैं, कि, एकादशीकी रात्रिको घटपर घीके पात्रके ऊपर मासेभर सुवर्णका मत्स्य बनाकर रक्खै, और स्नान कराकर और कुंकुम दो पीले वस्त्र पद्मआदिसे पूजनकर और मत्स्य आदि दश अवतारोंकी अर्चाकर और जागरण करके और प्रातःकाल वस्त्र आदिसे देव आचार्यकी पूजा करके, जगत्के आदि जगत्रूप जगत्के कारण, अनादि जगत्के आद्य, जगतके योनि जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्नहों इस मंत्रसे प्रणाम करके दक्षिणादेकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे, यही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, उठे हुये देवदेवेशको बडेबाजोंके शब्दोंसे रथमें स्थित कराय राजा स्वयं नगरमें भ्रमावे, चार वर्षाऋतुके महीनोंमें जिसका जो नियम कियाहो उसे ब्राह्मणोंको कहकर भक्तिसे दक्षिणासहित देना चाहिये, अर्थात् जिस भक्ष्यका नियम कियाहो वह दे, यह शुक्रास्त आदिमें भी करना चाहिये, अशौचमें तो औरसे पूजा करावे, कार्तिककी द्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि कहीहै, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, अन्यनिर्णय प्रथम कह आयेहैं ॥

कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ।

कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा । सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—"कार्त्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासस्तु संपूज्य हरिं रात्रौ जितेंद्रियः" इति ॥

कार्तिकशुक्ल चतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी है, वह विष्णुपूजामें रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी दोनोंदिन होय तो निशीथ और प्रदोषव्यापिनी लेनी सोई हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! कार्तिकशुक्लचतुर्दशीको व्रतके पीछे जितेन्द्रिय होकर रात्रिमें भगवान्की पूजा करे ॥

तत्र विश्वेश्वरयात्रा ।

अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादि क्रियते तदारुणोदयव्यापिनो ग्राह्या ॥ तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायां—"वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्त्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत् ॥ २ ॥ " इति ॥ तत्पूर्वदिने चोपवासः कार्यः । " ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् । दण्डपाणेर्महाधाम्नि नवेऽस्मिन्कृतपारणः " इति तत्रैवोक्तेः ॥ शिवरहस्येऽपि पूजाजागराद्युक्तम्—" ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वास्नात्वा च भस्मना । संध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्च्य यथाविधि । मद्भक्तान्भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः " इति ॥

यही विश्वेश्वरकी प्रतिष्ठाका दिनहै, इससे जब विश्वेश्वरकी प्रीतिके निमित्त व्रत आदि कियाजाय, तब अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये । यह त्रिस्थलीसेतुमें सनत्कुमारसंहिताके वाक्यसे लिखा है कि, हेमलम्ब नामके वर्षमें और लक्ष्मीवाले कार्तिकशुक्लचतुर्दशीको अरुणोदयके समय महादेवकी तिथिके ब्राह्ममुहूर्तमें मणिकर्णिकामें स्नान करके पार्वतीसहित विश्वेश्वरने देवीसहित विश्वेश्वरकी पूजा कीथी इससे प्रथम दिन व्रत करना चाहिये सोई वहां लिखा है कि, फिर प्रभातके समय महान् अद्भुत पूजाको विमल तीर्थपर करके दण्डपाणिके बडे धामरूप इस बन (काशीमें) फिर पारण करै शिवरहस्यमें भी पूजा और जागरण आदि कथनकर यह लिखाहै कि, फिर अरुणोदयके समय भस्मसे स्नान करके और सन्ध्याको समाप्त कर मुझ विश्वेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके ऋषियोंने मेरे भक्तोंको भोजन कराया था फिर आप भोजन किया ॥

कार्त्तिकव्रतोद्यापनम् ।

अत्र कार्त्तिकव्रतोद्यापनं पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये उक्तम्—" अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम् । तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् । पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम्" ॥ ६ ॥ इति ॥ कार्त्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या । 'अमापौर्णमास्यौ परे ' इति दीपिकोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे—'पुण्या महाकार्त्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च ।' तथा—"आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित् । महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा ॥ यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् । तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप । सा महाकार्त्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा" ॥ ३ ॥ इति ॥ पाद्मे—"विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः । स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वपि दुर्लभः ॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति । स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्" ॥ २ ॥

---

१ मर्यादा दिखानेको अपनी पूजा आपहीं की है ।

यमः—"कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते । माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

इसीमें कार्तिक व्रतका उद्यापन पद्मपुराणके कार्तिक माहात्म्यमें लिखाहै कि, इसके उपरान्त कार्तिक व्रतवाले उद्यापन विधिको सुनो कि, व्रतवाला कार्तिकशुक्ल चतुर्दशीको उद्यापन करै, तुलसीके ऊपर छोटासा मंडप और तुलसीकी जडमें सर्वतोभद्र निर्माण करै, उसके ऊपर पञ्चरत्नसहित स्थापन किये हुए कलशपर सुवर्णकी पूजा गुरुकी आज्ञासे करै, और गीत और बाजे आदि मङ्गलोंसे रात्रिको जागरण करै, फिर पौर्णमासीको स्त्री सहित तीस ३० वा एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे, 'अतोदेवा' इन दो मन्त्रोंसे तिल पायसकी आहुति देनी, फिर कपिला गौका दान और विधिसे गुरुकी पूजा करै कार्तिककी पूर्णिमा परली लेनी चाहिये । कारण कि, दीपिकामें यह लिखाहै कि, अमावस्या और पूर्णिमा परली लेनी चाहिये । यहां विशेष हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे वर्णन कियाहै कि, बृहस्पति चन्द्रवार कृत्तिका नक्षत्र होय तो कार्तिकी महापुण्यदायक होतीहै, इसी प्रकार जो कदाचित् कार्तिकीपूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र होय वह तिथि स्नान और दानमें उत्तम और महती जाननी चाहिये, यदि उसमें याम्य नक्षत्र होय तो मुनियोंने वह तिथि बडी पुण्यवाली कही है हे नराधिप ! जो यदि उसमें रोहिणी होय तो देवताओंको भी दुर्लभ वह महाकार्तिकी लिखीहै, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, विशाखापर सूर्य और कृत्तिकापर चन्द्रमा होय तो यह पद्मक नामका योग पुष्करमें तो अत्यन्त दुर्लभ है, जो मनुष्य पद्मकयोगमें पुष्करमें गमनकर कपिलागौ देतेहैं वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुके पदको प्राप्त होतेहैं, यमराजने कहाहै कि, कार्तिकीको पुष्करमें और माघकी पूर्णिमाको प्रयागमें स्नान करनेसे सब पाप छूटते हैं ॥

मत्स्यावतारनिर्णयः ।

अस्यामेव सायङ्काले मत्स्यावतारो जात इत्युक्तं पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये—"वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः । तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्" इति ॥

इसी कार्तिकीकोही सन्ध्याके समय मत्स्यअवतार हुआहै यह पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखाहै कि, जिससे वरोंको देकर विष्णु मत्स्यरूपी हुए इससे उसतिथिमें दिया हुआ दान होम, जप, अक्षय फलको देताहै ॥

त्रिपुरोत्सवनिर्णयः ।

अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो भार्गवार्चनदीपिकायां—"पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः । दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः" ॥ २ ॥

इसमेंही त्रिपुरोत्सव भार्गवार्चनदीपिकामें लिखाहै कि, पूर्णिमाको सन्ध्याके समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिये, और इस मन्त्रसे देवताओंके मन्दिरमें दीप देने कि, कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष और जल और स्थलमें जो जीव विचरते हैं वे और श्वपच और ब्राह्मण जो इस दीपकको देखतेहैं उनको फिर जन्म लेना नहीं पडता ॥

तत्र वृषोत्सर्गनिर्णयः ।

अत्र वृषोत्सर्गोतिप्रशस्तः । तदुक्तं मात्स्ये—"कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्" इति ॥

---

१ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ऋ० १ । २ । ७ ॥

इसमें वृषोत्सर्ग करना अत्यन्त श्रेष्ठहै, सोई मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, जो मनुष्य कार्तिकको नक्त व्रत करके वृषोत्सर्ग करताहै उसे शिवजीका परमपद प्राप्त होताहै ॥

कार्त्तिकेयदर्शनम् ।

अत्र कार्त्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे–"कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्। सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः" ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे कार्त्तिकमासः ॥

इसमें ही स्वामिकार्तिकका दर्शन काशीखण्डमें लिखाहै कि, कार्तिकमें कृत्तिकानक्षत्रके योगमें जो स्वामिकार्तिकका दर्शन करताहै वह पुरुष सातजन्मतक महाधनी और वेदका पारगामी ब्राह्मण होताहै ॥

(इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां कार्त्तिकमासः समाप्तः ।)

अथ मार्गशीर्षमासः ।

तत्र वृश्चिकसंक्रांतिनिर्णयः ।

वृश्चिके पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् ॥

वृश्चिकसंक्रान्तिमें प्रथम सोलह घड़ी पुण्यकाल है, शेष निर्णय पूर्वकी समान जानना ॥

कालाष्टमीनिर्णयः ।

मार्गशीर्षसिताष्टमी कालाष्टमी, सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या ॥ "मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसंनिधौ । उपोष्य जागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥ इति काशीखण्डात् रात्रिव्रतत्वावगतेः 'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या संमुखी तिथिः' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ॥ दिनद्वयेंऽशतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव ॥ भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित्। तन्न । शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात् । तथा च तत्रैव–'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ' इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेऽवज्ञाते उक्तं–"तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः । आविरासीत्तदा लोकान्भीषयन्नखिलानपि" इति ॥

मार्गशिर कृष्णअष्टमीको कालाष्टमी होतीहै, वह रात्रिव्यापिनी लेनी कारण कि, इस काशीखण्डके कथनसे वह रात्रिका व्रतही प्रतीत होताहै, कि, मार्गशिर कृष्णअष्टमीको कालभैरवके निकट व्रत और जागरण करके सब पापोंसे रहित होताहै, और ब्रह्मवैवर्तके इस वाक्यसे रुद्रके सम्पूर्ण व्रतोंमें सन्मुखी (पहली) तिथि लेनी कही है दोनों दिन किसी अंशमें रात्रिव्यापिनी होयतो पिछली लेनी कारण कि, भैरवकी उत्पत्तिका समय प्रदोष है यह कीन्हींका कथन है सो ठीक नहीं है कारण कि, शिवरहस्यमें मध्याह्नमें भैरवोत्पत्ति लिखी है, इसी प्रकार वहां भी लिखाहै कि, नित्य यात्रा आदि करके जब सूर्य मध्याह्नमें प्राप्त हो यह प्रारम्भ करके ब्रह्माने रुद्रके समान जाना यह लिखाहै, तब निष्पाप उग्ररूपसे उन्मत्तरूप कालभैरव मानो सब संसारको भय देते प्रगट हुए ॥

तत्रोपवासनिर्णयः ।

अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव–"उपोषणस्याङ्गभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम् । तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये ॥ " सन्ध्यायामपि पूजैवोक्ता तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता । दिनद्वयेंऽशतः सम्पूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव । पूर्वोक्तवचनात् । पारणा तु

प्रातरेव-'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' इति वचनात् ॥

इसतिथिमें व्रतही प्रधान है वहांही लिखाहै कि, उपवासका अंग अर्घ्यदान, जागरण, चार प्रहरकी पूजा इसमें लिखीहै, सन्ध्यामें भी पूजा लिखीहै, तिससे मध्याह्नव्यापिनी लेनी युक्त है,दोनों दिन किसी भागमें सम्पूर्ण व्यापिनी होय तो पूर्वोक्तवाक्यसे प्रथमहीकी लेनी, पारणा तो तीन प्रहरसे अधिक तिथि होय तो प्रातःकाल करनी चाहिये, इस वाक्यसे प्रातःकाल ही करै ॥

कालभैरवपूजानिर्णयः ।

अत्र च कालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ-"कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तरैः । नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥" तथा-"तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः । विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत्पितॄन्" इति ॥ इयं च कार्त्तिक्यनन्तरा गौणचान्द्राभिप्रायेण ॥

इसमेंही त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें कालभैरवकी पूजा लिखी कि, बड़ी बड़ी सामग्रियोंके विस्तारसे मार्गशिरशुक्ल अष्टमीको पूजन करके मनुष्यके वर्षदिनके विघ्नको भैरव दूर करदेता है. तैसेही लिखा है कि, कालोदक तीर्थमें स्नान और शनैः २ तर्पण करके और कालराजा (भैरव) का दर्शन करके नरकसे पितरोंका छुटकारा करताहै, यहां मार्गशिरसुदि अष्टमी कार्तिकीके उपरान्त गौण चन्द्रमाससे लेनी चाहिये॥

मार्गशीर्षशुद्धपञ्चमी (नागपञ्चमी) निर्णयः ।

मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ स्कांदे-"शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी । स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी" इति ॥ इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव ग्राह्या-"पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका" इति मदनरत्ने वचनात् ॥

मार्गशिरशुक्लपञ्चमीको हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे नागपूजा लिखी है कि, मार्गशिरशुक्ल वा श्रावणशुक्ल पञ्चमी स्नान और दानसे अनेक फल और नागलोक देनेवाली है, यह नागपूजामें षष्ठीसे युक्त लेनी चाहिये. कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखाहै कि, नागपूजामें पञ्चमी षष्ठीयुक्त लेनी चाहिये और सब पञ्चमी चतुर्थीयुक्त लेनी चाहिये ॥

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी (चम्पाषष्ठी) निर्णयः ।

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठीति महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । सोत्तरयुता ग्राह्या 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात् । 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्याद्' इति वचनादस्य च देवकर्मत्वात् । इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे मल्लारिमाहात्म्ये-"मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता । रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता' इति ॥ 'विशाखाभौमयोगेन सा चम्पेतीह कीर्तिता' इति मदनरत्ने पाठः । "मार्गशीर्षेमले पक्षे षष्ठ्या वारेंऽशुमालिनः । शततारागते चन्द्रे लिङ्गं स्याद्दृष्टिगोचरम्" इति । इयं च योगवशेन पूर्वा परा वा कार्या । चम्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः ॥

मार्गशिरशुक्लषष्ठी महाराष्ट्रोंमें "चम्पाषष्ठी" नामसे प्रसिद्धहै वह उत्तरतिथिसे युक्त लेनी चाहिये. कारण कि, (षण्मुन्योः) षष्ठी और सप्तमीका द्विवाक्यहै, पूर्वाह्णमें देवकर्म करना चाहिये, इससे यह भी

देवकर्म है, इसेही योगविशेषसे चंपा वर्णन करतेहै, यही ब्रह्माण्डपुराणमें मल्लारिमाहात्म्यमें लिखाहै कि, मार्गशिर और भाद्रपद शुक्लषष्ठी वैधृति रविवारसे युक्त होय तो चम्पा जाननी. मदनरत्नमें यह पाठ है कि, विशाखा मंगलके योगसे युक्त षष्ठी चंपा कहीहै, मार्गशिरशुक्ल षष्ठीको रविवार और विशाखापर चन्द्रमा होय तो शिवजीके लिंगका उसदिन दर्शन होसकता है, यही योगके वशसे प्रथम वा पिछली करनी चाहिये, चम्पाषष्ठी सप्तमीसे युक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदासका मतहै ॥

स्कन्दषष्ठीनिर्णयः ।

इयमेव स्कन्दषष्ठी। "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्त पारणं भवेत्" इति भृगूक्तेः परेऽह्नि रात्रावाद्ययाममध्ये पारणासम्भवे इदम्। अन्यथोत्तरैवेति दिवोदासः। अब्दपर्यन्तषष्ठीषु ।"सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल। रुद्रोमाग्निज षड्वक्त्र गङ्गागर्भ नमोस्तु ते" इति राजतं स्कन्दं पूज्य विप्राय दद्यादिति दिवोदासः ॥

यही स्कंदषष्ठी है, यह पूर्वतिथिसे युक्त लेनी चाहिये. कारण कि, भृगुजीने यह लिखा है कि, कृष्णाष्टमी स्कंदषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी ये पूर्व तिथियोंसे युक्त लेनी चाहिये, और तिथिके अन्तमें पारणा करनी यह तब जानना चाहिये जब अर्द्धरात्रिसे प्रथम पारणा होसके, अन्यथा पिछली ग्रहण करनी यह दिवोदासका कथन है कि, वर्षदिनतक षष्ठियोंमें इस मंत्रसे चांदीके स्कंदकी पूजा करके ब्राह्मणको दै दे कि, हे सेनाविदारक ! हे स्कंद ! हे महासेन ! हे महाबल ! हेरुद्र ! हे पार्वती पुत्र ! हे अग्निके पुत्र ! हे षण्मुख ! हे गंगाके गर्भसे उत्पन्न ! आपको प्रणाम है ॥

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ।

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचविमोचनीतीर्थे श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैरुक्तम् । तस्य प्रासपैशाच्यस्वपित्राद्युद्देश्यकपार्वणत्वादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यकत्वे त्वेकोद्दिष्टत्वात् मध्याह्नव्यापिनीति ॥ कुलधर्मव्रतादौ तूत्तरैव । 'चैत्रनभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वा' इति दीपिकोक्तेः ॥

मार्गशिरशुक्ल चतुर्दशीको पिशाचमोचन तीर्थपर श्राद्ध त्रिस्थलीसेतु ग्रन्थमें भट्टोंने लिखाहै, वह श्राद्ध पिशाच हुये अपने पिता आदिके निमित्त किया जाय तो पार्वण होगा, इससे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये. यदि जिसका नाम ज्ञात नहो ऐसे पिशाचके निमित्त कियाजाय तो एकोद्दिष्ट होगा इसमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये, कुलधर्म व्रत आदिमें तो पिछली लेनी चाहिये चैत्र नभोगतमें सिता ऊर्ध्वा होती है यह दीपिकामें लिखा है ॥

दत्तजयन्ती ।

मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं स्कान्दे सह्याद्रिखण्डे-"मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽह्नि सुनिर्मले । मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे ॥ जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् । तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम् ॥ दत्तवान्स्वस्य पुत्रत्वाद्दत्तात्रेय इतीश्वरः" ॥ २ ॥ इति ॥ इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वृद्धाः ॥

मार्गशीर्षशुक्ला पूर्णिमामें दत्तात्रेयकी उत्पत्ति है सोई स्कन्दके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है मार्गशिर मासके दशवें निर्मल दिनमें मृगशिर नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और बुधवारको देदीप्यमान पुत्रको सतीने उत्पन्न किया, उस आयेहुये विष्णुको जानकर अत्रिने स्वयं उनका नामकरण किया कि, अपने पुत्रके निमित्त देनेसे आपका नाम दत्तात्रेय ईश्वर है, यह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये यह वृद्ध कहते हैं ॥

अष्टकानिर्णयः ।

मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी: अष्टका ॥ एवं पौषादिमासत्रयेपि–हेमन्तशिशिरयोश्च-तुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः 'एकस्यामष्टम्यां वै कार्या' इति हरदत्तः । क्वचित् पंचम्यप्युक्ता–'प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति' इति पाद्मवचनात् । तत् पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युः । तत्परनवमीष्वन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तं कालादर्श-"मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने । कृष्णपक्षे च पूर्वेद्युरन्वष्टक्यं तथाष्टका" ॥ इति ॥

मार्गशिरकी पूर्णिमाके अनन्तर अष्टमी अष्टका लिखीहै, इसीप्रकार पौष आदि तीन महीनोंकी अष्टमी अष्टका जाननी चाहिये. कारण कि, आश्वलायनने यह लिखा है कि, हेमन्त शिशिरके चार महीनोंकी वा एक महीनेकी कृष्णाष्टमी अष्टका होतीहै, एक अष्टमीको एक अष्टका करनी चाहिये यह हरदत्तने कही है. कहीं पांचवीं अष्टका लिखी है. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, उनसे पहिली सप्तमी और अगली नवमी अन्वष्टका कहातीहैं, उनमेंभी काला-दर्शमें श्राद्ध लिखा है कि, मार्गशिर, पौष, माघ, भाद्रपद, फाल्गुन, इनके अष्टमीसे प्रथम और पिछले दिन अन्वष्टका होती है ॥

यत्तु विष्णुः–"अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टकाः" इति । यच्च कौर्मे–'अमावास्या-ष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु' इति । तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थं–'या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात्तां च कुर्यात्प्रयत्नतः' इति वायुब्रह्माण्डपुराणात् । 'श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' इति विष्णूक्तेरिति शूलपाणिः । शाखाभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् । वायुब्रह्माण्डयोः–"आद्या-पूपैः सदा कार्या मांसैरन्या सदा भवेत् । शाकैः कार्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः ॥" पौषादिः क्रमः ॥ अन्वष्टका तु प्रागेव निर्णीता । तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । 'अथाच्छादनपर्यन्तं श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्' इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्व-णस्य । पूर्वेद्युरष्टकाश्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः । अत एव सूत्रम्–'पूर्वेद्युः पितृभ्यो दद्यात् । अपरेद्युरन्वष्टक्यम्' इति च । अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ । 'इष्टिश्राद्धे क्रतुद-क्षावष्टम्यां कामकालौ' इति सायणीये शंखोक्तेः ॥

जो विष्णुने यह लिखा है कि, अमावास्या और तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका और जो कूर्म-पुराणमें यह लिखाहै कि, अमावास्या और पौष आदि तीन महीनोंमें तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका होती हैं, वह उस निमित्त हैं कि, चौथी अष्टकाकी आवश्यकता नहीं. कारण कि, वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणमें लिखा है कि, जो चौथी अष्टका है उसको भी प्रयत्नसे करे, विष्णुने भी लिखाहै कि, इनमें जो श्राद्ध नहीं करता वह नरकमें जाताहै, यह शूलपाणिने लिखाहै, इसमें तत्व यह है कि,

शाखाभेदसे व्यवस्था समझनी चाहिये वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखाहै कि, पहली अष्टका पूओंसे, दूसरी मांसोंसे तीसरी शाकोंसे यही पौषआदि क्रमसे द्रव्यकी विधि कहीहै, अन्वष्टकाका निर्णय तो प्रथम कहआये उसमें अपराह्णव्यापिनी अष्टमी लेनी चाहिये. कारण कि, अष्टकामें आच्छादन पर्यन्त पार्वणके समान श्राद्ध होताहै इस आश्वलायनके कथनसे पार्वणका अपराह्णकाल है , प्रथम दिन अन्वष्टका श्राद्धमें तो अष्टमीके अनुरोधसे निर्णय जानना चाहिये, इसीसे यह सूत्र है, प्रथम दिन पितरोंको दे, पिछले दिन अन्वष्टका करे, इसमें काम और काल विश्वेदेवा होतेहैं कारण कि, सायनीय ग्रन्थमें शंखका कथन है कि, इष्टिश्राद्धमें ऋतुदक्ष और अष्टमीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं ॥

श्राद्धाकरणेप्रायश्चित्तनिर्णयः ।

अत्र श्राद्धाकरणप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—"एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने । अन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति सर्वथा" इति ॥ अशक्तौ त्वाश्वलायनः—'अथ श्वोभूतेष्टकाः । पशुना स्थालीपाकेन चाप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्' इति ॥ मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका न कार्या । चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं नारायणवृत्तौ । तथा काठकगृह्येपि—"महालयाष्टकश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले" इति ॥

इसमें श्राद्ध न करे तो ऋग्विधानमें भी प्रायश्चित्त कथन किया है कि, अन्वष्टका श्राद्धसे शून्य होजाय तो (एभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौवार जपना चाहिये, तिससे सर्वथा सम्पूर्ण होजाता है, अशक्तिमें तो आश्वलायनने यह लिखाहै कि, अगलेदिन पशु वा स्थालीपाकसे अन्वष्टका करे, वा वृषके निमित्त यवोंको लावे, अथवा अग्निसे बैलकी कुक्षिको सेकदे, इस प्रकार अष्टका नष्ट नहीं होती, मार्गशिर आदि चारोंमें मलमास आपड़े तो अष्टका न करनी यह नारायणवृत्तिमें लिखा है. काठकगृह्यमें भी लिखाहै कि, महालय अष्टकाके श्राद्ध उपाकर्म आदि जो कर्म प्रसिद्ध नामके मासमें लिखेहैं उन्हें मलमासमें न करना ॥

मार्गशिरसि रविवारव्रतम् ।

मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं हेमाद्रौ । तत्र भक्ष्याण्युक्तानि हंसे सौरधर्मे—"पत्रत्रितयं तुलस्यास्त्रिफलमथ घृतं मार्गशीर्षादिभक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधि तथा दुग्धकं गोमयं च । त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचकमथो त्रिःपलाः सक्तवः स्युर्गोमूत्रं शर्करासद्धविरितिविधिना भानुवारे क्रमेण" इति ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे मार्गशीर्षमासः समाप्तः ॥

हेमाद्रिमें मार्गशिर आदिके रविवारोंमें काम्यव्रत लिखाहै और उसमें भक्षणके योग्य पदार्थ संग्रहके सौरधर्ममें लिखेहैं कि, तुलसीके तीनपत्ते, घी तीनपल, तीन मुट्ठी तिल, तीनपल दही, तीनपल दूध, तीनपल गोबर, तीन अंजली जल, तीन मिर्च, तीन पल सत्तू, तीन पल गोमूत्र, तीन पल शक्कर, तीन पल श्रेष्ठ हवि ये मार्गशिर आदिमहीनेके रविवारोंमें क्रमसे भक्षण करने चाहिये ॥

इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां मार्गशिरनिर्णयः समाप्तः ।

---

१ इसप्रकार आश्वलायनसे भिन्नोंका फाल्गुन अष्टमी और सब सप्तमियोंमें श्राद्ध न करनेपरभी दोष नहीं है अपनी शाखाको त्यागकर जो परशाखामें वर्तता है उसकी वह चेष्टा मितहोजाती है अर्थात् अधिक फलवती नहीं होतीं १९३ ॥

अथ पौषमासः (धनुः संक्रांतिः)।

धनुःसंक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः। अन्यत्प्राग्वत्। अत्रोत्सर्जननिर्णयो वक्तव्योपाकर्मप्रसङ्गात् प्रागेवोक्तः॥

धनकी संक्रान्तिमें अगली सोलह घड़ी पवित्र काल हैं शेष निर्णय पूर्वकी तुल्य जानना चाहिये, यहां उत्सर्जनका निर्णय कहना था सो उपाकर्मके प्रसंगसे पहिले कथनकर आये हैं॥

पौषाष्टमी।

कल्पतरौ भविष्ये–"पौषे मासे यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत्। तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम्। मत्प्रीतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत्।" अत्रैव रोहिण्याद्रायोगे पुण्यतमत्वं तत्रैव ज्ञेयम्॥

कल्पतरुग्रन्थमें भविष्यका कथनहै कि, हे देवि! पौष शुक्लअष्टमी को जब बुधवार हो उसमें स्नान, जप, होम, तर्पण, ब्राह्मणभोजन मेरी प्रसन्नताके निमित्त कराया जाय तो लक्षगुना फल होताहै, उसमें यदि रोहिणी वा आर्द्रा नक्षत्रका योग होय तो महापुण्य होताहै, सो कल्पतरु ग्रन्थसे ही जानना चाहिये॥

पौषैकादशी।

पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः॥ सा चोक्ता प्राक् पौषपूर्णिमानन्तराः सप्तम्यष्टमीनवम्योऽष्टकाद्याः प्रागुक्ताः॥

पौषशुक्लएकादशी मन्वादि है, उसे प्रथम कह आयेहैं. पौषकी पूर्णिमाके उपरान्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी, अष्टका आदि प्रथम कह आयेहैं॥

अर्धोदयनिर्णयः।

पौषामावास्यायामर्धोदयो योगविशेषः। तदुक्तं मदनरत्ने महाभारते–"अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः। अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः" इति। पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनी पौर्णमास्युत्तरामावास्येत्यर्थ इति भट्टाः। मदनरत्ने पौषस्य च माघस्य वेत्यर्थ उक्तः। तन्न। हेमाद्रिविरोधात्। तत्र हि माघ एवोक्तः। तथा–'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन' इति। इदमर्थमन्यनिबन्धेष्वभावान्निर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव। तेन हेमाद्र्यादिमते रात्रावर्धोदयो भवत्येव। केचित्तु–'किंचिदूनो महोदयः' इत्याहुस्तन्निर्मूलम्। हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे–"माघमायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते। अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम्॥" तत्रैव–"माघमासे कृष्णपक्षे पंचदश्यां रवेर्दिने। वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे॥" व्रतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः। तत्रैव–"ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णाः पलसंख्यया। प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजोत्तम॥ सार्धं शतत्रयं शंभोर्द्रोणानां तिलपर्वतः। कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया॥ २॥" शंभुरत्र ब्रह्मा। 'शय्यात्रयं ततः कुर्यादुपस्करसमन्वितम्।' तिलैर्होमं कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे–"अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्॥ शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंमिताः॥ यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्" इति॥

पौषकी अमावस्याको अर्धोदय नामका विशेष योग होताहै कि, सोई मदनरत्नमें महाभारतके वाक्यसे लिखाहै कि, रविवार व्यतीपात श्रवणसे युक्त पौष और माघकी अमावस्या होय तो अर्धोदय योग जानना, वह कोटि सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य होताहै भट्ट यह कहते हैं कि, पौष और माघके बीचकी पौषकी पूर्णिमा और

उससे अगली अमावस्या लेनी चाहिये. मदनरत्नमें यह कहाहै कि, हेमाद्रिके विरोधसे पौष और माघ दोनोंकी लेनी चाहिये, सो ठीक नहीं है कारण कि, माघही लिखाहै तैसेही दिनमें यह योग उत्तम है, रात्रिमें किसी प्रकार यह ठीक नहीं यह अर्थ और ग्रन्थोंमें न होनेसे और केवल निर्णयामृतमेंही लिखा होनेसे निर्मूल है, इससे हेमाद्रिके मतमें रात्रिमें अर्धोदय होताही है कोई कुछ न्यून महोदय कहतेहैं सो निर्मूलहै. हेमाद्रि और मदनरत्नमें स्कन्द पुराणका वाक्य है कि, माघकी अमावस्याको व्यतीपात रविवार श्रवण नक्षत्र होय तो सहस्र सूर्य ग्रहणोंके तुल्य उसको अर्द्धोदय कहते हैं. वहांही लिखाहै कि, माघमासके कृष्णपक्षकी पञ्चदशीको रविवार श्रवण नक्षत्र व्यतीपात होय तो इस दुर्लभ दिनमें व्रत करना चाहिये. वहांही लिखाहै कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ब्रह्माविष्णु शिवकी एक वा आधेपल सुवर्णकी उत्तम प्रतिमा निर्माण करनी, साढे तीन द्रोणभर तिलोंका पर्वत शिवजीका और इतनेही पर्वत विष्णु और ब्रह्माके निर्माणकरै, इस वाक्यमें शम्भुसे ब्रह्माका ग्रहण लेना फिर सामग्री सहित तीन शय्या निर्माण करै, तिलोंसे हवन करके प्रतिमाका दान करै. स्कन्दपुराणमें लिखाहै कि, अर्द्धोदयके प्राप्त होनेपर सब जल गंगाके समान हैं, और सब ब्राह्मण शुद्धात्मा ब्रह्मके समान होते हैं जो कुछ दान दिया जाता है वह मेरुके समान है ॥

तत्र दानविशेषः ।

अत्र दानविशेषो निर्णयामृते स्कान्दे–"चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्रं तत्र कारयेत् । चत्वारिंशत्पलं वाथ पंचविंशतिरेव वा ॥ " अमत्रं पात्रम् । तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव–'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्' इति । तथा–"निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत् । पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम् ॥ तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत् । भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ॥ अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः ॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४ ॥ " मंत्रस्तु–"सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम् । आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद्गृहाण द्विजोत्तम ॥ समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम् ॥ २ ॥ " इति ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पौषमासः समाप्तः ॥

इसमें दान विशेष भी निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, ६४ वा चालीस वा पचीस पल भरका काँसेका पात्र निर्माण करै. सोभी वहां इस वाक्यसे कांसेका लिखाहै कि, इसप्रकार कांसेके पात्रको भली प्रकार गढवावे इसी प्रकार उसमें खीररखकर ८ दलका पद्म लिखै, उसपद्मकी कर्णिकामें १ कर्षभर वा उससे आधा वा उससे भी आधा सुवर्णका पात्र करावे, पृथ्वीमें चावलोंसे श्रेष्ठ अष्टदल निर्माण करै उसपर ब्रह्मा विष्णु शिवरूप उस पात्रको स्थापन करै, शोभन श्वेत पुष्पोंसे तीनों देवताओंकी अर्चा करै, और वस्त्र आदिसे अलंकार करके ब्राह्मणको निवेदन करै. मन्त्र यह है कि, जिससे यह सुवर्ण सहित पायसका पात्र ब्रह्मा विष्णु शिवरूप और आपत्तिका निवारक है. इसकारण हे द्विजोत्तम ! तुम इसे ग्रहण करो, समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके भलीप्रकार दान करनेसे जो फल मिलताहै मनुष्योंको इस दान करनेसे वही फल प्राप्त होताहै ॥

(इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पौषमासः समाप्तः ।)

---

१ यह योग दिनमेंही उत्तमहै वा आपत्तिमें उषःकालमें भी उत्तमहै परन्तु धर्मपरायण पुरुष रात्रिमें इसकी प्रशंसा नहीं करतेहैं इस प्रकार नव्य नागरखण्डसे रात्रिमें योग निर्मूल कहते हैं १९४ ॥

अथ माघमासः ।

माघस्नानम् ।

तत्र विष्णुः–"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्" इति सौरमास उक्तः। ब्राह्मे तु सावन उक्तः। "एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत् । द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्" इति । पाद्मेऽपि–"पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः । मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥ त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः । माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम ॥ ॥ २ ॥" इति ॥ त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहार इत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये त्वन्यथोक्तम् । विष्णुः–"दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे" अत्र दर्शमिति । शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण। अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति ॥

वहां विष्णुका यह वाक्य है कि, तुला मकर मेषकी संक्रांतिमें प्रातःस्नान हविष्य भोजन ब्रह्मचर्य सदा करै, माघके स्नानका बड़ा फलहै यहां सौरमास लिखाहै, ब्रह्मपुराणमें तो सावनमास लिखाहै कि, पौषशुक्ल ११ को आरम्भकर, १२ द्वादशी वा पूर्णिमा शुक्लपक्षमें सम्पूर्ण करे. पद्मपुराणमें लिखाहै कि, पौषशुक्ल ११ से भूमिपर शयन करै, निराहाररहै, त्रिकाल स्नान करै, त्रिकाल विष्णुकी अर्चा करै, भोगोंको त्यागदे, जितेन्द्रिय रहै. हे विद्याधरोत्तम ! ये सब माघशुक्ला ११ एकादशीतक करै यह वाक्य त्रिकाल स्नान मासोपवासके निमित्तहै कारण कि, निराहार रहना लिखाहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो दूसरा प्रकार लिखाहै कि, विष्णुका वाक्यहै कि, अमावास्या वा पूर्णिमासे आरम्भ करके मकरके सूर्यमें तीस दिनतक स्नान करै, इस वाक्यमें अमावास्याका कहना शुक्लाआदि मुख्य चान्द्रमासके अभिप्रायसे है, परन्तु इस पक्षका आजकल प्रचार नहींहै ॥

स्नाने अधिकारिनिर्णयः ।

अत्राधिकारिणो भविष्ये–"ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः ॥ स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥" पाद्मे–'सर्वेधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप ।' ब्राह्मे–"उष्णोदकेन वा स्नानमशक्ते सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते ॥" वैष्णवामृते गौडनिबन्धे स्कान्दे–"पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । माघमासस्य तावद्धि पूजा विष्णोर्विधीयते ॥ पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ अन्यथा याति नरकं क्षत्रविट्शूद्र एव च। वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम्" ॥ ३ ॥

इसके अधिकारी भी भविष्यपुराणमें लिखेहैं कि, ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ भिक्षुक बालक वृद्ध युवा नरनारी नपुंसक माघमासमें शुभतीर्थमें स्नान करके मनोवांञ्छित फलको प्राप्त होतेहैं, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, हे राजन् ! विष्णुकी भक्तिके तुल्य इसके सब अधिकारीहैं. ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, शीतलजलसे स्नान न होसकै तो गरम जलसे स्नान करै उनके दृढ सब गात्रोंको उष्णजल भेदन नहीं करता. वैष्णवामृत गौडनिबंधमें स्कंदने यह कहा है कि, पौषकी पूर्णिमा बीतनेपर माघकी पूर्णिमा आजावे तबतक

विष्णुका पूजन करै, पितर और देवताओंके निमित्त मूली नदे, और ब्राह्मण मूलीको खाकर चान्द्रायण व्रत करै, न करै तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र नरकमें जातेहैं तिससे मदिराके तुल्य (सलगम) मूलीको प्रयत्नसे त्यागदे ॥

माघे मलमासे सति निर्णयः ।

यदा तु माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वये स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः । मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्–'नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । मलिने मासोपवासव्रतम्' इति ॥ मासोपवासपदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणम् ॥ स्नानारंभे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः– "तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् । माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि" इति । प्रत्यहं मन्त्रश्च पाद्मे–"दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ॥ स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव । इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः" ॥ २ ॥ इति ॥ प्रत्यहं सूर्यायार्घ्यम् । मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे–"सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम । त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा" इति ॥

जब माघ मलमास होजाय तब काम्य कर्मोंकी पूर्तिका उसमें निषेधहै, इससे दोनों महीनेमें स्नान और उसके नियम करने, और चान्द्रायण आदि मासोपवासको तो मलमासमें ही पूर्ण करना. सोई दीपिकामें लिखाहै कि, तीसदिनका नियम होनेसे शुभमासमें आरम्भ करके मासोपवासको मलमासमेंही पूर्ण कर दे यहां मासोपवास पद चान्द्रायण आदिका उपलक्षण जानना. स्नानारंभके मंत्र विष्णुने लिखे हैं कि, उठकर विधिपूर्वक नियमको स्वीकार करे हे माधव ! इस सम्पूर्ण माघमासमें इस तीर्थके जलमें नित्यस्नान करूंगा, यह संकल्प करे प्रतिदिनका मंत्र पद्मपुराणमें लिखाहै कि, दुःखदारिद्रनाशक और लक्ष्मीसहित विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त आज माघमासमें पापोंका विनाश करनेवाला स्नान करताहूं मकरके सूर्य और माघमासमें हे गोविंद ! हे अच्युत ! हे माधव ! इस स्नानसे मुझे शास्त्रोक्त फल दो, इस मंत्रको पढ़कर मौनको धारण करके स्नान करे, प्रतिदिन सूर्यके अर्घ्यका मन्त्र पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे सूर्य ! हे परमधाम ! तुम सबकी रचना और पालना करनेवाले हो, तुम्हारे तेजसे भ्रष्ट हुआ मेरा पाप सहस्र प्रकारसे नष्ट हो ॥

स्नानकालश्च सूर्योदयः । त्रिस्थलीसेतौ–"मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यभ्युदिते रवौ" इति ॥ 'माघमासे रटंत्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ' इति च पाद्मवचनात् । "संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्गच्छति भास्करे ॥ पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः" इति नारदीयोक्तेः । "यो माघमास्युषसि सूर्यकराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे । उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृवंश्यान्स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोसौ ॥" इति भविष्योत्तरवचनाच्च । ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः–"अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः । माधवांघ्रियुगं ध्यायन्यः स्नाति सुरपूजितः" इति ॥ तथा– "अरुणोदयमारभ्य प्रातः कालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ॥

कालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ॥ उत्तमं तु सनक्षत्रं मध्यमं लुप्ततारकम् । सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम् " इति । तेनात्र शक्त्यपेक्षया व्यवस्था । इदं च स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् । "काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गायमुनसंगमे । सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिंद्या सह संगता । हंति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥ २ ॥ इत्यादिपाद्मादिवचोभ्यः। विस्तरस्तु मत्पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः ॥

स्नानका काल सूर्योदय त्रिस्थली सेतुमें लिखाहै जो मकरके सूर्यके उदयमें नहीं नहाता- और सूर्यके किंचित् उदयमें जल शब्द करते हैं कि हममें कोई स्नान करै. यह पद्मका वचनहै. नारदीयमें कहाहै तपस्वीजनोंका प्रिय जब माघमास आताहै तब सूर्योदयके समय सब जल शब्द करते हैं कि, हम तीनप्रकारके सब पापोंको पवित्र (शान्त) करतेहैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिये. भविष्यपुराणमें भी लिखाहै कि, मकरकी संक्रांतिमें सूर्योदयमें जो स्नान करेगा, तैसेही माघमासमें प्रातःकाल सूर्यकी किरणोंसे तपेहुए सुन्दर नदीके प्रवाहमें जो स्नान करताहै वह माता और पिताके कुलके सात पुरुषोंका उद्धार करके देवरूपको धारण कर स्वर्गको गमन करताहै. ब्रह्मपुराणमें तो अरुणोदयके समय स्नान लिखाहै, स्नानका समय अरुणोदय जब होय तब है, उस समय बुद्धिमान् मनुष्य जो कृष्णके चरणोंका स्मरण करता हुआ स्नान करता है वह देवताओंसे पूजित होताहै, इसीप्रकार अरुणोदयसे प्रारम्भ कर और प्रातःकालपर्यन्त जो माघके स्नान करनेवाले हैं हे स्वामिन् ! उनका पुण्य क्रमसे इसप्रकार जानना चाहिये कि, जिससमय तारेहों उस समयका स्नान उत्तम और तारे अस्त होगयेहों उससमयका मध्यम और सूर्यउदयमें तिससे हीन लिखाहै, तिससे यहां शक्तिके अनुसार व्यवस्थाहै, यह स्नान इन पद्मपुराणोंके वाक्योंसे प्रयागमें उत्तम लिखाहै कि, गंगाके और यमुनाके संगममें स्नानका काशीसे सौगुणा पुण्य लिखाहै, यदि वहभी पश्चिमको बहनेवाली होय तो सहस्रगुणा पुण्य होताहै, पश्चिमकी ओर बहनेवाली गंगा यदि कालिंदीके संग मिले तो वह माघमासमें स्नान करनेसे कल्पोंके किये हुये भी पापोंको नष्ट करतीहै. हे राजन् ! वह माघमासमें बड़ी दुर्लभ है, इसका विस्तार तो हमारे पितामहके किये हुए प्रयागसेतु ग्रन्थसे जानना चाहिये ॥

ब्राह्मे-" यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः । करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्गाङ्गमज्जनम् ॥ " तथा समुद्रेप्यतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे-- "माघे मासि च यः स्नायान्नैरन्तर्येण भावतः । पौण्डरीकफलं तस्य दिवसे दिवसे भवेत् ।" माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः ॥ विष्ण्वादिवाक्ये सदावश्यशब्दान्नित्यत्वावगतेर्नित्यकाम्यमिति तु युक्तम् । मासपर्यन्तं स्नानासम्भवे तु त्र्यहमेकाहं वा स्नायात् । ' महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम् ' इति लिङ्गात् । " अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि " इति पाद्मादिवचनात् । अत्र मकरसंक्रमो रथसप्तमी माघी त्र्यहमित्येके । माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये । मकराद्यत्र्यह इत्यपरे । माघमासाद्यत्र्यह इति केचित् । त्रयोदश्यादीति बहवः । 'महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्' इति पाद्मोक्तेः ॥ एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचिद्दिनत्रयमिति भट्टाः ॥ तत्त्वं तु--'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इति न्यायात्त्रयोदश्याद्येवेति प्रयागं विनापि पाद्मे--' अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम्' इति ॥

ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, माघमासमें जिस किसीदिन प्रयागका स्मरण करता हुआ जो तीर्थमें स्नान करताहै वह गंगाके स्नानके फलको प्राप्त होताहै, तैसेही समुद्रमें भी अति श्रेष्ठ है सोई, पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभास खण्डमें लिखाहै कि, जो माघमासमें निरन्तर प्रीतिसे स्नान करताहै उस पुरुषको दिनदिनमें पौण्डरीक यज्ञका फल मिलताहै. किन्हींका तो यह कथन है कि, माघका स्नान काम्यहीहै नित्य नहीं है, और विष्णु आदिके वाक्योंमें तो सदा और अवश्य शब्दके नित्य और काम्य प्रतीत होताहै, और यही युक्त है. यदि माघमासपर्यन्त स्नान न होसके तो तीन वा एक दिन अवश्य स्नान करै, कारण कि, यहां वाक्य प्रमाण है कि, महामाघीसे प्रारम्भकर तीनदिन उसमें स्नान करतेहुए श्रेष्ठहैं, इस योगमें तो अशक्तको भी तीनदिन स्नान करना चाहिये. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखाहै कि–माघमासमें प्रयाग तीर्थपर तीनदिन नहाये हुएको जो फलहै वह सहस्र अश्वमेधोंसे पृथ्वीपरभी नहीं मिल सकता. यहां कोई यह लिखतेहैं कि, मकरकी संक्रांतिकी सप्तमीको माघी कहतेहैं, तिससे लेकर तीन दिन स्नान करै, और दूसरोंका यह कथनहै कि, माघकी शुक्ल दशमीसे लेकर तीन दिन स्नान करै, और मकरसे लेकर तीन दिन करै, यह और कहतेहैं और कोई यह कहतेहैं कि, माघके प्रथमके तीनदिन स्नान करै, और बहुतसे यह कहतेहैं कि, त्रयोदशीसे लेकर तीन दिन स्नान करै, महामाघीसे लेकर तीनदिन स्नान किया इस पद्मपुराणके वाक्यको अर्थवाद (कहेहुएका कहना) होनेसे चाहै किसी तीन दिनका ग्रहणहै यह भट्टोंका कथनहै. सिद्धान्त तो यह कि, संदिग्ध वाक्योंमें वाक्यशेषसे निर्णय करै, इसन्यायसे त्रयोदशी आदि तीनदिन [illegible] चाहिये, प्रयागके विनाभी पद्मपुराणके वाक्यसे स्नान लिखाहै कि, इस योगमें असमर्थभी मनुष्य तीन दिन स्नान करै ॥

माघस्नाने नियमाः ।

माघस्नाने नियमास्तु नारदीये–"न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने । होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥ अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः । त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः ॥ अनभ्यंगी वरारोहे सर्वमासं नयेद्व्रती ॥ २ ॥ " तथा–"अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ " तथा–"शंखचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥ भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा सर्वत्र कथ्यते ॥ २ ॥ " तथा–"तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः " इति ॥ प्रयागासंभवे काश्यां दशाश्वमेधोत्तरस्थप्रयागतीर्थे स्नानमुक्तं काशीखण्डे–"काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद्ध्रुवम् " इति ॥ स्नानोत्तरं मदनपारिजाते विष्णुः–"काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः ॥ "

माघस्नानके नियम तो नारदपुराणमें इसप्रकार लिखेहैं कि, हे वरानने ! स्नान किया हुआ वा विना स्नान कियाहुआभी मनुष्य अग्नि न तावे, होमके निमित्त वह्निका सेवन करै, और शीतापनयनके निमित्ततो कर्भीभी न करै, और दिन दिन शर्करा सहित तिलोंका दान करै, तीन भाग तिलोंके और चौथा भाग शर्करा, इनको अभ्यंग जिसने न किया हो ऐसा मनुष्य सब महीनेको वितावै, तैसेही जो शरीरपर कपडेको न ओढ़कर कष्टसे स्नानको जाताहै, उसको पदपदपर अश्वमेधका फल प्राप्त होताहै, तैसेही शंखचक्रधारी माधवका पूजन कर फिर विधिसे अग्निमें होमकरै एकवार भोजनकरै भूमिपर सोवै इसप्रकार समर्थ मनुष्य ब्रह्मचर्यसे स्नानकरै. यदि ब्रह्मचर्य आदिके करनेमें शक्ति न होय तो सर्वत्र अपनी इच्छा लिखीहै तिलसे स्नान तिलोंसे उद्वर्तन

(उबटना) तिलोंसे होम तिलोंसे तर्पण तिलका भोजन और तिलका दानकरै. कारण कि, ये छः तिल पापके नाश करनेवाले कहेहैं. काशीखण्डमें लिखाहै कि, प्रयाग न मिले तो काशीमें स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल निश्चय प्राप्त होताहै वही मदनपारिजातमें विष्णुका वाक्य है जो माघमें काशी वा प्रयागमें नहातेहैं उनको दश अश्वमेधका फल मिलता है काष्ठमौनियोंको नमस्कार कर विष्णुका पूजन करै, और अवश्य माघका स्नान करना यह श्रुतिका वाक्यहै ॥

भविष्ये–"तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः। ततः प्रज्वालयेद्वह्निं सेवनार्थं द्विजन्मनाम् ॥ एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम्। भोजयेद्विजदाम्पत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥ कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च। चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा ॥ उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ। अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति" ॥४॥ पाद्मे–'भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम्।' यथा–"अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप। सुवर्णं रक्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा ॥"

भविष्यपुराणमें कहाहै कि, तिल आमले यह तीर्थपर नित्य प्रदान करने चाहियें, फिर ब्राह्मणोंको तपानेके निमित्त अग्निको जलावै, इसीप्रकार स्नानके पीछेमें अवारित (मने न करना) भोज्यान्न दे, सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावै, वस्त्रभूपणोंसे भूषितकरै, कंबल रत्न नानाप्रकारके वस्त्र चोलक ओढनेके वस्त्र उपानह (जूते) गुप्तमोचक (दान) तथा पापमोचक ये माधवकी प्रीतिके निमित्त इसविधिसे देने चाहियें. पद्मपुराणमें भी लिखाहै कि, भूमिपर शयन करे, तिलोंसहित घीसे होम करै, तैसेही हे राजन्! माघमें यथाशक्ति अन्नदे, तैसेही वेदके ज्ञाताको रत्ती भर सोना दे ॥

मघान्ते विशेषः।

माघान्ते तु विशेषो नारदीये–"माघावसाने सुभगे षड्रसं भोजनं स्मृतम्। सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्विते। त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः ॥ २ ॥" इति ॥ अत्र 'एकादशीविधानेन व्रतस्योद्यापनं तथा' इति। पूर्वेह्नि उपवासपूजनादि कृत्वा परेऽह्नि तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा, 'सवित्रे प्रसवित्रे' च इति पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा–"दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते। परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते" इति समापयेदिति संक्षेपः ॥

माघके अन्तमें विशेष नारदीयमें लिखाहै कि, हे सुभगे! माघके उपरान्त षट्रस भोजन लिखाहै, विष्णुकी मूर्ति, सूर्य निरञ्जन मेरेपर प्रसन्न हो ऐसे कहै, स्त्री और पुरुषकी प्रीतिके निमित्त सूक्ष्म वस्त्रोंका और सप्तधान्योंका दान करै, और शक्कर और तिलसहित तीस लड्डू दे, यहां एकादशीकी विधिसे इस व्रतका उद्यापन करै, इस पद्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन व्रत पूजन आदि करके परलेदिन तिल चरु आज्यसे १०८ एकसौ आठ आहुति देकर और (सवित्रे प्रसवित्रे) इस पूर्वोक्तमंत्रको कहकर इसमंत्रसे क्षमा मांगे कि, हे सूर्य! हे जगन्नाथ! हे प्रभाकर! आपको प्रमाणहै. हे स्वामी! प्रातःकालके मघाके स्नानको पूर्ण करो। इति संक्षेपः॥

मकरसंक्रांतिः।

मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते परतः चत्वारिंशद्धटिकाः पुण्याः 'त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः' इति ब्रह्मवैवर्तात्। माधवमते तु विंशतिः–'त्रिंशत्कर्कटके पूर्वा मकरे विंशतिः परा' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वं संक्रांतिर्भवति, तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रदोषे निशीथे वा मकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव

पुण्यम्। "यद्यस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि" इति वृद्धगार्ग्यवचनात्। अस्तमयं प्रदोषः। प्रदोषे पूर्वरात्रे ॥ "कार्मुकं तु परित्यज झषं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि" इति भविष्योक्तेश्च ॥ 'तदा भोगः परेऽहनि' इति हेमाद्रौ पाठः कालादर्शनिर्णयामृतमदनपारिजातादयोप्येवमूचुः ॥

मकरकी संक्रान्तिमें हेमाद्रिके मतसे परली चालीस घडी पवित्रकालहै. कारण कि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि, कर्ककी संक्रान्तिमें तीस घडी और मकरकीमें दश अधिक (४०) पुण्य कालहै, माधवके मतमें तो बीस घडी पुण्यकाल है. कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखाहै कि, कर्कमें प्रथम तीस और मकरमें पिछली बीस घडी पुण्य काल है. जब सूर्यास्तसे प्रथम संक्रान्ति हो तब दोनोंके मतसे प्रथमही पुण्यकालहै, रात्रिमें तो प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकरकी संक्रान्ति होय तो माधवके मतसे दूसरेदिन पुण्यकालहै. कारण कि, वृद्धगर्गने कहाहै कि, सूर्यास्तकालमें प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकर राशिपर सूर्य आवे तो परले दिन स्नान दान करना इस वाक्यमें सूर्यास्तसे प्रदोष और प्रदोषसे पूर्वरात्र लेनी. कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, धनराशिको त्यागकर जब मकरपर सूर्य प्रदोष वा अर्द्धरात्रके समय आवे तब स्नान, दान परलेदिन होतेहैं. हेमाद्रिमें यह पाठहै कि, तब भोग परलेदिन होताहै, कालादर्श, निर्णयामृत, मदनरत्न पारिजातमें भी इसीप्रकार लिखते हैं ॥

दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते ॥ यत्तु हेमाद्रिणाद्यो वाशब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे। यथा प्रदोषे पूर्वेद्युस्तथार्धरात्रे परेऽह्नीत्युक्तम् तस्मै नमोस्तु। तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्धरात्रग्रहणम्। हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमते तु निशीथात्पूर्वं पश्चाच्च संक्रान्तौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यम्। "धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा ॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि" ॥ २ ॥ इति स्कान्दवचनात्। पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नविषयम्। पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम्। 'षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे' इत्यादिविरोधाच्च ॥ तेन पूर्वेकवाक्यतयायमर्थः। रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पञ्च नाड्यः पुण्याः, रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पञ्च नाड्य इति। एवं सर्वेषामविरोधः ॥

और दाक्षिणात्य भी इसीको मानतेहैं, जो हेमाद्रिने यह लिखाहै कि, प्रथम वाशब्दका यथा और दूसरे वाशब्दका तथा अर्थ है जैसे प्रदोषमें पहले दिन ऐसे अर्द्धरात्रमें परले दिन पवित्र कालहै, ऐसे स्थलमें हेमाद्रिको प्रणामहै, अर्थात् हेमाद्रिका कहना ठीक नहीं, तिससे परले दिन पुण्य कहनेको (प्रदोषे) इस पदका और दोनों दिन पुण्यनिरासके निमित्त (अर्द्धरात्रे) इस पदका ग्रहणहै, हेमाद्रि स्मृत्यर्थसार अनन्तभट्ट आदिके मतमें तो आधीरातसे प्रथम और पीछे संक्रान्ति होय तो पूर्वदिन और परदिनमें क्रमसे पुण्यकालहै. कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, धन, मीन, कन्या, मिथुनके अनन्तर रात्रिके पूर्व वा परभागमें संक्रान्ति होय तो दिनके अन्तकी पांच घडी तब पुण्य लिखीहैं और उदयकी भी पांचही घडी, देव और पितरोंके कर्ममें भी पांच घडी पुण्य लिखीहैं, यह स्कंदका वचन है पूर्व और परभाग मकर और कर्कसंक्रान्तिसे पृथक्में समझना चाहिये. कारण कि, पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है, यह मदनरत्नमें लिखाहै और इसवाक्यका भी विरोधहै कि, षडशीति मुखनामकी संक्रान्ति औ उत्तरायणके बीतने पर, तिससे पूर्ववाक्यकी एक वाक्य-

तासे यह अर्थ है कि, रात्रिके पहले भागमें मकरकी संक्रान्ति होय तो परले दिन उदयकी पांच घडी पवित्र कालहै रात्रिके पिछले भागमें कर्ककी संक्रान्ति होय तो पूर्व दिनके अन्तमें पांच घडी पवित्रकाल है, इस प्रकार सब वाक्योंका परस्पर अविरोध है ॥

मकरे सामान्येन परदिने पुण्यत्वेपि पुण्यातिशयार्थमिदम् । यत्तु देवलयज्ञपार्श्वौ– "आसन्ने संक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्यथ नो दिवा" इति ॥ अत्र माधवः । अयने दिवा जाते तदर्धं पुण्यम् । कर्के पूर्वं मकरेन्त्यम् । एतन्मध्यंदिनायतपरमिति ॥ हेमाद्रिस्तु रात्रौ विषुवत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम् । अयने त्वासन्नदिनं पुण्यम् । दिने इति पाठे उभयत्र दिनार्धं पुण्यमित्याह ॥ एतदेवोक्तं दीपिकायाम्– "अथायनमधः पश्चान्निशीथाद्भवेद्यद्यासन्नमहस्तदर्धमथवा पुण्यम्" इति ॥ तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्येवान्वयः । अयने रात्रौ सति दिने पुण्यम् । कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेह्नि इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोपि विरोधः। यत्त्वनन्तभट्टः–"अथ संक्रमणं भानोर्निशीथात्प्राक् यदा भवेत् । अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिनान्तिमनाडिकाः ॥ पञ्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा । आद्याः परदिनस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः" ॥ २ ॥ इति ॥ अपरार्केप्येवम् ॥ "अस्तं गते यदा सूर्ये झषं याति दिवाकरः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम्" इति बौधायनवचनाद्दिनद्वयं वा पुण्यकालः ॥

मकरमें सामान्यसे परदिनमें पुण्य है तोभी यह वाक्य अधिक पुण्यके निमित्त कथन किया गयाहै देवल और यज्ञपार्श्वने यह लिखाहै कि, संक्रांतिके समयका आधादिवस स्नान और दानमें पुण्यहै, रात्रिमें सूर्यकी संक्रांतिमें यह कहाहै कि, विषुव और अयनमें दिनमें पवित्रकालहै, इसमें माधव तो यह कहतेहैं कि, अयन दिनमें होय तो उसके उपरान्त पुण्यहै कर्कमें प्रथम, मकरमें पीछे यह मध्याह्नके अयनमें समझना चाहिये. हेमाद्रिका तो यह कथनहै कि, रात्रिकी विषुवत् संक्रान्तिमें निकटका आधादिन पवित्र है और अयनमें तो निकटका सम्पूर्ण दिन पुण्यहै (दिने) यह पाठ होय तो दोनोंमें आधादिन पुण्य कहाहै यही दीपिकामें लिखाहै कि, आधी रातसे प्रथम वा पीछे अयन होय तो जो निकटका दिन हो उसका आधा पवित्र कालहै, सिद्रान्त तो यहहै कि, संक्रांतिके निकटका इसका अन्वय विषुवत्में होताहै, अयन रात्रिमें होयतो दिनमें. पुण्यकाल है किसमें यह जब अपेक्षा हुई कर्कमें पूर्वदिन और मकरमें परदिनमें इस वाक्यांतरके वशसे अर्थ लिखा जाय तो किसीप्रकार विरोध नहीं आता जो अनन्तभट्ट लिखतेहैं कि, जो सूर्यकी संक्रान्ति आधीरातसे प्रथमहो और विषुव वा अयन होय तो प्रथमदिनके अन्तकी पांच घडी अत्यन्त पवित्रकाल लिखा है, तैसेही आधीरातसे पीछे होय तो दूसरे दिनके आदिकी पांच घडी पवित्र कहीहैं, यह निर्णयहै. अपरार्कमें भी इस प्रकार लिखाहै कि, सूर्यास्तमें यदि मकरपर सूर्यहो वा प्रदोष आधीरातमें आवे तो दोनों दिनही पवित्रकाल कहाहै बौधायनके मतसे दोनों दिन पुण्यकालहै ॥

'तदा पुण्यं दिनान्तरम्' इति मदनरत्ने पाठः । गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवाद्रियंते । अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम् । तिथितत्वादयो गौडग्रन्थास्तु प्रदोषार्धरात्रिभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रांतिवत्, विशिष्य तयोर्निर्देशात् ॥ प्रदोषश्च 'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' इति वत्सोक्त इत्याहुः ॥ तन्न ॥

अस्तं गते ' इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोषपदेन तद्भिन्नैव रात्रिरुच्यते । अत एव 'यावन्नोदयते रविः ' इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम्। वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा ॥ इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोषः ॥

मदनरत्नमें यह पाठ है कि, और दिनमें पुण्यकालहै, गुर्जर प्राच्य उदीच्यभी इसकाही सन्मान करते हैं इसमें भी पूर्वके समान व्याख्या करनी चाहिये, तिथितत्व आदि गौडग्रन्थोंमें तो यह लिखाहै कि, प्रदोष और आधी रातसे भिन्न रात्रिके पूर्वभागमें अयनसंक्रान्ति होय तो पहले दिनमें, पिछले भागमें होय तो अगले दिनमें अन्य संक्रान्तियोंके तुल्य पुण्यकाल होताहै. कारण कि, उनदोनोंका पृथक् २ नाम ग्रहणकर उपादान (ग्रहण) है और प्रदोष तो यह वत्सऋषिका कहा जानना चाहिये कि, अस्तके पीछे दोघडी तक प्रदोष होताहै सो उचित नहींहै. कारण कि, 'अस्तं गते' इत्यादि पूर्वोक्त तीनवाक्य वृथा होजायँगे, इससे प्रदोषपदसे प्रदोषसे भिन्न रात्रि लिखीहै, इससे वृद्धगार्ग्य आदिने दक्षिणायनमें पूर्व रात्रिमें संक्रान्ति होय तो प्रथमदिनही पुण्य इस वाक्यसे लिखाहै कि, जबतक सूर्यका उदय न हो इत्यादि वत्सका कहनाभी अध्ययन आदिमें जानना चाहिये, यहां तो तीन मुहूर्तका ही प्रदोष है ॥

तत्र दाननिर्णयः ।

मकरे दानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे–"धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याद्यश्चोत्तरायणे । सर्वान्कामानवाप्नोति विंदते परमं सुखम् ॥ " विष्णुधर्मे–"उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं महत्फलम् । तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते " इति ॥ शिवरहस्येऽपि–"तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदैवोत्तरायणे ॥ तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥ " कल्पतरौ कालिकापुराणे–"होमं तिलैः प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे ॥ तान्यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् ॥ उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति । " तथा । मकरे रात्रावपि श्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् । माघामायां योगविशेषोर्धोदयः प्रागेवोक्तः ॥

मकरमें दानविशेष हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे राजन् ! जो मनुष्य उत्तरायणमें तिलकी धेनु देतेहैं वह उन सब कामनाओंको प्राप्त होतेहैं और परम सुख मिलताहै. विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, हे ब्राह्मणों ! उत्तरायणमें वस्त्रदानका महाफलहै, और तिलसे भरे बैलका दान करके रोगोंसे छूटताहै. शिवरहस्यमें भी कहाहै कि, तिसमें श्रेष्ठ काले तिलोंसे उबटना करै, और उत्तरायणमें ब्राह्मणोंको सदैव तिलदेने और तिलके तेलके श्रेष्ठ दीपक मंदिरमें देने चाहिये,कल्पतरुमें कालिका पुराणका लेखहै कि, उत्तरायणमें सदा तिलोंसे हवन करै तिलोंको जो देवता और ब्राह्मणोंको सुवर्ण सहित देताहै,वह उत्तरायणमें किसी प्रकार भी शोच नहीं करता, इसीप्रकारही मकरमें श्राद्ध आदि रात्रिमेंभी होतेहैं, यह प्रथम कहआये हैं ॥

माघकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः ।

माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन–"अनर्काभ्युदिते काले माघकृष्णचतुर्दशीम् । स्नातः संतर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते " इति ॥

माघकृष्ण चतुर्दशीको यमका तर्पण हेमाद्रिमें यमने लिखाहै कि, माघकृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे प्रथम स्नान और यमराजका तर्पण करके सब पापोंसे छूटजाताहै ॥

माघशुक्लचतुर्थीनिर्णयः।

माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। "माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः। ये त्वां ढुंढेर्चयिष्यन्ति तेर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम्" इति काशीखण्डात्। "माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः। अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत्" इति त्रिस्थलीसेतौ लैङ्गाच्च॥

माघशुक्ल चतुर्थीका तिलचतुर्थी नामहै वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, कारण कि, काशीखण्डमें कहाहै कि, माघशुक्लचतुर्थीको रात्रिव्रतमें तत्परहो जो मनुष्य ढुंढिराजका पूजन करतेहैं, वे देवताओंके भी पूजने योग्य होतेहैं, और त्रिस्थलीसेतुमें लिंगपुराणका कथनहै कि, माघमासकी चतुर्थीको उसकालमें व्रत और पूजन करके हे देवि! जागरण करना चाहिये॥

तत्र कुन्दचतुर्थी।

इयमेव कुन्दचतुर्थी। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या "माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम्। सम्पूज्य यो हि नक्ताशी समाप्नोति श्रियं नरः" इति कालादर्शे कौर्मोक्तेः॥

यही कुन्दचतुर्थी है वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये. कारण कि, कालादर्शमें कूर्मपुराणका कथनहै कि, माघशुक्ल चतुर्थीको सदा कुन्दके फूलोंसे जो शिवपूजन करके रात्रिमें भोजन करताहै उस मनुष्यको लक्ष्मी प्राप्त होती है॥

श्रीपञ्चमी।

माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी। तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे-"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः। पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये॥" इयं माधवमते पूर्वा, हेमाद्रिमते परा॥ चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति दिवोदासः॥

माघकी शुक्ले पंचमीको श्रीपंचमी कहतेहैं यही हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, माघकी शुक्ल चतुर्थी को भली प्रकार श्रीकी आराधना करके पंचमीके दिन समृद्धिके निमित्त कुन्दके फूलोंसे पूजन करना चाहिये, माधवके मतसे यह प्रथमकी लेनी और हेमाद्रिके मतसे दूसरी लेनी, चैत्रशुक्लमें श्रीपंचमी होतीहै यह दिवोदासका कथन है॥

माघशुक्लसप्तमी (रथसप्तमी) निर्णयः।

माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी। सा अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या-"सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी। अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्" इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात्॥ "अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी। प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा" इति वचनाच्च॥ यत्तु दिवोदासीये-"अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः। द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा" इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम्॥ तद्यदा-

---

१ माघमासे सुरश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ। रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः। दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः। अर्थात्-

इस प्रकार माघशुक्लपञ्चमीको रति कामका पूजादि वसन्तोत्सव करना चाहिये. हे सुरश्रेष्ठ! माघशुक्लपञ्चमीको रति और कामकी पूजा करकै वसन्तोत्सव करै और दानदेने चाहिये जिससे भगवान् प्रसन्न हों यह पुराणसमुच्चयमें लिखा है पूजाव्रतादिमें कर्मकाल मध्याह्न लेना।

पूर्वेद्दि घटिकाद्वयं षष्ठी सप्तमी च परेद्युः क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम् । तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । मदनरत्ने भविष्योत्तरे स्नानं–"माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः ॥" अत्रविधिर्भविष्ये–"स्नात्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥" तथा जलं प्रकम्प्य–"न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ॥ सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्यालाबुमयेथ वा ॥ तैलेन वर्तिर्दातव्यामहारजनरञ्जिता ॥"महारजनं कुसुम्भम् । "समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥ भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥ नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेस्तु हरिवास नमोस्तु ते ॥ जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा संतर्प्य देवताः ॥ २ ॥" इति ॥ "चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । मध्ये शिवं सपत्नीकं प्रणवेन च संयुतम् ॥" पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रर्कसहस्रकिरणसर्वात्मकान् संपूज्य गृहं गच्छेदिति ॥

माघशुक्ल सप्तमी रथसप्तमी कहातीहै वह अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये. कारण कि, चन्द्रिकामें विष्णुने लिखाहै कि, माघशुक्ल सप्तमी सूर्यग्रहणके तुल्य होतीहै सूर्योदयके समय इसमें स्नानका महाफल होताहै, और यहभी कथनहै कि, माघशुक्ल सप्तमी यदि अरुणोदयके समय प्रयागमें प्राप्त होजाय तो कोटि सूर्य ग्रहणोंके तुल्य होतीहै, जो दिवोदासीयमें षष्ठीसे युक्त लेनी लिखीहै कि, हे भारत ! अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रि वत्सपूजामें द्वादशी ये सब पूर्वतिथिसे युक्तही सदा सुखदायक होतीहैं, वह उससमय जानना जब प्रथमदिन षष्ठी दो घडीहो और अगलेदिन सप्तमी क्षयके वश अरुणोदयसे प्रथमही सम्पूर्ण होजाय, वहां षष्ठीमें सप्तमीके क्षयका प्रवेश करके अरुणोदयमें स्नान करना चाहिये. मदनरत्नमें भविष्योत्तरपुराणका कथनहै कि, माघमासकी शुक्लसप्तमी कोटिसूर्योंके तुल्यहै उसमें सूर्य स्नान दान अर्घ्यसे आयुः आरोग्य सम्पदा करतेहैं. इसकी विधि भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखीहै कि, षष्ठीको एक भुक्त करके सप्तमीको निश्चलजलके शिरके ऊपर दीपक देकर तुम चलाओ तैसेही जलकी परिक्रमा करके इतने उसे कोई न चलावे तबतक स्नान करै, सोने वा चांदीके पात्र वा तुम्बीके पात्रमें तेलमें बत्तीको कुसुम्भके रंगमें रंगकर रक्खै, सावधानमन होकर शिरपर दीपक रखकर और सूर्यका हृदयमें ध्यानकर इसमंत्रका जप करना चाहिये कि, रुद्ररूप रसोंके पति वरुण हरिके निवास आपको प्रणामहै, दीपकको जलमें छोड देना चाहिये ध्यान और देवताओंका तर्पण करके फिर चंदनसे कर्णिकासहित पद्मका अष्टदल चक्र लिखे उसके बीचमें पार्वती और ॐकार सहित महादेवको लिखे । पूर्व आदि दलोंपर क्रमसे रवि भानु विवस्वान् भास्कर सविता अर्क सहस्रकिरण सर्वात्मकको लिखे और पूजकर घरको चलाजाय ॥

स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे–"यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥ एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् । मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके। सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥ एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः। केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत्" ॥ ४ ॥ दिवोदासीये मदनरत्ने च–'इक्षुदण्डेन जलं

चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैः हैमं सूर्यं सम्पूज्य विप्राय दद्यात् ॥

स्नानका मंत्र काशीखण्डमें इसप्रकार लिखाहै कि, जो जो सात जन्मोंमें मैंने पाप कियाहै उस मेरे पापको रोग और शोकको मकरकी सप्तमी दूर करे. इस जन्मके और दूसरे जन्मके मन वाणी और कायाके ज्ञात और अज्ञात पापको इसप्रकार सातप्रकारके पापोंको सात व्याधियों सहित मकरकी सप्तमी मेरे स्नानसे नष्ट करो. इसमंत्रको जपकरके और सप्तसप्तिकचरणोदकमें स्नान करके और केशवादित्यको देखकर क्षणमें पापरहित होताहै, दिवोदासीय और मदनरत्नमें भी कहा है कि, गांडेसे जलको चलाकर और सात आकके पत्तोंको शिरपर रखकर पूर्वोक्त मन्त्रोंसे स्नान कर तिलकी पिट्ठीके पूयेपर सोनेके सूर्यकी पूजाकर ब्राह्मणको देदेना चाहिये ॥

अर्घ्यमन्त्रो मदनरत्ने–"सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर" ॥ ततः–"जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले" इति प्रार्थयेत् । सौरागमे–"अर्कपत्रैः सबदरैर्दूर्वाक्षतसचन्दनैः । अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये ॥" अत्र दानविशेषो मदनरत्ने भविष्ये–"ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं सगुडं तथा ॥ काञ्चनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संछाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् ॥ २ ॥" दानमन्त्रस्तु–"आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥". तालकं कर्णाभरणमिति तत्रैवोक्तम् । दीपमात्रमिति हेमाद्रौ तत्रैव भविष्योत्तरे–"एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हेमशतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ॥" इयं मन्वादिरपि । इयं च शुक्लपक्षस्थत्वात् पौर्वाह्णिकी ग्राह्या ॥ यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् । 'मन्वादिकं पैतृकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ।

अर्घ्यका मन्त्र मदनरत्नमें यह कहा है कि, हे सात घोडोंके वाहनसे प्रसन्न ! हे सप्तलोकदीपन ! हे देव ! हे दिवाकर ! सप्तमी सहित अर्घ्यको स्वीकार करो. फिर सबलोकोंकी माता सप्तव्याहृतियों सहित सूर्यमण्डलमें तुझको प्रमाण है, इस मन्त्रसे प्रार्थना करै. सौरागममें कहाहै कि, आक, वेरके पत्ते दूर्वा अक्षत चन्दन इनकी अष्टांग विधिसे सूर्यकी प्रसन्नताके निमित्त अर्घ्यदे, इसमें दानविशेष भी मदनरत्नमें भविष्यके इस वाक्यसे लिखाहै कि, तांबेके अथवा मृत्तिकाके पात्रमें भक्तिमान् मनुष्य घी और गुड सहित तिलको रक्खै, तालक (कर्णफूल) अथवा असमर्थ मनुष्यको तिलकी पिट्ठी निर्माणकर पुष्प और धूपसे पूजन करना चाहिये. दानका मन्त्र यह है कि, सूर्यके प्रसाद और प्रातःकाल स्नानके फलसे दुष्ट दौर्भाग्य और दुःखका नाशक यह ताल मैंने दिया है. हेमाद्रिने तो तालदीपकपात्र लिखा है, तहांही भविष्यपुराणका लेख है कि, सूर्य और घोडोंसे युक्त हो, और सुवर्णकी सौ किरण जिसमें स्फुरित होरही हों इसीप्रकार सुवर्णके सुन्दर रथको माघशुक्ला सप्तमीके दिन इस प्रकार जो मनुष्य प्रदान करता है, वह चक्रवर्ती होकर पृथ्वीको भोगता है, यह मन्वादि भी लिखी है, यह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, यदि माघ मलमास होय तो दोनों महीनोंमें मन्वादि श्राद्ध करै. कारण कि, स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है कि, मन्वादि और तीर्थश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करै ॥

माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी ।

माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे–"माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् । श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः" इति ॥ भारतेपि–"शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति" इति धवलनिबन्धे स्मृतिः–"अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्दद्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥" सर्ववर्णोक्तेः 'द्विजातयः' इति संबोधनम् । तर्पणमन्त्रस्तत्रैव–"भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥ वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ॥ ३ ॥" इति ॥ एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पितृचरणैरुक्तम् ॥ एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये । अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम् ॥ "ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम् । संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम" इति मदनरत्ने वचनात् ॥

माघके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्माष्टमी लिखते हैं सोई हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, माघकी शुक्लअष्टमीको जो मनुष्य तिलोंसे भीष्मका तर्पण और श्राद्ध करते हैं, वे सन्ततिवाले होतेहैं, भारतमें भी कहाहै कि, माघकी शुक्लअष्टमीको जो भीष्मको जल और अन्न विधिसे प्रदान करते हैं उनके वर्ष दिनके किये हुए पाप क्षणमेंही नष्ट होजातेहैं, यहां (सर्वे वर्णाः) यह कहनेसे (द्विजायः) यह सम्बोधन समझना चाहिये, धवलनिबन्धमें स्मृतिका लेखहै कि, हे द्विजातियो ! शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मके निमित्त सबवर्ण तिलोदक और विधिसे अन्न दें । तहां तर्पणमन्त्र भी लिखाहै कि, शन्तनुके पुत्र और वीर, सत्यवाक्, जितेन्द्रिय, भीष्म इन जलोंसे पुत्र और पौत्रको करने योग्य जो क्रियाहै उसे प्राप्त हो. वैयाघ्रपद्यगोत्र सांकृत्यप्रवर पुत्रहीन भीष्म वर्माके निमित्त यह जल देताहूं, वसुओंका अवतार शन्तनुके पुत्र बालब्रह्मचारी भीष्मके निमित्त ये अर्घ्य देताहूं, यह जीवितपितावालेको भी करना. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखाहै जीवितपितावालाभी भीष्म और यमका तर्पण करै, यह जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें पिताजीने लिखा है, यह अपसव्यसे करै, यह दिवोदासीयका मत है, इसमें श्राद्ध काम्य है और तर्पण नित्य है. कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखाहै कि, हे श्रेष्ठ ! ब्राह्मण आदि चारोंवर्ण जो भीष्मके निमित्त जल नहीं देते उनका वर्ष दिनका किया हुआ पुण्य नष्ट होजाताहै ॥

भीष्मद्वादशी ।

माघशुक्ला द्वादशी भीष्मद्वादशी । "त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति । सा भीष्मद्वादशीत्येषा सर्वपापहरा शुभा" इति हेमाद्रौ पाद्मवचनात् । इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् ॥

माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भीष्मद्वादशी कहते हैं. कारण कि, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्यहै कि, हे वीर ! तुम्हारा किया हुआ यह व्रत तुम्हारेही नामसे प्रसिद्ध होगा, तिससे यह "भीष्मद्वादशी" सवपापोंके दूरकरनेवाली शुभरूप है यह युग्मवाक्यसे पहली विद्धा लेनी ॥

माघीपूर्णिमानिर्णयः ।

माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक् । तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे–' माघस्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते ' ॥ तत्रैव ज्योतिषे–" मेषपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः ॥ भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ॥" तथा भविष्ये–"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः । स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन " ॥ तथा– 'तिलपात्राणि देयानि कञ्चुकाः कम्बलास्तथा' इति ॥

माघकी पूर्णिमा दूसरी लेनी यह पहले कथन कर आयेहैं, सोई हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जिस माघकी पूर्णिमाको बृहस्पति और चन्द्रमा मघानक्षत्रपर प्रातहों उसे महामाघी कहतेहैं. तहांही ज्योतिषमें भी लिखाहै कि, जब मेषराशिपर शनि और सिंहराशिपर बृहस्पति चन्द्रमा और श्रवण नक्षत्रपर सूर्य होय तो वह माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजनीय है. भविष्यमें कहा है कि, वैशाखी कार्तिकी माघी ये तिथियें अति पूजनीय हैं इससे हे पाण्डुनन्दन ! स्नान दानसे रहित उसको न जाने दे, तैसेही तिलसे भरेहुए पात्र कंचुक (संजोआ) कम्बलको देना चाहिये ॥

माघीअष्टकानिर्णयः ।

माघपूर्णिमानन्तराअष्टमी माघी अष्टका तन्निर्णयः, पूर्वेद्युरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः । मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम् । यथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेषा आवश्यकी । ' हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः । तथा–'माघाष्टकां प्रक्रम्य तामेकाष्टकेत्याचक्षते' इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपारिजाते ज्ञेयम् ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ द्वितीयपरिच्छेदे माघमासः समाप्तः ॥

माघकी पूर्णिमाके उपरान्त माघकी अष्टमी 'अष्टका' कहाती है, उसका निर्णय पूर्वदिन अन्वष्टका निर्णय में पहले कहा है मलमासमें यह नहीं होती यह सब मार्गशीर्षके प्रकरणमें कहा है कि, चार अष्टकाओंमें असमर्थ हो तो यह अवश्य करै. हेमन्तशिशिरमें यह विचार इस आश्वलायनके और इस आपस्तम्बके वाक्यसे प्रयोग पारिजातमें लिखाहै कि, प्रथम दिन अन्वष्टका और चारों महीनेकी कृष्णाष्टमियोंमें वा एक महीनेकी अष्टमीको अष्टका होती है, इसीप्रकार माघकी अष्टकाके प्रकरणमें उसीको अष्टका वर्णन कियाहै ॥

(इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां माघमासः समाप्तः ।)

अथ फाल्गुनमासः ।

कुम्भसंक्रांतिनिर्णयः ।

कुम्भे षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् ।

कुंभकी संक्रांतिमें प्रथम सोलह घडी पवित्र काल हैं शेष निर्णय पूर्वके तुल्य जानना ॥

फाल्गुनकृष्णाष्टमी सीताष्टमी ।

' फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते ' इत्युपक्रम्य । " जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी । उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ॥ रामपत्नी च संपूज्या सीता जनकनन्दिनी ॥"

हे राजन्! फाल्गुनकृष्ण अष्टमीको कल्पतरु ग्रन्थमें फाल्गुनकी कृष्णअष्टमीको यह प्रारम्भ करके यह विशेष लिखाहै कि, उसदिन रामचन्द्रकी प्रिया श्री जानकीजी प्रगट हुईं और उसी दिन समुद्रके किनारे पर श्री रामचन्द्रजीने व्रत किया इससे उसमें जनकनन्दिनी सीताका पूजन करना चाहिये ॥

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः ।

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिः ॥ सा च केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तं, केषुचिन्निशीथव्यापिनी । तत्राद्या माधवीये-"त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥" स्मृत्यन्तरेपि-" प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी। रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥" अत्र प्रदोषो रात्रिः। उत्तरार्धे तस्या हेतुत्वोक्तेः । कामिकेपि-"आदित्यास्तमये काले अस्ति द्वेधा चतुर्दशी । तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा" इति ॥

फाल्गुनकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहतेहैं, वह किन्हीं वाक्योंमें प्रदोषव्यापिनी और किन्हीं वाक्योंमें अर्द्धरात्र व्यापिनी लेनी चाहिये. यदि त्रयोदशीके दिन सूर्यास्तके समयपर चार घडीतक चतुर्दशी आगई होय तो उसमें शिवरात्रि व्रत करै. स्मृत्यन्तरमें भी लिखाहै कि, शिवरात्रिकी चतुर्दशी प्रदोष व्यापिनी लेनी, और रात्रिमें जागरण करै इससे तिसमेंही व्रत करना चाहिये, यहां श्लोकके पिछले दोपादोंसे रात्रिको कारण लिखाहै इससे प्रदोष शब्दसे यहां रात्रिका ग्रहण करते हैं, कामिकमें भी कहाहै कि, फाल्गुनकी चतुर्दशी जिस सूर्यास्तमय (रात्रि) कालमें हो वह रात्रि सबमें श्रेष्ठ शिवरात्रि होतीहै ॥

द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायाम्-"अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तत्र सोश्वमेधफलं लभेत् ॥" स्मृत्यन्तरेपि-"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा" ॥ ईशानसंहितायाम्-"माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि । शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः" इति ॥ " अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । व्याप्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥ नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः ॥"

दूसरीभी इस नारदसंहिताके कथनसे वहांही लिखीहै कि, जिस तिथिमें अर्द्धरात्रके समय माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीहो, तिसमें जो शिवरात्रि व्रत करै उसको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होताहै. स्मृत्यन्तरमें भी कहाहै कि,जिस त्रयोदशीमें आधीरात पर चतुर्दशीहो तिसमें शिवरात्रि व्रत तथा रात्रिको जागरण करै, ईशानसंहितामें कहाहै कि, माघके कृष्ण पक्षकी चौदशको आधीरातमें कोटिसूर्योंकीसी कान्तिवाले आदिदेव शिवलिंग रूपसे प्रगट हुए इसमें चतुर्दशी तिस समय तक व्याप्तलेनी चाहिये तिसमें व्रती मनुष्य शिवरात्रिव्रत करै, जिस तिथिमें आधीरातसे पीछे वा प्रथम चतुर्दशी नहीं उसमें व्रतीको व्रत न करना चाहिये. कारण कि, तिसमें व्रत करनेसे अवस्था और ऐश्वर्यकी हानि होतीहै ॥

अर्धरात्रश्च द्वितीययामान्त्यतृतीययामाद्यघटीद्वयरूप इति माधवः । वचनं तूक्तं प्राक् । एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव ॥ "त्रयोदशी यदा देवि दिनभक्तिप्रमाणतः ।

जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी " इति स्कान्दोक्तेः । दिनभुक्तिरस्तमयः । 'जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते' इति स्कान्दाच्च दिनद्वये निशीथव्याप्तौ हेमाद्रिमते पूर्वा ॥

यहां आधीरातसे दूसरे प्रहरके अन्तकी घड़ीका ग्रहणहै, तीसरे प्रहरकी आदिकी घड़ी तो दूसरे प्रहरके तुल्य है यह माधवका कथनहै वाक्य तो पूर्व लिखआये, इसप्रकारकी यदि प्रथमदिन चतुर्दशी उभय (प्रदोष निशीथ) व्यापिनी होय तो पहली लेनी चाहिये. कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, हे देवि ! यदि त्रयोदशी दिनमें होय तो जागरण और शिवरात्रि व्रत द्वादशी और त्रयोदशीसे युक्तमें करने चाहिये. स्कान्दमें लिखाहै कि, भद्रासे जयन्ती और शिवरात्रि जयासे युक्त करनी यदि दोनों दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी होय तो हेमाद्रिके मतसे प्रथमही ग्रहण करनी ॥

"अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः " इति पाद्मवचनात् ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥ निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव अर्धरात्रवाक्यानि कैमुतिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम्। तन्न ॥ अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकालत्वोक्तेः । परदिनप्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव च युक्तं प्रतीमः । परेद्युः प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ च सत्यपि पूर्वेद्युः संपूर्णव्याप्तेः पूर्वैव । "व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी । तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः ॥ तदूर्ध्वाधोन्विता भूता सा कार्या व्रतिभिः सदा " इति माधवधृतेशानसंहितोक्तेः । पूर्वेद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्यैकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव । जयायोगस्य प्राशस्त्यात् । तच्चोक्तं नागरखण्डे–"माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी । अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः " इति॥

कारण कि, पद्मपुराणका वाक्य है कि, यदि आधीरातसे प्रथम जयाका योग होय तो शिवरात्रि व्रत शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धाही करनी चाहिये. मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहाहै, गौडभी इसीप्रकार लिखते हैं. निर्णयामृतमें तो यह कहाहै कि, सब शिवरात्रि प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । आधीरातके वाक्य तो कैमुतिकन्यायसे प्रदोषकी स्तुतिके विषयमें जानने सो उचित नहीं. कारण कि, प्रथम आधीरातको कर्म लिख आयेहैं, माधवका यह कथन है कि, परलेदिन प्रदोष और निशीथ इन दोनोंकी व्याप्ति होयतो दूसरेही लेनी यह हमकोभी ठीक प्रतीत होताहै, परले दिन पूर्वोक्त कहे आधीरातके एकदेश (भाग) में व्याप्ति होय तो दूसरे दिन करै, यदि सम्पूर्ण आधीरातके समय व्याप्ति होय तो परलेदिन करै प्रदोष और निशीथ इन दोनोंके योगमें यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण आधीरातकी व्याप्ति होय तो पहलीही लेनी चाहिये इसीप्रकार माधवके मतमें ईशानसंहिताका वाक्य है कि, जिस तिथिमें आधीरातके समय चतुर्दशी मिले तिसमेंही मेरी प्रसन्नताकी कामनावाले मनुष्य व्रत करैं, अर्द्धरात्रसे प्रथम और पीछे जिसदिन चतुर्दशी होय उसको व्रती निरन्तर करै, जो पहले दिन आधीरातकी और परलेदिन प्रदोषकी इसप्रकार एक २ की व्याप्ति होय तो जया योगकी प्रशंसासे प्रथमही लेनी चाहिये, सोई नागरखण्डमें लिखाहै कि, माघ और फाल्गुनके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशीहै वह अनंग (त्रयोदशी) सहित सदा करनी चाहिये ॥

पाद्मे–"अर्धरात्रात्परस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः " इति ॥ स्कान्देपि–"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिव्रतं

तत्र कुर्याज्जागरणं तथा " इति ॥ "महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः परा । न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम् " इतिं स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च । यदा चतुर्दशी पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीथादर्वागेव समाप्ता तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात्परैव । 'माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः । जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य " इति वचनात् । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव । तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति । इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता । हेमाद्रौ तीर्थखण्डे लैङ्गे-"फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिंगमर्चयन्ति शिवं शुभे ॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम् ॥ "

पद्मपुराणमें भी लिखाहै कि, आधीरातसे प्रथम यदि जयाका योग होय तो वह शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धाही चतुर्दशी सदैव करनी चाहिये. स्कंदपुराणमें भी कहाहै कि, यदि त्रयोदशी आधीरातमें चतुर्दशी होय तो तिसमें शिवरात्रिव्रत और जागरण करना चाहिये, इसके करनेवाले मनुष्योंके महापापोंकी शांति पहले देखी है और न करनेवालोंकी नहीं देखी. यदि प्रथमदिन आधीरातसे उपरान्त प्रवृत्त हुई, और पिछलेदिन आधीरातसे प्रथम पूर्ण होगई होय तो अगले दिन एक (प्रदोष) की व्याप्ति होनेसे परलीही लेनी. कारण कि, यह कथन है कि, माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें यदि अमावास्याका योग होय तो हे नृप ! जयासे युक्त चतुर्दशीमें शिवभक्तोंको कभी भी शिवरात्रि व्रत न करना चाहिये, इसी प्रकार यदि दोनों दिन प्रदोषकी व्याप्ति न होय तो आधीरातकी व्याप्तिसे प्रथमकी लेनी,तिससे यदि दोनों दिन आधीरात व्यापिनी होय तो प्रदोषकी व्याप्तिसे निर्णय करै, अर्थात् जिस दिन प्रदोषमें भी चतुर्दशीका योग हो उसीदिन व्रत करना चाहिये, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो आधीरातसे निर्णय करै, एक एकका योग होय तो प्रदोष और आधीरात्रिसे निर्णय करै, यह रवि मंगल सोम इन वारोंमें और शिवयोगमें अतिउत्तम होती है. हेमाद्रिके तीर्थखण्डमें लिंगपुराणका कथन है कि, फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको सावधान होकर कृत्तिवासेश्वर लिंगमें जो महादेवकी पूजा करते हैं हे शुभे ! उनको मैं सदैव मुक्त और रोगरहित परमस्थान देताहूं ॥

शिवरात्रिपारणानिर्णयः ।

शिवरात्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते ॥ स्कान्दे-"कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥२॥" इति ॥ तिथिमध्येपि पारणं स्कान्दे उक्तम्-"उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाऽथवा न वा ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् " ॥ ३ ॥ इति ॥ अत्र यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ तदन्ते तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हेमाद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः तन्न ॥ "तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां

प्रातरेव हि पारणा" इत्यादिसामान्यवचनैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः। वयं तु तिथ्यन्ते पारणं भवेदिति कृष्णाष्टम्यादिविषयमेव, न तु शिवरात्रिविषयम्। तदुपादानं तु पूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम्। कथमन्यथा स्कांदे एव शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं घटते। तस्मात् 'विना शिवचतुर्दशीम्' इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्य एव पारणेति ब्रूमः। शिष्टाचारोऽप्येवमेव ॥

शिवरात्रिके पारणामें यह विरुद्ध वाक्य दीखतेहैं कि, स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी ये पूर्वविद्धा करनी चाहिये, और इनमें तिथियोंके अन्तमें पारणा करनी चाहिये. जन्माष्टमी रोहिणी तथा शिवरात्रि यह पूर्वविद्धा करनी चाहिये, और तिथि और नक्षत्रके पीछे पारणा करनी चाहिये. तिथिके बीचमें भी पारणा स्कन्दपुराणमें लिखी है चतुर्दशीके दिन व्रत और पारणा ये लक्षपुण्योंसे प्राप्त होतेहैं अथवा नहीं होते। ब्रह्माण्डके मध्यमें जितने तीर्थ हैं, उन सबके स्नानका इस चतुर्दशीमें पारणा करनेवालेको फल प्राप्त होता है, तिथियोंके व्रत आदिमें शिवचतुर्दशीके विना तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये, यहां हेमाद्रि और माधवने भी यह व्यवस्था की है कि, यदि तीन प्रहरसे प्रथम चतुर्दशीकी पूर्तिहुई हो तो उसके पीछे पारणा करनी, और तीन प्रहरके उपरान्त तक व्याप्त होय तो वहां प्रातःकाल तिथिके बीचमेंही पारणा करनी सो उचित नहीं. कारण कि, तिथिके अन्तमें वा तिथि और नक्षत्रोंके अन्तमें जहां पारणा लिखीहै, यदि वहां तिथि तीन प्रहरसे अधिक होय तो प्रातःकालही पारणा करनी कहीहै, इत्यादि सामान्य वाक्योंसे व्यवस्था सिद्धथी, दोनों प्रकारके वाक्योंकी व्यर्थताका परिहार न होसकेगा. हमारा तो यह कथन है कि, तिथिके पीछेमें पारणा होती है यह कृष्णाष्टमीके विषयमें, शिवरात्रिके निमित्त नहीं उसका ग्रहण तो पूर्वयुत (विद्धा) के निमित्त है अन्यथा स्कन्दपुराणमें शून्यहृदय (मूर्ख) के वचनकी समान तिथिके मध्यमें पारणा कहना किस प्रकार घट सकेगा? तिससे शिवचतुर्दशीके विना इस वाक्यसे निषेध की हुई पारणा शिवरात्रिमें सब प्रकारसे तिथिके बीचमेंही होती है और शिष्टाचारभी इसीप्रकार लिखाहै ॥

दीपिकायां तु रात्रावपि तिथ्यन्त एवोक्तम्। व्रततिथेरन्ते निशीथेपि वाऽश्नीयादिति ॥ मदनरत्नकालादर्शयोस्तु—"सा ह्यस्तमयपर्यन्तं व्यापिनी चेत्परेहनि। दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्" इत्युक्तम् ॥ तन्न ॥ तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च। तिथ्यन्तानपेक्षणाद्दोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासंगतेः। तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम्। इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च। तथा च माधवीये स्कांदे—"परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम्। न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः" इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। "वर्षेवर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता। शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत्" इति वीप्साश्रुतेः। "अर्णवो यदि वा शुष्येत्क्षीयते हिमवानपि ॥ चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्" इति वचनाच्च नित्यता। "मम भक्तस्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः। गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ॥ सर्वान्भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्नुयात्" इति स्कान्दात् ॥

दीपिकामें तो तिथिके पीछे भी पारणाकहीहै कि, व्रत तिथिके पीछे वा आधीरातमें भोजन करै, मदनरत्न और कालादर्शमें तो यह लिखाहै कि, वह सूर्यास्तपर्यन्त होय तो दूसरे दिनमें ही पारणा करनेमें दोष

नहीं होता सो ठीक नहीं, तिथिके मध्यमें पारणा लिखी है और निषिद्ध फलके योगसे और तिथ्यन्तकी अपेक्षाके अभावसे किसी दोषकी प्रसक्ति नहीं, इससे चतुर्थ पादकी असंगति होजायगी इससे यह शिव रात्रिसे दूसरे व्रतोंके विषयमें जानना, यह व्रत संयोग और पृथक्त्वन्यायसे शुद्धा वा विद्धासे नित्य और काम्यही है यही माधवीयमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखाहै पर (श्रेष्ठ) से परे कोई नहीं, किन्तु शिव-रात्रि उत्तमोत्तमा है, जो भक्ति करके ईशोंके ईश शिवका पूजन नहीं करते वह सहस्रों जन्मतक भ्रमते हैं इसमें सन्देह नहीं, इस वाक्यसे न करनेमें पाप श्रवण किया है. हे महादेवि ! वर्ष २ में नर और पतिव्रता स्त्री शिवरात्रिके दिन भक्तिसे शिवकी नित्य पूजा करै, इस वाक्यमें वीप्सा श्रवण करनेसे और सागर सूखने हिमालय नष्ट होनेसे भी शिवपूजन कदाचित् चलायमान नहीं होता इस वाक्यसे यह शिवपूजन नित्य है. हे देवि ! जो मेरे भक्त शिवरात्रिव्रत करतेहैं उनको सदाके निमित्त श्रेष्ठगण बनालेताहूं यह शिवकी शिक्षाहै वह सब भोगोंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होते हैं यह स्कन्दपुराणका कथन है ॥

'द्वादशाब्दिकमेतत्स्याच्चतुर्विंशाब्दिके तु वा' इति तत्रैवेशानसंहितावचनात्काम्यता । तत्रैव— "शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥" अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः व्रतं न तु प्रत्येकम् ॥ समुदितानां फलसंबन्धात् ॥ यत्तु—'अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत्' ।। तथा—"अखंडितव्रतो यो हि शिवरा-त्रिमुपोषयेत् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ कश्चित्पुण्यविशेषेण व्रतही-नोपि यः पुमान् ॥ जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत् ॥ २ ॥" इत्यादिस्कांदं तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ॥ माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु । शिवरात्रिशब्दस्य माघकृ-ष्णचतुर्दश्यामेव रूढत्वात्—"माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता" इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजाविधानाद्यस्मिन्दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या । साम्ये तु पूर्वैवेति हेमाद्रिरूचिवान् । वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि—'सर्वकामप्रदं कृष्ण-चतुर्दश्यां शिवव्रतम्' इत्युपक्रम्य 'चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम्' इति हेमाद्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात् । कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्यकाग्नि-होत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव ॥ अतः प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्यैव निर्णय इति वयं प्रतीमः ॥

और वहांही ईशानसंहितामें यह लिखा है कि, बारह वा चौबीस वर्षतक शिवरात्रि व्रतकरै. इससे यह काम्यभी है वहांही कहा है कि, शिवरात्रि व्रत सब पापोंको नाश करनेवाला है, चाण्डालतकको क्ति भुक्तिका दाताहै इसमें जागरण व्रत पूजा एकत्र होकर करनी और व्रतभी प्रत्येक न करना कारण कि, समूहोंको फलका सम्बन्ध है. जो किसीने यह कहाहै कि, शिवरात्रिको पूजा और जागरणसे विताना चाहिये, इसीप्रकार वाक्य है कि, जो मनुष्य अखण्डितव्रत होकर शिवरात्रिव्रत करताहै वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होताहै, और शिवजीके संग परम आनन्द भोगताहै, व्रतहीनभी जो मनुष्य किसी पुण्यविशेषसे शिवरात्रि करताहै, वह रुद्रके समान होता है, यह स्कन्दपुराणका लेख उसके अनुकूल होनेसे अशक्तके विषयमें कहा है, माघके दूसरे महीनोंमें जो प्रतिमासकी शिवरात्रि है उसमें यह निर्णय नहीं है, कारण कि, शिवरात्रिव्रत माघकी कृष्णचतुर्दशीमें आरूढ है, और हेमाद्रिमें यह कथनभी है कि, माघकी और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहते हैं, रात्रिके चारों प्रहरोंमें पूजा

लिखीहै जिसदिन अधिकरात्रिव्यापिनी हो वही लेनी चाहिये, दोनों दिन समान होय तो पहली करनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रि कथन करते हैं. सिद्धान्त तो यह है कि, प्रतिमहीनेकी कृष्णचतुर्दशीको भी प्रदोष और अर्द्धरात्रिकी व्याप्तिसेही निर्णय कहा है कारण कि, सबकामनाओंका देनेवाला यह कृष्णचतुर्दशीका व्रत है, यह हेमाद्रिमें समयके वाक्यसे प्रारम्भ करके चौदह वर्षतक शिवरात्रि व्रत करै यह लिखा है. यह शिवरात्रिके प्रयोगसे कुण्डकी और पाक अग्निमें अग्निहोत्र और नित्याग्नि होत्रके धर्मकी तुल्य उसके फलकी प्राप्ति होजायगी इससे प्रदोषका अर्धरात्रिकी प्राप्तिमें निर्णय है यह हम जानतेहैं ॥

व्रतारम्भः।

अस्यारम्भो हेमाद्रौ स्कान्दे-" आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेपि वा। गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत् ॥ " तथा-" दीपोत्सवे तथा माघे कृष्णा या तु चतुर्दशी। द्वादशस्वपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वादशवर्षेषु द्वादशैव तपोधनान्" ॥ वरयेदिति शेषः। चतुर्दश वा विप्रान् आचार्यं च वृत्वा। "कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम्। सौवर्णेप्यथवा रौप्ये वृषभे संस्थितं शुभे " इत्युक्तम् ॥ हैमीं मूर्तिं संपूज्य स्थिरं चरं वा लिंगं पञ्चामृतसहस्रशतपञ्चाशत्तदर्धान्यतरकुम्भैः संस्नाप्य, संपूज्य, जागरं कृत्वा, परेद्युस्तिलान् सहस्रं शतं वा हुत्वा, विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गाश्च दत्त्वा, आचार्याय धेनुं शय्यां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति मदनरत्ने उक्तम् ॥

हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमें इसका प्रारम्भ इसप्रकार लिखाहै कि, मार्गशिरमें वा दीपमालिकाके दिन या माघमासमें प्रथम आरम्भ करके बारह व्रत करै, तथा दीपोत्सव माघकृष्णचतुर्दशी दशों महीनोंमें जागरण करै, इसीप्रकार बारह वर्षोंमें बारह वा चौदह तपस्वी ब्राह्मणका वा आचार्यका वरणकरै. फिर हे कल्याणी ! सुवर्ण वा चांदीके वृषभपर स्थित हुए महादेवका घटके ऊपर स्थापन करै, और मदनरत्नमें तो यह लिखा है कि, सुवर्णकी शिवमूर्तिका पूजन करै. फिर स्थिर, वा चल, लिंगको पञ्चामृतसे भरे सहस्र वा सौ, वा पचास घड़ोंसे स्नान कराय और पूजन करके जागरण करै, फिर परलेदिन तिलोंकी सहस्र वा सौ आहुतियोंसे हवन करै, फिर ब्राह्मणोंको वस्त्र और बारह गौ और आचार्यको गौ और शय्या देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

माघामावास्यानिर्णयः।

माघामावास्या युगादिः ॥ तदुक्तम्-'माघमासे त्वमावास्या' इति। अन्यत् प्राग्वत् ॥ तथान्योपि विशेषो विष्णुपुराणे-"माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन। ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ" ॥ इति ॥ वारुणं शतभिषक्। इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः ॥ भारते-"काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्तु भूपाल सदा पितृभ्यः ॥ दत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः" इति ॥

माघमहीनेकी अमावस्या युगादि है यही कहा है माघमासमें जो अमावस्या युगादि है इत्यादि प्रथम कहआये हैं, अन्य पूर्वकी तुल्य जाननी, तैसेही विष्णुपुराणमें और भी विशेष लिखाहै कि, यदि माघमासकी अमावस्यामें शतभिषा नक्षत्रका योग होय तो वह पितरोंका उत्तम समयहै. हे राजन् ! अल्पपुण्यवालोंको तो वह प्राप्त नहीं होताहै, वह कुम्भकी संक्रान्तिमें जानना यह हेमाद्रिका कथन है. भारतमें लिखा है कि,

हे राजन् ! यदि तिस समय धनिष्ठा नक्षत्र होय तो तिससमय कुलके मनुष्य यदि पितरोंको तिल अन्नदें तो वह अन्न दशसहस्र वर्षतक पितरोंको तृप्त करताहै ॥

होलिकानिर्णयः ।

फाल्गुनपौर्णमासी होलिका । सा च सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या-"सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्ने क्रीडनं गवाम्" इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् ॥

फाल्गुनकी पूर्णिमाको होली कहते हैं, वह सायाह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है कारण कि, यह कथन है कि-सायाह्नकालमें होली और पूर्वाह्नमें गौक्रीडा करै ॥

भद्रायां होलिकानिषेधः ।

ज्योतिर्निबन्धे तु-"प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा । संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा । तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे ॥ २ ॥" इति नारदवचनात् प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये-" अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे" इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च । तेनेयं पूर्वविद्धा-"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति बृहद्यमब्रह्मवैवर्तोक्तेश्च । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव । पूर्वदिने भद्रासत्त्वात्तत्र च होलिकानिषेधात् । तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये-"भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै । नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ "

ज्योतिर्निबन्धमें तो इस नारदके वाक्यसे प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, यह लिखाहै कि, प्रतिपदा चौदस भद्रामें और दिनमें पूजीहुई होली वर्षदिनतक उसदेश और पुरको आश्चर्यसे भस्म करती है, फाल्गुनमासकी पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, तिसमें भद्राके मुखको छोडकर सायंकालके समय होलीका पूजन करना, यह नारद कहते हैं हेमाद्रि और मदनरत्नमें भविष्यपुराणका लेखहै कि, हे पार्थ ! इस पूर्णिमाको गोबरसे लिपेहुए चौकोर घरके आँगनमें बालकोंकी रक्षा करै इत्यादि वाक्योंसे तिस समयमें पूजाका विधान लिखा है, तिससे यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये, बृहद्यम और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी लिखा है कि, श्रावणी दुर्गानवमी दूर्वाष्टमी होली शिवरात्रि बलिका दिन यह पूर्वविद्धाही करनी. यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्याप्ति हो और पूर्वदिनमें भद्रा होय तो उसमें होलीके निषेधसे परली लेनी चाहिये, सोई निर्णयामृत और

---

१ फाल्गुनस्यापरे पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे । जीवे धनुषि योगे च शोभने रविवासरे । पुण्यर्क्षे यदि सम्पूर्णा गोविन्दद्वादशी मता । फाल्गुने शुक्लपक्षे स्यात्पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि । गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् । विनायासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात् । अत्र श्रीगोविन्दं सम्पूज्योपवासं कुर्यात् । उपोष्य च जगन्नाथं नमेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् । इत्युक्तेः । गंगास्नाने मंत्रः-महापातकसंघानि यानि पापानि सन्ति वै । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि ॥ अर्थात्-

फाल्गुनके दूसरे पक्षमें कुम्भके सूर्यहोनेमें धनके बृहस्पति शोभनयोग रविवार पुष्यनक्षत्र होनेसे 'गोविन्दद्वादशी' कहाती है, तिथितत्त्वमें लिखा है कि, फाल्गुन शुक्लपक्षमें पुष्यनक्षत्रमें यदि द्वादशी हो तो यह गोविन्दद्वादशी सब पापनाशिनी है. गोविन्दद्वादशीको प्राप्त होकर श्रीपुरुषोत्तमके समीप गमनसे हे राजन् ! विना परिश्रम मुक्ति होती है । इसमें श्रीगोविन्दको पूजकर उपवास करै कहाभी है जगन्नाथका व्रतकर पुरुषोत्तमसे नमन करै पद्मपुराणमें लिखा है महापातकके समूह तथा और जो भी पापहैं हे गंगे ! वह मेरे पाप हरण करो ॥

मदनरत्नमें पुराणसमुच्चयके वाक्यसे लिखाहै कि, भद्रामें यदि होलीमें अग्नि लगावै तो वह देशका भंग करती है, और नगरको भी वह इष्ट नहीं इससे उसे त्यागदे ॥

तथा-"भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी " ॥ तथा-"दिनार्धात्परतोपि स्यात्फाल्गुनी पूर्णिमा यदि । रात्रौ भद्राऽवसाने तु होलिका दीप्यते तदा " इति ॥ यदा तु पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च क्षयवशात्सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्यते तदा पूर्वदिनसंपूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात्तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यात् । "सार्धयामात्रयं वा स्याद्वितीयदिवसे यदा । प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥ " इति भविष्यवचनादिति निर्णयामृतकारः । मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ यत्तु-'वह्नौ वह्निं परित्यजेत् ' इति भविष्ये । वह्नौ होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः ॥ तदुक्तं भिन्नविषयमिति तत्रैवोक्तम् । अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वेत्यर्थः ॥ "प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा । भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम् " इति नारदवचनात् । "निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः । न दिवा पूजयेड्ढुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत् " इति दिवोदासीये वचनात् । 'यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः । भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होली मनीषिभिः " इति विद्याविनोदेऽभिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिन एव कार्येत्याहुः ॥

इसप्रकार भद्रामें श्रावणी और होली ये दो न करनी चाहिये कारण कि, श्रावणी तो राजाको और होली ग्रामको भस्म करती है, इसीप्रकार यदि फाल्गुनकी पूर्णिमा मध्याह्नसे परे हो और रात्रिमें भद्राके अन्तकालतक होय तो तिसमें ही होलीको जलावै. यदि पहले दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो और अगले दिन पूर्णिमा क्षयके वशसे सायंकालसे प्रथम समाप्त होगई होय, तब प्रथम दिन सम्पूर्ण रात्रिमें भद्रा होय तो तिसमें तिसका निषेध होनेसे अगले दिन प्रतिपदामेंही उसको करै यह निर्णयामृतकारका कथन है. कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि बढी हुई प्रतिपदा दूसरेदिन साढे तीन प्रहर होय तो तिसे होली कहते हैं. इसीप्रकार मदनरत्नमें कहाहै जो कि भविष्यमें यह कहा है कि, होलिकाको प्रतिपदामें न करना वह उक्तसे भिन्नके विषयमें है यह प्रथम कह आये हैं, अन्य तो यह कहते हैं कि, इस नारद और दिवोदासीयके कथनसे भद्राके मुखको त्यागकर पहिले दिनही करै कि, तिसमें भद्राके मुखको छोडकर होलीका पूजन करै, और यदि प्रदोषव्यापिनी न होय तो प्रथम दिन भद्रामुखको छोड़कर होलिकाका पूजन करै, तथा पण्डितजन होलिकाको सदा सायंकालमें पूजन करैं दिनमें न करैं. कारण कि, दिनमें पूजी हुई होलीसे दुःख प्राप्त होता है, और विद्याविनोदमें भी लिखाहै कि, पूर्णिमामें तीन प्रहरसे ऊपर प्रतिपदा आजाय तो भद्राके मुखको छोड़कर होलिकाका पूजन करना चाहिये ॥

भद्रामुखनिर्णयः ।

भद्रामुखं तु-'नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका ' इति रत्नमालोक्तं ज्ञेयम् ॥ शिष्टाचारोप्येवमेव ॥

भद्रामुख तो रत्नमालामें यह लिखाहै कि, भद्राकी आदिकी पांच घडियोंको मुख, एक घड़ीको गला कहतेहैं, और शिष्टाचारभी यही है ॥

तत्र ग्रहणे निर्णयः ।

अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोर्वाङ्निशि भद्रावर्जं पौर्णमास्यां होलिकादीपनम् । अथ परेऽह्नि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्जं रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या । ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ । वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शे चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्राभावाच्च ग्रहणकाल एव होला कार्या । न च—"सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् " इति निषेधात् कथं सूतके होलेति वाच्यम्। तस्योत्तरार्धशेषत्वात् । पूजामन्त्रस्तु—"असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः । अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव " इति ॥ यत्तु वार्तिककारैर्होलिका आचारप्राप्तेत्युक्तम् । तत्र हेमाद्र्याद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानि कृत्वा चिन्ता ज्ञेया । आर्त्यधिकरणवत् । हुताशिनी मलमासे न भवति ॥ इयं मन्वादिरपि सा तु पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक् ॥

दिवोदास और चन्द्रप्रकाशका तो यह कथन है कि, यहीं पूर्णिमाको ग्रहण होय तो तिससे पूर्वरात्रिमें जिस समय भद्रा न हो उसमें होलीको जलाना उचित है, अथवा यदि दूसरे दिन ग्रसाहुआही उदय होय तो पहले दिन भद्रारहित रात्रिके चौथे प्रहरमें भद्राकी पुच्छमें अर्थात् पीछेकी घडीमें होलीको जलावे. कारण कि, ग्रहणसे उत्तर प्रतिपदा आजायगी, और प्रथम दिन होनेसे इन दोनोंमें होलीका निषेधहै. तत्त्वतो यह है कि, दूसरे दिन यदि प्रदोषमें पूर्णमासी होय तो उसमें प्रदोषका स्पर्श होनेसे भद्राके अभावसे ग्रहण समयही होलीको करना. कारण कि, जब मुख्य कर्मका समय मिले तब गौण चतुर्थयामादि समयके ग्रहण करनेमें कोई प्रमाण नहीं यदि कोई शंकाकरै कि, राहुके दर्शनमें सब वर्णोंको सूतक प्राप्त होताहै, इससे स्नान करके कर्मोंको करै और पकायेहुये अन्नको छोडदे, इस निषेधसे सूतकमें होली किस प्रकार होगी सो ठीक नहीं कारण कि, यह (स्नात्वा) इत्यादि निषेध उत्तरार्द्धका शेष है (सर्वेषां) इत्यादिका नहीं है, इससे ग्रहण कालमें होली करनी इसमें कोई बाधक नहीं है. इसकी पूजा का मन्त्र यह है कि, होली असृक्पा राक्षसीके भयसे त्रासको प्राप्त हुए (अज्ञानीजनोंने) तुझे किया है, इससे तेरा पूजन करता हूं हे भूते ! तू ऐश्वर्यकी देनेवाली हो, जो कि, वार्तिककारोंने यह लिखा है कि, होली शिष्टाचारसे सिद्धहै तिसमें हेमाद्रिमें कहेहुए भविष्यपुराणके वाक्योंको न मान करके दुःखीकी तुल्य विचार जानना, होली मलमासमें नहीं होती, यह मन्वादिभी है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, जो मलमास होय तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें करना यह प्रथम कह आयेहैं ॥

गोविन्ददोलोत्सवनिर्णयः ।

कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे—"नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥ "

फाल्गुनकी पूर्णिमाको मनुष्य पुरुषोत्तम गोविन्दको हिंडोलेपर बैठे देखनेसे संयत होकर वैकुण्ठको गमन करताहै यह कृत्यचिन्तामणिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखाहै ॥

चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसंतोत्सवनिर्णयः ।

चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । सा चौदयिकी ग्राह्या । 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ' इति भविष्योक्तेः । दिनद्वये तथात्वे पूर्वा । "वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये

तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः इति वृद्धवसिष्ठवचनात् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने । यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप" इति तथा–"प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ । कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥ वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये ॥" मन्त्रश्च–"वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च । अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव" इति ॥

चैत्रमासकी प्रतिपदाको वसंतोत्सव होताहै, वह उदयकालकी लेनी चाहिये. कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, जब मधु (चैत्र) प्रवृत्तहो तब प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय वसंतोत्सव करै, यदि दोनोंदिन उदयव्यापिनी होय तो प्रथमही लेनी. कारण कि, वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, वर्ष और वसंतकी आदिमें और बलिराज्यमें पण्डितोंको सदा प्रतिपदा पूर्वविद्धा करनीचाहिये. इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यके वाक्यसे यह लिखाहै कि, हे महाबाहो ! हे राजन् ! चैत्रमासकी पवित्रप्रतिपदाके दिन चांडालसे स्वयं स्पर्श करके जो मनुष्य स्नान करताहै उसको पाप और आधि व्याधि किंचित्भी नहीं होती, इसीप्रकार चैत्रमासके आरम्भमें प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय आवश्यक नित्य कर्मोंको करकै पितृ और देवताओंका तर्पण करै, और सब दुःखोंकी शान्तिके निमित्त होलीकी भस्मको प्रणाम करै, उसका मंत्र यह है कि, सुरेन्द्र ब्रह्मा और शिवसे तू स्तुति की गईहै, इस कारण हे देवि ! तुम हमारी रक्षा करो, और विभूति. भूतिको देनेवालीहो ॥

तत्र आम्रकुसुमप्राशनम् ।

अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं तत्रैव पुराणसमुच्चये–"वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च । संप्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥" मन्त्रस्तु–"चूतमग्र्यं वसन्तस्य माकन्दकुसुमं तव । सचन्दनं पिवाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये" ॥ इति ॥

वहांही इस पुराणसमुच्चयके वाक्यसे आमके मौलका भोजन लिखाहै कि, शुक्लपूर्णिमाको जब जाड़ेका समय वीता हो, और प्रातःकाल वसंत समय प्राप्त हुआहो तब यदि मनुष्य चंदन सहित आमके मौलको खायतो वह वर्षदिनतक सुखी होताहै, उसका यह मन्त्रहै कि, हे वसंत ! मैं तेरे इस आम और माकन्दके फूलोंको चन्दन सहित सब काम अर्थकी सिद्धिके निमित्त आज पीताहूं ॥

चैत्रामावास्या मन्वादिस्तन्निर्णयः ।

चैत्रामावास्या मन्वादिः । सा चापराह्णव्यापिनी ग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ फाल्गुनमासः समाप्तः ॥

चैत्रकी अमावस्या मन्वादि लिखीहै वह कृष्णपक्षकी होनेसे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये ॥

(इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां फाल्गुनमासः समाप्तः ।)

कविप्रार्थना ।

एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् । तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोस्मि तेषु ॥ १ ॥ मया सद्वाऽसद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाऽध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना ॥ यदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह

विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता ॥ योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥ इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टसुतदिनकरभट्टानुजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ संवत्सरकृत्यनिरूपणं नाम द्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

वाक्य और युक्तिसे विचार करके यह गहनरूपी कालनिर्णय करके मैंने इसप्रकार निरूपण कियाहै सो इसको पण्डितजन दोष दृष्टि छोड़कर विचार करैं, मैं उनको नवकर वारंवार प्रणाम करताहूं मुझमन्दमतिने इसमें सत्य वा असत्य जो लिखाहै उसको अल्प बुद्धिवाला तो जाननेको समर्थ नहीं होसकता, तिससे जो मैंने यत्किंचित् लिखाहै वह सम्पूर्ण विख्यात महिमावाले माता पिताके चरणोंका प्रतापही विकसित हुआहै जो भट्टोंके शास्त्रोंके वनरूपी सागरका कर्णधारहै तथा जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मके खोलनेवाले इस ग्रन्थमें कमलाकरने जो श्रम कियाहै उससे वह पुण्यात्मा रामकृष्ण पंडित प्रसन्नताको प्राप्त करै ॥

इति श्रीनिर्णयसिन्धौ पंडित सुखानंदसूनु पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषाटीकायां द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ २ ॥

इति निर्णयसिन्धौ द्वितीयः परिच्छेदः २.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय–बंबई.

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ-

तृतीयपरिच्छेदः ३.

दोहा-सिद्धिसदन आनंदघन, अभिमत फलदातार। उमासहित श्रीशंभुको, वन्दौं वारंवार ॥ १ ॥
उमारमण करुणायतन, दीनबन्धु सुखदान । नित ज्वालाप्रसादको, रक्षहु सब गुणखान ॥ २ ॥

अथ प्रकीर्णकनिर्णयः ।

अब प्रकीर्णनिर्णय लिखतेहैं ।

श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः ॥
निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥ १ ॥

श्रीरामकृष्णके पुत्र कमलाकरभट्ट तिथिकृत्यका निरूपण करके प्रकीर्णके कहनेको उद्यत होतेहैं ॥

तत्र गर्भाधानम् ।

तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलं तत्र शान्त्यादि च पितृकृतं भट्टकृतप्रयोगरत्ने ज्ञेयम् ॥ किंचित्तूच्यते । मदनरत्ने नारदः-
"अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥
संध्यासूपप्लवे विष्टचामशुभं प्रथमार्त्तवम् । रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥
पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥ वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्द्धनम् ।
मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् । मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः ।
तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥ ९ ॥"

तिसमें प्रथम संस्कारोंमें गर्भाधानका निर्णय करतेहैं, इसमें दुष्ट महीना, ग्रहण, संक्रांति आदिमें प्रथम रजोदर्शनका फल और शांतिआदि पितृकृत प्रयोगदीपिका और भट्टकृत प्रयोगरत्नमें लिखेहैं वहां देखलेने, कुछ थोडासा यहां भी लिखतेहैं, मदनरत्नमें नारदका कथनहै कि, अमावास्या, रिक्ता, अष्टमी, छठ, द्वादशी प्रतिपदा, परिघका पूर्वार्द्ध, व्यतीपात, वैधृति, संध्या तथा ग्रहण और भद्रामें यदि प्रथम रजोदर्शन होय तो अच्छा नहीं होता रोगिणी, पतिव्रता, दुःखित पुत्रिणी, भोगभागिनी, पतिव्रता, क्लेशभोक्त्री ये क्रमसे सूर्यआदि सात वारोंमें पहले रजोदर्शनके फल जानने चाहिये, अर्थात् सूर्यवारमें होय तो रोगिणी, चन्द्रवारमें होय तो पतिव्रता इत्यादि क्रमसे समझने चाहिये, तथा तिथियोंमें प्रथम रजोदर्शनका क्रमसे यह फलहै कि, वैधव्य, सुतका लाभ, मित्रता, शत्रुकी वृद्धि, मित्रकी प्राप्ति, शत्रुकी वृद्धि, कुलकी वृद्धि, बन्धुनाश, मरण, कुलवृद्धि, भोजनकी अप्राप्ति, कुलक्षय, तेज, पुत्रनाश, वंशकी हानि होतीहै ॥

सम्मार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद्दृष्टं रजोभाग्यवती तदा स्यात् । अर्थात्-बुहारी काष्ठ तृण छाजआदि हाथमें लिये जो रजोवती हो तो कुलटाहो । शय्यामें तपमें स्थित हो तो भाग्यवतीहो यह प्रथम रजोदर्शनका फलहै ॥

गर्गः—" सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता ॥ धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा । दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥ ९ ॥ " गर्गः—" सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता । क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यकाश्चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥ ३ ॥

यहां गर्गने यह कहाहै कि, अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें रजोदर्शनका यह फल क्रमसे जानना चाहिये कि, सुभगा, दुःशीला, वंध्या, पुत्रवती, धर्ममें युक्त, व्रतघ्नी, पराई संतानको प्रसन्नताकी देनेवाली, शोभन पुत्रोंवाली, दुष्ट पुत्रोंवाली, पिताके घरमें तत्परा, दुःखित, प्रजावाली, और पुत्रोंसे युक्त, चित्राम करनेवाली, साध्वी, पतिको नित्यप्रिय, शोभन पुत्रोंवाली, कष्टभोगनेवाली, अपने कर्ममें तत्पर, हिंसाशील, श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त, नित्य संचय करनेवाली, पुत्र और धान्यसे युक्त, मूर्ख, अज्ञ, पुण्यवती, अश्विनी आदिमें रजोदर्शनसे स्त्री क्रमसे इस प्रकारकी होतीहै, गर्गने यह लिखा है कि, कर्क वृष, धन, मीन, मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भराशिमें प्रथम रजोदर्शन शुभ देनेवाला है. गर्गने कहाहै कि, ऋतुसमयमें श्वेत दृढ (पुष्ट) क्षौम नवीन फटे लाल वा नीले वस्त्रोंको स्त्री धारण कररही होय तो क्रमसे सुभगा, पतिव्रता, भूस्वामिनी, सुखसे युक्त, दुर्भगा, रोगिणी, विधवा होती है, अर्थात् यदि श्वेतवस्त्रोंको धारण किये होय तो सुभगा इत्यादि क्रमसे समझनी चाहिये, प्रथम ऋतुमें वस्त्रमें रुधिरकी बिन्दु यदि विषम (तीन वा पांचआदि) पड़ें तो पुत्र, सम अर्थात् (दो चार आदि) पड़ें तो कन्या होती है, यह प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन किया है ॥

तत्र स्त्रीसंसर्गवर्जनम् ।

अथ स्त्रीसंसर्गवर्जनमाह वसिष्ठः—"प्रभूतदोषे यदि दृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिककर्म कार्यम् । विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमुत्तमेऽह्नि" ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः— "आद्यर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा रिक्तामार्काष्टषष्ठ्यः पितृपरसदने रात्रिसन्ध्यापराह्णे । मिश्रोग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पाधिकास्रं गराष्टोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नीलरक्ताम्बरं च ॥ आद्यर्तौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत् ॥ गण्डे तु पुँश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानाम फलप्रदाः ॥"

यहां स्त्री सङ्गका निषेध कहतेहैं—वसिष्ठने कहाहै कि, यदि महादोषमें रजोदर्शन होय तो शांतिकर्म करना चाहिये और जबतक रजोदर्शन रहै तब तक एक शय्याको त्यागदे. ज्योतिर्निबन्धमें वसिष्ठने लिखा है कि, प्रथम रजोदर्शनमें पौष ज्येष्ठ कार्तिक चैत्र आषाढ भाद्रपद आश्विन पापवार रिक्ता पर्व

(अमावस आदि) अष्टमी षष्ठी यह तिथि रात्रि सन्ध्या अपराह्ण माता पिताका दिन परायावर मिश्र, उग्र, तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र और विवर (क्षत) जिसमें लाली न हो ऐसा रुधिर, अल्प वा अधिक रुधिर, देशका उत्पात, पाप लग्न, नील फटाहुआ रक्त वस्त्र ये उत्तम नहीं हैं. विष्कम्भ, अतिगण्ड, शूलगण्ड, व्याघात, वज्र पात, परिघ तथा वैधृति यदि इनमें प्रथम रजोदर्शन होयतो स्त्री क्रमसे दुर्भगा वन्ध्या शूलवती पुंश्चली (व्यभिचारिणि) आत्मघात करनेवाली, स्वैरिणी, पतिका घात करनेवाली, मृतवंध्या, पतिमारिणी होती है. शेष योग नामके अनुरूप फल दायक श्रेष्ठ जानने ॥

तत्र शान्तिनिर्णयः।

शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते शौनकः–"सार्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनकः। पञ्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत्। कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादिवेष्टितम् ॥ सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ। ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्गायत्र्या च ततः क्रमात् ॥ मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च। उदुम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटबिल्वकाः ॥ विष्णुक्रान्ताथ तुलसी बर्हिषं शंखपुष्पिका। शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्वयम् ॥ अपामार्गं पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा। प्रियंगवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च ॥ क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्पलम्। कुरण्टकत्रयं गुंजा वचाभद्रकमुस्तकाः ॥ द्वात्रिंशदौषधानीह यथासंभवमाहरेत्। मृत्तिकाश्चौषधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत्क्रमात् ॥ कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्वेणुताम्रजम् ॥ भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरंदरम् ॥ जपेद्गायत्रीमाहोमाच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः। स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ ॥ चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च। संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ॥ शन्न इन्द्राग्निसूक्तं च तत्रैव संस्पृशञ्जपेत्। कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च। तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः। संततामाज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥ अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भस्थितोदकैः। आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ॥ इन्द्रो अङ्गतृचेनैव पावमानैः क्रमेण तु। उभयं शृणवच्चैनं स्वस्तिदाविश एकया ॥ त्र्यैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया। समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः क्रमात् ॥ इमा आपस्तृचेनैव देवस्यत्वेति मन्त्रतः। मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ ॥ तमुष्टुहीति मन्त्रेण पितरं भुवनस्य हि। याते रुद्रेति मंत्रेण शिवसंकल्पमन्त्रतः। इंद्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत्। धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणम् ॥ सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने। महाशान्तिं प्रजप्याथ ब्राह्मणान्भोजयेदथ ॥ २२ ॥ " नारदः–"तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः। प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये।" प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयम् ॥ विस्तरान्नोच्यते ॥ ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः ॥

इसकी शान्ति प्रयोगपारिजातमें शौनकने लिखी है, मैं शौनक ऋतुवाली स्त्रियोंकी शान्ति लिखता हूं, कि, पांचवें वा चौथे दिन ग्रहोंके पूजनपूर्वक द्रोण (२९६ मुट्ठी) व्रीहियोंकी तीन राशि करै, उनके

ऊपर तन्तुवस्त्रसे लपेटेहुए तीन घडे रक्खे, उनको भिन्न २ तीर्थके जलसे भरै, फिर नौऋचाओंका सूक्त तथा 'प्रसुव आप' इत्यादि ऋचा तथा प्रसव इत्यादि ऋचा और गायत्री इनसे क्रमसे कुम्भके मध्यमें धान्य औषधि तथा सुवर्ण इनको डालै, उदुम्बर (गूलर) कुशा, दूर्वा, कमल, बट, बेल, विष्णुक्रान्ता (नील पुष्पा) तुलसी, बर्हिष (६४ कुशा) शंख पुष्पिका (शंखपुष्पा) शतावरी गन्धा (असगन्ध) निर्गुंडी दोनों सरसों अपामार्ग (औंगा) ढाक पनस जीवक प्रियंगु गेहूं व्रीहि (धान्य) पीपल दूध दही घी कमलके पत्ते कमल तीन कुरंट चौटली वच भद्रक (धनियां) मोथा इन बत्तीस औषधियोंको यथासंभव (जितनी मिलसकें) लावै, मृत्तिका और उन औषधियोंको क्रमसे उसी मन्त्रसे डालै, घडेके ऊपर कांसी वा मृत्तिका वा बाँस वा तांबेके पात्रको रक्खै, तहां भुवनेश्वरी, इन्द्राणी, इन्द्रका स्थापन करै, और होम पर्यन्त गायत्री और लक्ष्मीसूक्त का जपकरै, अथवा एक ऋत्विक् दक्षिणके घटका स्पर्श करता हुआ जप करै और तहांही चार रुद्रसूक्तके चार ऊपरके मन्त्र और ग्यारह श्रीरुद्र तथा शन्नइन्द्र और अग्निसूक्तके पाठ करके उत्तर घटको स्पर्श करता हुआ करै, कुम्भके पश्चिम भागमें दूर्वा तिल गेहूं खीर घीसे शान्ति हवनकी करै तीन दूर्वासहित एक २ घीकी आहुति दे, यहां चार प्रकारके हविकी एक सहस्र आठ वा अष्टोत्तरशत आहुति गायत्रीमन्त्रसेही करै, फिर समुद्रादूर्मिसूक्तसे स्विष्टकृत् होम करके निरन्तर घृतकी धारासे पूर्णाहुति करै, फिर तीनों घडोंके जलसे इसप्रकार अभिषेक करै, प्रथम आपोहिष्ठेत्यादि नौ ऋचाओंसे फिर सूक्तसे फिर इन्द्रोंअंगे इत्यादि तीन ऋचाओंसे फिर 'पावमानैः' ऋचाओंसे फिर 'उभय शृणवच्च न स्वस्ति दाविश' इस एकसे फिर (त्र्यम्बकं यजामहे) इस मन्त्रसे, फिर समुद्रज्येष्ठा आदिआपंत पर्यन्त तीन ऋचाओंसे, फिर 'इमा आप' इन तीन ऋचाओंसे, फिर 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रसे, फिर तमीशानं इस मन्त्रसे, फिर त्वमग्ने इस मन्त्रसे, फिर नतुष्टहि इस मन्त्रसे, फिर भुवनस्य पितर इस मन्त्रसे, फिर याते रुद्र से, फिर शिवसंकल्प मंत्रसे, फिर 'इन्द्र त्वा वृषभं' इन पांचमन्त्रोंको पाठ करके यजमानका इन सब पूर्वोक्त मन्त्रोंसे अभिषेक करना चाहिये, आचार्यको भूषण सहित दूध देती गौ देनी चाहिये रुद्रजपकरने वालेको दक्षिणा सहित बैल देना चाहिये, और महाशान्तिका जप करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै, मदनरत्नमें नारदने कहाहै कि, वहां शान्ति करै, घी दूर्वा तिल अक्षतोंसे प्रत्येक १०८ गायत्रीके हवन करै, और सब दोषोंकी निवृत्तिके निमित्त सुवर्णकी गौ पृथिवी प्रदान करै. दूसराप्रकार मदनरत्नमें जानना चाहिये यहां विस्तारके भयसे नहीं कथन किया, ग्रहणके समय रजोदर्शन होजाय तो जातकप्रकरणमें उसकी शान्ति लिखेंगे ॥

प्रथमर्तौ विशेषः ।

स्मृतिचन्द्रिकायां-"प्रथमर्तौ तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवतीस्त्रियाः । अक्षतैरासनं कृत्वा

---

१ प्रसुवआपोमहिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदनेविवस्वतः । प्रसप्तसप्तत्रेधाहिचक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिन्धु रोजसा ॥ ऋ० ८ । ३ । ९ ॥

२ लक्ष्मी सूक्त, श्रीसूक्त, रुद्रसूक्त, पावमानी ऋचा यह एक २ कई ऋचोंका सूक्त पद्धतियोंमें पृथक् लिखाहै इससे नहीं लिखा यह सब पद्धतियोंमें देखो ॥

३ समुद्रा दूर्मिर्मधुमा ँ उदार दुपा ॐ शुनासममृतत्वमानट् घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ३ । ८ । १०

४ ॐ आपोहिष्ठामयो भुवः । तान दधातन । महेरणाय चक्षसे । योवः शिवतमो रसः । तस्य भाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः । तस्माअरंगमामवः । यस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥

५ इन्द्रो अंगमहद्भयमभीषदपचुच्यवत् । सहि स्थिरोविचर्षणिः २ । ८ । ९ । ऋ० ॥

६ त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ यजु० ३ । ६० ।

तस्मिंस्तामुपवेशयेत् ॥ हरिद्रागन्धपुष्पादीन्दद्यात्ताम्बूलकं स्रजम् । दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद्गृहे ॥ लवणापूपमुद्गादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तितः " ॥ २ ॥ इति ॥

प्रथम ऋतुमें रजस्वलाका विशेष स्मृतिचंद्रिकामें वर्णन कियाहै कि, पहली ऋतुमें रजस्वलाको पति और पुत्रवाली स्त्री अक्षतोंका आसन निर्माण कर उसे उसपर बैठावें, हलदी गन्धपुष्प पानमाला इनको दे दीपकोंसे आरती करै, इसप्रकार घरमें सुलावै जिस घरमें दीपक बलतारहै, उन स्त्रियोंको अपनी शक्तिके अनुसार लवण मूंग पुए आदि देना चाहिये ॥

द्वितीयाद्यृतुषु नियमाः ।

द्वितीयाद्यृतुषु तन्नियमानाह मदनपारिजाते दक्षः–" अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम् । न कुर्यात्सार्त्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा ॥ अत्रिरपि–"वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम् । गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम् ॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत् ॥ " मदनरत्ने हारीतः–' रजः प्राप्ता चेदधः शयीत भूमौ कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाश्नीयात् ' इति ॥ विष्णुधर्मे–"आहारं गोरसानां च पुष्पालंकारधारणम् । अञ्जनं कंकतं दन्ताः पीठशय्याधिरोहणम् ॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम् ॥ "

दूसरी ऋतु आदिमें रजस्वलाके नियम प्रयोगपारिजातमें दक्षने वर्णन किये हैं, अञ्जन उबटना स्नान प्रवास (परदेशमें जाना) दंतधावन और आकाशमें ग्रहोंका दर्शन ऋतुवाली स्त्रियोंको न करना चाहिये. अत्रिने भी कहाहै कि, मधु मांस धातुके छोटे पात्रमें भोजन गन्ध माला दिनमें शयन

---

१ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् । स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुद्ध्यति । सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् । अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् । इति याज्ञवल्क्योपि, मलवद्वाससा न संवदेत्, न सहासीत नास्या अन्नमद्यात् ब्रह्महत्यायै एषा वर्णं प्रतिमुच्यास्ते अथो खल्वाहुः अभ्यञ्जनं वा व स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यदिति । या मलवद्वासं संभवन्ति, यस्ततो जायते, सोभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनः, यां पराचीं तस्यै ह्रीत, मुख्यप्रगल्भा । या स्नाति तस्या अप्सुमारुकः या अभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा याथ लिखते तस्यै खलतिरपस्मारी, याङ्क्ते तस्यै काणः । या दतो धावते तस्यै श्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी, या कृणत्ति तस्यै क्लीबः । यां रज्जुं सृजति तस्या उद्बन्धुकः या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः । तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेत् अखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय इति तैत्तरीयसंहिता ।

स्त्रीधर्म हो तो तीन दिन अपना मुख न देखै, जबतक स्नानसे शुद्ध नहो तबतक किसीको अपना वचन भी न सुनावै, स्नानकर स्वामीकाही मुख देखै औरका नहीं अथवा पति न हो तो मनमें पतिका ध्यान करके सूर्यका दर्शन करै यह याज्ञवल्क्य कहते हैं. रजोदर्शनमें मलीन वस्त्र पहर रहै. किसीके साथ न बैठे, न इसका अन्न खाय यह ब्रह्महत्याके निमित्त है । इसपर कहते हैं स्त्री रजोवती हो उसका अन्न नले, मलीन वस्त्र तीनदिन रहै तो सन्तान अच्छी हो जो बनमें जाय उसके स्तेन, जो पराकहो उसके ह्रीत, और वाचाल जो स्नान करती रहै उसके जलमें मारुक, जो उबटन लगावै उसके दुश्चर्मवाला, जो लिखे उसके खलित अपस्मारी, जो सुरमा लगावै उसके काना, जो दँतौन करै उसके श्यामदन्त, जो नख काटै उसके कुनखी जो रस्सी बटे उसके उद्बन्धुक जो दोनोंसे पीवे उनके उन्मादी पुत्र हो जो खर्वसे पिऐ उसके बौना पुत्रहो, तीनोंदिन व्रतकरके अंजलिसे जल पिये. वा प्रजाकी रक्षाके निमित्त बृहत् पात्रसे जल पिये यह तैत्तिरीय संहितामें लिखा है २१४ ॥

पान वा मुखशोधनको रजस्वला स्त्री न करै, और मट्टीके पके और फूटे पात्रमें भोजन करै और अञ्जलीसे जलपान करै, मदनरत्नमें हारीतने लिखा है कि, यदि स्त्रीको रज होजाय तो पृथ्वीपर शयन करै, लोहा हाथ वा मट्टीके पात्रमें भोजन करै और अञ्जलीसे जल पान करै विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, गोरसोंका भोजन पुष्प और भूषणोंका धारण अञ्जन कंकत (कंघी) सुगन्ध लगाना आसन और शय्यापर बैठना तथा अग्निका स्पर्श रजस्वलाको तीन दिनतक न करना चाहिये ॥

ऋतोः पूर्वस्त्रीगमननिषेधः ।

तथा प्रथमर्त्तोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम्–"प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः । व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥" इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः ॥

इसीप्रकार प्रथमकी ऋतुसे पहिले स्त्रीका संग न करै. कारण कि, विष्णुधर्मोत्तरमें ही आश्वलायनका यह वाक्य है कि, रजोदर्शनसे प्रथम स्त्रीका संग न करै और करै तो नरकमें पड़ता है, और वीर्यके वृथा करनेसे ब्रह्महत्याकी प्राप्ति होती है ॥

तत्र ऋत्वनृत्वोरपि गमनम् ।

तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः–'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्' इति ॥ अनृतावप्याह गौतमः–'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति ॥ मनुः–"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तु या ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥" मदनरत्ने देवलः–"तस्मात्त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत् ॥"

फिर ऋतु होनेपर गमन याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, स्त्रियोंको सोलह रात्रि ऋतु लिखी है उनमें युग्म (दो चार आदि) रात्रियोंमें संग करै. गौतमने विना ऋतुमें भी गमन लिखाहै कि, ऋतुमें वा वर्जित तिथियोंको त्यागकर सदा स्त्रीसंग करै, मनुने कहा है कि, स्त्रियोंकी सोलह रात्रि स्वाभाविक ऋतु लिखीहैं उनमें आदिकी चार और ग्यारहवीं और तेरहवीं यह छः रात्रि निंदितहैं शेष १० रात्रि उत्तम हैं. मदनरत्नमें देवलने लिखाहै कि, तिससे तीन रात्रितक चाण्डालस्वरूपिणी रजस्वलाको त्यागदे ॥

तत्र तिथ्यादिनिर्णयः ।

तत्र तिथ्यादीनाह श्रीधरः–"षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्कसितेन्दुजानाम् ॥" उभयत्र पक्षद्वये ॥ आर्यो गुरुः ॥ सितः शुक्रः ॥ इन्दुजो बुधः ॥ "विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निशेककार्ये । पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफलाविफलाः स्युरन्ये" ॥ विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्राण्युपक्रान्तानि रत्नमालायाम्–"भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोदितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोऽर्यमरवित्वाष्ट्राह्वया मारुतः । शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥" उत्तराशब्देनोत्तरात्रयम् ॥ अत्र मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम् ॥

ऋतुमें तिथिआदि श्रीधरने लिखीहैं कि, छठ अष्टमी पूर्णिमा चौथ चतुर्दशी दोनों पक्षोंमें इनको त्यागकर तिथि और सोम बृहस्पति शुक्र बुधवार गर्भाधानमें उत्तम होती हैं, और विष्णु रोहिणी रवि अनुराधा र समी(स्वाति) रेवती मूल तीनों उत्तरा शतभिषा ये नक्षत्र उत्तमहैं. पुष्य धनिष्ठा मृगशिर

अश्विनी चित्रा अदिति (पुनर्वसु) ये मध्यम हैं. इनसे और नक्षत्र निष्फलहैं, विष्णु आदिके नक्षत्र रत्नमालामें ये लिखेहैं ये अश्विनी आदिनक्षत्रोंके क्रमसे स्वामी हैं. अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, नाग, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, इन्द्र, अग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्वेदेवा, ब्रह्मा, गोविन्द, वसु, वरुण, अजचरण अहिर्बुध्न्य पूषा, इनमें मूलको उत्तम और पूज्य लिखाहै ॥

याज्ञवल्क्येन तु–'एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्' इत्युक्तम् ॥ तेन पूर्वत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र–'समासु पुत्रा विषमासु कन्या' इति ज्ञेयं 'युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु' इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥ तत्राप्युत्तरोत्तराः प्रशस्ताः ॥ तदाहापस्तम्बः–'तत्राप्युत्तरा प्रशस्ता' इति ॥ तत्रैव व्यासः–"रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः । पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥ सप्तम्यां सप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान् । नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः । एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसङ्करकारिणी ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः । प्रजापतिश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता ॥ आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान्" ॥ ४ ॥ इति ॥

और याज्ञवल्क्यने रजसे दुबली स्त्रीका संग करता हुआ मनुष्य मघा और मूलको छोडदे, इस वाक्यसे मूलको वर्जित लिखाहै तिससे मूलके विषयमें विकल्प समझना चाहिये, ऋतुओंमें समतिथियोंमें पुत्र विषमतिथियोंमें कन्या उत्पन्न होती है यह हेमाद्रिमें शंखके वाक्यसे लिखा है, ऋतुकी भी तिथि उत्तरोत्तर उत्तम हैं, यही आपस्तम्बने लिखाहै कि, उनतिथियोंमें भी उत्तरोत्तर उत्तम हैं. वहांही व्यासने कहाहै कि, चौथी रात्रिमें गर्भ रहै तो अल्पायु धनहीन पुत्र होताहै, पांचवींमें पुत्रवाली कन्या, छठीमें मध्यम पुत्र, सातवींमें सन्तानहीन कन्या, आठवींमें ऐश्वर्यवान् पुत्र, नौमीमें सुभगा कन्या, दशमीमें श्रेष्ठ पुत्र, ग्यारहवींमें धर्महीन कन्या, बारहवींमें श्रेष्ठपुत्र तेरहवींमें पापिनी और वर्णसंकर करनेवाली कन्या, चौदहवींमें धर्मज्ञाता कृतज्ञ आत्मज्ञानी दृढसंकल्प पुत्र, पन्द्रहवींमें पतिव्रता कन्या, सोलहवींमें सब भूतोंकी रक्षाकरनेवाला पुत्र उत्पन्न होताहै ॥

अत्र चतुर्थदिननिषेधेपि–'स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः।' इति भारतोक्तेः॥ 'चतुर्थेहनि स्नातायां युग्मासु वा गर्भं संदधानि' इति हारीतोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः ॥ तत्रापि–"स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते । गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथञ्चन" इत्यापस्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया ॥ प्रभासखण्डे मरीचिः–'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेहनि शुद्ध्यति ॥" श्रौतकर्ममध्ये रजस्वला चेत्तत्र चतुर्थदिनेप्यधिकारः । 'अथ यदा त्रिरात्रिणी स्यादथैनामुपहूयेत्' इत्यापस्तम्बसूत्रात् । 'चतुर्थेहनि गोमूत्रमिश्राभिरद्भिः स्नाता वासोयोक्त्रजालानि मन्त्रैर्धारयेत्' इति सोमेप्युक्तम् ॥

---

१ बृहस्पति कहते हैं स्त्रीका रज अधिक हो तो कन्या, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुरुष इससे शुक्र वृद्धिके निमित्त स्निग्ध भोजन करना स्त्रीको लघु भोजन करानेसे पुत्र होगा जब कि युग्म रात्रिमें शोणितकी अधिकता हो तो स्त्रीभी पुरुषाकृति होती है, अयुग्ममें शुक्रकी अधिकतासे पुरुष भी स्त्रीकी आकृति होता है कालका निमित्त होनेसे शुक्र शोणितके उपादान कारणकी प्रबलतासे स्त्रीको दुर्बल रक्खे यह मिताक्षरामें कहा है ॥ २१६ ॥

यद्यपि यहां चौथेदिन संगका निषेधहै तोभी ऋतु स्नाता स्त्रीके संग चौथेदिनकी रात्रिमें बुद्धिमान् मनुष्यको गमन करना चाहिये, इस महाभारतके वाक्यसे चौथेदिन स्नान करनेवाली स्त्रीमें वा युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करना चाहिये इस हारीतके वाक्यसे विकल्प जानना चाहिये वहांभी इस आपस्तंवके वाक्यसे व्यवस्था जाननी कि. रजस्वला स्त्रीका चौथेदिन उत्तम स्नानहै और वह रजोधर्मके निवृत्ति होनेपर गमन करने योग्यहै और बिना निवृत्त हुए गमन करने योग्य नहींहै. प्रभास खण्डमें मरीचिने लिखाहै कि, रजस्वलास्त्री पतिके निमित्त चौथेदिन स्नान करके शुद्धहै, और दैवपितरोंके कर्ममें पांचवेंदिन शुद्ध होताहै, वेदोक्त कर्मके बीचमें रजस्वला होजाय तो चौथेदिन भी अधिकारहै कारण कि, आपस्तम्बका यह सूत्रहै कि, जब यह त्रिरात्रिणी होचुके अर्थात् रजके तीनदिन बीतजायं तब इसमें बीजवपन करै, चौथे दिन गोमूत्रमिले जलोंसे स्नान करके वस्त्रोंकी जगह सूतके जालोंको मंत्रोंसे धारण करै, यह सोमयज्ञमें लिखाहै ॥

एवं सर्वत्र श्रौतकर्मणीति धूर्तस्वामिरामाण्डारादयः ॥ अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकं युग्मास्विति बहुवचनानिर्देशादिति विज्ञानेश्वरः ॥ तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम् ॥ 'सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । इदं चर्तौ गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनाऽसंभवे श्राद्धैकादश्यादावपि कार्यम् ॥ 'ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ व्याख्यातं चेदं मिताक्षरायां–'यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यर्तौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोष इति॥ पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये–"दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्थी न च पर्वसु" इति ॥ तदनृतुविषयम् ॥ 'ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्' इति मनूक्तेः ॥ दर्शादौ तु न भवत्येव पर्वणां पर्युदस्तत्वात् ॥ "ऋतुकालं नियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टफलमेव तु" इति वृद्धमनूक्तेः ॥ श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । एतत्सति संभवे ज्ञेयम् ॥

इसीप्रकार सब वेदोक्त कर्मोंमें जानना चाहिये. धूर्तस्वामी रामांडार आदिका कथनहै कि, ऋतुमें सब युग्मरात्रिमें गमन करना, 'युग्मासु' इस बहुवचनसे आवश्यकहै यह विज्ञानेश्वरका मतहै परंतु वह गमन एक रात्रिमें एकवारही करना. कारण कि, श्रेष्ठ चन्द्रमा होय तो सुलक्षण पुत्र एकवारही होताहै. यह याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, यह ऋतु गमन यदि प्रतिबंध आदिसे अन्यकालमें न होसके तो श्राद्ध और एकादशी आदिमें भी करना चाहिये. कारण कि, याज्ञवल्क्यका कथनहै कि, पर्व और आदिकी चार रात्रि त्यागदे तो ब्रह्मचारी होताहै, मिताक्षरामें इसका यह व्याख्यान कहाहै कि, जहां श्राद्धमें ब्रह्मचर्य लिखाहै वहां ऋतुमें गमनकरनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होजाय तो दोष नहीं है, पर्वाणि इस बहुवचनसे अष्टमी और चतुर्दशी लेनी चाहिये. मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखाहै, जो हेमाद्रिमें शिवरहस्यका कथन है कि, दिन जन्मदिन श्राद्धकरके और खाकर और पर्वमें व्रतवाला मनुष्य कल्याण चाहै तो मैथुन न करै, यह वाक्य ऋतुसे भिन्नकालमें जानना. कारण मनुने यह लिखाहै कि–जिसकिसी आश्रममें निवास करताहुआ ऋतुमें गमन करनेसे ब्रह्मचारी रहताहै अमावस्या आदिमें तो स्त्रीगमन नहीं होता. कारण कि, विष्णुपुराणमें पर्वोंका निषेध कहाहै कि, अमावस्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशीमें ऋतुसे भिन्न कालमें भी स्नातक द्विजको ब्रह्मचारी रहना चाहिये. माधवीयमें इस वृद्धमनुके वाक्यसे नियत ब्रह्मचर्य करना कहाहै कि, श्राद्धमें प्रवृत्त मनुष्यको

ऋतुकालमें कभी स्त्रीके संग गमन न करना चाहिये, यदि करै तो अनिष्ट फल मिलताहै पृथ्वीचन्द्रोदयमें इसीप्रकार लिखाहै यह संभव होय तो जानना ॥

अनेकभार्यस्यर्त्तुयौगपद्ये निर्णयः ।

अनेकभार्यस्यर्त्तुयौगपद्ये हेमाद्रौ कश्यपः-"यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोपि वा" इति ॥ ग्रहणमृतुग्रहणम् ॥ ऋग्विधाने-"विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती । गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रो जायते ध्रुवम् ॥"

अनेक स्त्रीवालेकी स्त्री यदि एकवार ऋतुवाली होजाय तो हेमाद्रिमें कश्यपने यह लिखाहै कि, एकबार ऋतुमें विवाहके क्रमसे वा रक्षाके निमित्त जिसके पुत्र न होय उसके संग वा ऋतुकालके क्रमसे भार्यागमन करै, ऋग्विधानमें कहाहै कि, योनिका तीनबार स्पर्श करकै व्रतवाला मनुष्य विष्णुसूक्त जपै, फिर गर्भाधान करै तो अवश्य सुन्दर पुत्र उत्पन्न होताहै ॥

ऋतावगमने निर्णयः ।

अगमने दोषमाह पराशरः-"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥" अस्यापवादमाह मदनरत्ने व्यासः-"व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तामनपत्यामपुष्पिणीम् । कन्यां च बहुपुत्रां च वर्ज्जयेन्मुच्यते भयात्॥२॥" वृद्धां गतरजस्काम् ॥

ऋतुमें गमनके न करनेमें पराशरने दोष कहाहै कि, ऋतुवाली भार्याके समीप जो गमन नहीं करता, उसको घोर गर्भहत्यामें पकना पडताहै, इसमें संदेह नहीं. इसका अपवाद मदनरत्नमें व्यासने लिखाहै रोगी, बंधनस्थ, परदेशी पर्व्वोंमें ऋतुकालमें भी गमन न करनेसे ब्रह्महत्यासे मुक्त होताहै, वृद्धा वंध्या दुराचारिणी मृतवत्सा जो रजस्वला न होतीहो जो कन्याहो बहुत पुत्रहोंय ऐसी स्त्रीका संग भी न करै तो ब्रह्महत्या नहीं लगती, और जन्ममरणसे मुक्त होताहै यहां वृद्धा वह लेनी जिसका रजोधर्म जातारहाहो ॥

गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तम् ।

गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तमाह पारिजाते आश्वलायनः-"गर्भाधानस्याकरणात्तस्यां जातस्तु दुष्यति । अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥" गर्भाधानं च मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम् ॥ "उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतुजन्मसु । सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥" इति ज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः ॥ ऋतौ गमने पराशरः-"ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥" स्त्रीणां तु न स्नानम् ॥ "उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥" इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥

यदि गर्भाधानका अंग हवन न कियाजाय तो पारिजातमें आश्वलायनने यह प्रायश्चित्त लिखाहै कि, गर्भाधानमें होम न किया होय तो उसमें उत्पन्न हुई दुष्ट संतान होतीहै, और न करनेमें ब्राह्मणको गौ देकर पतिको पुंसवन करना चाहिये यह गर्भाधान मलमास शुक्रास्तआदिमें भी करना चाहिये. कारण कि, ज्योतिर्निबंधमें भृगुका कथनहै कि, सम्पूर्ण उत्सव सीमंत ऋतु (गर्भाधान) जन्म (जातकर्म) इनमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका दोष नहींहै, ऋतुकालमें गमन करै तो पराशरने यह लिखाहै कि, ऋतुमें गर्भ

रहनेकी शंकाहै इससे मैथुन करनेवाले मनुष्यको स्नान लिखाहै, यदि ऋतुस्नानके उपरान्त गमन करै तो उसको शौच करना चाहिये जो मूत्र विष्ठाके करनेमें लिखाहै, स्त्रियोंको तो स्नान नहीं लिखा. कारण कि, वृद्धशातातपने यह लिखाहै कि, शय्यापर सोते हुये स्त्री और पुरुष अपवित्र होतेहैं और शय्यासे उठनेपर स्त्री शुद्ध होतीहै और पुरुष अशुद्ध होजाताहै ॥

ऋतौ स्त्रिया अस्पृश्यत्वनिर्णयः ।

अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते–तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागां कृत्वा आद्यभागद्वयं चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यं, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ॥ यत्तु–"प्रागर्द्धरात्रात्प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम्" इत्युक्तम् ॥ तत्र देशाचाराद्व्यवस्था ॥ तथा सप्तदशदिनपर्यन्तं पुना रजोदृष्टौ स्नानमात्रम् ॥ अष्टादशे एकरात्रम् ॥ ऊनविंशे द्व्यहः ॥ विंशतिप्रभृतित्रिरात्रमिति तत एव ज्ञेयम् ॥ यत्तु–'चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते' इति ॥ तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम् ॥ एतच्च यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव । यस्यास्त्ववार्क् प्रायशो रजोदर्शने तत्रोक्तं स्मृत्यर्थसारे–'त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति ॥ एकादशदिने एकरात्रम् ॥ द्वादशे द्विरात्रम् ॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रमिति ॥ प्रयोगपारिजातेप्येवम् ॥ रोगजे तु तत्रैव विशेषः संग्रहे–"रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्त्तते । नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम् ॥" इति ॥ कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव ॥ "साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नातापि स्त्री रजस्वला । यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्त्तते ॥" इति श्राद्धहेमाद्रौ शंखोक्तेः ॥ तत्रापि स्वकालेऽशुचिरेवेत्याह ऋष्यश्रृङ्गः–"रोगजे वर्त्तमानेपि काले निर्याति कालिकम् । तस्मात्कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा संकरो भवेत् ॥"

इसमें कुछ विशेष लिखतेहैं कि, जब रात्रिमें रजोधर्म होय वा जन्म होय तो रात्रिके तीनभाग करके पहले दो भागमें होयतो प्रथमदिन लेना और तीसरे भागमें होय तो अगलादिन लेना, यह मिताक्षरामें कहाहै, जो किसीने यह लिखाहै कि, आधीरात वा सूर्योदयसे प्रथम होय तो प्रथम दिन लेना उसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये इसीप्रकार सूत्रहै (१७) दिनपर्यंत फिर रजोदर्शन होजायतो स्नान मात्रही करै, १८वें दिन एकरात्र १९वेंदिन दोदिन वीस २० आदिमें ३ दिन अशौच मिताक्षराके लिखे अनुसार जानने, जो किसीने यह लिखाहै कि, १४ दिनसे प्रथम रजोदर्शनमें अशुद्धि नहीं होती, उसमें स्नान करनातो इष्टहै, और यहभी वहांही लिखाहै कि, जिस स्त्रीको २० दिनके उपरान्त प्रायः रजोधर्म्म होताहै और जिसको २० दिनसे पहले होताहै उनको स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै कि, १३ दिनके उपरान्त प्रायः रजोधर्मवाली स्त्रीको ११ दिनसे प्रथम अशौच नहीं होता ११ ग्यारवें दिन एकरात्र पीछे ३ दिनका अशौच लगताहै, प्रयोगपारिजातमें भी इसी भाँति लिखाहै कि, रोगसे उत्पन्नहुये रजोधर्ममें तो यह विशेष संग्रहमें कहाहै कि, स्त्रियोंको रोगसे प्रतिदिन जो रजोधर्म होताहै उससे स्त्री अपवित्र नहीं होती. कारण कि, वह विकारसे प्राप्त हुआहै, स्त्रियोंको कर्मका अधिकार तो रजोदर्शनकी निवृत्तिपर कहाहै कारण कि, श्राद्ध हेमाद्रिमें शंखका कथनहै कि, रजस्वला स्त्री स्नान करनेसे भी साधु आचरण नहीं करसकती जबतक प्रवृत्त हुआ रजोधर्म पूर्णतासे निवृत्त न होजाय तिसमें भी रजोधर्म जानेके समय स्त्री अशुद्धही है, यह ऋष्यशृंगने लिखाहै कि, रोगसे हुआ रज वर्तमानभी होय तो भी कालसे उत्पन्न हुआ रुधिर कालमें निकलताहै उस समय मनुष्य प्रमत्तता न करै अन्यथा वर्णसंकर होताहै ॥

रजस्वलापरस्परस्पर्शे निर्णयः ।

तथा–'रजस्वलाया रजस्वलान्तरस्पर्शेऽकामतः स्नानं' कामत उपवासः पञ्चगव्याशनं च॥ असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण कृच्छ्रार्द्धपादोनकृच्छ्रकृच्छ्राणि, क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव, क्षत्रियादीनां हीनवर्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः ॥ वैश्याशूद्र्याः पूर्वया स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च ॥ एतच्च कामतः ॥ अकामतश्च प्राक् शुद्धेरनशनम् ॥

यदि रजस्वलाको अज्ञानसे दूसरी रजस्वला स्पर्श करले तो स्नान और जानकर करले तो व्रत और पञ्चगव्यका भक्षण करै असवर्णा (भिन्नजाति) ओंके स्पर्शमें तो यह लिखाहै कि, ब्राह्मणीको क्षत्रिया वैश्या शूद्रा स्पर्श करलें तो आधाकृच्छ्र पौनकृच्छ्र अतिकृच्छ्र व्रत क्रमसे ब्राह्मणी करै और क्षत्रिया आदि तीनों तो चौथाई कृच्छ्र व्रत करैं तो पवित्र होती हैं. यदि क्षत्रिया आदिकोंको हीनवर्ण स्त्रीका स्पर्श होजाय तो तीनरात व्रतकरैं, यदि वैश्या और शूद्राको अपनेसे पूर्वजातिकी स्त्री छूले तो अहोरात्र वा दो रात्र व्रतकरै, यहभी जानकर स्पर्शमें जानना चाहिये, अज्ञानसे स्पर्शमें तो पवित्रतासे प्रथम अनशन व्रत करैं ॥

चांडालादिस्पर्शे ।

अकामतश्चाण्डालादिस्पर्शेऽप्यनशनमेव प्राक्छुद्धेः ॥ कामतस्तु–प्रथमेऽह्नि त्र्यहः, द्वितीये द्व्यहस्तृतीय एकाहः ॥ श्वस्पर्शे तु द्व्यह एकाहो वा ॥ भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम् ॥ उच्छिष्टयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि मिताक्षरायां ज्ञेयम् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु–'सर्वत्र बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नायः' इति ॥

अज्ञानतासे चाण्डाल आदिके छूलेनेमें भी पवित्रतासे प्रथम अनशनव्रतही लिखाहै, जानकर छूलेनेमें तो प्रथम ३ दिन, २ दिन दो, तीसरे दिन एक क्रमसे व्रत करना कुत्तेका स्पर्श होजाय तो २ वा १ दिन व्रत करै, यदि भोजन करती हुई रजस्वलाके चाण्डाल आदिका स्पर्श होजाय तो ६ दिन व्रत करै, यदि उच्छिष्ट दो रजस्वला परस्पर छूलें तो कृच्छ्र व्रतकरैं इत्यादि प्रायश्चित्त मिताक्षरामें लिखेहैं. स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखाहै कि, जिस स्त्रीकी गोदीमें बालक हो वह छूले तो स्नान करनेसे पवित्र होती है और भोजनके पीछे स्पर्श करले तो अनशन व्रत करनेसे पवित्र होती है ॥

तत्र ऋतुस्नानविधिः ।

स्नानविधिं चाह पराशरः—"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।: पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन । न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत्" ॥ २ ॥

स्नानकी विधि पराशरने इसप्रकार लिखीहै कि, यदि रजस्वला स्त्रीकी नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति होय तो वह पात्रांतरित (एकपात्रसे जो दूसरे पात्रमें लियाजाय) जलसे स्नान करके व्रत करै, किन्तु किसीप्रकार अपने सम्पूर्ण शरीरको जलसे छिडकले, न वस्त्रोंको धोवे न दूसरे वस्त्रोंको धारण करै ॥

रजस्वलास्नानम् ।

अथ रजस्वलास्नानं दैवज्ञवल्लभः–"ब्रह्मानुराधाश्विनसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु । विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥" ज्वरे तूशनाः–"ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा

स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥ दश द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः । अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा" ॥ ३ ॥ इति ॥ इदं चातुरमात्रे ज्ञेयम् ॥ 'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः' इति पराशरोक्तेः ॥

अब रजस्वलाका स्नान लिखतेहैं दैवज्ञवल्लभने लिखाहै कि, रोहिणी अनुराधा अश्विनी सौम्य नक्षत्र हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढ, मघा, उत्तराभाद्रपद इनमें स्त्रियोंको स्नानकी विधि लिखी है,यदि ज्वरवाली स्त्री रजोवती होजाय तो उसका शौच किसप्रकार होय और किस कर्मसे पवित्र होय, चौथा दिन जब आवे तब उस रजस्वलाको और शुद्धस्त्री स्पर्श करै, और वह स्त्री सचैल स्नान करके फिर जलको स्पर्श करै फिर उस रजस्वलाका स्पर्श करै, इस प्रकार १० तथा १२ बारहवार करके बारम्वार आचमन करै, और अन्तमें वस्त्रोंको छोड़दे तो फिर वह पवित्र होजाती है यह सब रोगियोंके विषयमें उशनाने कहा है कारण कि, पाराशरने यह लिखा है कि, रोगीको स्नान करना प्राप्त होवे तो अच्छा मनुष्य स्नान कर २ के छूले ॥

रजसोऽज्ञाने निर्णयः ।

रजसोऽज्ञाने तु पराशरमाधवीये प्रजापतिः–"अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि । कृतं गृहेषु दुष्टं स्याच्छुद्धिर्न स्यात्त्रिरात्रतः ॥" देवजानीये कारिकायां–"उच्छिष्टा तु द्विजातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति ॥ उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत् ॥"

रजका अज्ञान होयतो पाराशरमाधवीयमें प्रजापतिने यह लिखाहै कि, यदि मलका ज्ञान नहोय वा वस्त्रोंमें मलिनता होयतो घरमें किया हुआभी स्नान दुष्ट होजाता है, किन्तु तीनदिन व्रतसे उसकी शुद्धि होती है. देवजानीय कारिकामें कहा है कि, यदि द्विजातियोंकी उच्छिष्ट स्त्री रजको देखलेय तो आधे उच्छिष्टसे प्रथम व्रत और उससे पीछे ३ तीन व्रत करै ॥

पुंसवनम् ।

अथ पुंसवनम् ॥ प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः–"द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथ वा ॥" बृहस्पतिः–"तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्र शोभनम् । गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथवाष्टमे ॥" सकृत्प्रसूता गृष्टिः ॥ एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते ॥ बह्वृचकारिकापि–"कर्त्ता स्याद्देवरस्तस्या यस्याः पत्युरसंभवः । आवर्त्तेत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः" ॥

अब पुंसवनसंस्कार प्रयोगपारिजातमें जातूकर्ण्यने लिखाहै कि, दूसरे वा तीसरे महीनेमें पुंसवन होताहै, अथवा गर्भके प्रगट होनेपर वा सीमंतके संग करना. बृहस्पतिका कथन है कि, गृष्टि (प्रथम गर्भवती) से और स्त्रीका तीसरे महीनेमें पुंसवन श्रेष्ठ है, और गृष्टिका चौथे छठे . आठवें महीनेमें श्रेष्ठ है, यह कर्म सब गर्भोंमें होताहै यहभी इससे जानागया. बह्वृचकारिकामें कहाहै कि, जिस स्त्रीका पति निकट न होय उसका पुंसवन देवरको करना यह कर्म प्रतिगर्भमें होताहै यही मर्यादाहै ॥

ब्राह्मे"गर्भाधानादिसंस्कर्त्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ अभावे स्वकुलीनः स्याद्बान्धवोऽन्यत्र गोत्रजः ॥" मदनरत्ने सत्यव्रतः–"मृतो देशान्तरगतो भर्त्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत् ॥" हेमाद्रौ यमः–'प्रथमे मासि द्वितीये वा'

---

१ गृष्टि–प्रथमवारकी गर्भवती ।

पुंनक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यादिति' इति ॥ वाराहः-"हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः। पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि" ॥ अनुराधापि पुन्नक्षत्रं 'अनुराधान् हविषा वर्धयन्तः' इति श्रुतेः ॥ गर्गोपि-"पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः ॥ अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनुराधा तथाश्वयुक् ॥" नृसिंहः-'रिक्तां पर्व च नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः' ॥ ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः-"मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य। काकी च वन्ध्या भवतीह शुक्रे स्त्रीपुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥" अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः ॥ दीपिकायां तु-'चतुर्थेऽनवलोभनम्' इत्युक्तम् ॥

ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, गर्भाधान आदि संस्कारोंका करनेवाला पिता अत्यन्त उत्तम कहाहै पिता न होयतो कुलीन वा और गोत्रका पुरुष होता है. मदनरत्नमें सत्यव्रतने कहाहै कि, पति मृतक होगया हो वा देशान्तरोंमें हो और स्त्रीका संस्कार न हुआ होय तो देवर गुरु वा किसी वंशके गुरुसे संस्कार करादेना. हेमाद्रिमें यमराजने कहा है कि, पहले दूसरे महीनेमें जब पुरुषनक्षत्रपर चन्द्रमा होय तब पुंसवन करना चाहिये. वराहपुराणमें लिखा है कि, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्प ये नक्षत्र पुरुषसंज्ञक कार्योंमें उत्तम लिखेहैं, अनुराधा भी पुरुषनक्षत्र वर्णन कियाहै अनुराधाको हविदानसे देवताओंने बढाया, यह श्रुति है. गर्गने कहाहै कि, श्रवण पुष्प, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, प्रौष्ठपाद ये सब पुरुष नक्षत्रहैं. नृसिंहने लिखाहै कि, रिक्ता पर्व नौमीको पुंसवन कर्म न करना. ज्योतिर्निबन्धमें वसिष्ठने कहा है कि, शनैश्चरको पुंसवन करनेसे मृत्यु, सोमवारको शरीरकी हानि, बुधमें सन्तानका मरण, शुक्रमें काकवन्ध्या, रविवार, मंगल, बृहस्पतिको पुंसवन होय तो पुत्रकी प्राप्ति होतीहै, अनवलोभन कर्मका भी यहही समयहै, दीपिकामें तो चतुर्थ महीनेमें अनवलोभन लिखा है ॥

सीमंतोन्नयनम्।

हेमाद्रौ बैजवापः-"अथ सीमन्तोन्नयनं चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे च" इति ॥ वसिष्ठः-'चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे ॥' हेमाद्रौ शंखः-'गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावद्वा न प्रसवः॥' कार्ष्णाजिनिः-"गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा। सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा" मासश्चात्र सौरः सावनो वा ॥ कालविधाने-"चतुर्थषष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयम्। सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं च कुर्यात् ॥" वसिष्ठः-'चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथ वाष्टमे ॥' ज्योतिर्निबन्धे नारदः-'अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे ॥' कालविधाने-'सीमन्ते तिष्यहस्तादिति हरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः। पक्षच्छिद्रं च रिक्ता पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः ॥' अदितिः पुनर्वसुः ॥

अब सीमंतोन्नयन हेमाद्रिमें बैजपायनने लिखाहै कि, चौथे पांचवें छठे आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन करै. वसिष्ठने कहा है कि, चौथे सातवें छठे वा आठवेंमें करै. हेमाद्रिमें शंखने कहाहै कि, गर्भके चलनेपर सीमन्त करै, कार्ष्णाजिनि कहते हैं कि, जबतक जन्म न होय तबतक सीमन्तोन्नयन करना चाहिये. इसमें महीना सौर वा सावन लेना चाहिये, कालविधानमें कहाहै कि, द्विजातियोंकी स्त्रियोंका सीमन्तकर्म प्रथम गर्भमें चौथे छठे आठवें महीनेमें करना चाहिये, और आठवें महीनेमें विष्णुबलि करनी. वसिष्टने कहाहै कि, चौथे छठे वा आठवें सावन वर्षके महीनेमें करै. ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, रिक्त-

पर्वसे भिन्न दिनमें और मंगल, सूर्य, बृहस्पति वारमें सीमन्त करना, कालविधानमें कहाहै कि, सीमन्तमें पुष्य हस्त पुनर्वसु श्रावण मृगशिरा रेवती रोहिणी तीनों उत्तरा यह ग्रहण कियेहैं ॥

तत्र पक्षच्छिद्रनिर्णयः ।

पक्षाच्छिद्रं चाह वसिष्ठः–"चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूता ५ ष्ट ८ मनु १४ तत्त्वां २२ क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः ॥ २ ॥" कालनिर्णये– "शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसंति केचित्सीमंतकर्मणि ॥" बृहस्पतिः–'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे ॥" नारदः–"विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत् । वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवा निश्यपि केचन" वाराः पूर्वोक्ता एव ॥

तहां पक्षका छिद्र वसिष्टने लिखाहै कि, चतुर्दशी चतुर्थी अष्टमी नवमी षष्ठी द्वादशी तिथियोंमें क्रमसे पांच आठ चौदह पच्चीस नव दश घड़ी त्यागनी चाहिये शेष घड़ी उत्तम हैं. कालनिर्णयमें कहाहै कि, कोई एक आचार्य सीमंतमें चन्द्रमा उत्तम होयतो चतुर्थी चतुर्दशी पूर्णिमाको भी उत्तम मानते हैं, बृहस्पतिने सीमंतमें शुक्लपक्ष उत्तम लिखाहै और अन्तकी पांच तिथियोंको त्यागकर कृष्णपक्षभी श्रेष्ठहै. नारदने लिखा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सीमन्त दिनमें करै और वैश्य और शूद्रका दिनमें और रात्रिमें भी करना चाहिये इसमें पूर्वोक्त दिन लेने चाहिये ॥

एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः–'सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता' इति देवलोक्तेः ॥ सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ "सकृच्च कृतसंस्कारा सीमन्तेन द्विजस्त्रियः । यंयं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्" इति हारीतोक्तेः ॥ "सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते । केचिद्गर्भस्य संस्कारान्प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते" इति हेमाद्रौ विष्णुवचनाच्च ॥ स एव–"स्त्री यद्यकृतसीमन्ता प्रसवेत्तु कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति" ॥

सीमंत एकबारही करना चाहिये यह विज्ञानेश्वरका कथन है. कारण कि, देवलने कहाहै कि, एकबार संस्कार कीहुई स्त्री सब गर्भोंमें संस्कृत होतीहै. हेमाद्रिका तो यह कथनहै कि, एकबार वा प्रतिगर्भमें सीमंत करै, कारण कि, हारीतने कहाहै कि, सीमंतसे एकबार संस्कृत कीहुई ब्राह्मणकी स्त्री जिस २ गर्भको उत्पन्न करतीहै वह सब संस्कृत होतेहैं, और हेमाद्रिमें विष्णुने कहाहै कि कोई सीमन्तोन्नयन कर्मको स्त्रीका संस्कार नहीं मान्ते, किन्तु गर्भका संस्कार होनेसे प्रतिगर्भ करतेहैं, विष्णुकाभी यही कथन है कि, यदि सीमंतके किऐ विना जो स्त्रीको प्रसव होजाय तो पुत्र होनेपर विधिसे फिर संस्कार करनेके योग्य होतीहै ॥

सीमन्तान्नभोजने प्रायश्चित्तनिर्णयः ।

सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौम्येन–"ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" ऋग्विधाने तु–"अरा इवेज्जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः । सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्बिषात्तदा"इति॥

सीमंतके भोजनमें माधवीयमें धौम्यने यह प्रायश्चित्त लिखाहै कि, ब्रह्मौदन (यज्ञोपवीतसे पहिले कर्म) सोमसीमन्तोन्नयनमें भोजन करके चान्द्रायण करना चाहिये, ऋग्विधानमें यह कहाहै कि, जो मनुष्य सीमंतमें यदि भोजन करे तो (अराइव) इसमंत्रका सौवार जप करै तब पापसे मुक्त होताहै, इसमें संदेह नहीं॥

गर्भिणीतत्पतिधर्माः ।

अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः ॥ वराहः-'सामिषमशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेदतः प्रभृति।' गृह्यकारिकायाम्-" अङ्गारभस्मास्थिकपालचुल्लीशूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी । सोलूखलाढ्ये दृषदादिके वा यन्त्रे तुषाढ्ये न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्न वारिण्यवगाहनं सा। अङ्गारभूत्या न नखैर्लिखेत्क्ष्मां कलिं वपुर्भङ्गमथो न कुर्यात् ॥ नो मुक्तकेशी विवशाथ वा स्याद्भुङ्क्ते न संध्यावसरे न शेते । नामङ्गलं वाचमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतले न यायात् ॥ ३ ॥" विष्णुधर्मोत्तरे-"कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्णलवणानि च । आयासं च व्यवायं च गर्भिणी वर्जयेत्सदा ॥" हेमाद्रौ कौण्डिन्यः-"मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ॥ "

अब गर्भिणी और उसके पतिके धर्मोंको लिखतेहैं वराहपुराणमें लिखाहै कि, गर्भधारणसे (प्रारम्भसे) लेकर स्त्री मांससहित भोजन न करै. गृह्यकारिकामें भी कहाहै गर्भवती स्त्री अंगार भस्म हड्डी कपाल चूल्हा छाज ऊखल पत्थरआदि यंत्र तुषआदि बुहारी गोमयके पिंडआदि पर न बैठे, और जलमें जाकर स्नान न करै, अंगारेकी राखसे (कोयले) नखसे पृथ्वीको न कुरेदे, कलह और शरीरभंग अर्थात् अँगडाई न ले, खुले बाल न रक्खै, नंगी नहो, संध्याके समय भोजन न करै, न शयन करै, अमंगल वाक्य न कहै, शून्यघर और वृक्षके नीचे नजाय, विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै कि, कटु, तीखा, कसैला, अत्यन्त गरम, और लवणका भोजन परिश्रम और मैथुनको गर्भिणीको सदा त्यागना चाहिये, हेमाद्रिमें कौडिन्यने कहाहै कि, मुंडन पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीके पति त्यागदें ॥

मिताक्षरायाम् ॥ " उदन्वतोम्भसि स्नानं नखकेशादिकर्त्तनम् । अन्तर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्नप्रजा जायते ध्रुवम् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे-' गयायां पिण्डदानस्य न कदाचिन्निराक्रिया ॥ ' अत्र काले दाप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृकगर्भिणीपत्या शौचादिनिमित्तस्य ॥ अग्निहोत्रे यावज्जीवत्कालपरत्वाभावात् ॥ अन्यथाशौचेपि गयायात्राश्राद्धं च स्यात्। यत्र तु निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौचेऽग्निहोत्रादेर्यथा वा जीवत्पितृकस्य मातुर्गयान्वष्टकादौ तत्र तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः ॥

मिताक्षरामें कहाहै कि, गर्भिणीके पतिको समुद्रके जलमें स्नान, नख और केशोंके कटवानेसे तो निश्चय प्रजाहीनता होतीहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें गरुडपुराणका वाक्यहै कि, गयामें पिंडदानका किसीप्रकार निषेध नहींहै, इसवाक्यमें कालमें दाप्रत्यय की है, इससे निषिद्ध कालका अपवाद (निषेध) है, कुछ जीवत्पितृक और गर्भिणी पतिके अशौच आदि निमित्तका नहींहै. कारण कि, यह वाक्य अग्निहोत्रमें जीवनपर्यन्तके तुल्यसमयका बोधक नहींहै, अन्यथा अशौचनिमित्तमें गयाकी यात्रा और श्राद्धभी न होंगे, और जहां

---

१ अराइवेद चरमा अहेव प्रप्रजायन्ते अकवामहोभिः। पृश्नेः पुत्रा उपमासोरभिष्ठाः स्वयामत्यामरुतः संमिमिक्षुः ॥ ऋ० ४ । ३ ।२३ ॥

निमित्तके संयोगका अपवाद होताहै जैसे अशौचमें अग्निहोत्र आदिका वर्जना और जीवत्पितृकको माताकी गयाकरनेको जाना और अन्वष्टका आदिमें वहां वही होताहै और नहीं, यह संक्षेपसे कहाहै ॥

प्रयोगपारिजाते कश्यपः–"गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्याधिरोहणम् । व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥ शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम् । व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥ २ ॥" मदनरत्ने स्कान्दे–"हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेद्गर्भिणी न हि ॥ २ ॥" बृहस्पतिः–"चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणी यदा । यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः ॥" याज्ञवल्क्यः–"दौर्हृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥" दौर्हृदं गर्भिणीप्रियम् ॥

प्रयोगपारिजातमें कश्यपने लिखाहै कि, गर्भिणी–हाथी, अश्व, पर्वत, महल आदिपर चढ़ना और मैथुन और शीघ्रगमनको छोडदे, शोक रक्तविमोक (फस्त) साहस कुक्कटके तुल्य बैठना परिश्रम और दिनमें सोना और रात्रिमें जागना न चाहिये. मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्यहै कि, हलदी कुंकुम कूर्पासक (चोली) पान मंगलके श्रेष्ठभूषण केशोंका संस्कार कबरी (मोंढ़ीगूथना) हाथ और कानके गहनोंको भर्ताकी आयुकी इच्छावाली गर्भिणी न त्यागै. बृहस्पतिने कहाहै कि, चौथे छठे आठवें महीनेमें और विशेषकर आषाढमें गर्भिणी यात्रा न करै याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, दौहृद (गर्भिणीका प्रिय) न करनेसे गर्भमें दोष विरूप मरण होजाताहै, तिससे स्त्रीको प्यार रक्खे ॥

तत्रैवाश्वलायनः–"वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः । श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ॥" श्राद्धं तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजातः ॥ कालविधाने मुहूर्त्तदीपिकायां च–"क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादि वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् । उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम् ॥" रत्नसंग्रहे गालवः–"दहनं वपनं चैव चौलं वै गिरिरोहणम् । नाव आरोहणं चैव वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ अव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्मसङ्गम् । तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं न कुर्यात् ॥ अव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परम् । षण्मासात्परतः सूतिर्नवमेरिष्टवासिनी ॥ ३ ॥"

वहांही आश्वलायनने कहाहै कि, मुंडन मैथुन तीर्थ और सातमासके गर्भसे पीछे श्राद्धको वेदका जानने वाला गर्भिणीका पति न करै, यहां श्राद्धशब्दसे श्राद्धका भोजन ग्रहण करतेहैं, यह प्रयोगपारिजातमें लिखाहै कालविधान और मुहूर्तदीपिकामें कहाहै कि, क्षौर, मृतकके पीछे गमन, नखोंको कतरना, युद्धआदि, घरका निर्माण करना, अत्यन्त दूरगमन और विवाह तथा यज्ञोपवीत और समुद्रमें स्नान ये गर्भिणीके पतिकी आयुके क्षीण करने वाले होतेहैं, रत्नसंग्रहमें गालवने कहाहै कि, दाह मुंडन चौल पर्वतपर चढ़ना नावपर बैठना ये गर्भिणीका पति त्यागदे, और स्थानमें भी लिखाहै कि, गर्भप्रतीतवाली स्त्रीका पति समुद्रमें तरन मृतकवहन तथा और स्त्रीका संग और गयादि तीर्थ और यागआदि वस्तुकी विधि इनको यत्नसे त्यागदे तीनमहीने उपरान्त स्त्री प्रगट गर्भवाली होती है और छः महीने उपरान्त सूति (प्रसूति) और नवें महीनेमें सूतिकागृह (सोवर) निवासिनी होतीहै ॥

सूतिकागृहप्रवेशः।

अथ सूतिकागृहप्रवेशः॥ गर्गः–"रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवरुणयोरपि। पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठास्वुत्तरासु च॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम्॥" एतच्च संभवे॥ 'प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत्' इति वसिष्ठोक्तेः॥ तच्च नैर्ऋत्यां कार्यम्। 'वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम्' इति वसिष्ठोक्तेः॥ विष्णुधर्मे–"दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः। वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च" इति॥

अब सूतिकागृहमें प्रवेशका निर्णय कहतेहैं कि, रोहिणी मृगशिर स्वाती शतभिषा पुनर्वसु पुष्य हस्त धनिष्ठा तीनों उत्तरा अनुराधा चित्रा अश्विनी नक्षत्रोंमें सूतिकाग्रहमें प्रवेश करना चाहिये, यहतो सम्भवमें जानना. कारण कि, वसिष्ठने लिखाहै कि, प्रसवके समयमें शीघ्रही प्रवेश करावे, विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, सूतिका गृहको दशदिनतक अस्त्र वह्नि तिंदुक (तेंदु) आलात (जलाकाष्ठ) जलसे भरेहुये घड़े दीपक मूशल वारि वर्णक (समान) तथा चित्रोंसे सुशोभित रक्खै॥

जातकर्मनिर्णयः।

अथ जातकर्म। पारिजाते वसिष्ठः–'श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत्'॥ मनुः–'प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।' वर्द्धनं छेदनम्। हेमाद्रौ वैजवापः–"जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि। दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत्॥" पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे॥ 'अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि॥' पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते॥ तदाह तत्रैव। कार्ष्णाजिनिः–"प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान्पितॄञ्छ्राद्धेन तर्पयेत्॥" एतच्च रात्रावपि कार्यम्–'पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्यां दत्तमक्षयम्' इति तत्रैव व्यासोक्तेः॥ वैजवापः–"जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते। स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोपि वा॥" एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्टिवदाशौचान्ते कार्यमिति शङ्का परास्ता॥ 'जाते कुमारे पितॄणाममोदात्पुण्यं तदहः' इति हारीतोक्तेश्च॥

अब जातकर्मका निर्णय लिखते हैं पारिजातमें वसिष्ठने लिखाहै कि, पिता पुत्रके जन्मको सुनकर सचैल स्नान करै, नालकटने उपरान्त मनुष्यका जातकर्म लिखाहै हेमाद्रिमें वेजवापने लिखाहै कि, जन्म होनेपर विधिपूर्वक जातकर्म करै, यदि दैवयोगसे वह समय बीत जाय तो सूतकके उपरान्त करै, पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, पुत्र, वा कन्याके जन्ममें नाल कटनेसे प्रथम श्राद्ध करना चाहिये, सोई तहां काष्णार्जिनिने लिखाहै कि, पुत्र और कन्याके जन्ममें तथा सूर्य और चन्द्रके ग्रहणमें स्नान करके अपने पितरोंको श्राद्धसे तृप्त करना चाहिये, यह रात्रिमें भी करना, कारण कि, पुत्र जन्ममें तथा प्रयागकी यात्रामें रात्रिके दान करनेका अक्षय फल होताहै. यही वहां व्यासने लिखा है कि, वैजवापका तो यह कथन है कि, जन्मके समयही स्तनपान तथा नाल छेदनसे भी पूर्व पुत्रका जातकर्म करना चाहिये, इससे नैमित्तिक भी यह कर्म जातेष्टिके तुल्य अशौचके अन्तमें करना चाहिये, यह शंका परास्त हुई, और हारीतनेभी लिखाहै कि, पुत्रके जन्ममें पितरोंको प्रसन्नता होती है इससे वह जन्मका दिन महापवित्र है॥

अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये आदित्यपुराणे ॥ 'जातश्राद्धे तु पक्वान्नं न दद्याद्ब्राह्मणेष्वपि' इति ॥ हेमाद्रिस्तु-"पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्" इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह ॥ एतच्च जननाशौचे मरणाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः-"आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥"

यहां श्राद्ध आमान्न वा सुवर्णसे करना चाहिये, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें आदित्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जातकश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पकान्न न देना चाहिये, हेमाद्रितो यह कहतेहैं कि, कल्याणोंकी कामनावाले पुरुषको पुत्रजन्ममें सुवर्णसेही श्राद्ध करना चाहिये, पक्व वा आमान्नसे न करना इस सम्वर्तके कथनसे सुवर्णसे ही श्राद्ध करना चाहिये, यह जन्म वा मरणके अशौचमेंभी करना. यह मिताक्षरामें प्रजापतिने लिखाहै कि, यदि किसी अशौचके होनेपर पुत्रका जन्म होजाय तो कर्ताकी शुद्धि तो उससमयमें होजाती है और जन्माशौचतो मरणाशौचके संगमें दूर होजाताहै ॥

केचित्तु-"मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि" इति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः ॥ स्मृत्यर्थसारेपि विकल्प उक्तः-"मृदुध्रुवचरक्षिप्रमेष्वेषामुदयेषु च । गुरौ शुक्रेथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च॥" मृद्वादिलक्षणमाह श्रीधरः-"रोहिण्युत्तरभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं चाश्विदिनेशपुष्यमनलेन्द्राग्नी तु साधारणम् । उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगाति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वातिशतोडुवस्वादितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम् ॥" अत्र सर्वत्र जातकर्म नामकर्मादावुक्तकालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम् । "देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगेज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥" इति । मदनरत्ने नारदोक्तेः ॥ बृहस्पतिरपि-"मुख्यालाभे विधिज्ञेन विधिश्चिन्त्योऽप्रमादतः । नक्षत्रतिथिलग्नानां विचार्यैवं पुनः पुनः" ॥ सूतके सन्ध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥

किन्हींका यह कथनहै कि, मरणाशौचमें पुत्रजन्म होजाय तो अशौचके उपरान्त विधिसे जातकर्म करै, इस स्मृतिसंग्रहके वाक्यसे अशौचके उपरान्तमें करना, स्मृत्यर्थसारमें भी विकल्प लिखाहै, मृदुध्रुवचरक्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र और इनके उदयमें और गुरु शुक्र केन्द्रमें हों ऐसे लग्नमें जातकर्म और नामकर्म करै, मृदु आदिका लक्षण श्रीधरने लिखाहै कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा स्थिरहैं, आर्द्रा मूल ज्येष्ठा आश्लेषा ये दारुण हैं, अश्विनी हस्त पुष्य ये क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र हैं, कृत्तिका ज्येष्ठा विशाखा साधारण संज्ञकहैं, तीनों पूर्वा भरणी उग्रसंज्ञकहैं और अपनी २ संज्ञाके अनुसार यह सब फल देतेहैं, यहां सब स्थान जातकर्म्म और नामकर्म्म आदिमें समयका व्यतिक्रम होजाय तो नक्षत्रआदि जानने. कारण कि, मदनरत्नमें नारदने यह कहाहै कि, देश और कालके उपद्रवसे यदि समय बीतजाय तो वह उत्तरायणमें उससमय करना चाहिये कि, जिससमय बृहस्पति शुक्र चन्द्रमाका अस्त न होय. बृहस्पतिने कहाहै कि, प्रमादसे मुख्यसमय न मिले तो विधिज्ञाता नक्षत्रतिथि लग्नकी विधिको बारम्बार इसप्रकार विचार करदेखे. सूतक होयतो संध्याआदिमें विशेष लिखेंगे ॥

अथ जन्मनि दुष्टकालाः ।

तत्र गण्डान्तः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः-"पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः संधिनाडीद्वय-

न्तथा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्धं मृतिप्रदम् ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशभसंधयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥ ३ ॥ " रत्नमालायाम्–"पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् । स्याद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥ " रत्नसंग्रहे नवनीतारिष्टे–"सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते । वर्जयेद्दर्शनं श्रावं तच्च षाण्मासिकं भवेत् ॥ तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु संधौ तनयस्य नाशः ॥ सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धूञ्जीवन्पुनः स्याद्बहुवारणाश्वः " ॥

अब जन्ममें दुष्टसमय लिखतेहैं, उनमें गंडांत ज्योतिर्निबंधके वाक्यसे लिखाहै, पूर्णा और नन्दा दोतिथियोंकी संधिकी दोघड़ी गंडांत कहातीहैं, वह जन्म यात्रा विवाह आदिमें मृत्युकी देनेवालीहैं, कर्क सिंह वृश्चिक धन मेषके मध्यकी आधी घड़ी गंडांत कहातीहै, वहभी मृत्युदेनेवालीहै, आश्लेषा ज्येष्ठा रेवतीके अन्तकी सोलह घड़ी और इनसे अगले नक्षत्रोंका प्रथमपाद गंडांत संज्ञकहै, रत्नमालामें कहाहै कि, रेवती अश्विनी आश्लेषा मघा ज्येष्ठा और मूलके बीचकी चार घड़ी गण्डान्त कहातीहैं वह यात्रा जन्म विवाहमें अनिष्टहैं, और रत्नसंग्रहमें नवनीतारिष्टमें कहाहै कि, गंडांतमें उत्पन्न हुए सब बालकोंका त्याग लिखाहै, अथवा छः महीने तक उसका देखना और सुनना त्याग दे । तिथि और नक्षत्रके गंडांतमें पिता और माताकी मृत्यु होतीहै, लग्नकी संधिमें पुत्रकी मृत्यु होतीहै. सब गंडांतोंमें उत्पन्न हुआ बालक नहीं जीता और बन्धुओंको नष्टकरताहै और जीवित रहै तो बहुतसे हाथी और घोडोंसे युक्त होताहै

तत्र दाननिर्णयः ।

अथैषां दानमुत्तरगार्ग्ये–"तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते । काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते । अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः " ॥ ३ ॥

अब इनका दान कथन करतेहैं, उत्तरगार्ग्यमें कहा है कि, तिथि, नक्षत्र, लग्नके गण्डांतमें क्रमसे बैल गौ सुवर्ण देय तो गण्डांतका दोष नष्ट होताहै, उत्तरामें तिलमात्र पुष्य नक्षत्रमें गोदान चित्रामें बकरीका दान, पूर्वाषाढामें सुवर्णका दान करै, उत्तरा तिष्य चित्रा पूर्वाषाढामें उत्पन्न हुए बालकके नक्षत्रका आकार बनाकर मनुष्यको प्रयत्नसे शान्ति करानी चाहिये ॥

आश्लेषाफलनिर्णयः ।

अथाश्लेषाफलम् ॥ "मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः । बाणाद्रिनेत्रहुतभुक्छ्रुतिनागरुद्रषण्णन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः ॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामक्रियारतिः । पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात् ॥ २ ॥

अब आश्लेषाका फल लिखतेहैं, माथा, मुंह, नेत्र, गर्दन, दोनों स्कन्ध, दोनों भुजा, हृदय, जानु, लिंग, चरण–यह आश्लेषाके देहका भागहै इसकी मस्तकके क्रमसे ये घडीहैं पांच ५ सात ७ दो २ तीन ३ चार ४ आठ ८ रुद्र ११ छः ६ नव ९ पांच ५ इनका क्रमसे यह फलहै कि, राज्य, पितृनाश, माताका नाश, यथेच्छ कर्ममें प्रीति होनी, पिताकी भक्ति, बलवान्, बालकका मरण, त्यागी, भोगी, धनवान्

ज्येष्ठाफलनिर्णयः ।

अथ ज्येष्ठाफलं ब्रह्मयामले-"ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता । तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके ॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे ॥ नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके ॥ ३ ॥" इति ॥

ज्येष्ठाका फल ब्रह्मयामलमें लिखाहै कि, ज्येष्ठाकी आदिमें माताकी माता, दूसरेमें माताका पिता, तीसरेमें माताका भ्राता, चौथेमें माता, पांचवेंमें अपनी आत्मा, छठेमें गोत्र, सातवेंमें दोनों वंश, आठवेंमें बड़ाभाई, नवेंमें श्वशुर, और दशवें अंशमें सबको अरिष्ट करताहै ॥

मूलफलनिर्णयः ।

अथ मूलफलम् ॥ भल्लाटः-"अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् । समाष्टकं पिताऽथ वा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथ ॥ धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ प्रतीपमन्त्यपादतः फलं तदेव सार्पभे ॥ २ ॥" अभुक्तमूलं त्वाह वृद्धवसिष्ठः-"ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत् ॥" केचिज्ज्येष्ठान्त्यमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः ॥ कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तं-"मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः । मातरं स्वं तृतीयोर्थान्सुहृदं तत्तुरीयजः ॥ फलं तदेव सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्यपादतः ॥"

अब मूलका फल लिखतेहैं भल्लाटने कहा है कि, अभुक्त मूलमें उत्पन्न हुए बालकको त्यागदेना, अथवा उसके पिताको आठ वर्षतक उसका मुख न देखना चाहिये, मूलके पहिले चरणमें पिता, दूसरेमें माताकी मृत्यु होती है, तीसरेमें धननाश, चौथे चरणमें शुभ है, इससे विपरीत आश्लेषाके अन्य चरणसे होताहै, अभुक्त मूलको वृद्ध वसिष्ठने लिखाहै कि, ज्येष्ठाके अन्त्यकी एकघडी, और मूलके आदिकी दोघडीको अभुक्त मूल कहाहै उसमें उत्पन्न हुए बालकको त्यागदे, कोई, तो ज्येष्ठाका अन्त्य और मूलके आदिके चरणको अभुक्तमूल लिखतेहैं, कश्यपसंहितामें तो अन्यथा लिखा है कि, मूलके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुआ बालक पिताको, दूसरेमें माताको, तीसरेमें धन और मित्रोंको नष्ट करता है, इससे विपरीत फल अन्त्यके पादसे आश्लेषामें जानना चाहिये ॥

मूलवृक्षनिर्णयः ।

अथ मूलवृक्षः ॥ जयार्णवे-"मूलं स्तंभं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा बाणा रसा रुद्रा मूलभेदः प्रकीर्तितः । मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः ॥ त्वचि भ्रातृविनाशाय शाखा मातृविनाशकृत् । पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः ॥ फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम् ॥४॥" अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्-"मूले सप्तवटीषु मूलहननं स्तम्भेष्टसु स्वक्षयं त्वग्दिग्बन्धविनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः । पत्रैर्कैः सुकृती तु बाणकुसुमे मंत्री फले सागरे राजा वह्निशिखाल्पमायुरिति सन्मूलाङ्घ्रिपे स्यात्फलम् ॥"

अब मूल वृक्ष कथन करतेहैं, जयार्णवमें कहा है कि, जड स्तम्भ त्वचा शाखा पत्र पुष्प शिखाको क्रमसे चार सात दश आठ नव पाँच छः ग्यारह घडी होती हैं, यह मूलका भेद लिखाहै, मूलमें मूलका

नाश, स्तम्भमें हानि और धनका क्षय, त्वचामें भाईका नाश, शाखामें माताका नाश होताहै, पत्रोंमें कुटुम्ब मरता है, पुष्पोंमें राजाका प्रिय, फलमें राज्यका लाभ, शिखामें अल्पजीवन होताहै, अन्यत्र तो अन्यथा लिखा है कि, मूलकी सात घडियोंमें मूलका नाश, स्तम्भकी आठ घडीमें सुखका क्षय, त्वचाकी दशघडीमें बन्धुओंक नाश, शाखाकी ग्यारह घडीमें मामाका नाश, पत्रोंकी द्वादश घडीमें पुण्यशील, पुष्पोंकी पांच घडीमे मन्त्री, फलकी सात घडीमें राजा, शिखाकी तीन घडीमें अल्पायु होता है, यह मूलवृक्षका फल होताहै ॥

भूपालवल्लभः–"वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये । पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति ॥ स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले चेद्धनागमः । मर्त्यलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥"

भूपालवल्लभने कहा है कि, वृष वृश्चिक सिंह कुम्भमें मूल स्वर्गमें होतेहैं, मिथुन तुला कन्या मीनलग्नमें पातालमें, मेष धन कर्क मकरमें पृथ्वीमें रहतेहैं यह मुनिजनोंने कहाहै मूल स्वर्गमें होयतो राज्य, पातालमें होय तो धनकी प्राप्ति, और जब मूल मृत्युलोकमें हो तब शून्य अर्थात् सर्वनाशक कहातेहैं ॥

वसिष्ठः–"नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति । तदन्त्यपादे जनितो निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवे कलत्रम् ॥ सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् । पुरन्दरर्क्षे जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिका यदि ॥ २ ॥"

वसिष्ठने कहाहै कि, मूलनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुत्र वा कन्या शीघ्र श्वशुरको नष्ट करती है और उसके अन्त्य पादमें उत्पन्न हुआ सासको नष्ट करता है, आश्लेषामें यह फल विपरीत जानना चाहिये, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है ज्येष्ठामें उत्पन्न हुआ पुत्र अपने जेठ भाईको हतताहै जो जेठी पुत्री होयतो नहीं अर्थात् बडे भाईको भारी नहीं होती ॥

प्रयोगपारिजाते–"मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् । माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा ॥" नृसिंहप्रसादे–"धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च । द्विदैवजा देवरमाशु हन्याद्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः ॥ पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ कन्यका देवरं हन्ति विशाखान्त्यसमुद्भवा । आद्यपादत्रये नैव आद्यभे तु पुमान्भवेत् ॥ न हन्याद्देवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा । तद्दक्षान्तोद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥ चित्राद्यर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं बालनाशम् ॥ द्विमासं चोत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम् । ज्येष्ठा पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता ॥ ७ ॥"

प्रयोगपारिजातमें कहाहै कि, मूलमें उत्पन्न कन्या श्वशुरको, आश्लेषामें उत्पन्न सासको, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न देवरको नष्ट करती है, नृसिंहप्रसादमें कहाहै कि, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको और इसीप्रकार मौसी और मामाको विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है, और पुत्रतो शीघ्र भार्याकी लघुभगिनीको नष्ट करताहै, ज्येष्ठानक्षत्रमें उत्पन्न पुत्र पत्नीकी बडी बहिन वा बडे भाईको नष्ट करताहै, विशाखामें उत्पन्न हुआ भार्याकी छोटी भगिनी वा शालेको नष्ट करताहै, विशाखाके अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट करती है, पहले तीन चरणोंमें दोष नहीं यदि प्रथम तीन चरणमें उत्पन्न हुआ बालक हो तुला राशिसे मिले तो, विशाखामें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट नहीं करती और उस नक्षत्रके

अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या विच्छूके डंककी समान त्यागने योग्यहै, चित्राके प्रथमका आधाभाग, पुष्यके मध्यम दोपाद, पूर्वाषाढाके तीसरे चरणमें, वा उत्तरार्द्धमें उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिता भाई बालक क्रमसे इनको अरिष्ट करता है, उत्तराका दोष दो महीनेतक पूर्वाषाढाका आठ महीनेतक, चित्राका छः महीनेतक आश्लेषाका नौ ९ महीनेतक, मूलका आठ वर्षतक, ज्येष्ठाके उत्पन्न हुये पुत्रका दश महीनेतक दर्शन न करै ॥

वसिष्ठः–"व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत् । वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् । विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि ॥ पर्वण्यपि प्रसूतौ च सर्वारिष्टभयप्रदः । तद्वत्सदन्तजातश्च पादजातस्तथैव च ॥ विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः । राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च विनाशकः॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् ॥ ९ ॥"

वसिष्ठने कहा है कि, व्यतीपातमें अंगकी हानि, और परिघमें मृत्यु होती है, वैधृतिमें पिताकी हानि, और नष्ट चन्द्रमामें अन्धता प्राप्त होती है, मूलमें समूल नाश, धृतिमें वंशक्षय, विकृत अंग वा हीन अंग, बालकका जन्म दोनों सन्ध्याओंमें और पर्वमें होतो सम्पूर्ण अरिष्ट और भयको प्राप्त होताहै उसीप्रकार दन्तसहित उत्पन्न और पैरोंसे उत्पन्न हुआ बालकभी अशुभहै तिससे क्रूरग्रहोंकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥

गर्गः–"कृष्णां चतुर्दशीं षोढा कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम् ॥ चतुर्थे मातुलं हन्ति पंचमे वंशनाशनम् । षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥"

गर्गने कहा है कि, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके छः भाग करने प्रथम भाग शुभहै, दूसरेमें पिताको, तीसरेमें माता, चौथेमें मामा, पांचवेंमें कुल, छठेमें धन और अपने कुलको नष्ट करताहै, इसकारण प्रयत्नसे विधियुक्त शान्ति करनी ॥

अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः ।

तत्र देवकीर्तिः–"यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथवा पुत्राः । पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥ " गर्गः–" एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम् ॥" शौनकः–"ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ इत्थं संजायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ "

देवकीर्तिने कहाहै कि, यदि एकही नक्षत्रमें कन्या वा पुत्र उत्पन्न होंयतो, दोनों पिताके अन्त करनेवाले होते हैं । और भिन्ननक्षत्रमें महाप्रीति होतीहै, गर्गने लिखाहै कि, एकही नक्षत्रमें दो भ्राता वा पितापुत्रका जन्म होयतो निश्चयही एकको मृत्यु होतीहै, शौनकने कहाहै कि, यदि चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें जन्म होय तो स्त्रियोंको ऋतुहोनेसे प्रथम रोगकी पीड़ा होतीहै इसप्रकार जिसके हो उसकी निःसन्देह मृत्यु होतीहै ॥

शान्तिस्तु–"तद्दक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं चन्द्रं तु राजतम् । राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । (नागः–सीसं) त्रयाणां चैव रूपा[illegible]

स्थापनं तत्र कारयेत् ॥ २ ॥" आकृष्णेनाप्यायस्वस्वर्भानोः इति पूजामन्त्राः॥ नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण । "संपूज्य तु यजेत्सूर्यं समिद्भिश्चार्कसम्भवैः । चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य भेशाय जुहुयाद्बुधः । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः। जलैरौषधिकल्कैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥ मन्त्रैर्वारुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमं मे गङ्गे पुरतस्तत्त्वायामीति मन्त्रकैः ॥ यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम्" ॥ ४ ॥

शान्तितो यहहै कि, उसनक्षत्रके स्वामीकी सोनेकी प्रतिमा बनावे, सूर्यके ग्रहणमें सूर्यकी सोनेकी, और चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमाकी चांदीकी मूर्ति निर्माण करावे, और राहुका रूप नाग (सीसे) का निर्माण करै, तीनों रूपोंको वहां स्थापन करै, उनकी पूजाके मंत्र आकृष्णेन, आप्यायस्व, स्वर्भानो लिखेहैं, नक्षत्रदेवताकी पूजा उसके ही मन्त्रसे करनी चाहिये, और पूजा करके आककी समिधोंसे सूर्यकी पूजा और चन्द्रग्रहणमें ढाकसे चन्द्रमाकी पूजा और दूर्वासे राहुकी पूजा करनी चाहिये, और पीपलकी समिधोंसे नक्षत्रके स्वामीके निमित्त बुद्धिमान् मनुष्यको होम करना चाहिये, फिर घी चरु तिलोंसे हवन करै, फिर पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, पञ्चत्वचा, पञ्चपल्लव और ओषधियोंके गुद्दोंके जलसे अभिषेक करै, वह अभिषेक वरुणके मंत्र और आपोहिष्ठाआदि तीन मंत्र, इमं मे गंगे, तत्त्वायामि, इन मंत्रोंसे करना चाहिये फिर यजमान भक्तिसे तीनों मूर्तियोंका दान करै ॥

अकालप्रसवादिफलम् ।

मात्स्ये-"अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवकास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यजनास्तथा । हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् । निर्वासयेत्तां नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥ ४ ॥"

मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, जिनके असमय प्रसव हुआहै वा समय उपरान्त हुआ है वा जिनके विकार युक्त प्रसव हुआहै जिनके अमानुष विनाशिर वा अप्रकट अंगवाला प्रसव हुआहै, वा अंगहीन अधिकअंग प्रसव हुआहै वा जिसके पशुपक्षी सर्प हुआहै, उस देश और वंशका नाश कहना उस स्त्रीको नगरसे निकालदेना, और फिर उसकी शांति करनी चाहिये ॥

उपरिदंतजनने निर्णयः ।

पाद्मे-"उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः। दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव

१ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ यजु० ३३ । ४३ ॥

२ आप्यायस्वसमेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवावाजस्यसंगथे ॥ ऋ० १ । ६ । १२ ॥

३ स्वर्भानो रधयदिन्द्रमायाअवो दिवोवर्तमाना अवाहन् । गूह्ळं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः ॥ ऋ० ४ । २ । १२ ॥

४ तत्वायामि ब्रह्मणावन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः । अहेळमानो वरुणेहबोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषीः ॥ ऋ० १ । २ । १५ ॥

महद्भयम् ॥ मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च। गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्द्विज ॥ तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैःपुष्पैः फलैस्ततः ॥ पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलैः फलैस्तथा ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च। स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ पर्वतांश्च तथाख्यातान्देवदेवं च केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद्धुतमग्नौ यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः संपूज्य दक्षिणा ॥ अष्टमेहनि विप्राणां तथा देयात्र दक्षिणा । काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं वा धनमेव च ॥ दन्तानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः ॥ दन्ता यस्य च जायन्ते माता वा म्रियते पिता । बालको म्रियते तत्र स्वयमेव न संशयः । दधिक्षौद्रघृताक्तानामश्वत्थसमिधां तथा ॥ जुहुयादष्टोत्तरशतं समंत्रेण तु मन्त्रवित् । धेनुं च दक्षिणां दद्यात्ततः सम्पद्यते सुखम्'' ॥ ज्योतिर्निबन्धे तु अष्टमे शुभमित्युक्तम् । अष्टमादिषु तूत्थानं शुभावहमित्यतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा वा नवमासादिग्रहणम् ॥ १३ ॥

अब ऊपरके दांतोंके निकलनेकी शांति लिखतेहैं पाद्ममें कहाहै कि, जिस बालकके ऊपरले दांत पहले निकलैं वा हे भार्गव श्रेष्ठ ! जो दांतोंसहित जन्में, दूसरे तीसरे चौथे पाँचवें महीने जब दांत उत्पन्न होयँ तो महान् भय होताहै, और बालक माता वा पिताको वा आपेको नष्ट करताहै, धर्मज्ञ बालकको हाथीकी पीठ वा नावपर चढावे यदि वह न होयतो सुवर्णके वा श्रेष्ठ आसनपर बैठाकर सम्पूर्ण औषधि संपूर्णगन्ध बीज फूल फल पञ्चगव्य सम्पूर्ण रत्न मृत्तिकासे स्नान करावै तिससे पीछे स्थालीपाकसे ब्रह्माका पूजन करै तथा सातदिनतक ब्राह्मणोंका भोजन करावै फिर आठवें दिन बालकको श्रेष्ठ आसनपर बैठाय मृत्तिका मूल फल सब औषधी, सब गन्ध, सब बीजसे स्नान तथा पूजन करै, फिर अग्नि सोम पवन प्रसिद्ध पर्वत तथा देवोंके देव विष्णुके निमित्त विधिसे अग्निमें हवन करै, फिर भलीप्रकार पूजा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणादे, तथा सुवर्ण चांदी गौ पृथ्वी धनको दे, यदि बालकके दांत आठवें वा छठें महीनेमें निकलैं तो माता पिताकी मृत्यु और स्वयं बालक मरे इसमें संदेह नहीं. उसमें दधि दूध सहतसे सींचीहुई पीपल वा ढाककी लकड़ियोंसे मंत्रका ज्ञाता मंत्रसहित एकसौ आठ आहुतिदे फिर गौ और दक्षिणा देनी चाहिये, तिससे सुखकी प्राप्ति होतीहै, ज्योतिर्निबंधमें तो आठवां महीना शुभ लिखाहै अथवा अष्टमहै आदिमें जिनके ऐसे मासोंमें दांतनिकलना उत्तमहै, यहां (अष्टमः आदौ येषु) इस अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि (जिस बहुव्रीहिमें कथन किये हुये पदार्थोंका संविज्ञान ग्रहण नहो) से नौ आदि महीनेका ग्रहणहै ॥

ब्रह्मयामले–''प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद्भवेत् । क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा । दध्योदनेन सम्पूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम् । सालङ्कारं सवस्त्रं च शिशुमालिङ्गच सादरम् ॥'' तत्र मन्त्रः–''रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम् । गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम् । मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरञ्जीव मया सह ॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोपि न जायते ॥ २ ॥''

ब्रह्मयामलमें तो यह लिखाहै कि, यदि बालकके पहले ऊपरके दांत निकलें तो मामाको क्लेश होताहै, वहां महर्षियोंने शांति लिखीहै कि, सोना, चांदी, कांसा वा तांबेके पात्रको घीसे पूर्णकरके मन्त्रसहित बालकके हाथमें दे, फिर मामा वस्त्र आभूषणोंके सहित बालकको आदरसे शरीरसे लगाकर देखै, वहां यह मंत्र है कि, हे भगिनीके पुत्र मेरी तथा मेरे सम्पूर्ण कुलकी तू रक्षाकरना, और इस अन्नसहित भोजनपात्रको लेकर सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहना, और मुझे तथा अपनी माताको निर्विघ्न और कल्याणकी प्राप्ति कर, और मुझमें अपना अधिष्ठान (स्थिति) करके मेरे साथ चिरकालतक जीवो, इस प्रकार विधान करनेसे किसीप्रकारका भी विघ्न नहीं होताहै ॥

त्रिकशांतिः ।

अथ त्रिकशान्तिः शान्तिसर्वस्वे–"सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत् ॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः । पूजयेद्धान्यराशिस्थाः कलशोपरि शक्तितः ॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ॥ द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा । देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ॥ ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् । प्रतिमां गुरवे दत्त्वा उपस्कारसमन्वितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥ ११ ॥" इति ॥

अब तीन पुत्रोंके ऊपर कन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र होयतो उसकी शांति शान्तिसर्वस्वमें लिखतेहैं कि, यदि तीन पुत्रोंके पीछेकन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र होयतो माता, पिताके वंशको महाअनिष्ट तथा जेठे पुत्रका नाश, धनकी हानि, महान् दुःख करताहै इसमें अपनी शक्तिके अनुसार, शान्ति करनी कि, जन्मसे ग्यारहवें बारहवें शुभदिनमें आचार्य, और ऋत्विजोंका वरण करकै ग्रहोंका पूजन करै, फिर धान्यकी राशियोंपर कलशके ऊपर स्थापितकीहुई ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्रकी सुवर्णकी प्रतिमाओंका पूजन करै, कि, पांचवें कलशपर स्थितहुए महादेवका ग्यारह रुद्रसूक्तोंसे तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका चार शान्तिके सूक्तोंसे पूजन करै फिर आचार्य ग्रहोंके होम पूर्वक ब्रह्मा विष्णु महेशका ब्रह्माआदिके मन्त्रोंसे और इन्द्रका "यतइन्द्रभयामहे" इसमन्त्रसे समिध घी तिलके चरुकी एक सहस्र आठ वा सौ वा तीन सौ आहुतियोंसे हवन करै, फिर स्विष्टकृत् होम करके बलि और पूर्णाहुति दे, फिर कुटुम्बका अभिषेक करके आचार्यका पूजन करै, और सोना तथा गोदान करै, फिर ऋत्विजोंको दक्षिणादे, और घीका दर्शनकर शान्तिपाठ करै, फिर शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और दीन अनाथ (निर्धन) की तृप्ति करै, इस प्रकार विधिसे शान्ति करके मनुष्य सब अरिष्टोंसे मुक्त होजाताहै (इति त्रिकशान्तिः)

---

१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन् छग्धितवतन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि ऋ० ६ । ४ । २० ॥

अन्येषु मूलाद्यृक्षेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ॥ मिताक्षरायां मार्कण्डेयः–"रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥ २ ॥" व्यासः–"सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥ २ ॥" अपरार्के ब्राह्मे–"कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी चैव पञ्चमी । क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनीया वै वैश्यैर्व्रात्यैर्द्विजातिभिः ॥" राकानुमतिः सिनीवालीकुहूरिति चतस्रः कन्या इत्यर्थः ॥

और मूलआदि नक्षत्रोंकी शान्ति आदि प्रयोगपारिजात और हमारे बनाये शान्तिरत्नमें लिखी हैं वहां देखलेनी, मिताक्षरामें मार्कण्डेयने लिखाहै कि, छठकी रात्रिमें रक्षा करै, तथा रात्रिमें जागरण करै और जन्मदाता देवताओंको बलिदेनी, मनुष्य शस्त्रोंको हाथमें लेकर तथा स्त्री नृत्यगीतोंसे दशवीं रात्रिके सूतकमें रात्रिको जागरण करैं । व्यासने कहाहै कि, सूतिकागृहमें रहनेवाले जन्मदा नामक देवता होतेहैं, उनकी पूजाके निमित्त (जन्म समयमें शुद्धि कही है) पुत्रके जन्ममें सदा पहिले छठें दशवें दिन सूतकको न करना चाहिये, अपरार्कमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, द्विजाति अन्त्यज और शूद्रोंको राका अनुमति सिनीवाली कुहू ये चार कन्या तथा वातघ्नी पञ्चमी बालकोंकी क्रीडा करनेके निमित्त शिशुरक्षिणी षष्ठीहै, खड्गमें इनका पूजन करना चाहिये ॥

दत्तकग्रहणविधिः ।

अथ दत्तकपरिग्रहविधिः ॥ पारिजाते शौनकः–"अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च । वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकम् ॥ बन्धूनन्नेन संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः । अन्वाधानादि यत्तत्र कृत्वाज्योत्पवनान्तकम् ॥ दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् । दाने समर्थो दातास्मै ये यज्ञेनेति पञ्चभिः ॥ देवस्यत्वेति मन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च । अङ्गादङ्गेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि ॥ गृहमध्ये तमाधाय चरुं हुत्वा विधानतः । यस्त्वाहृदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्र ऋचैकया ॥ सोमोऽददादित्येताभिः प्रत्यृचं पञ्चभिस्तथा । स्विष्टकृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत्" ॥ ६ ॥ स च–"ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावे सपिंडो वा अन्यत्र तु न कारयेत् ॥" मिताक्षरादौ तु व्याहृतिभिराज्येन होम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपूर्वकं देयः । न वाङ्मात्रेण ॥ 'व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । "माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥" इति मनूक्तेः ॥

अब दत्तकपुत्रके परिग्रह (ग्रहण) करनेकी विधि कहते हैं पारिजातमें शौनकने लिखाहै कि, मैं शौनक उत्तम पुत्रके संग्रहकी विधि कहताहूं, जिसके पुत्र नहोय वा जिसके पुत्र मृतक होगये हों वह पुत्रके

१ अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे आत्मासि पुत्र मा मृथाः सजीव शरदःशतम् ॥

निमित्त व्रत करके और बालकके निमित्त वस्त्र कुण्डल पगडी अँगूठी देकर बन्धुओंको और विशेषकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और अन्वाधानसे आज्योत्पवनपर्यन्त हवनको भलीप्रकार सम्पादन करके दाताके निकट जाकर तुम मुझे पुत्रदो, इस प्रकार कहै, देनेमें समर्थ दाता 'ये यज्ञेन' इन पांचमन्त्रोंसे दे, 'देवस्यत्वा' इस मन्त्रको पढकर हाथोंसे पुत्रको ग्रहण करके और 'अंगादंगात्' इस ऋचाको पढकर बालकके शिरको सूंघे, घरके मध्यमें लाकर और विधिसे चरुका होम करके 'यस्त्वा हृदा' इस ऋचासे और 'तुभ्यमग्ने' इस एक ऋचासे 'सोमोददत्' इन पांच ऋचाओंसे स्विष्टकृतआदि हवन करके शेषकर्मको पूर्ण करै, ब्राह्मणोंको सपिंडोंमेंसे पुत्रलेना चाहिये वह न मिलेतो असपिंडको लेना अन्यको पुत्र न करै, मिताक्षरामें तो व्याहृतियोंसे घृतका हवन करना चाहिये और वह पुत्रहोमके उपरान्त संकल्पपूर्वक देना चाहिये केवल वाणीसे नहीं, कारण कि, वसिष्ठने यह लिखाहै कि, व्याहृतियोंसे हवन करके पुत्रको ग्रहण करै, और मनुने कहाहै कि, माता वा पिता जिस पुत्रको आपत्तिके समय जलपूर्वक दें वही अपना सजातीय और प्रीतिका पात्र होताहै ॥

तत्रैव वसिष्ठः-'न त्वेवकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा, न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः' इति । इदं च भर्तृसत्त्वे ॥ अन्यथा-'दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्रिमः स्मृतः' इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् ॥ दानं प्रतिग्रहोपलक्षणम् ॥ यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् । व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् । तयोर्दत्तकपुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तम् ॥ वाचस्पतिश्चैवमेवाह । तन्न । भर्तुरनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः ॥ यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च होमासंभवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः । संबन्धतत्त्वेप्येवम् ॥

वहांही वसिष्ठने लिखाहै कि, जिसके एकही पुत्रहो वह न एक पुत्रको दे. न ले, और भर्ताकी आज्ञा विना न स्त्री पुत्र दे और न ले, यह बातभी तब है जब पति विद्यमानहो अन्यथा इस वत्स और व्यासके वाक्यका विरोध होगा कि, माता वा पिता जिसको दे वही दत्तक पुत्र होताहै इसवाक्यमें दान, प्रतिग्रहका भी उपलक्षण कहाहै, जो रुद्रधरने शुद्धिविवेकमें यह लिखा है कि, मन्त्रसहित हवन पुत्रलेनेका अंगहै, और व्याहृतिआदि मन्त्र पढनेमें स्त्री और शूद्रका अधिकार नहींहै, उनका दत्तकपुत्र ही न होगा, और वाचस्पतिने भी यही लिखाहै, सो ठीक नहीं कारण कि, स्वामीकी आज्ञासे स्त्रीको भी प्रतिग्रह करना लिखाहै, यद्यपि मेधातिथिने भार्यात्व (पत्नीपना) के तुल्य अदृष्टरूप दत्तकत्व (दत्तकपना) हवनसाध्य लिखाहै और स्त्रीको हवन करना असंभवहै, तथापि व्रतआदिके तुल्य ब्राह्मणके द्वारा स्त्रीको हवन आदि कराना चाहिये यह हरिनाथ आदिका कथन है, और सम्बन्धतत्वमें भी इसीप्रकार लिखाहै ॥

एवं शूद्रस्यापि ॥ 'स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणम्' इति स्मृतेः ॥ अत एव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तेः ॥ "दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः । ब्राह्मणस्तु भवे-

---

१ ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश,तेभ्यो भद्रमंगिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ऋ० ८ । २ । १ ॥

२ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् आददेद्धरकृतन्देवेभ्यः इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ९ । २४ ॥

च्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ " अत्र माधवाचार्यः--'यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपुष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः । शूद्रस्तु-होमफलं लभेतैवेति व्याचचक्षे' ॥

इसी प्रकार शूद्रकोभी जानना कारण कि, यह स्मृतिहै कि, स्त्री और शूद्र तुल्यधर्मवाले होतेहैं, इसीसे शूद्रको ब्राह्मणके द्वाराही होमकरना चाहिये कि, जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविको होमताहै, वह ब्राह्मण शूद्र होताहै, और शूद्र ब्राह्मण होताहै, इसमें माधवाचार्यका यह कथन है कि, जोब्राह्मण शूद्रकी दक्षिणा लेकर शूद्रकी हविको शान्तिपुष्टि आदिके निमित्त वेदके मन्त्रोंसे होमताहै उस ब्राह्मणकोही दोषहै, शूद्रको तो हवनका फल मिलताहीहै ॥

दत्तक विशेषः कालिकापुराणे—"पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते । आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप । गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ पञ्चमोर्ध्वं स्वदानेच्छोरेव दानं न चान्यथा । विक्रयं चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः ॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् ॥ ९ ॥ " इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात् ॥

दत्तकमें विशेष कालिकापुराणमें कहाहै कि, हे राजन् ! जिस पुत्रका पिताके गोत्रसे संस्कार हुआ है, वह मुण्डनपर्यन्त औरका पुत्र नहीं होसकता जिसका मुण्डनसंस्कार अपने गोत्रसे किया हो वे दत्तक आदि पुत्र होसक्ते हैं,अन्यथा दास होतेहैं, हे राजन् ! पंचमवर्षके उपरान्त दत्तक आदि पुत्र नहीं होसक्ते, पांचवर्षके पुत्रको ग्रहणकरके प्रथम पुत्रेष्टिकरे, पांचवर्षके उपरान्ततो वही देसकताहै जिसको देनेकी इच्छा हो और नहीं कारण कि, हेमाद्रि और माधवमें व्यास और दक्षके ये कथनहैं कि, बेंचना और देना विना अपनी इच्छाके नहीं करसकते स्त्री पुत्र और सर्वस्व इन सबको आपही दे ॥

यत्र याज्ञवल्क्यः ॥ 'स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुताहृते ' इति ॥ तदूर्ध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम् । तेन सर्वस्वदाने स्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम् ॥ यत्तु विश्वजिदधिकरणे षष्ठे । तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानाशंका निराकृता ॥ जन्यपुंस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः । दासत्वेन दानं भवत्येव । तस्माद्यथेष्टविनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव ॥ पुत्रे स्वत्वाभावं वदन् पुत्रक्रयविक्रयादिशुनःशेपविक्रयादिश्रौतलिङ्गादासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगान्मूर्ख एव ॥ 'यो नहिग्रभायारणः सुशेवोन्वोदर्योमनसामंतवाउ' इति श्रुतौ दत्तकनिषेधः ॥ सोप्यौरसातिशयार्थः ॥ अन्यथा शुनःशेफादिप्रतिग्रहश्रौतलिंगविरोधापत्तेः । 'उपेयां तव पुत्रताम्' इत्युक्तेः ॥ इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयं दत्तक्रीतपरम् । न दत्तकपरम् ॥ द्वादशविधपुत्रमध्ये—'दत्तात्मा तु स्वयंदत्तः ' । 'क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः' इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्भेदोक्तेः ॥ तयोश्च—'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ' इति कलौ निषेधात्तेन संस्कारोत्तरं स्वयं क्रीतो न भवति ॥ तदुत्तरं दत्तको न भवत्येवेति सिद्धम् ॥

जो याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, अपने कुटुम्बकी प्रसन्नतासे स्त्री और पुत्रको त्याग करदे, यह वाक्य उस पुत्रके निमित्त है जो अपने दानकी इच्छाकरताहो और जिसका संस्कार हो उससे

सर्वस्वदानकी अभिलाषा वालोंको स्त्री और पुत्रका दान सिद्ध हुआ जानना, जो विश्वजितके छठे अधिकरणमें पुत्र आदिकोंको भी जातिहोनेसे स्वशब्दका अर्थ है इससे पुत्रके देनेकी आशंका करके उसका निराकरण लिखा है कारण कि, उसमें जन्य पुरुषपनोंके दानकी सिद्धि नहीं, अर्थात् वह जिसको प्रदान किया जाय उसका जन्य नहीं होसकता, दासरूपसे दान होसकताहै, पुत्रमें स्वत्वके अभावको वर्णन करते और पुत्रके क्रय विक्रय आदि और शुनःशेफके क्रय विक्रय आदि मन्त्रके प्रमाणसे दास और क्रय विक्रय आदि व्यवहारका योग नहीं है, इससे वह मूर्ख है, 'नहिग्रभायारणः' जो इस मंत्रमें दत्तक पुत्र लेनेका निषेध है वहभी औरस पुत्रकी उत्तमताके निमित्त है ऐसाः न माननेसे शुनःशेफआदिके लेनेमें वेदके प्रमाणका विरोध होगा कारण कि, मन्त्रोंमें यह कथन है कि, मैं तेरा पुत्रहूंगा यह मन्त्रका प्रमाणभी स्वयंदत्त और क्रीतके विषयमें समझना चाहिये, दूसरेके विषयमें नहीं, कारण कि, याज्ञवल्क्यने वे दोनों द्वादश प्रकारके पुत्रोंमें उस दत्तकसे भिन्न लिखेहैं कि, जिसने अपनी आत्मा स्वयं देदीहो, वह स्वयंदत्त और जिसे मातापिताने वेचाहो वह क्रीत इन दोनोंका कलियुगमें इस वाक्यसे निषेध कहा है कि, दत्तक औरससे पृथक् कलियुगमें पुत्र नहीं होसक्ते ॥

यमलसंस्कारे ज्येष्ठकनिष्ठत्वम् ।

अथ यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते ॥ मनुः-"पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः । कथं तयोर्विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ सदृशः स्त्रीप्रजातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ २ ॥" तेन कनिष्ठायां पूर्वजात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्यर्थः ॥ स एव श्राद्धाधिकारी ॥ "जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता ॥" देवलः-"यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम् । संतानः पितरश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम् ॥" भागवते तु 'द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिवेशविपर्ययात्' इत्युक्तेः पश्चादुत्पन्नस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तम् ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था । पूर्वमेव तु युक्तं गर्भाष्टम इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र ॥ अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् ॥

अब यमों (एकसाथ उत्पन्न हुओं) का संस्कारोंके क्रमार्थ वर्णन करते हैं मनुने कहाहै कि, यदि जेठी पत्नीका पुत्र छोटाहो और छोटीका बडाहो तो उनका विभाग किसप्रकार हो इस सन्देहमें सदृश स्त्रियोंमें उत्पन्न हुये पुत्रोंमें विशेषके अभावसे मातासे ज्येष्ठता नहीं है जन्मसे ज्येष्ठताहै, अर्थात् वही ज्येष्ठहै जो प्रथम उत्पन्न हुआ हो तिससे कनिष्ठा (छोटी) में प्रथम हुआही ज्येष्ठहै, और बडी भार्यामें पीछे उत्पन्न हुआ बडा नहीं और श्राद्धमें भी वही ज्येष्ठ अधिकारी है, जन्मसे जो जेठा हो उसेही बुलाना सुब्रह्मण्याओंमें भी लिखाहै यमोंके गर्भमें भी वही बडाहै जिसका जन्म पहिले हुआहो देवलने कहा है कि, यमोंमें जिस उत्पन्न हुऐका मुख पिता और पितर प्रथम देखैं उसमेंही ज्येष्ठता होतीहै भागवतमें तो यह कहाहै कि, वीर्य सींचनेके समय जब दोप्रकारसे वीर्य होताहै, तब दोगर्भ होतेहैं, और वीर्यप्रवेशसे विपरीत जन्म होताहै, अर्थात् जो गर्भमें प्रथम जाताहै वह पीछे जो पीछे जाताहै वह प्रथम उत्पन्न होताहै, इससे पीछे उत्पन्न हुआही ज्येष्ठ कहा है, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये, पहिले यह कथनहै

---

१ नहिग्रभायारणः सुशेवोन्योदर्यो मनसामन्तवाउ ॥ अधाचिदोकः पुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषालेतुनव्यः ऋ० मं० ५। २। ६। ८।

कि, गर्भसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै, इत्यादि वाक्योंमें जहां विशेषका निदेश है वहांही गर्भका ग्रहण है और स्थानमें नहीं अन्यथा गर्भपद वृथा है ॥

सूतिकास्नानम् ।

अथ सूतिकास्नानम् ॥ ज्योतिषे-" करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेहि पुंसाम् । तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ॥"

अब सूतिकाका स्नान लिखतेहैं, ज्योतिषमें कहा है कि, हस्त ज्येष्ठा पूर्वाफाल्गुनी स्वाती धनिष्ठा रेवती अनुराधा मृगशिर अश्विनी ध्रुवनक्षत्रोंमें और रिक्ताभिन्न तिथिको मुनियोंने पुरुषोंके निमित्त प्रसूता स्त्रियोंकी स्नानविधि शुभ लिखीहै ॥

नामकर्म ।

अथ नामकर्म ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः-"द्वादशे दशमे वापि जन्मतोपि त्रयोदशे । षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ॥" याज्ञवल्क्यः-'अहन्येकादशे नाम ॥' हेमाद्रौ भविष्ये-"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां मासि केचन । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः " ॥ दशम्यामतीतायामिति ज्ञेयम् ॥ 'आशौचान्ते नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः ॥ गृह्यपरिशिष्टेपि-'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् ।' व्युष्टेऽतीते ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-'अमासंक्रान्तिविष्ट्याद्यौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ॥' श्रीधरः-"मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे । छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादभागदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः" ॥

अब नामकर्म मदनरत्नमें बृहस्पतिने लिखाहै कि, बारह वा दशवें दिन ब्राह्मणका और जन्मसे तेरहवें दिन क्षत्रियका, सोलह वा बीसवें दिन वैश्यका, तीसवेंदिन शूद्रका नामकर्म करै, याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, ग्यारहवें दिन नामकरण करै, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका बाक्य है कि, दशवें द्वादशदिन महीना इनमें किसीमें नाम रखना कहतेहैं और अन्यतो बुद्धिमान् अठारहवें दिन कहते हैं यहां दशमीके बीतनेपर समझना चाहिये, कारण अशौचके बीतनेपर नामकरण करै यह विष्णुने लिखाहै, गृह्यपरिशिष्टमें भी कहा है कि, जन्ममें दशरात बीतनेपर शत १०० रातमें वा वर्ष दिनमें नामकरण करै, ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने लिखा है कि, अमावास्या संक्रान्ति भद्राआदिमें समय आनेपरभी न करै, श्रीधरने कहाहै कि, अनुराधा पुनर्वसु मघा तीनों उत्तरा शतभिषा स्वाती धनिष्ठा श्रवण रोहिणी अश्विनी मृगशिर रेवती हस्त पुष्य इन नक्षत्रोंमें और स्थिरराशि[1] लग्नमें, छिद्रा पंदचशी (३०, १९) नवमी इनको त्यागकर जब अष्टम भवन शुद्धहो, शुक्र बुध बृहस्पति ये वार हों और अमृतनाम दिन होयतो बालकका नाम धरै ॥

मनुः-"शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । वैशस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥" मदनरत्ने नारदीये-"सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥" तत्रैव गार्ग्यः-'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता ॥' स्मृतिसंग्रहे-"कृष्णोऽनन्तोच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो

---

१ वृष सिंह वृश्चिक कुम्भ यह स्थिर राशि हैं ॥

देवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥ " अत्र मार्गशीर्षादिश्चैत्रादिर्वा क्रम इति मदनरत्ने–"तन्मासनाम प्रथमं दद्यात्संबुध्य चैव हि । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पुण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥ राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते " ॥ ३ ॥

मनुने कहाहै कि, ब्राह्मणका नाम शर्मांत क्षत्रियका वर्मांत और वैश्यका धनसे युक्त शूद्रका प्रेष्य (दासआदि) से युक्त रखना चाहिये, मदनरत्नमें नारदने कहा है कि, सूतकके पीछेमें अपने कुलके उचित नामकरण करै, और समअक्षरोंसे ऐसा नामरक्खै जिसमें पूर्वमंगलरूप महीनेका नाम आवे, वहांही गार्ग्यनेभी कहाहै कि, पिता बालकका नाम महीने वा गुरुके नामसे रक्खै, कृष्ण, अनन्त, अच्युत, चक्री, बैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुंडरीकाक्ष ये क्रमसे महीनोंके नामहैं, यहां मार्गशिर वा चैत्रसे क्रम लेना चाहिये यह मदनरत्नमें लिखाहै, उस महीनेका नाम प्रथम सम्बोधनसे दे, देवमंदिर, हाथी, घोड़े, वृक्ष, वापी, कूप, सब दुकानके बेंचनेयोग्य चिह्न, स्त्री और पुरुष काव्य कवि पशु आदि राजाके राजमहल घरके चिह्नके लिये नामकरण करना लिखाहै ॥

नाक्षत्रमपि नाम कार्यम् ॥ 'अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामौपनयात्' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ 'कुलदेवतानाक्षत्रसंबद्धं पिता नाम कुर्यात्' इति मदनरत्ने शंखोक्तेः ॥ तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे–'तदक्षरादिकं नाम यस्मिन्धिष्ण्ये यदक्षरम्' इति ॥ सुदर्शनभाष्ये तु–"रोरेमसृज्येविषु वृद्धिरादौ ष्ठान्त्ये च वान्त्ये श्रवशाश्वयुक्षु । शेषेषु नाम्वोंः कपरः स्वरोन्त्यः स्वाप्वोरदीर्घः सविसर्ग इष्टः॥" इत्युक्तम् ॥ ष्ठान्त्येति प्रौष्ठपदेत्यत्रादौ ष्ठात्परे च वृद्धिः प्रौष्ठपाद इति ॥ अन्त्यमपभरणीशब्दः श्रुतावुक्तः ॥ तत्र श्रवणादौ च वारिवृद्धिः अपभरण आपभरण इत्यादि ॥ मदनरत्ने वसिष्ठः–"जन्माहे द्वादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरारेवतीहस्तमूलपुष्याः सवारुणाः ॥ श्रावणादिति मैत्रं च स्वातीमृगशिरस्तथा । प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि ॥ २ ॥

नक्षत्रसे भी नाम करना, कारण कि, आश्वलायनने यह कहाहै कि, नमस्कार करने योग्य नाम देखै (रक्खै) उसविद्याके नामको उपनयन आदिमें माता पिता जानें, और मदनरत्नमें शंखने लिखाहै कि, कुलदेवता महीना नक्षत्र इनसे संयुक्त नाम पिता रक्खै, वह नक्षत्रका नाम ऐसा हो जिसमें नक्षत्रके पादका अक्षर आदिमें संयुक्त हो यह परिशिष्टमें कहाहै, जिस नक्षत्रमें जो अंक्षर आदिमेंहो वही अक्षर नामके आदिमें हो, सुदर्शन भाष्यमें तो यह लिखाहै कि, रोहिणी रेवती मघा मृगशिर ज्येष्ठा विशाखा इनमें उत्पन्नहुएका नाम ऐसा रक्खै जिसकी आदिमें वृद्धिहो, और जिस नक्षत्रमें हो उससे आगे वृद्धिहो और भरणी श्रवण अश्विनीमें विकल्प करके वृद्धिहो, और शेष नक्षत्रोंमें खआदिमें जिनकी ऐसे नामियों (अकारभिन्नस्वर) से परे अन्त्यका स्वर इसीप्रकार होताहै जिससे परे ककारहो, और जो दीर्घ नहो, और जिसमें विसर्गहो, जैसे प्रौष्ठपदमें प्रौष्टपाद अन्त्यशब्दसे भरणी ग्रहण करै, यह श्रुतिमें कहाहै मदनरत्नमें वसिष्ठने लिखाहै कि, जन्मसे बारहवें दशवें दिन नामकरणमें उत्तरा, रेवती, हस्त, मूल, पुष्य, शतभिषा, श्रवण, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, मृगशिर, रोहिणी, धनिष्ठा, यह नक्षत्र उत्तम हैं ॥

अथ दोलारोहः ।

पारिजाते बृहस्पतिः—“दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेपि वा । षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेपि वा ॥ ” ज्योतिर्निबन्धे—“करत्रये वैष्णवरेवतीषु दितिद्वये वाश्विनके ध्रुवेषु । कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति ॥ ” तत्रैव—“आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये प्रशस्यते ॥ ”

अब दोलारोहको लिखतेहैं, पारिजातमें बृहस्पतिने भी लिखाहै कि, दशवें वा बारहवें वा सोलहवें वा, बाईसवें दिन बालकको पालनेमें बैठावे, ज्योतिर्निबंधमें कहाहै कि, हस्तसे तीन श्रवण और रेवती पुनर्वसु पुष्य अश्विनी ध्रुवसंज्ञक योगमें बालक और राजाको पालनेमें झुलानेसे सुखी होतेहैं, वहांही कहाहै कि, आंदोलनमें लडकोंको बारहवां और कन्याओंको तेरहवां दिन उत्तमहै, इसमें नक्षत्रका विचार नहीं करना अन्यदिनमें करै तो उसनक्षत्रमें करै जो तिर्यङ्मुखहो, वह अच्छाहै ॥

अथ दुग्धपानम् ।

नृसिंहः—“एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरात्रिषु ॥ ”

अब दुग्धपानमुहूर्त्त, कहते हैं, नृसिंहने कहाहै कि, ३१ वेंदिन बालकको शंखसे दूध अन्नप्राशनके नक्षत्र और दिनमें वा उदयकी रात्रिमें पान करावै ॥

अथ कर्णवेधः ।

मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ—“मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा वेध्या कर्णौ द्वादशे षोडशेह्नि । मध्येनाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रं द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा ॥” अत्र जन्ममासो वर्ज्यः ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—“मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे । कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥” मदनरत्ने—“प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमेथ वा । द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम् ॥” हेमाद्रौ व्यासः—“कार्त्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥” श्रीधरः—“हरिहयकराचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने । शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः ॥” मदनरत्ने बृहस्पतिः—“द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी ॥ द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥ सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टाङ्गुलात्मिका ॥ २ ॥” हेमाद्रौ देवलः—“कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः । तद्दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥ ” शंखः—“अङ्गुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत् ॥”

अब कर्णवेध कहते हैं ॥ मदनरत्नमें वसिष्ठ और श्रीधरने लिखाहै कि, छठें सातवें आठवें मासमें बारहवें सोलहवें दिन कान बींधनें, दिनके मध्यमें और रात्रिमें कर्णछेदन न करै, दो नक्षत्र और दो तिथियोंको त्यागदे इसमें जन्मके मासको वर्जदे, कारण कि, ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहाहै, कि, छठें सातवें महीनेमें वा

वर्षदिनमें कर्णवेधकी बडाई करतेहैं, कारण कि, वह पुष्टि आयु लक्ष्मीको बढानेवाला होताहै, मदनरत्नमें कहाहै कि, प्रथम सातवें आठवें दशवें बारहवें महीनेमें शुभदायक कर्णवेध करै, हेमाद्रिमें व्यासने कहाहै कि, कार्तिक पौष चैत्र फाल्गुनके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें कर्णवेध करना उत्तमहै, श्रीधरने कहाहै कि, श्रवण आर्द्रा हस्त चित्रा मृगशिर रेवती पुष्य पुनर्वसु धनिष्ठामें और कुम्भ सिंह वृश्चिकसे भिन्न लग्नमें चन्द्र बृहस्पति बुध शुक्रके दिनमें पर्वरिक्तासे भिन्न तिथिमें, और आठवें घर शून्यवाली लग्नमें कर्णवेध करै, मदनरत्नमें बृहस्पतिने कहाहै कि, द्वितीया दशमी छठी सप्तमी त्रयोदशी द्वादशी पंचमी तृतीया कर्णवेधमें उत्तमहै, राजाकी सोनेकी, ब्राह्मण और वैश्यकी चांदीकी, शूद्रकी लोहेकी, बीचकी अंगुलीसे ८ अंगुलकी सुईसे बींधें हेमाद्रिमें देवलने कहाहै कि, ब्राह्मणके कर्णके छिद्रमें सूर्यकी छाया प्रवेश न कर सके, कारण कि, उसको देखकर पुरातन भी पुण्य समूह नष्ट होजातेहैं शंखने कहा है कि, कानोंमें अंगुष्ठभरका छिद्र नहो, यदि होय तो उसे श्राद्ध नदेना चाहिये, और देतो वह श्राद्ध आसुरी होजाता है ॥

ताम्बूलभक्षणम् ।

चण्डेश्वरः–"सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः । कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाय हिताय च॥ मूलार्कचित्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोदितिवासवेषु। अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः ॥"

अब ताम्बूल भक्षण कहतेहैं ॥ ढाई महीनेके बालकको प्रथम कपूरआदि मिलाकर विलास और हितके निमित्त पानदे मूल, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त, श्रवण, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें और सूर्य :चन्द्र बृहस्पति शुक्र बुध वारोंको मुनियोंने ताम्बूलभक्षणकी विधि उत्तम लिखीहै ॥

अथ निष्क्रमणम् ॥

ज्योतिर्निबन्धे–'तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्रमणं भवेत्॥' यमः–"ततस्त्रितीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥" अत्र 'सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । 'छन्दोगानां निष्क्रमणे वृद्धिश्राद्धं नास्ति' इति कल्पतरुः ॥ व्यासः–"मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च । कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते ॥" मदनरत्ने–'अन्नप्राशनकाल वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम् ॥' विष्णुधर्मे–"दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजैः । पूजनं वासुदेवस्य गगनस्य च कारयेत् ॥ बहिर्निष्कासयेद्गेहाच्छंखपुण्याहनिस्वनैः । चन्द्रार्कयोर्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च । निक्षेपार्थमिमं दद्मि ते मे रक्षन्तु सर्वदा । अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा । रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ४ ॥" माधवीये मार्कण्डेयः–"अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद्बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥ २ ॥" इति ॥

अब निष्क्रमणको कहतेहैं ॥ ज्योतिर्निबन्धमें यमराजने कहाहै कि, तीसरे वा चौथे महीनेमें निष्क्रमण होताहै, यमराजने लिखाहै कि, ३ मासमें बालकको सूर्यका दर्शन और चौथे महीने में चन्द्रका दर्शन

करावे, इसमें सूर्य और चन्द्रमाआदिकी पूजाका कर्म और उनका श्राद्ध नहीं है इस छन्दोगपरिशिष्टके कथनसे वेदपाठियोंके निष्क्रमणमें वृद्धिश्राद्धका विधान नहीं है यह कल्पतरुका कथनहै, व्यासने कहाहै कि, अनुराधा, पुष्य पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमें शुभ चन्द्रमा और श्रेष्ठ ग्रहोंमें तथा बुध गुरु भृगुवारमें रिक्तासे भिन्न तिथियोंमें कन्या कुम्भ तुला सिंह लग्नोंको सौम्यग्रह देखते होंय तो बालकको बाहर निकाले, मदनरत्नमें भी कहा है कि, अन्नप्राशनके मुहूर्तमें निष्क्रमण करे विष्णुधर्ममें कहा है कि, दिशाओंके अधिपतियोंके दिनमें चन्द्र वा सूर्यवारको ब्राह्मण वासुदेव और आकाशका पूजन करै, शंख स्वस्ति वाचन और बाजोंसहित बालकको घरमेंसे निकाले और यह कहै कि, चन्द्रमा सूर्य और दिशाओंके पति दिशा और आकाश इनको निक्षेप (धरोहर) के निमित्त इस बालकको देताहूं यह इसकी रक्षा करैं, यह बालक सावधान हो चाहै प्रमत्तहो दिन हो वा रात हो इन्द्रआदि देवता सब इसकी रक्षा करैं, माधवीयमें मार्कण्डेयने कहा है कि, बालकके आगे शिल्पके भांड सम्पूर्ण शस्त्र और वस्त्रको रखकर उसके लक्षणको देखै, उनमेंसे जिसको बालक स्पर्श करले उससेही उस बालककी जीविकाका अनुमान करै ॥

अथोपवेशनम् ॥

प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मे च–"पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत् । तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोप्यत्र विशेषतः ॥ उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् । प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् ॥ वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजम् । रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये । अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्परिपन्थिनः ॥ जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् । वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥ अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता । चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि ॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम्" ॥ ६ ॥

अब भूमिमें उपवेशन (बैठाना) कहतेहैं ॥ प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराण और विष्णुधर्मका वाक्यहै कि, पांचवें महीनेमें बालकको भूमिपर बैठावे, उसमें सब ग्रह श्रेष्ठहों विशेषकर मंगल उत्तमहो, तीनों उत्तरा मृगशिर पुष्प ज्येष्ठा रोहिणी हस्त अश्विनी आनुराधा ये नक्षत्र उत्तमहैं, वराहदेवकी और भूमिकी पूजा करै, हे वसुधे ! हे देवि ! सब स्थानमें प्राप्तहुऐ इस बालककी तुम रक्षाकरो, हे हरिप्रिये ! इसके सम्पूर्ण अवस्थाके प्रमाणकी रक्षा करना जो इसकी चिरायुके शत्रुहैं, वा जीवन आरोग्य धनके द्वेषी हैं उनको शीघ्रही दग्धकरो तुम सब भूतोंकी धारिणी और कामधेनुरूप तुम माताहो अजर अमर और सब भूतोंके प्रणाम करने योग्यहो चर अचर भूतोंकी स्थिति तुममें है और तुम अविनाशिनी हो हे मातः ! बालककी तुम रक्षा करो और ब्रह्माभी इस बालकको मानो ॥

अन्नप्राशनम् ।

पारिजाते नारदः–" जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणान्नाशनं परम् । तदभावेऽष्टमे मासि नवमे दशमेपि वा ॥ द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम् । संवत्सरे वा संपूर्णे केचिदिच्छंति पण्डिताः ॥ २ ॥ " मदनरत्ने लौगाक्षिः–' षष्ठेऽन्नप्राशनं

जातेषु दन्तेषु वा ' इति । शंखः–'संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसंवत्सरे वा ' इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"षष्ठे वाप्यष्टमे मासि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् । त्यक्त्वान्यातिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः ॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ ३ ॥ " श्रीधरः–"आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः । बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः ॥" वसिष्ठः–"बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्ये । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु ॥ " मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः–"ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान् । भुवं दिशश्च संपूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम् ॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गतस्य च । अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चने ॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा ॥ ३ ॥" इति ॥

अब अन्नप्राशनको कहतेहैं, पारिजातमें नारदने कहाहै कि, सौर मासके प्रमाणसे जन्मसे छठे महीनेमें अन्नप्राशन होताहै उसके अभावमें आठवें, नवें, दशवें, बारहवें महीनेमें सौर प्रमाणसे अन्नप्राशन होताहै, कोई पंडित संवत्सरकी पूर्तिपर इच्छा करतेहैं, मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहाहै कि, छठे महीनेमें वा दांत जमनेपर अन्नप्राशन करै, शंखने कहाहै कि, वर्षदिनमें वा आधे वर्षमें अन्नप्राशन करै, नारदने कहा है कि, छठे वा आठवेंमें पुरुषोंको और पांचवें वा सातवेंमें कन्याओंको नवान्नप्राशन करावै तौ उत्तमहै, रिक्ता, दिनका क्षय, नन्दा, द्वादशी, अष्टमी, अमावास्याको छोडकर तिथि, शुक्र, बृहस्पति, बुधवार, चन्द्र ये उत्तम हैं, और कृष्णपक्षके पिछली पांच तिथिको त्यागकर अन्नप्राशन करना उत्तम है, श्रीधर कहते हैं कि, पुनर्वसु, विशाखा, धनिष्ठा, मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा, रेवती, मिश्रसंज्ञक नक्षत्र बालकके अन्नभोजन करनेमें दशवें स्थान शुद्धवाली लग्न छिद्रा और नवमीको त्यागकर तिथि ये सब उत्तम कहे हैं; वसिष्ठने कहाहै कि, बालकका अन्नभोजन यज्ञोपवीत राजाका अभिषेक इनमें जन्मका नक्षत्र श्रेष्ठ है, विवाह सीमन्त यात्रा आदि मंगलकार्यमें निरन्तर अशुभ है, मार्कण्डेय और विष्णुधर्ममें कहाहै कि, ब्रह्मा, शिवजी, सूर्य, चन्द्रमा, दिशाओंके स्वामी पृथ्वी और दिशाको पूजकर और अग्निमें चरुको होमकर देवताओंके आगे माताकी गोदमें बैठे और भूषणोंसे सज्जित बालकको सुवर्णयुक्त पात्रमें शहत, घृत, दहीसहित अन्न चटावे, वा खीर बालकको भोजन करावे ॥

अब्दपूर्तिनिर्णयः ।

अथाब्दपूर्तिः ॥ व्यवहारनिर्णये–"नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम् । मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा ॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम् । प्रह्लादं च हनूमन्तं बिभीषणमथार्चयेत् ॥ स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य संपूजयेन्नरः । षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षेवर्षे पुनः पुनः ॥ ३ ॥ " तिथितत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोप्युक्तः ॥ आदित्यपुराणे–"सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्त्तव्यश्च महोत्सवः " ॥ २ ॥

अब अब्दपूर्ति (वर्षगांठ) को कहतेहैं, व्यवहारनिर्णयमें कहाहै कि, नवीन वस्त्रोंको धारण करके मार्कण्डेय आदि चिरायुषोंकी पूजा करै, और सावधानहो भक्तिपूर्वक मनुष्य मार्कण्डेयकी पूजा करै,

फिर, दीर्घायु व्यास, राम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान, विभीषणकी पूजा करै, और अपना नक्षत्र और जन्मतिथिको प्राप्त होकर मनुष्य दही और चावलसे वर्ष वर्षमें वारंवार षष्ठीकी पूजा करै, तिथितत्त्वमें इनके नामोंसे तिलोंसे होमकरना भी कहाहै, आदित्यपुराणमें लिखाहै, जन्मदिनमें सबलोग मांगलिक स्नान कर गुरु, देवता, अग्नि, ब्राह्मणोंको यत्नसे पूजे और अपना नक्षत्र माता पिता ब्रह्माकाभी पूजन करै, और प्रतिवर्ष यत्नसे महोत्सव करै ॥

कृत्यचिन्तामणौ—"गुडदुग्धतिलान्दद्याद्धस्ते ग्रन्थिं च बन्धयेत् । गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥ संपूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षिं प्रार्थयेदिदम् । चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥ रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पान्तजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने । चिरञ्जीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवर द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दुल तथा मां चिरजीविनम् । मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव । सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये " ॥ ७ ॥ इति पयः पिबेत् ॥ तिथितत्त्वे स्कान्दे—"खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा । आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् " ॥

कृत्यचिंतामणिमें लिखाहै कि, गुड, दूध, तिलका दान करै और हाथमें वर्षकी गांठ बांधे, गुग्गुल, नींब, दूर्वा, सरसों, गोरोचनसे सूर्य और गणेशकी पूजा करके महर्षिजनोंकी इसप्रकार प्रार्थना करै कि, भो मार्कण्डेय तुम जिसप्रकार चिरजीवी हो मैं भी इसीप्रकार रूप धन लक्ष्मीसे सदा युक्त रहूं, हे मार्कण्डेय ! हे कल्पांततक जीनेवाले ! आपको प्रणामहै हे भगवन् ! हे मुने ! आरोग्यसिद्धिके निमित्त प्रसन्नहो, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे द्विजसत्तम ! हे मुनिशार्दूल ! जैसे तुम चिरजीवी हो इसी प्रकार मुझे भी चिरजीवी करो, हे मार्कण्डेय ! हे महाभाग ! हे सातकल्पजीवी ! आयु और आरोग्यसिद्धिके निमित्त तुम वरदाता हो, मार्कण्डेयसे वरको प्राप्त होकर तिल और गुड मिलाहुआ आधा अञ्जली दूध अवस्थाकी वृद्धिके निमित्त पान करताहूं, इस मन्त्रको पढकर दूध पीवे, तिथितत्त्वमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, वर्षगांठके दिन नख और केशोंका खण्डन, मैथुन, मार्ग, मांस, क्लेश, हिंसा न करै ॥

तत्रैव दीपिकायाम्—"कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत् । अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ " कृतान्तः शनिः—'तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुदेवाग्निपूजनम् ॥' वृद्धमनुः—"मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा । अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ " अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या ॥ "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता " इति कृत्यतत्त्वार्णवे वचनात् ॥ विशेषो मत्कृतशूद्रधर्मे ज्ञेयः ॥

वहांही दीपिकामें कहाहै कि, शनैश्चर और मंगलवारको जिसके जन्मकी तिथि हो और उस दिन श्रेष्ठ नक्षत्रका योग न हो तो उसके पद पदपर विघ्न होता है, उसको सर्वौषधिसे स्नान करना चाहिये. गुरु, देवता, अग्निकी विधिपूर्वक पूजा करे, वृद्ध मनुने कहा है कि, मरण जन्म, संक्रांति, श्राद्ध, जन्मदिन, अयोग्योंका स्पर्श इनमें उष्ण (गर्म) जलसे स्नान न करै, इसमें जन्मकी तिथि उदयकालकी लेनी चाहिये, कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें यह कहा है कि, युगादि वर्षवृद्धि पार्वतीकी प्रिय सप्तमी ये सूर्योदयकी इच्छा करती हैं इसमें दो तिथियोंका योग न मानना चाहिये, इसमें विशेष हमारे बनाये शूद्रधर्ममें देख लेना ॥

[अ]थ कटिसूत्रम् ।

प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे–"प्रतिसंवत्सरान्तर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिः परम् । दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम् ॥ बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम् । दूर्वाङ्कुरैरथाज्येन चरुणा वा पिनाकिनम् । आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत्पितृदेवताः" ॥

अब कटिसूत्रको कहतेहैं, प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, प्रतिवर्षके अन्त्यके नक्षत्रमें मनुष्योंकी उत्तम विधिको लिखताहूं गौ, भूमि, सुवर्णका दान करके सुवर्ण आदिसे निर्मित्त कटिसूत्र (कौंधनी) को बांधे नये वस्त्र पहनकर दूबके अंकुर घी और चरुसे शिवजीके निमित्त आयु बढानेके निमित्त हवन करके पितर देवताओंको तृप्त करै ॥

अथ चौलम् ।

प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः–"जाताधिकाराज्जन्मादि तृतीये द्वे तु चौलकम् । आद्येब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके ॥ उपवीत्यासहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥" बृहस्पतिः–"तृतीयेब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोपि वा समम्" ॥

अब चौलको कहतेहैं, प्रयोगपारिजातमें षड्गुरुशिष्यका वाक्य है कि, जाताधिकार (गर्भाधान) वा जन्मसे तीसरे वर्षमें मुण्डन होताहै कोई प्रथम पांचवें दूसरे वर्षमें भी लिखतेहैं, और कोई यज्ञोपवीतके संग करते हैं, यह सब विकल्प कुलधर्मसे जानने चाहिये, बृहस्पतिने कहा है कि, बालक (स्त्री वा पुरुष) का मुण्डन गर्भ वा विशेषकर जन्मसे तीसरे पांचवें सातवें वर्षमें होताहै ॥

तत्रैव नारदः–"जन्मतस्तु तृतीयेब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः । पञ्चमे सप्तमे वापि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेपि वा" इति ॥ पारिजाते बृहस्पतिः–"उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके । शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभेतरत् ॥ अशुभोन्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधा कृते ॥" तत्रैव वसिष्ठः–"द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च । दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता ॥" नृसिंहीये–"षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी । द्वादशी दर्शपूर्णे द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः ॥"

वहांही नारदने कहाहै कि, जन्मसे तीसरे वर्ष बुद्धिमान् श्रेष्ठ जानतेहैं जन्मसे पांचवें और सातवेंमें मध्यम होता है, गर्भसे नौवें और ग्यारहवेंमें अधम होताहै, पारिजातमें बृहस्पतिने कहाहै कि, उत्तरायण सूर्यहो और विशेषकर सौम्य गोलका योग होय तो शुक्लपक्षमें शुभ और कृष्णपक्षमें अशुभहै, और कृष्णपक्षके तीन भाग करके पिछला भाग अच्छा नहीं, वहांही वसिष्ठने कहाहै कि, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, दशमी, त्रयोदशीमें ज्ञानी मनुष्यको क्षौर कराना चाहिये, नृसिंहीयने कहा है कि, छठ, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, प्रतिपदा निन्दितहैं और शेष शुभहैं ॥

वसिष्ठः–"रवेरङ्गारकस्यैव सूर्यपुत्रस्य चैव हि । निन्दिता दिवसाः क्षौरे शेषाः कार्यकराः स्मृताः ॥" ज्योतिर्निबन्धे बृहस्पतिः–"पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदं रवौ । क्षत्रियाणां क्ष्मासूनौ विट्शूद्राणां शनौ शुभम् ॥ हस्ताश्विविष्णुपौष्णाश्च श्रविष्ठादित्यपुष्य

भम् । सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः ॥ त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणी वारुणं तथा । क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिताः ॥ निधने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चन्द्रमेऽष्टमे । विपत्करे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत्[1] ॥ ३ ॥" अत्र लग्नशुद्धिरन्ये च योगा ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः । अन्ये च विशेषाः श्मश्रुकर्मनिर्णये वक्ष्यन्ते ॥

वसिष्ठने कहाहै कि, सूर्य, मंगल, शनिवार क्षौरमें निंदितहैं और शेष शुभहैं, ज्योतिर्निबन्धमें बृहस्पतिने कहाहै कि, पापग्रहोंके वारोंमें ब्राह्मणोंको रविवार श्रेष्ठ है, क्षत्रियोंको मंगल वैश्य शूद्रोंको शनि अच्छा है. हस्त, अश्विनी, श्रवण, रेवती, श्रविष्ठा (धनिष्ठा), पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिर, चित्रा ये नौ नक्षत्र नवीन क्षौरमें उत्तमहैं, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी, शतभिषा, ये क्षौरमें मध्यमहैं, शेष बारह निंदितहैं, जन्मनक्षत्रमें क्षौर होय तो मरण, अष्टम चन्द्रमामें करै तो नासिकाका नाश, विपत् नक्षत्रमें हो वा प्रत्यरिमें होय तो मृत्यु करै, इससे इनको त्यागदे, इसमें लग्नकी शुद्धि और दूसरे योग ज्योतिषसे जानने, और विशेष श्मश्रु (डाढी) कर्मके निर्णयमें लिखेंगे ॥

एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् ॥ तदाह ज्योतिर्निबन्धे मदनरत्ने च वृद्धगार्ग्यः—"पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत्" ॥ अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः—"सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ यदि गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा मरणे यदि । सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥ २ ॥" बृहस्पतिः—"गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् । व्रताभिषेके एवं स्यात्कालो वेदव्रतेष्वपि ॥" अभिषेकः समावर्तनम् ॥ 'गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः' इत्युक्तम् । मुहूर्तदीपिकायां गर्गेण—'पञ्चममासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः' इति । मदनरत्ने बृहस्पतिः—"पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरुस्तत्र दम्पती शिशुरब्दतः ॥ गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पञ्चमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्" ॥

बालककी माताको गर्भ होय तो यह मुण्डन न करना यही ज्योतिर्निबन्ध और मदनरत्नमें वृद्धगार्ग्यने लिखाहै कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गर्भिणी होय तो बालककी शस्त्रसे मृत्यु होती है इससे उस कालमें क्षौर न करावै, इसका निषेध वहांही नारदने लिखाहै कि, पुत्रकी माता गर्भिणी होय तो पांच वर्षसे प्रथम चूडाकर्म न करै, पांच वर्षके उपरान्त तो करले, यदि गर्भमें विपत्तिहो अर्थात् पात होजाय वा बालक मरजाय तो यज्ञोपवीतके संग करै, तब कुछ दोष नहीं है, बृहस्पतिने कहा है कि, बालककी माता गर्भिणी होय तो मुण्डन न करै, और व्रतका अभिषेक और वेदव्रतोंमें भी इसीप्रकार होताहै, गर्भिणी होनेपरभी पांचवर्षतक दोष नहीं लगता यह मुहूर्तदीपिकामें गार्ग्यने लिखा है कि, पञ्चम मासके उपरान्त माताके गर्भकी मृत्यु होतीहै, मदनरत्नमें बृहस्पतिने लिखाहै कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गर्भिणी होय तो गुरु, माता पिता बालक ये वर्ष दिनमें मरजाँय माताके गर्भमें मुण्डन ५ महीनेसे प्रथम करले और पीछे न करै ॥

गर्गः—"ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत् ॥ दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत्" ॥ लग्नमिति मङ्गलोपलक्षणम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—"विवाहोत्सवयज्ञेषु

---

१ विपत्—कृत्तिका । २ प्रत्यरिः—मृगशिरः ।

माता यदि रजस्वला । तदा स मृत्युमाप्नोति पञ्चमं दिवसं विना ॥ " वसिष्ठः–' यस्य माङ्गलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला । ' अर्धं तदेव ॥ तत्रैव बृहस्पतिः–" प्राप्तमभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा ॥" पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम् ॥ संकटे तु वाक्यसारे उक्तम्– " अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत्" ॥ एतच्च मण्डनोत्तरं न कार्यम् ' न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्द-भेदः ' इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः ॥ तत्रैव कात्यायनः–" कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ।" तथा वृद्धमनुः–"एकमातृज-योरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते " ॥

गर्गने कहाहै कि, जिसको ज्वर होय वह मंगलका कार्य न करै, वह दोष दूर होने पर पीछे स्वस्थ-होकर धर्मकरै ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहाहै कि विवाह उत्सव यज्ञोंमें यदि माता रजस्वला होय तो पांचवें दिनको त्यागकर वह पुरुष जिसका मंगल कार्यहै मृत्युको प्राप्त होताहै, वसिष्ठने कहाहै कि, जिसका मांगलिक कार्य होय उसकी माता रजस्वला होय तो वह पांचवें दिनको त्यागकर मृत्युको प्राप्त होताहै, वहांही बृहस्पतिने कहा है कि, पुत्रके संस्कारकर्मके निमित्त नांदीमुख श्राद्धमें यदि पत्नी रजस्वला होजाय तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध न करना चाहिये, इसमें पिताशब्द कृत्य करनेवालेका उपलक्षण है, यदि विपत्ति होय तो वाक्यसारमें यह लिखाहै कि, और मुहूर्त न मिले और रजोदोष होजाय तो विधिसे लक्ष्मीका पूजन करके मंगलकार्य करै, यह मुण्डनसे पीछे न करना कारण कि, मदनरत्नमें वसिष्ठने यह लिखाहै कि, वर्षके मध्यमें और एक गोत्रमें मण्डन (विवाह) से उपरान्त मुण्डन न करै, वहांही कात्यायनने यह कहाहै कि, एककुलमें तीन ऋतुसे प्रथम मण्डनसे मुण्डन प्रवेशसे निर्गम मंगलकार्यमें इष्ट नहींहै, वहांही वृद्धमनुने कहाहै कि, एकमातासे उत्पन्न हुए पुरुष स्त्रीका एकवर्षमें एक कर्म न करै, यदि माताका भेद प्राप्त होय तो करले ॥

आशौचे तु संग्रहे–" संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डाभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् " इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे– " षष्ठेब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥ " अन्योऽपि विशेषो वक्ष्यते ॥ दीपिकायां–" न चूडा जन्मभाग्नेयदारुणेषु शनौ कुजे ॥ प्रतिपद्भद्ररिक्तासु विद्यारम्भस्तु पञ्चमे ॥ "

आशौच होय तो संग्रहमें यह कहाहै कि, संकट होय या सूतक होजाय तो कूष्माण्डी ऋचाओंसे घृतका हवन करकै दुधारी गौका दान करै, फिर चूडा, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा आदि करै, ज्योति-र्निबन्धमें कहाहै कि, छठे सोलहवें वर्षमें वा विवाहके वर्षमें स्त्री गर्भवती होय तो मुण्डन न करै, और विशेष विवाहके प्रकरणमें लिखेंगे, दीपिकामें कहाहै कि, जन्मनक्षत्र, कृत्तिका, दारुणसंज्ञक नक्षत्र, शनैश्चर और मंगलवार प्रतिपदा और भद्रा, रिक्ता तिथि इनमें चूडाकर्म न करै, और विद्याका आरम्भ पांचवें वर्षमें करै ॥

प्रयोगरत्ने–"मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वासिष्ठानां तु दक्षिणे । उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्य-पानां शिखा मता ॥ " माधवीयेप्येवम् ॥ आपस्तम्बस्त्वाह–'तूष्णीं केशान्विनीय यथर्षि शिखा निदधाति ॥ ' यथर्षिप्रवरसंख्यया ॥ तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं

कार्यम् ॥ 'प्रतिदिशं प्रवपति' इत्युपनयने तेनैवोक्तेः ॥ ''रिक्तो वा एषो न पिहितो यन्मुंडस्तस्मै तदपिधानं यच्छिखा '' इति श्रुतेः ॥ ' विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्' इति निषेधाच्च । सत्रे तु-'वचनात्सशिखं वपनम्' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥

प्रयोगरत्नमें कहाहै कि, वसिष्ठगोत्रियोंकी चूडा शिरके दक्षिणमें अत्रि और कश्यप गोत्रियोंकी शिखा दोनों पार्श्वोंमें और सबकी शिरके मध्यमें होतीहै, माधवीयमेंभी इसीप्रकार कहाहै कि, आपस्तम्ब तो यह लिखतेहैं कि, मौन होकर बालोंको काटकर ऋषियोंके प्रवरोंकी संख्याके अनुसार शिखाको धारण करनी चाहिये, और उनका यज्ञोपवीतमें मुण्डन मध्यशिखाको त्यागकर होताहै, कारण कि, आपस्तंबने कहाहै कि, उपनयनमें शिखाकी चारों दिशाओंको मुण्डन करै, श्रुतिमेंभी कहाहै कि, यह मनुष्य शिखासे न ढका होय तो रिक्त (खाली) है, जिसे मुण्ड कहतेहैं, उसका शिखाही ढकनाहै, और यह निषेधभी है, जो कृत्य शिखा और बिना यज्ञोपवीतके कियाहै वह सब निषिद्ध है, अर्थात् न कियेके तुल्य है, यज्ञमें तो वाक्यसे शिखासहित मुण्डन होताहै यह सुदर्शन भाष्यमें लिखाहै ॥

यत्तु-'कुमारा विशिखा इव ' इति लिङ्गं तच्छंदोगपरम् ॥ अपरार्के मदनरत्ने च लौगाक्षिः' दक्षिणतः कमुञ्जा वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः । पञ्चचूडा अंगिरसो वाजिमेके । मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं वेति ।' (कमुञ्जा-शिखा) (वाजिः-केशपंक्तिः) । स्मृतिदर्पणे-"एका शिखा दक्षिणतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चाङ्गिरसो भृगोस्तु । नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभयत्रापि यथाकुलं च ॥" एतच्छूद्रातिरिक्त-विषयम् । 'शूद्रस्यानियताः केशवेशाः' इति वसिष्ठोक्तेः । यत्तु पाद्मे-'न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् ' इति शूद्रमुपक्रम्योक्तम् । तदसच्छूद्रस्येति केचित् । विकल्प इति तु युक्तम् ॥ अत एव हारीतः-"स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्त्वा क्रोधाद्वैराग्यतोपि वा । प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् '' ॥ एतत् परिग्रहपक्षे ॥ अत्र देशभेदा-द्व्यवस्थेति दिक् ॥

जो यह प्रमाण है कि, शिखाहीन कुमारोंके तुल्य है यह छांदोगि (साम वेदपाठि) योंके विषयमें जानना, अपरार्क और मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहाहै कि, वासिष्ठोंकी शिखा दक्षिणकी ओर अत्रि और कश्यप गोत्रकी दोनों ओर, भृगु मुण्डे, आंगिरसगोत्री पांच शिखावाले अथवा मंगलके निमित्त एककेशोंकी पंक्ति रक्खैं और अन्य अपने कुलधर्मके अनुसार शिखासंयुक्त रहैं, स्मृतिदर्पणमें कहाहै कि, वसिष्ठगोत्रियोंकी एक ओर शिखा दोनों ओर वा कुलके समान होतीहै, यहभी शूद्रके भिन्नोंमें जानना, कारण कि, वसिष्ठने लिखाहै कि, शूद्रके केशवेशोंका नियम नहींहै, जो पद्मपुराणमें शूद्रके विषयमें लिखाहै कि, शूद्र शिखा और यज्ञोपवीत धारण न करै और न संस्कृत वाणी बोले, वह असत् शूद्रके निमित्तमें है यह कोई कहतेहैं, विकल्प तो युक्तहै, इसीसे हारीतने लिखाहै कि, क्रोध वा वैराग्यसे स्त्री और शूद्र शिखाछेदन करके प्राजा-पत्य व्रत करैं, अन्यथा इसका प्रायश्चित्त नहीं है, यह परिग्रह पक्षमें जानना इसमें देशभेदसे व्यवस्था माननी चाहिये, यही मार्गहै ॥

ज्योतिर्निबन्धे-" नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमन्त्रिणि । शुभकर्म न कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे ॥ " अत्र भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये-"निवृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा । चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जातकर्माणि चैव हि ॥ अतोन्येषु तु

संस्कारेषूपवासेन शुद्ध्यति ॥" एते संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः । 'होमस्तु समन्त्रकः' इति प्रयोगपारिजाते ॥ आश्वलायनोपि-'होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि' इति ॥ मनुरपि-'अमन्त्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः' इति होमोप्यमन्त्रक इत्येके संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युरिति स्मृत्यर्थसारे । होमो नेति वृत्तिकृत् ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, सिंहके बृहस्पतिमें नर्मदाके उत्तर देशोंमें शुभकर्म न करै, और दक्षिणदेशोंमें इसका दोष नहींहै, यहां भोजनमें प्रायश्चित्त माधवीयमें इसप्रकार वर्णन कियाहै मुण्डनके हवन होनेपर और नामकरणमें भोजन करके सान्तपन कृच्छ्र करना, इससे अन्य संस्कारोंमें भोजन करके व्रतकरके शुद्ध होताहै, ये संस्कार स्त्रियोंके मन्त्ररहित करने चाहिये और हवन तो मन्त्रोंसे करना चाहिये, प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने लिखाहै कि, स्त्रियोंके चूडाकर्ममें पुरुषोंके तुल्य होम कर्म होताहै, मनुने कहाहै कि, स्त्रियोंके ये सब कर्म्म विना मन्त्र होतेहैं, कोई यह लिखते हैं कि, स्त्रियोंका हवन भी विना मन्त्र होताहै, स्त्रियोंके संस्कार हवन रहित मौनता युक्त होतेहैं, यह स्मृत्यर्थसारग्रन्थमें कहाहै इससे होम नहीं होता, यह वृत्तिकारका कथन है ॥

अथ विद्यारम्भः ।

मदनरत्ने नृसिंहः-"अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात्प्राप्ते पञ्चमहायने । उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥" दीपिकायाम्-"वर्षे पर्जन्यके काले षष्ठीं रिक्तां शनिं कुजम् । अनध्यायान्विना नत्वा देवं ग्रन्थकृतं गुरुम् ॥" श्रीधरः-"हस्तादित्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराक्र्यर्शदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये । पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः ॥" विष्णुधर्मोत्तरे-"पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम्" इति ॥

अब विद्यारम्भको कहतेहैं, मदनरत्नमें नृसिंहने कहाहै कि, अक्षरोंका स्वीकार पंचमवर्ष कुम्भकी संक्रांतिको त्यागकर उत्तरायण सूर्यमें विद्याका आरम्भ करै, दीपिकामें कहा है कि, वर्षाका समय, छठ, रिक्ता, शनि, मंगल अनध्यायको त्याग देवे और ग्रन्थके कर्ताको नमस्कार करके विद्यारम्भ करै, श्रीधरने कहाहै कि, हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, चित्रा, श्रवण, मंगल, शनैश्चर, सूर्यसे भिन्न वार स्थिर राशि दोनों पक्षोंका पूर्ण चन्द्रमा, प्रतिपदा, रिक्ता, षष्ठी, अष्टमीको त्यागकर तिथि और अष्टमभवनशुद्धवाली लग्नमें विद्यारम्भ करवावे, विष्णुधर्ममें कहाहै कि, हरि, लक्ष्मी, देवी, सरस्वती अपनी विद्याके सूत्रकार और विशेषकर अपनी विद्याकी पूजा करके और इन्हीं देवताओंके नामसे घी क हवन करै, और दक्षिणाओंसे ब्राह्मणोंका विद्यारम्भमें पूजन करै ॥

अथ धनुर्विद्या ।

दीपिकायाम्-"अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलेष्विन्दुभागान्त्यभेषु । शनिशशिबुधवारे विष्णुबोधेपि पौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम्" ॥

अब धनुर्विद्याको कहतेहैं दीपिकामें कहाहै कि पुनर्वसु, भरणी, हस्त, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मृगशिरका अन्त्यभाग, शनैश्चर, चन्द्र, बुधवार विष्णुका जागरण पौषसे भिन्न महीना श्रेष्ठसमय और तिथिका योग होय तो धनुर्विद्याका आरम्भ करै ॥

अनुपनीतबाले निर्णयः ।

अथानुपनीतस्य विशेषः ॥ गौतमः–' प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षाः ' इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति हरदत्तः ॥ अपरार्के वृद्धशातातपः–"शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥ प्राक् चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः । कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ २ ॥ " आपस्तम्बोपि--'अन्नप्राशनात् प्रयतो भवत्यासंवत्सरादित्येके' इति ॥ गौतमोपि–'न तदुपस्पर्शनादाशौचम् । ' तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादिस्पृष्टस्यापि स्पर्शान्न स्नानम् । इदं च षष्ठवर्षात् प्राक् ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव । 'बालस्य पञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत् ' इति स्मृतेः ॥ कामचारादिकेप्येवम् । "ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्" इति स्मृतेरिति हरदत्तः ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥

अब उस बालकके निमित्त विशेष कहतेहैं जिसका यज्ञोपवीत न हुआहो गौतमका कथनहै कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम बालक बोलने और भक्षण करनेमें स्वच्छन्द है, अर्थात् उसके बोलने और भक्षण करनेमें प्रायश्चित्त नहींहै, हरदत्तने कहाहै कि, लहसुनकाभी भक्षण करलेनेसे उस अवस्थामें दोष नहीं, अपरार्कमें वृद्धशातातपमें कहाहै कि, शिशुका अभ्युक्षण बालकका आचमन कुमारका स्नान रजस्वला आदिके स्पर्शमें लिखाहै, मुण्डनसे प्रथम बालक,अन्नप्राशनसे प्रथम शिशु, यज्ञोपवीतसे प्रथम कुमार है, आपस्तम्ब कहतेहैं कि, अन्नप्राशनसे वा मर्षदिनसे प्रथम सावधान (शुद्धहोताहै) गौतमनेभी कहाहै कि, उसके स्पर्शसे अशौच नहीं लगता, यज्ञोपवीतसे प्रथम बालकका चाहै चांडालनेभी स्पर्श कियाहो उसका स्पर्श करके स्नान न करना, यह छःवर्षसे प्रथममें जानना इसके उपरान्त स्नानसे शुद्ध होताहै, पांच वर्षसे उपरान्त बालककी रक्षाके निमित्त शौच करे, यह स्मृतिमें लिखाहै, इच्छासे किए हुए कर्ममें भी इसीप्रकार होताहै ११ वर्षसे प्रथम ९ वर्षसे पीछे प्रायश्चित्त शुद्धिके निमित्त गुरु और मित्र करें, इससे बहुत छोटे बालकको न अपराध लगताहै न पातक है यह स्मृतिमें कहा है यह हरदत्तका कथन है स्मृत्यर्थसारमेंभी इसीप्रकार कहाहै ॥

अथोपनयनम् ।

आश्वलायनः–"गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥ " मनुः–"ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोष्टमे । ' ॥ विष्णुः–"षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ॥" आपस्तम्बः–"गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयति । " बहुवचनं गर्भषष्ठगर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये । केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते ॥ आपस्तम्बः–"अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत्" ॥

अब यज्ञोपवीतविधि कहतेहैं आश्वलायनने लिखाहै गर्भसे आठवें वा जन्मसे आठवेंमें वा पांचवें वा सातवें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवेंमें क्षत्रिय, द्विजत्व (यज्ञोपवीत) को प्राप्त होतेहैं, मनुने भी लिखाहै कि, ब्रह्मतेजकी कामनावाले ब्राह्मणका पांचवेंमें, और बलकी इच्छावाले राजाका छठे वर्ष, और धनकी इच्छावाले वैश्यका अष्टम वर्षमें यज्ञोपवीत करना चाहिये, विष्णुने भी लिखाहै कि, धनकी इच्छावाला छठेमें, विद्याकी इच्छावाला सातवेंमें, सब वस्तुओंकी इच्छावाला अष्टममें, और कांतिकी इच्छावाला नवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै आपस्तम्बने यह लिखाहै कि, गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै, सुदर्शनभाष्यमें यह लिखाहै कि, (गर्भाष्टमेषु) यह बहुवचन गर्भसे छठे सातवें वर्षके ग्रहणके निमित्तहै, कोई तो यज्ञोपवीतमें ब्राह्मणको छठा वर्ष नहीं कहते हैं आपस्तम्बमें यह लिखाहै कि, यह आरम्भ करके ब्रह्मतेजकी इच्छावाला आठवेंमें, तेजकी इच्छावाला नवेंमें, अन्न आदिकी इच्छावाला दशवेंमें, इन्द्रियकी इच्छावाला ग्यारहवेंमें पशुकी इच्छावाला बारहवेंमें यज्ञोपवीत करै ॥

तत्र गौणकालनिर्णयः।

गौणकालमाह मनुः–" आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः " ॥ ज्योतिर्निबंधे–" अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमब्दतः। अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः " ॥ गर्गः–"विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात्। माघादिशुक्रान्तिकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम्" ॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे–'माघादिषु च मासेषु मौञ्जी पञ्चसु शस्यते ॥'

अब गौण समय कहते हैं कि, सोलहवर्षपर्यन्त ब्राह्मणको, बाईस वर्षपर्यन्त क्षत्रियको, चौबीस वर्षपर्यन्त वैश्यको, गायत्री उल्लंघन नहीं करती, ज्योतिर्निबन्धमें लिखाहै ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका अपनी अवधिके वर्ष ऊपरले वर्षमें यज्ञोपवीत न होयतो वे सम्पूर्ण शूद्रके तुल्य होजातेहैं, गार्ग्यने कहाहै कि, ब्राह्मणका वसन्तमें, क्षत्रीका ग्रीष्मऋतुमें, वैश्यका शरदऋतुमें यज्ञोपवीत करना चाहिये, और माघसे लेकर ज्येष्ठपर्यन्त पांचमास सब द्विजोंको साधारणहैं अर्थात् इन महीनोंमें सब द्विज यज्ञोपवीत करैं, हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथनहै कि, माघ आदि पांच महीनोंमें मौंजीबन्धन (यज्ञोपवीत) श्रेष्ठहै ॥

कालादर्शे वृद्धगार्ग्यः–"माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं मतम्। चूडाकरणमन्नं च श्रावणादौ विवर्जयेत् ॥" मैत्रेयसूत्रेपि–' वसन्तो ग्रीष्मः शरत् इत्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण माघादिषण्मासा वा सर्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः ' इति ॥ अत्रेदं तत्त्वं, नात्र वसन्तेनोत्तरायणस्य संकोचः। श्राद्धदर्शस्यापराह्णविधिनैवाधाने वसन्तादेः। कृत्तिकादिने च सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः। आद्ययोः परस्परव्यभिचारान्नियमः। अंत्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालपेक्षा। इह तूत्तरायणं विना वसन्तस्याभावान्नानियमः। न वा निमित्तत्वम्। न चैकं वृणीत इतिवदवयुत्यानुवादः। तद्वाक्यभेदापरिहारात् ॥ उत्तरायणविधिवैयर्थ्यात्त्वनुकल्पोयमिति। माघ आदिर्येषां पञ्चानां एवं षट्। पारिजाते बृहस्पतिः–"झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु" ॥ वृत्तशते–" न जन्मधिष्ण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीयदिने विदध्यात्। ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुतायां अपि मङ्गलानि " ॥ राजमार्तण्डः–"जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च

गर्गो नियतं दशात्रिः । जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ताः खलु जन्ममासि ॥ जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ॥ जन्ममासनिषेधेपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयोपरे ॥ ३ ॥ " ग्रन्थान्तरे-" व्रते जन्मत्रिखारिस्थोजीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत् । शुभोतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥ शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ " ॥ ३ ॥

कालादर्शमें वृद्धगार्ग्य कहतेहैं कि, माघ आदि छः महीनोंमें मेखलाबन्धन (यज्ञोपवीत) और चूडाकर्म करै, और श्रावण आदि महीनोंको त्यागदे, मैत्रेयसूत्रमें भी कहाहै कि, वसंत ग्रीष्म शरद् ये तीनों ऋतु तीनों वर्णोंको क्रमसे हैं वा माघआदि छः महीने उत्तरायण कालमें करै इन दोनोंका विकल्पहै, अर्थात् तीनों वर्ण चाहे वसंत आदि ऋतुमें चाहे माघआदि छः मासोंमें यज्ञोपवीत करैं, इसमें यह सिद्धान्त है कि, यहां वसंतसे उत्तरायणका संकोच उसप्रकार नहीं कहाहै, जैसे अमावास्याके श्राद्धका अपराह्णविधिसे कहतेहैं, और जैसे अग्न्याधानमें वसंतका कृत्तिकानक्षत्रसे और जैसे यावज्जीव अग्निहोत्रविधिको सायंकाल प्रातःकाल विधिसे संकोच प्राप्त होताहै, प्रथम दोनोंमें परस्पर व्यभिचार दोष हैं, अर्थात् दर्शविना अपराह्ण और वसंतविना कृत्तिका । इससे नियम करदियाहै कि, वसंतकी कृत्तिकामें ही करै, तीसरेमें किसी निमित्तसे सांगोपांग कर्मके कहनेसे कर्मकालकी अपेक्षा आतहै अर्थात् जबतक जिये अग्निहोत्र करै, परन्तु इसने यह नहीं कहा कब करै, इससे, 'सायंप्रातर्जुहुयात्' इसवाक्यने सायंकाल प्रातःकालकी प्राप्ति बताई, यहांतो उत्तरायणके विना वसंत प्राप्त होनहीं सकता, इससे न नियम है और न इसमें निमित्तहै, यदि कोई शंका करै कि, 'एकं वृणीत' नाम एकब्राह्मणका वरण करै इसके समान यह पृथक् करके अनुवादहै, अर्थात् ब्राह्मणोंका वरण करै, इससे ही एकका वरण प्राप्तथा जैसे एकका वरण करै यह सिद्धका कथनरूप अनुवादहै, इसीप्रकार उत्तरायणकी विधिसेही यज्ञोपवीत सिद्ध होगया था वसन्तमें करै यह भी सिद्धका कथनरूप पृथक् करके अनुवादहै, सो उचित नहीं इसमें भी पूर्वोक्तके तुल्य वाक्यभेदरूप दोषका परिहार प्राप्त नहोगा, अर्थात् माघआदिमें उत्तरायणमें करै और वसन्तमें करै ये दो विधान करनेवाले वाक्य होजायँगे, इससे उत्तरायणमें यज्ञोपवीत करै, इस विधिके व्यर्थ होजानेसे वसन्तमें करै, यह अनुकल्पहै, यह इतना यहां निचोड है, यहां माघ आदिमें पांच और एक माघ अर्थात् जिन पांचकी आदिमें माघ है इसप्रकार छःमास लेने कारण कि, यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है, पारिजातमें बृहस्पतिने कहाहै कि, मीन धन कर्कका अशुभ भी बृहस्पति विवाह यज्ञोपवीत आदिमें अत्यन्त शुभको करता है वृत्तशतमें कहाहै कि, जन्मका नक्षत्र जन्मका महीना जन्मके दिनमें और जेठे पुत्र और जेठी कन्याका ज्येष्ठमासमें मंगलकार्य न करै, राजमार्त्तण्डमें लिखाहै कि, बसिष्ठ जन्मके एक दिनको और गर्गऋषि जन्मसे आठदिन और अत्रिऋषि जन्मसे दशदिन और भागुरि जन्मसे एक पक्षको अनिष्ट कहते हैं, शेषदिन जन्मके मंगलकार्योंमें श्रेष्ठ हैं, यदि जन्मके महीने तिथि और नक्षत्रमें पक्षका भेद होयतो मंगलकार्य करलेना यह गर्ग भार्गव शौनकका मत है, जन्ममासके निषेधमें भी जन्मदिनसे लेकर दशदिन त्यागदे शेष तिथि श्रेष्ठ हैं ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, यज्ञोपवीतमें जन्मका तीसरा छठा बृहस्पति एकबार पूजनसे उत्तम है अतिकाल होगया होय तो छठा आठवां बारहवां भी दूने पूजनसे श्रेष्ठ हैं, यदि आठवें वर्षमें जिस बालककी

बृहस्पतिकी शुद्धि न हो, उसका यज्ञोपवीत चैत्रमास और मीनके सूर्यमें उत्तम है ॥ जन्मसे आठवें, सिंहके नीचके वा शत्रुक्षेत्रके भी बृहस्पतिहों तो चैत्रमें मीनके सूर्यमें यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है ॥

नारदः–"बालस्य बलहीनोपि शान्त्या जीवो बलप्रदः ॥ यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम् ॥ " शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्निबन्धे नृसिंहः–"तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा " ॥ २ ॥

नारद कहतेहैं कि, बलहीन भी बृहस्पति शान्तिसे बालकको बलदायकहै इससे शास्त्रोक्त वर्षमें वा अन्य वर्षमें यज्ञोपवीत करलेना, शान्ति आगे लिखेंगे, ज्योतिर्निबन्धमें नृसिंहने कहाहै कि, तृतीया पंचमी षष्ठी द्वितीया सप्तमी ये दोनों पक्षोंकी तिथि विशेष कर अत्यन्त उत्तमहैं, शुक्लपक्षमें यज्ञोपवीत करै तो धर्म काम सिद्ध होतेहैं, और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा और शुक्लपक्षकी त्रयोदशीकी भी कोई मुनि इच्छा करतेहैं ॥

टोडरानन्दे वसिष्ठः–"नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिनम् । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ॥ प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वा परसंयुता ॥ " एतदतीतकालस्यार्तस्य बटोरुपनयनविषयम् । " प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रे बलयुते लग्नवर्षाणामपि लंघने " इति व्यासोक्तेरित्याहुः ॥ एवं सप्तम्यपि । तस्या गलग्रहत्वोक्तेः ॥ बृहस्पतिः–'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ॥ ' तथा–'मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत् ॥ ' मदनरत्ने नारदः–"विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ " अपराह्णस्त्रिधा विभक्तदिनतृतीयांश इत्युक्तं तत्रैव । वसन्ते गलग्रहो न दोषायेत्यर्थः ॥

टोडरानन्दमेंभी वसिष्ठका वाक्य है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका दिन नैमित्तिक अनध्यायहै, तोभी यज्ञोपवीत मुण्डन और वेदके व्रतोंमें उत्तमहै, कृष्णपक्षकी प्रतिपदा उत्तमहै, पर अमावास्या और द्वितीयासे युक्त होयतो श्रेष्ठ नहीं है, यह भी उस बालकके यज्ञोपवीतमें जानना जिस बालकके यज्ञोपवीतका काल बीत गया हो कारण कि, व्यासने यह लिखाहै कि, कदाचित् कृष्णपक्षकीभी प्रतिपदा तब उत्तमहै जब चन्द्रमा उत्तम हो और लग्न बलवान् हो और यज्ञोपवीतके वर्ष बीत गयेहों, इसीप्रकार सप्तमीकोभी जानो, अर्थात् चन्द्र आदिके बलमें शुभ जानो, कारण कि, वहभी गलग्रह तिथिहै, बृहस्पतिने कहा है कि, सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और पिछली पांच तिथियोंको त्यागकर और सम्पूर्ण कृष्णपक्ष शुभ है, इसीप्रकार वाक्यहै कि, मिथुनके सूर्यमें ज्येष्ठ मासका दोष नहीं, मदनरत्नमें नारदका कथनहै कि, वसन्तसे पृथक् ऋतु कृष्णपक्ष और गलग्रहमें जिसका यज्ञोपवीत हो वह फिर संस्कारके योग्यहै, तीनभाग किये हुए दिनके तीसरे भागको अपराह्ण कहा करतेहैं, यह मदनरत्नमेंही लिखा है वसंतऋतुमें गलग्रहका दोष नहीं है ॥

नारदः–"कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः " ॥ वसिष्ठः–"पापांशकगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेपि च । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ अनध्यायस्य पूर्वेद्युस्तस्य चैवापरेहनि । व्रतबन्धं विसर्गञ्च विद्यारम्भं न कारयेत् " ॥ २ ॥ राजमार्त्तण्डः–"आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे तमेवाहुर्गलग्रहम् ॥ " ज्योतिर्निबन्धे–"अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥ " सोपपदास्तु स्मृत्यर्थ-

सारे-"सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ॥ चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः" ॥ एवं प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः-"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया तु न यामिका" ॥

नारदने कहाहै कि, कृष्णपपक्षकी चौथ और सप्तमीसे तीनदिन और त्रयोदशीसे चारदिन यह गलग्रह तिथि हैं, वसिष्ठने कहा है कि, पापके नवांशमें चन्द्रमाहो वा शत्रुघरका और नीचका चन्द्रमाहो वा अनध्याय हो ऐसे योगमें जिसका यज्ञोपवीत हुआहो वह फिर संस्कारके योग्यहै, अनध्यायके प्रथम दिन वा परले दिन यज्ञोपवीत विसर्जन और विद्यारम्भ न करना चाहिये, राजमार्तण्डमें कहाहै, कि, गर्ग आदि मुनियोंने उसको भी गलग्रह कहाहै, जहां आरम्भके उपरान्त प्रत्यारम्भ (विसर्जन) न बनै, ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, सम्पूर्ण अष्टका और मन्वन्तरादि और सोपपदामें यज्ञोपवीतका अनध्याय करना चाहिये, स्मृत्यर्थसारमें सोपपदा तिथि यह लिखी है कि, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, आश्विन शुक्ल १० दशमी, माघ शुक्ल चौथ, और द्वादशी इसीप्रकार प्रदोष दिनको भी छोड़दे, प्रदोषका रूप गोभिलने इसप्रकार लिखा है कि, षष्ठी और द्वादशी ये आधी रातसे एकघड़ी न्यून होय तो प्रदोष करै ॥

ज्योतिर्निबन्धे व्यासः-"या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥" अत्रापि कृष्णप्रतिपद्वज्ज्ञेयम् ॥ यत्तु बृहद्गार्ग्यः-"अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् । सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा । बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानि व्रतबन्धने" इति तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् ॥ "स्वाध्यायवियुजो घस्राः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मताः" इति तेनैवोक्तेरिति निर्णयामृतकालादर्शौ । यद्यप्यथोपेतपूर्वस्येत्युक्त्वा अनिरुक्तं परिदानं कालश्चेत्याश्वलायनेन पुनरुपनयने कालानियम उक्तः । तथापि निमित्तान्तरमेव सः । तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः । प्रतिवेदमुपनयने कालानियम इति तु युक्तम् ॥

ज्योतिर्निबन्धमें व्यासने कहा कि, चैत्र और वैशाख शुक्ल तीज और माघ शुक्ल सप्तमी और फाल्गुन कृष्ण तीज ये तिथि यज्ञोपवीतमें भारद्वाज मुनिराजने श्रेष्ठ कहीं हैं, यहांभी कृष्णप्रतिपदाके तुल्य चन्द्रमाके बलमें ही इनको शुभ जानना, जो वृद्धगार्ग्यने यह कहा है कि, जो कर्म किसी निमित्तसे किया जाय तो उसे अनध्यायमें भी करलेना चाहिये, माघ शुक्ल सप्तमी अक्षय तीज बुध बृहस्पति शुक्र चन्द्र ये वार यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं, यह वृद्ध गार्ग्यका कथन भी उस यज्ञोपवीतमें समझना चाहिये, जो प्रायश्चित्तके निमित्त कियाजाय कारण कि, वृद्धगार्ग्यने यह लिखाहै कि, स्वाध्यायसे पृथक् (अनध्यायके) दिन और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि ये उस यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं, जो प्रायश्चित्तके निमित्त हो यह निर्णयामृत और कालादर्शमें कहाहै, यद्यपि आश्वलायनने फिर उपनयनमें समयका नियम नहीं लिखाहै कि, जिसका प्रथम यज्ञोपवीत होगयाहो उसको यज्ञोपवीतका देना, और समय नहीं लिखा तथापि निमित्तके उपरान्त (पीछे) ही वह समयका अनियम जानना चाहिये उस समय न करै तो पूर्वोक्त समयही जानना, युक्त तो यह है कि, प्रतिवेद यज्ञोपवीतमें समयका नियम नहीं ॥

गर्गः-"ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥" संकटे तु चण्डेश्वरः-"दाहे दिशां

चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च । केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद्व्रतमङ्गलानि ॥ " तत्रैव-" वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा । न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेपि च"॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे-" हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु । शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥ "

गर्गने लिखाहै कि, सूर्यचन्द्रमाका ग्रहण भूमिका कंप केतुतारेका निकलना बिजलीका गिरना आदि दोष होंय तो यज्ञोपवीतमें ज्योतिषी दशदिनका निषेध कहतेहैं और कोई तेरहदिन त्यागको कहतेहैं, संकटमें तो चंडेश्वरने यह लिखाहै कि, दिशाओंका दाह भूमिका कम्प वज्रका गिरना और राजयुद्ध केतुका निकलना और बिजलीके खण्डोंका गिरना इनमें तीनदिनतक यज्ञोपवीत और मंगलके कार्योंको न करै, यजुर्वेदियोंको सोपपदा और अनध्यायका दोष वेदव्रत, और यज्ञोपवीत, और वेदपाठमें नहीं है यह वहांही कहाहै, हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथन है कि, हस्तसे तीन पुष्य धनिष्ठा रेवती अश्विनी मृगशिर पुनर्वसु श्रवणमें और चन्द्रमाके बलसे युक्त श्रेष्ठ तिथिमें द्विजातियोंका यज्ञोपवीत और विसर्जन करने चाहिये ॥

ज्योतिर्निबन्धे नारदः-" श्रेष्ठान्त्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च । विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥ " बृहस्पतिः-" त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम्" ॥ ज्योतिर्निबन्धे-" पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः । धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम् ॥ " राजमार्तण्डस्तु ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति-" ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतौ विप्रः पुनः संस्कारमर्हति " ॥

ज्योतिर्निबंधमें नारदने कहाहै कि, हस्तसे तीन रेवती पुष्य पुनर्वसु तीनों उत्तरा श्रवणसे तीन अश्विनी अनुराधा भरणी ये नक्षत्र यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं, बृहस्पतिने कहाहै कि, तीनों उत्तरा रोहिणी हस्त अनुराधा धनिष्ठा चित्रा मृगशिर पुनर्वसु यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठहैं, ज्योतिर्निबंधमें कहाहै कि, तीनों पूर्वा और हस्तसे तीन आश्लेषा श्रवण मूलमें बह्वृचों (ऋग्वेदियों) का, और रेवती अनुराधा हस्त और पुनर्वसु मृदुसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञकमें यजुर्वेदियोंका, श्रवण आर्द्रा हस्त धनिष्ठा पुष्य तीनोंउत्तरा अश्विनीमें सामवेदियोंका, और धनिष्ठा पुनर्वसु अनुराधा हस्त मृगशिर रेवतीमें अथर्ववेदियोंका यज्ञोपवीत करना उत्तम है, राजमार्तण्डतो ब्राह्मणको पुनर्वसुका निषेध लिखतेहैं कि, तारा और चन्द्रमा अनुकूलहों और ग्रह और वर्ष शुभभी होंय तो भी पुनर्वसुमें यज्ञोपवीत किया हुआ ब्राह्मण फिर संस्कारके योग्य है ॥

ज्योतिर्निबन्धे नारदः-" सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः । चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ २ ॥" शाखाधिपाश्च रत्नसंग्रहे--ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः । जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रः " इति ॥ पारिजाते बृहस्पतिः--" बह्वृचानां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे । सामगानां धरासूनोरथव विदुषां रवेः ॥" अत्र लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ विस्तरभयान्नोच्यते ॥

ज्योतिर्निबंधमें नारदने कहाहै कि, बृहस्पति शुक्र बुधवार सबके यज्ञोपवीतमें उत्तम कहे हैं, और चन्द्रमा और सूर्य मध्यम जानने और वैश्य और क्षत्रियको मंगल उत्तम है शाखाके स्वामीका वार और शाखाके स्वामीका बल और शाखाके स्वामीकी लग्न ये तीन यज्ञोपवीतमें दुर्लभ हैं, शाखाके स्वामी रत्नसंग्रहमें यह लिखेहैं कि, ऋक्, साम, अथर्व, यजुर्वेदियोंके स्वामी क्रमसे बृहस्पति, बुध, मंगल, शुक्र होतेहैं, बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मणोंके स्वामी क्षत्रियोंके मंगल और सूर्य, वैश्योंका स्वामी चन्द्रमा होताहै, पारिजातमें बृहस्पतिने कहाहै कि, ऋग्वेदियोंका वार बृहस्पति, यजुर्वेदियोंका बुध, सामवेदियोंका मंगल, और अथर्ववेदियोंका सूर्य होताहै, यज्ञोपवीतमें लग्न आदि ज्योतिषियोंसे जानने चाहिये, यहां विस्तारभयसे नहीं लिखते ॥

लल्लः—"व्रतेह्नि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत् ॥" ज्योतिर्निबन्धे—"नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्सादनध्यायस्त्वकालिकः । तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत् ।" एतद्बह्वृचातिरिक्तानाम् ॥ तेषां तद्दिने वेदारम्भाभावात् । अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव ॥ ऐतरेयोपनिषदि—'मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः ॥ तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्यायः' इति वेदभाष्ये उक्तम् । एतच्च प्रातस्तनिते सायंस्तनिते तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसंध्योत्तरं होमं कुर्यात् । "न संध्यागर्जिते काले न वृष्ट्युत्पातदूषिते। ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वं चेन्न निवर्तते ॥ ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति ।" इति संग्रहोक्तेः । इति प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः ॥

लल्लने लिखाहै व्रतके दिन यदि पूर्वसंध्यामें मेघ गर्जै तो अनध्याय होजाताहै, इससे उसमें व्रतको त्याग देना ज्योतिर्निबंधमें यह कहाहै कि, यदि नान्दीमुख श्राद्ध किये उपरान्त अकालिक अनध्याय होजायतो उपनयन करलेना और वेदारंभको न करै, बह्वृचोंका (असमय) अनध्यायमें वेदारंभ नहीं होता इससे यह ज्योतिर्निबंधका कहना तिनसे भिन्नोंके निमित्त है, इससे तिनका असमय अनध्यायमें यज्ञोपवीत नहीं होता, ऐतरेय उपनिषदमें मृगशिरसे ज्येष्ठातक वर्षा ऋतुहै उसके विना वर्षाऋतुमें तीनरात्रका अनध्यायहै यह वेदभाष्यमें कहाहै, प्रयोगरत्नमें भट्टचरणोंने यह लिखाहै कि, यह वाक्य प्रातःकालके गर्जनेके विषयमें है, यदि संध्यामें गर्जै तो दिनमें पकाये हुये चरुका संध्याके उत्तर सायंकाल हवन करले, कारण कि, संग्रहमें लिखा है कि, संध्याके समय गर्जनेमें और विजली आदिके उत्पातमें ब्रह्मौदन (चरु) को अग्निमें पकाना न चाहिये, वे और पकाहुआ अन्न इनमें दूषित नहीं होता ॥

सायंगर्जने शान्तिनिर्णयः ।

अत्र शान्तिरप्युक्ता नृसिंहप्रसादे । "ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं वटोरध्ययनस्य तत् ॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियजौ भवेत् ॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान्पठेत्प्रज्ञाविवृद्धये । गायत्री चैव मन्त्रः स्यात्प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥ धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥"

इस स्थलमें नृसिंहप्रसादमें शान्तिभी लिखीहै, कि, यदि प्रदोषके समय ब्रह्मौदनविधि (यज्ञोपवीतके भात) से पूर्वमेघ गर्जै तो वह विद्यार्थीको अध्ययनका विघ्नकारी समझना चाहिये उसकी शान्तिमें

शास्त्रके अनुसार लिखताहूं कि, शान्तिहवनमें घीसहित (खीर) प्रधान है इससे इनका होम करै, और बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धिकी वृद्धिके निमित्त बृहस्पतिसूक्त तथा गयात्री पढे, और प्रायश्चित्त होमको घृतसे करै, दूध देती हुई बछडासहित गौ आचार्यको दे, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे फिर ब्रह्मौदन विधिको करै ॥

उपनयने चाधिकारिणः।

माधवीये वृद्धमनुनोक्ताः–"पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपानयेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः" ॥ प्रयोगरत्ने--"पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥" पितेति विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तेषां पुरोहित एव । उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात् । तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् । अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभात्रभावेऽधिकारः । 'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ तेनेदमविभक्तपरम् । पूर्वं तु विभक्तपरम् । मातू रजोदोषे तु प्रागुक्तम् ॥

उपनयन करानेमें अधिकारी माधवीय ग्रन्थमें मनुने ये लिखेहैं कि, पिता, दादा, भाई, जातिके मनुष्य, और सगोत्री, तथा ब्राह्मण यज्ञोपवीत करानेके अधिकारी हैं, और इनमें पूर्वालाभ होय तो परपरका ग्रहण है, अर्थात् पिता न होयतो पितामह इत्यादि, प्रयोगरत्नमें भी लिखाहै कि, पिताही पुत्रका उपनयन करै, वह न होयतो पितामह और उसके आभावमें चाचा, यदि पितृव्य न होयतो सगाभाई यज्ञोपवीत करावै, पिताभी ब्राह्मणोंके निमित्तहै, क्षत्रियादिको नहीं, कारण कि, उपनयनका दृष्टार्थ इस लोकके निमित्त होनेसे पुरोहित ही अधिकारी है, और क्षत्रिय आदिकोंका वेदके पढानेमें अधिकार नहीं है, और यहा पितृव्यकाभी ज्येष्ठभाईके न होनेमेंही अधिकारहै कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखाहै जिन भाइयोंका संस्कार नहीं हुआ उनका प्रथम संस्कृत भाई संस्कार करै, तिससे यह अविभक्त (अभिन्न) पर है विभक्तपर नहीं. माताको रजोदर्शन होय तो यज्ञोपवीतका करना प्रथम कह आयेहैं ॥

अथ षण्ढमूकादीनां विशेषः।

प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे–"ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः । तस्माच्च षण्ढबधिरकुब्जवामनपङ्गुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु । मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् । मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित्प्रचक्षते ॥ कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः । तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥ संस्कारमन्त्रहोमादीन्करोत्याचार्य एव तु । उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः । आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् । कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ ॥ ७ ॥" इति ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः । अन्यस्य–'विन्नाष्वेष विधिः स्मृतः' इति वचनात् । अब्राह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः । उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम् । 'प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति' इति मदनपारिजाते गोभिलोक्तेः ॥

अब नपुंसक और मूक (गूंगे) आदिमें विशेष कथन करतेहैं, प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, ब्राह्मणीमें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै वह ब्राह्मण होताहै, यह श्रुति है, उससे उत्पन्न हुये

नपुंसक बहरे कुबडे वामने लंगडे हैं वा जड तोतले रोगी शुष्क और विकल अंगवालेहैं, वा मत्त उन्मत्त गूंगे हैं, वा निद्रालु और इन्द्रियसे रहितहैं वा पुंस्त्वहीन होगयेहैं उनका भी यथोचित संस्कार करना, कोई यह कहतेहैं कि, इन दो मत्त उन्मत्तका संस्कार न करै, ये दोनों पतित तो नहीं हैं. पर इनका कर्ममें अधिकार नहीं. उनकी सन्तान संस्कार करने योग्यहैं, कोई तो इससे अन्यथा कहतेहैं, कि, उनके संस्कार होम आदि आचार्यको करने चाहिये, यज्ञोपवीत करने योग्य नपुंसक आदिको आचार्य विधिसे अपने निकट लाकर और अग्निके पास बैठाकर और स्पर्श करके गायत्रीका जप करै, निदान कन्यादान करनेसे भिन्न सब कर्मको आचार्य करै, इसीप्रकार ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुये कुण्ड गोलकभी संस्कार करने योग्यहैं, पतिके जीते हुये जारसे उत्पन्न हुयेको कुण्ड और मरे पीछे जारसे उत्पन्न हुएको गोलक कहतेहैं स्मृत्यर्थसारमें भी इसीप्रकार लिखाहै, कुण्ड गोलकका संस्कार और श्राद्धमें निषेध क्षेत्रज पुत्रके विषयमें है, औरको ब्राह्मण न होनेसे यज्ञोपवीतकी प्राप्तिही नहीं है यह अपरार्कका कथन है, यज्ञोपवीत बालकको भोजन कराकर करना, कारण कि, मदनपारिजातमें गोभिलने यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीतमें बालकको पहले ही भोजन करावै ॥

गायत्र्युपदेशश्चोत्तरतोऽग्नेः कार्यः । 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः । प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहि भोः' इति शांखायनसूत्रोक्तेः ॥ यद्यपि कात्यायनेन–'तथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखाय' इत्युक्त्वा 'दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके' इति विकल्प उक्तः ॥ तथापि कातीयानामेव सः बह्वृचानां तूत्तर एव वेदैक्यात् ॥

गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर दिशामें करै, कारण कि, शाखायन सूत्रमें यह लिखाहै कि, अग्निसे उत्तरमें बैठेहुये पश्चिममुख बालकको पूर्वमें बैठाहुआ आचार्य यह कहै, भो बटो अध्ययन करो यद्यपि कात्यायनने यह विकल्प लिखाहै कि, इसके उपरान्त बटुको गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर पश्चिममुख बैठे हुए को करै, यह कहकर कोई लिखते हैं कि, दक्षिणकी ओर बैठे हुयेको उपदेश करै, तथापि यह कात्यायनोंके निमित्त है बह्वृचोंको तो उत्तरमें ही उपदेश करै, कारण कि, उनका एकही वेदहै ॥

भिक्षायां विशेषनिर्णयः ।

भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः–'मातरमेवाग्रे भिक्षेत ॥' पराशरमाधवीये–"मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥

कात्यायनने भिक्षामें विशेष लिखा है कि, पहिले मातासेही भिक्षा मांगे, पराशरमाधवीयमें लिखाहै कि, माता बहिन मौसी इससे प्रथम भिक्षा मांगे अथवा जो इसका अपमान न करै उससे मांगे ॥

संस्कारलोपे निर्णयः ।

अथ संस्कारलोपे शौनकः–" आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम् । व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् ॥ एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत् । चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम् ॥ अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥२॥".

अत्र संस्कारके लोप (नहोना) में शौनकका कथनहै कि, गर्भाधानसे लेकर मुण्डनपर्यन्त संस्कारकाल बीतजाय तो व्याहृतियोंसे घीका संस्कार और हवन करके क्रमसे कर्म करै, यदि इनमें एक २ कर्मका लोप होय तो चौथाई कृच्छ्र करै, मुण्डनके लोपमें आधा कृच्छ्र करै, यह आपत्तिमें लिखाहै, आपत्ति न होय तो सब कर्मोंके लोपमें दूना २ प्रायश्चित्त करै ॥

पारिजाते कात्यायनः–"लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत् ॥" स्मृत्यर्थसारे चैवम् ॥ कारिकायां तु–'प्रायश्चित्ते कृतेऽतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्' इत्युक्तम् । "प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै । कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः" इति ॥ त्रिकाण्डमण्डने तु–"कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्तराणि तु" ॥

पारिजातमें कात्यायनने सब स्थानमें कर्मके लोपमें प्रायश्चित्त लिखाहै, प्रायश्चित्त करने उपरान्त लोप हुए कर्मको करै स्मृत्यर्थसारमें भी इसीप्रकार लिखाहै. कारिकामें तो यह लिखाहै कि, प्रायश्चित्तके उपरान्त वह कर्म किया भी न करनेके बराबरहै जिसका समय बीतगया हो कारण कि, यह कहाहै कि, प्रायश्चित्त होनेपर बीता हुआ कर्म करना, यह कोई आचार्य लिखतेहैं और अन्य विद्वान् यह कहते हैं कि, न करना. त्रिकाण्डमण्डनमें तो यह लिखा है कि, वे कर्म करने होंय जिनका समय बीतगया हो और अन्य कर्म भी प्राप्त होय तो उन कर्मों को प्रथम करके जिनका समय बीतगया हो फिर नये कर्मोंको करै॥

तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । देशकालकर्त्रैक्यात् । "गणशः क्रियमाणानां मातॄणां पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ एतद्बहूनामपत्यानां युगपत्संस्कारकरणविषयमिति बोपदेवः । अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्यन्ये । तत्रापि चौलस्योपनीत्या सहेति पक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न पूर्वदिने । सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात् वृद्धाचारोप्येवम् ॥

वहां सब कर्मोंका तन्त्र (एक) सेही नान्दीमुखश्राद्ध करै, कारण कि, देश काल करनेवाले यह सब एक हैं. छंदोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, गणसे (एकवार) किये हुए कर्मोंमें माताओंका पूजन और श्राद्ध एकवारही पहिले करले, और भिन्न २ न करै. बोपदेव तो यह लिखतेहैं कि, यह उस विषयमें है कि, जब एकवार बहुतसे अपत्यों (सन्तान) का संस्कार हो. और तो यह कहतेहैं कि, जिनका समय बीत गयाहो; उनके संस्कारोंके विषयमें है, उनमें भी मुण्डन जब यज्ञोपवीतके संग है, उस पक्षमें उपनयनके दिनही नान्दीमुख श्राद्ध करना, पूर्वदिनमें न करना कारण कि, संग करनेमें एक दिनमेंही श्राद्ध अत्यन्त निकट है वृद्धोंका आचारण भी इसीप्रकार है ॥

उपनीतिदिने मध्याह्नसंध्यामाह पारिजाते जैमिनिः–"यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्यादिकं च न । ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत्" इति ॥ ब्रह्म गायत्री ॥ यत्तु वचनम्–"उपानये तु कर्तव्यं सायंसन्ध्ये उपासनम् । आरभेद्ब्रह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेहनि" इति ॥ तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः । विकल्प इति युक्तं पश्यामः । उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः–'त्र्यहमेतमग्निं धारयन्ति' इत्यापस्तम्बोक्तेः । बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तम्–'उपनयनादिरग्निष्टोमोपासनमित्याचक्षते । पाणिग्रहणादित्येके । नित्यो धार्योनुगतो निर्मन्थ्यः' इति ॥ इदं जातारणिपक्षे । अन्यथा मन्थनासम्भवात् ॥

यज्ञोपवीतके दिन पारिजातमें जैमिनि मध्याह्नसन्ध्याको कहतेहैं कि, जबतक गायत्रीका उपदेश न हो तबतक सन्ध्यादि न करै पीछे मध्याह्न संध्या आदि सब कर्मोंको करै, जो यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीतमें सायंसंध्याकी उपासना करै, और ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) का आरम्भ तो प्रथमदिन मध्याह्नमें

करै, यह और शाखाके विषयमें है यह पारिजात लिखते हैं, यह विकल्प है, यही हम श्रेष्ठ समझते हैं, उपनयनकी अग्निको तीनराततक रक्खै, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखाहै कि, इस अग्निको तीन दिनतक धारण करते हैं. बौधायनसूत्रमें तो निरन्तर धारण करना भी लिखाहै, किन्हींका यह कथन है कि, उपनयनकी अग्निको उपासनाअग्नि कथन करते हैं, उसको विवाहतक धारण करै, कारण कि, यह लिखाहै कि, मथी हुई अग्निको नित्य धारण करै और संगरक्खै यहभी उस अग्निमें है जो अरणीसे उत्पन्न हुई हो और अग्निके मथनेका असंभव है ॥

ब्रह्मयज्ञे विशेषः ।

ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव जैमिनिः–" अनूपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समासतः " इति । येषां तद्दिन एव वेदारम्भस्तेषां नेदमिति दिक् ॥

ब्रह्मयज्ञमें जैमिनिने वहां ही विशेष लिखाहै कि, यज्ञोपवीतसे प्रथमकी समान ब्रह्मचारी ब्रह्मयज्ञ करै और वेदके स्थानमें आचार्यके निकट गायत्री ग्रहण करै, और जिनका वेदारम्भ उसी दिन होताहै उनको यह वाक्य नहीं (इति दिक्) ॥

अथ ब्रह्मचारिधर्माः ।

याज्ञवल्क्यः–" मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥ " मनुः—' अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ' वर्जयेदिति प्रकृतम् ॥

अब ब्रह्मचारीके धर्म लिखतेहैं, याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, शहत, मांस, अंजन, उच्छिष्ट, शुक्त, पदार्थ स्त्री, और प्राणियोंकी हिंसा, सूर्यदर्शन, कठोर वाक्य, निन्दाको, ब्रह्मचारी सदा त्यागदे, मनुने लिखाहै कि, उबटन नेत्रोंका अंजन जूता और छत्रधारणको त्यागदे ॥

पारिजाते कौर्मे–"नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् ॥ गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः ॥" एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम् । अन्यस्य गुरूच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः । 'स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठभ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । 'पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम्' इत्यापस्तम्बोक्तेः । गुरुपुत्रे तु स्मृत्यन्तरे उक्तं–'गुरुवद्गुरुपुत्रः स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनात्' ॥ प्रचेताः–"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥ " यमः–"मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् ॥ अग्नीन्धनं भैक्षचर्य्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् । " कुर्यादिति शेषः ॥

पारिजातमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, सीसा न देखै, दंतोन न करै, गुरुके उच्छिष्टकोही ओषधिकेनिमित्त खाय और जानकर न खाय, यहभी निषिद्ध शहत आदिके विषयमें है, उससे और गुरुका उच्छिष्ट सदा भक्षण करने योग्यहै, कारण कि, वसिष्ठने यह लिखाहै कि, जो ब्रह्मचारीको रोग होय तो गुरुकी सम्पूर्ण उच्छिष्टको ओषधिके लिये भक्षण करले बड़े भ्राताके भी उच्छिष्टमें यह जानना, कारण कि, आप-

स्तम्बने यह लिखाहै कि, पिता और बड़े भाईका उच्छिष्ट भोजन करने योग्यहै. गुरुपुत्रके विषयमें तो स्मृत्यर्थसारमें यह लिखाहै कि, उच्छिष्ट भोजनको त्यागकर गुरुका पुत्रभी गुरुके समान है. प्रचेताने कहाहै कि, पान उबटना कांसीके पात्रमें भोजन करना इनको संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा त्यागदे. यमने कहाहै कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कौपीन और कटिसूत्रको ब्रह्मचारी निरन्तर धारण करै, और अग्निके निमित्त ईंधन, और भिक्षा लावै, गुरुसे नीचे सोना चाहिये गुरुका हित करै ॥

मेखलानिर्णयः ।

मेखलामाहाश्वलायनः–'तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी वैश्यस्य' इति ॥ आचार्यः–"त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता । तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः ॥" मनुः–"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा । मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः" ॥ अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः ॥

आश्वलायनने मेखला लिखी है कि, ब्राह्मणकी मेखला मूञ्जकी, क्षत्रीकी धनुषके प्रत्यंचाकी, और वैश्यकी भेडके ऊनकी होती है. आचार्यने यह कहाहै कि, तीन सूतकी मेखला निर्माण करै, फिर उसको तीनवार करै, उसमें तीन पांच वा सात गांठ लगावै. मुनिने लिखाहै कि, मूञ्जकी मेखला तीन तारकी एकसी चिकनी ब्राह्मणकी बनावै और तिगुनी उसमें तीन एक वा पांच गांठ लगावै, और मूञ्जी न मिलै तो कुश अश्मंतक और बल्वजकी बनावै इसमें प्रवर संख्याका नियमहै ऐसा वृद्ध कहतेहैं ॥

अथ दण्डाः ।

मनुः–" ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । पैप्पलोदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥" एषामभावे गौतमः–'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाप्रमाणः' इति ॥

अब दण्डोंको लिखतेहैं कि, ब्राह्मण बेल और ढाकका, क्षत्रिय बट और खैरका, वैश्य पीपल और गूलरका दण्ड धर्मपूर्वक धारण करै, यह न मिलैं तो गौतमने यह कहा है कि, अथवा सबका दण्ड यज्ञके वृक्षके निर्माण करै, और शिर, मस्तक, नासिकाके अग्रभागतक प्रमाणवाले दण्ड ब्राह्मण क्षत्री वैश्यके क्रमसे निर्माण करै ॥

अजिननिर्णयः ।

अजिनमाहाश्वलायनः–'अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्' इति ॥ यद्यप्यैणेयशब्देन मृगीचर्मैवोच्यते ' एण्या ढञ्' इति पाणिनिस्मृतेः । 'ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभे त्रिषु' इति अमरकोशाच्च । तथापि–'कृष्णरुरुबस्तान्यजिनानि' इति शंखोक्तेः । 'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमोक्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः । वस्त्राजिनयोस्तु विकल्पः । 'कार्पासं वा विकृतम्' इति गौतमोक्तेः ॥

आश्वलायनने चर्मको यह लिखाहै, नवीन वस्त्रसे ढके ब्राह्मणका चर्म: ऐणेय (मृग) होताहै, क्षत्रियका रुरु मृगका, और वैश्यका बकरेके चर्मका होताहै, यद्यपि ऐणेयपदसे मृगीका चर्म लिखाहै क्योंकि (एण्या ढञ्) इस पाणिनिके सूत्रसे और एणीके चर्मको ऐणेय और एणके चर्मको ऐण और

यह दोनों चर्म तीनों लिंगमें पुरुष स्त्री नपुंसकहैं, इस अमरकोशसे मृगीका चर्म प्राप्तहै मृगका नहीं तथापि काला और रुरुमृग और मेढा इनके चर्म तीनों वर्णोंके क्रमसे होतेहैं, इस शंखके वाक्यसे वा सबके चर्म रुरुके होतेहैं इस यमके वाक्यसे मृगचर्मके संग मृगीचर्मका विकल्प समझना, अर्थात् दोनोंमेंसे किसीको धारण करै, कारण कि, गौतमने यह लिखाहै कि, वस्त्र और चर्ममें विकल्पहै वा इस प्रकारका वस्त्र हो जो फटा नहो ॥

अथ यज्ञोपवीतम् ।

मनुः–'कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ॥' पारिजाते देवलः–"कार्पासक्षौमगोवालशणबल्वतृणादिकम् । यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके । आवर्त्य षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥ अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । अप्रदक्षिणमावृत्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥ ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्टय दृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वरान्नमेत् ॥ ४ ॥" तन्नवतन्तु कार्यम् । 'सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत्' इति तेनैवोक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टे–"त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥" ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वलितम् ॥ भृगुः–'वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षिणावर्तवलितं त्रिगुणं कार्यम् ।' स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः ॥ कात्यायनः–" पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥" वसिष्ठः–"नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥"

अब यज्ञोपवीतको कहतेहैं, मनुने लिखाहै कि, ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासका और ऊपरको तिगुणना मेला (बटा) हुआ होताहै, मदनपारिजातमें देवलने कहाहै कि, तीनों द्विजाति कपास, पाट, गौके बाल, सन, बल्वतृण आदिका यज्ञोपवीत यथासम्भव धारण करैं, शुद्ध देशमें शुद्ध सूत्रको संमिलित अंगुलियोंके मूलमें छानवे बार गिनके फिर उसे बलसे तिगुना करके जलके नामवाले मन्त्रोंसे धोकर ऊपरको मेलें, और तिगुने किये उसको प्रदक्षिणा क्रमसे बटकर तिगुना करै फिर प्रदक्षिणा बटनेसे नव ९ सूत्र होतेहैं, उसे तीनबार लपेटकर और दृढतासे बांधकर ब्रह्मा विष्णु शिवको प्रणाम करै, यज्ञोपवीतके तन्तु करने, और गायत्रीसे तिगुना करके नवसूत्र होजातेहैं यह उन्होंने ही लिखाहै छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, तीन तन्तु ऊर्ध्व बटकर नीचे बटै, फिर तिगुना करके यज्ञोपवीत होताहै, उसकी एक ग्रन्थि देनी इष्टहै, ऊर्ध्ववृत उसको कहते हैं जो दक्षिण हाथको ऊँचा करके धारणकिया जाय भृगुने लिखाहै कि, बाईं ओरके मेलसे बटे हुएको तीन लडी करके फिर प्रदक्षिणावर्त लेकर तिगुना करै वह एक सूत होताहै फिर इसप्रकार तीन तन्तु उसमें होतेहैं । कात्यायननें कहा है कि, पीठपर और नाभिपर धारण करनेसे कमरतक पहुँच जाय वह यज्ञोपवीत धारण करने योग्य होता है, न अतिलम्बा न अति ऊँचा, पहरना वसिष्ठने कहाहै कि, नाभिसे ऊपर यज्ञोपवीत होय तो आयुकी हानि और नाभिसे नीचे होय तौ तपका क्षय होताहै तिससे बुद्धिमान् मनुष्य नाभिके तुल्य यज्ञोपवीत निर्माण करै ॥

पारिजाते देवलः–"उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥" स एव–'बहूनि वायुष्कामस्य ।' तत्र मन्त्रमाह स एव–'यज्ञोपवीत-

मिति वा व्याहृत्या वापि धारयेत् ॥' हेमाद्रौ–"यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥" देवलः–" सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत्। विच्छिन्नं चाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥ " मनुः–" मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम्। अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रतः " ॥

पारिजातमें देवलने कहाहै कि, ब्रह्मचारीका यज्ञोपवीत एक, वानप्रस्थ और गृहस्थीके दो, संन्यासियोंका एक होताहै, यह शास्त्रका सिद्धान्तहै, देवलनेही लिखाहै कि, आयुकी इच्छावाला बहुतसे यज्ञोपवीत धारण करै, उसका मन्त्र देवलने लिखा है 'यज्ञोपवीतं परमं' इत्यादि मन्त्रसे वा व्याहृतियोंसे धारण करै हेमाद्रिमें कहाहै कि, वेद और स्मृतिमें कहे कर्मोंमें दो यज्ञोपवीत धारण करै और डुपट्टेके निमित्त तीसरा धारण करै परन्तु वस्त्रके न होनेमें वह पहरे रहै, अन्यथा न पहरै, देवलने कहाहै कि, गायत्रीकी दशवार पढकर यज्ञोपवीत ऊपरको फैंके यदि वह छिन्न होजाय वा नाभिसे नीचे निकल जाय वा भोजन करके जो निर्माण किया हो उसको त्यागदे मनुने कहाहै कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, टूटे हुयेको जलमें डालकर मन्त्रसे अन्योंको ग्रहण करै ॥

भैक्ष्यचरणादिलोपे प्रायश्चित्तम्।

अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तम्। मनुः–" अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम्। अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ " अमत्या आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः–" भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः। कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिञ्चन्त्वनेन तु ॥" मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः। सकृल्लोपे तु ऋग्विधाने–" मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये। अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥" स्मृत्यर्थसारे तु 'संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः। भिक्षालोपेऽष्टशतम्। अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्चेत्युक्तम्' ॥

अब इसके भिक्षाचरणआदिके लोप (अभाव) में प्रायश्चित लिखतेहैं, मनुने कहाहै कि, भिक्षाका आचरण न करके और अग्निहोत्र न करके रोगी न होयतो सात राततक अवकीर्णी (वीर्यपाती) के व्रतको करे, विनाजाने आपत्तिमें त्यागदे तो याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, भिक्षा और अग्निकार्यको छोडकर रोगीसे भिन्न होयतो सात रात्र व्रत करना चाहिये और कामावकीर्ण इन दो मन्त्रोंसे दो आहुति दे–फिर प्रार्थना करै और इस मंत्रसे सेचन करे, मन्त्र तो मिताक्षरामें लिखा है, एकवार लोपमें तो ऋग्विधानमें लिखाहै कि 'मानस्तोके' इस मन्त्रको सौवार शिवालयमें जप करे, अग्निहोत्रके विना ब्रह्मचारीको भोजन करलेनेमें पाप नहीं है, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखाहै, कि संध्या और अग्निकार्यके लोपमें स्नान करके आठसहस्र जप करै भिक्षाके लोपमें आठसौ और बारम्बार करनेमें दूना जप करै, और फिर संस्कार करै ॥

अपरार्के संवर्तः–" यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि। गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः " अग्निकार्यं संध्याद्वये कार्यम्। 'अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ' इति याज्ञवल्क्योक्तेः सायमेव वा। 'सायमेव वाग्निमिन्धीतेत्येके' इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥

---

१ मानस्तोके तनये मान आयौ मानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः। वीरान्मानो रुद्रभामितो वधी र्हविष्मन्तः सदनित्वाहवामहे ऋ० १।८।६॥

अपरार्कमें संवर्तने कहाहै कि, जो यथाविधि सन्ध्या और अग्निकार्य नहीं करता उसको स्नान करके सावधानीसे आठसहस्र गायत्री जपनी चाहिये, अग्निकार्य दोनों संध्याओंमें करना कारण कि, याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, फिर दोनों सन्ध्याओंमें अग्निकार्य करै, वा सायंकाल कोही प्रज्वलित करै यह कोई कहते हैं कारण कि, लौगाक्षिने यह कहाहै कि, सायंकालको अग्नि प्रज्वलित करै ॥

ब्रह्मचारिणां मधुमांसभक्षणस्त्रीसंगादौ निर्णयः ।

पारिजाते वृद्धशातातपः–"ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं तथैव च । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥" ऋग्विधाने–"तंवो धिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये ॥ ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥" स्त्रीसङ्गे तु मनुः–"अवकीर्णी तु कामेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्ऋतिं निशि ॥" विस्तरस्तु मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ उपवीतनाशे तु हारीतः–'मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयात्' ॥

पारिजातमें वृद्धशातातपने कहाहै कि, जो ब्रह्मचारी मधु, मांस भक्षण करताहै वह प्राजापत्य कृच्छ्को करके शेषव्रतको पूर्ण करै, ऋग्विधानमें कहाहै कि, जो ब्रह्मचारी अपने धर्मसे च्युत होजाय तो शिवमंदिरमें जाकर 'तंवोधिया' मन्त्रको एकलाख जपे, स्त्रीके प्रसंगमें मनुने यह लिखाहै कि, जानकर स्त्रीसंग करनेवाले चौराहेपर गधेपर चढे और स्थालीपाककी विधिसे रात्रिको निर्ऋति देवताकी पूजा करै तो शुद्ध हो, इसका विस्तार तो मिताक्षराआदिमें लिखाहै, यज्ञोपवीत नष्ट होनेमें हारीतने कहाहै कि, 'मनोव्रतपतीभिः' इन मंत्रोंसे चार घृतकी आहुति देकर फिर यज्ञोपवीत धारण करै ॥

तत्रैव मरीचिः–"ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥" मनुः–"भोशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥" शर्मन्निति नकारात् पूर्व इत्यर्थः ॥ अभिवादने प्रत्यभिवादनादौ विशेषः स्मृत्यर्थसारे पारिजातादौ ज्ञेयः ॥ यमः–"ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् । विना शिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिः ॥"

वहांही मरीचिने लिखाहै कि, जो यज्ञोपवीतके विना भोजन वा मलमूत्र करता है वह आठसहस्र गायत्रीका जप और प्राणायाम करनेसे पवित्र होताहै. मनुने कहाहै कि, दूसरेको प्रणाम करनेमें अपने नामके अन्तमें भो शब्दका उच्चारण करै, और ब्राह्मणको हे सौम्य 'आयुष्मान् भव' यह कहकर आशीर्वाद दे, और इसके नामके अन्तमें अकार अक्षर और प्रथम अक्षरको प्लुत बोलना चाहिये, अर्थात् शर्मन् इस नकारसे प्रथमका अकार प्लुत करै, अभिवादन (नमस्कार) और प्रत्यभिवादन आदिमें विशेषतौ स्मृत्यर्थसार और पारिजात आदिमें लिखाहै यमने कहाहै कि, बडाभी संध्याके समय छोटेको प्रणाम करै, परन्तु शिष्य, पुत्र, दौहित्र और जामाताको नकरै ॥

अथ पुनरुपनयनम् ।

पारिजाते शातातपः–"लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् । उष्ट्रमानुषकेभाश्व-

१ तंवोधियानव्यस्याशविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितं सयध्यै. सनोवक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ऋ० ४ । ६ । १४ ॥

रासभीक्षीरभोजनात् ॥ उपानयं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः" इति ॥ हेमाद्रौ वृद्धमनुः–"जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुम्भे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ।" तत्रैव पाद्मे–'प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ।' चन्द्रिकायां बौधायनः–"सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥" हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्धगौतमः–"खरमुष्ट्रञ्च महिषमनड्वाहमजं तथा । वस्तमारुह्य मुखजः क्रोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत् ॥"

अब फिर यज्ञोपवीतको कथन करतेहैं, पारिजातमें शातातपने कहाहै कि, लहसुन, गाजर, सलगम, और कुत्ती, ऊंटनी, मानुषी हथिनी, घोडी, गधी इन सबके दूधको पीकर फिर संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीतके योग्य होताहै, और वारम्वार तो तप्त कृच्छ्र करै, हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखाहै कि, यदि जीवता हुआ मनुष्य फिर आजाय तो घीके घडेमें प्लावित और स्नान करके इसके जातकर्म आदि संस्कार करै, वहांही पद्मपुराणमें लिखाहै प्रेतशय्याका प्रतिग्रह (ग्रहण) करनेवाला फिर संस्कारके योग्य होताहै. चन्द्रिकामें बौधायनने कहाहै कि, सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र और प्रत्यन्तवासी, अंग, बंग, कलिंग, देशोंमें जानेसे फिर संस्कारके योग्य होताहै, हेमाद्रिके प्रायश्चित्त काण्डमें वृद्ध गौतमका वाक्य है कि, जो ब्राह्मण गर्दभ, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा, तथा मेढेपर कोशभर चढकर चले तो चांद्रायण करै ॥

मार्कण्डेयः–"खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति । तप्तकृच्छ्रत्रयं प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् ॥ पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः ॥" मदनरत्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तम् ॥ मनुः–"अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥" मिताक्षरायां पराशरः–"यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ॥ सञ्चरेत्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २ ॥" बौधायनसूत्रम् 'अथोपनीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न स्त्रिया सह भुञ्जीत मधुमांसश्राद्धसूतकान्नानि दशासंधिनीक्षीरं छत्राकनिर्यासौ विलापनं गणान्नं गणिकान्नमित्येतेषु पुनः संस्कारः ॥ ' प्रतिषिद्धदेशगमनमित्येके, अथाप्युदारहन्ति–"सौराष्टसिंधुसौवीरमवन्तीदक्षिणापथम् । एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति" ॥

मार्कण्डेयने कहाहै कि, यदि ब्राह्मण गधेपर चढकर योजनभर चले तो तीन तप्तकृच्छ्रसे उसका शरीर शुद्ध होताहै, और घृतमें गर्भकी विधिसे उसका फिर जन्मसंस्कार करै. मदनरत्नमें और मिताक्षरामें तो स्नान मात्रही लिखाहै. मनु कहतेहैं कि, तीनों द्विजाति वर्ण, अज्ञानसे विष्ठामूत्र और मदिरामिश्रित वस्तुको खाकर फिर संस्कारके योग्य होतेहैं मिताक्षरामें पराशरने कहाहै जो (विरक्त) वा संन्यासी वा अनशनव्रतका करनेवाला फिर गृहस्थमें आनेकी इच्छा करै, तो वह तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण करै, और जातकर्म आदि संस्कारोंको फिर करके शुद्ध होताहै, बौधायनसूत्रमें कहाहै कि, यज्ञोपवीत होनेपर उसके ये व्रत होतेहैं, कि, पिता और जेठे भाईको त्याग कर अन्यके उच्छिष्टको न भोजन करै, और न स्त्रीके संग खाय, मधु, मांस, श्राद्ध, और सूतकका अन्न और दश दिनकी ब्याई और गार्भिणीका दूध, छत्राक, गूंद, रुदन, गण (समुदाय) और वेश्याका अन्न खानेसे फिर संस्कार होताहै कोई यह भी कहते कि, निषिद्ध देशमें जानेसे भी फिर संस्कार होताहै उसमें

यह वाक्य कहतेहैं कि, सौराष्ट्र, सिंधु, सौवीर, अवंती, (उज्जैन) दक्षिणका मार्ग इनमें ब्राह्मण जाकर फिर संस्कारके योग्य होताहै ॥

पुनःसंस्कारनिर्णयः ।

अथ पुनः संस्कारं व्याख्यास्यामो देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात्कृत्वा पालाशीं समिधमाज्येनाऽक्त्वाभ्याधाय वाचयति॥ 'पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः०कामाः स्वाहेति' अथाव्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोति यन्म आत्मनो मिंदाभूत्० पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्याम् । अथ पक्वाज्जुहोति । 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त० । घृतेन स्वाहेति' अथाज्याहुतीरुपजुहोति-'येन देवाः पवित्रेण इति तिसृभिः अनुच्छन्दसं स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरदानात्' अथापरमापरिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधमाधायाथाव्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोत्यथ व्याहृतीर्जुहोति । अथापरो ब्राह्मणवचनादेव सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिमंत्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति । गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीताथाप्युदाहरन्ति ॥ 'वपनं दक्षिणादानं मेखला दण्डमजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणि' इति ॥ आश्वलायनगृह्येपि-अथोपेतपूर्वस्येत्यादिना पुनःसंस्कार उक्तः तथा पित्रादिव्यतिरेकेण ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपरार्कादयः॥ त्रिस्थलीसेतौ-"कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलङ्घनात् । गण्डकीबाहुतरणात् पुनः संस्कारमर्हति ॥"

अब फिर संस्कारका वर्णन करतेहैं कि, देवपूजनसे लेकर अग्निके मुख करनेपर्यंत कर्मको सम्पादन कर पालाशकी समिधको घीसे भिजोय और रखकर यह मंत्र पढे कि, "पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः कामाः स्वाहा" इनको पढकर प्रायश्चित्तके मंत्रोंसे हवन करै जो मेरे आत्माकी निन्दा हुई उसको अग्नि दूर करो इन दो मंत्रोंसे हवन करै और "अग्ने०"इसमंत्रसे सात घृतकी आहुति देनी चाहिये, फिर घृतकी आहुति "येन देवाः पवित्रेण" इन तीन मन्त्रोंसे दे फिर सब वेदोंकी स्विष्टकृत आदि धेनुके वरप्रदान तक करके फिर परिधानके दूसरे कर्मको करके ढाककी समिध रखकर और व्याहृतियोंको पढकर प्रायश्चित्तके निमित्त हवन करै पक्वस्तुओंसे हवन करै "सप्त ते अग्ने" इत्यादि घृतसे आहुती दे "येन देवाइति" अनुच्छान्दस स्विष्टकृतादि कर्म धेनुदानतक सिद्ध होतेहैं, इसके पीछे ब्राह्मणके वाक्यसे ही गायत्रीसे सौवार घृतको अभिमंत्रित और भोजन कर प्रायश्चित्त किया करै वा गुरुकी उच्छिष्ट भक्षण करै, इसमें भी यह वाक्य लिखतेहैं कि, द्विजातियोंके फिर संस्कारकर्ममें मुण्डन मेखलाका दान मृगचर्म भिक्षाटन व्रत नहीं होते, आश्वलायनगृह्यमें फिर संस्कार कहाहै कि, जिसका प्रथम संस्कार होचुकाहै उसका फिर करै, इसी प्रकार कहाहै कि, पिता आदिसे भिन्नका यदि प्रेतकर्म ब्रह्मचारी करै तो पुनः यज्ञोपवीतके योग्य होताहै यह अपरार्क आदिने कहाहै. त्रिस्थलीसेतुमें कहाहै कि, कर्मनाशा नदीके जलस्पर्शसे और करतोया नदीके लंघनेसे और गंडकी नदीको भुजाओंसे तैरनेसे फिर संस्कारके योग्य होता है ॥

गौडास्तु—'करतोयाजलस्पर्शात्कर्मनाशाविलंघनात्' इति पठन्ति ॥ तन्न ॥ दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः । "करतोये सदा नीरे सरिच्छ्रेष्ठेति विश्रुते । आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे" इति स्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च । पराशरः— " अजिनं मेखला दंडो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि॥" हरदत्तस्तु-"य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति । तस्य पुनरुपनयनं तेन प्रतिवेद-

सुपनयनं कर्तव्यम्" इत्याह। अन्ये नैतन्मन्यन्ते 'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनूच्यते' इत्यापस्तम्बोक्तेः तद्विधिः कारिकायां–"वेदान्तरमधीत्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते। उपनीतिरियं तेषामलंकरणवर्जिता॥ यद्वै तदुपनीतस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत्। कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेव च॥ मेधाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह। अनुप्रवचनीयश्च तदभावे द्वयं न हि॥ परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तानन्तरं त्विदम्। पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने तत्सवितुर्वृणीमहे"॥ ४॥ यत्तु हारीतः–'द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या इति। सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः' इति॥ तद्युगान्तरविषयं–"पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते। अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा" इति यमोक्तेः॥

गौडोंका तो यह कथन है कि, करतोयाके जल स्पर्श और कर्मनाशाके लंघनेसे, फिर संस्कार करै सो ठीक नहीं कारण कि, दानधर्मोंमें करतोयाका स्नान उत्तम कहाहै, और स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा यह मंत्रभीहै कि, हे करोद्भवे! नदियोंमें श्रेष्ठ और प्रसिद्ध करतोयाके जलमें जो स्नान करताहै उसके पापको दूर करो, पाराशरका मंत्र है कि, फिर संस्कारमें द्विजातियोंको मृगचर्म, मेखला, दंड, भिक्षा मांगना, व्रत नहीं होता, हरदत्तने तो यह लिखाहै कि, जो एक वेदको पढकर और वेदको पढनेकी इच्छा करताहै उसका फिर यज्ञोपवीत करै, तिससे प्रतिवेद उपनयन होताहै, और इसे नहीं मानते कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखाहै कि, सब वेदोंसे गायत्रीका उपदेश किया जाताहै, उसकी विधि कारिकामें यह लिखीहै दूसरे वेदको पढकर जो ऋग्वेद पढनेकी इच्छा करतेहैं अलंकारको त्यागकर उनकी यह उपनीति (यज्ञोपवीत) है, यद्वा प्रथम उपनीतका जब प्रायश्चित्त होताहै, मुण्डन और मेधा (बुद्धि) का जनन करै वा न करै, मेधाजनन होय तो ब्रह्मचर्याभी सफल होती है और अनुप्रवचनीय (बटुसे पढ़वाना) भी होताहै मेधाजनन न होय तो यह दोनों कार्य नहीं होते और यहां निमित्तके उपरान्त परिदान न करै, प्रथम गायत्रीके स्थानमें 'तत्सवितुर्वृणीमहे' को बँचवावै, जो हारीतने यह लिखाहै कि, दो प्रकारकी वधू होती हैं, एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी सद्योवधू, उनमें ब्रह्मवादिनियोंका उपनयन अग्नींधन वेद पढना और अपने घरमें भिक्षा मांगना करने, और सद्योवधुओंका उपनयन करके विवाह करै, यह युगांतर अर्थात् दूसरे युगोंके विषयमें है कारण कि, यमने कहाहै कि, प्रथम कल्पोंमें स्त्रियोंको मौंजी बांधना वेदोंका पढाना और गायत्रीका उपदेश इष्ट था॥

अथानध्यायाः।

पारिजाते बृहस्पतिः–"प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यांपर्वणोर्द्वयोः। श्वोनध्यायेथ शर्वर्यां नाधीयीत कदाचन॥" नारदः–"अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः। अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु॥" निर्णयामृते–"चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु। अनध्यायस्तु कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः"॥ गर्गः–"शुचावूर्जतपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये। चातुर्मास्याद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः"॥

---

१ वेदोंका पढाना इस वाक्यसे वेदाङ्ग और शास्त्रोंके पढानेका दोष नहींहै नहीं तो विवाहके समय मंत्रपाठ वधूसे किसप्रकार होगा, और यज्ञकर्ममें अपशब्द भाषणका निषेधहै सो बिना संस्कृतके बोध हुए पाठ भ्रष्ट होगा इससे कर्म बिगडेगा इस कारण मंत्रको छोड़कर और पढनेमें दोष नहीं॥

अब अनध्याय कथन करतेहैं पारिजातमें बृहस्पतिने कहाहै कि, प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी, दोनों पर्व और अगले दिन अनध्याय होय तो प्रथम रात्रिमें कदाचित् न पढे, नारदने कहाहै कि, दोनों अयन, विषुव, (तुलामेष) विष्णुका शयन और जागरण, मन्वादि और युगादि तिथि इनमें अनध्याय करना चाहिये । निर्णयामृतमें लिखाहै कि, चातुर्मास्यकी द्वितीया तिथि, मन्वादि और युगादि और सोपपदा तिथि इनमें अनध्याय करना । गर्ग कहतेहैं कि, चातुर्मास्य आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनकी द्वियीयामें पंडितजन अनध्याय कहतेहैं ॥

स्मृत्यर्थसारेपि–'आषाढीकार्त्तिकीफाल्गुनीसमीपस्थद्वितीयासु च' इति ॥ मनुः–"उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु" इति ॥ उत्सर्गे तु–'मनूक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यान्त्र्यहस्य विकल्पः' इति विज्ञानेश्वरः ॥ अष्टकाशब्देन सप्तम्यादित्रयं ज्ञेयम् । तिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके' इति गौतमोक्तेः ॥ 'ऋत्वन्तास्विति सौरऋत्वन्तासु चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः' इति सर्वज्ञनारायणः ॥ एते नित्याः । नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः–"त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । कृतेन्तरेत्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्रये ॥४॥" ग्रहणे द्विनिशोक्तावपि ग्रस्तास्ते त्र्यहमित्युक्तं प्राक् ॥

स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनके समीप (कृष्ण) की द्वितीयाओंमें अनध्याय होता है, मनुने कहाहै कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन रात्र और अष्टकामें दिनरात्र और ऋतुके अन्तमें एकरात्र अनध्याय होताहै, उत्सर्गमें मनु कहतेहैं कि, पक्षिणी और अहोरात्रके संग तीन दिन, इसका विकल्पहै यह विज्ञानेश्वरका कथनहै, अष्टकाशब्दसे सप्तमी आदि तीन जानने चाहिये, कारण कि, गौतमने यह लिखाहै कि, तीन अष्टका होतीहैं और कोई यह कहतेहैं कि, पिछली एक होतीहै, ऋतुके अन्तवालियोंमें सौरमासके प्रमाणसे ऋत्वंतोंमें चन्द्रमाससे अन्तका निषेध पर्वसेही सिद्ध है, यह सर्वज्ञनारायणका कथनहै, यह पूर्वोक्त अनध्याय नित्यके जानने चाहिये. नैमित्तिक (कारण युक्त) अनध्यायोंको कथन करते हैं याज्ञवल्क्य कहतेहैं कि, शिष्य, ऋत्विक्, गुरु बन्धुकी मृत्युमें उपाकर्म और उत्सर्ग, सन्ध्याके गर्जन, वज्रपात, भूमिकम्प, बिजलीका पतन, वेदको समाप्त करके दो दिन, और आरण्यकको पढकर, पंचदशी, चतुर्दशी, अष्टमी, राहुसूतक (ग्रहण) ऋतुकी सन्धि, भोजनके उपरान्त और श्राद्धका प्रतिग्रह लेकर और पशु मेढक, बिलाव, न्योला, कुत्ता, सर्प ये बीचमेंसे निकल जायँ तो अहोरात्र और इसीप्रकार (वीर्य) पात और उच्छ्रायमें अहोरात्र, अनध्याय होताहै, ग्रहणमें यदि दो रात कही हैं तथापि ग्रस्त होते अस्त होनेमें तीन दिन जानने चाहिये, यह पहले कह आये हैं ॥

स्मृत्यर्थसारे तु–'रात्रौ तु ग्रहे तिस्रो रात्रीः दिवा च त्र्यहम्' । इत्युक्तम् । ऋतुः सौरः॥ भुक्त्वेत्युत्सवविषयम् । 'ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे' इति गौतमोक्तेः ॥ श्राद्धिकमहैकोदिष्टभिन्नं तत्र तु त्र्यहमिति मनुः ॥ स्मृत्यर्थसारे चैवम् ॥ यत्तु–'पञ्चाद्यन्तरा ये त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च' इति गौतमोक्तं तत् प्रथमाध्ययने ॥ याज्ञवल्क्यः–"श्वक्रोष्टृगर्दभो-

लूकसामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेतिमारुते ॥ पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ॥ ४ ॥" बाणो–वंशः। शततन्तुर्वीणेति हरदत्तः ॥ अमेध्याः–सूतिकादयः । स्तनितं–गर्जः । वर्षातोन्यत्र गर्जवृष्टिविद्युतां यौगपद्ये आकालिकः । वर्षासु–"तात्कालिक इति नारायणः ॥ संध्यागर्जे तु हारीतः–'सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः। प्रातः संध्यास्तनितेऽहोरात्रम्' ॥ रात्रौ विद्युत्यपररात्र्यवधिः । 'विद्युति नक्तं चापररात्रात्' इति गौतमोक्तेः ॥

स्मृत्यर्थसारमें तो यह कहाहै कि, रात्रिके ग्रहणमें तीन रात्रि और दिनकेमें तीन दिन, यहां ऋतुसे सौर लेना चाहिये, और भोजनके उपरान्त यह उत्साहमें है, कारण कि, भोजनके उपरान्त उत्सवमें न पढै, यह गौतम कहतेहैं श्राद्धमें एक दिन एकोद्दिष्टसे भिन्नमें है, वहां तो मनुने तीन दिन लिखेहैं, स्मृत्यर्थसारमें भी इसीप्रकार लिखाहै, जो यह गौतमने लिखाहै कि, पशु आदिके बीचके निकलनेमें तीन दिन व्रत और परदेशमें जाना है, वह प्रथम अध्ययनमें समझना चाहिये, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, कुत्ता, गीदड, गधा, उल्लू, सामवेद, सौतंतुओंकी बीणा, बाण, तथा आर्त्तका शब्द, अमेध्य (सूतिका आदि) मृतक, शूद्र, चाण्डाल, श्मशान, पतितकी निकटता, अशुद्ध स्थान तथा अपनी अशुद्धि, बिजली बादलका शब्द, भोजन करके गीले हाथ, जलका मध्य, अर्द्धरात्र, अत्यन्त पवन, धूलिका वर्षण, दिशाओंके दाहमें संध्या नीहार (कुहर) भयसे भागतेहुएकी दुर्गन्धि, सज्जनके घरमें आनेपर खर तथा ऊंटकी सवारी, हाथी, अश्व, नौका, वृक्ष, ऊपरमें गमन ये सत्ताईस तात्कालिक अनध्याय जानना और ऐतरेय उपनिषत्में तो यह कहाहै कि, वर्षासे भिन्न ऋतुमें वर्षे तो तीन दिन अनध्याय होताहै, और वेदभाष्यमें भी लिखाहै कि, मृगशिरसे लेकर ज्येष्ठा पर्यन्त वर्षाऋतुहै, यह पीछे कह आयेहैं तिससे औरमें वर्षा आदि होय तो तीन दिनरात अनध्याय होता है, हारीतने तो इस गौतमके कथनसे सन्ध्याके समय गर्जनमें अनध्याय लिखाहै कि, सायंकालकी सन्ध्याके समय गर्जे तो एक रात्रि, प्रभात सन्ध्याके समय गर्जे तो अहोरात्र, रात्रिमें बिजलीका शब्द होय तो परराात्रकी (अगली) अवधितक अनध्याय होताहै ॥

'तृतीयदिनांशोत्तरं तु विद्युति सर्वरात्रम्' इत्याह स एव । त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ मध्यदण्डचतुष्टय इति निर्णयामृते ॥ मनुः– " न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके ॥ रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ " कौर्मे–" श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥ " मनुः–"शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ प्रौढपादः पादोपरि पाददाता आसनारूढपादो वेति हरदत्तः । सोपपदास्वपि प्रागुक्तम् ॥

तथा दिनके तीसरे भागमें बिजलीकी कडक होय तो सम्पूर्ण रात्रि अनध्याय होताहै; तीनों भागोंमेंसे कोई समय यदि विद्युत् प्रवृत्ति होय तो सम्पूर्ण दिन अनध्याय होताहै, विज्ञानेश्वरने तो आधीरातके समय मध्यमें बिजली होय तो मध्यके दो प्रहर अनध्याय लिखाहै । निर्णयामृतमें तो बीचके चार प्रहरोंमें बिजलीके शब्दसे अनध्याय लिखाहै । मनु कहते हैं कि, विवाद, लडाई, सेना, संग्राम भोजन करनेपर,

अजीर्ण, वमन, सूतक, गात्रसे रुधिर गिरनेमें, शस्त्रघावसे युक्त होनेमें अध्ययन न करै, कूर्मपुराणमें भी लिखाहै कि, श्लेष्मातक (बहेडा) शाल्मलि (सेमऊ) महुआ कोविदार कैथकी छायामें कदाचित् वेद न पढै, मनु कहते हैं कि, लेटाहुआ प्रौढ पाद (ऊकडू बैठा हुआ) तथा मांस और सूतक आदिका अन्न खाकर वेद न पढै, हरदत्तने प्रौढपाद उसको लिखाहै कि, जो पांवपर पांव रखकर बैठा हो व जो आसनपर जिसके पाव रक्खे हों, सोपपदाओंमें निषेध प्रथम कथनकर आयेहैं ॥

स्मृत्यर्थसारे–"श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शवदर्शने चाहोरात्रम् । असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रम् । आचार्ये उपाध्याये च पक्षिणी । आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् । अग्न्युत्पाते गोविप्रमृतौ त्रिरात्रम् । अयने विषुवे च पक्षिणी । अकालवृष्टौ च । आरण्यमार्जारसर्पनकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वसृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम् । खरवराहोष्ट्रचाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम् । गोगवयाजानास्तिकादौ त्रिमासम् । शशमेषश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः । शोभनदिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्यायः ॥

स्मृत्यर्थसारमें भी कहाहै कि, श्रवणद्वादशी, महाभरणी, यमद्वितीया, रथसप्तमी तथा आकाशमें मृतक दर्शनमें अहोरात्रतक न पढै, असपिण्ड गुरुके मरनेमें तीन रात्र, आचार्य उपाध्यायके मरनेमें दो दिन और एक बीचकी रात और आचार्यकी स्त्री पुत्र शिष्यकी मृत्युमें अहोरात्र अनध्ययन लगताहै, अग्निके उत्पातसे गौ ब्राह्मण मृतक होजाय तो तीन रात दोनों अयन और विषुव संक्रान्ति और अकाल वर्षामें पक्षिणी (दो दिन एक रात) बनबिलाव, सर्प, न्योला, पंचनख आदिके बीचमें निकलनेसे तीन रात वनकुत्ता, गीदड, आदि बानर, रजक (धोबी) आदिक बीचमें निकलनेसे तो बारह दिन, गधा, सूकर, ऊण्ट, चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला, शव आदिक बीचको निकलजांय तो महीनेभरका अनध्याय होताहै ऐसा जानना चाहिये । गौ, नील गाय, बकरी, नास्तिक आदि निकल जाँय तो तीन महीने, खरगोश मैंढा श्वपाक (चांडालका भेद) आदि निकल जाय तो छः महीने हाथी, गेंडा, सारस, सिंह, भेडिया, महापातकी, कृतघ्नी आदि निकल जांय तो वर्षभर अनध्याय और सुन्दर दिनमें अनध्याय होताहै, विवाह, प्रतिष्ठा, उद्यापन आदिमें तो जबतक पूर्ति न हो तबतक सगोत्रोंका अनध्याय है ॥

"उदयेऽस्तमये चापि मुहूर्त्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः ॥ केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो तत्तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥" प्रदोषं त्वाह प्रजापतिः–"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥ निर्णयामृते गर्गः–"रात्रौ यामत्रयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ २ ॥" कौर्मे–"अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ॥ न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत्" ॥ शौनकः–"नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेपि हि ॥ नानध्यायोस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥" इत्यनध्यायाः ॥

कारण कि, यह वाक्यहै कि, जो दिन उदय वा अस्तमें तीन मुहूर्त हो वह दिन (तिथि) उस अहोरात्रमें अनध्याय माना जाताहै, यह अनध्यायके जाननेवालोंका कथनहै, कोई तो यह कहते हैं किसी

देशमें जितनी उसदिनकी घडी हों उतनाही अनध्याय होताहै, और उससे मिले और दिनमें नहीं होता, प्रजापतिने प्रदोष तो यह लिखाहै कि, छठ, द्वादशी ये अर्द्धरात्रिसे एक घडी प्रथमतक हों और तीज नौ घडी राततक हो तो इस प्रदोषमें न पढै, निर्णयामृतमें गर्गने लिखाहै कि, रात्रिको तीन प्रहरसे प्रथम सातें वा त्रयोदशी होय तो सब विद्याओंके पढनेमें निंदित प्रदोष जानना चाहिये । रातमें तीजके दिन चौथ नौ घडीतक आजाय तो वेदोंके पढनेमें उसको निंदित जानना चाहिये, कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, अंग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्रमें अनध्याय नहीं होता, और इनसे औरोंको इन पर्वोंमें त्यागदेना चाहिये । शौनकने कहाहै कि, नित्यकर्म, जप काम्यव्रत ऋतु और पारायणमें अन्याय नहींहै, वेदोंके पढने और पढानेमेंही अनध्याय लिखाहै, इत्यनध्यायाः ॥

अथ महानाम्न्यादिव्रतम् ।

श्रीधरः–"तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥" एषां लोपे शौनकः–"व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत् । अकृत्वाभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः ॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाज्याहुतीः शतम् । हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥ २ ॥" स्मृत्यर्थसारे तु–'त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत्' इत्युक्तम् ॥

अब महानाम्न्यादि व्रत कहतेहैं । श्रीधरने कहाहै कि, महानाम्नीव्रतमें तिथि, नक्षत्र, अंश, वार, वर्गोदय इन सबको मुण्डनके तुल्य देखना लिखाहै, और गोदानव्रतोंमें भी इसीप्रकारसे देखै, इनके लोपमें शौनकने यह लिखाहै कि, व्रतोंको विधिपूर्वक करकै अपनी शाखाको पढे बिना व्रतोंके किए जो अध्ययन करताहै वह पापी विधिको नष्ट करताहै शाखा शाखाके प्रति एक २ कृच्छ्र और गायत्रीसे घृतकी सौ आहुति देकर स्नान करै, यह शौनकने लिखाहै, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखाहै कि, तीन, छः, बारह कृच्छ्र करके पुनः व्रत करै ॥

अथ समावर्तनम् ।

सुरेश्वरः–"भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया ॥" बौधायनसूत्रे तु–'रोहिण्यां तिष्ये उत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात्' इत्युक्तम् ॥ वसिष्ठः–"स्नानं माध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम् । पूर्वाह्णे तदभावे तु कुर्यात्स्नानं यथाविधि ॥" 'सर्व ऋतवो विवाहस्य' इति सूत्रात् यदा दक्षिणायने विवाहस्तदा समावर्तनमपि तत्रैव । अन्यथोदगयने समावर्तने 'अनाश्रमी न तिष्ठेत' इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम् ॥

अब समावर्तन लिखतेहैं, सुरेश्वरने कहाहै कि, मंगल और शनि और व्रतोंमें कहे नक्षत्र तारा और चन्द्रमाकी शुद्धिमें समावर्त्तन कर्म करना होताहै, बौधायनसूत्रमें तो रोहिणी पुष्य, दोनों उत्तरा, दोनों फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखामें स्नान करै यह लिखाहै, वसिष्ठने कहाहै कि, मध्याह्न समय ही होरामें यथाविधि स्नान करै, वह न होय तो पूर्वाह्णमें स्नान करै जब विवाहकी सब ऋतुहैं, इस सूत्रमेंसे विवाह होताहै, तब समावर्त्तन भी दक्षिणायनमें करै, अन्यथा (न करै तो) उत्तरायणमें समावर्तन होगा, तो बिना आश्रम कभी न टिकै, इस कथनका विरोध होगा, यह सुदर्शनभाष्यमें कहाहै, ब्रह्मचर्य व्रतके लोपके प्रायश्चित्त करके समावर्तन करले ॥

तदाह बौधायनः–" शौचसंध्यादर्भभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलादण्डाजिनधारणे दिवास्वापच्छत्रपादुकास्रग्विधारणाङ्गोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनद्यूतनृत्यगीतवाद्याभिरतो ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयश्चरेत् । महाव्याहृतिहोमं पाहित्रयोदशहोमं च कुर्यात् । समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम् ॥" "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" इति मनूक्तेः ॥ आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः ॥ ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्यथा नेति सिद्धयति । जनने तु सत्यपि न त्रिरात्रम् । तत्रातिक्रान्ताशौचाभावादुदकं दत्त्वेति वचनाच्चेति दिक् ॥ तत्रापि विकल्पः ॥ "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥

सोई बौधायनने लिखाहै कि, शौच, संध्या, कुश, भिक्षा, अग्निहोत्रका त्याग, कौपीन, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, मृगचर्मको न धारै, दिनमें सोना, छत्र, खडाऊं, मालाको धारना, उबटना, लेपन (चन्दन) अंजन, जुआ, नृत्य, गाना, बजाना ऋतुमें गमनमें ब्रह्मचारीको तीन कृच्छ्र और महाव्याहृतियोंसे होम करना चाहिये । समावर्त्तनके उपरान्त ब्रह्मचारी तीन रात्र मरनेका आशौच करै, कारण कि, मनुने यह लिखाहै कि, ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तिपर्यंत जलदान करै, और पूर्ण होनेपर जलदान देकर तीन दिन अशुद्ध होताहै यदि ब्रह्मचर्यमें किसीकी मृत्यु होजाय तो तीन रात्रभी अशौच नहीं लगता कारण कि, उसमें (बीताहुआ) अशौच नहीं होता, और पूर्वोक्त जल देकर यह वाक्यभी है कि, जन्ममें किसीको जल नहीं दिया जाता, यह संक्षेपसे कहा । उसमें भी विकल्पहै अर्थात् कोई जन्ममें भी आशौच मानतेहैं कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, पिताकी मृत्यु होनेपर भी ब्रह्मचारियोंको कभी दोष नहीं लगता इनको अग्निहोत्र आदि कर्मके उपरान्तमें वा तीन दिन आशौच होताहै ॥

स्नातकव्रतनिर्णयः ।

स्नातकव्रतान्याह व्यासः–"यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् । छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृत्तकेशनखः शुचिः ।" वेदो–दर्भबटुः ॥ मनुः–"उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥" अन्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि ॥

स्नातकके व्रत व्यासने यह लिखेहैं कि, दो यज्ञोपवीत, जलसहित कमण्डलु, छत्र, निर्मल पगडी, खडाऊं, जूता, सुवर्णके कुण्डल, वेद, कुशाका बटुक रक्खै, केश और नखको न कटाना और शुद्ध रहै, मनुने कहाहै कि, जूता, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, पुष्पमाला, कमण्डलु औरके धारण कियेको धारण न करै, और भी व्रत बह्वृच गृह्य और स्मृति आदिसे जानने ॥

अथ छुरिकाबन्धः ।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेप्यनस्तगे ॥ जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ २ ॥" संग्रहे–"शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना" ॥

अब छुरिकाबन्ध कहतेहैं । ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, राजाओंके विवाहसे पहिले छुरीके बन्धनको लिखताहूं, वह विवाहमें (कहे) महीने शुक्ल पक्ष बृहस्पति शुक्रका उदय, मंगल, चन्द्रमा,

ताराका बल और मौंजी बंधनके नक्षत्र तिथि और मंगलके सिवाय अन्य वारोंमें छुरिकाको बांधे, संग्रहमें लिखाहै कि, शूद्र राजाके पुत्रको मौंजी न बांधनी चाहिये, इससे मौंजीवन्धनमें लिखी तिथि आदिमें मंगलवारको त्यागकर अस्त्रको बांधे ॥

अथ विवाहः।

याज्ञवल्क्यः–"अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्"। 'लक्षण्यां'–बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम्। बाह्यानि काशीखण्डादौ प्रसिद्धानि ॥ आन्तराण्याश्वलायनोक्तानि। 'अष्टौ पिण्डान् कृत्वा' इत्यादीनि ॥ मनुः–"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥" दत्रिममातुर्गृहीता अपि सपिण्डा सगोत्रा ॥ तत्कुलनिवृत्तये चकारान्मातुरसगोत्रा दत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषिद्धेत्यन्यश्चकारः ॥ असपिण्डां–सापिण्डयरहिताम् ॥ तच्चैकशरीरावयवान्वयेन भवति ॥

अब विवाहकी विधि कहतेहैं। याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, अक्षत ब्रह्मचर्यवाला मनुष्य सुलक्षण-स्त्रीको विवाहै जिसका पहिले सम्बन्ध न हुआहो, जो सुन्दर हो अपने सपिण्डकी न हो, और अपनेसे छोटीहो, रोगरहित हो, जिसका भाई विद्यमानहो, जो अपने प्रवर और गोत्रकी न हो, और स्त्रीके लक्षण बाहर और भीतरके समझने, उनमें बाह्य तो काशीखण्ड आदिमें लिखेहैं, और अन्तरके आठ पिंड बनाकर देखै ये आश्वलायनमें लिखेहैं, मनुने कहाहै कि, जो माताकी असपिंडहो, और पिताके गोत्रकी न हो वह स्त्री विवाह मैथुनकर्ममें द्विजातियोंको है, दत्तक माताका ग्रहण करनेवाला असपिण्डभी सगोत्रहै, कुछ कुल निवृत्तिके निमित्त नहीं चकारसे माताकी भी असगोत्र लेनी, दत्तक पिताके जनककुलमें पिताकी असगोत्राको भी सपिंड होनेसे इसको दूसरा चकार निषेध करताहै असपिंडासे सापिण्डय एक शरीरके सम्बन्धसे होताहै ॥

तत्र सापिण्डयम्।

एकस्य हि पितुर्मातुर्वा शरीरस्यावयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परम्परया वा शुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूता यद्यपि पत्न्याः पत्या सह भ्रातृपत्नीनां च परस्परं नैतत्संभवति। तथापि आधारत्वेनैकशरीरावयवान्वयोस्त्येव। 'अस्थिभिः–अस्थीनि' इति मन्त्रलिङ्गात्। एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्ने पारिजातविज्ञानेश्वरादयः ॥

एक पिता वा माताके शरीरके अवयव पुत्र पौत्र आदिमें साक्षात् वा परंपरासे वीर्य और रजके द्वारा (मिले) हैं, यद्यपि पतिके संग पत्नीका और भ्राताकी पत्नियोंका यह सम्बन्ध परस्पर नहीं होसकता, तो भी आधार होनेसे एक शरीरान्वयहै ही, अर्थात् एकही कुल सबका आधारहै, कारण कि, यह मन्त्रका प्रमाण लिखाहै कि, अस्थियोंके संग अस्थि मिलाताहूं, एकही पिताके शरीरके सम्पूर्ण अवयव पुत्रके द्वारा उनमें स्थित होतेहैं, यह मदनरत्न, पारिजात, विज्ञानेश्वर आदिका कथन है ॥

---

१ जिन ग्रामोंमें आर्षी गोत्रा पृथ्वी है वे आर्षगोत्र कहातेहैं।

वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यातिगौडमैथिलादयोप्येवम् ॥ श्रुतावपि–एतत् 'षाट्कौशिकं शरीरम् । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतोऽस्थिस्नायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः' इति ॥ 'प्रजामनु प्रजायसे' इति च । चन्द्रिकापरार्कमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम् । "लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" इति मात्स्योक्तेः । न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् ॥ तत्कर्तृकश्राद्धे दैवतैक्येन तत्सत्त्वात् । देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यःकश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम् । तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् । 'एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके' इति स्मृतेश्च । श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिण्ड्यनिमित्तत्वे मानाभावात् । न च मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । मातामहरूपदैवतैक्यात् । ननु गुरुशिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सपिण्डत्वं स्यात् ॥

और वाचस्पति शुद्धिविवेक, शूलपाणि आदि गौड मैथिलभी इसीप्रकार कथन करते हैं, श्रुतिभी है कि, यह शरीर छः कोश (तत्वों) से युक्तहै, तीन कोश पितासे, और तीन तत्त्व मातासे होतेहैं अस्थि, स्नायु, मज्जा ये तीन पितासे त्वचा, मांस, रुधिर मातासे होतेहैं और यहभी श्रुति है कि, यह मनुष्य प्रजामें ही उत्पन्न होता है, चन्द्रिका, अपरार्क, मेधातिथि, माधव आदिका तो यह कथन है कि, एक पिण्डदानकर्मका जिनके संग सम्बन्ध है वेही सपिण्ड हैं, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, चौथेसे आदि लेकर तीन लेप भागभुज, और पिता आदि तीन पिंडभागी और सातवां पिण्ड देनेवाला यह सात पुरुषतक सापिण्ड्य होताहै, यदि कोई यह शंका करै कि, पितृव्य (चाचा) आदिमें यह सापिंड्य नहीं है, सो उचित नहीं, कारण कि, पितृव्यके किये श्राद्धमें देवता एक होनेसे सापिण्ड्यहै देवदत्तके किये श्राद्धमें जो देवता हुए थे उनके मध्यमेंसे जो कोई दूसरेके किए श्राद्धमें उनका सापिण्ड्य होताहै, उनकी स्त्रियोंको भी स्वामियोंके किए श्राद्धमें संग अधिकार होनेसे एक शरीरका अन्वयहै, और पिंड गोत्र सूतकमें वह स्त्री पतिकी एकताको प्राप्त होजाती है इस स्मृतिसे अन्वय है और श्रुति वैराग्यके निमित्त है श्रुतिभी सापिण्ड्यमें निमित्त है, इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, यदि, कोई शंका करै कि, मामा आदिमें यह नहीं है सो उचित नहीं, कारण कि, नाना आदिरूप देवता वहां भी एकहै इससे सपिण्डताहै गुरु शिष्य आदिका भी श्राद्धदेवता होनेसे सपिण्ड होजायगा ॥

किं बहुना–'सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः' इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्ड्यप्रसङ्गः सत्यम् । 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा' इति याज्ञवल्क्यः ॥ वचनेन मातापितृसम्बन्ध एव तत्सत्त्वात् । उर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्तत इति शेषः ॥ ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते न मातृतः इत्यादिवाक्यमेतत् ॥ मैवम् ॥ मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बोधने तुल्यत्वात् । पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् । तुल्यमन्यत्रापि । अन्यकर्तृके राज्ञस्तत्पितॄणां वा देवतात्वाभावाच्च । किंच ॥ अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढ्या परिहारस्तथेहापि तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यमित्याहुः । तेनैकस्य पित्रादयः षट् पुत्रादयश्च षट् सपिण्डा भवन्ति । अत्र केचिदुभयतः सापिण्ड्यनिवृत्तावेवोद्वाहो नान्यथा इत्याहुः । शुद्धचिन्तामणिवाचस्पतिहरिदत्तादयस्तु सगोत्रत्ववत्सापिण्ड्यस्य सप्रतियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनि-

रूप्यत्वात् एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यामुद्वहेदित्याहुः ॥

बहुत कहनेसे क्याहै जिसके कोई न हो उसका राजा करै, इस मार्कण्डेयपुराणके वाक्यसे राजा भी श्राद्ध का कर्ता है उसको भी सापिंड्यकी प्राप्ति होगी सो सत्यहै अर्थात् योग्य नहीं कारण कि, मातासे पांचवें और पितासे सातवें पुरुषसे पीछे सापिंड्य नहीं रहता, इस याज्ञवल्क्यके कथनसे माता और पिताके सम्बन्धमें ही सापिंडय प्राप्त होताहै कि, पांचवें और सातवेंसे उपरान्त सपिंडता नहीं रहती है यह याज्ञवल्क्यके वाक्यमें शेष समझना। यदि कोई कहै कि, पंचमत्वका यहां नियमहै, अर्थात् मातासे पांचवें और पितासे सातवें तक सापिंडय रहताहै, और फिर निवृत्त होजाताहै, यह अर्थ नहीं है कारण कि, माताके कुलमें पांचवेंसे और पिताके कुलमें सातवेंसे आगे सापिडय नहीं रहता नियमके न माननेमें यह वाक्यभेद होगा, ऐसा मत कहो, कारण कि, नियम पक्षमें भी माताके कुलमें पांचवेंतकका और पिताके कुलमें सातवेंतकका ज्ञान करनेमें वाक्यभेद समान है, यदि कहो नियम पक्षमें ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं है तो निषेधपक्षमें भी ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं है। वाक्यभेदरूप प्राप्त दोषका अभावको न मानाजाय, और दूसरेके किए श्राद्धमें राजाको सापिंडय इसप्रकार नहीं होता कि, उसके पितर उसके देवता नहीं होसकते, किंच जब माता पिताके अवयवोंके योगसे सापिंडय होताहै, इस पक्षमें जैसे योगरूढिसे इसका परिहार है इसीप्रकार यहांभी योगरूढि जानो, अर्थात् जिसमें सपिंड पदका तुल्यपिण्डवाले यह अर्थ भी करैं और पांचमें आदितक उसमें रूढमी हो शब्दके अवयवोंका अर्थ जिसमें प्राप्त हो उसे योग कहते हैं, तिससे माताके और पिताके कुलमें जिस २ में एक पिंडदानक्रियाका अन्वय हो वही सपिंड होताहै किन्हींका यह कथनहै. तिससे एक पिंड करनेवालेके पितासे लेके छः बारह सपिंड होतेहैं, इसमें किन्हीका यह कथनहै कि, दोनों ओरसे सापिंडयकी निवृतिमेंही विवाह होताहै, और प्रकार नहीं होता, शुद्धचिन्तामणि वाचस्पति औ हरदत्त आदिका तो यह कथन है कि, जैसे सगोत्रता सप्रतियौगिक अर्थात् उसके दो निरूपक होतेहैं इसीप्रकार सापिण्ड्यभी सप्रतियौगिक है इससे संयोगके तुल्य वह दोनोंसे बनाने योग्यहैं तिससे एकसे निवृत्ति होनेके पीछे औरसे उसकी निवृत्ति आवश्यकहै, इससे मूल पुरुषसे लेकर दूसरी तीसरी आदि कन्याका विवाह होसकता है ॥

शिष्टास्तु न वधूवरयोः स्वतः साषिण्ड्यं किं तु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिंड्येनैव॥ अतोष्टमवरं प्रति कन्याया असापिंड्येपि कन्यायाः कूटस्थेन साषिण्ड्यात्तत्संततिस्थत्वाद्वरस्तां प्रति सपिण्ड एवेत्यविवाहः। साषिण्ड्यासापिण्ड्ययोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः ॥ इदमेव च युक्तम्। आशौचेप्येवं साषिण्ड्यं ज्ञेयम्॥ यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि साषिण्ड्यं मण्डूकप्लुतिवत्पुनरनुवर्तते ॥ यथा-'कूटस्थात्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः। तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापि न साषिण्ड्यासापिण्ड्ययोर्दोषः ॥ संबन्धिभेदात् ॥ तेन तत्र न विवाहः ॥ अत्र कूटस्थमारभ्य गणना कार्या। तदुक्तं- "वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः। पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्साषिण्ड्यं निवर्तते" इति ॥ कूटस्थो मूलपुरुषः। विश्वरूपनिबन्धे-"एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात्। ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान्मातृबन्धुतः ॥ सन्तानो भिद्यते यस्मात् पूर्वजादुभयत्र च। तमादाय गणेद्धीमान् वरं यावच्च कन्यकाम् ॥" स्मृतितत्त्वे नारदः-"आसप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः। अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥"

अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात् । पितुः पितृष्वसृपुत्रात्सप्तमीं मातुः पितृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत् । एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम् ॥

शिष्टोंका तो यह कथन है, वधू और वरकी स्वयं सपिंडता नहीं है किन्तु कूटस्थ (मूलपुरुष) की सन्तान होनेसे सपिंडता प्राप्त होतीहै, इससे आठवें वरके प्रति यद्यपि कन्या असपिंडहै, तो भी कूटस्थके संग कन्याको सपिण्ड होनेसे वरको उस मूलपुरुषकी सन्तान होनेसे उस कन्याके प्रति सपिण्डता प्राप्तहीहै इससे उन दोनोंका विवाह नहीं होसक्ता कारण कि, सपिंडता असपिंडताका प्रतियोगीके भेदसे परस्पर विरोधहै, और यह शिष्टोंका कहनाभी युक्तहै, अशौचमें भी इसीप्रकार सपिंडता जाननी चाहिये और जहां बीचमें सपिंडता जातीहो अर्थात् बीचका कोई मृतक होगयाहो वहां मेंडककी प्लुति (कूदना) के तुल्य अनुवर्तन होजातीहै और जहां बीचमें सपिंडताकी अनुवृत्ति नहीं होती, जैसे कूटस्थसे पांचवीं कन्याके पुत्रोंमें, वहां निवृत्त होजातीहै, और उनकी सन्ततिमें तो अनुवृत्ति होजातीहै, वहांभी सपिंडता और असपिंडताका सम्बन्धीके भेदसे दोषहो, इससे वहां विवाह नहीं होता, यहां कूटस्थसे लेकर गिनती करनी, सोई लिखाहै कि, वधू और वरका पिता यदि कूटस्थसे सातवांहो और उनकी माता पांचवीं होय तो उन दोनोंके सापिंड्यकी निवृत्ति होजातीहै, विश्वरूपनिबन्धमें कहाहै कि, ऐसेही उक्तप्रकारसे पिताके बन्धुओंमें सातसे ऊपरही विवाह करनेयोग्यहै, और माताके बन्धुओंमें पांचसे उपरान्त सन्तानके भेदकी प्राप्ति होजातीहै इससे मूलपुरुषसे दोनों गिनती वर और कन्यातक करै, स्मृतितत्त्वमें नारदने कहाहै कि, पिता और माताके बन्धुओंसे सात और पांचवें तककी और अपने गोत्रकी और प्रवरकी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये इस वाक्यमें 'बन्धुभ्यः यह पंचमीका निर्देश (दिखाना) है तिससे पिताकी पितृष्वसा (फूफी) के पुत्रसे सातवीं और माताकी फूफीके पुत्रसे पांचवींको भी छोडदे, इसीप्रकार और बन्धुओंमें जानना ॥

त्रिगोत्रात्यये निर्णयः ।

तत्रापि त्रिगोत्रात्ययेर्वागपि विवाहं कुर्यात् । वक्ष्यमाणवचनात् । त्रिगोत्रगणनाच्च मातामहगोत्रापेक्षया । न तु स्वापेक्षया । अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दौहित्रीपुत्री परिणेया स्यात् वध्वा मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेन विवाहप्रसङ्ग इति सबन्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः । संबन्धविवेके शूलपाणिरप्याह पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या । "असंबद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा । सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोन्तातरिता च या" इति बृहन्मनूक्तेः ॥ 'सन्निकर्षेपि कर्तव्यं त्रिगोत्रातपरतो यदि' इति देवलोक्तेश्चेति ॥ एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते ॥

उसमें भी तीन गोत्रके भेद होनेपर प्रथम पीढ़ियोंमें भी विवाह करले, कारण कि, ऐसाही वचन आगे लिखेंगे, तीन गोत्रकी गिनती भी मातामहके गोत्रसे करनी चाहिये अपने गोत्रसे नहीं, अन्यथा पिताके पितामहकी पुत्रीकी जो दौहित्री वा पुत्रीहै वहभी विवाहने योग्य होजायगी, यदि वधू मातामहके गोत्रकी अपेक्षासे तीन गोत्रके भीतर होय तो विवाह नहीं होता, यह सम्बन्धतत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें कहाहै, सबन्धविवेकमें शूलपाणिने भी लिखाहै कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम तीन गोत्रके बीचकी कन्या विवाहके योग्यहै, कारण कि, बृहन्मनुने लिखाहै कि, जो पिंड वा जलदानमें माताके संबन्धमें न हो, चाहै वह तीन गोत्रके बीचमें भी होय तो भी द्विजातियोंका विवाह करनेके योग्य है, देवलने कहाहै कि, तीन गोत्रसे आगे होय तो निकटमें भी विवाह करले, इसको दाक्षिणात्य नहीं मानते ॥

यत्तु वसिष्ठः–'पञ्चमीं सप्तमीञ्चैव मातृतः पितृतस्तथा,' इति ॥ यच्च विष्णुपुराणे– "पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याय्येन विधिना नृप" इति ॥ तत्पञ्चमीं सप्तमीमतीत्येति व्याख्येयम् । "पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः" इत्यपरार्के मरीचिवचनात् । हारलतायां शंखलिखितौ–"सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानं च आशौचश्च तदानुगम्" ॥ गोत्रं सन्तानम् ॥ आशौचं तानभिव्याप्य गच्छतीत्यर्थः ॥ शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे–"सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी । सपिण्डता ततः पश्चात्समानोदकधर्मता ॥ ततः कालवशात्तत्र विस्मृतौ नामगोत्रतः । समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति ॥ २ ॥" सप्तोर्ध्वं त्रयः सोदकाः । ततो गोत्रजाः ॥

जो वसिष्ठने यह लिखाहै कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं विवाहने योग्यहै, और जो विष्णुपुराणमें यह लिखाहै कि, हे नृप ! मातृपक्षसे पांचवीं और पितृपक्षसे सातवीं कन्याको गृहस्थी बिवाहै और विधिसे विवाहले, यह दोनों वाक्य पांचवीं और सातवींको लंघकर विवाह करै, यह अर्थ करके लगाने, कारण कि, अपरार्कमें मरीचिने कहाहै कि, पांचवें और सातवें जिनका विवाहकर्म होताहै, कर्ममें तत्परभी वे, पतित और शूद्रभावको प्राप्त होतेहैं हारलतामें शंखलिखितका कथन है कि, सबकी सपिंडता गोत्रमें सात पुरुषतक होतीहै, और पिंड जलदान अशौचभी वहांतक ही होताहै, इस कथनसे गोत्रसे संतान लेनी वहांतक अशौच लगताहै यह अर्थ जानना, शुद्धिविवेक और शुद्धिचिंतामणिमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, सब वर्णोंकी सपिंडता सात पुरुषतक जाननी चाहिये, और उससे परे समानोदक धर्म प्राप्तहोताहै, अर्थात् सात पुरुषतक पिंड देनेका अधिकारहै, और उससे आगे केवल जलदान फिर कालवशासे नाम गोत्रकी जब याद न रहे, तब उतनीभी समानोदक संज्ञाकी निवृत्ति होजातीहै, सातसे तीन समानोदक, उससे परे फिर गोत्रज संज्ञा प्राप्तहोजाती है ॥

तत्रैव ब्राह्मे–'अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः' तेन विभक्तधनाभावे विभक्तः सपिण्डो धनहारी नान्यथा इत्यर्थः । तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सापिण्ड्यम् ॥ यत्तु–'पञ्चमीं मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिस्मृतौ त्रीनित्यनुकल्प इति माधवोक्तेः ॥ "पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । दशभिः पुरुषैः ख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ॥ उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ॥ पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेप्ययं विधिः ॥ सप्तमीञ्च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च । एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ॥ ४ ॥"

वहांही ब्रह्मपुराणमें कहाहै कि, जबतक इनके धनका विभाग न हो तबतक ये सपिंड कहातेहैं, तिससे धनका विभाग न होनेपर भी पृथक् (जुदे) हुए असपिंडधनके भागी होतेहैं अन्यथा नहीं, तिससे विवाह अशौच धनके विभागमें तीन प्रकारकी सपिंडता सिद्ध होतीहै जो किसीने यह लिखाहै कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं वा मातासे तीसरी और पितासे पांचवीं लेनी इस पैठीनसीकी स्मृतिमें पांचवीं और सातवींके स्थानमें तीसरी और पांचवीं यह विकल्पहै, इस माधवके वचनसे माता और पितासे पांचवीं

और सातवीं उस कन्याको विवाहै जो दश पीढ़ियोंतक विख्यात वेदपाठियोंके श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुई हो, सातवींसे परे कन्याको विवाहै, वह न मिले तो सातवींको विवाहै, और वह न मिले तो पांचवीको पितृपक्षमें भी विवाहै, यही विधिहै कि, सातवीं छठी पांचवीं कन्याके विवाहनेमें दोष नहीं, यह शाकटायनका कथन है, दोनों पक्षोंमें तीसरी वा चौथीको विवाहै यह मनु पराशर अंगिरा और यमका कथनहै ॥

"यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत्। नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते" इति चतुर्विंशतिमतात् ॥ चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोपि वा। पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पंचमीम्" इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापदि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्य-मिति प्रतीयते। अत्र हि-तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम्। तत्र यथाश्रुतं ज्ञेयम् ॥ पूर्वोक्तमरीचिवचोविरोधात्। वस्तुनि विकल्पसंभवात्। "पञ्चमात्सप्तमाद्धीनां यः कन्या-मुद्वहेद्द्विजः। गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन्" इति विष्णूक्तेः। पराशरस्य मूलाभावाच्च ॥

और जो देशके अनुसार और कुलमार्गसे विवाहितहै वह सदैव व्यवहार (सम्बन्ध) करनेके योग्य होताहै कारण कि, वेदमें भी यही लिखाहै, इस चतुर्विंशतिके मतसे चौथा पांचवां वर चौथी कन्यासे विवाह करै पराशरके मतमें पांचवां छठीको विवाहै पांचवींको नहीं, इस पराशरके कथनसे पांचवींका विवाहना गौणहै इससे आपत्तिमें ही पांचवींका विवाह करै यह विदित होताहै और यहां छठी न मिले तो पांचवींको विवाहै यह प्रकट ही पांचवींका विवाहना गौण लिखाहै यह किसीका कहाहुआ विकल्प ठीक नहींहै कारण कि, इसमें पूर्वोक्त मरीचिके वाक्यका विरोधहै, और वस्तुतः (यथार्थ) विकल्पका असम्भवभी प्राप्त होताहै, और यह विष्णुने भी कहाहै कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम और अपने गोत्रकी कन्यासे जो द्विज विवाह करताहै वह गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला जानना चाहिये, और पराशरके वाक्यमें कोई प्रमाणभी नहीं, तिससे यह भ्रम नहीं करना ॥

तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशा दत्तकसापत्नसंबन्धाद्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादि-सपिण्डविषये वा पूर्वोक्तानि ज्ञेयानि। न त्वनुकल्प इति भ्रमितव्यम्। यत्तु स्मृतिचन्द्रि-कामाधवादय आहुः-'तृतीये संगच्छावहै चतुर्थे संगच्छावहै इति शतपथश्रुतेः ॥ 'तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिव' इति ॥ गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकः' इति च मन्त्रवर्णात् ॥

मदन पारिजात आदिके कहे हुए मार्गसे दत्तकका और सौतेले भाईके सम्बन्धका प्रवेश जब ब्राह्मणादिकमें होजाय तब उनमें वा क्षत्रिय आदिकोंके सपिंडमें पूर्वोक्त पराशर आदिके वाक्य लगाने चाहि-ये, अनुकल्प नहीं मानना चाहिये, जो स्मृतिचन्द्रिका और माधव आदिका यह कथन है कि, तीसरेमें संग (विवाह) करते हैं वा चौथेमें करतेहैं, मातुलकी पौत्रीको तुल्य विवाहमें पैतृष्वस्रेयी (फूफीकी लडकी) को छोडदे. कारण कि, गर्भमें इस मन्त्रसे और वर्णसे स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥

मातुलकन्यापरिणयानिर्णयः ।

"मातृष्वसृसुतां केचित्पितृष्वसृसुतां तथा। विवहन्ति क्वचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्ड-ताम्" इति शातातपोक्तेश्च मातुलकन्योद्वाहोपि कार्यः। 'यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोपि

प्राप्तस्तथाप्यस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु' इति निषेधाद्वचनान्तरेण तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः॥ अयं तु दाक्षिणात्यंशिष्टाचारात् कार्य इति। नच पूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता। मानान्तरेणासिद्धौ-' उपरि हि देवेभ्यो धारयति ' इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात्॥ यत्तु शातातपः-" मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च। समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ " यच्च मनुः-"पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च। मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान्"॥

कोई माताकी बहनकी पुत्री और कोई पिताकी बहनकी पुत्री सपिंडताके संकोचसे विवाहतेहैं, इस शातातपके कथनसे मातुलकी कन्याके संग विवाह करना, यद्यपि पिताकी बहिनीके पुत्रीके संगभी विवाह प्राप्तहै तो भी वह नरकका साधन और जगत्में निन्दित है, इस निषेधसे और किसी देशमें उसकी विधिभी नहीं है इससे उसको नहीं करना, यह दक्षिणियोंके शिष्टाचारसे करना यदि कोई कहै कि, पूर्वोक्त श्रुति अर्थवादरूप है विधि नहीं सो भी ठीक नहीं प्रमाणान्तरसे सिद्ध न होय तो इसके तुल्य अनुवाद नहीं होसकता, इससे विधिकी कल्पना है कि, परलोकका कर्म देवताओंके निमित्त करताहै जो शातातपने यह लिखा है कि, मामाकी और माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके संग यदि विवाह होजाय तो उसे छोडकर चान्द्रायण करै, और जो मनुने कहाहै कि, फूफीकी पुत्री मैनी माताकी बहिनकी पुत्री और माताके बडे भ्राताकी पुत्रीके संग गमन करके चान्द्रायण करै, इन तीनोंको बुद्धिमान् मनुष्य स्त्रीत्वमें स्वीकार न करै॥

यच्च व्यासः-' मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ' इति तद्गान्धर्वादिविवाहोढमातृविषयम्॥ तत्र पितृगोत्रानिवृत्तेः। अत एव मार्कण्डेयपुराणे-' गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ' इति॥ ब्राह्मादिविवाहे तु परिणेयैवेति॥ भट्टसोमेश्वरोपि तृतीयेऽध्याये वाक्यपादे मातुलकन्योद्वाहमुदाहृत्य स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिके बाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबलीयस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह॥ तदेतद्दत्तकस्य पालकदत्त्रिममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेन युगान्तपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा तथास्तु। तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव॥ 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ' इत्यादित्यपुराणात्॥

और जो व्यासने कहाहै कि, द्विजाति मनुष्य माताके सपिंडकी कन्याको यत्नसे त्यागदें ये पूर्वोक्त वाक्य उस माताके विषयमें हैं जो गान्धर्व आदि विवाहोंसे विवाही गई हो कारण कि, उन विवाहोंमें पिताका गोत्र निवृत्त नहीं होता, इससेही यह मार्कण्डेयपुराणमें कहाहै कि, गांधर्व आदि विवाहोंमें पिताके गोत्रसे ही धर्मयुक्त होताहै, यदि ब्राह्मआदि विवाह हुआ होय तो विवाहनेयोग्य है सोमेश्वरभट्टने भी वाक्यचरणके तीसरे अध्यायमें मामाकी कन्याके विवाह लिखकर आचारसे प्राप्त भी इसका स्मृतिके विरोधसे वार्तिकमें बाध भी लिखाहै परन्तु पूर्वकथित श्रुतिका प्रमाण अधिक बलवान् है इससे यह करनेसे योग्य लिखाहै तिससे यह मामाकी लडकीके संग विवाह उस कन्याके विषय जानना, जो दत्तकके पालनेवाले दत्तकही माताके सगे भाईकी पुत्री है वा पृथक् वर्णके मातुलकी पुत्री अथवा (अन्ययुग) के विषयमें है, इससे शास्त्रसिद्धभी मातुलकी कन्याको विवाहै, विना विचारेही शोभितहै,

तो भी कलियुगमें निषिद्धही है कारण कि, आदित्यपुराणमें यह कहाहै कि, माताके गोत्र और सपिंडसे विवाह और गोविशसन ये कलिमें वर्जितहैं ॥

माधवीये बौधायनोप्यस्य निन्दामाह-'पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोनुपेतेन स्त्रिया च सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृपरिणयनमिति । अथोत्तरतः सीधुपानादिकमुक्त्वा इतर इतरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति, इतर इतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरेणापि स्मृतिविरुद्धानां मातुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम् ॥ बृहस्पतिरपि-"उद्वह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥ उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नॄणां रजस्वलाः" इत्यनाचारत्वमाह ॥ अत एव हेमाद्रौ मात्स्ये कर्नाटकादीनां तत्कारिणां श्राद्धे निषेधः ॥ बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मम्-"यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम्" इति ॥ तस्मान्मातृतः पञ्च पितृतः सप्त त्यक्त्वोद्वहेदिति सिद्धम् ॥

माधवीयमें बौधायननेभी इसकी निन्दा लिखीहै कि, विन्ध्याचलके उत्तर और दक्षिणमें पांचप्रकारका विवाह चलताहै कि, यज्ञोपवीत रहितके और स्त्रीके संग भोजन, बासी भोजन, मामा फूफीकी कन्याके संग विवाह ये निषिद्ध हैं फिर उत्तरमें मद्यपान आदि लिखकर अन्य अन्य देशमें करनेसे दूषित होता है, और एक अन्यदेशमें करै तो दूषित नहीं होताहै, इस कथनसे सोमेश्वर भट्टने भी धर्मशास्त्रके बिरुद्ध मातुलकी कन्याके विवाहआदि इस वाक्यसे अप्रामाणिक लिखे हैं बृहस्पतिने भी इनको अनाचार कहाहै कि, द्विज मामाकी कन्याको विवाहतेहैं, पूर्वके मनुष्य मत्स्यभक्षण करतेहैं उत्तरमें स्त्री मद्य पीती है और रजस्वलाको छूलेतेहैं, इसीसे हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्यहै उसके करनेवाले कर्णाटकोंका श्राद्धमें निषेध कहाहै, बोपदेवनेभी ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखाहै हे विप्र ! जहां मामाकी कन्याके संग विवाह करनेवाला और शूद्राका पति रहताहो, वहांपर किया श्राद्ध और मांससे रहित श्राद्ध पितरोंको नहीं पहुंचता, तिससे सिद्ध हुआ कि, मातासे और पितासे सात कुल छोडकर विवाह करै ॥

सम्बन्धविवेके सुमन्तुः-"ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्धर्माविच्छित्तिर्भवति । आसप्तमाद्रिक्थविच्छित्तिर्भवति । आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिरन्यथा । पिण्डशौचक्रियाविच्छेदाद्ब्रह्मतुल्यो भवति ।" अस्यार्थमाह शूलपाणिः-जीवत्पित्रादित्रिकस्य बृद्धप्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति । तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः । श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः । दशमादित्युपलक्षणम् ॥ तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यंतं पितृजीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्ड्यमिति ज्ञेयम् ॥ अपुत्रधनग्रहणे संनिहिताभावे सप्तपुरुषपर्यन्तमधिकारः ॥ धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः, तदूर्ध्वं श्राद्धविच्छेदः । अन्यथा धनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाकरणे ब्रह्महत्येत्यर्थः । आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयम् ॥ 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः ॥

सम्बन्ध विवेकमें सुमन्तुने यह कहाहै कि, जिसका अर्थ शूलपाणिने ऐसा लिखाहै कि, जिसका पिता जीवित हो उसके वृद्धप्रपितामह आदि तीन श्राद्धके देवता होनेसे पिंडके भोगी होतेहैं, उससे

ऊपरके तीन नव ९ पुरुषतक लेपभागके भजनेवाले होतेहैं, और दशमां श्राद्धका कर्ता, इन दशसे परे धर्मका सातवेंमें धनकी नष्टता और तीसरेमें पिण्डकी नष्टता इससे अन्यथा जो पिण्ड अशौचनाश और क्रियाका विच्छेद करताहै वह ब्रह्महत्यारेकी समान होताहै दशवेंसे परे सापिण्ड्यकी निवृत्ति होती है यहां दशमतक यह उपलक्षण है, तिससे पिता पितामह जीवित होय तो नव पुरुष,पिता जीता हो तो आठ पुरुषतक सापिण्ड्य जानना, अपुत्र धनके ग्रहणमें निकटका न होय तो सात पुरुषतक अधिकार कहाहै धन ग्रहणके करनेवालेसे लेकर तीसरा पोता होताहै उससे ऊपर श्राद्धका विच्छेद होजाताहै इससे अन्यथा धनको ग्रहण करले और अपुत्रके श्राद्ध आदिको न करै, तो ब्रह्महत्यारा होताहै तीन पर्यन्तही सपिंड है, यह तो विना विवाही कन्याओंके विषयमें है, कारण कि, वसिष्ठने कहाहै किं, विना बिवाही कन्याओंका तीन पुरुषतक सापिड्य मानाजाताहै, ॥

एतच्चाशौचविषयं सापिण्डयं न तु विवाहादौ। तत्र पूर्वोक्तवचनैः पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथिप्रमुखा दाक्षिण्यात्याः वाग्दानोत्तरमेतदिति शुद्धिविवेकः। मातृकुलविषयं कानीनकन्यकाविषयं चैतत्। अन्यथा–"अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्डयं साप्तपौरुषम्। प्रत्तानां भर्तृसापिण्डयं प्राह देवः प्रजापतिः" इति कौर्मेण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः। युक्तं चैतत् ॥ अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यात्। नोर्ध्वम् ॥

यह सापिड्यभी अशौचके विषयहै, विवाहआदिमें नहींहै, वहां पूर्वोक्त वाक्योंसे पांच और सातका नियम कहाहै, यह मेधातिथि आदि दाक्षिणात्योंका कथनहै, सगाईके पीछे यह सापिंडयहै यह शुद्धिविवेकका कथनहै, माताके कुलके वा कानीनकी कन्याके विषय यह सापिंडय कहाहै, अन्यथा इस कूर्मपुराणके संग विरोध होगा कि, विना विवाही कन्याओंकी सपिंडता सात पुरुषतक होतीहै, और विवाह कीहुइयोंकी सपिंडता देव प्रजापतिने भर्ताके संग लिखीहै, यह रत्नाकर स्मृतितत्त्वआदि गौडग्रन्थोंमें कहाहै और युक्तभी यहीहै नहीं तो कन्याकी उत्पत्तिमें तीन पुरुष पर्यन्तही सूतक होगा, उससे ऊपर न होगा ॥

सापत्नमातामहकुले निर्णयः।

सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शंखः–"यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथग्जनाः। एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु" ॥ पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः। पृथग्जनाः सजातीयभिन्नमातृषु जाताः। अत्र त्रिपुरुषं सापिण्डयमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये सापिण्डयदीपिकायां चैवम् ॥ मदनपारिजाते तु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः पृथक्जनाः भिन्नजातीयाः। एतद्विजातीयसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सापिण्डयम्। 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तम् ॥ तत्स्वकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम् ॥

सापत्नमातामहके वंशमें तो मिताक्षरामें शंखने यह लिखाहै कि, यदि एकसे उत्पन्न हुए पृथक् पृथक् जातिकी माताओंके पुत्र भिन्न २ होय तो वे सपिंड कहातेहैं पर उनका आशौच भिन्न २ होताहै और पिंड तो तीनकोही दिये जातेहैं, इसमें (पृथक् जना) इसका अर्थ यह है कि, विजातीय माताओंमें उत्पन्न हुएहों, यहां विज्ञानेश्वरने व्याख्यान कियाहै कि, तीन पुरुषतक सपिंडता रहतीहै, पृथ्वीचन्द्रोदय

और सापिंड्यदीपिकामेंभी इसीप्रकार कहाहै, मदनपारिजातमें तो यह लिखाहै कि, पृथक् क्षेत्रका अर्थ पृथक् २ माताओंसे उत्पन्नहुए, और (पृथक् जना) का अर्थ भिन्न २ जातिके हों यह भी विजातीय सापत्नमाताके कुलमें समझना चाहिये समान वर्ण सापत्नमाताके कुलमें तो चार पुरुषपर्यन्त सपिंडता होतीहै कारण कि, वसिष्ठने यह लिखाहै कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवींको विवाह करै और सातवीं यहभी उस कन्याके विषयमेंहै, जो ब्राह्मण आदिकोंमें क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें उत्पन्न हुई हो और पिताके वंशमें हो वह सब कपोलकल्पित होनेसे तथा दूसरे ग्रन्थोंके विरोधसे अप्रमाणहै ॥

'पितृपत्न्यः सर्वाः मातरः' इत्युक्त्वा, सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिनेयानि' इति पृथङ्निषेधाच्च । अन्यथा सपिण्डत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः । अत एव तेन स्मृतिकौमुद्यां सवर्णसापत्नमातामहकुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्याख्यातम् ॥ तेन वासिष्ठं–पञ्चमीं सप्तमीमतीत्य' इति व्याख्येयम् । तस्मात् प्राच्यैव व्याख्या युक्ता॥ प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव सापिण्ड्यमुक्तम् ॥ यथाह सुमन्तुः–'मातृपितृसंबद्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति। आपञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि । अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेव' इति ॥

कारण कि, सुमंतुने पिताकी स्त्री सब माता कहकर उनकी पुत्रियोंके पुत्र भानजे कहेहैं यह पृथक् निषेध कियाहै, अन्यथा सपिंड होनेसे निषेध होजायगा सपत्नमातुलआदिका नि[illegible] व्यर्थ होजाता, इसीकारणसे उसने स्मृतिकौमुदीमें शंखके वाक्यकी व्याख्या सपत्नमातामहके वंशमें लगाईहै इससे वसिष्ठके कथनकाभी अर्थ पांचवीं सातवींको उलंघकर विवाहै यह करना चाहिये, इससे प्रयोगरत्नमें भट्टोंने प्राचोंकी व्याख्याही यथार्थ लिखीहै स्मृतितत्त्वआदि गौडग्रन्थोंमें सपत्न मातामहके वंशमें वचनयुक्त शास्त्रसेही सब सापिंड्य लिखाहै, वैसेही सुमंतुने लिखाहै कि, माता पिताके सम्बन्धी सात पुरुषतक और उनके आगे पांच पुरुषतक विवाह करनेके योग्य नहीं होतेहैं, पिताकी सब पत्नी माता और उनके भ्राता मातुल और उनकी भगिनी मौसी और उनकी कन्या बहिन और उनके पुत्र भानजे होतेहैं, इससे अन्यथा हो तो वर्णसंकरके कर्ता होतेहैं, और पढानेवालेके वंशमें भी इसीप्रकार है ॥

आपञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितविषयं वेति प्राच्याः ॥ मात्स्ये–"समानप्रवरा चैव शिष्यसन्ततिरेव च । ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव सन्ततिः प्रतिषिध्यते ॥" तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम् । क्वचिद्वचनादविवाहः ॥ यथा गृह्यपरिशिष्टे–'अविरुद्धसंबन्धामुपगच्छेत' इत्युक्त्वा विरुद्धसंबन्धः स्वयमेवोक्तः । 'यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नीस्वसा च' इति ॥ बौधायनः–"मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् । पितृव्यपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥" अतो मातृष्वसुः सापत्नपुत्रकन्याप्यविवाह्या । 'सापत्नमातृकुलजाम्' इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित् । केचित्तु–'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः' इति मनूक्तेस्तत्पत्न्या मातृत्वात्तत्पितुर्मातामहत्वात् । ज्येष्ठभ्रातृपत्नी भगिनी न विवाह्या ॥

आपञ्चमात् (पांचवींतक) यह माताके कुलमें तीन गोत्रके अन्तरपर जानना यह प्राच्योंका कथन है, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, एक प्रवरके, शिष्यकी सन्तान वेद पढानेवाले गुरुकी सन्तान विवाहमें निषिद्ध

है, उन (माताओं) की बहिन मौसी होती है, यह भाष्यमें नहीं लिखा कहीं वाक्यसेभी विवाह नहीं होता जैसे गृह्यपरिशिष्टमें कहाहै जिसके सम्बन्धमें विरोध नहो उसे विवाहै, यह कहकर विरुद्ध सम्बन्ध स्वयंही लिखाहै कि, जैसे भार्याकी बहिनकी पुत्री, चाचीकी बहिन, बौधायनका कथन है कि, माताकी सौतकी भगिनी और पुत्रीको त्यागदे, चाचीकी बहिन और उसकी पुत्रीको त्यागदे, इससे मौसीके सापत्नपुत्रकी कन्याभी विवाहके अयोग्यहैं, कारण कि, मदनपारिजातमें भी यह लिखाहै कि, सापत्नमाताके वंशमें उत्पन्न हुई त्यागदे, कोई यह कहतेहैं और किन्हीका यह कथन है कि, जेष्ठ भ्राता पितातुल्य होताहै इस मनुके कथनसे उसकी भार्याको माता होनेसे उसके पिताको नाना होनेके कारण ज्येष्ठ भाईकी स्त्रीकी भगिनीसे भी विवाह न करना चाहिये ॥

तथा-'उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता' इति मनूक्तेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं सखापि निर्वाप्यः । अतस्तेषां कन्या नोद्वाह्याः । "गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्वहेद्विजः । गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्संतत्यापि नेष्यते ॥ पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते । वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम् ॥ विवाहोत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते" ॥ ३ ॥ इति वचनाच्चेत्याहुः ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

इसीप्रकार उत्पन्न करनेवाले और वेद पढानेवाले पिताओंमें वेद देनेवाला पिता अत्यन्त उत्तमहै इस मनुके कथनसे गुरुके संग भी तीन पुरुषतक सापिंड्य कहाहै, मित्रभी विवाहमें निषिद्ध हैं, इससे उनकी कन्यासे भी विवाह न करना, और यह वाक्यभी है कि, गायत्री उपदेश करनेवालेकी कन्याको द्विज और गुरुकी कन्यासे शिष्य वा शिष्यकी सन्तान विवाह न करै, और तीन पुरुषपर्यन्त भ्राताकी कन्याका विवाहभी इष्ट नहीं जिनके यहां सगाई होगई हो अथवा जिनके संग स्नेहसम्बन्धहै, उनके यहांभी लोकनिन्दासे विवाह करना न चाहिये, इन वाक्योंमें प्रमाण नहीं है ॥

दत्तकस्य सापिण्ड्यनिर्णयः ।

दत्तकविषये तूच्यते ॥ तत्र गौतमः-'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः ॥' पञ्चमादिति बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदम् ॥ किन्तु सन्तानेपि । एतत् क्षेत्रजादिसर्वद्व्यामुष्यायणपरमिति हरदत्तः ॥ अत्र स्मृतिचन्द्रिका-'नियोगाद्य उत्पादयति तस्माद्बीजिनोप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः इति दत्तकस्य जनकविषयमेतादिति साापिण्ड्यमीमांसायाम् । तेन दत्तकस्य जनककुले साप्तपौरुषं जननीकुले पञ्चपौरुषं सापिण्ड्यम् । "दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता । सप्तमी पञ्चमी चैव गोत्रित्वं पालकस्य च' इति बृहन्मनूक्तेः ॥ 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च ॥

दत्तकके विषयमें तो लिखतेहैं, उसमें गौतमने लिखाहै कि, पिताके और जिसका बीज हो उसके सात बन्धुओंसे आगे और माताके पांच बन्धुओंसे आगे दत्तक विवाह करै इस कथनमें बन्धुके ग्रहणसे केवल दत्तक विषयमें नहीं किन्तु दत्तककी संतानके विषयमें भी लेखहै, और यह हरदत्त लिखतेहैं कि, ये क्षेत्रजआदि द्व्यामुष्यायणके विषयमें यह वाक्यहै इसमें स्मृतिचन्द्रिकाका यह कथनहै कि, जो नियोगसे उत्पन्न करै उस बीजवालेसे ऊपर भी साततक विवाह न करै, सापिंड्यमीमांसामें यह कहा है कि, दत्तकके पिता जनक विषयमें यह कथनहै, तिससे दत्तकके जनककुलमें सात पुरुषतक और माताके कुलमें पांच पुरुषतक सापिंड्य है, कारण कि, बृहन्मनुने यह लिखाहै कि, दत्तक आदि पुत्रोंमें बीज बोनेवालेकी

सपिंडता सात और पांच पुरुषतक होतीहै, और गोत्रमें तो पालन करनेवालेके होतीहै, और गौतमनेभी बीजवालेकी सपिंडता लिखीहै ॥

'पालकपितृकुले तु पञ्चपुरुषं, तथा चापरार्के पैठीनसिः–'त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतः पुरुषानतीत्योद्वहेत्' इति । एतत्स एव व्याचख्यौ दत्तकादीन् पुत्रान् पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्षेयान् प्रत्येतदुच्यते पञ्च पितृत इति नान्यान् प्रतीति ॥ यत्तु वृद्धगौतमः–"स्वगोत्रेषु कृता ये स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः । विधिना गोत्रमायान्ति न साापिण्ड्यं विधीयते ॥", यच्च वसिष्ठः–"अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः । स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना स्यात्स्वशाखभाक्" इति ॥ यच्च नारदः–"धर्मार्थं वर्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत् । अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम् ॥" तत्पालककुले साप्तपौरुषं साापिण्ड्यं न इत्येवं परं, न तु सर्वथा साापिण्ड्यनिषेधपरमिति साापिण्ड्यमीमांसायाम् ॥ मदनपारिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं साापिण्ड्यं प्रतिभाति ॥ तथाहि तेन त्रीनतीत्येत्युदाहृत्य यस्य माता दत्तपुत्री प्रतिगृहीत्रा पुत्रीकृता तस्याः प्रतिगृहीतृकुले त्रीनतीत्येति ॥ पञ्च पितृत इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य यज्जनककुलं तद्विषयमित्युक्तम् ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भादपरार्कादिलेखनाभावात् । पूर्वोक्तव्यवस्थायाश्च प्रातिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते । मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव साापिण्ड्यम् ॥ 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेपि तावदेव 'त्रीन् मातृतः' इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरम् । 'यद्येकजाता बहवः' इति शाङ्खैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रतिभाति । अत एवास्य द्व्यामुष्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणादिभिरुक्तम् । भट्टसोमेश्वरेणापि 'पृथाया कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेपि ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुबीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्रिमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्य कुलेपि साप्तपौरुषम् । पालककुलेपि तावदेव साापिण्ड्यमुक्तमपि वा कारणाग्रहणे इत्यत्र साापिण्ड्यदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनककुले साप्तपौरुषं साापिण्ड्यम् । पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम् । पिण्डनिर्वापान्निर्वाप्यलक्षणम् । त्रिपुरुषसाापिण्ड्यम् । पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले साप्तपौरुषमित्युक्तम् ॥ तन्न ॥ "चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते" इति कालिकापुराणादुपनयनोत्तरं दत्तकनिषेधात् । त्रिपुरुषमित्यत्रापि मूलं मृग्यमित्यलं बहुना ॥

पालक पिताके कुलमें पांच पुरुषतक और पालक माताके वंशमें तीन पुरुषतक दत्तकका सापिंड्य प्राप्तहै सोई अपरार्कमें पैठीनसिने कहाहै कि, मातासे तीन और पितासे पांचपुरुषतक दत्तक विवाह करै, और यह उसीने अर्थ कहाहै कि, उन दत्तक आदि पुत्रोंके प्रति यह वाक्यहै कि, पितासे पांच पुरुष लंघकर विवाह करना अन्योंके प्रति नहीं जिनकी पिताके पक्षसे पिंड, गोत्र, प्रवरकी, निवृत्ति होगई है, और जो वृद्धगौतमने यह लिखाहै कि, अपने गोत्रके जो दत्तक क्रीतपुत्र कियेहैं,वे विधिसे गोत्रमें प्राप्त होजातेहैं उनमें सपिण्डका विधान नहींहै, और जो वसिष्ठने यह लिखाहै कि, और शाखासे उत्पन्नहुआ दत्तक पुत्र अपने गोत्र और अपनी शाखाकी विधिसे यज्ञोपवीत करनेसे अपनी शाखामें प्राप्त होजाताहै, और जो नारदने

कहाहै कि, धर्मके अर्थ पालेहुए पुत्र उस २ गोत्रमें पुत्रके तुल्य अंश और केवल पिण्डके भागी ही होतेहैं, ये गौतम, वसिष्ठ, नारदके तीनों वाक्य इसके कहनेवाले हैं कि, दत्तकका सापिंड्य पालकके कुलमें सात पुरुषतक नहीं होता किंतु पांचतक होताहै, कुछ सर्वथा सापिंड्यका निषेधक नहींहै यह सापिंड्य मीमांसामें लिखाहै, मदनपारिजातसेभी दत्तकका अल्पही साण्डिय विदित होताहै, सोई लिखतेहैं, मातासे तीन पुरुष लंघकर विवाहै, यह कहकर यह अर्थ लिखाहै कि, जिसकी माता दत्तककी पुत्री हो और लेनेवालेने अपनी पुत्री बनालीहो, उसके लेनेवालेके कुलमें तीन पुरुष लंघकर दत्तकको विवाह करना चाहिये, और पितासे पांच यह तो उसके विषयमें है जिसका पिता दत्तकका पुत्रहो उसके पिताके वंशमेंसे पांच पुरुषतक दत्तकको विवाह न करना चाहिये, सिद्धान्त यह है कि, पूर्वोक्त वाक्य बडे २ ग्रन्थोंमें कहींभी नहीं दीखते और अपरार्क आदिमें नहीं लिखे, इससे पूर्वोक्त व्यवस्था भ्रमसी प्रतीत होतीहै, इससे जिन्होंने यह वाक्य लिखेहैं उनको ही शोभा देतेहैं, हमको तो यह युक्त प्रतीत होताहै कि, एक पिंडदान क्रियामें सम्बन्धरूप सापिण्डय बीजवालेके सात पुरुषतक गौतमके वाक्यसे और उतनाही सापिंड्य पालनेवाले वंशमें दत्तकको होताहै, और मातासे तीन पुरुषतक सापिंड्यहै, इत्यादि वाक्य तो सजातीय सपत्नी माताके विषयमें जानने चाहिये कारण कि, एकसे उत्पन्नहुए बहुत इस शंखके कथनके संग एकवाक्यताहै, इसीसे हेमाद्रि प्रवर मंजरी वृत्तिकार नारायण आदिने दत्तकको द्व्यामुष्यायण लिखाहै, सोमेश्वरभट्टने भी पृथा (कुंती) को भोजपालककी कन्या होनेपर भी पिता और बीजवालेके कुटुम्बियोंमें सात पुरुषतक सापिंड्य रहताहै यह लिखाहै इस गौतमके वाक्यसे दत्तक पृथाका सापिंड्य उत्पन्न करनेवाले शूरसेनके वंशमें और पालक भोजके कुलमें सात पुरुषतक बराबर सापिंड्य (अपि वा कारणाग्रहणे) इस स्थलमें लिखाहै, सापिंड्यदीपिकामें तो यह लिखाहै कि, दत्तक क्रीत आदि पुत्रोंका यदि उत्पन्न करनेवालेके गोत्रसे उपनयन होजाय तो पिताके कुलमें सात पुरुषतक और पालनेवाले माता पिताके कुलमें तीन पुरुषतक पिंड देने, और न देनेरूप सापिंड्य होताहै, पालकके कुलमें यज्ञोपवीत होजाय तो उसके भी वंशमें सात पुरुषतक सापिंड्य होताहै, सो यथार्थ नहीं कारण कि, इस कालिकापुराणके वाक्यसे यज्ञोपवीतसे उपरान्त दत्तकपुत्रका निषेधहै कि, जिन दत्तकआदि पुत्रोंका मुण्डन उपनयन संस्कार अपने गोत्रसे हुआहो वेही दत्तक पुत्र कहातेहैं, अन्यथा दास कहातेहैं, तीन पुरुषतक साण्डिय लगताहै इसमेंभी प्रमाण नहीं मिलता इति । बहुत न कहकर बस करतेहैं ॥

मातापितृद्वारकसापिण्ड्यवतीनां कन्यानामियं संख्या रामवाजपेयिनोक्ता–" उद्वोढुः पितरौ पितुश्च पितरौ तज्जन्मकृद्दम्पतीद्वंद्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोऽप्यस्य क्रमात् षोडश। वंशारम्भकदम्पतीप्रमितिरित्यासप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः पितृकुले त्वासप्तकक्षं ब्रुवे ॥ यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु । सम्बन्धसाम्यादेकैकगणितेत्येवधार्यताम् ॥ एकस्मान्मिथुनात्सुतोऽथ दुहिता द्वंद्वद्वयं तद्द्वयात्तस्माद्द्वंद्वचतुष्कमष्ट च ततोतः षोडशाऽतो रदाः । यावत्सप्तमकक्षमग्निऋतवः कन्या इहैकान्वये ता दन्तैर्गुणिता रसैकसदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः ॥ मातुर्जन्मददम्पती च मिथुनं द्वंद्वं तयोः सागरास्तस्याः पञ्चमकक्षमष्टमितिरित्येकान्वयः पुंसु ते । द्वन्द्वाद्द्वन्द्वयुगं भतोऽभय इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभविधवो मातुः सपिण्डाः कुले ॥ कुलद्वयस्य कन्यकायुता मिथः सापिण्डकाः । हिमांशुदुग्धधरादृशो विवाहकर्मवर्जिताः ॥ ९ ॥" इति ॥ एतच्च सर्ववर्णसाधारणम् । सर्वत्र सापिण्ड्यसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः ॥ "पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं

मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः" ॥ इति हरनाथधृत-देवलवचनाच्च ॥ सम्बन्धतत्त्वे सुमन्तुः—'पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातुलसुतां मातृ-सगोत्रां समानार्षेयीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्बिभृयात्' इति दिक् ॥ ऋषेरिदमार्षं प्रवरः । गोत्रं प्रसिद्धम् । समाने आर्षे गोत्रे यस्य तस्माज्जाता या न भवति ताम् ॥

माता और पिताके द्वारा जिन कन्याओंका सापिंड्य होताहै उनकी गिनती रामवाजपेयीने इसप्रकार लिखीहै कि, घरके माता पिता दो, और उन दोनोंके जन्मदाता माता पिता चार, और उन चारोंके माता पिता आठ, और उन आठोंके माता पिता सोलह, और उन सोलहके माता पिता बत्तीस ३२ इन बत्तीसोंमें एक २ कुलकी जो कन्या सात पुरुषतक हैं, उनको हम सपिंड लिखतेहैं यही कुलके आरम्भका प्रणामहै, यद्यपि एक २ के बहुत कन्याभी होतीहैं तोभी सम्बन्धकी तुल्यतासे एकही गिनीहै, इसप्रकार निश्चय जानना चाहिये, और एक (स्त्रीपुरुषसे) एक कन्या हुई उस कन्यासे दो कन्या हुईं, उन दोनों कन्याओंसे चार द्वंद्व (आठ) हुईं, इसी प्रकार उन ४ चार द्वंद्वोंसे आठ, और आठसे सोलह, और सोलहसे ३२ बत्तीस हुईं, इसप्रकार सात पीढीतक तिरसठ ६३ कन्या एक कुलमें होतीहैं, उनको बत्तीससे गुणा करनेसे २०१६ दो सहस्र सोलह कन्या पिताके कुलमें सपिंड होतीहैं, माताके जन्मदाता दंपती (स्त्री पुरुष) दो, और उन दोनोंके माता पिता दो, (मिथुन ४) और उन दोनों मिथुनोंके चार मिथुन उस माताकी चार पीढीतक सात मिथुन होंगे, यह पुरुषोंमें एक कुल होताहै, और माताके वंशमें सपिंड ये होतेहैं पहिले मिथुनसे दो मिथुन, उन दोके माता पिता चार मिथुन, चारके माता पिता आठ, इस प्रकार पांच कक्षातक पन्द्रह १५ होतेहैं, उनको सात गुना करो तो १०५ एकसौ पांच होतेहैं, इन दोनोंकी कन्या परस्पर मिलानेसे २१२१ दो सहस्र एकसौ इक्कीस, परस्पर सपिंड कहातीहैं, और उनके संग विवाह करना निषिद्धहै, यह सापिण्ड्य सब वर्णोंमें साधारणहै कारण कि, सापिण्ड्य सब स्थानमें होसकताहै, यह विज्ञानेश्वरने लिखाहै और हरनाथका लिखा देवलका यह वाक्य भीहै कि, मातासे पांचवें और पितासे सातवेंसे आगे सपिण्डता निवृत्त होजाती है, यह सब वर्णोंमें विधि लिखीहै, सम्बन्धतत्त्वमें सुमन्तुने कहा है फूफी मौसी मामा इन तीनोंकी पुत्री माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके साथ विवाह करलेनेसे चान्द्रायण व्रत करै और पीछेसे माताकी तुल्य उनकी पालना करै, यह संक्षेपसे कहा ॥

गोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः ॥ तौ च भिन्नौ निषेधे निमित्तम् । 'सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्' इति आपस्तम्बोक्तेः । 'असमानप्रवरैर्विवाहः' इति गौतमोक्तेश्च । तत्र गोत्रल-क्षणमाह प्रवरमञ्जर्यां बौधायनः—'विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः' । सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रम् इति ॥

अब संक्षेपसे गोत्रप्रवरका निर्णय लिखतेहैं ये दोनों भिन्न २ निषेधके कारणहैं अर्थात् गोत्र और प्रवर दोनों ही विवाहमें निषिद्ध हैं, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है कि, सगोत्रीको कन्या न देनी चाहियै, और गौतमने यह लिखाहै कि, जिसके संग प्रवर एकहो उसके संग विवाह न करना चाहिये, उन दोनोंमें गोत्रका लक्षण प्रवरमञ्जरीमें बौधायनजीने लिखाहै कि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, गौतम और आठवें अगस्त्य इनकी जो सन्तान उसको गोत्र कथन करतेहैं ॥

यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु च हारीतादिषु च नैतत् । भृग्वङ्गिरसोरुक्तेष्वनन्तर्गतेः ॥ तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेति केचित् । अत एव स्मृत्यर्थसारे । प्रवरैक्यादेवात्राविवाह उक्तः ॥ यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम् । तेषां सप्तर्षित्वेन तदपत्यत्वाभावात् ॥ तथापि तत्पूर्वभाविवसिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् । अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद्गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयः ॥ प्रवरास्तु प्रवरणानि प्रवराः । कल्पकारा हि वासिष्ठेति होता वसिष्ठवदित्यध्वर्युरित्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः । तच्च वरणं यद्यपि क्वचिद्दृश्यते । तथापि पूर्ववदृषिभेदो द्रष्टव्यः । अन्यथा तेषां त्र्यार्षेये एकार्षे इत्यादिनिर्देशानुपपत्तेः अन्ये तु तद्गोत्राणां त्र्यार्षेय इति भेदमाहुरिति दिक् ॥ तत्त्वं तु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा एव प्रवराः । 'पितैवाग्रेथ पुत्रोथ पौत्रः' इति शतपथश्रुतेः ॥

यद्यपि भार्गव आर्ष्टिषेण और केवल आंगिरस तथा हारीत आदिकमें यह गोत्रका लक्षण नहीं घटसकता कारण कि, भृगु और अंगिरा उक्त सातोंमें नहीं आये हैं तोभी कोई इसमें इष्टापत्ति लिखतेहैं अर्थात् वे गोत्र नहीं हैं इसी कारण स्मृत्यर्थसारमें उनमें एक प्रवरमें ही विवाहका निषेध कहाहै यद्यपि वसिष्ठादिका गोत्र युक्त नहीं कारण कि, वे सप्तऋषिहैं ऋषियोंके सन्तान नहीं हैं, तोभी उनके सप्तर्षि होनेसे प्रथम जो सन्तान उससे गोत्र मानना युक्त है, इस कारणसे पिछले और प्रथमकेको गोत्र लिखतेहैं इसकी विशेषता मेरे बनाये प्रवरदर्पणमें जाननी चाहिये, प्रवर तो उनको लिखतेहैं कि, भलीप्रकार यज्ञमें वरणको प्रवर कहते हैं कारण कि, कल्पकार होता अध्वर्युके नामसे जिनका वरण कियाजाय उनकोही प्रवर कहते हैं वो वरण यद्यपि कहीं गोत्रकाभी होता है, तोभी पूर्वके तुल्य ऋषिका भेद जानना अन्यथा उनमें किसीके तीन प्रवर और किसीका एक प्रवर ये निर्देश न होगा, और तो यह कहतेहैं कि, उन गोत्रोंकेही तीन आहि भेदको प्रवर लिखतेहैं, सिद्धान्त तो यह है कि, गोत्र रूपके पिता पितामह प्रपितामह तीन प्रवर होतेहैं कारण कि, शतपथ श्रुतिमें कहाहै कि, प्रथम पिता दूसरा पुत्र तीसरा पौत्र ये तीन प्रवर होतेहैं ॥

'परं परम्प्रथमम्' इत्याश्वलायनोक्तेश्च । अत्र विशेषमाह बौधायनः–"एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वंगिरसां गणात्" इति ॥ स्मृत्यर्थसारे–"प्रीयमाणा तया वापि सत्तया वानुवर्तनम् । एकस्य दृश्यते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते ॥" भृग्वङ्गिरोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे–"पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः भृग्वङ्गिरोगणेष्वेव शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥" शेषगोत्रेषु एकोपि समानः प्रवरो विवाहं वारयेदित्यर्थः ॥ बौधायनोपि–'भृग्वङ्गिरसावधिकृत्यद्व्यार्षेयसन्निपाते विवाहस्त्र्यार्षेयसन्निपाते विवाहः पञ्चार्षेयाणाम्' इति ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादेवाविवाह इति दिक् ॥

आश्वलायननें भी लिखाहै कि, परला २ प्रथम होताहै, इससे विशेष बौधायन ने लिखाहै कि, प्रवरोंमें जहां तक एक ऋषिका नामहो वहांतक भृगु अंगिराको त्यागकर एक गोत्र होताहै, स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, वरण करनेसे वा नामसे जहां एक एकका नाम चलाजाय उसे वहां एक गोत्र कहतेहैं, भृगु और अंगिराओंके गणोंमें तो माधवीय और स्मृत्यन्तरमें यह कहाहै कि, पांच प्रवरवालोंकी तीनमें और तीन प्रवरवालोंकी दोमें एकता प्राप्त होजाय तो विवाह नहीं होता यह बात भृगु और अंगिराओंमें है, और तो एक-

भी प्रवर विवाहको निषेध कर देता है, बौधायनने भी कहा है कि, भृगु और अंगिरा गोत्रियोंमें दो प्रवरवालोंके और दो प्रवर और तीन प्रवरवालोंके तीन प्रवर मिलजाँय तो विवाह नहीं होता, यह बात पञ्चार्षेये (पांच प्रवरवाले) में है । भृगु और अंगिराओंके समूहमें है और शेषगोत्रोंसे एक भी प्रवर विवाहको निषेध करताहै, भृगु और अंगिराओंमें भी गौतम, भरद्वाज एक प्रवरके मिलनेमें और प्रवर नहीं भी मिले, केवल गोत्रके ही मिलनेमें विवाह नहीं होता यह संक्षेप है ॥

गोत्रप्रवरसंख्यानिर्णयः ।

अथ गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते ॥ तत्र बौधायनः–"गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ।" तत्र सप्त भृगवः । वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनका इति । वत्सानां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । भार्गवच्यावनाप्नवानेति वा ॥

अब गोत्र और प्रवरोंको लिखतेहैं, उसमें बौधायनने यह लिखा है कि, गोत्र सहस्र दशसहस्र वा अर्बुदहैं, और उनके प्रवर ऊनपञ्चाशत् (उनंचास) हैं कारण कि, इनतेही ऋषि दीखते हैं उनमें ये सात भृगुहैं वत्स, विद, आर्ष्टिषेण, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक । वत्सोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य वा भार्गव, और्व जामदग्न्य वा भार्गव, च्यावन आप्नवान, हैं ॥

गोत्रप्रवरनिर्णयः ।

बिदानां–पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानौर्ववैदेति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । एतौ द्वौ जामदग्न्यसंज्ञौ । आर्ष्टिषेणानां–भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति । भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति वा । एषां त्रयाणां परस्परमविवाहः ॥ वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति ॥ वत्सपुरोधसयोः पञ्च । भार्गवच्यावनाप्नवानवात्सपौरोधसेति ॥ बैजवनिमथितयोः पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानबैजवनैमातिथेति । एते त्रयः क्वचित् । एषामपि पूर्वैरविवाहः अत्र तत्तद्गणस्था ऋषयोन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयः ॥ यस्कानां–भार्गववैतहव्यसावेतसेति ॥ मित्रयुवानां–भार्गववाध्यश्वदिवोदासेति । भार्गवच्यावनदिवोदासेतिवा । वाध्यश्वेत्येको वा । वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति । एत एव श्वैताः । शुनकानां शुनकेति वा । गार्त्समदेति द्वौ वा । भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति । त्रयो वा । वेदंविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति ॥ शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति । एतौ द्वौ क्वचित् । यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः ॥ तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे । 'यस्का मित्रयुवा वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः । स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः" इति ॥

बिदोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व, बैद ये पांच प्रवर हैं, वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य ये दो जामदग्न्य कहातेहैं, आर्ष्टिषेणोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, आर्ष्टिषेण, अनूप वा भार्गव आर्ष्टिषेण, अनूप हैं, इन तीनोंका परस्पर विवाह नहीं होता, वत्सोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, प्रवर हैं, वत्स और पुरोधा इन दोनोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान वात्स, पौरोधस पांचहैं, और कहीं बैज, बैन, मथित ये तीन लिखेहैं, इनका भी प्रथमोंके संग विवाह नहीं होता यहां तिस २ गणके ऋषि और दूसरे विशेष मेरे निर्मित प्रवरदर्पणमें देखलेने यस्कोंके भार्गव, वैतहव्य, सावेतस हैं, मित्रयुवोंके भार्गव वा वाध्यश्व, दिवोदास वा भार्गवच्यावन दिवोदासहैं वा वाध्यश्व एकही प्रवर है, वैन्योंके भार्गव, वैन्य, पार्थ हैं इनकोही श्वैतभी कहतेहैं,

शुनकोंका शुनक वा गार्त्समद ये दो, वा भार्गव शौनहोत्र गार्त्समद ये तीन प्रवरहैं, वेदविश्व ज्योतिषियोंके भार्गव वेदविश्व ज्योतिष प्रवर हैं, शाठर माठरोंके भार्गव शाठर माठर, ये दोही लिखेहैं, यस्क आदिकोंका अपने गणको त्यागकर सबके संग विवाह होताहै, यही स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै कि, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक ये एक प्रवर होनेसे अपने २ गणको त्यागकर और प्रवरोंमें विवाह करैं ॥

आङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथाङ्गिरसः । ते गौतमा भरद्वाजाः केवलाङ्गिरसश्चेति त्रिधा ॥ अत्र गौतमा दश । आयास्याः । शरद्वताः । कौमण्डाः । दीर्घतमसः । औशनसः । कारेणुपालेयः । राहूगणाः । सोमराजकाः । वामदेवाः । बृहदुक्थाश्चेति ॥ तत्र यास्यानाम्–आङ्गिरसायास्यगौतमेति ॥ शरद्वतानाम्–आङ्गिरसगौतमशारद्वतेति ॥ कौमण्डानाम्–आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवन्तगौतमकौमाण्डेति वा ॥ आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा । आङ्गिरसौतथ्यागौतमौशिजकाक्षीवतेतिवा । आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा ॥ दीर्घतमसाम्–आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति । आङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा ॥ औशनसाम्–आङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः ॥ कारेणुपालेयानाम्–आङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः ॥ राहूगणानाम्–आङ्गिरसराहूगणगौतमेति ॥ सोमराजकानाम्–आङ्गिरससोमराजकगौतमेति । वामदेवानाम्–आङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति ॥ बृहदुक्थानाम्–आङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति । आङ्गिरसवामदेवबार्हदुक्थेति वा ॥ उतथ्यानाम्–आङ्गिरसौतथ्यगौतमेति ॥ औशिजानाम्–आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेत्यापस्तम्बः । आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति कात्यायनः ॥ एतौ द्वौ क्वचित् ॥ रघुवानाम्–आङ्गिरसराघुवगौतमेति केचित् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ एषां सर्वेषाङ्गौतमानामविवाहः ॥

अब आंगिरसोंके गोत्र प्रवर कहतेहैं, वे गौतम, भरद्वाज, केवलांगिरस तीनहैं, उनमें गौतम दशहैं कि, आयास्य, शरद्वत, कौमण्ड, दीर्घतमस्, औशनस्, करेणुपालेय, राहुगण, सोमराजक, वामदेव, बृहदुक्थ, इन दशोंमें आयास्योंके आंगिरस, औतथ्य, आयास्य, गौतम तीन प्रवर हैं, शरद्वतोंके आंगिरस औतथ्य कावत, गौतम, कौमण्ड हैं, वा आंगिरसके औशिज, काक्षीवत, ये तीन प्रवरहैं, दीर्घतमसोंके आंगिरस औतथ्य हैं वा काक्षीवत, गौतम दैर्घ्यतमस ये तीन हैं, औशनसोंके आंगिरस, गौतम, औशनस ये तीन प्रवरहैं, कारेणुपालोंके आंगिरस, गौतम, कारेणुपाल तीन प्रवरहैं, राहूगणोंके आंगिरस, राहूगण, गौतम तीन प्रवरहैं, बृहदुक्थोंके आंगिरस बार्हदुक्थ गौतम, वा, आंगिरस, वामदेव, बार्हदुक्थ प्रवरहैं, औशिजोंके आंगिरस औशिज काक्षीवत ये तीन प्रवरहैं आपस्तम्बने, और आंगिरस आपास्य, औशिज, गौतम, काक्षीवत ये पांच कात्यायनने लिखेहैं, ये दो गोत्र कहीं २ लिखेहैं, रघुवोंके आंगिरस राघुव गौतम ये तीन प्रवरहैं, यह किन्हीका कथन है उसमें प्रमाण नहींहै इन सब गौतमोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥

भरद्वाजगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ भरद्वाजाः । ते चत्वारः । भरद्वाजा गर्गा ऋक्षाः कपय इति ॥ भरद्वाजानाम्–आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः । गर्गाणामङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजसैन्यगार्ग्येति पञ्च ॥ आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति वा अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ भारद्वाजगार्ग्यसैन्येति वा ॥

गर्गभेदानाम्—आङ्गिरसतैत्तिरकापिभुवेति ॥ ऋक्षाणां कपिलानां चाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च ॥ आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा ॥ कपिलानाम्—आङ्गिरसामहीयवोऋक्षयसेतिं ॥ आत्मभुवाम्—आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति पञ्च ॥ अयं क्वचित् ॥ भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः ॥

अब भरद्वाजोंके गोत्र प्रवर कहतेहैं, वे चारहैं भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष, कपय, भारद्वाजोंके आंगिरस बार्हस्पत्य भरद्वाज ये तीन प्रवरहैं, गर्गोंके आंगिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज सैन्य गार्ग्य ये पांचहैं, वा आंगिरस सैन्य गार्ग्य हैं, वा पिछले दोनोंके व्यत्ययसे आंगिरस गार्ग्य सैन्य हैं, गर्गोंके दूसरे जो भेदहैं उनके आंगिरस तैत्तिर कापिभूत प्रवर हैं, ऋक्षोंके और कपिलोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भरद्वाज, वांदन, मातवचस, पांच प्रवरहैं, वा आंगिरस, वादन मातवचस ये तीनहैं कपिलोंके आंगिरस, महीयव, ऋक्षयस, ये तीन प्रवरहैं, आत्मभुवोंके आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य, मन्त्रवर, आत्मभुव ये पांच प्रवर हैं, ये गोत्र क्वचित्हैं इन सब भरद्वाजोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥

केवलाङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ केवलाङ्गिरसः ॥ हारीतानाम्—आङ्गिरसांबरीषयौवनाश्वेति ॥ आद्योमान्धाता वा ॥ कुत्सानाम्—आंगिरसमान्धातृकौत्सेति ॥ कण्वानामाङ्गिरसाजमीढकाण्वेति ॥ आङ्गिरसघोरकाण्वेति वा । रथीतराणामाङ्गिरसवैरूपराथीतरेति ॥ आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा । अष्टादंष्ट्रपार्षदश्ववैरूपेति वा ॥ अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्याश्वमौद्गल्येति ॥ आद्यस्तार्क्ष्यो वा ॥ आङ्गिरसताविमौद्गल्येति वा ॥ विष्णुवृद्धानामाङ्गिरसपौरुकुत्सत्रासदस्यवेति ॥ एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्विवाहो भवति । हारीतकुत्सयोस्तु न भवति ॥

अब केवल आंगिरसोंके गोत्र और प्रवर कथन करतेहैं हारीतोंके आंगिरस, अम्बरीष, यौवनाश्व प्रवरहैं, अथवा इनमें प्रथम मांधाताहै, कुत्सोंके आंगिरस, मांधाता, कौत्सहैं, कण्वोंके आंगिरस, आजमीढ, काण्व हैं वा आंगिरस घोर काण्व कहेहैं रथीतरोंके आंगिरस वैरूप रथीतर हैं, वा आंगिरस वैरूप पार्षदश्वहैं, वा अष्टादंष्ट्र पार्षदवैश्वरूप हैं अन्त्य दोनोंके असनामी मौद्गल्य प्रवरहैं, विष्णुवृद्धोंके आंगिरस पौरुकुत्स त्रासदस्यव, इन सबका अपने २ गणको त्यागकर सबके संग विवाह होताहै, हारीत कुत्सोंका प्रवरहैही नहीं ॥

अत्रिगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथात्रयः । ते चत्वारः । आत्रेयाः । वाद्धुतकाः । गविष्ठिराः । मुद्गला इति ॥ आद्यानामात्रेयार्चनानशश्यावाश्वेति । वाद्धुतकानाम्—आत्रेयार्चनानशवाद्धुतकेति ॥धनञ्जयानाम्—आत्रेयार्चनानशधानञ्जयेति क्वचित् ॥ गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानशगाविष्ठिरेति । आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा ॥ मुद्गलानामात्रेयार्चनानशपौर्वातिथेति ॥ वामरथ्यसुमङ्गलवैजवापानामात्रेयार्चनानशातिथेति ॥ आत्रेयार्चनानशगाविष्ठिरेति वा ॥ सुमङ्गलानाम्—अत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति केचित् ॥ अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम् । आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति । अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ॥

अब आत्रेयोंके गोत्र और प्रवर लिखतेहैं, वे चार हैं, आत्रेय, वाद्धुतक, गविष्ठिर, मुद्गल, प्रथमोंके आत्रेय आर्च्चनानस श्यावाश्व प्रवरहैं, वाद्धुतकोंके आत्रेय आर्च नानश वाद्धुतकहैं, धनंजयोंके, आत्रेय, । आर्चनानश

आर्चनानश धानंजयहैं, यहभी गोत्र कहाहैं, गविष्ठिरोंके आत्रेय, आर्चनानश, गविष्ठिरहैं, वा आत्रेय गाविष्ठिर पौर्वातिथ हैं, मुद्गलोंके आत्रेय आर्चनानश पौर्वातिथ हैं, वामरथ्य और सुमंगल और वैजवापोंके आत्रेय, आर्चनानश, आतिथ हैं, वा आत्रेय, आर्चनानश, गविष्ठिर हैं, सुमंगलोंके अत्रि, सुमंगल, श्यावाश्व हैं, यह कोई कथन करतेहैं. अत्रिकी पुत्री और पुत्रोंके आत्रेय वामरथ्य पौत्रिक प्रवरहैं, इन सब अत्रियोंका विवाह परस्पर नहीं होता ॥

विश्वामित्रगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ विश्वामित्राः ते दश ॥ कुशिकाः । लोहिताः । रौक्षकाः । कामकायनाः । अजाः । अघमर्षणाः । पूरणाः । इन्द्रकौशिकाः । धनंजयाः । क्षीकता इति ॥ कुशिकानां–विश्वामित्रदेवरातौदलेति । लोहितानां–विश्वामित्राष्टकलौहितेति । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा । रौक्षकाणां–वैश्वामित्रा-गाथिनरैवणेति । वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा ॥ कामकायनानां–वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतर-सेति । अजानां–वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति । वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति वा ॥ अघमर्ष-णानां–वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति । पूरणानां–वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ ॥ वैश्वामित्र-देवरातपूरणेति वा । इन्द्रकौशिकानां–वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ ॥ धनञ्जयानां–विश्वा-मित्रमाधुच्छन्दसधानंजयेति । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा ॥ क्षीकतानां–वैश्वामित्रकात्यकीलेति ॥ एते बौधायनोक्ताः ॥ रोहिणानां–वैश्वामित्रामधुच्छन्दसरौ-हिणेति ॥ रेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनरैणवेति ॥ वेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ॥जह्नूनां–वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति॥ आश्मरथ्यानां–वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति । उद्वेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ॥ एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः ॥ अन्यैस्त्वन्येपि षड्गणा उक्ताः । तेऽन्यत्र मत्कृतौ ज्ञेयाः ॥ एषां विश्वामित्राणामविवाहः ॥

अब विश्वामित्रोंके गोत्र और प्रवर लिखतेहैं वे दशहैं कि, कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, अघमर्षण, पूरण,इन्द्रकौशिक, धनञ्जय क्षीकत, । कुशिकोंके विश्वामित्र, देवरात, औदल प्रवरहैं, लोहितोंके विश्वामित्र, अष्टक, लौहित हैं वा अन्त्यके दो प्रवरोंके व्यत्ययसेहैं, वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अष्टकहैं, वा विश्वामित्र अष्टक दो प्रवरहैं, रौक्षकोंके वैश्वामित्र, गाविथिन, रैवण हैं वा वैश्वामित्र रौक्षक, रैवण हैं, कामकायनोंके वैश्वामित्र, देवश्रवस दैवतरस हैं, अजोंके वैश्वामित्र, मधुच्छन्दस, अजहैं, वा वैश्वामित्र वामरथ अश्मरथ वाधूल हैं, अघमर्षणोंके वैश्वामित्र अघमर्षण कौशिक हैं, पूरणोंके वैश्वामित्र, पौरण ये दो हैं, वा वैश्वामित्र, देवरात, पूरण ये तीन हैं, इन्द्रकौशिकोंके वैश्वामित्र, इन्द्र, कौशिक ये दो हैं, धनंजयोंके विश्वामित्र, माधुच्छन्दस, धानंजय हैं, वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अघमर्षणहैं, क्षीकतोंके वैश्वामित्र, कात्यकीलहैं, यह बौधायननेे लिखे हैं, रोहिणोंके वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, रौहिण हैं वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन वैणव हैं, जह्नुओंके वैश्वामित्र, शालंकायन, कौशिक हैं, आश्मरथ्योंके वैश्वामित्र, अश्मरथ, वाधूल हैं, उद्वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणवहैं, ये आश्वलायन सूत्र और मत्स्यपुराणमें लिखेहैं, औरोंने तो और भी छः गण लिखे हैं वे मेरे बनाये दूसरे ग्रन्थोंमें जानने, इन विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं है ॥

काश्यपगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ काश्यपाः ते पञ्च ॥ निध्रुवाः । कश्यपाः । रेभाः । शाण्डिलाः । लौगाक्षयश्च ॥ निध्रुवाणां–काश्यपावत्सारनैध्रुवेति ॥ कश्यपानां–काश्यपावत्सारासितेति ॥ रेभाणां–

काश्यपावत्साररैभ्येति ॥ शाण्डिलानां–काश्यपशाण्डिल्येति । अन्त्यस्थाने देवलो वा, सितो वा, शाण्डिलासितदेवलेति वा, कश्यपासितदेवलेति वा, अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, देवलासितेति द्वौ वा ॥ लौगाक्षीन् वक्ष्यामः ॥ एषां काश्यपानामविवाहः ॥

अब कश्यपोंके गोत्र और प्रवर कहतेहैं वे पांच हैं निध्रुव, कश्यप, शांडिल, रैभ, लौगाक्षि। निध्रुवोंके कश्यप वत्सार नैध्रुवहैं, कश्यपोंके काश्यप, मत्सार, असितहैं, रेभोंके काश्यप, वत्सार, रैभहैं, शांडिलोंके काश्यप वत्सर शांडिल्यहैं, वा अन्तके स्थानमें देवल असितहैं, वा शांडिल्य असित देवलहैं, वा काश्यप असित देवलहैं, वा अन्त्यके दोका व्यत्यय वा देवल असित दो हैं, लौगाक्षियोंको लिखेंगे, इन कश्यपोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥

वसिष्ठगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथ वसिष्ठाः ते पञ्च ॥ वसिष्ठाः । कुण्डिनाः । उपमन्यवः । पराशराः । जातूकर्ण्याश्चेति ॥ वसिष्ठानां–वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति । वासिष्ठेत्येको वा ॥ कुण्डिनानां–वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति ॥ उपमन्यूनां–वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वसव्येति ॥ वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा । आद्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ पराशराणां–वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति ॥ जातूकर्ण्यानां–वासिष्ठात्रिजातूकर्ण्येति ॥ वासिष्ठानां सर्वेषामविवाहः । अन्त्यस्यात्रिभिश्च ॥

अब वसिष्ठोंके गोत्र प्रवर लिखतेहैं । वे पांचहैं वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर, जातूकर्ण्य। वसिष्ठोंके वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद आभरद्वसु हैं वा वसिष्ठ एक प्रवरहैं, कुण्डिनोंके वासिष्ठ, मैत्रावरुण, कौंडिन्य हैं, उपमन्युओंके वसिष्ठ, इन्द्र प्रमद आभरद्वसव्यहैं वा वसिष्ठ आभरद्वसु इन्द्रप्रमदहैं वा पहिले दोका व्यत्ययहै पराशरोंके वासिष्ठ, शाक्त्य, पाराशर्यहैं, जातूकर्ण्योंके वासिष्ठ, अत्रि, जातूकर्ण हैं, सम्पूर्ण वसिष्ठोंका परस्पर विवाह नहीं होता और पिछले कहोंका अत्रियोंके संगभी विवाह नहीं होता ॥

अगस्त्यगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

अथागस्त्याः ते चत्वारः ॥ इध्मवाहाः । सोमवाहाः । साम्भवाहाः । यज्ञवाहाश्चेति ॥ आद्यानाम्–आगस्त्यदार्ढ्यच्युतेध्मवाहेति आगस्त्येत्येको वा ॥ सोमवाहानाम्–आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसोमवाहेति ॥ साम्भवाहानां–साम्भवाहोऽन्त्यः । यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः॥ आद्यौ पूर्वोक्तावेव ॥ सारवाहानां तदन्तास्त्रयः ॥ दर्भवाहानां–तदन्तास्त्रयः । अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ॥ पूर्णमासानाम्–आगस्त्यपौर्णमासपारणेति ॥ हिमोदकानाम्–आगस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति ॥ पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति ॥ एते षट् क्वचित्-॥ आगस्त्यानां सर्वेषामविवाहः ॥

अब अगस्त्योंके गोत्र और प्रवर लिखतेहैं, वे चार हैं, इध्मवाह, सोमवाह, साम्यवाह यज्ञवाह। इध्मवाहोंके आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, इध्मवाह हैं,वा एक अगस्त्यहै,सोमवाहोंके आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सोमवाहहैं, साम्भवाहोंका सांभवाह, पिछलाहै, यज्ञवाहोंका यज्ञवाह पिछलाहै, और पहिले दो पूर्वोक्तहैं, सारवाहोंके सारवाहांत तीन और दर्भवाहोंके दर्भवाहांत तीनहैं, अगस्त्योंके अगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव हैं, पूर्णमासोंके आगस्त्य, पौर्णमास, पारणहैं, हिमोदकोंके आगस्त्य हैमवर्चि हैमोदकहैं, पाणिकोंके आगस्त्य, पैनायक, पाणिक हैं, ये छः भी कहीं लिखेहैं, इन सब अगस्त्योंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥

अथ द्विगोत्राः ।

शौङ्गशैशिरीणाम्–आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेति पञ्च । कात्याक्षीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरी वा । आङ्गिरसकात्याक्षीलेति त्रयो वा एषां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः ॥ एवं कपिलानां क्षीकतानां च संकृतिपूतिमाषादीनाम्–आङ्गिरसगौरिवीतसांकृत्येति । शाक्त्यगौरिवीतसाङ्कृत्येति वा ॥ एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशैशिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः ॥ काश्यपैरपीति प्रयोगपारिजाते ॥ लौगाक्षीणां–काश्यपावत्सारवासिष्ठेति । काश्यपावत्सारासितेति वा । एतेहर्वसिष्ठा नक्तं कश्यपाः । एषां वसिष्ठैः कश्यपैः संकृताद्यैश्चाविवाहः ॥ देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाह इति प्रयोगपारिजाते ॥ तदयुक्तम् ॥ बह्वृचश्रुतौ । "यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आंगिरसो जन्मनस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः" इत्यङ्गिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्बाधात् । तेन प्रत्यक्षश्रुत्या हरिवंशादिस्मृतेश्च बाधात् ॥ तेन द्वौ देवरातौ ॥ एक आङ्गिरसः । श्रुत्युक्तः । अन्यो भार्गवः । तयोः कल्पभेदेप्याङ्गिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः॥ भार्गवेण तु नेति तत्त्वम् ॥

अब दो गोत्रवालोंको लिखतेहैं शौंग शिशिरोंके आंगिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज, कात्य, आक्षील ये पांचहैं, वा कात्याक्षीलोंके स्थानमें शौंग शैशिरिहैं वा अंगिरस कात्य आक्षील ये तीनहैं, इनका भरद्वाज और विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं होता इसीप्रकार कपिल और क्षीकतोंका परस्पर विवाह नहीं होता और संकृति पूतिमाष आदिकोंके अंगिरस, गौरिवीत, सांकृत्यहैं, वा शाक्त्य गौरिवीत सांकृत्य हैं, इन सबका अपने गणोंमें और वसिष्ठ शौंग शिशिरोंके संग और लौगाक्षियोंके संग विवाह नहीं होता, प्रयोगपारिजातमें काश्यपोंके संग भी नहीं होता यह कहाहै, लौगाक्षियोंके काश्यप आवत्सार वासिष्ठहैं, वा काश्यप आवत्सार असितहैं ये दिनमें वसिष्ठ और रात्रिमें कश्यपहैं, इनका विवाह वसिष्ठ कश्यप, संकृतिआदिकोंके संग नहीं होता, प्रयोगपारिजातमें यह कहाहै कि, देवरातका जामदग्न्य और वैश्वामित्रोंके संग विवाह नहीं होता सो उचित नहीं, कारण कि, जैसे आंगिरसभी मैं तेरा पुत्र हूंगा, जन्मसे आंगिरस अजीगत श्रुतिके बलसे कविनामसे अंगिराओंके गणमें लिखेहैं इससे भार्गव और जामदग्न्य हैं, इस स्मृतिका बाधहै तिससे प्रत्यक्ष श्रुतिसे हरिवंश आदि स्मृतिकाभी बाधहै, तिससे दो देवरातहैं, एक श्रुतिमें लिखाहुआ आंगिरस देवरात, और दूसरा भार्गव, कल्पभेदसे भी आंगिरस देवरातके संग जमदग्नि देवरातका विवाह होही सकताहै, भार्गवके संग नहीं होता यही सिद्धान्त है ॥

धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः ॥ जातूकर्ण्यानां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः ॥ एवं दत्तक्रीतकृत्रिमस्वयन्दत्तपुत्रिकापुत्रादीनाम्–उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वर्ज्या इति प्रवरमञ्जरीनारायणवृत्तिप्रयोगपारिजातादयः अत्र सर्वत्रोपपत्तयः, मूलं च मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ॥ क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्तः ॥ यद्यपि बह्वृचपरिशिष्टे कपिभारद्वाजयोर्विवाह उक्तः । तथापि–"भरद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति । चत्वारोपि भरद्वाजगोत्रैक्यान्नान्वयुर्मिथः ॥ कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः । नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्प्रवरैक्याच्च कुत्रचित्" ॥ ६ ॥ इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति प्रवरमञ्जर्यां यद्यपीदमुक्तं तथापि भृग्वङ्गिरोगणेषु भवत्येव ॥ तथा बह्वृचपरिशिष्टे बौधायनः–"एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते । ताव-

त्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥" माधवीये स्मृत्यन्तरे-"पञ्चानां तु त्रिसामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ इति देशाचाराच्च ॥ सोप्याभीरदेशे प्रसिद्धः ॥

धनंजयोंका विवाह विश्वामित्र और अत्रियोंके संग नहीं होता जातूकर्ण्योंका वसिष्ठ और अत्रियोंके संग विवाह नहीं होता इसी प्रकार दत्तकको क्रीत कृत्रिम, स्वयंदत्त, पुत्रीकापुत्र आदिकोंके उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले मातापिताके गोत्रोंमें और प्रवरोंमें विवाह करनेका निषेधहै, यह प्रवरमंजरी नारायणवृत्ति प्रयोगपारिजात आदि लिखतेहैं, इन सबकी उपपत्ति और मूल मेरे निर्मित किये प्रवरदर्पणमें देखलेने यह संक्षेपसे कहाहै, क्षत्रिय और वैश्योंके तो गोत्र प्रवर पुरोहितोंके होतेहैं यह सबहीका सिद्धान्तहै, यद्यपि बह्वृच परिशिष्टमें कपि और भरद्वाजोंका परस्पर विवाह लिखाहै तथापि इस स्मृत्यर्थसार आदिके कथनसे विवाह नहीं होता कि, भरद्वाज कपि गर्ग रौक्षायण इन चारोंको भरद्वाज गोत्रके संग एक होनेसे इनका परस्पर विवाह नहीं होता और कपि गर्ग भरद्वाज रौक्षायण द्विज ये विवाह कहीं भी प्रवर और गोत्रके एकसे परस्पर विवाह न करैं, यद्यपि यह प्रवरमंजरीमें लिखाहै तथापि भृगु और अंगिरागणोंमें तो परस्पर विवाह होताहीहै, इसीप्रकार बह्वृचपरिशिष्टमें बौधायनका वाक्यहै कि, जहांतक प्रवरोंमें एकही ऋषि चला-जाय वहांतक वे सब भृगु और अंगिरागणोंको त्यागकर समान गोत्री रहतेहैं, माधवीयमें स्मृत्यंतरका कथनहै कि, पांचकी तीन प्रवरोंमें एकता मिलनेसे और तीन प्रवरोंकी दो प्रवरोंमें समानता प्राप्त होनेसे विवाह नहीं होता, यह बात भृगु और अंगिरागणोंमें जाननी शेष गोत्रोंमें तो एकही प्रवरका योग विवाहको निषेध देताहै, यह देशका आचारहै वहभी आभीर देशमेंही प्रसिद्ध है ॥

चतुर्विंशतिमते-"यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् ॥ नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते" इति दिक् ॥ तथा च भृगुः-"यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत्" इति ॥ पुनश्चतुर्विंशतिमते-"यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां किल सर्वेषां सदाचारः स उच्यते ॥" स्वगोत्राद्यज्ञाने सत्याषाढः-'अथाज्ञातबन्धो पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वेति ॥' "आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ॥ यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जमदग्निजः । विवाहं च न तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत् ॥ २ ॥" इति कश्चित् ॥ दिवोदासीयेपि-'स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत् ॥'

चतुर्विंशतिका कथनहै कि, जो मनुष्य देशरीतिके अनुसार वा कुलमार्गके अनुकूल विवाह करताहै वह निरन्तर व्यवहार करने योग्यहै, कारण कि, वेदसे भी यही बात दीखती है (इति संक्षेपः) सोई भृगुने लिखाहै कि, जिस देश पुर ग्राम तीन विद्यावाले नगरमें जो धर्म कर रक्खाहै उसको न डिगावे, फिर चतुर्विंशतिका मत है कि, जिस देशमें जो आचार परंपरासे चला आयाहै, वही सब वर्णोंका सदाचार लिखाहै, अपने गोत्र आदिका ज्ञान न होय तो सत्याषाढने यह लिखाहै, कि, जिसके बन्धुओंका ज्ञान न हो, उसका विवाह पुरोहित वा आचार्यके प्रवरसे होताहै और जिस द्विजको आचार्यके गोत्रका ज्ञान न हो वह अपनेको किसीको देकर उसीके गोत्र प्रवरोंको स्वीकार करले, अथवा अपने गोत्र और प्रवरोंसे रहित परशुराम थे उनकेही गोत्रसे वह विवाह करै यह किन्हीका मतहै । दिवोदासीयमें अपने गोत्रप्रवरके अज्ञानमें जमदग्निका आश्रय करै ॥

अथ मातृगोत्रनिर्णयः ।

शातातपः–"मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रान्तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥" यद्यपि–"सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि । जन्मनाम्नोरविज्ञातेप्युद्वहेदविशङ्कितः" इति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेन सगोत्रत्वादोषस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते ॥

अब माताके गोत्रका निर्णय लिखतेहैं, शातातपने कहाहै कि, मामाकी पुत्री और माताके गोत्रकी कन्याका और अपने प्रवरकी कन्याका संग करके चान्द्रायण व्रत करै, यद्यपि कोई विवाहमें माताके गोत्रकी भी इच्छा नहीं करते, यदि जन्म और नामका जहां ज्ञान न होय तो शंकाको त्यागकर विवाह करले, इस व्यासके कथनसे नामका ज्ञान न होय तो समान गोत्रका दोष नहीं, तथापि यह प्रचार कलियुगमें नहीं चलता ॥

'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा' इति कलिवर्जत्वोक्तेः ॥ इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनीयानामेव । 'मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रायाश्च' इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चित् । महाराष्ट्रकल्पितं तन्निर्मूलम् ॥ अन्यथा गुर्जरादेः कातीयस्य कुतो न निषेधः । अत एव प्रवरमञ्जरीकारः 'दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्ज्यम्' इति ॥ यत्तु गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च–"एकस्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वरस्य च ॥ तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता"इति मातृकुले प्रवरचिन्तनमुक्तम् । तदासुरादिविवाहोढापरमिति दिक् ॥ विस्तरस्तु ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयः ॥

कारण कि, कलियुगमें जिनका निषेध है उनमें माताके गोत्र और सपिंडकी कन्या भी वर्जितोंमें गिनी हैं यह माताके गोत्रका त्याग माध्यंदिनी शाखावालोंके निमित्त ही है, कारण कि, सत्याषाढने यह लिखाहै कि,माध्यंदिनियोंको माताका गोत्र निषिद्ध है यह किसी महाराष्ट्रकी कल्पना की हुई निर्मूल है; अन्यथा गुर्जर आदि और कातियोंका निषेध क्यों न होता ? इसीसे प्रवरमंजरीकारने लिखाहै कि, अत्यन्त (भारी) दोष होनेसे माताका गोत्र त्यागने योग्य है जो किसीने गुर्जर आदि माध्यंदिनियोंके किये आचारसे वरके एक प्रवरकी समानता और वरकी माताका गोत्र होय तो उस कन्याको विवाहमें अंगीकार न करै, कारण कि, वह कन्या बहन लिखीहै इस कथनसे जो माताके गोत्र और प्रवरका विचार लिखाहै वह उस कन्याके विषयमें जानना है, जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाहीगई हो, यह संक्षेपसे कहाहै, विस्तार तो दूसरे ग्रन्थोंमें जानना चाहियें ॥

सगोत्रविवाहे प्रायश्चित्तम् ।

सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे–"इत्थं सगोत्रसंबन्धविवाहविषये स्थिते । यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढ्वोपगच्छति ॥ गुरुतल्पव्रताच्छुद्ध्येद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् । भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्ध्येत्त्रिभिर्गर्भस्तु कश्यपः ॥ २ ॥" एवं सापिंड्येपि–'सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते' इति बृहद्यमोक्तेः ॥ तिथितत्त्वे बौधायनः–'संपिण्डां सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्' ॥

अपने गोत्र आदिकी कन्याके विवाहमें प्रायश्चित्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखाहै कि, इसी प्रकार गोत्रकी कन्याके सम्बन्ध और विवाहके विषयमें जो कोई उस कन्याको विवाह करके गमन करताहै उसको

गुरुशय्याके गमन करनेके व्रत करनेसे शुद्धि होती है और उससे उत्पन्न हुआ गर्भ चाण्डाल होताहै, उस कन्याके संग भोगको छोडकर माताके तुल्य उसकी पालना करै, और अज्ञानसे विवाही हो तो तीन ऐन्दव-व्रतोंके करनेसे उसका गर्भ शुद्ध होता है, इसी प्रकार सपिंड कन्याके विवाहमें जानना चाहिये, कारण कि, बृहद्यमने यह लिखाहै कि, अपने सपिंडकी सन्तान और स्त्री होय तो प्राण त्यागदे, तिथितत्त्वमें बौधायनने यह लिखाहै कि, यदि अज्ञानसे सपिंड और गोत्रकी कन्यासे विवाह होजाय तो माताके तुल्य उसकी पालना करै ॥

कन्याविवाहे कालः ।

कन्याविवाहकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे–"षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्यावर्षद्वयं यतः । सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः ॥" राजमार्तण्डः–"अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मेपि मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासात् ॥ २ ॥" पराशरमाधवीये तु–"जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाब्दात्परं शुभम् । कुमारीवरणं दानं मेखलाबन्धनं तथा" इत्युक्तम् ॥

कन्याके बिवाहका काल ज्योतिर्निबन्धमें लिखाहै कि, छेःवर्षकी कन्याके संगमें विवाह न करै, कारण कि उसको दो संवत्सरतक चन्द्रमा गन्धर्व और अग्नि भोगतेहैं, राजमार्तण्डमें कहाहै कि, अयुग्मवर्षमें बिवाही कन्या दुर्भागिन और युग्ममें विधवा होतीहै, तिससे गर्भसे युक्त युग्म वर्षमें विवाह होनेसे वह कन्या पति-परायण होती है, स्त्रीके जन्ममहीनेसे अयुग्म वर्षोंमें तीन महीनेसे पीछे और युग्मवर्षोंमें तीन महीनेतक विवाहकी शुद्धिको वात्स्य आदि सन्त लिखतेहैं । पराशर माधवीयमें यह लिखाहै कि, जन्म वा गर्भाधानसे पांच वर्षसे उपरान्त कन्याकी सगाई दान और यज्ञोपवीत करना शुभ है ॥

सम्बन्धतत्त्वे यमः–"कन्याद्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥" भारते–"त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम् । दश-वर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत् ॥" तत्रैव–"सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्म-गर्हितः ॥" राजमार्तण्डः–"राहुग्रस्ते तथा शुद्धे पितॄणां प्राणसंशये । अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु ॥" चकारादतिबाला । प्राणसंशय इत्युक्तेः ॥

सम्बन्धतत्त्वमें यमने कहाहै कि, बारहवर्षतक बिना दीहुई कन्याके घरमें रहनेसे उस कन्याके पिताको ब्रह्महत्या लगती है, वह कन्या स्वयं वरले. भारतमें कहा है कि, तीस वर्षका मनुष्य सोलह वर्षकी, और सोलह वर्षका मनुष्य आठ वर्षकी कन्याको अग्निकी साक्षीसे विवाहै, शीघ्रता करनेसे धर्मसे पतित होताहै, इससे पिताको चाहिये, रजोधर्म न होनेसे प्रथम कन्याको देदे भारतमें भी कहाहै कि, हे राजन् सात वर्षसे उपरान्त कन्याका विवाह सब वर्णोंमें उत्तम है अन्यथा हे नृप ! धर्मसे निन्दित है, राजमार्तण्डमें कहाहै कि,

---

१ व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गन्धर्वा रजसाग्निः प्रकीर्तितः तस्माद्व्यञ्जनोपेतामरजामपयोधराम् । अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका तु प्रशस्यते । तुरीयस्ते मनुष्यजः इति श्रुतेः ॥ अर्थात्–गृह्यसंग्रहमें लिखाहै चिह्न प्रगट होनेसे चन्द्रमा, पयोधर होनेसे गंधर्व, रज होनेसे अग्नि कन्याको भोगतेहैं इससे इन देवताओंसे अभुक्तकन्याको दान करै ॥

ग्रहण युद्ध, पितरोंके प्राणोंका संशय होय तो अत्यन्त बडी कन्याके चन्द्रबलसे देदेना चाहिये, विवाहको उत्तम नहीं लिखते, चकारसे प्राणके संशयमें अत्यंत बालिकाका विवाह भी करदे, पर उत्तम नहीं ॥

मनुः–"त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् । द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥" यद्यपि–'विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बुधैः' इति संवर्त्तोक्तेः 'अत ऊर्ध्वं रजस्वला' इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धः ॥ तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये–'त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्' इति पराशरमाधवीये बौधायनोक्तेश्च ॥ मनुः–"स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् । हीनक्रियं निःपुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥ २ ॥" यमः–'तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।' तथा मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम् । तथा वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारो ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयः विस्तरात्तु नोच्यते ॥

मनुने कहाहै, कि, तीस वर्षका मनुष्य बारह वर्षकी और सोलह वर्षका आठ वर्षकी कन्यासे विवाह करे, और शीघ्रता करै तो धर्मसे पतित होताहै यद्यपि आठ वर्षकी कन्याका विवाह पंडितोंने उत्तम लिखाहै इस सम्वर्तके कथनसे और इससे आगे कन्या रजस्वला होजातीहै इत्यादि वाक्योंसे दश वर्षके उपरान्त विवाह करना निषिद्ध है, तथापि दाताके अभावमें बारह और सोलह वर्ष जानने चाहिये, कारण कि, पराशरमाधवीयमें बौधायनने यह लिखाहै कि, ऋतुमती कन्या तीन वर्षतक पिताकी आज्ञाकी बाट देखे. मनुने कहाहै कि, स्त्रीके सम्बन्धमें इन दश कुलोंको छोडदे, कि, क्रियासे हीन, पुरुषोंसे रहित, वेदहीन, जिन पुरुषोंके शरीरपर बहुत रोम हों, अर्श (बवासीर) रोगवाली, क्षयीरोग, मन्दाग्नि गरमी, दाद, कुष्ठरोगवाली उस कन्याको न विवाहै, तथा जिसका नक्षत्र वृक्ष वा नदीका वा पर्वतोंपर नाम वा भयानक नामहो उसे न विवाहै, यमने कहाहै कि, तिससे तबतक कन्याको विवाहले जबतक ऋतुमती न हो इसीप्रकार मूलआदिमें उत्पन्नहुई कन्याओंका फल प्रथम कह आये हैं इसीप्रकार वर्ण वश्य ग्रहोंकी मित्रता आदिसे युक्त विचार ज्योतिषियोंसे जानना चाहिये, विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखते ॥

गुर्वर्कबलम् ।

अथ गुर्वर्कबलं ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–"स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम् । तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठं इति गर्गेण भाषितम् ॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः । विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः ॥ २ ॥" देवलः–"नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा । स्वामिप्रिया वितगपुत्रधवा धनाढ्या वन्ध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमशोऽभिजन्मा" ॥ बृहस्पतिः–"झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥" लल्लः–"द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीये च । प्राप्ते पाणिग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति" ॥

अब बृहस्पति और सूर्यका बल लिखतेहैं ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने यह लिखाहै कि, स्त्रियोंको बृहस्पतिका बल और पुरुषोंको सूर्यका बल, और दोनोंको चन्द्रमाका बल देखना चाहिये और जन्मका तीसरा छठा बृहस्पति पूजासे अच्छा होताहै और चौथा आठवां बारहवां विवाहमें मृत्यु करताहै, देवलने कहाहै कि जन्मसे बृहस्पतिसे बारहवेंतक क्रमसे यह फल होता है कि, संतानका नाश, धनवाली, विधवा, कुशीला,

पुत्रोंसे युक्त, पतिमृत्यु, सुहागिन, पुत्रोंसे हीन, पतिकी प्यारी, पुत्र और पतिसे हीन, धनसे युक्त और वन्ध्या होतीहै, बृहस्पतिने कहाहै कि; मीन, धन, कर्कका बृहस्पति अशुभ भी होय तो विवाह और यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठताको करताहै, लल्लने कहाहै कि, विवाहमें बृहस्पति बारहवां दशवां चौथा जन्मका छठां आठवां तीसरा होय तो वह कन्या विधवा होतीहै ॥

गर्गः-"सर्वत्रापि शुभं दद्याद्द्वादशाब्दात्परं गुरुः। पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात्पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि। अशुभोपि शुभं दद्याच्छुभऋक्षेषु किं पुनः ॥ रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता। कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला"॥८॥

गर्गने कहाहै कि, बारह वर्षकी अवस्थासे आगे बृहस्पति सब स्थानोंका शुभदायीहै, पांचमें और छठे वर्षमें ही शुभ गोचर देखना कहाहै, सातवर्षसे पांच वर्षतक अशुभभी बृहस्पति अपने उच्च और अपनी राशिका होय तो मंगल देताहै, और अच्छी राशिका होय तो फिर क्या कहनाहै, रजस्वला कन्याके गुरु-शुद्धि करनेकी चिन्ता न करै आठवें बृहस्पतिमें भी तिगुना पूजन कर विवाह करले, गौरी कन्याको सूर्य गुरुका बल, रोहिणी कन्याको सूर्यका बल, और कन्याको चन्द्रमाका बल और रजस्वलाको लग्नका बल देखलेना चाहिये, आठ वर्षकी कन्या गौरी नौवर्षकी रोहिणी और दशवर्षकी कन्या और इससे आगे रजस्वला होतीहै ॥

अथ बृहस्पतिशांतिः।

शौनकः-"कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते। ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत्। ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान्। मांसी गुडूच्यपामार्गी विडङ्गी शंखिनी वचा ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशतावरी। बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च ॥ कृत्वाज्यभागपर्यंतं स्वशाखोक्तविधानतः। ग्रहोक्तमण्डलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम्। अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः। अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत्। कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः ॥ प्रतिमाकुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ ९ ॥" इति बृहस्पतिशांतिः ॥

अब बृहस्पतिकी शान्ति लिखतेहैं, शौनकने कहाहै कि, कन्याके विवाह और ब्राह्मणके यज्ञोपवीतमें बृहस्पति श्रेष्ठ न होय तो यह विधि लिखीहै, कि, सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति बनाय पीले वस्त्रसे लपेटे ईशान दिशामें श्वेत घट, धान्यके उपर रखकर दमन, मधुपुष्प, पलाश, सर्षप, मांसी, गुडूची, अपामार्ग विडंग, शंखपुष्पी, वच, सहदेवी, विष्णुक्रान्ता, सर्वौषधी, शतावरि, बला दोनों हलदी इन सबको एकत्र करके आज्यभाग आहुति पर्यन्त अपनी शाखामें लिखी हुई विधिसे नवग्रहोंके मण्डलमें पीले फूल और अक्षतोंसे बृहस्पतिका पूजन करके देवपूजाके उपरान्त घटकी प्रार्थना करे, और ढाककी समिधा घी और घीसहित खीर और जौ चावल तिलमें घी मिलाकर बृहस्पतिके मन्त्रसे एकसौ आठ

आहुति देकर शेष होमकी पूर्ति करे पुत्र और स्त्रीसहित यजमानको अभिषेक करे, कुम्भकी प्रार्थनाके मंत्र ' समुद्रज्येष्ठ ' इस मन्त्रको अभिषेकमें पढै वह बृहस्पतिकी प्रतिमा घट और वस्त्र आचार्यको देने चाहिये, पीछेसे ब्राह्मणोंको जिमावे इस विधिके करनेके बृहस्पति मंगलदायी होताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ इति बृहस्पतिशांतिः ॥

सिंहस्थगुरौ निर्णयः ।

शौनकः-"गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ । नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाले वृद्धेऽथवा गुरौ । पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरद्यधिकमासके । केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहस्थेमरमन्त्रिणि । विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् ॥ क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥" मदनपारिजाते ज्योतिःसागरे-"बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे । बाले जीवे-जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येतिचारगे । वापी-कूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं मकरस्थञ्च गुरुं यत्नेन वर्जयेत्" ॥

अब सिंहस्थगुरुके निर्णय कहते हैं-शौनकने कहाहै कि, गुर्वादित्य व्यतीपात बृहस्पतिका वक्र और अतिचार नष्टचन्द्र और बृहस्पतिका बाल्य और वृद्धत्व इनमें और पौष चैत्र वर्षा शरद् और अधिक मास केतु तारेका निकलना मासान्त सिंहके बृहस्पतिमें विवाह व्रत यात्रा आदि पुर और महल निर्माण क्षौर विद्या और उपविद्याको यत्नसे त्यागदे, मदनपारिजातमें ज्योतिस्सागरका कथनहै कि, शुक्र और बृहस्पति बालक हों वा वृद्धहों सिंहका बृहस्पतिहो वा सूर्य हो वा गुर्वादित्य हो मलमास बृहस्पतिका अतिचारमें पूर्वोक्त वापी कूप विवाह आदि कर्म न करै, सिंह और मकरके बृहस्पतिको यत्नसे त्यागदे ॥

लल्लः-"अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नव चेत् पुनः । लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्म-बहिष्कृतः ॥" सिंहस्थगुरोरपवादमाह पराशरः-"गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ । मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ ॥" वसिष्ठोपि-"विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु ॥ भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा ॥ विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ॥"

लल्लने कहाहै कि, अतिचारमें प्राप्त हुआ बृहस्पति फिर यदि उस राशिपर न आवै तो वह वर्ष लुप्त हुआ जानना वह सब कर्मोंमें छोडने योग्यहै, सिंहके बृहस्पतिका अपवाद पराशरने लिखाहै कि, गोदावरी और भागीरथीके बीचमें सिंहके बृहस्पतिमें विवाह न करै, और मकरके बृहस्पति और सिंहके सूर्यमें सब देशोंमें विवाह त्यागदे, वसिष्ठने कहाहै कि, गौतमीके दक्षिण तटमें विवाह होताहै और स्थानमें नहीं भागीरथीके उत्तर और गौतमीके दक्षिणतटमें सिंहके गुरुमें विवाह और यज्ञोप-वीत करनेका दोष नहींहै ॥

कन्यादातारः ।

कन्यादातृक्रममाह याज्ञवल्क्यः-"पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्या-प्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्" ॥ २ ॥ भ्रातॄणां संस्कृतानामेवाधिकारमाह । स एव याज्ञवल्क्यः-"असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च निजा-दंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम् ॥" अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्रव्य-

दाने स्वांशसमांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतग्रहणं व्यर्थं स्यात् । अतः कर्तृनियमोयम् । तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्युक्तं संबन्धतत्त्वादौ ॥

कन्याके दाताओंका क्रम याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, पिता, पितामह, भाई, कुलका मनुष्य माता इनमें पूर्व २ के अभावमें अगला २ सावधानीमें कन्याका देनेवाला होताहै यदि कन्याका दान न करै तो ऋतु २ में भ्रूणहत्या लगतीहै यदि कोई दाता न होय तो अपने गमन करने योग्य वरको कन्याको स्वयं वरलेना चाहिये, उन्हीं भ्राताओंका कन्यादानमें अधिकारहै जिनका संस्कार होचुकाहो, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, जिन भाइयोंका संस्कार न हुआहो उनका संस्कार प्रथम संस्कृत भाई करैं, और भगिनियोंका भी विवाह अपने अंशमेंसे चतुर्थ अंशको देकर करैं, इस श्लोकमें चकारसे पूर्वसंस्कृत पदकी अनुवृत्तिसे विवाहने योग्य द्रव्य देनेमें या अपने अंशके तुल्य वा चौथाई द्रव्य देनेमें संस्कृतका ग्रहण व्यर्थ हो तो माताओंका कन्यादानमें अधिकारहै भाइयोंका नहीं, यह सम्बन्धतत्त्वआदिमें लिखाहै ॥

कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्र च स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति प्रयोगपारिजाते ॥ वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । न माता । 'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्' इति निषेधात् ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वीचन्दोदयः ॥ माधवीयेपरार्के च नारदः—"पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो मातृवंशजः ॥ ३ ॥"

जहां कन्या स्वयं वरै और माता कन्यादान करै, वहां दोनोंहीको नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये, और वहां प्रधान संकल्प मात्रको करके दूसरे श्राद्ध ब्राह्मणसे करावै, यह प्रयोगपारिजातमें लिखाहै, वर तो संस्कृत भाइयोंके न होनेपर स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करै, वरकी माता न करै, पुत्रोंके विद्यमान होते औरसे स्वधा न करावै इस त्यागसे और यज्ञोपवीतसे पुत्रोंको कर्मका अधिकार होनेसे माताका अधिकार नहीं है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै माधवीय और अपरार्कमें नारदके वाक्य इसप्रकार लिखेहैं कि, पिता स्वयं कन्यादान करै वा पिताकी अनुमतिसे भाई करै, नाना, मामा, सकुल्य वा बांधव करै इन सबके अभावमें सावधान होय तो माता करै यदि वह सावधान न होय तो सजातीय मनुष्यको कन्यादान करना चाहिये पिताके वंशीको सकुल्य और माताके वंशीको बांधव लिखाहै ॥

मदनपारिजाते कात्यायनः—"स्वयमेवौरसीं दद्यात्पित्रभावे स्वबान्धवः । मातामहस्ततोन्यां हि माता वा धर्मजां सुताम् ॥" ततोन्यामौरसीभिन्नां धर्मजां नियोगात् क्षेत्रजां मातामहो माता मातुलो वा दद्यात् । तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु सत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना ॥ अस्यापवादस्तत्रैव—"दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु । माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम् ॥" मनुः—'यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् ॥'

मदनपारिजातमें कात्यायनने कहाहै कि, अपनेसे उत्पन्नहुई कन्याको पिता स्वयं दे और पिता न होय तो अपने बांधव दें, यदि वह भी न होयँ तो नाना विवाहै अथवा धर्मसे उत्पन्न हुई कन्याको माता

दे और औरसीसे भिन्न नियोगधर्मसे उत्पन्न क्षेत्रज कन्याको मातामह वा मामा दे, तिससे औरसी कन्याके दानमें पिताआदिके होते अनुमतिके विना औरका अधिकार नहींहै इसका अपवाद भी वहांही कहाहै यदि वन्धु बहुत दिनसे परदेशमें हों वा पौगंड अवस्थाके हुए होयँ तो औरसी कन्याको स्वयं माता भी दे, मनु कहतेहैं कि, जब कोई देनेवाला न होय तो कन्या राजाके निकट चलीजाय ॥

परकीयकन्यादाने विशेषः ।

परकीयकन्यादाने विशेषो मदनरत्ने स्कान्दे—"आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् । धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेपि युज्यते ॥" अत्र प्रकृतिग्रहणादप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमेव । "स्वतन्त्रो यदि तत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्यादस्वातन्त्र्यस्य हेतुतः ॥" इत्यपरार्के नारदोक्तेः ॥ यदि तु सप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानं जातं तदङ्गवैकल्येपि नावृत्तिर्विवाहस्य । गौडा अप्येवमाहुः । तत्रैव मरीचिः—"गौरीं ददन्नाकपृष्ठे वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम्" ॥

पराई कन्याके दानमें मदनपारिजातमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखा है सुवर्ण देकर दूसरेकी कन्याको अपनी करके धर्मकी विधिसे अपने गोत्रमें भी कन्याका दान होसकता है, यहां प्रकृतिस्थ (सावधान) के ग्रहणसे विना सावधानीमें किया न किया जानना कारण कि, अपरार्कमें नारदने यह कहाहै कि, असावधान मनुष्य स्वतन्त्र होके उस कार्यको करै तो उसको अस्वतन्त्र हेतुसे विना किया जानना यदि सप्तपदी होम आदि प्रधान कार्य होगये होयँ तो किसी अंगकी न्यूनतामें भी विवाह फिर नहीं होसकता, गौडोंने भी इसीप्रकार कहा है वहांही मरीचिने कहाहै कि, गौरीका देनेवाला स्वर्गलोकमें, रोहिणीका दाता वैकुण्ठमें, कन्याका दाता ब्रह्मलोकमें तथा रजस्वलाका दाता रौरव नरकमें गमन करताहै ॥

अथ विवाहे मासनिर्णयः ।

तत्र जन्ममासे विशेषः प्रागुक्तः ॥ ज्योतिःप्रकाशे व्यासः—"माघफाल्गुनवैशाखे यदूढा मार्गशीर्षके । ज्येष्ठे चाषाढमासे च सुभगा वित्तसंयुता ॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा । चैत्राश्वयुक्कार्त्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु ॥ २ ॥" नारदः—"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । कार्त्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे ॥" वसिष्ठः—"पौषेपि कुर्यान्मकरस्थितेर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात् । प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेर्के ॥" आचार्यचूडामणौ ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डौ—"माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च । दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥" आपस्तम्बः—'सर्वऋतवो विवाहस्य । शैशिरौ मासौ परिहार्योत्तमं च नैदाघम्' । अत्र—"माघफाल्गुनाषाढवर्जं नव मासा मुख्यः कालः' इति सुदर्शनभाष्ये-इडविलायां ब्रह्मतीर्थैश्चोक्तम् ॥ बौधायनसूत्रेपि—'सर्वे मासा विवाहस्य शुचितपस्तपस्यवर्जम्' इत्येके । तेन 'पूर्वोत्तरौ शिशिरसंबन्धिनौ मासौ पौषचैत्रौ विहाय' इति ॥

विवाहमें मासको लिखतेहैं, तहां जन्ममहीनेमें विशेष निर्णय पूर्व लिखआयेहैं, ज्योतिःप्रकाशमें व्यासने कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशिर, ज्येष्ठ, आषाढमें विवाहीहुई कन्या सौभाग्यवती

तथा धनवती होतीहै, और श्रावण, पौष, भाद्रपद, चैत्र, आश्विन तथा कार्तिकमें विवाही कन्या शीघ्रही विधवा होजातीहै, नारदने कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख तथा ज्येष्ठ मास ये विवाहमें श्रेष्ठहैं और कार्तिक मार्गशिर मध्यमहैं शेष सम्पूर्ण मास विवाहमें निन्दितहैं, वसिष्ठनेभी कहाहै कि, यदि मकरकी संक्रान्ति पौषमें होय तो पौषमें और मेषकी संक्रान्ति चैत्रमें होजाय तो चैत्रमें भी विवाह करनेके दोष नहीं आषाढ तथा मिथुनकी संक्रांतिमें कियाहुआ विवाह बहुत उत्तम होताहै यह गर्गका कथनहै, आचार्यचूडामणि ज्योतिर्गर्ग और राजमार्तण्डने कहाहै कि, मंगलके सब कर्मोंमें और विवाह और कन्याके सम्बन्धमें चैत्र और पौषको छोडकर दशमासोंकी बडाई करतेहैं, आपस्तम्बने कहाहै कि, विवाहकी सब ऋतु हैं, शिशिरके दो मास पौषको छोडकर श्रेष्ठहैं, और यहां माघ फाल्गुन आषाढको छोडकर नौ महीने मुख्यकालहै, यह सुदर्शनभाष्य और इडबिलामें ब्रह्मविद्यातीर्थोंने लिखाहै, बौधायनसूत्रमें कहाहै कि, विवाहके सब महीनेहैं और कोई यह लिखते हैं कि, आषाढ, माघ, फाल्गुनहैं, इससे शिशिर-सम्बन्धी प्रथम और पिछले पौष और चैत्रको विवाहमें त्यागदे ॥

निर्णयामृतव्याख्यानं मौर्ख्यकृतमित्युपेक्ष्यम् । 'निशि चेत्सर्वेषु द्वादशस्वपि मासेषूद्वहेत्' इति कालादर्शः ॥ ये तु ज्योतिषे माघादिविधयस्ते गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्राबल्याच्छूद्रादिपराः ॥ ज्योतिषे–"वात्स्यो वर्षमनूनमिच्छति तथा रैभ्योऽयनं चोत्तरं श्रीवासन्तमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः ॥ चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणयेत्पौषं च दौर्भाग्यदं ह्याषाढादिचतुष्टयं न निनदं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः॥" चण्डेश्वरः–'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् । ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत् । उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत् ॥ २ ॥" रत्नकोशे–"जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्ठे मासाद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ॥"

यह निर्णयामृतकी व्याख्या मूर्खता युक्तहै इससे छोडने योग्यहै, कालादर्शमें यह कहाहै कि, रात्रिमें लग्न होय तो द्वादश महीनेमें विवाह करै, और जो ज्योतिषमें माघ आदि महीनोंकी विधिहैं वह शूद्रोंके निमित्त, इससे हैं कि, गृह्यसूत्र द्विजोंको मानने योग्यहैं, जोतिषमें कहाहै कि, वात्स्यमुनि सम्पूर्ण वर्षको और रैभ्यमुनि उत्तरायणको और माण्डव्यके शिष्य मुनि वसन्तको त्यागकर सब वर्षको त्यागकर और पराशर चैत्रको त्यागकर सब महीनोंको विवाहमें उत्तम कहतेहैं, दुर्भाग्यके देनेवाले पौष और आषाढ आदि चार महीने किसी भी विद्वान्ने नहीं लिखे, चण्डेश्वरने कहा है कि, मार्गशिर और ज्येष्ठ मासमें क्षौर विवाह और व्रतको और ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्र और ज्येष्ठी कन्याके विवाहको यत्नसे त्यागदे, कृत्तिकाके सूर्यको त्यागकर ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्रका विवाह करलेना चाहिये, और उत्सवके कार्योंमें ज्येष्ठके दश दिन त्यागदे, रत्नकोशमें कहाहै कि, जन्मके नक्षत्र जन्मके महीने जन्मके दिनमें शुभ कर्म छोडदे, और ज्येष्ठ पुत्र और ज्येठी कन्याका शुभ कार्य ज्येष्ठमें न करै ॥

पराशरः–"अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि । व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः" ॥ मिहिरः–"ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्रशस्यते । तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं शुभावहम् । ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥२॥" यत्तु–'सार्वकालमेके विवाहम्' इति, तदासुरादिविषयम् । 'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु' इति गृह्यपरिशिष्टात् ॥ रत्न-

मालायामप्येवम् ॥ तेनासुरादयो माघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपि भवन्ति ॥ मासाः सौराः। 'सौरो मासो विवाहादौ' इत्युक्तेः । 'झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः' इति त्वपवादः ॥

पराशरमें कहाहै कि, यदि कन्या ज्येठी न होय और वर ज्येठा होय अथवा वर ज्येठा न होय और कन्या ज्येठी होय तो ज्येष्ठमास श्रेष्ठहै, मिहिरने कहाहै कि, ज्येठका ज्येठी कन्याके संग ज्येष्ठमें विवाह श्रेष्ठ नहीं है उनमें एक ज्येष्ठ होय तो ज्येष्ठ मास उत्तमहै दो ज्येष्ठ मध्यम लिखेहैं, और एक ज्येष्ठ सुखदाता है विवाहमें तीन ज्येष्ठ न करै इस बातमें सबकी एक सम्मतिहै, जो किसीने यह कहाहै कि, कोई सब कालमें विवाहकी इच्छा करतेहैं, वह आसुरआदि विवाहके विषयमें है, कारण कि, गृह्यपरिशिष्टमें कहाहै कि, धर्मके विवाहोंमें समयकी परीक्षा है अधर्म विवाहोंमें नहीं, रत्नमालामें भी इसीप्रकार कहाहै तिससे आसुर आदि विवाह माघ चैत्रआदि निषिद्ध मासोंमें भी होते हैं, यह, सौर मास हैं, विवाहादिमें सौर मास लेने ऐसा कहाहै । फाल्गुनमें होय तो मीन निंद्य नहीं है, और वैशाखमें होय तो मेष निंद्य नहीं है ऐसा अपवादहै ॥

अथ दश दोषाः । व्यवहारोच्चये-"वेधश्च लत्ता च तथैव पातः खर्जूरवेधो दशयोगचक्रम् । यतिश्च जामित्रमुपग्रहश्च बाणाख्यवज्रे च दशैव दोषाः ॥" एषां लक्षणं ज्योतिषे ज्ञेयम् ॥ अतिचारगे गुरौ तु वसिष्ठः-"अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । विवाहादिषु कार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥" रत्नमालायाम्-"एकपञ्चनवयुग्मषड्दशत्रीणिसप्तचतुरष्टलाभगः । द्वादशाजवृषभादिराशितो घातचन्द्र इति कीर्तितो बुधैः ॥"

अब दश दोषोंको कहते हैं व्यवहारोच्चयमें कहाहै कि, वेध, लत्ता, पात, खर्जूरवेध, (एकार्गल) दश योगचक्र, यति, जामित्र, उपग्रह बाण और वज्र ये दश दोषहैं, इनके लक्षण ज्योतिष ग्रन्थोंमें देखलेने चाहिये, अतिचारके बृहस्पतिमें वसिष्ठने कहाहै कि, अतिचारका बृहस्पति होय तो विवाह आदि कार्योंमें अट्ठाईस २८ दिन छोडदे, रत्नमालामें कहाहै कि, मेषआदि राशिसे पण्डितोंने घात चन्द्र क्रमसे यह कहा है कि, एक १ पांच ५ नौ ९ दो २ छः ६ दश १० तीन ३ सात ७ चार ४ आठ ८ ग्यारह ११ बारह १२ ॥

नारदः-"भूबाणनन्दहस्ताश्च रसदिग्वह्निशैलजाः ॥ वेदा वसुशिवादित्या घातचन्दो यथाक्रमम् ॥ यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् । विवाहे सर्वमांगल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥ घातचन्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २ ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"विवाहचौलव्रतबन्धयज्ञे पट्टाभिषेके च तथैव राज्ञाम् । सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः" ॥ नारदः-"अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाभ्राध्वनयो यदि ॥ दोषाय मङ्गले नूनं न दोषायैव कालजाः"

नारदनेभी कहाहै कि, मेष आदि राशिके क्रमसे यह घातचन्द्र समझना कि, भू १ बाण ५ नन्द ९ हस्त २ रस ६ दिक् १० वह्नि ३ मातृका ७ वेद ४ वसु ८ रुद्र ११ आदित्य १२ यात्रा युद्ध आदि कार्योंमें घातचन्द्रमाको छोडदे अर्थात् घात चन्द्रमामें न करै, और विवाह सब मङ्गल कर्म चूडा आदि तथा व्रतबन्धन (यज्ञोपवीत) इनमें घातचन्द्रमाका विचार नहीं करना, ये पराशरने लिखाहै, ज्योतिर्नि-

बन्धमें भी कहाहै कि, विवाह, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, राज्याभिषेक, सीमन्त, यात्रा तथा जातकर्ममें घात-चन्द्रमाका विचार नहीं करना चाहिये, विजली, नीहार (कौल) वृष्टि, सूर्यके चारोंओरका मण्डल, इन्द्रधनुष, मेघध्वनि ये मंगलमें दूषितहैं ऐसा नारद कहते हैं और समयकी दूषित नहीं हैं ॥

अकालवृष्टिस्वरूपमाह लल्लः–'पौषादिचतुरो मासाः प्रोक्ता वृष्टिरकालजा' इति ॥ शार्ङ्गधरः–"निर्घाते क्षितिचलने ग्रहयुद्धे राहुदर्शने चैव । आपञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति ॥ उल्कापातेन्द्रचापप्रबलघनरजोधूमनिर्घातविद्युद्दृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्यमेवैकरात्रम् । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोभ्रान्तबुद्धौ चौले मौञ्जीनिबन्धे परिणयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव" ॥ २ ॥ ज्योतिःप्रकाशे–" अर्वाक्षोडशनाड्यः संक्रान्तेः पुण्यदाः परतः । उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्यास्ताः" ॥

अकालवृष्टिका स्वरूप लल्लने यह लिखाहै कि, पौष आदि चार महीनोंमें हुई वृष्टिको अकालवृष्टि लिखते हैं, शार्ङ्गधरने कहाहै कि, वज्रपात, भूमिकम्प, ग्रहोंका युद्ध, राहुदर्शन, इनमें पांच दिनतक विवाह न करना चाहिये, कारण कि, इनमें विवाही हुई कन्या मृत्युको प्राप्त होती है, उल्काका पात, इन्द्रधनुष, प्रबल धनकी धूरि, तथा धूमदर्शन वज्रपात, विद्युत्पात, वृष्टि, सूर्यका मण्डल इत्यादि दोषोंमें एक घडी वर्जदे, दुष्ट स्वप्न, दुष्ट हेतु, अशुभ फलका दर्शन, दुष्ट मन तथा चित्त भ्रान्त ये चूडाकर्म, मौंजीबन्धन, विवाह आदिमें निरन्तर त्यागने योग्यहैं, ज्योतिःप्रकाशमें कहाहै कि, संक्रान्तिकी आदिकी सोलह घडी यज्ञोपवीत, व्रत, यात्रा, विवाह आदिमें पुण्यदायक होती हैं और सम्पूर्ण घड़ी वर्जितहैं ॥

गर्गः–"दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तदिनानि तु ॥ भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् । यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ॥ ३ ॥" अस्यापवादोऽद्भुतसागरे–"अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति ॥ उत्पातदोषशमनं तदैव संप्राहुराचार्याः ॥" संबन्धतत्त्वे–'भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति' ॥

गर्गने कहाहै कि, दिशाओंके दाहमें तो एक दिन ग्रहोंके युद्धमें सात दिन, भूकम्प होय तो तीन दिन, उल्काका पात होय तो तीन दिन, धूम दर्शनमें पांचदिन, वज्रपातमें एक दिन, सब कर्मोंमें त्यागाहै राहुकेतुका दर्शन होय वा न होय तो भी सात दिन त्यागदे कारण कि, जबतक केतु उदय हो तबतक अशुभ समय होताहै अद्भुतसागरमें इसका अपवाद यह लिखाहै कि, तीन दिनके बीचमें जब जलमें स्वच्छता होजाय तबही उत्पात दोषकी शान्ति होतीहै यह आचार्यजन कहतेहैं सम्बन्धतत्वमें कहाहै कि, वृद्धिश्राद्धके करनेपर भूकम्प आदिका दोष नहीं होताहै ॥

दुष्टयोगे कुम्भविवाहः ।

अथापरिहार्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते मार्कण्डेयपुराणे–"बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे ॥" अत्र पुनर्दोषाभाव उक्तो विधानखण्डे–"स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते" ॥ सूर्यारुणसंवादे–"विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते ।

विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥ सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः। कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥ ततः कुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये। ततोभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ॥"

अनिवार्य वैधव्य योगमें मार्कण्डेय पुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखतेहैं कि, यदि कन्याका बालवैधव्य योग होय तो कुम्भ, वा वृक्षकी प्रतिमा आदिसे लग्नको करके पीछे कन्याका विवाह करै, यह कोई कहतेहैं, तहां पुनर्भू (दुबारा विवाही) दोषकी शांति विधानखण्डमें यह कहा है कि, सुवर्णका जल पिप्पलकी विष्णुकी प्रतिमा निर्माणकर फिर उसके संग विवाह करनेसे पुनर्भू दोष नहीं लगता, सूर्यारुणसंवादमें कहाहै कि, चन्द्रताराके बलसे युक्त विवाहसे पूर्व कालमें कन्याका घडेके संग विवाह करै, विधिसे एकान्त गृहमें उसके अंगको कुंकुम आदिसे शोभित करके दश तन्तुओंसे वेष्टित करे, फिर उस कुम्भको घरसे निकालकर किसी जलाशयमें उसको भग्न करके पञ्चपल्लवोंसे उसका अभिषेक करै ॥

कुम्भप्रार्थना तत्रैव—"वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय। पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः। ततोलंकारवस्त्राढ्यां वराय प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥ इति कुम्भविवाहः ॥

वहांही कुम्भकी प्रार्थनाके मन्त्र ये लिखेहैं कि, वरुणके अंगका स्वरूप जलोंसे आश्रयवान् तुम इस कन्याके पतिको चिरकालतक जीवित करो तथा चिरकालतक पुत्रके सुखको करो विष्णुरूपी वरको दे दुःखसे इस कन्याकी रक्षा करो, इसप्रकार घटका विवाह कर भूषण . वस्त्र आदिकोंसे युक्त कन्याको वरके निमित्त निवेदन करै, इति कुम्भविवाहः ॥

मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम्—"ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य संपूज्य विविधार्हणैः। तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ॥ निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम्। सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेनमुदीरयेत्। यन्मया प्राश्वि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम्। विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ प्राप्यमानं महाघोरं यशः सौख्यधनापहम्। वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्। सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज। अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रजपेदिति। एवमस्त्विति तस्योक्तिं गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः ॥" अन्येप्यश्वत्थविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः ॥ विस्तरभयान्नोच्यते ॥

मूर्तिका दानभी वहांही लिखा है, श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रयुक्त करके उसकी अनेक प्रकारोंसे पूजा करके विधिसे दक्षिणासहित इसप्रकारकी विष्णुकी मूर्तिदान करै कि, जिसके चार भुजाहों, अतिशुद्ध वर्णवाले सुवर्णसे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार धनसे निर्मित कीहो, सुन्दर शंख, गदा, चक्र, कमल, पीत वस्त्र, कमलके फूलोंकी मालाको धारण कररही हो, और इस मन्त्रको उच्चारण करै, जो मैंने पूर्वजन्ममें विष उपविष तथा शस्त्र आदिके समागममें पतिको माराहै, उससे प्राप्त होनेवाला दुःख और धनके नाश करनेवाले महाघोर अपयशके तथा वैधव्यआदि अत्यन्त दुःखोंके समूहके नाशके निमित्त तथा सुखके प्राप्तिके निमित्त बहुत सौभाग्यकी प्राप्तिके निमित्त इस सुवर्णसे निर्मित हुई महाविष्णुकी प्रतिमाको हे ब्राह्मण! शक्तिके अनुसार देता

हूं, इस दिनसे अब मैं पापोंसे छूटती हूं इस मंत्रको तीन बार जप कर फिर एवमस्तु (इसी प्रकार हो) इस प्रकार ब्राह्मणके प्रत्यभिवादको स्वीकार करके अपने घरमें प्रविष्ट होय मृगलोचनी कन्याका दाता विधिसे वैवाहिक कर्मको करै, और भी पीपल आदिका विवाह, वृक्षसेचन आदि, विधि इस स्थलमें जाननी, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते ॥

अथ प्रतिकूलादिनिर्णयः ।

ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–"कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित् । तदा न मङ्गलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥" ज्योतिर्मेधातिथिः–"वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेप्यथ कन्यकायाः । मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः ॥" मङ्गलं विवाहः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्–"कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य गोत्रिणः । तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥" भृगुः–"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदो यतः ॥" शौनकः–"वर-वध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही । पितृव्यस्त्रीसुतो भ्राता भगिनी चाविवा-हिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदू-चुर्न तद्भवेत् ॥ २ ॥"

अब प्रतिकूलादि निर्णय कहतेहैं । ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहाहै कि, निश्चय करनेपर यदि किसीकी मृत्यु होजाय तो विवाह न करै, करनेसे कन्या विधवा होती है, ज्योतिर्मेधातिथिका कथन है कि, वधू और वरके विवाहका निश्चय किये उपरान्त वधू अथवा वरके घर किसी मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो उस समय बुद्धिमान् विवाह न करै, स्मृतिचन्द्रिकामें कहाहै कि, वाग्दान (सगाई) के निश्चय होनेपर पीछे किसी सगोत्री मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो तब विवाह न करै कारण कि, वह विवाह निश्चय स्त्री वैधव्यकारी होता है भृगुने कहा है कि, वाग्दानके उपरान्त कन्या वा वरके कुलमें मृत्यु होजाय तो उस समय मंगलको न करै, कारण कि, वह कुलका नाशक होता है, शौनकने कहा है कि, वर वा वधूका पिता, मामा, चाचा, सगा भाई, चाची, चाचाका पुत्र, विवाहित भगिनीकी मृत्यु विवाहमें प्रतिकूल समझनी, और कोई औरोंके मरनेको भी प्रतिकूल कहते हैं इससे इसमें विवाह न करना ॥

माण्डव्यः–"वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता विपद्यते । विवाहो नैव कर्तव्यः स्ववंश-स्थितिमिच्छता ॥" संकटे तु मेधातिथिः–"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः। तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥" स्मृतिरत्नावल्याम्–"पितुरब्दमशौचं स्यात्तदर्धं मातुरेव च । मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां तु सपिण्डा-नामाशौचं मासमीरितम् । तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥" ज्योतिः प्रकाशे–"प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दा-नादि चरेत् पुनः ॥" शान्तिं विनायकशान्तिम् । तथा च मेधातिथिः–"संकटे समनु-प्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्" इति ॥ "प्रतिकूले न कर्तव्यो गच्छेद्यावदृतुत्रयम् । प्रतिकूलेपि कर्तव्यमित्याहुर्बहुविप्लवे ॥ प्रति-कूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् ॥" ज्योतिःसारे–"दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा

प्राणसंशये। प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते॥" मेधातिथिः-"पुरुषत्रय-पर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम्। प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने॥ प्रेतकर्माण्य-निर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥ २॥"

माण्डव्यने कहाहै कि, वाग्दानके पीछे माता वा भाईकी मृत्यु होजाय तो अपने वंशके हितकी इच्छावाला विवाह न करै. संकट होय तो मेधातिथिने यह लिखाहै कि, वाग्दानके पीछे जहां दोनों कुलोंमें किसीकी मृत्यु होगई होय तो एक वर्षसे उपरान्त विवाह शुभदायी होता है, स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि, पिताके मरण उपरान्त एक वर्षतक अशौच होता है और माताकी मृत्युमें छः महीने, स्त्रीकी मृत्युमें तीन महीने और भाई और पुत्रकी मृत्युमें डेढ मासतक अशौच होता है और दूसरे सपिंड मनुष्योंका अशौच एक महीनेतक कहाहै। तिससे पीछेमें शांतिको करके फिर लग्न (विवाह) को करै. ज्योतिःप्रकाशमें कहाहै कि, प्रतिकूल (मरण) के होने पर भी एक महीनेसे उपरान्त विवाह करना और गणेश, विनायकशान्ति तथा गोदान करके फिर वाग्दान आदि करना चाहिये, इसीप्रकार मेधातिथिने लिखाहै कि, कोई संकट प्राप्त हो तो याज्ञवल्क्य मुनिने गणेशकी शांति लिखीहै तिसको करके फिर मंगल कार्यको करै, तथा प्रतिकूल होजाय तो तीन ऋतुतक मंगल न करै, यदि बहुतसे उपद्रव उठैं तो प्रतिकूलमें भी करै और सपिंडके प्रतिकूलमें एक महीना त्यागदे. ज्योतिःसारमें कहाहै कि, दुर्भिक्ष राष्ट्रभंग माता पिताके प्राणसंशयमें प्रौढा कन्याके विवाहमें भी अनुकूलता नहीं प्राप्त होती. मेधातिथिने कहाहै कि, तीन पुरुषपर्यन्त सगोत्रियोंको प्रतिकूल होताहै, इसीप्रकार प्रवेश निष्क्रमण तथा मुण्डन मण्डन (मण्डप) में भी प्रतिकूलता समझनी चाहिये। चतुर्थ मनुष्य पर्यन्तके प्रतिकूलमें प्रेतकर्म (पिण्डदान आदि) के किए विना अभ्युदय कर्मको न करना चाहिये इससे पांचवेंका प्रतिकूल दोष चौथेतक जानना पांचवेंमें निवृत्त होजाताहै॥

अथ रजोदोषे निर्णयः।

माधवीये-"प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला। निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहस्रश्रुतिचोदनात्॥" आरम्भात् नान्दीश्राद्धात्। 'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः॥ मेधातिथिः-चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि। भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम्॥ वधूवरान्यतमयोर्जननी चेद्रजस्वला। तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत्॥ २॥" वृद्धमनुः-"विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला॥ तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः॥" गर्गः-"यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला। तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः॥"

अब रजोदर्शनके दोषका निर्णय कहतेहैं। माधवीयमें लिखाहै कि, यदि विवाहके प्रारम्भसे पहिले माता रजस्वला होजाय तो उसकी शांति सहस्र श्रुतिकी प्रेरणासे करनी चाहिये। यह विवाहके आरम्भमें नान्दीमुख श्राद्ध करना इत्यादि वाक्योंसे प्रारम्भ शब्दसे नान्दीमुखका ग्रहण करतेहैं. मेधातिथिने कहाहै कि, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञकर्ममें जिसकी स्त्री रजस्वला होजाय तिसको शुभ नहीं जानना, बहू वा वरकी माता रजस्वला होजाय तो उसकी शुद्धिके होनेपर मंगलकार्य करै यह मनुने लिखाहै. वृद्धमनु कहतेहैं कि, विवाह, यज्ञोपवीत, चूडाकर्ममें यदि माता रजस्वला होजाय तो मंगलकार्यको कल्याणकी इच्छावाले शुद्धि होनेपर करैं. गर्गने कहाहै कि, जिसके विवाह आदि मंगलकार्योंमें यदि माता रजवाली होजाय तो वह कार्य आयुको क्षीण करताहै इससे उसको उस समय न करै॥

नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारिकासु–"सूतिकोदक्ययोः शुद्ध्यै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् । हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् ॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत्" इति सूतकादिसंकटे तु–"कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्त्वा विवाहादि कुर्यात्" इति च प्रागुक्तम् ॥

नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त रजोदर्शनमें कपर्दकारिकाओंके अनुसार यह लिखाहै कि, सूतिका तथा (रजस्वला) की शुद्धिके निमित्त होमपूर्वक गौ दान करै, तिससे प्राप्तहुए कर्मके निमित्त शुद्धि उनकी होतीहै दूसरोंके निमित्त नहीं, यदि अच्छा मुहूर्त न मिले और रजोदर्शन होजाय तो लक्ष्मीका पूजन करके विवाहरूप मंगल करै, मासेभर सोनेकी बनाई हुई लक्ष्मीका पूजन लक्ष्मीसूक्तसे विधिपूर्वक करै, तथा ऋचा २ के प्रति खीरकी आहुतियोंसे होम करके अभिषेक करै, यदि सूतकआदि संकट प्राप्त होयँ तो कूष्माण्डों (ऋचा विशेषों) से घीका होम कर दूध देतीहुई गौको दे, फिर विवाह आदि कर्म करै, यह पूर्व कह आयेहैं ॥

अथैकक्रियानिर्णयः ।

ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः–"एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥" एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात्॥ नारदः–"पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि मुण्डनम् ॥" वराहः–"विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥" मदनरत्ने वसिष्ठः–"न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् । न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ॥ एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम् । षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मण्डनं मुण्डनतोपि कार्यम् ॥ २ ॥"

अब एकके कर्मका निर्णय लिखतेहैं ज्योतिर्निबंधमें वृद्धमनुका कथनहै कि, एक मातासे उत्पन्नहुए पुरुष स्त्रीका एकवर्षमें तुल्य कर्मको न करै, यदि माताका भेद न होय तो: इससे एक मनुष्यके एक दिनमें दो विवाह न होने चाहिये. कारण कि, यहां माताका भेद नहीं । नारदने कहाहै कि, पुत्रके विवाहके उपरान्त तीन ऋतुतक पुत्रीका विवाह तथा व्रत तथा मण्डन (मण्डप) किए उपरान्त मुण्डनको न करै. वाराहने कहाहै कि, एकसे उत्पन्न हुई सन्ततिका छः महीनेके भीतर यदि विवाह होजाय तो उनमें एक कन्या तीनवर्षके भीतर वैधव्यको प्राप्त होतीहै, इसमें कुछ सन्देह नहीं. मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि, पुरुषके विवाह उपरान्त सगोत्री कन्याका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डनको तीन ऋतुतक न करै, यदि वर्षका भेद न होय तो सगे भाईके विवाह कर्ममें भगिनीका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डन छः महीनोंके भीतर न करै, यह मुनियोंका कथनहै ॥

एतदपवादस्तत्रैव–"ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम् । तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥" सारावल्याम्–"फाल्गुनचैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनम् ॥" संहिताप्रदीपे–"ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धम् ॥ अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ ॥" मदनरत्ने वसिष्ठः–"द्विशोभनं त्वेकगृहेपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु ॥

आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेथवाचार्यविभेदतो वा ॥ एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोब्रवीत् ॥ २ ॥"

इसका अपवादभी वहांही यह लिखाहै कि, यदि तीन ऋतुके मध्यमें द्वितीय वर्ष लगजाय तो एक पेटसे पैदा हुएका भी विवाह उत्तम है. सारावलीमें कहा है कि, फाल्गुन चैत्रमासमें सहोदरका विवाह होजाय तो उसके पीछे वर्षके भेदसे विवाह करना चाहिये । तीन ऋतुओंका विलम्ब न जानना. संहिताप्रदीपमें कहाहै कि, पुत्रके विवाह होनेपर छःमासतक पुत्रीका विवाह नहीं करना, कन्याको पूर्व (पहिले) श्वशुरके घर भेजकर फिर अपने घरलावे, बिना भेजे पूर्व अपने घरमें न लावे, मदनरत्नमें वसिष्ठने कहाहै कि, एक घरमें दो शोभन कार्य उत्तम नहीं होते किन्तु एकको करके फिर नौ दिन पीछे शोभन कार्य उत्तमहै, यदि आवश्यक कोई श्रेष्ठ कार्य तथा उत्सव होय तो द्वारपर वा भिन्न २ आचार्योंसे करावे, अर्थात् दोनों कार्य एकसेही न करावे, एक उदरसे उत्पन्न हुये मनुष्योंके तीन अग्निकार्योंको एक साथ न करै, भिन्न उदरसे उत्पन्न हुओंको दोष नहीं यह शातातपने लिखा है ॥

ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः–"कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मुण्डनान्न तु मण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु ॥ लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः ॥ मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलम् ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मडनात्परम् । मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् । अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कात्यायनका कथनहै कि, एक कुलमें मण्डनसे उपरान्त मुंडन तथा प्रवेशसे उपरान्त निर्गम ये तीन ऋतुसे प्रथम इष्ट नहीं । तथा तीन मंगलोंको न करै, और कोई मुनि तो भिन्न वर्षमें लघुकार्यको करलेना कहतेहैं, लघु वा गुरुकार्य हो, जिसका निमित्त प्राप्तहो उस पुत्रके विवाह और प्रवेशको कन्याके विवाहके निर्गम और चूडाकर्मको मुण्डन तथा व्रत और विवाहको मंगल लिखतेहैं । मुण्डनको मण्डन उपरान्त न करै, मौंजीबन्धनको दोनों (मण्डन मुण्डन) से पीछे करै किन्तु इन दोनोंमें वर्षके भेद नहीं लेना किन्तु दिनका भेद लेतेहैं. कारण कि, दिनका भेद नहो अथवा एक मण्डपमें करनेसे नाश होताहै ॥

संकटे तु कर्पर्दिकारिकासु वराहमिहिरश्च–"उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित् । यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥" कश्यपः–"मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेपि वा । पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विभक्तानां न दोषकृत् ॥"

संकटमें तो कपर्दकारिकाओंमें वराहमिहिरने यह लिखाहै कि, पिता पुत्रीका विवाह करके दूसरे पुत्रका फिर कभी भी विवाह न करै, चौथे दिनतक प्रथम विवाहको पूर्ण करके दूसरे विवाहको करले, तो कुछ दोष नहीं । कश्यपने कहाहै कि, मौंजीबन्धन, विवाह, पुत्रीका विवाह यह छः महीनेके भीतर न करै, और जो विभक्तहों उनको दोष नहीं लगता ॥

ज्योतिर्निबन्धे–"विवाहमारभ्य चतुर्थमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् । वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥ तथा–"विवाहमध्ये यदि चेत्क्षयाह-

स्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति । वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्नतु दूषयन्ति ॥" 'स्वधाभिः' इति श्रुतेश्च ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, विवाहसे लेकर चतुर्थी कर्मके मध्यमें श्राद्धका दिन वा अमावस्याका दिन प्राप्त होजाय तो कन्याको शीघ्रही विधवापन प्राप्त होताहै, यदि पति जीवे तो संतति नहीं चलती, तथा विवाहके बीचमें यदि क्षयी (श्राद्धविशेष) का दिन आपडै तो उसमें स्वतन्त्र पितर नहीं आते इससे विवाहके बीतनेपर स्वधाओंसे श्राद्ध करै, स्वधाओंसे उस विवाहको दूषित न करना चाहिये । कारण कि, श्रुतिमें कहा है कि, जो कि स्वधाओंसे मंगलकार्यको दूषित करतेहैं इत्यादि ॥

मासिकविषये कालहेमाद्रौ शाठ्यायने-"प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुर्नान्दीमुखं द्विजः ॥" वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवोशनाः- "वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति" इति ॥ मेधातिथिः-"प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥" स्मृत्यन्तरे-"सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥"

मासिकश्राद्ध विषयमें हेमाद्रिमें शाठ्यायनिका यह कथन है कि, प्रेतश्राद्ध तथा सपिण्डीकी विधिको वह द्विज अपकर्ष (भिन्नकालमें) करके भी करै, जो नान्दीमुख करनेको उद्यत हुआ हो वृद्धिके विना श्राद्धके अपकर्षमें वहांहीं उशनाने यह दोष कथन कियाहै कि, जो कि, वृद्धिश्राद्धसे रहित पितृश्राद्धोंको करता है वह श्राद्धकर्ता पितरों सहित नरकमें पचताहै । मेधातिथिने कहाहै कि, प्रेतकर्मके किये विना आभ्युदयिक कर्म न करै, यह चौथे गोत्रापत्यतक जानना पांचवेंमें तो उत्तम होताहै. स्मृत्यंतरमें भी कहा है कि, सपिण्डी करणसे प्रथम जो अपकर्षसे श्राद्ध किये गये हैं उनको फिर अपकर्ष करके करना । कारण कि, वृद्धिश्राद्धके किए उपरान्त निषेध है ॥

स्मृतिसारावल्याम्-"भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा । एकस्मिन्मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम् ॥" सोदरविषयमेतत् ॥ यमः-"एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन् वासरे पुनः । विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम् ॥" गार्ग्यः-"भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा । न कुर्यान्मङ्गलं किंचिदेकस्मिन्मण्डपेहनि ॥ एकस्मिन्वासरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः । क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥ २ ॥"

स्मृतिसारावलीमें कहा है कि, दो भाई, दो बहन, तथा भाई बहन एक मंडपमें दो मण्डन न करैं, यह वाक्य सहोदरोंके विषयमें हैं, कारण कि, यमने कहाहै कि, एक उदरसे उत्पन्न हुओंका विवाह तथा मुण्डनके पीछे मण्डन ये एकदिन न करने चाहिये. गार्ग्यने कहाहै कि, दो भाई, दो बहन तथा दो भाई बहनका एक मण्डपमें तथा एक दिनमें कोई मङ्गल कार्य न करना और जो कि, एकवारही उत्पन्न हुए हों उनका क्षौर, विवाह, यज्ञोपवीत ये एक दिनमेंही करले ॥

ज्योतिर्विवरणे-"एकोदरयोरेकदिनोद्वहने भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केप्याहुः संकटे शुभम् ॥ ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् । नारीविवाहात्तदहेपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥ २ ॥"

ज्योतिर्विवरणमें कहाहै कि, एक उदरसे उत्पन्न हुए दोका विवाह एकदिनमें होय तो नाश होताहै और कोई तो अन्यनदीके विषे तथा संकटमें उत्तम मानते हैं, पुरुषके विवाह करनेपर स्त्रीका विवाह तीन ऋतुतक अच्छा नहीं होता, स्त्रीके विवाहसे पुरुषका विवाह तो दिनके दिन भी उत्तम होता है यह आर्य कहतेहैं ॥

भिन्नमातृजयोर्निर्णयः ।

भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः—"पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे । एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा ॥ पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी भवेत् ॥ २ ॥" यमयोस्तु विशेषः । भट्टकारिकायाम्—"एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा । कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥" ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । नैवैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥ नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् । नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकजन्ययोः ॥ न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन ॥ २ ॥ " इति ॥

भिन्न मातासे उत्पन्न हुओंका एकदिनमें भी विवाह होताहै, यह मेधातिथि लिखते हैं कि, पृथक् २ माताओंसे उत्पन्न हुओंका विवाह एकदिन तथा एक मण्डप तथा पृथक् २ वेदिकाओंपर करै, और दो बहन जबतक सप्तपदी हो तबतक शिरपर रक्खी हुई फूल पट्टिको (जाल) ओंको न देखैं, यमके जन्म (जो कि एक संग उत्पन्न हुएहों) को तो भट्टकारिकामें यह विशेष लिखाहै कि, एकवर्ष, एकदिन तथा एकमंडपमें ही साथ उत्पन्न हुई बहन तथा भाइयोंका मंगल करै. ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, प्रतिविवाह (अदला बदलीसे) तथा एकके संग दो कन्याओंका तथा एकसे उत्पन्न हुए दो लडकोंको एकसे उत्पन्न हुई दो कन्याओंका विवाह न करै, तथा इसप्रकार, (बदला देकर) विवाह तथा एकवार दो मुण्डन तथा एकसे उत्पन्न हुए दो पुत्रोंको एकसे उत्पन्न हुई दो पुत्री तथा एकके निमित्त दो पुत्री कदाचित् भी नदे ॥

कन्यारजोदर्शने निर्णयः ।

कन्याया रजोदर्शने तु अपरार्के संवर्तः—"माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥" हारीतः—"पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥" देवलात्रिकश्यपाः पूर्वार्धं तदेव ॥ "भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता । यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अश्राद्धेयमपांक्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥"

यदि कन्याका रजोदर्शन होय तो अपरार्कमें सम्वर्तने यह कहाहै कि, माता पिता तथा जेठाभाई ये तीनों रजस्वला कन्याको देखकर नरकमें जातेहैं । हारीतने कहाहै कि, जो क्वांरीकन्या अपने रक्तको देखतीहै, वह वृषलीवत् होतीहै, और उसका पतिभी वृषलीपति कहाताहै । देवल, अत्रि तथा कश्यपने कहाहै कि, जो क्वांरी कन्या अपने रुधिरको देखतीहै उसके पिताको गर्भहत्या होतीहै, और वह वृषली होतीहै, जो ब्राह्मण अज्ञानी होकर उसकन्याको विवाहता है वह श्राद्धकर्मसे रहित वृषलीपति तथा पंक्ति बाह्य होताहै ॥

१ फूलोंका सेरा—और छोटा वस्त्र एक विलस्तका ॥

माधवीये बौधायनः-'त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्' ॥ विष्णुः-'ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥' अत्र वरस्य दोषाभावमाह यमः-"कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्कदाचन । न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥" मनुः-"अलङ्कारं नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरे । पितृदत्तं मातृदत्तं स्तेयी स्याद्यदि संहरेत् ॥" वरं प्रत्याह-"पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् । स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिबोधनात् ॥"

माधवीय ग्रन्थमें बौधायनने लिखाहै कि, रजस्वला कन्या तीन वर्षतक पिताकी आज्ञामें स्थित रहै. विष्णुने कहाहै कि, तीन ऋतुकी उपासना करके कन्या स्वयं पति वरण करै, इसमें पतिको दोषाभाव है, यम कहते हैं कि, कन्या जो बारहवर्षतक दाता (पिता) के घरमें रहतीहै, उसके पिताको गर्भहत्या होतीहै, वह कन्या स्वयं पतिको वरले । वह पतिभी कभी उसकन्याका तिरस्कार न करै, वह कन्या बन्धकी (नीच व्यभिचारिणी) न जाननी यह स्वायंभूमनुने लिखा है । मनुने कहाहै कि, यदि कन्या स्वयंवरको वरण करै तो पिताके दिये हुये भूषण आदिको ग्रहण न करै कारण कि, पिता वा माताके दिये हुए धनको यदि ग्रहण करै तो वह चोरिणी होतीहै । वरके प्रतिभी इसप्रकारका वाक्य है कि, रजस्वला कन्याको विवाह करता हुआ वर उसके पिताको धनदे वह अपने स्वाम्यसे उस उसको उलंघदे ॥

तत्र प्रायश्चित्तनिर्णयः ।

अथ प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन-"कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः । शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्यां रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन्वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्द्विजः ॥ ६ ॥" इति ॥

इसमें प्रायश्चित्त आश्वलायनने लिखाहै कि, रजस्वला कन्याको शुद्ध करके तथा अपनी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करके उसकन्याके साथ विवाह करना चाहिये । पिता उस अपनी कन्याके ऋतुधर्मोंको प्रथमसे लेकर गिने तथा दान पर्यन्त उसरजस्वला कन्याकी पोषणता करै, और विवाहके समय जितने उसकन्याके ऋतुधर्म हुये हों उतनी गौओंका संकल्प करै यदि निर्धन होय तो एक गौ विधिपूर्वक दान करै, और यदि अत्यन्त निर्धन होय तो ब्राह्मणोंको दक्षिणा सहित अन्नदे फिर जिसका ऋतुधर्म व्यतीत होगया हो ऐसी कन्या वरको दे । कन्या रात्रिमें केवल गौका दुग्ध पानकरके तीनदिनतक व्रत करती हुई रहै, रजोदर्शनसे रहित कन्याको रत्नोंके आभूषणदे उस कन्याको विवाहते हुए द्विजपतिको भी कूष्मांडी ऋचा विशेषसे होम करना चाहिये ॥

मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः-"विवाहे वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि । युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥ २ ॥" बौधायनसूत्रम्-"अथ यदि कन्योपसाद्यमाना चोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्तामनुमन्त्रयेत् । पुमांसौ मित्रावरुणौ

पुमांसावश्विना वुभौ। पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियम्'' इति ॥ अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा विवहेत् ॥

मदनपारिजातमें यज्ञपार्श्वने कहाहै कि, विवाहमें यज्ञमें जब होम समय हो तब उसऋतुमती कन्याको देखकर यज्ञकरनेवाला इसप्रकार करै कि, उसकन्याको न्हवाय विधिपूर्वक पूजन करै फिर चौंटलियोंकी आहुति देकर विवाहका होम करै. बौधायनसूत्रमें कहाहै कि, यदि कन्या विवाहके समयमें वा पतिके घरजानेके समयमें रजोवती होजाय तो उसके निमित्त यह मन्त्र पढै कि, मित्र और वरुण दोनों पुरुष हैं, इन्द्र सूर्यभी दोनों पुरुषहैं इससे यह स्त्री पुरुषको धारण करै फिर बारहरात तक स्त्रीको अलंकृतकर पंचगव्य पिलावै फिर शुद्ध करके उसके संग विवाह करले ॥

विवाहभेदाः ।

अत्र गान्धर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया । मनुः—''षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विट्छूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥'' चतुरः—आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान् । तान्—राक्षसवर्ज्यान् । वैश्यशूद्रयोः स एव—'आसुरं वैश्यशूद्रयोः' ॥ हेमाद्रौ पैठीनसिः—'राक्षसो वैश्यस्य पैशाचः शूद्रस्य ।' प्रचेताः—'पैशाचो संस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानां च।' मनुः—'राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः॥ क्षत्रियादेः संकटे पैशाचमाह माधवीये वत्सः—''सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुकन्या पुरुषस्य या। चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता ॥ गान्धर्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकं दानमाह ॥ तत्रैव यमः—''नोदकेन न वा वाचा कन्यायाः पतिरुच्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे ॥''

यहां गान्धर्व आदि आठों विवाह हैं उनकी व्यवस्था बडे २ दूसरे ग्रन्थोंसे जाननी चाहिये. मनुने कहाहै ब्राह्मणको क्रमसे छः विवाह उत्तम हैं, और क्षत्रीको पिछले चार (आसुर गांधर्व राक्षस पैशाच) उत्तम कहेहैं और यही चारों राक्षसको त्यागकर वैश्य और शूद्रकोभी श्रेष्ठ हैं, मनुने कहाहै कि, वैश्य शूद्रको आसुरविवाह उत्तमहै. हेमाद्रिमें पैठीनसिस्मृतिमें कहाहै कि, वैश्यको राक्षस, शूद्रको पैशाच विवाह उत्तम है । प्रचेताने कहाहै कि, जिनका संस्कार नहीं होता ऐसी प्रतिलोम जातिको पैशाच विवाह उत्तमहै मनुने कहाहै कि, क्षत्रियको आसुर वैश्य और शूद्रको पैशाच विवाह निंदितहै, और संकटमें क्षत्री आदिकोंको भी पैशाच विवाह माधवीयमें वात्सऋषिके वाक्योंसे लिखाहै, जो सुन्दर कन्या संपूर्ण उपायोंसे पुरुषको न प्राप्त होसके तो एकान्तमें स्थित हुई उस कन्याको चोरीसे भी विवाह लेना. गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी संकल्पपूर्वक दान माधवीय आदि ग्रन्थोंमें लिखाहै, जल वा वाणीके दानसे कन्याका पति नहीं होसकता किन्तु विवाहके संस्कारसे सप्तपदीपर ही पति होताहै, ऐसा यमका कथनहै ॥

पराशरमाधवीये देवलोपि—''गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः । कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः ॥'' त्रैवर्णोक्तेर्गान्धर्वादौ विप्रवर्जमधिकार उक्तः । तत्रैव परिशिष्टे—''गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसश्च यः । पूर्वं परिश्रयस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते॥ अतो होमादावकृते भार्यात्वाभावाद्वरान्तराय देया ॥ तथाच तत्रैव वसिष्ठबौधायनौ—''बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया तथा कन्या तथैव

सा" इति ॥ (अत्र मन्त्रसंस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य सर्वविवाहेषु साम्याद्बलादपहारे राक्षसपैशाचयोर्विशेषवचनं व्यर्थम् । तेन तयोर्यदि न संस्कृता संस्कृता वेत्यावृत्त्य कन्यानुमत्यभावेन्यस्मै देयेति व्याख्येयम्) ॥

पराशर माधवीयमें देवलने कहाहै कि, गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी तीनोंवर्ण समर्थवान होंय तो विवाहकी विधिको अग्निकी साक्षीसे सम्पादन करैं, इसवाक्यमें तीनवर्णोंके कथनसे गान्धर्व आदि विवाहोंमें ब्राह्मणसे भिन्नकाही अधिकार लिखाहै. वहांही परिशिष्टमें कहाहै कि, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस जो विवाहमें कन्या प्रथम पतिका आश्रयले पीछे हवन करैं, इससे होम आदिके बिना किए वह पतिके आश्रयमात्रसे भार्या नहीं होसकती । इससे दूसरे वरको देदेनी चाहिये, सोई वहांही वसिष्ठ और बौधायनके वाक्यहैं कि, बलसे हरीहुई कन्याका यदि मंत्रोंसे संस्कार न हुआ होय तो दूसरे वरको विधिपूर्वक देदेनी कारण कि, जैसे कन्याहै तैसीही वहहै, (यहांपर) मन्त्रोंसे संस्कारके अभावमें दूसरे वरको कन्याका दान सब विवाहमें तुल्यहै । इससे बलसे हरण करनेमें और राक्षस पैशाचमें यह विशेष वाक्य प्राप्त होजाताहै इससे राक्षस और पैशाच विवाहमें संस्कार कीहुई वा नकीहुई कन्याकी सम्मतिके विना औरको देदेनी यही अर्थ करना ॥

मदनपारिजाते नारदः-"पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां च निष्ठा विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥" स्मृतिचन्द्रिकायामपरार्के चैवम् ॥ आशौचे तु याज्ञवल्क्यः-"दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ॥ आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥" केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं-"दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् । विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमादिकर्मणि" इति ॥ "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्" इति विष्णुवचनाच्च ॥ प्रारम्भस्तेनैवोक्तः-"प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ वरणमिति मधुपर्कपरम् ॥ "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ मधुपर्कात्पूर्वं तु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः रामाण्डारभाष्येप्येवम् ॥

मदनपारिजातमें नारदने कहाहै कि, विवाहके मन्त्रही नियमसे स्त्रीबननेके लक्षणहैं, और उनकी पूर्ति विद्वानोंको विवाहके सातवें पदमें जाननी चाहिये । स्मृतिचन्द्रिका और अपरार्कमें भी इसीप्रकार लिखा है, विवाह कालमें अशौच होजाय तो याज्ञवल्क्यने यह कहाहै कि, दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशका उपद्रव और महाकठिन आपत्तिमें उसीसमय शुद्धि लिखीहै, यह अपेक्षा होय तो ब्रह्मपुराणमें यह कहाहै कि, कन्याके दानमें दाताकी और (वर) की और विवाहके लाजाहोम आदिकर्ममें कन्याकी उसीकालमें शुद्धि होती है, और यह विष्णुने कहाहै कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजन, जपके प्रारम्भ करनेपर सूतक नहीं होता और आरम्भसे प्रथम सूतक होता है प्रारम्भभी विष्णुने यह लिखाहै कि, यज्ञमें वरण व्रत और सत्रका संकल्प विवाह आदिमें नान्दीमुख श्राद्धमें पाक होजाना, इनको प्रारम्भ कहतेहैं, यहां वरणसे मधुपर्क लेना चाहिये । ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, जिस ऋत्विजने यजमानसे मधुपर्क ग्रहण कियाहो, और पीछेसे अशौच होजाय तो वह अशौच नहीं प्राप्त होता और मधुपर्कसे प्रथम तो अशौच लगताहै, यह शुद्धिविवेकमें कहाहै, रामाण्डार भाष्यमें भी इसी प्रकार लिखाहै ॥

नान्दीमुखदिनावधिः।

नान्दीमुखावधिश्च स्मृत्यन्तरे-"एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः॥ त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥" आरम्भाभावेपि लग्नान्तराभावे गद्यविष्णुः-'न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि' इति॥

नांदीमुख श्राद्धकी अवधि दूसरी स्मृतिमें यह कही है कि, यज्ञमें २१ दिन विवाहमें १० दिन मुण्डनमें तीन ३ दिन यज्ञोपवीतमें छः ६ दिन प्रथम नान्दीमुख करना कहा है, प्रारम्भके अभावमें विष्णुने जो यह कहाहै कि, पहिले प्रारम्भ किएहुए देवप्रतिष्ठा और विवाहमें अशौच नहीं लगता॥

अन्तरासूतके निर्णयः।

अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः-"अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम्। गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुध्यति सूतकी॥" संग्रहेपि-"संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम्॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्॥ यदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया॥ २॥" अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते-"विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वन्तरामृतसूतके॥ परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः॥" परैरसगोत्रैः॥ "भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरामृतसूतके। अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे तु शुचयः स्मृताः॥" एतदाशौचात्पूर्वमपृथक्कृतान्नविषयम्॥ तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः। पृथक् कृतेषु तु बृहस्पतिराह-"विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। पूर्वसङ्कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः॥" इति॥

इसमें मदनपारिजात ग्रन्थमें विष्णुने यह प्रायश्चित्त कहाहै कि, प्रारम्भ किये कर्मकी शुद्धिके निमित्त कूष्माण्ड (काशीफल) और घृतसे हवन करै और गोदान करै, और पञ्चगव्यको पान करै, फिर सूतकवाला पवित्र होताहै, संग्रहमें भी कहाहै कि, यदि संकटकी प्राप्तिमें सूतक होजाय तो कूष्माण्डी ऋचाओंसे घृतका हवन करके दूध देती हुई गौका दान करै, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा आदि करनेके समय जो यदि एक सूतक होजाय तो नान्दीमुख श्राद्ध करै, अन्न आदिके स्पर्शमें षट्त्रिंशत्के मतसे यह विशेष लिखा है कि, विवाह उत्सव और यज्ञके मध्यमें यदि मरण और सूतक होजाय तो सूतकवालोंसे अन्य पुरुष, अन्नको दे तो ब्राह्मणोंके भोजन करनेमें दोष नहीं है यदि ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समयही मरण और सूतककी प्राप्ति होजाय तो दूसरेके घरके जलसे भोजनके उपरान्त आचमन करनेसे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है, यह भी तब है जब अशौचसे प्रथम अन्न पृथक् न किया हो, उससमय वहां शेष अन्न त्यागने योग्य हैं, और पृथक् करनेमें तो बृहस्पतिने यह कहाहै कि, विवाह उत्सव यज्ञके मध्यमें यदि मरणसूतक होजाय तो प्रथम संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं॥

धर्मार्थविवाहः।

धर्मार्थं विवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते-"ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यादेकं चोद्वाहयेद्द्विजम्। तेनाप्याप्नोपि तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम्॥" अपरार्के दक्षः-"मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः। यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते॥" मदनरत्ने भविष्ये-"विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम्। यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥"

धर्मार्थ विवाह करनेमें तो महाभारतमें यह फल लिखाहै कि, अपने धनकी शक्ति जानकर जो एकभी ब्राह्मणको विवाह करदे तो शिवजीका भक्त मनुष्य वैकुण्ठको जाता है, अपरार्कमें दक्षने कहाहै कि, माता पितासे हीन बालकका जो संस्कार और विवाह करता है उसका पुण्य प्रमाण नहीं कहा जासकता, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका कथन है कि, विवाह आदि कर्म समयमें उसके सिद्ध होनेके निमित्त जो धर्मिष्ठ धन आदि देताहै उसको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥

कन्यागृहे भोजननिषेधः ।

कन्यागृहे भोजननिषेधोपि तत्रैव–"अप्रजायां तु कन्यायां न भुञ्जीत कदाचन । दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति ॥" अपरार्के आदित्यपुराणे–"विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य कोपं न कारयेत् । अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥ ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वाश्नीयात्कदाचन । अथ भुञ्जीत मोहाच्चेत्पूयाशे नरके वसेत् ॥" तत्रैव कश्यपः–"अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा । शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ॥" यन्त्रनिर्मुक्तं नूतनम् ॥ विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः–"विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले । असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः ॥ एकयानसमारोहमेकपात्रे च भोजनम् । विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् ॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत्॥३॥"

कन्याके घरमें भोजन करनेका निषेधभी वहांही कहाहै कि, जिस कन्याके संतान नहो उसकन्याके घर भोजन कभी न करै, दौहित्रके मुखको देखकर तो किसनिमित्त शोच करै, अपरार्कमें आदित्यपुराणका कथन है कि, जामाता (जमाई) को मैं विष्णु मानताहूं उसको कभी क्रोध न करावे, और जिसकन्याके संतान नहो उस कन्याके घर भोजन न करै, वेदके मंत्रोंसे कन्याका दान करके उसके घर भोजन न करै, जो मोहसे भोजन करताहै उसको पूय नाम नरकमें जाना होताहै वहांही कश्यपने कहाहै कि, विना फटा नवीन वस्त्र ब्रह्माने मंगलके कार्योंमें कार्यके समयतक पवित्र लिखाहै, सदैव नहीं, विवाहके मध्यमें स्त्रीके संग भोजन करनेमें दोष नहीं, यह हेमाद्रिके प्रायश्चित्त खंडमें गालवने लिखाहै कि, विवाहके समय, यात्रामें, मार्गमें, और चौरोंकी व्याकुलतामें ब्राह्मण असहाय (अकेला) होयतो द्विजातिको इस कृत्यमें दोष नहीं यह करै, एक यान (सवारी) में स्थिति एक पात्रमें भोजन करनेमें विवाह मार्ग और यात्रामें ब्राह्मण दोषभागी नहीं होताहै, अन्यथा करै तो दोष लगताहै और चान्द्रायण करनेसे पवित्र होताहै ॥

मिताक्षरायामप्येवम् ॥ रत्नमालायां–"मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः । भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते ॥" अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे–"विपत्तारे गुडं दद्यान्निर्धने तिलकाञ्चनम् । प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यात्रिजन्मसु ॥ चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च । धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदेयम् ॥ २ ॥"

मिताक्षरामें भी इसीप्रकार लिखाहै रत्नमालामें कहा है कि, मूल, अनुराधा, मृगशिर, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, उत्तरा इन नक्षत्रोंमें, मंगल शनिश्चर सूर्य इनसे भिन्नवारोंमें विवाहका विधान किया है, अनिष्ट नक्षत्र आदिमें दान ज्योतिषमें लिखाहै कि, विपत्तारा होय तो गुड, निर्धन होय तो

तिल और सोना, प्रत्यरि होय तो लवण, तिथि विरुद्ध होय तो चावल, करण विरुद्ध होय तो धान्य (गेहूं आदि), वार योग विरुद्ध होय तो सुवर्ण देना चाहिये ॥

विवाहमंडपनिर्णयः ।

विवाहमण्डपमाह वसिष्ठः–"षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् । मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा द्विषट्करम् ॥" दैवज्ञमनोहरः–"चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥" हेमाद्रौ व्यासः–"कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् । तत्संबन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥" यवारकं 'चिक्रसा' इति प्रसिद्धम् ॥ "वैवाहिके तु दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे ॥ चातुर्थिकं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥"

विवाहमें मण्डप वसिष्ठने यह लिखाहै १६ सोलह हाथका मण्डप रचै चार द्वार और वन्दनवारसे शोभित करै उसमें वेदी निर्माण करै, अथवा ८ वा १२ हाथका मण्डप रचै. दैवज्ञमनोहरने कहाहै कि, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा नक्षत्रोंको त्यागकर शेष नक्षत्रोंमें तैल, वेदी, दान, कण्डन, मंडप निर्माण करना उत्तमहै. हेमाद्रिमें व्यासने कहाहै छडना दलना (जौ काण्डवटना) मण्डप मृत्तिकाकी वेदी गृहके चित्राम और विवाह सम्बन्धी अन्यत्र जाना वा आना ये सब विवाहके नक्षत्रमें करै, विवाहके योग्य दिनमें शुभतिथि और शुभ मुहूर्त्तमें शास्त्रोंके अनुसार चतुर्थीकर्म करै ॥

वेदिमाह नारदः–"हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागे तु सद्मनि ॥ समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ एवंविधामारुरुक्षेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ २ ॥" इति ॥ सप्तर्षिमते–"मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्व्यूनहस्तो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता ॥" हस्तो वध्वाः । सोपानं पश्चिमतः उपरिभागे उक्तपरिमाणाद्भिन्नम् ॥

नारदमुनिने वेदी इसप्रकार लिखीहै कि, एक हाथ ऊंची और चारहाथ लम्बी व चौड़ी चारों ओरसे चौकोर सुन्दर चार स्तंभोंसे युक्त गृहके वामभागमें वेदी निर्माण करै जो ऊपरसे तुल्यहो जिसकी चारों दिशाओंमें सीढ़ी हों और जो पूर्व वा उत्तरकी ओरको ढलती हो, जिसमें केलेके स्तम्भ हों, चित्रामके हंस और शुक आदि चर्चित किए हों अग्निस्थापन की हुई उस वेदीपर कन्या और वर बैठें. सप्तर्षिके मतमें यह कहाहै कि, सम्पूर्ण मंगल कर्मोंमें घरके प्रमाण (अनुसार) मंडप निर्माण करै, १६ सोलह हाथका वा दो २ हाथ कम दश हाथ पर्यंत मण्डपको निर्माण करना चाहिये, जिसके मध्यमें चार स्तम्भोंसहित वेदी निर्माण करै, और प्रमाणमें हाथ लडकीका ले, पश्चिमकी ओर सीढी बनावै, वह ऊपरके परिमाणसे भिन्नहैं ॥

अथ मृदाहरणम् ।

ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"कर्तव्यमङ्गलेष्वादौ मंगलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेपि वा ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वज-

तोरणैः ॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृत्सिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः ॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् । अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥"

अब मृत्तिकानयन कहतेहैं। ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, सम्पूर्ण मंगल कार्योंमें प्रथम मंगलके निमित्त जौको बोवे, नौवें सातवें पांचवें तीसरे दिन बीजके नक्षत्र और अच्छेदिन और श्रेष्ठ लग्नके उदयमें चन्दोवा, ध्वजा, वन्दनवारसे वरको अलंकृत करके बाजे और नृत्यसहित पूर्व वा उत्तरदिशामें जाकर रेतली चिकनी मृत्तिकाको लेकर फिर घरपर लौट आवे मिट्टी वा वांसके पात्रमें उसे स्थित करै अनेक बीज जल और फूल उसमें डालै ॥

शौनकः—"आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च ॥ हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलेऽङ्कुरवापनम् ॥" बृहस्पतिः—'आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम्' ॥ तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम् । ज्योतिःप्रकाशे—"चतुर्थो मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा । नवमैकादशौ श्रेष्ठौ नेष्टौ षष्ठतृतीयकौ ॥ विवाहभे स्वोदये वा कन्यावरणमाचरेत् ॥"

शौनकने कहाहै कि, गर्भाधान, पुंसवन आदि गर्भके संस्कार जातकर्म नामकर्मको त्यागकर मंगलसे संपूर्ण कर्मोंमें अंकुर बोवे, बृहस्पतिने कहाहै कि, आवश्यक कार्योंमें उसीकाल अंकुरोंको बोवे, और इस पूर्वोक्त मुहूर्तमेंही सगाई और हलदी लेपन करै, ज्योतिःप्रकाशमें कहाहै कि, चौथा सातवां पांचवां नववां ग्यारहवां मंडप श्रेष्ठ हैं, छठा तीसरा उत्तम नहीं विवाहके नक्षत्रमें वा उसके नक्षत्र उदयमें कन्याका वरण करै ॥

वरस्यापि वरणनिर्णयः ।

वरस्यापि वरणमाह चण्डेश्वरः—"उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च । देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ॥" इति ॥

वरकाभी वरण चण्डेश्वरने यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीत फल फूल अनेक प्रकारोंके वस्त्र वरके वरण (सगाई) में कन्याका भ्राता वा ब्राह्मण वरको दे ॥

वाग्दानोत्तरं वरमरणे ।

वाग्दानोत्तरं वरमरणेऽपरार्कस्मृतिचन्द्रिकायां वसिष्ठः—"अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि । न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥" यत्तु नारदः—"उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना । पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा ॥" इति ॥ यच्च कात्यायनः—"वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव च । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपि वा ॥ ऊढापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा ॥" इति॥ इदं कलौ निषिद्धम्। 'देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते' इत्यादिपुराणे कलौ निषेधात् दत्ताशब्द ऊढापरः 'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्' इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ अत एव सगोत्रासपिंडादिविवाहेपि 'भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव' इत्युक्तम् ॥

---

१ आठ हाथसे लेकर वीसहाथ तक सात, पचीस हाथ, पचास हाथ, सौहाथ, सहस्र हाथके ऐसे ग्यारह मण्डप होतेहैं, चौथा चौदह हाथका, पहले दोनों, और आठवां न विहितहैं न निषिद्ध हैं ॥

वाग्दानके उपरान्त वर मरजाय तो अपरार्कस्मृतिचन्द्रिकामें वसिष्ठने यह कहाहै कि, जल वा वाणीसे वाग्दान करनेपर वर मरजाय तो वह कन्या मंत्रोंसे नहीं विवाहीगई, इससे यह पिताकी कुमारीही है, जो नारदने कहाहै कि, विवाही हुई कन्याके संग मैथुन (पतिका संग) न हुआ होय तो वह फिर संस्कारके योग्यहै, कारण कि, जैसी वह कन्या वैसेही वहहै, और जो कात्यायनने यह कहाहै कि, यदि वर भिन्न जातिका हो पतित हो नपुंसक हो कुकर्मी वा दीर्घरोगी हो अपने गोत्रका हो शूद्र होय तो विवाही हुई कन्याभी वस्त्र और अन्नसहित अन्यको देदनी चाहिये, परन्तु यह बात कलियुगमें वर्जित है, क्योंकि आदित्यपुराणमें यह निषेध है कि, देवरसे सुतकी उत्पत्ति और दीहुई कन्याका दान कलियुगमें निषिद्ध है यहां दत्ताशब्दसे विवाही कन्याका ग्रहणहै कारण कि, हेमाद्रिमें विवाही हुई कन्याके पुनर्विवाहका निषेध कियाहै इसीसे अपने गोत्रकी वा सपिंडकी कन्याके संग विवाह होजायतो भोगसे उसे त्यागकर माताके तुल्य उसकी पालना करै, यह लिखाहै, और कहींभी पुनर्विवाह नहीं लिखा ॥

देशान्तरगमने ।

देशान्तरगमने तु कात्यायनः–"वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा । ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम् ।" अपरार्के नारदोपि–"प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् । त्रीनृतून् समतिक्रम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ॥"

देशान्तर गमनमें कात्यायनने कहाहै कि, जो वर कन्याको वरकर पीछे देशान्तरमें चलाजाय वा नष्ट होजाय तो तीनऋतु (छः मास) ओंके बीतनेपर कन्या और वरको वरले, अपरार्कमें नारदनेभी कहाहै कि, जो वर कन्याका प्रतिग्रह लेकर देशान्तरमें चला जाय तो तीन ऋतुओंके अनन्तर कन्या और वरको वरले (यहवाग्दानमें जानना) ॥

शुल्कदाने तु मनुवसिष्ठौ–"कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥" चन्द्रिकायां कात्यायनः–"प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः ॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम् ॥ पश्चाद्वरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः । अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत् ॥ ३ ॥"

शुल्क (मोल) के दानमें मनु और वसिष्ठने यह लिखाहै कि, जिस कन्याका शुल्क देदियाहो वहां यदि शुल्क देनेवाला मृतक होजाय और यदि कन्या स्वीकार करै तो वह कन्या उसके भाईको देदेनी चाहिये, चन्द्रिकामें कात्यायनने कहाहै कि, जो वर कन्याको शुल्क वा स्त्रीधन देकर चलाजाय तो वह कन्या एकवर्षतक रखनी, फिर विधिसे दूसरेको दे देनी, जो कन्या अनेकोंको वाणीसे दीहो, और विवाह न किया होय तो जो सबमें सबसे प्रथम आवे और जो सबसे छोटा हो वह उसीको प्राप्त होतीहै, और पिछले वरने जो शुल्क दियाहो उस शुल्कको वह कन्या दे दे, और विवाहके होनेपर पीछे भी पहिला वर अपने दिये शुल्कका ग्रहण करले ॥

"मनुने कहाहै कि, यह हमने पूर्वजन्मोंमें भी नहीं सुना कि, शुल्कके नामसे मोल लेकर और छिपकर कन्याको बेंचना, औरको दिखाकर जो दूसरी कन्या वरको दीजातीहै उन दोनों कन्याओंसे एक शुल्कसे वर विवाहले यह मनुने लिखाहै कि, बुद्धिमानको चाहिये किसीको कन्या देकर फिर औरको न दे जो देताहै उसको पुरुषके निमित्त झूँठ बोलनेका पाप लगता है, और यह भी लिखाहै कि, पशुके निमित्त झूँठ बोलनेमें पांच और मनुष्यके निमित्त असत्य बोलनमें सहस्र हत्याको दोष होताहै, यह न और आचा-

योंने किया न साधुजन करते हैं कि, औरको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके औरको दे और राजा और पंडितका वाक्य और कन्याका दान ये तीनों एकवारही होतेहैं भारतमें भी इसीप्रकार लिखाहै" ॥

याज्ञवल्क्यः–"सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् । दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥" पूर्वस्य दोषसत्त्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः ॥ संबन्धतत्त्वे वसिष्ठः–कुलशीलविहीनस्य पश्चाद्धि पतितस्य च । अत्तस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम् ॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च ॥ मनुः–"षण्ढान्धबधिरादीनां विवाहोस्ति यथोचितम् । विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा ॥ पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च । विवाहाधानयज्ञादौ परिवेदो न दूषणम् ॥ २ ॥" अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते इति दिक् ॥

याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, एकवारही कन्यादान होताहै उसको जो हटावै वह चोरके दण्डयोग्य होताहै यदि प्रथम वरसे दूसरा वर उत्तम मिलजाय तो दीहुई कन्याको भी हरले. इसमें विज्ञानेश्वर कहते हैं कि, प्रथम वरमें कोई दोष हो तब यह है. सम्बन्धतत्वग्रन्थमें वसिष्ठने कहा है कि, कुल और शीलसे हीनको और सगाईके उपरान्त पतितको मिरगीवाले और विधर्मीको और रोगी और वेषधारि (योगी आदि) योंको और सगोत्रीको वार्णासे दीहुई कन्याको हरलेना चाहिये. मनुने कहाहै कि, नपुंसक, अन्धे बहिरे, आदिका यह उचित विवाह है कि, उनके विवाह असंभवमें उनके छोटे भ्राताको कन्या विवाहदे, चाचाका पुत्रहो, वा सौतका पुत्रहो, वा दूसरी स्त्रीका पुत्र होय तो भी विवाह अग्न्याधान, यज्ञ आदिमें परिवेदन (बड़े भाईके विवाह होनेके पूर्व छोटेसे विवाह करना) करनेका दोष नहीं लगता, और जो कुछ यहां कहनाहै उसको विस्तारके भयसे नहीं कहते ॥

अत्र नान्दीश्राद्धे विशेषं तदधिकारविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः। इदं चाद्यविवाहे पिता कुर्याद्वितीयादौ वर एव । "नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः। अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्" इति स्मृतेः ॥ त्रिकाण्डमण्डनोपि–"पित्रोस्तु जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा । पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं नोक्तं तस्यः मनीषिभिः ॥" रेणुकाकारिकायाम्–"उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता । देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्रगत्वा भवेदिदम् ॥"

यह नान्दीमुख श्राद्धका विशेष और उसके अधिकारियोंकी विशेषता आगे लिखैंगे, यह नान्दीमुख श्राद्ध पहिले विवाहमें पिता करै, और दूसरे आदि विवाहोंमें वर स्वयं करै, कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, प्रथम विवाहमें पिता नान्दीमुख श्राद्ध करै, और उससे आगेके विवाहोंमें वर स्वयं करै, त्रिकाण्डमण्डनमेंभी कहा है कि, पिता माताके जीते हुए फिर विवाह होय तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध करना विद्वानोंने नहीं लिखा. रेणुकाकारिकामें कहा है कि, शास्त्रमें कहे समयमें विवाहका अंग नान्दीमुख श्राद्ध पिताको स्वयं करना चाहिये, विदेशमें विवाह होय तो वहां जाकरही नान्दीमुख श्राद्ध करै ॥

लग्नघटीस्थापनम् ।

लग्नघटीस्थापनमाह नारदः–"षडङ्गुलमितोत्सेधं द्वादशाङ्गुलमायतम् । कुर्यात्पातालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः ॥ ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाथवा शुभे । मण्डलार्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥" तत्र मन्त्रः–"मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । भव भावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥" इति ॥

नारदमुनिने लग्नघटीका स्थापन ऐसा लिखाहै कि, छः अंगुल ऊंचा और बारह अंगुल चौंडा दशपल तांबेका पात्र पातालयंत्रके समान निर्माण करै, तांबेके पात्रको वा मृत्तिकाके पात्रको जलसे पूर्ण करदे जब सूर्यका मंडल अर्ध उदय हो तब उस पात्रको जलमें डालकर इस मन्त्रको पाठ करै कि, तू यन्त्रोंमें मुख्य है ब्रह्माने तुझको प्रथम रचाहै और वर कन्याके शुभाशुभके निमित्त लग्नसमयके साधनका तुमही कारण हो ॥

मधुपर्कः।

वरस्य मधुपर्कमाह याज्ञवल्क्यः-"प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥" अत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे-"वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचोदितः। मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेपि दातरि ॥" अत्र वरदातृशब्दो ऋत्विगाद्युपलक्षणम् । तदाहुः-'अर्च्यशाखया मधुपर्कः' इति। 'अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कः' इति याज्ञिकाः। जयन्तस्तु 'वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्कः' इत्याह। तत्तु नाद्रियन्ते वृद्धाः। अत्र 'पञ्चाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः' इत्यादिगृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः ॥

याज्ञवल्क्यने वरको मधुपर्क लिखाहै कि, अपने घरपर आये हुए ये छः मनुष्य प्रतिवर्ष मधुपर्कसे पूजन करनेयोग्यहैं, स्नातक (ब्रह्मचारी) आचार्य, राजा, मित्र, वर और यज्ञके ऋत्विज, इसमें विशेष गृह्यपरिशिष्टमें यह कहा है कि, वरकी जो शाखाहो उसीकी शाखासे कर्म और मधुपर्क करने चाहिये, यह वरदाता शब्द ऋत्विगादिका उपलक्षण है सोई कहा है कि, अर्च्यकी जो शाखा हो उसीका मधुपर्क होताहै यह याज्ञिक कहते हैं जयंततो यह कहते हैं कि, वरणके तुल्य यजमानकी शाखासेही मधुपर्क होताहै परन्तु वृद्ध इसका आदर नहीं करते, यहां पचास कुशाओंका ब्रह्मा उससे आधा विष्टर लिखाहै इत्यादि विष्टर आदिका लक्षण और मधुपर्क आदिकी विधि अपने २ गृह्यसूत्रमें जाननी चाहिये ॥

कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृत्यर्थसारे-"नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम्। नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥" नान्दीमुखे इति बहूचाद्यतिरिक्तविषयम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोम्याम्नानात् ॥ व्यासः-"भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा ॥ उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥" भुक्त्वेति मधुपर्के वैधभोजनपरम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे-"कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते। प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः ॥" मदनरत्ने ऋष्यश्रृङ्गः-"वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम्। नाम संकीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत्। मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत्। गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय। भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च स्वशक्तितः ॥ महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि। ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ॥ यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च ॥ ६ ॥" एतत्कन्यादानं त्रिः कार्यमिति शौनकः ॥

स्मृत्यर्थसारमें यह लिखाहै कि, कन्याके दानमें प्रपितामहका नाम प्रथम उच्चारण करै, नान्दीमुख विवाहमें प्रपितामह आदिका नाम लेना चाहिये और दूसरे कर्मोंमें पिता आदिका नाम लेना यहां नान्दीमुखका कथन बहूचोंसे पृथकोंके निमित्त है, कारण कि, बहूचोंके गृह्यपरिशिष्टमें पिताआदि अनुलोम वर्णन कियेहैं, व्यासने कहा है कि, कन्याके संग विवाह और गायत्रीका उपदेश ये दोनों भोजनके उपरान्त करै और पूजित वरको त्रैत करके कन्यादान करै, यहां भोजन शास्त्रोक्त मधुपर्कको लेना चाहिये, गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, कन्याके विवाहने वालोंका यह धर्म लिखाहै कि, पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे मधुपर्कसे पूजे हुए उस वरको इस कन्याके निमित्त, दे फिर जलके पात्रको ग्रहणकर इसमन्त्रसे कन्यादान करै कि, हे ब्राह्मण यथाशक्तिसे भूषित कीहुई इस गौरी कन्याको इस गोत्र और इस नामवाले तुमको देताहूं दीहुई इस कन्याका तुम आश्रयहो, फिर अपनी शक्तिसे पृथ्वी, गौ, दासी, वस्त्र, भैंस, घोडे, सुवर्णमणिको देना चाहिये, फिर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार हवन आदि कर्म करै, और कुलरीतिके अनुसार मंगल और कौतुकमंगलभी करै यह कन्यादान तीनवार उच्चारण करके करना चाहिये, यह शौनकका कथनहै ॥

गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः—"अर्धरात्रे व्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि । गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः" इति ॥ औपासनहोमे विशेषमाह शौनकः—"यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति । उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम् ॥" यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः । तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥

विवाहाग्निके गृहप्रवेशके हवनमें आश्वलायनने यह विशेष लिखाहै कि, विवाहके हवनमें अर्द्धरात्रि बीतनेपर तो परले दिन प्रातः कालके समय गृहप्रवेश हवन होताहै, यह यज्ञके ज्ञाता कहतेहैं, उपासनाके हवनमें शौनकने यह विशेष लिखाहै कि, जो विवाहकी अग्नि रात्रिमें उत्पन्न हुई होय तो अगले दिन सन्ध्यासमय उस अग्निकी पूजा करै, और सुदर्शनभाष्यमें यह लिखाहै कि, यदि रात्रिकी नौ घडीके बीचमें अग्नि उत्पन्न होय तो उसी समयमें होम करै, और नौ घडीके उपरान्त उत्पन्न हुई होय तो दूसरे दिन सायंकालमें हवन करै ॥

अथ देवकोत्थापनम् ।

"समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ ॥" निर्णयदीपे गार्ग्यः—"नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् । दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च । ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम् ॥ उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च । नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥ ३ ॥" बृहस्पतिः—"तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ॥ नगरग्रामदाहे च स्पृष्टा स्पर्ष्टा न दुष्यति ॥" योगियाज्ञवल्क्यः—"न स्नायादुत्सवेऽतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च । अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम्" ॥ ज्योतिषे—"स्नानं

---

१ किन्हीका कथन है यदि कन्यादान आधीरातसे पीछे होतो पूर्वदिनमें दाता भोजन करले कारण कि, वह दान परदिनमें है ॥

सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् । अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥"

अब देवताओंका उत्थापन (विसर्जन) लिखतेहैं कि, विद्वान् मनुष्य समदिनमें कुलदेवताओंका विसर्जन करै, छठे दिन और पांचवें सातवेंको छोडकर विषम दिन श्रेष्ठ नहीं है. निर्णयदीपमें गार्ग्यने कहाहै कि, नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त जबतक मातृ (लदेवी) ओंकी बिदा न हो तबतक अमावास्या और क्षयीका श्राद्ध, शीतल जलसे स्नान, अपसव्य होकर पितरोंकी स्वधा, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ (बलि, वैश्वदेव) नदी और सीमाको लंघन, उपवास, व्रत, श्राद्धभोजनको सम्पूर्ण सपिंड मंडपके विसर्जनतक न करैं, बृहस्पतिने कहाहै कि तीर्थ, विवाह, यात्रा, युद्ध, देशउपद्रव, नगर और संग्राम, दाह, इनमें स्पर्शसे स्पर्शकको दोष नहीं लगता. योगियाज्ञवल्क्यने कहाहै कि, उत्सवके बीतनेपर विना मंगल (मंडप आदि) की निवृत्ति और विना इष्टदेवके पूजन बन्धुओं सहित स्नान न करना चाहिये. ज्योतिषमें लिखाहै कि, मंगलके कार्यसे एक वर्षतक ये कार्य न करै कि, सचैलस्नान जो तिल मिलके हो वह कर्म प्रेतके संग श्मशानगमन कलशका दान अपूर्वतीर्थ और देवताका दर्शन ॥

जीर्णभाण्डादीनां त्याज्याभावादि ।

"मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेन च । जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा॥ ऊर्ध्वं विवाहात् पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात् । आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि । माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम्" ॥

विवाहआदि और व्रतके प्रारम्भमें छः महीनेतक पुराने बरतन और घरका लीपना बुहारना न छोडे पुत्रके विवाह और यज्ञोपवीतके उपरान्त एकवर्षतक अथवा छः महीनेतक अपना मुण्डन न करावे, उबटना, सूतक, विवाह, पुत्रजन्म मंगलके सम्पूर्णकर्ममें गोपीचन्दन न लगावे ॥

विवाहप्रथमवर्षवर्ज्या मासाः ।

ज्योतिर्निबन्धे-"उद्वाहात् प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥ पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥ निबन्धे-"विवाहात् प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके । न सा भर्तुर्गृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा ॥" हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" तथा अर्धं पूर्ववत् । "सपिण्डा नैव कुर्वीरन्नद्भिः स्नानमृतुत्रये । तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञे महालये ॥ कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा" ॥

ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, विवाहसे प्रथम आषाढमें यदि कन्या पतिके घर जाय तो अपनी सास और क्षयमासमें अपने शरीरको नष्ट करतीहै, ज्येष्ठमें ज्येठेको, पौषमें श्वशुरको, मलमासमें पतिको और पहिले चैत्रमें अपने पिताके घर टिके तो अपने पिताको नष्ट करतीहै पूर्वोक्त महीने न हों तो किसीको कुछ दोष नहींहै. निबन्धमें लिखाहै कि, विवाहसे प्रथम और पौष आषाढ और अधिकमासमें कन्या पतिके घर और चैत्रमें पिताके घर न रहै. हेमाद्रिमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन इनमें वर्ष छः महीने वा तीन महीनेतक पिंडदान मृत्तिकासे स्नान तिलोंसे तर्पण न करै ॥

अथ वधूप्रवेशः ।

जयतुङ्गे–"मार्गशीर्षे तथा माघे माधवे ज्येष्ठसंज्ञके । सुप्रशस्ते भवेद्वेश्मप्रवेशो नवयोषिताम् ॥" नारदः–"आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने ॥" संग्रहे–"विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात् । ऊर्ध्वं ततोऽब्दे युजिपञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ॥" नारदः–"समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत्" ॥

अत्र वधूप्रवेश कहतेहैं । जयतुंग कहतेहैं कि, मार्गशिर, माघ, वैशाख, ज्येष्ठमें और अच्छे श्रेष्ठ दिनमें नववधूस्त्रियोंका घरमें प्रवेश होताहै. नारद कहते हैं कि, विवाहके दिनसे छठे वा आठवें दिन दशमें वा समदिनमें वधूप्रवेश होना चाहिये तो सम्पदा मिलतीहै. संग्रहमें लिखाहै कि, विवाहसे लेकर सोलह दिनके मध्यमें युग्म तिथिमें वधूप्रवेश करना, इसके उपरान्त पांचवर्षतक विषम वर्षमें करै, उससे परे नियम नहींहै, नारदने कहाहै कि, समवर्ष वा सम महीनेमें यदि नारी पतिके घर जाय तो पतिकी अवस्था हरतीहै, और स्वयं मृत्युको प्राप्त होतीहै ॥

तत्र फलानि ।

प्रयोगरत्ने तु–"वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेऽथ वाऽह्नि । द्वितीयके वाऽथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात्" इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ वृद्धवसिष्ठोपि–"षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः । पञ्चांगसंशुद्धदिनं विनापि विधावसद्गोचरगेपि कार्यः ॥" लल्लः–"स्वभुवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे । नववध्वा गृहगमनं प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥" माण्डव्यः–"नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥

प्रयोगरत्नमें लिखाहै कि, प्रथम तीसरे पांचवें दिन वधूप्रवेश मंगलकारी है, दूसरे चौथे छठे दिन वियोग रोग और दुःखदायी होताहै, इसमें प्रमाण नहीं मिलता, वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, विवाहसे छठे आठवें दशवें दिन पंचांगसे शुद्ध दिनके विना और निषिद्ध चन्द्रमामें वधूप्रवेश करनेमें दोष नहींहै. लल्लने कहाहै कि, अपना भवन और अपने पुरका प्रवेश देशोंके उपद्रव विवाह और नव्य वधूका गृहप्रवेश इनमें सन्मुख शुक्रका विचार नहीं है, माण्डव्य कहतेहैं नित्यगमन जीर्णगृह अन्नप्राशनपर्यन्त सातकर्म और वधूप्रवेशमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका विचार न करै ॥

ज्योतिःप्रकाशे–"वामे शुक्रे नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते ॥ नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥ पूर्वतोभ्युदिते शुक्रे प्रयायाद्दक्षिणापरे । पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ ॥ ३ ॥" व्यवहारतत्त्वे–"पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु । पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः ॥" गर्गः–"व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः ॥" तथा–'अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत्' इति ॥

ज्योतिः प्रकाशमें कहाहै कि, नई विवाही वधूके शुक्र वामभाग होय तो सुख, दक्षिणमें होय तो हानि, पीठ पीछे होय तौ धनधान्य, सन्मुख होय तो सबका नाश करताहै, सन्मुख शुक्रमें तो नव्य वधूको विधवायोग लिखाहै, वही बुधमें जानना चाहिये, परन्तु यह केवल द्विरागमनमें है, यदि शुक्रका उदय

पूर्वमें होय तो दक्षिण और पश्चिम दिशामें चला जाना पश्चिम दिशामें होय तो पूर्व और उत्तर दिशामें गमन करना. व्यवहारतत्वमें कहाहै रेवती हस्त श्रवणसे दो और हस्तसे तीन मूल मघा और तीनों उत्तरा पुष्य अनुराधा रिक्तासे भिन्न तिथि रवि और मंगलसे भिन्न वारमें वधूप्रवेश उत्तम है, गर्गने कहाहै कि, व्यतीपात संक्रांति ग्रहण वैधृति इनमें श्राद्धके विना शुभ कर्मको उत्तम मुहूर्तमें भी मनुष्य न करै इसीप्रकार अमावस्या संक्राति और भद्रा आदिमें उत्तम मुहूर्तमें भी शुभकर्म न करै ॥

द्विरागमनम् ।

ऋक्षोच्चये–"माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥" बादरायणः–"नीहारांशुदिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनीशुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ । कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नववधूवेश्मप्रवेशः शुभः" ॥

अब द्विरागमनको कहतेहैं । ऋक्षोच्चयमें कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाखके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें बृहस्पति और सूर्यकी शुद्धिमें पत्नीका द्विरागमन उत्तम है, बादरायण कहतेहैं कि, चन्द्रवार उत्तरा पुनर्वसु पुष्य रोहिणी अनुराधा अश्विनी ज्येष्ठा श्रवण स्वाति चित्रा श्रेष्ठ तिथि कुम्भ मेष वृश्चिकका सूर्य और लग्नका उदय शुक्र बृहस्पति बुध सोमवारमें नवीन वधूका गृहप्रवेश उत्तमहै ॥

अथ पुनर्विवाहः ।

श्रीधरीये–"पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दंपत्योः शुभवृद्धिदम् । लग्नेंदुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारादिसंभवे ॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टरोगादिसंभवे । विवाहे चापि दंपत्योराशौचादिसमुद्भवे ॥ तस्य दोषस्य शांत्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते ॥ २ ॥" याज्ञवल्क्यः–"सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा । स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥" मनुः–"वन्ध्याष्टमे धिवेत्तव्या दशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥" संग्रहे तु–"अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥"

अब पुनर्विवाहको लिखतेहैं । श्रीधरीयमें कहाहै कि, अब पुरुषके शुभ और वृद्धिके देनेवाले पुनर्विवाहको लिखताहूं । लग्न और चन्द्रमा और लग्नके और ग्रह वा तारा आदिका दोष वा दूसरे अशुभ समय होय तौ वा दुष्ट प्रथम विवाहमें होय तो वा प्रथम विवाहके समय स्त्रीपुरुषको आशौच आदि होय तो इन दोषोंकी शांतिके निमित्त द्वितीयविवाह इष्टहै. याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, मद्य पीनेवाली, रोगिणी, धूर्ता, वंध्या, धनकी नाशक, कठोर वाक्य बोलनेवाली, जिसके कन्याहीं होतीहों, जो पतिके संग वैर करतीहो, ऐसी स्त्रीके होनेपर पति दूसरा विवाह करसकताहै, मनु कहतेहैं कि, वन्ध्या स्त्री होय तो आठवें वर्ष, जिसके बालक होकर मरजाते होंय तो दशवें वर्ष, कन्याही होती होंय तो ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह करले, कठोर वाक्यवाली होयतो उसीसमय विवाह करले. संग्रहमें लिखाहै कि, प्रजाहीन स्त्रीको दशवें वर्ष, जिसके कन्याही संतान हों उसे बारहवें वर्ष, जिसकी संतान मृतक होजातीहो उसे पंद्रहवें वर्ष और कठोर वाक्यवालीको उसीसमय शय्यासे त्याग देना चाहिये ॥

याज्ञवल्क्यः–"एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत् । आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् । त्यजन् दाप्यस्तृतीयां-

शमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥ २ ॥" मनुः–"अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ" इति ॥ हेमाद्रौ कात्यायनः– "अग्निशिष्टादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वं चेज्ज्येष्ठया गर्हिता न चेत्" इति ॥ याज्ञवल्क्यः--"सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥"

याज्ञवल्क्य कहते हैं जो मनुष्य एक स्त्रीको छोड करके विषयके निमित्त दूसरी स्त्रीके साथ विवाहकी इच्छा करता है वह समर्थ होय तो प्रथम स्त्रीको धनसे प्रसन्न करके दूसरीको विवाह ले. याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, जो आज्ञाकारिणी, चतुर, पुत्रवती, प्रिय बोलनेवाली, पहिली स्त्रीको छोडताहै उसे राजाको दूसरे विवाहके, तीसरे भाग धनका दण्ड देना चाहिये, यदि धन न होय तौ प्रथम स्त्रीके भरण पोषणका दण्ड देना चाहिये. मनुका वाक्य है कि, यदि दूसरे विवाह करनेपर पहिली स्त्री कुछ क्रुद्ध होकर घरसे चले तो उसको शीघ्र रोकना चाहिये, अपने कुलके संमुख त्यागदेना. हेमाद्रिमें कात्यायन कहतेहैं कि, जिसके बहुत भार्या हों उस मनुष्यको सवर्णा स्त्रीसे अग्नि और शिष्ट मनुष्योंकी सेवा करानी चाहिये, यदि अपने वर्णकी भी बहुत होंय तो जो सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ज्येष्ठ स्त्री हो उससे करानी चाहिये, याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, यदि अपने वर्णकी स्त्री मिले तो औरसे धर्मकार्यको न करना और यदि सवर्ण भी बहुत स्त्री होंय तो धर्मकार्यमें बडीकोही अधिकार है औरोंको नहीं ॥

द्वितीयविवाहहोमे अग्निनिर्णयः ।

द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह कात्यायनः--"सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात् । यदीच्छेदग्निमान्कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते ॥ स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥" त्रिकाण्डमण्डनोपि--"आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि । तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान् ॥" सुदर्शनभाष्ये तु--'द्वितीयविवाहहोमो लौकिक एव न पूर्वौपासने' इत्युक्तम् ॥ इदं चासंभवे तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यः ॥

अब द्वितीय विवाहकी अग्निका निर्णय लिखतेहैं कात्यायन कहतेहैं कि, यदि स्त्रीवाला मनुष्य किसी हेतुसे पुनर्विवाहकी इच्छा करै तो उसको पूर्वविवाहकी अग्निमेंही होम करना लौकिक अग्निसे कभीभी न करना चाहिये. त्रिकाण्डमण्डनभी लिखतेहैं कि, प्रथम स्त्रीके जीते हुए यदि दूसरी स्त्रीको विवाह करले तो वैवाहिक हवन आदि कर्मको अपने घर करै सुदर्शनभाष्यमें तो यह लिखाहै कि, दूसरे विवाहका हवन लौकिक अग्निमें करना चाहिये, पूर्व अग्निमें नहीं करना यह बात प्रथमकी अग्निके असंभवमें जाननी यदि पूर्वविवाहकी अग्निभी होय तो उन दोनोंका सम्बंध करना चाहिये ॥

तदाह शौनकः–" अथाग्न्योर्गृह्ययोर्योगं सपत्नीभेदजातयोः । सहाधिकारसिद्ध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥ अरोगामुद्वहेत्कन्यां धर्मलोपभयात्स्वयम् । कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेहनि ॥ पृथक्स्थण्डिलयोरग्नि समाधाय यथाविधि । तत्र कृत्वाज्यभागान्तमन्वाधानादिकं ततः ॥ जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तयान्वारब्ध आहुतीः । अग्निमीळेपुरोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिध्यैनं समारोप्य अयं ते योनिरित्यृचा । प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्ततंत्रादिकृत्वारभ्य तदादितः । समन्वारब्ध

एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद्घृतम् ॥ चतुर्गृहीतमेताभिर्ऋग्भिः षड्भिर्यथाक्रमम्। अग्नाव-ग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्यते ॥ अस्तीदमिति तिसृभिः पाहि नो अग्न एकया। ततः स्विष्टकृदारभ्य होमशेषं समापयेत् ॥ गोयुगं दक्षिणा देया श्रोत्रियायाहिताग्नये। पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः॥ आदधीतान्यया सार्द्धमाधानविधिना गृही ॥ २॥" इति ॥

सोई शौनकने लिखाहै कि, अब जो कि, सपत्नी (सौत) पनेको प्राप्त हुई स्त्रियोंको हवन आदि कर्ममें सहाधिकार (साथ करने) के निमित्त गृह्य अग्नि (दोनों विवाहोंके अग्नि) योंके सम्बन्धको लिखताहूँ कि, धर्मके लोप होजानेके भयसे उत्तम लक्षणोंसे युक्त कन्यासे विवाह करै, विवाह करनेपर व्रतके उपरान्त प्रथम दिन पृथक् २ वेदियोंपर विधिसे अग्नि स्थापन करके अन्वाधानसे आज्यभागान्त आहुति देकर प्रथम पत्नी अग्निमें आहुति दे, और उस पत्नीके साथ ग्रन्थिबन्धन करनेपर पतिको भी "अग्निमीळे पुरोहितम्" इस सूक्तकी नौ ऋचाओंसे आहुति देनी चाहिये, फिर अग्निको प्रज्वलित करके "अयंते-योनि" इस मन्त्रसे और प्रत्यवरोह इस ऋचासे कनिष्ठ (दूसरी) पत्नी चरुभक्षण आज्यभागान्त कर्म करके आहुतिदे, फिर दोनों पत्नियोंसे पति ग्रन्थिबन्धन करके घीसे आहुति दे 'चतुर्गृहीत' इन छः ऋचाओंसे और अग्निसे अग्नि भक्षण करताहै और अग्निसे अग्नि प्रज्वलित होती है 'अस्तीदं' इन तीन मन्त्रोंसे और 'पाहिनो अग्ने' इस एक ऋचासे फिर स्विष्टकृत्के प्रारम्भसे शेष होमको पूर्ण करै, फिर अग्निके हितकारी वेदपाठीको दो गौ दक्षिणा दान करै, यदि दोनों पत्नियोंमें एक पत्नीकी मृत्यु होजाय तो उसी अग्निसे उसका दाह करके दूसरी पत्नीके संग शास्त्रोंमें कही विधिसे फिर अग्निका आधान करै ॥

बौधायनसूत्रे तु–"अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विंदेत कथं तत्र कुर्यादिति यस्मिन् काले विंदेतोभावग्नी परिचरेदपराग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्याज्यं विलाप्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽन्वारब्धायां जुहोति 'नमस्त ऋषेरादाव्यधायै त्वा स्वधायै त्वा मान इंद्राभिनतस्त्वहृ-ष्ट्वारिष्टां स एव ब्रह्मन्नवेदसुस्वाहेत्यथाऽयंते योनिर्ऋत्विय' इति समिधि समारोपयेत्। पूर्वाग्निमुपसमाधायाजुह्वान उद्बुद्ध्यस्वाग्न इति समिधमाधाय परिस्तीर्य स्रुचि चतुर्गृहीत्वा द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोऽभिमृशति ब्रह्म ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकं चतुर्गृहीतं जुहोत्यग्निमुखान् कृत्वा पक्वां जुहोति संमितं संकल्पेथामिति पुरोनुवाक्यामनूचाग्ने पुरीष्ये इति याज्यया जुहोति पुरीष्यमस्तमित्यन्तादनुवाकस्य स्विष्टकृतप्रभृतिसिद्धमाधेनुवरदानादथाग्रेणाग्निं दर्भस्तम्बे हुतं शेषं निदधाति 'ब्रह्मजज्ञानं' 'पिताविराजाम्' इति द्वाभ्यां संसर्गविधिः कार्यः ॥"

बौधायनसूत्रमें तो यह कहाहै कि, जो गृहस्थी दो स्त्रियोंको विवाह करै तो वहां किसप्रकार अग्निहोत्र आदि कर्म करै, जिस समय दो स्त्रियोंको विवाहै तब दोनों अग्निकी पूजाकर, एक अग्निका स्थापन करके और कुशाओंको अग्निके चारों ओर कुशण्डीकी विधिसे फैलाकर और घृतको तपाकर और श्रुवेमें चारवार लेकर एक पत्नीके संग ग्रन्थिबन्धन करके समिधापर 'नमस्ते ऋषे' इस ऋचासे आहुतिप्रदान करता हुआ उस घीको डालदे, यदि प्रथम स्थापन कर हवन करै, तो 'उद्बुद्ध्यस्वाग्ने'

१ यह सब मन्त्र पद्धतियोंमें पूरे लिखे हैं सो विवाहपद्धतिमें देख लेने ॥

इस ऋचासे समिधको रखकर और अग्निस्थापन और कुशण्डी करके श्रुवेमें चारवार घृतको लेकर दोनों भार्योंका ग्रन्थिबन्धन करके यजमान स्पर्श करै, और 'यो ब्रह्मा ब्रह्मण' इस सूक्तसे स्त्री चारवार ग्रहण किए घृतसे हवन करै, फिर अग्निको मुख करके कर्त्ता चरुसे हवन करै, 'सनिमित्तं संकल्पेथा:' इस पहिले वाक्यको स्विष्टकृत् आदि सिद्ध करके धेनुके वरप्रदान हवन करै, फिर अग्निके आगे कुशाके स्तम्भपर हवनके शेषको 'ब्रह्मजज्ञानं, 'पिता विराजं' इन दोनों मन्त्रोंसे रक्खै ॥

तत्र कालनिर्णयः ।

द्वितीयादिविवाहे काल उक्तः संग्रहे–"प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च । विषमे युगवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत् ॥"

द्वितीय आदि विवाहका समय संग्रहमें लिखाहै कि, स्त्रीके मृत्युके दिनसे वरके दूसरे विवाहकी विधि विषम वर्षमें श्रेष्ठ है, और युग्मवर्षमें मृत्यु देनेवाली है ॥

तृतीयविवाहे निषेधः ।

तृतीयविवाहे निषधो मात्स्ये–"उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन । मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथा" इति । संग्रहे– "तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत् । चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥" तद्विधिस्तु–"रविशन्योर्हस्ते वा वरः संकल्प्य स्वस्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वाचार्यं वृत्वा आकृष्णेनेति छायायुतं सूर्यमर्कं संपूज्य गुडौदनं दत्त्वा वस्त्रेण तन्तुभिरावेष्ट्य । "त्रिलोकवासिन् सप्ताश्व छायया सहितो रवे । तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु" इति संप्रार्थ्य जलेन त्रिःसिञ्चेत् । "मम प्रीतिकरा येयं माया सृष्टा पुरातनी । अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥ नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मने । त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं म इहागता ॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणहिताय च । वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥ ॥ ३ ॥" इति ॥

मत्स्यपुराणमें तीसरे विवाहका निषेध लिखाहै कि, विषयभोग करनेके निमित्त तीसरी स्त्रीसे न विवाह करै, कारण कि, मोह वा अज्ञानसे जो तीसरी स्त्रीसे भोग करताहै वह स्वयंही नष्ट होताहै इसमें सन्देह नहीं, यही गर्गने कहाहै, संग्रहमें लिखाहै कि, यदि तीसरी स्त्रीसे विवाह करै, तो वह विधवा होजाती है, यदि चतुर्थ आदि विवाह करना चाहै तो तीसरे विवाहमें आकके वृक्षके संग विवाह करै, उसकी विधि इस प्रकार है कि, रवि वा शनिवार हस्त नक्षत्रमें वर संकल्प तथा स्वस्तिवाचन तथा नान्दीमुख श्राद्ध करके आचार्यको वरण करै फिर "आकृष्णेन रजसा" इस मंत्रसे आकके वृक्षमें छायासहित सूर्यको पूजन कर तथा गुड और भातको देकर तंतु और वस्त्रको लपेटकर इसप्रकार प्रार्थना करै कि, हे त्रिलोकीके निवासी सात अश्ववाले सूर्य ! छायासहित आकर तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुये दोषके निवारण तथा सुखको करो, फिर उस वृक्षको तीनवार जलसे सींचकर यह पढै कि, मेरी प्रसन्नता करनेवाली यह पुरातनी माया ब्रह्माने निर्मितकी और सूर्यसे उत्पन्न हुईहै सो तू हमारी रक्षाकर, हे कल्याणरूप देवि सविताकी पुत्री ! तुझे मेरा नमस्कार है कृपासहित मेरी रक्षाकर और इस लोकमें मेरी स्त्रीरूपहो, हे अर्क ! तुझे सब

मनुष्योंके हितके निमित्त ब्रह्माने रचाहै, सब वृक्षोंमें आदिभूत तथा देवताओंकी प्रीतिको बढानेवाला है तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए पाप तथा मृत्युका शीघ्र नाश कर ॥

तत आचार्यः–"काश्यपगोत्रामादित्यप्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीं मम पुत्रीमर्ककन्याममुकगोत्राय वराय दास्ये" इति वाग्दानं कृत्वा वरस्य मधुपर्कं कृत्वाऽन्तःपटं धृत्वा 'स्वतिनः' इति सूक्तं जप्त्वा पूर्ववत्कन्यां दत्त्वा अर्ककन्यामिमामित्यूहेन कन्यादानमंत्रमुक्त्वा दक्षिणां दद्यात् । ततो गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेण कंकणं वध्वाऽर्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते संगोभिरिति बृहस्पतये यस्मै त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिराज्यं हुत्वाऽचार्याय गोयुगं दत्त्वा । "मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा । अर्काऽपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि" इतिं नमत् ॥ इति दिक् ॥ इति निर्णयसिंधौ विवाहः ॥

फिर आचार्य काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुई आदित्यकी प्रपौत्री तथा सविताकी पौत्री और मेरी पुत्रीरूप इस आककी कन्याको अमुक गोत्रमें उत्पन्न हुए वरको देताहूं इसप्रकार वाग्दान करै, फिर वरको मधुपर्क देकर अन्तरपट करके 'स्वस्तिन इन्द्रो' इस सूक्तको पढके पूर्वके अनुसार कन्यादान करके इस अर्ककी कन्याको प्रदान करताहूं इत्यादि वाक्यसहित कन्यादानके मंत्रको पढकर दक्षिणा दे, फिर गायत्रीमंत्रसे लपेटे सूतके वरके हाथमें 'बृहत्साम' इत्यादि मंत्रसे कंकणको बांधकर आककी चारोंदिशाओंमें स्थापित घडोंपर विष्णुकी पूजाकर अग्निका स्थापन करके 'आघारान्ते संगोभि, इस ऋचासे तथा 'बृहस्पतये यस्मैत्वा कामकामाय' इस मंत्रसे अग्निके निमित्त भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा इन व्यस्त समस्त आहुतियोंसे घृतकी आहुति देकर आचार्यको दो गौ देकर प्रणाम करै कि, जो मुझ जरायु (मनुष्य) ने स्थावरोंके विषे यह कर्म कियाहै, सो मुझे संतान दो और उस अपराधको हे अर्क क्षमा करो यह संक्षेपसे कहा॥ इति निर्णयसिन्धौ विवाहः ॥

अथाग्न्याधानम् ।

रत्नमालायाम्–"प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु । अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेपि चित्रादित्ये कीर्तितं गर्गमुख्यैः" ॥ आश्वलायनः–"अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फाल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदधीत ग्रीष्मवर्षाशरत्सु क्षत्रियवैश्योपक्रुष्टा यस्मिन्कस्मिंश्चिद्दतावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम् ॥"

अब अग्न्याधानको कहतेहैं । रत्नमालामें कहाहै कि, ब्राह्म (रोहिणी) धनिष्ठा द्विदैव (विशाखा) पुष्य ज्येष्ठा मृगशिर कृत्तिका तीनों उत्तरामें अग्निका स्थापन तथा चित्रा आदित्य (पुनर्वसु) में अग्निस्थापन शुभहै यह गर्गोंने कहाहै. आश्वलायन कहतेहैं, कृत्तिका रोहिणी मृगशिर पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी विशाखा उत्तराभाद्रपदा उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें अग्निका स्थापन उत्तम है, इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें ब्राह्मण वसंतऋतुके जिस किसी पर्वमें, क्षत्रिय वैश्य ग्रीष्म वर्षा शरद् ऋतुमें, और अपकृष्टा (शूद्र) मनुष्य जिस किसी पर्वमें अग्निका आधान करै, सोमयज्ञको सम्पादन करता हुआ मनुष्य ऋतु तथा नक्षत्रको न पूछे ॥

सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमार्त्तपरम् । 'अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्य विधिः' इति ॥ 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रं तदेतदार्त्तस्यातिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवति' इति बौधायनोक्तेरिति ॥ मदनरत्ने वृद्धगार्ग्यः—"पुष्याग्नेयत्र्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु । कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मोष्मान्तेष्वेव-विप्रादिवर्णाः ॥" कालादर्शे—"अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्तरायणे । उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च विकृतीरपि । सौम्यायने यथाकालं विदध्युर्गृहमेधिनः ॥" अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः ॥

यह सोमयज्ञमें ऋतुआदिका अविचार आर्त्त आदिकोंके विषयमें कहाहै कारण कि, मदनरत्नमें बौधायनने कहाहै कि, जब इसको श्रद्धाहो तबही अग्न्याधान करै; तिससेही इसकी ऋद्धि होतीहै, सो यह आर्तको वा काल बीतगया हो तब जानना चाहिये, और श्रद्धायुक्तकोही अग्न्याधान होताहै, यह मदनरत्नमें कहाहै, वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, ब्राह्मण आदि वर्ण (प्रथम) अग्निका स्थापन पुष्य आग्नेय (कृत्तिका) तीनों उत्तरा धनिष्ठा पुन्नाम नक्षत्र ज्येष्ठा चित्रा द्विदैव (विशाखा) रोहिणी नक्षत्रमें तथा वसंत ग्रीष्म शरद् ऋतुओंमें करैं कालादर्शमें कहाहै कि, उत्तरायणमें अमावास्या पौर्णमासीको भी अग्निहोत्रको करना चाहिये सब द्विजाति मनुष्य समयपर सोमीय पशुबंध तथा और यज्ञकी विकृति (अंग) योंका प्रारम्भ करके उसको सेवन करैं गृहस्थी मनुष्य उत्तरायणमें यथासमयपर करैं, इसमें विशेष प्रथम कह आयेहैं ॥

अग्निहोत्रकालः ।

अग्निहोत्रकाल उक्तश्छन्दोगपरिशिष्टे—"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥" एषां स्वरूपं तत्रैव—"रात्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते । कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तत्राप्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले । रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितं च तत् ॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः । उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥" आश्वलायनः—'उपोदयं व्युषितउदिते वा ।' सायं तु स एव'अस्तमिते होमः' इति ॥ गौण कालमाह स एव—'प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः' इति । छन्दोगपरिशिष्टे—"यावत्सम्यङ्न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः । न च लोहितमापैति तावत्सायं तु हूयते ॥" औपासनेप्येवम् । तस्य—'अग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातौ' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥

अग्निहोत्रका समय छंदोगपरिशिष्टमें यह लिखाहै कि, उदित अनुदित तथा अध्युषित समयपर सर्वथा यज्ञ सम्पादन करै यह वेदकी श्रुतिहै. इसके स्वरूपका निर्णय वहांही यह लिखाहै कि, ग्रह और नक्षत्रोंसे भूषित रात्रिके सोलहवें भागको अनुदित लिखतेहैं, उसको जानकर चतुर जनोंको होम करना चाहिये इसीप्रकार नक्षत्रोंका जब मंडल नष्ट होगया हो और प्रातःकाल बीतगया हो उससमय जबतक सूर्यदर्शन न हो समयाध्युषित कहाहै, तथा किरणोंसहित सूर्यका जब रेखामात्र दर्शन हो उसे उदित कहतेहैं उसमें हवन करै. आश्वलायनने कहाहै कि, उपोदय तथा व्युषित उदित समयपर और सायंकालको सूर्य अस्त होनेपर हवन करै गौणसमयभी उसनेही यह लिखाहै कि, प्रदोषकी अन्त संध्याको और किरणोंके अंत प्रातःकालको हवनका समय है. छंदोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, जबतक आकाशमें चारों ओरसे

तारागण न उदय हुए हों, और ललामी नष्ट न हुई हो तबतकको संध्यासमय कहते हैं इसीप्रकार उपासनामें भी जानना कारण कि, आश्वलायनने लिखाहै कि, उपासनाकी प्रकटता और हवनका समय अग्निहोत्रकी समान होतेहैं ॥

अथावसथ्याधानम्।

पारस्करः—"आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषाम्" इति । दायाद्यकालो विभागकालः । मदनरत्ने व्यासः—"अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना । पितर्युपरते तेन ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः ॥ योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ २ ॥" ज्येष्ठभ्रातरि पितरि वा साग्नौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वाऽग्न्यभावेपि न दोषः । तदाह तत्रैव गार्ग्यः—"पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः । ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥"

अब गृहस्थके आवसथ्याधानका निर्णय लिखतेहैं । पारस्करने लिखाहै कि, गृहस्थको अग्निका आधान विवाह समयमें और कोई विभागकालमें कथन करतेहैं, मदनरत्नमें व्यास कहते हैं कि, जिस प्रमादीने विवाहकी अग्निको न ग्रहण किया वह पिताकी मृत्युके उपरान्त यत्नसे ग्रहण करै जो कि, विवाहकी अग्निके ग्रहण किये विना अपनेको गृहस्थी जानताहै उसके यहां भोजन न करना कारण कि, उसे वृथापाक कहतेहैं। ज्येष्ठ भ्राता तथा पिताने विवाहकी अग्निको ग्रहण किया होय तो छोटे भाई तथा पुत्र अग्निको ग्रहण न करै तो भी दोष नहींहै यही गार्ग्य कहतेहैं कि, पिताके पाकसे जो जीताहो, और जो भ्राताके पाकसे जीताहो, और जो ज्ञान और अध्ययनमें तत्पर हो उसको अग्निके विना दोष नहीं होता ॥

गृहस्थस्याध्ययनम्।

गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्यव्रतः—"अनधीत्य द्विजो वेदं स्नात्वोद्वाह्य यथा तथा । अधीते ब्रह्मचर्येण सांगं वेदं गुरोर्गृहे ॥" इदं चाधानं ज्येष्ठे कृताधाने न कार्यम् । "दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः" इति मनुशातातपोक्तेः ॥ स्मार्तेप्येवम् । "सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंग्रहम् । आवसथ्यं तथाधानं पतितस्तु तथा भवेत्" इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः ॥

गृहस्थीको अध्ययन करना सत्यव्रतने लिखाहै कि, वेदको न पढ़कर जो ब्राह्मण स्नान करके विवाहको करताहै वह ब्रह्मचर्य धारणकर अंगोंसहित वेदको गुरुके घरजा पढ़े, यह अध्ययन उसको करना चाहिये जिसके ज्येष्ठ भाईने अग्न्याधान (अग्निका ग्रहण) पहिले न कियाहो कारण कि, शातातप और मनु कहतेहैं कि, जो ज्येष्ठभाईके होतेहुए प्रथम विवाह और अग्निहोत्र करताहै उसे परिवेत्ता कहाहै, और ज्येष्ठको परिवित्ति जानना चाहिये. स्मार्तमें भी यही लिखाहै कि, सहोदर ज्येष्ठ भाईके बैठे हुये आप प्रथम विवाह तथा आवसथ्याधान न करै, अन्यथा वह पतित होजाताहै ऐसा गार्ग्य कहतेहैं ॥

आज्ञायां त्वदोषमाह सुमन्तुः—"ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥" वृद्धवसिष्ठः—"अग्रजस्तु यदाऽनग्निरादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतं कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ॥" हारीतः—"सोदराणां तु सर्वेषां परि-

वत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया ॥" अधिकारिणोपि भ्रातुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपारिजातः ॥ विवाहस्त्वनुज्ञयापि नेत्यर्थः ॥ सोदरोक्तेरसोदराणां सापत्नदत्तकादीनां न दोषः । दत्तकस्यापि सोदरविवाहाभावे दोष एव तदाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—"पितृव्यपुत्रान् सापत्नान् परनारीसुतांस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥" परनारीसुताः दत्तकादयः ॥

आज्ञासे करनेमें सुमंतुने कहाहै कि, दोष नहीं लगताहै, जब ज्येष्ठभाई बैठाहो तब अग्न्याधानमें स्थित न होना और आज्ञा लेकर स्थित होजाय इसीप्रकार शंख कहतेहैं. वृद्धवसिष्ठ कहतेहैं, कि, यदि बडा भ्राता अग्नि रहित होय तो छोटा किसप्रकार अग्निको ग्रहण करै, वह उससे आज्ञा लेकर विधिपूर्वक अग्निहोत्रको करले हारीतने कहाहै कि, यदि सब सगे होंय तो परिवेत्ता किसप्रकार होय ! स्त्रीके साथ विवाह करनेसे परिवेत्ता होता है अग्निहोत्र और यज्ञसे नहीं होता. पारिजातका कथनहै कि, अधिकारीभी भ्राता हो उसकी आज्ञासे करले, विवाह तो आज्ञासे नहीं करै, 'सोदराणां, इस पदसे जो सगे नहीं हैं उन मौसीके पुत्र अथवा दत्तक आदि पुत्रोंको इसमें दोष नहीं है, सोदरके विवाहके न होनेपर दत्तकको भी दोष प्राप्त होताहै, इसीप्रकार हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहाहै कि, चाचाके पुत्र और मौसीके पुत्र और दत्तक आदिके स्त्री और अग्निहोत्रके संयोग प्राप्त होनेपर भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता ॥

देशान्तरे विशेषमाह स एव—'अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ती भवति' इति । क्लीबादावप्यदोषमाह कात्यायनः—"देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् । वेश्यानिष्ठांश्च पतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनखञ्जकान् ॥ अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोकारिणस्तथा । कुटिलोन्मत्तचोरांश्च परिविंदन्न दुष्यति ॥ ३ ॥"

देशान्तरमें बडाभाई होय तो उसमें यह विशेष लिखाहै कि, जो आठ दश वा बारह वर्ष घर न आया हो ऐसे बडे भ्राताकी बाट न देखकर जो अपना विवाह करलेता है उसको प्रायश्चित्त लगताहै, क्लीबादिकोंमें कात्यायनने दोष नहीं कहाहै कि, देशान्तरमें स्थित हो, नपुंसक, एक अण्डकोशवाला, असहोदरहो, वेश्यागामी, पतित, शूद्रकी समान, अत्यन्तरोगी, मूर्ख, गूंगा, अन्धा, बहिरा, कुबडा, विलंदिया, लंगडा, अतिशय वृद्ध, स्त्रीहीन, कृषिकर्ममें आसक्त, राजाकी धनकी वृद्धिमें आसक्त, अपनी इच्छासे न करना चाहै, कुटिल, उन्मत्त, चोरको परिवित्ति करते हुएको दोष नहीं होता ॥

आचारार्केपि—"उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी पतितः क्लीब एव वा । राजयक्ष्मामयावी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम् ॥" एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवेत्तृत्वम् ॥ तदाह त्रिकाण्डमण्डनः—"दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसंग्रहम् । अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम् ॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति । क्षेत्रजादावनीजाने विद्यमानेपि सोदरे ॥ नाधिकारविघातोस्ति भिन्नोदर्येपि चौरसे । पंग्वन्धमूकबधिरपतितोन्माददूषणे ॥ संन्यस्तच्छिन्नहस्तादौ यद्वा षण्ढादिदूषणे । जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम् ॥ ४ ॥" इति ॥ 'आरोहतं दशतं शक्वरीर्मम' इत्याधाने मन्त्रवर्णनाच्च ॥ शक्वरीरंगुलीः ॥

आचारार्कमें भी कहाहै कि, उन्मत्त, पापी, कुष्ठी, पतित, नपुंसक, राजयक्ष्मा (रोगविशेष) से युक्त, मंदाग्निवाले पुरुषोंके विवाहकी वाट न देखे, इसीप्रकार जिसके हस्तआदि कटेहों ऐसे बडे भाईसे भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता. यही त्रिकांडमंडनने लिखाहै कि, अमावस्याश्राद्ध, पूर्णिमाश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्निसंग्रह, अग्निहोत्र, विवाह सहोदर ज्येठे भ्राताके न करनेतक इसका स्वयं आरम्भ आप न करै, और यदि सहोदर भी ज्येष्ठ भाई अन्यसे उत्पन्न क्षेत्रज आदि हो अथवा अपने पितासेही उत्पन्न हुआ भिन्नौदर्य (मौसी आदिका पुत्र) होय तो इनके होनेपर अधिकार नष्ट नहीं होता, और यदि सगा बडाभाई लंगडा, अंधा, गूंगा, बहिरा, पतित, उन्मत्त, संन्यासी हस्तआदि कटाहुआ, तथा नपुंसक होय तो इतर छोटा भाई विवाहआदि कर्मको करले, और यह आधानका मंत्रभी कहाहै कि, मेरी अंगुली दश स्थानमें उत्पन्नहुई बढ़ौ ॥

तन्त्ररत्नेप्युक्तम्–'अङ्गवैकल्यात्पूर्वमाहिताग्नित्वेऽधिक्रियेतैव नित्येषु। आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वात्' इति ॥ एवं चतुरंगुलेपि । षडंगुलकाणविवर्णादेस्त्वस्त्येवाधिकारः। एकादशसु दशान्तर्गतेः। 'शरीरकार्श्यं वा विप्रतिषिद्धम्' इति हिरण्यकेशिसूत्रे कर्माशक्तिहेतोरेवाङ्गवैकल्यस्य निषेधात् ॥ अत एव द्राह्यायणसूत्रे–'याज्यश्च प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः' इति न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः ॥ अपरार्के उशनाः–"पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित् । तपोग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ॥" पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदनरत्ने सुमन्तुः–"पित्रा यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्रेऽधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं यथा ॥" इति । नाधानं कृतमित्यर्थः ॥ एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः। यत्तु–'पितुः सत्यप्यनुज्ञाते नादधीत कदाचन' इति ॥ तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम् ॥

तंत्ररत्नमें भी कहाहै कि, अंगके कमती बढती भावसे पहिले जिसने अग्न्याधान करलियाहो उसको नित्य कर्मोंके करनेका अधिकारहै, वह नैमित्तिक होनेसे अग्निहोत्रको न करै, इसीप्रकार चतुरंगुलकोभी जानना एकादशमें दशोंको अन्तर्गत होनेसे जिसके छः अंगुली हों उसको अथवा काने और कानहीनको दोष नहीं है, कारण कि, अंगविकलताका निषेध इस हिरण्यकेशिसूत्रमें कर्म करनेकी अशक्तिसे ही लिखाहै कि, शरीरका दुवला होना अग्न्याधानमें निषिद्ध नहीं, अर्थात् उसे कर्म करनेकी शक्ति है; इसीसे इस द्राह्यायणसूत्रमें न्यून अधिक अंगवालेकोभी अधिकार लिखा है कि, प्रथम तीन गुणों (सत्त्व) आदिसे यज्ञ करावै. अपरार्कमें उशनाने कहाहै कि, जिसके पिता पितामह हों, और जो किसीका बडा भ्राता होय तो उसको परिवेदनमें तप अग्निहोत्रोंमें दोष नहीं लगता, पिताकी आज्ञाके विनाभी दोषाभाव मदनरत्नमें सुमंतुने लिखाहै कि, जिसके पिताने आधान न किया हो उसका पुत्र किसप्रकार करै, इससे शंखने कहाहै कि उसको अग्निहोत्र करनेमें अधिकारहै, यह पिताकी आज्ञासेही करना चाहिये, यह हेमाद्रि लिखतेहैं, और जो कि, किसीने यह लिखाहै कि, पिताकी आज्ञा होनेपरभी अग्न्याधानको कभी भी न करै यह बात अधिकारके होनेपरही जाननी ॥

अथ शूद्रसंस्कारे निर्णयः।

यमः–"शूद्रोप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः । न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ॥" छन्दसा मन्त्रेण । व्यासोपि–"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च । नामक्रिया निष्क्रमोन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।

केशान्तस्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोड़श स्मृताः ॥ ३ ॥" इत्युक्त्वाह–"नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः । विवाहे मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश" इति ॥

अब शूद्रसंस्कारोंको कहतेहैं । यम कहते हैं कि, संस्कारको प्राप्त होनेपर शूद्र भी इसी प्रकार मंत्रके विना कर्म करै कारण कि, ब्रह्माने किसी मंत्रसे भी उसकी रचना नहीं की. व्यास कहते हैं कि, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशांत, स्नान, विवाह अग्निका संग्रह, त्रेता अग्निका संग्रह, यह सोलह संस्कार हैं, यह कहकर वह लिखाहै कि, यह कर्णवेधतक नौ कर्म स्त्रियोंके विना मंत्रही होते हैं, और विवाह मंत्रोंसे होताहै, शूद्रके ये विवाह समेत दशकर्म मंत्रके विनाही होतेहैं ॥

हिरण्यगर्भदाननिर्णयः ।

मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु–"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः" इत्युक्त्वा 'जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः' इत्यत्र 'स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहाः षट् । शूद्राणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादश' इत्युक्तम् । रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम् । शार्ङ्गधरस्तु–"द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि । पञ्चैव मिश्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ देवव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम् ॥" द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः इत्याह ॥ अपरार्कस्तु–'गर्भाधानमृतौ पुंसः' इत्यत्राह एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् । न द्विजातिमात्रपरम् । तथासत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यात् इति तेन तन्मतेऽष्टौ भवन्ति ॥

मदनरत्नमें हिरण्यगर्भदानमें तो गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त ये कर्म द्विज, हिरण्यगर्भ, (शूद्र) के करै, यह कहकर लिखा है कि, जातकर्मसे लेकर और संपूर्ण षोडशकर्म करै, इसमें स्त्रीके जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडा, विवाह ये छः कर्म हैं, और शूद्रोंके छः ये, और पञ्चमहायज्ञ इस प्रकार ग्यारह कहे हैं; इसीप्रकार रूपनारायण और हरिहरभाष्यमें देखलेना चाहिये, शार्ङ्गधर कहते हैं कि, द्विजातियोंके सोलह संस्कार हैं, और शूद्रोंके द्वादश और दूसरे वर्णसङ्कर जातियोंके पांच संस्कार हैं, वे नाम मन्त्रसे होते हैं; यथा गणेशकी पूजामें 'गणेशाय नमः' अपरार्कने तो ऋतुकालमें गर्भाधान तथा पुंसवन करनेमें यह लिखा है कि, यह बात चारों वर्णोंके विषयमें है, केवल ब्राह्मणजातिमात्रके विषयमें नहीं जानना । कारण कि, इसीप्रकार मानोगे तो यज्ञोपवीतको करके यह अर्थ होगा तिससे उसके मतमें आठ संस्कार लिखे हैं ॥

---

१ वैवाहिकोविधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया । नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च इति मनूक्तौ संस्कृताज्ञातृत्वेनैव सिद्धौ ॥ अर्थात्–विवाह संस्कारके समयसे ही स्त्रीका गुरु पतिही होता है पतिकी सेवाही स्त्रीको गुरुकुलमें वास और गृहकार्यही अग्निकी सेवा है, इससे पतिके गायत्री जप वेद पाठभी मानौ स्त्रीकेही किये हुए हैं और यथावकाश पतिही अध्ययन करा सकता है पतिके संस्कारोंसे स्त्री संस्कृत है कारण कि, मनुजी कहते हैं जो नामधेयका अभिवादन नहीं जानते वह मैं प्रणाम करताहूं इसप्रकार कहै और इसी प्रकार स्त्री कहे इससे सब स्त्रियोंका विशेषण कहनेसे संस्कृतज्ञाता भी आचार्यपत्नी इसीप्रकार कहै ॥

ब्राह्मे तु-"विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोपि लभतां सदा" इत्युक्तम्। अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद्व्यवस्था॥ यत्तु मनुः-'न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति' इति॥ तदर्थमाह मेधातिथिः-'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदतिक्रमेऽस्य पापं यथा द्विजानाम्। उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति' इति॥ ते च तूष्णीं कार्याः। "शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना" इति व्यासोक्तेः॥ 'अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते।' इति मरीच्युक्तेश्च॥ इयं परिभाषा सर्वार्था, तेन शूद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः। सोपि पौराण एवेति शूलपाणिः॥ एवं स्त्रीणामपीति दिक्॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ संस्कारनिर्णयः॥

ब्रह्मपुराणमें तो यह कहाहै कि, शूद्र भी विवाहमात्र संस्कारको सदा प्राप्त होसकताहै, इसमें देशभेदसे अथवा यह श्रेष्ठ और अधम शूद्रके विषय होनेसे व्यवस्था लेनी है, जो कि, मनुने यह लिखाहै कि, (न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति) इसका अर्थ मेधातिथिने यह लिखा है कि, जो चोरी अथवा झूँठ बोलना आदि सामान्यसे निषिद्ध हैं, इनके अतिक्रम (उलंघ) से जैसे द्विजोंको पाप लगताहै, वैसे इस शूद्रको नहीं होता, और यह शूद्र उपनयनरूप संस्कारके योग्य नहीं है, वे संस्कार मौन होकर करै कारण कि, व्यासने कहाहै कि, चौथा वर्ण शूद्र वर्ण होनेसे वेदके मन्त्र स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिके विना वेदविहित धर्मके योग्य होताहै, और मरीचि लिखतेहैं कि, मन्त्रोंसे रहित शूद्रके निमित्त ब्राह्मण मन्त्रोंको पढै, यह वाक्य सबोंके निमित्त है इससे शूद्रके धर्मोंमें सर्वत्र ब्राह्मणको पौराणिक मन्त्र पढना चाहिये, यह शूलपाणिका कथनहै स्त्रियोंके कर्ममें भी जानना चाहिये, यह संक्षपसे कहाहै॥

इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां संस्कारनिर्णयः।

अथ क्षुद्रकालः।

तत्र जलाशयकालो वाराहे-"हस्ते चाम्बुपपौष्णकेशवमवामित्रोत्तरारोहिणीदेवेज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके। रिक्तां छिद्रतिथिं विहाय वृषभे नक्रे कुलीरे घटे मीने कूपतडागकर्म मुनयः शंसन्ति शुद्धेऽष्टमे॥ हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः। शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः॥ २॥" हेमाद्रौ भविष्ये-"तस्मिन् सलिलसंपूर्णे कार्तिके तु विशेषतः। मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे॥ न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम्॥" दीपिकापि-"मार्तण्डेन्दूडुशुद्धौ मुरजिदशयने माधषट्कस्य शुक्ले मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशुक्राज्यचन्द्रे। मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदन १३ रवि १२ तिथौ सद्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठाज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने॥" वराहः-"आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवतिं कूपः। नित्यं स करोति भयं दाहं च समानसं प्रायः॥ नैर्ऋत्ये बालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये। दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषास्तु शुभावहाः कूपाः"॥ २॥

अब क्षुद्रकाल कहते हैं इसमें प्रथम कूपादिका समय निरूपण करते हैं, बराहमें लिखाहै कि, कुएको हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा नक्षत्रमें प्रारम्भ करै हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, जलभरे कुएकी प्रतिष्ठा कार्तिकमें करनी, कोई मुनि उत्तरायणके

बीतनेपर कहते हैं इसमें कारण जल है समयका नियम नहीं है अर्थात् जब जलसे पूर्ण हो तभी प्रतिष्ठा आरम्भ करै, दीपिकामें कहा है सूर्य, चन्द्र, ताराकी शुद्धि, होनेपर विष्णुके शयनको छोड कर माघादि छः महीनोंमें शुक्लपक्ष, मूल, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें तथा पंचमी, दशमी, पूनो १३ । १२ । २ । ३ तिथि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार श्रेष्ठ लग्न और पवित्र कालमें जलाशयकी प्रतिष्ठा करै. वराहने कहा है ग्राम या घरसे अग्नि-कोणमें कूप होय तो नित्य भय, दाह तथा इनके तुल्य दुःखको करता है, नैर्ऋत्यमें बालकोंको भय, वाय-व्यमें स्त्रीका क्षय होता है, इस कारण इन तीन दिशाओंको छोडकर और दिशाको कूप उत्तम होता है, तथा अच्छा फल मिलता है ॥

वास्तुशास्त्रे–"भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरंध्रीनाशं मृत्युं संपदं शत्रुबाधाम् । किंचित्सौख्यं शंभुकोणादि कुर्यात्कूपो मध्येगेहमर्थक्षयं च ॥ " उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वृचपरिशिष्टे– 'अथातो वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्यास्यामः । पुण्येह्न्युदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते आज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ समुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ तत्त्वायामीति पञ्च त्वं नो अग्ने इति द्वे इमं मे वरुणेति च स्विष्टकृतं नवमम् । मार्ज-नान्ते धेनुं तारयेत् । अवतीर्यमाणामनुमन्त्रयेत् "इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूताः अमृताः सन्तु नित्यम् ॥ मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकाल्लोकं तरते तीर्यते च " इति पुच्छाग्रेऽन्वारब्ध उत्तीर्यापो अस्मान्मातरः शुन्धयंत्वित्यथापराजितायां दिश्युप-स्थापयेत्सूयवसाद्भगवतीति हिं कृतं चेद्धिंकृण्वतीत्यलंकृतां विप्राय दद्यादितरां नाशक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामिति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत इति ' ॥ विस्तरस्तु मात्स्योक्तोऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः ॥

वास्तुशास्त्रमें लिखा है ईशानादि अष्टदिशाओंमें निर्मित कूप क्रमसे ऐश्वर्य, पुष्टि, पुत्रनाश, स्त्रीनाश, मृत्यु, सम्पत्ति, शत्रुकी पीडा, कुछ सुख करता है और मध्यमें बनवाया हुआ घर और धन नष्ट करता है, बह्वृच परिशिष्टमें इसकी उत्सर्गविधि लिखी है अब बावडी, कूप, सरोवरका पूजन लिखते हैं, अच्छे दिन जलके निकट अग्न्याधान करै उसपर वरुणदेवतावाले चरुको पकावे, फिर 'तत्त्वा यामि' इत्यादि ऋचासे, 'इमं मे वरुण' इस मन्त्रसे तो आहुतियोंसे स्विष्टकृत् हवन करने उपरान्त मार्जन करै फिर गौको जलमें तैराय उससे यह प्रार्थना करै कि, हे गौ ! इस जलको तू शुद्ध और निर्मल कर यह जल सदा पवित्र अमृतरूप रहै, फिर मुझे तराती हुई तू तीर्थाभिषेक सम्पादन कर । तथा लोकसे लोक तरता तराता है इस मन्त्रसे पूंछका अग्रभाग थामकर 'आपो अस्मा' इस मन्त्रसे दक्षिणा और उस गौका गमन करावे तब "सूयवसाद्भगवती" इत्यादि तीन मन्त्रोंसे गौको आभूषण पहराय छोड दे उसे वा और गौको ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करै फिर शक्तिसे दक्षिणा देकर कहै देवता और पितर प्रसन्न हों फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराय स्वस्तिवाचन करावे, इस विधिका विस्तार मत्स्यपुराणमें हमारी निर्मित कीहुई जलोत्सर्गविधिमें जानना चाहिये ॥

कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये–"सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् । कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्प्रष्टव्यमसंस्कृतम् ॥ " तथा–"वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम् ॥ अपेयं तद्भवेत्सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ "

कूप आदिका उत्सर्ग न करै, तो उसमें दोष भविष्यपुराणमें यह लिखा कि, जल सदा पवित्र होता

है पर संस्कारहीन जल अपवित्र होताहै, हे राजन् ! असंस्कृत जलको कुशाके अग्रसे भी न छुए, तथा बावडी, कूप, सरोवर इनके असंस्कृत जलको न पान करै, यदि पीले तो चान्द्रायण व्रत करै ॥

अथ वृक्षारोपणम् ।

चण्डेश्वरः–"आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरंगमवारुणाश्च । एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपदिशंति धीराः" ॥

अब वृक्षारोपण कहते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, पुनर्वसु, मृगशिर, मघा, पुष्य, विशाखा, रेवती, मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें वृक्ष लगाना मनुष्योंको हितकारी है यह पण्डित कहते हैं ॥

अथ मूर्तिप्रतिष्ठानिर्णयः ।

वसिष्ठः–"हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु । तिस्रोत्तराधातृशशांकभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥" मात्स्ये–"चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥" नारदस्तु चैत्रं निषेधति–'विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु' इति ॥ तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः । 'माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत्' इति विष्णुधर्मोक्तेरिति हेमाद्रिः ॥

अब मूर्तिप्रतिष्ठाको कहतेहैं । वसिष्ठ कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा और श्रवणसे तीन, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्रोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठफल देती है. मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख, माघमें सब देवोंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठहै. नारदने तो प्रतिष्ठामें चैत्रमासको वर्जित कियाहै कारण कि, यह कथन है कि, चैत्रसे रहित माघ आदि पांच महीनोंमें प्रतिष्ठा करै, इस वाक्यसे यहां विकल्प है. हेमाद्रिने यहां माघमहीना विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें कहा है कारण कि, विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, माघमासमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनेवालेको नष्ट करनेवाली है और फाल्गुनमें शुभ देती है, यह विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै ऐसा हेमाद्रि कहते हैं ॥

मात्स्ये–"दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा । विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा ॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् । षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति । भद्रकाल्याः कृता यत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ । एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति । कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् । पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत् । आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा । हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा ॥ अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते" ॥ ९ ॥

मात्स्यमें लिखाहै कि, प्रतिपदाके दिन दृढ (सदा रहनेवाली) धनकी करनेवाली, स्फीत अर्थात् अतिशय वृद्धि करने वाली होतीहै, तथा द्वितीया आदि पूर्णिमा पर्यंत पन्द्रह १५ तिथियोंमें कीहुई प्रतिष्ठा क्रमसे धनसे युक्त, धन देनेवाली, नाशकारक, लक्ष्मीसे युक्त, तथा कर्ताको वरदायक, लक्ष्मीयुक्त,

रोगनाशक, बहुत धान्यकी समवृद्धि कर्ता, नाशवान्, धर्मकी वृद्धिके करनेवाली, सर्व कामानाओंकी दाता, सर्व काम दाता, सर्वकामप्रद, नाश कारक, कर्ताकी नाशक, सम्पूर्ण कामनाओंकी दाता होती है और चतुर्थीमें यमराज तथा गणेशकी प्रतिष्ठा सुख और हितदायी होती है, नौमीमें भद्रकालीकी प्रतिष्ठा करनेवालेको प्रसन्न करनेवालीहै इससे इनसे सिवायकी प्रतिष्ठाओंमें पूर्वोक्त फल जानना; मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मूल, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर, अनुराधा, स्वाति ये नक्षत्र प्रतिष्ठामें उत्तमहैं ॥

श्रीपतिः--"रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवाऽनूराधैन्दवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्भैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च । आनन्दकृत्कल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥"

श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, मृगशिर, पुष्य, नक्षत्रोंमें विष्णुकी तथा पुष्य, श्रवण, अभिजितमें इन्द्र, ब्रह्मा, कुबेर, स्वामिकार्तिककी अनुराधामें सूर्यकी हस्त, मूल नक्षत्रमें दुर्गा आदिकी स्थापना उत्तम है, गणेश, रक्ष, यक्ष, भूत, असुर, प्रमथ, फणी, (शेष) सरस्वती आदिकी रेवतीमें, सुगत (जिन) की श्रवणमें अन्यलोकपालोंकी धनिष्ठामें स्थापना उत्तम कहीहै इनमें अखिल (सम्पूर्ण) देवताओंका स्थिरनक्षत्रोंमें स्थापना उत्तम हैं, सूर्यआदि वारोंमें कीहुई प्रतिष्ठा क्रमसे तेजस्विनी मंगलकारी, अग्निदाहकारक, धनदाता, बलवान्, आनन्दकर्ता, कल्प (सामर्थ्य) की नाशकारक होतीहै ॥

माधवीये वैखानसः--"मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥" वैशब्दोऽप्यर्थे ॥ लिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषः हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये -"उत्तराशागते भानौ लिङ्गस्थापनमुत्तमम् । दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षाद्धं भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै दक्षिणायने । स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये ॥ प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद्वरदयोगदम् । हेमन्ते-"ज्ञानदा चैव श्रेष्ठा स्यादयने मुक्तिमीहताम् । दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः" इति ॥ शैवसिद्धान्ते--"शेखरोक्तेर्मुक्तिकामं शिशिरे गर्वभूतिदम् । लक्ष्मीप्रदं वसन्ते च ग्रीष्मे च जयशान्तिदम् । यतीनां सर्वकाले च लिङ्गस्यारोपणं मतम् ॥"

माधवीयमें वैखानस कहतेहैं कि, माता, भैरव, वाराह, नृसिंह, विष्णु, महिषासुरघातिनी, दुर्गा- इनका दक्षिणायनमें स्थापन करै, यहां अपिके अर्थमें वैशब्द है, अर्थात् उत्तरायणमें भी स्थापन करै, लिंगप्रतिष्ठामें तो हेमाद्रिमें लक्षणसमुच्चयके वाक्यसे यह विशेष लिखाहै कि, उत्तरायण सूर्यमें लिङ्गस्थापन श्रेष्ठ है, दक्षिणायनमें स्थापित किया लिंग डेढ १॥ वर्षतक भयदायी है, इससे दक्षिणायन सूर्यमें अपने घरमें शिवलिंगका स्थापन न करै, शिशिर आदि तीन ऋतुओंमें स्थापना करना चाहिये प्रावृट् ऋतुमें शिवलिङ्ग स्थापन करनेसे वर और योग देताहै हेमन्तमें ज्ञानको प्रदान करताहै और शैवसिद्धांतमें शेखरका तो यह कथन है कि, भोगकी इच्छावाला उत्तरायणमें और मोक्षका अभिलाषी दक्षिणायनमें लिंगकी प्रतिष्ठा करै, और मलमासमें लिंगकी प्रतिष्ठा त्याज्य है इसीसे मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्य गर्व और भूतिका

दायक लिंग स्थापन शिशिर तथा हेमंतमें करै, वसंत तथा ग्रीष्मऋतुमें लिंगका स्थापन क्रमसे लक्ष्मी और जयशांतिको देताहै यति (संन्यासि) योंको तो लिंगका स्थापन सब कालमें करना ॥

रत्नावल्याम्–"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु । मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥" विष्णुरप्याह ॥ तत्रैव वैखानसः–"मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा । मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च ॥ वृषे वाप्याश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत् ॥" बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठामुपक्रम्य–'द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि' इति ॥ कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः ॥ सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–"माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे वरसंयुता ॥ आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा । श्रावणे धनहीना स्यात् प्रौष्ठपादे विनश्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्त्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च ॥ ४ ॥" इति ॥ अत्र श्रावणाऽश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः ॥ माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः ॥ तत्र तस्योक्तेः ॥

रत्नावलीमें भी लिखा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ इन पांचमासोंके शुक्लपक्षमें लिंगस्थापन उत्तम है विष्णु तथा वैखानसका वाक्यहै कि, ब्रह्माने पूर्व मार्गशीर्ष पौष ये दो मास निन्दित कहेहैं, और फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आश्विन, श्रावण इन मासोंमें भी श्रेष्ठहै, बौधायनसूत्रमें तो विष्णुकी प्रतिष्ठाका आरंभ करके यह लिखाहै कि, भादोंकी द्वादशी (श्रोणा) और कृत्तिकासे लेकर विशाखा पर्यन्त जो शुद्ध नक्षत्रहैं वे श्रेष्ठ हैं. हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका कथनहै कि, माघादि बारह महीनोंमें सब देवोंकी की हुई स्थापना क्रमसे यह फल देती है कि, कर्त्ताका नाश, कल्याण, संसारको सुख, वरयुक्त, आज्ञामें तत्पर, धर्मकी वृद्धि, धनका नाश, विनाश, हानि, वह्निसे नाश, अतुल सौभाग्य, सर्वोत्तम पुष्टि, तथा मलमासमें कीहुई प्रतिष्ठा कर्ता और अपनेको दोष देनेवाली होतीहै, इसमें श्रावण और आश्विनका निषेध और मार्गशीर्षकी विधि प्रथम कहेहुए वाक्योंसे विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है यह हेमाद्रिका कथनहै, और माघ, श्रावण, भाद्रपदका निषेध शिवकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है, कारण कि, इनमें शिवकी प्रतिष्ठा लिखी है ॥

तत्रैव देवीस्थापननिर्णयः ।

देवीस्थापने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे–'देव्या माघेऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा ।' तथा–"न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम् । सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" अन्यश्चात्र विचारो हेमाद्रौ ज्ञेयः ॥ नारदः–"हन्त्यर्थहीना कर्त्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥"

वहांही देवीकी प्रतिष्ठामें देवीपुराणके कथनसे यह विशेष लिखाहै कि, देवीका स्थापन आश्विन तथा माघ महीनेमें उत्तम और सम्पूर्ण इच्छाओंको देताहै इसमें तिथि, नक्षत्र तथा व्रतका दिन कारण नहीं, अर्थात् समयका नियम नहीं सम्पूर्ण समयमें करना और विशेषकर कृष्णपक्षमें करना, इसमें और विचार हेमाद्रिमें जानना चाहिये । नारदने लिखाहै कि, अर्थसे (धन) हीन प्रतिष्ठाके करनेवालेको, मंत्रसे हीन

१ अन्नहीन राष्ट्रको मन्त्रहीन ऋत्विक्को और श्रद्धाहीन यज्ञ कर्ताको नष्ट करता है इससे यज्ञकी समान शत्रु नहीं है ।

कलिक्को लक्षणोंसे हीन स्त्रीको प्रतिष्ठा नष्ट करतीहै, निदान प्रतिष्ठाकी तुल्य और कोई भी वैरी नहींहै ॥

अत्राधिकारिनिर्णयः ।

अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे-"वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा। ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः। भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः॥ मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः॥ लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा" ॥ ३ ॥ शिवसर्वस्वे भविष्ये-"यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः ॥ तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमान् ॥"

इसमें अधिकारी तो कृत्यकल्पतरु ग्रन्थमें देवीपुराणमें ये लिखेहैं कि, वर्ण और आश्रमोंके भेदसे देवताओंका स्थापन करना चाहिये अन्यथा न करै, ब्राह्मणको गायत्रीसहित ब्रह्माका स्थापन करना चाहिये, तथा सुखकी इच्छावाले चारोंवर्णोंको विष्णुका स्थापन करना चाहिये, चारोंवर्ण तथा अंत्यज (अतिशूद्रको) भैरवका स्थापन करना चाहिये, संपूर्णलोक सुरोंमें श्रेष्ठ मातृकाओंका स्थापन-तथा अर्चन करैं, गृहस्थी और यति लिंगका स्थापन करके निरन्तर पूजन करै, शिवसर्वस्वमें भविष्यपुराणके मतसे लिखा है कि, जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र मेरे तत्पर होकर देवताओंमें प्रथम तथा जगत्के स्वामी मेरा लिंगमें अर्चन करताहै, उसको मैं प्रसन्न होकर उत्तमोत्तम सुंदर लोकोंका प्रदान करताहूँ ॥

तिथितत्त्वे स्कान्दे-"शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये। तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते । एवं दिनेदिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम् ॥ संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् । नमोऽन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ॥ ३ ॥" एतच्च पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गपूजाविषयम् ॥

तिथितत्त्वमें स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, हे प्रिये ! शूद्रभी जो मेरी पूजाके कामोंको सदैव करताहै हे चन्द्र खण्डसे विभूषित ! मैं उसकी पूजाको ग्रहण करता हूं, हे शोभन व्रतवाली ! हे देवि ! ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थको प्रतिदिन इसीप्रकार अम्बिकापतिका पूजन करना चाहिये, संन्यासी ॐकार मात्रसे महादेवका अर्चन करै, और स्त्री 'ॐनमः शिवाय' इस मन्त्रसे अर्चा करै, ये वाक्य पुराणोंमें प्रसिद्ध विश्वेश्वर आदि पुरातन लिंगोंके पूजाके विषयमें हैं ॥

स्त्रीशूद्रस्थापितविग्रहादौ निर्णयः ।

यानि तु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये-"यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा । स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥ पाखण्डपूजितं लिंगं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् । आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥ योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः। स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं वसेत् ॥ ४ ॥ " इत्यादीनि ॥ तानि नूतनस्थापित-लिङ्गादिविषयाणि ॥ "यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि । तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेत्" इति तत्रैवोक्तेः ॥

और जो कि, त्रिस्थलीसेतुमें नारदपुराणके यह वाक्यहैं कि, जो मनुष्य शूद्रसे स्पर्शहुए लिंग तथा विष्णुकी मूर्तिकी अर्चा करताहै वह नरकोंके दुःखको सूर्य चन्द्रमातक भोगताहै, तथा पाखण्डियोंसे अर्चित लिंगको नमस्कार कर पाखण्डताको प्राप्त होताहै, और आभीरोंसे पूजित लिंगको प्रणाम करके नरकको गमन करताहै तथा जो कि, ये वाक्यहैं कि, छः (पूर्वोक्त शूद्र आदिकों) से पूजे हुए लिंगको तथा विष्णुको प्रणाम करताहै वह कोटिकुलसहित कल्पपर्यन्त नरकमें गमन करता है, वे नवीन स्थापन किएहुए लिंगोंके विषयमें जानना, कारण कि, वहांहीं यह लिखाहै कि, जबसे मन्त्रके जाननेवालोंने जिस लिंगकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करदी तबसे लेकर फिर उस लिंगका शूद्र और स्त्री स्पर्श न करैं॥

स्त्रीशूद्राणां प्रतिष्ठाधिकारनिषेधनिर्णयः।

प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः—"स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर। स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य वा॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः। इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु॥ शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा। केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते॥ ३॥" इति बृहन्नारदीयस्कान्दोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः॥ चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः॥ तत्रैव गौतमः—'शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः॥' वाचस्पतिमतम्—'प्राक्पश्चिमोदगास्यस्तु प्रातः सायं निशासु च' इति॥ प्रयोगपारिजाते गृह्यपरिशिष्टे—'प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः।' एतच्च स्थिरप्रतिमाविषयम्। अन्यत्र चलार्चासु॥

प्रतिष्ठामें शूद्रआदिकोंका अधिकार नहींहै यह त्रिस्थलीसेतुमें पितामह (हमारे बाबा) जीके चरणोंने लिखाहै कारण कि, बृहन्नारदीयपुराणमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, हे नृप ! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित तथा शूद्र इनको विष्णु तथा शंकरकी प्रतिमाके स्थापन करनेका अधिकार नहीं है, जो कि, शूद्रसे स्थापित किए लिंग तथा विष्णुको प्रणाम करताहै वह इस लोकमें ही अत्यन्त दुःखोंको प्राप्तहोताहै परलोकका तो कहना क्याहै शूद्र, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, स्त्री, पतित ये विष्णु तथा शिवका स्पर्श करके नरकको गमन-करते हैं, विष्णुआदिकी प्रतिष्ठाके विषयमें 'चतुर्वर्णैः' इत्यादि लिखेहुए पूर्व वाक्यसे शूद्रका विकल्पहै अर्थात् शूद्रको अधिकार भी है, यह तो हमभी युक्तही देखते हैं. वहांही गौतमने लिखाहै कि, शुद्ध मनुष्य उत्त-रको मुख करके सदैव शिवजीका अर्चन करै. वाचस्पतिका तो यह कथन है कि, प्रातःकाल सायंकाल तथा रात्रिमें क्रमसे पूर्व पश्चिम तथा उत्तरकी ओर मुखकरके पूजाकरै प्रयोगपारिजातमें गृह्यपरिशिष्टका कथन है कि, जिनप्रतिमाओंका पूर्वको मुखहै, उनका पूजन उत्तरको मुख करै, हो और दूसरोंका प्राङ्मुख होकर करै, यहभी स्थिरप्रतिमाके विषयमें है चलदेवकी पूजाके विषैतो त्यागकरै॥

प्रतिमानिर्णयः।

अथ प्रतिमा भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये—"सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत्। पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा॥ रीतिः—पित्तलम्॥ शुद्धदारुमयी वापि देवतार्च्या प्रशस्यते। अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्ति यावदेव तु॥ गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधः॥ २" पञ्चरात्रे तु—'मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयीं न तु'

इति निषेध उक्तः ॥ भागवते–"शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ " काष्ठं मधुकस्यैव । "तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे । कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनार्चयेत् " ॥ इति वराहोक्तेः ॥

अब प्रतिमाओंको लिखतेहैं, मार्गवार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणका लेख है कि, सोना, चांदी, तांबा,मृत्तिका, पाषाण और धातुसे युक्त पीतल, कांसी, शुद्ध काष्ठकी प्रतिमा उत्तम होतीहै, अंगूठेके पर्वसे लेकर जितनी एक (बिलस्त) होतीहै उतनी प्रतिमा घरोंमें स्थापित करै, इतनेसे अधिक उत्तम नहीं होती यह पंडितोंका कहना है पंचरात्रमें तो यह निषेध लिखाहै कि, मृत्तिका, काष्ठ, लाख, गोमेद, मधूच्छिष्ट (मोम) की मूर्ति न बनावे. भागवतमें भी कहाहै कि, शिला काष्ठ लोहेकी तथा लेप्य लिपी लिखीहुई सिकता रेती की मनोमयी तथा मणिकी निर्मित हुई ये आठ प्रकारकी मूर्तियां होतीहैं, यहां काष्ठशब्दसे महुएका ही ग्रहण है कारण कि, वराहपुराणमें लिखाहै कि, तहां हे वसुन्धरे ! काष्ठोंमें मधुकको लाकर उसकी प्रतिमा निर्माण करै फिर उसकी प्रतिष्ठाविधिसे पूजन करै ॥

देवीपुराणे–"सप्तांगुलं समारभ्य यावच्च द्वादशांगुलम् । गृहेष्वर्च्चा समाख्याता प्रासादे वाधिका शुभा " ॥ तिथितत्त्वे कालिकापुराणे–"प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य वा हरेः ॥ अन्येषामपि देवानां प्रतिमासु च पार्थिव । प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेवस्य बीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च । तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥ एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेपि समाचरेत् । अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन " ॥ १ ॥

. देवीपुराणमें भी कहाहै कि, सातअंगुलसे लेकर बारह अंगुलतक परिमाणकी घरोंमें प्रतिमा लिखीहै, प्रासाद (मंदिर) में तो इससे अधिक उत्तम है. तिथितत्त्वमें कालिकापुराण का कथन है कि, प्रतिमाके दोनों कपोलोंको दाहिने हाथसे छूकर उसमें देवता वा विष्णुकी प्राणप्रतिष्ठा करै, हे राजन् ! दूसरे देवताओंकी प्रतिमामें भी देवत्व (देवतापन) की सिद्धिके निमित्त प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये, मन्त्रको जाननेवाला प्रतिमाके हृदय पर वासुदेव मन्त्रके बीजसे वा 'तद्विष्णोः' इत्यादि मन्त्रसे अंगूठा रखकर इनमन्त्रोंसे हृदयमें प्राणप्रतिष्ठा करै, कि, इसके निमित्त प्राण स्थित हों, इसके निमित्त प्राण गमनागमनको प्राप्तहों, और इसमें जो कोई देव है पूजाके निमित्त देवत्वको प्राप्तहो ॥

हयशीर्षपञ्चरात्रे–"अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात् । आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति ॥ " प्रयोगपारिजाते व्यासः–"प्रतिमापटयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥ " लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये–"मृद्भस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं तथा । कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥ वार्क्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम् । कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम् " ॥ २ ॥

हयशीर्षपंचरात्रमें भी कहाहै कि, अर्चकके तपके योगसे, तथा अतिशयपूजाके होनेसे, तथा प्रतिमाके रूपके तुल्य होनेसे देवता उसमें स्थित होतेहैं । प्रयोगपारिजातमें व्यासने कहाहै कि, पट्ट वा

यन्त्रमें लिखी हुई प्रतिमाको सम्पूर्ण स्नान न कराना, किन्तु पर्वके दिन अथवा जब मृत्तिका आदिसे मलिनहोजाय, तब स्नान करावे. तिथितत्वमें भविष्यपुराणके वाक्यसे शिवलिंगके विषे यह विशेषवर्णन कियाहै कि, मृत्तिका, भस्म, गोबर, चून ताँबा, कांसीसे लिंगको निर्माणकर जो एकवारभी पूजा करताहै वह दशसहस्र १०००० कल्प पर्यंत स्वर्गमें निवास करता है, हे विप्रेन्द्र ! धनदायक काष्ठके लिंगको तथा सम्पूर्ण कामनादायक स्फटिकके लिंगको तुम पूजो इससे तुमको वांछित फलकी प्राप्ति होगी ॥

तत्रैव कालकौमुद्यां स्कान्दे-"अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः । कुर्वीतांगुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत्" ॥ अक्षोऽशीतिर्गुञ्जाः । गुञ्जाः पञ्चाल्पमाषकः ॥ ते षोडशाजः कर्षोऽस्त्री' इत्यमरकोशात् ॥ प्रयोगपारिजाते क्रियासारे-"नवाष्टसप्तांगुलिकं लिङ्गं श्रेष्ठमिहोच्यते । षट्पञ्चकचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ त्रिद्व्येकांगुलिमानं यत्त्रिविधं तत्कनीयसम् । एवं नवविधं प्रोक्तं चरलिङ्गं यथाक्रमम्" ॥ २ ॥

वहांही कालकौमुदीमें स्कंदपुराणका कथनहै कि, अक्षसे थोडे परिमाणका तथा अंगुष्ठसे छोटे परिमाणका लिंग कभी भी न बनावै, अस्सी ८० चौटलियोंको अक्ष कहते हैं कारण कि, अमरकोषमें कहाहै कि, पांचचौटलियोंको अल्पमाष और उन सोलह अल्पमाषोंको अक्ष तथा कर्ष कहतेहैं. प्रयोगपारिजातमें क्रियासारका यह कथन है कि, नौ, सात, आठ अंगुलका लिंग श्रेष्ठ छः पांच तथा चार अंगुलका लिंग मध्यम, तीन दो तथा एक अंगुलका लिंग कनिष्ठ होताहै इसप्रकार यथाक्रम नौप्रकारका चर लिंग होताहै ॥

पञ्चसूत्रीनिर्णयः ।

अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः गौतमीतन्त्रे-"लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो मतः । परिधिस्तत्र गुणितस्तद्वत्पीठं व्यवस्थितम् ॥ प्रवालिका तथैव स्यात्पञ्चसूत्रविनिर्णयः ॥" अत्रेदन्तत्त्वम् ॥ लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा तत्त्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठं विस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात् ॥ पीठोच्चता तु लिंगोच्चतातो द्विगुणा । पीठमध्ये लिङ्गाद्द्विगुणस्थूलं पीठोच्चता तृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्वं अधश्च समं वप्रद्वयं त्रयं वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा तदन्तः संलग्नतत्समं खातं कृत्वा पीठाद्बहिर्लिङ्गसमदीर्घां पीठार्धदीर्घां वा मूले दैर्घ्यसमविस्तारां तृतीयांशेन मध्ये खातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्यादिति" ॥ अत्र मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम् ॥

अब पंचसूत्रीका निर्णय लिखतेहैं। गौतमीतंत्रमें कहाहै कि, लिंगके मस्तकका विस्तार लिंगके ऊँचाईकी तुल्य करना और परिधि (गोलाई) तथा जलहरी और प्रणालिका (मोरी) ये उससे तिगुने प्रमाणकी निर्माण करनी यह पंचसूत्रीका निर्णय कहाहै। इसमें तत्वतो यहीहै कि, लिंगका मस्तक लिंगकी ऊंचाईकी तुल्य बनाकर फिर उससे तिगुना जिसमें सूत लिपट सकै, इतना स्थूल लिंग निर्माण करै फिर उतनाही नीचे ऊपरसे चौडाहो इसप्रकार गोल वा चौकोरही जलहरीको निर्माग करै उसकी ऊँचाई लिंगकी ऊंचाईसे दुगनी करनी चाहिये उसका मध्यभाग उसकी स्थूलतासे दुगुना हो, आसनकी ऊंचाईके तीसरे भाग तितना कण्ठ बनाकर

---

१ पंचसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्। यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेदिति शिद्धान्तशेखरे ॥ अर्थात्-पंचसूत्रका विधान पार्थिवमें न विचारे जैसे हो वैसे मनोहर कल्पना करै ॥

और उसके नींचे ऊपर बराबरके दो परकोट निर्माण कर लिंगके विस्तारके छठे भाग तितनी आसनके ऊपर बाह्यमेखला (लकीर) को बनाकर वह उसके भीतर लगी हो, अथवा उसके समान खुदी हो, आसनसे बाहर लिंगके तुल्य लम्बीहो अथवा आसनसे आधे प्रमाणकी हो, और मूलमें दीर्घताके समान चौडीहो आगेसे उससे आधे विस्तारकी हो, और मध्यमें उसके तीसरे भागकी समान खोदी हो ऐसी पीठके तुल्य मेखलासहित प्रणालिकाको निर्माण करै, इसमें प्रमाण सिद्धान्तशेखर तथा शैवागममें लिखे देखलेने चाहिये ॥

तिथितत्त्वे ब्राह्मे–'सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ॥' तत्रैव वाराहपाद्मयोः–"गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा । द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा ॥ शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च । द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा ॥ नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा । गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुंधरे ॥ एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्गृही ॥ शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि ॥ विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि । शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ॥ खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा" ॥ ६ ॥ वाराहे–"दद्याद्भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः । सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत् ।" तत्रैव–"यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् । तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥" देवीपुराणे–"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते । स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा" ॥

तिथितत्वके विषय ब्रह्मपुराणका वाक्यहै कि, शिव सूर्यकी पूजाके विना सब पूजाओंमें कमल उत्तमहै, वहांही वाराह तथा पद्मपुराणमें लिखाहै कि, हे वसुंधरे घरमें दो लिंग, दो शालिग्राम, दो द्वारकाचक्र, दो सूर्य, तथा तीन शक्ति, तीन गणेश, दो शंख, खण्डित प्रतिमा, मत्स्यकूर्म आदि दशों अवतार, अग्निसे दग्ध, भग्न प्रतिमाओंको न पूजै, कारण कि, इतनोंके पूजनेसे गृहस्थी नित्य उद्वेगको प्राप्त होताहै, शालिग्राम सम (चार छः आदि) पूजने और सममें भी दोकी पूजा न करै, विषममें एकके सिवाय तीन आदि न पूजने, द्वारावतीचक्र सहित शालिग्राम भग्नभी हो तो भी उनकी पूजा करनी कारण कि, शालिग्रामकी शिला भग्न हुई भी सब उत्तम होती हैं. वाराहपुराणमें भी कहाहै कि, जो भक्तके निमित्त सुवर्णसहित शालिग्रामको देता है, हे देवि ! उसको पृथ्वीदानका फल प्राप्त होताहै, वहांही यह कहाहै कि, जो कि, शालिग्रामकी सौशिलाओंका भक्तिसे अर्चन करता है उसके फलको कहनेको मैं सौ वर्षमें भी समर्थ नहीं हूँ, देवीपुराणमें कहाहै कि, हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये निज धर्ममें तत्पर हुए विष्णुकी आराधना करैं अन्यथा न करैं ॥

अविभक्तानां पृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः–"पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत् पृथक्" ॥ तत्रैव विष्णुधर्मे–"शालग्रामशिलां वापि चक्राङ्कितशिलां तथा । ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥" इदं स्पर्शसहितपूजाविषयम् ॥ "शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय

इच्छती । सनाथा मृतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः । स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणाञ्च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च" ॥ ३ ॥ इति स्कान्दात् ॥

अविभक्तों (इकट्ठों) को भी प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने भिन्न २ देवपूजा लिखी है कि, एक-पाकवाले भी द्विजातियोंको ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवपूजा तथा सन्ध्या भिन्न २ नित्य करनी चाहियें । तहांही विष्णुधर्ममें कहा है कि, शालिग्रामकी शिला, द्वारावतीचक्र शिलाका ब्राह्मणको नित्य पूजन करना चाहिये, क्षत्रिय आदिको न पूजनी यह वाक्य स्पर्शसहित पूजाके विषयमें है, कारण कि, स्कन्दपुराणमें कहा है कि, शूद्र, यज्ञोपवीत रहित पुरुष, स्त्री तथा पतित ये महादेव और विष्णुका स्पर्श करनेसे नरकमें जाते हैं, कल्याणकी इच्छावाली ब्राह्मणी भी विधवा अथवा सुहागिन हो उसे भी विष्णु और शिवको न छूना, चाहिये कारण कि, फिर उसका इस लोकमें प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, हे राजन्! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, तथा शूद्रको विष्णु तथा शिवके स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है ॥

स्पर्शरहिता तु तयोर्भवत्येव ॥ "शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे । स्त्रीशूद्रकर-संस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन । स्वपते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुंधरे । दूरादेवा-स्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः ॥ ३ ॥" इति वाराहोक्तेः ॥ शालग्रामशिलामात्रे निर्बन्धो न प्रतिमादौ । "सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः । लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च" इति तत्रैवोक्तेः । "चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्या-स्त्रयो राजन्यजातिभिः । वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः" इति स्कान्दात् अन्ये तु दीक्षितविषयत्वेन व्यवस्थामाहुः ॥

स्पर्शरहित पूजा तो विष्णु शिवकी करनी चाहिये, कारण कि, वाराहपुराणमें लिखा है कि, हीन वर्णको शालिग्रामका स्पर्श करना न चाहिये, कारण कि, स्त्री शूद्रके हाथका स्पर्श वज्रके स्पर्शसे भी अधिक होता है और जो शूद्र वा स्त्री यदि मोहसे स्पर्श करले तो वह प्रलयपर्यन्त घोर नरकमें जाते हैं, यदि शूद्र वा स्त्रीकी अधिक भक्ति हो तो हे वसुन्धरे ! स्पर्शके विना दूरसेही भलीप्रकार सावधान होकर पूजन करें, यह स्पर्शमें शालिग्राम मात्रके निषेधमें है और प्रतिमा आदिमें नहीं कारण कि, वहांही कहा है कि, संपूर्ण देवताओंकी प्रतिमा प्राणियोंसे रचे लिंग सब वर्णोंको पूजन करने योग्य हैं स्कन्दपुराणमें भी कहाहै कि, चार २ लिंग ब्राह्मणोंको, तीन क्षत्रियोंको दो वैश्योंको तथा एक शूद्रको पूजन करने योग्य हैं, और तो दीक्षित और अदीक्षितके विषयसे व्यवस्था लिखते हैं ॥

विष्णुधर्मे–"तयोरसंभवेऽर्चा वै सा चेह नवधा स्मृता । रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा ॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा द्रुमजा तथा । अधमाधमा च विज्ञेया मृण्मयी प्रतिमा च या ॥ २ ॥" एषां फलानि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ "नार्च्या गृहेऽश्मजा

---

१ यथा कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता । प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी ॥ वाल्मी० पवित्र्याण्यघमर्षणानि जपन्त्यां महाश्वेतायामिति कादम्बर्याम् । अर्थात्–रामायणके अयोध्या-काण्डमें कौसल्याने विष्णुकी पूजा की है महाश्वेताने अघमर्षण जपा है यह उन्हीं स्त्रियोंके निमित्त है जो उपनीतवत् हों वही अगले श्लोकमें खोलदिया है स्त्रीणामनुपनीतानामिति ॥

मूर्तिश्चतुरंगुलतोऽधिका । न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता ॥ एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥ २ ॥" तत्रैव पाद्मे शालग्रामं प्रक्रम्य-"तत्राप्यामलकीतुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत् । यथायथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम् ॥" तथा-"यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते । शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः" ॥

विष्णुधर्ममें कहा है कि, उन दोनोंके न मिलनेसे प्रतिमाका अर्चन करे, वह नौ प्रकारकी है रत्न, सुवर्ण, चांदी, ताँबा, पीतल, लोहा, पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका इनकी निर्मित हुई, जो मृत्तिकाकी प्रतिमाहै वह अधमसे भी अधम जाननी इनके फल वहांही लिखे हैं, वहांही ब्रह्मपुराणमें शालिग्रामके प्रकरणका आरम्भ करके यह कहा है कि, तिसमें आमलेकी समान जो कि, सूक्ष्मही हो ऐसी शालिग्रामकी शिला पूजनीय है, कारण कि, जैसी २ शिला सूक्ष्म होगी वैसाही उत्तम फल होगा, तैसेही जो यवमात्रको गर्त कहते हैं, यवके आधेको लिंग कहते हैं वह शिवनाभि नामसे प्रसिद्ध है तीनों लोकोंमें दुर्लभ है ॥

तत्रैव-"शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ॥ यो मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेऽन्तिकम् । स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥ २ ॥" तत्रैव-"चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत् । चक्राङ्कमिथुनात्सार्द्धं शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥" तत्रैव वाराहे-"म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति । योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे ॥" तत्रैव शालग्रामं प्रक्रम्य-'क्रयक्रीता परिज्ञेया मध्यमा याचिताऽधमा' ॥ प्रयोगपारिजाते वाराहे-"एवंलक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥"

वहांही कहा है कि, शालिग्रामकी शिला जहां कहीं स्थित हो वह क्षेत्र चारों ओरसे तीन योजन वाराणसीसे भी एक जौ अधिक होता है, जो उस क्षेत्रके निकट मृत्युको प्राप्त होता है अथवा मरेहुएको जो वहां लेजाय तो उन सबको मोक्ष प्राप्त होता है यह सत्य है, अन्यथा नहीं है। तहांही लिखा है कि, द्वारावतीचक्रके मिथुनको पूजै एककी पूजा न करै, और उसके साथ शालिग्रामका पूजन करना चाहिये। तहांही वराहपुराणमें कहा कि, म्लेच्छदेशमें अथवा शुद्धदेशमें जहां कहीं द्वारावती चक्र विद्यमान हो हे वसुन्धरे! तहां तीन योजनतक मेरा क्षेत्र है, वहांही शालिग्रामका प्रारम्भ करके जो मूल्य देकर लीहो वह श्रेष्ठ और जो मांगी हो वह अधम होती है, यह लिखा है. प्रयोगपारिजातमें वराहपुराणका लेख है कि, इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त परम्पराके क्रमसे आई और गुरूकी दीहुई उत्तम जाननी ॥

पार्थिवपूजानिर्णयः ॥

अथ पार्थिवपूजा नन्दिपुराणे-"आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी । वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥" तत्रैव-"गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने । ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः । सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंकाराद्यः षडक्षरः ॥" भविष्ये-'मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः । आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्यास्तु वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥" अत्र-'न प्राचीमग्रतः शंभोः' इति रुद्रयामले निषेधात् नान्तरालं प्राची किं तु प्रसिद्धैव । तिथितत्त्वे देवीपुराणे-"मृदाहरणसंघट्ट प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो

महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमः ॥ ३ ॥" स्कान्दे–'शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत् ॥'

अब पार्थिवलिंगकी पूजा लिखते हैं । नंदिपुराणमें कहा है कि, जो पार्थिवलिंगको पूजन करता है उसको आयु, बल, लक्ष्मी, पुत्र, धन, सुख तथा मनइच्छित वर मिलते हैं, इससे पार्थिवलिंगको संपूर्ण अर्थोंका साधक जानना चाहिये । वहांही कहा है गौ, भूमि, सोना, वस्त्र आदिके तथा बलि और फूलके निवेदनमें 'ॐनमः शिवाय' यह मंत्र सब अर्थोंका साधन करनेवाला जानना, आदिमें ओंकारयुक्त यह षड-क्षर मंत्र सब मंत्रोंमें श्रेष्ठ है, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वाआदि क्रमसे आठ मूर्ति शिवजीकी हैं वे आग्नेयीदिशातक पूजन करने योग्य हैं, वेदीपर लिंगमें शिवजीकी पूजा करै, शिवजीकी मूर्ति जिस दिशामें हो वह यहां प्राची (पूर्व) जाननी यह रुद्रयामलमें निषेध होनेसे प्रसिद्ध ही पूर्वदिशा लेनी चाहिये तिथितत्वमें देवीपुराणका वाक्य है कि, मृत्तिकाके निर्मित्त किए लिंगमें प्रतिष्ठा, आवाहन, स्नान, पूजन, विसर्जन करै, हर, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति, महादेव यह क्रमसे जानने । स्कन्द पुराणमें लिखा है कि, बिल्वपत्रके सूखे पत्तोंकोभी निवेदन करना चाहिये ॥

तत्रैव भविष्ये–'धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः । स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ " योगिनीतन्त्रे–" शिवागारे मलकं च सूर्यागारे च शङ्खकम् । दुर्गागारे वंशवाद्यं मधुरीं न च वादयेत् ॥ " श्राद्धहेमाद्रौ स्कान्दे–'स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं वास-सा आप्लुतः शुचिः' ॥ प्रयोगपारिजाते क्रियासारे–"मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् । अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् । अशून्यमस्तकं लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः ॥ २ ॥"

तहांही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जो मनुष्य धत्तूरोंसे शिवलिंगको एकवारभी पूजता है उसको लक्ष गोदानका फल प्राप्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठा होती है । योगिनीतंत्रमें कहा है कि, महादेवके मंदि-रमें मल्लक (बाजेका भेद) सूर्यके मंदिरमें शंख, दुर्गाके मंदिरमें वंशी तथा वीणाको न बजावै. श्राद्ध-हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, महादेवके निर्माल्यको स्पर्श कर वस्त्रोंसहित जलमें स्नानसे पवित्र होता है. प्रयोगपारिजातके क्रियासारमें कहा है कि, मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें फूलको लेकर पूजन करै, अंगुष्ठ और तर्जनीके अग्रसे निर्माल्यको अलग करै, फिर उस दूरकरी निर्माल्यको चण्डेशके निमित्त निवेदन करदे, पूजन करनेवाला लिंगके मस्तकको कभी खाली न रक्खै ॥

शूलपाणौ लैङ्गे–"वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्तनम् । न चैवापूज्य भुञ्जीत शिव-लिङ्गे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥" तिथितत्त्वे लैङ्गे–"विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया । पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥ "

शूलपाणिमें लिंगपुराणका कथन हैं कि, प्राणोंका त्याग, तथा शिर छेदन होना उत्तम है, परन्तु शिवलिंगमें शिवको पूजे विना भोजन करना उत्तम नहीं निदान मृतकसूतकमें भी शिवके पूजनको न छोडै. तिथितत्वमें लिंग पुराणका वाक्य है कि, भस्मके त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षमालाके धारण किये विना पूजेभी महादेव पूजन करनेवालेको फल नहीं देते । तिससे मृत्तिकाका भी त्रिपुण्ड्र मस्तकपर चढाले ॥

रुद्राक्षधारणे निर्णयः ।

रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये-"एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्गोवधाद्यघनाशकृत् ॥ त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत् । सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादि पापहृत् ॥ विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत् । भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ॥ दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ॥ एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः । द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः । चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः" ॥ ६ ॥ इति ॥ तथा-"विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत्" ॥ ३ ॥

रुद्राक्षके धारणमें विशेष शिवरहस्यमें कहा है कि, एकमुखी हो वह साक्षात् शिव होते हैं, वे ब्रह्महत्याको दूर करते हैं तथा सब स्रोतोंको अवध्य और अग्निको रोकते हैं, दोमुखवाले रुद्राक्षको हरगौरी लिखते हैं, वे गोहत्या आदि पापको दूर करते हैं, तीनमुखवालेको अग्निजन्मा लिखते हैं वह पापोंके समूहोंको दूर करता है, चारमुखवाले ब्रह्मा हैं उनसे मनुष्यकी हत्या दूर होती है, पांच मुखवाले कालाग्निहैं वह गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन तथा अभोज्यके भोजनके पापको दूर करते हैं, छः मुखवालेको गुह कहते हैं, वह सब भ्रूणहत्याके पापको दूर करते हैं, सातमुखवाले अनंत कहाते हैं उनसे सोनेकी चोरीका पाप नष्ट होता है, आठमुखवाले विनायक वह सब असत्यको नाश करते हैं, नौमुखवाले भैरव शिवकी सायुज्य मोक्षको करते हैं, दशमुखवाले विष्णु वह प्रेतभूतके भयको हरते हैं, ग्यारहमुखवाले रुद्र अनेक यज्ञके फल देते हैं, बारहमुखवालेको आदित्य कहते हैं, वह सब रोगके निवारक हैं, तेरहमुखवाले काम हैं, वह सब कामना और फल देते हैं, चौदहमुखवाले श्रीकण्ठ हैं, वह वंशके उद्धार करनेवाले हैं, तैसेही जो मंत्रके विना भूमिलोकमें रुद्राक्षको धारण करता है, वह जबतक चौदह इन्द्र भोगते हैं तबतक नरकोंमें जाता है, स्नानके समय पञ्चगव्य और पञ्चामृत ग्रहण करै, और रुद्राक्षकी प्रतिष्ठामें पञ्चाक्षरी मंत्र तथा 'त्र्यंबकं यजामहे' इस मन्त्रको जपै ॥

यद्वा 'ॐ अघोर ॐ ह्रें अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रें स्वाहा' अनेनाभिमंत्र्य धारयेत् । तथा-"अष्टोत्तरशतं कार्या चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमाः स्मृताः ॥ " प्रजापतिः-"मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुत्रार्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखम् । तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति" ॥ ३ ॥ इति ॥ पदार्थादर्शे बोपदेवः-"रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनवतिमितान् मस्तके विंशती द्वे षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः" ॥ १ ॥

अथवा (ॐ अघोर ॐ ह्रैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रैं स्वाहा) इस मंत्रसे प्रार्थना करके धारण करै, तैसेही माला एकसौ आठकी १०८ हो वा चौवन ५४ दानेकी हो अथवा सत्ताईस २७ दानेकी हो तिससे हीन अधम लिखीहै, प्रजापतिने कहा है कि, मोक्ष वा पुष्टिका अभिलाषी पच्चीस २५ दानोंसे, धनका अभिलाषी ३० से, किसीके मारनेका अभिलाषी १५ दानोंसे जपै, रुद्राक्षके २७ दानोंकी मालाको धारण करके पूजन करता है उसको कोटिगुणा फल होताहै, जो मनुष्य पृथ्वीपर रुद्राक्षको शिवके सन्मुख ब्राह्मणको प्रदान करता है उसपर शिव प्रसन्न होते हैं; तथा अपने पदको प्राप्त करतेहैं, पदार्थादर्शमें बोपदेवने कहाहै कि, कंठमें बत्तीस, ३२ रुद्राक्ष और मस्तक पर ४० और दोनों हाथोंमें बारह २ और दोनों बाहोंमें सोलह २ और दोनों नेत्रोंमें चार २ और शिखामें एकको और छातीमें १०८ एकसौ आठ रुद्राक्षोंको धारण करनेसे वह प्राणी स्वयं शिवरूप होताहै ॥

हेमाद्रौ शिवधर्मे–"स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः । पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥ पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे अभ्यङ्गं कारयेदथ । शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥ तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः । तावतैव च क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥ भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च । रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्या चोष्णांबुना ततः ॥ विष्ण्वादौ तु स्कान्दे–"क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा" ॥

हेमाद्रिमें शिवधर्ममें लिखाहै कि, सौपलसे स्नान, पच्चीस पलसे शरीरमें लेपन लगाना और दो सहस्र २००० पलसे महास्नान लिखाहै पथम: पच्चीस पल घीसे लिंगके विषय शिवजीका उबटना करै, फिर सौ पल घी, सौ पल शहत, सौपल दही, सौपल गौकादूध १५०० डेढ सहस्र पल ईखके रससे क्रमसे भक्तिपूर्वक स्नान करावे, फिर गरमजलसे स्नान करावै। विष्णु आदिके स्नानकरानेमें स्कन्दपुराणमें यह कहाहै कि, दूधसे दशगुणा दही और उससे दशगुणा अधिक घी और घीसे दशगुना शहत और शहतसे दशगुना ईखका रस मिलावै ॥

ब्राह्मे–"देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत् । पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः ॥" इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण । तत्रैव संग्रहे–"विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् । पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डेश्वराय तु ॥"

ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, जहां देवताओंकी प्रतिमाहो वहां श्रद्धासे पचीस २५ पल घृतसे उबटन करावै, यहभी सबके मेलके अभिप्रायसे कहाहै वहांही संग्रहमें कहाहै कि, नैवेद्य (मिष्ट) के सौभाग करके और लिंगके विषय महादेवको विष्णुका चरणामृत तथा प्रसाद दे ॥

पञ्चायतनसन्निवेशनिर्णयः।

पञ्चायतनसंनिवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च–"शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरेभास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः ॥ देव्यां विष्णुहरेभवक्त्ररवयो लम्बोदरेऽजेश्वरेनाम्बाः शंकरभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः ॥ १ ॥" शंकरभागतः–ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणमित्यर्थः । अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारिजाते

मन्त्रशास्त्रे-"देवस्य मुखमारभ्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् । तदादि परिवाराणामङ्गाद्यावरणस्थितिः ॥ "

पांच मंदिरोंका निर्माण बोपदेवने कहाहै और पदार्थादर्शमेंभीहै कि, शिवजी जहां बीचमें हों वहां विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा; जहां विष्णु बीचमें हों वहां शिव, गणेश, सूर्य, दुर्गा; सूर्य मध्यमें होय तो महादेव, गणेश, दुर्गा, विष्णु; और जहां दुर्गा मध्यमें हो वहां विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य, ये ईशान कोणसे लेकर परिक्रमासे स्थापनकिए हुए सुखदेतेहैं और यदि अस्तव्यस्त होयँ तो हानि करतेहैं, यहां प्रयोगपारिजातके मंत्रशास्त्रमें दिशाओंका स्वरूप यह लिखाहै कि, देवताके मुखसे लेकर सन्मुखकी दिशाको प्राची दिशा समझे, तिससे लेकर परिवार तथा अंगआदि आवरणोंकी स्थिति करै ॥

तत्र क्रमः पाद्मे-"रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः । अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद्भयम् ॥ " तथा-'पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विचक्षणैः ॥'

पद्मपुराणमें लिखा है कि, सूर्य, गणेश, देवी, महादेव और पांचवें विष्णुका क्रमसे पूजन करै, कारण कि, विनाक्रम करनेसे अतिशय भय होताहै, इसी प्रकार यह भी कहाहै कि, पूज्य (प्रतिमा आदि) और पूजककी मध्य दिशाको पंडितजन प्राची लिखतेहैं ॥

अथ केशवादिमूर्तयः ।

बोपदेवः-"केविगोवादापुहउ प्रजाच्युकृममात्रिना । वाऽधोनृहसाऽनिश्रीपाशाच्चगे विगपे चपे ॥ " अत्र केविगवित्याद्यैः केशवविष्ण्वादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते ॥ शात् शंखात् चगे चक्रगदे ज्ञेये इत्यर्थः । शिष्टे भुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् ॥ अत्र दक्षिणाधःकरक्रमेण ज्ञेयम् । 'दक्षिणाऽधःकरक्रमात्' इति हेमाद्रौ वचनात् । तेन हेमाद्रिणा संवादः । विशब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः । अत्रापि शादित्यनुवृत्तिः । शंखाद्गदाचक्रे इत्यर्थः । गपे इत्यत्रापि शादनुवर्तते । शंखाद्गदापद्मे इत्यर्थः । विपरीते पद्मगदे इत्यत्रापि शंखाज्ज्ञेये । चपे चक्रपद्मे । शंखाच्चक्रपद्मे इत्यर्थः । वि इत्यत्रापि पद्मचक्रे इति । तेन चक्रगदे इत्यष्टौ मूर्तयः । गपे इत्यष्टौ मूर्तयः । चपे इत्यत्र च । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।

अब केशव आदि मूर्तियोंको लिखतेहैं केशव, विष्णु, गोविंद, वामन, दामोदर, पुरुषोत्तम, हृषीकेश, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, जनार्दन, अच्युत, कृष्ण, मधुसूदन, माधव, त्रिविक्रम, नारायण, वासुदेव, अधोक्षज, नृसिंह, हरि, संकर्षण, अनिरुद्ध, श्रीधर, पद्मनाभ, ये चौबीस मूर्तिहैं, इस श्लोकमें 'केवि' इत्यादि पदसे केशव विष्णु आदि चौबीस मूर्तिका ग्रहणहै, शचगसे शंखचक्रगदा जानने चाहिये, शेष पद्म भुजाके विषे अर्थात्सिद्धहैं,ये सब नीचले दाहिने हाथके क्रमसे जानने चाहिये, कारण कि, हेमाद्रिमें यही कहाहै तिसीसे हेमाद्रिके संगभी सम्मति है, विशब्दका विपरीत अर्थ है, और उसमें भी शात्को मिलाना, तिससे शंख पद्म

---

१ शिवजीके मध्यहोनेमें विष्णु, सूर्य, गणेश, देवी; विष्णुके मध्य होनेमें शिव, गणेश, सूर्य, देवी; सूर्यके मध्य होनेमें शिव, गणेश, विष्णु, देवी; देवीके मध्य होनेमें विष्णु, हर, गणेश, सूर्य; गणशके मध्यहोनेमें विष्णु, शिव, सूर्य, देवी; प्रदक्षिणाक्रमसे ईशानसे आरंभ करके स्थापन करै ॥

शक्र वा शंख चक्र पद्मसे ये अष्टमूर्ति सिद्ध होती हैं, इसका मूल हेमाद्रिमें जानना चाहिये। इसमें हेमाद्रिग्रन्थनिष्ठ लिखाहुआ प्रमाण जानना चाहिये ॥

लिङ्गार्चाप्रतिष्ठानिर्णयः।

बौधायनसूत्रे–त्रैविक्रम्यां चानुस्मृत्य लिङ्गार्चाप्रतिष्ठोच्यते। यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वेद्युः दशद्वादशषोडशान्यतरहस्तं मण्डपं कृत्वाऽग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डस्थण्डिलं वा पूर्वतो हस्तमात्रां वेदिं नैर्ऋते वास्तुमंडलमध्ये वेदिं तदुपरि सर्वतोभद्रं कृत्वा प्राणानायम्यास्यां मूर्तौ देवस्य सान्निध्यसिद्ध्यर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये इति संकल्प्य। गणेशपूजापुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वाचार्यं चतुर ऋत्विजश्च वृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत् ॥

अब बौधायन तथा त्रैविक्रमीके अनुसार लिंगकी पूजा तथा प्रतिष्ठाको लिखते हैं। यजमान प्रथम दिन पूर्वोक्त समयपर दश, बारह वा सोलह हाथका मढा बना करके उसमें आग्नेय दिशामें एक हस्तमात्रका कुण्ड अथवा पृथ्वीपर वेदी तथा पूर्वदिशामें एक हाथकी वेदी तथा नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुचक्र और मध्यमें वेदी मिर्माण कर उसके ऊपर सर्वतोभद्रकी रचना करै, फिर प्राणोंको रोककर यह संकल्प उच्चारण करै कि, मैं इस मूर्तिमें देवताके स्थापन करनेको तथा बडी आयु, लक्ष्मी और संपूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त अक्षय सुखकी इच्छावाला अमुकनाम्नी इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा करताहूं, फिर गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, नान्दीमुखश्राद्ध करके आचार्य और चार ऋत्विजोंका वरण करके वस्त्र आदिकोंसे उनको प्रसन्न करै ॥

अथाचार्यः–"यदत्र संस्थितमिति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य। देवा आयांतु, यातुधाना अपयान्तु। विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमार्गेण मण्डपप्रतिष्ठां कृत्वाऽकृत्वा वा पूर्वरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्यहिरण्ययवदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णैरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पवमानः सुवर्चन इत्यनुवाकेनाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षोहणमिति हस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य। अवतेहेड उदुत्तममिति जलेऽधिवासयेत्।" इदं बौधायनोक्तम् ॥

---

१ शंख, चक्र, गदा, पद्म, युक्त केशव सूर्यके समान कान्तिमान् हैं। कमल शंख चक्र गदा युत विष्णु रवि प्रभा युक्त हैं। गदा कमल शंख चक्रयुक्त गोविन्द भास्करवत्हैं। वामन चक्र गदा पद्म शंखयुक्त रविवत् हैं। दामोदर शंख गदा पद्म चक्रधारी सूर्यद्युतिहै। पद्म शंख गदा चक्रधारी सूर्यवत्पुरुषोत्तमहैं। चक्र पद्म शंख गदाधर हृषीकेश सूर्याभ हैं। उदित सूर्यवत् उपेन्द्र गदा चक्र कमल शंखधारी हैं। प्रद्युम्न सूर्यवत् शंख गदा कमल चक्रधारी विभु हैं। जनार्दन चक्र शंख गदा कमलधारी सूर्याभ हैं। सूर्याभ अच्युतनामा कमल चक्र शंख गदाधारी हैं। उदितसूर्यवत् कृष्ण गदा पद्म चक्र शंखधारीहैं। शंख कमल गदा चक्रधारी सूर्यवत् मधुसूदन हैं। माधव चक्र शंख कमल गदाधारी सूर्याभ हैं। त्रिविक्रम गदा चक्र शंख पद्मधररविप्रभ हैं। नारायण कमल गदा शंख चक्रधर रविप्रभ हैं। शंख चक्र पद्म गदाधर वासुदेव रविवत् कान्तिमान हैं। गदाशंख चक्र कमलधर रविवत् अधोक्षज हैं। नृसिंह सूर्याभ पद्म गदा शंख चक्र संयुक्त हैं। चक्र पद्म गदा शंख युक्त हरि उद्यत रविवत् हैं। शंख कमल चक्रगदायुक्त सूर्यप्रभ संकर्षण विभु हैं। अनिरुद्ध गदा शंख पद्मचक्रधारी रविवत् हैं। श्रीधर चक्र गदा शंख पद्मधर सूर्यद्युति हैं। पद्मनाभ कमल चक्र गदा शंख युक्त अब्जसंयुत हैं ॥

फिर आचार्य 'यदत्र संस्थितं' इस मन्त्रसे सरसोंको बखेरकर (आपोहिष्ठामयोभुव) इस ऋचासे पृथ्वीको कुशाके जलसे छिड़कै, फिर 'देवा आयांतु यातुधाना अपयांतु विष्णो देव यजनं रक्षस्व' इस मंत्रसे पृथ्वीके ऊपरको बिलस्त भर रेखा करके हमारी रचीहुई तुलापद्धतिके अनुसार मण्डपकी प्रतिष्ठा करै, वा न करै, पूर्वरात्रिमें सोनेकी प्रतिमाको पञ्चगव्य, सुवर्ण, यव, दूब, पीपल तथा पालाशके पत्तोंसे 'आपोहिष्ठा, ये तीन, और 'हिरण्यवर्णा' ये चार तथा 'पवमानः सुवर्चन' सूक्त, तथा व्याहृतियोंको उच्चारण करता हुआ अभिषक करै, फिर इदं विष्णुर्विचक्रमे, इस मन्त्रसे फूल, फल, यव, दूबको समर्पण करके 'नमस्ते रुद्र मन्यव' इस मंत्रसे स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करै, फिर 'रक्षोहणं' इस मंत्रसे हाथमें कङ्कणको बांधकर वस्त्रसे ढककर 'अवतेहेडो' 'उदुत्तमं' इस मंत्रसे जलमें अधिष्ठान करावै, यह बौधायनने लिखा है ॥

ततश्चललिङ्गार्चायां वा अत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य गोक्षीरनीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत् कृसरमपि श्रपयित्वाज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिः आज्येन चरुणा तिलैर्वा प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाहुतीर्लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यो हुत्वा स्थाप्यदेवमन्त्रेण पूर्वोक्तसमित्तिलनवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा हुत्वा अग्निर्यजुर्भिरित्यनुवाकेन दशाहुतीर्जुहुयात् ॥ प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरःसु स्पृशेत् । आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भ संपातान्नयेत् ॥

फिर लिङ्गकी अर्चामें तो अग्निस्थापन करके गौके दूधमें सठीके चावलोंको करके घृत भागके पीछेमें पलाश, गूलर, पीपल, छोंकर, अपामार्ग (चिरचिटा) और ढाककी समिधासे घृत वा चरु वा तिलोंसे एकएकको लोकपाल, मूर्ति, तथा मूर्तियोंके पतियोंको (एकएकके निमित्त) २८, १८ अथवा ८ आहुति देकर स्थापन करै फिर देवमन्त्रसे पूर्वोक्त समिध, तिल, सांठी, चावल, चरु, घी इनसे आठ हजार, ८००० वा ८०० आठसौ अथवा अट्ठाईस २८ आहुति दे, 'अग्निर्यजुर्भिः' इस सूक्तसे दशाहुतिका हवन करै, हवनके पीछेमें देवताकी नाभि तथा चरण और शिरका स्पर्श करै, फिर घृतके होममें उत्तर दिशाके जलसहित कुम्भमें जल डाले ॥

तत्र मन्त्राः ।

तेषां मन्त्राः । इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्य । स्योनेति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति तत्पतेः सर्वस्य । अग्न आयाहीत्यग्नेः । अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः । नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः । यमाय सोमं यमस्य । असिहिवीरिति यजमानमूर्तेः । स्तुहि श्रुतं तत्पतेः उग्रस्य । असुन्वन्तान्निर्ऋतेः । आकृष्णेन सूर्यमूर्तेः ॥ यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पते रुद्रस्य। इमंमे वरुणस्य । शंनो देवीति चलमूर्तेः । नमो भवायेति भवस्य । आनो नियुद्भिरिति वायोः । वात आवातु वायुमूर्तेः । तमीशानं तत्पतेरीशानस्य । आप्यायस्वेति कुबेरस्य। वयं सोमेति सोममूर्तेः । तत्पुरुषाय महादेवस्य । अभित्वा ईशानस्य । आदित्प्रत्नस्येत्याकाशस्य । नम उग्राय चेति तत्पतेर्भीमस्य । ततो देवस्य पादौ स्पृशेत् । एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं तृतीये मध्यं चतुर्थे उरः पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवं अभिषिञ्चेत् । ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्यार्चां शोधयेत् ॥

१ नमस्त रुद्रमन्यवे उतो त इषवे नमः ॥ वाहुभ्यामुत ते नमः प० १६ । १ ॥

अब उनके मन्त्रोंको दिखातेहैं कि, 'इन्द्रायेन्दो' इस मन्त्रसे इन्द्रको, 'स्योना' इससे पृथ्वीमूर्त्तिको, 'अघोरेभ्य' इससे उसके स्वामी शिवको, 'आग्नआयाहि' इससे अग्निको, 'अग्निं दूतं' इससे अग्निकी मूर्तिको, 'नमः शर्वाय च पशुपतये च' इससे पशुपतिको, 'यमाय सोमं' इससे यमको, असिहि वीरिति यजमानकी मूर्ति, 'स्तुहि श्रुतं' से उसके पति उग्रको, 'असुन्वंतं' से नैर्ऋतिको, 'आकृष्णेन' से सूर्यमूर्तिको, 'यो रुद्रो अग्नौ' से उसके पति रुद्रको, 'इमंम वरुण' 'शंन्नोदेवी' से जलमूर्तिको, 'नमो भवाय' से भवको, 'आनो नियुद्भि'से वायुको, 'वात आवातु' से वायुमूर्तिको, 'तमीशानं' से उसके पति ईशानको, 'आप्यायस्व' से कुबेरको, 'वयं सोमस्य' से सोममूर्तिको, 'तत्पुरुषाय' से महादेवको, 'अभित्वा' से ईशानको, 'आहित्प्रत्नस्य' से आकाशको, 'नम उग्राय च' से उसके स्वामी भीमको, आहुतिदे, फिर देवताके चरणोंको छुए, इसीप्रकार दूसरी आहुति देकर नाभिको तीसरेमें मध्यभागको, चौथेमें उरस्थल, पांचवेमें शिरको, स्पर्श करके क्रमसे संपात जल अर्थात् शेष-चरु जिसपात्रमें धराहै उसमें डालकर लिंग वा प्रतिमामें देवका अभिषेक करना चाहिये, फिर स्विष्टकृत आदि शेष हवनको पूर्ण करके प्रतिमाको पवित्र करै ॥

स्थिरलिङ्गार्चादौ तु नेदानीमग्निस्थापनहोमादि कार्यम् । ततो देवं नत्वा " स्वागतं देव-देवेश विश्वरूप नमोस्तु ते । शुद्धेपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम् " । इति संप्रार्थ्य । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इति सकृत्विगुत्थाप्य पूर्वमकृतेग्न्युत्तारणे अधुना वा कार्यम् ' अग्निः सप्तिम् ' इति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् । एवमष्टस-हस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पठन् जलं पातयेत् । ततोर्चां द्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षा-ल्य मन्त्रवत् पञ्चगव्यं कृत्वा ' पयः पृथिव्यामापोराजानम् ' इति संस्नाप्य । "आप्या-यस्व, दधिक्राव्णः, तेजोसि, मधुवाता, आयंगौः" इति पञ्चामृतैः संस्नाप्य । लिङ्गं चेत् 'नमस्ते रुद्र मन्यवे ' इत्यष्टाभिः संस्नाप्य । घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैः चतुर्भिः कुम्भैरापोहिष्ठेति त्रिभिः ' आकलशेषु ' इति च प्रत्येकं ' समुद्रज्येष्ठा ' इति चतुर्भिः ' आकल-शेषु ' इति च मिलितैः सस्नाप्यौदुम्बरादिपीठेऽर्चामुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वाद्ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकंकताश्मन्त-कत्वचः पल्लवांश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्नफलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसम्पातो-दकगन्धफलसर्वौषधीः क्षिप्त्वा । क्रमेण 'आपोहिष्ठा ' इति तिसृभिः ' हिरण्यवर्णाः ' इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटखदिरविल्वाश्वत्थविकं-कतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा । 'अश्वत्थेवः ' इत्यभिषिच्य । पञ्चरत्नोदकेन ' हिरण्यवर्णा ' इति संस्नाप्य वाससी दत्त्वा । उपवीतादि दीपान्तं कृत्वा ' हिरण्यगर्भः ' । ' य आत्मदा ' ।' यः प्राणतः ' । ' यस्येमे ' । ' येन द्यौः ' । ' यं क्रन्दसी ' । ' आपोहयन् ' । ' यश्चिदापो ' । इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा । सुवर्णशला-कया तैजसपात्रस्थं मधु घृतं च गृहीत्वा 'चित्रं देवानां' ' तेजोसि ' इति मन्त्राभ्यां-"ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः " इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत् ॥

---

१ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ऋ० ७ । १ । ४० ॥
२ शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः । यजु० ॥

यदि लिंग वा मूर्ति स्थिर होय तो अग्निका स्थापन और देवताओंका हवन आदि कर्म यहां न करै, देवको प्रणाम करके प्रार्थना करै कि, हे देव ! हे देवेश ! हे विश्वरूप ! आपको प्रणाम है । आपका आगमन बहुत उत्तमहै, आपका स्थान पवित्रहै तौभी मैं पवित्र करताहूं, उसे आप सहन करो, उत्तिष्ठ-ब्रह्मणस्पते इस मन्त्रसे ऋत्विजों सहित मूर्तिको उठाय यदि प्रथम अग्निमें मूर्तिको न तपाया होय तो अब अग्न्युत्तारण करै, फिर 'अग्निः सप्ति' सूक्तको अग्निपदके विना उच्चारण कर फिर अग्नि पदसहित पढै । इसी प्रकार आठ सहस्र वा आठसौ वा अट्ठाइस बार जपता हुआ जल डालै फिर प्रतिमाको द्वादशवार मृत्तिका और जलसे धोकर मन्त्रसे पंचगव्य वनाकर 'पयः पृथिव्यां' मन्त्रसे अथवा 'आपोराजन्' मन्त्रसे स्नान करावे आप्यायस्व० दधिक्राव्णः०तेजोसि० मधुवाता० आयंगौः० इन मन्त्रोंसे पंचामृतसे स्नान करावै, यदि लिंग होय तो नमस्ते रुद्र मन्यव० इन आठों मन्त्रोंसे स्नान करावै, फिर घृतसे अभ्यंग, और उबटनेसे उबटना करके और गरम जलसे धोकर गन्ध देकर, जलधारासे अभिषेक करै, फिर पंच पल्लवों सहित घडोंके जलसे आपोहिष्ठामयो भुव इन तीन मन्त्र तथा समुद्रज्येष्ठा इन चार आकलशेषु ऋचासहित पढता हुआ प्रत्येकको स्नान कराय गूलरआदिके आसनपर प्रतिमाको बैठाय चारों ओर आठौ दिशाओंमें जल सहित घडोंको स्थापनकर उनमें गन्ध पुष्प दूवको डालकर प्रथममें सात प्रकारकी मट्टी, दूसरेमें पुष्करके पत्ते, छोडकर, विकंकत (कंकपत्र) अश्मांतक (बहेडे) की छाल तथा पत्तोंको और तीसरे आदिमें सतनजा पंचरत्न, फल, पुष्प, कुशा, दूब, गोरोचन, सम्पातजल, सब औषधियोंको डालकर क्रमसे 'आपोहिष्ठा' इन तीनोंसे 'हिरण्यवर्णा' इन चारोंसे अथवा 'पवमानः सुवर्चन' इस सूक्तसे अभिषेक विधिसे करै, फिर एक घडेमें छोंडकर, ढाक, बड, खदिर, बेल पीपल, विकंकत, पनस, आम, शिरीष (शिरस) गूलरके पत्ते, और रसको डालकर 'अश्वत्थे' इस मन्त्रसे पञ्चरत्नसे जलके अभिषेक करके और 'हिरण्यवर्णां हरिणीं' मन्त्रसे स्नान कराके वस्त्रोंको देकर तथा उपवीतसे दीपक पर्यन्त सामग्रियोंका प्रदान कर हिरण्यगर्भ, ये आत्मदा यः प्राणतः यस्येमेयेनद्यौः यंक्रंदसी आपोहयन् यश्चिदापो इन मन्त्रोंसे आठ चूनके दीपक निर्माण करदे, सुवर्णकी सलाईसे सुवर्णके पात्रमें रक्खे हुए मधु और घृतको लेकर 'चित्रं देवानां' इत्यादि तथा तेजोसीत्यादि मन्त्रसे 'ॐनमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः' इस मन्त्रको तथा 'हिरण्यरेतसे विष्णो विष्णुरूपाय ते नमः' इस मन्त्रको देवताके दक्षिण नेत्रमें दोवार लिखै ॥

' अञ्जन्ति त्वा ' इत्यञ्जनेन मधुना वाङ्क्त्वा तु ' देवस्य त्वा ' इति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्त्वा तेनैवाञ्जनेन पुनरञ्जयेत् । अत्रानज्मीति शेषः । स्थिरलिङ्गे तु स्वर्णसूच्या-गन्धेन । ' ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः ' इत्यङ्क्त्वाञ्जनादिनाञ्जयेत् ॥ तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत् ॥ ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दद्यात् ॥ अथाचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन् पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा ॥ वंशपात्रे पञ्चवर्णौदनेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु–' ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः । ' शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति ॥ अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति । केचिदेतद्रात्रौ स्थिरप्रतिष्ठायामिच्छन्ति ॥

'अञ्जंति' वा इस मंत्रसे अंजन वा मधुको और 'अन्यादेवस्य त्वा' इस मंत्रसे, मधु, घृत, शर्कराको आंजकर उसी अंजनको फिर आंजे, यदि स्थिर लिंग होय तो सुवर्णकी शलाकासे शहतको 'ॐनमो भगवते रुद्राय हिरण्य रेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः' इस मंत्रसे आंजकर अंजन-

आदिसे आंजे, फिर दर्पण भोगादिको दिखावै, फिर यजमान आचार्यको गौ और ऋत्विजोंको दक्षिणा दे, आचार्य ॐकारपूर्वक पुरुषसूक्तकी ऋचाओंसे स्तुतिकरके बांसके पात्रमें पंचपल्लवके जलसे देवताकी आरती कराय चौराहे आदिमें रुद्रको बलिदे, उसका मन्त्र 'ॐनमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा' पीपलके पत्तेपर रात्रिमें भूतेभ्यो नमः इसमन्त्रसे भूतोंको बलिदे, कोई आचार्य इस बलिको स्थिरप्रतिष्ठाके विषय इच्छा करतेहैं ॥

अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत्। मध्ये ब्रह्माणम् । पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान् । ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून् । रुद्रान् । आदित्यान् । अश्विनौ । विश्वान् देवान् । पितॄन् । नागान् । स्कन्दवृषौ । ब्रह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षविष्णुदुर्गास्वधाकारमृत्युरोगान् समुद्रान् । सरितः । मरुतः । गणाधिपं चेति । मध्ये एव पृथिवीं, मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य । प्रागादिषु वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशं, अङ्कुशं, गदां, शूलम् । तद्बाह्ये गौतमं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठं, अत्रिं, अरुंधतीं च । तद्बाह्ये नवग्रहान् । तद्बाह्ये ऐन्द्रीं, कौमारीं, ब्राह्मीं, वाराहीं, चामुण्डां, वैष्णवीं, माहेश्वरीं, वैनायकीमिति । एता नामभिरावाह्य संपूज्य ॥ अर्चायां देवं तन्मन्त्रेणावाह्य । मण्डलमध्येऽर्चासुप्रतिष्ठो भवेति निवेश्य संपूज्य । वह्नौ मण्डलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा शय्यायां देवमाराध्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात् ॥

इसके उपरान्त आचार्य सर्वतोभद्रमें देवताओंका आवाहन करै कि, मध्यमें ब्रह्माका, पूर्व आदिदिशाओंमें इन्द्र आदिलोकपालोंका, ईशान और पूर्वआदि मध्यकी विदिशाओंमें वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, पितर, नाग, स्वामिकार्तिक और वृष; ब्रह्मा और ईशान आदिके अन्तरालमें दक्ष, विष्णु, दुर्गा, स्वधा, मृत्यु, रोग, समुद्र, नदी, मरुत्, गणपतिका आवाहन करै; मध्यमें ही पृथ्वी और मेरुको स्थपाना करके और देवका आवाहन करके, पूर्वआदि दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूलका आवाहन करै और इनके बाहिर गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि, अरुन्धतीका आवाहन करै; उसके बाहिर नवग्रहोंको, उसके बाहिर ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैनायकीका नामसे आवाहन और पूजन करके ब्रह्माआदिकी पूजामें देवका भी मन्त्रसे आवाहन करके, मण्डलके मध्यकी पूजामें भलीप्रकार प्रतिष्ठित हो, इस मन्त्रसे देवकी प्रतिष्ठा करके और पूजाकर अग्निमें मण्डलके देवताओंके नाम मन्त्रोंसे तिल और घृतसे दश २ आहुति देकर शय्यामें देवकी पूजाकर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायणके मंत्रसे देवकी स्तुति करके देवताके अंगोंमें न्यास करै ॥

तद्यथा—पुरुषात्मने नमः ॥ प्राणात्मने न० प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहंकारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० इति सर्वांगे ॥ प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि ॥ शब्दतत्त्वाय० शिरसि ॥ स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि । रूपतत्त्वाय० हृदि ॥ एवं रसगन्धश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत् ॥ ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृग्द्वयं करयोः ॥ तदुत्तरं जान्वोः ॥ तदुत्तरं कट्योः ॥ 'तं यज्ञम्' इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु 'तस्मादश्वा' इति द्वयं बाह्वोः ॥ 'ब्राह्मणोऽस्य' इति

द्वयं नासयोः ॥ 'नाभ्या' इति द्वयमक्ष्णोः ॥ अन्त्यां शिरसि । केचित्तत्त्वन्यासमन्यथैवाहुः ॥ पुरुषप्रकृतिमहदहंकारतत्त्वानि । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणि । आकाशवायुतेजोऽप्पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनस्तत्त्वानीति ॥ केचिदेतानि स्थिरलिङ्गादावेवेच्छन्ति ॥ ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्वापयित्वा मण्डलशय्ययोरन्तराले न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा मण्डलदेवताभ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात् । नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम् । नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम् ॥

यथा पुरुषात्मा प्राणात्माको, प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्वको, अहंकारतत्त्वको, मनस्तत्त्वको प्रणाम है, इस मन्त्रसे सर्वांगमें, प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्वको प्रणाम है इस मन्त्रसे हृदयमें, शब्दतत्त्वको प्रणाम है, इससे शिरमें, स्पर्शतत्त्वको प्रणाम है, इससे त्वचामें रूपतत्त्वको प्रणामहै इससे हृदयमें न्यास करै, इसी प्रकार रस, गंध, श्रोत्र, त्वचा नेत्र, जिह्वा, घ्राण, वाणी, हस्त, चरण,गुदा, लिंग, भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, देह, इन तत्त्वोंका भी न्यास करै, फिर पुरुषसूक्तकी आदिकी दो ऋचाओंसे हाथोंका तिस्से उत्तरकी ऋचाओंसे जङ्घाओंका तिससे उत्तरकी दो ऋचाओंसे कमरका 'तं यज्ञं' इत्यादि तीन ऋचाओंसे नाभि, हृदय, कण्ठका 'तस्मादश्वा' इत्यादि दो ऋचाओंसे भुजाओंका 'ब्राह्मणोस्य' इत्यादि दो ऋचाओंसे नासिकाका 'नाभ्या' इत्यादि दो ऋचाओंसे नेत्रोंका, अन्त्यकी ऋचासे शिरका न्यास करै कोई आचार्य इस तत्त्वन्यासको दूसरे प्रकारसे कहते हैं पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, तत्त्व और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांचों भूतोंकी मात्राका और आकाश, वायु, तेज, पृथिवी, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, हस्त, पाद, गुदा, लिंग, मन इन तत्त्वोंका न्यास करै, कोई आचार्य इनको स्थिर लिंगमेंही इच्छा करतेहैं तिसके उपरान्त सुखशायी हो इस मन्त्रसे शय्यापर देवका स्थापन करके मण्डल और शय्याके बीचमें न जाओ यह मनुष्योंको प्रेरणा करके मण्डलके देवताओंको नाममन्त्रोंसे खीर वा चरुकी बलि दे और शेष नीवारके चरुसे दिशाओंको बलि दे, यह बलि स्थिर प्रतिष्ठामें नहीं होती ॥

स्थिरलिङ्गार्चादौ विशेषः ।

स्थिरलिङ्गार्चादौ त्वयं विशेषः-'अग्निस्थापनहोमवर्ज्यं सर्वं पूर्ववत् कृत्वा इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात् ॥ नात्र नैवारश्चरुः । विष्णुश्चेत्पूर्वोक्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा इदंविष्णुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा 'विष्णोर्नुकम्' इति नाभिं स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा । 'अतो देवा' इति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा, पुरुषसूक्तेन सर्वाङ्गं स्पृशेत् ॥ स्थिरलिङ्गं चेदग्निस्थापनादि पूर्वोक्तसमिदाज्यतिलाहुतीर्हुत्वा । यात इषु इत्यनुवाकान्तं 'द्रापे' 'सहस्राणि' इत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा 'सर्वो वै रुद्रः' इति मूलं स्पृशेत् । पुनस्ता एव हुत्वा 'कद्रुद्राय' इति मध्यम् । पुनस्ता एव हुत्वा । 'नमो हिरण्यबाहवे' इत्यग्रम् । पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वाङ्गं स्पृशेत् । ततो 'धामन्त' इति पूर्णाहुतिं जुहुयान्नवा एवमधिवासनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा 'महीमूषु' इत्यावाह्य । 'अदितिर्द्यौः' इति स्तुत्वा । ह्रीं नमः इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा । 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा । पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा 'उदुत्यम्' इत्युत्थाप्य । 'कनिक्रदत्' इति सूक्तेन विष्णुं 'सद्योजातम्'

इति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायां इन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्य-रूप्यवृषमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकाम-न्तरितां कृत्वा 'ॐ सुलग्ने प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इत्युक्त्वा 'अतो देवा' इति विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थापयेत् ॥ ततः प्राणप्रतिष्ठा ॥

स्थिर लिंगमें तो यह अधिक है कि, अग्निस्थापन और हवनके विना सब पूर्वकार्यको पूर्ववत् सम्पादन करके और उसीसमय अग्निका स्थापन करके पूर्वोक्त हवन करै, इसमें नीवारका चरु ग्रहण नहीं करते यदि विष्णुकी प्रतिष्ठा होय तो पूर्वोक्त हवन करके पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचाओंसे घृतकी आहुति देकर 'इदं विष्णु-र्विचक्रमे' मन्त्रसे चरणोंको छुवे, फिर उन्हीं ऋचाओंसे आहुति देकर 'विष्णोर्नुकं' इसमन्त्रसे नाभिको छुए, फिर उन्हीं आहुतियोंको देकर 'अतो देवा' मन्त्रसे शिरको स्पर्श करै, फिर उन्ही आहुतियोंको देकर पुरुष-सूक्तसे सब अंगको छुए, यदि स्थिरलिंग होय तो अग्निस्थापनसे लेकर पूर्वोक्तसमिधा और घृततिलोंकी आहुतियोंसे हवन करके यातेइषु इस अनुवाक तक, द्रापे, सहस्राणि, इन अनुवाकोंसे प्रत्येक ऋचा पढकर घृतसे हवन करके सम्पूर्ण रुद्ररूप है यह कहकर देवके चरणोंका स्पर्श करै, फिर वेई आहुति देकर 'सर्वो वै रुद्र' इस मन्त्रसे देवताके सब अंगोंको छुए, फिर 'धामंत' मन्त्रसे पूर्णाहुति हवन करै, वा न करै, इस प्रकार अधिवासन (सुवाय) कर अगले दिन वा उसी समय देवके पट्टेको स्नान कराय, 'महीमूषु' इसमन्त्रसे आवा-हन 'अदितिर्द्यौ' मन्त्रसे स्तुति करके, ह्रीं नमः मन्त्रसे अर्चन करके, और उसी मन्त्रसे पूर्णाहुतिके हवनको सम्पादनकर उत्तिष्ठ ब्राह्मणस्पते० मन्त्रसे देवको उठाय पुष्पांजलि दे, फिर पुरुषसूक्तसे स्तुति और 'उदुत्यं' मन्त्रसे देवको उठाय 'कनिक्रदत्' मन्त्रसे विष्णुको और सद्योजातके पांच अनुवाकोंसे लिंगको घरमें प्रवेश करायकर पट्टेपर इन्द्रादिनामोंसे आठ दल बनाय, सतनजा, चांदी, वासां, मनसिल, पट्टेपर डालकर और खीरसे पट्टेको लीपकर ओंकारसे अंगन्यास करके सुवर्णकी शलाकाको पीठिकामें डालकर हे देव ! हे परमेश्वर ! श्रेष्ठ लग्नमें भलीप्रकार प्रतिष्ठित हूजिये यह कहकर, 'अतो देवा' मन्त्रसे वा विष्णु रुद्र मन्त्रसे देवकी प्रतिष्ठा करै, फिर प्राणप्रतिष्ठा करै ॥

चलार्चादौ त्वधिवासनान्ते परेद्युरुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारा-यणाभ्यां स्तुत्वा घृते व्रीहिचरुं कृत्वा तद्देवतामन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात् । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्न-येऽन्नादाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । भूर्भुवः स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते इति ॥ ततः 'सप्त ते पुनस्त्वे-ताभ्यां पूर्णाहुतिः ॥ ततः आचार्यो 'या ओषधीः' इति सर्वौषधीः समर्प्य ॥

चलमूर्तिकी पूजामें तो शयनके पीछेमें परलेदिन उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इस मन्त्रसे देवको उठाकर पुरुष-सूक्त और उत्तरनारायण मन्त्रसे स्तुति करके घृतमें व्रीहि और चरुको मिश्रित कर उसे देवताके मन्त्रसे दश आहुति हवनकर इन नामोंसे हवन करै कि, अग्नि, सोम, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि, सोम, अग्नयेन्नाद, अग्नयेन्नपति, प्रजापति, विश्वेदेवा, सम्पूर्ण देव, इनको (स्वाहा) श्रेष्ठ वचन है इन मन्त्रोंसे आहुतिदे, फिर भूर्भुवः स्वः अग्नये स्विष्टकृते इस मन्त्रसे आहुति दे, फिर 'सप्त ते पुनस्त्वा' मन्त्रोंसे पूर्णाहुति दे, फिर आचार्य या ओषधी इस मन्त्रसे सर्व औषधियोंको समर्पण करै ॥

संपातोदकं देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत् । तत उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य । 'विश्वतश्चक्षुः' इत्युपस्थाय देवं ध्यात्वा जपेत्–'ब्रह्मणे नमः । एवं विष्णवे रुद्राय इंद्राद्यष्टभ्यो वसुभ्य रुद्रेभ्य आदित्येभ्योऽश्विभ्यां मरुद्भ्यः कुबेराय गङ्गादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरये सर्वेशाय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे नमः इति ॥ ततः संपातोदकेन यजमानमभिषिच्य । देवं ध्यात्वा 'प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य । सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं, करचरणाद्यवयविनं, शंखचक्राद्यायुधवन्तं, निजवाहनाद्युपेतं, निजहृत्कमलेऽवस्थितं, सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं 'परमेष्ठयसि परमां श्रियं गमय' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । यथा–प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानिच्छन्दांसि । क्रियामयवपुः । प्राणाख्या देवता । आं बीजम् । क्रों शक्तिः । प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । ततः ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य ॥

फिर धाराके अर्थात् हवनमें जिस पात्रमें शेष चरु डाला जाताहै उसका जल संपातोदक है जलको देवके मन्त्रसे सौवार अभिमंत्रित करके उसी मन्त्रसे देवका अभिषेक करै, फिर उत्तिष्ठमन्त्रसे देवको उठाय विश्वतश्चक्षुः मन्त्रसे देवकी स्तुति और ध्यान करके यह जपै, कि, ब्रह्मरूपको प्रणाम है फिर इसीप्रकार विष्णु, रुद्र, इन्द्र, आदि आठ दिग्पाल, वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, मरुत्, कुवेर, गंगा आदि महानदी, इन्द्र, अग्नि, द्यावापृथिवी, धन्वन्तरि, सबके ईश्वर विश्वेदेव, ब्रह्माको नमस्कारहै । यह जप करै फिर उसी धाराके जलसे यजमानका अभिषेक करके और देवका ध्यान करके हे परमात्मन् ! तुम इस मूर्तिमें प्रतिष्ठित हो, इस मन्त्रसे पुष्पांजलिको निवेदन करके और सच्चिदानंद ब्रह्महो भक्तोंके अनुग्रह करनेको शरीर धारण करतेहैं और कर चरण आदि अंग, शंख चक्र आदि आयुध धारण करनेवाले होतेहैं और अपने वाहनोंसे युक्त अपने कमलरूपी हृदयमें स्थित सब लोकके साक्षी अनुरूप होतेहैं, हे परत्मान् ! तुम ब्रह्मरूप हो श्रेष्ठ लक्ष्मी प्रदान करो इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिमे आये हुए देवकी भावना करके पूजनमें न्यासादि करके प्राणप्रतिष्ठा करना चाहिये, जिस प्रकार प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ऋषिहैं, ऋग् यजु साम छन्दहैं, कर्मरूपी शरीर है. प्राण देवता आं बीज क्रों शक्ति प्राणकी प्रतिष्ठामें इसका विनियोग अर्थात् (प्रयोजन) है फिर इन ऋषि आदिकोंका क्रमसे शिर, मुख, हृदय, गुदा, चरणमें न्यास करके पुनः इस प्रकार अपने शरीर और देवांगमें न्यास करके और देवताको छूकरके पूजा करै ॥

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः ॥ ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा ॥ ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् ॥ ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् ॥ ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् ॥ एवं आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेंद्रियाणि॥ ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहा-

गत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहेति ॥ ततोऽर्चा हृद्यंगुष्ठं दत्त्वा जपेत्–"अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु ह्यस्यै प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन" इति ॥

फिर ॐ कं, खं, गं, घं, ङं, अं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश रूपको प्रणामहै, आं हृदयायनमः, इस मन्त्रसे हृदयको स्पर्श करै, ॐ चं, छं, जं, झं, ञं, इं, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रूपको प्रणामहै, ईं शिरसे स्वाहा, इस मन्त्रसे शिरको स्पर्श करै, ॐ, टं, ठं, डं, ढं, णं, उं श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणरूप आत्माको प्रणामहै ऊँ शिखायै वषट् इस मन्त्रसे शिखाको स्पर्श करै, ॐ, तं, थं, दं, धं, नं, एं वाणी हाथ चरण गुदा लिंग रूपको प्रणाम है, ऐं कवचाय हुं इस मन्त्रसे भुजाओंको छुए, ॐ पं, फं, बं, भं, मं, ओं बोलना, ग्रहण, विहार, त्याग, आनन्द रूपको प्रणामहै, औं नेत्रत्रयाय वौषट् इस मन्त्रसे नेत्रोंका स्पर्श करै, ॐ यं, रं, लं, वं, शं, षं, हं, ळं, क्षं, अं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूपको प्रणामहै, अः अस्त्राय फट् इस मन्त्रसे हाथसे हाथको ताडन करै, (ताली बजावै) इस प्रकार अपने और देवमें करसे स्पर्श करके जपै ॐ आं ह्रीं क्रों यं, रं, लं वं, शं, षं, सं, हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणा पूजाके पीछे इस मन्त्रसे प्राणप्रतिष्ठा करै, ॐ आं ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि ॐ आं ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य वाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्र घ्राण प्राणाः इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा पुनः आचार्य देवताके हृदयपर अंगुष्ठ रखकर यह मन्त्र जपै। अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठंतु अस्यै प्राणाः क्षरंतु च। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन। इसका अर्थ प्रथम लिख आये हैं॥

ततः प्रणवेन संरुध्य, सजीवं ध्यात्वा। 'ध्रुवा द्यौः' इति तृचं जप्त्वा, कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा, पुरुषसूक्तेनोपस्थाय, पादनाभिशिरः स्पृष्ट्वा। 'इहैव एधि' इति त्रिर्जपेत् ॥ ततः कर्ता–"स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः। प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत् परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभाय नः। सांनिध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः। तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥ भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ॥ येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधौ भव ॥ ९ ॥" इति नमेत् ॥ एतदन्तं सर्वदेवानां समानम् ॥ देवमन्त्रश्च मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः ॥

फिर ॐकारसे प्राणोंको निरोधकर और जीवसहित देवका ध्यान और ध्रुवाद्यौः मन्त्रका जप और देवके कर्णमें गायत्री और देवमन्त्रको जपकर और पुरुषसूक्तसे स्तुति करके चरण, नाभि, शिरको स्पर्श करके यहांही वृद्धिको प्राप्त हो यह तीनवार जप करै, फिर यजमान इन मन्त्रोंसे देवको प्रणाम करै कि, हे देवदेवेश! आपका आगमन उत्तमहै मेरे भाग्यसे आप प्राप्त हुये हो, मुझे प्राकृत मनुष्य जानकर बालकके तुल्य मेरी पालना करो, हमारे मंगल कल्याण और धर्म, अर्थ, कामनाकी सिद्धिके निमित्त स्थिर रहो, और हे देव! अपनी पूजामें सदा निकट रहो यावत्, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वीपर रहैं तावत् भक्तोंपर दयाकरते हुए इस मूर्तिमें स्थित रहो, हे भगवन् हे देवदेवेश! तुम सब देहधारियोंके पिताहो, हे भगवन्! जिस रूपसे चर अचर आपसे व्याप्त है तिसी रूपसे पूजाके निकट रहियो, यहांतक जो कर्म कहा वह सब देवताओंको तुल्य है, और देवताका मन्त्र मूलमन्त्र लेना, अथवा वैदिक लेना ॥

अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चां वा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि। ॐभुवः पुरुषमावाहयामि। ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमावाहयामीत्यावाह्य ॥ प्रणवेनासनं दत्त्वा, तेनैव दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं–"इमा आपः शिवतमाः पूताः

पूततमाः मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः " इति पाद्यं दद्यात् । 'भगवान् महादेवो रुद्राय नमः ' इति लिङ्गे ॥ इमा आप आचमनीयास्ता जुषतामिति एलालवंगकंकोल-कर्पूरमिश्रमाचमनीयम् ॥ " आपः क्षीरकुशाग्रैश्चाक्षतैर्यवतण्डुलैः । यवैः सिद्धार्थकैश्चैवा-र्घ्योयं ते प्रतिगृह्यताम् " अर्घ्या इत्यर्घ्यम् ॥ ततो वेदमन्त्रैः प्रणवेन च रत्नाम्बुकलशेन संस्नाप्य । 'इदं विष्णुः ' इति विष्णौ । 'नमो अस्तु नीलग्रीवाय' इति लिङ्गे प्रतिसरं विस्रस्य । " इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः । पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ " पूता इत्यादि पूर्ववत् । इति गन्धम् ॥ 'इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः ॥ ' पूता इत्यादिमाल्यम् ॥ 'इमे पुष्पाः शुभा' इत्यादि पुष्पम् ॥ "वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्" प्रतिगृह्णात्वित्यादि धूपम् ॥ " ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः । प्रभाकरः सर्वभूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥ " इति दीपं दत्त्वा ॥ " विष्णो संकर्षण वासुदेव प्रद्युम्नानिरुद्ध पुरुषोत्तमाधोक्षज नृसिंहाच्युतजनार्दनोपेंद्रहरिश्रीकृष्णेति" द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य ॥ तैरेव तर्पणं कृत्वा ॥

फिर आचार्य वा यजमान, ॐभूः पुरुषका आवाहन करताहूं, ॐ भुवः ॐस्वः ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषका आवाहन करताहूं, इन मन्त्रोंसे आवाहन करके और ॐकारसे आसनप्रदान कर और ॐकारसेही, समा विष्णुक्रान्ता पद्म, दूर्वासे- मिले पाद्यको दे और यह मन्त्र पढे, यह जल मंगलरूप पवित्र, और अत्यन्त पवित्र है, अमृत और अमृतके तुल्य इनमें रसहै, इनको भगवान् महाविष्णु स्वीकार करो, भगवान् विष्णुको प्रणामहै लिंगकी प्रतिष्ठामें भगवान् महादेव स्थिति स्वीकार करो रुद्रको प्रणामहै अन्तमें प्रणामहै, यह जल आचमनके निमित्त है, उनको स्वीकार करो इस मन्त्रसे इलायची, लौंग, कंकोल, कपूरसे मिले हुए आचमनको दे, यह जल दूध कुशाका अग्र, अक्षत, यव, तण्डुलसे युक्त है, इनको स्वीकार करो इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, फिर वेदके मन्त्र ॐकारसे रत्नसहित कलशके जलसे देवताको स्नानकराकर विष्णुकी प्रतिष्ठामें इदं विष्णु० यह मन्त्र और शिवकी स्थापनामें 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' इस मन्त्रको पढकर और जलमेंसे निका-लकर और देवताको प्रणाम करके इसप्रकार पूजन करै, कि, यह शुभ और दिव्य गन्ध है सब गन्ध इनमें मिश्रित हैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्र हैं इन्हें स्वीकार करो, इस मन्त्रसे गन्धदे, यह माला शुभहैं, और दिव्यहैं इनमें सब मालामिलीहैं आप लीजिये इस मंत्रसे मालाओंको दे यह फूल शुभ और दिव्यहैं, सब फूल इनमें मिलेहैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्रहै, इस मन्त्रसे फूल चढादे, इस धूपमें वनस्पति-योंका रसहै, और गन्धसे युक्त और उत्तम देवके सूंघनेके योग्यहै, इसको स्वीकार करो, इस मंत्रसे धूप देना, यह ज्योति, वीर्य और तेजरूप है, और देवताओंको निरन्तर प्रियहै सब भूतोंको प्रकाश करने-वाले इस दीपकको स्वीकार करो, इसमंत्रसे दीपकको देकर विष्णुकी मूर्तिमें संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण इन द्वादशनामोंसे वा केशवादि बारह नामोंसे फूलोंको समर्पण करके और इन्हीं नामोंसे तृप्त करै ॥

पायसगुडौदनचित्रौदनानि । 'पवित्रं ते विततम्' इति नैवेद्यकृसरं पूर्वोक्तनामभिर्हुत्वा सनव शार्ङ्गिणे, श्रियै, सरस्वत्यै, विष्णवे इति हुत्वा । 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि '

'तदस्य प्रियमभिपाथो'। 'प्रतद्विष्णुस्तवतेवीर्येण'। 'परोमात्रया तन्वावृधान'। 'विचक्रमे पृथिवीमेष एतां।' 'त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां'॥ इति द्वादशनामभिश्चामुष्मै स्वाहेति जुहुयात्॥ लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा। भवाय० देवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उग्राय० भीमाय० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा। तैरेव तर्पणं कृत्वा। 'पवित्रं ते' इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कृसरं हुत्वा। 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा। 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा' इत्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा। 'त्र्यम्बकं यजामहे०।' 'मानो महान्तमुत मानो०।' 'मानस्तोके तनये०।' 'आरात्तेगोघ्नमुतपूरुषघ्ने०।' 'विकिरिदविलोहित०।' 'सहस्राणि सहस्रशो' इति द्वादश। एतैर्हुत्वा। 'शिवाय शंकराय सहमानाय शितिकण्ठाय कपर्दिने ताम्रायअरुणाय अपगुरमाणाय हिरण्यबाहवे सस्पिंजराय बभ्लुशाय हिरण्याय' इति च जुहुयात्॥ ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य। पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात्। मन्त्रस्तु—"त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे। त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन्प्रतिगृह्णीष्व हव्यम्" इति॥ लिङ्गे तु—नारायणपदे रुद्रं शिवमिति वदेत्। ततोऽश्वत्थपर्णे भूर्भुवः स्वरोमिति हुतशेषं निधाय, प्रदक्षिणीकृत्य, 'विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः' इति नत्वा, आचार्याय शतं तदर्धं तदर्धं द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा, ऋत्विग्भ्योपि दक्षिणां दत्त्वा, शतं द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः॥ प्रासादमात्रे नूतने तु मात्स्योक्तजलाशयप्रतिष्ठाविधिमेव कुर्यात्॥ गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि तु न भवति द्वारलोपात्। वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः। अन्यत्तद्वदेव। इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधिः॥

फिर खीर, घृतसे युक्त पूर्ण और शर्करासे युक्त गुड़ भात और हरिद्रौदन (हरदीका भात) इनको 'पवित्रन्ते' इस मंत्रसे निवेदन करके घृतसे मिले कृशर (मिश्रित) अन्नसे इन मन्त्रोंको पढ़कर आहुति प्रदान कराय वासुदेवाय, सङ्कर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, शांत्यै, श्रियै, सरस्वत्यै, पुष्टयै विष्णवे स्वाहा इन मन्त्रोंसे आहुति देकर इन वेदमंत्रोंसे आहुति दे, विष्णोर्नुकं० तदस्य प्रियं० प्रतद्विष्णुः परोमात्रया विचक्रमे त्रिर्देव० फिर द्वादशनामोंसे देवके निमित्त हवन करै, लिंगकी प्रतिष्ठामें तो दीपदानपर्यन्त कर्म समापन करके इन नामोंसे फूलोंको दे, कि, भव, देव, शर्व, ईश, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम, महान् देवको प्रणाम है और इन्हीं मन्त्रोंसे तर्पण करके पवित्रं ते० इस मंत्रसे खीर और गुड़ौदनको निवेदन करके पूर्वोक्त नामोंसे कृशरका हवन करके भव महादेवकी पत्नीके अर्थ आहुति है इत्यादि आठ मन्त्रोंसे गुडौदनका हवन करके भव महादेवके पुत्रके लिये स्वाहा इत्यादि ऋचाओंसे हलदीभातका हवन कर त्र्यंबकं, मानोमहान्तं, मानस्तोके, आरात्ते, गोघ्नं, विकिरिदविलोहित, सहस्राणि सहस्रश, इन सब बारह मंत्रोंसे हवन करके शिव, शंकर, सहमान, शितिकंठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगरमाण हिरण्यबाहु, सस्पिंजर, बभ्लुश, हिरण्यके निमित्त स्वाहा आहुति है इस प्रकार इन मंत्रोंसे हवन करै, फिर स्विष्टकृत आदि शेषहवन पूर्ण करके पूर्वोक्त सब हवियोंसे विष्णु वा लिंगको बलिदे अर्थात प्रदान करै, उसका यह मंत्र है कि, आद्य-पुरातन पुरुष नारायण सृष्टिके रचनेवालेका पूजन करते हैं आपही यज्ञरूप विधान करनेके योग्यहो हे परमात्मन्! अपनी आत्मासे इस हविको स्वीकार करो, यदि लिंग हो तो नारायणके स्थानमें रुद्रपदको

जपै फिर पीपलके पत्तेपर भूर्भुवः स्वः ॐ इससे तीन वा चार बार शेष हविको रखकर अग्निसहित देवकी परिक्रमा करके विश्वभुक्, सर्वभुक्, आत्मा और परमात्माको प्रणाम है, इस मन्त्रसे प्रणाम करै, फिर आचार्यकी अँगूठी, दो कुण्डल, दो वस्त्रसे पूजा करै, सौ वा पचास वा पचीस वा बारह वा तीन वा एक गौओंको दे और ऋत्विजोंको भी दक्षिणा देकर सौ वा बारह वा दश ब्राह्मणोंको भोजन करावै, इति संक्षेपः, नवीन प्रासाद (मंदिर) मात्रमें तो मत्स्यपुराणमें वर्णन कीहुई जलाशयप्रतिष्ठाविधिको ही करना चाहिये, गौका उत्तारण और पात्रोंका प्रक्षेप आदि कर्म द्वारके लोपके भयसे नहीं होते वरुणहवनके स्थानमें वास्तुहवनको करै और सम्पूर्ण उसी प्रकार समझना चाहिये ॥

इति कमलाकरभट्टकृतनिर्णयसिन्धुभाषाटीकायां लिंगार्चाप्रतिष्ठाविधिः समाप्तः ॥

अथ पुनःप्रतिष्ठा ।

तामधिकृत्य हयशीर्षपञ्चरात्रे-"चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाथवा । अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ॥" संस्कार्येति शेषः । पदार्थादर्शे ब्राह्मे-"खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते । यागहीनैः पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥ २ ॥" यागः पूजा ॥ पशुर्गर्दभादिः ॥ पञ्चरात्रे-"खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥ " अर्चाभङ्गादावुपवासः कार्यः-"न राज्ञो विप्लवेऽश्नीयात्सुरार्चाविप्लवे तथा" इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ सिद्धान्तशेखरे-"चौरचण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति । शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥" पञ्चरात्रे-"अङ्गादङ्गादिसंधाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत् । जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् ॥" शुद्धिविवेके विष्णुः-'द्रव्यवत् कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः' इति ॥ अर्चाः-प्रतिमाः ॥ तद्द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः ॥

अब फिर दूसरीवारकी प्रतिष्ठा लिखते हैं। फिर प्रतिष्ठाके प्रकरणमें हयशीर्षपञ्चरात्रमें यह लिखा है कि, चाण्डाल मद्यके स्पर्श अग्नि तथा अपवित्र मनुष्यके स्पर्शसे चाहें वे ब्राह्मण क्षत्रिय भी हों, इनसे दूषित हुई प्रतिमा भी फिर संस्कारके योग्य होती है, पदार्थादर्शमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, खण्डित, टूटी, जलीहुई, भ्रष्टमान (सत्कार) से हीन याग (पूजा) से हीन, पशुगर्दभादिसे छुईहुई जो दुष्ट भूमिमें गिरगई हो, जो औरके मंत्रोंसे पूजित हो, जिसे पतितने स्पर्श कीहो, ऐसी दश प्रतिमाओंमें देवता नहीं आते, पञ्चरात्रमें कहा है कि, खण्डित, फटी, चलायमान मूर्तिकी पूजा भयदायक है, तिससे बुद्धिमान् मनुष्य उस मूर्तिका पूर्वोक्तविधानसे पुनः उद्धार करै, यदि पूजामें कोई भंग होजाय तो व्रतकरना कारण कि, विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, राज्यका भंग और देवपूजनका नाश इनमें मनुष्यको भोजन न करना चाहिये । सिद्धांतशेखरमें कहा है कि, चोर, चांडाल, पतित, रजस्वलाका स्पर्श और शिव आदिकी मूर्तिके भंगमें फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये, पञ्चरात्रमें लिखा है कि, यदि अंगमें दूसरा अंग लगाया जाय यथा दूसरे नेत्र चढाने इत्यादि हों तो फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये, परन्तु जलके अधिवासमें नेत्रोंके मीचनेको त्याग दे, अर्थात् फिर प्रतिष्ठा न करै, शुद्धिविवेकमें विष्णुने कहा है कि, जिनका

द्रव्यके तुल्य शौचक्रिया है उन देवप्रतिमाओंकी फिर प्रतिष्ठासे शुद्धि होतीहै, अर्थात् तांबेआदि उस प्रतिमाके द्रव्यका उक्तके तुल्य शौच करके फिर प्रतिष्ठा करनी ॥

स्मृत्यर्थसारेप्येवम् । तद्विधिर्बौधायनसूत्रे—"पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकरात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले पुण्याहं वाचयित्वा, युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा, निशायां जलाधिवासं कृत्वा, श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयित्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य, तस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य, तं कलशं तत्तद्गायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाभिमन्त्र्य, तेनोदकेन देवं स्नापयेत् । ततः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च । ततः पुष्पाणि दत्त्वा, यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्" इति ॥ बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात् ॥ पूर्वोक्तविष्णुवचनात् । इदं मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च ॥ देवार्चाप्रासादभेदने तु शूलपाणौ काश्यपः—'वापीकूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदने प्रायश्चित्तं चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् । 'इदं विष्णुः' 'मानस्तोके' 'विष्णोः कर्माणि' 'पादोस्य' इति यां देवतामुत्सादयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत्' इति ॥ शंखलिखितौ—'प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम्' इति ॥ समुत्थानं—प्रतिक्रिया । प्रतिसंस्कारः—पुनःप्रतिष्ठा । अष्टशतं पणा दण्डश्चेत्यर्थः ॥

स्मृत्यर्थसारमें भी इसीप्रकार लिखाहै फिर प्रतिष्ठाकी विधि बौधायनसूत्रमें इसप्रकार कथन की है कि पहले प्रतिष्ठा कीहुई मूर्तिकी अज्ञानसे एकरात्र दोरात्र एकमहीने, दोमहीने तक पूजा आदिका भंग होजाय, वा शूद्र, रजस्वला आदिका स्पर्श होजाय तो पूर्वोक्त समयमें स्वस्तिवाचन कराय (दोआदि) युग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और रात्रिमें जलाधिवास करके, प्रातःकाल कलशमें भरे पंचगव्यसे उन २ मन्त्रोंसे स्नान करायकर और दूसरे कलशको शुद्ध जलसे भरकर और उस घडेमें नवरत्न डालकर उसकलशको तिस २ देवताका आठ सहस्र, आठसौ वा अट्ठाईस बार अभिमन्त्रण करके उसजलसे देवको स्नान करावे, फिर शुद्धजलसे न्हवावे, और आठ सहस्रदलोंसे पूजनकर दाल और भात निवेदन करै. यदि जानकर भंगता होजाय तो पूर्वोक्त प्रतिष्ठाको पूर्वमें कहे विष्णुके वाक्यसे फिर करै, यह प्रतिष्ठा मलमास और शुक्रास्त आदिमें भी करलेनी, यह मदनरत्न और हेमाद्रिमें भी कहाहै देवताकी प्रतिमा और मंदिरके टूटनेमें तो शूलपाणिमें काश्यपने कहाहै कि, बावडी, कूप, बाग, पुल, सभा, तालाव, परकोटा, देवमंदिरके तोडनेमें यह प्रायश्चित्तहै कि, इन चार मन्त्रोंसे चार आहुति दे कि, इदंविष्णु० मानस्तोके० विष्णोः कर्माणि० पादोस्य० और उसीदेवताके निमित्त ब्राह्मणभोजन करावे. शंख लिखितने कहाहै कि, प्रतिमा, कूप, मार्ग, ध्वजा, पुल, चौबचेके भंगमें उनको फिर बनवावे और फिर प्रतिष्ठा करै. और जो प्रतिमा आदिको गिराताहो उसको आठसो पण दण्डभी दे ॥

अथ जीर्णोद्धारनिर्णयः ।

स च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः । अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदुष्टेपि न कार्यः । तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः ॥ कर्त्तामुकदेवस्य जीर्णो-

द्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा पुण्याहं वाचयित्वा आचार्यमृत्विजश्च वृत्वा । लिङ्गे ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः । ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहेत्येवं षडङ्गं कृत्वाऽघोरमन्त्रं शतं जप्त्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघोरेण घृतसर्षपैः सहस्रं हुत्वा । इन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्त्वा जीर्णदेवं प्रणवेन संपूज्य ब्रह्मादिमण्डलदेवतानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देवं प्रार्थयेत् । "जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम् । अस्योद्धारे कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया ॥जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम् । तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया" ॥ २ ॥ इति ॥

अब जीर्ण मंदिरादिका उद्धार कहते हैं वह उद्धार लिंग आदिके जलने टूटने वा चलनेपर करना चाहिये, और यह उद्धार अनादिसिद्ध लिंगके भंगआदि होनेपर भी न करना चाहिये, वहां तो महास्नानविधि करै, यह त्रिविक्रमका कथनहै इस देवमंदिरका जीर्णउद्धार करताहूं करनेवाला यह कहकर और स्वस्तिवाचन कराय आचार्य और ऋत्विजोंका वरण करके लिंगमें ॐव्यापक ईश्वरहृदयाय नमः ॐव्यापक ईश्वर शिरसे स्वाहा इस प्रकार षडंग न्यास करके और अघोर मन्त्र सौवार जपकर और अग्निका स्थापन करके घृत और सरसोंसे एक सहस्र आहुति देकर और नाममन्त्रोंसे इन्द्र आदिको बलिदान देकर, जीर्ण देवकी ॐकारसे पूजा करके ब्रह्मा आदि मण्डलदेवताओंका पूर्व कहे अनुसार हवन करके देवकी प्रार्थना करै कि, जीर्ण और भंग हुआ यह देव मनुष्योंको सब दोषोंका दाताहै, इसके उद्धारकी शांति इस शास्त्रमें आपनेही कही है, जीर्णका उद्धार राजा और प्रजाको हित करनेवाला है हे देव ! तिससे इस मूर्तिमें आप नीचे स्थित हो आपकी आज्ञासे शस्त्रका प्रहार करताहूं अर्थात् फिर निर्माण करताहूं ॥

ततः क्षीराज्यमधुदूर्वाभिः समिद्भिश्चाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वाऽङ्गानां दशांशेन लिङ्गचालनार्थं सहस्रं शतं वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत् ॥ "लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् ॥ यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता । शिवेन सह संतिष्ठ " इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् ॥ ततोऽस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रणवेन मूर्तिं क्षिपेत् । दारुजं तु मधुनाऽभ्यज्याघोरेण दहेत् । हेमरत्नादिमयं तु दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत् ततः शान्त्यै अघोरेण तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत् । "भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । जीर्णलिङ्गसमुद्धारस्त्वाज्ञया ते मया कृतः ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले । प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३ " इति ॥

फिर दूध, घृत, शहत, दूब, समिधसे देवमन्त्रको पढकर एक सहस्र आठ १००८ वा एक सौ आठ १०८ आहुति देकर और अंग (परिवार) देवोंके निमित्त दशांशसे और लिंगके चलानेके निमित्त खीरकी सहस्र वा सौ आहुति देकर लिंगकी प्रार्थना करै कि, इस लिंगरूपमें आकर जो देवता स्थितहैं वह देव शिवकी आज्ञासे संमित (श्रेष्ठ) स्थानको गमन करैं, और इस स्थानमें सम्पूर्ण विद्याके ईश्वरोंसे युक्त जो विद्या है वह शिवके संग स्थित हो इसमन्त्रसे मंत्रित जलसे अभिषेक करके देवताका विसर्जन करै फिर

अस्त्रसे अभिमन्त्रित कियेहुए खनित्र (कुदालादि) से खोदकर और लिंगको लेकर वामदेव मंत्रसे लिंगको और प्रणव पांच ओंकारसे मूर्तिको नदी आदिमें सिरादे, काष्ठके लिंगमें तो शहत लगाय अघोर मंत्रको पढकर होमदे सुवर्ण रत्न आदिके लिंग दग्ध वा चल योग्य होय तो ठीककर वहां ही स्थापन करदे, फिर शांतिके निमित्त तिलोंकी अघोर मंत्रसे १००० सहस्र आहुति देकर प्रार्थना करै कि, हे भगवन् ! हे भूत और भावीके अधिपति ! हे लोकनाथ ! हे जगत्के ईश्वर ! आपकी आज्ञासे मैंने जीर्ण लिंगका उद्धार कियाहै सो क्षमा करना और काष्ठके निर्मितको अग्निसे भस्म करै, और पाषाणकी मूर्ति जलमें सिरादे हे देवेश ! जो अघोर अस्त्रसे तर्पित कियाहै वह सब प्रायश्चित्तके निमित्त है इसमें जो यथोक्त कर्म ज्ञान अथवा भूलसे न किया हो वह सब आपके प्रसादसे परिपूर्ण हो ॥

ततो जयमानः प्रार्थयेत् । "गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शान्तिर्भवतु देवेश ह्यच्छिद्रं जायतामिदम् ॥ " मूर्तौ तु विशेषः–"त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्माययत्यसौ । वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वसन् क्लेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् । यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥ २ ॥" इति ॥ ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तविधिना स्थापयेत् ॥ मूलं त्वग्निपुराणे स्पष्टम् ॥ इति जीर्णोद्धारः ॥

फिर यजमान स्तुति करै कि, हे देवेश ! गौ, ब्राह्मण, शिल्पी, राजा आचार्य तथा यज्ञकरनेवालेकी शांति हो, और यह पूर्ण हो, मूर्तिमें तो यह विशेष कहाहै कि, हे सुरश्रेष्ठ ! आपके प्रसादसे विघ्नरहित मूर्तिको निर्माण करताहूँ इससे जबतक और अल्प स्थानके विषय आप विराजिये, और जबतक यह भक्त आपकी मूर्तिनिर्माण करै तबतक यहां क्लेशसहित वसतेहुये उसके मनोवांछित कर्मको करो, फिर नवीन मूर्ति वा लिंगको निर्माण कर विधिपूर्वक स्थापन करै, इसमें प्रमाण अग्निपुराणमें कहाहै इति जीर्णोद्धारः ॥

अथ तुलसीग्रहणम् ।

देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे–"वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु । पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥" विष्णुधर्मोत्तरे–"रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ॥ जीवितस्य विनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित् ॥" तथा–"संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः । यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम् ॥" पाद्मे–" द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्त्तिके । लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥" रुद्रयामले–"द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचयस्तथा । विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥" विष्णुधर्मे–"न छिन्द्यात्तुलसीं विप्रो द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् । देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा ॥ इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थे तृणस्य च ॥" ग्रहणमन्त्रस्तु पाद्मे–"तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये । केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने" इति ॥

तुलसीके ग्रहण करनेको लिखतेहैं, देवयाज्ञिकके निर्माण किये स्मृतिसारमें कहाहै कि, वैधृति, व्यतीपात, मंगल, शुक्र, रविवार, दोनों, पर्व, पूर्णीमा, अमावस, (१५ । ३०) संक्रान्ति, द्वादशी, दोनों सूतक (मरण जन्म) में जो तुलसीको तोडतेहैं वे मानों भगवान्के शिरको छेदतेहैं. विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै

कि, धर्मात्मा पुरुष रविवारके विना दूर्वा, और द्वादशीके विना तुलसीको अपने जीवनके निमित्त न तोडै; तैसेही कहाहै कि, संक्रांति, रविवार, अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि, सन्ध्यामें जिन्होंने तुलसीपत्रको तोडा मानो उन्होंने हरिका मस्तकही तोडाहै पद्मपुराणमें कहा है कि, जो मनुष्य द्वादशीको तुलसी पत्र और कार्तिकमें आंवलेका पत्ता तोडताहै वह महा निंदित नरकोंमें गमन करताहै. रुद्रयामलमें कहा है कि, द्वादशीको दिनमें शयन, और तुलसीका तोडना, और दिनमें विष्णुको स्नान कराना इनको बुद्धिमान् मनुष्य सदा त्यागदे. विष्णुधर्ममें कहा है कि, वैष्णव ब्राह्मणको द्वादशीको कभी भी तुलसी न तोडनी चाहिये, देवताके निमित्त तुलसीका और होमके लिये समिधोंका और गौके निमित्त तृणका छेदन अमावास्याकोभी दूषित नहीं है. ग्रहण करनेका मन्त्र पद्मपुराणमें यह लिखाहै हे तुलसी ! तुम अमृतरूपाहो और सदा भगवान्की प्यारी हो, कृष्णके निमित्त तुझे तोडताहूँ, हे शोभने ! तुम वरदाता हो ॥

अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् ।

पारिजाते दक्षः–'समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः प्रहरो मतः ॥ ' भार्गवार्चने भविष्ये– "प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् । तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषि च ॥ " बृहन्नारदीये–"वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ " तत्रैव पाद्मे–"तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि । पद्मं पञ्चदिनात्त्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः "

अब फूल आदिके वासीपनको कहते हैं, पारिजातमें दक्षने लिखाहै कि, समिध फूल और कुशा आदिके तोडनेका दूसरा प्रहर माना है । भार्गवार्चनमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, जातीका फूल एक प्रहर, कनेरका एक रातदिन स्थित रहताहै, तुलसी, बेलपत्र, और सब जलमें और मालीके घरके फूलोंमें वासीपनका दोष नहीं. बृहन्नारदीयमें कहाहै कि, फूल और जल ये बासी त्यागने योग्यहैं परन्तु तुलसी-पत्र और गंगाजलका त्याग नहीं है वहांही पद्मपुराणमें लिखाहै कि, तुलसी वासी नहीं होती, और तीन दिन तक बेलपत्र वासी नहीं होता पांचदिन तक कमल वासी नहीं है शेष पर्युषित होतेहैं ॥

स्कान्दे–"पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् । पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥ " पदार्थादर्शे बोपदेवस्त्वन्यथाह–"बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वामन्दाम्भोजा हि दर्भा मुनितिलतगरब्रह्मकह्लारमल्लचः । चम्पाश्वारातिकुम्भीद्मनमरुबकाबिल्वतोहानिशस्तांस्त्रिश ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ॥ " अस्यार्थः–शता शतावरी । मन्दः मन्दारः । अहिर्नागकेशरः । मुनिरगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः । कुम्भीपाटलेति कैदेवनिघण्टुः ॥ अरयः षट् । ईशा एकादश । उदधयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः एकः । यमौ द्वौ । बिल्वमारभ्याऽहिपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादिगणयेदित्यर्थः ॥ एतद्दिनोत्तरं पर्युषितानीत्यर्थः ॥

स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, ढांक एकदिन, कमल तीन दिन, बेलपत्र पांचदिन, तुलसीपत्र दशदिनतक वासी नहीं है, पदार्थादर्शमें बोपदेवने तो और लिखाहै कि, बेल तीस दिन, अपामार्ग (चिरचिटा) तीन दिन, जाती एक दिन, तुलसी छः दिन, समिधा ग्यारह दिन, शतावरी चारदिन, केतकी नौ दिन, भंगरा आठ दिन, दूर्वा एकदिन, मन्दार एकदिन, कमल दोदिन, नागकेशर एक दिन, कुशा तीस दिन, अगस्त्य

तीन दिन, तिल एक दिन, तगर छः दिन, ब्राह्मी ग्यारह दिन, कह्लार चार दिन, चमेली नौ दिन, चम्पा आठ दिन, कनेर एक दिन, पाटल एक दिन, मौलसिरी एकदिन, मरवा दोदिन, बकुल एक दिन पर्यन्त बासी नहीं होते ॥

टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य–"तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी । शुष्का-पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति क्वचित् ॥" तिथितत्त्वे मात्स्ये–"बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसीं चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा ॥" स्मृतिसारावल्याम्–"जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥ न पर्युषितदोषोस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पंकजैर्जलजैर्विना ॥ २ ॥

टोडरानन्द ग्रन्थमें स्कन्दपुराणके दमनके प्रकरणमें कहाहै कि, मौलसरीकी माला भगवान्को अत्यन्त प्रिय करतीहै सूखी वा बासीभी कदाचित् मौलसरी दूषित नहीं होती है. तिथितत्त्वमें मत्स्यपुराणका लेखहै, कि, बिल्वपत्र, कुन्द, तमाल और आँवलेके पत्ते, कह्लार, तुलसी, पद्म, अगस्त्य, कुशा और कलियें बासी नहीं होते. स्मृतिसारावलीमें कहाहै कि, जलके सब फूल पत्ते, और बिना टूटे (स्वच्छ) फूल कुशाके फूल, चांदी और सोनेके फूल और तीर्थका जल, इनमें पर्युषितका दोष नहीं, कमल और जलसे उत्पन्नहुए फूलोंको त्यागकर मुकुलों (कली) से देवताका पूजन न करै ॥

अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः ।

सिद्धान्तशेखरे–"धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् । विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् । दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं तु सर्वशः ॥ आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् । धनस्य भक्षणे तेषां पादोनं लक्षमीरितम् ॥ निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता । दानं च भक्षणसमं तदर्धं तदुपेक्षणे ॥ अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः । ब्रह्मपञ्चकसाहस्रं धर्मेण सहितं ततः ॥ कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं न चान्यतः । निर्माल्यलंघने घोरं प्रजपेदयुतं ततः । स्पर्शश्च लंघनसमो विक्रयो भक्षणेन च ॥ ७ ॥"

अब शिवनिर्माल्यका निर्णय लिखतेहैं, सिद्धान्तशेखरमें कहाहै कि, पृथ्वी, सुवर्ण, गौ, रत्न, चांदी, वस्त्रको त्यागकर शेषनिर्माल्यको चण्डेश्वरको निवेदन करै, अन्य जो अन्न आदि जल,पान, गन्ध, फूलहैं उन सबको शिवजीको निवेदन करनेके उपरान्त चण्डको देदे, आचार्य शिव चण्डकी आज्ञा भंग करै तो लक्ष और उनके धनके भक्षणमें पौन लक्ष और निर्माल्यके भक्षणमें २५ सहस्र जपसे शुद्धि लिखी है, और भक्षण तुल्य दान और उपेक्षा करनेमें अर्द्धदान करै, और अज्ञानसे भक्षणमें बुद्धिमान् मनुष्य पांच सहस्र गायत्रीको जपै, जानकर भक्षण करै तो दीक्षा (मन्त्रका उपदेश) ले और प्रायश्चित नहीं है और निर्माल्यके लंघनेमें दशसहस्र अघोरमन्त्र जपै, स्पर्श लंघनके तुल्य और बेचना भक्षणके तुल्य होताहै ॥

स्मृत्यर्थसारेपि–"शैवसौरनिर्माल्ये नैवेद्यभक्षणे चान्द्रम्, अभ्यासे द्विगुणम्, अत्यभ्यासे प्रतपनम् ॥ अन्यनिर्माल्येप्यनापद्येवम्" इति ॥ इदं च ज्योतिर्लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम् । तथा च पुरुषार्थप्रबोधे भविष्ये–"ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः । तस्य

---

१ जहां 'अर्द्धेन सहितम्' पाठ है वहां साढे पांच सहस्रका अर्थ करना.

नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम् ॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि । रसलिङ्गे तथार्षे च सुप्रसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते । शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥ ३ ॥

स्मृत्यर्थसारमें भी कहाहै कि, शिवजी और सूर्यके निर्माल्य नैवेद्य (मिष्टान्न) के भक्षणमें चान्द्रायण व्रत करै, और वारम्वार करै तो दूना व्रत करै, अत्यन्त अभ्यास करनेसे तो प्रतपन करै, और देवताओंके निर्माल्य भक्षणमें भी विना आपत्ति यही प्रायश्चित्त है, यहभी ज्योतिर्लिंग आदिसे भिन्न विषयमें जानना सोई पुरुषार्थ प्रबोधमें भविष्य पुराणका वाक्यहै कि, जो श्रेष्ठ मनुष्य ज्योतिर्लिंगके विना लिंगकी पूजा करताहै उसको निर्माल्य और नैवेद्यके भक्षणमें तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त लगताहै शालग्रामसे निर्मित और बाणके लिंग और स्वयं निकसे लिंगमें रसके लिंगमें और ऋषि देवता सिद्धके प्रतिष्ठित लिंगमें, हृदय और चन्द्रकान्त मणि सोने चांदीसे निर्मित्त लिंगमें शिवदीक्षावाला भक्त निर्माल्यका भक्षण करै, यह कहाहै ॥

तथा–"बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् । लिङ्गे स्वयंभुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते ॥ सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चंडाधिकृतिर्भवेत् । यत्र चण्डाधिकारोस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः ॥ चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः" ॥ २ ॥

तैसेही लिखाहै कि, बाणलिंग, स्वयं प्रादुर्भूत लिंग, चन्द्रकान्तमणिका, हृदयका लिंग इन शिवमूर्तिके नैवेद्य का भक्षण चान्द्रायणके तुल्य पवित्र करनेवालाहै स्वयं प्रादुर्भूत बाण वा रसका वा रत्नका सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिंगोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, जिसमें चण्डका अधिकार है मनुष्य उस देवताके नैवेद्यको भक्षण न करै, और जिसमें चण्डका अधिकार नहीं है, उसको भक्तिसे भोग लगाय भक्षण करै ॥

त्रैविक्रम्याम्–"बाणलिंगे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥" अत्र–"ब्रह्मापि शुचिर्भूत्वानिर्माल्यं यस्तु धारयेत् । तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते ॥" इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यम् ॥ किंतु स्नात्वेति स्मार्ताः ॥ अनुपनीतेन ग्राह्यमिति श्रीदत्तः ॥ शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवाः । तिथितत्त्वे हेमाद्रौ परिशिष्टे–"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥" पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण च निवेदितमित्यर्थः ॥ शिवपुराणे–"ये वीरभद्रशमिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः । शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः ॥ तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम् ॥ "

त्रैविक्रमीमें कहाहै कि, बाण, लोहेका और सिद्धोंका प्रतिष्ठित और स्वयंभूलिंग और सम्पूर्णप्रतिमामें चण्डका अधिकार नहींहै, ब्रह्महत्यारा भी जो शुद्ध होकर निर्माल्यको धारण करै, हे महाव्रते ! उसके महापापको भी मैं शीघ्र नाश करताहूं इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे अशुद्धमनुष्य ग्रहण न करै यह शवोंका कथन है. तिथितत्त्व और हेमाद्रिपरिशिष्टमें वाराहपुराणका लेखहै कि, शिवका नैवेद्य, पत्र, पुष्प, जल, फल ये सब ग्रहण करनेयोग्य नहींहैं और शालग्रामकी शिलाके सम्बन्धसे सब पवित्र होजाते हैं, अर्थात् पंचायतन (पांच देवताओंकी) पूजामें जो एकसमय निवेदन कियाहो शिवपुराणमें कहाहै कि, जिनको वीरभद्रका

शाप लगाहै और जो शिवकी भक्तिसे रहित हैं और जो शिवके सिवाय दूसरे देवताओंके भक्तहैं, उनको शिवजीके चारों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥

काशीखण्डे–" जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः । एष जालंधरो बन्धः समस्तसुरवल्लभः ॥" तथा–"स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् । त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥ लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः" ॥ २ ॥ इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमिति केचित् ॥ काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गविषयम् ॥ काशीखण्डे रत्नेश्वराख्याने तथैव दर्शनादित्यन्ये ॥

काशीखण्डमें कहा है कि, विश्वेश्वरके स्नानजलको मस्तकपर धारण करना चाहिये यह जालंधरबन्ध (जलोंका धारण) सब देवताओंको अतिप्रिय है तैसेही कहा है कि, जो विधिपूर्वक शिवके लिंगको स्नान करायकर स्नानके जलको पान करता है उसका तीन प्रकारका पाप शीघ्र दूर होता है, जो लिंगके स्नानजलको शिरपर छिडकता है पापहीन होकर उसको गंगास्नानका फल प्राप्त होता है, ये वाक्य पूर्व वाक्यके वशसे विश्वेश्वरके विषयमें हैं यह कोई लिखते हैं कि, पुराणोंमें प्रसिद्ध काशीके सब लिंगोंके विषयमें है, यह और कहते हैं कारण कि, काशीखण्डके रत्नेश्वर लिंगके आख्यानमें इसीप्रकार देखा है ॥

कृषिनिर्णयः ।

राजमार्तण्डः–"ऋक्षेपूत्तरपौष्णवैष्णवमघामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदैवतगुरुप्रालेयपादेषु च । निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्च सुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वा क्षेत्रपतेर्बलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत् ॥ प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषक्स्वाती विशाखा तथा । जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्योदये सस्यानां वपने तथैव लवने शस्तास्तथा रोपणे ॥ २ ॥" चण्डेश्वरः–"हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये । स्थिरलग्ने गुरोर्वारे बीजं धार्यं ज्ञशुक्रयोः ॥ ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा इमं मन्त्रं लेखयित्वा धान्यागारे निधापयेत् । सस्यवृद्धिं परां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत् ॥ दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासु नारीषु । व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बुधवासरे कुर्युः ॥ शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः ॥ ३ ॥"

अब कृषिका निर्णय लिखते हैं । राजमार्तण्डमें कहा है कि, तीनो उत्तरा, रेवती, श्रवण, मघा, मूल, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, विशाखा, पुष्य, मृगशिर, नक्षत्रोंमें निर्दोष और फूलोंकी मालासे पूजित बैल और हलोंसे क्षेत्रके पति देवताको बलि देकर कृषक खेतको जोते, और रोहिणी, श्रवण, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मघा, मार्तण्ड (हस्त), पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाति, विशाखा, नक्षत्र बृहस्पति, सूर्य, चंद्र, शुक्र, बुधवार और सौम्योदय लग्न ये सब खेतीके बोने और लगाने, काटनेमें उत्तम हैं । चंडेश्वर कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाति, रेवती, श्रवण-धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र स्थिरलग्न, बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें बीज बोवे, 'ॐधनदाय सर्वलोक हिताय नमः देहि मे धान्यं स्वाहा' धन देनेवाले सब लोकके हितकारीको प्रणाम है मुझे अन्नदो इस मंत्रको लिखकर कोठारमें रखदे तो पूजितको भी अर्चित करता है, बुद्धिमान् मनुष्य दक्षिणका गमन और नवीन स्त्रीका दक्षिण दिशाको गमन, और खेत और धनका खर्च बुधवारमें न करै वा शनिवारको भी धन और अन्नको न दे ॥

अथ वस्त्रनिर्णयः ।

श्रीपतिः-"रोहिणी च करपञ्चकेऽश्विभे ऽप्युत्तरासु च पुनर्वसुद्वये । रेवती च वसुदैवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥ जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ भौमे शुचे बुधदिने तु भवेद्धनाय । ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥ रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणे । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेपि या" ॥ ३ ॥

अब वस्त्रका निर्णय लिखते हैं । श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी और हस्तसे पांच और तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा नक्षत्रमें नवीन वस्त्रका धारण करना उत्तम है, जीर्ण वस्त्र रविवारको जलसे भीगा वस्त्र चन्द्रवारको धारण करै और नवीन वस्त्रको मंगलवारको पहरै तो अशुद्धि, बुधवार धन, बृहस्पतिवारको ज्ञान, शुक्रवारको प्रियमिलन, शनैश्चरको मलिनता होती है, जो स्त्री रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरामें नये वस्त्र और गहनेको पहरती है वा शतभिषा नक्षत्रमें न्हाती है उसको पतिका संग प्राप्त नहीं होता ॥

अथालंकारवलयादिनिर्णयः ।

दैवज्ञवल्लभः-"नासत्यपूषवसुभिः करपञ्चके न मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारे । मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्ध्यै ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"हस्तानुराधमृगपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरासु च पुनर्वसुरोहिणीषु । लग्ने स्थिरे रविसुतेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् ॥" तत्रैव श्रीपतिः-"पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चकेषु कौसुम्भहेममणिविद्रुमकाचशंखाः । नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादितिगुरुष्वसुखाय भर्तुः ॥" तत्रैव-"शंखादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च । रोहिण्यां नैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकांक्षिणी" ॥

अब भूपण और कङ्कण आदिका निर्णय लिखते हैं । दैवज्ञवल्लभ कहते हैं कि, अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्तसे पांच नक्षत्र सूर्य, मंगल, शुक्र, बृहस्पतिवार इनमें मोती, सुवर्ण, मणि, मूंगा, शंख, दांत, लाल वस्त्रको धारण करै तो सिद्धि होती है. ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, हस्त, अनुराधा मृगशिर, रेवती, धनिष्ठा, चित्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्र स्थिरलग्न, शनैश्चर, बुध, बृहस्पति, वारमें मनुष्य सुवर्ण आदिको पहरे । वहांही श्रीपति कहते हैं कि, रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त आदि पांच नक्षत्रमें स्त्री कुसुम्भी रंगका वस्त्र, सुवर्ण, मणि, मूंगा, कांच, शंखको धारे तो सन्तानको मंगलकारी होते हैं और रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्यमें धारे तो पतिके सुखकारी होते हैं वहांही लिखा है कि, शंखआदि श्रेष्ठरत्नको पतिके जीवनकी इच्छा करतीहुई स्त्री पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा रोहिणीमें धारण करै ॥

अथ सूचीकर्म ।

"वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च । सूचीकर्मतनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ॥"

अब सूचीकर्म (सीने) का निर्णय लिखते हैं । धनिष्ठा, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, अश्विनीमें सीना और (कवच) संजोबलका बनना अति उत्तम है ॥

अथ शय्या।

"हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तराणि पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभानि ॥ वारेषु जीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भणमुत्तमं स्यात् ॥"

अब शय्याका निर्णय लिखते हैं। हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, तीनो उत्तरा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगशिर, चित्रा नक्षत्र, बृहस्पति, सोम, शुक्र, बुधवारमें खाटका आरम्भ श्रेष्ठहै ॥

अथ शस्त्रधारणम्।

" पुष्ये चादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तररेवतीस्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः ॥ "

अब शस्त्रका धारण लिखतेहैं पुष्य, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, ज्येष्ठा, तीनो उत्तरा, रेवती, स्वाति, अश्विनी, विशाखा, अनुराधा ये नक्षत्र सूर्य, बृहस्पति, शुक्रवार, कुंभ और वृश्चिक लग्न वृष और मकरका चन्द्रमा और लग्नमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो तनुत्राण, (बख्तर) बाण, तलवार, भाला, छुरिका धारण करना मनुष्योंके निमित्त हितहै ॥

अथ स्वामिसेवा।

चण्डेश्वरः-"रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयोरपि । सेवेत स्वामिनं भृत्यः शुभवारोदये तथा ॥ " ज्योतिर्निबन्धे-"दासीदासादिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधैः। स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः ॥ "

अब स्वामीकी सेवा कहतेहैं चण्डेश्वर लिखते हैं कि, रोहिणी, तीनो उत्तरा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा और शुभवारमें सेवक स्वामीकी सेवा आरंभ करै ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, बुद्धिमान् मनुष्य, दासी, दास और भृत्य इनके संग्रहको शुभग्रहोंसे देखे अच्छे शुभ लग्नमें और शनिवारको विशेषतासे करै ॥

गजाश्वदोलारोहणनिर्णयः।

स एव-"पौष्णप्रजेशादितिभद्वयानि हस्तादिषट्कश्रवणोत्तराणि । दोलादिमातङ्गतुरंगमाणामारोहणेभीष्टफलप्रदानि ॥ "

अब हाथी घोडोंके चढनेको लिखतेहैं। ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, रेवती, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्तसे छः श्रवण तीनों उत्तरा इनमें हिंडोला, हाथी, घोडा, इनपर चढना यथेच्छ फलको देताहै ॥

अथ नृत्यम्।

" हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी च ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चक्रवर्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥ "

अब नृत्यको लिखतेहैं, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, शतभिषा, तीनों उत्तरा पूर्व आचार्योंका लिखा हुआ यह नक्षत्रोंका समूह नृत्यके आरम्भमें उत्तमहै और यह चक्रवर्ती योग है ॥

अथ राजदर्शनम्।

श्रीपतिः-"मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभानि । मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥ "

अब राजाके दर्शनको लिखतेहैं श्रीपति कहतेहैं कि, मृगशिर, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त तीनों उत्तरा, रोहिणी, चित्रा, रेवती, अनुराधा, नक्षत्र राजाके दर्शनमें मंगलदायक हैं ॥

अथ क्रयविक्रयौ ।

" भाद्रद्वयत्रिदशमंत्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरंगमरेवतीषु । सारङ्गपाणिरजनीकरमित्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ॥ " वस्त्रे तु–" चित्रा शतभिषा स्वाती रेवती चाश्विनी शुभा । श्रवणश्च तथा प्रोक्ता वस्त्राणां क्रयणे शुभाः ॥ "

अब क्रयविक्रयको लिखतेहैं । पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, बृहस्पति और रविवार, मूल, स्वाति, तीनों उत्तरा अश्विनी, रेवती, श्रवण, मृगशिर, अनुराधामें क्रयविक्रय (लेनदेन) करै, तो निरन्तर लाभ होताहै, वस्त्रमें तो यह लिखाहै कि, चित्रा, शतभिषा, स्वाती, रेवती, अश्विनी, श्रवण नक्षत्र वस्त्रोंके क्रय करनेमें शुभ हैं ॥

अथ सेतुनिर्णयः ।

"स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभे दिने । सेतूनां बन्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः" ॥

अब सेतुको लिखतेहैं । स्वातिनक्षत्रसे युक्त शनिवार वृषलग्न और शुभदिन तीनों उत्तरा और रोहिणी रवि और बृहस्पतिवारमें पुलोंका बांधना उत्तमहै ॥

अथ पशुकृत्यम् ।

श्रीपतिः–" चित्रोत्तराविष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु । स्थानप्रवेशो गमनं विदध्यात्पुमान् पशूनां न कदाचिदेव ॥ " चण्डेश्वरः–"हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा । मैत्रे च वारुणे श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु इन्द्राग्निवाजिवसुवारुणशंकरेषु । एतेषु गोमहिषदन्तितुरंगमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता " ॥ २ ॥

अब पशुके काम वर्णन करतेहैं । श्रीपति कहते हैं कि, चित्रा, तीनों उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी इनमें मनुष्य पशुओंके स्थानमें गमन और प्रवेश न करै, चंडेश्वर कहतेहैं कि, हस्त, मूल, विशाखा, रेवती, श्रवण, अनुराधा, शतभिषामें पशुओंका लेना उत्तमहै, और तीनों पूर्वा, मृगशिर, कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी धनिष्ठा, स्वाती, आर्द्रा नक्षत्रोंमें गौ भैंस हाथी घोडा आदि नानाप्रकारके पशुओंका गमन बेचना उत्तम है ॥

अथ गजदन्तच्छेदः ।

ज्योतिर्निबन्धे–" त्वाष्ट्रे वैष्णव अश्विन्यामादित्ये वसुदैवते । दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कर्तनम् ॥ "

अब हाथीके दांतका छेदन लिखतेहैं । ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, चित्रा श्रवण अश्विनी पुनर्वसु धनिष्ठा पुष्य और हस्तमें हाथियोंका कर्म उत्तम फलदायक है । अर्थात हाथीदांतका कर्तन आदि ॥

अथ निक्षेपः ।

" भरणीत्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषामघा तथा । चित्राज्येष्ठाविशाखा च मूलं मृगपुनर्वसू ॥ एभिर्दत्तं प्रयुक्तं च यद्यन्निक्षिप्यते धनम् । पृष्ठतो धावमानस्य तद्धनं नोपपद्यते ॥ २ ॥ "

अब निक्षेप (धरोहर) को लिखते हैं । : भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, मूल, मृगशिर, पुनर्वसुमें दिया वा किसी कार्यमें लगाया अथवा जो धन रक्खाजाता है वह पीछे दौडते हुये भी धनीको प्राप्त नहीं होता ॥

अथ ऋणमोक्षः ।

श्रीधरः-"वागीशमन्ददिवसांशकलग्नयुक्ते रिक्तासु मन्ददिवसे कुलिकोदये च । मैत्र-द्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते राश्युद्गमे च ऋणमोक्षमुशन्ति सन्तः ॥"

अब ऋणमोक्षको लिखते हैं, श्रीधर कहते हैं कि, बृहस्पति, शनैश्चरसे युक्त नवांशेके लग्नमें रिक्ता और शनिवार कुलिकके उदयमें अनुराधाके दूसरे चरण वा योगमें और राशिके उदयमें सज्जनोंने ऋणके मोक्षका करना लिखा है ॥

अथ राजमुद्रा ।

"मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्रवर्ज्यम् । वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्रा-प्रतिष्ठा शुभदा हि राज्ञाम् ॥"

अब राजमुद्रा (सिक्का) को लिखते हैं । मृदु, ध्रुव, क्षिप्र **और** चर संज्ञक नक्षत्र शनिश्चर और चन्द्रवारसे भिन्न श्रेष्ठ जय देनेवाले वार और तिथिमें राजाओंकी मुद्राका खुदवाना उत्तम है ॥

अथ नौकानिर्णयः ।

चण्डेश्वरः-"पौष्णाश्विनीतुरगवारुणमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिवसवोनलवंत्यमूनि । वारे च जीवभृगुनन्दनके प्रशस्ते नौकादिसंघटनवाहनमेषु कुर्यात् ॥"

अब नौकाको लिखते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, रेवती, अश्विनी, शतामिषा, अनु-राधा, चित्रा, मृगशिर, हस्त, धनिष्ठा, कृत्तिका नक्षत्र, बृहस्पति, शुक्रवारमें नौका निर्माण और चलाना करै ॥

अथ भोगः ।

"गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स्यात् । स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनास-नभोगभोगादि ॥"

अब भोगको लिखते हैं । पुष्य, हस्त, अनुराधा, अभिजित्, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, तीनों उत्तरामें शयन और भोजन आदि भोगोंको करना चाहिये ॥

अथ श्मश्रुकर्म ।

श्रीपतिः-"पुष्ये पौष्णे चाश्विनीष्वैंदवे च शाक्रे हस्ताद्ये त्रिकेभेप्यदित्याः । क्षौरं कार्यं वैष्णवादित्रये च मुक्त्वा भौमादित्यपातङ्गिवारान् ॥ न स्नानभुक्तोत्कटभूषितानामभ्यक्त-यात्रासमरोत्सुकानाम् । क्षौरं विदध्यान्निशि संध्ययोर्वा जिजीविषूणां नवमे न चाह्नि ॥ २ ॥" त्रिस्थलीसेतौ वृद्धगार्ग्यः-"रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि । श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥"

अब श्मश्रुकर्म (हजामत) कहते हैं । श्रीपति लिखते हैं कि, पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रोंमें भौम, रवि, शनैश्चर, वारोंको

वर्ज्य कर क्षौर बनावै, स्नान भोजनके उपरान्त, श्रेष्ठ भूषणोंसे भूषित, उबटना, यात्रा और संग्राममें उद्यत, रात्रि, सन्ध्या और नौमे दिन जीवनके अभिलाषी मनुष्यको क्षौर न करानी चाहिये । त्रिस्थली-सेतुमें वृद्ध गार्ग्य कहते हैं कि, रवि, मंगल, शनैश्चर, रात्रि, व्यतीपात, व्रत और श्राद्धके दिन प्रतिपदा, रिक्ता, भद्राको क्षौर न करावै ॥

गार्ग्यः–"षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा । आसु सन्निहितं पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ॥" राजमार्तण्डः–"देवकार्ये पितुः श्राद्धे रवेरंशपरिक्षये । क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥" बृहस्पतिः–"राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥" तथा–"क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥" केचित्तूत्तरार्धमन्यथा पठन्ति-- 'मुण्डनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते ॥'

गार्ग्य कहते हैं कि, छठ, अमावस, पूर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्दशी और अष्टमीको तेल, उबटना रतिकर्म और क्षौरको करै तो शीघ्रही पापयुक्त होता है । राजमार्तण्डमें लिखा है कि, देवकार्य, पितृश्राद्ध, सूर्यकी अंशकी घटती, जन्ममास और जन्मनक्षत्रमें क्षौर न करावै । बृहस्पति कहते हैं कि, राजाके कार्यमें लगे और राज्यसे जीविकावाले मनुष्योंकी डाढी और रोम नखके छेदनमें समयकी शुद्धि नहीं देखनी. तैसेही लिखा है कि, नैमित्तिक क्षौर और पिता आदिकी मृत्यु दीक्षा और प्रायश्चित्त तीर्थका क्षौर निषेधके दिनमें भी निश्चयसे प्राप्त होता है[1] । कोई तो इस श्लोकके पिछले दो पदोंको और प्रकार पढते हैं कि, मुण्डनके निषेधमें भी बालोंको कतरवाले ॥

नारदः–"नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेखिलवारर्क्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥" भारते–"प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयीत समाहितः । उदङ्मुखो वाथ भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ॥" अपरार्के–"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् । दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसंक्षये । शिखाद्ये नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥ २ ॥

नारद कहते हैं कि, राजा और ब्राह्मणकी आज्ञा, यज्ञ, मरण, बंधनसे छुटकारा, विवाह इनमें क्षौर संपूर्ण वार नक्षत्र और तिथियोंमें भी मनोरथदाता है । भारतमें कहा है पूर्व वा उत्तरको मुख करके सावधानतासे मनुष्य हजामत करावे तो उसकी बडी आयु प्राप्त होती है । अपरार्कमें कहा है बुद्धिमान् मनुष्य उत्तर वा पूर्वको मुखकर हजामत करावे और उत्तरकेही केश रोम नखोंको प्रथम मुडवावे दक्षिण कानसे लेकर धर्म और पापनाशके निमित्त क्षौर करावे और नये संस्कारमें शिखासे लेकर और शिखासहित मुण्डन करवावे ॥

तत्र यतीनां विशेषः

यतीनां तु विशेषो निगमे–'कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत्' इति ॥ अन्येपि विधिप्रतिषेधाः प्रागुक्ताः ॥

---

१ यथा च, आनर्तोहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोऽदितिर्दितिः श्रीशः । क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः । अर्थात्--जो निषिद्धदिनमें क्षौर कराली हो तो उसके दोषशान्तिके निमित्त शुभदिनमें क्षौर कराले, आनर्त, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति, दिति, श्रीश क्षौर कराते समय इनके नामस्मरणसे दोष नष्ट होताहै ॥

संन्यासियोंके निमित्त तो वेदमें विशेष लिखा है कि, कुक्षि, लिंग, शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधियोंमें मुण्डन करावें और भी विधि और निषेध प्रथम कह आये हैं॥

अथेन्धनसंग्रहः।

"ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाखयुक्ते। वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भवति प्रशस्तम्॥"

अब इन्धनसंग्रह लिखतेहैं। रोहिणी, कृत्तिका, हस्त, मघा, मूल, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, रेवती, अनुराधा, पुष्य, श्रवण, विशाखा नक्षत्र, मंगल, रवि, शुक्र, बुधवारमें इन्धनका संग्रह करना उत्तमहै॥

अथ नवान्नम्।

श्रीपतिः—"रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतः पृथगपि द्वितये च। त्र्युत्तरेषु गदितं पृथुकानां प्राशनं नवनवान्नविधानम्॥"

अब नवान्न भक्षण लिखतेहैं। श्रीपति कहते हैं कि, रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, तीनों उत्तरामें बालकोंको नया अन्न प्राशन करावै॥

अथ नवभोजनपात्रम्।

ज्योतिर्निबन्धे—"भोज्यपात्रं सुधासिन्धौ घटयेद्वा समाहरेत्। तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत्॥"

अब नये भोजनपात्रको वर्णन करतेहैं। नये भोजनपात्रको अमृतसिद्धके निमित्त अन्नप्राशनमें लिखे मुहूर्तमें बनवावै और लावै और उसी मुहूर्तमें उस पात्रमें भोजन करै॥

अथ नवपर्णफलादिभक्षणम्।

चण्डेश्वरः—"मूलाश्विमैत्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु। वारेषु भूमितनयार्कजवारवर्जं ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं हिताय॥"

अब नये पत्ते और फल आदिके भक्षणको लिखतेहैं। चण्डेश्वर कहते हैं कि, मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मंगल शनैश्चरवारको त्यागकर इन नक्षत्रोंमें ताम्बूल और फलका भक्षण हितार्थी मनुष्यको करना चाहिये॥

अथ होमे आहुतिपातः।

ज्योतिषे—"तरणिविद्भृगुभास्करिचन्द्रमः कुजसुरेज्यविधुंतुदकेतवः। रविभतो दिनभं गणयेत्क्रमात् प्रतिखगं त्रितयं त्रितयं न्यसेत्॥ दिनकरार्कितमःकुजकेतवो हुतभुजेन शुभास्त्वितरे शुभाः। हवनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां हवनकर्मणि सर्वसमृद्धये॥ २॥" अत्र शान्तिरुक्ता विष्णुधर्मे—"क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम्। गोमूत्रमरुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः॥ स्वस्थां निधाय संपूज्य तत्र होमो विधीयते॥" अत्रापवादः क्रियासारे—'नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत्॥"

अब होममें आहुतिके पात्रको लिखतेहैं, सूर्य, बुध, शुक्र, शनैश्चर, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, राहु और केतु इन ग्रहोंके मुखमें आहुति तब जाती है कि, सूर्यके नक्षत्रसे हवनदिनके नक्षत्रको गिने, और

एक .२ ग्रहके निमित्त सूर्यके नक्षत्रसे तीन तीन नक्षत्र रखदे, उनमें सूर्य, शनिश्वर, राहु, मंगल, केतुके मुखमें आहुति जाय तो शुभकी नष्टता होतीहै सम्पूर्ण समृद्धिके निमित्त होमकर्ममें इस आहुतिचक्रको देखै; इसकी शांति विष्णु धर्ममें लिखी है कि, जो क्रूर ग्रहके मुखमें हवन होजाय तो शांतिद्वारा कुटुम्बी ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये, लोहेकी प्रतिमा बनाकर उसको अधोमुख रक्खै, गोमूत्र, मधु और गन्धआदिसे प्रतिमाकी पूजाकर फिर सीधी रक्खै, पूजनकर हवन करै; इसका अपवाद क्रियासारमें लिखाहै कि, नित्य और नैमित्तिक कर्म और दुर्गा हवन आदिमें हवनके मुहूर्तको न विचारै ॥

अथ ज्वरादौ फलम् ।

श्रीपतिः–"स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाक्रे रोगोत्पत्तिर्जायते यस्य पुंसः । तद्भैषज्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद्दुग्धाब्धेर्लब्धजन्मापि वैद्यः ॥ व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात् । वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विंशत्या स्याद्वासराणां मघासु ॥ पक्षाद्धस्ते वासवे सद्विदैवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्ण्ये नवाहात् । याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥ आहिर्बुध्न्ये तिष्यसंज्ञे यमाख्ये प्राजापत्यादित्ययोः सप्तरात्रात् ॥ रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसंदिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः ॥ ४ ॥ "

अब ज्वरआदिमें फल लिखतेहैं। श्रीपति कहते हैं कि, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा इन नक्षत्रोंमें रोग प्रारम्भ हो, वह चाहै अमृतकेही समुद्रसे उत्पन्नहुआ वैद्य क्यों न होय तो भी उसके निमित्त औषधियोंका व्यापार निष्फलहै, जिसमनुष्यको रोगकी उत्पत्ति अनुराधा, रेवतीमें होय तो उसके प्राणोंकी रक्षा बडे कष्टसे होतीहै, और उत्तराषाढ और मृगशिरमें होय तो एक महीनेमें, मघामें होय तो वीसदिनमें, हस्त, धनिष्ठा, विशाखामें होय तो एक पक्षमें, मूल, अश्विनी, कृत्तिकामें होय तो नौदिनमें, भरणी चित्रा श्रवण शतभिषामें होय तो ग्यारह दिनमें, उत्तराभाद्रपद विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी पुनर्वसुमें रोग होय तो सातरात्रिमें अवश्य रोग निवृत्त होजाताहै गर्गादिका ऐसा कथन है ॥

ज्योतिषे–"एकाहो निधनं दशाहमनिलाद्वाणा वियत्पर्वताः सप्ताङ्का विलयश्च मासयुगुलं मासो मृतिः पक्षकः । द्वौ मासावथ विंशतिर्दश निशाः पक्षान्तपक्षा नखा मासौ पक्षदशान्तपक्षककुभः पीडादिनान्यश्विभात् ॥ " दैवज्ञः–" उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः । तिथिषु नवमिषष्ठीद्वादशी वा चतुर्थी भवति मरणयोगो रोगिणां कालहेतुः ॥ " अत्र कुम्भे हैमीं नक्षत्रदेवताप्रतिमां संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादिद्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान् वा संपूज्य दूर्वासमित्तिलक्षीराज्यैर्गायत्र्या तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा दध्योदनं बलिं दत्त्वाचार्याय गां प्रतिमां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥ विशेषस्तु व्रतहेमाद्रौ पदार्थादर्शे च ज्ञेयः ॥

ज्योतिषमें कहाहै कि, अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें रोग होय तो क्रमसे यह फल प्राप्त होताहै कि, एकदिन, मरण, दशदिन, तीन दिन, पांच दिन, शून्य, सात दिन, नौ दिन, मरण, मास, मरण, दो मास, एक, पखवारा, दो मास, वीसदिन, दश रात्र, एक पक्ष, दश दिन, सप्तदिन दैवज्ञ कहते हैं कि, अश्विनी, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा और पापवार और

नवमी, द्वादशी, चतुर्थी, छठ, तिथि होंय तो रोगियोंके निमित्त यह मरणका योग कालका कारण है, दुष्टयोगमें रोग होय तो नक्षत्रकी सोनेकी प्रतिमा निर्माण कर और घडेपर रखकर और प्रतिमाके वा घडेके बारह दलोंपर संकर्षण आदि बारह मूर्ति वा बारह आदित्योंकी पूजाकर दूर्वा, समिध, तिल, दूध, घृतकी १०८ आहुति गायत्री मंत्र पढकर उस देवताके निमित्त देकर दध्योदनकी बलि देकर आचार्यको गौ और प्रतिमा दान कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इति संक्षेपः। विशेष तो व्रतहेमाद्रि और पदार्थादर्शमें जानना चाहिये ॥

अथ भेषजम्।

चण्डेश्वरः—"मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रवणशुक्रकरत्रये च। वारेषु वाक्पतिदिनेषु सितेंदुशस्ते भैषज्यभक्षणममीषु हितं नराणाम् ॥"

अब औषधि सेवन करनेके दिनोंको लिखते हैं, चण्डेश्वर कहते हैं कि, मूल, अनुराधा, मृगशिर, पुनर्वसु, विशाखा, रेवती, अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रवार इनमें मनुष्योंको औषधिका भक्षण करना हित है ॥

अथारोग्यस्नानम्।

श्रीपतिः—"इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु। पित्र्ये चान्ते वापि कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगनिर्मुक्तजन्तुः ॥ चरे विलग्ने रविभौमवारे रिक्ते तिथौ स्याद्बहुले च पक्षे। धिष्ण्ये चरे रोगनिपीडितानां स्नानं नराणां निरुजत्वकारि ॥ २ ॥"

अब आरोग्यके स्नानको लिखते हैं। श्रीपति कहते हैं सोम, शुक्र वार, तीनों उत्तरा, रेवती, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, रेवतीमें रोगी मनुष्य कदाचित् भी स्नान न करै, चर लग्न रवि, मंगल वार, रिक्ता तिथि, और शुक्र पक्ष, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण नक्षत्रमें रोगी स्नान करै तो रोगनाश होता है ॥

अथ दन्तधावनम्।

पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः—"प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च। नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥" नारदः—"चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीसंक्रमणेषु च। नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ श्राद्धे यज्ञे च नियमे तथा प्रोषितभर्तृका। व्यतीपाते च संक्रान्त्यां नन्दाभूताष्टपर्वसु ॥ तैलं क्षौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत्" ॥ २ ॥ वसिष्ठः—"शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे। जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत्॥" हेमाद्रौ स्कान्दे—"अभ्यङ्गे जलधिस्नाने दन्तधावनमैथुने। जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥" संवर्तः—'रवौ विवाह आशौचे वर्जयेद्दन्तधावनम्।' व्यासः—"अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ। अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्" ॥

अब दतधावनको लिखते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुने लिखा है कि, प्रतिपदा, अमावस्या, छठ, चतुर्दशी, अष्टमी, नौमी और रविवारमें दतोन वर्जित है। और नारद कहते हैं कि, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, संक्रांति, प्रतिपदा, छठ, एकादशी, चतुर्दशी, अष्टमी और पर्वमें स्त्री और मनुष्य तैल, क्षौर, भोग, मांस और दतोनको त्याग दे। जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो तो वसिष्ठने लिखा है कि, शनि-

श्वर, रवि, शुक्र, मंगल वारोंको व्रत और जन्म और श्राद्धके दिन दतोन न करै । हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, उबटना, समुद्रका स्नान, दतोन, मैथुन, जन्म और मरणमें वही तिथि माननी चाहिये, जो उस समय विद्यमान हो । सम्वर्तमें लिखा है कि, रविवार विवाह और अशौचमें दतोन न करै । व्यासने लिखा है कि, दतोनके न मिलनेपर और निषिद्ध तिथिको जलके बारह कुल्लोंसे दतोन करले ।

अथामलकस्नानम् ।

व्यासः–"श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः । सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥" क्रतुः–"षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी । संक्रान्तौ रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥" यत्तु–"नवमी दशमी चैव तृतीया च त्रयोदशी । प्रतिपद्द्वादशी कृष्णा स्नानं तासु विवर्जयेत् ॥" यच्च–"दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोः सुजीवतोः । पुत्रः कुर्वन्निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजीविते" ॥ इति कण्वयमाद्यैः स्नानमात्रं निषिद्धम् ॥ तद्भोगार्थस्नानपरम् ॥ न नित्यनैमित्तिकपरमिति हेमाद्रिः ॥

अब आमलोंसे स्नानको लिखते हैं । व्यासका कथन है कि, जो मनुष्य लक्ष्मीकी इच्छा करै तो निरन्तर आमलोंके जलसे स्नान करै, सप्तमी, नवमी और पर्वकालको त्यागदे, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें आमलोंसे स्नानको वर्जदे । क्रतु कहते हैं कि, छठ, सप्तमी, नवमी, त्रयोदशी और संक्रांति रविवारमें आमलोंसे स्नानको छोडदे जो किसीने इन कण्व, यम, आदिकके वाक्यसे स्नानमात्रका निषेध किया है कि, नवमी, दशमी, तृतीया, त्रयोदशी, प्रतिपदा और कृष्णपक्षकी द्वादशीमें स्नान न करै, और अमावास्याका उसे स्नान न करावै जिसके माता पिता जीते हों यदि पुत्र करै तो मातापिताकी उन्नति और जीवनको नष्ट करता है, ये वाक्य भोगके निमित्त हैं जो स्नान उसमें है अथवा अनैमित्तिक स्नानके विषयमें है, अर्थात् मातापिताकी उन्नतिके निमित्त स्नान करै तो कुछ दोष नहीं यह हेमाद्रिका कथन है ॥

अथ तैलस्नाननिषेधः ।

कात्यायनः–"पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ । तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते ॥" गर्गः–"पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे । द्वादश्यां सप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥ न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां तिथौ तथा । शाश्वतीं गतिमन्विच्छन् दशम्यामपि पण्डितः" ॥ २ ॥ तत्रैवायुर्वेदे–"षष्ठ्यां दिनक्षयेऽष्टम्यामेकादश्यां च पर्वसु । द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यां प्रतिपत्तिथौ ॥ व्रते श्राद्धदिने जन्मत्रितये श्रवणार्द्रयोः । ज्येष्ठोत्तराफाल्गुनीषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ विष्टियोगे च संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु ॥ नाभ्यङ्गं तत्र बालानां वृद्धानां तु न दोषकृत्" ॥ ३ ॥ इति ॥

अब तैलस्नानके निषेधको कात्यायन लिखते हैं प्रतिपदा, रविवार, छठ, रिक्तातिथिमें जो तेलसे स्नान करै वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे रहित होता है । गर्ग कहते हैं कि,पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, संक्रांति, द्वादशी, सप्तमी, छठमें तेलका स्पर्श न करै और तृतीया, त्रयोदशी, दशमीको भी श्रेष्ठगतिकी इच्छा करताहुआ पंडित तेलसे न न्हाय, वहांही आयुर्वेदमें कहाहै कि, षष्ठी तिथिका क्षय, अष्टमी, एकादशी,

पर्व द्वादशी, चतुर्दशी, पंचमी, प्रतिपदा तिथि व्रत और श्राद्धका दिन जन्मके दिनसे तीन दिन श्रवण आर्द्रा ज्येष्ठा उत्तराफाल्गुनी व्यतीपात वैधृति विष्टियोग संक्रान्ति मन्वादि और युगादितिथिमें बालकोंको तैलसे स्नान न करना, और वृद्धोंको कुछ दोष नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥

व्यवहारतत्त्वे–"संक्रान्तिभद्राव्यतिपातवैधृतिषष्ठयष्टमीपर्वसु नार्कभूसुते । स्नाने द्वितीया दशमी च गर्हिताः षष्ठयाद्यमाद्या रदधावनेऽधमाः ॥" अस्यापवादमाह तत्रैव प्रचेताः– "सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥" आयुर्वेदे–"निषिद्धतिथिवारर्क्षग्रहणेष्वपि रात्रिषु । किंचिद्गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजोन्वितम् ॥ भानौ दूर्वान्वितं भौमे भूयुक्तं पुष्पयुग्गुरौ । सर्वेषां सर्वदा तैलमभ्यङ्गेषु न दुष्यति ॥" मंगलेष्वप्यदोषः ॥ "मांगल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपर्वोत्सवेषु च ॥ स्नेहमात्रसमायुक्तं मध्याह्नात्प्राक्तदिष्यते ॥" इति मदनपारिजाते कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ बृहन्मनुः–"तैलाभ्यंगो नार्कवारे न भौमे नो संक्रान्तौ वैधृतौ विष्टिषष्ठयोः । पर्वस्वष्टम्यां च नेष्टः स इष्टः प्रोक्तान् मुक्त्वा वासरे सूर्यसूनोः ॥" तिलस्नाननिषेधस्तु षट्त्रिंशन्मते– "तथा सप्तम्यमावास्यासंक्रान्तिग्रहजन्मसु । धनपुत्रकलत्रार्थी तिलपिष्टं न संस्पृशेत् ॥"

व्यवहारतत्वमें कहाहै कि, संक्रांति भद्रा व्यतीपात वैधृति छठ अष्टमी पर्व रवि और मंगलवार द्वितीया दशमी ये स्नानमें छठ और प्रतिपदा दतोनमें निंदितहैं । इसका निषेध वहांही प्रचेताने लिखाहै कि, सरसों और गन्धके तथा फूलोंसे सुगन्धित और दूसरे द्रव्यसे युक्त तेलका कदाचित् भी दोष नहीं है । आयुर्वेदमें कहा है कि, निषिद्ध तिथि वार नक्षत्र ग्रहण और रात्रिमें किंचित् गौके घृतसे युक्त वा ब्राह्मणके चरणोंकी रजसे युक्त तेलका दोष नहीं है, रविवारको दूर्वासे युक्त मंगलवारको भूमिसे युक्त बृहस्पतिको फूलसे युक्त तेल सदा सबके निमित्त अभ्यंगमें दूषित नहीं है । पुत्रका जन्म पर्व उत्सवमें तेलके पात्रसे युक्त मंगल स्नान करावै और वह मध्याह्नसे प्रथम कहाहै, इस मदनपारिजातमें लिखेहुए कात्यायनके वाक्यसे मंगलमें तैलमलनेका दोष नहीं । हेमाद्रिमें बृहन्मनु कहते हैं कि, रविवार भौम संक्रांति वैधृति विष्टि षष्ठी पर्व अष्टमीमें तैलाभ्यंग करना अच्छा नहीं और इनको त्यागकर शनिवारको वह तैलाभ्यंग कहा है. तिलके स्नानका निषेध तो षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि, सप्तमी अमावास्या संक्रांति जन्मदिनमें धन पुत्र स्त्रीका अभिलाषी मनुष्य पीसे हुए तिलोंको न छुए ॥

अथ गृहारम्भः ।

ज्योतिर्निबन्धे बादरायणः–"वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके । सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्यते" ॥ नारदः–"सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्त्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः" अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः–वैशाखश्रावणकार्तिकाः सौराज्ञेया इति कालादर्शः ॥ तत्रैव कारणतन्त्रे–"स्थिरमासे स्थिरे राशौ स्थिरंशे नववेश्मनाम् । कुर्वीत स्थापनं शंकोः शंभुस्थापनमेव वा ॥" कार्त्तिकनिषेधस्तुलापरः ॥ "कुम्भे माघेपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रमम् । महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च ॥" निषेधो धान्यगृहपरः ॥ "पाकभोजनशालादौ मार्गशीर्षश्च फाल्गुनः । रथ्यागेहमठादौ च सहस्यः शुचिरेव तु ॥" पौषाषाढनिषेधस्तु प्रधानगृहपरः॥ 'न प्रधानगृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि' इति तत्रैवोक्तेः ॥

अब गृहारम्भको लिखतेहैं ज्योतिर्निबंधमें बादरायण कहते हैं कि, वैशाख फाल्गुन पौष श्रावण मार्गशिरमें सूत्रका आरम्भ (सूतसे घरकी भूमिको नापना) शिलाका रखना स्तम्भोंका प्रारम्भ उत्तम है. नारद कहतेहैं कि, फागुन वैशाख माघ श्रावण और कार्तिक महीने गृहके बनानेमें पुत्र आरोग्य धनके देनेवाले शुभदायी हैं, इस वाक्यमें वैशाख श्रावण और वृष सिंह वृश्चिक सूर्यकी संक्रान्तिसे लेने चाहिये यह कालादर्शमें कहाहै, उसीस्थानमें कारण तंत्रमें यह लिखाहै कि स्थिरमहीना स्थिरराशि और स्थिरके नवांशमें नये घरोंके शंकुओं (सूतके लिये चारों कोणोंमें खूटीका गाडना) का स्थापन और महादेवका स्थापन करै, कार्तिकका निषेध तो तुलाकी संक्रांतिके विषयमें जानना कुम्भ और माघ महीनेमें भी सब मंदिरोंके प्रारम्भकी अन्नके गृहको त्यागकर सब महर्षि प्रशंसा करते हैं, इनमें निषेध भी धान्यगृहके विषे जानना चाहिये। पाक और भोजनशालामें मार्गशिर और फागुन रथ्या गृह और मठ आदिमें पौष और आषाढ उत्तम हैं, पौष और आषाढका निषेध तो प्रधान गृहके विषयमें है कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, पौष और आषाढमें प्रधानगृहका आरम्भ न करना चाहिये ॥

ज्योतिस्तत्त्वे-"पूर्वापरास्यं तु नभोन्त्यपौषे याम्योत्तरास्यं सहसि द्वितीये। कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगार्के नीचास्तगौ जीवसितौ च हित्वा ॥" रत्नमालायां-"कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि। तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि वदन्ति॥" दैवज्ञवल्लभः-"शोकं धान्यं पश्वतां निःपशुत्वं स्वाप्तिं नैःस्वं संगरं भृत्यनाशम् ॥ स्वश्रीप्राप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भकाले ॥" गर्गः-"त्र्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये । धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते॥ रोहिण्यां श्रवण त्रयं दितियुगे हस्तत्रये मूलके रेवत्युत्तरफाल्गुनीष्वुरगभे मैत्रोत्तराषाढयोः । शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जितदिने गोकुम्भसिंहे मुखे कन्यायां मिथुने नभःशुचिसहोराधार्कजे फाल्गुने ॥ २ ॥"

ज्योतिषतत्त्वमें कहाहै कि, पूर्व और पश्चिमके मुखका घर, श्रावण, फाल्गुन, पौषमें; दक्षिण और उत्तर मुखका घर, मार्गशिर और वैशाखमें निर्माण करै; बृहस्पति बुधकी राशिके सूर्यको और नीचे और अस्तहुए बृहस्पति और शुक्रको छोडदे. रत्नमालामें लिखाहै कि, कर्क मकर सिंह कुंभके सूर्यमें पूर्व और पश्चिमके मुखके घर; तुला मेष वृश्चिक वृषके सूर्यमें दक्षिण और उत्तर मुखके घर बनाने लिखेहैं. दैवज्ञवल्लभ कहतेहैं कि, चैत्र आदि महीनोंमें ग्रहके आरम्भका क्रमसे यह फलहै शोक अन्न मरण पशुओंकी हानि धनकी प्राप्ति धननाश संग्राम मृत्यु नाश. कालादर्शके मतसे मृत्यु और नाशके स्थानमें धन और धान्यका फल लिखाहै लक्ष्मीकी प्राप्ति अग्निसे भय और लक्ष्मी. गर्गका कथनहै कि, तीनों उत्तरा मृगशिर, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवतीमें गृहका आरम्भ उत्तमहै, रोहिणी श्रवण धनिष्ठा शतभिषा पुनर्वसु पुष्य हस्त चित्रा स्वाति मूल रेवती उत्तरा फाल्गुनी आश्लेषा अनुराधा उत्तराषाढमें मंगल और रविवारको त्यागकर मकर कुम्भ सिंह कन्या मिथुनकी संक्रांति श्रावण आषाढ मार्गशिर वैशाख कार्तिक और फाल्गुनमें घर बनाना उत्तम है ॥

कालादर्शे सनत्कुमारः-'आदित्यभौमवर्जं तु सर्वे वाराः शुभप्रदाः' वास्तुशास्त्रे-"मार्गशीर्षे तथा पौषे वैशाखे श्रावणे तथा। फाल्गुने च कृतं वेश्म सर्वसंपत्प्रदं भवेत् ॥ कार्तिके माघमासे

च चैत्रे ज्येष्ठे तथाश्विने । मास्याषाढे भाद्रपदे न कुर्यात्सर्वथा गृहम् ॥ द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी पूर्णा चैकादशी तथा ॥ वेश्मारम्भे शुभाय स्युर्विशेषाच्छुक्लपक्षगाः ॥ ४ ॥"

कालादर्शमें सनत्कुमार कहतेहैं कि, रवि मंगलको छोडकर सब वार शुभदायी हैं वास्तुशास्त्रमें कहाहै कि, मार्गशिर पौष वैशाख श्रावण फाल्गुनमें निर्माण किया घर सब सम्पदाओंको देताहै, कार्तिक माघ चैत्र ज्येष्ठ आश्विन आषाढ भाद्रपदमें घरको किसी प्रकार न बनावै, और द्वितीया तृतीया पञ्चमी सप्तमी त्रयोदशी दशमी पूर्णिमा तिथि घरके आरम्भमें उत्तमहैं, शुक्ल पक्षकी तिथि तौ विशेषकर शुभ हैं ॥

व्यवहारसारे–"शिलान्यासः प्रकर्तव्यो गृहाणां श्रवणे मृगे । पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये ॥" वास्तुप्रदीपे–"अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् ॥ तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैश्च ॥" लल्लः–"स्नानं च पाकं शयनं च भोज्यं गजालयं वाजिगृहं धनस्य । देवस्य पूर्वादिदिशि क्रमेण मध्ये सभा भूपनिवेशनाय ॥" शिल्पशास्त्रे–"कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वदन्ति । कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणे चाग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥"

व्यवहारसारमें कहाहै कि, गृहोंकी शिला (ईंटों) का रखना श्रवण मृगशिर रेवती हस्त रोहिणी पुष्य अश्विनी तीनों उत्तरा इन नक्षत्रोंमें करना चाहिये । वास्तुप्रदीपमें कहाहै कि, खात अधोमुख नक्षत्रोंमें और शिलापट्ट (देहली) ऊर्ध्वमुख नक्षत्रोंमें द्वार किवाड सवारीको तिर्यङ्मुख नक्षत्रोंमें, और गृहका प्रवेश मृदुसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें करना चाहिये । लल्ल कहतेहैं कि, स्नान पाक शयन भोज्य हाथी और घोडोंका घर धन और देवताके स्थानको पूर्वआदि दिशाओंके क्रमसे करै और किलेके मध्यमें बैठनेके निमित्त बीचमें अपनी राजसभा निर्माण करावे । शिल्पशास्त्रमें कहाहै कि, कन्या सिंह और तुलाकी संक्रांतिमें शेषका मुख ईशानमें होताहै, तब अग्निकोणमें नीम खोदे, और वृश्चिक धन मकरमें वायव्यमें मुख होताहै तब ईशानमें खोदे, कुम्भ मीन मेषमें नैर्ऋतमें मुख होताहै तब वायव्यमें खोदना चाहिये, वृष मिथुन कर्कमें अग्निकोणमें मुख होताहै तब नैर्ऋतमें खोदे ॥

तत्त्वचिंतामणौ–'यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोधिकम् । न तत्र चिंतयेद्धीमान् गुणानायव्ययादिकान् ॥" राजमार्तण्डः–"आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् । शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारपुरातने ॥" व्यवहारतत्त्वे–"निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने । तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥" चण्डेश्वरः–"पूर्णादि त्वष्टमीं यावत् पूर्वास्यं वर्जयेद्गृहम् ।उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादि चतुर्दशीम् ॥ अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत् । नवम्यादौ तथा याम्यं यावत्कृष्णचतुर्दशी ॥ ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम् । सायह्ने वर्जेद्दिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥ ३ ॥"

तत्त्वचिन्तामणिमें कहाहै कि, जहां घरकी लम्बाई तीस हाथसे अधिक हो बुद्धिमान् मनुष्य उस घरमें लम्बाई और चौडाई गुण दोष आय व्यय आदि की चिन्ता न करै. राजमार्तण्डमें कहाहै कि, लंबाई और चौडाई और महीनेके शुद्धिकी चिन्ता तृणके घरमें न करै और पुराने घरमें शिलाके न्यास आदिकी चिन्ता न करै. व्यवहारतत्वमें कहाहै कि, निषिद्धसमयमें भी अनुकूल शुभदिन होय तो तृण और काष्ठके

गृहारंभमें महीनेका दोष नहीं चण्डेश्वर कहतेहैं कि, पूर्णिमासे अष्टमीपर्यन्त पूर्वमुख गृहको और नौमीसे चतुर्दशी पर्यन्त उत्तराभिमुख गृहको अमावस्यासे अष्टमी पर्यन्त पश्चिमाभिमुख घरको और नौमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तक दक्षिणाभिमुख घरको त्यागदे, ध्रुवको देखके अथवा स्मरण करके वास्तुका आरम्भ करै, दिनमें सायाह्नको और रात्रिमें अर्धरात्रिको त्यागदे ॥

वराहः–"दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥" कालादर्शे वास्तुशास्त्रे–'खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं प्रशस्यते'॥ तच्चोक्तं शान्तिरत्ने–"चतुर्हस्तप्रमाणं तु खात्वा गर्तं समन्ततः । कुम्भोदकैः सेचयेयुः शान्तिपाठपुरःसरम् ॥ तत ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम् । साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूजनपूर्वकम् ॥ कुम्भोपरि शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ॥ २ ॥"

वराह लिखतेहैं कि, दक्षिण और पूर्वके कोणमें पूजन करके प्रथम शिलाको रक्खै शेष शिलाओंको प्रदक्षिणाके क्रमसे रक्खे, इसीप्रकार स्तम्भोंको रक्खै. कालादर्शमें वास्तुशास्त्रके प्रकरणमें यह कहाहै कि, नीमके खोदने और शिलाके रखनेमें वृषचक्रका देखना उत्तमहै वह चक्र शांतिरत्नमें कहाहै कि, चार हाथका गढा चारों ओरसे खोदे, और घटके जलसे शांतिपाठ करके उस गढेको सींचे, फिर ईशानदिशामें अक्षत और पंचरत्न घृतसहित घटका स्थापन और वास्तुका पूजन करके उस घडेके ऊपर शिलाको रक्खे ॥

अथ गृहप्रवेशः ।

बृहस्पतिः–"नन्दायां दक्षिणं द्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु । जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेत् ॥" वशिष्ठः–"कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् । हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेच्च ॥ व्यवहारतत्त्वे–"सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयेंशे । वामं गतेर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्धेश्मभकूटशुद्धम् ॥ "

अब गृहप्रवेशको बृहस्पति लिखतेहैं कि, नन्दामें दक्षिणके द्वारमें, भद्रामें पश्चिमके द्वारमें, जयामें उत्तरके द्वारमें और पूर्णामें पूर्वके द्वारमें प्रवेश करै. वसिष्ठ कहतेहैं कि, शुक्रको पीठ पीछे करके सूर्यको वामभागमें करके ब्राह्मणोंकी पूजा और जलसे भरे हुये घडेको आगे करके तोरण माला चन्द्रोवासे मनोहर घरमें मालाधारणकिए यजमान स्त्री और गीत और बाजों सहित प्रवेश करै. व्यवहारतत्त्वमें कहाहै कि, उत्तरायण श्रावण मार्गशिर और पौषमें जन्मनक्षत्र और लग्नकी वृद्धि और नवांशेमें सूर्यको बांये करके वास्तुपूजाके उपरान्त नक्षत्रोंसे शुद्ध मुहूर्त्तमें गृहप्रवेश करै ॥

वास्तुशास्त्रे–"लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत् । एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामं विचिन्तयेत् ॥" वसिष्ठः–"चन्द्रजार्यसितवासरेषु च श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम् । सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किं तु चौरभयमत्र निर्दिशेत् ॥" रत्नकोशे–"पुष्ये धनिष्ठामृगवारुणेषु स्वायंभुवर्क्षे त्रिषु चोत्तरासु । अक्षीणचन्द्रे शुभदे नृपस्य तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥" नारदः–"प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्त्तिकमासयोः । माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेद्धीमानापदामाकरो हि तत् ॥ २ ॥" ज्येष्ठः–क्षुद्रगृहपरः ॥

वास्तुशास्त्रमें कहाहै कि, पूर्व आदि दिशाओंमें दो २ राशि रक्खै, और चारों कोणोंमें एक २ राशि रक्खे, इनसे वाम ओर सूर्यकी चिन्ता विचार करै । वसिष्ठ कहते हैं कि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार होय तो गृहलक्ष्मीको देताहै और पुत्र और लाभका देनेवाला होताहै, शनिश्चरके दिन स्थिरताको देताहै परन्तु इसमें चोरका भयहै. रत्नकोशमें कहाहै कि, पुष्य धनिष्ठा मृदुसंज्ञक शतभिषा तीनों उत्तरा रोहिणी पूर्ण चन्द्रमा और रिक्तासे भिन्नतिथिमें राजाको गृहप्रवेश उत्तम होताहै. नारद कहतेहैं अगहन और कार्तिक महीनेमें प्रवेश मध्यम और माघ फाल्गुन वैशाख ज्येष्ठ महीनेमें उत्तम जानना, किवाड रहित जो छाया अर्थात् उपरसे ढका न हो जिसमें देवताओंकी बलि और भोजन न हुआहो उस घरमें बुद्धिमान् मनुष्यको प्रवेश न करना चाहिये कारण कि, वह आपत्तियोंका भंडार है इसमें ज्येष्ठ छोटे घरके निमित्तहै ॥

वृद्धगार्ग्यः–"भानोश्च भौमस्य विहाय वारौ शूलादियोगानशुभान्नवापि । रिक्ता तिथिश्चापि मृदुध्रुवर्क्षे सौम्यायने च प्रविशेद्गृहाणि ॥ " रत्नमालायां–"त्वाष्ट्रमित्रशशिपुष्यदैवतान्याममनन्ति मुनयो मृदून्यथ । मैत्रगे हरति भूषणाम्बरोद्गीतमङ्गलविधानमेषु च ॥" रोहिण्युत्तरात्रयं च ध्रुवाणि ॥ प्रवेशश्च वास्तुपूजां कृत्वा कार्यः ॥ "जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने । नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने । द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ॥ वास्तूपशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः ॥ २ ॥ " इति मात्स्योक्तेः ॥ तत्रैव– "कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं स्वगृहं विशेच्च ॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः । संतर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सुरूपम् " ॥ २ ॥

वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, रवि और मंगलवार और शूल आदि अशुभ योग रिक्ता तिथिको छोडकर मृदु और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें और उत्तरायण सूर्यमें घरमें प्रवेश करै, रत्नमालामें कहाहै कि, चित्रा अनुराधा मृगशिर पुष्य और इनके देवताओंको मुनि जन मृदु कहते हैं, और इनमें मित्रकार्य घर भोग भूषण वस्त्र गान मंगलकार्य करै, रोहिणी तीनों उत्तरा ध्रुवसंज्ञक हैं, और वास्तुकी पूजाकरके घरमें प्रवेश करै, कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, जीर्णका उद्धार बाग गृहप्रवेश नया प्रासाद और महल और स्थानपरिवर्तन वा द्वारका बदलना, मंदिर और घरमें बुद्धिमान् मनुष्यको पहलेही वास्तुशांति करनी चाहिये, वहांही लिखाहै कि, ब्राह्मण और जलसे पूर्ण उसघडेको आगे करके जो घडा दधि अक्षत आमके पत्तोंसे शोभित हो, और ब्राह्मणोंको सुवर्ण वस्त्र देकर मंगल शांतिवाले घरमें प्रवेश करै, गृह्यसूत्रमें लिखी उस विधिसे बलिदे, जो विधि प्रसादकी बास्तुशांतिमें लिखी है और भक्ष्य और भोज्योंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्तकर फिर शुक्लवस्त्रोंको धारणकर अपने सुन्दर घरमें प्रवेश करै ॥

अथ कलिवर्ज्यानि ।

बृहन्नारदीये–"समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलुविधारणम् । द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ रहः प्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥" कमण्डलुः–'सोदकं च कमण्डलुम्' इत्युक्तः, मृन्मयो वा ।

दत्ता ऊढाः ।" ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधस्तथा । कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् " इति हेमाद्रौ वचनात् ॥ ऊढायाः–'परपुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ' इत्यादिभिर्विवाह्यतोक्ता ॥

अब कलियुगमें वर्जितोंको लिखते हैं । बृहन्नारदीयमें कहाहै कि, समुद्रकी यात्राको स्वीकार करना, कमंडलुका धारण (संन्यास) और ब्राह्मणोंको अपनेसे भिन्न वर्णकी कन्यासे विवाह करना, देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति, मधुपर्कमें पशुका वध, श्राद्धमें मांसप्रदान, वानप्रस्थ आश्रम, पुरुषके संगरहित विवाही कन्याको फिर व्याहना, बहुतकालतक ब्रह्मचर्य, नरमेध और अश्वमेध यज्ञ, महाप्रस्थान (अतिदूर) गमन, (अर्थात् मरणके निमित्त गमन) गोमेधयज्ञ इतने कार्य बुद्धिमानोंने कलियुगमें वर्जित कियेहैं अथवा जलवाला कमण्डलु वा मृत्तिकाका पात्र रखना हेमाद्रि कहतेहैं कि, विवाहीका पुनर्विवाह, ज्येष्ठ पुत्रका अधिक भाग, गोविशसन, भ्राताकी पत्नीका स्वीकार, संन्यास ये पांच बातें कलियुगमें न करनी. कोईतो यह लिखतेहैं कि, यदि विवाही हुई कन्याको दूसरे विवाहसे प्रथम पुरुषका संयोग न हुआ होयतो प्रथम पतिकी मृत्यु होनेपर वह दूसरे पतिको देदेनी ये किसीका अल्पमत होनेसे स्वीकार योग्य नहीं है ॥

हेमाद्रौ ब्राह्मे–"गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा । नराश्वमेधौ मद्यं च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः ॥ " गोत्राद्गोत्रजायाः पितृष्वसुः मातृसपिण्डात् मातुलात्तत्कन्यया-विवाहः कलौ न कार्यः ॥ तेन यानि तद्विधायकानि, तानि युगान्तरविषयाणि ॥ तथा व्यासः–"तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा ॥ शुल्केन चोद्वहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः " ॥ इति कलौ तन्निन्दामाह ॥ मातृतस्तृतीयां मातुलकन्यामित्यर्थः ॥ उक्तं चैतत् प्राक् ॥ ' मद्यं स्त्रीभ्यश्च सुरामाचामम् ' इत्यादिना विहितमपि वर्ज्यम् ॥

हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका लेखहै कि, माताके सपिंड और गोत्रसे विवाह गौविशसन नरमेध अश्वमेध और मद्य, ये सब कलियुगमें द्विजातियोंको त्यागनी चाहिये, फूफी और माताके सपिण्डको और मामाकी कन्यासे विवाह कलियुगमें न करना चाहिये, तिससे जो उस विषयके वाक्यहैं वे दूसरे युगोंके निमित्त हैं, सोई व्यासने लिखाहै कि, माता और पितासे तीसरी पीढीकी कन्याको और मोलली कन्याको पापसे विमोहित होकर ब्राह्मण विवाहेंगे, यह कलियुगमें व्यासने उनकी निंदा लिखाहै मातासे तीसरी मामाकी कन्या यही पहले कथन कर आये हैं, स्त्री, और असुर, मद्य पिये इससे विधान की भी मदिराका कलिमें त्याग है ॥

हेमाद्रौ आदित्यपुराणे–"विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् । बालायाः क्षतयोन्यास्तु वरेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः । आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्रहः । सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलुविधारणम् ॥ महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे । सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः ॥ अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः । वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्यमघसङ्कोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् । संसर्ग-

---

१ तथा च, यस्तु कार्तयुगो धर्मो न कर्तव्यः कलौ युगे । पापयुक्ताश्च सततं कलौ नार्यो-रास्तथा । सतयुगके सब धर्म कलियुगमें नहीं होते कारण कि,कलियुगके नारीनर पापकर्ममें रत रहतेहैं ॥

दोषः स्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥ ६ ॥ संसर्गदोषः—'तत्संसर्गी च पञ्चमः ।' इत्युक्तः ॥ स्तेयं च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि । तेषां कामकृतानां मरणान्तिकं प्रायश्चित्तं विप्राणां कलौ नेत्यर्थः ॥ मरणान्तिके हि जातिवधनिमित्तं द्वादशाब्दाद्द्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति । तत् 'चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः' इति निषिद्धम् ॥ न चात्महत्याविधिना तद्बाधः । तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव बाधो न जातिवधनिमित्तस्याभिन्नविषयत्वात् । संसर्गिणस्तु कामतोपि व्रतस्यैवोक्तेर्न मरणान्तिकम् । नापि स्तेये, तत्र राज्ञो वधकर्तृत्वात् । तेन तयोर्मरणान्तिकत्वाभावात् । तयोरेव निष्कृतिर्नान्येषां त्रयाणाम् । युगान्तरे तु कलौ निषेधबलात् प्रवृत्तिः । एतद्विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तदुक्तं—' विप्राणां मरणान्तिकम् ' इति ॥ विशेषोऽस्मत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः ॥ "वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ सवर्णान्यांगनादुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि ॥ अयोनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः । परोद्देशान्यसंत्याग उद्दिष्टस्यापि वर्जनम् । प्रतिमाभ्यर्चनार्थाय संकल्पश्च सधर्मकः ॥ अस्थिसंचयानादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ षड्भक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणः ॥ ९ ॥"

हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथन है कि, विधवामें प्रजाकी उत्पत्तिके निमित्त देवरका नियोग और क्षतयोनिवाली कन्या दूसरे वरको देनी, द्विजातियोंको भिन्नवर्णकी कन्यासे विवाह, धर्मयुद्धमें शस्त्रधारी ब्राह्मणोंका मारना, नावमें बैठकर समुद्रमें जानेवाले इनमें केवल उसी द्विजके संग व्यवहार करना जो प्रायश्चित्तसे शुद्ध होगया हो सत्र (समाज) की दीक्षा (मन्त्रका उपदेश) संन्यास महाप्रस्थानमें गमन गोसव यज्ञमें पशुको मारना सौत्रामणियज्ञमें सुरापान अग्निहोत्रके साकल्यका चाटना और भक्षण आचरण और वेदपाठके निमित्त आसव सेवन और मरणतक ब्राह्मणोंका प्रायश्चित्त संसर्गदोष (महा पातकीका संग) और चोरीसे दूसरे महापातकका प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या करनी सुरापान गुरुकी स्त्रीका गमन ये तीन महापातक कहेहैं, यदि ब्राह्मण इनको जानबूझ कर करै तो उसको मरणान्त प्रायश्चित्त कलियुगमें नहीं है, किन्तु मरणके अन्तमें जातिवधके निमित्त बारह वर्ष और ब्राह्मणके वध निमित्त दूना प्रायश्चित्त कहाहै और चौथे महापातकका प्रायश्चित्त नहीं है इससेही निषिद्ध है, और यदि कहो कि, आत्महत्या करनेसे उसका बाध होताहै सो उचित नहीं है । आत्महत्या निमित्तकाही उससे बाध होताहै जातिवध निमित्तका नहीं है कारण कि, उसमें विषयका भेदहै, संसर्गीका तो जानकरभी व्रतही लिखाहै मरणके अन्तमें नहीं और चोरीमें भी प्रायश्चित्त नहीं । वहांभी वधका कर्ता राजा है तिससे उन दोनोंको मरणान्तिकके न होनेसे उन दोनोंकाही प्रायश्चित है और तीनोंका नहीं है, और युगमें तो कलियुगमें निषेधके बलसे प्रवृत्ति (प्रायश्चित्त) है, यह भी ब्राह्मणके निमित्त है, क्षत्रिय आदिको नहीं, सोई लिखाहै कि, ब्राह्मणोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त नहीं है, विशेष तो हमारे बनाये प्रायश्चित्तरत्नमें देखलेना, और ये भी कलियुगमें वर्जितहैं कि, वर अतिथि पितरके निमित्त पशुका वध करना दत्तक औरससे दूसरे पुत्रोंको स्वीकार करना, अपने वर्णसे दूसरे वर्णकी स्त्रीके संसर्गी उनका संग जिन्होंने प्रायश्चित्त भी किया हो, योनिसे पृथक् वीर्यका पात, गुरुकी स्त्रीका परित्याग, पराये निमित्त अपनी हत्या, उद्दिष्ट (स्वीकृत) का त्याग, मूर्ति पूजनके निमित्त धर्मसे संकल्पलेना, (इतना लेकर पूजन करूंगा ऐसा कहना) अस्थिसंचयके उपरान्त अंगका स्पर्श, हिंसाका यज्ञ और ब्राह्मणोंको सोम बेचना, छठे कालमें भोजन, अनशनव्रतहीन कर्मवाले (पतित)से अन्न ग्रहण करना वर्जितहै॥

माधवीये पृथ्वीचन्द्रोदये च–"शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः ॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिशीलता । आपद्वृत्तिर्द्विजाग्र्याणामश्वस्तनिकता तथा ॥ प्रजार्थं तु द्विजाग्र्याणां प्रजारणिपरिग्रहः । ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनक्रिया ॥ बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः ॥ यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्याविधानतः॥ नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ॥ भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणे तथा । गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दण्डकल्पनम् । यतः सायंगृहत्वं च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः । निवर्त्तितानि विद्वद्भिर्व्यवस्थापूर्वकं बुधैः" ॥

माधवीय और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, शूद्रोंमें धीवर गोपाल कुलमित्र, आधे साझी, इनका अन्न गृहस्थीको खाने योग्य समझना और बहुत दूर तीर्थ सेवक, शिष्य गुरुकी स्त्रियोंमें गुरुके तुल्य वृत्ति रक्खै, ब्राह्मणोंको आपत्कालकी वृत्ति वा अश्वस्तनिकता (दूसरे दिनके निमित्त भी सञ्चय न करना) और ब्राह्मणोंको प्रजाके निमित्त प्रजारणि (अरणिमें अग्निको मथन करने) का स्वीकार करना ब्राह्मणोंक परदेशमें निवास मुखसे अग्निको फूकना बलसे दुष्ट स्त्रीका शास्त्रोक्त विधिसे अंगीकार करना, संन्यासीको सब वर्णोंकी भिक्षा करना, मरणमें दश दिनके भीतर दक्षिणा ग्रहण करनी, ब्राह्मण आदिकोंमें शूद्रको पाक निर्माण करना, पर्वतसे और अग्निमें गिरकर वृद्ध आदिका मरना, गौकी तृप्तिसे शेष जलमें शिष्टोंको आचमन करना, पिता पुत्रके विरोधमें गवाहोंको दण्ड देना, सन्ध्याके समय संन्यासीको किसीके घरमें टिकना तत्त्वके जाननेवाले कवियोंने लोककी रक्षाके निमित्त कलियुगकी आदिमें ये निषिद्ध किए हैं ॥

सुराग्रहणस्य तत्कर्तुः संग्रहो व्यवहारकः ॥ न च मद्यं चेति सामान्येन निषिद्धस्याऽनेनोपसंहार इति वाच्यम् ॥ निषिद्धस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षत्वात् । 'न हिंस्यात्' इत्यस्य 'न ब्राह्मणं हन्यात्' इत्यनेनोपसंहारे हिंसान्तरस्यादोषत्वापत्तेश्च निरूपितं चैतद्धेमाद्रिणाऽन्यत्रेत्युपरम्यते ॥ सुराग्रहस्योद्देश्यस्य सौत्रामणिविशेषणाविवक्षया वाजपेयेपि निषेधः । सौत्रामण्यां तु–'पयोग्रहा वा स्युः' इत्यापस्तम्बोक्तैर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः ॥ वाजपेये तु–तत्प्राप्तौ मानाभावात् सोमसुरयोः सहत्यागेनांशे सुराद्रव्यत्वात्तत्प्रत्यक्षतया यागनामत्वेन तां विना संज्ञायोगात् कलौ नाधिकार इति युक्तं प्रतीमः ॥

मदिराके ग्रहणमें मद्य निर्माण करनेवालेका संग्रह व्यवहारसे है, अर्थात् पीने और निर्माण करनेवाले दोनों पतित हैं, यदि कोई कहै कि, मद्य इस पूर्वोक्त सामान्यवाक्यसे निषेध की इससे पूर्ति की है, सो उचित नहीं कारण कि, निषेधका फल निवृत्ति लिखीहै. उसको विशेषकी अपेक्षा इसमें नहीं होसकती, चाहिये कि, अन्यथा हिंसा न करै, इससे ब्राह्मणको न मारना इससे उपसमाप्ति न मानोगे तो और हिंसाओंका दोष न होगा, यह सब हेमाद्रिने और स्थानमें वर्णन कियाहै, इससे हम यहांही विश्राम लेतेहैं, मद्य स्वीकारको सौत्रामणि विशेषणकी विवक्षा न होनेसे वाजपेयमें भी मद्यका निषेधहै, सौत्रामणिमें तो ब्राह्मण पयोग्रह दूधको भक्षण करै, इस आपस्तम्बके कथनसे दूध पीनेवालोंका भी विकल्पसे

---

१ कुलमित्रका अर्थ कोई कुरमी कोई कुलका मित्र करतेहैं । अर्धसीरीको कोई आधीबटाई करनेवाला कहतेहैं.

अधिकार लिखा है। वाजपेय यज्ञमें तो दूधकी प्राप्तिमें कोई प्रमाण नहीं है सोम और मद्यका एक वारही त्याग होनेसे उसके अंशमें मदिरा द्रव्यके विना उसकी संज्ञा नहीं होसक्ती इससे कलियुगमें अधिकार नहीं है यही बात हम युक्त देखते हैं॥

त्रिकाण्डमण्डनादिलिखनं तु निर्मूलमनाकरं च॥ वृत्तेति–'एकाहाद्ब्राह्मणः शुद्ध्येद्योगी वेदसमन्वितः' इत्युक्तः॥ आद्यस्याशौचस्य संकोचः 'न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते' इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्य विधानमुपदेशः। 'कलौ कर्तैव लिप्यते' इति व्यासोक्तेः॥ पतितसंसर्गे दोषसत्त्वेपि पातित्यं नेत्यर्थः॥ इति केचिदाहुः। ते मूर्खाः मानाभावात्। तेनायमर्थः संसर्गीतु पंचमः। स्तेये च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्मवधसुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि तेषां कामाकृतानां प्रायश्चित्तं कलौ न। तेषु कामतो मरणांतस्यैवोक्तेः तत्स्थाने द्वादशाब्दं वैगुण्ये आत्मनो ब्रह्मवधनिमित्ते च चतुर्विंशाब्दमिति चतुर्गुणद्वादशापत्तेस्तस्य च चतुर्थे नास्ति निष्कृतिरिति निषेधात्संसर्गिणो व्रतस्यैवोक्तेः। स्तेये च राज्ञो वधकर्तृत्वान्नात्मवधापत्तिः। अतो वैगुण्ये युक्तोऽधिकारः। न च विधिना निषेधाबाधात् आत्मवधदोषापवादेऽपि ब्रह्मवधाभावात्। युगान्तरदोषसाम्येपि कलौ दोषाधिक्यात्। एतद्विप्रपरम्॥ स्तेयभिन्ने महापापे रहस्यकृते प्रायश्चित्तं नेत्यर्थः॥ सवर्णान्या असवर्णा क्षत्रियादिस्तया दुष्टे अयोनौ शिष्यादौ 'चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या' इत्युक्तस्त्यागः॥ परोद्देशेन ब्राह्मणाद्यर्थमात्मत्यागः। यद्वा परोद्देशात्मत्यागो गोदानं 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इत्युक्तम्॥ उद्दिष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनम्॥ 'प्रतिग्रहसमर्थोपि' इत्युक्तम्॥

त्रिकांडमण्डन आदिका लेख तो निर्मूल है, और आकरसे भी विरुद्ध है, कारण कि, अग्निहोत्री और वेदपाठी ब्राह्मण दिनमें पवित्र होताहै इस वाक्यसे प्रथम आशौचका संकोच होताहै और पर्वतसे और अग्निमें गिरे विना उसका प्रायश्चित्त नहींहै इस कथनसे कहींही प्रायश्चित्तकी विधिको उपदेश कहतेहैं, और कलियुगमें करने वालाही लिप्त होता है इस व्यासके कथनसे पतितके संसर्गमें दोष हो भी तोभी वह पतित नहीं होता। कोई ऐसा कहतेहैं वे मूर्खहैं, कारण कि, उनके कथनमें कोई प्रमाण नहीं इससे यह अर्थ (सिद्धांत) है कि, महापातकियोंका संसर्गी पांचवां होताहै इनसे और ब्राह्मणका वध मद्यपान गुरुस्त्रीका गमन ये महापातक लिखेहैं। यदि जानके किए होंय तो कलियुगमें इनका प्रायश्चित नहींहै कारण कि, इनका प्रायश्चित्त मरणांतही लिखाहै, उसके स्थानमें बारहवर्ष और दूने २४ ब्रह्मवधके निमित्त मानोगे तो चौथीवार महापातकमें अडतालीस (४८) होजाय और चौथेमें प्रायश्चित्त नहींहै इस कथनसे उसका निषेध है, और संसर्गीको व्रत करनाही लिखाहै और चोरीमें वधका कर्ता राजाहै, इससे आत्मवध नहीं होसक्ता, इससे विगुणता (अधूरा) होजाय तो अधिकारयुक्त है, यह विप्रपरहै विधिसे नहींहै कारण कि, निषेधके वाक्यहैं शिष्य (चेली) गामी और गुरुगामी आदि चार पातकी त्यागने योग्यहैं, इससे त्यागने युक्तहैं, परके उद्देश्य (ब्राह्मण आदिके निमित्त) से अपना मरण अथवा परके निमित्त मनसे सुपात्रको दान और उद्दिष्टका त्याग यहहै कि, त्यागेहुएको ग्रहण करै॥

वेतनग्रहणेन प्रतिमापूजा।

'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः' इत्युक्तः स्पर्शः॥ षडिति॥ 'उपोषितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत्' इत्युक्तमन्नचौर्यम्॥ आपदि क्षात्रादिवृत्तिः॥

'मुखेनैव धमेदग्निम्' इत्युक्तं धमनम् ॥ 'दशाहेनैव शुद्ध्येत भूमिष्ठं च नवोदकम्' इत्युक्तो दशाहः ॥ 'गुरवे तु वरं दत्त्वा' इत्युक्ता दक्षिणा ॥ शूद्रेषु दासगोपाले तु–"कन्दूपक्वं स्नेहपक्वं यच्च दुग्धेन पाचितम् । एतान्यशूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत्" इत्यपरार्के सुमन्तूक्ता शूद्रस्य पाकक्रिया ॥ 'पितापुत्रविवादे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः' इत्युक्तः ॥ सायंगृहत्वं–'विधूमेसन्नमुसले' इत्युक्तम् ॥

मासिक लेकर प्रतिमाका पूजन अपने आशौचके तीसरे भागमें स्पर्शहोताहै, इस कथनसे कहाहुआ स्पर्श (छूना)है और षड्भक्त यहहै कि, तीनदिन व्रत करके ब्राह्मणसे भिन्नके अन्नको चुरावै यह अन्नकी चोरीहै, आपत्कालमें क्षत्रिय आदिकी वृत्ति स्वीकार करना मुखसे अग्नि फूकनेमें: इसवाक्यसे लिखा हुआ धमनं (फूंकना) लेना और भूमिपर गिराहुआ जल दशदिनमें पवित्र होताहै, इस वाक्यसे लिखाहुआ दशाह लेना और गुरुको दक्षिणा देकर गृहस्थमें इसकथनसे कहीहुई दक्षिणा लेनी, शूद्रोंमें दास और गोपालको इसवाक्यसे लिखी हुई शूद्रकी पाकक्रिया ग्रहणकरनी कि, कन्दू (कर ही) में स्नेह (घृतआदि) और दूधसे पकाए पदार्थ उसको भी भोजनके योग्यहैं जो शूद्रके अन्नको न खाता हो यह मनुने लिखाहै इस प्रकार अपरार्कमें सुमन्तुने शूद्रकी पाकक्रिया कही है और पिता पुत्रके विवादमें दण्ड यह है कि, साक्षियोंको तीन पणका दण्डदेना और संन्यासीका सायंगृह यह है कि जब गृहस्थीके घरमें धुआं और मुशलका शब्द बन्दहो उस कालमें जाय ॥

पृथ्वीचन्द्रेण तु–"अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च । अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायंगृहास्तु ते" इति विष्णुपुराणोक्तो निषिद्धः ॥ तेनाज्ञातशीलपान्थादेः श्राद्धादौ विनियोगो न कार्यः ॥ कलावित्यर्थ उक्तः ॥ एतानि वर्ज्यानीत्यर्थः निगमः–"अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥" अग्निहोत्रं तदर्थमाधानम् एतच्च सर्वाधानपरम् ॥ "अर्धाधानं स्मृतौ श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तुपृथक्कृतिः । सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रया" इति लौगाक्षिवचनादिति स्मृतिचन्द्रिकायाम् ॥ एतेन चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च । कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः ॥ संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता" इति व्यासवचनं व्याख्यातम् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयने तो इस विष्णुपुराणके कथनसे लिखे हुएका निषेध लिखाहै कि, ब्राह्मण पृथिवी देखनेके निमित्त विचरतेहैं और स्थान नहीं रखते, और जो भोजन नहीं करते उसे सायंगृह लिखाहै, जहां संध्याको टिकैं वही घर हैं जिस पान्थका शील और आचरण प्रतीत नहो उसका श्राद्धमें नियोग न करना चाहिये, कलियुगमें यह है ऐसा कहनेसे यह वर्जितहै अग्निहोत्र, गवालम्भ, संन्यास, मांसके पिण्ड, देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति ये पूर्वोक्त कलियुगमें वर्जितहैं, और अग्निहोत्रके निमित्त अग्निका आधान , ये सर्वाधानके विषयमें जानना और श्रौत और स्मार्त अग्निमें आधा आधान कहाहै उसे ही पृथक् २ लिखतेहैं, और उनके एकबार करनेको सर्वाधान लिखतेहैं, जो पूर्वयुगोंमें किए जातेथे यह लौगाक्षिका वाक्य स्मृतिचन्द्रिकामें लिखाहै इससे यह व्यासका कहना चरितार्थ हुआ कि, चार सहस्र चारसौ (४४००) वर्ष जब कलियुगमें बीत जाँय तब त्रेताका परिग्रहहै यह जानता हुआ ब्राह्मण अग्निहोत्र और संन्यासको न ग्रहण करै ॥

सर्वाधानेपि विशेषमाह देवलः–"यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते । संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे" इति ॥ अत्र पूर्वयुगाश्रितेति लौगाक्षिवाक्ये पूर्वयुगानि

कृतादीनीत्येकोर्थः ॥ अन्ये तु युगस्य पूर्वं कलेः पूर्वो भागः । 'स चत्वार्यब्दसहस्राणि' इति पूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षावच्छिन्नः ॥ तस्मिन् भागे सर्वाधानं कार्यम् ॥ तदुत्तरे तु यावद्वर्णविभागोस्तीति वाक्यात् वर्णविभागपर्यंतमर्धाधानमित्याहुः ॥ संन्यासस्त्रिदण्डः ॥ इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ तृतीयपरिच्छेदे कलिवर्ज्यानि समाप्तानि ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

सर्वाधानमें तो देवलने विशेष यह लिखा है कि, इतने वर्णका विभाग और वेदोंकी प्रवृत्ति कही है तबतक अग्निहोत्र और संन्यासको ग्रहण करले, पूर्व युगाश्रित इस लौगाक्षिके वाक्यमें दो अर्थ हैं, प्रथम सतयुग आदि पूर्वयुगोंमेंकी दूसरा कलियुगका चार सहस्र ४००० और वह पूर्वोक्त कथनसे चौवालीससे ग्रहण करना उसमें तो सर्वाधान करै, उसके उपरान्त वर्णोंके विभाग तक अर्द्धाधान करै, ऐसे कोई लिखते हैं, संन्यास त्रिदण्ड रूप ग्रहण करना इससे एक दण्डका दोष नहीं है । कलिवर्जितै धर्म पूर्ण हुए ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पंडितसुखानन्दमिश्रसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां तृतीये परिच्छेदे कलिवर्ज्यानि समाप्तानि ॥ शुभमस्तु ॥



१ तथा च–कलौ कलुषचित्तानां पापद्रव्यरतात्मनाम् । विधिहीनक्रियाणां च गतिर्गंगा विना न हि । अनाश्रित्य तु वै गंगां मुक्तिमिच्छति यः कलौ । सूर्यं द्रष्टुमिवोद्युक्तो जात्यन्धसदृशस्तु सः । इत्याद्यनेकवाक्यैः कलौ गंगास्थितेर्निर्बाधतयान्तिमे कलौ गमनं सिद्ध्यति ॥ अर्थात्–भविष्यमें लिखा है कलियुगमें कलुषितचित्त तथा पापद्रव्यमें रत आत्मावालोंको जो विधि और क्रियाहीन हैं उनको गंगाविना गति नहीं है वही पतितोंका रक्षक गंगा सेवनीय है इसके विना संसारसागरमें मग्न शरणमें प्राप्त होनेकी इच्छावालोंको गंगाके विना उपायान्तर नहीं है. धर्ममयी शरणार्थियोंको शरणदेनेवाली गंगाके विना जो महापातक दूरकर सर्वार्थसाधन करती है उसको छोड़कर जो कलिमें मुक्तिकी इच्छा करते हैं वह जन्मान्धकी समान सूर्य देखनेकी इच्छा करते हैं इत्यादि वाक्योंसे कलिमें गंगा रहैगी. पांचसहस्र वर्ष तक रहैगी यह अन्तिमकलिके निमित्त है, यह वाराहपुराणका निश्चय है, यदि प्रतिकलियुगमें जाती है तो २७ वार जाचुकी परन्तु ऐसे आनेजानेका उल्लेख नहीं इससे अन्तिमकलिपरक वाक्य है ॥

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ-

तृतीयपरिच्छेदे श्राद्धप्रकरणं प्रारभ्यते ।

दोहा—दिव्य, पितर, ऋषि, मुनि, पिता, मातु, चरण, शिरनाय ।
श्राद्ध करण निर्णय सहित, भाषा लिखत बनाय ॥

अथ श्राद्धनिर्णयः ।

नानानिबन्धवैमत्यभ्रान्तचित्तोद्दिधीर्षया ।
कमलाकरसंज्ञेन क्रियते श्राद्धनिर्णयः ॥

अब इससे आगे श्राद्धनिर्णय लिखते हैं, अनेक ग्रंथोंके पृथक् २ मतोंसे भ्रान्तचित्तोंके उद्धारके-निमित्त मैं कमलाकर भट्ट श्राद्धका निर्णय लिखताहूँ ॥

तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—"प्रेतं पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः । श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥" ब्राह्मणस्वीकारान्तश्चतुर्थ्यन्तपदोपनीतापित्राद्युद्देशकस्त्यागः श्राद्धमित्यर्थः ॥ तत्र यद्यपि होमपिण्डभोजनानि प्रधानमिति हेमाद्रिः ॥ "होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम्" इति श्रीधरश्च ॥ तथापि क्वचिद्विशेषं वक्ष्यामः ॥ निमित्तभेदे भोजनस्य पिण्डानां वा निषेधो न प्राधान्यं विरुणद्धि । असोमयाजिनो दधिपयोयागवत् ॥ यच्च शूलपाणिः—'नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्जितम्' इति ॥ हारीतीये नित्यश्राद्धमघादौ पिण्डनिषेधोऽस्ति न च प्राप्तिं विना सः । न चातिदेशं विना प्राप्तिः न चांगत्वेन विनातिदेशः । प्रधानस्यानतिदेशात् ॥

श्राद्धका स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदयमें यह लिखा है कि,: जो भोजन अपनेको रुचता है वह प्रेत और पितरोंके निमित्त जब श्रद्धासे दिया जाय तब उसे श्राद्ध कहते हैं, ब्राह्मणके स्वीकारपर्यन्त चतुर्थ्यंत पदसे जनाए गए पिता आदिके निमित्तसे जो दान दिया जाय उसे श्राद्ध कहते हैं, यद्यपि हेमाद्रिने श्राद्धमें होम पिण्ड भोजन यह प्रधान लिखे हैं, और श्रीधरने भी इस वाक्यसे हवन पिंडदान ब्राह्मणभोजन ये उपचारसे एक श्राद्धमें श्राद्ध शब्दके अर्थसे कहे हैं, तो भी हम कहीं विशेष लिखेंगे, निमित्तके भेदमें भोजन वा पिण्डोंका निषेध मुख्य श्राद्धका विरोध नहीं होसकता, जिस प्रकार सोमयज्ञ न करनेवाले दही और दूधका यज्ञ विरोधी नहीं होता, जो शूलपाणिने यह लिखा है कि, इस हारीतके कथनसे नित्यका श्राद्ध विश्वेदेवा अर्घ्य और पिण्डसे रहित होता है, यह नित्यश्राद्ध और मघा आदिके श्राद्धमें पिण्डदानका निषेध कहा है, निषेध प्राप्तिके विना हो नहीं सक्ता, प्राप्ति अतिदेशके विना नहीं हो सक्ती, और अतिदेश अंगके विना नहीं हो सक्ता, और प्रधानका भी अतिदेश नहीं हो सक्ता ॥

" नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां प्रकर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥" पौर्णमास्यां श्राद्धं विहितं तत्र नान्दीमुखाः के इत्याकांक्षायां ब्राह्मे–"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः सम्प्रकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दीसमृद्धिरिति कथ्यते " ॥ २ ॥ इतिवचनोक्ताः ॥ एवं च तस्मिन् श्राद्धे पित्रादित्रयोर्घ्यानां प्रसन्नमुखत्वरूपं विश्वेदेवव्यावृत्तं नान्दीमुखत्वं पारिभाषिकम् । तदुक्तं–'प्रसन्नमुखसंज्ञास्तु मङ्गलीया यतस्तु ते' इति । अत एवात्र न नांदीश्राद्धधर्मातिदेशः । नान्दीमुखशब्दस्य देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात् । नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणम् ॥

जो किसीने यह लिखाहै कि, नान्दीमुख पितरोंको प्रतिवर्ष कन्याके सूर्यमें पूर्णिमाको करना चाहिए इस वराहपुराणके कथनानुसार पूर्णिमाको श्राद्ध लिखाहै उसमें नान्दीमुखको न करै यह आकांक्षा हुई वे ब्रह्मपुराणके इस वाक्यमें लिखे जानने कि, पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीन पितरोंको अश्रुमुख कहतेहैं । इनसे प्रथम प्रजा और सुखसे बढे हुए नांदी (वृद्धि) मुख लिखे हैं, इससे उस श्राद्धमें पिताको आदि लेकर तीन अर्घदेने योग्यों को प्रसन्नमुख कहाहै और विश्वेदेवाओं सहित वे वाक्यसे नान्दीमुख कहे हैं सोई लिखा है कि, जिससे वे मंगलीयहैं, इससे उनको प्रसन्नमुख नाम कहाहै, इसीसे इस श्राद्धमें नान्दीश्राद्धके धर्मोका कर्तव्य नहीं, कारण कि, देवताके बोधक नान्दीमुख शब्दका कर्मनाम नहीं होसक्ता, और नान्दीमुखनाम पितरोंका भी यह विशेषण नहीं होसक्ता ॥

पारिभाषिकत्वात् । तथा चैतस्य श्राद्धस्य कन्याराशिगते रवौ विधानात्तन्निमित्तावपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनाविति वाक्याद्धूरिलोचनौ विश्वेदेवौ । वृद्धिश्राद्धे तु "मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " इत्यादिवाक्यानुरोधेन मात्रादित्रयमातामहादित्रयाणां देवतात्वे सिद्धे तेषामेव विश्वेदेवसाधारणमूर्ध्ववक्रीरूपं नान्दीमुखत्वम् । अत एवात्र वचनम् । ' ऊर्ध्ववक्रास्तु ये तत्र ते नान्दीमुखसंज्ञिताः ' इति । तच्च "नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्थितिः " इति पराशरवचनात् । विश्वेषां देवानां पितॄणां च विशेषणम् । तथा च नान्दीश्राद्धमिति कर्मनामधेयम् । अत एवात्र–'नान्दीमुखे सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके ' इति वचनात्सत्यवसू विश्वेदेवौ । अत्र पितृशब्दस्य सपिण्डीकरणान्तश्राद्धजन्यपितृभावापत्तिपरत्वेन मातृपितृमातामहादिसाधारण्यात्सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणम् । "एवं प्रदक्षिणावृत्कोवृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन् । यजेत दधि कर्कन्धूमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रमात्" इति याज्ञवल्क्योक्तेरिति ग्रन्थान्तरे ॥ कलौ श्राद्धे मधुनैव देयम् । " अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् " इति श्राद्धदीपकलिकामदनपारिजातयोर्निगमोक्तेः ॥

कारण कि, पारिभाषिक नामकरण इससे इस श्राद्धका विधान कन्याके सूर्यमें होनेसे इसके निमित्त भी कन्याके सूर्य और काम्य श्राद्धमें धूरिलोचन विश्वेदेवा कहातेहैं इस कथनसे धूरिलोचन विश्वेदेवा जानने, वृद्धि

---

१ यहांसे आरम्भकर ४८७ पृ० इत्याहुः तक किसी २ पुस्तकमें विशेष है.

श्राद्धमें तो इस कथनके अनुरोधसे कि, प्रथम मातृश्राद्ध फिर पितृश्राद्ध फिर मातामह श्राद्ध ये तीन श्राद्ध वृद्धिमें लिखेहैं इससे माता आदि तीन और मातामह आदि तीन देवता सिद्धहुए वेही विश्वेदेवाओंके सहित ऊर्ध्वमुख आदि रूप नान्दीमुखहैं इसीसे यहां कहते हैं कि, श्राद्धमें जिनको ऊर्ध्वमुख कहेहैं, और वह इस पाराशरके कथनसे विश्वेदेवा और पितरोंका विशेषण लिखाहै कि, नान्दीमुख विश्वेदेवा और पितरोंकी प्रदक्षिणा क्रमसे आसन दान करै, तिससे नान्दीश्राद्ध यह कर्मका नाम है, इसीसे यहां नान्दीमुखमें सत्यवसू विश्वेदेवा कहे हैं, इसीसे यहां सत्यवसु विश्वदेवा लिखे हैं, इसमें पितृशब्द उनका कथन करनेवालाहै, जिनका सपिंडीकरण तक श्राद्धसे पितृभाग उत्पन्न होचुका है वह मातापिता मातामह आदिमें साधारण हैं, इससे नान्दीमुखशब्द सबका विशेषण कहाहै कारण कि, याज्ञवल्क्यका वाक्यहै कि, इस प्रकार प्रदक्षिणाके क्रमसे वृद्धिश्राद्धमें नान्दीमुख पितरोंको दही और बदर मिले हुए पिण्डदेने सब कर्म करके जैसे पिण्डकरै, ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, कलियुगके श्राद्धमें मधु न देना कारण कि, श्राद्धदीपकलिका और मदनपारिजातमें यह निगमका कथन है कि, चावल गौ रूप पशु श्राद्धमें मांस और मधु और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति ये पांच बात कलियुगमें वर्जित करदीं हैं ॥

पञ्चेति न परिसंख्या । दोषत्रयापत्तिः कलावन्यनिषेधवाक्यानर्थक्यापत्तेश्च । अतः प्रदर्शनमात्रार्थमेतत् । एतद्वाक्योपात्तत्वोपाधिना च पञ्चत्वोपपत्तिः । यत्तु "यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि । मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये ॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम् । नामापि कीर्तनं यत्स्यात्पितॄणां प्रीतये तदा ॥ २ ॥" इति हेमाद्रौ ब्राह्मवचनम् । यच्च–"कथंचिदपि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु नैव दातव्या कदाचिन्मधुना विना" इति ॥ श्राद्धदीपकलिकायां नागरखण्डवचनम् ॥ यच्च–"मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्" इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनं तत्कलियुगादतिरिक्तपरम् । न च–"यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा । देशाचाराः परिग्राह्या तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः" ॥ इति श्राद्धं प्रवृत्य बृहन्नारदीये वचनाद्देशाचारतो व्यवस्थेति वाच्यम् ॥ कलिनिषेधवैयर्थ्यापत्तेः ॥ तस्मात्कलौ श्राद्धे मधु नैव देयमिति सिद्धम् । केचित्तु–"कथंचिदपि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना" इति ॥

और इसस्थानमें पांच यह परिसंख्या न जाननी कारण कि, इसमें तीन दोष प्राप्तहोंगे स्वार्थका त्याग, दूसरेके अर्थकी कल्पना, और प्राप्तका बाध यह पांचही हैं । इसमें परिसंख्या पांच हैं, इस स्वार्थका त्याग पांचहीहै इस दूसरे अर्थकी कल्पना औरके निषेध प्राप्तिका बाध, और कलिके दूसरे निषेधके वाक्य वे अनर्थक होजायंगे इससे यह वाक्य दिखानेमात्र है, और इस वाक्यमें लिखनेसे पांचकी सिद्धि होजायगी, और ब्रह्मपुराणका हेमाद्रिमें जो वचन है कि, मधुसे रहित श्राद्ध चाहै सब रस और मिष्टान्नसहित हो तो भी उससे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती विना अणुमात्र शहत हुए पितरोंकी तृप्तिका नाम न लेना जो यह नागरखण्डका वाक्य श्राद्धदीपकलिकामें लिखाहै कि, यदि ब्रह्मणभोजन विना मधुके हो तो भी पिण्डपर तो शहत अवश्य देना और जो पुलस्त्यका हेमाद्रिमें कथनहै कि, मुनिअन्न ब्राह्मणोंको, क्षत्रिय वैश्यको आमिष, और शूद्रको मुख्य मधुहै । परन्तु मधुका किसीसे विरोध नहीं है, परन्तु इन तीनों वचनोंको कलिसे भिन्न विषयमें जानना यदि कहो कि, श्राद्धप्रकरणमें लिखे इस बृहन्नारदीयके वाक्यसे

देशाचारसे व्यवस्था मानोगे कि, आचार होनेसे आमिष मधुप्रदान करै, यह मनुष्योंके देशाचारसे ग्रहण करना, नहीं तो सब धर्मोंसे निकृष्ट पतित जानै सो यथार्थ नहीं ऐसा माननेसे कलियुगमें निषेधकी व्यर्थता होजायगी, इससे यह बात सिद्धहुई कि, कलिमें श्राद्धमें मधुका प्रयोग न करै, और किन्हींका यह कथन है जो भोजनमें मधु न दियाहो तो पिण्डमें तो देनाही इसके विना पिण्ड नदे ॥

नागरखण्डवचने काले दाप्रत्ययस्मरणेन निषिद्धस्य कलिकालादेः सर्वस्यापवादाद्भोजने मधुनिषेधेपि पिण्डे मधु कलौ देयमेव । कलौ मधुनिषेधवाक्यानां भोजनपरत्वात् । तेन–"सर्वकालं तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः । भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः" इति ॥ यथा भोजने तिलनिषेधेपि न पिण्डे तन्निषेधस्तथात्र पिण्डे न मधुनिषेध इत्याहुः ॥"

इस नागरखण्डके वाक्यमें दाप्रत्ययका अर्थ समयहै इस कारण वर्जित भी सम्पूर्ण कलिसमय आदिके बाधके कारण भोजनमें मधुके वर्जनेपर भी पिण्डमें अवश्य मधु देना चाहिये, और जिन वाक्योंसे कलिमें मधु वर्जा है वे भोजनविषयक हैं इससे सब समयमें तिल ग्रहण करने और पितृकर्ममें विशेष कर ग्रहण करने भोजनके पात्रमें तिलोंका दर्शनकर पितर निराश जातेहैं इस वाक्यसे जैसे भोजनमें तिलोंका निषेध है पिण्डमें नहीं है उसी प्रकार यहां भी पिंडमें मधुका निषेध नहीं है ॥

सप्तमे उपकारकत्वेनातिदेशोक्तेः । तेन भोजनं प्रधानं पिण्डोङ्गम् । पिण्डदानमात्रविधिस्त्वङ्गभूतात्कर्मान्तरमेव प्रकरणान्तरन्यायादिति ॥ तन्न ॥ "जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि । न पक्वं भोजयेद्विप्रान् सच्छूद्रोपि कदाचन" इत्याद्यैर्जातश्राद्धशूद्रश्राद्धादौ भोजनस्य निषेधेनाङ्गत्वापत्तेः । 'न तौ पशौ करोति' इतिवदुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च ॥ तेन श्राद्धशब्दाभिधेयत्वेनोभयप्राप्तौ निषेधः । पर्युदासो वा 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति नासोमयाजी सन्नयेत्' इतिवदिति तत्त्वम् ॥

सातवेंमें उपकार होनेसे अतिदेश कहाहै इससे श्राद्धमें भोजन कराना प्रधान है पिण्ड अंगहै, और पिण्ड दानमात्रकी विधि प्रकरणांतरके न्यायसे अंगरूप दूसराही कर्महै सो ठीक नहीं जातकर्मके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको पक्वान्न न दे और श्रेष्ठ शूद्रभी ब्राह्मणोंको कभी पक्वान्न न जिमावे इत्यादि वचनोंसे जातश्राद्धमें और शूद्रआदिकों भोजनका निषेधहै, वहभी अंग होजायगा, पशुयज्ञमें पिण्ड और भोजन नहीं करना; इसके समान कारणके विरोधसे विकल्पकी प्राप्तिहै इस कारण श्राद्धशब्दके नामसे दोनों पाएगए और दोनोंका निषेध है वह दीक्षित न देताहै न होम करताहै जो सोमयज्ञ न करताहो वह पिंड न दे इसको समान पर्युदासहै, यह तत्वहै ॥

धर्मप्रदीपेपि–"यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥" तच्च 'पितॄन् यजेत, पितृभ्यो दद्यात्' इत्युभययोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम् । 'पितरो देवता' इति पित्रुद्देश्यकत्वाद्यागत्वं विप्रापेक्षया च दानत्वमित्यविरुद्धम् । एतेन नायं यागः । देवतोद्देशेन त्यागो यागः । यागोद्देश्या च देवतेत्यात्माश्रयादिति गौडमतमपास्तम् ॥ वैधशब्दविशेषोद्देश्यत्वस्य तस्येदमिति स्वत्वारोपप्रतियोगित्वस्य वा देवतात्वात् । तत्रैव सुमन्तुः–'श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्' ॥

धर्मप्रदीपमें भी कथन कियाहै कि,[1]यजुर्वेदियोंको पिंडदान बह्वृचोंको ब्राह्मणोंका पूजन करना और सामवेदियोंको दोनों करने यह श्राद्धशब्दका अर्थहै, वह श्राद्ध यह है कि, पितरोंको पूजे और पितरोंके निमित्त दे इन दोनोंके देखनेसे यज्ञ दान दोनोंरूप पितर देवताहै, इससे पितरोंका उद्देश होनेसे यज्ञ और ब्राह्मणोंका उद्देश्य होनेसे दानहै इससे कुछ विरोधता नहीं, इससे देवताओंके निमित्त त्यागही यज्ञहै और यज्ञमें निमित्तदेवता यह आत्माश्रय दोषहै, यह गौडोंका मत खंडितहुआ विधि (वेद) के शब्दमें निमित्त उसको वा तिसका यह है ऐसे स्वत्यागरूपके प्रतियोगी (लेनेवाला) को देवता होनेसे आत्माश्रय नहीं, वहांही सुमंतुका वचन है कि, श्राद्धसे पर और कल्याणका करनेवाला नहीं कहाहै ॥

आदित्यपुराणे–"न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः । श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥" तद्भेदानाह विश्वामित्रः–"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम् । यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥ २ ॥" इति ॥

आदित्यपुराणमें कथन है कि, जो मनुष्य पितर नहींहैं ऐसा मनमें करके श्राद्ध नहीं करता वे पितर उसके रक्तको पीतेहैं. विश्वामित्रने श्राद्धके भेद कहेहैं, कि, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, सपिंडी, पार्वण, गोष्ठी, शुद्धि, कर्मांग, दैविक, यात्रा, पुष्टि, ये बारह श्राद्धहैं ॥

एषां लक्षणानि भविष्ये–"अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तदशक्तावुदकेन तु ॥ एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद्द्विजान् ॥ कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । वृद्धौ यत् क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ ये समानाइति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम्" ॥ 'नित्येन तुल्यशेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥' एतदुभयमेव स्त्रियाः । तेन स्त्रीकर्तृकं स्त्रीसंप्रदानकं चेत्युभयनियम इति कल्पतरुः ॥ "अमावास्यायां यत् क्रियते तत् पार्वणमिति स्मृतम् । क्रियते वा पर्वणि यत्तत् पार्वणमिति स्थितिः ॥"

इनके लक्षण भविष्यमें कहेहैं कि, प्रतिदिन जो श्राद्ध कराजाय उसे नित्य कहतेहैं, और वह विश्वेदेवताओंसे रहित होताहै और असमर्थ पुरुष जलसेभी उसे करै. और एकोद्दिष्ट (क्षयी) श्राद्धको नैमित्तिक कहतेहैं, उसमेंभी विश्वेदेवा नहीं होते उसमें एक तीनआदि विषम ब्राह्मण जिमावै जो किसी मनोरथसिद्धके निमित्त किया जाय उसे काम्य कहतेहैं, वृद्धिमें जो कियाजाय उसको वृद्धिश्राद्ध कहतेहैं, गन्ध, जल, तिलोंसे युक्त चार पात्र अर्घके निमित्त बनावै,पितरोंके पात्रोंमें प्रेतके पात्र जलको "येसमाना, समनसा" इन दो मंत्रोंसे सींचन करै इसको सपिंडन कहतेहैं शेषकर्म नित्यश्राद्धके समान होताहै स्त्रीका एकोद्दिष्टभी नित्यके समान होताहै, ये दोनों स्त्रीके भी होतेहैं कि, स्त्रीही करै और स्त्रीको ही दे इन दोनोंका नियम यह कल्पतरुमें कथनहै, जो अमावस्याको वा पर्वमें कियाजाय उसे पार्वण कहतेहैं ऐसी मर्यादाहै ॥

अत्र पर्व–"चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या च पौर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं तथा" इति विष्णुपुराणोक्तं संक्रान्त्यादि ॥ "गोष्ठ्यां यत् क्रियते श्राद्धं

---

१ तथा च–देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् । अर्थात्–
देश, काल, पात्रमें श्रद्धा और विधिसे जो पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दियाजाय उसको श्राद्ध कहते हैं ॥

गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते । बहूनां विदुषां संपत्सुखार्थं पितृतृप्तये ॥ क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम् । शुद्ध्यर्थमिति यत् प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥ निषेधकाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च ॥ देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते। गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥ यात्रार्थमिति तत् प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः । शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ॥ पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचायिकमुच्यते ॥ ६ ॥" गोष्ठ्यां श्राद्धकर्तृसमुदाये संभूय सामग्रीसंपादनेन श्राद्धमित्यर्थः ॥ युगपत्तीर्थादिप्राप्तौ विदुषां श्राद्धसंपदा सुखार्थं भिन्नपाकाशक्तौ बहुपितृकश्राद्धमेकः कुर्यादिति कल्पतरुः शङ्खधरश्च ॥ शुद्धिश्राद्धं प्रायश्चित्ताङ्गमिति मैथिलाः ॥ अत्र पार्वणैकोद्दिष्टवृद्धिसपिण्डीकरणात्मकं चतुर्विधमेव मुख्यम् । तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

इसमें पर्व—चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, संक्रांति हे राजेंद्र ! ये पर्व होते हैं, ऐसा विष्णुपुराणमें लिखा है बहुत विद्वानोंको सुख और पितृतृप्तिके लिये समूहमें जो कियाजाय उसे गोष्ठी श्राद्ध कहते हैं, शुद्धिके लिये जो ब्राह्मणोंको भोजन करायाजाय उसको हे वैनतेय! शुद्धिश्राद्ध कहते हैं, गर्भाधान सोम सीमन्त और पुंसवनमें जो कियाजाय उस श्राद्धको कर्मांग कहते हैं, जो देवताओंके निमित्त कियाजाय उसे दैविक कहते हैं देशान्तरके गमन करते और घरमें आकर जो घृतसे कियाजाय उसे यात्रार्थ कहते हैं, शरीर और धनकी वृद्धिकेलिये जो श्राद्ध कियाजाय उससे पुष्ट्यर्थ वा औपचायिक कहते हैं, गोष्ठीमें श्राद्ध करनेवालोंका समूह मिलकर सामग्रीको एकत्र करके तीर्थ आदिमें एक बार श्राद्ध करै, विद्वानोंका श्राद्ध सम्पदाके निमित्त है, भिन्न भिन्न पाक न बनासके तो बहुतसे पितरोंका एकही पाक करै, कल्पतरुमें कहा है, शंखधरने भी यही कहा है, शुद्धिश्राद्ध प्रायश्चित्तका अंग है, यह मैथिल कहते हैं, इन श्राद्धोंमें पार्वण एकोद्दिष्ट वृद्धि सपिण्डीकरण ये चार मुख्य हैं उन चारोंकाही यह विस्तार है ॥

अथ श्राद्धदेशाः ।

मनुः—"शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्॥" पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—"दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेपि वा । भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥" तत्रैव प्रभासखण्डे—' तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे ॥ ' भारते—" तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा सरस्वती । प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम् ॥" स्कान्दे—" तुलसीकाननच्छाया यत्र यत्र भवेद्द्विज । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे " ॥

अब श्राद्धोंके देशोंको कहते हैं। मनुजी कहते हैं कि, शुद्ध एकान्तदेशको गोबरसे लीपकर यत्नपूर्वक दक्षिणको नीची वेदी बनावे। पृथ्वीचन्द्रोदय और विष्णुधर्ममें लिखा है कि, दक्षिणको नीचे देश तीर्थ आदि वा घरमें भूमिको लीपकर यत्नपूर्वक श्राद्ध करै। वहांही प्रभासखंडमें लिखाहै कि, हे शुभे अपने घरमें श्राद्धके दाताको तीर्थसे आठ गुण पुण्य होता है। भारतमें कथन

---

१ भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ॥ अर्थात्—याज्ञवल्क्य कहते हैं मार्जन, दाह, काल, गोके चलने, छिडकने, छीलने, लीपने और बुहारनेसे भूमिकी शुद्धि होती है ॥

है कि, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, सरस्वती, प्रभास, पुष्कर यह श्राद्धके देश हैं इनमें श्राद्धका महान् फल है, स्कन्दपुराणका वचन है कि, हे द्विज! तुलसीके वनकी छाया जहां जहां हो वहां वहां पितरोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध करै ॥

माधवीये श्राद्धोपक्रमे व्यासः–'महोदधौ प्रयागे च काश्याश्च कुरुजाङ्गले' । शङ्खः– "गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके । नर्मदाबाहुदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा । सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥ अपि जायेत सोस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः । गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्" ॥ २ ॥

माधवीयमें श्राद्धके प्रकरणमें व्यासका वचन है कि, महोदधि, प्रयाग, काशी, कुरु, जांगल इनमें श्राद्ध करै, शंखका वचन है कि, गंगा, यमुनाके तीर, पयोष्णी, अमरकंटक, नर्मदा, बाहुदा नदीका तीर, भृगुलिंग, हिमालय, गंगाद्वार, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, सन्निहितगया इनमें दियाहुआ श्राद्ध अक्षय होता है, पितर यह इच्छा करते हैं कि, हमारे कुलमें कोई ऐसा मनुष्य हो जो गयाजी वट (प्रयाग) में सावधान होकर पिण्ड दे, बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करै, उनमें कोई एक भी गया-जीको जाय वा अश्वमेध यज्ञ करै वा नील वृषोत्सर्ग करै, वही श्रेष्ठ है।

आदित्यपुराणे–"पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । महानद्याः पश्चिमेन यावद्गृध्रेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावद्दक्षिणमानसम् । एतद्गयाशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥" इति ॥ शूलपाणौ बृहस्पतिः–"गङ्गायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेवच । दृष्ट्वैतानि पितॄंश्चार्चन् वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥ २ ॥"

आदित्यपुराणमें यह लिखा है कि, पांच कोस गयाक्षेत्र और एक कोसतक गयाका शिरहै, महानदीके पश्चिम गृध्रेश पर्वततक और ब्रह्मयूपसे उत्तर दक्षिण मानसतक गयाशिर नाम तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। शूलपाणिमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, गंगा, धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर, गयाशिर, अक्षयवट इनमें पितरोंको दिया अक्षय होता है, धर्मारण्य धर्मपृष्ठ धेनुकारण्य इनको देखकर पितरोंको पूजता हुआ मनुष्य वीस कुलोंको तृप्त करता है॥

त्रिस्थलीसेतौ वायवीये–" शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे । उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ " सप्तगोत्राणि तु–" पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा । पितृमातृष्वसा चैव सप्त गोत्राणि वै विदुः " इति ॥ एषां गोत्राणामेकोत्तरशतं कुलं पुरुषा इत्यर्थः । ते चोक्तास्तत्रैव " तत्त्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशादश । अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ " तत्त्वानि चतुर्विंशतिः । ते च द्वादश पूर्वा द्वादश पराः । एवमग्रेपि ॥

त्रिस्थलीसेतुमें वायुपुराणका वाक्य है कि, शमी (छौकर) के पत्तेकी समान भी गयाशिरमें जो पिंड देता है, वह सात गोत्र और एक सौ १०१ एक कुलका उद्धार करता है, सात गोत्र यह हैं,

पिता, माता, भार्या, भगिनी, पुत्री, पिता और माताकी भगिनी इन सात गोत्रोंके एकसौ एक पुरुषोंको कुल कहते हैं वे भी वहांही कहे हैं। तत्व २४ (चौवीस) वीस चौदह बारह ग्यारह दश आठ इतने गोत्रोंके एकसौ एक १०१ मनुष्य कुल होता है इन चौवीस आदिमें बारह पहिले बारह पिछले लेने इसी प्रकार आगे भी समझने ॥

प्रयोगपारिजाते पाद्मे-"शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित्। वाराणस्यां यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ॥" तथा-"यत्किंचित्पैतृकं कुर्यात्सपिण्डं वा तदन्तिके। विष्णुलोकं स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम्"॥ तत्रैव वाराहे-"चक्राङ्कस्य तु सान्निध्यं यत् कर्म क्रियते नरैः। स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥"

प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराणका वाक्यहै काशीमें जैसे अधिक शालिग्रामकी मुद्रा चारों तरफ चारों योजनके मध्यमें कहीं न कहीं टिकीहैं तैसेही वचनहैं कि, उस मुद्राके समीप जो पितरोंका कर्म सपिंडी करै वह विष्णुलोकमें गमन करता, व अविनाशी पदको प्राप्तहोताहै वहांही वराहपुराणमें लेखहै कि चक्रांकके समीप मनुष्य जो कर्म करतेहैं वह स्नान, दान, तप, श्राद्ध, सम्पूर्ण अक्षय होताहै ॥

अथ निषिद्धदेशाः ।

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-"त्रिशंकोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटान् ॥ देशस्त्रैशंकवो नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः ॥" वायवीये-'प्रणष्टाश्रमधर्माश्च देशा वर्ज्याः प्रयत्नतः ॥' यमः-"रूक्षं कृमिहतं क्लिन्नं संकीर्णानिष्टगन्धिकम् । देशं त्वनिष्टशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥" तत्रैव शंखः-"गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृत्रिमायां तथा भुवि। न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु ॥"

अत्र श्राद्धमें निषिद्धदेश कहतेहैं। पृथ्वीचन्द्रोदयके स्कन्दपुराणका वाक्यहै कि, बारह योजन त्रिशंकुके सब देशको त्यागदे महानदीसे उत्तर और कीकटसे दक्षिण देशको त्रिशंकु कहतेहैं वह श्राद्धकर्ममें वर्जितहै, वायुपुराणमें लिखाहै कि, जिन देशोंमें आश्रमोंके धर्म न हों वे यत्नपूर्वक त्यागदेने. यमका वचन है कि, रूखा जीवोंसे नष्ट गीला संकीर्ण दुर्गन्धियुक्त तथा अनिष्ट नामवाले ऐसे देशको श्राद्धमें त्यागदे. वहांही शंखका वचन है कि, गौ हाथी घोडे बकरी आदिसे, संकुल, जो भूमि किसीकी बनाई हो वा पराई हो उसमें श्राद्ध न करै ॥

यमः-"परकीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तु यः। तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते"॥ ब्राह्मभारतयोरपि-"परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितॄंस्तर्पयेद्यदि । तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥ अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवितम् ॥" श्राद्धार्हाणामग्रभागश्राद्धं तदनर्हाणां शूद्राणां तु मूल्यमिति केचित्। षोडशीपिण्डे बान्धवानामपि पिण्डोक्तेः ॥ 'येऽबान्धवा बान्धवा' इत्यादितर्पणबाधापत्तेश्च ॥ नामगोत्रपूर्वश्राद्धनिषेधो नान्यत्रेति गौडाः। विप्रासुतस्य शूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधो नान्यत्र । अन्नदानं चान्नत्यागात्पूर्वं कार्यमिति मैथिलाः ॥ तन्न ॥ अग्रभागस्य श्राद्धपरत्वे मानाभावात्। अन्नदाने च निषेधाभावात् ॥ त्यागात्पूर्वं करणेऽनङ्गेन व्यवधानापत्तेः । अङ्गत्वे च मानाभावात्। इदं च स्वाम्यनुज्ञाभावे ॥

---

१ पिछले दशमें बारह करनेसे १०१ होंगे. यह जोड़नेसे तो ९९ होते हैं.

यमका वाक्य है कि. दूसरेकी भूमिमें जो पितरोंको पिण्ड देताहै उस भूमिके स्वामीके पितर उस श्राद्धको नष्ट करदेतेहैं. ब्रह्मपुराण और भारतमें लिखाहै कि, पराये घरमें जो अपने पितरोंको तृप्त करताहै उस घरवालेके पितर उसको बलसे हरण करलेतेहैं तिससे उनको अग्रभागदे अथवा उनके जीवनके लिये मोलदे अर्थात् श्राद्धके योग्य होय तो श्राद्ध और जो योग्य न होय शूद्र होय तो मूल्य दे षोडशीके पिंडमें उनको भी पिण्ड कहाहै. गौड तो यह कहतेहैं कि, जो बन्धुहैं वा अबन्धुहैं वे सब तृप्तहों इस तर्पणके बाधके भयसे नाम गोत्र पूर्वकही पराये पितरोंके श्राद्धका निषेधहै, और स्थानमें नहीं ब्राह्मणीके पुत्रको शूद्रापुत्रके श्राद्धका निषेधहै अन्यत्र नहीं अग्रभागका देना अन्नके त्यागसे पहिले करना यह मैथिल कहते हैं. सो ठीक नहीं कारण कि, अग्रभाग श्राद्धका बोधकहै इसमें कोई प्रमाण नहीं, और अन्नदानका कोई निषेध नहीं, अन्नत्यागसे पहिले श्राद्ध कियाजाय तो अंगके विना अन्न दानसे व्यवधान होजायगा और अन्नदान भी अंगहै इसमें कोई प्रमाण नहीं, यह भी तबहै जब घरके स्वामीकी आज्ञा नहो ॥

तदुक्तं तत्रैव ब्राह्मे–"स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च । श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु नोच्यते ॥ किरातेषु कलिङ्गेषु कौंकणेषु खसेष्वपि । सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥ पूर्वेण करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते ॥ २ ॥" इदं काम्यविषयम् अन्यथा तत्रत्यानां सर्वश्राद्धाकरणापत्तेः नर्मदादक्षिणेऽपवादः स्कान्दे–"सह्यस्य चोद्भवो यत्र यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोतिपावनः ॥" परकीयत्वापवाद आदित्यपुराणे–"अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च । देवखाताश्च गर्तश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥ २ ॥" स्मृतिसारे–"नैकवासा न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन । श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥" दिवोदासीये–"म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां विप्रवर्जितः । न श्राद्धमाचरेद्विद्वान्न चाकाशे कथंचन ॥"

यहां ब्रह्मपुराणके वचनसे वहांही कहा है कि, भली प्रकार लिपे हुए घरोंमें स्वामीकी आज्ञासे श्राद्ध देना और इनमें श्राद्ध वर्जित नहीं है, और किरात कलिंग कौंकण खश समुद्रके उत्तरतट नर्मदाके उत्तरतट करतोया नदीके पूर्व तटोंमें श्राद्धदान नहीं कहा यहभी काम्य श्राद्धोंके विषयमें है अन्यथा वहांके वासियोंको किसीभी श्राद्धके करनेका अधिकार नहीं होगा, नर्मदाके दक्षिणमें जो निषेधहै उसका अपवाद स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, जहां सह्य पर्वतहै गोदावरी नदीहै सम्पूर्ण पृथ्वीमें वह देश महापवित्रहै, पराई भूमिका अपवाद आदित्यपुराणमें कहाहै कि, वन पर्वत पवित्र नदियोंके तीरका कोई स्वामी नहीं कारण कि, इनमें किसीका कर नहीं, वन पर्वत नदी तीर्थ देवमंदिर देवताओंके खोदे तीर्थ इनका कोई स्वामी नहीं, स्मृतिसारमें लिखाहै कि, एक वस्त्र धारण किए, अशुद्धद्वीपमें और अन्तरिक्षमें श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए कर्मको कदाचित् न करै. दिवोदासीयमें लिखाहै कि, म्लेच्छ देश रात्रि और संध्याकालमें ब्राह्मणोंके विना और आकाशमें विद्वान् मनुष्य कदाचित् श्राद्ध न करै ॥

अथ श्राद्धकालाः ।

ते च संक्रान्तियुगादिमहालयादयः ॥ प्रायेण परिच्छेदद्वये उक्ता एव । केचिन्नूच्यन्ते । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः–"श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभछायाग्रहणसंक्रमे । नवोदके नवान्ने च नवच्छन्ने तथा गृहे ॥ न चैक्षवेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि ॥ पितरः स्पृहयन्त्यन्न-

मष्टकासु मघासु च॥२॥" इति शातातपपाठः॥ नवोदके नवकूपवाप्यादाविति केचित्। वर्षोपक्रमे आर्द्राप्रवेश इति गौडाः। नवान्नश्राद्धे विशेषो ज्योतिषे-"ज्येष्ठाशेषार्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके। नवान्नभोजनश्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च॥ आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठा-मूलाजपदगेषु च। गुरुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवौदनम्॥ २॥" तत्रैव-'वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः॥' अतः कृष्णपक्षेनेति गौडाः॥

अब श्राद्धके काल कहते हैं। वे संक्रांति युगादि महालय आदि पिछले दोनों परिच्छेदोंमें कहे हुएहैं और कुछ अन्य भी हम वर्णन करते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपाराशरका कथन है कि, वृद्धि अमावस्या गज-च्छाया ग्रहण संक्रांति नया जल और नया अन्न, नया छाया घर, नई ईख, मघा इनमें पितर श्राद्धकी इच्छा करते हैं, और शातातपका यह पाठ है अष्टका मघामें पितर श्राद्धकी इच्छा करते हैं, कोई यह कहते हैं कि, नये जलसे नवीन कूप लेना और गौड यह कहते हैं कि, वर्षाका प्रारम्भ आर्द्राका प्रवेश लेना। नवान्न-श्राद्धमें विशेष ज्योतिषमें कथन है कि, पिछले आधे ज्येष्ठामें जब सूर्य हो और मृगनेत्रा रात्रि हो तब नये अन्नसे श्राद्ध करै, और जन्मके चन्द्रमा और और तिथियोंमें न करै, आश्लेषा कृत्तिका मूल (पूर्वाभाद्रपदा) शुक्र और मंगलवारमें नये अन्नको न खाय वहांही लिखा है कि, वृश्चिकके शुक्ल पक्षमें बुद्धिमान् मनुष्य नया अन्न भक्षण करना अच्छा कहते हैं, तिससे कृष्णपक्षमें न खाय यह गौडोंका मत है॥

मैथिलास्तु-'अकृताग्रयणं चैव धान्यजातं नरोत्तम।' इति वाराहोक्तेः प्रतिधान्यं श्राद्धमाहुः। तन्न॥ जातपदस्य श्राद्धयोग्यसमूहपरत्वात्। हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः-"ग्रहो-परागे च सुते च जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च। नित्यं च शंखे च तथैव पद्मे दत्तं भवे-न्निष्कसहस्रतुल्यम्॥ शङ्खं प्राहुरमावास्यां क्षीणचन्द्रां द्विजोत्तमाः। अष्टकासु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाक्षयम्॥ २॥" तत्रैव शंखः-"यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च। पद्मकं नाम तत् प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम्॥"

हे नृप! मैथिल तो आग्रयण किए विना किसी अन्नको मनुष्य न खाय इस वाराहपुराणके वचनसे प्रत्येक अन्नमें श्राद्ध कहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि, जातपद श्राद्धयोग्य समूहका वाचक है। हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका वचन है कि, ग्रहण, पुत्रजन्म, पितृतिथि, गया, दक्षिणायन, उत्तरायण, शंख और पद्म इनमें दियाहुआ दान सहस्र गुण अधिक होता है। क्षीणचन्द्रवाली अमावास्याको शंख कहते हैं, और अष्टकाको पद्म कहतेहैं उनमें प्रदान किया हुआ अक्षय होताहै, वहांही शंख कहतेहैं कि, विष्टिकरण, व्यतीपात, और भानुवार इनका योग होतो उसको पद्मक कहतेहैं ये अयनसे चतुर्गुण फलदेतेहैं॥

याज्ञवल्क्यः-"अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोयनद्वयम्। द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषु-वत्सूर्यसंक्रमः॥ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः" ॥ २॥ कृष्णपक्षः सर्वोपि। 'शोकेनापरपक्षं नातिक्रमेत। मासि मासि वाऽशनम्। इति श्रुतेः। 'ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः संपद्यते ऋते चतुर्दशीम्' इति कात्यायनोक्तेः॥ 'मासिमासि कार्यमपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान्' इत्यापस्तंबोक्तेश्च वीप्सया सर्वकृष्णपक्षेषु नित्यम्। तेनोपसंहारान्महालयपरत्वं परास्तम्। अत्र प्रत्यहं, पञ्चम्यादि, यदहः संपत्तिर्वा इति त्रयः पक्षाः। यदैकदिने श्राद्धं तदा दार्शं पृथगेव। याज्ञवल्क्येनामावास्यायाः पृथङ्निर्देशात्॥ एतेन कृष्णपक्षे यदहः सम्पद्यते।

अमावास्यायां तु विशेषेण इति निगमोक्तेर्गुणोपरपक्षश्राद्धस्यामावास्येति शूलपाणिमतमप्यपास्तम् ॥ 'अशक्तौ दर्शेनापि मासिश्राद्धसिद्धिः' इति नारायणवृत्तिः ॥

याज्ञवल्क्यका कथनहै कि, अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य और ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति ये श्राद्धके समय कहेहैं, कृष्णपक्ष, सब लेना कारण कि, यह स्मृतिहै कि, शोकसे भी कृष्णपक्षकाअवलंबन न करै वा मास २ में भोजन करावे, वा चतुर्थीके पीछे जो दिन चतुर्दशीके विना मिले इस कात्यायनके वाक्यसे और महीने २ में करै, कृष्णपक्षका, अपराह्न उत्तमहै इस आपस्तम्बके वाक्यसे दो वार कहनेसे सब कृष्णपक्षोंमें नित्यहै तिससे उपसंहारसे जो महालयके विषयमें कहना वह परास्त हुआ इसमें यह तीन पक्ष हैं कि, प्रतिदिन, पंचमीआदि, जिस दिन सामग्री जुडे, सो एक दिन श्राद्ध होय तो अमावस्याका श्राद्ध पृथक्ही होताहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने अमावस्या पृथक् दिखाईहै, इससे यह शूलपाणिका मत खंडित हुआ कि, कृष्णपक्षमें जो दिन मिले उसमें और विशेषकर अमावस्यामें करै इस निगमके वचनसे कृष्णपक्ष गौण है, और श्राद्धका समय अमावस्याहै सामर्थ्य न होय तो अमावस्यासेभी मासश्राद्धकी सिद्धि होतीहै, यह नारायणवृत्तिमें कहाहै ॥

निरग्निकाणां कस्मिंश्चिद्दिने । आहिताग्नेस्तु दर्शे एव । 'न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ' इति मनूक्तेः ॥ सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ मात्स्ये-"अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ कन्याकुम्भवृषस्थेर्के कृष्णपक्षे च सर्वदा ॥" कर्कोपि-'आहिताग्नेः संवत्सरे त्रिः श्राद्धनियमः' इति ॥ देवलः-" अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् । द्विश्चतुर्वा यथाश्राद्धं मासे मासे दिनेदिने ॥" कृष्णपक्षेष्वपि महालयश्रेष्ठत्वम् । तत्रोक्तं प्राक् ॥ व्यतीपाते विशेषमाह हेमाद्रौ शङ्खः-" फलं लक्षगुणमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते । पतने शतकोटयस्तु पाते वै दत्तमक्षयम् ॥" ज्योतिः शास्त्रे-"द्वाविंशतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः । पतने दशनाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः॥" अन्त्यौ च द्वौ व्यतीपातौ प्रागुक्तौ ।

जो अग्निहोत्री नहींहैं वे चाहें जिस दिन और अग्निहोत्री तो अमावस्याकोही श्राद्ध करै, क्योंकि मनुका वाक्यहै कि, अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावस्याके विना श्राद्ध करना उचित नहीं सब कृष्णपक्षोंमें करनेका सामर्थ्य न हो तो मत्स्यपुराणके इस वाक्यसे कि, इस विधिसे वर्षके तीन दिनोंमें श्राद्ध करै, और वह कन्या कुम्भ वृषके सूर्यमें करै और वहभी सदैव कृष्णपक्षमें करै, कर्कभी लेनी कारण कि, देवलजीने यह कहाहै कि, आग्निकको वर्षमें तीन वार श्राद्धका नियमहै, इसप्रकारसे वर्षदिनमें एक बार दो वा चार श्राद्ध करै वा महीने २ और दिन २ में करै, कृष्णपक्षोंमें भी महालय उत्तमहै सो पहिले कहआयेहैं व्यतीपातमें विशेष हेमाद्रिमें शंखके वचनसे कहाहै कि, उत्पत्तिमें लक्ष गुना, भ्रमणमें कोटिगुना, पतनमें सौ कोटि और पातमें दिया अक्षय होताहै. ज्योतिः शास्त्रमें कहाहै कि, उत्पत्तिमें बाईस, भ्रमणमें इक्कीस, पतनमें दश घडी और पतितमें सात घडी होतीहैं और भी दो व्यतीपात पहिले कथन कियेहैं ॥

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-" यदा च श्रोत्रियोभ्येत्ति गृहं वेदविदग्निवित् । तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विधुवच्छुभम् ॥ " इदं चापिण्डं कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ एतज्जीवत्पितृकोपि कुर्यात् । " उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः " इति मैत्रायणीयपरिशिष्टोक्तेः ॥ तिथिविशेषे फलविशेषो याज्ञवल्क्ये-

नोक्तः–"कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि । द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैक-शफांस्तथा ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरौप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ ३ ॥ " एताः कृष्णपक्षस्था एव ॥ महालये तु फलभूमेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ पौर्णमास्यां हेमाद्रौ पितामहः–"अमावास्याव्यतीपाते पौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥" एतन्माघ्यादिपरम् । "व्रीहिपाके च कर्तव्यं यवपाके च पार्थिव । पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नृपोत्तम ॥ प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी । एतांस्तु श्राद्धकाला-न्वै नित्यानाह प्रजापतिः ॥ " इति ॥

हेमाद्रिमें मार्कंडेयका कथन है कि, जब वेदज्ञाता अग्निहोत्री वेदपाठी अपने घरमें आवे, यदि वह एकभी होतोभी गृहस्थी विधिविधानसे शुभ श्राद्ध करै. हेमाद्रि कहतेहैं कि, इस श्राद्धको पिंडरहित करना चाहिए, और इस श्राद्धको वहभी करै जिसका पिता जीवितहो कारण कि. मैत्रायणीय परीशिष्टमें लिखाहै कि, विवाह, पुत्रजन्म, पितरोंका पूजन, सोमयज्ञ, तीर्थ, और ब्राह्मणका आगमन यह छः जीवत पिताकेहैं, तिथियोंके विशेषमें फलका विशेष याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, कन्या, कन्याका लाभ, पशु, उत्तम पुत्र, जुआ, खेती, व्यापार, दो खुरवाले, एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजवाले पुत्र, सोना, चांदी, धन, जातिमें श्रेष्ठता, सम्पूर्ण कामनाको केवल एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदाआदि तिथियोंमें श्राद्धका दाता क्रमसे प्राप्तकरता है, ये भी तिथि कृष्णपक्षकी ही लेनीचाहिए, महालयमें बहुत फल होताहै यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै, कि, पूर्णमासीको हेमाद्रिमें पितामह ब्रह्माजीका वाक्यहै कि अमावस्या व्यतीपात पौर्णमासी अष्टकामें जो जानकर श्राद्ध न करै वह नरकको गमन करताहै, यह माघकी पूर्णिमाआदिके विषयमें कथनहै, और भाद्रपदकी पूर्णिमाके पीछे कृष्णपक्षकी त्रयोदशी यह श्राद्धके काल प्रजापतिने सदा कहेहैं ॥

विष्णुधर्मोक्तौ विष्णुः–'माघी प्रौष्ठपदूर्ध्वं कृष्णा त्रयोदशी' इति । अत्र माघी पौर्ण-मासीति कल्पतरुः ॥ 'श्रावण्यूर्ध्वमपि मघायोगसंभवात्त्रयोदशीविशेषणम्' इति गौडाः ॥ नक्षत्रेष्वपि याज्ञवल्क्यः–"स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्रा-ञ्छ्रैष्ठ्यं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥ प्रवृत्तचक्रतां वापि वाणिज्यप्रभृतीनपि । अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥ धनं वेदान् भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्य-जाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥ कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान् प्राप्नुयादिमान् ॥ ३ ॥" फलान्तराण्यपि महाभारते कौर्मादिष्वेयानि ॥ माध-वीये मरीचिः–"कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम् । विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते ॥" बृहस्पतिः–"आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजितम् । सर्वान् कामान् प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम् ॥ सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम् । बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम् ॥ २ ॥" अन्यानि च षण्णवतिश्राद्धादीनि प्रागुक्तानि मार्कण्डेयपुराणे–"श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने । जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥"

विष्णुधर्मोक्तिमें विष्णुजीने कहाहै कि, माघकी पूर्णिमा और भाद्रपदकी पूर्णिमासे अगले कृष्णपक्षकी त्रयोदशी, यह माघीसे पूर्णिमा लेनी यह कल्पतरुमें कहाहै; कारण कि, श्रावणीसे पीछे भी माघका योग

होसकताहै, इसको त्रयोदशीका ही विशेषण गौड कहतेहैं अर्थात् माघकी त्रयोदशी. नक्षत्रोंमेंभी याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, स्वर्ग संतान बल शूरता क्षेत्र बल पुत्र श्रेष्ठता सौभाग्य समृद्धि मुख्यता शुभप्रवृत्ति तथा राज्य व्यापार आदि नीरोगता, यश, शोकका नाश, परमगति, धन, वेद, वैद्यककी सिद्धि, शुभशरीरता, अजा (भेड) अश्व, अवस्था इन फलोंको क्रमसे वह प्राप्तहोताहै जो कोई कृत्तिकासे आदि लेकर भरणीपर्यन्त नक्षत्रोंमें श्राद्ध करताहै, औरभी श्राद्धके समय भारत कौर्म आदिमें लिखेहैं, माधवीयमें मरीचिका कथनहै कि, कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें जो श्राद्धका फल कहाहै, वही फल विष्कंभआदि योगोंमें होताहै, ऐसा जानना. बृहस्पति कहतेहैं कि, आरोग्य, सौभाग्य, शत्रुओंका पराजय, सब कामकी प्राप्ति लक्ष्मी विद्या धन अवस्था इनको क्रमसे रविवारआदि सात वारोंमें श्राद्ध करनेवाला प्राप्त होताहै औरभी छानवे श्राद्ध प्रथम कथन कर आयेहैं, मार्कण्डेयपुराणमें कहाहै कि, जब श्राद्धके योग्य द्रव्यहो और जब खोटा स्वप्न दीखे तथा जन्मका नक्षत्रहो तथा जब ग्रहोंकी पीडा ग्रहणादि हो इनमें इच्छासे श्राद्ध करै ॥

अथ श्राद्धाधिकारिणः ।

चन्द्रिकायां सुमन्तुः–"मातुः पितुः प्रकुर्वीत संस्थितस्यौरसः सुतः । पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमादितः ॥" तत्रैव हेमाद्रौ शंखः–"पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया ।पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्तदभावे तु सोदरः ॥" अत्र यद्यपि पुत्रपदं क्षेत्रजादिद्वादशविधपुत्रपरम् । ते च द्वादशपुत्रा याज्ञवल्क्येनोक्ताः–"औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतः स्मृतः ॥ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवस्तथा । दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः । दत्तात्मातु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः ॥ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः । पिण्डदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥ ९ ॥" इति । तथापि ॥ 'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥' इति हेमाद्रावादिपुराणे कलावितरेषां पुत्रत्वनिषेधादौरसदत्तकपरमेव ॥

अब श्राद्धके अधिकारी कहतेहैं, चन्द्रिकामें सुमन्तुका वाक्य है कि, औरस पुत्र मृतक हुए माता पिताका सपिंडी संस्कार सत्कारसे मन्त्रपूर्वक करै. वहांही हेमाद्रिमें शंखका वाक्यहै कि, पुत्र पिताका पिण्डदान और जलदान कर्म करै, पुत्र न होय तो पत्नी, पत्नी न होय तो सहोदर भ्राता करै, यहां यद्यपि पुत्र पदसे क्षेत्रज आदि बारह प्रकारके पुत्रोंका बोध होताहै, और वे बारह पुत्र याज्ञवल्क्यने कथन किएहैं कि, धर्मपत्नीसे जो उत्पन्न हो वह औरस, उसके तुल्य पुत्रिकाका पुत्र होताहै, अपनी स्त्रीमें जो पैदाहो वह क्षेत्रज चाहै वह सगोत्रसे हो वा इतरसे हो, घरमें छिपकर जो उत्पन्न हो वह गूढज, कन्यासे उत्पन्न कानीन, नानाका पुत्र कहाहै, पुरुषके सम्बधसे रहित हो वा नहीं हो ऐसी स्त्रीमें जो अन्यसे उत्पन्न हो वह पौनर्भव पुत्र कहाताहै, माता व पिता जिसको देदे, वह पुत्र दत्तक कहाताहै, जो माता पिताने बेच दिया हो वह क्रीत होताहै, जो स्वयं पुत्र करलियाहो वह स्वयंकृत कहाता है, जिसने अपनी आत्मा देदी हो वह स्वयंदत्त कहाता है, गर्भमें जो विवाहके समम हो अर्थात् गर्भवतीसे विवाह करनेसे जो उत्पन्न हो, वह सहोढज होताहै, जो किसीका त्यागा हुआ ग्रहण किया जाय वह अपविद्ध पुत्र होताहै, इन बारह १२ में पूर्व २ के अभावमें पिछला २ पिण्डका देनेवाला और अंशका भागी होताहै, तो भी कलियुगमें दत्तक

औरसके सिवाय दूसरोंको पुत्रभावसे स्वीकार न करै यह हेमाद्रि और आदित्य पुराणमें कलियुगमें और पुत्रोंके निषेधसे औरस दत्तकके विषयमें माता पिताके संस्कारका पूर्वोक्त कथनहै ॥

यद्यपि 'पिण्डदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः' इति याज्ञवल्क्योक्तेरौरसाभावे दत्तकप्राप्तिः, तथाप्यौरसाभावे पौत्रः, तदभावे प्रपौत्रः, तदभावे दत्तकादयः इति ज्ञेयम् ॥ "पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्" इति जीमूतवाहनधृतवसिष्ठहारीतशंखलिखितोक्तेः ॥ 'लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च "पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च । पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा । असंनिधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः" ॥ २ ॥

यद्यपि पूर्व २ के अभावमें पर २ पिण्डका दाता और अंशका भागी होताहै इस याज्ञवल्क्यके वचनसे औरसके अभावमें दत्तककी प्राप्तिहै तथापि औरसके अभावमें पौत्र और पौत्रके अभावमें प्रपौत्र उसके अभावमें दत्तकआदि यही समझना, क्योंकि पुत्रसे लोकोंको जय करताहै, और पौत्रसे अनन्त लोकोंको भोगताहै, और पुत्रके पौत्रसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होताहै । जीमूतवाहनमें लिखे वसिष्ठ हारीत शंखलिखितोंके वाक्योंसे और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पुत्रिकापुत्र, पत्नीभ्राता, भ्राताका पुत्र, पिता, माता, स्नुषा, (बहू) भगिनी, भानजा, सपिंड, सोदक, इनमें पूर्वके न होनेमें पिछले २ पिण्डके दाता कहेहैं ॥

स्मृतिसंग्रहे–"प्रपौत्रानन्तरं पुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्समत्वाच्च दत्तकस्य" ॥ यद्यपि बृहस्पतिना– "पुत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकरावुभौ । रिक्थे च पिण्डदाने च समानौ परिकीर्तितौ" इति पौत्रसाम्यमुक्तम् ॥ याज्ञवल्क्येन च–'औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः' इति औरससाम्यम् । तथापि–'लोके राजसमो मन्त्री' इत्यादौ किञ्चिन्न्यूने समशब्दप्रयोगात् । गौणमुख्ययोः साम्ययोगाच्च स्तुत्यर्थं तत् । न तु समविकल्पः । इति भ्रमितव्यम् । 'पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसंततिः । सपिण्डसंस्तुतिर्वापि क्रियार्हा नृप जायते ॥ तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षसपिण्डेन संबन्धो यो जलेन वा ॥ कुलद्वयेपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । तत्संघातगतैर्वापि तद्रिक्थात्कारयेन्नृप ॥ ३ ॥' इति विष्णुपुराणाच्चेति प्रपौत्रानन्तरं दत्तकादय इति पृथ्वीचन्द्रमदनरत्नकालादर्शादयः ॥ मदनपारिजातेप्येवम् ॥

इस स्मृतिसंग्रहके वचनमें प्रपौत्रके पीछे पुत्रिकाका पुत्र कहाहै और उसके समान दत्तकहै, यद्यपि बृहस्पतिने तो पुत्र और पुत्रिकाका पुत्र यह दोनों स्वर्गकी प्राप्ति करनेवालेहैं, धन लेने और पिण्डदानमें ये दोनों समान कहेहैं, और पौत्रके तुल्य कहेहैं, और याज्ञवल्क्यने भी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुआ औरस और उसके समान बेटीका पुत्र कहाहै इस वचनसे औरसके तुल्य कहाहै, तथापि लोकमें राजाके समान मन्त्री है इत्यादिमें कुछ न्यूनमें भी समशब्दका प्रयोग होनेसे गौण और मुख्यका तुल्यताका प्रयोगहै इससे प्रशंसाके निमित्त वह वाक्य है तुल्यताका विकल्पहै, यह सन्देह नहीं करना, और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भ्राताकी सन्तान, सपिण्डकी सन्तानभी क्रियाके योग्य होती है, उन सबके अभावमें समानोदकोंकी सन्तान वा माताके पक्षका सपिण्ड जलदान करै, हे नृप ! यदि दोनों कुल नष्ट होगये हों तो स्त्री वा उनका समूह उसके धनमेंसे क्रियाको करै, इस विष्णुपुराणके वाक्यसे प्रपौत्रके पीछे दत्तक आदि करैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदय मदनरत्न, कालादर्श आदिके वचन कहतेहैं, मदनपारिजातमें भी ऐसेही लिखाहै ॥

बोपदेवरुद्रधरादयस्तु–'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यो वै कारयेत्स्वधाम्' इति सुमन्तूक्तौ ॥ "पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टे च पुत्रशब्दस्य द्वादशविधसुतपरत्वात् 'पूर्वाभावे परः परः' इत्यस्यानन्यपरत्वाच्च दत्तकाद्यभावे पौत्रादीनामप्यधिकार इत्याहुः ॥ तद्गौणमुख्ययोः साम्यायोगाद्दत्तके सति पौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः पुत्रपदस्यौरसमात्रपरत्वाच्चिन्त्यम् ॥ अत एव निषेधादुपनीतपौत्रसत्त्वेप्यनुपनीतपुत्रस्यैवाधिकारः ॥ 'औरसश्चानुपनीतोपि कुर्यात्' इत्याह पृथ्वीचन्द्रोदये सुमन्तुः–"श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः । व्रतस्थो वाव्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदि ॥" वृद्धमनुः–"कुर्यादनुपनीतोपि श्राद्धमेको हि यः सुतः । पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयाद्ब्राह्मणस्य सः ॥" एको मुख्य औरस इत्यर्थः ॥

बोपदेव रुद्रधर आदि तो कहते हैं कि, पुत्रोंके विद्यमान होते अन्य स्वधाको न करैं, इस सुमन्तुके वाक्यसे पिताके पीछे यदि पितामह मरजाय तो पौत्र दशाह आदि षोडश श्राद्ध करै, यदि पितामहके पुत्र होय तो पौत्र ये श्राद्ध न करै, इस छन्दोगपरिशिष्टमें पुत्रशब्दसे बारह प्रकारके पुत्रोंका बोध होताहै और पूर्व पूर्वके अभावमें परपर करै, यह भी अन्य अर्थका बोधक नहीं, इससे दत्तक आदिके अभावमें पौत्र आदिका अधिकार है यह जो कहतेहैं, सो ठीक नहीं कारण कि, गौण और मुख्यकी साम्यताके अयोगसे दत्तक पुत्रके होते पौत्रभी अंशका भागी नहीं होगा, पुत्रपद औरस (सन्तान) मात्रका बोधकहै इसी निषेधसे जिसका यज्ञोयवीत होगया हो ऐसे पौत्रके विद्यमान होते भी अनुपनीत पुत्रकाही अधिकारहै कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें सुमंतुने यह कथन कियाहै कि, अनुपनीत भी औरस पुत्र क्रिया करै, कि, जिसका पिता मरगया हो वह द्विज व्रतमें स्थित हो वा नहो यदि एकही होय तो श्राद्धको अवश्य करै, वृद्धमनुका वाक्य है कि, अनुपनीतमें भी पुत्र यदि एक होय तो श्राद्ध करै, और ब्राह्मणके हाथमें पितृयज्ञकी आहुति दे इसमें एक पदसे मुख्य औरसपुत्रही लेना ॥

मनुः–"न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मस्वधानिनयनादृते ॥" ब्रह्म–वेदः ॥ सुमन्तुरपि–"नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते । मन्त्राननुपनीतोपि पठेदेवैक औरसः ॥" अयं मन्त्रपाठः त्रिवर्षकृतचूडस्यैव । "अनुपनीतोपि कुर्वीत मन्त्रवत्पितृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि स्याच्च त्रिवत्सरः" इति सुमन्तूक्तेः ॥ यत्तुः व्याघ्रः–"कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च । स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत्" इति ॥ यच्च स्मृतिसंग्रहे–"कृतचूडोनुपेतश्च पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ" इति । तत् प्रथमवर्षचूडाविषयमिति माधवमदनरत्नपृथ्वीचन्द्राः त्रिवर्षोर्ध्वं मन्त्रवत्त्वस्य विकल्पः इति चन्द्रिका बोपदेवश्च । दत्तकादिपरो निषेध इति वयम् ॥

मनुजीने कहाहै कि, यज्ञोपवीतपर्यन्त कोई कर्म न करै, और स्वधा अर्थात् (श्राद्ध) के विना वेदका उच्चारण न करै. सुमंतुका भी वाक्य है कि, जबतक यज्ञोपवीतकी मौञ्जी न बँधै तबतक वेदका उच्चारण

न करै और अनुपनीत भी मुख्य औरस पुत्र मन्त्रोंको पढै यह मन्त्रोंका पाठ उसको ही है जिसका तीसरे वर्ष मुण्डन होगया हो कारण कि, सुमन्तका वाक्य है कि, यज्ञोपवीत रहित भी पुत्र मन्त्रोंसे पितृयज्ञ करै, यदि तीन वर्षका होय और मुण्डन होचुका हो तो व्याघ्रने यह लिखा है कि, मुण्डनके अनन्तर पिंड जलदान करै, और स्वधाको कहै परन्तु वेदको न पढै और जो स्मृतिसंग्रहमें लिखा है कि, मुंडनके पीछे यज्ञोपवीत रहित भी मातापिताके श्राद्धको करै, और स्वधाको पढै और वेदके अक्षर न पढै यह दोनों वचन उसके विषयमें हैं, जिसका पहिलेही वर्ष चूडाकर्म हुआ हो। माधवरत्न पृथ्वीचन्द्रोदय कहते हैं, तीन वर्षके पीछे इसको मन्त्रपाठ करनेका विकल्प है, यह चन्द्रिका **और** वोपदेवने कहा है और हम तो यह कहते हैं कि, निषेध दत्तकके निमित्त है ॥

मदनरत्ने स्कान्दे–" यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथा नृप । तथौर्ध्वदैहिकं कर्म कुर्यात्सा धर्मसंस्कृता ॥" अशक्तौ तु कात्यायनः–" असंस्कृते तु पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम् । कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥" पुत्रश्च न जन्मतोऽधिकारी । किं तु वर्षोत्तरमित्याह कालादर्शः–"चौलाद्याद्याब्दिकादर्वाङ् न कुर्यात्पैतृमेधिकम् । पुत्रश्चोत्पत्तिमात्रेण संस्कुर्यादृणमोचनात् ॥ पितरं नाब्दिकाच्चौलात्पैतृमेधेन कर्मणा ॥" एतच्चौरसस्यैव । दत्तकादीनां तूपनीतानामेवाधिकार इति कालादर्शः ॥

मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, यज्ञोंमें हे नृप! जैसे मन्त्रोंको पढकर पत्नी कर्म करती है इसी प्रकार धर्मसंस्कृत वह पत्नी मरणके कर्मको भी करै, सामर्थ्य न होय तो कात्यायनने यह कहाहै कि, असंस्कृत पुत्र और पत्नी मन्त्रोंसे अग्निदाहक्रिया करै, अन्य सब कर्म किसी औरसे करादे पुत्र जन्मसे अधिकारी नहीं किन्तु वर्षके उपरान्त है, मुण्डन और एक वर्षसे पहिले पितृयज्ञ न करै, यह कालादर्शका वाक्य है, मदनरत्नमें सुमन्तुने भी यही कहा है कि, पुत्र पिताका संस्कार उत्पन्न होतेही ऋणमोचनसे करै, एक वर्ष और मुण्डनसे पहिले न करै, यह भी औरसके निमित्त है दत्तक आदिमें तो उसकोही अधिकार है जिसका यज्ञोपवीत होचुका हो यह कालादर्शमें कहा है ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेपि स्कान्दे–" पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौरसः सुतः । और्ध्वदैहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः " इति ॥ अन्यत्रापि–दर्शमहालयादावनुपनीतस्याधिकारोस्माभिः पूर्वमुक्तः ॥ प्रपौत्राभावे दत्तकादय एकादश पुत्राः । तदभावे भर्तुः पत्नी तस्याश्च सः । " अपुत्रा शयनं भर्त्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात्तत्पिंडं कृत्स्नमंशं लभेत च " इति वृद्धमनूक्तेः ॥ " भार्यापिण्डं पतिर्दद्याद्भर्त्रे भार्या तथैव च । श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे सपिण्डकाः " इति ' पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः ' इति च हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, अनुपनीत भी औरसपुत्र माता पिताका और्ध्वदैहिक कर्म करै, और पुत्र तो संस्कारके उपरान्त श्राद्धके अधिकारी है और अमावास्या महालय श्राद्धोंमें भी हम अनुपनीतका अधिकार पहिले कह आये हैं, प्रपौत्रके अभावमें दत्तकआदि ११ ग्यारह पुत्र और उनके अभावमें वह पत्नी करै जिसका वह पति था, कारण कि, वृद्धमनुने यह कहा है कि, जिसके पुत्र न हो वह पत्नीही पतिकी शय्याको पालन करती है, और व्रतमें स्थित होकर पिंड दे और सम्पूर्ण धनको ग्रहण करै और भार्याको पिंड पति दे पतिको भार्या दे, और सासको बहू दे, और यह न होंवे

तो सपिंड दे, कारण कि, हेमाद्रिमें शंखने कहा है कि, पुत्रके अभावमें पत्नी और पत्नीके अभावमें सहोदर भाई दे ॥

पृथ्वीचन्द्रस्तु–'कानीनगूढसहजपुनर्भूतनयाश्च ये । पत्न्यभावे विकुर्युस्ते त्वप्रशस्ताः स्मृता हि ते ॥" इति स्मृतिसंग्रहात् ॥ पत्न्यभावे कानीनादय इत्याह । पत्युरपि सपत्नीपुत्रे सति नाधिकारः । 'पितृपत्न्यः सर्वा मातरः" इति सुमन्तूक्तेः "विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम् । तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्याः स्मृतास्तथा ॥ तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः " इति मदनरत्ने कात्यायनोक्तेश्च ॥ "बह्वीनामेकपत्नीनामेष एव विधिः स्मृतः । एका चेत् पुत्रिणी तासां सर्वासां पिण्डदस्तु सः ॥" इति बृहस्पतिवचनाच्च ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो यह कथन किया है कि, कानीन गूढ सहज पुनर्भूपुत्र पत्नीके अभावमें ही पिताका संस्कार अग्निक्रिया करैं क्योंकि, ये निकृष्ट हैं इस स्मृतिसंग्रहके वाक्यसे पत्नीके अभावमेंही कानीन आदिका अधिकार है सपत्नीका पुत्र होय तो पतिको भी स्त्रीके संस्कारका अधिकार नहीं कारण कि, सुमन्तुने यह कहा है कि, पिताकी सब स्त्री माता होती हैं और मदनरत्नमें कात्यायनका वचन है कि, माताका और्ध्वदेहिक कर्म औरस पुत्र करै उसके अभावमें सपत्नीका पुत्र करै वह भी न होय तो क्षेत्रज-आदि पुत्र, वे भी न होंय तो पति, पति भी न होय तो सपिंड करै, और बृहस्पतिने भी कहाहै है कि, एक पुरुषकी बहुत स्त्रीकी यही विधि है कि, उनमें जो एक पुत्रवाली है वही सबको पिंडकी दाता है ॥

अपरार्केप्येवम् । तेन यच्छुद्धिविवेके उक्तं 'सत्यपि सपत्नीपुत्रे पत्युरेवाधिकारः' इति । तन्निरस्तम् । यच्च तत्रैव कात्यायनः–'न भार्यायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ।' यच्च विष्णुपुराणम्–'कुलद्वयेपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप' इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणम्–'सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम्' इति ॥ तदासुरादिविवाहोढाविषयम् ॥ "धर्म्यैर्विवाहैरूढा या सा पत्नी परिकीर्तिता । क्रयक्रीता तु या नारी न सा पत्न्यभिधीयते ॥ न सा दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां मुनयो विदुः ॥" इति माधवीये शातातपोक्तेः ॥

अपरार्कमें भी यही है तिससे जो शुद्धिविवेकमें यह कहा है कि, सपत्नीका पुत्र होतेभी पतिका अधिकार जो है, सो खण्डित हुआ जो वहांही कात्यायनने कहा है कि, पुत्ररहित भार्याको पति कदाचित् पिंड न दे, और जो विष्णुपुराणमें लिखा है कि, दोनों कुलोंके नष्ट होनेपर स्त्री क्रिया करै, और जो मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, सबके अभावमें अपने पतियोंका संस्कार मंत्र विना स्त्री करै, ये सब वचन उन स्त्रियोंके विषयमें हैं, जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाही हों क्योंकि, जो धर्महीके विवाहोंसे विवाही हों वही पत्नी कही हैं मोलली स्त्री पत्नी नहीं कहाती वह देव और पितर कर्मोंके योग्य नहीं उसको मुनिजन दासी कहते हैं, यह बात माधवीयमें शातातपने कही है ॥

यत्तु शुद्धिरत्नाकरः शूलपाणिश्च–"अपुत्रस्य च या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान् दशैकं वा एकाहेनैव निक्षिपेत्" इति जावालोक्तेः ॥ "भर्तुर्धनहरा पत्नी तां विना दुहिता स्मृता । अङ्गादङ्गात्संभवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम्" इति बृहस्पतिना दुहितुर्धनहारित्वोक्तेश्च 'पुत्राभावे कन्या तदभावे सपत्नीपुत्रः' इत्याहतुः । तत्पूर्व-

विरोधात् । 'मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्यऋतेन्वये' इति दुहितुर्मातृधनग्राहित्वेन पुत्रस्यं तच्छ्राद्धानधिकारापत्तेश्चोपेक्ष्यम् । वचनं तु भ्रातृपुत्राद्यभावविषयम् ॥ पत्न्यभावे अविभक्तस्य सोदरः । पूर्वोक्तशङ्खवचनात् ।

जो शुद्धिरत्नाकर और शूलपाणिने यह कहाहै कि, पुत्ररहितकी जो पुत्री है वह भी पिण्डदेनेवाली है वह पिताके दश पिंड एक दिनही देदे इस जाबालिके वाक्यसे पतिके धन लेनेवाली पत्नी, और पत्नीके न होनेमें पुत्री कही है, कारण कि, मनुष्योंके अंग २ से पुत्रके समान पुत्री भी होती है इस वाक्यसे बृहस्पतिने पुत्रीको धन लेनेवाली कहा है, इससे पुत्रके अभावमें कन्या और कन्या न होनेमें सपत्नीका पुत्र अधिकारी है, यह शुद्धि रत्नाकर और शूलपाणिका कथन इस कारण त्यागने योग्य है कि, एक तो इसमें पूर्वोक्त वचनोंका विरोध आता है और एक ऋणसे शेष माताके धनको पुत्री और उनके अभावमें वंशके मनुष्य लें इस वचनसे पुत्रीको माताके धनका अधिकार होनेसे पुत्रको भी उसके श्राद्धका अधिकार न रहैगा, हाँ वचन तो उस विषयमें चरितार्थ होजायगा और जहां भ्राताके पुत्र नहो, पत्नी न होय तो वह सहोदर भाई करे, जिसका विभाग नहीं हुआ हो कारण कि, पहिले शंखने यही कथन किया है ॥

विभक्तस्य तु दुहिता धनहारित्वात् । पूर्वोक्तजाबालिवचनाच्च । तत्राप्यूढानूढसमवाये ऊढैव । "दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता ॥ आशौचमुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं सदा तयोः" इति भरद्वाजोक्तेः ॥ तदभावे दौहित्रः धनहारित्वात् । "मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् । कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्" इति चन्द्रिकायां वृद्धमनूक्तेः ॥ "यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोपि तथार्हति " इत्यपरार्के भविष्योक्तेश्च ॥ एतद्धनहारिण आवश्यकं नान्यस्येत्याह ॥

और जो विभाग होगया होय तो पुत्री धनको ले, इसमें पूर्वोक्त जाबालिका वाक्यहै, पुत्रियोंमें भी विवाही और बिना विवाहियोंके बीचमें विवाही धनको ले कारण कि, भारद्वाजका यह वचन है कि, विवाही हुई पुत्री माता पिताका अशौच जल, पिण्डदान पुत्रके तुल्य करै, पुत्री न होय तो दौहित्रको धनका भागी होनेसे अधिकार है, कारण कि, चन्द्रिकामें वृद्ध मनुका वाक्यहै कि, माता पिता गुरु आचार्य नाना इनके और्ध्वदैहिकको व्रतवालाभी दौहित्र सम्पादान करै तो व्रतसे भ्रष्ट नहीं होसकता, और अपरार्कमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, व्रतमें स्थित जैसे पुत्र पिताकी क्रिया करै, हे राजन् ! हे महाबाहो ! वैसेही दौहित्रभी जलदानआदि क्रिया करनेयोग्यहै यहभी उसकोही आवश्यकहै जो धनका अधिकारीहै और नहीं ॥

तत्रैव स्कन्दः–"श्राद्धं मातामहानां तु अवश्यं धनहारिणा । दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम्" इति ॥ तेन दौहित्रोत्र पुत्रीकृत इति देवयाज्ञिकोक्तिः परास्ता ॥ अत्र पत्नीदौहित्रसमवायेंशपरत्वात् पत्न्येव कुर्यात् । दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्त्वे विभक्तस्य दौहित्रः, अविभागे भ्रातृपुत्रः । भ्रातृतत्पुत्रसत्त्वे कनिष्ठश्चेत् भ्रातैव । ज्येष्ठश्चेत्तत्तत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रन्थाः ॥

वहांही स्कन्दपुराणके वचनसे यह कहाहै कि, धन लेनेवाला दौहित्र नानाके श्राद्धको अवश्य करै, उससेही उसकी निष्कृति प्रायश्चित्तहै, तभी वह धनका अधिकारीहै, तिससे वही दौहित्र यहां लेना जो

पुत्रको तुल्य करलियाहो, यह देव याज्ञिककी उक्ति खण्डन हुई, यदि यहां पत्नी और दौहित्र दोनों होयँ तो धनकी मालकनी होनेसे पत्नीही करै, दौहित्र भाईका पुत्र दोनों होयँ तो विभाग कियेका दौहित्र और विभाग न हुआ होय तो भ्राताका पुत्र करै, भाई और भाईके पुत्र छोटे होयँ तो भाई करै और जेठा होय तो भाईका पुत्र करै यह दक्षिणियोंके ग्रन्थोंमें कहाहै ॥

हारलतादौ तु "भ्रातुर्भ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते । तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः" इति ब्राह्मोक्तेः । 'पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः' इति कौर्माच्च ज्येष्ठभ्रातैव कुर्यान्न तत्पुत्रः ॥ यत्तु–'नानुजस्य तथाग्रजः' इति । तत् कनिष्ठभ्रातृसत्त्वविषयम् ॥ यच्च मनुः–"सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्" इति ॥ तत्सहोदराभावविषयमित्युक्तम् । एतेन पुत्रत्वातिदेशोयम् । अतस्तस्मिन् सति एकादश पुत्राः प्रतिनिधयो न कार्याः । स एव पिण्डदोंशहरश्चेति अत्रापि वाचस्पतिमनुटीकाकल्पतरुरत्नाकरादयः परास्ताः ॥ 'द्वादशपुत्राभावे पत्नीदुहितरः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ तस्माद्दत्तकपुत्रप्रशंसेयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ अविभक्तविषयं वा ॥

हारलतादिकमें यह लिखाहै कि, भाईही करै, भाईका पुत्र न करै कारण कि, ब्रह्मपुराण और कूर्मपुराणमें यह लिखाहै कि, भ्राताकी स्त्री न होय तो भ्राता करै और जिसके भ्राता न होय उसका कर्म भ्राताके पुत्र करैं, और पुत्रके अभावमें पत्नी करै और पत्नीके अभावमें सहोदर भाई करै, जो किसीने यह कहाहै कि, छोटे भाईका कर्म ज्येष्ठ न करे यह तबहै जब कोई छोटा भ्राता हो, जो मनुका यह वाक्यहै कि, एकसे उत्पन्नहुए सब भाइयोंमें जो एक पुत्रवालाहो वे सब उससे पुत्रवालेहैं यह मनुने कहाहै यहभी तबहै जब कोई सदोदर भ्राता न हो यह पहिले कहआयेहैं इससे यह सब पुत्रका अतिदेशहै अर्थात् भाईआदिमें पुत्रभाव मानना है, इससे औरसपुत्रके होते ग्यारहप्रकारके पुत्र प्रतिनिधि न करने वही पिंडका दाता और धन लेनेवालाहै इससे वाचसपति मनुकी टीका कल्पतरु रत्नाकरआदि परास्त किये, बारहप्रकारके पुत्रोंके अभावमें पत्नी और पुत्रियोंको इस याज्ञवल्क्यके वचनसे पत्नीकोही अधिकार है तिससे यह दत्तककी स्तुतिहै, यह विज्ञानेश्वर कहतेहैं, अथवा उसके विषयमें है जहां विभाग न हुआहो ॥

मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे–"पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसन्निधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः ॥ भ्रात्रोः सहोदरो भ्राता कुर्याद्दाहादि तत्सुतः । ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावे च तत्सुतः ॥ २ ॥" इति भ्रातृपुत्राभावे क्रमेण पितृस्नुषास्वसृतत्पुत्रादयः ॥ धनहारित्वात् ॥ भगिनीतत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः– "अनुजा अग्रजा वापि भ्रातुः कुर्वीत संस्क्रियाम् । ततः स्वसोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ॥" अपरार्के कार्ष्णाजिनिः–"पुत्रः शिष्योऽथवा पत्नी पिता भ्राता स्नुषा गुरुः । स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥"

मदनरत्न और स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, पिताके श्राद्धको पुत्र करै, यदि पुत्र निकट न होय तौ स्त्री करै, स्त्री न होय तो धनको लेनेवाला दौहित्र करै, दौहित्र न होय तो भ्राता करै और भ्राता न होय तो भाईके पुत्र करैं, सहोदर भाईका संस्कार दाहक्रिया आदि भ्राता वा भ्राताके पुत्र करैं वे न होयँ तो असहोदरभाई, वे भी न होयँ तो भ्राताके पुत्र करैं, इस वचनसे भ्रातृपुत्रोंके अभावमें

क्रमसे पिता माता भगिनी भगिनीके पुत्र धनके भागी होनेसे उनकी क्रिया कर्म करैं, भगिनी और भगिनीके पुत्रोंमें विशेष मदनरत्नमें कात्यायनने कहा है कि, छोटी वा बडी भगिनी भाईकी क्रिया करै, उसके अनन्तर असहोदर भगिनी करै, इसी प्रकार क्रमसे उनके पुत्र करैं अपरार्कमें कार्ष्णाजिनिका वाक्य है कि, पुत्र शिष्य पत्नी पिता भ्राता स्त्री पालने और धनका लेनेवाला पिंड और जलदान क्रिया करै ॥

मार्कण्डेयपुराणे–"पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेपि शिष्यश्च कुर्वीरन्नौर्ध्वदैहिकम् ॥" तेन धनहारी एतद्भिन्न इति कालादर्शः ॥ अत्र पाठक्रमो न विवक्षितः ॥ पूर्ववाक्येष्वथ ततः शब्दादिभिः श्रौतक्रमोक्तेः ॥ 'अथ जिह्वया अथ वक्षसः' इतिवत् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः–"स्नुषा स्वस्रीयतत्पुत्रज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः । पुत्राभावे तु कुर्वीरन्सपिण्डान्तं यथाविधि ॥" मार्कण्डेयपुराणे–"पुत्राद्युत्सन्नबन्धोश्च सखापि श्वशुरस्य च । जामाता स्नेहवत्कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥" चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः–"मातुलो भागिनेयश्च स्वस्रीयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ॥ एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । श्राद्धमेषां तु कर्त्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥ २ ॥"

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, पुत्र भ्राता भ्राताका पुत्र पत्नी भ्राता पिता और शिष्य धनके अभावमें भी और्ध्वदैहिक कर्म करैं, कालादर्श यह कहते हैं कि, धन लेनेवाला इनसे भिन्न लेना, इन श्लोकोंमें पाठका क्रम हमें विवक्षित नहीं कारण कि, पूर्ववाक्यमें अथ और ततः शब्द आदिसे श्रौत (श्रवण) क्रमही कहा है जैसे अथ जिह्वाका और अथ वक्षःस्थलका न्यास करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धमनु कहते हैं कि, वधू भगिनी भगिनीके पुत्र ज्ञाति सम्बन्धी बान्धव ये सब पुत्रके अभावमें सपिंडीतक कर्मको यथाविधि करैं । मार्कण्डेयपुराणका वाक्य है कि, जिसके पुत्रआदि बन्धु नष्ट होगयेहों उसका मित्र और श्वशुरका जामाता स्नेहसे मृतककर्म करै । चन्द्रिकामें वृद्ध शातातपका कथन है कि, भानजेका मामा और मामाका भानजा कर्म करै, तथा श्वशुर गुरु मित्र नाना पत्नियोंका भगिनी माता और पिता इनका श्राद्ध करना यह वेदके ज्ञाता जानते हैं ॥

शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे–"दत्तानां चाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता । चतुर्थेहनि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः" ॥ दत्ता–वाग्दत्ताः ॥ मातामहानां दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि चापरे । तेपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीयेहनि सर्वदा ॥ जामातुः श्वशुराश्चक्रुस्तेषां तेपि च संयुताः । मित्राणां तदपत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तथा ॥ भागिनेयसुतानां च सर्वेषां त्वपरेहनि । राजा सति सपिण्डे तु निरपत्ये पुरोहितः ॥ मन्त्री वा तदशौचं तु पुरा चीर्त्वा करोति सः ॥ ५ ॥" अत्र द्वितीयाहादौ श्राद्धविधानमस्थिसंचयपरम् ॥

शुद्धिविवेक और पृथ्वीचंद्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, वाग्दत्ता और अदत्ता कन्याओंका कर्म पिता करै, और वे कन्या चौथे दिन सावधानीसे पिताआदिका कर्म करैं, नानाका कर्म दौहित्र प्रथम दिन करै; और नाना भी दौहित्रके कर्मको दूसरे दिन करै जामाताके कर्मको श्वशुर और श्वशुरके कर्मको जामाता करै, मित्र मित्रकी सन्तान वेदपाठी गुरु भानजा भानजेके पुत्र इन सबका कर्म प्रथम दिन करै, यदि राजाका सपिंड और सन्तान न होय तो पुरोहित वा मंत्री राजाके अशौच बीतनेपर कर्मको करैं, यहां दूसरा दिन, अस्थिसञ्चयसे लेना ॥

कालादर्शे–"दाहादि मन्त्रवत्पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः । तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः ॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च । पिता माता स्नुषा चैव स्वसा

तत्पुत्र एव च ॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः । स्त्री च शिष्यर्त्विगाचार्या जामाता च सखापि वा ॥ उत्सन्नबन्धो रिक्थेन कारयेदवनीपतिः ॥ ३ ॥" गौतमः–'पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युः । तदभावे ऋत्विगाचार्यौ॥'

कालादर्शमें कथन किया है कि, पिता माताके दाहक्रिया आदि कर्मको औरस पुत्र मंत्रसे करै, वह न होय तो पौत्र प्रपौत्र पुत्रीपुत्र दौहित्र धनका ग्राहक भ्राता भ्राताके पुत्र पिता माता वधू भगिनी भगिनीके पुत्र सपिंड सोदक और माताके सपिंड सोदक स्त्री शिष्य ऋत्विक् आचार्य जामाता और मित्र क्रमसे कर्मको सम्पादन करैं जिसके कोई बन्धु न होय उसके क्रिया कर्मको उसकेही धनसे राजा करवादे, गौतमका वाक्य है कि, पुत्रके अभावमें सपिंड माताके सपिण्ड शिष्य कर्म करैं, और वे न होवैं तो ऋत्विक् और आचार्य करै ॥

यत्तु चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः–'प्रीत्या श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्' इति तत्सवर्णविषयम् ॥ "ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म किंचन । कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्" इति ब्राह्मोक्तेः॥"न ब्राह्मणेन कर्त्तव्यं शूद्रस्याप्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात्क्वचित्" इति पारस्करोक्तेश्च ॥ पारशव ऊढशूद्रापुत्रः ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ सर्वत्र पुत्रादेः सर्वस्याभावे पत्न्यादेरधिकार उक्तः तत्राभावोऽसन्निधिर्नाशश्चोच्यते ॥ अत एव पूर्वत्र 'असन्निधाने पूर्वेषाम्' इत्युक्तम् । तत्रासन्निधौ पत्न्यादेः सर्वाधिकारे प्राप्ते–"प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ॥ एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः ॥ ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्" इत्याद्यैर्देशान्तरेऽपवादात्पुत्रनाशे एव पत्न्यादेः सपिण्डनादावधिकारः ॥ असन्निधौ तु तत्पूर्वमेव नोर्ध्वम् ॥

और जो चन्द्रिकामें वृद्धशातातपने कहा है कि, सम्पूर्ण वर्ण और आश्रमोंका प्रीतिसे श्राद्ध करना वह सवर्णके विषयमें है, कारण कि, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, ब्राह्मण अन्य वर्णोंके किंचित् भी कर्म न करै, काम लोभ भय मोहसे करके उसी जातिको प्राप्त होता है, पारस्कर भी कहते हैं कि, ब्राह्मण शूद्रके और्ध्वदैहिकको न करै और पारशवे अर्थात् विवाही शूद्राके पुत्रके विना शूद्रभी ब्राह्मणके कर्मको न करै, यहां यह सिद्धांत है कि, सब जगह पुत्र आदि पहिले २ के अभावमें पत्नी आदिका अधिकार कहा है वहां अभावका अर्थ निकट न होना और मृत्यु दो प्रकारकी लेनी इसीसे पहिलेके असन्निधानमें यह वचन कह आये हैं, तहां पुत्र आदिके पास न होनेमें पत्नी आदिका सर्वत्र अधिकार पाया, तो यदि पिता परदेशमें मराहो तो चिरकालमें भी पुत्र एकादशाह आदि क्रियाओंको करसकता है और वेही कर्मक्रिया तो जो ज्येष्ठने कीहों इत्यादि वचनोंको देशान्तरमें पूर्वोक्त वचनोंके अपवाद होनेसे पुत्रके नाशमेंही पत्नी आदिका सपिंड आदिमें अधिकार है, यदि पुत्र समीप न होय तो सपिण्डीसे पूर्वकर्ममेंही अधिकार है पश्चात् नहीं ॥

अतोऽनधिकारिणा भ्रात्रादिना कृतमप्यकृतमेवेति पुनरावर्तनीयम् । मासिकापकर्षोऽप्यावर्तनीयः ॥ एकदशाहमासिकानि नावर्तन्ते । 'तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं

---

१ तथा च–यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवस्मृतः ॥ अर्थात्–जो ब्राह्मण शूद्रामें कामसे पुत्र उत्पन्न करै वह पारण करता हुआ शव है इससे उसको पारशव कहते हैं ॥

पुनः' इतिवदावृत्तिविधानाभावादिति केचित् ॥ तन्न ॥ अस्य निर्मूलत्वात्। अतस्तदपि कनिष्ठकृतमावर्तते। वृद्धिश्रौतपिण्डपितृयज्ञार्थं तु कृतं नावर्तते। "नासपिण्डयाग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्। न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम्" इति वृद्धयुत्तरनिषेधनादिति ॥ 'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा' इत्यादिहारीतादिवचोभ्यः कनिष्ठादेरप्यधिकारात्। यथात्र ज्येष्ठकर्तृकत्वबाधः, तथा पुत्रकर्तृकत्वस्यापि बाधः। सपिण्डने तु बहु वक्तव्यं तन्निर्णये वक्ष्यामः ॥

इससे अनधिकारी भाई आदिका किया हुआभी न किया हुआ है, इस कारणसे फिर करना चाहिये, यदि मासिक यथार्थ न हुआ होय तो फिर करना चाहिये. एकादशाह और मासिक ये दूसरीबार न करने, सपिण्डी करण दूसरीबार इसके समान करना। इसके समान एकादशाह और मासिककी पुनः विधिका अभावहै यह कोई कहतेहैं, सो यथार्थ नहीं कारण कि, यह वचन निर्मूलहै इससे वेभी कनिष्ठके किए हुए पुनः करने उचितहैं वृद्धि, वेदोक्त पिण्ड, पितृयज्ञके निमित्त किये कर्मकी तो आवृत्ति नहीं होती असपिण्ड और अग्निहोत्री पुत्र मृतक पिताके कर्मको न करै, और न पार्वण और न नांदीमुख श्राद्ध करै, यदि करै तो फल की प्राप्ति नहीं होती, भ्राता वा भाईका पुत्र कर्म करै, इत्यादि हारीत आदिके कई वचनोंसे कनिष्ठ भाईकाभी अधिकार है जैसे यहां ज्येष्ठको श्राद्ध करनेका बाधहै तैसेही पुत्रको भी श्राद्ध करनेका बाध है, सपिण्डीमें तो बहुत कुछ कहनाहै वह सपिंड निर्णयमें कहेंगे ॥

अधिकारविशेषेण क्रियाव्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे–"पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः। त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदाञ्छृणुष्व मे ॥ आदाहाद्द्वादशाहाच्च मध्ये या स्युः क्रिया नृप। ताः पूर्वा मध्यमा मासिमास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥ प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु। क्रियन्ते याः क्रियाः पुत्र प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥ पितृमातृसपिण्डैश्च समानसलिलैस्तथा। तत्संघातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा ॥ पूर्वा मध्याश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः। दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥ मृताहनि तु कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ॥ ६ ॥" दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोरिदम् ॥ एवमन्यस्य धनहर्तुः 'यश्चार्थहरः स पिण्डदायी' इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥ "प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः। वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः ॥ मदनरत्ने स्कादेपि–'मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत्प्रकीर्तितम्' इत्युक्त्वा "ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी परा। आदेहपतनात्तस्य कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम्" इत्युक्तम् ॥

अधिकारियोंके भेदसे क्रियाकी व्यवस्था विष्णुपुराणमें इसप्रकार है कि, पूर्वा मध्यमा उत्तरा ये तीन प्रकारकी क्रियाहैं, उनके भेद मुझसे सुनो हे राजन्! मरनेके दिनसे बारह दिनके बीचमें जो क्रिया होती है वह पूर्वा कहाती है, और मास २ में जो एकोदिष्ट किया जाताहै वह मध्यमा क्रिया कहाती है, सपिंडीकरणके पीछे जब प्रेत पितर होआताहै तब जो क्रिया की जातीहै वह तब उत्तर कहातीहै, इन तीनोंमें पिता माता सपिण्ड सोदक इनके समूहमें जो हों उन्हें वा राजा और धनके भागीको पूर्वा और मध्यमा क्रिया करनी, हे नरोत्तम! उत्तरक्रिया पुत्र वा दौहित्र वा इनके पुत्रोंको करनी चाहिये, और स्त्रियोंकी भी उत्तरा क्रिया मरनेके दिन करनी यह भी दौहित्र और उसके पुत्र उनकोही अधिकारहै जिनको धन मिलाहो, इसीप्रकार

और भी उसकोही अधिकारहै, जिसको धन मिलाहो कारण कि, आपस्तम्बने यह कहाहै कि, जो धनका भागी है वही पिण्डका दाता होताहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्याघ्रपादने भी यही कहाहै कि, प्रेतके प्रेतकर्म किये विना जो धन लेताहै वह सावधानीसे उस व्रतको करै, जो वर्णोंके वधमें कथन किया है. मदनरत्नमें स्कन्द पुराणके वचनसे भी कथन कियाहै कि, जिसको द्रव्य कहते हैं, यह मनुष्योंका मल है, यह कहकर कहाहै कि, ऋषियोंने उसका पवित्र और श्रेष्ठ यह प्रायश्चित्त कहाहै कि, मरनेसे लेकर उसकी पिण्डदान क्रिया करदे ॥

क्रियानिबन्धे कात्यायनः-"न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् । नाग्रजश्च तथा भ्राता भ्रातॄणां तु कनीयसाम् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः-"पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथंचन । भ्रात्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातॄणां च कनीयसाम् ॥ यदि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिण्डीकरणं विना । गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् ॥२॥" अन्याभावे पित्रादिरपि कुर्यात् ॥ " उत्सन्नबान्धवं प्रेतं पिता भ्राताथवाग्रजः । जननी चापि संस्कुर्यान्महदेनोन्यथा भवेत्" इति सुमन्तूक्तेः ॥

क्रियानिबन्धमें कात्यायनका वाक्यहै कि, पुत्रका मृतक कर्म माता, पिता और कनिष्ठभ्राताका कर्म बडा भाई न करै. पृथ्वीचन्द्रोदयमें बौधायनका कथनहै कि, पुत्रके श्राद्धको पिता और कनिष्ठ भ्राताके श्राद्धको भाई न करै, यदि स्नेहसे करै, तो सपिण्डीकरणके विना करै, गयामें तौ बडा भाई विशेषतासे करै, यदि अन्य कोई न होय तो पिता आदि भी श्राद्ध करै, कारण कि, सुमन्तुने यह कहा है कि, जिस प्रेतका कोई बान्धव न होय उसका संस्कार पिता भ्राता बडा भाई माता करै, नहीं तो महापाप होताहै ॥

ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्दोदये च ब्राह्मे-"असमाप्तव्रतस्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः । श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः ॥" श्राद्धं मासिकाब्दिकादि सर्वं कार्यमित्यर्थः ॥ न त्विति निषेधोऽन्यसत्त्वे ॥ यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे-"न त्यजेत्सूतकं कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित् । न दीक्षणात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥२॥"

ब्रह्मचारियोंके लिये तो शुद्धिविवेक और पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका यह कथनहै कि, जिसका व्रत समाप्त न हुआ हो, उस ब्रह्मचारीके वार्षिक मासिक श्राद्धको पिता आदि करै, और माता पिताके श्राद्धको ब्रह्मचारी न करै, यदि दूसरा करनेवाला हो जो छन्दोग परिशिष्टमें लिखाहै कि, सूतक अर्थात् सन्तति जन्ममें ब्रह्मचारी अपने कर्मको कभी भी न त्यागे, और यज्ञकी दीक्षा लिये उपरान्त, कृच्छ्रआदि तपको आरंभ करनेपर पिताके मृत्यु होनेपर भी ब्रह्मचारीको कभी दोष नहीं होता, कर्मके समाप्त होनेपर केवल तीन दिन अशौच रहताहै ॥

यच्च याज्ञवल्क्यः-'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा' इति । तदप्यन्यसत्त्वे ॥ अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणापि कार्यं पूर्वोक्तवृद्धमनुवचनात् ॥ "आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती । संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत्" इति तेनैवोक्तेः ॥ 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः इति वसिष्ठोक्तेः ॥ अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः ॥ प्रागुपनयनान्मृतस्य तु पञ्चवर्षोत्तरसपिण्डीकरणवर्ज्यं षोडशश्राद्धादि

सर्वं कार्यमित्युक्तं देवजानीये ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतोवचनाच्च ॥ एतच्चाग्रे वक्ष्यामः ॥

जो याज्ञवल्क्यने कथन कियाहै कि, ब्रह्मचारी किसीको जलदान न दे, और दे तो पतित होताहै; यह भी तभीहै जब कोई दूसरा करनेवाला हो, यदि दूसरा कोई न हो तो ब्रह्मचारी भी पहले कहे हुएके अनुसार वृद्ध मनुके वचनसे करै, कारण कि, वृद्ध मनुनेही यह कहा है कि, आचार्य, पिता, गुरु इनका दाह करके भी ब्रह्मचारी व्रतसे पतित नहीं होता परन्तु सूतकके अन्नको भोजन न करै, और न उनके संग शयन करै, और वसिष्ठनेभी यह कथन कियाहै कि, माता पितासे भिन्न मृतक कार्य करनेवाले ब्रह्मचारीका व्रत खंडित होजाताहै, इसमें एक दिनका आशौच कहेंगे, यज्ञोपवीतसे पहिले और पांच वर्षके उपरान्त मृत्युहुएके श्राद्ध आदि सब करने चाहिये यह देवजानीयमें कथन कियाहै कि, जिनका संस्कार न हुआहो उनका पिंड भूमिमें देना और संस्कृतोंका पिंड कुशाओंपर देना, इस प्रचेताकेभी वचनसे यह आगे कहेंगे ॥

अविभक्तानां विशेषमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः–"बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥" ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः ॥ तेन ये ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनादयः फलसंस्काराः, ते सर्वेषां भवन्तीति सिद्धम् ॥ संसृष्टिनामप्येवम् ॥ तुल्यत्वात् ॥ विभक्तानां विशेषमाहोशनाः–"नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥"

जिनका विभाग नहीं हुआहै उनको विशेषकर पृथ्वीचन्द्रोदयमें मरीचिने कहाहै कि, यदि पिताके बहुत पुत्रहों और वे एकत्र रहतेहों उनमें सबकी सम्मतिसे जो बडेने इकट्ठे द्रव्यसे कार्य कियाहो वह मानो सबनेही किया, बडेके करनेसे सब फलभागीहैं, तिससे ब्रह्मचर्य परान्नका त्याग आदि जो संस्कारहैं वे सबके होतेहैं यह सिद्ध हुआ, समानतासे कियोंकाभी ऐसेही है. विभक्तोंका विशेष शुक्रने कहाहै कि, नवश्राद्ध सपिंडी और षोडश श्राद्ध विभक्त धनवालोंमेंभी एकही करै ॥

लघुहारीतः–"सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक् ॥" मदनरत्ने– "विभक्तास्तु पृथक्कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥" एतेनाब्दिकादिष्वविभक्तानामनियम इति वदन् शूलपाणिः परास्तः ॥ दत्तकस्तु जनकस्य पुत्राद्यभावे दद्यान्न तत्सत्त्वे ॥ "गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः । गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा" इति मनूक्तेः ॥ इदं जनकस्य पुत्रसत्त्वविषयम् ॥

लघु हारीतने ये कहाहै कि, सपिंडीतक जो सोलह श्राद्ध हैं यदि भाई जुदे २ ही हों तो उनको अलग २ न करैं, और सपिंडीसे पीछे अलग २ ही सब करैं. मदनरत्नमें कथनहै कि, प्रतिवर्षके एकोद्दिष्टआदि श्राद्धको जुदेहुए अलग २ करैं और साझेमें जो एकने किया वह मानो सबने किया इससे

यह शूलपाणि इसके कथनसे परास्त हुआ कि, वार्षिकआदि श्राद्धमें अविभक्तोंका नियम नहींहै, दत्तक तो उत्पन्नकर्ता पिताके कोई पुत्र न होय तो दे, होय तो न दे कारण कि, मनुने यह कहाहै कि, दत्तकपुत्र उत्पन्न करनेवालेके गोत्र और धनको प्राप्त नहीं होता, गोत्र और धनके पीछे चलनेवालेके पिंड और स्वधा ये दोनों देनेवालेके नष्ट होजातेहैं यह बात तब है जब उत्पादक पिताके कोई पुत्र हों ॥

एतच्च प्रवरमञ्जर्यां कात्यायनलौगाक्षिभ्यां स्पष्टमुक्तम्–'अथ ये दत्तकक्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्राः परपरिग्रहेणानार्षेया जातास्ते द्व्यामुष्यायणा भवन्ति ॥ यथा शौङ्गशैशिरीणां यानि चान्यान्येवं समुत्पत्तीनि कुलानि भवन्ति' इत्यादिना द्वयोः पित्रोः प्रवरानुक्त्वोक्तम् । 'अथ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्याद्रिक्थं हरेयुः पिण्डं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युर्यद्युभयोर्न स्यादुभाभ्यामेव दद्युरेकस्मिन् श्राद्धे पृथगुद्दिश्यैकपिण्डे द्वावनुकीर्तयेत्परिग्रहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीयात् पुरुषात्' इति ॥

यह बात प्रवरमञ्जरीमें कात्यायन और लौगाक्षिने स्पष्ट कथन की है कि, इसके अनन्तर जो दत्तक क्रीत कृत्रिम पुत्रिका पुत्र हैं ये अन्यके स्वीकारसे अनार्षेय द्वामुष्यायण अर्थात् गोत्ररहित होगये हैं, वे द्व्यामुष्यायण होतेहैं, जैसे शौंग और शैशिरीयोंके अन्यभी उत्पत्तिसे वंश होजातेहैं इत्यादिसे दोनों पिताओंके प्रवरोंको कहकर कहा है कि, जो इनके अपनी स्त्रियोंमें सन्तान न होय तो धनको ले और तीन पुरुषतक पिंडदे यदि दोनों पिताओंके न होनेसे दोनोंको दे एक श्राद्ध और एकही पिण्डमें भिन्न २ दोनोंके नामका उच्चारण करै, लेने और देनेवाले दोनोंका नाम तीन पीढीतकले ॥

हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः–"यावन्तः पितृवर्ग्याः स्युस्तावद्भिर्दत्तकादयः । प्रेतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह ॥ द्वाभ्यां सहाथ तत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्समम् । चतुर्थपुरुषे छन्दस्तस्मादेषा त्रिपूरुषी ॥ साधारणेषु कालेषु विशेषो नास्ति वर्गिणाम् ॥ मृताहे त्वेकमुद्दिश्य कुर्युः श्राद्धं यथाविधि" इति ॥

हेमाद्रिमें कार्ष्णाजिनिका वाक्यहै कि, जितने पिताके वर्गमें हों, दत्तक आदि पुत्र उतनोंके संग मृतकका अपने पितरोंके संग मिलावें, और दत्तकोंके पुत्र दोके संग और पौत्र एकके संग मिलावें, चौथे पुरुषमें अपनी इच्छा है तिससे यह त्रिपुरुषीहै साधारण कालोंमें वर्गियोंका कोई विशेष नहीं ॥

अस्यार्थमाह हेमाद्रिः–दत्तकादयः जनकपालकयोः कुले प्रेतानां स्ववर्गीयैः सपिण्डनं कुर्युः । दत्तकानां पुत्रास्तु पितुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां स्वपितामहाभ्यां सपिण्डनं कुर्युः ॥ तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन पितामहेन तज्जनकेन च सपिण्डयेयुः । चतुर्थोपि तत्कुलस्थ एव । तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामहस्य पालककुलस्थं चतुर्थं योजयेन्न वा ॥ छन्द इच्छा दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पित्रोः पितामहयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयम् । तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिण्डदानं द्वयोरुद्देशेनैको वेति । अत्र केचित्–'आवयोरयमिति परिभाष्य यो दत्तस्तस्येदं द्वयोः पित्रोः श्राद्धम् । यस्त्वपरिभाष्य दत्तः स ग्रहीतुरेव । स पालकायैव दद्यादित्याहुः ॥ अत्र मूलं त एव प्रष्टव्याः ॥

हेमाद्रिने इसका अर्थ यह कहाहै कि, दत्तक आदि जनक और पालक दोनोंके कुलमें मृत्यु हुओंको अपने वर्गमें जो हों उनके संग सपिंडन करैं, दत्तकोंके बेटे तो दत्तक पिताके पिता जो जनक पालक

अपने पितामहोंके संग सपिंडन करैं और उनके पौत्र अपने पिताको दत्तक पितामहके और उसके उत्पादकके संग सपिंडन करैं, चतुर्थभी उसी वंशका लेना, उनका प्रपौत्र तो दत्तक प्रपितामहको पालक कुलके चौथेके संग मिलावे वा न मिलावे, अमावस्या महालय आदिमें तो दोनों पिता और दोनों पितामह और प्रपितामहोंका श्राद्ध करै उनमें दो पिता आदिको पृथक् २ पिण्डदान वा दोनोंके नामसे एक पिण्डदान करै यह किन्हींका वचन है यह दो पितरोंका श्राद्ध वह दत्तक करै, जो यह प्रतिज्ञा करके दिया हो कि, यह दोनोंका पुत्र रहा, और जो इस प्रतिज्ञासे न गया वह लेनेवालेकोही दे, इसमें प्रमाण उनकोही पूछना अर्थात् नहीं ॥

वस्तुतस्तु–जनकस्य पुत्रपत्न्याद्यभावे द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायैव प्रागुक्तकात्यायनवचनात् । मानवीयमप्येतद्वितयमेव । गोत्रं तु श्राद्धे पालकस्यैव । विवाहादौ तूभयोरित्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयम् । यस्तु मूल्यक्रीतायां परभार्यायां दास्यां चोत्पन्नः स बीजिन एव दद्यात् । मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षेत्रिण एव ॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये कौर्मे–"अनियोगात्सुतो यस्तु शुल्कतो जायते त्विह । प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोन्यथा" इति ॥ क्षेत्रजादेर्विशेषस्तु कलौ तदभावान्नोच्यत इति दिक् ॥

सिद्धान्त तो यह है कि, जनकके कोई पुत्र पत्नी आदि न होय तो दत्तक दोनोंको दे न करनेसे पालक कोही पूर्वोक्त कात्यायनके वचनसे दे, मनुके वचनकाभी यही तात्पर्य है गोत्र तो श्राद्धमें पालककेही होतेहैं और विवाह आदिमें दोनोंका, इत्यादि मेरे किये प्रवरदर्पणमें जानना जो पुत्र मोल ली परकी भार्या वा दासीमें उत्पन्न हुआ है वह उसको दे जिसका बीज हो, जो मोलके विना स्वयं उसका पुत्र बीजवालेको दे यही पृथ्वीचन्द्रोदयमें कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, जो विना मोलसे पुत्र उत्पन्न होय वह बीजदाताको पिण्डदे और नियोगसे उत्पन्न स्त्रीवालेको प्रदान करै, क्षेत्रज आदि पुत्रोंका विशेष इस कारण नहीं कहते कि, कलियुगमें वे नहीं होते यह दिग्दर्शनमात्र कथन कियाहै ॥

जारजानां विशेषमाहापरार्के नारदः–"जायंते त्वनियुक्तायामेकेन वहुभिस्तथा । अरिक्थभाजस्ते सर्वे बीजिनामेव ते सुताः ॥ दद्युस्ते बीजिने पिण्डं माता चेच्छुल्कतो हृता। अशुल्कोपहृतायां तु पिण्डदा वोढुरेव ते ॥ २ ॥" धर्मार्थे श्राद्धकरणे फलमाह चन्द्रिकायां शातातपः–"प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् । एवं कुर्वन्नरः सम्यङ्महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ "

जारसे उत्पन्न हुओंका विशेष अपरार्कमें नारदजीने कथन किया है कि, विना नियोग एकसे व बहुतोंसे जो पुत्र उत्पन्न हों वे सब द्रव्यके भागी नहीं होते, और बीजवालेके होतेहैं, यदि माता मोलली होय तो बीजवालेको, और मोल न ली होय तो विवाहनेवालेको पिण्डदे, धर्मके निमित्त श्राद्ध करनेका फल चन्द्रिकामें शातातपने लिखाहै कि, सम्पूर्ण वर्ण और आश्रमवालेका प्रेमसे श्राद्ध करना, इस प्रकार प्रेमसे श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अधिक लक्ष्मीको प्राप्त होताहै ॥

गयायामपि तत्रैव ब्रह्मवैवर्ते–"आत्मजो वाथवान्योपि गयाशीर्षे यदा तदा । यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥" एतच्च यदा फलभूमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते तदा प्रेतशिलाश्राद्धवर्ज्यं कुर्यात्, तस्य प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात् तस्य च जातत्वादिति केचित् । वस्तुतस्तु–संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वं कार्यम् । साङ्गाधिकारादिति युक्तं प्रतीमः ॥ संन्य

स्तपित्रादिस्तु पितुः पित्रादिभ्यः सर्वश्राद्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक् ॥ वक्ष्यते च जीवत्पितृकश्राद्धे ॥

गयामेंभी वहांही ब्रह्मवैवर्तपुराणका वचनहै कि, पुत्र अथवा और कोई गयामें जब कभी जिस किसी नामसे पिंड देता है वह उसे सनातन ब्रह्मको पहुँचाताहै, और यहभी तबहै जब अधिक फलकी इच्छासे दो वा तीन बार गया करै, और तब भी प्रेतशिलाके श्राद्धको छोडकर सम्पूर्ण गया करै, कारण कि, वह श्राद्ध प्रेतकी मुक्तिके निमित्त है कारण कि, वह एक वार हो चुका यह कोई कहते हैं, यथार्थमें तो हमें यह युक्त विदित होता है कि, अङ्गोसहित गया श्राद्धके अधिकारसे संन्यासीके श्राद्धके समान दूसरी गयामें भी सम्पूर्ण कर्म करना चाहिये जिसका पिता संन्यासी हो वह पितामह आदिको सम्पूर्ण श्राद्धोंमें पिंडआदि प्रदान करै यह पहले कह चुके हैं और जीवत्पितृक श्राद्धमें आगे वर्णन करैंगे ॥

अत्र स्त्रीशूद्राणां श्राद्धं मन्त्रवर्ज्यं तूष्णीं भवति । "स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च । प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत्" इति हेमाद्रौ मरीचिवचनात्सिद्धम् ॥ "अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्रणां मन्त्रवर्जितः ॥ अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते" इति ब्राह्मोक्तेश्च ॥ गृह्यते संबद्ध्यते । अस्य श्राद्धप्रकरणे पाठेपि परिभाषात्वान्न प्रकरणेन संकोचो युक्तः ॥ तेन शूद्रस्य स्नानदानादावपि विप्रेण मन्त्रपाठः कार्यः । अमन्त्रश्चेति विशेषणात् स्त्रिया अपीति शूलपाणिः ॥

यहां स्त्री और शूद्रका श्राद्ध मंत्रोंविना मौनपूर्वक होता है कारण कि, हेमाद्रिमें मरीचिका कथन है कि, स्त्री और शूद्र मंत्रके विना श्राद्ध करैं, और यज्ञोपवीतसे पहिले द्विज भी तैसे ही करै ब्रह्मपुराणका भी वाक्य है कि, यही विधि मंत्रोंके विना शूद्रोंकी कही है, जो शूद्र अमंत्र है उसके मंत्रको ब्राह्मण पढे, यह वचन श्राद्धप्रकरणमें भी पढा है, तो भी परिभाषा होनेसे प्रकरणसे इसका संकोच करना उचित नहीं अर्थात् श्राद्धमें हीन समझना किन्तु शूद्रके स्नान दान आदिमें भी ब्राह्मण ही मंत्र पढे, 'अमंत्रस्य' इस विशेषणसे स्त्रीके स्नानदान आदिमें भी ब्राह्मण ही मंत्र पढे यह शूलपाणिका मत है ॥

यत्तु तेनोक्तं मन्त्रजन्यानियमादिष्टासिद्धिस्तु नमस्कारेण । 'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति गौतमोक्तेरिति । तन्न । दृष्टद्वारैव हि तत्प्राप्तिर्न स्वान्त्र्येण । अन्यथा नखविपूतेष्व्यवघातजन्यादृष्टार्थं सोपि क्रियेतेति किंचिदेतत् ॥ तेन 'पितॄणां नामगोत्रतः' इत्यादौ यत्र द्विजानामपि नाममन्त्र उक्तः तत्र प्रतिप्रसवमात्रार्थं युक्तम् । न तिलावपनादावपि ॥ अत्र केचित् । वैदिकमन्त्रो विप्रस्य, पौराणस्तु शूद्रैः पठनीयः । "न हि वेदेष्वधिकारः क्वचिच्छूद्रस्य विद्यते । पुराणेष्वधिकारो मे दर्शितो ब्राह्मणैरिह" इति तत्रैव पाद्मोक्तेरित्याहुः ॥

और जो शूलपाणिने ही कहा है कि, शूद्रको मंत्रसे उत्पन्न हुए फलकी सिद्धि नमस्कारसे ही होती है गौतमका यह वचन है कि, शूद्रको नमस्कारकी ही आज्ञा है, सो यथार्थ नहीं दृष्टके द्वारा ही शूद्रको फलसिद्धि होती है, मंत्रसे नहीं अन्यथा पवित्र भी यवमें अवघात अर्थात् (खोटने) से उत्पन्न हुए अदृष्ट दृष्ट फलके निमित्त अवघात भी न करना चाहिये, इससे उनका कहना कुछ भी नहीं, तिससे पितरोंका श्राद्ध नामगोत्रसे इत्यादिमें जहां द्विजोंको भी नाममंत्र कहा है वहां प्रतिप्रसव अर्थात् (निषेधके निषेध) के निमित्त

ब्राह्मण द्वारा मंत्र पढने योग्य हैं, और तिलके आवपन अर्थात् बोने आदिमें नहीं जहाँ कोई यह कहते हैं कि, ब्राह्मणके यहां वेदका मंत्र और शूद्रके यहां पुराणका श्लोक पढना क्यों कि, तहांही मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, वेदमें शूद्रका अधिकार कहीं भी नहीं, और पुराणमें अधिकार ब्राह्मणके द्वारा हमने दिखाया है ॥

गौडा अप्येवम् ॥ तन्न । 'नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य तु सन्निधौ' इति कौर्मे पुराणनिषेधेन वेदस्य दूरापास्तत्वात् । "अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च । श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥ श्रौतं स्मार्तं च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्र न श्रोतव्यं कदाचन" ॥ २ ॥ इति तत्रैव पुराणाधिकारे भविष्योक्तेश्च ॥ एतेन 'नाध्येतव्यम्' इति निषेधो मन्त्रेतरपुराणपरः इति श्रीदत्तादिमतमपास्तम् । तेन पौराणमन्त्राणामेव विप्रेण पाठो न वैदिकानामिति सिद्धम् । द्विजस्त्रियस्तु संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमंत्रयुक्तं सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेयुरिति प्रयोगपारिजातः ॥

गौडभी ऐसेही कहते हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि यह शास्त्र शूद्रके समीप नहीं पढना, इस कूर्म पुराणके निषेधसे वेदका अधिकार तो सर्वथा शूद्रको नहीं, और वहांही पुराणके अधिकारमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, यह शास्त्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पढैं, और शूद्र सुने और कदाचित् भी पढै नहीं हे नृप ! इसमें उत्तम श्रुति और स्मृतिके पढने और सुननेमें शूद्रको अधर्म कहा है, तिससे शूद्र ब्राह्मणको आगे किये विना कदाचित् न सुनै, इससे यह श्रीधर आदिका मत निरस्त हुआ कि, न पढे यह निषेध मंत्रसे इतर पुराणके विषयमें है, तिससे यह सिद्ध हुआ कि, ब्राह्मण शूद्रके यहां पुराणके मंत्र पढे वेदके नहीं, द्विजोंकी स्त्री तो संकल्पमात्रको स्वयं करके सम्पूर्ण कर्मोंको वेदके मंत्रोंसे ब्राह्मणद्वारा करवावें, यह प्रयोगपारिजात कहते हैं ॥

अत एव स्त्रीणामित्यकृतविवाहस्त्रीपरमिति हेमाद्रिराह ॥ अनुपनीतस्तु–'वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं स्वयमेव कुर्यात्' इत्युक्तं प्राक् । यत्तु–'प्राक् द्विजाश्च व्रतादेशात्' इति तदशक्तविषयमचूडविषयं वा इति दिक् ॥ शूद्रस्य तु सदामश्राद्धमेव ॥ 'सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्येपि "एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं चः सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवत्सदा" ॥ तत्रैव वृद्धपराशरः–"आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् । कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीन्नाशयेदथ ॥" स एव–'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते' ॥

इसीसे 'स्त्रीणाम्' यह स्त्रियोंको वेदका निषेध उन स्त्रियोंके लिये है जिनका विवाह न हुआ हो, यह हेमाद्रिका मत हे । जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह द्विज वेदके मंत्रोंसे सम्पूर्ण कर्म स्वयं करै यह पहिले कह आये, और जो यज्ञोपवीतसे पहले द्विज भी विना मन्त्र करै यह वचन है सो अशक्तके विषयमें है, वा उसके विषयमें है जिसका मुण्डन न हुआ हो, यह दिग्मात्र वर्णन किया शूद्र तो सदैव आमश्राद्ध करै, कारण कि, सुमन्तुका वाक्य है कि, शूद्रोंको सदैव आमश्राद्ध कहा है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें और मत्स्यपुराणमें भी कहा है कि, इसी प्रकार शूद्र भी सामान्य श्राद्ध करै और वृद्धि श्राद्ध नमस्कार मंत्र और कच्चे अन्नसे सदा करै वहां ही वृद्धपाराशरका वचन है कि, शूद्र आम अन्नसे करै मौन हो ब्राह्मण पूजन करै श्राद्ध और निर्वाप करके सजातियोंको भोजन करावे वह शूद्रका कच्चा अन्नही पकान्न है और पक्व उच्छिष्ट है ॥

हेमाद्रौ भविष्ये–"धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते । अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते ॥ आवाहनादि कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु ॥ देवानां देवनाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः । पिण्डादीन्निर्वपेद्धीर नामतो गोत्रतस्तथा" ॥ २ ॥ शूद्राणां गोत्राभावेपि काश्यपं गोत्रं ज्ञेयम् ॥ 'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इति श्रुतेः ॥ 'गोत्रनाशे तु काश्यपः' इति व्याघ्रपादोक्तेश्चेति हेमाद्रिः ॥ एवमन्यत्र गोत्राज्ञाने तर्पणादिषु च ज्ञेयम् ॥

हेमाद्रिमें भविष्यका वचन है जो धर्मकी इच्छावाले शूद्र करते हैं उनका नमस्कारही अग्नौकरण और मंत्र है, जो शूद्रको आवाहनादि करना चाहिये, सो सुनो, देवताओंका देवताओंके नामसे, पितरोंका नाम गोत्रसे पिण्डोंका निर्वापन करना चाहिये, शूद्राके गोत्र अज्ञानमें कश्यप गोत्र लेना इसीसे कहा है कि, सब प्रजा कश्यपसे उत्पन्न हैं ऐसी श्रुति है, गोत्रनाशमें कश्यप गोत्रकहना यह व्याघ्रपाद और हेमाद्रिका कथन है, इसीप्रकार अन्यत्र गोत्रादिके अज्ञानमें तर्पणादिमें जानना ॥

तत्रैव भविष्ये–"शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुं मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम्" गौतमः–'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति ॥ 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्ययं नमस्कारमन्त्र इति केचित् ॥ विज्ञानेश्वरोप्येवमाह ॥ हेमाद्रिस्तु–'शूद्रोप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः' इति मात्स्ये ॥ मन्त्रनिषेधान्नाममन्त्रेणेत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे–"राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥"

वहां ही भविष्यमें लिखा है कि, शूद्र गृहपाकसे पिण्डोंका निर्वापन न करै पिण्डके लिये सत्तू, मूल, फल वा पायस ही कहा है. गौतमने भी नमस्काररूप मंत्र इनको कहा है देवताओंके निमित्त पितरोंके निमित्त यही नमस्कार मंत्र है कोई ऐसा कहते हैं, विज्ञानेश्वरने भी यही कहा है. हेमाद्रि कहते हैं शूद्रभी मंत्रके विना इस विधिसे करै ऐसा मत्स्यपुराणमें भी मंत्र निषेधसे नाम मंत्रही कहा है पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वचन है जो राजकार्यमें नियुक्त वा बन्धनमें वर्तमान है तथा और विषयोंमें रहनेसे ब्राह्मणसे श्राद्ध करावे ॥

यत्तु भारते राजधर्मेषु–"यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्वराः । शकास्तुषाराः कंकाश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः"॥ इत्युक्त्वा–"ब्रह्मक्षेत्रे प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः । कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः"॥ इति चोक्त्वा "वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते । पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च ॥ दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा" ॥ तथा–"दक्षिणाः सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता । पाकयज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिः" इति म्लेच्छादीनां श्राद्धविधानम् ॥ तदपि सजातीयभोजनद्रव्यदानादिपरम् । न तु श्राद्धपरमिति ॥ इति श्रीनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्राद्धाधिकारनिर्णयः ॥

जो राजधर्ममें भारतमें लिखा है यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पह्लव, आन्ध्र, भद्र, यह कहकर ब्रह्मक्षेत्रमें प्रसूत हुए वैश्य, शूद्र मनुष्य, विषयवासी किस प्रकार धर्म करैंगे,

क्रियाही उनका धर्म है, पितृयज्ञ, कूप, प्रपा, शयन और यथाकालमें ब्राह्मणोंको दान दे और ऐश्वर्यकी इच्छावालोंको सब यज्ञोंकी दक्षिणा देनीचाहिये. पाकयज्ञ महायोग्य यह दस्युओंको सदा करना चाहिये, यह म्लेच्छादिको श्राद्धका विधानहै तो भी सजातीयभोजन द्रव्यदानादिपर है श्राद्धपरत्व नहीं है ॥

इति श्रीनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्राद्धाधिकारनिर्णयः ॥

अथ श्राद्धपितरः ।

हेमाद्रौ मात्स्यदेवलौ—"नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः । अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥ नाममन्त्रास्तदादेशा भवान्तरगतानपि । प्राणिनः प्रीणयन्त्येव तदाहारत्वमागतान् ॥ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेप्यनुगच्छति ॥ गांधर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् । श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेप्युपतिष्ठति ॥ पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् ॥ दनुजत्वे तथा मद्यं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् । मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगकरं भवेत्" ॥ ९ ॥ अत्र पित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेव देवतात्वमुच्यते, न वस्वादीनाम् ॥ 'असावेवत्त इति यजमानस्य पित्रे' इति शतपथश्रुतेः ॥ 'यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय' इति विष्णवादिस्मृतेश्च ॥

अब श्राद्धके पितर कहतेहैं । हेमाद्रिमें मत्स्यपुराण और देवलका वाक्यहै कि, नाम और गोत्र पितरोंको हव्य कव्य पहुंचाताहै अग्निष्वात्तादि पितर उनके अधिपतिहैं, नाम मन्त्र और देश जन्मान्तरमें गयेहुओंको भी भोजन पहुंचाकर तृप्त करता है यदि पिता शुभ कर्मसे देवता हुआ है, उस देनेवालेका अन्न अमृत होकर उसे प्राप्त होताहै, यदि गन्धर्व हो तो भोगरूपसे, पशु हो तो तृणरूपसे, नाग होनेपर श्राद्धका अन्न वायुरूपसे प्राप्त होताहै, यक्ष होनेपर पानरूप, राक्षस हो तो आमिष, दनुज हो तो मद्य, प्रेत होतो रुधिरोदक, मनुष्य हो तो अन्नपानादि अनेक भोग करनेवाला होता है, यहां पित्रादि शब्दसे जनकादिकोंका देवतात्व कहाहै न कि, वसु आदिका, कारण कि,'असावेवत्त' इति 'यजमानस्य पित्रे' ऐसी शतपथकी श्रुतिहै जिसका पिता प्रेत होगया हो वह पिताके निमित्त पिण्ड दे ऐसा विष्णुआदि स्मृतिमें कहाहै ॥

यत्तु मनुदेवलौ—"वसवः पितरो ज्ञेयाः रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः । प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी ॥"यच्च याज्ञवल्क्यः—'वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः' इति ॥ तद्भेदज्ञानार्थम् ॥ यानि तु हेमाद्रौ नन्दिपुराणे—"विष्णुः पितास्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च । ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं च प्रपितामहः" इति ॥ यच्च भविष्ये—"अनिरुद्धः स्वयं ज्ञेयः प्रद्युम्नश्च पिता स्मृतः । संकर्षणस्तज्जनको वासुदेवस्तु तत्पिता ॥" स्वयं—कर्ता ॥ यत्तु तत्रैव—"प्रथमो वरुणो ज्ञेयः प्राजापत्यस्तथापरः । तृतीयोऽग्निः स्मृतः पिण्डो ह्येष पिण्डविधिः स्मृतः ॥" यच्च मनुः—"सोमपानाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः । वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥" यच्चादित्यपुराणे—"मासाश्च पितरो ज्ञेया ऋतवश्च पितामहाः ॥ संवत्सरः प्रजानां च सुष्टेकः प्रपितामहः"॥

और जो मनु और देवल कहतेहैं, पितरोंको वसु पितामहको रुद्र प्रपितामहको आदित्य कहतेहैं, यह सनातनी श्रुतिहै और जो याज्ञवल्क्य कहते हैं वसु रुद्र अदितिके पुत्र पितर श्राद्धदेवता हैं यह अभेद-ज्ञानके निमित्त हैं जो हेमाद्रिमें नंदिपुराणका कथन है कि, इस जगत्का पिता विष्णुहै वही दिव्य यज्ञ है, ब्रह्मा पितामह जानना मैंही प्रपितामह हूं और जो भविष्यमें कहा है अनिरुद्ध स्वयं कर्ता अपनेको जानना। प्रद्युम्नरूप पिता, उसका जनक सङ्कर्षणरूप और प्रपितामह वासुदेवरूप है और वहांही पहला पिंड वरुण दूसरा प्रजापति तीसरा पिंड अग्निरूप है यह विधि है, और मनु कहते हैं ब्राह्मणोंके सोमपा, क्षत्रियोंके हविर्भुज, वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंके सुकालिन् पितर हैं और आदित्यपुराणमें पितर मासरूप, पितामह ऋतुरूप और प्रपितामह सम्वत्सररूप कहे हैं ॥

यच्च नंदिपुराणे–"अग्निष्वात्ता ब्राह्मणानां पितरः परिकीर्तिताः । राज्ञां बर्हिषदो नाम विशां काव्याः प्रकीर्तिताः ॥ सुकालिनस्तु शूद्राणां व्यामा म्लेच्छान्त्यजातिषु ॥" अत्रावाहनादिषु पित्रादयः समुच्चयेन विकल्पेन वा यथाचारं तत्तद्देवतारूपेण वाच्याः इति हेमाद्र्यादयः ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे–"पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् । मातामह्यं न कुरुते पितृहा स प्रजायते ॥" धौम्यः–"पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम् । अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥" अस्यापवादमाह कात्यायानः–कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं तु शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥" कर्षूसमन्वितं सपिण्डीकरणम् ॥ दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम् ॥ "स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधासमम् । पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही ॥" इति तत्रैवोक्तेः ॥

जो कि, नंदिपुराणमें ब्राह्मणोंके अग्निष्वात्ता क्षत्रियोंके बर्हिषद वैश्योंके काव्य शूद्रोंके सुकालिन् म्लेच्छ अन्त्यजादिकोंके व्यामा पितर कहे हैं, यहां आवाहनादिमें पित्र्यादिसमुच्चय विकल्प वा यथाचारसे उस २ देवतारूपसे जानने ऐसा हेमाद्रिआदिमें है, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है जो केवल पिताके निमित्त पार्वण करता है और मातामहका नहीं करता वह पितृहा होता है, धौम्य कहते हैं जहां पितर पूजित होते हैं वहां मातामह भी अवश्य अविशेषसे पूजने, विशेषसे नरक होता है, इसका अपवाद कात्यायनने कहा है कर्षूयुक्त छोडकर आदि षोडश श्राद्ध करै और शेषोंके प्रतिआब्दिक छः पिंड होते हैं यह स्थिति है, दर्शादिमें सपत्नीजनोंका भी देवतात्व है अपने भर्ताके साथ श्राद्धको माता अमृतकी समान भोजन करती है इसीप्रकार स्वभर्ताके साथ पितामही और प्रपितामहीको जानै यह वहीं कहा है ॥

चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते–"क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया । केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक् श्राद्धे महर्षयः ॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥ २ ॥" इति कात्यायनोक्तेश्च । अस्य निर्मूलतां वदन्तो गौडास्त्वज्ञा एव ॥ अत्र भाग इत्यध्याहारः ॥ अन्यथा सपतिकार्ये मात्रे इति प्रयोगापत्तेः । अत्र–'मातृशब्दो जनन्यामेव मुख्यः । तेन सपत्नमातृभ्यो न दद्यात् । एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यन्ते इति तत्सपत्नीभ्यो न देयम्' इति हेमाद्रिः ॥ 'कारुण्यन तु महालयादौ देयम्' इति स एव ॥

चन्द्रिकामें चतुर्विंशतिके मतसे कहा है, क्षयाहको छोडकर स्त्रीकी पृथक् क्रिया नहीं है कोई महर्षि स्त्रियोंके पृथक् श्राद्धकी इच्छा करते हैं अन्वष्टका, वृद्धि, गया और क्षयाह इनमें माताका श्राद्ध पृथक् करै,

अन्यत्र पिताके साथ करै यह कात्यायनका कथन है इसकी निर्मूलता कहतेहुए गौड तो अज्ञ हैं, यहां भागका अध्याहार करना, अन्यथा 'सपत्निकायै मात्रे' इस प्रयोगकी आपत्ति होगी यहां मातृशब्द मुख्य माताकाही बोधक है, इससे सौतेली माताओंको न दे, इसीप्रकार पितामही आदि शब्दोंसे पिताकी जननी आदिही जाननी उनकी सपत्नी जनोंको न देना, ऐसा हेमाद्रिका कथन है दयाकरके महालयादिमें तो देना यह वही कहते हैं ॥

अथ विश्वेदेवाः।

हेमाद्रौ शङ्खबृहस्पती—"इष्टिश्राद्धे क्रतूदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू। नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलोचनौ। पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ॥" तत्रैव—"उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः। अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः॥ १॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये ह्यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥ २॥" इति॥ इष्टिश्राद्धं प्रति रुचिः इत्युक्तम्। इति कल्पतरुः॥ आधानादिकर्माङ्गमित्यन्ये। नैमित्तिकमेकोद्दिष्टम्॥ 'एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते' इति भविष्योक्तेः॥

अब विश्वेदेवा कहते हैं। हेमाद्रिमें शंख बृहस्पतिका कथन है इष्टिश्राद्धमें, क्रतु, दक्ष, सत्य, नांदीमुखमें, वसु नैमित्तिकमें, काम और काल, काम्यमें, धूरिलोचन, पार्वणमें, पुरूरव आर्द्रव विश्वेदेवा कहे हैं, वहीं कहा है जो ब्राह्मण इनकी उत्पत्ति और नाम नहीं जानते उनको यह श्लोक श्रद्धापूर्वक उच्चारण करना चाहिये, महाभाग महाबली विश्वेदेवा आवें जो इस श्राद्धमें विहित हैं वे सावधान हों, इष्टि श्राद्ध प्रतिरुचि जानना ऐसा कल्पतरुमें कहा है। आधानादि कर्मांग हैं ऐसा कोई कहते हैं एकोदिष्ट नैमित्तिक है, कारण कि, भविष्यमें कहा है कि, एकोदिष्ट नैमित्तिक है॥

एतद्यद्यपि 'एकोद्दिष्टं देवहीनम्' इति तत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धे द्वादशमासिके च कामकालौ ज्ञेयौ। "नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्। अतः परं पुराणं वै त्रिविधं श्राद्धमुच्यते॥ यस्मिन्नेव पुराणे वा विश्वेदेवा न लेभिरे। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं वृषलं मन्त्रवर्जितम्॥ २॥" इति बह्वृचपरिशिष्टात्॥ एतच्च बह्वृचानामेव, तेषामेवोक्तेः। अन्येषां तु—'नात्र विश्वेदेवाः' इति कात्यायनोक्तेस्तन्निषेध एवेति पृथ्वीचन्द्रोदयः॥ अन्ये तु नैमित्तिकं सपिण्डीकरणमाहुः। भविष्ये यद्यप्येकोद्दिष्टं तच्छब्देनोक्तं तथापि—'तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान्भोजयेद्द्विजान्' इति तत्रैव विश्वेदेवनिषेधात्। यद्यपि सपिण्डीकरणेंशत एकोद्दिष्टत्वं, तथापि—'सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत्' इति वचनात्तत्परत्वम्॥

यह एकोदिष्ट यद्यपि देवहीन है ऐसा वहां विश्वेदेवाका निषेध है तो भी नवश्राद्ध द्वादशमासिकमें कामकाल जानना, नवश्राद्ध दशाह नवमिश्र षड्ऋतुके जानने इसके परे पुराणोंमें तीन प्रकारके श्राद्ध कहे हैं जिस पुराणमें विश्वेदेवा नहीं लिये हैं वह श्राद्ध आसुर और मन्त्रवर्जित शूद्रश्राद्ध है यह वचन बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है यह बह्वृचोंकाही है ऐसी उनकी उक्ति है, औरोंके तो 'नात्र विश्वेदेवाः' ऐसी कात्यायनकी उक्तिसे निषेधही जानना यह पृथ्वीचन्द्रोदय कहते हैं और तो नैमित्तिक सपिण्डीकरण कहते हैं। भविष्यमें यद्यपि एकोदिष्ट तत् शब्दसे कहा है, 'तो भी वह अदेव करना दोसे भिन्न ब्राह्मणोंको जिमावै'

यह वहीं विश्वेदेवका निषेध है, यद्यपि सपिण्डीकरणके अंशसे एकोद्दिष्टत्व है: तो भी सपिण्डीकरण श्राद्ध दैवपूर्वक नियुक्त करै इस वचनसे परत्व है ॥

हेमाद्रावादित्यपुराणे–"विश्वेदेवो क्रतुर्दक्षः सर्वास्विष्टिषु कीर्तितौ । नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसू सत्यौ च पैतृके ॥ नवान्नलम्भने देवौ कामकालौ सदैव हि । अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव विश्वेदेवौ तु पार्वणे ॥ ३ ॥" क्वचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रौ शातातपः–"नित्यं श्राद्धमदैवं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च । मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक् ॥ योजयेद्देवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः" ॥ २ ॥ नान्दीश्राद्धे भिन्नप्रयोगपक्षे मातुः श्राद्धमदैवमिति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें आदित्यपुराणमें कहा है कि, क्रतु और दक्ष विश्वेदेवा सब श्राद्धमें, नांदीमुख और पितरोंके श्राद्धमें वसु, सत्य और नवान्न श्राद्धमें कालकाम विश्वेदेवा सदा होते हैं और कन्यागत और काम्य श्राद्धमें धूरिलोचन और पार्वणमें पुरूरव और आर्द्रव होते हैं, कहीं विश्वेदेवाओंका अपवाद हेमाद्रिमें शातातपने वर्णन किया है कि, नित्यश्राद्ध और एकोद्दिष्ट श्राद्ध देवसे रहित होते हैं, और मातृश्राद्ध भी अदैव और युग्म अर्थात् (दो) पूर्व मुख ब्राह्मणोंसे भिन्न होता है, और अन्य श्राद्ध यत्नसे देवपूर्वक करने चाहिये, नांदीश्राद्धका भिन्न प्रयोग तब है जब श्राद्ध अदैव होता है यह हेमाद्रिका मत है ॥

उत्तमविप्रनिर्णयः ।

अथ विप्राः ॥ ते चोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधाः ॥ तत्राद्याः ॥ अत्र मदीयाः श्लोकाः । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुश्च बह्वृचोप्याथर्वणो याजुषसामगौ च । षडङ्गविच्च त्रिसुपर्णवेत्ताऽप्यथर्वशीर्ष्णोध्ययने रतश्च ॥ शतायुर्वेदार्थविदौ प्रवक्ता स्याद्ब्रह्मचारी च तथाग्निविच्च । सीदद्वृत्तिः सत्यवाक्पूरुषैः स्वैर्मातापित्रोः पञ्चभिः ख्यातवंशः ॥ पत्नीयुक्तो ज्येष्ठसामा पुराणवेत्ता पुत्री चेतिहासेष्वभिज्ञः । योगी भिक्षुः सामगो ब्रह्मवेत्ता पञ्चाग्निश्च श्रोत्रियस्तत्सुतो वा ॥ शंभुध्यायी श्रीशपादाब्जसेवी पान्थश्चैते तूत्तमाः संप्रदिष्टाः । भिक्षुर्योगी पान्थ एते त्वलभ्या भाग्याल्लब्धाश्चेत्तदा भोजनीयाः ॥ श्राद्धे विप्रेषूपविष्टेषु पश्चात्संप्राप्ताश्चेद्विप्रपङ्क्तौ तु भोज्याः ॥" अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥

अब श्राद्धके योग्य उत्तम ब्राह्मणोंका वर्णन करते हैं । वे उत्तम मध्यम अधम भेदसे तीन प्रकारके हैं, यहां मेरे बनाये श्लोक हैं कि, त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, बह्वृच, आथर्वण, आजुष, सामण, षडंगवित्, त्रिसुपर्णवेत्ता, अथर्वणके पढनेमें रत, शतायु, वेदके अर्थका ज्ञाता और वक्ता, ब्रह्मचारी, अग्निचित्, जीविकासे हीन, सत्यवादी अपने मातापिताके वंशके कुल पुरुषोंसे विख्यात, पत्नीसे युक्त, ज्येष्ठसाम और पुराणका ज्ञाता, पुत्रवाला, इतिहासोंका ज्ञाता, योगी, भिक्षु, सामग, ब्रह्मवेत्ता, पञ्चाग्नि, वेदपाठी वा उसका पुत्र, शंभुका ध्यानी, विष्णुके चरणोंका सेवक और मार्गगामी ये ब्राह्मण उत्तम कहे हैं । भिक्षु, योगी, पांथ ये तो मिलने कठिन हैं, यदि भाग्यसे मिलजांय तो अवश्य भोजन कराने योग्य हैं, श्राद्धमें ब्राह्मण बैठगये हों और यह पीछे आये हों तो ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें जिमाने उचित हैं, यह प्रमाण हेमाद्रिमें लिखा है ॥

तत्रैव नारदः—"यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान् द्विजान् । विजानन्वसतो ग्रामे कव्यं दद्याति राक्षसान् ॥" दीपकलिकायां दक्षः—"विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिषा । परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥" एतच्च ज्ञानिविषयम् ॥ "त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णो यजुर्वेदैकदेशौ तद्व्रतेन तदध्यायिनौ च यस्य सप्त पूर्वे सोमपाः त्रिसुपर्णः" इति बोपदेवः ॥ सत्रिमधुर्ऋग्वेदैकदेशस्तदध्यायी ॥ केचिन्नाचिकेतं चयनं त्रिःकृतवानित्यर्थमाहुः । तद्धेमाद्रिविरुद्धम् ॥

वहांही नारदजीका वाक्यहै कि, जो संन्यासियोंका अनादर करके ग्रामके दूसरे ब्राह्मणोंको जानकर जिमाताहै उसका कव्य राक्षसोंको प्राप्त होता है, दीपकलिकामें दक्षजीने लिखाहै कि, यदि श्राद्धमें सन्यासी भोजन करते हों तो मांस, मधु और दक्षिणा आशीर्वादके विना भी श्राद्ध पूर्ण होताहै, यह भी ज्ञानीके विषयमें है त्रिणाचिकेत और त्रिसुपर्ण ये यजुर्वेदके भाग हैं उनको पढनेवाला वा व्रतकारी जिसके सात पुरुष सोमपीनेवाले हुएहों वह त्रिसुपर्ण होताहै, यह बोपदेवका कथनहै कि, त्रिमधु ऋग्वेदके एकदेशपाठीको कहतेहैं कोई २ त्रिणाचिकेतका यह अर्थ करतेहैं कि, जिसने तीनवार अग्निचयन कियाहो परन्तु यह हेमाद्रिसे विरुद्धहै ॥

हेमाद्रौ गौतमः—'युवभ्यो दानं प्रथमं पितृवयसः' इत्येके । मात्स्ये मनुः—"यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् । सामस्वरविधिज्ञश्च पंक्तिपावनपावनः ॥" कौर्मे—"असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैवच । असंवन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः श्राद्धसिद्धये ॥" गारुडे—"श्राद्धेषु विनियोज्यास्ते ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः । ये योनिगोत्रमन्त्रान्तेवासिसंवन्धवर्जिताः ॥" मनुः—"न मित्रं भोजयेच्छ्राद्धे धनैः कार्योऽस्य संग्रहः । नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं तु श्राद्धे निमन्त्रयेत् ॥" द्वयोर्भ्रात्रोः श्राद्धे भोजनं निषिद्धम्॥ "पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् । सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत्" इति श्राद्धदीपकलिकायां जातूकर्ण्योक्तेः ॥

हेमाद्रिमें गौतमजीने कहाहै कि, युवाओंको प्रथम दानदे वा उनको दे जो पिताकी अवस्थाके हों, मत्स्यपुराणमें मनुजीने कहाहै कि, जो वाणीको प्रगट करै तथा यज्ञका विचार करै और सामस्वरकी विधि जाने यह पँक्तिके पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करतेहैं, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, जिसके गोत्र प्रवर एक न हों और जो सम्बन्धी न हों ऐसे ब्राह्मणोंसे श्राद्धकी सिद्धि होतीहै, गरुडपुराणका कथन है कि, श्राद्धमें वे ब्राह्मण नियुक्त करने जो ब्रह्मके ज्ञाता [1]योनि, गोत्र, मन्त्र, शिष्य, सम्बन्धभिन्नहों. मनुका वचन है कि, मित्रको श्राद्धमें न जिमावे और मित्रके धनका संचय करावे अर्थात् उसके धनसे श्राद्ध होसकताहै जिसको न मित्र न शत्रु समझे उसे श्राद्धमें जिमावे दो भाइयोंको श्राद्धमें जिमाना निषेधहै क्योंकि, श्राद्धीयदीपकलिकामें जातूकर्ण्यका कथनहै कि, पिता, पुत्र, दोभाई, अग्निहोत्रीसे भिन्न, गर्भिणीका पति, समानगोत्र और समानप्रवर इनको श्राद्धमें वर्जदे ॥

मध्यमविप्रनिर्णयः ।

अथ मध्यमाः ॥ हेमाद्रौ कौर्मगार्ग्यौ—"नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा कन्या तथा हविः । अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत् ॥" अत्र केचित्स्वशाखीयान् मुख्यानाहुः

१ योनिसम्बन्धसे मामा आदि गोत्र सम्बन्धसे सपिण्ड, मंत्रसम्बन्धसे वेदादि अध्यापक, अन्तेवासी सम्बन्धसे शिल्पशास्त्रादिके पढाने वालेजानने ॥

पठन्ति च। "निमन्त्रयीत पूर्वेद्युः स्वशाखीयान् द्विजोत्तमान्॥स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमन्त्रयेत् ॥ ३ ॥" इति ॥ इदं तु निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिणा दूषितत्वाच्चोपेक्ष्यम् । मनुरपि—"यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणं वेदपारगम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं वा समाप्तिगम् ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी" ॥ २ ॥

अब मध्यम ब्राह्मणोंको कहते हैं । हेमाद्रिमें कूर्म और गार्ग्यका वाक्यहै कि, एकगोत्रमें हविको न दे, कारण कि, जैसी कन्या वैसीही हविहै यदि भिन्नगोत्रके न मिलें तो एक गोत्रके जिमावे, इसमें कोई अपनी शाखावालोंको मुख्य कहते हैं, और पढते हैं कि, पहलेदिन अपनी शाखाके उत्तम ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, अपनी शाखाके न मिलें तो अन्यब्राह्मणोंको निमंत्रण दे यह तो निर्मूल है और हेमाद्रिमें दूषित होनेसे त्यागने योग्य है मनुका भी वचन है कि, वेदके पारगामी ब्राह्मणको श्राद्धमें यत्नसे जिमावे वा शाखाके अंतगामी वा अध्वर्यु सब वेदके ज्ञाता. इनमेंसे कोई भी पूजित हुआ जिसके यहां श्राद्ध जीमताहै उसके पुरुषा सात पीढीतकके सदा तृप्त रहतेहैं ॥

अत्र मामकाः श्लोकाः ॥ "मातामहो मातुलभागिनेयदौहित्रजामातृगुरुस्वशिष्याः । ऋत्विक् च याज्यश्वशुरौ स्वबन्धुश्यालो गुणाढ्यास्त्वनुकल्पभूताः ॥" बन्धवो मातृष्वसृपितृष्वसृमातुलपुत्रा इति बोपदेवः । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ सगुणस्वस्त्रीयाद्यतिक्रमे दोष एव । "सप्त पूर्वान् सप्त परान् पुरुषानात्मना सह । अतिक्रम्य द्विजानेतान्नरके पातयेत् खग ॥ संबन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा । भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुं खगाधिप ॥ २ ॥" इति मदनरत्ने भविष्योक्तेः ॥

इसमें मेरे बनाये श्लोकहैं कि, नाना, मामा, भानजा, दौहित्र, जामाता, अपना शिष्य, ऋत्विक्, जिसे यज्ञ करावे, श्वशुर, अपना बन्धु, शाला, गुणवान् ये सब अनुकल्प अर्थात् गौणहैं, मौसी, फूफी, मामाके पुत्र, बांधव होतेहैं, यह बोपदेवका वचन है, इसमें मूल हेमाद्रिमें जानना, गुणवाले भानजे आदिके अवलंघनमें दोषहीहै. कारण कि, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, सम्पूर्ण सम्बन्धी, दौहित्र, वैश्योंका पति विशेषकर भानजा और हे गरुड ? अपना बन्धु इतने ब्राह्मणोंको त्याग करके अपने सहित सात पहिले और सात आगेके पुरुषोंको पतित करता है ॥

अत एव याज्ञवल्क्यः—"ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे" इति गुण्यतिक्रमे दशपणं दण्डमाह ॥ आसन्नमात्रपरमिदम् । मूर्खे तु न दोषः । "ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे चैव विवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते" इति कात्यायनोक्तेः विप्रस्यापि दोषः 'अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत्' इति मनूक्तेः ॥

इसीसे याज्ञवल्क्यके इस वचनसे कि, गुणसे योग्य ब्राह्मणको निमंत्रण न देनेमें दशपण ही दण्डदे इस प्रकार ब्राह्मणके श्रेष्ठत्यागमें दशपण दंड विधान कियाहै, यहभी समीपके विषयमें है मूर्खके त्यागमें तो दोष नहीं कारण कि, कात्यायनका वाक्य है कि, वेदसे हीन मूर्ख ब्राह्मणके त्यागमें दोष नहीं, जलती हुई अग्निको छोडकर भस्ममें आहुति नहीं दीजाती, इसप्रकार ब्राह्मणोंको भी दोष है कारण कि, मनुका वचन है कि, मूर्ख प्रतिग्रह लेनेसे काष्ठके समान भस्म होताहै ॥

अपरार्के अत्रिः–"षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योर्वागश्राद्धेयास्तु गोत्रिणः । षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ॥" एतच्च ब्राह्मणालाभे अपिशब्दात् ॥ असंभवे हेमाद्रौ गौतमः–'शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतः ।' आपस्तम्बः–'ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्यसंबन्धिनः । गुणहान्यां तु परेषां समुदितः सोदर्योऽपि भोजयितव्यः । एतेनान्तेवासिनो व्याख्याताः' इति ॥ अत्र विशेषमाहात्रिः–"पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सपिण्डकः । न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोप्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः । वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः ॥ सगोत्रा न नियोक्तव्याः स्त्रियश्चैव विशेषतः ॥ ३ ॥" इति ॥

अपरार्कमें अत्रिका वाक्य है कि, छः पुरुषोंसे पहले सगोत्री श्राद्धके अयोग्य होते हैं और छःसे पहले सगोत्रीभी श्राद्धमें भोजन करनेके योग्य हैं, यहभी ब्राह्मणोंके न मिलनेपर है, अपि शब्दसे असम्भवमें हेमाद्रिमें गौतमका वाक्य है कि, शिष्य सगोत्री गुणवाले भी तीन पीढीसे पहले होंय तो भोजन करावै, आपस्तम्बने लिखा है कि, कुटुम्बी, गोत्र, मित्र, शिष्य सबन्धी इन ब्राह्मणोंको भोजन करावै, किसी गुणकी न्यूनता होय तो अन्य ब्राह्मणोंके समुदायमें सहोदर भी जिमाने योग्य हैं, इससे अन्तेवासी अर्थात् शिष्य भी कहे गये । यहां अत्रिने विशेष कहा है कि, पिता, पितामह, भ्राता, पुत्र, सपिंड यह श्राद्धमें परस्पर पूजने योग्य नहीं, और ऋत्विज भी नहीं, ऋत्विक् पुत्र आदि भी ये सकुल्य ब्राह्मण मानेहैं, जो ये श्रेष्ट गुणी होंय तो वैश्वदेवमें नियुक्त करने, और सगोत्री और विशेषकर स्त्री नियुक्त करना न चाहिये ॥

वर्ज्यविप्रनिर्णयः ।

अथ वर्ज्याः ॥ अत्र मामकाः श्लोकाः ॥ "वर्ज्यान् प्रवक्ष्ये त्वथ रोगिवैरिहीनाधिकाङ्गान् कितवान् कृतघ्नान् । नक्षत्रशास्त्रेण च जीवमानान् भैषज्यवृत्त्यापि च राजभृत्यान् ॥ संगीतकायस्थकुसीदवृत्त्या वेदक्रयेणापि कवित्ववृत्त्या । देवार्चनेनापि च जीवमानान् स्वाध्यायदाराग्निसुताक्षिकाणान् ॥ दुर्वालखल्वाटकुनख्यधर्मिनटांश्च पौनर्भवकृष्णदन्तान् । अगारदाही गरदः समुद्रयायी च कुण्डाश्यथ कूटकारी ॥ बालांश्च योध्यापयते स्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथ कुण्डगोलौ । अग्रेदिधिष्वाः पतिरस्त्रकर्ता सोमक्रयी तैलिककेकराक्षौ ॥ युद्धाचार्यः पक्षिणां पोषकश्च स्रोतोभेत्ता वृक्षसंरोपकश्च । मेषाणां वा माहिषाणां च पुष्ट्या स्वीयस्त्रीषु प्रहितैर्यश्च जारः ॥ जीवत्यधेनुश्च दत्तानुयोगात् द्रव्यमाप्त्या वेदमुद्घाटयन्तः । ग्रामयाजिपशुकेशविक्रयिस्तेनशिल्पिपितृवादकारकान् ॥ अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमुण्डिनिर्घृणान् । यस्य चैव गृहिणी रजस्वला स्वार्थपाककरशापदायकान् ॥ क्लीबकुष्ठयतिविलोहितेक्षणान् कुब्जवामनमृषाभिशापिनः । पुत्रहीनमथ कूटसाक्षिणं प्रेतहारिकमयाज्ययाजकम् ॥ स्वात्मदातृपरिवेत्तृयाजकस्तेनहिंसकमुखान् विवर्जयेत्" ॥ ९ ॥

अब वर्जित ब्राह्मणोंको कहते हैं, इसमें मेरे बनाये श्लोक हैं, कि, अब वार्जित ब्राह्मणोंको वर्णन करताहूँ । रोगी, वैरी, हीन अधिक अंगवाले, कपटी, कृतघ्नी, ज्योतिषी, वैद्य, राजाके भृत्य, गाना, लिखना, लेन, देन इन वृत्तियोंसे जीनेवाले, वेदको वेचनेवाले, जीविकाके अर्थ कवि, जीविकाके अर्थ देवपूजक, वेद स्त्री अग्नि पुत्र त्यागी, जिनके बाल बुरेहों अर्थात् खल्वाटे, जिसके नाखून बुरेहों,

अधर्मी, नट, पुनर्भूका पुत्र, जिसके काले दांत हों, घरमें अग्नि लगानेवाले, विष प्रदान करनेवाले, समुद्रके यात्री, कुंडके यहां भोजन करनेवाले, कपटसे कार्य करनेवाले, बालकोंको पढानेवाले, अपने पुत्रसे जिसने विद्या पढी हो, कुंड और गोलक, अग्रेदिधिषुका पति, अस्त्र बनाने और सोम बेचनेवाले, तेली, केकराक्ष–अर्थात् ऊंचीनीची आंखोंवाला, युद्ध सिखानेवाले, पक्षियोंके पालक, जलके प्रवाहके भेदक, वृक्षके लगानेवाले, भेड वा भैंस पोषक, अपनी स्त्रीके जारोंसे आर्जाविकावाले, पढनेवालोंकी आज्ञासे द्रव्यके लिये वेदका उच्चारण करते फिरनेवाले, ग्रामयाजक, पशु और केशके बेचनेवाले, चौर, शिल्पी, पिताके संग विवादके करनेवाले, धन और विषयोंमें लगेहुए श्मश्रुसे हीन, जटाधारी, मुंड और निर्दयी और जिसकी स्त्री रजस्वला हो अपने लिये पाकमें तत्पर, शाप देनेवाले, नपुंसक, कुष्ठी, अत्यन्त लालनेत्रवाले, कुबडे, बौने, झूंठा दोष लगानेवाले, पुत्रहीन, असत्य साक्षी, द्वारपालक, अयाज्योंका याजक जिसने अपनी आत्मा देदी हो, परिवेत्ता, (बडेके होते छोटा व्याह करले) याचक, चोरोंका हिंसक इतने ब्राह्मणोंको श्राद्धमें त्यागदे ॥

अत्र मूलं हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ज्ञेयम् ॥ भारते दानधर्मेषु श्राद्धवर्ज्यविप्राधिकारे– "कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायकः सर्वविक्रयी ॥ सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः । पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति । पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥ अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च । श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ॥ परिवित्तिस्तथा स्तेनो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । कुशीलको देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ ईदृशा ब्राह्मणा ज्ञेया अपांक्तेया युधिष्ठिर ॥ ६ ॥" तथा–'ऋणकर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः ॥' काण्डपृष्ठः–'स्वशाखां त्यक्त्वा परशाखयोपनीतस्तदध्यायी च ।' क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु–"तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो वसते रसात् । काण्डपृष्ठश्च्युतो मार्गात्सोऽपांक्तेयः प्रकीर्तितः ॥" इत्याह ॥

इसमें प्रमाण हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है, भारतमें श्राद्धमें वर्जित ब्राह्मणोंके अधिकारमें कहा है कि, कपटी, गर्भ हत्यारे, यक्ष्मरोगी, पशुओंके पालक, निरादरवाले, ग्रामका प्रेष्य, व्याज लेने और गानेवाले सब रसोंके बेचनेवाले, समुद्रका यात्रिक, राजाका सेवक, तैलिक, कूट करनेवाले, पिताके संग विवादी, जिसके घरमें जार रहै, शापी, जिसे दोष लगाहो, चौर, शिल्पसे जीनेवाले, चर्मकार, सूची (दरजी) का काम करनेवाले, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, यज्ञोपवीत रहितको पढानेवाले, काण्डपृष्ठ, कुत्तेकी परिक्रमा करनेवाले, कुत्तेके काटे हुए, परिवित्ति, चौर, बुरे चर्मवाले, गुरुस्त्रीगामी, किसान, द्रव्य लेकर देव पुजारी, नक्षत्रोंसे जीनेवाले, ब्राह्मण पंक्तिमें बैठनेके योग्य नहीं हैं, तैसेही वचन है कि, ऋण करनेवाला मनुष्य और हे राजन्! व्याज लेनेवाला अयोग्य है अपनी शाखाको छोडकर दूसरेकी शाखासे जिसका यज्ञोपवीत हुआ हो वह वा अपनी छोडकर दूसरी शाखाको पढनेवाले काण्डपृष्ठ हैं क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्तिमें नारदने तो यह कथन किया है कि, जो ब्राह्मण प्रीतिसे क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्तिमें तत्पर हो मार्गभ्रष्ट, पंक्तिके अयोग्य हो उस ब्राह्मणको 'काण्डपृष्ठ' कहते हैं ॥

हारीतः–"शूद्रापुत्राः स्वयंदत्ता ये चैते क्रीतकाः सुताः । ते सर्वे मनुना प्रोक्ताः काण्डपृष्ठा न संशयः ॥" अन्येपि हेमाद्रौ मात्स्ये–" त्रिशंकून् बर्बरानान्ध्रान् चीनद्र-

विडकौङ्कणान् ॥ कर्णाटकांस्तथाभीरान् कालिङ्गांश्च विवर्जयेत् ॥" तत्रैव सौरपुराणे– "अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान् गुर्जरांस्तथा । आभीरान् कौङ्कणांश्चैव द्राविडान् दाक्षिणायनान् ॥ आवन्त्यान् मागधांश्चैव ब्राह्मणांस्तु विवर्जयेत् ॥" चन्द्रिकायां यमः–"काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च कृतघ्ना गुरुतल्पगाः । मानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनो ग्रामयाजकाः ॥ राजभृत्यान्धबधिरमूकखल्वाटपङ्गवः । वणिजो मधुहर्तारो गरदा वनदाहकाः ॥ समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः । प्रव्रज्योपनिवृत्ताश्च तथा प्रव्रजिताश्च ये ॥ यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावसितश्च यः । अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नः पितृदूषकः ॥"

हारीतका वचन है कि, शूद्राके पुत्र स्वयंदत्त और मोल लिये पुत्र ये सब मनुने "काण्डपृष्ठ" कहेहैं इसमें संशय नहीं और भी हेमाद्रि और मत्स्यपुराणमें वर्णन कियेहैं कि, त्रिशंकु, बर्बर, आंध, चीन, द्रविड, कोंकण, कर्णाटक, आभीर, कलिंग देशोंके ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जितहैं, वहांही सौरपुराणका वाक्यहै कि, अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र, गुर्जर, आभीर, कोंकण द्राविड, दाक्षिणात्य, आवंत्य, मागध इन ब्राह्मणोंको भी वर्जदे, चन्द्रिकामें यमका वाक्यहै कि, काने, कुबडे, नपुंसक, कृतघ्नी, गुरुतल्पगमनकर्ता, तोलमें (कपटी) शिल्पी, ग्रामयाजक, राजाके भृत्य, अन्धे, बहिरे, गूंगे, खल्वाट, लंगडे, पंगु, व्यापारी, मधुके चौर, विषके देनेवाले, वनदाह करनेवाले, मर्यादाके भेदक, और दानके निवारक संन्यासी होकर लौटनेवाले वृथा संन्यासी और संन्यासीके उत्पन्न संन्याससे पतित अवकीर्णी (वीर्यघात करनेवाले ब्रह्मचारी) शूरवीर, गुरुकी हत्यावाले; पिताके दूषक, ब्राह्मण श्राद्धमें त्यागदेने ॥

श्राद्धकाशिकायां कात्यायनः–"द्विर्नग्नः कीलदुश्चर्मा शुक्लोतिकपिलस्तथा । छिन्नोष्ठश्छिन्नलिङ्गश्च नैव केतनमर्हति ॥" पित्रोर्वंशे त्रिपुरुषं विच्छिन्नवेदाग्निः ॥ हेमाद्रौ मरीचिः–"अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च । वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्मणि ॥" ब्राह्मे–"मूकश्च पूतिनासश्च छिन्नाङ्गश्चाधिकाङ्गुलिः । गलरोगी च गंडूमान् स्फुटिताङ्गश्च सज्वरः ॥ षण्ढतूवरमन्दाश्च श्राद्धेष्वेतान्विवर्जयेत् ॥" लम्बकर्णं चाह तत्रैव गोभिलः–"हनुमूलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ । द्वयङ्गुलौ ऽयङ्गुलौ शस्ताविति शातातपोऽब्रवीत् ॥"

श्राद्धकाशिकामें कात्यायनका वाक्य है कि, पिताके वंशमें तीन पीढी तक वेद और अग्निहोत्रका प्रचार न हो वह दुर्नग्न नपुंसक कुत्सित चर्मवाले जो शुक्ल और अत्यन्त कपिलहों जिनके होठ और लिंग कटे हों ऐसे ब्राह्मण स्थानमें बैठनेयोग्य नहीं, हेमाद्रिमें मरीचिका वचनहै कि, जिसके कान न बिंधेहों काले लम्बकर्ण ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें प्रयत्नसे वर्जदेने, ब्रह्मपुराण का वाक्यहै कि, मूक जिसकी नाकमें दुर्गन्ध हो जिसका अंग कटाहो वा अधिक अंगुली हों जिसके गलेमें रोग हो वा गंडमालीहो जिसका अंग फटाहो वा ज्वर हो व नपुंसक तुम्बर, मन्द श्राद्धमें त्यागदे, वहांही गोभिलने लम्बकर्ण यह कहाहै हनु (ठोडी) की जडसे नीचे कानवालेको लम्बकर्ण कहतेहैं, जिसके दो अंगुल अधिक कानहों उसके यहां पितर नहीं खाते, यह शातातपका कथन है ॥

चन्द्रिकायां यमः–'द्व्यंगुलातीतकर्णस्य भुञ्जते पितरो न तु ।' षण्ढश्चात्र चन्द्रिकोक्तः सप्तविधो ग्राह्यः ॥ यथा–"षण्डको वातजः षण्ढः पण्डः क्लीबो नपुंसकः । कीलक-

श्चेति सप्तैवं क्लीबभेदाः प्रकीर्तिताः ॥" पराशरमाधवीये तु चतुर्दशविधः ॥ तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ चन्द्रिकायां शातातपः-"अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्त्यल्पदक्षिणैः । तेषामन्नं न भोक्तव्यमपांक्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥" एतच्च शक्तौ सत्याम् ॥ अपरार्के भारते-"अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयकोपि वा । पश्चाच्चेत्पीतवान् सोमं स निकेतनमर्हति ॥"

चन्द्रिकामें यमने कहा है दो अंगुलसे अधिक कर्णवाले ब्राह्मणमें पितर नहीं खाते चंद्रिकामें षण्ढ सात ७ प्रकारका लेना, षण्डक, वातज, षण्ढ, पण्ड, क्लीब, नपुंसक, कीलक ये सात नपुंसकके भेदहैं, पराशरमाधवीयमें तो चौदह प्रकारके षण्ढ लिखेहैं उसका प्रकार वहांसे ही जानना, चन्द्रिकामें शातातपका वाक्यहै कि, अल्पदक्षिणासे जो अग्निष्टोम आदि यज्ञ कराते हैं उनका अन्न भोजन न करै, क्योंकि वे पंक्तिके अयोग्य कहेहैं, यहभी शक्ति हो तब जानना अपरार्कमें भारतका वाक्य है कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो , कपटी, और जो प्राणियोंको बेचै यदि ऐसे ब्राह्मणने पीछेसे सोम यज्ञ किया होयतो श्राद्धके योग्य है ॥

श्राद्धदीपकलिकायां यमः-'अपत्नीकश्च वर्ज्यः स्यात्सपत्नीकोप्यनग्निकः' ॥ तत्रैवाश्वलायनः-"प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः । जीवनार्थं परास्थीनि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः ॥ मातापित्रौर्विना सोपि पतितः परिकीर्तितः ॥" तत्रैव जातूकर्ण्यः-"यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वा वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥ पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् । सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत् ॥ २ ॥"

श्राद्धदीपकलिकामें यमका कथन है कि, जिसके स्त्री न हो वह और जो सपत्नीक भी अग्निहोत्री न हो वह ये दोनों वर्जितहैं, वहां ही आश्वलायनका वाक्यहै कि, जो मूर्तियोंको बेचै वह पतितहै, और माता पिताको छोडकर दूसरोंके अस्थि लेकर तीर्थको जो जाय वहभी पतितहै, वहांही जातूकर्ण्य का वाक्यहै कि, जहां मातुल की कन्याका पति वा शूद्राका पतिहो वह श्राद्ध और मांस रहित श्राद्ध पितरोंको प्राप्त नहीं होता. पिता, पुत्र, दोभाई अग्निहोत्र से हीन गर्भवतीका पति अपने गोत्र और प्रवरका जो हो इनको श्राद्धमें वर्जदे ॥

बृहन्नारदीये-"शङ्खं चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ शंखचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्विजन्मनः ॥ २ ॥" तेन ये तप्तमुद्रादिविधयस्ते शूद्रविषयाः इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये-'शिवकेशवयोरङ्कान् शूलकचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान् वैदिक वर्त्मनि स्थितः ॥" इत्याश्वलायनोक्तेश्च नृत्यं चोदराद्यर्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी ॥ अन्येपि निषिद्धा निबन्धेषु ज्ञेया इति दिक् ॥ अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्वर्ज्यानां निषेधे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं निषिद्धवर्ज्यनिर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः ॥

बृहन्नारदीय का वचन है कि, जो ब्राह्मण मट्टीसे वा तपायेहुए लोहेसे शंख चक्र लेताहै. वह ब्राह्मण सम्पूर्ण कर्मोंसे शूद्रके समान बाहिरकरने योग्य है, शंखचक्रका अंक लगाना, और नृत्य आदिक यह शूद्रका धर्महै द्विजातिका कदाचित् नहीं, तिससे तप्तमुद्रा आदिकी जो विधि हैं वह शूद्र आदिके विषयमें हैं, यह

पृथ्वीचन्द्रोदय आदिमें लिखा है, और आश्वलायनने भी कहाहै कि बुद्धिमान् और वेदके मार्गमें टिका द्विज शूल और चक्रआदि शिव विष्णुके चिन्होंको धारण न करै, यह श्रीधरस्वामीने लिखाहै कि पेटके लिये नृत्यका निषेधहै औरभी निषिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थोंमें जानने यह दिक् मात्र कहाहै । यहां ग्रहण करने योग्य ब्राह्मणोंके कहनेसे ही वर्जितोंका निषेध सिद्धथा पुनः वर्जितोंका गिनना इसलिये है कि, निषिद्ध और वर्जित निर्गुणी होते हैं, यह विज्ञानेश्वरने कहा है ॥

कुष्ठिकाणादेरपवादो हेमाद्रौ वसिष्ठः–"अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः । अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥ क्वचिद्विप्राणां जातिमात्रेण ग्राह्यत्वमुक्तम् ॥ चन्द्रिकायामाग्नेये–"यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । तानेव भोजयेद्विप्रान्ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥ ब्राह्मणाः कृतसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः ॥ अमानुषा गयाविप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥ तेषु तुष्टेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः ॥" तत्रैव–"न विचार्यं कुलं शीलं विद्या च तप एव च । पूजितैस्तैस्तु सन्तुष्टा देवा सपितृगुह्यकाः ॥" गयायां निर्गुणा अपि ते एव भोज्या इति हेमाद्रौ ॥ अक्षय्यवटश्राद्ध एव तन्नियमो नान्यत्रेति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः ॥

कुष्ठी और काने आदिका अपवाद हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहाहै कि पंक्तिसे बाह्य कराने वाले शरीरके दूषणोंसे युक्त ब्राह्मण वेदके जानने वाले होयँ तो यमऋषिने कहाहै कि, दूषण के हीन और पंक्ति को पवित्र करनेवाले कहे हैं तौ ब्राह्मणोंकी जातिमात्रसे ग्रहण करने योग्य कहाहै, चन्द्रिकामें अग्निपुराण का वाक्य हैं कि, यदि किसी काल में पुत्र गयाको जाय तो उन्हीं ब्राह्मणोंको जिमावै जो गयामें कल्पित हैं, ब्रह्माके वसाये वे ब्राह्मण ब्रह्माके तुल्य कहेहै गयाके ब्राह्मण जो ब्रह्माने रचेहैं वे मनुष्य नहीं उनकी प्रसन्नतासे पितर और देवता प्रसन्न होते हैं वहांही लिखाहै कि, उनके कुलशील विद्यातप नहीं विचारने इनकी पूजा से देवता पितर गुह्यक संतुष्ट होतेहैं गयामें निर्गुणभी वेही जिमाने यह हेमाद्रि कहते हैं, त्रिस्थलीसेतुमें हमारे पितामहने तौ यह कहाहै कि अक्षय बटके श्राद्धमें ही उनका नियम है अन्यत्र नहीं ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेपि पाद्मे–"तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन । अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥" स्कान्देपि–'ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः ॥' मनुः–"न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥" असंभवपरमेतदिति मेधातिथिः ॥ हेमाद्रौ व्यासः–"गायत्रीसारमात्रोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा । सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः" ॥ २ ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका यह वाक्यहै कि, तीर्थोंमें ब्राह्मणकी कभी भी परिक्षा न करै, मनुजीनें अन्नके निमित्त आये उसको जिमानेयोग्य कहाहै, स्कन्दपुराणमें भी लिखाहै कि, क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंकी तीर्थ के ऊपर परीक्षा कदाचित् न करै, मनुका वाक्यहै कि, धर्मका ज्ञाता मनुष्य देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करै, जब पितृकर्म हो तब तो यत्नपूर्वक परीक्षा करै, मेधातिथि यह कहतेहैं कि, असम्भव (जब उत्तम न मिलै) में यह बात है, हेमाद्रिमें व्यासका वाक्यहै कि, जिसके वशमें इन्द्रिय हों वह गायत्री मात्रके जाननेवाला भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, और जिसके वशमें इन्द्रिय नहों वह सब खाने और सब बेचनेवाला वह चाहै चतुर्वेदीहो तोभी भला नहीं काणे, कपटी, कुबडे, दरिद्री, रोगी ये सब वेदके पारगामियोंकी पंक्तिमें नियुक्त करदेने ॥

अथ विप्रनिमन्त्रणम् ।

चन्द्रिकायां वाराहे-"वस्त्रशौचादि कर्तव्यं श्वःकर्तास्मीति जानता । स्थानोपलेपनं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ दन्तकाष्ठं च विसृजेद्ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत् ॥" तत्रैव प्रचेताः- "दक्षिणं चरणं विप्रः सव्यं वै क्षत्रियस्तथा । पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम् ॥" बृहस्पतिः-"उपवीती ततो भूत्वा देवार्थं तु द्विजोत्तमान् । अपसव्येन पित्र्येऽथ स्वयं शिष्योथवा सुतः ॥" प्रचेताः-"सवर्णं प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु निमन्त्रणे ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-"राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥"

अब ब्राह्मणके निमन्त्रणको कहतेहैं, चन्द्रिकामें वाराहका वाक्य है कि, कलको श्राद्ध करूंगा यह जानता हुआ मनुष्य वस्त्रोंको धोवे, और स्थानको लीपकर ब्राह्मणको निमन्त्रणदे, और दतोनको त्यागदे ब्रह्मचारी होकर शुद्धरहै वहांही प्रचेताका वचनहै कि, दक्षिण चरणको ब्राह्मण और वाम चरणको क्षत्रिय और दोनों चरणोंको वैश्य ग्रहण करके निमंत्रण दे, और शूद्र नमस्कार करके निमंत्रण दे, बृहस्पतिका वचन है कि, सव्य होकर देवताओंके निमित्त और अपसव्य होकर पितरोंके निमित्त शिष्य अथवा पुत्र ब्राह्मणोंके लिये निमंत्रण दे, प्रचेताका कथन है कि, द्विजोंके निमंत्रणके निमित्त अपने वर्णके सज्जन मनुष्यको भेजे पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, जो राजकार्यमें नियुक्त हो वा बन्धनमें हो अथवा द्यूत आदि व्यसनोंमें हो उसका श्राद्ध ब्राह्मणसे करवावे ॥

चन्द्रिकायां यमः-"अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥" तत्रैव पैठीनसिः-'सप्त पञ्च द्वौ वा श्रोत्रियान्निमन्त्रयेत् ॥' आश्वलायनसूत्रेपि-'एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्वम् ॥' द्वाविति वृद्धिश्राद्धे ॥ गोतमः-'नवावरान् भोजयेदयुजो वा यथोत्साहम् ॥' याज्ञवल्क्यः-"द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥" दीपकलिकायां पराशरः-"संपत्तावर्थपात्राणामेकैकस्य त्रयस्त्रयः । पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदेविके ॥"

चन्द्रिकामें यमका वाक्यहै कि, शूद्रने निमंत्रण दिया होय तो ब्राह्मणका अन्न और ब्राह्मणने निमंत्रण दियाहोय तो शूद्रका अन्न खाना उचित नहीं, वहांही पैठीनसिका वाक्यहै कि, सात पांच वा दो वेदपाठियोंको निमंत्रणदे, आश्वलायनसूत्रमें कथनहै कि, एक २ पितरके निमित्त एक २ वा दो २ वा तीन २ ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, वृद्धिश्राद्धमें अधिक फलकी इच्छा वाला दो २ को निमंत्रण दे, गौतमने लिखाहै कि, न्यूनसे न्यून अथवा उत्साहके अनुसार विषम ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, देवताओंके दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितरोंके दो ब्राह्मण उत्तराभिमुख स्थित हों इसीप्रकार मातामह आदिके हों अथवा विश्वेदेवा तंत्रसे (एकस्थानमें) हों, दीपकलिकामें पराशरने लिखाहै कि, धन और सुपात्र ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति होय तो ब्रह्माने पिताआदिकोंमें एक २ के तीन २ और विश्वेदेवाओंके चार ब्राह्मण लिखे हैं ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्यः-"दशैकं पञ्च वा विप्रान् पार्वणे विनियोजयेत् ॥" अत्र वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादीनामेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पञ्च सप्त नव वोपवेशयेदिति निष्कुण्णोर्थः ॥ मनुः-"द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा भोजये-

त्सुसमृद्धोपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥ २ ॥"

वृद्ध याज्ञवल्क्यका वाक्य है कि, दश एक वा पांच ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नियुक्त करै, यहां विश्वेदेवाओंके दो वा चार ब्राह्मणोंको बैठाकर पिता आदि एक २ के स्थानमें एक तीन पांच सात वा नौ बैठावे यह सिद्धांत अर्थ है, मनुने कहा है कि, देव श्राद्धमें और पितर श्राद्धमें तीन अथवा दोनोंमें एक २ ब्राह्मणको महाधनी भी जिमावै, परन्तु विस्तार न करै, कारण कि, विस्तारमें उत्तम कर्म, देश, काल, पवित्रता, ब्राह्मणोंका मिलना इन पांचोंको नष्ट करता है, तिससे विस्तारकी इच्छा न करै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये शातातपः-"द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखां स्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥" अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः-"एकेनापि हि विप्रेण षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत् । षडर्घ्यान् दापयेत्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः ॥" गोभिलः-"यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते" ॥ अत्र वैश्वदेवे विशेषमाह तत्रैव वसिष्ठः-"यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् । अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् । प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे" ॥ २ ॥ एतच्च सपिण्डीकरणवर्ज्यं ज्ञेयम् ॥ 'न त्वेवैकं सर्वेषां काममनाद्ये' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें शातातपने लिखा है कि, देवश्राद्धमें अथर्ववेदी दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितृ-श्राद्धमें बह्वृच, अध्वर्यु, सामवेदी, तीन ब्राह्मण उत्तरमुख बैठावे, अतीव अशक्त होय तो हेमाद्रिमें देवलने यह लिखा है कि, एक भी ब्राह्मणसे छः अर्घ्य और छः पितरोंको हवि दे, गोभिलने कहा है कि, जो श्राद्धमें एक ब्राह्मण जिमावे तो ऐसेको जिमावै जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीनों हों विश्व-देवाओंके श्राद्धमें विशेष है वहांही वसिष्ठने लिखाहै कि, श्राद्धमें एक ब्राह्मणको जिमावे तो दैव श्राद्ध वहां कैसे हो, पात्रमें सम्पूर्ण श्राद्धके अन्नको निकालकर और उसे देवमंदिरमें रखकर फिर श्राद्ध करै, उस अन्नको अग्निमें डालदे अथवा ब्रह्मचारीको देदे यहभी सपिंडीको छोडकर जानना, कारण कि, आश्वलायने यह लिखाहै कि, सपिंडीसे भिन्न सम्पूर्ण श्राद्धोंमें चाहै, तीनके स्थानमें एक ब्राह्मणको जिमादे ॥

अस्यार्थ उक्तो नारायणवृत्तौ-'आद्यं सपिण्डीकरणं तद्वर्ज्येषु श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोजयेत् ॥ सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भवितव्यमिति ॥ अनाद्ये पार्वणवर्जिते वा । अभोजने आमहेमश्राद्धादौ वा । अन्नाभावे चेति व्याख्यान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ॥ कारि-कापि-'दैवे पित्र्येऽथवैकैकं सपिण्डीकरणं विना' इति ॥ अत्रैकविप्रे साग्नेर्विशेषमाह पृथ्वीचंद्रोदये प्रचेताः-"एकस्मिन् ब्राह्मणे दैवे साग्नेरग्निर्भवेत्सदा । अनग्नेः कुशमुष्टिः स्याच्छ्राद्धकर्मणि सर्वदा ॥" सर्वथा विप्रालाभे तत्रैव हेमाद्रौ च सत्यव्रतः-"निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः । प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥"

नारायणवृत्तिमें लिखाहै कि, सपिंडीमें तो तीन ब्राह्मण अवश्य होने चाहिये कोई अनाद्यका पार्वण भिन्न और आम और सुवर्णश्राद्ध वा अन्नके अभावमें यह अर्थ करके पार्वण और आम हेम श्राद्धमें और अन्नके अभावमें चाहै एक २ को जिमादे अन्यत्र तो तीनही जिमावे यह कहतेहैं यहभी वहांही जानना कारिकामें भी लिखाहै कि, सपिंडीके बिना देव और पितृश्राद्धमें एक २ ब्राह्मणको भोजन करावे अग्निहोत्रीको

एक ब्राह्मणके श्राद्धमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेताने लिखा है कि, एक ब्राह्मण होय तो अग्निहोत्रीको देवश्राद्धमें सदैव अग्नि होतीहै और जो अग्निहोत्री न होयतो उसके कुशाओंकी मुष्टि श्राद्धकर्ममें होतीहै सबप्रकार ब्राह्मण न मिलैं तो सावधान होकर आसनोंपर कुशाओंके समूहको रखकर आवाहन और विसर्जन सहित संपूर्ण श्राद्धको करै यह हेमाद्रिमें कहाहै ॥

अत्र प्राप्त्यभावात्तत्रे इव ऋत्विक्कार्ये यजमानविधौ न दक्षिणे' इति केचित् । तन्न । अदृष्टार्थायाः दक्षिणायाः प्राप्तेः । 'सर्वं तत्रिजटे तुभ्यं यच्च श्राद्धमदक्षिणम्' इति पाद्मात् ॥ "विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्धहरो भवेत् । स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्" इति छन्दोगपरिशिष्टाच्च ॥ एवं यतिश्राद्धेपि कात्यायनः-"यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भबटौ तथा । दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥" मातृश्राद्धे तु विप्रालाभे सुवासिन्योपि भोजनीया इत्याहापरार्के वृद्धवसिष्ठः-"मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः॥" इति ॥ अष्टाविति वृद्धिश्राद्धविषयम् ॥

यहां कोई यह कहतेहैं कि, और न होय तो जहां ऋत्विक्ही यजमानकी विधिको करै, और दक्षिणा नदे सो ठीक नहीं कारण कि, अदृष्टपुण्यके निमित्त दक्षिणाकी प्राप्तिहै, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, तन्त्रसे किया संपूर्ण कर्म और दक्षिणाहीन श्राद्ध दूषितहै, यदि होमके कर्मको और कोई करै, तो आधी दक्षिणाके योग्य होताहै यदि दोनों कर्म स्वयं करै, तो विरक्त ऋत्विक् किसी दूसरेको दक्षिणादेदे यह छन्दोग परिशिष्टमें भी लिखाहै, यति श्राद्धमें भी ऐसी ही करै, यज्ञकी वस्तु कुशाकी मुष्टि और स्तम्भ (गुच्छे) और कुशाका बट्ट विष्टर और आस्तरण (बिछौना) इनमें कुशाओंकी संख्या नहीं कही, ऐसा कात्यायनने कहाहै माताके श्राद्धमें ब्राह्मण न मिलै तो सुहागिन स्त्रियोंकोही जिमावै यह अपरार्कमें वृद्धवसिष्ठका वचन है कि, माताके श्राद्धमें ब्राह्मणोंके न मिलनेपर पति और पुत्रसे युक्त सुन्दर और कुलीन आठ स्त्रियोंको जिमावै, यह आठका कहना वृद्धि श्राद्धके विषयमें है ॥

पाद्मे उत्तरखण्डे-"सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः । पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठंति कल्पकोटिशतं दिवि ॥" चन्द्रिकायां मात्स्ये-"पठन्निमन्त्र्य नियमान् श्रावयेत्पैतृकान् बुधः । अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ॥ भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥" यत्तु मनुः-"सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः । भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्मणि ॥" इति ॥ तत्पूर्वेद्युर्निमन्त्रणपरं न तदहः ॥ तत्रैव देवलः-"असंभवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत् । अज्ञातीनसमानार्षानयुग्मानात्मशक्तितः ॥" कात्यायनः-"अनिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेत्केतनं गृह्य शक्तः ॥"

पद्मपुराणके उत्तरकाण्डमें लिखाहै कि, जो मनुष्य शंकरलिंग और शालिग्राम शिलाकी पूजा करके पट्टेपर स्थापन करके श्राद्ध करता है उसके पितर कल्पकोटिके सैकडों वर्षतक स्वर्गमें स्थित रहतेहैं चन्द्रिकामें मत्स्यपुराणका लेखहै कि, निमन्त्रण देनेमें पितृश्राद्धके नियमोंको पाठ कर बुद्धिमान् मनुष्य निमंत्रितोंको श्रवण कराके हे ब्राह्मणों ! तुम रोषसे रहित शौचमें तत्पर निरन्तर ब्रह्मचारी रहना और मैं श्राद्धमें तत्पर रहूंगां, यह कहै जो मनुने यह लिखाहै कि, कलके श्राद्ध कर्ममें सब प्रकारके परिश्रमसे और काम क्रोधसे रहित आप रहैं और वह वचन पहिले दिन निमन्त्रणके विषयमें है उसी

दिनके विषयमें नहीं, वहांही देवलने लिखाहै कि, पहले दिन ब्राह्मण न मिलें तो दूसरे दिन उन ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, जो अज्ञात हों और जो सगोत्री न हों और सम न हों, अपनी शक्तिसे निमंत्रण दे, कात्यायनने लिखाहै कि, अपने घरकी शक्तिसे निन्दा रहितको निमंत्रण दे ॥

अथ श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः ।

तत्र निमन्त्रितविप्रत्यागेऽपरार्के यमः–"केतनं कारयित्वा तु योतिपातयाति द्विजम् । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनौ च जायते ॥ आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत् । अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते ॥ २ ॥" प्रमादात्त्यागे तु हारीतः– "प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाद्यैनं प्रयत्नतः । तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं तत्फलमश्नुते ॥" प्रमादाभावे तु नारायणः–"एकस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो नियतः शुचिः । यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥"

अब श्राद्धके कर्ता और भोक्ताओंके नियमोंको वर्णन करतेहैं वहां निमंत्रित ब्राह्मणका त्याग करें, तो अपरार्कमें यमका कथनहै कि, जो निमंत्रण देकर ब्राह्मणको न जिमावै वह ब्रह्महत्या और शूद्रयोनिमें प्राप्त होताहै, जो ब्राह्मणको निमंत्रण देकर यथायोग्य पूजन न करै वह अत्यन्त दुष्ट और घोर तिर्यक् योनिमें प्राप्त होताहै प्रमादसे ब्राह्मणको त्याग दे उसपर हारीतने यह लिखा है कि, प्रमादसे ब्राह्मणको भूल गया होय तो यत्नसे ब्राह्मणको प्रसन्न करके और यथायोग्य तृप्त करै, तो उसके सम्पूर्ण फलको प्राप्त होताहै प्रमादके अभावमें तो नारायणका यह वचनहै कि, यदि प्रमादसे ब्राह्मणको भूलनेका अपराध हो जाय तो नियमसे शुद्ध होकर यतिचान्द्रायण करनेसे उस पापसे छूटताहै ॥

यमः–"आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति । नरकाणां शतं गत्वा चांडालेष्वभिजायते ॥" तत्रैव देवलः–"पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम् । भुक्ताहारोथवा भुङ्क्ते सुकृतं तस्य नश्यति ॥" यदि विप्रो विलम्बते तदोक्तमादित्यपुराणे–"आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन । देवतानां पितृणां च दातुरन्नस्य चैव हि॥ चिरकारी भवेद्द्रोही पच्यते नरकाग्निना ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये यमः–"निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः । भवंति पितरस्तस्य तं मासं पांसुभोजनाः ॥ आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां व कुरुते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति रुधिराशनाः ॥ आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भारमुद्वहते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति स्वेदभोजनाः ॥ निमन्त्रितस्तु यो विप्रः प्रकुर्यात्कलहं यदि । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति मलभोजनाः ॥ ४ ॥"

यमने कहाहै कि, जो ब्राह्मण निमंत्रणको स्वीकार करके अन्यत्र भोजन करनेको जाताहै, वह सौ नरकोंमें जाकर चाण्डाल योनिमें उत्पन्न होताहै वहांही देवलने लिखाहै कि, पहिले अन्यके निमंत्रणको लेकर जो ब्राह्मण दूसरेका प्रतिग्रह ग्रहण करताहै वा भोजन करके भोजन करताहै उसका पुण्य नष्ट होताहै, जो ब्राह्मण भोजम करनेमें देर करै तो आदित्य पुराणमें कहाहै कि, निमंत्रित ब्राह्मण किसीप्रकार भी बुलानेपर देर न करै, जो करता है वह देवता पितर और दाता तथा दूसरोंका द्रोही होताहै, और नरकमें जाताहै,

---

१ न सीमान्तमतिक्रामेच्छ्राद्धार्थं वै निमंत्रितः । पर्यटन्सीममध्ये तु न कदाचित्प्रदुष्यति ॥ अर्थात्– ब्राह्मण श्राद्धमें निमंत्रित हो वह गामकी सीमा उल्लंघन न करै सीमामें पर्यटन करता दूषित नहीं होता, यह ब्रह्माण्डपुराणका लेख है ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका कथन है कि, जो निमंत्रित दुष्टमति ब्राह्मण कहीं मार्गमें चलाजाताहै उसके पितर उस मासमें पांशु (रेत-धूरि) भोजन करतेहैं, जो निमंत्रित ब्राह्मण कदाचित् क्लेश करै, तो उसके पितर उस मासमें मलको भोजन करतेहैं जो निमंत्रित ब्राह्मण भार (बोझ) ले जाताहै उसके पितर उस मासमें स्वेदका भोजन करतेहैं, जो निमंत्रित ब्राह्मण कलह करताहै उसके पितर उस महीनेमें मैल खातेहैं ॥

शंखः–"निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धं मैथुनं सेवते द्विजः । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥" मैथुनं ऋतावपि निषिद्धम् । "ऋतुकाले नियुक्तो वा नैव गच्छेत् स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्नवाप्नोति ह्यनिष्टानि फलानि तु" ॥ इति तत्र माधवीये च वृद्धमनूक्तेः । "श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा वा भुक्त्वा वापि निमन्त्रितः । उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाच्च ऋतावपि ॥ भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ प्रयत्नतः । व्यवायं भोजनं चापि ऋतावपि विवर्जयेत् ॥ २ ॥" इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेश्च ॥ विज्ञानेश्वरेण तु–"श्राद्धे ऋतौ गच्छतोपि न दोष इत्युक्तं तत्त्वगतिकगतित्वे ज्ञेयम् ॥ बृहस्पतिः–"द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह । अन्यथा वर्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् । श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च ॥ ३ ॥"

शंखने लिखाहै कि, जो श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण मैथुन करताहै वह श्राद्ध करके वा खाकर बड़े पापसे युक्त होताहै, ऋतुमें भी मैथुन निषिद्ध है, निमंत्रित ब्राह्मण ऋतुकालमें भी स्त्रीका संग किसीप्रकार न करै ऋतुमें गमन करनेसे अनिष्ट फलोंको प्राप्त होताहै, यह वहांही माधवीयमें वृद्धमनुने कहाहै, वहांही आश्वलायनका यह वाक्यहै कि, श्राद्धका करनेवाला और करके और भोजन करनेवाला निमंत्रित ब्राह्मण व्रत और उपवासका भोजन करके ऋतुमें भी गमन न करै और कलको श्राद्ध करने और भोजन करनेवाले पूर्वरात्रिमें भोजनको और ऋतुमें भी मैथुनको त्यागदें, विज्ञानेश्वरने तो यह लिखाहै कि, श्राद्धमें ऋतुगमन करनेवालेको दोष नहीं, वह तो तब है जब कोई दूसरी गति न हो, बृहस्पतिने लिखाहै कि, श्राद्धका करनेवाला ब्राह्मणोंसहित दो दिन ब्रह्मचारी रहै न रहै तो वे दोनों नरकमें जातेहैं, श्राद्धका कर्ता और भोजन कर्ता (भोक्ता) पुनः भोजन, मार्गगमन, भार, परिश्रम, मैथुन, वेदपाठ, कलह, दिनमें शयन, इन सबको त्यागदे ॥

यत्तु श्राद्धकारिकायां पुराणसमुच्चये–"कृत्वा तु रुधिरस्रावं न विद्वान् श्राद्धमाचरेत् । एकं द्वे त्रीणि वा विद्वान् दिनानि परिवर्जयेत् ॥" इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये यमः–"पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । संध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्ताऽष्ट वर्जयेत् ॥ इति ॥ संध्यानिषेधः प्रायश्चित्तात् पूर्वं ज्ञेयः ॥ यथाहोशनाः–"दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः । ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥"

जो श्राद्धकारिकामें पुराणसमुच्चयका वचन है कि, रुधिरका स्राव (फस्त) कराकर बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध न करै, एक, दो, तीन दिन बुद्धिमान् मनुष्य त्यागदे, सो वचन निर्मूलहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका लेख है कि, पुनः भोजन, मार्ग, भार, पढना, मैथुन, संध्या, प्रतिग्रह, होम इन आठोंको श्राद्धका खानेवाला त्याग दे, उनमें संध्याका निषेध प्रायश्चित्तसे पहले जानना, सोई उशनाने कथन कियाहै कि, श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण, गायत्री पढ कर दशवार जल पीवे, फिर संध्या करके जप होम करै ॥

गौडास्तु—"सायंसंध्यां परान्नं च छेदनं च वनस्पतेः । अमावास्यां न कुर्वीत रात्रिभोजनमेव च ॥ द्यूतं च कलहं चैव सायंसन्ध्यां दिवाशयम् ॥ श्राद्धकर्ता च भोक्ता च पुनर्भुक्तिं च वर्जयेत् ॥ २ ॥" इति कामधेनौ वराहाद्युक्तेः ॥ श्राद्धकर्तुरपि सायंसंध्यानिषेधमाहुः ॥ शिष्टास्तु निर्मूलत्वमाहुः ॥ होमनिषेधस्तु स्वविषयः ॥ "सूतके च प्रवासे च ह्यशक्तौ श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत्" इति छंदोगपरिशिष्टात् ॥ तत्रैवादित्यपुराणे—'निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम् ॥' चन्द्रिकायां प्रचेताः—"श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्याद्दन्तधावनम् ॥ श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तानां धावनं बुधः ॥" हेमाद्रौ जावालिः—" दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजनम् । रत्यौषधपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥" इति ॥

गौडोंने तो यह कहाहै कि, सायंकालकी सन्ध्या दूसरेका अन्न, वनस्पतिका छेदन और रात्रिको भोजन ये सब अमावस्याको न करै, और कामधेनुमें वराहमें यह कहाहै कि, जुआ कलह सायंसन्ध्या दिनमें सोना फिर भोजन इनको श्राद्धका कर्ता और भोक्ता त्यागै, कर्ताकोभी सायंसंध्याका निषेध कहतेहैं, होमका निषेध तो अपने निमित्तहै, कारण कि, छन्दोग परिशिष्टमें यह लिखाहै कि, सूतक, परदेश, अशक्ति, श्राद्ध-भोजन इत्यादि निमित्तोंमें न होम करै, न करावै, वहांही आदित्यपुराणका वाक्यहै कि, श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण स्त्रीको ताडना न दे, चन्द्रिकामें प्रचेताका वाक्यहै कि, श्राद्धका भोक्ता प्रातःकाल उठकर दतौन करै, और श्राद्धका करनेवाला न करै, हेमाद्रिमें जाबालिका लेखहै कि, दतौन, ताम्बूल, तैल मलना, व्रत, मैथुन, औषधी, पराया अन्न इन सातको श्राद्ध करनेवाला त्यागदे ॥

विष्णुरहस्ये—"श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् । दानप्रतिग्रहौ होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत् ॥ २ ॥" सोमोत्पत्तौ—"वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् । घोरायाम्भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥" एतद्विहितेध्मातिरेकेण—"वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् । गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥"

विष्णुरहस्यमें कहाहै कि, श्राद्ध और व्रतके दिन दँतोन करके सौ गायत्री पढकर दँतोन करनेसे पवित्र होता है, पुनः भोजन, मार्ग, सवारी, परिश्रम, मैथुन, दान, प्रतिग्रह, होम इन आठको श्राद्धका भोक्ता त्यागदे, सोमकी उत्पत्तिमें यह कहाहै कि, जब सोम वनस्पतिमें आवे उससमय जो वनस्पतिकी हिंसा करताहै, वह घोर गर्भहत्याके पापको प्राप्त होताहै, यहभी शास्त्रसे विहित इध्मनआदिसे भिन्नमें समझना, वनस्पतिमें जब चन्द्रमा हो तब जो बैलोंको जोतताहै उसके पितर १९ वर्षतक भोजन नहीं करते, वनस्पतिमें जब चन्द्रमाहो उससमय जो दूध मथताहै चिरकालसे विद्यमानभी उसकी गौ नष्ट होती है ॥

वनस्पतिगतस्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः—"त्रिमुहूर्तं वसेदर्के त्रिमुहूर्तं वसेज्जले ॥ त्रिमुहूर्तं वसेद्गोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ ॥" कलिकायां वृद्धमनुः—'निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम् । प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधाशौचे तथानृतम् ॥" केचिन्निमन्त्रणात् पूर्वं शुद्ध्यर्थं पूर्वेद्युः क्षौरं कुर्वन्ति तत्र मूलं मृग्यम् ॥

वनस्पतिका स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्यासने यह कहाहै कि, सोम तीनमुहूर्त जलमें तीनमुहूर्त गौओंमें तीनमुहूर्त वनस्पतिमें निवास करता है, कलिकामें वृद्धमनुका वाक्य है कि, ब्राह्मणोंको निमंत्रण

देकर उसदिन मैथुन क्षौर प्रमाद वेदपाठ क्रोध आशौच और झूठको त्यागदे, कोई तो निमन्त्रणसे पहिले शुद्धिके निमित्त पहले दिन क्षौर (हजामत) करतेहैं और कराते हैं, उसमें प्रमाण ढूँढनेयोग्य है अर्थात् नहीं है ॥

मरीचिः–"षष्ठ्यां पर्वसु पक्षादौ रिक्ताभद्रातिथिष्वपि । पाते श्राद्धे व्रताहे च क्षौरं वर्ज्यं निशासु च ॥" यदा कर्तुरशक्तया तत्पुत्रशिष्यादिः श्राद्धं करोति तदा कर्त्रा प्रतिनिधिना च प्रागुक्तनियमाः कार्याः ॥ "न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः । श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदान्येनापि कारयेत् ॥ नियमानाचरेत्सोपि नियतांश्च वसुंधरे । यजमानोपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥ २ ॥" इति हेमाद्रौ वाराहोक्तेः ॥ स्त्रियस्तु पाझे–"मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च । हसते वदते चैव निराशाः पितरो गताः" ॥ आश्वलायनः–"श्राद्धेह्नि भोजयेद्वास्तौ न बालानपि यत्नतः ॥ प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् ॥" वास्तौ–गृहे ॥

मरीचिने लिखाहै कि, षष्ठी, पर्व, प्रतिपदा, रिक्ता, भद्रा, व्यतीपात, श्राद्ध और व्रतके दिन, और रात्रिमें क्षौरको न करावे, जब कर्ताकी अशक्तिसे उसके पुत्र और शिष्य आदि श्राद्ध करैं तब कर्ता और उसका प्रतिनिधि दोनों पूर्वमें कहे नियमोंको करैं, कारण कि, हेमाद्रिमें वराहपुराणका वाक्यहै कि, जब अनवकाशसे स्वयं न करसके तब पुत्र शिष्य वा दूसरेसे श्राद्धको करावे हे पृथ्वी ! वहभी और यजमानभी उन सब नियमोंको सावधानीसे करैं, स्त्रियोंके निमित्त तो पद्मपुराणमें यह लिखाहै कि, जो स्त्री केश और नीवीको खोलकर हँसती वा बोलतीहै उसके पितर निराश जाते हैं, आश्वलायनमें लिखाहै कि, श्राद्धके दिन अपने घरमें बालकोंकोभी यत्नसे भोजन न दे, और पिंडदानसे पहिले अपनी स्त्रीको भी वस्त्रभूषणसे सजित न करै ॥

अथ श्राद्धवस्तूनि ।

तत्रादौ कुशाः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये दक्षः–'समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः ॥' अष्टधा भक्तादिने द्वितीयो भाग इत्यर्थः ॥ तत्रैव यमः–"समूलस्तु भवेद्दर्भः पितॄणां श्राद्धकर्मणि । मूलेन लोकान् जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ॥" व्यासः–"तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् । तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ॥" शालंकायनः–"सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥"

अब श्राद्धकी वस्तुओंका वर्णन करते हैं. उनमें प्रथम कुशा कहते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें दक्षका वाक्य है कि, समिधा फूल और कुशा आदिके ग्रहण करनेका समय दिनके आठभागोंमेंसे दूसरा भाग कहाहै वहांही यमने कहाहै कि, पितरोंके श्राद्धकर्ममें मूलसहित कुशा होती है कारण कि, मूलसेही महात्मा इन्द्रके लोकको जीतताहै, व्यासजीका वाक्य है कि, तर्पण आदि जो कुछ पितरोंके कर्म हैं वे

---

१ तथा च–सप्तपत्रा शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूताः स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाःस्मृताः । समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः । अर्थात्–दर्भ और कुशमें भेद कौशिक कहते हैं सात पत्रवाले शुभदर्भ कहातेहैं जो तिलक्षेत्रमें उत्पन्न होतेहैं व अप्रसूत दर्भ, और प्रसूत कुश कहातेहैं समूल कुतप, और अग्रभागसे छिन्न तृण कहातेहैं ॥

द्विगुण और सातपत्तेकी कुशाओंसे होते हैं, शालङ्कायनका कथन है कि, सपिंडीसे पहिले पितरोंका कर्म ऋजु (सीधी एक एक) कुशाओंसे होता है और सपिंडीसे पीछे विधिपूर्वक द्विगुणी कुशाओंसे होता है ॥

शङ्खः-"अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥" हारीतः-"पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भपिञ्जुलैः । एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥" स्मृत्यर्थसारे-'सर्वेषां वा भवेद्द्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं नवम् ॥' रत्नावल्याम्-'द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद्बुधः ॥' हेमाद्रौ स्कान्दे-"अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयापि वा । द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ॥" पवित्राभावे तु तत्रैव सुमन्तुः-"समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे । सव्ये चैव तथा त्रीन्वै बिभृयात्सर्वकर्मसु" ॥

शंखका वाक्य है कि, जिसके भीतर गर्भ न हो और अग्र (मुख्य) हो ऐसी दोदलकी प्रादेश विलस्तमात्र कुशा सब कर्मोंमें पवित्र होती है, हारीतका कथन है कि, ब्राह्मणकी पवित्री चार २ कुशमें ओंकी और अन्य वर्णोंकी क्रमसे एक २ कम कुशाओंकी होती है स्मृत्यर्थसारमें विकल्प लिखा है कि, सब वर्णोंकी पवित्री नई और गाँठदीहुई दो कुशाओंकी होती हैं, रत्नावलीमें कहा है कि, अंगुलियोंके दो पर्वोके बीचमें बुद्धिमान् पवित्रीको धारण करै, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, अनामिका-अनेक कुशा वा एक कुशाको धारण करै, वा दोनों अनामिकाओंमें दो पवित्रा धारण करै, पवित्रीके अभावमें तो वहां ही सुमन्तुका लेख है कि, जड और अग्रभाग सहित और गर्भ सहित दो कुशा दहिने हाथमें और तीन कुशा बांये हाथमें सदैव सब कर्मोंमें धारण करै ॥

बौधायनः-'हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेपि तथैव च ॥' दर्भग्रहणे मन्त्रमाह शङ्खः-विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥" स्मृत्यर्थसारे-'हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ॥' भारद्वाजः-"प्रेतक्रियार्थं पित्रर्थमभिचारार्थमेव च । दक्षिणाभिमुखश्छिन्द्यात्प्राचीनावीतिको द्विजः ॥" कुशाभावेऽपरार्के सुमन्तुः-"कुशः काशः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ बल्वजाः । गोकेशमुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ॥" काशादौ विशेषमाह शङ्खः-"काशहस्तस्तु नाचामेत्कदाचिद्विधिशङ्कया ॥ प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥"

बौधायनका वचन है कि, दोनों हाथोमें और आसनमें दो २ कुशा. धारण करै, कुशा ग्रहण करनेका मंत्र शंखने यह कहा है कि, परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माके संग तू उत्पन्न हुई है हमारे सब पापोंको दूर करके कल्याण कर, स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, हुं फट्कार मंत्रसे एकवार छेदन करके उखाडे, भरद्वाजका वाक्य है कि, प्रेतक्रिया, पितर और मारनेके लिये दक्षिणाभिमुख और प्राचीनावीति होकर कुशाओंको उखाडे कुशा न मिलैं तो अपरार्कमें सुमन्तुका कथन है कि, कुश, काश, शरकण्डे, यव, दूर्वा, वेल, गौके केश, मुञ्ज, कुंद इनमें पहिले २ के अभावमें परला २ लेना, काशआदिमें विशेष शंखने लिखा है कि, काश और दूर्वाको हाथमें लेकर कदाचित् विधिकी शंकासे आचमन न करै, और करै तो प्रायश्चित्तके योग्य होता है ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये यमः-"मासि मास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः ॥' षट्त्रिंशन्मते-'मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो नवः स्मृतः॥' गृह्यपरिशिष्टे-"ये च पिण्डा-

श्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् । ह्यमेध्याशुचिलिप्ता ये तेषां त्यागो विधीयते ॥" लघुहारीतः-"पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु । स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥ ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे । हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते" ॥ २ ॥ हेमाद्रौ-"अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ॥ हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकां नार्हन्ति वै कलाम् ॥"

पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका वाक्य है कि, महीने २ में उखाडी कुशा मास २ में काम देती है, षट्त्रिंशतके मतमें तो यह लिखा है कि, अमावास्याको उखाडी हुई कुशा महीने भरतक नवीन कहीजाती है गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, पिंडोंके ऊपरकी और पितरोंके तर्पणकी और अशुद्धिवस्तुसे लिप्त कुशाको त्याग दे, लघुहारीतका कथन है कि, मार्ग, चिता, यज्ञभूमि, बिछोना, आसन, पिंडकी इन छः कुशाओंको त्याग दे और ब्रह्मयज्ञ और पितृतर्पणकी कुशा और जिनके मूत्र वा विष्ठा लगी हो उनको त्याग दे हेमाद्रिमें लिखा है कि, और सब कुशा और दूर्वा पवित्र हैं परन्तु ये सुवर्णकी पवित्रीकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त होते ॥

श्राद्धे हविर्निर्णयः ।

अथ हविः ॥ हेमाद्रौ प्रचेताः-"कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः । महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥ कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ॥" महायवा-वेणुबीजम् । मधूलिका यावनाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च ॥ भारते-"वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं मनुरब्रवीत् । सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ॥" चन्द्रिकायां देवलः-"इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च ॥ पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम् ॥

अब हविको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें प्रचेताका कथन है कि, काले उडद, तिल, यव, सांठीके चावल, महायव, व्रीहियव और मधूलिक, कृष्ण और श्वेत लोह (आरक्त) यह श्राद्ध कर्ममें ग्रहण करने योग्य हैं, महायवसे वेणुबीज और मधूलिकासे (मूर्वा) पावनाल लेते हैं, यह हेमाद्रि और कल्पतरुमें लिखा है भारतमें लिखा है कि, जिस श्राद्धमें तिलोंकी वृद्धि होय उस श्राद्धको मनुने अक्षय कहा है, जो तिलोंसे पितरोंका पूजन करता है वह सब कामोंसे और सब यज्ञोंसे पूजता है चन्द्रिकामें देवलका कथन है कि, इष्टापूर्त्त क्षयाह अमावस्या वृद्धिश्राद्ध और अष्टका. इन कालोंमें सुपात्रोंको निंदित भोजन न दे ॥

सायणीये-"अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवर्जितम् । तैलपक्वेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥" हेमाद्रावत्रिः-'अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥' तत्रैव ब्राह्मे-"यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत् पितॄन् मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः ॥ नीवारैर्हस्तिश्यामाकैः पियंगुभिरथार्चयेत् ॥" हेमाद्रौ काष्र्णाजिनिः-"यदिष्टं जीवतश्चासीत्तद्दद्यात्तस्य यत्नतः । स तृप्तो दुस्तरं मार्गं ततो याति न संशयः ॥" कलिकायामाश्वलायनः-"कदल्यादिफलैः शस्तैर्मूलैरार्द्रादिकैरपि । गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत् पितॄन् ॥ कदल्याम्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत्सुधीः ॥

सायनीयमें लिखा है कि, गेहूँ, उडद, मूंग तैलका पक्वान्नसे रहित जो श्राद्ध है वह किया भी न कियेकी समान है, हेमाद्रिमें अत्रिका वचन है कि, गेहूँके विना किया भी श्राद्ध न कियेकी समान है,

वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जौ, व्रीहि, गोधूम, तिल, उडद, चने, मूंग, शामाक, सरसों, कोदों, नीवार, हरी श्यामाक, कांगनी इनसे पितरोंको तृप्त करै, हैमाद्रिमें कार्ष्णाजिनका कथन है कि, जीते हुए मनुष्यको जो इष्टहो वोही यत्नसे दे उसमें तृप्त हुआ वह दुस्तरभी मार्गको सुखसे जाताहै, इसमें संदेह नहीं कलिकामें आश्वलायनका वाक्य है कि, केले आदिके उत्तम फल मूल अदरख गोरस मधु दही इनसे श्राद्धमें पितरोंको तृप्त करै, और केला और आमके फल आदिको बुद्धिमान् श्राद्धमें इकट्ठे करै॥

हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च मार्कण्डेयः–"गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि । श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः॥ विदार्या च भरुण्डैश्च तिलैः शृङ्गाटकैस्तथा । कञ्चूकैश्च तथा कन्दैः कर्कन्धूबदरैरपि ॥ पालेवतैरारुकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्तथा । काकोल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः॥ लाजाभिश्च सधानाभिस्त्रपुसैश्चारुचिर्भटैः। सर्षपाराजकाचाभ्यामिंगुदै राजजम्बुभिः ॥ प्रियालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च किलण्टकैः । वेत्रांकुरैस्तालकंदैश्चक्रिकाक्षीरिकावचैः ॥ लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः। कुंजातकैः पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः ॥ रागखाण्डवचोष्यैश्चत्रिजातकसमन्वितैः। दत्तैस्तु मासं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम्॥

हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें मार्कण्डेयका वाक्यहै कि, गेहूं ईख मूंग सतीन चने श्राद्धमें देनेसे मनुष्योंके पितर एक मासतक तृप्त होतेहैं, विदारी कन्द, भरुण्ड (मखाना) तिल शृंगाटक केचुक कन्द कर्कन्धु, झडबेर, पालेवन, आरुक, अखरोट, पनस काकोली क्षीरकाकोली पिण्डालक धानकी खील त्रपुसा ऊर्वा आरु चिरभट (खर्बूजा) सरसों राजशाक गौदी राजतम्बू प्रियाल (चिरौंजी) आंमले छोटे तिलंटक वेतके अंकुर तालकन्द, चक्रिका, क्षीरिका, वच, लोच, मोच, लकुच, विजोरे, गुंजातक, पद्मके फल, भलीप्रकार बनाये भक्ष्य, भोज्य, और रागखांडव चोष्य जिनमें लौंग और इलायची पडी हों इतने पदार्थोंके देनेसे-मनुष्योंके पितर एक मास प्रसन्न रहते हैं॥

एषां कोशहेमाद्र्यादिव्याख्यावैद्यकाद्यनुसारेण मध्यदेशभाषया नामान्युच्यन्ते ॥ सतीनैः–कलायैः॥ 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः॥ बटूरीति प्रसिद्धः ॥ विदार्या–तत्कंदेन ॥ भरुण्डं–जलजं मखाणा इति श्राद्धमञ्जर्याम्॥ भूकूष्माण्डमित्यन्ये । शृङ्गाटकं–सिंघाडा । कञ्चुकः–कचनारः । कंदःसूरणः 'अर्शोघ्नः सूरणः कंदः' इत्यमरः। कर्कंधूः–वन्यं सूक्ष्मं बदरम् । पालेवतं–कोशातकी । आरुकम्–अरुई । अक्षोटम् अखरोटः। काकोलीक्षीरकाकोल्यौ गौडेषु प्रसिद्धौ। पिण्डालकं–सुथनी । महाराष्ट्राणां मोहलकंद इति प्रसिद्धम्। त्रपुसादयस्त्रयः–कर्कटीभेदाः । चिर्भटं–खर्बुजम् । सर्षपा इति दीर्घश्छान्दसः। प्रियालं–चिरौंजी । फल्गु–उदुम्बरम् । तिलंटकं–पटोलकम् । तालकन्दः–कन्दविशेषः। चक्रिका–तिन्तिणी बिंबा। क्षीरिका–खीरिणी । मोचं–कदलीफलम् । लकुचं–बडहरम्। मुञ्जातकं गौडदेशे प्रसिद्धम् । पद्मफलं–गट्टा॥ रागखांडवः–पिप्पली शुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः। रागखाण्डवतां याति शर्करासंयुतं तु तत्" इत्युक्तः पानविशेषः॥ त्रिजातं लवङ्गैलापत्रकाणि॥

इन सबके नामोंको कोश हेमाद्रि आदिका टीका वैद्यक इनके अनुसार मध्यदेशकी भाषामें कहतेहैं, सतीन कलाय बटुरीको कहते हैं, भरुण्ड, मखाना और कोई भूकूष्माडको कहतेहैं शृंगाटक सिंघाडा, कंचुक कचनार, कन्दसे जिमीकन्द, कर्कन्धु वनका छोटा बेर, पालेवत, कोशातकी, अरुक अरई, पिण्डा-

लक सुथनी, महाराष्ट्र इसको मोहलीकन्द कहते हैं, त्रपुसआदि तीन यह ककडीके भेद हैं चिर्भट, खर्बूजा, प्रियाल चिरौंजी फल्गु गूलर, तिलंटक पटोल, तालकन्द–कन्दका भेद, चुक्रिका इमली और क्षीरिका खिन्नी, मोच केलेका फल, लकुच–बडहर, मुञ्जातक पञ्चफल; रागखाण्डव उसे कहते हैं, जो पिप्पल और सोंठिसे मिलाहुआ खाँडसहित मूंगका यूष हो ॥ यह पान किया जाताहै । त्रिजात लौंग इलायची पत्रजको कहते हैं ॥

मदनरत्ने कौर्मे–"कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिका ॥' प्रशस्तानीति शेषः ॥ हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च वायुपुराणे–"कालशाकं महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम् । बिल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाडिमम् ॥ चव्यं पालिवटाक्षोटं खर्जूरं च कसेरुकम् । कोविदारश्च कंदश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव एला शुण्ठी च सैन्धवम् । शर्करागुडकर्पूरबदरीद्रोणपत्रकम्" ॥ ३ ॥

मदनरत्नमें कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, कालका शाक बथुवा मूली कृष्णनाली ये श्रेष्ठ हैं, हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें वायुपुराणका वाक्य है कि, समयका शाक महाशाक, द्रोणशाक अदरख बेल, आमले, मुनक्का, पनस, आम्रातक, अनार, चव्य, पालीवत (जँभीरा) अखरोठ, खजूर, कसेरू, कोविदार (कचनार) कन्द, पटोल, (पर्वल) कटेरीका फल, पीपल, कालीमिर्च इलायची, सौंठ सेंधानोन, खांड, गुड, कपूर, बेल, द्रोणपत्र ॥

तथा–"मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुडमेव च। श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा॥" रामठं–हिंगुः ॥ "कसेरुः कोविदारश्च तालकन्दस्तथा बिसम् । तमालं शतकन्दश्च मध्वालुः शीतकन्दकम् ॥ कालेयं कालशाकं च सुनिषण्णं सुवर्चलम् । मांसं शाकं दधि क्षीरं चाम्बुवेत्रांकुरस्तथा ॥ कट्फलं कौङ्कणी द्राक्षा लकुचं मोचमेव च । अलाबुं ग्रीवकं चारं कर्कन्धुर्मधुसाह्वयम् । वैकङ्कतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरूषकम् । पिप्पलीमरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम् । एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च। नागरं चार्द्रकं देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ ९ ॥" इति । तथा–'शर्करा क्षीरसंयुक्ता पृथुका नित्यमक्षयाः ॥'

तैसेही वचन है कि, महुआ, हींग, कपूर, गूड, सैन्धानोन, ककडी ये श्राद्धकर्ममें श्रेष्ठ है, कसेरू, कचनार ताल मूली, बिस–भंसीडा तमाल, शतावर, मध्वालु, मोहलकंद शीतकंद (सेरुकी) कालेय (कराल) वा (दारु हलदी) कालशाक सुनिषन्न, (ककडीके समान सुलटिया फल,) सुवर्चल (शाकभेद) मांस शाक दही दूध जल, बेंतके अंकुर, कट्फल श्रीपर्णी वृक्षका फल, कौकणी (खट्टे मुनक्का) लकुच मोच तिन्दुक (टेंडश) वा (तेंदूका फल) बेर सहस्र दोनों प्रकारके अलाबू (घीआ) ग्रीवय फल विशेष, चार–क्षुद्रताल कर्कन्धु (छोटाबेर) मधु, मधूकके पुष्प वा फल, वैकंकत–चैंची, नारियल, सिंघाडा, परूपक पीपल मिरच काली परवल कटेरीके फल इत्यादि और अन्य भी जो स्वादु और मीठे हों नागर अदरख और बडीमूली श्राद्धमें देने चाहिये, दूधसे मिली खांड, मालपुवे, सदैव अक्षय तृप्तिको करते हैं ॥

द्रोणशाकं 'गूम' इति प्रसिद्धम् । मृद्वी–द्राक्षा आम्रातम् आंबाडा इति प्रसिद्धो वृक्षः । तत्फलं च पालिवन्तं जम्बीरम् । पालिआलमिति गौडप्रसिद्धं वा । खर्जूरं खजूर इति प्रसिद्धम् । कसेरुः जलजः कन्दः । कोविदारः कश्चनारसदृश तालकन्दः–

तालमूली । बिसं-भसीडम् । शतकन्दः-शतावरी । शालुकं-सेरुकीति प्रसिद्धम् । कालेयं-करालसंज्ञः शाकः । दारुहरिद्रा वेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ सुनिषण्णं-कर्कटी । सुदृशं सुलटीया इति गौडप्रसिद्धम् । सुवर्चलं-शाकविशेषः ॥ कट्फलं-श्रीपर्णीवृक्ष-फलम् । कौङ्कणी-अम्लरसा द्राक्षा । तिन्दुकं-डिण्डिसमिति कैदेवः ॥ तिन्दुफलं वा । ग्रीवकं-फलविशेषः ॥ चारं-क्षुद्रतालम् । मधुसाह्वयं मधूकपुष्पं फलं वा वैकङ्कतं-चैञ्चीति गौडाख्यातम् । पुरुषकं परूसमिति प्रसिद्धम् नागरं शुण्ठी ॥ "

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-"आम्र आम्राकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम् ॥ नारङ्गकं च खर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम् । एतानि फलजा-तानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥ २ ॥" मात्स्ये-"अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वि-तम् । मासं प्रीणाति सर्वान्वै पितॄनित्याह केशवः" ॥ याज्ञवल्क्यः-"हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् । मत्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥ ऐणरौरववाराह-शाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् । मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥ खड्गामिषं महाशल्यं मधु मुन्यन्नमेव च । लोहामिषं कालशाकं मांसं वाध्रीणसस्य च ॥ २ ॥ "

पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका लेखहै कि, आम्र आम्रातक बिंवी अनार विजौरा पुराना आमला दूध नारियल परूष नारंगी खजूर मुनक्का नीलकैंत इतने फलोंके समूह श्राद्धमें यत्नसे देने उचितहैं, मत्स्यपुराण का वचन है कि, दही दूधसे मिला हुआ अन्न खांड मिला गौका घी ये सब एक मासतक पितरोंको तृप्त करतेहैं, यह केशव कहतेहैं, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, हविष्य अन्न महीनेतक और खीर एक वर्षतक पितरोंको तृप्त रखती है मत्स्य, हिरण, उरभ्र पक्षी, छाग, पृषत्, एण, रुरु, वराह, शशा, इनके मांसके देनेसे पितर क्रमसे एक २ मासकी वृद्धिसे तृप्त होतेहैं, गैंडेका मांस, महाशाक, शहत, मुनियोंका अन्न वाध्रीणसका मांस, श्रेष्ठहै ॥

निगमः-"त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् । वाध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ॥" वाध्रीणसो-जरच्छाग इति मेधातिथिः ॥ कात्यायनः-'छागोस्रमेषा-नालभ्य' शेषाणि क्रीत्वा लब्ध्वा वा स्वयंमृतानां वाहृत्य पचेत् ॥ कौर्मे-"क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वा द्विजः । दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षय्य-मुच्यते ॥ "

निगममें लिखा है कि, जिसकी क्षीण इन्द्रिय तीनों, (मुख कान नाक) एक वार जल पीवैं ऐसे श्वेत और वृद्ध अजाओंके पतिको याज्ञिक श्राद्ध कर्ममें वाध्रीणस वर्णन करते है, मेधातिथिने वृद्ध छागको वाध्रीणस कहाहै, कात्यायनने लिखाहै कि, छागका मांस और मेष इनको लेकर और शेषोंको खरीद कर वा लेकर वा स्वयंमरोंको लाकर उनके मांसको पकावै, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, खरीद कर वा प्राप्त होकर वा स्वयंमरोंको लाकर द्विज श्राद्धमें प्रदान करदे तो पितर अक्षय तृप्त होते हैं ॥

दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषमाह मनुः-"नियुक्तस्य यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥" अत्र बहुषु वचनेषु श्राद्धे मांसमधुनोः प्राशस्त्योक्तेः ॥ विना मांसेन यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ' इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः ॥

"यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि ॥ मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये ॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम् । नामापि कीर्तनीयं स्यात् पितॄणां प्रीतये ततः ॥२॥" इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेश्च मांसमधुनोः श्राद्धे नियतत्वं गम्यते ॥ गौड-निबन्धे मात्स्यसूक्ते-" मध्वभावे गुडो देयः क्षीरस्य च तथा दधि । न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात् घृतवतींजपम् ॥ "

श्राद्धमें मांसके न खानेमें मनुने दोष कहाहै, श्राद्धमें नियुक्त ब्राह्मण जो मांसको न खाय वह मरकर इक्कीस जन्म तक पशु होताहै, यहां बहुतसे वचनोंमें मांस और मधु श्रेष्ठ कहेहैं, और हेमाद्रिमें देवलकार्ष्णा कथन है कि, मांसके विना कियाभी श्राद्ध न कियाहै, जो श्राद्ध सहतसे हीन है वह चाहै सब रस और मिष्टान्नसे युक्त हो पर उससे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, अणुमात्र भी शहत श्राद्धमें यदि न होय तो पितरोंकी तृप्तिका नाम क्या कोई ले सकता अर्थात् नहीं ले सकता इससे श्राद्ध में मांस मधुका नियम विदित होताहै, गौड ग्रंथोंमें मत्स्य और सुमंतुने लिखाहै कि, मधु न हो तो गुड देना और दूध न हो तो दही और घृत न मिले तो घृतवती ऋचाका जप करै ॥

श्राद्धकलिकायां नागरखण्डे-"कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥" बृहत्पराशरस्तु मांसं निषेधाति-"यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन् । स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥ क्षिप्त्वा कूपे यथा कंचिद्बाल आदातुमिच्छति । पतत्यज्ञानतः सोपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥ २ ॥" स एव-"सर्वथान्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् ॥ ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच्च श्वा-दिहतं यदि ॥ "

श्राद्धकलिकामें नागर खण्डका वाक्यहै कि, किसी प्रकार ब्राह्मणोंको मधु न दिया हो तो पिंडोंमें मधु अवश्य देना चाहिये, बृहत्पराशरने तो मांसका निषेध कहाहै कि, जो मनुष्य प्राणियोंको मारकर पितरोंको तृप्त करताहै वह विद्वान् चन्दनको जलाकर मानो अंगारोंको बेंचताहै, जैसे कोई बालक कुएमें वस्तुको फेंककर फिर निकालनेकी इच्छा करता है इसीप्रकार वह भी ज्ञानहीन मांससे श्राद्ध करताहै, उसीका वचन है कि, तभी मांस ले जब सर्वथा अन्न न मिले, और कुत्ते इत्यादि मारे हुए मांसको ब्राह्मणको खाना उचित नहीं ॥

भागवतेपि-"न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्ववित् । मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥" तथेति शेषः ॥ अत्र केचित् । "मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रदानं शूद्रस्य सर्वेषां वाविरोधि यत्" इति हेमाद्रौ पुलस्त्योक्त्या व्यवस्थामाहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु-"अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्" इति निगमोक्तेः ॥ 'वराऽतिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया' इति कलिवर्ज्येषु हेमाद्रावादित्यपुराणात् ॥

भागवतमें लिखाहै कि, श्राद्धमें मांसको न दे, और न भोजन करै, मुनियोंके अन्नसे जिस प्रकार पितर तृप्त होते हैं तैसे पशुहिंसासे तृप्त नहीं होते, यहां कोई हेमाद्रिमें इस पुलस्त्यके वचनसे इस व्यवस्थाको कहतेहैं कि, ब्राह्मणको मुनियोंका अन्न, और क्षत्री वैश्यको मांस, और शूद्रको मधु प्रधान

कहा है, जो मधु सबका विरोधी नहीं, पृथ्वीचंद्रोदय तो संन्यास गोमेध श्राद्धमें मांस और मधु और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति इन पांचोंको कलियुगमें त्याग दे, इस निगमके वचनसे और हेमाद्रिमें इस आदित्यपुराणके वचनसे वर, अतिथि, पितर इनके लिये पशुको न मारै, कलियुगमें जो वर्जित उनमें ये पूर्वोक्त गिने हैं श्राद्धमें मांसका दान और वानप्रस्थ आश्रम यह कहकर इन धर्मोंका शास्त्रकारोंने कलियुगमें निषेध कहा है ॥

बृहन्नारदीये–"मांसदानं यथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा' इत्युक्त्वा 'इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः' इति बृहन्नारदीयेऽभिधानाच्च मांसविधिः कलिव्यतिरिक्तविषयः ॥ कलौ मांसनिषेधानां च देशाचारात् व्यवस्था ॥ तथा च बृहन्नारदीये श्राद्धं प्रकृत्य– "यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा । देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः" इति ॥ "यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत् ॥" इति भृगूक्तेश्चेत्याहुः ॥ तन्न॥ होलकाधिकरणन्यायेन देशविशेषव्यवस्थापकपदकल्पनायोगात् ॥ निरूपितं च तत् पितामहचरणैर्मांसमीमांसायाम् इति दिक् ॥

बृहन्नारदीयमें कहनेसे मांसकी विधि कलियुगसे भिन्नके विषयमें है, कलियुगमें नहीं करनी कलियुगमें जो मांसके निषेध हैं उनकी देशाचारसे व्यवस्था है, यही बृहन्नारदीयमें कहा है कि, श्राद्धके कर्ममें मधु मांस आदिका प्रयोग देशाचारके अनुसार करना और उस २ देशके उत्पन्न हुए मनुष्योंको देशाचार सर्वथा मानना चाहिये, न मानै तो सब धर्मोंसे बाह्य पतित होता है, और भृगुने भी यह कहा है कि, जिस देश, पुर, ग्राम तीन विद्यावाले नगरमें जो धर्म जहां विहित है उसका विचार न करै, यह किन्हीका कथन ठीक नहीं हैं क्योंकि होलिका अधिकरणके समान देश विशेषकी व्यवस्थाकी कल्पना अयोग्य है, यह हमारे पितामहोंने मांसमीमांसामें निरूपण किया है, इस प्रकार यह थोडासा कथन किया ॥

मनुः–"संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च । वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ त्रिः पिबंत्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् । वाध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ॥ २ ॥" क्षीरादौ विशेषमाह हेमाद्रौ सुमन्तुः–"पयो दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनम् । महिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित् ॥" याज्ञवल्क्यः–"सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥" हेमाद्रौ हारीतः–'नवसूतायाः सप्तरात्रादित्येके' दशरात्रादित्यपरे 'मासे नो पेयूषं भवतीति धर्मविदः ॥' एतद्रजोभावपरम् । देवलः–अजाविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत् । विकाराः पयसश्चैव माहिषं तु घृतं हितम् ॥"

मनुका वाक्य है कि, गौके दूध और खीरसे वर्षदिनतक वाध्रीणसके मांससे बारह वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है, जिसकी तीन इन्द्रिय जल पीवैं ऐसे श्वेतवर्ण वृद्ध अजाओंके पति बकरेको याज्ञिक श्राद्ध कर्ममें वाध्रीणस कहते हैं, क्षीर आदिमें सुमंतुने हेमाद्रिमें विशेष लिखा है कि, गौओंका दूध, दही, घी और भैंसका घृत श्राद्धोंमें पवित्र कहा है और किसी जीवका दूध कहीं भी पवित्र नहीं कहा, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, संधिनी (जो दूध दे और गाभनभी हो) दश दिनतककी व्याई, बछडाहीन गौका दूध और ऊण्टनीका दूध, और एक खुरजीव, (घोडी आदि) वनके पशु, भेंड, इनका दूध त्यागदे, हेमाद्रिमें हारी

तनेमें कहा है कि, नई व्याईका किसीके मतसे सात दिनतक और किसीके मतसे दश दिनतक दूध निषिद्ध है, एक मासमें अपेयुस (जिसमें पेवसी न हो) होता है, यह धर्मशीलोंका कथन है, यह भी रजके अभावके विषयमें है, देवलका वाक्य है कि, बकरी, मेंड, भैंसके दूध और दूधके विकारोंको श्राद्धमें वर्ज दे, भैंसका घी तो हित है ॥

तत्रैव ब्राह्मे-"माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवम् । स्त्रैणमौष्ट्रं पाचितं च दधि क्षीरं त्यजेद्घृतम् ॥ सगुडं मरिशाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि । दीर्णं तक्रमपेतं च नष्टास्वादं च फेनवत्" ॥ २ ॥ माहिषापवादोऽपरार्के ब्राह्मे-"देयं तक्रं तु सद्यस्कं नवनीताद-नुद्धृतम् । आरण्यमाहिषीक्षीरं शर्करास्रुतिसंयुतम् ॥ मध्वक्तं तुहिनं चैव दद्यात्तदमृतं यतः ॥" स्रुतिः क्षीरशरः ॥ श्राद्धकौमुद्यां चैवम् ॥

वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, भैंस चमरी गौ मृग भेंड एक खुरवाले जीव, स्त्री ऊंटनीका दूध दही घी मांगेहुए पदार्थ श्राद्धमें त्याग दे, गुड मिर्चमिली वस्तु बासी दही और फटा मट्ठा फेंकनेके योग्य है, स्वादहीन, कणवाले मट्ठेको त्यागदे, भैंसकेका अपवाद ब्रह्मपुराणके वचनसे अपरार्कमें लिखा है कि, मट्ठे और तुहिनको दे, क्योंकि, वह ताजा और दूधसे निकला जिसमेंसे मक्खन न निकाला हो वह तुहिन अमृत होता है खांड पडा हुआ बनकी भैंसका 'दूध' और सहत मिला हो तो तुहिन अमृतरूप है दूधको श्राद्धमें दे, श्राद्धकौमुदीमें भी यही लिखा है ॥

यद्यपि याज्ञवल्क्येन-"अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः" इति पर्युषितं दध्यादि भोज्यमुक्तम् । तथापि गुडमरिचाक्तस्य पर्युषितदोषोत्रोच्यत इति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव ब्राह्मे-"कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु नित्यशः ॥" तन्दुलीयं-सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः ॥ महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् ॥ आरण्यकं-फांजीचूचादि । तत्रैव-"दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतिन्तिणीः । आम्रातकं जीरकं च कुबरं चैव योजयेत् ॥" मागधी-पिप्पली । नागरं-शुण्ठी । कुबरं-कुस्तुंबरं धणिया इति प्रसिद्धम् ॥ वायवीये-'अगस्त्यस्य शिखास्ताम्राः कषायाः सर्व एव च ।' शिखा-नवपल्लवाः । प्रभासखण्डे-'आरामस्य तु सीमन्ताः कलापाः सर्व एव च ।' सीमन्ताः-नवपल्लवाः ॥ कौर्मे-'तमालं शतकन्दं च मध्यालुं शीतकन्दली ।' मध्वालुः-मोहलकन्दः । शीतकन्दली रतालु इति प्रसिद्धम् ॥

यद्यपि याज्ञवल्क्यने घी आदिसे युक्त, अधिक दिनके बासी भी अन्न खाने योग्य कहे हैं और जिनमें घी आदि न होय ऐसे गेहूं जो गोरसके विकार भोजन योग्य कहे हैं, इस वचनसे बासी दही आदि भोजन योग्य लिखे हैं, तथापि उस पर्युषितका दोष वहां कहा है जिसमें गुड और मिर्च संयुक्त हो, यह हेमाद्रि कहते हैं, वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, समया, शाक, मूली, वथुवा, बनके शाक तण्डुलीय (छोटे पत्तोंका शाक) इनको श्राद्धमें नित्य दे, वहांही कथन किया है कि, अनार, पीपल, सौंठी, अदरख, इमली, आम्रातक, जीरा, धनियां इनको भी मिलावे, वायवीयमें लिखा है कि, अगस्त्यके नवीन पत्तोंको ताम्र कहते हैं, प्रभासखंडमें लिखा है कि, आरामके नये पत्तोंको कलाप कहते कूर्मपुराणमें लिखा है कि, तमाल, शतकंद, मोहालुकंद और रतालु इनको भी दे ॥

श्राद्धे वर्ज्यहविर्निर्णयः।

अथ वर्ज्यम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे-"यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम्। अन्यायकन्याशुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम्। पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्॥" चन्द्रोदये शङ्खः-"भूस्तृणं शिरसा शिग्रुपालङ्कीमृचुकं तथा। कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम्। कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं च विवर्जयेत् ॥ राजमाषान् मसूरांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान् ॥ लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २ ॥" भूस्तृणं काश्मीरदेशे प्रसिद्धम्। सुरसा निर्गुण्डीति माधवः ॥ तुलसीति पृथ्वीचन्द्रोदयः। सा च भक्ष्यत्वेन निषिद्धा न पुष्पत्वेनेति गौडाः ॥

अब श्राद्धमें वर्जित हविको कहतेहैं। मार्कण्डेयपुराणमें कहाहै कि, जो धन उत्कोच (घूस) आदिसे वा पतितसे, संचय कियाहो, अन्यायसे मिला वा कन्याके मोलका हो वह धन श्राद्धमें निंदित है और वह भी निंदित है जो यह कहकर मिलाहो कि, पिताके लिये मुझे दो। चन्द्रोदयमें शंखका कथन है कि, भूस्तृण (काश्मीरमें प्रसिद्ध) सुरसा निर्गुंडी (तुलसी) शिग्रु (सहिजना) पालंकी (पालक) मृचुक (जलका शाक) पेठा विया बैंगॅन कचनार पीपल गीलीमिर्च पिण्डमूल (सलगम) बनाया लवण और वंशका अग्रभाग कल्ला, राजमाष (राजउर्द) मसूर कोदों कोर्दूषक और वृक्षके लालगोंद इनको श्राद्ध कर्ममें त्यागदे भूस्तृण कश्मीरमें प्रसिद्ध है सुरसा निर्गुण्डीको कहते हैं यह माधवका मत है पृथ्वीचन्द्र तुलसीको कहते हैं कि, तुलसीका भक्षणमें निषेधहै चढानेमें नहीं यह गौड कहते हैं ॥

पालंकी पालक इति प्रसिद्धा। मृचुकं जलजः शाकः। ससुकमिति पाठे खादिरशाक इति हेमाद्रिः ॥ मरीचान्यार्द्राणीति हेमाद्रिः ॥ कृतं लवणं सांभरभिन्नम्। 'सैन्धवं लवणं चैव तथा मानससम्भवम्।' 'यच्च सामुद्रिकं भवेत्' इति शूलपाणौ पाठः ॥ 'पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः' इति वायवीयोक्तेः ॥ मानसं साम्भरम् ॥ यत्तु भविष्यम्-'तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा' इति ॥ तत्र क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धम् ॥ 'भुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत्' इति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः ॥ क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं लवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः ॥ राजमाषाः-रवरा इति प्रसिद्धाः ॥ कोरदूषकः-चणकोद्रवः ॥

पालंकी पालकको कहते हैं, मृचुक जलका शाक है समुक ऐसा पाठ होयतो खैरका शाक लेना यह हेमाद्रिने कहाहै मिरचसे गीली मिरच ऐसा हेमाद्रि कहते हैं और बनाया भी सांभरवाला न लेना और लेना, क्योंकि, शूलपाणिमें ऐसा पाठ है कि, सेंधालवण सांभर और समुद्रका लवण ये प्रत्यक्ष भी सदैव परम पवित्र हैं यह माधवीयमें लेख है, जो भविष्यमें यह लिखाहै कि, तर्जनी दँतोन प्रत्यक्ष लवण ये वर्जित हैं, वहां प्रत्यक्ष लवणसे खारी नोनका ग्रहण है क्योंकि, ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, खारेलवणको खाकर तीनरात वनमें रहे यह शूलपाणि कहते हैं, क्षीरलवण यह पाठ होय तो दूधमिला लवण निषिद्ध है यह बाचस्पतिका मतहै कोर्दूषकसे वनकी कोदो लेनी ॥

---

१ तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः। प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः। अर्थात्-तुलसीकी गन्ध ग्रहणकर सन्तुष्ट हो पितर गरुडपर चढ भगवान्के लोकको जातेहैं ॥

चन्द्रिकायां शङ्खः–" पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं च नालिकम् । कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे दत्त्वा व्रजत्यधः ॥" पिण्डालकं महाराष्ट्रेषु पेण्डरमिति प्रसिद्धम् । तुण्डीरं बिम्बीफलमिति कैदेवः ॥ करमर्दं करवन्दामिति प्रसिद्धम् । तत्रैव–"बिडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् । कूष्माण्डं माहिषं क्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः ॥ चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः ॥ २ ॥ "

चन्द्रिकामें शंखका वाक्य है कि, पिंडालक (पैंडर) तुंडीर (बिम्बीका फल) करमर्द (करबंद) नरसल पेठा बहुबीज इनको श्राद्धमें देकर नरकमें जाताहै, पिंडालकको महाराष्ट्रमें पैंडर कहते हैं तुण्डरी बिम्बीफलको कहते हैं यह कैदेवका मतहै । करमर्द करबंदका नाम हेमाद्रिमें है, वहांही लिखाहै कि, बिडालका जूंठा और सूंघा पेठा भैंसका दूध आढकी राई चने राजउर्द श्राद्ध नष्ट करनेवाले हैं इनको यत्नसे त्यागदे ॥

वृद्धपराशरः–"करीरफलपुष्पाणि विडङ्गमरिचानि च । जम्भारिकास्तजम्बीरा सुपक्कं बीजपूरकम् ॥ जम्ब्वलाबूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम् । मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्त्वा पतत्यधः ॥ २ ॥" जम्बूः सूक्ष्मा । माधवीये चतुर्विंशतिमते–'यावनालान् कुलित्थांश्च वर्जयन्ति विपश्चितः ॥' यावनाला–जोंधला । अत्र यानि चणकादीनि विहितनिषिद्धानि तेषां विकल्पः । अन्यथा–"श्यामाकैश्चणकैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियंगुभिः । गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्" इति 'गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि' इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यात् ॥ पिप्पलीमरिचादेस्तु प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रस्य "सौवीरतिक्तैर्लवणादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीह यैस्तु । तद्बीजपूरान् मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं न तु दुष्यतीह" ॥ 'इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरोक्तेः ॥ तत्रैव–"दातुश्च यस्मिन्मनसोभिलाषः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने । श्राद्धेषु देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति ब्रुवन्ति ॥" एतन्निषिद्धेतरविषयम् ॥

बृहत्पाराशरका वाक्य है कि, करीरके फल और फूल वायविडंग मिरच जंभारिका (जंभीरी) पका बिजोरा, छोटा जामुनका फल अलाबु (लौका) पिप्पली पटोल पिंडमूल मसूर अंजनका फूल इनको श्राद्धमें देकर नरकमें जाताहै, (जामुन छोटी लेनी) माधवीयमें चतुर्विंशितिके मतसे लिखाहै कि, यावनाल (जौधल) कुलथी इनको भी बुद्धिमान् त्याग दे, यहां जौ चणक आदिका विधान, निषेध दोनों हैं उनका विकल्प समझना अर्थात् ले चाहै न ले अन्यथा हेमाद्रिमें लिखे कूर्म और विष्णुधर्मके इन वाक्योंका विरोध होगा कि, सामक चने शाक नीवार कांगनी गेहूँ तिल मूंगसे पितरोंकी एक मासतक तृप्ति होती है, गेहूँ गाडा मूंग चनेसे भी पितरोंकी एक महीनेतक तृप्ति होती है, पिप्पली और मिरच आदिका निषेध केवलका है, और द्रव्यमें मिलीका नहीं कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहत्पाराशरका यह कथनहै कि, सौवीर चर्परे पदार्थ लवण आदि जिन पदार्थोंसे पाक श्रेष्ठ बनता है वह बिजौरा और मिरच आदिके योगसे सिद्धिकी दाता है, दूषित नहीं है, वहांही लिखाहै कि, जिसमें दाताकी इच्छा हो, और जिसके देनेमें श्रद्धाहो, श्राद्धमें वही विधिसे देना चाहिये उससे अक्षय तृप्ति होती है, यह कहते हैं, यह भी निषिद्धोंसे भिन्नोंके विषयमें है ॥

चन्द्रिकायाम्–"कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि । न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैवच ॥" मात्स्ये–"मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः । पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः ॥ न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा । कोद्रवोद्दारवरककपित्थमधुकातसी ॥ एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्राद्धमिच्छता ॥ २ ॥" निष्पावाः वल्लाः । यत्तु मार्कण्डेयः–'प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः' इति तत्र निष्पावः श्वेतशिम्बीति दानसागरे श्राद्धप्रकाशे चोक्तम् ॥ बिल्वं च रक्तं निषिद्धम् ॥ 'जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत्' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ 'पारिभद्रो निम्बतरुः' इत्यमरः ॥ रक्तमन्दार इति हेमाद्रिः ॥ आटरूषो वासा तत्पुष्पम् । उद्दारः काञ्चनारः ॥ मधुकं ज्येष्ठी मध्वीति चन्द्रिका । चरका वनमुद्गाः ॥

चंद्रिकामें लिखा है कि, कष्टके देनेवाले कृष्णवर्ण जितने पदार्थ हैं उनको श्राद्धकर्ममें त्यागदे, और तिल, मूंग, उडद इनको न त्यागे मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, मसूर, सण, निष्पाव (कला) राजमाष, कुसुंभिका, पद्म, बेल, आक, धतूरा, पारिभद्र, (निम्बतरु) आटरूषक (वासिका फल) और बकरी और भेडका दूध इनको पितृकर्ममें न दे, और कोदव उद्दार, (कचनार) बड, कैत, मधुक (महुआ) अतसी श्राद्धको चाहता हुआ मनुष्य पितरोंको इनको भी न दे, जो मार्कण्डेयमें लिखा है कि, कांगनी, कचनार और निष्पाव ये श्राद्धमें श्रेष्ठ हैं वहां निष्पावसे वेतसी भी लिया है यह दानसागर और श्राद्धप्रकाशमें लिखा है. बेल भी लाल निषिद्ध है कारण कि, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जँभीरी रक्तबेल, शालका फल त्याग दे, हेमाद्रिने पारिभद्रसे रक्तमाल मन्दार लिया है, चणकसे बनकी मूंग लेनी ।

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे–'आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जङ्गमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥ द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यश्चाप्युपद्रुतम् ॥ पिण्याकं मथितं चैव तथातिलवणं च यत् । सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः । वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि ॥ ३ ॥" द्विःस्विन्नमसत्कृतपाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते, तद्वर्ज्यम् ॥ यत्तु तिक्तशाकान्नविकारादि द्विः पाकेनैव भक्षणार्हं, तन्न निषिद्धम् ॥ आग्रावलेहितमास्वादितपूर्वं पर्युषितस्य सदा निषेधेपि पुनर्वचनम् "अपूपाश्च करम्भाश्च धाना वटकसक्तवः । शाकं मांसमसूरं च सूपं कृसरमेव च ॥ यवागुः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम् । सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुष्कं चेत्परिवर्जयेत् ॥ २ ॥" इति माधवीये यमोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति चन्द्रिकादयः ॥ वर्ज्येषु विश्वामित्रः "कापित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पैत्तिकम् । जम्बूफलादि पक्वं च पिण्याकं तन्दुलीयकम् ॥"

हेमाद्रिमें ब्रह्मांडपुराणका वाक्य है कि, आसनपै रक्खा और चरणसे छुवा वा अपवित्र जंगम जीवोंसे छुआ सूखा वा बासी जो अन्नादि हैं सो विष्विन्न अर्थात् एकवार पकानेसे खाने योग्य भी जो हींग और जीरेके संस्कारके लिये फिर पकाया जाय, जला अन्न और प्रथम चाटा हुआ अन्न वा जिसमें कङ्कड कीडे पाषाण वा केश हों और जो वस्त्रसे दिया हो खल मथित (निर्जल मथा दही) जिसमें अधिक लवण हो और सिद्ध किये हुये जिन भक्ष्य पदार्थोंमें प्रत्यक्ष

लवण गेराहो इतने पदार्थ श्राद्धकर्ममें वर्जित हैं और जो तीखे और शाक अन्नके विकार आदि दुवारा पाकसेही भक्षणके योग्य होते हैं, उनका निषेध नहीं यद्यपि बासीका सर्वदा निषेध सिद्ध था फिर वचन इस कारण है कि माधवीयमें यमके कहे बासी दही बडे आदिका भी निषेध है यह चंद्रिकामें लिखा है कि, मालपुए करंभ धान वटक सत्तू शाक मांस पूये दाल कृशरयवागू पायसखीर और घृतसे युक्त (लड्डू आदि) और सब बासी पदार्थ भी ये खाने योग्य हैं खट्टे होयँ तो न खाय वर्जितोंमें विश्वामित्रका वचन है कि, कपित्थ कुतुक नारियल पैनिक पका जामुनका फल चौलाई ये सब वर्जित हैं ॥

हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–'वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथैव च ॥' मर्कटकाः लाका इति प्रसिद्धाः ॥ पैठीनसिः–"वृन्ताकं नलिकापोतकुसुम्भाश्मन्तकानि च । शाकानामभक्ष्याः" इति ॥ पोतं पोई इति प्रसिद्धम् । मार्कण्डेयः–"वर्ज्याश्चाभिषवा नित्यं शतपुष्पा गवेधुकाः । जम्बीरकं फलं वर्ज्यं कोविदाराश्च नित्यशः ॥" अभिषवः शुक्ला इति चन्द्रिका ॥ संधानकमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ शतपुष्पा ओंवा इति प्रसिद्धम् ॥ शाठ्यायनः–"मारिषं नालिका चैव रक्ता या च कलम्बिका । असुरान्नमिदं सर्वं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ मारिषं मध्यदेशे मरुसा इति, महाराष्ट्रेषु राजगिरा इति च प्रसिद्धम् ॥ कलम्बिका वेण्वाकृतिपत्रा ॥ तत्रैव–'गान्धारिकापटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥' गान्धारिका तन्दुलीयमिति चन्द्रिका ॥ 'जवासाख्या दुरालभा' इति कैदेवः ॥ भारते–"हिंगुद्रव्येषु शाकेषु अलाबुं लशुनं तथा । कुकुण्डकान्यलाबूनि कृष्णं लवणमेव च ॥" पुनरलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ कुकुण्डकं--वर्तुलच्छत्राकम् ॥ तत्रैव–कुस्तुम्बुरुं कलिङ्गोत्थं वर्जयेदाम्लवेतसम् ॥'

हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मतहै कि, श्राद्धमें मर्कट (लौका) और राजमाष वर्जितहैं, पैठीनसिका वचन है कि, बैंगन नलिका पोई कुसुंभ (करड) (आश्मंतक) अमलतास का शाक अभक्ष्य है, पोत पोईको कहतेहैं कुसुंभ कडशाक महाराष्ट्रमें प्रसिद्धहै मार्कण्डेयका वाक्य है कि, अभिषव (सूक्त वा सन्धानक) शतपुष्पा (सोआ पालक) गवेधुक जम्भीरीका फल कोविदार सदा वर्जितहै, शाठ्यायनका वाक्यहै मारिष (मरवां) नलिका (नाली) रक्तकलम्बिका येसब राक्षसोंका अन्न है पितरोंको नहीं मिलता, रक्तकलंबिकाके पत्ते वांसकी समानहोतेहैं वहांही लिखाहै कि, गांधारिका (तण्डुलीयक वा जवासा) पटोल इनको श्राद्धकर्ममें त्यागे, भारतमें लिखाहै हींग द्रव्य और शाकोंमें अलाबू लहसुन कुकण्डिका (गोल छत्राक) अलाबू कालालवण ये निषिद्ध हैं, पुनः अलाबूका ग्रहण दोनों अलाबुओंके निषेधके लिये है यह पृथ्वीचन्द्रोदयका मत है वहांही लिखा है कि, कुस्तुंबुरु और कलिङ्गदेशमें उत्पन्न हुए अमलवैतका निषेधहै ॥

हेमाद्रौ ब्राह्मे–"वार्ताकं पञ्चशिम्बं च लोमशानि फलानि च । कलिङ्गं रक्तचारं च वीणाकं घृतचारकम् ॥ कपालं काचमारीचे करञ्जं पिण्डमूलकम् । गृञ्जनं चुलिकां चैव गाजरं जीवकं तथा ॥२॥" वृन्ताकं–श्वेतम् । 'कण्टूरां श्वेतवृन्ताकं कूष्माण्डं च विवर्जयेत्' इति देवलोक्तेः ॥ तेन कृष्णस्य न निषेध इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात्

पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः ॥ तेन भक्ष्यस्य कृष्णवृन्ताकस्यापि निषेधार्थमिदमिति वयम् ॥ कन्दूराः–कपिकच्छूः। कूष्माण्डं–वृत्तालाम्बुः । पञ्चशिम्बं–वल्लमसूरराजमाषमटकुलित्थाः ॥ लोमशानि कपित्थानि । रक्तचारं–लोहितचारफलम् । वीणाकं–कृष्णदीर्घकर्कटी । वृतचारकं–चिरस्थितचारफलम् । चारोलीति प्रसिद्धम् । कपालं–नारिकेलम् । काचं–कचूवृक्षफलम् । मारीचम्-आर्द्रमरीचानि । गृञ्जनं–पलाण्डुभेदः । पश्चिमदिशि प्रसिद्धः । न तु गाजरम् । तस्य पृथुगुक्तेः हेमाद्रिणा तु गृञ्जनं गाजरमेवोक्तम् ॥ गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवं तच्चिन्त्यम् ॥ चुक्रिका चिरकालशुक्तं पानकम् ॥

हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका यह वचन है, बैंगन, पञ्चशिम्ब, (वल्ल, मसूर, राजमाष, मठ, कुलथी) लोमश (कैंत) के फल, रक्तचार (चारका लालफल) वीणाक (कालीककडी) घृत चारक (बहुत दिनका चारफल) कपाल (नारियल) कंचु वृक्षका फल, गीलीमिरच, करंज, पिंडमूलक, गाजर, चुलिका गृञ्जन, (सलगमका भेद) जीवक ये निषिद्ध हैं वृत्तांकसे श्वेतबैंगन लेना, कारण कि, देवलका वाक्य है कि, कण्डूर सपेद बैंगन कुंमांड (गोलधिया) इनको त्याग दे तिससे कालेका निषेध नहीं यह चन्द्रिका और माधवका मत है, सिद्धांत तो यह है कि, श्वेत तो सदैव निषिद्ध हैं फिर श्राद्धमें निषेध व्यर्थ पाया था तिससे भक्षणके योग्य भी काले बैंगनके निषेधार्थ यह वचन है यह हमारा मत है, अर्थ ऊपर करचुके हैं, हेमाद्रिने तो गृञ्जनसे गाजरही कहा है सलगम नहीं, गौडश्राद्धकौमुदीमें भी ऐसेही लेख है, सो योग्य नहीं, चुक्रिकासे चिरकालके खट्टे पानकको लेना ॥

चन्द्रिकायां हारीतः–'न वटप्लक्षोदुम्बरशेलुदधित्थनीपमातुलिङ्गानि भक्षयेत्' ॥ शेलुः–भोकरसंज्ञः । दधित्थम्–कपित्थम् । स्मृतिसारे–"क्षीरे तु लवणं दत्त्वा ह्युच्छिष्टेपि च यद्घृतम् । स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥" गौडनिबन्धसागरे स्मृतिः–"नारिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥ ताम्रपात्रे धृतं मांसं पञ्चगव्यं घृतेतरत् । आमिषं तु गवां मांसं दधिमद्यं पयो रजः ॥ द्रव्यान्तरयुतं मांसं पयसा संयुतं दधि । पयोऽनुद्धृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति ॥ ३ ॥"

चन्द्रिकामें हारीतका वचन है कि, वट, पिलखन, गूलर, शेलु (बहेडा) दधित्थ (कैंत) नीप (कदम्ब) मातुलिंगका भक्षण न करै, स्मृतिसारमें लिखा है कि, दूधमें लवण और उच्छिष्टमें घृत देकर और धोबीके तीर्थमें स्नान करना तांबेके पात्रमें गव्य सुराके समान है, गौडनिबन्धके स्मृतिसारमें स्मृति है कि, नारियलका जल कांसीके पात्रमें और ताम्रपात्रमें रक्खा सहत और गव्य, ये घीको छोडकर मदिराके समान हैं, तांबेके पात्रमें धरा मांस और घीको छोडकर गव्य इनमें मांस गौके मांस समानहै, दही मदिराके, दूध रजके समान होता है, अन्य द्रव्यसे मिला मांस और जिसमेंसे माखन न निकाला हो ऐसा दूध ये ताम्रपात्रमें दूषित नहीं होते ॥

श्राद्धेजलनिर्णयः ।

अथ जलम् । याज्ञवल्क्यः–'शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।' वर्ज्यं जलमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे–"दुर्गन्धि फेनिलं क्षारं पङ्किलं पल्वलोदकम् । न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् । यन्न सर्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् । तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्मणि ॥ २ ॥" निपानो–जलाशयः ॥

अब जलको कहते हैं । याज्ञवल्क्यका वचन है कि, जिसमें एक गौकी तृप्ति हो ऐसा पृथ्वीका स्वच्छ जल पवित्र है, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वचनसे वर्जित कहा है कि, जिसमें दुर्गन्ध हो झाग हो खारी हो कीच मिली हो और छोटे सरोवरका हो जिसमें गौ तृप्त न हो पहिली रात्रिका निकाला हो (वासी जल) और जिसका सबके निमित्त शास्त्रोक्त विधिसे उत्सर्ग (त्याग) न किया हो और जो अशुद्ध निपान (चोवचा) का हो हे तात ! ये जल श्राद्धकर्ममें सदैव निषिद्ध हैं ॥

शुद्धितत्त्वे शङ्खः–"स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम् । शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथा-मेध्याद्विनिःसृतैः ॥" हेमाद्रावादित्यपुराणे–"चिरं पर्युषितं वापि शूद्रस्पृष्टमथापि वा । जाह्नव्याः स्नानदानादौ पुनात्येव सदा पयः ॥" कात्यायनः–"अपो निशि न गृह्णीयान्न पिबेच्च कदाचन । उद्धृत्याग्निसुपर्यग्नेर्धाम्नो धाम्न इतीरयेत् ॥" रजोदोषे तु प्रागुक्तं नारदीये–"त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् । न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीं बिल्वपङ्कजम् ॥" अन्यान्यापि पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये–"मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नपालकम्बलः । रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सित-मित्याहुस्तस्य संतापकारिणः । अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः ॥ २ ॥"

शुद्धितत्वमें शङ्खका वाक्य है कि, स्नान दान आचमन देव और पितरोंका तर्पण ये शूद्रके और मेघके जलसे न करै, हेमाद्रिनें आदित्यपुराणका वचन है कि, बहुत दिनका बासी और शूद्रका स्पर्श किया भी गङ्गाजल स्नान और दान आदिमें सदैव शुद्धि करता है, कात्यायनका वचन है कि, रात्रिमें जलोंका ग्रहण न करे, और न कभी पीवे और रात्रिमें जलोंको निकालकर (अग्निसुपर्यग्ने धाम्नो धाम्नः) इस ऋचाको पढै, रजके दोषमें तो पहले कथन कर आये हैं। नारदीयमें लिखा है कि, बासी फूल और जलको त्यागदे, गंगाजल, तुलसी, पद्म और बेल बासी भी न त्यागै; अन्य भी पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्यपुराणके वचनसे कहे हैं कि, मध्याह्न समय गैंडेका पात्र, नेपालका कंबल, चांदी, कुशा, तिल, गौ और आठवां दौहित्र ये आठों कुतप कहाते हैं, पापको (कुत्सित) कहते हैं उसको संताप (दुःख) करनेवाले ये आठ होते हैं ॥

ब्राह्मे–"यतिस्त्रिदण्डः करुणा राजतं पात्रमेव च । दौहित्रं कुतपः कालश्छागः कृष्णा-जिनं तथा ॥" शस्तानीति शेषः ॥ दौहित्रं खड्गपात्रमिति कल्पतरुः ॥ अपरार्के स्मृत्यन्तरे–"अपत्यं दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च । घृतं च कपिलाया गोर्दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥" ब्रह्माण्डे–"अमावास्यागते सोमे या तु खादति गौस्तृणम् । तस्या गोर्यद्भवेत् क्षीरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥" स्मृतिसंग्रहे–"उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥" उच्छिष्टं वत्सस्य दुग्धमित्यर्थः ॥ शिवनिर्माल्यं–गङ्गोदकम् । वान्तं–मधु । मृतकर्पटं–तसरीपटम् ॥

ब्रह्मपुराणका वचन है कि, संन्यासी, त्रिदंडी, करुणा (दया) चांदीका पात्र, दौहित्र,कुतपकाल, छाग (बकरा) काला मृगचर्म ये शुद्ध कहे हैं, यहां दौहित्रसे गैंडेका पात्र लेना यह कल्पतरु कहते हैं, अपरार्कमें किसी स्मृतिका वचन है कि, कन्याका पुत्र गैंडेका पात्र कपिला गौका घी यह दौहित्र कहाते हैं, ब्रह्मांडपुराणका वचन है कि, अमावास्यामें चंद्रमाके आनेपर उस दिन जो गौ तृण खाती है उस गौका दूध दौहित्र कहाता है,

स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, श्राद्धमें ये सात पवित्र हैं कि, वत्सका उच्छिष्ट दूध, शिवनिर्माल्य (गंगाजल) वान्त (शहत) मृतकर्पट (पुराना टसरीका वस्त्र) दौहित्र कुतपकाल और तिल ॥

तिलनिर्णयः ।

तिलेष्वापस्तम्बः–"अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथा । ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ॥" अभावे–ग्राम्याः ॥ 'गौराः कृष्णास्तथारण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः' इति ब्राह्मोक्तेः ॥

तिलोंके विषय आपस्तंबका वचन है कि, जो तिल वनमें उत्पन्न हुए हों और जिनके विना जोते फल आवें वेही तिल श्राद्धमें पवित्र हैं, और तिल तिल नहीं हैं अर्थात् उत्तम नहीं हैं, वे न मिलें तो ग्रामके लेने, श्वेत कृष्ण और वनमें उत्पन्न ये तीन प्रकारके तिल हैं यह ब्रह्मपुराणमें कथन कियाहै ॥

श्राद्धे वर्ज्यानि ।

अथ वर्ज्यानि चन्द्रिकायाम् यमः–"कुक्कुटो विड्वराहश्च काकश्चाथ विडालकः । वृषलीपतिश्च वृषलः षण्ढोऽवीरा रजस्वला ॥ एते तु श्राद्धकाले वै वर्जनीयाः प्रयत्नतः । खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरस्तथा ॥ न्यूनाङ्गोप्यतिरिक्ताङ्गस्तमप्यपनयेत्ततः ॥ २ ॥" वायवीये–"अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः । उत्स्रष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः ॥"

अब त्यागे हुओंको कहते हैं, चन्द्रिकामें यमका वाक्य है कि, कुक्कुट (मुर्गा) और विष्टाका भक्षक वराह, काक, बिलाव, शूद्राका पति, शूद्र, नपुंसक, विधवा स्त्री, रजस्वला ये श्राद्धकालमें प्रयत्नसे वर्जने योग्य हैं, खंज (लंगडा) काणा कुणी (कुष्ठीविशेष) जिसके सुपेद दाद हों, दाताका सेवक, जिसका न्यून वा अधिक अंग हो इनको भी श्राद्धके स्थानसे दूर करै, वायवीयका वाक्य है कि, ये यदि हव्य और कव्यके अन्नको देखलें तो उस अन्नको त्यागदे और आपत्तिमें होय तो अन्नका संस्कार उचित है ॥

सुमन्तुः–'चाण्डालादिवीक्षितमन्नमभोज्यमन्यत्र मृद्भस्महिरण्योदकस्पर्शात् ॥' तत्रैव जमदग्निः–"शुद्धवत्योथ कूष्माण्डयः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दर्भैरन्नदोषमपानुदत् ॥" चन्द्रोदये–"पादुकोपानहौ छत्रं चित्ररक्तांवरं तथा । रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत्" ॥ निर्णयदीपे–"घण्टानिनादो हयसंनिधानं शम्बूकशङ्खं कदलीदलं च । उन्मत्तजातयर्कहयारिजानिं श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि ॥ " हयारिजं–महिषीक्षीरादि ॥

सुमन्तुका वाक्यहै कि, चाण्डाल आदिसे देखा हुआ भी अन्न भोजनके योग्य नहीं, यदि उसमें मिट्टी भस्म सुवर्णका जल मिला होय तो दोष नहीं, वहां ही जमदग्निका कथनहै कि, कूष्माण्डी पावमानी तरत्समंदी ऋचा पवित्र हैं, यह कुशाओंसे पवित्र जलके छिडकनेसे अन्नके दोषको दूर करती हैं, चन्द्रोदयमें लिखाहै कि, खडाऊं, उपानह, छत्र, चित्र, और लालवस्त्र, रक्तपुष्प और बिलाव इनको श्राद्धभूमिमें निषेध करैं, निर्णयदीपमें लिखाहै कि, ये श्राद्धके बिगाडनेवाले हैं कि, घंटाका शब्द घोडेका संनिधान शंबूक

---

१ तथा च–जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः । जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादिताश्च ये । अर्थात्–काले वनमें उत्पन्न हुए तिल जर्तिल कहाते हैं जो कि, विना जोते वनमें उपजते हैं ॥

(कोपले) शंख केलेका पत्ता धतूरा, आकके फूल आदि, हयारिज (भैंसका दूध आदि) यह श्राद्धमें निषिद्ध किये हैं ॥

अथ श्राद्धदिनकृत्यम् ।

चन्द्रोदये उशनाः–'गोमयोदकैर्भूमिभाजनशौचं कुर्यात् ॥' पराशरः–"काञ्जिकं दधि तक्रं च शृतं वाशृतमेव च । पूर्वमेव न दातव्यमेकोद्दिष्टेथ पार्वणे ॥" हेमाद्रौ पराशरः– "गृह्याग्निशिशुदेवानां ब्रह्मचारितपस्विनाम् । तावन्न दीयते किंचिद्यावत्पिण्डान्न निर्वपेत् ॥" कौर्मे–'तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् ॥' तत्रैव देवलः–'तत्रैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः । आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ॥' अत्रात्मनेपदात्स्वयमेव पाकः कार्यः ॥ अशक्तौ पत्न्या, तदभावे बान्धवैः ॥ 'ततस्तु निष्पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी' इति, पाद्मलिङ्गादिति हेमाद्रिः ॥

अब श्राद्धदिनके कृत्यको कहते हैं । चन्द्रोदयमें शुक्रका वाक्य है कि, गोवर और जलसे भूमि और पात्रोंकी शुद्धि करै, पराशरका वाक्य है कि, कांजी दही मट्ठा ये पके हों वा पके न हों इनको एकोद्दिष्ट और पार्वणश्राद्धमें पहिले ही न परसे, हेमाद्रिमें पराशरका वाक्य है कि, घरकी अग्नि बालक ब्रह्मचारी तपस्वी इनको तबतक कुछ नहीं दिया जाता जबतक पिण्डदान नहीं करले, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, श्राद्धके स्थानमें तिलोंको बखेरे, और चारों ओरसे बकरी बांधदे, वहांही देवलका वाक्य है कि, इस प्रकार यंत्रित हुआ दाता प्रातःकाल वस्त्रसहित स्नान करके बांधवोंसहित नये पात्रोंसे अन्नका आरम्भ करावे, यहां 'आरभेत' इस आत्मनेपदसे अपने आप पाक करै यदि अपनी शक्ति न होय तो स्त्रीसे करावे, और वह भी न होय तो कुटुम्बियोंसे करावे इसमें यह पद्मपुराणका प्रमाण है कि, फिर जनकनन्दिनी सीताने उनको शीघ्र पाक किया हेमाद्रि यह कहते हैं ॥

श्राद्धदीपकलिकायामाश्वलायनः–"समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः । कृतोपकारिभिश्चैव पाककार्यं प्रशस्यते ॥" व्यासः–"गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः । निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनः स्नानं समाचरेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–"रजस्वलां च पाखण्डां पुंश्चलीं पतितां तथा । त्यजेच्छूद्रां तथा वन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ॥ व्यङ्गकर्णीं चतुर्थाहःस्नातामपि रजस्वलाम् । वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् ॥ २ ॥" मातृपितृवंशजभिन्नां त्यजेदित्यर्थः ॥

श्राद्धदीपकलिकामें आश्वलायनका वाक्य है कि अपने प्रवरके और सपिंड गुणवान् और अपने उपकारी जनोंसे, पाक कराना उत्तम है, व्यासका कथन है कि, स्त्री भली प्रकार स्नान करके पाक बनावे पाक होचुकने पर फिर स्नानकर पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, रजस्वला, पाखंडिनी, व्यभिचारिणी, जातिसे पतित, शूद्रा, वंध्या, विधवा और गोत्रकी जिसके कान टेढे हों और वह रजस्वला जिसने चौथे दिन स्नान किया हो जो माता पिताके वंशकी न हो, इतनी स्त्रियोंसे पाक न करावे ॥

स्मृतिसारे–"न पाकं कारयेत्पुत्रीमन्यां वाप्यन्यगोत्रजाम् । मृतवन्ध्यां च गर्भघ्नीं गर्भिणीं चैव दुर्मुखीम् ॥" पाकभाण्डानि तु हेमाद्रौ नागरखण्डे–"सौवर्णान्यथ रौप्याणि कांस्यताम्रोद्भवानि च । मार्त्तिक्यान्यपि भव्यानि नूतनानि दृढानि च ॥" तत्रैव आदित्यपुराणे–"पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् । स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि

वा द्विजः ॥ अच्छिद्रेष्वविलिप्तेषु तथानुपहतेषु च । नायसेषु न भिन्नेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित् ॥ पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् ॥ ३ ॥''

स्मृतिसारमें भी कथन किया है कि, पुत्रीके सिवाय अन्य गोत्रकी, जिसके बालक मरजाते हों वह वन्ध्या, गर्भपात करनेवाली और गर्भिणी दुर्मुखी इतनी स्त्रियोंसे पाक न बनवावै, पाकके पात्र तो हेमाद्रिमें नागरखण्डके वचनसे कहेहैं, सोना, चांदी, तांबा, कांसी हो और मट्टीके भी नये सुघर दृढ हों, वहांही आदित्य पुराणका वाक्य यह है कि, भली प्रकार स्नान करके पवित्र हो सोना आदि धातुसे उत्पन्न और उन मट्टीके पात्रोंमें स्वयं ब्राह्मण अन्न पकावै, जिनमें छिद्र न हो कुछ लिपा न हो और जो अपवित्र वस्तुसे लिप्त न हो लोहेके न हों टूटे फूटे और दूषित नहों और जो एकबार काममें लाये गये हों ऐसे मृत्तिकाके पात्रमें भी न पकावै ॥

वायुपुराणे–''न कदाचित्पचेदन्नमयः स्थालीषु पैतृकम् । अयसो दर्शनादेव पितरोऽपि द्रवंति हि ॥ कालायसं विशेषेण निन्दन्ति पितृकर्मणि ॥ फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेऽपि शस्त्राणि तेषामेव हि सन्निधिः । इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ श्राद्धदेशे तु विदुषा पितॄणां तृप्तिमिच्छता । महानसे नियुक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥ ४ ॥'' तत्रैव ॥ ''पचमानस्तु भाण्डेषु भक्त्या ताम्रमयेषु च । समुद्धरति वै घोरात् पितॄन् दुःखमहार्णवात् ॥ तैजसानामभावे तु पिठरे मृन्मयेऽपि च । नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्र्यर्थमादरात् ॥ २ ॥'' तत्रैवादित्यपुराणे–''पक्वान्नस्थापनार्थे तु शस्यन्ते दारुजान्यपि । दर्व्यादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः ॥'' यमः– ''विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेहनि । नवभाण्डानि कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः॥''

वायुपुराणमें भी कहाहै कि, लोहकी टोकनीमें कदाचित् भी पितरोंके निमित्त अन्न न पकावै कारण कि, लोहके दर्शनसेही पितर चले जातेहैं पितरोंके कर्ममें और लोहेका पात्र विशेषकर वर्जित है, महानस (रसोई) में उन शस्त्रोंकोही निकट रक्खै जो फल और शाकोंके छेदनार्थ हों, अन्य शस्त्रमात्रका रसोईमें दर्शनमात्र न करै, पितरोंकी तृप्तिकी इच्छा करता हुआ मनुष्य श्राद्धके देशमें उन शस्त्रोंको भी न दिखावै जो रसोईमें भी युक्त हैं वहांही कहाहै कि, मट्टीके और तांबेके पात्रमें पकाकर और खाकर पितरोंका घोर दुःखसमुद्रसे उद्धार करता है, यदि तेज (धातु) के न होयँ तो नये शुद्ध मट्टीके पिटर (हांडी) में पितरोंके निमित्त आदरसे पाक बनावै, वहांही आदित्यपुराणका वाक्यहै कि, पक्वान्न रखनेके नितित्त तो काठके बरतन भी श्रेष्ठहैं, और यज्ञके काठोंकी दर्वी (कलछी) आदि भी बनाले तौ अच्छाहै. यमका वाक्यहै कि, विवाह प्रेतका कर्म और माता पिताके मरणदिनमें और विशेषकर यज्ञके समयमें नवीन पात्रोंको करै ॥

श्राद्धपाकाग्निनिर्णयः ।

अथ पाकाग्निः ॥ हेमाद्रौ प्रजापतिः–'औपासनेनान्नसिद्धिरग्नौकरणमेव च ॥' पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः–''शालाग्नौ तु पचेदन्नं लौकिके वापि नित्यशः । यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ॥'' मनुः–''वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं द्विजः ॥'' श्राद्धस्य गृह्यत्वं चोक्तमपरार्केण ॥

अब श्राद्धमें पाककी अग्निको वर्णन करतेहैं । हेमाद्रिमें प्रजापतिका वाक्यहै कि, श्राद्ध, और अग्नौकरण ये दोनों उपासनाकी अग्निसे सिद्ध होतेहैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें अंगिराका कथन है कि, शालाकी अग्नि वा लौकिक अग्निमें नित्य अन्नको पाक करै, और जिस अग्निमें अन्नको पकावै उसीमें हवन करै, मनुका वाक्यहै कि, द्विज अपने गृहस्थके कर्म और पञ्चयज्ञकी विधि और प्रतिदिनका पाक इन सबको शास्त्रमें कही विधिसे विवाहकी अग्निमें करै, श्राद्धको भी गृहका कर्म अपरार्कने लिखा है ॥

अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे—"प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात् । शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥ पाकान्तेऽग्निं तमाहृत्य गृह्याग्नौ तु पुनः क्षिपेत् । ततोऽस्मिन्वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥ २ ॥" तदभावे लौकिके—"ततः पचेयुरन्नानि निर्वापानंतरं शनैः । वैवाहिकेऽग्नावन्यत्र लौकिके वापि संयतः ॥" इति कलिकायां संग्रहोक्तेः ॥ पित्रर्थं निर्वापं कृत्वेत्यर्थः ॥ अत एव हेमाद्रौ वायुपुराणे—'पित्रर्थं निर्वपेद्भूमौ कूर्चे वा दर्भसंस्कृते ॥"

इसका विशेष वर्णन कर्मप्रदीपमें कहाहै कि, प्रातःसमय होमको करके और अग्निको निकालकर रसोईमें रखकर पाकका आरम्भ करै, जब पाक होचुके तब उस अग्निको लाकर गृह्यकी अग्निमें डालदे, फिर उसमें बलि वैश्वदेव आदि कर्मको आलस्यरहित करै, वैवाहिक अग्नि होय तो लौकिक अग्निमें करै, कारण कि, कलिकामें संग्रह का इस प्रकार कथनहै कि, फिर पितरोंके निमित्त अन्न देकर वैवाहिक अग्निमें वा लौकिक अन्नोंको पाककरै इसीसे हेमाद्रिमें वायुपुराणका वाक्य लिखा है कि, पितरोंके निमित्त भूमिमें व कुशाओंके कूर्चपर निर्वाप करै, अर्थात् अन्नको प्रदान करदे ॥

तत्रैव पद्ममात्स्ययोः—"अग्निमान्निर्वपेत्पैत्रं चरुं वा सममुष्टिभिः । पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत् ॥" चरुग्रहणान्न शाकादाविति हेमाद्रिः ॥ पिण्डपितृयज्ञार्थपाकविषयोऽयं निर्वाप इति तु युक्तम् ॥ अयं चेतरेषामग्निः ॥ आश्वलायनानां तु—'गुरुणाभिमृता अन्यतो वापक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन्' इत्यादिसूत्रेण पचनाग्नेरत्यागमुक्त्वा 'इहैवायमितरो जातवेदः ।' इत्यर्धर्चेन ' शमीमयीभ्यामरणिभ्यामग्निं मन्थेत्स पचनाग्निर्भवति ' इति सूत्रे वृत्तौ चोक्तेः पचनाग्नावेव पाकः ॥

वहांही पद्म और मत्स्यपुराणके वाक्यहैं कि, अग्निहोत्री ब्राह्मण अन्न वा सममुष्टि चरुका निर्वाप करै, और उसको पितरोंको प्रदान करताहूं यह कहताहुआ दक्षिणदिशामें त्यागदे ये चरुके ग्रहणसे शाक आदिके विषयमें नहीं है, यह हेमाद्रि कहतेहैं, यह निर्वाप पिंड और पितृयज्ञके निमित्त जो पाक कहा है उसका है यह तो युक्त है यह अग्नि इतरोंकी है, आश्वलायनोंकी तो गुरुसे मरे अथवा अन्यसे नष्टहुएका अमावस्याको शांतिकर्म करै, इस सूत्रसे पाककी अग्निका स्वीकार कथन कर यहांही यह अन्य अग्नि है; इस आधीऋचासे शमीकी अरणियोंसे जिस अग्निको निकाले वह पचानाग्नि कहातीहै इसके सूत्र और वृत्तिके कहनेसे पचनाग्निमेंही पाक होताहै ॥

बौधायनेनाप्युक्तम्—'आहृतपचनाग्निमौपासनं वाभिप्रव्रजन्ति' इति ॥ स्मार्ताग्नौ पाकस्त्वन्यशाखाविषय इति केचित् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वोक्तस्य सर्वाधानविषयत्वं युक्तम् ॥ शिष्टाचारेपि न पचनो दृश्यते ॥ अण्डविलायामपि सर्वाधानपक्षे वैश्वदेवश्राद्धं च पचने कुर्यात् । अन्यथौपासने इत्युक्तम् ॥ अग्नौकरणं तु प्रयोगपारिजातादि-

भिराब्दिकादिसर्वश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गोक्तेर्लौकिके पचने वा पाके कृतेपि गृह्याग्नौ पक्वचरुणैव कार्यमिति प्रतिभाति ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ विधुरोत्सन्नाग्न्यादेस्तु पृष्टोदिविविधानेनाग्निसंपादनमित्युक्तं हरिहरभाष्ये ॥ इति पाकाग्निः ॥

बौधायनने भी कहा है कि, पचनाग्नि वा उपासनाग्निको लेकर संन्यास ग्रहण करते हैं स्मार्त अग्निमें पाकतो अन्य शाखावालोंके निमित्त है यह कोई कहते हैं, सिद्धांत तो यह है कि, पूर्वोक्त वचन सर्वाधानके विषयमें उचित शिष्टाचारमें भी पचनाग्निको नहीं देखते, अडविलायमें भी यही कहा है; सर्वाधान पक्षमें वैश्वदेवश्राद्धको पचनाग्निमें और दूसरे कर्मको उपासनाग्निमें करै; अग्नौकरण तो प्रयोगपारिजात आदिकोंने वार्षिक आदि सम्पूर्ण श्राद्धमें पिंड और पितृयज्ञको व्यतिषंग अर्थात् (असम्बन्ध) कहनेसे पाक चाहै लौकिकअग्निमें वा पचनअग्निमें किया हो, गृह्यअग्निमें पकाये चरुसेही अग्नौकरण करनाही हमको विदित होता है, मदनरत्नमें भी ऐसेही कहा है जिसकी अग्नि बीचमेंही नष्ट हुई हो वह विधिसे अग्निका सम्पादन करै, यह हरिहरभाष्यमें कहा है ॥ इति पाकाग्निः ॥

श्राद्धकृत्यनिर्णयः।

चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः—"अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्रयतान्द्विजान् । प्रत्येकं प्रेषयेत्तेषां प्रदायामलकोदकम् ॥" देवलः—"ततो निवृत्ते मध्याह्ने कृत्तरोमनखान् द्विजान् । अभिगम्य यथान्यायं प्रयच्छेद्दन्तधावनम् ॥ तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैविकपूर्वकम् ॥ २॥ "औदुम्बरैस्ताम्रमयैः। 'अत्र क्षौरामलकस्नानादि निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयम्' इति हेमाद्रिर्माधवश्च ॥ यत्तु चन्द्रिकायां प्रचेताः—"तैलमुद्वर्तनं स्नानं दद्यात्पूर्वाह्ण एव च । श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत्" इति तन्निषिद्धतिथ्यादिविषयम् ॥ निषिद्धतिथ्यादि तु प्रागुक्तम् ॥

चन्द्रिकामें मार्कण्डेयका वाक्य है कि, जब दिनके छः मुहूर्त बीतजांय, तब एक २ सावधान हुए ब्राह्मणको आमले और जल लेकर भेजे, देवलका कथन है कि, मध्याह्नके अनन्तर रोम और नख कटाये हुए ब्राह्मणोंके पीछे जाकर दँतोनोंको दे, और तैलअभ्यंग स्नान और पृथक् २ स्नानके द्रव्य तांबेके पात्रोंमें रखकर क्रमपूर्वक विश्वेदेवाओंको दे, यहां क्षौर और आमलोंसे स्नानआदि निषिद्ध तिथिसे भिन्नमें जानना चाहिये, यह हेमाद्रि और माधवका कथन है, जो चंद्रिकामें प्रचेताका वाक्य है कि, श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणोंको तैल और उबटना स्नान यह प्रथमदिन देने और उनके नख और मूंछ डाढियोंका छेदन न करवावे, वह क्षौरमें निषिद्ध पूर्वोक्त तिथिके विषयमें है ॥ निषिद्धतिथि पहले कहदी हैं ॥

अभ्यङ्गे तु कलिकायां कात्यायनः—"तैलमुद्वर्तने देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यकालं न चिन्तयेत् ॥" अपरार्के प्रचेताः—"स्नातोधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । श्राद्धकृच्छुक्लवासाः स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः ॥" हेमाद्रौ जाबालिः—"ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् । रत्यौषधं परान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥"

अभ्यंगके विषय तो कलिकामें कात्यायनका यह वाक्य है कि, ब्राह्मणोंको तैल और उबटना प्रयत्नसे देना, और वे वर्जितकालकी चिन्ता न करके उबटना करें, अपरार्कमें प्रचेताका कथन है कि, स्नानसे देव और पितृकर्मका अधिकारी शुक्ल वस्त्रसे मौन और जितेंद्रिय होकर स्नान करनेवाला होता है,

हेमाद्रिमें जाबालिने कहा है कि, ताम्बूल दँतोन स्नेहसे स्नान भोजनका त्याग मैथुन औषधी पराया अन्न इनको श्राद्धकर्ता त्याग दे ॥

वस्त्रे विशेषमाह तत्रैव भृगुः–"नग्नः स्यान्मलवद्वासा नग्नः कौपीनकेवलः । द्विकच्छोनुत्तरीयश्च अकच्छोऽवस्त्र एव च ॥ नग्नः काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटः स्मृतः॥नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ॥३॥" ततः कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्रं कुर्यात् ॥ "जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्" इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ "यज्ञो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । वृथा भवति विप्रेन्द्र ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्" इति बृहन्नारदीयात् ॥ 'ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि' इति वृद्धपराशरोक्तेश्च ॥ अन्ये तु–"ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः । श्राद्धकाले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत् ॥ वामहस्ते च दर्भास्तु गृहे रङ्गावलिं तथा । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥२॥ इति संग्रहोक्तेः ॥ "ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा । श्राद्धकर्ता न कुर्वीत यावत्पिण्डान्न निर्वपेत्" इति विश्वप्रकाशे वचनाच्च न कार्यमित्याहुः ॥ अत्राचाराद्व्यवस्था ॥

वस्त्रमें विशेष वहांही भृगुजीने कथन किया है कि, ऐसा श्राद्धका कर्ता नग्न होता है मलिन वस्त्र केवल कौपीनधारी, द्विकच्छ जिसपर डुपट्टा न हो, अकच्छ और वस्त्रहीन, गेरूसे रंगेकपडेवाला, गीलेवस्त्रवाला, दुहरा वस्त्र पहरे, लालवस्त्रवाला, चिकना वस्त्र, सिलाहुआ वस्त्र पहरे त्याज्य हैं, फिर कर्ता ऊर्ध्वपुंड्र करै, क्योंकि हेमाद्रिमें यह कहा है कि, जप होम दान पितृकर्म वेदपाठमें वह सब क्षीण होता है, जो ऊर्ध्वपुण्ड्रके विना किया हो, बृहन्नारदीयका वाक्य है कि, हे विप्रेन्द्र! ऊर्ध्वपुण्ड्रके बिना किया यज्ञ दान जप होम वेदपाठ पितृकर्म व्यर्थ होता है, वृद्धपराशरका कथन है कि, देव और पितृकर्ममें ऊर्ध्वतिलक करै, और तो यह कहते हैं कि, द्विजातियोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि अग्निहोत्रकी समान है, परन्तु जब श्राद्धकाल आवे तब कर्ता और भोक्ता उसको त्याग दे, बांये हाथमें कुशा और घरमें रंगकी पंक्ति और तिलकको देखकर पितर निराश चले जाते हैं, इस संग्रहके वचनसे ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र वा चन्द्राकार, तिलकोंको श्राद्धकर्ता तबतक न करै, जबतक पिण्डोंको न दे, इस विश्वप्रकाशके वचनसे तिलक न करै, इस निषेधमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी ॥

अत एव बृहन्नारदीये–'ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन' इति ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिर्विप्रविषयः ॥ निषेधः कर्तृपर इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ यत्तु हेमाद्रौ देवलः– "ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्" इति तद्गन्धे त्रिपुण्ड्रविषयम् ॥ 'प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालं कुर्यात्स्वविग्रहम्' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपरार्के मदनरत्ने च ॥

इसीसे बृहन्नारदीयका कथन है कि, कोई श्राद्धमें ऊर्ध्वपुंड्र और तुलसीकी इच्छा नहीं करते, ब्राह्मणके लिये ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधि है और कर्ताके लिये निषेध है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है जो हेमाद्रिमें देवलका वाक्य है कि, मस्तकपर पुण्ड्रको और कंधेपर मालाको और शूद्रीके पतिको देखकर पितर निराश हो चले

जाते हैं, वह कथन मंत्रसे त्रिपुण्ड्रके विषयमें है, कारण कि, आश्वालायनने यह कहा है कि, पिण्डदानसे पहिले अपने शरीरको गन्ध आदिसे सुन्दर न करै, अपरार्कमें और मदनरत्नमें पुंड्रक गोलतिलक कहा है ॥

पृथ्वीचन्द्रस्तु पुण्ड्रं त्रिपुड्रकम्–"ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम्। निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्" इति बृहत्पराशरोक्तेः भोक्तुस्तिर्यग्लेपो भवत्येव ॥ "वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा। तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः" इति व्यासोक्तेरित्याहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–"सदर्भेण तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः। आचम्य स विशुद्धयेत दर्भत्यागेन चैव हि ॥"

और पृथ्वीचन्द्रोदयने पुंड्रक त्रिपुंड्रको कहाहै कारण कि, वृद्धपराशरका कथन है कि, ऊर्ध्व तिलक करै और त्रिपुंड्र न करै, कारण कि, त्रिपुंड्रको देखकर पितर निराश होचलते हैं, श्राद्धका भोक्ता तो मस्तकपर तिरछा लेप करै, क्योंकि व्यासने कहा है कि, श्राद्धकालमें सदैव मस्तकमें तिलकको त्यागदे और तिरछे और ऊर्ध्व पुंड्रको तो प्रयत्नसे धारण करै। पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, कुशा हाथमें लेकर जो बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धको करताहै वह कुशाको त्यागकर आचमनसे शुद्ध होताहै ॥

श्राद्धारम्भकालनिर्णयः।

श्राद्धारम्भकालमाहापरार्के गौतमः–आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत् ॥" एतदेकोद्दिष्टे ॥ पार्वणे तूक्तं मात्स्ये–"ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते ॥" तथा– "मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मंदीभवति भास्करः। तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते॥"

श्राद्धके प्रारम्भका समय अपरार्कमें गौतमने कहा है कि, कुतपमें श्राद्धका प्रारम्भ करके आरोहण पर्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध करै, और विधिका ज्ञाता विधिमें स्थित होकर रौहिणका लंघन न करै यह भी एकोद्दिष्टके विषयमें है, पार्वण काल तो मत्स्यपुराणमें यह वर्णन किया है कि, कुतपके मुहूर्तसे पीछे जो चार मुहूर्त हैं, ये पांचों मुहूर्त स्वधा भवन इष्ट हैं, तैसेही वाक्य है कि, जिससे सदा सूर्य मध्याह्नमें मंद होताहै, तिससे मध्याह्नमें आरम्भ करना अनन्त फलोंका देनेवाला और श्रेष्ठ है ॥

अथ श्राद्धपरिभाषानिर्णयः।

चन्द्रिकायां कात्यायनः–"दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा। पातयेदितरं जानुं पितॄन् परिचरन् सदा ॥" बौधायनः–प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम्। देवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तथा ॥"

अब श्राद्धकी परिभाषा कथन करते हैं। चन्द्रिकामें कात्यायन ऋषिका वाक्य है कि, देवताओंकी पूजा करता हुआ दक्षिण जानुको, और पितरोंकी पूजा करता हुआ वाम जानुको सदा झुकावै, बौधायनका कथन है कि, देवताओंकी प्रदक्षिण कुशा होती हैं, और पितरोंकी अप्रदक्षिण कुशा होती हैं, और देवताओंके सीधे (एक २) और पितरोंके द्विगुने होते हैं ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये शङ्खः–"आवाहनार्घ्यसंकल्पे पिण्डदानान्नदानयोः। पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि ॥ अक्षय्यासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम प्रकाशयेत् ॥" तत्रैव परि-

शिष्टे--"क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपाक्षये तथा । संकल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा ॥ अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत् ॥" कलिकायां संग्रहे--"आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव च । अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत्" ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें शंखका कथन है कि, आवाहन, अर्घ्य, संकल्प, पिंडदान अन्नदान पिंडोंका स्नान और पूजन अक्षय्य जल अस्नान और पाद्य इनमें गोत्र और नामका उच्चारण करै, वहांही परिशिष्टका कथन है कि, काल पिंडदान गंध धूप अक्षय जल संकल्प आसन दीप अंजन अभ्यंजन अन्न और अर्घ्यका दान इनके आदि और अन्तमें गोत्र नामका उच्चारण करै, कलिकामें संग्रहका वाक्यहै कि, आसन आवाहन पाद्य अन्नदान अक्षय्य जल पिंडदान इन छः में नामोंका उच्चारण करै ॥

मात्स्ये "सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च । पश्चाद्रूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः ॥" तत्रैव--"सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । सकारः कुतपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ॥" यथा--काश्यपसगोत्रेति ॥ "पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः । भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमधार्मिकः" इति मोक्षधर्मेषु प्रयोगाच्च ॥ तेन गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वाच्छाखाभेदाद्व्यवस्थेति शूलपाणिः ॥ एतद्येषामाम्नातं तेषामेव ॥

मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, प्रथम संबन्धको कथन करै फिर नाम गोत्रको, फिर पितरोंके रूपको जानै, यह सनातन क्रमहै, वहांही कहाहै कि, सकारसे बुद्धिमान् मनुष्य सदैव गोत्रको कहै, सकार कुतप जानना, तिससे तिसे यत्नसे कहै, जैसे काश्यपसगोत्र, और मोक्ष धर्मका प्रयोग भी है कि, पराशरसगोत्र वृद्ध-महात्मा पञ्चशिख भिक्षुका मैं परमधर्मात्मा शिष्यहूं, तिससे गोत्र सगोत्रके पर्यायमें शाखाभेदसे व्यवस्था जानो यह शूलपाणिका मतहै यह भी उनके निमित्तहै जिनको शास्त्रमें कहाहै ॥

हेमाद्रौ बृहत्प्रचेताः--"गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्मणि । गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्त एवं दाता न मुह्यति ॥ सर्वत्रैव पितुः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि । पितुरक्षय्यकाले तु पित्रे संकल्पने तथा ॥ शर्मन्नर्घ्यादिके कार्ये शर्मा तर्पणकर्मणि । शर्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३ ॥" स्वरान्तं--संबुद्ध्यन्तमिति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें वृद्धप्रचेताका कथनहै कि, सब स्थानमें गोत्रके अन्तमें सम्बोधन होता है, क्षयाह श्राद्धमें गोत्रस्य और तर्पणमें गोत्र कहाहै, इस प्रकार देनेवाला मोहको नहीं प्राप्त होता, सब स्थानमें पितुः कहाहै तर्पणमें पिता और अक्षय्यमें पितुः और संकल्पमें पित्रे कहना चाहिये, अर्घ्य आदिके समय शर्मन् और तर्पणके समय शर्मा और क्षयी श्राद्धके समय शर्मणः उच्चारण करना इसप्रकार पितरोंको दिया अक्षय होताहै ॥

तत्रैव चन्द्रिकायां च स्मृत्यन्तरे-"गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते । यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः कश्यपसम्भवाः ॥" यत्तु सत्याषाढः-'अथाज्ञातबन्धोः पुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेण वेति' तद्वैवाहपरम् ॥ नामोच्चारणे विशेषमाह हेमाद्रौ बौधायनः-"शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥" पित्रादिनामाज्ञाने तत्रैव-"पृथिवीवत्पितावाच्यस्तत्पिता चान्तरिक्षवत् । अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ॥ पित्रादीनां नाम यदा पुत्रैर्न ज्ञायते तदा ॥"

वहांही चन्द्रिकामें स्मृत्यन्तरका वाक्यहै कि, गोत्रके ज्ञान न होनेमें काश्यप गोत्र कहै, तिससे ही श्रुतिने कहाहै कि, सब प्रजा कश्यपसे उत्पन्न हुई हैं, जो सत्याषाढने यह कहा है कि, जिसके गोत्रका ज्ञान न हो उसका कर्म पुरोहित वा आचार्यके गोत्रसे करै, सो विवाहके विषयमें है, नाम उच्चारणमें विशेष हेमाद्रिमें तो बहुधा कथन किया है कि, ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्म क्षत्रियकेमें वर्म वैश्यके अन्तमें गुप्त शूद्रके अन्तमें दास लगावै, पिता आदिके नामका ज्ञान न होय तो वहांही कहा है कि, पिता पृथ्वी सत् और पितामह अन्तरिक्ष सत् और प्रपितामह दिविसत् कहना, जब पुत्र पिता आदिकोंके नामको न जानै तब यह जानना ॥

आपस्तम्बसूत्रेप्येवम् ॥ एतदन्यशाखापरम् ॥ आश्वलायनानां तूक्तं तत्सूत्रे–'यदि नामान्यविद्वांस्ततिपतृपितामहप्रपितामहेति ब्रूयात् ॥' तत् कारिकापि–'नामानि चेन्नजानीयात्तत्तेत्यादि वदेत्क्रमात् ॥'' तत्तेति सम्बन्धमात्रपरम् ॥ तेन पितृव्यादावपि तथेति गौडाः ॥ स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम् ॥ 'दान्तं नाम स्त्रीणाम्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः ॥ केचिद्देवीशब्दान्तमाहुः ॥ अन्ये तु देवी दा इति द्वयोः समुच्चयमाहुः ॥

आपस्तम्बसूत्रमें भी ऐसेही कहाहै कि, यह अन्य शाखाके विषयमें है आश्वलायनोंको तो उक्त सूत्रमें यह लिखा है कि, यदि नामोंका स्मरण न होय तो पिता पितामह प्रपितामह ऐसेही उच्चारण करै, उसकी कारिका भी है कि, यदि नामोंको न जानै तो तत् इत्यादि क्रमसे कहै तत् इत्यादि कथन सम्बन्ध मात्रके विषयमें है तिससे वह पितृव्य (चाचा) आदिमेंही उसीप्रकार कहना, गौडोंका कथन है कि, स्त्रियोंके नामके अन्तमें दा जानना, कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें गोभिलका कथन है कि, स्त्रियोंका नाम दांत होता है, कोई देवीशब्दान्त कहतेहैं और तो देवी दा इन दोनोंका समुच्चय एकार्थ कहतेहैं जैसे यशोदा देवी इति ॥

हेमाद्रौ नारायणः–''विभक्तिभिस्तु यत्किञ्चिद्दीयते पितृदैवते । सत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम् ॥'' चन्द्रिकास्मृत्यर्थसारयोश्च नारदीये–''अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा । अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ॥'' यत्तु व्यासः–''चतुर्थी चासने नित्यं संकल्पे च विधीयते । प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता सम्बुद्धिमपरे जगुः'' इति ॥ अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें नारायणका कथन है कि, पितर और देवताओंके कर्ममें जो व्याकरणकी विभक्तियोंसे प्रदान किया जाताहै वह सब सफल, और विपरीत निरर्थक होताहै, चंद्रिका और स्मृत्यर्थसार और नारदीयमें कहाहै कि, अक्षय्य जल, और आसनमें षष्ठी, आवाहनमें द्वितीया और अन्नदानमें चतुर्थी कहनी, और शेषमें विभक्ति सम्बोधनयुक्त होती है, और जो व्यासका कथनहै कि, आसन और संकल्पमें चतुर्थी कहाहै, और तर्पणमें प्रथमा सम्बोधन कहते हैं, यहां शाखाके भेदसे व्यवस्था है यह हेमाद्रि कहते हैं ॥

हेमाद्रौ भृगुः–''अर्घ्यावनेजनं पिण्डमन्नं प्रत्यवनेजनम् । सम्बुद्धिं तत्र कुर्वीत, शेषे षष्ठी विधीयते ॥'' तत्रैव मातुर्विशेषो नागरखण्डे–''मातर्मात्रे तथा मातुरासने कल्पने क्षणे । गोत्रे गोत्रायै गोत्रायाः प्रथमाद्या विभक्तयः ॥'' हेमाद्रौ प्रभासखण्डे–''यज्ञोपवीतिना कार्यं दैवं कर्म प्रदक्षिणम् । प्राचीनावीतिना कार्यं पितृकर्माप्रदक्षिणम् ॥'' अनुपनीत-

स्त्रीशूद्रादेस्तूत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये ॥ तस्योपवीतस्थानीयत्वात् ॥ 'अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः' इति ब्राह्माच्चेति वाचस्पतिः ॥

हेमाद्रिमें भृगुका वाक्यहै कि, अर्घ्य अवनेजन पिण्ड अन्न प्रत्यवनेजन इनमें सम्बोधन विभक्तिको कहै और शेषमें षष्ठी कहांहै, हेमाद्रिमें प्रभास खण्डका कथन है कि, सब देवकर्म सव्य और प्रदक्षिण क्रमसे करै और पितरोंका कर्म अपसव्य और अप्रदक्षिणसे करै, यज्ञोपवीत रहित स्त्री शूद्र आदिक तो दुपट्टेसेही सव्य अपसव्य जानने, कारण कि, वही यज्ञोपवीतके स्थानमें है, ब्रह्मपुराणकाभी वाक्य है कि, कोई सगोत्री क्रमसे अपसव्य वस्त्रको करके श्राद्ध करै यह वाचस्पति कहतेहैं ॥

यत्तु केचित्–'सदोपवीतिना भाव्यम्' इत्यस्य पुरुषार्थत्वात् ॥ प्राचीनावीतिकालेप्युपवीतान्तरेण तत्कार्यमेवेति ॥ तन्न ॥ विशेषेण बाधात् ॥ जमदग्निः–"सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् । आह्वानं स्वागतं चार्घ्यं विना च परिवेषणम् ॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनं तथा । विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाचनकं विना ॥ पितॄनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा ॥ ३ ॥"

जो कोई यह कहतेहैं कि, सदा उपवीतवाला रहै इस वचनको पुरुषार्थ होनेसे अपसव्यके समयभी दूसरे यज्ञोपवीतसे वह कर्म करै, सो ठीक नहीं कारण कि, विशेष वचनसे इसका विरोध है, जमदग्निका कथनहै कि, सूक्त और स्तोत्रका जप पिंडोंका सूंघना, दक्षिणा, आह्वान, स्वागत, अर्घ्य, परिवेषण, विसर्जन, सौमनस्य, मनकी प्रीति, आशीर्वादकी प्रार्थना, ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा, स्वस्तिवाचन, इन कर्मोंको छोडकर जो पितरोंके निमित्त कियाजाय वह सब अपसव्यसे करना ॥

हेमाद्रौ संग्रहे–"आदौ विप्रांघ्रिशौचांतेऽभ्यर्चने विकिरे कृते । पिण्डानप्यर्चयित्वा च विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तथा ॥ आचामेच्छ्राद्धकर्ता च स्थानेष्वेतेषु सप्तसु । आद्यान्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत्" ॥ २ ॥ तत्रैव–" श्राद्धारम्भेवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः । विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाचमनमिष्यते ॥"

हेमाद्रिमें संग्रहका वचनहै कि, आदिमें ब्राह्मणोंके चरण धोकर पूजन करके, विकिर देकर पिंडोका अर्चन और ब्राह्मणोंका विसर्जन करके इन सात स्थानोंमें श्राद्धका कर्ता आचमन करै, और आदि अन्तमें दोबार और शेषमें एक बार आचमन करै वहांही कहाहै कि, श्राद्धका आरंभ और अंत, वरणोंका शौच और पूजन इनका अन्त विकिर पिंडदान इन छहोंमें आचमन इष्टहै ॥

आश्वलायनः–"दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् । न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥" एतन्नित्यवर्ज्यमिति बोपदेवः ॥ इदं विष्णुभिन्नदेवपरम् ॥ "विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् । पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ॥ पितृशेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्मने । रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः ॥ २ ॥" इति स्कान्दात् ॥ 'पितरः सर्वे मनुष्या विष्णुनाशितमश्नंति' इति श्रुतेः ॥ "यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम् । तेनैव पिण्डांस्तुलसीविमिश्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तृप्ताः ॥" इति ब्राह्मोक्तेश्चेति श्रीधरस्वामिनृसिंहपरिचर्यादयः ॥ एतत्सर्वं निबन्धविरोधान्निर्मूलम् ॥

आश्वलायनका कथनहै कि, दान पढना देवपूजा जप होम व्रतआदि इतने कर्म श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंके विसर्जनसे पहिले न करै, यह नित्यको छोडकरहै यही वोपदेवने कहाहै, यह भी विष्णुदेवके भिन्नमेंहै, कारण कि, स्कन्दपुराणका कथन है कि, विष्णुको निवेदित अन्नसे अन्यदेवकी पूजा करै, और वही पितरोंको दे तो अनन्तफल प्राप्तहोताहै हरिपरमात्माको जो पितरोंका शेष देताहै तो पितर रेतके भक्षण करनेवाले और क्लेशके भागी होतेहैं, और श्रुतिमें भी कहाहै कि, पितर और सम्पूर्ण मनुष्य विष्णुके उच्छिष्टको भोजन करतेहैं, ब्रह्मपुराणका वाक्यहै कि, जो मनुष्य श्राद्धके समय विष्णुभोगका बचाहुआ और तुलसी मिलेहुए उसी अन्नके पिंड पितर और देवताओंको प्रेम भक्तिसे देताहै उसके पितर कोटिकल्पतक तृप्त होतेहैं, यह श्रीधरस्वामी नृसिंहपरिचर्या आदिका कथनहै, परन्तु यह संपूर्ण ग्रंथोंके विरोध होनेसे निर्मूलहै, मानने योग्य नहीं ॥

अत्र विशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–'श्राद्धानि तु समभ्यर्च्य नृवाराहं जनार्दनम्' ॥ शिवपुराणे–"पूजयित्वा शिवं भक्त्या पितृश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥' पूर्वनिषेधस्तु विहिताभिन्नपरः ॥ तथा हेमाद्रौ–"देवार्चा दक्षिणाङ्गादिः पादजान्वंसमूर्धनि । शिरोंसजानुपादेषु वामाङ्गादि च पैतृकम्॥"कलिकयां स्मृत्यन्तरे–"श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत् । अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥ मार्जनादौ तु ये दर्भाः पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् । उत्थानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत् ॥ प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ॥ ३ ॥"

इसमें विशेष हेमाद्रिमें विचारना, विष्णुधर्ममें कहाहै कि, श्राद्धके दिन नृसिंह, और वराह जनार्दनका पूजन करै शिवपुराणमें कहाहै कि, प्रीतिसे शिवजीकी पूजाकर पितरोंका श्राद्ध करै प्रथम शिवपूजनका निषेध तो शास्त्रके सिवाय अन्य विषयमें है, तैसेही हेमाद्रिमें कहाहै कि, पाद जानु कन्धे मस्तकको दक्षिण करके देवपूजन और शिर कन्धे जंवा चरणको बांये करके पितृ पूजन करै, कालिकामें स्मृत्यन्तरका वाक्यहै कि, श्राद्धके आरम्भकी कुशाको पादशौचमें पूजनआदिकी कुशा पूजनके अन्तमें मार्जनआदिकी कुशा पिंडके उठानेमें उत्तान आदिकी कुशा दक्षिणाके अन्तमें और प्रार्थनाकी कुशा नमस्कारमें छोडदे ॥

ऊहमाह विष्णुः–"मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥" यथान्यायमिति यत्र बहुवचनान्तः पितृशब्दस्तत्र सर्वपितृवाचित्वान्नोहः ॥ तत्रापि–'शुन्धन्तां पितरः' इत्यत्रोह एव । सर्वपितृवाचित्वे उत्तरमन्त्रद्वयवैयर्थ्यात् ॥ बहुवचनं तु नोह्यते ॥ प्रकृतावसमर्थत्वात्पाशानितिवत् ॥ ऋगन्ते च नोहः ॥

विष्णुने ऊह अर्थात् पलटना कहाहै कि, इसीप्रकार बुद्धियुक्त मनुष्य मातामहोंकाभी श्राद्ध न्यायसे मन्त्रोंका ऊह (नामका परिवर्तन कर) करै और शेषोंका मन्त्रवार्जित करै, न्यायसे यह कहनेसे कि; जहां बहुवचनांत पितृशब्द है वहां सबका वाची होनेसे परिवर्तन न करना, वहांही 'शुन्धन्तां पितरः यहां परिवर्तन ऊह होताहै यदि पितर शब्द सब पितरोंका वाचक स्वीकार मानोगे तो अगले दो मन्त्र वृथा होजांयगे, बहुवचनका तो प्रकरणमें असमर्थ होनेसे पाशानकी समान ऊह नहीं होता, ऋचाके अन्तमें ऋचाका ऊह न करै ॥

तस्मादृचं नोहेदिति निषेधात् ॥ एकोद्दिष्टेप्येवम् ॥ प्रेतैकोद्दिष्टे तु 'एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' इति विष्णूक्तेरूहः ॥ अत्र बहुवचनस्याप्यूहो वचनात् ॥ वृद्ध्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ शेषाणामिति पितृव्याद्येकोद्दिष्टे आवाहनादिमन्त्रवर्ज्यं कार्यमिति कल्पतरुः ॥ ऊहयोग्यपितृपदवान् मन्त्र एव तत्र न प्रयोज्यः ॥ न तूहः ॥ नापि पितृपदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः ॥ अर्थान्तरं चोक्तं प्राक् ॥

इस निषेधसे ऊह न करै वा एकोद्दिष्टमें भी ऐसेहीहै प्रेतके एकोद्दिष्टमें तो इस विष्णुके वाक्यसे ऊह होताहै कि, एकोद्दिष्टमें मन्त्रोंमें एकवचनका ऊह करना, यहां शास्त्रके कहे वचनसे बहुवचनकाभी ऊह होताहै, वृद्धिआदि श्राद्धमें तो विशेष वर्णन करैंगे शेष पितृव्यआदिके एकोद्दिष्टमें आवाहन आदिके मन्त्रोंको त्यागकर सम्पूर्ण कार्य करना यह कल्पतरुमें कहतेहैं शूलपाणिने तो यह कहाहै कि, ऊहके योग्य पितृपदवाला मन्त्रही वहां न पढे न ऊह करै, न पितृपदसे रहित श्राद्ध करै अर्थान्तर पहिले कहदियाहै ॥

बह्वृचकारिकापि–"अर्घ्यप्रदानमन्त्रे तु मात्रादिपदमावपेत् । शुन्धन्तामिति पित्रादौ मात्रादिपदमावपेत् ॥" मातृश्राद्धे पिण्डादाने' 'ये च त्वामत्रानु' इत्यत्र नोह इति वृद्धिकृत् ॥ तथा–"मातुः श्राद्धेप्यनूहेन कुर्यातिपण्डानुमन्त्रणम् । दशादानसुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः ॥ प्रवाहणमनूहेन तद्वत्प्राशनामिष्यते ॥" तथा–" आयन्तुनस्तिलोसीति उशन्तस्त्वेति यानि तु । अनूह्यः पितृशब्दोत्र पितृसामान्यवाचकः ॥" आपस्तम्बानां तु वक्ष्यते ॥

बह्वृचकारिकामें भी कहाहै कि, अर्घ्यके दानमन्त्रमें मातृआदि पदको कहै, 'शुन्धन्ताम्' इस मन्त्रमें 'पितरः' शब्दके स्थानमें 'मातरः' यह पद उच्चारण करै वृत्तिकार तो यह कथन करतेहैं कि, मातृश्राद्धके पिंडदानमें और 'ये च त्वा' मन्त्रोंको छोडकर ऊह न करै, तैसेही वचन है कि, माताके श्राद्धमें विना ऊह पिंडोंका अनुमन्त्रण वस्त्रका दान और स्तुतिको करै और पिंडोंका प्रवाह और प्राशनभी विना ऊहके इष्ट मानाहै तैसेही वचनहै कि, 'आयन्तु नः' तिलोसि, उशन्तस्त्वा' इन मंत्रोंके पितृ शब्दमें ऊह न करै कारण कि, वह सामान्यसे सब पितरोंका वाचकहै, आपस्तम्बोंके निमित्त तो कहेंगे ॥

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः–'स्नातः स्नातान् समाहूतान् स्वागतेनार्चयेत्पृथक् ॥' कलिकायां नारदीये–"प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च। दद्याद्दै ब्रह्मदण्डार्थं हिरण्यं कुशमेव च ॥" तत्रैव संग्रहे–"तिथिवारादिकं ज्ञात्वा सङ्कल्प्य च यथाविधि । प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वं संकल्पनादिकम् ॥ सम्बधं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रे तथैव च । वस्वादिरूपतां चापि स्वपितॄणामनुक्रमात् ॥ २ ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये नारदीये–'श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान् विप्रान् भूयो निमन्त्रयेत् ॥' आपस्तम्बस्तु–' पूर्वेद्युर्निमन्त्रणं परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणम् ' इत्याह ॥ यूयं मया निमन्त्रणीया इति निवेदनरूपमाद्यम् ॥

हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका कथन है कि, स्नान करके स्नान किये और बुलायेहुए ब्राह्मणोंको सन्मानसे पृथक् २ अर्चन करै कालिकामें नारदका वाक्यहै कि, प्रायश्चित्तसे विशुद्धात्मा मनुष्य ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर ब्राह्मणोंको ब्रह्मदण्डके निमित्त सुवर्ण और कुशा दे, वहांही संग्रहका वाक्यहै कि, तिथि वारआदिको जानकर और संकल्प करकै संकल्पआदि सम्पूर्ण कर्म अपसव्य होकर करै, प्रथम सम्बन्धको

फिर नाम गोत्रको फिर अपने पितरोंके वसुआदि रूपको क्रमसे कहै, चन्द्रोदयमें नारदीयका कथन है कि, श्राद्धके निमित्त आये ब्राह्मणोंको फिर भी निमन्त्रण दे, आपस्तम्ब तो यह कहते हैं कि, पहिले दिन निमंत्रण और दूसरे दिन दूसरा निमंत्रण और तीसरे दिन आमंत्रण होता है, उनमें प्रथम मैं निमंत्रण दूंगा, यह बात निवेदनरूप है ॥

तद्विधिमाह शौनकः–"गृहीत्वाऽमुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके । श्राद्धे तु वैश्वदेवार्थे करणीयः क्षणस्त्वया ॥ इत्येवं श्राद्धकृद्ब्रूयादोंतथेति वदेत्तु सः । श्राद्धस्य कर्ता स ब्रूयात्तं प्राप्नोतु भवानिति । स वदेत् प्राप्नुवानीति चेतरस्तं प्रति द्विजः ॥ ३ ॥" दैवे पार्वणे पुरूरवार्द्रवौ वाच्यौ ॥ 'पित्रादेरप्यनेनैव वृणीत विधिना द्विजान् ।' ततः कर्ता बह्वृचोऽनाहिताग्निः पिण्डपितृयज्ञं परिस्तरणादीध्माधानान्तं कुर्यात् ॥ 'अर्धाधानिनोप्येवम्' इति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च । भाष्यकारमते आब्दिकेप्येवम् ॥ वृत्तिकारमते नेदम् ॥

उसकी विधि शौनकने यह कही है कि, अमुक नाम अमुक गोत्रके अमुक नाम श्राद्धमें विश्वेदेवाओंके निमित्त आप क्षण (अवकाशरखना) ऐसे ब्राह्मणसे श्राद्धका करनेवाला कहै, इसके उत्तर ब्राह्मण 'ओम्' कहै, फिर श्राद्ध करनेवाला आप आइये ऐसे कहै, पार्वणमें पुरूरव और आर्द्रव देवता कहने, पिता आदिके ब्राह्मणोंकोभी इसी विधिसे निमंत्रण दे, फिर करनेवाला बह्वृच और अग्निहोत्री न होय तो पिंडपितृयज्ञ कुशाओंका परिस्तरण ईंधनके आधानपर्यन्त कार्य करै अर्द्धाधानमें भी यही क्रम करना, प्रयोगपारिजातमें, परिशिष्टमें और भाष्यकारके मतमें आब्दिक विधि करना ऐसाही है वृत्तिकारके मतमें नहीं है ॥

हेमाद्रौ शम्भुः–"सम्मार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले । उदक्प्लवमुदीच्यं स्याद्दक्षिणं दक्षिणाप्लवम् ॥" व्याघ्रः–"उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान् पूर्वाग्रान् विन्यसेत्कुशान् । दक्षिणे दक्षिणाग्रांस्तु सतिलान् विन्यसेत्कुशान् ॥" तत्रैव बौधायनः–"चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् । कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥" तत्रैव लौगाक्षिः–"हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदेविकमण्डलम् । दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितॄणामंघ्रिशोधने ॥" कलिकायां संग्रहे तु–प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम् । त्यक्त्वा षडंगुलं तस्माद्दक्षिणे वर्तुलं तथा" इत्युक्तम् ॥

हेमाद्रिमें शंभुका कथन है कि, सम्यक् प्रकार लिपेहुए द्वारेपर मंडल करै, उत्तर दिशाका मण्डल उत्तरको दक्षिण दिशाका दक्षिणको नीचा होना चाहिये, व्याघ्रका कथन है कि, उत्तरके मण्डलमें चावलोंसहित उत्तराग्र कुशा और दक्षिणमें तिलोंसहित दक्षिणाग्र कुशा रखनी चाहिये, वहांही बौधायनका कथन है कि, चौकोर तिकोना गोल अर्द्धचन्द्राकार मण्डल क्रमसे ब्राह्मणोंके निमित्त करै, वहांही लौगाक्षिका कथन है कि, विश्वेदेवाओंका मण्डल दो हाथका और उसके दक्षिणओर पितरोंका मण्डल पादशौचका बनाना चाहिये, कलिकामें संग्रहके वचनसे यह कथन किया है कि, देवताओंका चौकोर मण्डल बिलस्तभर और उससे दक्षिण छः हाथपर बिलस्तभरही पितरोंका निर्माण करै ॥

स्मृत्यन्तरे–"गर्तः पश्चांगुलो विप्रे जानुमात्रो महीभुजि । प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रके ॥ तिर्यगूर्ध्वप्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः । चतुरस्रं वर्तुलं च कथितं गर्तलक्षणम् ॥ पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् । तिष्ठंश्चेत्क्षालनं

कुर्यान्निराशाः पितरो गताः ॥ ३ ॥" इति ॥ तत्समूलत्वे मण्डलाग्रे पृथक् ज्ञेयम् ॥ तत्र गोमये हेमाद्रौ भृगुः–"अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः । आर्ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत् ॥" मात्स्ये–"अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्चापसव्यवत् । विप्राणां क्षालयेत्पादानभिवन्द्य पुनःपुनः ॥ प्रत्यङ्मुखः स्थितः कुर्याद्विप्रपादाभिषेचनम् ॥" तत्रैव भविष्ये–'प्रक्षालयेद्विप्रपादान् शन्नोदेवीरिति त्र्यृचा ।' पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धवसिष्ठः–'न कुशग्रन्थिहस्तस्तु पाद्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ कलिकायां संग्रहे–'ततः प्रक्षालयेत्पादौ भार्यास्रावितवारिणा ॥"

जो स्मृत्यन्तरमें यह कहा है कि, ब्राह्मण पांच अंगुलका राजा जानुपर्यन्त वैश्य प्रादेश (बिलस्तमात्र) इससे कुछ अधिक शूद्र गड्ढा करै, वह देवकर्ममें तिरछा और पितृकर्ममें ऊंचा होना चाहिये चौकोर और गोल होना उस गर्तका लक्षण है और उस गड्ढेमें आसनपर बैठे हुए ब्राह्मणोंके चरण प्रक्षालन करै, यदि खडे होकर चरण धोवै तो पितर निराश चलेजाते हैं, वह गर्त यदि प्रमाण युक्त होय तो मण्डलके आगे पृथक् जानना श्राद्धके गोबरके विषय हेमाद्रिमें भृगुका कथन है कि, अत्यन्त जीर्णदेहवाली, बन्ध्या, रोगिन, नई ब्याई, गौका गोबर न मँगवावै, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अपसव्य होकर पुष्प सहित चावलोंसे पूजा और वारंवार प्रणाम करके ब्राह्मणोंके चरणोंको पश्चिमको मुख करके धोवै, वहांही भविष्यका कथन है कि, 'शन्नोदेवी' इस ऋचाको पढकर ब्राह्मणोंके चरण धोवै पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध वसिष्ठका कथन है कि, कुशकी ग्रन्थी हाथमें लेकर बुद्धिमान् मनुष्यको पाद्य देना चाहिये, कलिकामें संग्रहका कथन है, फिर स्त्रीके दियेहुए जलसे चरणोंको धोवै ॥

तथा–"श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा भवेत् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥" तत्रैव–'नाधः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु ॥' पाद्यानन्तरमर्घ्यमपि दद्यादिति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव लौगाक्षिः–'मण्डलादुत्तरे देशे दद्यादाचमनीयकम् ॥' तत्रैव–"विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते । स्वयं चापि द्विराचामेद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः ॥" हेमाद्रौ नारदीये–"यत्राचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः । संगच्छन्ते बुधाः श्राद्धमासुरं तत्प्रचक्षते ॥"

तैसेही वचन है कि, यदि श्राद्धके समय वामभागमें होकर पत्नी जल दे तो वह श्राद्ध आसुर हो जाता है, पितरोंको और प्राप्त नहीं होता, वहांही कहा है कि, पिता आदिक कर्मके श्राद्धका कर्ता आसनके विना चरण न धोवै पाद्यके अनन्तर अर्घ्य भी दे यह हेमाद्रिका मत है, वहांही लौगाक्षिका कथन है कि, मण्डलके उत्तर देशमें आचमन दे वहांही कहा है कि, ब्राह्मणोंके चरण धोकर दो वार आचमन करावै, और श्रद्धासे आप भी दो वार आचमन करै, हेमाद्रिमें नारदीयका कथन है कि, जहां आचमनका जल चरणप्रक्षालनके पानीमें मिलजाय, हे पंडितों! वह श्राद्ध आसुर कहाता है ॥

हेमाद्रौ व्यासः–"सव्येनैवासनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् । व्याहृतीभिः समस्ताभिरासनेषूपवेशयेत् ॥ 'समाध्वम्' इति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानु संस्पृशन् । 'आस्यताम्' इति तान्ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥ २ ॥ हेमाद्रौ शातातपः–"द्वौ दैवेऽथर्वणौ

१ तथा च–सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्थिता । विप्रपादक्षालने च अभिषेके च वामतः ॥ अर्थात्–यह वचन इसका अपवाद है जो कहा है कि,सब धर्मकार्यमें पत्नी दक्षिण ओर स्थित रहै, ब्राह्मणोंके पादप्रक्षालन और अभिषेकमें बाईं ओर रहै ॥

विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥" द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ॥' यत्तु हेमाद्रौ हारीतः–'दक्षिणाग्रदर्भे प्राङ्मुखान् भोजयेत्, उदङ्मुखानित्येके' इति तन्मैत्रायणीयविषयम् ॥ 'प्राङ्मुखान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके' इति तत्परिशिष्टात् ॥ विकल्प इति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें व्यासका कथनहै कि, सव्यसे आसन रखकर और दक्षिण हाथपर दक्षिण हाथ रखकर समस्त व्याहृतियोंसे आसनोंपर बैठावै, दक्षिण जंघाका स्पर्श करता हुआ क्षमा करो यह कहकर आसनका स्पर्शकर बैठो, इसप्रकार कहै, हेमाद्रिमें शातातपका कथन है कि, देवकर्ममें अथर्ववेदी दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बैठावै, और पितृ कर्ममें उत्तराभिमुख बह्वृच अध्वर्यु सामवेदी तीन २ बैठावै, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, दैवकर्ममें दो पूर्व मुख और पितृ कर्ममें तीन २ वा एक २ उत्तरमुख बैठावै, जो हेमाद्रिमें हारीतका कथनहै कि, दक्षिणाग्र कुशाओंपर प्राङ्मुख ब्राह्मणोंको भोजन करावै कोई यह कहतेहैं कि, उत्तराभिमुखोंको भोजन करावै, वह मैत्रायणीय शाखाके विषयमें है, कारण कि, उनका यह परिशिष्टहै प्राङ्मुखोंको जिमावै, कोई कहतेहैं कि, उत्तर मुखोंको विकल्प हो यह हेमाद्रिने कहाहै ॥

माधवीये यमः–"भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कामं तमभिभोजयेत् ॥" कौर्मे–'अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रचक्षते ।' विप्रनियमो माधवीये–"पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः । उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्परम् ॥" तत्रासनानि पृथ्वीचन्द्रोदये यमः–' आसनं कुतुपं दद्यादितरद्वा पवित्रकम् ॥"

माधवीयमें यमका वाक्यहै कि, भिक्षु (संन्यासी) ब्रह्मचारी भोजनके निमित्त ब्राह्मणोंके बैठे पीछे आया हो उसकोभी यथेच्छ जिमावै, कूर्मका कथन है कि, जिसमें अतिथि भोजन न करै, वह श्राद्ध नहीं कहाता ब्राह्मणोंका नियम माधवीयमें कहा है कि, सबके हाथमें पवित्री हों मौन हों और कोईभी उच्छिष्टका परस्पर भोजनके समय स्पर्श नकरै, आसन वर्णनकरते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका कथन है कि, कुतुप आसन वा पवित्र दे ॥

हेमाद्रौ चमत्कारखण्डे–"पितॄणां घटितं हैमं राजतं वापि चासनम् । येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि ॥ स वै दिव्यासनारूढो न हि प्रच्यवते दिवः ॥" हेमाद्रौ नागरखण्डे–'अयःशंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने ॥' कलिकायां संग्रहे–"क्षौमं दुकूलं नैपालमाविकं दारुजं तथा । पार्णं तार्णं बृसीं चैव विष्टरादि च विन्यसेत् ॥ अग्निदग्धान्यायसानि भग्नानि च विवर्जयेत् ॥"

हेमाद्रिमें चमत्कारखंडमें कहाहै कि, पितरोंको सुवर्ण, चांदी, ताम्रका आसन देनेसे वे स्वर्गसे च्युत नहीं होते, हेमाद्रिमें नागरखण्डमें लिखाहै कि, शंकुयुक्त आसन बैठनेके निमित्त न दे, कलिकामें संग्रहका कथन है कि, क्षौम (रेशम) का नैपालकी ऊन, काठ, तृण, पत्ते बृसी आदिका आसन दे अग्निदग्ध और भग्न आसनोंको त्यागदे ॥

हेमाद्रौ छागलेयः–"पश्चाद्भागादुपक्रम्य प्राच्यां पंक्तिर्यथा भवेत् । दक्षिणासंस्थिता ह्येषा पितॄणां श्राद्धकर्मणि ॥" पुलस्त्यः–"श्रीपर्णी वारुणी क्षिरी जम्बुकाम्रकदम्बकम् । सप्तमं वाकुलं पीठं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥" संग्रहे–"शमी च काश्मरी शेलुः कदम्बो वा-

रुणस्तथा । पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ॥" कारिका–'द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रीन्विप्रानुदगाननान् ॥'

हेमाद्रिमें छागलेयका कथनहै कि, आसन ऐसा हो जिसकी पंक्ति पूर्वको न हो, दक्षिणको स्थित पंक्ति पितरोंके श्राद्ध कर्ममें होती है, पुलस्त्यका कथन है कि, श्रीपर्णी, वारुणी, क्षीरी, जामुन, आम, कदम्ब, बकुल आसनपर दिया पितरोंको अक्षय होता है, संग्रहमें लिखा है कि, शमी, काश्मरी, शेलु, कदम्ब, वारुण यह पांच श्राद्ध और देवपूजामें श्रेष्ठ हैं, कारिकाका कथन है कि, देवश्राद्धमें दो ब्राह्मण प्राङ्मुख, और पितृ श्राद्धमें उत्तर मुख तीन होतेहैं ॥

पैठीनसिः–'कुतपः श्राद्धवेलायां श्रोत्रियो यदि दृश्यते ॥' आश्वलायनः–'नीवीवासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत् ॥' वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु–'दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम् ॥' यस्तु कातीयम्–'नीवी कार्या दशागुप्तिर्वामकुक्षौ कुशैः सह' इति ॥ तद्वृद्धिश्राद्धे 'पितॄणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ वामे दक्षिणे वेत्याचाराद्व्यवस्थेति मदनपारिजाते ॥

पैठीनसिका कथन है कि, श्राद्धके समय वेदपाठी दीखजाय तो कुतप काल समझना आश्वलायनका कथन है कि, नीवीके वस्त्रको अपनी रक्षाके लिये दशाके अन्तसे बांधले, वृद्ध याज्ञवल्क्य तो दक्षिण कटिमें तिलोंसहित तीन कुशा रक्खै, जो कातीय कथन करतेहैं कि, नीवी, दशासे गुप्त वाम कुक्षिमें तिलों सहित कुशासे करनी यह वृद्धिश्राद्धमें जानना क्योंकि यह स्मृत्यंतर है कि, पितरोंके कर्ममें दक्षिण पार्श्वमें और देवकर्ममें वाममें करै, वाममें वा दक्षिणमें इसकी देशाचारसे व्यवस्था है यह मदनपारिजातमें कहाहै ॥

आचार्यः–"प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीस्मरणं तथा । श्राद्धं कर्तास्मीति वदेद्विप्रैर्वाच्यं कुरुष्व च ॥" ब्राह्मे–"ततस्तिलान् गृहे तस्मिन् विकिरेच्चाप्रदक्षिणम् । श्रद्धया परया युक्तो जपेदपहता इति ॥" स्मृत्यर्थसारे–'अपहता इति तिलान्विकीर्य उदीरतामित्यृचा प्रोक्षेत् ॥' पराशरः–"तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नतः । प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥"

आचार्यका कथन है कि, तीन प्राणायाम और गायत्रीका स्मरण करके श्राद्ध करताहूं ऐसे कहै, कर इसप्रकार ब्राह्मण कहैं, ब्रह्मपुराणका कथन है, फिर बाम क्रमसे उस घरमें तिलोंको गेरै, स्मृत्यर्थसारमें है परम श्रद्धासे युक्त 'अपहता' इस ऋचाको पढकर तिल डाले, 'उदीरता' इस ऋचाको पढ प्रोक्षण करै पराशरने लिखा है कि, " तद्विष्णोः " इस मन्त्र वा गायत्रीको पढकर सावधानीसे शूद्रदर्शन आदिकी शुद्धिके निमित्त सब अन्नोंको छिडकै ॥

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे–"श्राद्धभूमौ गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् । वस्वादींश्च पितॄन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमोनमः । आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद्बुधः । पितरः क्षिप्रमायांति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च" ॥ ३ ॥ तत्रैव स्कान्दे–"तिला रक्षन्तु ह्यसुरान् दर्भा रक्षन्तु राक्षसान् । पङ्क्तिं वै श्रोत्रियो रक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः ॥" वसिष्ठः–'शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत् ॥'

हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका कथन है कि, श्राद्धकी पृथ्वीमें, गया और गदाधर भगवान्का ध्यान और उन दोनों को नमस्कार करके फिर श्राद्धका प्रारम्भ करना चाहिये, और देवता पितर महायोगी स्वाहा स्वधा इनको नित्य नमस्कारहै इस मन्त्रको श्राद्धके आदि मध्य अन्तमें बुद्धिमान् मनुष्य तीन वार जपै तो पितर शीघ्र आगमन करतेहैं और राक्षस पलायन करतेहैं, वहांही स्कन्दपुराणका कथनहै कि, तिल असुरोंसे कुशा राक्षसोंसे पंक्तिमें वेदपाठी और अतिथि सबसे रक्षाकरतेहैं, वसिष्ठका कथनहै कि, 'शुद्ध-वती० कुष्माण्डी० पावमानी०' ऋचाओंसे पाकआदिका प्रोक्षण करै ॥

अथ देवार्चा ।

तत्र प्रत्युपचारमाद्यन्तयोरपो दद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृत्यर्थसारे च ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-"आसनेष्वासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेपि वा। पितृकर्मणि वामे च दैवे दद्यात्तु दक्षिणे॥" प्रचेताः-"आसनेष्वासनं दद्यान्न तु पाणौ कदाचन। धर्मोसीत्यथ मन्त्रेण गृह्णीयुस्ते तु तान्कुशान् ॥" 'धर्मोसि विशिराजा प्रतिष्ठितः' इति मन्त्रः ॥ गालवः-दर्भा-नादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे। दैवे क्षणः क्रियतां तु निरंगुष्टं करं ततः ॥ ओं तथेति द्विजा ब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवानिति। कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नवानीति वै व-देत् ॥ २ ॥"

अब देवपूजाको वर्णन करतेहैं, उस पूजाके आदि और अन्तमें प्रति उपचारमें जलप्रदान करै यह वृत्ति और स्मृत्यर्थसारमें कथन कियाहै. हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, वाम और दक्षिण आसनोंपर आसन दे, पितृकर्ममें वाममें और देवकर्ममें दक्षिणमें प्रदान करै, प्रचेताका कथनहै कि, आसनोंपर आसन दे, हाथमें कदापि न दे, वे ब्राह्मण 'धर्मोसि' इस मन्त्रसे उन कुशाओंका स्वीकार करैं, 'धर्मोसि विशिराजा प्रतिष्ठितः' यह मन्त्रहै, गालवका कथनहै कि, हाथसे कुशा लेकर और दक्षिण हाथमें रखकर, दैवश्राद्धमें क्षणभर अंगुष्ठरहित हाथको करै, 'ॐ तथा' इसप्रकार ब्राह्मण कहै, तुम प्राप्तहौ इसप्रकार कर्ता कहै, प्राप्तहूंगा इसप्रकार ब्राह्मण कहै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये-"यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम्। दत्त्वेति भूयो दद्याद्वै दैवे क्षण इति क्षणम् ॥" 'तच्च षष्ठया चतुर्थ्या वा कार्यम्' इति स एव ॥ 'ततोर्घ्यं कल्पयेत्' इति मन्वादयः ॥ शौनकजयन्ताभ्यामर्घ्यरहितस्य देवार्चनस्योक्तेः ॥ 'आश्वलायनानां दैवेऽर्घ्यदानं न इति बोपदेवस्तन्न ॥ परिशिष्टप्रयोगपारिजातविरोधात् ॥ वृद्धिश्राद्धे तु दैवेप्यर्घ्यं दद्यात् ॥ 'देवेभ्योपि पृथग्दद्यादिहार्घ्यं श्रुतिचोदनात्' इति शौनकोक्तेः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहन्नारदीयका कथनहैं कि, यव और कुशाओंसे विश्वेदेवाओंको आसन देकर फिर दे, यही दैवश्राद्धमें क्षणहै, वह षष्ठी वा चतुर्थी विभक्तिसे करना चाहिये यहभी वही कहताहै, फिर अर्घ्य दे यह मनुआदि कहतेहैं, शौनक और जयंतने अर्घ्यरहितही देवपूजन कहाहै, इससे आश्वलायनोंके मतसे दैवश्राद्धमें अर्घ्यदान नहींहै, यह बोपदेवका कथनहै सो उचित नहीं कारण कि, इसमें परिशिष्ट और पारिजातका विरोध पडताहै, वृद्धिश्राद्धमें तो दैवमें भी अर्घ्य दे कारण कि, शौनकने यह कहाहै कि, श्रुतिकी आज्ञासे देवताओंको भी पृथक् अर्घ्य श्राद्धमें देनाचाहिये ॥

अथार्घ्यपात्रनिर्णयः ।

अथार्घ्यपात्रम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्यपाद्मयोः–"पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः। जलजं वापि कुर्वीत तथा सागरसंभवम् ॥" ब्राह्मे–"सौवर्णताम्ररौप्याश्मस्फाटिकं शंखशुक्तयः। भिन्नान्यपि हि योज्यानि पात्राणि पितृकर्मणि ॥" हेमाद्रौ प्रजापतिः–"सौवर्णं राजतं ताम्रं खाड्गं मणिमयं तथा । यज्ञियं चसमं वापि ह्यर्घ्यार्थं पूरयेद्बुधः ॥ अत्र विप्रैकत्वद्वित्वचतुष्ट्वादावर्घ्यपात्रे द्वे एव ॥

अब अर्घ्यके पात्र कहतेहैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्य और पद्मपुराणके वाक्यहैं कि, वनस्पतिके पत्तोंके जलसे उत्पन्नहुआ वा समुद्रसे उत्पन्न अर्घ्यपात्र करना चाहिये, ब्रह्मपुराणका कथनहै कि, सोना, तांबा, चांदी, पत्थर, स्फटिक, शंख, सीपी, इनके पात्र फूटेभी हों तो ये पात्र पितृकर्ममें युक्त करने, हेमाद्रिमें प्रजापतिका कथनहै कि, सोना, चांदी, तावा, गैंडा, मणि, यज्ञका, चमस, इतने पात्रोंको बुद्धिमान् मनुष्य अर्घ्यके निमित्त भरै, श्राद्धमें ब्राह्मण एक दो चार आदि भी होंय तो भी अर्घ्यपात्र दोही करै ॥

मानवसूत्रे तु–'द्वे वैश्वदेविके त्रीणि पित्र्ये एकैकमुभयत्र च' इत्युक्तम् ॥ तदेकविप्रपरं पात्रालाभपरं चेति हेमाद्रिः ॥ मदनरत्ने तु दैवे एकपात्रमुक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेपि–'पैतृकपात्राणि द्वे द्वे वैश्वदेविके' इति बृहत्पराशरोक्तेर्द्वे एवेत्याह ॥ बह्वृचानां तु दैवे विप्रद्वित्वेप्येकमर्घ्यपात्रमर्धशो दद्यादित्युक्तं परिशिष्टे प्रयोगपारिजाते च ॥ कलिकायां हारीतः–'दत्तमक्षय्यतां याति खाड्गेनार्घ्यं तु यत्कृतम् ॥' वृद्धमनुः–"मृन्मयं दारुजं पात्रमयःपात्रं च यद्भवेत् । राजतं दर्विकं कार्ये शिलापात्रं च वर्जयेत् ॥"

मानवसूत्रमें तो विश्वेदेवाओंके एक दो पितरोंके तीन वा दोनों स्थानोंमें एक २ होतेहैं यह कहाहै, वह एक ब्राह्मणके विषयमें वा पात्रके न प्राप्तहोनेपर है यह हेमाद्रिका मतहै, मदनरत्नमें तो दैवश्राद्धमें एकपात्र लिखाहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इस बृहत्पाराशरके वचनसे दोही कहेहैं कि, पितरोंके तीन पात्र और विश्वेदेवाओंके दो लिखेहैं, बह्वृचोंको तो परिशिष्ट और प्रयोगपारिजातमें यह कहाहै कि, दैवश्राद्धमें दो ब्राह्मण होंय तो भी अर्घ्यपात्र आधा २ प्रदान करै कलिकामें हारीतका कथन है कि, खड्गके पात्रसे अर्घ्य दियाहोय तो दिया हुआ अक्षय होताहै, वृद्धमनुका कथन है कि, मट्टी काठ लोहा चांदी शिलाके दैवश्राद्धमें पात्रोंको त्यागदे ॥

पुराणसमुच्चये–"मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमारक्तं जतुसंभवम् । त्रपुसीसलोहभवं सदा पात्रं विवर्जयेत् ॥" तत्रैव–"अष्टांगुलं भवेत्पात्रं पितॄणां राजतं शुभम् । दशांगुलं तु देवानां सौवर्णं शक्तितः कृतम् ॥ स्थापयेदर्घ्यपात्रे द्वे न्युब्जे तत्र कुशोपरि । द्वेद्वे पवित्रे विधिवत्पात्रयोश्चोपरि क्षिपेत् ॥ २ ॥" यज्ञपार्श्वः–"पवित्रेस्थेति मन्त्रेण पवित्रे छेदयेत्तु ते । औषधीमन्तरे कृत्वा त्वंगुष्ठांगुलिपर्वणोः ॥ स्फ्येन काष्ठेन लोहेन न मृन्मयनखादिभिः॥" वसिष्ठः–"तूष्णीं प्रोक्ष्याम्भसा पात्रे कुर्यादूर्ध्वं बिले ततः । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु कृत्वोपरि पवित्रक ॥"

पुराणसमुच्चयमें कहा है कि, मट्टी कांसी लाख शीशा लोहा इनके पात्र और रक्तपात्र को सदैव त्याग दे वहांही लिखाहै कि, पितरोंके श्राद्धमें आठ अंगुलका चांदीका पात्र और देवोंके श्राद्धमें सुवर्णका दश

अंगुलका पात्र यथाशक्ति से निर्माण करै, औंधे दोपात्र कुशाओंपर रक्खै, दोदो पवित्री विधिसे अर्घ्यपात्रों पर रक्खै, यज्ञपार्श्वका लेखहै कि, औषधिको बीचमें करके अंगुष्ठ और अंगुलियोंके पर्वोंसे वा स्फ्य काष्ठसे, 'पवित्रेस्थः' इस मंत्रसे उन पवित्रियोंका छेदन कर, लोहा मृत्तिकाके पात्र और नख आदिकोंसे छेदन न करै, वसिष्ठने कहाहै कि, तूष्णीं जलसे दोनोंपात्र छिडककर सीधे करै, और दोनों जलसे पूरे करके पवित्रियोंको उनके ऊपर रखदे ॥

वृद्धपराशरः–"पात्रद्वयमथार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः । प्राङ्मुखोमरतीर्थेन शन्नो देव्योदकं क्षिपेत् ॥ यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् ॥" मानवसूत्रे–'सुमनसः प्रक्षिप्योत्पूय यवान् प्रक्षिप्य' इति ॥ यवोसीति मन्त्रः पाद्मे–"यवोसि धान्यराजो वा वारुणो मधुमिश्रितः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतः ॥" 'राजो वा वारुणो मधुसंयुतः' इति परिशिष्टपाठः ॥ गोभिलेन तु–'यवोसि सोमदैवत्यः' इति तिलमन्त्रोऽत्र स्वाहायुक्त उक्तः ॥

वृद्धपराशरने लिखाहै कि, अर्घ्यके निमित्त दोनों पात्र, एक धातुके बनेहों, पूर्वमुख होकर देवतीर्थसे 'शन्नोदेवी०' इस मंत्रसे जल, और 'यवोसि०' इस मंत्रसे मौन हो जौ और पुष्प चन्दन डालै, 'यवोसि' मन्त्र पद्म पुराणमें लिखा है कि, हे यव ! तू धान्योंका राजा है, और वारुण मधुसे युक्त है सब पापोंको दूरकर तुझे ऋषियोंने पवित्र कहा है, 'राजो वा वारुणो०' ऐसा परिशिष्टमें पाठ है गोभिलने तो 'यवोसि सोमदैवत्यः०' यह तिलका मन्त्रही स्वाहासहित यहां वर्णन किया है ॥

हेमाद्रौ यमः–"यवहस्तस्ततो देवान्विज्ञाप्यावाहनं प्रति । आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥" वृद्धपराशरः–"ततः सव्यकरं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि । देवानावाहयिष्येहमिति वाचमुदीरयेत् ॥ आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगत । विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥ २ ॥" श्राद्धविशेषे विश्वेदेवानामज्ञाने हेमाद्रौ बृहस्पतिः–"उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः । अयमुच्चारणीयस्तैर्मन्त्रः श्राद्धसमान्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः । ये ह्यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ २ ॥" इदं चावाहनमर्घ्यपात्रासादनात् प्राक् हेमाद्रिणोक्तम् ॥ तत्र कातीयैः प्राक्कार्यं तथैव तत्सूत्रात् ॥ अन्यैस्तदुत्तरम् ॥

हेमाद्रिमें यमका कथन है कि, यवोंको हाथमें लेकर आवाहनके निमित्त देवोंकी प्रार्थना कर उनकी आज्ञासे विश्वेदेवोंकी प्रार्थना करै, वृद्धपराशरका कथन है कि, ब्राह्मणकी दक्षिण जंघापर दक्षिणहाथ रखकर यह वाक्य कहै कि, मैं देवताओंका आवाहन करताहूं, आवाहन कर उनकी आज्ञासे 'विश्वेदेवास आगत०' 'विश्वेदेवाः शृणुतं०' इन दो मन्त्रोंको पढै, श्राद्ध विशेषमें विश्वेदेवाओंका नाम स्मरण न होय तो हेमाद्रिमें बृहस्पतिने यह कहा है कि, विश्वेदेवाओंकी उत्पत्ति और नाम जो ब्राह्मण नहीं जानते वे श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रका उच्चारण करें कि, महाभागी और महाबली विश्वेदेवा वे आओ, जो इस श्राद्धमें कहे हैं, यह आवाहन अर्घ्यपात्रसे प्रथम हेमाद्रिने कहा है, और कातियोंने भी इसी प्रकार सूत्रके अनुसार करनेको लिखा है, दूसरोंने उसके उपरान्त कहाहै ॥

---

१ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवंमेयेअन्तरिक्षेय उपद्यविष्ठ । ये अग्निजिह्वा उतवायजत्रा आंसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ ऋ० ॥ ४ । ८ । १६ ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये शंखः-"सयवं पुष्पमादाय चरणादिशिरोन्तकम्। अर्चयेत्यर्चनं कुर्याद-न्तरे चोदकं तथा॥" पित्र्ये तु मूर्द्धादिपादान्तम्॥ "पादप्रभृतिमूर्द्धान्तं दैविके पूजनं भवेत्। शिरःप्रभृतिपादान्तं नमो व इति पैतृके" इति मदनरत्ने प्रचेतसोक्तेः॥ कलि-कायां संग्रहे-"तिष्ठन् कृताञ्जलिर्भूत्वा पठेन्मन्त्रं समाहितः। विश्वेदेवाः शृणुत इत्याग-च्छत्वपरं ततः॥"

पृथ्वीचन्द्रोदयमें शंखका वाक्य है कि, जो पुष्प लेकर चरणसे शिरपर्यंत पूजनकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पूजन और मध्य २ में जलदे, पितृश्राद्धमें पूजन मस्तकसे चरणपर्यंत और देवश्राद्धमें चरणसे शिर-तक पूजन होताहै और 'नमो वः ०' इस मन्त्रसे पितरोंका पूजन शिरसे चरणतक करै, यह मदनरत्नमें प्रचेताने लिखा है कि, कलिकामें संग्रहका वाक्य है कि, स्थित सावधान और कर जोडकर 'विश्वेदेवाः शृणुत० ' और 'आगच्छंतु० ' इन दो मन्त्रोंको पढै॥

हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः-"ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्। तदग्र चार्घ्यपात्रं तु स्वाहार्घ्या इति विन्यसेत्॥" गार्ग्यः-"दत्त्वा हस्ते पवित्रं च कृत्वा पूजां च पादतः। या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्॥" संग्रहे-'विश्वेदेवा इदं वोर्घ्यमिति दानं समादिशेत्।' तदन्ते 'स्वाहा नमः' इति वाच्यम्॥ 'या दिव्या इति मन्त्रेण स्वा-हाकरं नमोन्तकम्' इति हेमाद्रौ नागरखण्डात्॥

हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका कथन है कि, फिर ब्राह्मणोंसे अर्घ्यपात्रकी सिद्धि पूछकर उनके आगे 'स्वाहार्घ्या०' इस मन्त्रसे अर्घ्यपात्र रखदे, गार्ग्यने कहा है कि, हाथमें पवित्री देखकर और चरणसे शिरपर्यंत 'या दिव्या०' इस मन्त्रसे अर्घ्यके जलको हाथमें डालै संग्रहमें कहा है कि, हे विश्वेदेवो ! यह अर्घ्य तुम्हारे निमित्तहै, यह दानका मन्त्र कहकर उसके अन्तमें 'स्वाहा नमः' इस मन्त्रको पढै, कारण कि, हेमा-द्रिके नागरखण्डमें यह लिखा है कि, 'या दिव्या' इस मन्त्रके अन्तमें स्वाहा और नमः पढकर अर्घ्य देना चाहिये॥

आथर्वणसूत्रन्तु-'पाद्यमर्घ्यमाचमनीयमिति द्विजकरे निनयेत्' इत्यस्यैव त्रयमुक्तम्॥ गभस्तिः-"अर्घ्यं च पिण्डदानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च। गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेनैव तु दापयेत्॥" प्रतिविप्रं या दिव्येत्यावृत्तिः॥ बह्वृचानां त्वनेन दत्तार्घ्यानुमन्त्रणम्॥ ततः पात्रं दक्षिणे देवेभ्यः स्थानमसीतिन्युब्जमुत्तानं वा कार्यमिति गारुडे उक्तम्॥ एतदापस्तम्बानां नियतमन्येषां न। हेमाद्रौ विष्णुधर्मे-"गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चा-प्यथ भूषणैः। अर्चयेद्ब्राह्मणाञ्शक्त्या श्रद्दधानः समाहितः॥"

अथर्वणसूत्रमें तो पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय यह सब ब्राह्मणके हाथमें देने कहे हैं, गभस्तिने कहाहै कि, अर्घ्य पिंडदान स्वस्तिवाचन अक्षय्य जल गन्ध फूल आदि सब हाथसे दे, और प्रति ब्राह्मणके प्रति, 'या दिव्या' इस मंत्रको पढै, बह्वृचोंमें तो दिये हुये अर्घ्यका इस मन्त्रसे अनुमन्त्रण

---

१ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरश्शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधा-यै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त-सतो वः पितरो देष्मतद्वः पितरो वास आधत्त॥

होता है अर्थात् अर्घ्य देकर मंत्रको पढा जाता है फिर पात्रसे दक्षिणकी ओर देवताओंकी स्थिति हो यह कहकर औंधा वा सीधा रख दे, यह गारुडमें लिखा है, आपस्तम्बोंमें इसका नियम है औरमें नहीं, हेमाद्रिके विषे विष्णुधर्ममें कथन किया है कि, श्रद्धावान् मनुष्य सावधान होकर गंध पुष्प धूप वस्त्र भूषणोंसे ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन करै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये मार्कण्डेयः-'चन्दनागुरुकर्पूरकुंकुमानि प्रदापयेत् ॥' विष्णुः-'चन्दनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्यनुलेपनाय' इति ॥ व्यासः-'अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत् ।' कलिकायां स्मृतिः-"गन्धद्वारेति वै गन्धमायने ते च पुष्पकम् । धूरसी, त्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मन्त्रेण वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः । आसने स्वासनं ब्रूयादर्घ्ये स्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगन्धिश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः । सुज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः ॥ ३ ॥" विप्राणां गन्धेन वर्तुलं त्रिपुण्ड्रं वा न कार्यम् ।

पृथ्वीचन्द्रोदयमें मार्कण्डेयका कथन है कि, चंदन अगर कपूर कुङ्कुम दे, विष्णुधर्मका कथन है कि लेपनके निमित्त चंदन अगर कुंकुम कपूर पद्माखको दे, व्यासजीने कहा है कि, जिसके हाथमें पवित्री न हो वह 'गंधद्वारां' मंत्रको पढकर गंधसेही अर्चन करै, कलिकामें स्मृतिका वाक्य है कि, 'गन्धद्वारां०' 'इससे गंध' आयने ते०, इससे फूल 'धूरसि' से धूप, 'उद्दीप्यस्व०' इससे दीप, और 'युवं वस्त्राणि०' इससे वस्त्र प्रयत्नसे दे, आसनमें स्वासन, अर्घ्यमें स्वर्घ्य, गन्धमें सुगन्ध, पुष्पमें सुपुष्प, मालामें सुमाला, धूपमें सुधूप दीपमें सुज्योतिःवस्त्रमें स्वाच्छादन, यह क्रमसे करै, ब्राह्मणोंका गंधसे वर्तुल (गोल) वा त्रिपुण्ड्र न करै ॥

हेमाद्रौ देवलः--"ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे मालां तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥" पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपरार्के मदनरत्ने च ॥ पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वर्तुलमर्धचन्द्रं च ॥ "ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्" इति ॥ वृद्धपराशरोक्तेस्तिर्यग्लेपो भवत्येव "वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः" इति व्यासोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥

हेमाद्रिमें देवल कहते हैं कि, मस्तकमें पुण्ड्र और कन्धेपर माला देखकर और वृषलीपतिको देखकर पितर निराश हो जाते हैं ब्राह्मणोंके मस्तकपर गोलाकार पुण्ड्र होता है, यह अपरार्क और मदनरत्नमें कथन किया है त्रिपुंड्र वर्तुलाकार और अर्द्धचंद्रको पुंड्र कहते हैं, कारण कि, वृद्धपराशरमें लिखा है ऊर्ध्वपुण्ड्र करै, त्रिपुण्ड्र न करै, देव और पितृकर्ममें ऊर्ध्वतिलक करै, त्रिपुण्ड्रको देख पितर निराश जाते हैं, तिरछा लेप तो होता है, कारण कि, व्यासने यह कहा है कि, श्राद्धके समय सदा मस्तकपर तिलकको त्याग दे, तिरछा वा ऊर्ध्व पुण्ड्र तो यत्नसे धारण करै यह पृथ्वीचन्द्र कहते हैं ॥

यत्तु बृहन्नारदीये-'ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन' इति तत्कर्तृपरम् ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे--"पूतिकं मृगनाभिं च रोचनं रक्तचन्दनम् । कालेयकं तूग्रगन्धं तुरुषकं चापि वर्जयेत् ॥" कस्तूर्या विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ वृद्धशातातपः-"पवित्रं

तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान् । राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥" पुष्पं तु ब्राह्मे-"जातीचम्पकलोध्राश्च मल्लिका: वाणवर्बरी । चूताशोकाटरूषं च तुलसी शतपत्रकम् ॥ कुब्जकं तगरं चैव भृंगमारण्यकेतकी । यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धे योग्यानि भो द्विजाः ॥ कमलं कुसुदं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः । इन्दीवरं कोकनदं कह्लारं च निवेदयेत् ॥ ३ ॥"

और बृहन्नारदीयमें कहा है कि, कोई आचार्य श्राद्धमें ऊर्ध्वपुण्ड्र और तुलसीकी इच्छा नहीं करते यह कर्ताके निमित्त है, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दुर्गंध कस्तूरी गोरोचन लालचंदन कालेयका उग्रगंध तुरुष्क इनको त्याग दे, हेमाद्रि यह कहते हैं कि, कस्तूरीमें बिकल्प है, वृद्ध शातातपका कथन है कि, पवित्री धारण करके जो ब्राह्मणोंको स्पर्श करता है वह श्राद्ध पितरोंको न मिलकर राक्षसोंका होता है, फूल तो ब्रह्मपुराणमें ये लिखे हैं कि, जाती, चंपक, लोध, चमेली, वाणवर्वरी, आम, अशोक, अडूसा, तुलसी, कमल, कुब्जक, तगर, भांगरा, वनकी केतकी, जुही, अतिमुक्त हे ब्राह्मणो ! ये पुष्प श्राद्धके योग्य हैं, कमल, कुमुद, पद्म, पुण्डरीक, इन्दीवर, कोकनद, कह्लार इनको भी प्रदान करै ॥

हेमाद्रौ वायुभविष्ययोः-"सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वाङ्कुरैरपि । संपूजनीयाः पितरः श्रेयस्कामेन सर्वदा ॥" स्कान्दे-"जातिश्च सर्वा दातव्या मल्लिकाश्वेतयूथिका । जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम् ॥ तत्रैव वृद्धमनुः-"न नियुक्तः शिखा-वर्ज्यं माल्यं शिरसि धारयेत् ॥"

हेमाद्रिमें वायुपुराण और भविष्यपुराणके वाक्य हैं कि, कल्याणकी इच्छावाला पुरुष सदैव पितरोंका पूजन कोमल २ कमल यव और दूर्वाओंके अंकुरोंसे करै, स्कंदमें लिखा है कि, जाती चमेली सफेद जुही जलसे पैदा हुए सब फूल और चंपा ये सबके देने योग्य हैं, उसी स्थानमें वृद्धमनुका कथन है कि, आज्ञाके विना पुष्पमाला शिखाको छोडकर शिरपर न धारण करै ॥

श्राद्धे वर्ज्यपुष्पाणि ।

वर्ज्यानि पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये-"केतकीं तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च वर्जयेत् । द्रोणं च करवीरं वै धत्तूरं किंशुकं तथा ॥ १ ॥" माधवीये स्मृत्यर्थसारे तुलसी निषिद्धा ॥ तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः ॥ समूलत्वेपि पिण्डपरः ॥ "तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः" इति प्रयोगपारिजाते पाद्मोक्तेरिति बोपदेवः ॥ वृद्धपराशरः-"न जातीकुसुमैर्विद्वान् बिल्वपत्रैश्च नार्चयेत् । जपादिकुसुमं झिण्टी रूषिकासकुरंटिका ॥ पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ॥"

वर्जित फूल, पृथ्वीचंद्रोदयमें भविष्य पुराणके वाक्यसे लिखे हैं कि, केतकी, तुलसी, बेलपत्र, द्रोण, कनेर, धतूरा, केशु त्याग दे, माधवीय और स्मृत्यर्थसारमें तुलसी भी निषिद्ध कही है, हेमाद्रि यह कहते हैं कि, तुलसीका निषेध प्रामाणिक नहीं है, प्रामाणिक होय तो पिंडोंपर है, कारण कि, प्रयोगपारि-जातमें पद्मपुराणका कथन है कि, तुलसीकी गंध सूंघकर प्रसन्न हुए पितर गरुडपर चढकर भगवान्के स्थानको जाते हैं, यह बोपदेव कहते हैं, बृहत्पराशरका वचन है कि, विद्वान् मनुष्य जातीके

पुष्प और बिल्वपत्रोंसे पूजन न करै जयवंती, झुंडी, रूषिका, कुरुण्डिकाके फूल श्राद्धकर्ममें त्यागने उचित हैं ॥

हेमाद्रौ शङ्खः–"उग्रगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥" अङ्गिराः–'न जातिकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्' इति जात्यां विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ निषेधः पिण्डविषयः–"कुन्दं शंभौ च नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजे । पिण्डे जातीं च नो दद्याद्देवीमर्केण नार्चयेत् ॥" इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरिति बोपदेवः ॥

हेमाद्रिमें शंखका वाक्य है कि, जिनकी उग्र गन्ध हो वा जिनमें गन्ध न हो जो चौंतरेके पेडके हों वा लालहों वे त्यागने योग्यहैं, और जलसे उत्पन्न हुएहोंय तो वे लाल पुष्प विशेषकर देनेयोग्यहैं अंगिराका कथन है कि, जातीपुष्प और केलेके पत्र न दे, हेमाद्रि तो यह कहतेहैं कि, जातीमें विकल्पहै निषेध पिंडोंके निमित्त है, कारण कि, वृद्धयाज्ञवल्क्यका यह वचनहै कि, महादेवको कुन्द विष्णुको धतूरा और पिण्डपर जातीको न देना और आकके फूलसे देवीको न पूजै यह बोपदेवका मत है ॥

स्मृतिसारे–"आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी शतपत्रिका । चम्पकं तिलपुष्पं च षडेते पितृवल्लभाः ॥ केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा । पाटलां चैव जातीं च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥ २ ॥" केचित्पिण्डे तुलसीमाहुः–"पितृपिण्डार्चनं श्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः । प्रीणिताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनि ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥

स्मृतिसारमें कहाहै कि, अगस्त, बांगरा, तुलसी, कमल, चम्पा, तिलफूल, यह छः पितरोंको प्रियहैं केतकी, कनेर, बकुल, कुंद, पाटला, जाती, श्राद्धमें इन्हें, यत्नसे त्यागदे, कोई पिंडपर तुलसीको कहतेहैं कारण कि, मार्कण्डेयका कथनहै कि,जिनमनुष्योंने श्राद्धमें तुलसीके दलोंसे पितरोंका अर्चन किया है, उनके पितर तबतक प्रसन्न रहतेहैं जबतक पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्यहैं ॥

तत्र धूपाद्युपचारनिर्णयः ।

धूपस्तत्रैव विष्णुधर्मे–"धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चन्दनसारजः । अगरुश्च सकर्पूरस्तुरुष्कस्त्वक् तथैव च ॥" विष्णुः–'घृतमधुयुक्तं गुग्गुलुं श्रीखण्डदेवदारुसरलादि दद्यात्' इति ॥ तत्रैव देवलः–"ये हि प्राण्यङ्गजा धूपा हस्तवाताहताश्च ये । न ते श्राद्धे नियोक्तव्या ये च केचोग्रगन्धयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद्दुष्टं वा तृणगुग्गुलुम् ॥"

उसी स्थानमें विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, धूप, चन्दन, अगर, कपूर, तुरुष्क, तुरुष्ककी त्वचा इनकी धूप देनी विष्णुका वचनहै कि, घी और शहत से युक्त गुग्गुल, चन्दन, देवदारु, सरल आदि दे, वहांही देवलका वाक्यहै कि, जो धूप प्राणियोंके अंगसे उत्पन्न होतीहै अथवा हाथ और पांवसे ताडना की हो, जिसमें तीक्ष्ण गन्ध हो ऐसी धूप श्राद्धमें देनेयोग्य नहीं होती, केवल घी वा दुष्ट तृण और गुग्गुल ये भी नहीं देने ॥

दीपमाह विष्णुः–"घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः । वसामेदोद्भवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥" वस्त्रं ब्राह्मे–"कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान् ॥" हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते–"यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे

विजानता । पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं तेनाश्नुतेऽखिलम् ॥" तत्रैव पाद्मे—'निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्रदीयते ।' अन्यान्यपि च देयानि ॥

विष्णुने तो दीपकको कहाहै कि, घृतसे वा तिलके तेलसे दीपक दे, बसा वा मेदाके दीपकको किसीप्रकार न देना चाहिये, ब्रह्मपुराणमें कपडा देना लिखाहै कि, कौशेय, रेशमी, कपास का नया डुपट्टा और श्वेतवस्त्र इनको जो मनुष्य श्राद्धमें प्रदान करताहै वह उत्तम कामनाओंको प्राप्त होताहै, हेमाद्रिमें ब्रह्मवैवर्तका वाक्यहै कि, ज्ञानीमनुष्य वस्त्रके अभावमें यज्ञोपवीत दे, वह पितरोंके वस्त्रदानके फलको प्राप्त होताहै, वहांही पद्मपुराणका वाक्यहै कि, वस्त्रके अभावमें यथाशक्ति वस्त्रका मूल्य देना चाहिये उसीस्थलमें और भी देनेके पदार्थ कहे हैं ॥

श्राद्धे देयवस्तुनिर्णयः ।

तत्रैव कालिकापुराणे—"धात्वादिनिर्मिता रम्या दीपिकाः श्राद्धकर्मणि । पितॄनुद्दिश्य यो दद्यात्स भवेद्भाजनं श्रियः ॥ यो धूपदानपात्रं तु पात्रमारार्तिकस्य च । दद्यात्पितृभ्यः प्रयतस्तस्य स्वर्गेऽक्षया गतिः ॥ २ ॥" विष्णुधर्मे—"यः कञ्चुकं तथोष्णीषं पितृभ्यः प्रतिपादयेत् । ज्वरोद्भवानि दुःखानि स कदाचिन्न पश्यति ॥ स्त्रीणां श्राद्धे तु सिन्दूरं दद्युश्चण्डातकानि च । निमन्त्रिताभ्यः स्त्रीभ्यो ये ते स्युः सौभाग्यसंयुताः ॥ २ ॥"

वहांही कालिकापुराणके वचनसे कहेहैं कि, जो मनुष्य पितरोंके निमित्त श्राद्धकर्ममें धातुआदिसे बनीहुई मनोहर दीवट देताहै, उसके यहां लक्ष्मी स्थिर रहतीहै, जो मनुष्य धूपदानी और आरतीके पात्रको देताहै उसकी स्वर्गमें अक्षयगति होतीहै, विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, जो मनुष्य पितरोंके निमित्त कंचुक (कुरता) और उष्णीष (पगडी) देताहै वह ज्वरसे उत्पन्नहुए दुःखोंको कदाचित् नहीं प्राप्त होता स्त्रियोंके श्राद्धमें निमंत्रित स्त्रियोंको, सिंदूर और चूडा आदिको जो देतेहैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥

हेमाद्रावादित्यपुराणे—"न कृष्णवर्णं दातव्यं नापि कार्पाससंभवम् । पितृभ्यो नापि मलिनं नोपयुक्तं कदाचन ॥ न च्छिद्रितं नापदशं न धौतं कारुणापि च ॥" कार्पासनिषेधोन्यसंभवे ॥ तत्रैव—"पितॄन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकम् । यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम् ॥" एतद्यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेपि देयमिति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका वाक्यहै कि, ऐसे वस्त्र पितरोंको श्राद्धमें न दे, काला, कपासका, मैला, पहरा हुआ, छिद्रयुक्त, दशाहीन, धोबीका धुला इनमें कपासके वस्त्रका निषेध अन्यवस्त्रके मिलनेपर समझना, वहांही लिखाहै कि, वस्त्रोंसे पितरोंको पूजकर यज्ञोपवीत दे यज्ञोपवीतके दिये विना श्राद्ध निष्फल होताहै, यज्ञोपवीत, स्त्री, संन्यासी, शूद्र, इनके श्राद्धमें भी देना यह हेमाद्रिका मतहै ॥

तत्रैव नृसिंहपुराणे—"कमण्डलुं ताम्रमयं श्राद्धेषु प्रददाति यः । काष्ठेन निर्मितं वापि नारिकेलमथापि वा ॥ दद्यात् कमण्डलुं श्राद्धे स श्रीमानभिजायते । यो मृत्तिकाविरचितान् श्राद्धेषु च घटाञ् शुभान् ॥ प्रदद्यात्करकान्वापि सोऽक्षयं विंदते सुखम् ॥ ३ ॥" तत्रैव—"उपानच्छत्रवस्त्राणि शुक्तिपात्रं कमण्डलुम् । शयनासनयानानि दर्पणव्यजनानि च ॥ अन्नं सुसंस्कृतं गन्धांस्ताम्बूलं दीपचामरम् । पितृभ्यो यः प्रयच्छेत्तु विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २ ॥"

वहांही नृसिंहपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य श्राद्धमें तांबे वा काष्ठ नारियलके कमंडलुको देता है वह लक्ष्मीयुक्त होता है, जो मट्टीके सुन्दरघट वा करक (करवा) को देता है वह अक्षय सुखको प्राप्त होता है, वहांही लिखा है कि, उपानह, (जूता) छतुरी, वस्त्र, भोजनका पात्र, लोटा, शय्या, आसन, यान, (सवारी) दर्पण, बीजना (पंखा), भलीप्रकार बनाया अन्न, गंध, पान, दीपक, चवँर इनको जो पितरोंके अर्थ देता है वह विष्णुलोकको जाता है ॥

सौरपुराणे-"चामरं तालवृन्तं च श्वेतच्छत्रं च दर्पणम् । दत्त्वा पितॄणामेतानि भूमिपालो भवेदिह ॥" तत्रैव नन्दिपुराणे-"अलंकाराः प्रदातव्या यथाशक्ति हिरण्मयाः । केयूरहारकटकमुद्रिकाकुण्डलादयः ॥" तथा-"स्त्रीश्राद्धेषु प्रदेयाः स्युरलंकारास्तु योषिताम् । मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकंकणादयः ॥ आदर्शव्यजनच्छत्रशयनासनपादुकाः । मनोज्ञाः पट्टवासाश्च सुगन्धाश्चूर्णमुष्टयः ॥ अङ्गारधानिकाः शीते योगपट्टाश्च यष्टयः । कटिसूत्राणि रौप्याणि मेखलाश्चैव कम्बलाः ॥ कर्पूरादेश्च भाण्डानि ताम्बूलायतनं तथा । भोजनाधारयन्त्राणि पतद्ग्राहास्तथैव च ॥ तथाञ्जनशलाकाश्च केशानां च प्रसाधनम् । एतान् दद्यात्तु यः सम्यक् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ९ ॥"

सूर्यपुराणमें लिखा है कि, चवँर, तालवृन्त (तालका पंखा) सफेद छत्र, दर्पण, पितरोंके निमित्त देनेसे राजा होता है, वहांही नंदिपुराणका कथन है कि, केयूर (बाजू) हार, कडे, अंगूठी, कुंडल आदि सुवर्णके अलंकार यथाशक्ति देने तैसेही वचन है कि, स्त्रियोंके श्राद्धमें मंजीर (पाजेब)मेखला (कौंधनी) कर्णिका (कर्णफूल) कंकण आदि स्त्रियोंके भूषणोंको दे, आदर्श (सीसा), पंखा, छत्र, सेज, आसन, खडाऊ और सुंदर पटके वस्त्र और सुगंधित चूर्णकी मुष्टि और शीतमें अंगारधानिका (अंगीठी) योगपट्ट, लाठी, चांदीके कटिसूत्र, मेखला, कंबल, वस्त्र, कपूर और ताम्बूलका पात्र (पानदान) भोजन रखनेके पात्र, (कटोरदान) भोजन लेनेके पात्र, अञ्जनकी सलाई, केशोंका प्रसाधन (कंघी आदि) को जो भली प्रकार देता है वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥

स्कान्दे-"सौवर्णं राजतं वापि कांस्येनाप्यथ निर्मितम् । दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राट् भवति भूतले ॥" वामनपुराणे-"बन्दीकृतास्तु ये केचित्स्वयं वा यदि वा परैः । येन केनाप्युपायेन यस्तान्मोचयते नरः ॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥" पराशरः-'वाचयेत्परिपूर्णत्वं वासो दत्त्वा विधानतः ।' नारदीये-'देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणं त्वथ ॥' तत्र पित्र्ये आसनाद्यशेषमर्चनकाण्डे वैश्वदेविकं ज्ञेयम् ॥ विशेषस्तूच्यते-'तत्रासने द्विगुणभुग्नाः कुशाः ॥ अत्रावाहनमासनात्पूर्वं वार्घ्यपूरणोत्तरं वाग्नौ करणोत्तरं वेति स्मृतिषु पक्षा उक्ताः ॥ एषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ द्वितीयपक्ष एव बहुसंमतः ॥

स्कंदपुराणमें लिखा है कि, सुवर्ण, चांदी, कांसीसे बने हुये भोजनपात्रको जो देता है वह पृथ्वीपर चक्रवर्ती होता है, वामनपुराणमें कहा है कि, जो स्वयं बन्धनमें हुए हैं वा औरोंने किये हैं जो मनुष्य उनको जिस किसी उपायसे छुटाता है, उसके पितर सनातन और अविनाशी पदको गमन करते हैं, पराशरने लिखा है कि, वस्त्रको देकर विधिपूर्वक, ब्राह्मणोंके मुखसे श्राद्धकी परिपूर्णता कहलावे, नारदीयपुराणमें लिखा है कि, फिर देवताओंकी आज्ञासे पितृगणोंकी अर्चा

करै, उसमें पितरोंकी आसन आदि संपूर्ण पूजा विश्वेदेवाओंके समान जाननी, जो विशेष है उसे वर्णन करते हैं, वहां आसनमें दूनी भुग्नकुशा रखनी और आवाहन आसनसे पूर्व वा अर्घ्यपूरणके उपरांत वा अग्नौकरणके उपरांत होता है ये बहु सम्मत है ॥

तत्रार्घ्यमाहाश्वलायनः-तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वपः प्रसिच्य शन्नो देवीरित्यनुमन्त्र्य तिलानावपति "तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नमद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृनिमांल्लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः ॥" इति ॥ अश्ममयं-स्फाटिका ॥ मृन्मयं-हस्तकृतमेव ॥ "कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत् । तदेव हस्तघटितं दैविकं केवलं तथा ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ अन्यान्यपि पात्राणि पूर्वमुक्तानि ॥

वहां आश्वलायनने अर्घ्यको कहा है कि, धातुके स्फटिक मिट्टीके तीन पात्रोंमें कुशा रखकर और जल देकर 'शन्नोदेवीरभिष्टये०' यह मंत्र पढे, फिर 'तिलोसि सोमदेवत्यो०' इस मन्त्रसे उसमें तिल डाले, मट्टीका पात्र वह लेना जो अपने हाथसे बनाया हुआ होय, कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, कुम्हारके चक्रसे बनेहुए पात्र आसुरी हैं, देवताओंके योग्य नहीं और वेही हाथसे बनेहुए हों तो दैविक होना कहते हैं, और भी पात्र पहिले कहआये हैं ॥

मनुः-"अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत् । पात्राण्यासादयेत्त्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया ॥" दत्तकादेः कर्तुर्हि पितृत्वादावपि वचनात् ॥ त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः ॥ माधवीये बैजवापः-"अर्घ्ये पितॄणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥" हेमाद्रावप्येवम् ॥ अत्रानुमन्त्रणं सकृत् ॥ तिलोसीत्यस्य प्रतिपात्रमावृत्तिः पितृशब्दस्यानूहश्चेति वृत्तिकृत् ॥ दर्भश्च त्रिगुणं पवित्रम् ॥ "तिस्रस्तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु पार्वणे । एकोद्दिष्टे शलाकैकां निधायोदकमाहरेत् ॥" इति हेमाद्रौ चतुर्विंशतिमतात् ॥

मनुने लिखा है कि, यदि अन्न वा द्विजोंके अभावमें एकही ब्राह्मण होय तो तीन पात्र रक्खै, ब्राह्मणकी संख्यासे नहीं, जहां दत्तक आदि श्राद्धकर्ता हो उसके पिता आदिमें भी वचनसे तीनही पात्र होते हैं, यह हरिहर आदिका मत है माधवीयमें बैजवापका कथन है कि, पितरोंके अर्घ्यमें तीनही पात्र धर्मज्ञाताको विधिसे कहने उचित हैं चाहै ब्राह्मण एक हो वा अधिक हों, हेमाद्रिमें भी ऐसाही लिखा है, यहां अनुमंत्रण एकवार करना और 'तिलोसि०' यह मंत्र प्रत्येक पात्रमें पढना चाहिये वृत्तिकारका तो यह मत है कि, पितृशब्दका ऊह न करना और उनमें कुशा तिगुनी पवित्री रखनी चाहिये कारण कि, हेमाद्रिमें चतुर्विंशतिका यह लेख है कि, पार्वणश्राद्धमें तीन २ कुशाकी शलाका पितरोंके पात्रमें और एकोद्दिष्टमें एक २ शलाका रखकर जल डाले ॥

तत्रैव विष्णुः-'दक्षिणाग्रदर्भेषु दक्षिणापवर्गचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वप आसिञ्चेच्छन्नो देवीति मन्त्रेण जलसेचनं बह्वृचभिन्नविषयम् ॥' अत्रास्मिन्पक्षे प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्तिः ॥ कारिकायाम्-'गन्धपुष्पाणि चैतेषु पात्रेषु प्रक्षिपेदथ ॥' ब्राह्मे-"जलं क्षीरं दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान् । कुशाग्रमधुपुष्पाणि दत्त्वाचामेत्ततः स्वयम् ॥"

वहांही विष्णुका वाक्य है कि, दक्षिणाग्र कुशा जिनमें हों और दक्षिणकोही पवित्रियोंसे ढके पात्र रक्खे हों उनमें 'शन्नोदेवी०' इस मंत्रको पढकर जल डाले जलसे सींचना बह्वृचोंसे भिन्नके विषय है, इस पक्षमें प्रत्येक पात्रमें मन्त्र पढना, कारिकामें लिखाहै कि, फिर इन पात्रोंमें गन्ध पुष्प डाले, ब्रह्मपुराणका लेखहै कि, जल दूध दही घी तिल चावल सरसों कुशाका अग्र शहत पुष्प इनको देकर स्वयं आचमन करै ॥

जातूकर्ण्यः-"ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्वधार्घ्या इति विन्यसेत् ॥" ततस्तिलहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृच्छेत् ॥ अत्र गोत्रसम्बन्धनामानि द्वितीयान्तत्वं च प्रागुक्तम् ॥ बैजवापगृह्ये-'तिष्ठन् पितॄनावाहयिष्यामीत्यामन्त्र्य ॥' कौर्मे-"अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः। आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ॥ आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तुनस्ततः ॥" अत्र सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः ॥

जातूकर्ण्यका कथनहै कि, फिर ब्राह्मणोंसे अर्घ्यपात्रकी सम्पत्ति कहलावै और 'स्वधार्घ्या' यह कहकर उनके आगे अर्घ्यके पात्र रक्खै, फिर तिल हाथमें लेकर ब्राह्मणकी दक्षिण जानुपर दक्षिण हाथ रखकर ब्राह्मणोंसे आवाहनको पूछै, यहां गोत्र नाम सम्बन्ध द्वितीयांत कहने यह पहिले कहआये, बैजवापने गृह्यमें कहा है कि, खडाहोकर पितरोंका आवाहन करताहूं यह ब्राह्मणोंसे पूछै, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, अपसव्य और दक्षिणको मुख करके 'उशंतस्त्वा०' इस मन्त्रसे फिर पितरोंका आवाहन करै, आवाहन करके पितरोंकी आज्ञासे फिर 'आयन्तुनः०' इस मन्त्रको पढै यहां सव्य होकर भी पहिले कह आये हैं इससे विकल्प है ॥

अत्राद्यमंत्रवृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामीत्युक्त्वा मूर्धादिपादान्तं तिलान्विकीर्यायन्तुन इति सर्वान्ते सकृज्जपेत्" इति निबन्धाः ॥ अत्रोपवेशनसंवेशनपाद्यार्घ्याचमनीयान्यपि हेमाद्रिणोक्तानि तान्यथर्ववेदिनां नियतानि ॥ नान्येषाम् ॥ तेषां च प्रपितामहादिपित्रन्तं प्रातिलोम्येन सर्वः प्रयोगः ॥ वाराहे-'गन्धपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्धस्ते तिलोदकम् ।' गार्ग्यः-'शिरस्तः पादतो वापि सम्यगभ्यर्चयेत्ततः' 'ततः स्वधार्घ्या इति पितृपितामहादिविप्राग्रे प्रत्येकं निवेदयेत्' इति कारिकायां वृत्तौ च ॥

यहां प्रथम मन्त्रको पढकर मेरे पिता अमुक गोत्र अमुक शर्मा, वसुरूपका आवाहन करताहूं, मस्तकसे पाद पर्यन्त तिलोंको डालकर सबके अंतमें 'आयंतुन०' इस मंत्रको एकवार जपै, यह बहुतसे ग्रंथोंमें लिखाहै, यहां बैठना, सोना, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय यहभी हेमाद्रिने कहे हैं, वे सब अथर्वण वेदियोंके निमित्त हैं औरोंके नहीं, और उनके मतमें प्रपितामहसे पितापर्यंत उलटा सब प्रयोग होताहै, वाराहपुराणका वाक्यहै कि, गंधपुष्पसे पूजन करके हाथमें तिलजल दे, गार्ग्यका कथन है कि, शिर वा चरणके क्रमसे फिर भलीप्रकार पूजन करै, फिर 'स्वधार्घ्या' यह कहकर पिता, पितामह, आदि ब्राह्मणोंके आगे एक २ अर्घ्यको रखदे, यह कारिका और वृत्तिमें कहाहै ॥

आश्वलायनः-" प्रसव्येनेतरपाण्यङ्गुष्ठान्तरेणोपवीतित्वाद्दक्षिणेन वासव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यं प्रपितामह ते अर्घ्यमित्यप्पूर्वं ताः प्रतिग्राहयिष्यन् सकृत्सकृत्स्वधा अर्घ्या इति प्रसृष्टा अनुमन्त्रयीत ॥ 'या दिव्या आपः पृथिवी

संबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः ॥ हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥' अर्घ्यादि प्रागगन्धादेर्यज्ञोपवीतमेव ॥ अर्घ्यदानात् प्रागन्या अपो दद्यात् ॥ यद्यप्यत्र सव्येन दक्षिणेन वार्घ्यं दद्यादित्युक्तं तथापि दक्षिणेनेत्यभिमतोर्थः ॥

आश्वलायनका वाक्यहै कि, उपवीत युक्त यजमान दक्षिण हाथके अंगूठेसे ढके अपसव्यसे वा सव्यसे ढकेहुए दक्षिणहाथके अंगूठेसे हे पितः ! यह तुमको अर्घ्यहै, हे पितामह ! यह तुमको अर्घ्यहै, ऐसे कहकर उनका जल ब्राह्मणोंको ग्रहणकराकर एक २ बार 'स्वधा अर्घ्या 'यह पूछे, और भलीप्रकार अर्घ्यदेनेके उपरान्त यह मंत्र पढे कि, जो जल दिव्यहैं पृथ्वी और अन्तरिक्ष सम्बन्धीहैं और जिनका सुवर्णके समान वर्ण तथा जो यज्ञके योग्यहैं वे हमें सुखदो, अर्घ्य और गन्धसे पहले यज्ञोपवीत प्रदान करै, अर्घ्य देनेसे पहिले और २ भी शुद्ध जल दे, यद्यपि यहां सव्य और दक्षिणसे अर्घ्य देना कहा है तथापि यही सत्य है कि, दक्षिण हाथसे दे ॥

कारिकायां वृत्तौ चैवम् ॥ पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात् ॥ पितुः स्थाने विप्रत्रयं चेदेकमर्घ्यं विभज्य दद्यात् ॥ त्रयाणां स्वधा अर्घ्या इति सकृन्निवेदनम् ॥ एवं पैतामहादावपि ॥ अन्यजलदानमर्घ्यमन्त्राश्च प्रतिविप्रमावर्तन्ते ॥ तेषु गन्धादौ च प्रतिविप्रं पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा ॥ पित्रादित्रयाणामेकविप्रपक्षे त्रिभिः पात्रैरेकस्यैवार्घ्यं दद्यात्' इति वृत्तिः ॥ कारिकापि-'स्वधाऽर्घ्या इत्यपोर्घ्यास्ता उपवीती निवेदयेत् ॥'' निवेदनात् प्राक् प्राचीनावीतमेवेत्यर्थः ॥ ''अर्घ्यं सशेषमादाय दक्षिणेन तु पाणिना । सव्यहस्तगृहीतेन निनयेत्पितृतीर्थतः ॥ दत्त्वा दत्त्वा निनीतास्ता यादिव्यार्चानुमन्त्रयेत् ॥''

कारिका और वृत्तिमें भी ऐसेही लिखाहै पिताआदिकोंको तीन पात्रोंसे अर्घ्य दे, यदि पिताके स्थानमें तीन ब्राह्मण होयँ तो एकही अर्घ्यको विभागसे देदे, और तीनोंके आगे 'स्वधार्घ्या' यह उच्चारणकर एकवार निवेदन करै, इसीप्रकार पितामह आदिके ब्राह्मणोंमें भी जानना चाहिये, जलदान अर्घ्यदानके अन्यमंत्र प्रत्येक ब्राह्मणके प्रति पृथक् २ पढने, उनमें गन्धआदिके विषय प्रतिविप्र पदार्थका संकेत है वा काण्डसमूहका संकेतहै, जब पिताआदि तीनोंका एक ब्राह्मणहो यह पक्षहै, तब तीनों पात्रोंसे एकही अर्घ्य दे, यह वृत्तिग्रन्थमें भी कहा है कि, अर्घ्यके जल स्वधार्घ्या यह कह कर और सव्य होकर निवेदन करै, और निवेदनसे पहले प्राचीनावीत (अपसव्य) रहै, शेष अर्घ्यको दक्षिण हाथमें लेकर और वामहाथसे पकडै, दक्षिणहाथसे पितृतीर्थसे दे और देदेकर ' दिव्या ' इस पूर्वोक्त ऋचाका उच्चारण करै ॥

यत्तु-'यादिव्या इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिःक्षिपेत्' इति ॥ यच्च वाराहे-'तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं द्विजः' इति ॥ यच्च व्यासः-''गोत्रसंबन्धनामानि पितॄणामनुकीर्तयन् । एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घ्यपात्रं विनिःक्षिपेत्'' ॥ इति । तद्बह्वृचातिरिक्तविषयम् ॥ तत आचामेत् । एवं मातामहेष्वपि ।

जो किसीने कथन किया है कि, ' यादिव्या ' इस मन्त्रसे अर्घ्यदे जो वाराहपुराणमें लिखाहै कि, अर्घ्यके तिल और जल द्विजाति अपसव्य होकर दे, जो व्यासजीका वाक्यहै कि, पितरोंके गोत्र सम्बन्धमें

---

१ दिव्या आपो अभियदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् । गवामहनमायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रासमेति ॥ ऋ० ॥ ५ । ७ । ३ ।

नामोंको कहै एक २ ब्राह्मणके आगे एक २ अर्घ्यपात्र रक्खै यह सब वचन बह्वृचोंसे भिन्नके विषयमें है, फिर आचमन करै, इसीप्रकार मातामहआदिमें भी जानना उचितहै ॥

आश्वलायनः—संस्रवान् समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति ।' संस्रवः शेषः । 'संस्रवो हि परिशिष्टो भवति' इति शतपथश्रुतेः ॥ केचित्तु हस्तगलिताम्बु वदन्ति ॥ समवनीयान्त्ये द्वे पात्रे पितृपात्रम् । आसिच्येति वृत्तिः ॥ 'प्रथमे पात्रे संस्रवान् समवनीय' इति कातीयसूत्राच्च ॥ ब्राह्मे तु प्रतिबिम्बावलोकनमुक्तम् ॥ स्कान्दे त्वायुष्कामस्य नेत्रासेचनमुक्तम् ॥ विप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिषेकः कार्य इति केचित् ॥ आश्वलायनः—"नोद्धरेत् प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्यपातितम् । आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत् ॥" 'यावद्विप्रविसर्जनम्' इति तुर्यपादे यमीयः पाठः ॥ अत्र वृत्तिः—'पितृपात्रं समवनयनदेशान्न चालयेदाश्राद्धसमाप्तेः । यस्मात्तत्र 'तृतीयपात्रेणावृत्ताः' इति ॥ यद्वा । प्रथमपात्रमेव न्यग्बिलं कुर्यात् इति ॥ कामाभावेपीदमेव शेषप्रतिपादनम् ॥

आश्वलायनने कहाहै कि, अर्घ्यके संस्रवोंको लेकर पुत्रकी इच्छावाला यजमान उन जलोंसे अपने मुख को सींचै, संस्रवनाम शेष (बाकी) काहै कारण कि, शतपथ ब्राह्मणकी श्रुतिहै कि, परिशिष्ट संस्रव होता है, कोई तो हाथसे गिरे जलको संस्रव कहते हैं, वृत्तिमें कहाहै कि, अन्तके दोपात्र लेकर पिताके पात्रमें सींचे और कातीय सूत्रमें भी लिखा है कि, पहिले पात्रमें संस्रवोंको डाले ब्रह्मपुराणमें तो अर्घोमें मुखका अवलोकन लिखाहै, स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, अवस्थाका अभिलाषी नेत्रोंको सींचै, पितृकर्ममें ब्राह्मण प्राङ्मुख बैठ यजमानको अभिषेक करै, यह किन्हींका मतहै आश्वलायनका कथन है कि, जो पितरोंका पात्र पहले औंधा किया हुआ है उसको सीधा न करना क्योंकि, उससे ढकेहुए पितर स्थितहैं यह शौनकने लिखाहै इस श्लोकके चौथे पादमें यमने यह कहाहै कि, तबतक सीधा न करै, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो, वृत्ति ग्रन्थमें तो यह कहाहै कि, पिताका पात्र जहां दिया हो उसको स्थानसे श्राद्धकी पूर्तितक न चलावै जिससे वहां पितर तीसरे पात्रसे ढकेहैं, अथवा पहले पात्रकोही औंधा करै, कामनाके अभावमें भी यही शेष जलका कथन किया है ॥

हेमाद्रौ कौर्मे—"संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं निधापयेत् ॥" शूलपाणौ यमस्तु—"पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मै पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत्" इत्याह ॥ 'अथ संस्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युब्जीकुर्यात्' इति सर्वैकवाक्यतयार्थ इति केचित् ॥

हेमाद्रिमें कूर्मपुराणका कथन है कि, फिर सम्पूर्ण संस्रवोंको सावधानीसे पात्रमें करै, फिर 'पितृभ्यः स्थानमसि, यह कह पात्र औंधा रखदे शूलपाणिमें यमने तो यह लिखाहै कि, पिताके पहिले पात्रमें पितामहका और उसपर प्रपितामहका पात्र रखकर न उठावै न चलावै, किन्हींका यह मतहै कि, संस्रवोंको लेकर और तीसरे पात्रसे ढककर औंधेमुंह करदे, सबकी एकवाक्यतासे यह अर्थ ठीक है ॥

अत्रिः—"गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापिधापयेत् । पितृभ्यः स्थानमसीति शुचौ देशे चितेर्चयेत् ॥" अर्चनं न्युब्जीकृतेपि तुल्यम् ॥ 'न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेदिति हेमाद्रिकल्पतरुः ॥ विप्रवामे इति हलायुधः ॥ कर्केपो-

मे इति शूलपाणिः ॥ 'उत्तानं विवृत्तं वापि पितृपात्रं तु तद्भवेत्' इत्युशनसोक्तेर्न्युब्जतैव साधुः ॥ 'मातामहादिसंस्रवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण न्युब्जीकुर्यात्' इति शूलपाणिः ॥ एकोद्दिष्टे तूहेन न्युब्जतेति पितृभक्तौ श्रीदत्तः ॥

अत्रिका कथन है कि, गन्धआदिसे उनको पूजनकर फिर तीसरे: पात्रसे ढकदे और 'पितृभ्यः स्थानमसि०' यह कहकर शुद्धस्थानमें उनकी अर्चा करै, और पूजन औंधा करनेपर भी तुल्य है कारण कि, प्रचेताका वचन है कि, औंधेपात्रको उत्तर दिशामें रखदे, हेमाद्रि और कल्पतरु तो यह कथन करते हैं कि, सब ब्राह्मणोंके उत्तरमें रक्खै, हलायुध कहतेहैं कि, ब्राह्मणोंके बांई ओरमें रक्खै, श्राद्धकर्ताकी बांई ओरमें रक्खै यह शूलपाणिका मत है, सीधा और ढका वह पिताका पात्र न हो, इस उशनाके कथनसे औंधा करनाही उत्तमहै मातामह आदिके संस्रवोंकोही पिताके पात्रमेंही लेकर प्रयाजके समान एकवार उलटाकर दे यह शूलपाणि कहते हैं, एकोद्दिष्ट श्राद्धमें तो ऊहकरके, औंधा करै, यह पितृभक्तिमें श्रीदत्तने लिखाहै ॥

यमोपि—"स्पृष्टमुत्तानमन्यत्र नीतमुद्घाटितं तथा । पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च ॥" वैश्वदेवे उत्तानमिति मदनपापरिजातः ॥ बैजवापः—"तस्योपरि कुशान् दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम् । गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतके ॥" अत्र गन्धादेर्दैवे पित्र्ये च पदार्थानुसमयस्य याज्ञवल्क्योक्तकाण्डानुसमयेन विकल्पो ज्ञेयः ॥ बह्वृचानां तु सूत्रे दैवानुक्तेः काण्डानुसमय एव अत्र प्राचीनावीतिनामगोत्रसंबुद्ध्याद्युक्तं प्राक् अन्यद्दैववत्तदन्ते आचमनं च ॥

यमस्मृतिका वाक्यहै कि, देने और खोलनेको त्यागकर सब स्थानमें सीधापात्र हो तो उसको देखकर पितर शीघ्र चले जातेहैं और उसको शाप देतेहैं, वैश्वदेवमें सीधा पात्र होताहै यह मदनपारिजातका मत है बैजवापका कथनहै कि, उसके ऊपर कुशास्थापितकर विश्वेदेवाओंके क्रमसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, यज्ञोपवीत प्रदान करै, यहां देव और पितृकर्ममें गन्धादिकका जो प्रत्येकको देना है उसका याज्ञवल्क्यके कथन किये काण्डानुसमयही है, अर्थात् एकसाथ देनेके संग विकल्प जानना उचित है बह्वृचोंके सूत्रमें तो देवश्राद्धका विधान नहीं कहा इससे काण्डानुसमयही है, यहां अपसव्यसे नाम गोत्र सम्बन्ध आदि पहले कह आये हैं और सब कर्म देवके समान जानने और उसके अन्तमें आचमनका विधान है ॥

हेमाद्रौ कालिकापुराणे—"निर्वर्त्य ब्राह्मणादेशात् क्रियामेवं यथाविधि । भाजनानि ततो दद्याद्धस्तशौचं पुनः क्रमात् ॥" आदेशात्पात्राणि दद्यादित्यन्वयः ॥ तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये ॥ तत्रैव ब्राह्मे—"मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः । गौरमृत्तिकया वापि भस्मना गोमयेन वा ॥" भृगुः—"भस्मना वारिणा वापि कारयेन्मण्डलं ततः । चतुष्कोणं द्विजाग्र्यस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु ॥ मण्डलाकृति वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ॥" बह्वृचपरिशिष्टे तु—'दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तं मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दर्भान् दद्यात्' इत्युक्तम् ॥

हेमाद्रिग्रंथमें कालिकापुराणका वाक्यहै कि, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर इसप्रकार विधिपूर्वक श्राद्धके कर्मको करके पात्रदे, और वारम्वार हाथ धुलवावे और पात्रभी ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्रदान करै

वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्यहै कि, नीवारका चून श्वेतमृत्तिका भस्म वा गोवरसे ब्राह्मणोंके पृथक् २ मंडल करै, भृगुका कथनहै कि, भस्म वा जलसे ब्राह्मणका चौकोन क्षत्रीका त्रिकोन वैश्यका गोलाकार मंडल करै, शूद्रके यहां छिडकनेकोही कथन कियाहै, बह्वृचपरिशिष्टमें तो यह लिखाहै कि, विश्वेदेवाओंका चौकोन पितरोंका गोलमण्डल करके क्रमसे यवसहित और तिलोंके सहित कुशा दे ॥

मार्कण्डेयः–"यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसाः । हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥" हेमाद्रौ हारीतः–'भूमावेव निदध्यान्नोपरि पात्राणि' इति ॥ तानि च हेमाद्रावत्रिराह–'भोजने हैमरौप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ॥' हारीतः–'राजतपार्णताम्रकांस्यपात्राणि भोजने इति ॥ तत्रैव वाराहे–"सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि तदसम्भवे । अन्यान्यपि हि कार्याणि दारुजान्यपि जानता ॥ नायसान्यपि कार्याणि पैत्तलानि न तु क्वचित् । न च सीसमयानीह शस्यन्ते त्रपुजान्यपि ॥ २ ॥" अत्रिः–"पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं द्व्यधिकं भोजनाय वै । गृहस्थैस्तु सदाकार्यमभावे हेमरौप्ययोः ॥ पालाशेभ्यो विना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ॥"

मार्कण्डेयका कथन है कि, मण्डलके विना अन्नके रसको यातुधान (असुर) पिशाच और क्रूरराक्षस हरण करलेते हैं, हेमाद्रिमें हारीत ऋषिका कथनहै कि, पृथ्वीमेंही पात्ररक्खै पत्ते आदिके ऊपर न रक्खै, वे पात्र हेमाद्रिमें अत्रिने इसप्रकार कहेहैं कि, विश्वेदेवाओंके पात्र सोनेके पितरोंके क्रमसे चांदीके होतेहैं हारीतका कथनहै कि, भोजनके पात्र चांदी पत्ते तांबे और कांसीके होतेहैं औरभी पात्र वाराहमें कहेहैं जो वे सोनेके न होंय तो उसके अभावमें चांदीके उसके अभावमें कांसीके जानता हुआ मनुष्य पात्र निर्माण करै लोहा, पीतल, सीसा, लाखके पात्रकेभी न निर्माण करै क्योंकि ये निकृष्टहैं अत्रिका कथनहै कि, ग्रहस्थी सदैव सुवर्ण और चांदीके अभावमें वावनपलभर कांसीका पात्र बनवावें, ढाकके विना भोजनके पात्र और पत्तोंके नहीं होते ॥

पृथ्वीचन्द्रस्तु–'कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः' इति ब्राह्मोक्तेः कांस्यपात्रनिषेधमाह ॥ बोपदेवस्तु स्मृतिसंग्रहमुदाजहार–"श्राद्धे पलाशपात्राणि मधुकौदुम्बराणि च । पारिकाकुटजप्लक्षक्रकचानि क्रमाज्जगुः ॥ कदलीचूतपनसजम्बुपुन्नागचम्पकाः । अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि ॥ २ ॥" इति ॥ हेमाद्रौ तु कदलीपात्रनिषेधमाहाङ्गिराः–'न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपात्रम्' इति ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें इसप्रकार ब्रह्मपुराणके वचनसे कांसीके पात्रका निषेध कहाहै कि, कांसीके पात्रमें हविको देखकर पितर निराश होजातेहैं, बोपदेवने तो स्मृतिसंग्रहके ये वचन कहेहैं कि, श्राद्धमें ढाक मौहुआ, गूलर, पारिका, कुटज, पिलखन, क्रकच, केला, आम, पनस, जामन, पुन्नाग, चंपाके पात्र क्रमसे वर्णन कियेहैं, यदि मुख्य ढाकके पात्र न मिलें तो पितृकर्ममें यहभी ग्रहण करने योग्यहैं, हेमाद्रिमें तो अंगिराने केलेके पत्तेका त्याग कहाहै कि, जातीके फूल और केलेके पत्तोंको प्रदान न करै ॥

क्रतुः–"असुराणां कुले जाता रम्भा पूर्वपरिग्रहे । तस्य दर्शनमात्रेण निराशा पितरो गताः ॥" एवं पात्राण्यासाद्य भस्ममर्यादां कृत्वा विप्रहस्तशोधनं कुर्यात् ॥ तत्र 'पिशङ्ग' 'राक्षणो' इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति ॥ मात्स्ये–"अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात्पाणिशोधनम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥" तत्रैव ब्रह्माण्डे–

"प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादद्भिर्विधानवत् । प्रक्षालनजलं दर्भैस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ ॥" मण्डलोपरीति हेमाद्रिः ॥

ऋतुने कहाहै कि, असुरोंके कुलमें उत्पन्नहुई रंभा असुरोंकी स्त्रीहै उसके अवलोकनसेही पितर निराश हो चलेजातेहैं, इसप्रकार पात्रोंको स्थापितकर और भस्मकी मर्यादाको करके ब्राह्मणोंके हाथका शोधन करावे हाथ धुलानेमें भी 'पिशंग, राक्षणो' इन दो मंत्रोंको कोई पढते हैं, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, भस्मकी मर्यादा किये विना जो हाथ धुलाताहै वह श्राद्ध आसुर होजाताहै और पितरोंको प्राप्त नहीं होता उसीस्थलमें ब्रह्माण्डपुराणके वाक्यहैं कि, फिर जलसे विधिपूर्वक हाथपांव धुलाकर कुशा और तिलोंसहित उस प्रक्षालनके जलको पवित्रस्थाननें डालदे, मंडलके ऊपर डाले यह हेमाद्रि कहतेहैं ॥

अग्नौकरणनिर्णयः ।

अथाग्नौकरणम् ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः–"आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः । अनाहिताग्निश्चौपसदे ह्यग्न्यभावे द्विजेप्सु वा" वायवीये–"आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिके वापि जहुयात्कर्मसिद्धये ॥" आहिताग्निः सर्वाधानी ॥ अर्धाधानी तु गृह्य एवेति चन्द्रिकापरार्कमिताक्षरामाधवादयः ॥ तस्यापि दक्षिणाग्नौ लौकिको गृह्य इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च ॥ आद्यपक्ष एव तु युक्तो वहुसम्मतश्च ॥ यद्यपि स्मार्तमग्नौकरणं श्रौते दक्षिणाग्नौ न युक्तं तथापि वचनाद्भवतीति हेमादिचन्द्रिकादयः ॥ इदं दर्शश्राद्ध एव ॥ आब्दिकादिषु तु सर्वाधानी पाणौ अर्धाधानी गृह्ये कुर्यादिति हेमाद्रिर्माधवादयश्च ॥ "पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः" इति लौगाक्ष्यादिभिः क्रमोक्तेर्विहितदक्षिणाग्निसत्त्वात् ॥ अत एवात्र वचने साग्निक आहिताग्निरुक्तो हेमाद्रिणा ॥ एतदापस्तम्बादीनामेव ॥

अब अग्नौकरणको वर्णनकरतेहैं । हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका कथनहै कि, आहिताग्नि (अग्निव्रयनी) मनुष्य सावधानतापूर्वक दक्षिणाग्निमें हवन करै और अनाहिताग्नि उपासना अग्निमें और अग्नि न होय तो ब्राह्मणमें वा जलमें हवन करै, वायवीयका वाक्यहै कि, होमके निमित्त दक्षिणाग्निको वा लौकिक अग्निको यत्नसे लाकर कर्मसिद्धिके निमित्त हवन करै, अर्द्धाधानी तो गृहअग्निमें करै यह चन्द्रिकामें अपरार्क मिताक्षरा माधवआदि कहतेहैं, वह भी दक्षिणाग्निमें करै लौकिक, गृह्यअग्निका नामहै यह हेमाद्रि और कल्पतरुका कथनहै इनमें पहिलापक्ष युक्त और बहुत पुरुषोंको सम्मतहै, यद्यपि स्मार्त अग्नौकरण श्रौत दक्षिणाग्निमें युक्त नहीं तथापि वाक्योंसे होताहै यह हेमाद्रि चंद्रिकाआदि कहतेहैं, यह अमावस्याके श्राद्धमें होताहै, वार्षिक आदि श्राद्धोंमें तो सर्वाधानी हाथमें और अर्द्धाधानी गृह्यअग्निमें अग्नौकरण करै, यह हेमाद्रि और माधव कथन करतेहैं कारण कि, पक्षान्तकर्म और वैश्वदेव कर्मको करके बुद्धिमान्, अग्निहोत्री पिंडयज्ञ करै, और फिर अन्वाहार्य कर्मको करै, लौगाक्षि आदिके कहे इसक्रमसे वह शास्त्रमें कही दक्षिणाग्निहै, इसीसे इसवचनसे साग्निकसे हेमाद्रिमें आहिताग्नि कथन कियाहै यहभी आपस्तम्बोंके निमित्तहै ॥

आश्वलायनस्याहिताग्नेः पाणावेवेति वृत्तिः ॥ अर्धाधानिना गृह्ये एव व्यतिषङ्गेणेति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च ॥ बोपदेवस्त्वाह होमशब्दः पिण्डपितृयज्ञपरः ॥

"पितृयज्ञे तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः । श्राद्धे त्वौपासनाग्नौ तु निराग्निर्लौकिकेनले ॥ अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । सन्धायाग्निं ततः कुर्याद्धोममग्निं समुत्सृजेत् ॥ २ ॥" इति त्रिकाण्डमण्डनोक्तेः ॥ श्राद्धे गृह्याग्नावेवेति लौकिकाग्न्यादिविधानं च तैत्तिरीयादिविषयम् ॥ बह्वृचस्य त्वग्नेरपि पाणिहोम एव, अग्निपाणी विना सूत्रे विधानान्तरानूक्तेः ॥ 'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्' इति मनूक्तेश्च ॥ वृत्तावप्येवम् ॥ क्वचित्साग्नेरपि पाणिहोम उक्तो गृह्यपरिशिष्टे-"अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ चतुर्ष्वाद्येषु चाग्नीनां वह्नौ होमे विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥ २ ॥" इति ॥ एकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणं शुद्धे तन्निषेधात् ॥

आश्वलायन आहिताग्नि तो हाथमें ही करै, यह वृत्तिग्रन्थमें कथन कियाहै अर्धाधानी तो परिवर्तनसे गृह्यअग्निमें हवन करै यह प्रयोगपारिजात और परिशिष्टमें लिखाहै, बोपदेवका तो यह मतहै कि, होमशब्दसे पिंडपितृयज्ञका विधान करतेहैं कारण कि, त्रिकांडमंडनने यह कथन कियाहै कि, पितृयज्ञमें सावधानीसे दक्षिणाग्निमें हवन करै श्राद्धमें औपासनाग्निमें हवन करै, जो अग्निहोत्री न हो वह लौकिक अग्निमें हवन करै, अग्निहोत्रीसे भिन्न और जिसकी स्त्री दूरहो वह मनुष्य पार्वणके दिन अग्निको प्रज्वलित करके हवन करै, फिर अग्निको त्यागदे, अमावस्याके श्राद्धमें तो गृहअग्निमें हवन करै, उसमें लौकिक अग्निआदिका जो विधान कियाहै वह तैत्तिरीय शाखावालोंके विषयमें है, अग्निहोत्रीमें पृथक् बह्वृचोंको तो हाथमें ही हवन करना कारण कि, अग्नि और हाथको छोडकर सूत्रमें किसी औरका विधान वर्णन नहीं किया अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमेंही आहुति दे यह मनुने भी कथन किया है, और वृत्तिमें भी ऐसेही है, कहीं तो अग्निहोत्रीको भी हाथमेंही हवन करना कथन किया है, गृह्यपरिशिष्टका वाक्य है कि, अग्निहोत्रियोंको अन्वष्टकाश्राद्धमें अग्निमें हवन करना चाहिये, पूर्व कहेहुए चार कर्मोंमें पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन कहा है, एकोद्दिष्ट श्राद्धसे सपिंडीकरण लेना कारण कि, शुद्धमें हवनका निषेध है ॥

बह्वचभाष्यकारास्तु सर्वैकोद्दिष्टेषु पाणिहोममाहुः ॥ इदं बह्वृचानामेव ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य' इति सूत्रे नात्रापूर्वः स्थालीपाकश्चोद्यते ॥ सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्तेनानुवादोयम्' इति वृत्तिकारोक्तेः ॥ पार्वणे आर्थिकस्यानङ्गस्य व्यतिषङ्गस्य वार्षिकादिष्वनतिदेशादर्धाधानिनोपि पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः ॥ एवं मासिकादावपि-"षोडशे मासिके श्राद्धे सपिण्डीकरणे तथा । पाणावेव तु होतव्यमन्यत्राग्नौ तु हूयते" इति बोपदेवोदाहृतवचनाच्च ॥

बह्वृचके भाष्यकार तो सम्पूर्ण एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें हाथमेंही होमको कहतेहैं, यह भी बह्वचोंके निमित्त है, यहां यह सिद्धांतहै कि, स्थालीपाकसहित पिंडके निमित्त अन्नको निकालकर इस सूत्रमें नवीन स्थालीपाक वर्णन नहीं किया कारण कि, नया होता तो सब शास्त्रोंमें उसका प्रसंग लिखा होता तिससे यह अनुवाद वचन है इस वार्तिककारके वचनसे अर्थात् प्राप्त हुए अंगभिन्न व्यतिषंग स्थालीपाकका पार्वण और वार्षिकआदि श्राद्धमें मन्तव्य न होनेसे अर्द्धाधानीको भी हाथमेंही हवन करना चाहिये यह वृत्तिका आशय है, इसीप्रकार मासिकआदि श्राद्धमें भी जानना उचितहै, और बोपदेवका कथन कियाहुआ यह वचन भी है कि, षोडशमासिक और सपिंडीकरण श्राद्धमें हाथमें हवन करना, और इसके सिवाय अन्यत्र अग्निमें हवन करै ॥

भाष्यकारमते तु—'सत्रे स्थालीपाकेनेति करणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्च पार्वणे साङ्गम् ॥ ततः काम्यादिषु तदभावे कार्यस्य पिण्डदानस्याप्यभावः ॥' एतदेवानुसृत्य विकृतावपि वार्षिकादौ व्यतिषङ्ग उक्तः प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च ॥ तेनैतन्मतेऽर्धाधानिनो-ग्नावेव । वस्तुतस्तु—'स्थालीपाके सहशाखया प्रस्तरं प्रहरति' इतिवत्सभावमात्रश्रुतेः ॥ पत्नीवते त्वष्टुरुपलक्षणमिवनाङ्गत्वम् ॥ तत्त्वे वा नाङ्गानुरोधेन प्रधानभूतपिण्डदान-त्यागो युक्तः ॥ तद्व्यतिषङ्गाभावेप्यग्नौ होमो भवति इति बोपदेवः ॥ अनाहिताग्ने-र्गृह्याग्निमतस्तु सर्वमतेऽग्नावेव ॥ वार्षिकादौ वृत्तिमते व्यतिषङ्गो न अन्यमते त्वस्ति ॥ अत्र यथाचारमनुष्ठेयम् ॥

भाष्यकारके मतमें तो सूत्रमें 'स्थालीपाकेन' यह करणमें तृतीया विभक्तिहै, और नित्य उसका श्रवणहै इससे स्थालीपाकभी पार्वण श्राद्धका अंगहै, इससे काम्य आदि श्राद्धोंमें उसके अभावसे करनेयोग्य पिंडदानका भी अभाव जानना, इससे इसीका अनुसरण करके वार्षिकआदि विकृतिमें भी व्यतिषंग प्रयोगपारिजात और परिशिष्टमें लिखाहै, तिससे इसके मतसे अर्द्धाधानी भी अग्निमेंही हवन करै, सिद्धान्त तो यह है कि, "स्थालीपाकेन सह" यहां "शाखया प्रस्तरं हरति" इसकी समान सभावमात्र श्रुतीहै. इसके समान सहभाव अर्थात् एक (साथ होना) सुननेसे त्वष्टाकी पत्नीके समान उपलक्षणहै, अंग नहीं जानना और अंगभिन्नके अनुरोधसे प्रधानभूत पिंडदानका त्याग उचित नहीं, इसकारणसे व्यतिषंगके अभावमें भी अग्निमें हवन होताहै यह बोपदेवका कथनहै अग्निहोत्रीसे भिन्न और गृह्यअग्निवालोंका हवन तो सबके मतसे अग्निमेंही होताहै, वार्षिकआदि श्राद्धोंमें तो वृत्तिके मतसे व्यतिषंग नहीं औरके मतसेहै, इसमें जैसा देशाचार हो वैसा करना ॥

आश्वलायनः—'उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौकरिष्ये । करवै करवाणीति वा प्रत्यनुज्ञा । क्रियतां कुरुष्व कुर्वित्यथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तात्' इति ॥ व्यतिषङ्गपक्षे इदमिति वृत्तिः ॥ करवै करवाणीत्यत्राग्नावित्यनुषङ्गः पुरस्तात् पिण्डपितृयज्ञे ॥ तच्चैवम्—'मेक्षणेनावदायावदानसंपदा जुहुयात्सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्य-वाहनाय स्वधा नमः इति स्वाहाकारेण वाग्निं पूर्वं यज्ञोपवीती मेक्षणमनुपहृत्य' इति ॥ अवदानसंपदा उपस्तरणाद्यपेक्षयेत्यर्थः ॥ व्यतिषङ्गपक्षे अतिप्रणीतेयं होमोन्यथा मुख्ये 'अतिप्रणीतेग्नाविध्ममुपसमाधाय' इति बह्वृचपरिशिष्टात् ॥ केचित्तस्य रक्षो-निर्हरणार्थत्वान्मुख्ये वदन्ति ॥ तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् ॥ प्रयोगपारिजातेप्येवम् ॥

आश्वलायनका कथन है कि, घीसे युक्त अन्नको निकालकर आज्ञा लेता है कि, अग्निमें हवन होता है उसे मैं करताहूं आप आज्ञादें, करो इसप्रकार आज्ञाके अनन्तर पूर्वोक्त कहनेके अनुसार अग्निमें हवन करै, व्यतिषंग पक्षमेंही यह है कि, यह वृत्तिमें कहा है पूर्वोक्त वचनमें "करवै करवाणि" इन दोनों पदोंमें अग्नौ इस पदका सम्बन्ध कथन करतेहैं और पिंडपितृयज्ञमें तो पहिले होता है वह इसप्रकार है, 'मेक्षणे-नावदायावदानसंपदा इस मन्त्रसे, वा स्वाहाकारसे यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण पहिले अग्निका मेक्षण करके अवदानकी संपदा उपस्तरणसे पहिलेहैं, व्यतिषंग पक्षमें यह होम अति प्रणीत (अंग)

१ जिससे इस अग्निमें चरु डाला जाताहै वह पात्र विशेष ।

में है, अन्यथा मुखमें जानना कारण कि, बह्वृच: परिशिष्टका कथन है कि, अति प्रणीत अग्निमें इन्धन रखकर कोई तो अतिप्रणीत अग्निको राक्षसोंके निवारणके निमित्त होनेसे मुख्यमें कहते हैं, वह उक्त परिशिष्टके विरोधसे विचारणीय है, प्रयोगपारिजातमें भी ऐसेही लिखा है ॥

शौनकः–"स्वाहाकारेण होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान् । तत्र प्रागग्नये हुत्वा पश्चात्सोमाय हूयते ॥ अग्नौ यज्ञोपवीत्येव प्रक्षिपेन्मेक्षणं ततः" । छन्दोगपरिशिष्टे–"अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना । अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च ॥ कातीयानां त्वपसव्यमेव पिण्डपितृयज्ञवद्धृत्वा" इति सर्वातिदेशात् ॥ सव्यं तु छन्दोगपरम् ॥ गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्योक्तेः ॥ 'छन्दोगा जुहुयुः सव्येनापसव्येन याजुषाः' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥

शौनकका कथन है कि, स्वाहाकारसे होम करनेमें यज्ञोपवीतको धारण किये रहै, वहां पहिले अग्निके निमित्त होम करके पीछे सोमके लिये आहुति दीजाती है, फिर यज्ञोपवीत धारणकर मेक्षणमें अग्निको डालदे, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, अग्नौकरण होम, यज्ञोपवीत धारणकर वा अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख करै, कातियोंके मतमें तो अपसव्यमेही होना चाहिये कारण कि, पिण्डपितृयज्ञके समान करै यह सबके निमित्त आज्ञा है, सव्यसे करना तो छन्दोगोंके निमित्त है, कारण कि, गोभिलने अग्नौकरणके उपरांतही अपसव्य होना कहा है, वृद्धयाज्ञवल्क्यका भी कथन है कि, छन्दोग सव्यसे और यजुर्वेदी अपसव्य होकर हवन करैं ॥

अथ पाणिहोमः ।

आश्वलायनः–"अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव" इति ॥ पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावेनाग्न्यभावे काम्यादिष्वित्यर्थः ॥ तेन बह्वृचानामेकोद्दिष्टे पाणिहोमो भवत्येव ॥ निषेधोऽन्यपरः ॥ पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु होम इति वृत्तिः ॥ एवं मातामहेपि ।शौनकोपि–"सर्वेषामुपविष्टानां विप्राणामथ पाणिषु । विभज्य जुहुयात्सर्वं सोमायेत्यादिमन्त्रतः ॥" यत्तु हेमाद्रौ कात्यायनः "पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्धन्यस्तस्य पाणावनग्निकः । हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्" इति बह्वृचातिरिक्तानाम् ॥

अब पाणिहोमका कथन करते हैं, आश्वलायनका कथन है कि, आज्ञा होनेके उपरान्त हाथमेंही होम होता है जब पिंडपितृयज्ञ नहीं तब यह होता है, और अग्निके अभाव और काम्य आदिमें नहीं, तिससे बह्वृचोंके मतसे एकोद्दिष्टमें हाथमें होम होता है, निषेध औरोंके विषयमें है, 'पाणिषु' इस बहुवचनसे सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके हाथमेंही होम होता है यह वृत्तिग्रन्थमें लिखा है, इसीप्रकार मातामहमें भी समझना चाहिये, शौनकका कथन है कि, बैठे हुए सब ब्राह्मणोंके हाथमें सब अन्नको विभाग करके 'सोमाय०' इस मन्त्रसे हवन करै, जो हेमाद्रिमें कात्यायनका कथन है जो सब पंक्तिका शिरोमणि है उसके हाथमें पितृकर्ममें अग्निहोत्रीसे भिन्न ब्राह्मण, मन्त्रसे हवन करके और ब्राह्मणोंके पात्रमें मौन होकर अन्नको डालदे वह बह्वृचोंसे भिन्नोंके विषय जानना उचित है ॥

यत्तु तत्रैव मात्स्ये–"अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ वाथ जलेपि वा । अजकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वाथ शिलान्तिके" इति ॥ तत्तीर्थश्राद्धविषयम् ॥ 'तद्यदापां समीपे स्याच्छ्राद्धं ज्ञेयो विधिस्तदा' इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ निर्जले त्वजकर्णादौ ॥ यत्तु चन्द्रोदये यमः–'देवविप्रकरेऽनग्निः कृत्वाग्नौकरणं द्विजः' इति ॥ तदभार्यपरम् ॥ "अपत्नीको

यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवेषु हूयते" इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ हूयते इति छान्दसो व्यत्ययः ॥

जो कि उसी स्थलमें मत्स्यपुराणका कथनहै कि, अग्नि न होय तो ब्राह्मणके हाथमें जल वा अजा और घोडेके कानमें गोष्ठ वा शिलाके समीप आहुति प्रदान करै, कारण कि, कात्यायनने उसी स्थलमें यह कहा है कि, वह अग्नौकरणकी विधि तब जाननी जब जलोंके निकट श्राद्ध हो, जल न होय तो बकरीके कर्णआदिमें हवन करै, जो चन्द्रोदयमें यमका वाक्य है कि, अग्निहोत्रीमें भिन्न ब्राह्मण देव ब्राह्मणोंके हाथमें अग्नौकरण हवन करै, वह उसके निमित्त है जिसके स्त्री न हो, कारण कि, वहांही कात्यायनका कथन है कि, अग्निहोत्रीसे भिन्न ब्राह्मण जब पार्वणश्राद्ध करनेकी इच्छा करै, तो पितरोंके ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर विश्वेदेव ब्राह्मणोंके हाथमें आहुति प्रदान करै ॥

हेमाद्रौ वायवीये-'विधुरो दैविके कुर्याच्छेषं पित्र्ये निवेदयेत् ।' दैवविप्रानेकत्वे तत्रैव-'विश्वेदेवे यदैकस्मिन् भवेयुर्द्व्याद्यो द्विजाः । तदैकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तदा ॥" सोप्याद्यः 'प्रथमं वा नियम्येत' इति न्यायात् । तेन मृतभार्यस्य दैवे होमः ॥ अनुपनीतब्रह्मचार्यादेस्तु पित्र्ये ॥ 'अग्न्याभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति' इति हेमाद्रौ जातूकर्ण्योक्तेः ॥ 'सभार्यनष्टाग्नेरपि पित्र्यविप्रकरे' इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ उपवीतित्वेन दैवे होमः । प्राचीनावीतेन पित्र्ये ॥ यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यकरयोर्विकल्पः इति हेमाद्रौ मदनरत्ने पारिजाते च ॥ यदा तु पितृमातामहयोर्दैवपित्र्यविप्रभेदः, तदा भेदेन पाणिहोम इत्यपरार्कचन्द्रिकादयः ॥ यदा तु दैवं तन्त्रं तदा तन्त्रेण सकृदेव पाणिहोम इति केचित् ॥

हेमाद्रिमें वायवीयका कथन है कि, स्त्रीरहित मनुष्य देव ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करै, और शेष अन्न पितृ ब्राह्मणोंको प्रदान करै, यदि पितरोंके ब्राह्मण अधिक होंय तो उनकोही दे यदि एक श्राद्धमें विश्वेदेवाओंके ब्राह्मण दो आदि होंय तो एक ब्राह्मणके हाथमें होम करनेसे विधि होती है, वह भी प्रथम लेना कारण कि, न्याय इसप्रकार है, पहले ब्राह्मणका नियम है इससे स्त्रीहीन मनुष्य देव ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करै, और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो और जो ब्रह्मचारी हो वह पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन करै, कारण कि, हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका कथन है कि, जबतक स्त्रीको न विवाहै तबतक अग्निका अभाव कहा है, स्त्रीवालेभी जिनकी अग्नि नष्ट होगई हो वे पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन करैं, सव्यसे देवहोम और अपसव्यसे पितृहवन करै, अथवा सब स्थानमें देव और पितृ ब्राह्मणोंके हाथमें करनेका विकल्प है यह हेमाद्रि और मदनपारिजातमें कहा है, जब पितृ और मातामह दोनोंका देव और पितृब्राह्मणके भेदसे भेद है तब पृथक् २ हाथमें हवन होता है, यह अपरार्क और चन्द्रिका आदि कहतेहैं, और जब देवका नियम है तब तंत्रसे हवन एकवारही होता है, यह कोई आचार्य कहते हैं ॥

हेमाद्रिस्तु-'मातामहस्य भेदेपि कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः' इति कातीयस्मृतेर्भेदमाह ॥ एवं पित्र्येपि ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ एवं साग्नेरपि विदेशादौ पाणिहोमो ज्ञेयः ॥ यत्तु कर्केणाग्निं विना श्राद्धमेव नास्तीत्युक्तम्, तत्सपिण्डीकरणवार्षिकाद्यकरणापत्तेर्यत्किंचिदेव ॥ यत्तु बृहन्नारदीये-"अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्द्विजाः ॥ क्षयाहदिवसे प्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि । तथैव भ्रातरः स्युश्चे-

लौकिकाग्नाविति स्थितिः ॥ औपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते। यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ॥ औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ॥ पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत्समञ्जसम् ॥ ४ ॥ इति ॥ तद्वृद्धानादरादुपेक्ष्यम् ॥

हेमाद्रिने तो इस कातीयस्मृतिसे भेद लिखा है कि, अग्निहोत्री ब्राह्मण मातामहके भेदमें भी तंत्रसे हवन करे, इसीप्रकार पितरोंमें भी जानना उचित है, माधवीयमें भी ऐसेही कहा है इसी प्रकार अग्निहोत्रीको भी विदेश आदिमें हाथमें हवन करना चाहिये, ये जो कर्कने कहा है कि, अग्निके विना श्राद्ध होताही नहीं, वह इससे तुच्छ है कि, ऐसा होनेसे वार्षिक श्राद्ध और सपिंडीकरण हीन हो जायँगे, जो बृहन्नारदीय पुराणमें यह लिखा कि, हे ब्राह्मणो! अग्निहोत्रीसे भिन्न और जिसकी स्त्री दूर हो वह अग्निहोत्री अपने भ्राताओंसे विधिवत् श्राद्ध करावै, यदि क्षयीके दिन अपनी अग्नि दूर हो और भाई भी वैसेही हों तो लौकिक अग्निमें करे, यह मर्यादा है, औपासनाग्निके दूर होते और भाईके निकट रहते जो अग्नि व पाणिमें होम करता है वह पातकको प्राप्त होता है। कोई उत्तम विद्वान् मनुष्य उपासनाग्निके दूर होनेमें पाणिहवन चाहते हैं यह उचित नहीं कारण कि, वह वृद्धोंके न माननेसे त्यागने योग्य है ॥

हेमाद्रौ यमः—"अग्नौकरणवत्तत्र होमो विप्रकरे भवेत्। पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः ॥" मेक्षणेन करेण वा होमः मेक्षणप्रहरणं नेति वृत्तिः ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—"नानुज्ञा पाणिहोमे स्यान्न स्तः पर्युहनोक्षणे। नाग्नेतमद्यादिति च न स्यातामिध्ममेक्षणे ॥" कर्काचार्योऽप्येवमाह ॥ माधवीये चन्द्रिकायां चानुज्ञादि सर्वं भवतीत्युक्तम् ॥ पाणिहोमे प्रश्नाद्याहापरार्के शौनकः—'अनग्निश्चेदाज्यं गृहीत्वा 'भवत्स्वेवाग्नौकरणम्' इति पूर्ववत् 'तथास्तु' इति ॥

हेमाद्रिमें यमका कथन है कि, छिडककर और कुशा बिछाकर वहां अग्नौकरणके समान ब्राह्मणके हाथमें हवन करे, कारण कि, वह अग्निकी समान है, मेक्षणसे वा हाथसे होम होता है, वृत्तिमें लिखाहै कि, मेक्षण प्रहरणको नहीं कहते हैं यह वृत्तिमें लिखा है स्मृतिरत्नावलीमें कहाहै कि, आज्ञा, [1]पर्यूहन, उक्षण, इध्म और मेक्षण और अग्नेतं अद्यात् इतने कर्म पाणिहोममें नहीं होते, कर्काचार्य भी इसी प्रकार कहते हैं, माधवीय और चन्द्रिकामें तो यह लिखा है कि, अनुज्ञा आदि सब होता है, पाणिहोममें प्रश्न आदि अपरार्कमें शौनकने लिखे हैं अग्निहोत्री ब्राह्मण घीको लेकर कहे कि, हे ब्राह्मणों! मैं अग्नौकरण करूंगा इस प्रकार पूछे और ब्राह्मण पूर्वके समान 'तथास्तु' कहें ॥

आश्वलायनः—'यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशत्यन्नमन्ने सृष्टं दत्तमक्षय्यम्' इति ॥ पाणौ हुतं पात्रे निधाय विप्रैराचम्य भोजनार्थमन्ने परिविष्टे हुतशेषं पात्रेषु दद्यादित्यर्थः ॥ सृष्टं प्रभूतम् ॥ नैमित्तिकं चेदमाचमनम् ॥ न हुतभक्षणनिमित्तम् ॥ 'अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमश्नन्त्यबुद्धयः। पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते ॥ यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम्। एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥ २ ॥" इति च बह्वृचपरिशिष्टात् ॥ हेमाद्रावप्याचमने हेत्वर्थवाद उक्तः—'पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः' इति ॥

---

१ पर्यूहन—अग्निका लूका सूखे कुशोंका घुमाना, पर्युक्षण—दक्षिणावर्तसे जल घुमाना, मेक्षण अग्निमें चरु डालनेका पात्र।

आश्वलायनका कथन है कि, यदि आचमन किये ब्राह्मणोंके हाथमें औरको दे तो बहुत भी हो तो भी वह अन्न अध्रुव होजाता है, इसका यह आशय है कि, हाथमें होमेहुये अन्नको पात्रमें रखकर ब्राह्मणोंके संग आचमन करके भोजनके निमित्त अन्न परसनेके उपरान्त होमके शेष उस अन्नको भोजनके पात्रमें रख दे, यह आचमन नैमित्तिक है, हवनके शेष भोजनके लिये नहीं है, कारण कि, बह्वृचपरिशिष्टमें कहाहै कि, हथेलीपर दियेहुए अन्नको निर्बुद्धि मनुष्य पहिले खाते हैं, उससे पितर तृप्त होते हैं, शेष अन्न उनको प्राप्त नहीं होता जो अन्न हथेलीपर दिया है, जो और पाक श्राद्धका अन्न है, उस सबको इकट्ठा करके भोजन करै, उसमें भिन्नभाव न करै, हेमाद्रिमें भी आचमनमें हेत्वर्थवाद लिखा है कि, ब्राह्मणका हाथही मुख है ॥

भाष्ये त्वाचान्तेषु भक्षितेषु 'चमु भक्षणे' इति भक्षणोत्तरं च नाचमनमग्निसाम्यात् । पूर्वनिषेधस्तु सपिण्डीकरणे ज्ञेयः । ददाति चोदितत्वात् । तत्त्वत्र जुहोति चोदितत्वादित्युक्तम् । न त्वेतद्बहुसंमतम् ॥ यत्तु बौधायनेन 'तस्मिंस्तु प्राशिते दद्याद्यदन्नं प्रकृतं भवेत्' इति भक्षणमुक्तं, तत्तच्छाखीयानामेवेति हेमाद्रिः ॥

भाष्यमें तो "आचान्तेषु" का अर्थ भक्षितेषु किया है अर्थात् जब ब्राह्मण भोजन करचुके हों कारण कि 'चमु भक्षणे' धातु है और भक्षणके पीछे आचमन नहीं होता, कारण कि, ब्राह्मण अग्निके तुल्य हैं, पहिला निषेध तो सपिंडीकरणमें जानना चाहिये, यह बात 'ददाति' के कहनेसे प्रतीत होती है और यहां 'जुहोति' के कहनेसे यह नहीं लिखा यह बात बहुतोंको संमत नहीं है जो बौधायनने यह भक्षण करना कहा है कि, जब होमके अन्नको ब्राह्मण भोजन करचुके तब श्राद्धका जो प्रकृत अन्न हो उसे दे, वह उसी शाखावालोंके निमित्त है यह हेमाद्रि कहते हैं ॥

तत्रैव यमः–" पित्र्यं पाणिहुताच्छेषं पितृपात्रेषु निक्षिपेत् । अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद्वैश्वदेविके ॥" एतदग्निहोमेपि समम् ॥ तथा कर्कस्तु सूत्रे हुतशेषं दत्त्वेत्यविशेषात्सर्वविप्रेषु दद्यादित्याह ॥ तत्रैव वृद्धवसिष्ठः–" पित्र्यविप्रकरे हुत्वा शेषं पात्रेषु निक्षिपेत् । पिण्डेभ्यः क्षेपयेत्किंचिन्न दद्याद्वैश्वदेविके ॥"

वहांही यमका कथन है कि, पितृब्राह्मणोंके हाथमें हुतशेष अन्नको पितरोंके पात्रमें डाले, और उस अग्नौकरण शेषअन्नको विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणोंको न देवे यह अग्निहवनमें भी समान समझना चाहिये, तैसेही कर्काचार्यने यह कहा है कि, सूत्रमें हुतशेष देकर यह अविशेष कहनेसे सब ब्राह्मणोंको दे उसी स्थलमें वृद्धवसिष्ठका कथन है कि, पितृब्राह्मणोंके हाथमें हवन करके शेषअन्नको पात्रमें डाले और कुछ पिंडोंके निमित्त बचाले और विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणोंको न दे ॥

अथापस्तम्बानां सूत्रे–'उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियतामित्यामन्त्रयते ॥ काममुद्ध्रियतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च ॥' नष्टाग्निविधुरादेर्विशेषो बृहन्नारदीये–" नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । संधायाग्निं ततो होमं कृत्वा तं विसृजेत्पुनः ॥" अयाश्चेति तत्कालेग्निं संधाय हुत्वा त्यजेत् इत्यर्थः ॥ एतदापस्तम्बानामेव ॥ पाणिहोमस्तु छन्दोगादीनाम् ॥

अब आपस्तंबोंके सूत्रमें लिखा है कि, उद्धार और अग्नौकरण करूं इसप्रकार यजमान ब्राह्मणोंसे पूंछे, यथेच्छ उद्धार करो और अग्नौकरण करो, इन ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर उद्धार और होम करै, जिसके अग्नि और स्त्री न हो उसके निमित्त विशेष बृहन्नारदीयमें कहा है जो नष्टाग्निहो और जिसकी स्त्री दूरहो

वह पार्वणके समय अग्निस्थापन और हवन करके फिर उस अग्निका विसर्जन कर दे, इसका यह अर्थ है कि 'अयाश्च०' इस मंत्रसे उसी कालमें अग्निको स्थापन हवन करके फिर उस अग्निको त्याग दे यह भी आपस्तंबोंके निमित्त है, छन्दोगोंमें तो पाणिहवन होता है ॥

विश्वप्रकाशेपि-"साग्निरौपासनेनाग्निरग्नौ कुर्वीत लौकिके । पाणौ होमं प्रशंसन्ति न त्वापस्तम्बशाखिनाम् ॥ स्नातका विधुरा वा स्युर्यदि वा ब्रह्मचारिणः । अग्नौकरणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिकेऽनले ॥ अयाश्चाग्ने मनोज्योतिरुद्बुध्य व्याहृतीर्हुनेत् ॥ ३ ॥" ततोऽनुज्ञातोग्नींधनाद्याज्यभागान्ते यन्मे मातेत्याद्यैर्जुहुयात् ॥ तत्र सप्तान्नाहुतयः षडाज्यस्येति त्रयोदश ॥ व्यत्ययो वा ॥ यथा-"यन्मे माता प्रलुलोभ तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तां, यास्तिष्ठन्तीति द्वाभ्याममुष्मै स्वाहेति पितुर्नाम्ना द्वौ होमौ ॥ यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः पितामहो वृंक्तामन्तर्दधे इति तन्नाम्ना पितामहाय द्वौ ॥ यन्मे प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः प्रपितामहो वृंक्तामन्तर्दधे ऋतुभिरिति तन्नाम्ना प्रपितामहाय द्वौ ॥" मातामहेषु तूहः-"यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहा वृंक्ताम् ॥ अन्यं माताहाद्वृद्धमित्यादौ ॥ यन्मे मातुः पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः पितामहो वृंक्ताम् ॥ अन्यं मातुः पितामहाद्वृद्धम् । यन्मे मातुः प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः प्रपितामहो वृंक्ताम् ॥ अन्यं मातुःप्रपितामहाद्वृद्धम् ॥ सर्वत्राप्यमुष्या इत्यत्र ङेन्तं तन्नाम योज्यम् ॥

विश्वप्रकाशमें भी इसीप्रकार लिखाहै कि, अग्निहोत्री भी उपासनअग्निमें और अग्निहीन लौकिक अग्निमें हवन करै कारण कि, आपस्तंब शाखावालोंको हाथमें होमकरना श्रेष्ठ नहींहै, स्नातक, स्त्रीसे हीन, वा ब्रह्मचारी जो होवे अग्नौकरणहोमको लौकिक अग्निमें करै, अयाश्चाग्ने० मनो ज्योती० उद्बुध्य० व्याहृति० इन मंत्रोंसे चार आहुति प्रदान करै फिर आज्ञाको प्राप्त अग्नि, इन्धन आदि आज्यभागके अन्तमें, 'यन्मे माता०' इत्यादि मंत्रोंसे हवन करै, उसमें ७ सात अन्नकी आहुति और छः घीकी होतीहैं, इसप्रकार १३ तेरह आहुतिका विधानहै, वा इनका व्यत्ययहै कि, सात घीकी, और छः अन्नकी देनी, जैसे 'यन्मेमाता प्रलुलोभे तन्मे पिता वृंक्तां' यास्तिष्ठंति, इन दो ऋचाओंके अन्तमें) अमुष्मै पित्रे) इसप्रकार पिताके नामसे दो होम, 'यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे पितामहो वृंक्तां, अन्तर्दधे ऋतुभिः, इन दो ऋचाओंसे प्रपितामहके नामसे दो, मातामहपक्षमें तो यन्मे मात मही० तन्मे० मातामहो० यन्मेमातुः पितामही० तन्मेमातुः पिता० यन्मेमातुः प्रपितामही० तन्मेमातुः प्रपिता० यहां सब स्थानमें अमुष्मैके स्थानमें, चतुर्थी ङे, विभक्ति०जिसके अन्तमें हो ऐसा तिस २ का नाम मिलालेना ॥

तद्गृह्यसंग्रहे-"योज्यः पित्रादिशब्दानां स्थाने मातामहादिकः । अन्नहोमे तथा स्पर्शोजलपिण्डादिदानके । यन्मे मातामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत् ॥" ततो ये के चेत्येकान्नाहुतिः ॥ ततः स्वाहा पित्र्ये इत्याद्यैराज्यं हुत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा सर्वभक्ष्यं किंचिदादायोदगुष्णं भस्मापोह्य तत्र तूष्णीं स्वाहाकारेण जुहोति ॥ परिषेचनान्तं स्थालीपाकवत् ॥ अयमग्नौकरणहोमो मासिकश्राद्धे एव ॥ 'तत्र स्मार्ताग्न्यभावे न कार्यम्' केचित् ॥ कार्यमेवेति बहवः ॥

सोई गृह्यसंग्रहमें लिखाहै कि, अन्नका हवन स्पर्श जल और पिंडदान आदिमें पिताआदिशब्दोंके

स्थानमें मातामहआदि शब्द मिलालेना, 'यन्मे मातामही' इत्यादि उसके उदाहरण हैं, फिर 'ये चेह' इस मंत्रसे एक अन्नकी आहुति देनी पुनः पित्रे स्वाहा० इत्यादि मंत्रोंसे घृतसे, और स्विष्टकृत् होम करके और कुछ २ सम्पूर्ण भक्ष्यको लेकर कुछ गरम भस्म उत्तरको डालकर तूष्णीं स्वाहाकारसे परिषेचनान्त स्थालीपाकके समान मौन होकर होम करै, यह अग्नौकरण होम मासिकश्राद्धमें ही करना होताहै, स्मार्त्तअग्नि न होय तो वह न करना, यह किन्हींका मतहै, और करना यह बहुत कहते हैं ॥

अत एव सर्वाधानिनो होमवर्ज्यं मासिकश्राद्धमुक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ महालये तद्वदित्येके ॥ प्रकरणान्तरत्वात् ॥ कर्मान्तरत्वेन स्मार्तपार्वणवत्कार्यम् इति त्वस्मद्गुरवः ॥ आब्दिकादिषु तु स्मार्तपार्वणविधिरेवं ॥ एवं मातृवार्षिकादिषु ॥ मासि श्राद्धविकृताष्टकायां मातृश्राद्धे वैकृतहोमेन प्राकृतहोमबाधः ॥ 'अन्वष्टकासु मातृश्राद्धं न' इति भाष्ये ॥ तत्रापि श्राद्धान्तरवत् ॥ क्रियमाणे तु यन्मे मातेत्यादौ गुणत्वेपि मातृप्राधान्यं विवक्षितम् । 'मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः' इति सूत्रात् ॥ 'आग्नेय्येव मनीताकार्यम्' इति वचनादग्निशब्दस्यैव वैकृतदेवताभिधायित्वम् ॥ तेनामुष्या इत्यत्र 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम्' इत्याद्यूहः कार्यः ॥ तच्च-'मासि श्राद्धे जीवत्पित्रादीनां व्युत्क्रममृतपित्रादीनां च कार्यम्' इत्युक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ तत्प्रकारस्तु वक्ष्यते ॥ मातापित्रोर्द्वित्वादौ तु नोहः ॥ 'तस्माहचं नोहेत्' इति निषेधात् ॥ प्रकृतावूहाभावाच्च पत्नी सनह्येतिवत् ॥ उपदेशिमते तूहः ॥ यथा-'यन्मे मातरौ प्रलुलोभतुश्चरत्यावननुव्रते' इत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिकश्राद्धनिर्णये ज्ञेयम् । इति दिक् ॥ अन्यत् प्राग्वत् ॥

इसीसे सर्वाधानीको सुदर्शनभाष्यमें हवनको त्यागकर मासिकश्राद्ध कहाहै, महालयमें इसीप्रकार करै, यह कोई आचार्य कहतेहैं प्रकरणका भेद और कर्मका भेद होनेसे स्मार्त्तपार्वणके समान महालय करैं, यह हमारे गुरुका कथनहै वार्षिक आदि श्राद्धोंमें तो स्मार्त्त पार्वणका विधानहै इसीप्रकार माताके वार्षिक आदिमें जानना उचितहै मासिकश्राद्धकी विकृति अष्टकामें मातृश्राद्धकी विकृतिके हवनसे प्रकृतिके हवनका बाध होता है, अन्वष्टकामें मातृश्राद्ध नहीं होता यह भाष्यकार कहतेहैं वहांभी यदि वह और श्राद्धके समान कियाजाय तो 'यन्मे माता' इत्यादिमंत्र गौण भी होयँ तो भी माताकी प्रधानता अपेक्षित है, अग्निहोत्री इसप्रकार करै इसवाक्यसे भी शब्दही विकृतिके देवताका कहनेवालाहै तिससे 'अमुष्यै' यहां 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्यां' इत्यादि ऊह करना वह मासिकश्राद्धमें भी करना, जिसके पिता जीवते हों वा व्युत्क्रम (पहिले पिता पीछे बाबा) से मृतक हुए होयँ यह सुदर्शनभाष्यमें लिखाहै, उसका प्रकार तो वर्णन करैंगे, जहां माता पिताआदि दो २ हों वहां ऊह नहीं होता कारण कि, तिससे ऋचाका ऊह न करै यह निषेध है और प्रकृतिमें ऊहका अभाव नहीं है स्त्रीको उद्यत करके इसके समान उपदेशीके मतमें तो ऊह है जैसे 'यन्मे मातरौ प्रलुलुभतुः चरत्यावननुव्रते' इत्यादि हमारे पिताके बनाये मासिकश्राद्धनिर्णयमें देखलेने यह संक्षेपसे कहाहै और पूर्ववत् जानना ॥

अथ परिवेषणम् ।

तच्चोपवीत्येवाज्येन देवपूर्वम् 'आमासु पक्वम्' इति पात्राण्युपस्तीर्य कुर्यात् इति हेमाद्रिः ॥ भारते दानधर्मेपि-"आन्याहुतिं विना नैव यत्किंचित्परिविष्यते । दुराचारैश्च यदुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥" तत्रैव शौनकः-'विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमाचरेत् ॥' तत्रैव धर्मः-'फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे ॥' तत्रैव वायुभविष्ययोः- 'भार्यया श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम् ॥

अब परिवेषणको वर्णन करतेहैं, वह यजमान सव्य होकर देवपूर्वक 'आमासु पक्कं' इस मन्त्रसे पात्र-परसकर और घृतकी आहुति देकर करे, यह हेमाद्रिका मतहै भारतके दानधर्ममें भी कहाहै कि, घृतकी आहुति विना जो परसा जाताहै वा दुराचारियोंने जो भोजन कियाहै, उसे राक्षसोंका भाग जानतेहैं, वहांही शौनकका कथन है कि, विधिसे देवपूर्वक परसे, वहांही धर्मका कथन है कि, स्वयं परसनेमें अनन्तफल होता है, वहांही वायु और भविष्यपुराणका कथन है कि, श्राद्धके समय भार्याका परसना उत्तम है ॥

ब्रह्माण्डे-"नापवित्रेण नैकेन हस्तेन न विना कुशम् । नायसेनायसेनैव श्राद्धे तु परिवेषयेत्॥" वसिष्ठः-"आयसेन तु पात्रेण यदन्नं संप्रदीयते । भोक्ता विष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥" पैठीनसिः-'सीसकायसरीतीपात्राण्ययज्ञियानि ॥' तत्रैवं हारीतः-"सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण वा । दत्तमक्षय्यतां याति फल्गुपात्रेण वा पुनः ॥

ब्रह्माण्डपुराणका वाक्यहै कि, पवित्रीके विना एक हाथसे और कुशाके विना और लोहके पात्रसे श्राद्धमें न परसना चाहिये, वसिष्ठका वाक्य है कि, लोहेके पात्रसे जो अन्न परसा जाता है वहां खानेवाला विष्ठाका भोजन करता है और दाता नरकमें जाता है, पैठीनसिका कथन है कि, शीशा लोहा पीतलके पात्र यज्ञके योग्य नहीं होते वहांही हारीतका कथन है कि, सोंना चांदी गैंडा गूलर फल्गु इनके पात्रसे जो अन्न परोसा जाता है वह अक्षय होता है ॥

कार्ष्णाजिनिः-"दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च । उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन ॥" यमः-'पंक्त्यां विषमदातुश्च निष्कृतिर्नैव विद्यते ।' पृथ्वीचन्द्रोदये पराशरः-"सर्वदा च तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः । भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥"

कार्ष्णाजिनीका कथनहै कि, अन्नमें घी और संपूर्ण व्यंजन (शाकआदि) कर्छलीसे देने, जल और पक्वान्न कर्छलीसे कदाचित् न देना चाहिये, यमका वाक्यहै कि, पंक्तिमें विषम (किसीको न्यून किसीको अधिक) देनेवालेका प्रायश्चित्त नहीं है. ऐसा कभी न करे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें पराशरका वाक्य है कि, पितरोंके कर्ममें सदैव विशेषकर तिल लेने, भोजनके पात्रमें तो तिलोंको देखकर पितर निराश हो चले जातेहैं ॥

चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः-"हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः । पितॄणां नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥" घृतपात्रे विशेषो ग्रन्थान्तरे-"ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य मुग्धधीः । घृतेन पूरयेत्पात्रं तद्घृतं रुधिरं भवेत् ॥" घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे इति मदनरत्ने ॥ संग्रहे-"हस्तदत्तं तु नाश्नीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् । अपक्कं तैलपक्कं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥" पात्रालम्भनमुक्तं चतुर्विंशतिमते-"उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचपात्राण्युपस्पृशेत ॥

चन्द्रिकामें वृद्ध शातातपका वाक्यहै कि, हाथके दियेहुए स्नेह नौन और व्यंजन पितरोंको नहीं मिलते, और भोजनकर्ता पापभागी होता है घीके पात्रमें विशेष ग्रन्थान्तरमें कहा है जो मुग्धबुद्धि भात वा परमान्न पर पात्रको रखकर उसे घृतसे भरता है वह घी रक्तके तुल्य होता है, मदनरत्नमें लिखा है कि घृत आदिका पात्र भूमिपर रक्खे, भोजनपात्रमें नहीं. संग्रहमें लिखाहै कि, हाथसे परसे व्यंजन और

लवणको न भोजन करै विना पकेहुए तेलसे पकेहुए को तो हाथसेही देना पात्रका छूना चतुर्विंशतिके मतमें लिखाहै कि, दक्षिणका पात्र सीधा और बायेंका पात्र नीचा छुए ॥

याज्ञवल्क्यः—दत्त्वान्नं 'पृथिवीपात्रम्' इति पात्राभिमन्त्रणम् । 'कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ॥' बौधायनः—'विप्राङ्गुष्ठेनानखेनानुदिशति' "पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि । ब्राह्मणानां त्वविद्यावतां "प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा मे पितॄणां क्षेष्ठा अत्रामुष्मिँल्लोके" इति ॥ अद्य जुहोम्यग्रे स्वाहाशब्दः कातीयसूत्रे उक्तः ॥ पैत्रे स्वधाशब्दः ॥ अंगुष्ठे विशेषमाह हेमाद्रौ धौम्यः—'परिवृत्य नवाङ्गुष्ठं द्विजः स्थाने निवेशयेत् ॥' तथा—"उत्तानेन तु हस्तेन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम् । यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥"

याज्ञवल्क्यका कथन है कि, अन्न देकर 'पृथ्वीपात्रम्' इसमन्त्रसे पात्रोंका अभिमन्त्रण करके, 'इदंविष्णोः' इस मन्त्रसे ब्राह्मणोंका अंगूठा लगावे, बौधायनका कथन है कि, नखको त्यागकर ब्राह्मणका अंगूठा लगाकर "पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा" इसमन्त्रको और विद्यावाले ब्राह्मणोंके यहां तो, "प्राणापानयोरमृतं जुहोम्यक्षितमसि मा मे पितॄणां क्षेष्ठा, अत्रामुष्मिन् लोके" इस मन्त्रको पढै कातीय सूत्रमें 'आज्यं जुहोमि' के आगे 'स्वाहा 'शब्द कहा है और पैत्रमें 'आज्यं जुहोमि' के आगे 'स्वधा' शब्द कहाहै, अंगुष्ठमें विशेष धौम्यने हेमाद्रिमें कहाहै, ब्राह्मणोंके स्थानमें औंधा हाथ कर अंगूठा लगावे, इसी प्रकार वाक्यहै कि, सीधे हाथका जो ब्राह्मण अज्ञानसे अंगूठा लगाताहै, उस श्राद्धको राक्षस भोजन करते हैं ॥

तत्रैव यमः—'विष्णोर्हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षस्व च क्रमात् ॥' दैवे पित्र्ये चेत्यर्थः ॥ तत्रैवात्रिः—"सम्बन्धनामगोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां विनिवर्तयेत् ॥ हस्तेनाभुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत् ॥" अत्र—'अन्नदाने चतुर्थी स्यात्' इत्यादिविशेषाः पूर्वमुक्ताः ॥

वहांही यमका कथन है कि, दैव और पितृ श्राद्धमें क्रमसे यह कहै कि, हे विष्णो ! हव्य और कव्यकी रक्षा कीजिये, वहांही अत्रिका कथन है कि, संबन्ध नाम गोत्र इदं अन्नं स्वधा यह वाक्य पिताके क्रमसे कहकर अन्नमेंसे अपनी सत्ताको पृथक् करै, हाथसे दियेहुये अन्नआदिमें, 'इदमन्नं' यह कहै, यहां अन्नदानमें चतुर्थी होती है, इत्यादि विशेष पहिले कह आये ॥

श्राद्धे अन्ननिवेदनम् ।

अत्र पूर्वोक्तमन्त्रान्ते—'पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवा देवता इदमन्नं सपरिकरं हव्यम् अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः । गयेयंभूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थम् अमुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा नमो न मम' इति बह्वृचपरिशिष्टहेमाद्याद्यनुमतः प्रयोगः ॥

यहां पूर्वोक्त मन्त्रके अन्तमें कहै कि, हे पुरूरव आर्द्रवसंज्ञक देवताओ ! यहः सामग्रीसहित अन्न हव्य (होमके योग्य) और यह ब्राह्मण आवहनीयके अर्थ है, इसको दियाहुआ और जो तृप्तिपर्यन्त दिया जायगा यह पृथ्वी गया है और गदाधर भगवान् भोक्ता है, यह अन्न ब्रह्मरूप है सोनेके पात्रमें रक्खा अन्न अक्षय वटकी छायामें है, अमुक विश्वेदेवाओंके निमित्त यह अन्न परोसा है और तृप्तिपर्यन्त जो परोसा

जायगा स्वाहा नमः (आपको प्राप्त हो) यह मेरा नहीं यह प्रयोग (विधि) बह्वृचपरिशिष्ट हेमाद्रि आदिकोंने कही है ॥

एवं पित्र्ये अमुकगोत्रवसुरूपादितत्तन्नाम ज्ञेयम् ॥ ततो 'ये देवास' इति दैवे, 'येचेह पितरः' इति पित्र्ये केचिज्जपन्ति ॥ ततोऽच्छिद्रं वाचयेत् ॥ तत्रैव प्रचेताः- " आपोशानकरे विप्रे संकल्प्याच्छिद्रभाषणात् । निराशाः पितरो यान्ति दैवैः सह न संशयः ॥" पारस्करः-" संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशानं जुष प्रैषोथ भोजनम् ॥ " निवेद्येति ब्रह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः ॥ अत एव बृहन्नारदीये अन्नत्यागमुक्त्वोक्तम् ' दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे वै समर्पयेत्' इति यत्तु कृत्यरत्ने कार्ष्णाजिनिः-" अपसव्येन कर्तव्यं पितृकृत्यमशेषतः । अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि ॥" तच्च-' ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ' 'हरिर्दाता हरिर्भोक्ता 'चतुर्भिश्च' इति केचित्पठन्ति ॥

इसीप्रकार पितृ श्राद्धमें अमुक गोत्र वसुरूपआदि उस २ का नाम जानना फिर कोई (ये देवास०) इस मंत्रको देव श्राद्धमें और 'ये चेह पितरः' इस मंत्रको पितृश्राद्धमें जप करते हैं, फिर ब्राह्मणोंसे अच्छिद्र कहाना चाहिये वहां ही प्रचेताका वाक्यहै कि, ब्राह्मणोंके हाथमें आपोशान देकर और संकल्प करके अच्छिद्र कथन न करें तो देवताओं सहित पितर निराश हो चले जातेहैं इसमें सन्देह नहीं, पारस्करने कहा है कि, पितरोंके निमित्त संकल्प करके गायत्री और मधुमती ऋचाको जप करै, और श्राद्धको ब्रह्मार्पण करके भोजन की आज्ञा दे, फिर भोजन करै, इसीसे बृहन्नारदीय पुराणमें अन्न त्याग कहकर लिखाहै कि, दीहुई हवि और कर्मको विष्णुको अर्पण करै, जो कृत्यरत्नमें कार्ष्णाजिनीका कथन है कि, अन्नदानके सिवाय सम्पूर्ण पितृकर्म और इसीप्रकार मातामहोंका कर्म अपसव्य होकर करै, वह भी इसकेही विषयमें है कोई 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ' ' हरिर्दाता हरिर्भोक्ता ' ' चतुर्भिश्च ' इन वचनोंको पढते हैं ॥

धर्मप्रदीपे-" ततोन्नं पितृदेवेभ्यः संकल्प्य च यथाविधि । दत्तं यद्दास्यमानं च आतृप्तेर्न ममेति च ॥ " तथा-" श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भूमावेव प्रदीयते । हस्तेषु दीयमानं तु पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ वैश्वदेवस्य वामे तु पितृपात्रस्य दक्षिणे । संकल्पोदकदानं स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि ॥ २ ॥ प्रचेताः-" आपोशानं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेदथ । मधुवाता इति तृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा ॥"

धर्मप्रदीपमें लिखाहै कि, फिर पितर और देवताओंको यथाविधि अन्नका संकल्प करके कहै कि, यह दियाहुआ और तृप्तिपर्यन्त देनेयोग्य अन्न मेरा नहीं है तैसेहीं वाक्य है कि, श्राद्धके अन्नका संकल्प पृथ्वीमें दे हाथोंमें दियाहुआ पितरोंको प्राप्त नहीं होता, विश्वेदेवाओंके बांये और पितरोंके पात्रके दहिने भागमें संकल्पके जलका दान रुचिके अनुसार नित्यश्राद्धमें देना चाहिये, प्रचेताका कथन है कि, आपोशान देकर तीन गायत्री 'मधुवाता' तीन ऋचा तीनबार 'मधु ३ ' पढै ॥

मिताक्षरायां पास्करः-"संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशानं जुष पैषोथ भोजनम् ॥ गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । मधुवाता इति तृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा ॥ २ ॥ " याज्ञवल्क्यः- " सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृचम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेपि वाग्यता " यथासुखं जुषध्वमिति वाच्यम् ॥

मिताक्षरामें पारस्करका कथन है कि, पितर और देवताओंको संकल्प करके सावित्री और मधुमती ऋचाको जपै, फिर श्राद्धको निवेदन करके आपोशान, भोजनकी आज्ञा और भोजन क्रमसे होतेहैं, तीन वा एकवार व्याहृतियोंसहित गायत्री मधुवाता तीन ऋचा और तीनवार ' मधु ३ ' पढै याज्ञवल्क्यने कहा है कि, व्याहृतियोंसहित गायत्री मधुवाता तीन ऋचा पढकर कहै कि, आनन्दसे भोजन करो, और ब्राह्मण भी मौन होकर भोजन करैं ॥

श्राद्धे भोजननियमः ।

अत्रिः–" असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यद्युपस्पृशेत् । अभाज्य तद्भवेदन्नं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत् ॥" आपोशाने विशेषमाह स्मृतिसमुच्चये–" आपोशानं वामभागे सुरापानसमं भवेत् । दक्षभागे तु यः कुर्यात्सोमपानसमं भवेत् ॥ " तथा–' पुनरापूर्यापोशानं सुरापानसमं भवेत् ॥"

अत्रिने कहाहै कि, संकल्पसे पहिले ब्राह्मण अन्नादिका स्पर्श करले तो वह अन्न भोजनके योग्य नहीं रहता, और पितरोंको नहीं मिलता, जबतक जलपान न करै, तबतक दिये अन्नको स्वीकार न करै, आपोशानमें विशेष, स्मृतिसमुच्चयमें लिखा है कि, बाईं ओरमें आपोशान होय तो मदिरापानके समान और दक्षिण ओरमें होय तो सोमपानका फल प्राप्त होता है, तैसेही वाक्य है कि, आपोशानको दूसरे वेर अंजलि भरकर करै तो मद्यपानके तुल्य होताहै ॥

हेमाद्रावत्रिः–" दत्ते वाप्यथवा दत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्बलिम् । तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः ॥ " केचिदाज्येन कुर्वन्ति । तन्न ॥ पायसेन तथाज्येन माषान्नेन तथैव च । न कुर्याद्बलिदानं तु ओदनेन प्रकल्पयेत् ॥" इति स्मृतिसारे निषेधात् ॥ शङ्खः–" श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान्न पृच्छेल्लवणादिषु । उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र संशयः ॥" कात्यायनः–' अश्नत्सु जपेत्सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृत् त्रिर्वा राक्षोघ्नीः पौरुषं सूक्तमप्रतिरथम् ' इति ॥ हेमाद्रौ सौरपुराणे–' ऐन्द्रं च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद्ब्राह्मणांस्ततः ॥'

हेमाद्रिमें अत्रिका वाक्यहै कि, दीहुई वा न दीहुई बलिको जो पृथ्वीमें डालता है पितरोंके निराश जानेपर वह अन्न फलहीन होजाता है, कोई घृतसे बलि देतेहैं सो उचित नहीं, कारण कि, स्मृतिसारमें इसका निषेध लिखा है कि, खीर घी उडदसे बलिदान करना उचित नहीं भातसे करै, श्राद्धमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंसे शाकमें नोन कैसाहै इत्यादि न पूछै पूछै तो उसके पितर जूंठ मुखही निराश हो चले जाते हैं इसमें सन्देह नहीं कात्यायनने लिखा है कि, प्रथम एकवार व्याहृतियोंसहित गायत्री, तीन वार 'रक्षोघ्नी, पुरुषसूक्त ' और अप्रतिरथ, को पढै हेमाद्रिमें सौरपुराणका वाक्य है कि, 'इन्द्रसूक्त' और 'पुरुष सूक्त' ब्राह्मणोंको श्रवण करावै ॥

मात्स्यपाद्मयोः–" ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च । इन्द्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः ॥ मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत्पुनः । अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेत् ॥ २ ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–" वीणां वंशध्वनिं चाथ विप्रेभ्यः संनिवेदयेत् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ॥ त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानीर्यजूंषि च ॥"

मत्स्य और पद्मपुराणमें लिखा है कि, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, रुद्र, सोमके सूक्त, पावमानी ऋचा और इसी प्रकार तिनके प्रसन्न तार्थ तीर्थ मण्डल ब्राह्मणको उच्चारण करै, सब विद्या न होंय तो गायत्रीमात्रका जप करै, पृथ्वीचंद्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, फिर ब्राह्मणोंको वीणा और वांसकी ध्वनि सुनावै, पुरुषसूक्त, तीनों नाचिकेत, तीनों मधु, तीनों सुपर्ण और पावमानी ऋचा और पावमानी, यजुर्वेद श्रवण करावै ॥

हेमाद्रावत्रिः–"हुंकारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ताद्वापि वदेद्गुणान् ॥ भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत् ॥ प्रौढपादो बहिःकच्छो बहिर्जानुकरोपि वा । अंगुष्ठेन विनाश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥ पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्धात् पुनः खादेन्मोदकानि फलानि च ॥ मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेपि वा । इत्थमश्नन् द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४ ॥" जाबालिः–इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्यादन्नं शनैः शनैः ॥ वृद्धशातातपः–अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् न याचते द्विजो मूढः स भवेत् पितृघातकः ॥" यत्तु यमः–'श्राद्धे द्विजो नैव दद्यान्न याचेन्नैव दापयेत्' इति तदसम्पादितवस्तुविषयमिति हेमाद्रिः ॥

हेमाद्रिमें अत्रिके वाक्य हैं कि[1], जो हुंकारसे वा हाथसे अन्नके गुणोंको वर्णन करै, भूमिसे भोजनके पात्रको उठावै, और पृथ्वीपर त्याग दे, वा हाथसे जलपान करै, जो जानु खडे किये कच्छ खोलै, गोडोंसे बाहर हाथ करै, अंगुलियोंमें अंगूठा लगाये विना वा मुखसे शब्द करताहुआ भोजन करता है, और जो पीनेसे उच्छिष्ट जलोंको फिर निकालकर पीता है और भोजनसे बचे लड्डू और फलोंको फिर भोजन करता है और जो मुखसे अन्नमें फूक मारता है वा पात्रमें थूकता है तो इन प्रकारोंसे भोजन करताहुआ ब्राह्मण श्राद्धको नष्ट करके नरकमें प्राप्त होता है, जाबालिने लिखा है कि, जो श्राद्धके निमित्त बना हो उसमेंसे अभीष्ट अन्नको मांगले जो मूढ ब्राह्मण नहीं मागता वह पितरोंका नष्ट करनेवाला होता है, जो यमने लिखा है कि, ब्राह्मण न दे न मांगे न दिवावै वह उसके विषयमें है जो श्राद्धमें वस्तु न बनी हो यह हेमाद्रिमें है ॥

हारीतः–"ऊर्ध्वपाणिश्च विहसन् सक्रोधो विस्मयान्वितः। भुग्नपृष्ठश्च यद्भुङ्क्ते न तत्प्रीणाति वै पितॄन् ॥" प्रचेताः–"न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोन्नं कदाचन। न पादौ न शिरो बस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥" शङ्खः–"श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥" उशनाः–"भोजनं तु निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन। अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च ॥" ब्राह्मे–'न चाश्रुपातयेज्जातु न शुष्कां गिरमीरयेत् । न चोद्वीक्षेत भुञ्जानान्न च कुर्वीत मत्सरम् ॥' यमः–'स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यग्धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥'

हारीतने लिखा है कि, उपरको हाथ करके हँसताहुआ क्रोधयुक्त, विस्मयसे युक्त, पीठ टेढी करके जो भोजन करता है, वह पितरोंको तृप्त नहीं करता है, प्रचेताने लिखा है कि, भोजन करताहुआ बायें हाथसे अन्नको और चरण शीश और स्थानको न छुवै, और चरणसे पात्रको न छुवै, शंखने

---

१ तथा च–हविर्गुणा न वक्तव्या यावन्न पितृतर्पणम् । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ अर्थात्–जबतक पितरोंका तर्पण न हो हविके गुण कथन न करै, तर्पण करने उपरान्त गुण कहै ॥

लिखा है कि, श्राद्धकी पंक्तिमें भोजन करताहुआ ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणको छूले तो उस परसेहुए अन्नको न त्यागकर ८०० आठ सौ गायत्रीको जपै; उशनाने लिखा है कि, बुद्धिमान् मनुष्यको भोजन किसी प्रकार निःशेष न करना चाहिये, दही, दूध, सहत और सतू यह शेष न रहै तो कुछ भय नहीं, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, आंसुओंको त्याग न करै, रूखी वाणी न कहै, भोजन करतेहुये ब्राह्मणोंको न देखै, और क्रोध न करै ॥ यमने कहा है कि, वेदपाठ और धर्मशास्त्रोंको सम्यक् प्रकार श्रवण करावै॥

प्रचेताः–"भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ऋग्यजुःसामलक्षणम् । जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव विशेषतः ॥ यजूंषि चैव रुद्रं च रक्षोघ्नीर्ऋच एव च ॥" रक्षोघ्नीः कृणुष्व रक्षोहणमित्याद्याः ॥ तत्रैव निगमः–'भुञ्जत्सु जपेत् पावमानीरुदीरतामध्वन्नवतीश्च ॥' अन्नवत्यः पितॄंनुस्तोषमिति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये भरद्वाजः–"भुञ्जानेषु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् । पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥" क्षणपाद्यादिसत्त्वा इत्यर्थः ॥ विप्रवमने तत्रैव दक्षः"–निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भोजने मुखनिःसृते । तदैव होमं कुर्वीत स्वाग्नौ विप्रः समाहितः ॥ प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैर्यावद्द्वात्रिंशसंख्यया । ब्राह्मणस्तु ततः कृत्वा घृतप्राशनमाचरेत् ॥ २ ॥"

प्रचेताने कहाहै कि, ब्राह्मणोंके भोजन करतेहुये ऋग्यजुः सामवेद, और विशेषकर पितरोंके मंत्र जपै यजुर्वेद, रुद्राध्याय, रक्षोघ्नीऋचा 'कृणुष्वपाजः' और 'रक्षोहणं' इत्यादि ऋचाओंको जपै,वहांही निगम है कि, ब्राह्मणभोजनके समय 'पावमानीः' मध्वन्नवतीः' और 'अन्नवतीः' ऋचा पढनी चाहिये,यदि पितरोंके संतोषकी इच्छा करै तो ऐसा करै पृथ्वीचन्द्रोदयमें भरद्वाजका वाक्यहै कि, ब्राह्मणोंके भोजन करतेहुये यदि प्रमादसे अधोवायु निकल जाय तो वह उसी समय पादकृच्छ्र सम्पादन करके और पाद्य अर्घ्य आदि देकर और

---

१ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघाहि घृतश्चुतः । ऋषिभिःसंभृतोरसोब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ १ ॥ पावमानीर्दिशंतु न इमं लोकमथो असुम । कामान्समर्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः ॥ २ ॥ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥ ३ ॥ प्रजापत्यं पवित्रं शतो द्याम हिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥ ४ ॥ इन्द्रः पुनीहि सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदामूर्जयन्त्या पुनातु ॥ ५ ॥ ऋषयस्तु तपस्तेपुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः । तपस्तपसोऽध्यन्तु पावमानीर्ऋचोब्रवीत् ॥ ६ ॥ यन्मे गर्भे वसतः पापमुग्रं यज्जायमानस्य च किञ्चिदन्यत् । जातस्य च यच्चापि च वर्द्धतो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि ॥ ७ ॥ मातापित्रोर्यन्न कृतं वचो मे यत्स्थावरं जङ्गममावभूव । विश्वस्य तत्प्रहृषितं वचो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि ॥ ८ ॥ गोत्रात्तस्करत्वात्स्त्रीवधाद्यच्च किल्बिषम् । पापकं च चरणेभ्यस्तत्पाव० ॥ ९ ॥ ब्रह्मवधात्सुरापानात् स्वर्णस्तेयाद्वृषलीगमनमैथुनसंगमात् । गुरोर्दाराधिगमनाच्च तत्पावमा० ॥ १० ॥ बालघ्नान्मातृपितृवधाद्भूमितस्करात् सर्ववर्णगमनमैथुनसंगमात् । पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात्सद्यः प्रहरति सर्वदुष्कृतं तत्पावमा० ॥ ११ ॥ क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद्भक्षाद्भोज्यात्प्रतिग्रहात् । असंभोजनाच्चापि नृशंसं तत्पावमा० ॥ १२ ॥ दुर्यष्टं दुरधीतं पापं यच्चाज्ञानतो कृतम् । अयाजिताश्चासंयाज्यास्तत्पाव० ॥ १३ ॥ असंत्रसन्नं यत्किंञ्चिद्धूयते च हुताशने । संवत्सरकृतं पापं तत्पा० ॥ १४ ॥ ऋतस्य योनयो मृतस्य धाम विश्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः । तान आपः प्रवहन्तु पापं शुद्धा गच्छामि सुकृतामुलोकं तत्पावमा० ॥ १५ ॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीर्याभिर्गच्छाति नान्दनम् । पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छाति ॥ १६ ॥ पावमानीं० पितॄन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् । पितृस्तस्योपवर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १७ ॥ पावमानं परंब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् । ऋषींस्तस्योपतिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १८ ॥ पावमानं परंब्रह्म ये पठन्ति मनीषिणः । सप्तजन्मभवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ १९ ॥ दशोत्तराण्यृचांश्चैव पावमानीः शतानि षट् । एतज्जुह्वञ्जपेन्मंत्रं घोरमृत्युभयं हरेत् ॥ २० ॥

ब्राह्मणको निमंत्रणदे यदि ब्राह्मणको वमन (कै) होजाय तो ऐसे स्थलमें दक्षने कहाहै कि, निमंत्रित ब्राह्मणके मुखसे श्राद्धके विषे यदि वमन होजाय तो उसी समय उस ब्राह्मणको अपनी अग्निमें प्राणआदि पांच वा तीस ऋचाओंसे होमकरना चाहिये फिर वह ब्राह्मण घृतको पान करै ॥

ऋग्विधाने तु—"इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं सम्पूर्णमेव हि ॥" इत्युक्तम् ॥ अग्न्यादिभिरिति लौकिकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाज्यभागान्ते नामगोत्रपूर्वमग्नौ पितॄनावाह्य संपूज्यान्नत्यागं कृत्वा प्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्जुहुयादित्यर्थः ॥ भोजनेन पुनः श्राद्धेन ॥ तेन होमः पुनःपुनः श्राद्धं चेति पक्षद्वयमुक्तम् ॥ सूक्तजपस्तूभयानुगतः ॥

ऋग्विधानमें तो यह लिखाहै कि, यदि श्राद्धमें विघ्न होजाय तो वह श्राद्ध इन्द्रके निमित्त सामसूक्तका जप और अग्निस्थापन आदि कर्म और पुनः श्राद्ध करनेसे सम्पूर्ण होताहै, यहां 'अग्न्यादिभिः' इसका यह अर्थहै कि, लौकिक अग्नि स्थापन और चरुका निर्वाप (पाचन करना) आदि आज्यभाग इनके अन्तमें नामगोत्र पूर्वक अग्निमें पितरोंका आवाहन और फिर भलीभांति पूजन और अन्नको त्यागकरके प्राणआदि ऋचाओंको पढकर ३२ वत्तीस आहुति प्रदान करै, इस श्लोकमें भोजनशब्दसे पुनः श्राद्धका ग्रहण करतेहैं, इसमें होम अथवा फिर श्राद्ध करना ये दोनों पक्षहैं, और सोमसूक्तका पढना तो दोनों पक्षोंके तुल्यहै ॥

स्मृतिसंग्रहे—'प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदङ्गता । अतो भुक्तिक्रियाहानौ श्राद्धवृत्तिं न मन्वते । पिण्डदानोत्तरं वान्तौ होम एव नावृत्तिः' ॥ पिण्डदानात् प्राग्वान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परेद्युः पुनः श्राद्धं कार्यमित्यर्थः ॥ तत्रैव—"श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य अर्चयेच्च हुताशनम् ॥" तथा—"एक एव यदा विप्रो भोजने छर्दितो यदि । तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥" द्वितीयपक्षे ऋग्विधाने—"भोजनोपक्रमादूर्ध्वं प्रक्रमात् पूर्वतो यदि ॥ श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ ॥"

स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, श्राद्धमें पिण्डदान प्रधानहै और भोजन उसका अंगहै इससे भोजनकी हानिमें श्राद्धका फिर करना उचित नहीं अर्थात् पिंडदानके उत्तर वमन होजाय तो होमही करै श्राद्ध न करै और यदि पिंडदानसे पहिले वमन होजाय तो उसीदिन व्रतकरके अगलेदिन हवन करै, वहांही लिखाहै कि, श्राद्धकी पंक्तिमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणसे वमन होजाय तो वह लौकिक अग्निका स्थापन करके अग्निका पूजन अर्थात् हवन करै, इसीप्रकार लिखाहै कि, एकही ब्राह्मण यदि भोजनके समय वमन करदे तो उसी समय अग्निको स्थापन करके विधिपूर्वक होम करै, और दूसरा पक्ष (पुनःश्राद्ध) के विषय ऋग्विधानमें यह लिखाहै कि, भोजनके आरंभसे उत्तर वा पहिले यदि श्राद्धमें विघ्न होजाय तो फिर श्राद्ध करै, जप होम ये उसमें पितरोंको तृप्त करनेवाले नहीं ॥

स्मृतिसंग्रहे—"अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत् । पुनः पाकात्तु कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥" पिण्डदानं श्राद्धम्—"अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा । पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि" इति तत्रैवोक्तेः ॥ तथा—"पित्रर्थानां त्रयाणां च पिता च वमते यदि । तद्दिने चोपवासः स्यात्पुनः श्राद्धं परेऽहनि ॥ वमने वा विरेके

वा तद्दिनं परिवर्जयेत् ॥" एषु वचनेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ इदं मासिकाब्दिकविषयम् ॥ दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम् ॥ "श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते" इति मरीचिस्मृतेः ॥

स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, पिंडदानसे पहिले भोजन करताहुआ ब्राह्मण यदि वमन करदे तो फिर पाकको बनाकर विधिसे पिंडदान करै कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, पिण्डदानसे पहिले यदि पिताको वमन होजाय तो दूसरीवार पाक (खीरआदि) को बनाकर विधिसे श्राद्ध करै, तैसेही वाक्यहै कि, पितृपक्षके ब्राह्मणोंमेंसे यदि पिता वमन करै तो उसदिन व्रतकरके अगलेदिन श्राद्ध करै, इसीप्रकार वचन है कि, वमन वा विरेचन होजाय तो उसदिनको त्यागदे, इन वचनोंमें मूल विचारकरने योग्यहै, यह मासिक और वार्षिक विषय कहा अमावस्या आदिमें वमन होजाय तो आम (कच्चे) अन्नसे उसीसमय श्राद्ध करै कारण कि, मरीचिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, श्राद्धमें विघ्न होनेपर द्विजातियोंको अमावास्या आदिमें कच्चा श्राद्ध मासिक और वार्षिक श्राद्धको छोडकर लिखाहै ॥

श्राद्धे पिण्डदानमेव प्रधानमिति कर्काचार्याः ॥ तन्मते दक्षोक्तो होमएव नावृत्तिः ॥ विप्रभोजनमिति मेधातिथिः ॥ भोजनं पिण्डदानाग्नौकरणानीति कपर्दिधूर्तस्वामिहेमाद्याद्यः । श्राद्धस्य होमदानोभयरूपत्वात्संपूर्णदानाभावाद्भोजनस्याङ्गत्वेपि सोमवमते इति युक्तम् ॥ तन्मते पूर्वोक्तो निर्णयः ॥ अन्नत्यागमात्रं प्रधानम् । भोजनं तु प्रतिपत्तिरूपमङ्गमतो वान्तौ तद्दानेपि नावृत्तिरिति गौडमैथिलादयः ॥ नैमित्तिकविधानमिति युक्तं प्रतीमः ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ वैश्वदेविकस्य वमने होम एव । नावृत्तिः । अङ्गत्वात् ॥ तत्र रक्षार्थत्वात ॥

श्राद्धमें पिंडदान करनाही प्रधानहै यह कर्काचार्यने लिखाहै उनके मतमें दक्षका कहा होमही होताहै, आवृत्ति और ब्राह्मण भोजन नहीं करना यह मेधातिथिका मतहै भोजन पिंडदान अग्नौकरण प्रधानहै, यह कपर्दिधूर्तस्वामी हेमाद्रि आदिका मतहै उनके मतमें पूर्वोक्त निर्णयहै सो उचित नहीं कारण कि, श्राद्धमें जो कुछ दियाजाय वह प्रधानहै, भोजन तो श्राद्धकी सिद्धिरूप अंगहै, इससे वमन होनेपर दान होनेपरभी श्राद्धका फिर करना नहीं होता यह गौडमैथिल आदिका मतहै, श्राद्धको यज्ञदान उभयरूप होनेसे सम्पूर्णके दानका अभावहै इससे भोजनको अंगहोनेपर भी सोमवमनके समान निमित्तसे श्राद्धका विधानही उचितहै, यह ही हमको उचित प्रतीत होता है, यहां यह तत्त्वहै कि, यदि विश्वेदेवाओंका ब्राह्मण वमन करदे तो हवन होताहै श्राद्ध दूसरीवार नहीं होता कारण कि, विश्वेदेवा श्राद्धका रक्षक होंनेसे अंगहै ॥

इष्टिश्राद्धे 'क्रतुदक्षौ' इत्यादिस्मृतेश्च ॥ तत्र जयान् जुहुयादितिवत् । पितामहादेरपि तथा । पितेत्युक्तेरिति केचित् । तस्यापि प्रधानत्वात् पितृवदिति तु युक्तम् । सपिण्डीकरणादौ वार्षिकवत् "सपिण्डीकरणादीनि यानि श्राद्धानि षोडश । तत्र पिण्डप्रधानत्वं प्रेतत्वविनिवर्तकम्" इति स्मृतेः ॥ महैकोद्दिष्टादौ तूभयप्राधान्यादावृत्तिरेव ॥ 'एक एव द्विजो भोज्यः पिण्डोप्येको विधीयते' इति स्मृतेः ॥ वृद्धिसंकल्पनित्यश्राद्धादौ तु भोजनप्राधान्याद्वान्तावावृत्तिरेव । "वृद्धिश्राद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम् । नित्यश्राद्धमदैवं स्यात्पिण्डदानविवर्जितम्" इति स्मृतेः ॥ भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे संकल्पसंज्ञके । तत्रैव पितृविप्रस्य तूपघाते पुनः

क्रिया" इति संग्रहोक्तेश्च ॥ मघादावप्येवम् ॥ तीर्थमहालयादौ दर्शवदित्यपरार्काद्यालोचनेन प्रतीमः ॥

और स्मृतिमें भी लिखाहै कि, इष्टि (यज्ञ) श्राद्धमें क्रतु, दक्ष विश्वेदेवा होतेहैं, वहां जयोंका होम करै इसके समान पितामहआदि भी उसीप्रकार रक्षकहैं इससे पिताही प्रधान है कोई यह कहतेहैं कि, पितामहको भी पिताके समान प्रधानता उचितहै सपिंडीआदिमें वार्षिकके समान कर्म है कारण कि, जो सोलह सपिंडीकरण आदि श्राद्धहैं उनमें प्रेतभावका दूर करनेवाला प्रवर्तकपिंडदानही प्रधानहै पितामहके एकोदिष्टश्राद्ध आदिमें तो दोनोंको प्रधान होनेसे आवृत्तिही है. कारण कि, यह स्मृतिहै कि, एकही ब्राह्मण जिमाना और एकही पिंड करना, वृद्धिसंकल्प नित्यश्राद्ध आदिमें तो भोजनकी प्रधानतासे वमन होनेपर भी आवृत्ति है, कारण यह स्मृति है कि, वृद्धिश्राद्धमें बुद्धिमानोंने विकल्पसे पिंडदान करना लिखाहै, नित्यश्राद्ध, विश्वेदेवा और पिंडदानके विनाही होताहै, संग्रहका भी वाक्यहै कि, संकल्प नामके श्राद्धमें भोजन करानाही प्रधान है यदि उसमें पिताके ब्राह्मणमें कोई विघ्न होजाय तो फिर कर्म करै, मघा आदिमें भी ऐसेही जानना, तीर्थ महालयआदिमें अमावस्याके तुल्य करै यह अपरार्कआदिके देखनेसे विदित होताहै ॥

तत्र तृप्तिप्रश्नः ।

आश्वलायनः-'तृप्तान् ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदंतेति च संपन्नं पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेदभिमतेऽनुमते च' इति ॥ अत्र गायत्री मध्विति त्रिकजपोपि ज्ञेयः ॥ 'तृप्तान् बुद्धान्नमादाय सतिलं पूर्ववज्जपेत्' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ व्यासः-'तृप्ताः स्थेति तु पृष्टास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यथ ।' अभिमते विप्रैः स्वीकर्तुमिष्टे ॥

आश्वलायनने लिखाहै कि, ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर 'मधुमती' और '[1]अक्षन्नमी मदन्त' ये ऋचा सुनावे सम्पन्न (सिद्धि) पूछकर जो जो अन्न ब्राह्मणोंने खाया हो उसको और स्थालीपाकको पिंडके निमित्त निकालकर शेषको निवेदन करै अभिमत और अनुमत जानकर । गायत्री और मधुमती इन तीन ऋचाओंका जप यहां जानना कारण कि, प्रचेताने कहाहै कि, ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर तिलोंसहित अन्नके पूर्वके तुल्य जप कर, व्यासने कहाहै कि, ब्राह्मणोंको तृप्त हो, ऐसे पूछे, वे हम तृप्त हुए, इस प्रकार कहैं, अभिमत नाम ब्राह्मणके स्वीकार करने योग्य को कहते हैं ॥

शौनकोपि-'अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत तांस्ततः । ते इष्टैः सह भोक्तव्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथारुचि ॥" श्राद्धविशेषे प्रश्नभेदमाह हेमाद्रौ विष्णुः-'पित्र्ये स्वदितमिति गोष्ठ्या सुश्रुतं संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत' इति ॥ आयुष्यमिति स्वैरिषु स्वैरमिच्छाश्राद्धम् ॥ याज्ञवल्क्यः-"अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्यादापः सकृत्सकृत् ॥" इदं चात्र विकिरदानमन्यशाखिनाम् । आश्वलायनानां तु पिण्डान्त एव सूत्रकृतोक्तम् ॥

---

१ अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रियाअधूषत अस्तोषत स्वभानवो विप्रानविष्टयामती योजान्विन्द्रते हरी ॥ ऋ० १ । ६ । ३ ॥

शौनकने कहाहै कि, ब्राह्मणोंसे इस प्रकार पूछे शेष अन्नका क्या करूं, वे ब्राह्मण कहैं कि, इष्ट मित्रोंसहित भोजन करो यह कहकर श्राद्धका अन्न उसे देदे वा अपनी रुचिके अनुसार आप स्वीकार करले, श्राद्ध विशेषमें प्रश्नका भेद हेमाद्रिमें विष्णुके वाक्यसे कहा है कि, पितृश्राद्धमें भली प्रकार भोजन किया गोष्ठिश्राद्धमें वेदपाठ अच्छी प्रकार हुआ वृद्धिश्राद्धमें सम्पन्न भी हुआ देवश्राद्धमें रुचाकी नहीं, इच्छा श्राद्धमें आयुष्य (अवस्था वर्द्धक) हुआ की नहीं, इसप्रकार यजमान पूछै, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, अन्न लेकर तृप्त हुये यह पूछै, और शेष अन्नको उनकी आज्ञासे भूमिमें डालदे और एक २ वार जल देदे, यह विकिरका दान श्राद्धमें दूसरी शाखावालोंके निमित्त है, आश्वलायनोंको तो पिण्डदानके अन्तमेंही सूत्रकारने विकिरका दान लिखा है ॥

कात्यायनस्तु–'विकिरोत्तरं गायत्र्यादिजपं तृप्तिप्रश्नं चाह' हेमाद्रौ देवलः–"ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विविधं बुधः । तेषामुच्छेषणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत् ।" माधवीये प्रचेताः–'सार्ववर्णिकमादाय ये अग्नीति भुवि क्षिपेत् ।' स च कुशे कार्यः ॥ 'दर्भेषु विकिरश्च यः' इत्युक्तेः ॥ मन्त्रः कातीयः ॥ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्य-दग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्" इति ॥ अन्ये तु–"असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम्" इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेन दैवे ॥ "असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम्" इत्यग्निपुराणोक्तेन पित्र्येन्नं विकीर्य 'ये अग्निदग्धाः' इत्युच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि पृथग्दद्यादित्याहुः ॥

कात्यायनहीने विकिरदानके पीछे तो गायत्रीका जप और तृप्तिका प्रश्न करना लिखा है, हेमाद्रिमें देवलका वाक्यहै कि, फिर सब ब्राह्मणोंके भोजनका अन्न अनेक पात्रोंमें लेकर उनके उच्छिष्ट स्थानकी भूमिमें विकिरके निमित्त डालदे माधवीयमें प्रचेताका वाक्य है कि, सब वर्णोंके अन्नको लेकर 'ये अग्नि' इस मंत्रसे भूमिपर डाले, वह विकिर कुशापर करना चाहिये, कारण कि, ऐसे कहा है कि, कुशाओंपर विकिर करै, कातियोंका मंत्र यहहै कि, मेरे कुलके जिन जीवोंको अग्निका दाह प्राप्त नहीं हुआ वे भूमिपर देनेसे तृप्त हों और तृप्त होने पर परम गतिको जांय, और अन्य तो जिनदेवताओंने सोम पान नही किया और जिनको यज्ञका भाग नहीं मिला उनके निमित्त विश्वेदेवओंका विकिर अन्न देताहूं, हेमाद्रिमें लिखे इस गोभिलके वाक्यसे दैवश्राद्धमें यह विधान करै, और जो संस्कारहीन मरगये हैं और जो त्यागनेवाली कुलकी स्त्री हैं उनको पितरोंका अन्न विकिर देताहूं, इस अग्नि-पुराणमें कहे मंत्रसे पितृश्राद्धमें अन्नको बखेरकर 'अग्निदग्धा' इस मंत्रसे उच्छिष्टका पिंड कुशाके ऊपर पृथक् दे इसप्रकार कहते हैं ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ ब्राह्मे–'ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत् ॥' माधवीये गौतमः–'विकिरमुच्छिष्टैः प्रतिपादयेत् ॥' हेमाद्रौ व्यासः–'उच्छिष्टैरेव विकिरं सदैव प्रतिपादयेत् ॥' भृगुः–'पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौल्वलिः ॥' श्राद्धकारिकायां–"यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम । तस्मादन्नं त्यजेद्भूमौ वामभागेषु पैतृके ॥" मनुः–"उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥"

और पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसीप्रकार ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, फिर हाथपैरधो और दोवार आचमन कर नारायणका स्मरण करै, माधवीयमें गौतमका वचन लिखाहै कि, उच्छिष्टसे विकिरदे हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि, सदैव उच्छिष्टसे विकिर करै, भृगुने कहाहै कि, विकिरकी सिद्धि पिंडके समान होतीहै, यह तौल्वलि कहते हैं, श्राद्धकारिका का कथनहै कि; ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ यजमानके दास आदिकोंके निमित्त पितरोंके बाईं ओर भूमिपर अन्नदे, मनुने लिखा है कि, जो कपटी और शठ नहों ऐसे दासोंको पितरोंका भाग भूमिगत उच्छिष्ट लिखा है ॥

विष्णुः–'उदङ्मुखेष्वाचमनमादौ दद्यात्' ततः प्राङ्मुखेषु पित्र्ये दैवे चेत्यर्थः। शातातपः–'विश्वेदेवनिविष्टानां चरमं हस्तधावनम्' ॥ हेमाद्रौ वाराहे–हस्तं प्रक्षाल्य यश्चापः पिवेद्भुक्त्वा द्विजः सदा। तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ मरीचिः–"हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिवेदविचक्षणः। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥" तत्रैव संग्रहे–"पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डलं भुवि निक्षिपेत्। हस्तादीन् क्षालयेद्विद्वान् शरावादौ तु कुत्रचित् ॥" व्यासः–"ताम्बूलोद्गिरणं चैव गण्डूषोद्गिरणं तथा। कांस्यपात्रे तथा ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥ उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करौ श्मश्रूणि शोधयेत् ॥"

विष्णुने कहा है कि, पितृ और देवश्राद्धमें उत्तरको मुख और पूर्वाभिमुख ब्राह्मणोंको पहले आचमन दे, शातातपने कहा है कि, विश्वेदेवाओंके श्राद्धमें बैठे हुये ब्राह्मणोंके हाथ पीछेसे धुवावै, हेमाद्रिमें बाराहपुराणमें लिखाहै कि, जो ब्राह्मण हाथ धोकर पीछेसे जलपीता है वह अन्न राक्षसोंको मिलताहै, और पितर निराश हो जाते हैं, मरीचिने लिखाहै कि, हाथ धोकर जो ब्राह्मण कुल्लेके पानीको पीता है वह श्राद्ध राक्षसोंको मिलता है, पितरोंको नहीं मिलता, वहांही संग्रहका कथन है कि, पवित्रीकी ग्रन्थि खोलकर मण्डलको पृथ्वीमें डाल दे, फिर किसी सरवे आदिमें बुद्धिमान् मनुष्य हाथ धोले, व्यासने लिखा है कि, पान और गंडूष (कुल्ला) इसकी पीकको कांसी और तांबेके पात्रमें कभी न करै, गरम जल और अन्नके चूर्णसे डाढी मूछोंको शुद्ध करै ॥

पिण्डदाननिर्णयः।

अथ पिण्डदानम् ॥ तत्रार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं चेति हेमाद्रौ स्मृतिषु च पक्षा उक्ताः ॥ तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ "प्रेतश्राद्धेषु पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम्" इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बहवः ॥ आश्वलायनः–'भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके। भुक्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम्। साग्निरिति प्रणीतसमीपे अनग्निर्द्विजसमीपे। हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः–'व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत्।' प्रसारितभुजान्तरं व्यामः ॥ संकटे तु व्यासः–'अरत्निमात्रमुत्सृज्य' इति ॥ यत्तु तत्रैव–'सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा' इति। तदन्यशाखिपरम्। देवलः–'ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च ॥' चन्द्रिकायाम्–"पिण्डनिर्वापणं कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः। काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे हिते ॥"

---

१ जो आधाजल पीकर आधाकुल्ला भूमिपर करते हैं इससे पितर और भूमिदेवता प्रसन्न होते हैं ॥

अब पिण्डदान कहतेहैं । उसमें इतने मत हेमाद्रि आदि स्मृतियोंमें लिखे हैं कि, पूजनके अनन्तर, अग्नौकरणके अनन्तर, भोजनके उपरान्त, विकिरके उपरान्त, स्वधा वचनके उपरान्त, ब्राह्मण विसर्जनके उपरान्त पिंडदान करै, इन सब पक्षोंकी शाखाके भेदसे व्यवस्था जाननी उचित है चन्द्रिका और माधवतो यह मानते हैं कि, प्रेतश्राद्धमें भोजनसे पहिले, और दूसरे श्राद्धमें भोजनके पीछे पिंडदान करै, सब श्राद्धोंमें भोजनके पीछे करै, यह तो बहुत कहतेहैं आश्वलायनने लिखाहै कि, भोजनके पीछे और आचमनके पहिले पिण्डदान करै, आचमनके अन्तमें दे यह कोई कहते हैं, भोजनके अनन्तरदे, यह कथन पहले निषेधके निमित्त है अग्निहोत्री अतिप्रणीत (स्थापनकी अग्नि) के निकट और अनग्नि ब्राह्मणोंके समीप पिण्डदानदे हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका वाक्यहै कि, व्याम (भुजा) मात्र अन्तरको त्यागकर पिंडदे, फैलाई हुई बांहके अन्तरको व्याम कहतेहैं, और संकटमें अरत्नि मात्र अन्तर त्यागकर पिंड दे यह व्यास कहते हैं जो उसी स्थानपर लिखाहै कि, रेत वा मृत्तिकासे दक्षिणको नीची वेदी बनावै वह अन्य शाखावालोंके निमित्त है । देवलने लिखाहै कि, फिर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दक्षिण दिशामें जाकर पिंडदे, चन्द्रिकामें लिखाहै कि, कुशा न हो तो बुद्धिमान् मनुष्य काश राजदूर्वाकी उत्तम पवित्री पर पिंडदान दे ॥

आश्वलायनः-'स्फ्येन रेखामुल्लिखेत् ॥ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नैर्दर्भैरवस्तीर्य प्राचीनावीती रेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पिण्डान्निपृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेसौ ये च त्वामत्रानु' इति ॥ हेमाद्रौ पारस्करः- 'कराभ्यामुल्लिखेत् स्फ्येन कुशैर्वापि महीं द्विजः ॥' बह्वृचानां करेणैव लेखा चाग्नेय्यभिमुखेति वृत्तिः ॥ 'दक्षिणाप्राचीं वेदिमुद्धृत्य' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ देवलः-"आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत् । तेष्वासीनेषु पात्रेण प्रयच्छेत्सतिलोदकम् ॥" पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन ॥ वायवीये-'मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद्बुधः ॥'

आश्वलायनने लिखाहै, कि, यज्ञके स्फ्यसे रेखा लिखै, फिर "अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः" इस मंत्रसे उसको छिडके फिर एकबार तोडी हुई कुशा उसपै धरै फिर अपसव्य होकर रेखापर तीनबार जल छिडके कि, पिता पितामह प्रपितामह शुद्ध हों, फिर उस रेखापर सीधे हाथसे पिता पितामह प्रपितामहको पिण्डदान दे और कहै कि, यह पिण्ड तुम्हारे और तुम्हारे अनुयायियोंके निमित्त है, हेमाद्रिमें पारस्करका कथनहै कि, हाथोंसे वा स्फ्यसे वा कुशाओंसे ब्राह्मण रेखा करै, बह्वृचोंको तो एक हाथसे रेखा अपने सन्मुख करनी लिखीहै यह वृत्तिग्रंथमें लिखाहै, आपस्तंबका भी कथनहै कि, दक्षिणको नीची वेदीपर रेखा करके पिण्ड दे, देवलका कथन है कि, आवाहन करके तीन कुशाओंके अग्रभागपर पितरोंकी कल्पना करै, जब वे बैठजायँ तब पात्रमें रखकर पराचीन (नीचाहो पितृतीर्थ) से तिल जल दान करै, वायवीयका कथनहै कि, बुद्धिमान् मनुष्य मधु घी तिलसे युक्त तीन पिण्डदे ॥

त्रिस्थलीसेतौ-"तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा । मधुसर्पिःखण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥" याज्ञवल्क्यः-"सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्दद्याद्वै पितृयज्ञवत् ॥" केचित् पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति ॥ "माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः । ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोग्निपिण्डयोः"

इति स्मृतिसारात् ॥ 'माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्' इति स्मृतेश्च । अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है कि, तिल अन्न जल धूप दीप दूध मधु. घी खांडसे युक्त अष्टांग पिंड कहा है, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, तिलोंसहित सम्पूर्ण अन्नको लेकर दक्षिणकी ओर मुख कर मनुष्य उच्छिष्टके निकट पितृयज्ञके समान पिंडदान करै, कोई तो इस स्मृत्यर्थसारके वाक्यसे पिंडोंमें उरदोंको वर्जित करते हैं कि, उरद श्राद्धोंमें लेने चाहिये, और अग्नि पिंडोंके विषय निषिद्ध हैं कारण कि, जैसे ब्राह्मणके विषे मदिरा दूषित है इसी प्रकार अग्नि और पिंडोंमें उरद दूषित हैं, और स्मृतिमें लिखा है कि, उरदोंको सर्वस्थानमें देना परन्तु पिंड और अग्निमें न देना, इसमें मूल विचारने योग्य है ॥

हेमाद्रावपि सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम् ॥ अत्र शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यात् इति गोभिलसूत्रे ॥ 'सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात्पिण्डान्मधुतिलान्वितान्' इति च ॥ शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिः प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती ॥ तन्न ॥ तुषोपवापवत् परप्रयुक्तद्रव्यत्वेप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेन प्रधानत्यागाच्च शेषलोपेपि द्रव्यान्तरेण कार्यम्॥अतो नेयं प्रतिपत्तिः ॥ किं तु प्रधानमित्युक्तं प्राक् ॥ अन्यथा सपिण्डीकरणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक् ॥

हेमाद्रिमें तो सर्व शब्दका प्रकृतार्थ लिखा है अर्थात् (विद्यमान अन्न) होनेसे संपूर्ण अन्नोंका ग्रहण करना यह कहा है, यहां संपूर्ण शेष रहे अन्नको ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर एक पात्रमें उठाले फिर उसको उच्छिष्टके निकट कुशाओंपर तीन २ पिंड दे, इस गोभिल सूत्रके अनुसार संपूर्ण प्रकृत अन्नसे शहत तिलयुक्त पिंडोंका नियम होनेसे उसके अभावमें पिंडकी निवृत्ति जाननी चाहिये यह मैथिल और वाचस्पतिका कथन है सो उचित नहीं तुषोंके उपवाप (बोना) की समान इसके (कहे) द्रव्यवाले कर्मको अर्थ कर्म होनेसे और गुणके अनुरोधसे प्रधानताके त्यागसे शेष पदार्थके अभावमें भी दूसरे द्रव्यसे कर्म करना, इससे यह प्रतिपत्ति नहीं, किंतु प्रधान है यह पहले कह आये हैं नहीं तो सपिंडीकरणके आदिमें मुख्य भी पिंड मिलानेका लोप होजायगा यह संक्षेपसे कहा है ॥

अथ पिण्डप्रमाणम् ।

हेमाद्रावङ्गिराः—"कपित्थबिल्वमात्रान्वा पिण्डान् दद्याद्विधानतः । कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः पुमान् ॥" इति ॥ तत्रैव धूम्रः—"कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः । तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडंगुलैः ॥" अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु—"एकोद्दिष्टे सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते । नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥ तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः । महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥ २ ॥" इत्याहुः ॥ कलिकायामाचार्यः—"यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र बिल्वफलोपमाः । यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः ॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशांगुल उच्यते" इति ॥

अब पिंडके प्रमाण वर्णन करते हैं, हेमाद्रिमें अंगिराका वाक्य है कि, कैथ बेलके प्रमाण वा कुक्कुटके अण्डे वा आंवले वा बेरके तुल्य पिंड विधिसे देवै । वहांही धूम्रका कथन है कि, कैथके प्रमाणसे

सावधान होकर पिंड दे और पिंड दिये पीछे वहांसे छः अंगुलके अन्तर उतनेही विकिर दान करै, अंत्येष्टि पद्धतिमें भट्टोंने तो एकोद्दिष्ट और सपिंडोंमें कैथके तुल्य, मासिक और वार्षिकमें नारियलके तुल्य, तीर्थके मिलनेपर वा दर्शमें कुक्कुटके अंडेकी समान, महालय और गयाश्राद्धमें आमलेके समान पिंड देना कहा है, यह कहते हैं, कलिकामें आचार्योंने लिखा है कि, जहां बहुतसे पिंड हों वहां बेलफलके समान और जहां एक पिंड हो वहां खजूरकी सदृश और प्रेतका पिंड तो बारह अंगुल लंबा देना कहा है ॥

वायवीये–'पत्नी पिण्डांस्तु मृद्नीयात्रिवर्गस्य सहायिनी ॥' हेमाद्रौ लौगाक्षिः–"महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाहिके । पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥" शाठ्यायनिः–'असावेतत्त इत्युक्त्वा तदन्ते च स्वधा नमः ।' असावित्यत्र सम्बन्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनाम सम्बुद्ध्यन्तमुक्त्वा पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो न ममेति वदेदिति हेमाद्रिः ॥

वायवीयमें लिखा है कि, धर्म अर्थ कामकी सहायिनी पत्नी यत्नसे उन पिंडोंको मलकर बनावे, हेमाद्रिमें लौगाक्षिका कथन है कि, महालय गया और प्रेतका श्राद्ध और दश दिनका श्राद्ध इनमें पिंड शब्द और अन्य श्राद्धोंमें अन्न शब्द उच्चारण करै, शाठ्यायनिका कथन है कि, यह वह पिंड तुझे देता हूं, यह कहकर स्वधा नमः कहै, और यहां पितरोंका संबंध रूप गोत्र आदिसे युक्त सम्बुध्यन्त (हे पितः) आदि नाम कहकर फिर चतुर्थ्यन्त नाम (पित्रे आदि) फिर (अयं पिंडः) यह पिंड (इदमन्नं) यह अन्न स्वधा नमः फिर (न मम) मेरा नहीं यह उच्चारण कर दे दे यह हेमाद्रिका मत है ॥

पिण्डदाननिर्णयः ।

पित्रादिनामाज्ञाने त्वापस्तम्बः–'यदि नामानि न विन्द्यात्स्वधापितृभ्यः पृथिवीदिविषद्भ्य इति पिण्डं दद्यात्, स्वधापितृभ्योन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्' स्वधापितृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्, एवं मातामहेषु मातृषु च' ॥ बह्वृचानां तूक्तं प्राक् ॥ कलिकायां स्मृतिः–'यावद्वेवोच्चरेन्मन्त्रं तावत्प्राणं निरोधयेत् ॥' येषां तु गृह्यात्के दर्शे श्राद्धं पृथगुक्तं तेषां पितृभ्यः पश्चिमे मातृभ्यस्ततपश्चिमे मातामहीभ्यः पिण्डादि देयमिति सांख्यायनः ॥

पिता आदिके नाम यदि न जानते हों तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि, जो नाम न जाने तो पृथ्वी सत्, पितरोंको स्वधा, यह कहकर पहला पिंड और अन्तरिक्ष सत्, पितरोंको स्वधा, यह कहकर दूसरा पिंड और दिविषत्, पितरोंको स्वधा, यह कहकर तीसरा पिंड प्रदान करै, बह्वृचोंके निमित्त तो पहिले कह आये हैं, कलिकामें स्मृतिका वाक्य है कि, इतने मंत्रको जबतक कहै तबतक प्राणको रोकै, जिनके गृह्यसूत्रमें अमावास्याको पितरोंका श्राद्ध पृथक् लिखा है उनके मतमें पितरोंके पश्चिम दिशामें माताओंसे पश्चिम ओरमें मातामहीको दे यह सांख्यायनका मत है ॥

'अस्मिन्पक्षे तत्पश्चिमे मातामहीभ्योपि दद्यात्' इति हेमाद्रिः ॥ 'पूर्वासु पितृभ्योपि दद्यादपरासु स्त्रीभ्यः' इति सूत्राच्च ॥ एवं यत्र तीर्थमहालयादौ–'केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक्छ्राद्धं महर्षयः' इति चतुर्विंशतिमतात् 'पित्रादि नवदैवत्यं

तथा द्वादशदैवतम्' इत्यग्निपुराणाच्च मातणां पृथगुक्तम् ॥ यत्र वा "आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च । तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथैव च जलाञ्जलीन् ॥ पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात्पृथग्भाद्रपदे नरः । तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च" ॥२॥ इति चतुर्विंशतिमते—"दौहित्रपुत्रदाराश्च एकनिष्ठाः सहोदराः । निःसन्ताना मृता ये च तेभ्योऽप्यत्र प्रदीयते" इति भविष्ये एकोद्दिष्टान्युक्तानि तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम् ॥ येषां न पृथक् तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः । 'अन्वष्टकागयामातृश्राद्धं चैव मृतेहनि । एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीषु नान्यत्पृथग्भवेत्" इति शङ्खोक्तेश्च ॥

इस पक्षमें उन्हींके पश्चिम और मातामहियोंकोभी दे, यह हेमाद्रिका कथन है, और यह सूत्रभी है कि, पूर्व दिशाओंमें पितरोंको और पश्चिम ओरमें स्त्रियोंको दे, इसीप्रकार जहां तीर्थ और महालय आदिमें कोई महर्षि स्त्रियोंके पृथक् श्राद्धको इच्छा करतेहैं और इस अग्निपुराणके कथनसे पिता आदि नौ देवताओंका और विश्वेदेवा आदि बारह १२ देवताओंका श्राद्ध होताहै, माताओंका श्राद्ध पृथक् वर्णन किया है, कहीं ऐसाहै कि, आचार्य गुरु शिष्योंको सखा जातियोंको और उनकी सम्पूर्ण पत्नियोंको और सदा उन सबको महालयमें पृथक् पिंडदे, और जलदे सम्पूर्ण तीर्थ माघमास और मघामें भी इसीप्रकार देने और दौहित्र पुत्र स्त्री छोटे भाई और जो विना सन्तान मरेहैं उनको भी यहां पिंड दिया जाताहै, भविष्यमें एकोद्दिष्ट लिखा है वहांभी उनसे पश्चिम ओरमेंही पिण्ड देना जानना, जिनके मतमें पृथक् पिण्ड देना नहीं वहां सपत्नीक पिता आदिका उच्चारण करना, और शंखका भी कथन है कि, अन्वष्टका गया और मातृश्राद्ध, मरण दिनका एकोद्दिष्ट इनके सिवाय अन्यश्राद्ध स्त्रियोंका पृथक् नहीं होता ॥

मनुः—'तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृजेल्लेपभागिनाम् ॥' हस्तलेपाभावेपि हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः ॥ विष्णुः—'अत्र पितरो मादयध्वमिति दर्भमूले करावघर्षणम् ॥' कलिकायां सुमन्तुः—"एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते । सपिण्डीकरणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते" मनुः—"आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवत् ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥" त्रिः प्राणायामं कृत्वेति मेधातिथिः ॥ अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः ॥ मन्त्रवत् 'वसन्ताय नमः नमो वः पितरः' इत्याद्यैः ॥ शेषं पूर्वावनयनशेषम् ॥

मनुका कथन है कि, उन कुशाओंपर लेपभागियोंके निमित्त उस हाथका मार्जन करै, हाथपर लेप न होय तो भी हाथको मार्जन करै, यह मेधातिथिका मत है, विष्णुका कथन है कि, "अत्र पितरो मादयध्वं" यह कहकर कुशाके मूलमें हाथको घिसै, कलिकामें सुमंतुका कथन है कि, एकोद्दिष्ट और वर्षामें कुशाका लेप नहीं करना, सपिंडीकरण आदिमें तो सब स्थानमें लेप श्रेष्ठ है,मनुने कहा है कि, आचमनकर, उत्तरको मुख करके तीनवार शनैः २ प्राणायाम करके और छः ऋतु और पितरोंको नमस्कार करके मन्त्र पढै, और शेष जलको शनैः २ पिण्डके निमित्त फिर डालदे, मेधातिथिका कथन है कि, तीनवार प्रणायाम करै, यह अर्थ है यहां मंत्र विना प्राणोंको निरोध करै, यह कर्क आचार्य आदि कहते हैं मन्त्रवत्का अर्थ 'वसंताय नमः' यह लिखा है कि, 'नमो वः पितरः' इत्यादि मन्त्रोंको पढकर यह कृत्य करै, शेष पदसे पहिले दिये जलका शेष ग्रहण करना चाहिये ॥

आश्वालायनः-"निपृतानतुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति सव्या-वृदुदङ्ङावृत्य यथाशक्ति प्राणान्नासित्वाऽभिपर्यावृत्त्याऽमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषा-यिषतेति चरोः प्राणभक्ष्यं भक्षयेन्नित्यं निनयनम्" इति ॥ नित्यग्रहणं शेषाभावेपि कु-र्यादित्यर्थः ॥ शौनकः-"अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम् । अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणाप्यनुमन्त्र्य तान् ॥ पिण्डशिष्टचरोरन्नं किञ्चिदाघ्राय तत्त्यजेत् । प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्तामित्याद्यैरेव पूर्ववत् ॥ मन्त्रैः पिण्डेषु पानीयं निषिञ्चेत् पितृतीर्थतः ॥ ३ ॥"

आश्वलायनने कहा है कि, स्थित हुए पितरोंसे अनुमंत्रण (प्रार्थना) करै कि, यहां पितर प्रसन्न हों और अपने २ भागको ग्रहण करो, यह कहकर सव्य वा उत्तर आवृत्ति (फिरना) यथाशक्ति प्राणोंको नासिकासे खींचकर पढै कि, "अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत" इसके चरुका जो प्राणके भक्षणका शेष है नित्य भक्षण करै, और दे नित्यके ग्रहणसे यह अर्थ जानना कि, शेष न रहै तो भी करै, शौनकने कहा है कि, इसके अनन्तर पितरोंका 'अत्र पितर' इस पहिले मन्त्रसे वा 'अमीमदन्त' इस आदिके मन्त्रसे अनुमन्त्रण करके पिण्डसे शेष रहे चरुके अन्नको कुछ सूंघकर उसको त्याग दे, फिर हाथ धो और आचमन करके 'शुन्धंताम्' इत्यादि मंत्रोंसे पूर्वके समान पितृतीर्थसे पिण्डोंके ऊपर जल छिडके ॥

व्याघ्रः"अद्भिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं ततिपण्डं प्रति पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिण्डपात्रम-धोमुखम् ॥" एतत्कातीयादीनाम् ॥ आचार्यः-'ततः सम्यग् द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः ॥' आश्वलायनः-'असावभ्यंक्ष्वासावंक्ष्येति पिण्डेष्वभ्यञ्जने वासो दद्याद्दशा-मूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोन्यत् पितरो युङ्ध्वम्' इति ॥ श्राद्धचिन्तामणौ ब्राह्मे-"एतद्वः पितरो वासस्त्विवति जल्पन्पृथक् पृथक् । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेद्बुधः ॥" इदं कातीयानाम् ॥' एतद्वा इति सूत्राणि प्रतिपिण्डम्' इति तत्सूत्रात् ॥

व्याघ्रका कथन है कि, जलसे उस पात्रको प्रतिपिण्ड पूर्वके समान धोकर अवनेजन करै, और पिण्डके पात्रको औंधामुख धरै, यह कातियोंके निमित्त है, आचार्यका कथन है कि, फिर भलीप्रकार दोबार आचमन और नीवीको ढीली करके मौन साधेरहै, आश्वलायनने कहा है कि, 'असावभ्यंक्ष्व असावंक्ष्य' ऐसे कह २ कर पिंडोंपर अभ्यंजन और अञ्जन दे, वस्त्र देकर पढै कि, "दशामूर्णा-स्तुकां वा, पंचाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं सलोमैतद्वः पितरो दासो मानोतोऽन्यत्पितरो युङ्ध्वमिति" श्राद्धचिन्ता-मणिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, पृथक् २ कहता हुआ कि, हे पितरो ! यह तुम्हारा वस्त्र है, फिर पढै कि, अमुक २ गोत्रवाले आपको यह वस्त्र प्रदान किया है, यह कातियोंके निमित्त है कारण कि, उनका सूत्र है कि, 'एतद्वः' इस मंत्रको प्रतिपिंडपर पढै ॥

हेमाद्रौ ब्राह्मे-"श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमञ्जनं नित्यमेव हि । तैलं कृष्णतिलेभ्यश्च दद्याद-भ्यञ्जनं हितम् ॥" त्रैककुदं सुरमा इति प्रसिद्धम् ॥ अञ्जनप्राथम्यमापस्तम्बादिविष-यम् ॥ तत्रैव व्याघ्रः-"गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत् ॥" देवलः-"दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् । भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च व्यञ्जनान्यशनानि च ॥" तत्रैव शङ्खः-"यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । अनिवेद्य न

भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन ॥" एतत्सव्येनेति केचित् ॥ युक्तं त्वपसव्येन ॥ मनुः—'अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः । ' ततो 'नमो वः पितर, इषे' इत्यादिनोपस्थानम् ॥ मात्स्ये—" अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् । तिलपुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ॥ " अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यामिति कर्कः ॥

हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सुरमेका अञ्जन और काले तिलोंके तेलका अभ्यञ्जन उत्तम और सदा युक्त कहा है, अञ्जनका प्रथम कहना आपस्तम्बोंके निमित्त है वहांही व्याघ्रका कथन है कि, गंध, पुष्प, धूप, दीपको प्रदान करै, देवलने कहा है कि, दक्षिणा, सम्पूर्ण भोग, भक्षण पदार्थ, गन्ना और अनेक व्यंजनको प्रतिपिण्डपर दे, वहांही शंखका कथन है कि, जो कुछ भक्ष्य भोज्य अपने घर बनाया जाता है वह पिण्डके मूलमें निवेदन किये विना भोजन न करै, यह सव्य होकर करै, यह कोई कहते हैं, युक्त तो अपसव्यसे है, मनुने कहा है कि, देनेके अनुसार उन पिंडोंको सूंघे, फिर नमो वः पितरः० और इषे० इत्यादि मंत्रोंसे स्तुति करै मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ब्राह्मणोंके आचमन करनेके उपरांत स्वयं आचमन करके तिल फूल चावल और पीछेसे अक्षय्योदक दे, यहां कर्कने यह कहा है कि, दैवश्राद्धमें सव्य और पितृश्राद्धमें अपसव्य होकर करै ॥

परिभाषोक्तवचनात्सव्यमिति युक्तम् ॥ अत्र शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेयः ॥ मात्स्ये—" दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः । अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः ॥ गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः । दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं चैवेत्युदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥ २ ॥ " स्वस्तिवाचनात्प्राक् पात्रचालनं कार्यम् ॥ हेमाद्रौ बृहस्पतिः—"भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥"

परिभाषामें कहे उसी वचनसे सव्यसेही करना युक्त कहा है, यहां जल मंगलरूप, फूलरूप हो इत्यादि प्रयोग (विधि) जाननी चाहिये, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इनको देकर बुद्धिमान् मनुष्य प्राङ्मुख होकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर यजमान कहै कि, 'अघोर हो' ब्राह्मण कहैं कि, अघोर हैं, फिर कहै कि, हमारा 'गोत्र बढै' ब्राह्मण कहैं कि, 'बढै' फिर दाताओंकी वृद्धि हो ब्राह्मण कहैं और अन्न बहुत हो, इत्यादि कहै फिर भक्तिसे पिंडोंको उठाकर स्वस्तिवाचन करावै, स्वस्तिवाचनसे प्रथम पात्रोंको हिलाना उचित है, कारण कि, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि, पात्रोंकी स्थिति रहते जो स्वस्तिवाचन करते हैं उस अन्नको पितरोंके निराश हो चले जानेपर राक्षस भक्षण करते हैं ॥

जातूकर्ण्यः—" पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योथवा सुतः । न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन ॥" याज्ञवल्क्यः—' स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च । ' तत्रैव वृद्धशातातपः—" पितॄणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् । प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्त्विति ॥ " अत्र षष्ठी प्रागुक्ता ॥ तत्रैव नागरखण्डे—" उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् । हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥ " बृहस्पतिः—" तस्मात्पणं काकिणीं वा । फलपुष्पमथापि वा । प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत् ॥" अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं, विप्रोद्देशेन सव्यमिति माधवः ॥

जातूकर्ण्यका कथन है कि, श्राद्धके पात्रोंको स्वयं, शिष्य वा पुत्र हिलावै, स्त्री बालक भिन्न जाति ये कभी भी न हिलावैं, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, फिर स्वस्तिवाचन और अक्षय्योदकका दान करै, वहांही वृद्धशातातपने कहा है कि, पितरोंके हाथमें नाम और गोत्र लेकर प्रत्येक पिंडपर तिल जल देना और 'इदम् अक्षय्यम् अस्तु' ऐसे कहै, यहां षष्ठी विभक्तिका उच्चारण पहिले कथनकर आये हैं, वहांही नागरखण्डमें कहा है कि, अर्घ्यपात्रको सीधा करके देवताओंको सोना और पितरोंको चांदीकी दक्षिणा दे, बृहस्पतिने कहा है कि, तिससे पण काकणी फल पुष्पकी दक्षिणा यज्ञमें दे, कारण कि, दक्षिणासे वह सफल होता है, पितरोंके निमित्त दक्षिणा दानमें अपसव्य और ब्राह्मणोंके निमित्त दक्षिणादाननें सव्य होकर रहै यह माधवका मत है ॥

कलिकायामाचार्यः-' दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा ॥ ' अत्रिः- ' वदेच्च तांस्ततो विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ॥ ' गोभिलः-' अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्ते स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्तेऽस्तु स्वधेत्युच्यमाने धारां दद्यादूर्जंवहन्ती' इति ॥ आपस्तम्बेन तु-'पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति' इत्यपि परिषेचने मन्त्र उक्तः ॥

कलिकामें आचार्यका कथन है कि, सव्य होकरही तांबूल और दक्षिणा दे, अत्रिका कथन है कि, फिर ब्राह्मणोंसे कहै कि, पितरोंके निमित्त स्वधा उच्चारण करो गोभिलने कहा है कि, अघोर पितर हों ब्राह्मणोंके ऐसे कहनेके उपरांत यजमान पूछै कि, पितरोंके निमित्त स्वधा कहताहूं तुम पितरोंके निमित्त स्वधा पढो जब ब्राह्मण स्वधा हो ऐसा कह चुकैं तब 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं' इस मंत्रसे पिंडोंपर जलकी धारा दे, आपस्तम्बने तो ''पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति'' यह मंत्रभी पिंडोंके सींचनेमेंही कहा है ॥

आश्वलायनः-' अथैतान् प्रवाहयेत् ॥ परेतन पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः ॥ दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत ' इति मात्स्ये-' वाजे वाजे, इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ' प्रचेताः-' स्वस्ति वाच्यं ततः कृत्वा पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥ ' आश्वलायनः-' अन्नं प्रकीर्योपवीत्या ॐ स्वधेति विसृजेदस्तु स्वधेति वा ॥ '

आश्वलायनने कहा है कि, फिर पिण्डोंको यह मन्त्र पढकर जलमें प्रवाह करै, ''परेतन पितरः सोम्यासोगंभीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः ॥ दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत'' मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ''वाजे वाजे०'' यह कहता हुआ कुशाओंके अग्रभागसे पिण्डोंका विसर्जन करै, प्रचेताका वाक्य है कि, स्वस्तिवाचनकर पिताके क्रमसे पिंड विसर्जन करै, आश्वलायनने कहा है कि, अन्नको वखेरकर और सव्य होकर 'ॐ स्वधा' वा 'अस्तु स्वधा' कहकर पिण्ड विसर्जन करै ॥

ब्रह्मवैवर्ते-" आमावाजेति मन्त्रं तु पठित्वा च प्रदक्षिणाम् । द्वारोपान्ते ततः कृत्वा संयतः प्रविशेद्गृहम् ॥ प्राञ्जलिश्च ततः प्राह तान् विप्रान्सत्यवादिनः । दातारो नोभिवर्धन्तामन्नं च न इति बह्निति ॥ एवमस्त्विति ते तं च कथयन्ति समाहिताः ॥ २ ॥ एतन्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ मनुः- " दातारो नोभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोस्त्विति ॥ "

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें लिखा है कि, 'आमावाज०' इस मंत्रको पढकर द्वारके निकट प्रदक्षिणा करके सावधानीसे गृहमें प्रवेश करै, फिर सत्यवादी उन ब्राह्मणोंको कर जोडकर कहै कि, हमारे दाताओंकी वृद्धि हो, और बहुत अन्न हो, वे ब्राह्मण सावधान होकर उसे एवमस्तु (ऐसेही हो) कहै, यह मध्यदेशमें भी करना उचित है यह हेमाद्रिका मत है, मनुने कहा है कि, हमारे यहां दाताओंकी वृद्धि हो, वेद और सन्तानकी वृद्धि हो श्रद्धा न जाय, बहुत देनेको हमारे हो ॥

बौधायनः—" अन्नं च नो बहु भवेदतिर्थीश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन" इति ॥ अत्र दातारो वोभिवर्धन्तां, लभध्वं, याचध्वमित्याद्यूहेन पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये ॥ 'स्वादुषंसद' इति 'ब्राह्मणासः पितरः' इति च मन्त्रद्वयं पठन्ति । शौनकः—" ब्राह्मणानथ निर्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम् । सस्त्रीकः स्वजनैः सार्द्धं प्रणमेद्रचिताञ्जलिः ॥ कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ॥" हेमाद्रौ बृहस्पतिः—" अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् । अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्दिवम् ॥ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः । तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥ ॥ २ ॥" प्रचेताः—'विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्यनुव्रजेत्' ॥

बौधायनने कहा है कि, अन्न हमारे बहुत हो अतिथि मिलैं, हमें याचना करनेवाले मिलैं हम किसीकी याचना न करैं, हमारे दाताओंकी वृद्धिहो, लभध्वं मा याचध्वं (प्राप्त हो मत मांगो) इत्यादि ऊहसे पढकर ब्राह्मण प्रतिवचन दें, यह सुदर्शनभाष्यमें लिखाहै 'स्वादुषंसद' 'ब्राह्मणासः पितरः' इन दो मंत्रोंको पढतेहैं, शौनकका कथन है कि, जानेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्री और कुटुम्बियों सहित यजमान, हाथ जोडकर तीन परिक्रमा करके प्रणाम करै, और परिक्रमामें छोटा पहिले और ज्येष्ठ पीछै रहै, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि, आज तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करके मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरे वंशके पितर आपकी कृपासे स्वर्गको गये, ऐसे श्रेष्ठ आपको मैंने पत्रशाक आदिके देनेसे क्लेश दिया उसको अपने चित्तसे भूलकर क्षमा करनेको योग्यहो, प्रचेताका कथन है कि, भक्तिसे युक्त हो ब्राह्मणोंको बिदाकर और सीमाके अन्ततक उनके पीछे पहुंचादे ॥

अथ पिण्डप्रतिपत्तिः ।

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—" पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः । पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥ उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति । प्रजां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥ प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति । आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥ ३ ॥ " आश्वलायनः—'वीरं मे दत्त पितरः' इति पिण्डानां मध्यमं पत्नीं प्राशयेत् ॥ ' आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथा यमरपा असत् ' इति भर्त्रा दत्तस्याद्येनादाय द्वितीयेन प्राशनम् ॥

अब पिंडकी प्रतिपत्ति लिखतेहैं । हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, प्रथम पिण्ड तो मनुष्य भोगके अर्थ अग्निमें डालै, द्वितीय पिण्डको प्रजार्थी मनुष्य मंत्र पढकर पत्नीको दे, उत्तम गतिकी इच्छावाला सदैव गौओंको दे, प्रजा बुद्धि यश कीर्तिकी इच्छावाला जलमें डालदे, दीर्घ अवस्थाकी इच्छावाला काकोंको दे वा जलमें खडाहोकर आकाशमें दक्षिणाभिमुख होकर फेंकदे, आश्वलायनने कहाहै कि, ' वीरं

मे दत्त पितरः ' (हे पितरो मुझे वीरपुत्र दो) यह कहकर पत्नीको मध्यम पिंडका भक्षण करावै, फिर आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजं ' यथा यमरपा असत्' इन मंत्रोंमें दिये पिंडका प्रथम मंत्रसे ग्रहण और दूसरेसे भक्षण करै ॥

आपस्तम्बस्तु दाने मन्त्रमाह–' अपां त्वोषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व ' इति मध्यमं पत्न्यै प्रयच्छति इति ॥ प्राशनेपि ' यथेह पुरुषो असत्' इति तद्र द्वितीयः पाठोऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः ॥ तत्रैव शङ्खः–' पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्तवान्विता ॥ ' कलिकायां छागलेयः–" प्राचीनावीतिनाऽऽमन्त्र्य पत्नीः पिण्डो विभज्यते । प्रतिपत्न्यस्यमन्त्रस्य कर्तव्यावृत्तिरत्र तु ॥ "

आपस्तम्बने तो दानका मंत्र लिखाहै कि, 'अपां त्वोषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इस मंत्रसे मध्यम पिंड पत्नीको दे, भक्षणका भी मंत्र है कि, ' यथेह पुरुषो असत्' यह आपस्तंबका पाठ है, अन्योंका मंत्र उन २ की शाखाओंमें जानना, वहांही शंखका कथन है कि, मध्यके पिंडको ऋतुवाली स्त्री भक्षण करले, कलिकामें छागलेयका कथनहै कि, अपसव्य होकर पत्नियोंको बुलाकर पिंडका विभाग कर यहां तो 'प्रतिपत्नी' इस मंत्रके पढनेकी आवृत्ति करनी ॥

माधवीये विष्णुधर्मे–" तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः । प्रक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥ " अग्नौ अगाधे जले वा प्रक्षिपेत् विप्रेषु सत्सु भोजनदेशावस्थितेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेन्नोद्वासयेत् । याज्ञवल्क्यः–' पिण्डांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ॥ ' बृहस्पतिः–" अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा । तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ॥ "

माधवीयमें विष्णुधर्मका कथनहै कि, तीर्थश्राद्धमें सदैव पिंडोंको तीर्थमें सावधान होकर डालदे, और ब्राह्मणोंके विद्यमान रहते उनके उच्छिष्टका मार्जन न करै, अग्नि, वा गहरे जलमें फैंकदे, ब्राह्मण भोजनके स्थानमें बैठे होंय तो उनके उच्छिष्टका मार्जन न करै, न उन्हें बाहिर निकाले, याज्ञवल्क्यका कथन है कि, गौ बकरी ब्राह्मणोंको दे, वा अग्नि, जलमें फेंक दे, बृहस्पतिका कथनहै कि, पत्नी परदेशमें हो रोगयुक्त वा गर्भिणी होय तो उस पिंडको बूढे बैल वा बकरेको भक्षण करनेको दे ॥

पिण्डोपघातप्रायश्चित्तनिर्णयः ।

अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे देवलः–" श्वसृगालखरैः पिण्डः स्पृष्टो भिन्नः प्रमादतः । कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥ " जातूकर्ण्यः पूर्वश्लोकान्ते–" तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं प्रकल्पयेत् ॥ पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि ॥ " काकस्पर्शे तु न दोषः पिण्डोपघातं प्रक्रम्य–' धनस्य तु विनाशः स्यात् काकस्पर्शादिकं विना ' इति तत्रैव श्लोके गौतमोक्तेः ॥ स्मृतिदर्पणे अत्रिः–" मार्जारमूषकस्पर्शे पिंडे च द्विदलीकृते ॥ पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥ " बौधायनः–" श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते । प्राजापत्यं चरित्वाथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥ "

अब पिण्डके उपघात (नाश) लिखतेहैं । प्रायश्चित्तकाण्डमें देवलने कहाहै कि, कुत्ता, गीदड, गधा, इन्होंने प्रमादसे पिण्डस्पर्श किया वा तोडदिया होय तो कर्ताकी अवस्थाका नाश होताहै, और प्रेतको नहीं मिलता, जातूकर्ण्यने लिखाहै कि, पूर्वश्लोकके अन्तमें उस दोषकी शांतिके निमित्त प्राजापत्य व्रत करै, कर्ता फिर स्नान करके विधिसे पिण्ड बनावै, काकके स्पर्शमें दोष नहीं, कारण कि, पिण्डनाशके प्रकरणमें उसी श्लोकमें गौतमका कथनहै कि, पिंडका नाश काकके स्पर्शको छोडकर होजाय तो धनका नाश होताहै, स्मृतिदर्पणमें अत्रिका कथन है कि, बिलाव मूसाके स्पर्शसे पिंड फूटजाय तो उसी पाकसे पुनः पिंडदे, बौधायनका कथनहै कि, कुत्ता चांडाल आदिके स्पर्शसे पिण्ड नष्ट होजाय तो प्राजापत्य व्रत करके फिर पिंडदान करै ॥

बोपदेवोप्येवमाह–'दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम् ॥' शेषप्रतिपत्तित्वेन पिण्डावृत्तौ मानाभावादिति मैथिलाः ॥ तन्न ॥ सपिण्डीकरणादौ शेषनाशे संयोजनादिलोपापत्तेः ॥ तेन वचनाद्वमन इवात्रापि तन्मात्रपिण्डदानावृत्तिः ॥ अतएव–'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनात्' इत्यापस्तम्बसूत्रम् ॥ रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वेद्युः कार्यम् ॥ श्राद्धसमाप्तिस्तु परदिने एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरिदत्तेन व्याख्यातम् ॥ तस्मात् पाकान्तरेण पिण्डदानमात्रं कार्यम् ॥

बोपदेवने भी ऐसेही कहाहै कि, प्राजापत्य मात्र तो किसी और दिनमें करै, शेष कर्मकी प्रतिपत्ति (सिद्धि) उससेही होजायगी, पिण्डकी आवृत्तिमें कोई प्रमाण नहीं, यह मैथिलोंका मतहै, सो ठीक नहीं, कारण कि, सपिण्डीकरण आदिमें शेष कर्मका नाश होनेपर पिण्ड मिलानेका लोप होजायगा, तिससे वचनके बलसे वमनके समान यहां भी पिंडदानकी पुनः आवृत्ति होतीहै, इसीसे रात्रिमें श्राद्ध न करै, और जब प्रारम्भ होजाय तो भोजन समाप्तिसे प्रथम न करै, यह आपस्तंबका सूत्र है, इसकी व्याख्या हरदत्तने यह लिखी है कि, पहिले दिन रात्रिको भोजन करै और श्राद्धकी समाप्ति तो दूसरे दिनमें करै, और समाप्तिपर्यन्त कर्ता व्रत करै, तिससे अन्यपाक बनाकर कर्ता पिंडदान मात्र करै ॥

अथ पिण्डनिषिद्धकालः ।

स च प्रायेण महालयादिनिर्णये पूर्वमुक्तः ॥ हेमाद्रौ बृहत्पाराशरः–"युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा ॥ भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं न हि ॥" स्मृतिरत्न्यावल्याम्–"पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ॥" तत्रैव कात्यायनः–"वृद्धेरनन्तरं चैव यावन्मासः समाप्यते । तावत् पिण्डान्नैव दद्यान्न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" बौधायनः–'संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्धमेव च ॥' तथा–"भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥"

अब पिंडमें निषिद्धकाल लिखतेहैं, वह काल महालय आदिके निर्णयमें पहिले कह दिया, हेमाद्रिमें वृद्धपराशरका कथनहै कि, युगादि मघा विषुवत् अयन भरणी इनमें पिण्डदान न करै, स्मृतिरत्नावलीमें लिखाहै कि, पुत्रजन्म व्यतीपात और चन्द्रमा सूर्यका ग्रहण इनमें पिंडदानको छोडकर यत्नसे श्राद्ध करै, वहांही कात्यायनका कथनहै कि, पुत्रजन्मके पीछे जबतक मासकी समाप्तिहो तबतक पिण्डदान और तिलोंसे तर्पण न करै; बौधायन सूत्रमें लिखाहै कि, तैसेही अन्यसंस्कारोंमें भी मास और अर्द्धमासतक न

करै, तैसेही वाक्यहै कि, रविवार भौमवार त्रयोदशी नन्दा शुक्रवार मघा नक्षत्रमें पिण्डदान, मट्टीसे स्नान तिलतर्पण इनको न करना चाहिये ॥

त्रिस्थलीसेतौ कार्ष्णाजिनिः–'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ॥ उत्तरार्द्धं प्राग्वत् ॥ "वृद्धिमात्रे तथान्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया । कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मणाम्॥" हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरः–"विवाहे विहिते मासांस्त्यजेयुर्द्वादशैव हि । सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ॥" तत्रैव–"महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा' इति ॥ 'मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् हविरुभयत्ववद्विवक्षितम् ॥ तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिकेपि पिण्डदानं कार्यम्' इति केचित् ॥ सपिण्डीकरणं नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृत उक्तम् ॥

त्रिस्थलीसेतुमें कार्ष्णाजिनिने लिखाहै कि, विवाह व्रत मुंडनमें वर्ष,छः महीने वा तीन महीनेतक पिण्डदान आदि पूर्वोक्त तीनोंको न करै, इसीप्रकार और भी वृद्धिमात्रमें पिण्डदानका निषेध गर्गआदि मुनियोंने करनेवालोंको कहाहै, हेमाद्रिमें पराशर ज्योतिषियोंके वाक्यहैं कि, विवाह किये पीछे सम्पूर्ण सपिण्ड बारह महीनेतक और यज्ञोपवीतमें छः महीनेतक पिण्डदान न करें, वहांही लिखाहै कि, महालय गयाश्राद्ध माता-पिताका मरणदिन जिस किसी मनुष्यकी सपिण्डी, इनमें पिण्डदान वह भी मनुष्य करै, जिसका विवाह हुआहो इस वचनमें 'मातापित्रोः' यह क्षयाके दिनका विशेषण, हवि दोनोंके निमित्तहै, इसके समान विवक्षित नहीं है तिसके भाई पितृव्य आदिकके वार्षिक श्राद्धमें कोई पिण्डदान करनेको कहतेहैं सपिंडीकरण नवश्राद्ध षोडशश्राद्धके उपलक्षणार्थ है, यह निर्णयामृतमें लिखाहै ॥

क्षयाहे विशेषः संग्रहे–"मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा । तिलैः पिण्डाः प्रदातव्या त्वन्यश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ रामकौतुके–"नन्दाश्विकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे । गण्डवैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः ॥" विश्वरूपनिबन्धे–"तिथिवारप्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन ॥" अन्यत्तूक्तं प्राक् ॥

मरणदिनका विशेष संग्रहमें लिखा है, पिताके वार्षिक और विवाह आदिमें सदैव तिलसे पिंडदेने चाहिये, अन्य श्राद्धमें वर्जितहैं, इनमें मूल विचारने योग्य है, अर्थात् नहीं है । रामकौतुकमें कहा है कि, नन्दा अश्विनी रविवार भौमवार वा शुक्रवार कृत्तिका पिताके मरणका नक्षत्र गंड वैधृति व्यतीपातमें पुत्रकी इच्छावाला पिण्डदान न करै, विश्वरूप निबन्धमें लिखा है कि, तिथिवारका किया जो दोष कहा है वह उसी श्राद्धके विषयमें है, जो तिथिवारके निमित्त हो अन्य श्राद्धमें किसी प्रकार नहीं, और तो पहिले कह आये हैं ॥

उच्छिष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वसिष्ठः–"श्राद्धे नोद्वासनीयानि ह्युच्छिष्टान्यादिनक्षयात् । श्च्योतन्ते वै सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः ॥" व्यासः–'उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः ॥' इदं गृहान्तरसत्त्वे ॥ एतद्गृहे तु मनुः–"उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिः कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥" बलिं वैश्वदेवादि नित्यकर्मेति मेधातिथिः॥ब्रह्माण्डे–'शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्॥'

तथा–'कामं दद्याच्च सर्वं तु शिष्याय च सुताय च ॥' भोक्तुरिति शेषः ॥ जातूकर्ण्यः–'द्विजभुक्तावसिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत् ॥'

उच्छिष्टका फैंकना हेमाद्रिमें वसिष्ठने लिखा है कि, पहिलेही श्राद्धके उच्छिष्ट नहीं फैंकना, कारण कि, उच्छिष्टमेंसे जो अमृतकी धारा गिरती है उनको वे पान करतेहैं, जिनको जलदान नहीं प्राप्त हुआ, व्यासका कथन है कि, जबतक सूर्य न छिपै तबतक उच्छिष्टका मार्जन न करै, यह भी तब है, जब दूसरा घरहो, एक घरमें तो मनुका यह वाक्य है कि, उस समय तक उच्छिष्ट रहती है जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो, फिर गृहबलि करै, यहही धर्मकी व्यवस्था है, बलिसे वैश्वदेवादि नित्य कर्म लेना यह मेधातिथिका मत है, ब्रह्मांडपुराणमें लिखा है कि, शूद्रको और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो उसको उच्छिष्ट नदे, तैसेही वाक्य है कि, शिष्य और पुत्रको यथेच्छ देकर भोजन करै, जातूकर्ण्यका कथन है कि, ब्राह्मणोंके भोजनका शेष पवित्र भूमिमें गाडदे ॥

अथ वैश्वदेवादिनिर्णयः ।

अत्र मामकः श्लोकः ॥ "श्राद्धेऽनग्निककर्तृकेऽग्निकरणात्पश्चाज्जुहोतिर्बलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विकिरतः पश्चात् पृथक्त्वे पचेः । श्राद्धान्ते त्वथवा महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात्क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यतः शुभविधावादौ तथा साग्निके ॥" अस्यार्थः–साग्नेः पृथक्पाकेन सर्वत्रादौ वैश्वदेवः ॥ "पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः ॥ पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च । वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम् ॥ २ ॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ अत्र साग्निक आहिताग्निरिति हेमाद्रिः॥ "श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः । एकादशादिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते" इति हेमाद्रौ शालंकायनोक्तेश्च ॥

अब वैश्वदेवादिको कहते हैं, उसमें मेरा बनाया श्लोक है, और उसका यह अर्थ है कि, जिस श्राद्धका अग्निहोत्री न हो उसमें हवन और बलि अग्नौकरणके पश्चात् होते हैं, वा पृथक् पाक होय तो, विकिरसे पीछे होते हैं और महालयमें श्राद्धके अन्तमें, क्षयाहमें भोजनके पीछे, अमावस्याको श्राद्धके उपरान्त और श्राद्धका कर्ता अग्निहोत्री होय तो सब शुभविधियोंके मध्यमें हवन और बलि होतेहैं, साग्निक ब्राह्मण पृथक् पाक बनाकर सब स्थानमें पहिले वैश्वदेव करै, कारण कि, लौगाक्षिने स्मृतिमें कहा है, पक्षांत कर्मसे और वैश्वदेवसे निवृत्त होकर साग्निक पिण्डयज्ञ करै, और फिर अन्वाहार्य कर्मको करै, पितरोंके निमित्त पाकदे और बनावै और विश्वेदेवाओंके निमित्त बनावै विश्वेदेवाओंका पाक पितरोंको और पितरोंका पाक विश्वेदेवाओंको न देना, यहां साग्निक आहिताग्नि हेमाद्रिने लिखा है हेमाद्रिमें शालंकायनका भी कथन है कि, साग्निक श्राद्धसे पहिलेही एकादशाह श्राद्धको त्यागकर वैश्वदेव करै, कारण कि, वहां अन्तमेंही लिखा है ॥

तत्रैव परिशिष्टे–"संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च । अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि ॥" स्मार्ताग्निमतां तद्रहितानां वाग्नौकरणोत्तरं विकिरोत्तरं वा होममात्रंपृथक्पाकेन भूतयज्ञादि तु श्राद्धान्त एव॥ अत्र मूलं हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम् ॥ सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेवनित्यश्राद्धादीति तृतीयः ॥ "श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्भिक्षां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा ॥" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ ततः श्राद्धशेषात्–'श्राद्धाद्धि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्' इति चतुर्विंशतिमताच्च ॥

एवं वैश्वदेवकालत्रयस्य अपरार्के शांखायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैव व्यवस्थोक्ता ॥ "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये । एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते" इति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषां श्राद्धान्ते एवेति मेधातिथिस्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः ॥

वहांही परिशिष्टका कथन है कि, पार्वण वा एकोद्दिष्ट श्राद्ध होय तो प्रथम और एकादशाह आदि होय तो पीछे होता है, स्मार्त्त अग्निवाले, और अग्निसे हीन अग्नौकरणके वा विकिरके पीछे हवन मात्र करै, भूतयज्ञ आदिको तो पृथक् पाकसे श्राद्धके अन्तमें करै, इसमें मूल हेमाद्रि चन्द्रिका आदिमें स्पष्ट है अथवा सब मनुष्य श्राद्धके पाकसे श्राद्धके अन्तमें वैश्वदेव नित्यश्राद्धआदि करै, यह तीसरा मार्ग है, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृति है कि, विधिसे श्राद्धको करके पीछे वैश्वदेव करै, फिर उसी अन्नमेंसे भिक्षा और हन्तकार आदि दे, चतुर्विंशतिका भी कहाहै कि, श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नसे वैश्वदेव करै इसप्रकार वैश्वदेवके तीन कालोंकी व्यवस्था अपरार्क सांख्यायन परिशिष्टके वचनोंको जानकर कही, और वृद्धि श्राद्धकी आदिमें और क्षयके अन्तमें और अमावस्याके मध्यमें महालय और एकोद्दिष्टके निपटनेपर वैश्वदेव लिखा है इत्यादि बहुत स्मृतियोंमें कहनेसे सबके मतमें श्राद्धके अन्तमेंही बलि वैश्वदेव करै यह मेधातिथि स्मृतिरत्नावलि आदि बहुत कहतेहैं ॥

बोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं श्राद्धमुक्त्वा 'उच्छेषणं तु' इति पूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्बह्वृचानां श्राद्धान्त एव । मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव वैश्वदेवमाह ॥ कातीयानां तु श्रौतस्मार्ताग्निमतामादावेकेनैव पाकेनेति कर्कः ॥ अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः ॥ 'पञ्चयज्ञाश्च अन्ते च' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्व्यवस्था ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—"ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोतिथीन् । ततस्तदन्नं भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥" ततः श्राद्धशेषात् ॥ नित्यक्रियां नित्यश्राद्धम् ॥ तत्र—'पृथक्पाकेन नैत्यकम्' इति तेनैवोक्ते पाकैक्ये विकल्पः ॥

बोपदेवने तो यह लिखाहै कि, वृत्तिकारने विसर्ज्जन पर्यन्त कर्म कहकर 'उच्छेषणं तु' इस पूर्वोक्त मनुवाक्यके उदाहरणसे बह्वृचोंका तो वैश्वदेव श्राद्धके अन्तमेंही होता है, मध्य पक्ष तो अन्य शाखावालोंके निमित्त है, हेमाद्रिने तो वृद्धिमें भी वैश्वदेव पीछे ही कहा है, कातीय और स्मार्त श्रौताग्निवालोंको तो एक पाकसे पूर्वमेंही वैश्वदेव करना यह कर्क कहते हैं, औरके मतमें तैत्तिरीय साग्निकोंको तो सर्वत्र आदिमें वैश्वदेव होता है, और पञ्चयज्ञ अन्तमें होतेहैं यह सुदर्शनभाष्यमें लिखा है इन दो पक्षोंकी पूर्वके समान व्यवस्था जाननी, हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका कथन है कि, फिर नित्यक्रिया करके अतिथियोंको जिमावै, फिर भृत्य आदि सहित मनुष्य उस श्राद्धके अन्नको भोजन करै, नित्य क्रियासे नित्यश्राद्धका ग्रहण है वह पृथक् पाकसे नित्य करना, यह उसनेही कहा है एक पाक होय तो विकल्प जानना ॥

अथ नित्यश्राद्धम् ।

हेमाद्रौ व्यासः—'एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही ॥' अपीत्यनुकल्पः ॥ प्रचेताः— "नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम् । न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम् ॥" अत्र—'निर्दिश्य भोजयित्वा तु किंचिद्दत्त्वा विसर्जयेत्' इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणा-

विकल्पः । यत्तु–"नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्जितम् । दक्षिणारहितं चैव दातृभोक्तृव्रतोज्झितम्" इति काशीखण्डे ॥ तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥

अब नित्य श्राद्धको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि, गृहस्थी छहों पितरोंके निमित्त एक भी ब्राह्मणको जिमा दे, यहां एक कहना अनुकल्प (गौण) है कि, नित्यश्राद्धमें निमंत्रण हवन आवाहन विसर्ज्जन पिण्डदान विकिर दक्षिणा न दे, यहां जानकर भोजन कराकर विसर्ज्जन करै, यह प्रचेतानेही लिखा है इससे दक्षिणामें विकल्प है जो किसीने यह कहा है कि, नित्यश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन नियमोंसे वर्जित दक्षिणासे हीन दाता भोक्ताओंके विना होता है. यह काशीखंडमें लिखा है, सो ब्राह्मणके अभावमें है, यह पृथ्वीचन्द्रमें लिखा है ॥

भविष्ये–"आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम् । ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा न चैव हि ॥ दातॄणामथ भोक्तृणां नियमो न च विद्यते ॥" एतद्दिवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम् ॥ "दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै ॥ यामिन्या प्रहरं यावत्तावत्कर्माणि कारयेत्" इति बृहन्नारदीयोक्तेः॥"रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः" इति पृथ्वीचन्द्रधृतसंग्रहोक्तेश्च ॥ न च दार्शिकाब्दिकाद्यपि रात्रौ स्यादिति वाच्यम् ॥ इष्टापत्तेः॥ तस्य तिथिसन्धित्वात् ॥ 'संध्या रात्रौ न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः' इति विष्णवाद्यै रात्रौ निषेधात् ॥ अत एवाल्पद्वादश्यां–'उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा' इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नापकृष्यते ॥ भिन्नविषयत्वादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ नित्यं त्वपकृष्यते ॥ अन्वहमित्युक्तेस्तिथिखर्वाधिकाभावात् ॥

भविष्यका कथन है कि, आवाहन स्वधाकार पिण्ड अग्नौकरण आदि, ब्रह्मचर्य आदि नियम, विश्वेदेवा दाता और भोक्ताके नियमसे सब नित्यश्राद्धमें नहीं होते, यह शास्त्रोक्त होनेसे दिनमें न बनसके तो रात्रिमें भी करना, कारण कि, बृहन्नारदीयका वचन है कि, दिनमें कहे कर्म प्रमादसे न किये हों तो रात्रिके पहले प्रहरमें करने चाहिये, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्य है कि, ब्रह्मयज्ञ और सूर्यके कर्म (सौर सूक्त) को छोडकर दिनके कर्म रात्रिमें प्रहरपर्यन्त करले, यदि कोई शंका करै कि, वार्षिक और अमावास्या आदिके श्राद्धभी रात्रिमें होजांयगे सो उचित नहीं, कारण कि, वे रात्रिमें इष्ट हैं, बुद्धिमानोंको संध्या और रात्रिमें श्राद्ध करना उचित नहीं ऐसा विष्णुआदिमें रात्रिका निषेध है इसकारण थोडी द्वादशीमें उषःकालमें प्रात और मध्याह्नके दोनों कार्य करै, इन वाक्योंसे त्रयोदशी श्राद्ध अपकृष्ट नहीं होता भिन्न विषय होनेसे यह मदनरत्नमें कहा है नित्य तो खिंचता है 'अन्वहम्' कहनेसे तिथिके खर्वाधिकका अभाव है ॥

यथा च सुदर्शनभाष्ये–'परपक्षे पित्र्याणीति नियमेपि नित्यश्राद्धत्वे संवत्सरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ बलाच्छुक्लपक्षेपीत्युक्तम् ॥ तथा रात्रावपि ॥ तथा च माधवेन प्रतिपत्प्रकरणे स्पष्टमुक्तम् ॥ वयं चाग्रे वक्ष्यामः ॥ अस्य दिने करणे लोप एव ॥ 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' इति निषेधादिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ पात्राभावे कार्मे–'उद्धृत्य वा यथाशक्ति किंचिदन्नं प्रकल्पयेत् ॥' तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः–भिक्षुकाभावे अन्नं गोभ्यो दद्यादग्नौ वा प्रक्षिपेत्' इति ॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे–"नित्यश्राद्धं न

कुर्वीत प्रसङ्गाद्यत्र सिद्धयति । श्राद्धान्तरे कृतेन्यत्र नित्यत्वात्तन्न हापयेत् ॥" षड्दैवते पृथङ्नेत्यर्थः ॥

जैसा सुदर्शनभाष्यमें कहा है परपक्षमें पितरोंको नियमपूर्व नित्यश्राद्ध होनेसे संवत्सरमें अत्यन्तके संयोगमें द्वितीया है बलसे यह शुक्लपक्षमें भी, कहा है और रात्रिमें भी, सोई माधवने प्रतिपत् प्रकरणमें स्पष्ट कहा है और हम भी आगे कहेंगे, इसको दिनमें न करै तो लोपही हो जायगा कारण कि, रात्रिमें श्राद्धका निषेध है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, पात्रके न मिलनेसे कूर्ममें कहा है यथाशक्ति लेकर कुछ अन्न कल्पना करै विष्णुने इसकी प्रतिपत्ति कही है कि, भिक्षुक न होय तो वह अन्न गौओंको दे, वा अग्निमें फैंक दे, हेमाद्रिमें नागरखंडमें कथन किया है कि, जहां प्रसंगसे होसके वहां नित्यश्राद्ध करै, जहां अन्य श्राद्ध न किया होय तो नित्यश्राद्धको न त्यागे अर्थात् पार्वणमें पृथक् न करै, और अन्यत्र करै ॥

मात्स्ये-"ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वपितृनिषेवितम् ॥" सर्वं पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपीत्यर्थः एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोपि भोजनम् ॥ अस्य वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः ॥ एवं ग्रहणवेधेपि ॥ यत्त्वनाहिताग्नेरमाषमांसं व्रतयेदित्युक्तं तद्धेयमेव श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात् ॥ देवलः-"श्राद्धं कृत्वा तयो मर्त्यो न भुङ्क्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥" शिवरात्र्येकादश्यादौ त्ववघ्राणमेवेत्युक्तं प्राक् । यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तमयाचितं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ॥

मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, फिर विश्वेदेवाओंके अन्तमें भृत्य, पुत्र, अतिथि इनसे संयुक्त यजमान पितरोंके शेष संपूर्ण अन्नका भोजन करै, सब कहनेसे पर्वमें निषिद्ध मांस माष आदि भी लेना इसीप्रकार कृष्णपक्षकी एकादशी आदिमें गृहस्थीको भी भोजन करना, कारण कि, इसको शास्त्रोक्त होनेसे निषेध प्रवृत्त नहीं होता इसीप्रकार ग्रहणके वेधमें भी जानना उचित है, जो किसीने यह लिखा है कि अनाहिताग्नि उरद और मांसको त्याग दे, सो त्यागने योग्य है, कारण कि, वेदोक्त होनेसे माषादिका भक्षणही बलवान् है, देवलका कथन है कि, जो मनुष्य श्राद्ध करकै भोजन नहीं करता उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते, शिवरात्रि और एकादशी आदिमें तो सूंघले यह पहले लिख आये हैं, जहां व्रत अनावश्यक है, वहां एकभक्त वा, अयाचित करना यह हेमाद्रि कहते हैं ॥

जातूकर्ण्यः-"अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः । अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते ॥"श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः-"पित्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम् । व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम् ॥" अन्ये भिन्नगोत्राः । व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥ "श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः । सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥" इति तत्रैवोक्तेः ॥

जातूकर्ण्यका कथन है कि, श्राद्धकिये पीछे, द्विजाति दिनमेंही भोजन करलें अन्यथा वह श्राद्ध और पर पाकका श्राद्ध आसुर होते हैं, श्राद्धके शेष भोजनका कहीं निषेध कहा है हेमाद्रिके प्रायश्चित्त

१ श्राद्ध करने उपरांत मदसे विह्वल हो जो परघरमें भोजन करताहै उसके पितर पिण्डजलक्रियासे लुप्तहो पतित होते हैं ॥

काण्डमें मार्कण्डेयका कथन है कि, पिता आदि और उनके अन्यके श्राद्धका शेष भोजन व्रती, विधवा, संन्यासी इनको वर्जित है, यहां अन्यसे भिन्नगोत्री, और व्रतीसे ब्रह्मचारीका स्वीकार है वहांही यह कहा है कि, जो श्राद्ध शेषको खानेवाले हैं वे नरकगामी हैं सगोत्री, सकुल्य और ज्ञातियोंके श्राद्धमें दोष नहीं यह वहांही कहा है ॥

तत्रैव जाबालिः–"विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत्। प्राजापत्यविशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ॥" यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम्। अस्यापवादमाह स एव–"श्वशुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः। ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते ॥ इति केचित्प्रशंसन्ति मुनयस्तदसांप्रतम् ॥ २ ॥" विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ॥ हेमाद्रौ जाबालिः– "ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम्। रत्यौषधिपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः–"न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने ॥ श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि ॥" इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पार्वणश्राद्धम् ॥

वहांही जाबालिका कथनहै कि, ब्राह्मण तो अन्यके घरमें श्राद्धशेष अन्नका भोजन करै तो प्राजापत्य व्रतसे श्राद्धकी शुद्धि होती है, और अपनी जाति और गोत्रका दोष नहीं, संन्यासियोंको मुण्डन और एक १००००० लक्ष ॐ कारका जप करना यह उसीस्थलमें है इसका अपवाद उसनेही लिखाहै, श्वशुर गुरु, मामा, ज्येष्ठ भाई और पुत्र और ब्रह्मनिष्ठ योगी इनके श्राद्धमें शिष्ट अन्नका भोजन करके दोष नहीं, कोई मुनि इसकी प्रशंसा करतेहैं वह अनुचित है, अन्य विशेष वहांही जानना, हेमाद्रिमें जाबालिका कथन है कि, ताम्बूल दँतोन स्नेहसे स्नान रति औषध पराया अन्न भोजनका त्याग श्राद्धका कर्ता इनको त्यागदे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें आचार्यका कथनहै कि, श्राद्धके दिन यत्नसे शूद्रको न जिमावै और न सब श्राद्धोंमें श्राद्धका शेष दे ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पार्वणश्राद्धनिर्णयः ।

अथ श्राद्धानुकल्पः ।

तत्र विप्रालाभे–"भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम्। दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत्" इति शंखोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः ॥ विप्राभावे दर्भबटुः ॥ "निधाय वा दर्भबटूनासनेषु समाहितः ॥ प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्" इति देवलोक्तेः ॥ अशक्तावामश्राद्धम् ॥ "आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे" इति कात्यायनोक्तेः ॥

अब अनुकल्प (गौण) कथन करते हैं उनको ब्राह्मण न मिले तो एकभी पंक्तिपावन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणको जिमा दे, देवताओंके निमित्त नैवेद्य देकर पश्चात् उस ब्राह्मणको जिमावै, इस शंखके वाक्यसे पहिले एक ब्राह्मण कहाहै, ब्राह्मण न मिले तो कुशाका बटुभी पहिले लिखाहै, कारण कि, देवलने यह लिखाहै कि, सावधानीसे कुशाके वटु बनाकर आसनोंपर बैठावे और प्रश्न और उत्तरोंसहित श्राद्धविधिको करै, अशक्त हो तो कच्चा श्राद्ध कहाहै, आपत्ति अग्निका अभाव तीर्थ परदेश पुत्र उत्पत्ति भार्याके रजस्वला होनेपर आमश्राद्ध करै, यह कात्यायनने लिखाहै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये जमदग्निः–"यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा । आमश्राद्धं तदा कुर्याद्धस्तेऽग्नौकरणं भवेत् ॥" कौर्मे–"अनग्निरधनो वापि तथैव व्यसनान्वितः । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्वृषलस्तु सदैव हि" आहिताग्नौ प्रवासस्थे तत्पत्नी गृहे दर्श ऋत्विगादिना कारयेत् ॥ "अमावास्यादि नियतं प्रोषिते धर्मचारिणी । पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना" इति लघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः ॥ सुमन्तुः–"पाकाभावेधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप । अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः ॥ सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः ॥"

पृथ्वीचन्द्रोदयमें जमदग्निका कथनहै कि, जबतक अग्निहोत्री न हो वा अग्नि नष्ट होगईहो तबतक आमश्राद्ध करै और हाथमें अग्नौकरण करै, कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, अग्निहोत्रीसे भिन्न धनहीन और दुःखित ब्राह्मण और शूद्र यह सदैव आमश्राद्ध करैं, यदि अग्निहोत्री परदेशमें हो और उसकी पत्नी घरपर होय तो अमावस्याका श्राद्ध ऋत्विक् आदिका करना कारण कि, लघुहारीतका कथनहै कि, पति परदेशमें होय तो धर्मचारिणी स्त्री अमावस्या आदिके नियत श्राद्धको अन्य ऋत्विग् आदिसे करावै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, इस श्लोकमें आदि पद वार्षिक और सब पार्वणोंके निमित्तहै, यह शूलपाणि कहतेहैं, सुमन्तुने कहाहै कि, हे महाभुज ! पाक बनानेवाली स्त्री न होय तो ब्राह्मणोंको पाक बनानेका अधिकार है, और विदेशमें श्राद्ध करै, तो भी ब्राह्मणोंको पाक बनानेका अधिकार बुद्धिमान मनुष्योंने सदैव शूद्रोंको आम श्राद्ध करना कहा है ॥

प्रचेताः–"स्त्रीशूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ । आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु ॥" स्वयं पचतीति स्वपचः अपत्नीकः । विष्णूशनसौ–"आत्मनो देशकालाभ्यां विप्लवे समुपस्थिते । आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसंभवे ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः । न पक्कं भोजयेद्विद्वान् सच्छूद्रोपि कदाचन ॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं लभेत् ॥ ३ ॥" अत्र प्रवासतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरत्नावल्यादयः ॥

प्रचेताका कथन है कि, स्त्री शूद्र और स्वयंपाक बनानेका और जातकर्ममें, पार्वणकी विधिसे सदैव आमश्राद्ध करै, विष्णु और उशनाका कथन है कि, यदि देश वा कालसे अपने यहां कोई उपद्रव होजाय तो आपत्ति अग्निका अभाव तीर्थ वा परदेश हो और पत्नी न हो और चन्द्रमा सूर्यके ग्रहणमें विशेष कर आमश्राद्ध करै, और श्रेष्ठ शूद्रभी ब्राह्मणोंको कदाचित् पक्वान्न न जिमावै, और जिमावै तो पापभागी होताहै और श्राद्धका फल उसको नहीं मिलता, यहां परदेश तीर्थ ग्रहण आदिमें आम वा हेम श्राद्धही होताहै, पाकश्राद्ध नहीं होता, यह हेमाद्रि और रत्नावली आदिका मत है ॥

अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु–'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आमादि कार्यम् । पाकसंभवे त्वन्नेनैवेत्याहुः ॥ अत एव पाकश्राद्धमुक्त्वा–"एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः" इति मात्स्ये निरग्नेरपि । पाकेनोक्तमिति

शूलपाणिकल्पतरू ॥ एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर इत्यन्ये ॥ 'एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्' इति लघुहारीतीयमपि साग्नेरेव ॥ निरग्नेर्मेहैकोद्दिष्टमप्यामेन ॥ शूद्रस्य तु दशाहपिण्डाद्यामेनेति हलायुधः ॥ उत्सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात्॥

अपरार्क विज्ञानेश्वर आदिने तो यह कहा है कि, पाकके अभावमेंही द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखा है, इस सुमंतुके वाक्यसे साग्निक हो वा निरग्निक हो प्रवास आदिके विषे सब स्थानमें पाकके अभावमेंही आम आदि श्राद्ध करै, पाक होसकै तो अन्नसेही करै, इसीसे पाक श्राद्धको कहकर इस मत्स्यपुराणके वाक्यसे निरग्निककोभी पाकसे श्राद्ध कहा है, यह शूलपाणि और कल्पतरु लिखते हैं कि, इस संपूर्ण श्राद्ध मात्रको यज्ञोपवीत और भार्यासहित और परदेशमें स्थित भी सब पर्वोंमें सदैव करै, एकोद्दिष्ट सदैव पाकसे स्वयं करना, यह लघुहारीतका कथन भी साग्निकके निमित्त है, निरग्निकको तो उत्सवका एकोद्दिष्ट भी आम अन्नसे कहा है, शूद्रका तो दशाहके पिंड आदि आमअन्नसे करने यह हलायुध कहते हैं जिनकी अग्नि नष्ट होगई हो उनको भी पूर्वोक्त जमदग्निके वाक्यसे आमश्राद्धही करना चाहिये ॥

मरीचिः–"श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सराद्दते ॥ " स्मृतिदर्पणे–" मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् ॥ आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥ " हेमाद्रौ व्यासः–" आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम् । द्विगुणं त्रिगुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् । सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेप्यसौ विधिः । आवाहनादि सर्वं स्यात् पिण्डदानं च भारत ॥ दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यः शृतं वाशृतमेव वा । तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥ ३ ॥ " पक्षान्तरमाह स एव–"आमं ददद्धि कौन्तेय तदामं द्विगुणं चरेत् । त्रिगुणं चतुर्गुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ॥ "

मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय तो ब्राह्मणोंको मासिक और वार्षिकको छोडकर अमावस्या आदिमें आमश्राद्ध करना लिखा है, स्मृतिदर्पणमें लिखा है कि, मरणदिनका श्राद्ध सपिंडी महालय इनको आपत्तिमें भी आमअन्नसे कभी न करै, हेमाद्रिमें व्यासका कथन है कि, आमअन्न देनेवाला हे कौन्तेय! चौगुना, दुगुना, तिगुना दे, एक गुना न दे, सिद्ध अन्नमें जो आवाहन आदिका विधान है हे राजन्! वह सब विधि और पिंडदान आमश्राद्धमें भी होता है, और पका और विना पका जो अन्न ब्राह्मणोंको दिया जाय उससेही अग्नौकरण करै, और उसीसे पिंड दे, उसीका कथन है कि, हे कौन्तेय! कच्चा अन्न देताहुआ मनुष्य दूना, तिगुना, चौगुना दे, एक गुना न दे ॥

स्मृत्यर्थसारे सममप्युक्तं विष्णुपुराणे वाराहे च " असमर्थोन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः । प्रदद्यात्तु द्विजातिभ्यः स्वल्पामपि च दक्षिणाम् ॥ " अत्र शक्तितः इत्यस्मात्समलाभः । आस्यत इति क्षासः ॥ षट्त्रिंशन्मते–" आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत् । गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥ पिण्डान् दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः–" आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः

सदा । हस्तेऽग्नौऽकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः ॥ " एतत्साग्नेः । निरग्नेः सदा तत्सत्त्वात् ॥ यत्तु-"आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान् पाकेन भोजयेत् । पक्वेन कुरुते पिण्डमामान्नं यः प्रयच्छति ॥ तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकार्हौ न संशयः " इति ॥ तद्दर्शादिपरम् ॥ देशाचाराद्व्यवस्थेति युक्तम् ॥

स्मृत्यर्थसारमें समान भी कहा है, विष्णुपुराण और वाराहपुराणमें लिखा है कि, अन्न देनेको असमर्थ मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार भोजन मात्र अन्न दे, और थोडेसे थोडी भी दक्षिणा दे, यहां शक्तिके कहनेसे समका लाभ जानना, षड्त्रिंशतमतमें लिखा है कि, जब आमश्राद्ध करै, तो पिंडदान कैसे हो, घरके पाकमेंसे अन्नको निकालकर सत्तु वा पायस जो मिलसकै उससे तिलोंसहित पिंड दे, और क्रोध न करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्यासका कथन है कि, जब आमश्राद्ध करै, तब विधिका ज्ञाता श्राद्ध देनेवाला ब्राह्मणके हाथमें विधिसे अग्नौकरण करै, यह साग्निकको भी सदैव है कारण कि, वह मिलसकता है, जो किसीने यह कहा है कि, आमअन्नसे पिंड दे, और ब्राह्मणोंको पकान्न जिमावे और जो पक्वान्नसे पिंड दे, और ब्राह्मणको आमान्न जिमावै वे दोनों मनुष्य नरकमें जानेयोग्य हैं, इसमें संदेह नहीं यह अमावस्या आदिके विषयमें लिखा है और इसकी देशाचारके अनुसार व्यवस्था करनी युक्त है ॥

मरीचिः-"आवाहने स्वधाकारे मन्त्रा ऊह्या विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ॥ " आवाहने हविषे अत्तव इत्यत्र स्वीकर्तवे इत्यूहः ॥ स्वधाकारे नमो वः पितर इषे इत्यत्र इषेपदस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः ॥ विसर्जने वाजेवाजे इत्यत्र तृप्ता इति स्थाने तर्प्स्यत तृप्यतेति वोहः ॥ यद्यपि तस्मादृचं नोहेतेति ऋच्यूहो निषिद्धः तथापि वचनाद्भवति ॥ " तृप्तिप्रश्नोवगाहश्च जुषप्रश्नो यथासुखम् । आमश्राद्धे भवेन्नैतदापोशानं च पञ्चमम् ॥ " अयं चानुवादः खलेवाल्यां छेदनादीनामिवार्थाभावाल्लोपसिद्धेः ॥

मरीचिने कहा है कि, आवाहन स्वधाकार विदा करना इन मन्त्रोंका ऊह करना उचित है अन्य कर्ममें नहीं करना यह आम श्राद्धकी विधि वर्णन की है, आवाहनमें, 'हविषे अत्तवे' यहां 'स्वीकर्तवे' यह ऊह करना, स्वधाकारमें 'नमो वः पितरः इषे' यहां इस पदके स्थानमें 'आमद्रव्याय' यह ऊह करना, विसर्जनमें 'वाजे २ तृप्ताः' इसके स्थानमें 'तृप्यत' यह ऊह करना कहते हैं यद्यपि उससे ऋचाका ऊह न करै इस वाक्यसे ऋचाका ऊह करना निषिद्ध है, तथापि वाक्यसे ऊह होता है, तृप्तिका प्रश्न, स्नान, प्रीतिका प्रश्न, यथासुख भोजन, पांचवा आपोशान ये, आमश्राद्धमें नहीं होते, यह अनुवाद वचन है कारण कि, पशुबन्धन स्थानमें छेदन करनेके तुल्य अर्थके अभावसेही इनका लोप सिद्ध है ॥

धर्मप्रदीपे तु-" आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा । हेम चाष्टगुणं तद्वदामे हैमेप्ययं विधिः ॥ आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च । व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति ॥ आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च । विकिरं नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ आमश्राद्धमनंगुष्ठमग्नौकरणवर्जितम् । तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥ आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम् । तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥ ६ ॥ " इत्युक्तम् ॥ एतच्च-' आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च '

इति हेमाद्रौ भविष्यादिविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ शाखान्तरविषयं वास्तु ॥ विकिरोप्यामे नेति हेमाद्रिः ॥ शूद्रस्य तु तत्रैवोक्तम् ॥ 'अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते । ' अग्नये कव्यवाहनाय नमः, सोमाय पितृमते नमः, इत्ययं मन्त्रः ॥

धर्मप्रदीपमें तो यह लिखा है कि, कच्चा अन्न चौगुना वा दुगुना देना, और सुवर्ण अठगुना देना, यह आम और सुवर्णके श्राद्धकी विधि है, आम सुवर्ण नित्य नान्दीश्राद्ध व्यतीपात श्राद्ध इनमें नियमन करै, आम और सुवर्णका श्राद्ध कियाहोय तो घरके पाकमेंसे अन्न निकालकर सत्तू वा खीरसे पिण्डदान करै, आमश्राद्ध वृद्धिश्राद्ध प्रेतश्राद्ध इनमें विकिर न करै, यह कात्यायन मुनिने लिखा है, आमश्राद्धको मनुष्य अंगूठेका स्पर्श अग्नौकरण और तृप्तिका प्रश्न इनको त्यागकर निश्चय करै, आम और हेम श्राद्धमें आवाहन और अग्नौकरण विकिर पात्रपूरण तृप्ति प्रश्नको न करै, यह धर्मप्रदीपका कथन चिंत्य है, कारण कि, इसमें हेमाद्रिमें लिखे इस भविष्यपुराणके वचनका विरोध आता है कि, आवाहन और अर्घ प्रदान करने वा दूसरी शाखाओंके निमित्त यह कथनहै, विकिर भी आमसेही करना चाहिये, यह हेमाद्रिने कहाहै, शूद्रके निमित्त तो वहांही लिखाहै कि, अग्नौकरणका मंत्र शूद्रको नमस्कारसे लिखाहै कि, "अग्नये कव्यवाहनाय नमः" "सोमाय पितृमते नमः" ॥

मात्स्ये- "मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्रस्य सर्वमेव विधीयते । एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद्बुधः ॥" तच्च पूर्वाह्णे कार्यम् ॥ "आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः । पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" इति हारीतोक्तेः ॥ एतत् द्विजविषयम् ॥ शूद्रकर्तृकं त्वपराह्ण एव ॥ "मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतुपः समुदाहृतः । आमश्राद्धं तु तत्रैव पितॄणां दत्तमक्षयम्" इति सुमन्तूक्तेरित्यपरार्के हेमाद्रौ चोक्तम् ॥ तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः- "आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् । धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ॥"

मत्स्यपुराणका वाक्यहै कि, मंत्रको त्यागकर शूद्र सब कर्म करै, इसीभांति बुद्धिमान् शूद्रभी सामान्य श्राद्ध वृद्धिश्राद्ध सदा नमस्कारमंत्रसे और आमान्नसे करै, वह पूर्वाह्णमें करना, कारण कि, हारीतका कथन है कि, पूर्वाह्णमें आमश्राद्ध, मध्याह्नमें एकोद्दिष्ट, अपराह्णमें पार्वण करै प्रातःकाल वृद्धिश्राद्ध करै यह ब्राह्मणविषकहै शूद्रको तो अपराह्णमेंही करना कारण कि, सुमंतुने कहाहै कि, मध्याह्नसे परे जो कुतुप काल लिखाहै उसमें किया आमश्राद्ध पितरोंके निमित्त अक्षयहै, यह अपरार्क और हेमाद्रिमें लिखा है, उसके अभावमें सुवर्णसे श्राद्ध हेमाद्रिमें मरीचिने कहाहै कि, आमान्नके अभावमें बुद्धिमान् मनुष्य अन्नसे चौगुने कान्तिमान् सुवर्णसे श्राद्ध करै ॥

धर्मः-'आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेम तद्वच्चतुर्गुणम् ॥' स्मृत्यर्थसारे-'हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये-"अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि ॥" षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे-'वर्जयित्वा-क्षयेहनि' इति पाठः ॥ 'यस्य भार्या रजस्वला' इति व्यासपाठः ॥ पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्तः-"पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणानभिकामयन् ॥"

धर्मका कथनहै कि, आमान्न दूना और सुवर्ण चौथाई लेना, स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, सुवर्ण अठगुना वा चौगुना वा बराबर दे, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अन्न और ब्राह्मणका अभाव परदेश और पुत्रजन्म इनमें स्त्री शूद्रभी सुवर्णसे श्राद्ध करै, षड्त्रिंशत्के मतमें चौथे चरणमें क्षयीके दिनको त्यागकरके करै, यह पाठ है, व्यासने तो जिसकी भार्या रजस्वलाहो यह चौथा पाद लिखाहै, पुत्रकी उत्पत्तिमें सुवर्णका नियम संवर्तने लिखाहै कि, बुद्धिमान् मनुष्य पुत्रके जन्ममें सुवर्णसे ही श्राद्ध करै, कल्याण चाहै तो पक्व और आम अन्नसे न करै ॥

भविष्ये–"गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धे कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत्पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम् ॥ २ ॥" 'हेमश्राद्धे पिण्डदानं न' इति दिवोदासः ॥ स्मृत्यर्थसारे तु विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः ॥ षट्त्रिंशन्मते–"नामन्त्रणाग्नौकरणं विकिरो नैव दीयते । तृप्तिप्रश्नोपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत् ॥" अत्र मरीचिना आमाभावे हेमविधानेन स्थानापत्त्या धर्मप्राप्तेः पूर्ववन्मन्त्रोहः पूर्वाह्णकालता च ज्ञेयेति दिक् ॥ पूर्वोक्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च ॥

भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, हेमश्राद्ध किया होय तो गृहपाकसे निकाले अन्नसे सत्तु वा पायससे पिंडदान करने चाहिये, शूद्र तो गृहपाकसे उसके पिण्डदे, और सत्तू मूलफल वा पायस उसके निमित्त लिखेहैं, हेमश्राद्धमें पिंडदान नहीं होता, यह दिवोदासका मतहै, स्मृत्यर्थसारमें तो विकल्प लिखाहै उसको हम नहीं जानते, षड्त्रिंशत्के मतमें लिखाहै कि, आमंत्रण अग्नौकरण विकिर तृप्तिका प्रश्न इनको कोई न करै, यहां मरीचिने लिखाहै कि, आमके अभावमें हेमकी विधिसे उसके स्थानमें होनेसे उसको धर्मप्राप्तिसे पूर्वके तुल्य मंत्रोंका ऊह करना उचितहै यह सूक्ष्म लिखाहै और पूर्वोक्त धर्मप्रदीपका भी कथनहै ॥

व्यासः–"हिरण्यमामं श्राद्धीयं लब्धं यत्क्षत्रियादितः । यथेष्टं विनियोज्यं स्याद्भुञ्जीयाद्ब्राह्मणात्स्वयम् ॥" विप्रलब्धं भुञ्जीयात् ॥ क्षत्रियादिलब्धे तु यथेष्टविनियोगः ॥ तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् ॥ देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तराय त्यागायोगादिति देवयाज्ञिकः ॥ शूद्रलब्धेतूक्तं तत्रैव षट्त्रिंशन्मते–"आमं शूद्रस्य यत्किंचिच्छ्राद्धिकं प्रतिगृह्यते । तत्सर्वं भोजनायालं नित्यनैमित्तिके न च" इति ॥

व्यासने लिखाहै कि, जो सुवर्ण वा आमश्राद्धका द्रव्य क्षत्रियआदिसे प्राप्तहुआ है उसको यथेच्छ कार्यमें लगावै, और ब्राह्मण स्वयं भोजन करै, अर्थात् ब्राह्मणसे मिलेका भोजन और क्षत्रिय आदिसे मिलेका यथेच्छ विनियोग करै, और वहभी श्राद्ध और बलि वैश्वदेव आदिको न करै, कारण कि, एक देवके निमित्त दिये अन्नका अन्यदेवको दान देना अनुचित है यह देवयाज्ञिकका कथन है शूद्रसे जो मिलै उसके निमित्त तो वहांही षट्त्रिंशत्के मतमें लिखा है कि, जो शूद्रका कच्चा अन्न श्राद्धके निमित्त किंचित्भी लिया जाय वह सब भोजन करनेके योग्यहै, परन्तु नित्य नैमित्तिकमें नहीं ॥

शुद्धितत्त्वेङ्गिराः–"शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्तव्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम् ॥ शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि ॥" पराशरः–"तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुद्ध्यते ॥"

विष्णुपुराणे–'संप्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम् ॥' अङ्गिराः–'पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम् ॥'

शुद्धितत्त्वमें अंगिराका कथन है कि, शूद्रके घरमें दूध वा दहीको निवृत्तिमार्गमें स्थित ब्राह्मण भोजन न करै, कारण कि, वह भी शूद्र अन्न कहा है, शूद्रसे जो ब्राह्मणके घरमें अन्न गया हो वह सदाही शुद्ध है पराशरने लिखा है कि, तबतकही शूद्रान्न होता है जबतक ब्राह्मण उसको स्पर्श न करै, विष्णुपुराणमें लिखा है ब्राह्मणके हाथका स्पर्श होजाय तो उसके ग्रहणमें कोई दोष नहीं, घरमें आये हुए शूद्रके अन्नको जलसे भलीप्रकार छिडककर ग्रहण करै, अंगिराका वाक्य है कि, घर आये शूद्रके दूधको दूसरे पात्रमें लेकर स्वीकार करले ॥

सांकल्पविधिश्राद्धम् ।

सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः–"समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् । अपि संकल्पविधिना तस्य काले विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते" व्यासः–"सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥" पात्रमर्घ्यस्य ॥ समन्त्रकावाहनस्य निषेधः ॥ तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः ॥ स्मृत्यर्थसारे–'विकिरं तु न दातव्यम्' इति तृतीयपादे पाठः ॥

यदि सपिण्ड श्राद्ध न करसके तो हेमाद्रिमें संवर्तका यह वाक्य है कि, जो सम्पूर्ण पार्वण करनेको समर्थ न होय वह समयपर संकल्प विधिसे करै, सुपात्रको जो भोजन देना वा अन्नका त्याग है उसको संकल्प कहते हैं व्यासजीने कहा है कि, यदि मनुष्य संकल्प करै, तो पात्रपूरण आवाहन अग्नौकरण और पिण्डदान इनको न करै, यहां पात्रशब्दसे अर्घ्यका पात्र जानना, और आवाहन मन्त्रसे न करै, और मौनतासे तो करदे यह हेमाद्रिका कथन है स्मृत्यर्थसारमें तो तीसरे चरणमें यह पाठ है कि, विकिर न दे ॥

स्मृत्यन्तरे–"त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकरणमेव च । पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके ॥" हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु–"पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते । स्वधावाचनलोपोत्र विकिरस्तु न लुप्यते" इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः–"आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा विकिरं पिण्डदानं च सांकल्पे षड्विवर्जयेत् ॥" विकिरे विकल्पः स्मृत्यन्तरे–"अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् संकल्पात्सिद्धिरस्त्विति ॥"

स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि, आवाहन अर्घ्य अग्नौकरण पिण्ड और विकिर अक्षय्यजल इनको संकल्प श्राद्धमें न दे हेमाद्रिमें वृद्ध शातातपका तो यह वाक्यहै कि, जो श्राद्ध पिंडदानसे रहितहै उसमें स्वधावाचन न करै और विकिरको तो करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वसिष्ठका वाक्यहै कि, आवाहन स्वधाशब्द पिंड अग्नौकरण विकिर और पिंडदान इन छः को संकल्पश्राद्धमें त्यागदे, विकिरमें विकल्प है कारण कि, स्मृत्यंतरमें लिखाहै कि, जब पितृयज्ञके अंगोंको करनेमें समर्थ नहो तब ब्राह्मणोंसे यह कहावे कि, संकल्पसे सिद्धिहो ॥

---

१ शुष्कअन्न, गोरस, स्नेह यह शूद्रके घरसे आयाभी भोज्यहै और ब्राह्मणके यहां पकान्न भोजन करलेना यह मनुने कहाहै ॥

छागलेयः–"पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः" ॥ कार्ष्णाजिनिः–"मौञ्जीबन्धाद्व्रतसरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात् । पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु ॥" अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुक्तः ॥ त्यक्ताग्नेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते–"अनग्निको यदा विप्र उत्सन्नाग्निस्तथैव च । तथा वृद्धिषु सर्वासु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ॥"

छागलेयका कथनहै कि, जब मघाआदिमें किसीप्रकार पिण्डकी निवृत्ति होजाय तब ब्रह्मवादी नियमसे संकल्प श्राद्ध करै, कार्ष्णाजिनका कथनहै कि, यज्ञोपवीतसे छः मासतक और विवाहसे वर्षदिनतक प्रेतपिण्डको छोडकर पिंडको सब सपिंड न करै, इसका अपवाद मातापिताके वार्षिक आदिमें प्रथम कथन कर आयेहैं, अग्निके त्यागीको भी संकल्पश्राद्ध षट्त्रिंशतके मतसे लिखाहै कि, जब अनग्नि वा त्यक्ताग्नि होयतो सम्पूर्ण वृद्धियोंमें संकल्पश्राद्ध करै ॥

अशक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये–"द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥" देवलः–"पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते भवेन्निरशनोपि वा ॥" बृद्धवसिष्ठः "किंचिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये–"अग्निना वा दहेत् कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिन्वोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ॥" श्राद्धसंहिता समन्त्रश्राद्धसंकल्पः ॥

असमर्थतामें तो पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहन्नारदीयका कथनहै कि, द्रव्य और ब्राह्मणके अभावमें श्राद्धके दिन अन्नमात्रको पकावे और चतुर मनुष्य पैतृक सूक्तसे हवन करै देवलने कहाहै कि, द्रव्यके अभावमें विप्रको पिंडमात्रको देदे, वा व्रतकर करले, वृद्धवसिष्ठका कथनहै कि, अशक्त मनुष्य जो कुछ जल घटआदि ब्राह्मणको दे वा तृण आदि गौओंको दे वा पिंडदे वा तिल और कुशाओंसे पितृतर्पण करदे, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, श्राद्धकालके आनेपर अग्निमें तृण जलादे, वा उसदिन व्रत करै वा मन्त्रोंसहित श्राद्धका संकल्पकरै ॥

विष्णुवराहपुराणयोः–"असमर्थोन्नदानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः । प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि च दक्षिणाम् ॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः । सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं न चान्नं श्राद्धोपयोगि स्वपितॄन्नतोस्मि । तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् । यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ॥ ४ ॥"

विष्णु और वराहपुराणमें लिखा है कि, अन्न दानमें असमर्थ अपनी शक्तिसे अन्न मांस वा तिल और थोडीसे थोडी दक्षिणादे, और कुछभी न होय तो वनमें जाकर अपनी कोखमूल सूर्य आदि लोकपालोंको दिखाकर ऊंचेस्वरसे यह पढै कि, वित्त धन और श्राद्धके उपयोगी और वस्तु मेरे यहां नहींहैं, मैं पितरोंको नमस्कार करता हूं मेरी भक्तिसे पितर तृप्त हों इसमें मैंने अपनी दोनों भुजा पवनमार्गमें फैलादीहैं यह पितरोंने होने और न होनेका प्रयोजन गायाहै, हे राजन् ! जो इस प्रकार करताहै उसने श्राद्धही करलिया ॥

प्रभासखण्डे–"गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः । निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो मातॄणं कृथाः ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । वनं प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः । आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥ भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ॥ ३ ॥" इत्यनुकल्पः ॥

प्रभासखंडमें लिखा है कि, निर्जन वनमें जाकर ऊपरको भुजाकर इसप्रकार रोवे कि, हे देवताओ ! मैं अन्न और धनसे हीनहूँ । हे पितरो ! क्रोध मत करना मेरे वित्त धन भार्या नहीं हैं, मैं आपका श्राद्ध कैसे करूं इससे इस वनमें प्रवेश कर मैंने दोनों बांह पवनके मार्गमें की हैं, और श्राद्धरूपी ऋण मैंने आपको दिया, पितर और देवता मेरे ऊपर कृपा करो, इस प्रकार कहकर, भुजा उठाये रातदिन व्रत करके खडा रहै, वह इसप्रकार करनेसे पितर और देवताओंके ऋणसे छूटता है, इत्यनुकल्पः ॥

अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तम् ।

दर्शे षट् प्राणायामाः ॥ वृद्धौ त्रयः ॥ संस्कारेषु जातकर्मादिचूडान्तेषु सांतपनम् ॥ आद्ये चान्द्रं वा अन्यसंस्कारेषूपवासः ॥ सीमन्ते चान्द्रमिति विज्ञानेश्वरः ॥ आपदि नवश्राद्धैकादशाहेषु भोजने कायः द्वादशाहे ऊनमासे च पादोनः ॥ द्विमासे त्रिपक्षे ऊनषष्ठोनाब्दयोश्चार्द्धकृच्छ्रः ॥ त्रिमासाद्याब्दिकान्तेषु सपिण्डने च पादकृच्छ्र उपवासो वा ॥ गुरुद्रव्यार्थभोजनेऽर्द्धम् ॥ जपशीले तदर्धम् ॥ अनापदि तूनमासान्तेषु चान्द्रं कार्यं वा ॥ द्विमासादौ पादोनम् ॥ त्रिमासादावर्द्धकायः ॥ आब्दिके पादोनकायः ॥ पुनराब्दिके एकाहः ॥ क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि ॥ चाण्डालसर्पश्वादिहतपतितक्लीबादिनवश्राद्धे चान्द्रम् ॥

अब श्राद्धभोजनका प्रायश्चित्त लिखते हैं, अमावस्याके श्राद्धमें छः प्राणायाम, वृद्धिमें तीन ३, जातकर्म आदि मुण्डनपर्यन्त संस्कारोंमें सांतपन वा जातकर्ममें चान्द्रायण, अन्य संस्कारोंमें व्रत करै, सीमंतमें चांद्रायण करै यह विज्ञानेश्वरका मत है आपत्तिमें नवश्राद्ध एकादशाहके भोजन करनेमें द्वादशाह व्रत ऊनमासमें पादोन (६ दिन उपवास) द्विमास त्रिपक्ष ऊनषष्ठ, और ऊनाब्दमें अर्धकृच्छ्र और त्रिमासमें वार्षिकपर्यन्तमें सपिंड पादकृच्छ्र वा व्रत करै, गुरुके द्रव्यके निमित्त भोजन किया होय तो आधा प्रायश्चित्त, यदि जपशील होय तो उससेही आधा, जो कोई आपत्ति न होय तो न्यून मासांतोंमें चांद्रायण व्रत करना और द्विमासमें पादोन और त्रिमास आदिमें आधा करना, वार्षिकमें पादोन करना, पुनराब्दिकमें एकदिन व्रत क्षत्रिय आदिके श्राद्धोंमें ये प्रायश्चित्त दुगुने तिगुने चौगुने जानने, चांडाल सर्प पशुआदिसे जो मरेहों पतित और नपुंसकके श्राद्धमें चांद्रायण करना ॥

आद्यमासिकान्ते चान्द्रं पराकश्च ॥ द्वादशाहादौ पराकः ॥ द्विमासादावतिकृच्छ्रः ॥ त्रिमासादौ कायः ॥ आब्दिके पादः ॥ अभ्यासे सर्वं द्विगुणम् ॥ आमहेमसंकल्पः श्राद्धेषु तत्तदर्धानि ॥ यतिर्ब्रह्मचारी चोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा त्रीनुपवासान् प्राणायामान्यृताशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ अनापदि द्विगुणम् ॥ दर्शाशौ दश-

गायत्रीमन्त्रिता अपः पिबेत् षट् प्राणायामा वा ॥ संस्कारेषु चौले कृच्छ्रः ॥ सीमन्ते चान्द्रम् ॥ अन्येषूपवास इति दिक् ॥ अत्र माधवमिताक्षरादौ क्वचिद्विरोधो विषयभेदात्परिहार्यः ॥ एकादशाहे चान्द्रं पुनः संस्कारश्चेति प्रायश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः ॥ यत्तूशनाः"दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग् द्विजः" इति तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः ॥

प्रथम मासिकके अन्तमें चांद्रायण और पराक लिखा है, द्वादशाहमें पराक द्विमास आदिमें अतिकृच्छ्र करै वार्षिकमें चौथाई कृच्छ्र करै वारंवार अपराध करनेमें सब प्रायश्चित्त दुगुने होते हैं, आम सुवर्ण और संकल्पश्राद्धोंमें तिस २ के आधे करने संन्यासी और ब्रह्मचारी इन प्रायश्चित्तोंको करके तीन व्रत प्राणायाम घृतका भोजन इनको अधिक करकै शेषव्रतको पूर्ण करै, आपत्ति न होय तो दूना करै,. अमावस्याके भोजनमें दशवार गायत्री जपकर जलपान वा छः प्राणायाम संस्कारोंमें मुण्डनमें कृच्छ्र सीमन्तमें चान्द्रायण करै अन्योंमें व्रत करै यह सूक्ष्म कहा है. यहां माधव और मिताक्षरा आदिमें कहीं विरोध होय तो विषयभेदसे उसको निवारण करना चाहिये, एकादशाहमें चांद्र और फिर संस्कार करना यह हेमाद्रिका कथन है, जो उशनाने यह लिखा है कि, श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण दशवार गायत्री पढकर जलपान करै, वह उस श्राद्धके विषयमें है जिसका प्रायश्चित्त न लिखाहो यह विज्ञानेश्वरका मत है ॥

अथ क्षयाहश्राद्धम् ।

तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः—"मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥" नारदीये—'पारणे मरणे नणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' अत्र चान्द्रं मानं ज्ञेयम् ॥ 'आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते' इति गर्गोक्तेः मलमासमृतस्य तु सौरं–'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्' इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ एतन्मृतमासस्यैवाधिक्ये ज्ञेयम् ॥ ब्राह्मे–"प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥" अपुत्रस्येति भ्रात्राप्यन्वयः ॥ ज्येष्ठस्येति कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम् ॥

अब क्षयाहश्राद्धको लिखते हैं। उसका स्वरूप हेमाद्रिमें व्यासके वाक्यसे कहा है कि, मास, पक्ष, तिथिसे युक्त जिसदिन जो प्राणी मरै प्रतिवर्ष वैसाही वह दिन जब आवै तब क्षयाह कहाता है, नारदीयपुराणमें लिखा है कि, पारणा और मनुष्योंके मरनेमें उस समय वर्तमान तिथि लिखी है, यहां मानचांद्र जानना कारण कि, गार्ग्यका कथन है कि, आब्दिक और पितृकार्यमें चांद्रमास उत्तम है, जो मलमासमें मराहो उसे सौरमास उत्तम है, कारण कि, हेमाद्रिमें लिखा है कि, मलमासमें मरोंके श्राद्धमें सौरमासको स्वीकार करै, यह भी तब जानना जब मरनेका मासही अधिक हो, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, माता पिता पुत्रहीन चाचा और पुत्रहीन ज्येठा भाई इनका वार्षिक श्राद्ध मरनेके दिन करै, यहां ज्येठा भाईका कथन इस कारण है कि, कनिष्ठका श्राद्ध करना आवश्यक नहीं ॥

मदनरत्ने भविष्ये–'सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम्' ॥ तथा–"भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप । मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेहनि ॥स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः ॥"तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम्॥आद्यमाह यमः– "सापिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि ॥"

व्यासः—"एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पित्रोश्चैव मृतेऽहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः ॥ अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः ॥"

मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, सब श्राद्धोंमें वार्षिकश्राद्ध उत्तमहै, तैसेही और भी वाक्य है कि, हे खगाधिप ! मरनेके दिन जो मनुष्य मातापिताका श्राद्ध वर्ष २ में नहीं करता वह तामिस्रनाम घोर नरकमें जाता है, वहां अनेक स्मृतियोंमें एकोद्दिष्ट और पार्वण लिखा है उन दोनोंमें पहिला पमने लिखा है, सपिंडी करणके पीछे प्रतिवर्षमें पुत्र मातापिताका एकोद्दिष्ट पृथक् २ करै व्यासका कथनहै कि, माता-पिताके मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करना चाहिये, जो एकोद्दिष्टको त्यागकर पार्वण करता है वह न करनेको समान है, और वह मनुष्य पितरोंका घातक (हत्यारा) होताहै, ॥

अन्यमाह शातातपः—"सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रति संवत्सरं श्राद्धं छागलेनोदितो विधिः ॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥ २ ॥" अत्रौरसक्षेत्रजयोः पार्वणं दत्तकादीनामेकोद्दिष्टमित्येकः पक्षः ॥ साग्नेः पार्वणं निरग्नेरेकोद्दिष्टमित्यपरः ॥ तद्दूषणं मिताक्षरादौ ज्ञेयम् ॥ कल्पतरुस्तु—"साग्न्योरौरसक्षेत्रजयोः पार्वणम् ॥ निरग्निकयोस्त्वेकोद्दिष्टमित्याह ॥"

दूसरा (पार्वण) शातातपने लिखा है कि, सपिंडी किये उपरान्त प्रतिवर्ष क्षयी श्राद्ध पार्वणके तुल्य करै, यह छागलेयको कथन कीहुई विधि है जो मनुष्य सपिंडी किये प्रेतको पृथक् पिंडमें मिलाता है वह विधिका नाशक और पितरोंका हत्यारा होता है, यहां औरस और क्षेत्रज पुत्रोंको पार्वण करना, दत्तक आदि पुत्रोंको एकोद्दिष्ट करना यह एक पक्ष है, साग्निकका पार्वण और निरग्निकका एकोद्दिष्ट करना यह दूसरा पक्ष है, इनके दूषण मिताक्षरा आदिमें लिखे हैं, कल्पतरुमें तो यह लिखा है कि, साग्नि औरस क्षेत्रज पुत्रोंको पार्वण और निरग्नियोंका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना ॥

अपरार्केप्येवम् ॥ दत्तकादयो दश पुत्रास्तु साग्नयो निरग्नयश्चैकोद्दिष्टमेव कुर्युः ॥ "प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश" इति जातूकर्ण्योक्तेः ॥ यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शे महालये वा मृतस्तत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः ॥ वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः ॥ स च देशाचाराद्व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः ॥

अपरार्कमें भी ऐसेही लिखा है, दत्तक आदि दशपुत्र तो साग्नि हो चाहै निरग्निहो एकोद्दिष्टही करै, कारण कि, जातूकर्ण्यका कथन है कि, क्षेत्रज और औरसपुत्र वार्षिक श्राद्ध पार्वणकी विधिसे करें, और इतर दशपुत्र एकोद्दिष्टही करैं, जब दत्तकका पिता अमावस्या वा महालयमें मृत्युको प्राप्त हुआ हो वहां पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प जानना, सिद्धान्तसे तो सब पुत्रोंको व्रीहि और यवके समान पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प लिखा है और उसकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है, यह सब ग्रन्थोंका सिद्धान्त है ॥

अत एव पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—'मातापित्रोः पृथक् कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि' इत्युक्त्वाह—"देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे । सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाहृचपि" इति ॥ तच्च केवलपितॄणाम् । न सपत्नीकानामिति हेमाद्रिः ॥ अत्र मातामहा न कार्याः—"कर्पूसमन्वितं भुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च

शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः" इति कात्यायनोक्तेः ॥ कर्षूसमन्वितं सपिण्डनं यैरेकोद्दिष्टं क्रियते तेषामपि क्वचित् पार्वणमेवेति शंखोक्तेः एवं संन्यासिनोपि- "एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा" इति प्रचेतसोक्तेः ॥

इसीसे पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपराशरने मातापिताका एकोद्दिष्ट मृत्युके दिन पृथक् करना, लिखकर कहा है कि, देशधर्म वा वंशधर्मका आश्रय लेकर और शूर वीर जन क्षयी श्राद्धके दिन पार्वणश्राद्धकी अभिलाषा करते हैं वह भी केवल पितरोंका करना, सपत्निकोंका नहीं करना यह हेमाद्रि कहते हैं, और इसमें मातामहका न करना कारण कि, कात्यायनने लिखा है, 'कर्षूसमन्वितम्' (सपिंडी) और आद्य षोडश श्राद्ध और वार्षिक श्राद्धको त्यागकर शेष श्राद्धोंमें छः पिण्ड होतेहैं, यही मर्यादा है, जो एकोद्दिष्ट करते हैं उनको भी कहीं २ पार्वण ही करना पडता है कारण कि, शंखका कथन है कि, अमावस्या वा प्रेत पक्षमें जो मृत्युको प्राप्त हुआ हो उसका पार्वण करै, एकोद्दिष्ट किसी प्रकार न करै, यतिका त्रिदण्ड ग्रहणके कारण एकोद्दिष्ट नहीं होता सपिण्डीकरण न होनेसे पार्वणही होता है यह प्रचेताका कथन है ॥

वायवीये-"संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः-"संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये । तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेपि च सत्तमैः ॥ चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः । सपिण्डितानामपि चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥२॥" तथा-भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्रातानुजस्य च । दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविद्ब्रवीत् ॥" दैवहीनमेकोद्दिष्टम् ॥ ज्येष्ठो भ्राता नाद्यगर्भजः ॥

वायवीयमें है कि, संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध विधिसे फिर करै, महालयमें जो संन्यासीका श्राद्ध है वह द्वादशीको पार्वण करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध पराशरका कथन है कि, संग्राममें प्रेतपक्ष वा अमावास्याको जो मृत्युको प्राप्त हुए हों उनको मरनेके दिन भी सज्जनोंने पार्वण औरही लिखा है, अमावास्या अनशन दिन व्रत प्रेतपक्ष इनमें जो सपिंड मरा हो सपिंडी किये पीछे भी उसके पार्वणश्राद्ध क्षयीके दिन होतेहैं, इसी प्रकारसे वाक्य हैं कि, ज्येष्ठ भाईका वार्षिक श्राद्ध भ्राता करै, परन्तु वह विश्वेदेवाओंसे हीन (एकोद्दिष्ट) करै, यह धर्मके ज्ञाता वर्णन करते हैं. ज्येष्ठ भ्राता वही न लेना जो प्रथम गर्भसे उत्पन्न हुआ हो ॥

तथा च तत्रैव शातातपः-"अनाद्यगर्भज्येष्ठोपि भ्राता सद्भिर्निगद्यते । ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ॥" आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्यर्थः ॥ मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः-"प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् पुत्रः पित्रे सदा द्विजः । तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं चान्यदेव वा । यत्तु तेनैवोक्तं-"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणम् । पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं सदैव तु" इति तत्सापत्नमातृपरम् ॥

सोई वहांही शातातपने लिखा है कि, आदि गर्भसे भिन्न भी भ्राता सज्जनोंने ज्येष्ठ कहा है, सपिंडीके विना उसका पार्वण न करै, आद्य गर्भमें तो पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना, माताका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें कात्यायनने लिखाहै कि, जो ब्राह्मण प्रतिवर्ष जैसे २ अपने पिताका श्राद्ध करताहै, उसी प्रकार माताकाभी

पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना चाहिये, जो तो उसने ही कहाहै कि, सपिण्डीसे पीछे पिताही पार्वण करै चाचा, भ्राता इनका सदैव एकोद्दिष्ट करना, सो सपत्नमाताके विषयमें है॥

यत्तु वृद्धपराशरः-"अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत्। स एवास्य तु कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम्॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु। पितृस्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत्॥ २॥" इति॥ तत्पितृवद्देशाचारवद्व्यवस्थितमिति पृथ्वीचन्द्रः॥ श्राद्धदीपकलिकायां चतुर्विंशतिमते तु-"पितृव्यभ्रातृमातॄणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत्। एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मिथः॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः। मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्॥ २॥" इत्युक्तम्। तत्पत्न्याः कर्तृत्वेपि पार्वणमेव॥

वृद्ध पराशरने लिखाहै कि, जो चाचा अपुत्र होय तो उसके भाईके पुत्र पिण्डदान आदि क्रियाको करै, और वह भ्रातृज पुत्रके तुल्य पार्वण करै, और पिताके स्थानमें चाचाको कहकर शेष कर्मको पूर्ववत् करै, यह सब देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचितहै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयका मत है. श्राद्धदीपकलिकामें चतुर्विंशतिके मतमें तो यह लिखा है कि, चाचा भाई भ्राता इनमें ज्येष्ठोंका पार्वण और कनिष्ठोंका एकोद्दिष्ट करना और स्त्री और पति ये परस्पर पार्वण श्राद्ध करैं, पुत्रहीन पितृव्य और बडाभाई और नाना और उसकी स्त्री इनका श्राद्ध पार्वण होता है, पत्नी भी पार्वण करै॥

"सर्वाभावे स्वयं पत्न्याः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः॥ 'ततः पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा' इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम्॥ अन्ये त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः॥ अत एव-"भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत्। न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत्" इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैः॥ 'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः' इत्यनेन विरोधाच्च॥

कारण कि, लौगाक्षिकी स्मृतिहै कि, सबके न होनेमें पत्नी स्वयं अपने स्वामीका विना मन्त्र सपिण्डीकरण और पार्वण करै, सुमन्तुका भी कथन है कि, पत्नी भी सपिंडी और पार्वण करै, यही निर्णयामृतमें लिखा है, और तो इस वाक्यको पाक्षिक पार्वणके विषय लिखतेहैं, इसीसे त्रिस्थलीसेतुमें भट्टने लिखाहै कि, जो स्त्री अज्ञानसे पतिका श्राद्ध पार्वण करतीहै, उसका पति तृप्त नहीं होता, और स्वयं नरकको जाती है यह वचन क्षयीके दिन पाक्षिक एकोद्दिष्टकी प्रशंसाके विषयमें है, पार्वणके निषेधार्थ नहीं, अपने पति आदि तीनको प्रदान करै इस वचनसे संग विरोधभी है॥

अपुत्राणां चाह हेमाद्रावापस्तम्बः-"अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये। तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥ मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च। दद्यादै मासिकं श्राद्धं सांवत्सरमतोन्यथा॥ २॥" पारिजाते च अन्यथापार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्र पार्वणमित्युक्तम्। एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तम्॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगार्ग्यः-"मातुः सहोदरा या च पितुः सहभवा च या। तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिण्डनाहते॥"

अपुत्रोंका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें आपस्तम्बने लिखाहै, स्त्री वा पुत्र जो अपुत्र मृतक हुएहैं उनकोभी एकोद्दिष्ट देना पार्वण नहीं, मित्र बन्धु सपिण्ड कुमारीको मासिक श्राद्ध देना और इसके अन्यथा वार्षिक श्राद्ध दे, पारिजातमें तो अन्यथा पार्वण करै यह कहकर सर्वत्र पार्वण करना कहाहै, एकोद्दिष्टके वाक्य तो तीर्थके महालयमें कहेहैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, वृद्ध गार्ग्यका कथन है कि, माता और पिताकी जो सहोदर बहनहैं, सपिण्डीके विना उनका पार्वण न करै ॥

प्रचेताः–" सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥ " अपत्नीनां ब्रह्मचार्यादीनाम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे–" प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि यथान्यायं नृणां तद्वदिहोदितम् ॥ " नृणामिति दृष्टान्ताद्गोविप्रहतपाखण्डयादीनां सपिण्डनाभावेपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः ॥ अत्रिवृद्धवसिष्ठौ–" सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥ पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ "

प्रचेताने लिखाहै कि, सम्पूर्ण पुत्रहीनोंका और ब्रह्मचारियोंका सपिंडीके पीछे एकोद्दिष्ट लिखाहै, मार्कण्डेय पुराणमें कहाहै कि, स्त्रीका पति वार्षिक एकोद्दिष्ट मनुष्योंके तुल्य करै, यहां मनुष्योंके तुल्य इसको दृष्टांत होनेसे गौ ब्राह्मणसे हते और पाखण्डी आदिकोंका सपिण्डीके न होनेमें भी वार्षिक एकोद्दिष्ट करना यह शूलपाणिका मतहै, अत्रि और वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, सपिंडीके पीछे जहां कहीं भाई, बहन, पुत्र, स्वामी, मामा, चाचा और गुरुका एकोद्दिष्टही होता है पार्वण नहीं ॥

यत्तु जातूकर्ण्यः–" पितृव्यभ्रातृमातॄणामपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यासुतस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत् " इति ॥ तदावश्यकत्वार्थं, न तु पार्वणार्थमिति हेमाद्रिः ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ " मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः । तेषां तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः " इति पुलस्त्योक्तेर्मातामहस्य पार्वणमेव ॥ तत्साहचर्यात् पितृव्यादौ ॥ तथा–' पितृव्यभ्रातृणामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् ' इति क्षयाहोक्तोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः ॥ केचित्त्वापस्तम्बादिवाक्यानि–' व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ' इत्यस्य पितृव्यादिपरत्वादकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणीत्याहुः ॥ माता सपत्नमाता ॥ एकोद्दिष्टं तु कनिष्ठपरमिति ॥

जो जातूकर्ण्य कहते हैं कि, पिता, भाई, माता, अपुत्रोंका अपुत्र मातामहादिका श्राद्ध पितावत् होताहै यह आवश्यकताके निमित्तहै पार्वणके निमित्त नहीं, यह हेमाद्रिका मत है युक्त तो ऐसाहै कि, माताके पितासे लेकर तीन मातामह कहेहैं, उनका श्राद्ध पुत्रीके पुत्रके पिताके समान करै, इस पुलस्त्यके वाक्यसे मातामहका श्राद्ध और उसके सम्बन्धसे पितृव्य आदिका पार्वणही होताहै, चाचा भाईका माताका एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध करै, क्षयाहके प्रकरणमें पुलस्त्यके वाक्यसे विकल्प लिखाहै कोई तो यह कहतेहैं कि, आपस्तम्ब आदिके वाक्य उन पितृव्य आदिके विषयमें हैं जिनकी सपिंडी न हुई हो कारण कि, जो क्रमसे नहीं मरे उनकी सपिंडी न करनी चाहिये यह वाक्य पितृव्य आदिके विषयमें है, मातासे माताकी सपत्नी लेनी, एकोद्दिष्ट तो कनिष्ठके निमित्त है ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः ॥ केचित् पुत्रान्तराभावेपि पितामहवार्षिकमप्यावश्यकम् ॥ " पुत्राभावे च तत्पुत्राः पत्नी माता तथा पिता ।

वित्ताभावेपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्यौर्ध्वदैहिकम्' इति मार्कण्डेयपुराणादित्याहुस्तन्न ॥ 'पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्' इति कातीये विशेषोक्तेः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसीप्रकार लिखा है, विशेष तो अधिकारियोंके निर्णयमें लिख आये, कोई तो यह कहते हैं कि, और पुत्र न होय तो पितामहका भी वार्षिक श्राद्ध आवश्यक है कारण कि, मार्कण्डेय पुराणका कथन है कि, पुत्रके अभावमें पौत्र, पत्नी, माता, पिता, शिष्य यह धनके अभावमें भी तिसका और्ध्वदैहिक श्राद्ध करैं, सो उचित नहीं कारण कि, कातीयमें यह विशेष लिखा है कि, पौत्र एकादशाह आदि षोडश १६ श्राद्ध करैं ॥

अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः ।

तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम् ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्तदिनतृतीयभाग इति माधवः ॥ "आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं तु मध्यमे । पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥" इति हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहचर्यात् ॥ तत्रापि कुतुपादिषु मुहूर्तद्वितये ज्ञेयम् ॥ "प्रारभ्य कुरुते श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत्" इति गौतमोक्तेरेतत्परत्वात् ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ मैथिलाः श्राद्धकौमुदी चैवम् ॥ अन्यथा–"ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते" इत्यादिविरोधात् ॥

अब क्षयाहके दो होनेपर निर्णय करते हैं, उनमें एकोद्दिष्ट तो मध्याह्न[1] कालमें करना, और मध्याह्न माधवने पांच भागमें बटे दिनमें तीसरा भाग कहा है आमश्राद्धमें पूर्वाह्णमें करना, एकोद्दिष्ट मध्यमें, पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करना, इस हारीतके कथनमें प्रातःशब्दके सम्बन्धसे तीसरे भागको मध्याह्न कहते हैं, वह भी कुतुप आदि दो मुहूर्तोंमें स्वीकार करना, कारण कि, इस गौतमके वाक्यसे यही संगत है कि, कुतुपमें श्राद्धका प्रारम्भ करके रौहिण पर्यन्त करै, और रौहिणको उल्लंघन न करै, नवम मुहूर्तको रौहिण कहते हैं, मैथिल श्राद्धकौमुदीमें भी ऐसेही लिखा है, अन्यथा इत्यादि वाक्योंका विरोध होगा कि, कुतुप मुहूर्तसे पीछे जो चार मुहूर्त हैं, ये पांच मुहूर्त स्वधाके भवन स्वीकार किये हैं ॥

दीपिकापि–'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत कुतुपे' इति ॥ माधवीये व्यासोपि–"कुतुपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ तेन कुतुपादिरौहिणान्तो मुख्यः कालः । दिनद्वये तद्व्याप्तौ समव्याप्तौ च पूर्वा ॥ विषमव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः ॥ अव्याप्तौ पूर्वैव ॥ परविद्धाया निषेधात् सा च पूर्वदिने रौहिणलंघनापत्तेः परैवेति गौडाः ॥ शुक्लकृष्णवशात्खर्वदर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये तन्न परविद्धानिषेधप्राबल्यात् ॥

दीपिकामें भी एकोद्दिष्टके प्रकरणमें कहा है कि, एकोद्दिष्ट कुतुपमें होता है, माधवीयमें व्यासका कथन है कि, निश्चलमन मनुष्य आवर्तनके समीप कुतुपके प्रथम भागमें एकोद्दिष्टका आरम्भ करै, इससे कुतुप आदि रौहिणपर्यन्त मुख्य समय है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसीप्रकार कथन किया है दोनों दिन तिथि

---

१ जिसमें सूर्य उदयहो वह तिथि देवकार्यमें जाननी जिसमें सूर्यास्तहो वह पितृकार्यमें श्रेष्ठहै, एकोद्दिष्टमें मध्याह्नव्यापिनी लेनीचाहिये ॥

तुल्य होय तो पहली तिथि लेनी और न्यूनाधिक होय तो जिस दिन अधिक हो उसी दिन लेनी, और दोनों दिन कुतुपमें न होय तो प्रथम लेनी कारण कि, परविद्धाका निषेध है, वह निनेध लिखेंगे पूर्वदिनमें ग्रहण होय तो रौहिण लंघना होगा इससे अगली लेनी यह गौडोंका मत है, शुक्ल और कृष्णके वशसे खर्व दर्प आदिसे व्यवस्था जाननी चाहिये यह अन्य कहते हैं, सो ठीक नहीं कारण कि, परविद्धाका निषेध बडा प्रबल है ॥

अत्र मूलं कालमाधवीये ज्ञेयम् । पार्वणं त्वपराह्ने कार्यं पूर्वोक्तवचनात् ॥ "मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगौतमोक्तेश्च ॥ पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ तद्स्पर्शेऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव ॥ विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या "द्व्यपराह्ण व्यापिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः । महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः" इति मरीचिस्मृतेः ॥

इसका मूल कालमाधवीयमें लिखा है, पार्वग तो पूर्वोक्त वाक्यसे अपराह्णमें करना चाहिये और पृथ्वीचन्द्रोदयमें गौतमका वाक्य है कि, एकोदिष्टमें वह तिथि होती है जो मध्याह्नव्यापिनी हो और पार्वणमें वह होती है जो अपराह्णव्यापिनी हो, जो पहले दिन हो वा पहले दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो वही लेनी, दोनों दिन अपराह्णमें हो और एक दिन किसी अंशमें तिथिका स्पर्श न होता हो वा समान व्याप्ति होय तो प्रथम लेनी और न्यूनाधिक व्याप्ति होय तो जिस दिन अधिक होय उसी दिन लेनी, कारण कि, मरीचिका कथन है कि, वार्षिक श्राद्धकी अपराह्णव्यापिनी तिथि जिस दिन अधिक हो उस अधिक विद्धातिथिकी ही महर्षि प्रशंसा करते हैं ॥

"दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धामकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इत्यपरार्के नारदोक्तेः ॥ "द्व्यहेप्यव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य यदा तिथिः । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि" इति सुमन्तूक्तेः ॥ 'पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डान्' इत्याङ्गिरसभाषितम्, इति हेमाद्रौ पाठः ॥ तत्रैव वृद्धमनुः–"न द्व्यहव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत् ॥" मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु कार्ष्णाजिनिव्यासौ–"अह्नोस्तमयवेलायां कलामात्रा यदा तिथिः । सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा" इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः ॥ पूर्वेद्युः सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव–'त्रिमुहूर्ता न चेद् ग्राह्या परैव कुपते हि सा' इति कालादर्शे गोभिलोक्तेः ॥

अपरार्कमें नारदका कथन है कि, अमावस्या पूर्णमासी पिताका वार्षिक दिन इनको जो पूर्वविद्धामें नहीं करता वह नरकको जाता है, दोनों दिन क्षयाहकी तिथि मध्याह्नव्यापिनी न होय तो यदि तीन मुहूर्त भी होय तो पूर्वविद्धामें नहीं करनी चाहिये यह सुमन्तुने लिखाहै । हेमाद्रिका तो यह पाठ है कि, पहली तिथिमें पिंड देना यह आंगिरसने लिखाहै वहांही वृद्धमनुका वाक्य है कि, दोनों दिन भी होय तो पूर्वविद्धा करनी चाहिये, मदनरत्नमें भी ऐसेही लिखा है कि, जो कार्ष्णाजिनी और व्यासने कहा है कि, सूर्य अस्त होनेके समय जो तिथि कलामात्र भी हो वही वार्षिकमें लेनी चाहिये, पुत्रहानिकी दाता प्रथम न लेनी यह तीन मुहूर्तकी स्तुति की है

पहले दिन सायंकालको तीन मुहूर्त न होय तो पहलीही लेनी कारण कि, कालादर्शमें गोभिलने कहा है कि, तीन मुहूर्त न होय तो अगले दिन कुतपमेंही वह तिथि लेनी ॥

कालादर्शेऽपि—"प्रत्याब्दिकेप्येवमेव तिथिर्ग्राह्यापराह्णिकी । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः ॥ समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेपि सा यदि । त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्टोऽयं विनिर्णयः ॥ २ ॥" अन्यत्रापि—"सायंतन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा द्व्यपराह्णयोर्यदि तदा यत्राधिका सा मता । तुल्या चेदुभयापराह्णसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोचिता ॥'

कालादर्शमें भी कहा है कि, वार्षिकमें भी इसीप्रकार अपराह्णकी तिथि लेनी चाहिये, दोनोंदिन अपराह्णमें होय तो अधिकसे निर्णय करना और जगह भी लिखाहै कि, समान होय तो पूर्वविद्धा न करै, और तुल्य न होय तो उसी दिन करै, जिस दिन वह सायंकालको तीन मुहूर्तमें हो. और स्थानमें लिखा है कि, जो परदिनमें सायंकाल मृतककी तिथि होय तो वही वार्षिक और मासिकमें ग्रहण करनी यदि वह दोनोंदिन अपराह्णमें होय तो जिसदिन अधिक होय तो वह ग्रहण करै, यदि अपराह्णके समय दोनों दिन समान होय तो पहली लेनी, दोनोंदिन अपराह्णमें न होय तो वह लेनी जो सूर्यास्तके समय तीन मुहूर्त हो, वह भी न होय तो अगली ही लेनी उचित है ॥

माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु—दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वा वृद्धौ परा । 'खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ' इत्युक्तेः ॥ "अपराह्णद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः । क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कर्या तथोत्तरा" इति बौधायनोक्तेः ॥ "क्षयाहस्य तिथिर्या तु अपराह्णद्वये यदि । पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा" इति बृहन्नारदीयाच्चेत्याहतुः ॥ वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेः । न तु ग्राह्यतिथेः ॥ तस्याः क्षयेऽपराह्णद्वयव्याप्तेरसंभवात् ॥ तदाह माधवः—'न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ" इति ॥

माधव पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखतेहैं कि, दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी होय तो क्षयाहमें पहली और वृद्धिमें पिछली लेनी, बृहन्नारदीयमें लिखा है कि, यदि क्षयाहकी तिथि दोनों अपराह्णमें होय तो क्षयमें पहली और वृद्धिमें अगली लेनी, और यहां तिथिके वृद्धि और क्षय परतिथिके लेने ग्राह्य तिथिके नहीं, कारण कि, उसके क्षयमें दोनोंका अपराह्णमें होना नहीं होसकता है, सोई माधवने लिखा है कि, ग्राह्यतिथिके वृद्धि क्षय नहीं लेने ऊर्ध्वतिथिके ग्रहण करने ॥

यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—'पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनी तिथिरुक्ता तत्रापराह्णव्यापिनी ज्ञेया' । 'सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत्' इति मात्स्यादौ सायाह्ननिषेधात् ॥ यच्च—'त्रिमुहूर्तादिग्रहणं, तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरम्' इत्याह ॥

जो पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखा है कि, पूर्वोक्त वचनोंमें जहां सूर्यास्तके समयकी तिथि लिखीहै, वहां अपराह्णव्यापिनी जाननी चाहिये, कारण कि, सायाह्न तीन मुहूर्तका होताहै, उसमें श्राद्ध न करै, ऐसा मत्स्यादिकोंके वाक्यसे सायाह्नमें श्राद्धका निषेध है, और जो तीन मुहूर्तका निषेध कहाहै वह श्राद्धके योग्य अपराह्णरूप तीन मुहूर्तका कथन करता है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है ॥

तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधाल्लक्षणापत्तेश्च चिन्त्यम् ॥ तस्मात् पूर्वोक्तमेव साधु ॥ यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम् ॥

'मृताहं समतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते' इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः ॥ 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनम्' इत्यापस्तम्बेन गौणकालोक्तेश्चेति माधवः ॥

वह हेमाद्रि मदनरत्न कालादर्श आदि ग्रन्थोंके विरोधसे और लक्षणा माननेसे विचारणीय है, तिससें पूर्वेक्तही श्रेष्ठ है, जब कोई विघ्नसे दिनमें श्राद्ध न किया होय तब तो रात्रिमें भी करलेना कारण कि, मरीचिने उसके अवलंवनमें दोष लिखा है कि, मरणका दिन उल्लंघन करके चाण्डालोंमें उत्पन्न होता है और आपस्तम्बने यह गौणकाल लिखा है कि, रात्रिमें श्राद्ध न करै, और प्रारम्भ करदिया होय तो भोजनकी समाप्तितक करै, यह माधवका मत है ॥

आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्रात्रिभागे पाते भोजनसमाप्त्यन्ते रात्रौ कार्यम् ॥ शेषसमाप्तिः परदिन एवेति हरदत्तः ॥ ग्रहणदिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिन एवान्नेनामेन हेम्ना वा कुर्यात् ॥ नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राक् ग्रहणनिर्णये ॥ तच्च प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यम् ॥ अन्यथा न ॥ "प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः । क्वचित् त्रयोदशेपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्" इति लघुहारीतोक्तेः ॥

यदि प्रारम्भ किये श्राद्धमें विघ्नवश रात्रि आजाय तो भोजनकी समाप्तितक करै शेषकी समाप्ति परदिनमें करनी यह हरदत्तका मत है. ग्रहणके दिन वार्षिक आजाय तो उसदिन आम अन्नसे वा सुवर्णसे श्राद्ध करना, परदिनमें न करै, यह पहले कह आये हैं, वह प्रतिवार्षिक श्राद्ध त्रयोदश मलमासमें करना और प्रकार नहीं कारण कि, लघुहारीतका कथन है कि, प्रतिवर्ष वार्षिक श्राद्धमें पुत्र द्वादश मासमें पिंडदान करै, और प्रथम वर्षको छोडकर कहीं त्रयोदश मासमें भी करै ॥

इदमन्त्याधिकमासपरम् ॥ द्वादशे त्रयोदशे वातीत इत्यर्थः ॥ तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाब्दिकं कार्यम् यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति माधवीये ॥ हेमाद्रौ चैवम् ॥ द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धमासे एव नाधिके, नाप्युभयोः ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम् ॥ दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे क्रम उक्तः ॥

यह भी तब है जब अन्तका अधिक मास हो यह अर्थ है कि, बारहवां वा तेरहवां महीना बीतजाय तिससे जहां बारह महीनेका श्राद्ध शुद्ध मासमें हो वहां अधिक त्रयोदश महीनेमेंही दो आदि वर्षोंका श्राद्ध करै, जहां अधिकके मध्यमें वार्षिक हो वहां उसकी द्विरावृत्ति करके शुद्ध चौदहवें मासमेंही प्रथम वार्षिक करै, यह निष्कर्ष सिद्धान्त है, माधवीय और हेमाद्रिमें भी ऐसेही लिखा है, दूसरे वार्षिक आदि तो शुद्ध महीनेमेंही होतेहैं अधिकमें नहीं, और न दोनोंका. मलमासमें जो मरे हैं उनका जो वही अधिकमास हो तब उसमें करना, अन्यथा शुद्धमें यह पहले कथनकर आये हैं अमावस्यामें वार्षिक होय तो पहले वार्षिक करके फिरसे पिंडपितृयज्ञ और अमावसको श्राद्ध करै, यह निर्णयदीपमें क्रम लिखा है ॥

स्मृतिसारेपि—"दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । आदौ क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते" इति ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ तद्वचने मूलाभावात् 'पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततो

ऽन्वाहार्यकं बुधः ' इति दर्शश्राद्धे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेप्यतिदेशात् प्राप्तेः ॥ पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो दर्शश्राद्धम् ' इति व्यतिषङ्गस्तु न भवत्येव । तस्यार्थिकत्वात् ॥

स्मृतिसारमें भी यही लिखा है कि, अमावस्यामें क्षयाह आन पडे तो याज्ञिक कैसे करते हैं पहिले क्षयाह निवृत्त होकर पीछेसे अमावस्या श्राद्ध करना लिखाहै, युक्त तो ऐसे है कि, उसवाक्यमें मूलके अमावसे फिर पितृयज्ञ करना, फिर बुद्धिमान् मनुष्य अन्वाहार्यक करै, इसवाक्यसे दर्शके श्राद्धमें पिंडपितृयज्ञके अनन्तरसे वार्षिकमें भी अतिदेश प्राप्त होगा, पितृयज्ञके उपरान्त वार्षिक फिर दर्शश्राद्ध यह व्यतिषंग तो नहीं होता कारण कि, वह कर्मसिद्ध है ॥

कालादर्शेपि–' निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ' इति ॥ सर्वान् प्रत्यैकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् ॥ देवजानीयेप्येवम् ॥ एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम् ॥ ' प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ' इति सर्वातिदेशात् ॥ मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–" अयनद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च । उत्सृजेन्नीलवृषभं कौमुद्याः समुपागमे ॥ " कौमुदी कार्तिकी ॥

कालादर्शमें भी लिखाहै कि, इसमें निमित्तका नियम नहीं है पूर्वकर्मका करनाही कारण है, सबके निमित्त एकरूपताके अभावसे क्षयाहनिमित्तक श्राद्ध नियत नहीं देवजानीयमें भी ऐसेही लिखाहै, इसीप्रकार मासिक आदिमें भी जानना, कारण कि, ये सबके निमित्त अतिदेशहै कि, जो मनुष्य प्रतिवर्ष जैसे वार्षिक करै वैसेही महीनोंको भी करनेका कहा, मरणदिनमें हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें वृषोत्सर्ग लिखाहै कि, दोनों अपने और बान्धवका मरणदिन इनमें कार्तिककी पूर्णिमाको नीलवृष त्यागे ॥

अथ शुद्धिश्राद्धम् ।

दिवोदासीये–" सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत् । तावदेव न भोक्तव्यं क्षयेहनि कदाचन ॥ " वर्षांतसपिण्डनेप्येतत्तुल्यम् ॥ " मृताहनि तु सम्प्राप्ते यावदब्दचतुष्टयम् । बहिः श्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥ प्रथमेस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम् । तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थके ॥ २ ॥ " इति श्राद्धकारिकोक्तेः । शुद्धं किंचिदिति ज्ञेयम् ॥

अब शुद्धिश्राद्ध लिखतेहैं । दिवोदासीयमें भी लिखाहै कि, सपिंडीके पीछे जबतक तीन वर्ष पूर्ण न हों, तबतक क्षयाहमें कभी भोजन न करै, वर्षके अन्तमें सपिंडी होय तो भी यह तुल्य है, मरणके दिनमें जबतक चारवर्ष हों तबतक बहिःश्राद्ध (जंगलमें) करै, श्राद्ध भोजन न करै, प्रथमवर्षमें अस्थि और चरबी दूसरेमें मांस, तीसरेमें रुधिरका भोजन लिखाहै, चौथा वार्षिक कुछ शुद्ध होताहै यह श्राद्धकारिकामें लिखाहै ॥

स्मृत्यन्तरे–" सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुंक्ते तमोहतः । स पंक्तिदूषितः पापः प्रेताशी च भवेत्तु सः ॥" तत्र प्रथमेब्दे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेह्नि सपिण्डनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यात् । इति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ हेमाद्रिस्तु मृताहे सपिण्डीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः ॥ " पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः ॥ तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते " इति वचनादित्याह । इदमेव युक्तम् ॥

स्मृत्यन्तरमें कहा है कि, सैंतीस मास पर्यन्त जो अज्ञानी वार्षिक श्राद्धका भोजन करताहै वह पापी पंक्तिदूषक और प्रेतयोनि होताहै, वहां जब पहले वर्षमें वर्षके अन्तमें सपिंडी करै यह पक्ष है तब मरणदिनसे पहिले दिन सपिंडी और वर्षपूर्त्तिका श्राद्ध करके अगले दिन वार्षिक करै, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै, कालकांडमें हेमाद्रिने तो यह लिखाहै कि, मरनेके दिन सपिंडी करनेसे ही वार्षिकको सिद्धिहै; कारण कि, यह वाक्य है कि, पूरे वर्षमें सोलहवां पिण्ड लिखाहै उससे ही सपिण्डी और वार्षिक दोनों इष्ट हैं, और यही उचित है ॥

अथ क्षयाहाज्ञाने निर्णयः ।

मरीचिः–" श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः " इत्युक्तेः । शुक्लैकादश्यामपि बृहस्पतिः–" न ज्ञायते मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति । मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम् ॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रस्थानमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ॥ २ ॥ " मदनरत्ने भविष्ये–"मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं सांवत्सरं सदा ॥ दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥ २ ॥ "

अब क्षयाहके अज्ञानमें निर्णय लिखतेहैं, मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय और मरणदिनका ज्ञान न रहै, तो विशेषकर कृष्णपक्षकी एकादशीको करै, विशेषकर यह कहनेसे शुक्लपक्षमें भी करै, बृहस्पतिका कथन है कि, मरणदिनका ज्ञान न होय परदेशमें मरा होय, और मासका ज्ञान होय तो उस महीनेकी अमावस्याको वार्षिक होताहै, यदि मरनेके दिन दोनों महीनेका ज्ञान न होय तो (गमन) का महीना और दिन ये दोनों पूर्वोक्त दिशासे लेने, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे गरुड ! जो मनुष्य मरणदिनको न जाने वह मार्गशिर भाद्रपद वा माघमें उसी दिन करै ॥

निर्णयामृते तु–" यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु । तदा चाषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भवेत् " इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढोप्युक्तः ॥ कालादर्शेपि–' मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाढमाघयोः ' इत्युक्तम् ॥ हेमाद्रौ प्रभासखण्डे–"मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथंचन । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं माघेऽथ मार्गके ॥ "

निर्णयामृतमें तो जो महीनेको न जाने और दिनको जाने तब आषाढ और माघमें वह दिन होताहै इस बृहस्पतिकी स्मृतिसे आषाढभी लिखाहै. कालादर्शमें भी महीनेके अज्ञानमें और दिनके ज्ञानमें आषाढ और माघमें कहाहै, हेमाद्रिके प्रभासखण्डमें लिखाहै कि, जो मरणदिनको वा महीनेको कथंचिन्न जाने वह माघ वा मार्गशिरकी अमावस्याको करै ॥

भविष्ये–' मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु । ' पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने च तद्दर्शे मासाज्ञाने दिनज्ञाने च मार्गादाविितिवच्छ्रवणदिनेपि ज्ञेयमित्यर्थः ॥ श्रवणदिने मासाज्ञाने माघमार्गदर्शे कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात् ॥ अतोत्र लोप इति शूलपाण्युक्तं हेयम् ॥ तिथितत्त्वे यमः–"गतस्य न भवेद्वार्ता यावद्द्वादशवार्षिकी । प्रेतावधारणं

तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहःक्रिया । दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः ॥ २ ॥"

भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वोक्त क्रमसे दिन और महीनेके मरनेकी बात सुननेसे लेने, पूर्वोक्त कहनेसे यह आशय है कि, प्रस्थान दिनका ज्ञान न होय और मासका ज्ञान होय तो मार्गशिर आदिमें करै, यह सब श्रवण दिनमें भी जानना चाहिये सुननेका दिन और महीनेका ज्ञान न होय तो माघ और मार्गशिरकी अमावस्याको पूर्वोक्त प्रभासखण्डके वाक्यसे करना उचित है, इससे ऐसे विषयमें जो श्राद्धका लोप (न करना) शूलपाणिने लिखा है वह त्यागने योग्य है. तिथितत्त्वमें यमका वाक्य है कि, जब गयेहुएकी बारह वर्षतक बात न सुनी जाय तो पुत्र और बांधव उसके मरनेका निश्चय करलें, जिस महीने और जिस दिनमें वह गया हो उसदिन और उसी महीनेमें उसकी क्रिया करनी दिनका ज्ञान न होय तो अमावस्या वा आषाढकी अमावस्याको करै ॥

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः ।

तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चाशौचाभावः ॥ "निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायादिरतस्य च ॥ देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ कर्तुस्तु विष्णुराह—"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥" श्राद्धे प्रारम्भस्तेनैवोक्तः ॥ "प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥" इति ॥ माधवीये ब्राह्मेपि—'श्राद्धादौ पितृयज्ञे च कन्यादाने च नो भवेत् ॥'

अब श्राद्धके विघ्नमें निर्णय कथन करते हैं, उसमें निमंत्रणके पीछे ब्राह्मणको जन्म वा मरणके अशौचका अभाव कहा है कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, निमंत्रित ब्राह्मणोंके पीछे श्राद्धकर्मका प्रारम्भ होगया हो और ब्राह्मणोंके देहमें पितर स्थित हों तो उस ब्राह्मणको निमंत्रणसे अशौच नहीं होता, जो वेदपाठ और गायत्री आदिमें तत्पर हो, श्राद्ध कर्ताके निमित्त तो विष्णुने यह लिखा है कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप इनका प्रारम्भ होगया होय तो सूतक नहीं लगता और प्रारम्भ न हुआ होय तो सूतक लगता है, प्रारम्भमें विष्णुने भी यही लिखा है कि, यज्ञका प्रारम्भ, ब्राह्मणोंका वरण व्रत और सत्रका संकल्प, विवाहका नान्दीमुख, श्राद्धका प्रारम्भ, पाकका करना है. माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, श्राद्ध आदि पितृयज्ञ और कन्यादानमें सूतक नहीं होता ॥

मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—सद्यःशौचं प्रकृत्य—'यज्ञे सम्भृतसम्भारे विवाहे श्राद्धकर्मणि' इति ॥ तिथितत्त्वादिगौडग्रन्थास्तु निमन्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम् ॥ 'निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः' इति विष्णूक्तेः ॥ यत्तु 'श्राद्धे पाकपरिक्रिया' इति । तद्दर्शश्राद्धविषयमित्याहुः ॥ दातृगृहे मरणादौ ब्राह्मे उक्तम्—'भोजनार्द्धे तु संभुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते ॥' गृहे इति शेषः ॥ "यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहितः । आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥" इति ॥ अस्य श्राद्धविषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् ॥

मिताक्षरामें तत्काल शौचके प्रकरणमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि, सामग्री इकट्ठी होनेपर यज्ञमें, विवाह और श्राद्धकर्ममें उसी समय शुद्धि है, तिथितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि, निमंत्रणके पीछे

कर्त्ता और भोक्ता दोनोंको अशौच नहीं होता कारण कि, विष्णुका वाक्य है कि, निमंत्रणके पीछे श्राद्धका प्रारम्भ होता है यह स्मृति है, जो श्राद्धमें पाकक्रियाका प्रारम्भ किया है, वह अमावस्याके श्राद्धमें है, दाताके घरमें मृत्यु आदि होजाय तो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि ब्राह्मणने आधा भोजन करलिया हो और दाताके घरमें कोई मृत्युको प्राप्त हो तो शेष उच्छिष्टको त्यागकर किसी औरके जलसे आचमन करके पवित्र होते हैं, हेमाद्रिने इस वाक्यको श्राद्धके विषयमें लिखा है ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ मम तु प्रतिभातीदं विवाहादिविषयं न तु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् ॥ 'विवाहोत्सवयज्ञेषु' इत्युपक्रम्भ-"भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः" इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् ॥ "निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि' इति पूर्वोक्तविरोधाच्च ॥

और पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसेही लिखा है, मुझे तो यह विदित होता है कि, यह वाक्य विवाहके विषयमें है, श्राद्धविषयका नहीं है, कारण कि, इसमें श्राद्धपद नहीं है, और इस षटत्रिंशत्के मतके साथ इसकी एकवाक्यता (संगति) भी है कि, विवाह उत्सव यज्ञ इनमें ब्राह्मण भोजन करते हों, और मध्यमें मृत्यु वा सूतक होजाय तो और घरके जलसे आचमन करके वे सब ब्राह्मण पवित्र होते हैं, और इस पूर्वोक्त वाक्यके संग विरोधभी है कि, जब निमंत्रण हुएके पीछे श्राद्धकर्ममें अशौच होजाय तो दोष नहीं है ॥

श्राद्धे तु यद्यपि विष्णुना पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तः, तथापि कर्तुरेव सः, भोक्तुर्दोषोऽस्त्येव "अपि दातृग्रहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा । अविज्ञाने न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन ॥ विज्ञाने भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात्" इति माधवीयब्राह्मोक्तेः ॥ आदिशब्देनाशौचमुच्यते ॥ तच्चाह विष्णुः-'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् ॥ यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्' ॥ इति ॥ यत्तु-'देहेपितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्' इति ब्राह्मं, तत् श्राद्धाकालीनस्य निषेधकम् ॥ न तदुत्तरकालीनस्य ॥ शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम्, भोजनार्थेष्वित्यादि त्वन्नश्राद्धपरमित्याह ॥

श्राद्धमें तो विष्णु पाकके अनन्तर यद्यपि अशौचका अभाव लिखते हैं तथापि वह कर्ताके निमित्त है भोक्ताको तो दोषही है, कारण कि, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दाता और ग्रहीताके सूतक और मरण होजायँ तो उनके अज्ञानमें श्राद्धमें किसी प्रकार दोष नहीं, और ज्ञान होय तो भोजन करनेवालोंकोही आदिशब्दसे अशौच लेना ये विष्णुने लिखा है कि, ब्राह्मण आदिके अशौचमें जो एकबार भी भोजन करता है, उसको उन ब्राह्मणोंका अशौचके बीतनेपर प्रायश्चित्त है, जो यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, देहमें पितरोंके रहते अशौच नहीं वह श्राद्ध (समयका) निषेधक है, उत्तर समयका नहीं. शुद्धिदीपने तो यह लिखा है कि, "निमंत्रितेषु०" यह वाक्य आमश्राद्धके विषयमें है, और "भोजनार्थे०" यह वाक्य अन्नश्राद्धके विषयमें नहीं ॥

तत्र प्रायश्चित्तनिर्णयः ।

प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः-'भुक्त्वा तु ब्राह्मण शौचं चरेत्सांतपनं द्विजः ॥' एतत्कामतः ॥ अभ्यासे शंखः-'ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत्' इति ॥ अज्ञानात्तु

छागलेयः-"एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् । ततः शुचिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः" इति वर्णक्रमेणेदम् ॥ अभ्यासे तु द्वैगुण्यमित्यादि मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम् ॥ मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे कर्तुर्भोक्तुश्च सर्वथा दोषाभाव उक्तः ॥ आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये कालादर्शे च ऋष्यशृङ्गः-"देये पितॄणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा । आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ॥"

प्रायश्चित्त तो मार्कण्डेयने लिखाहै कि, ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके एक महीनेतक व्रत करै यह जानकर करनेमें है. अभ्यासमें शंख कहतेहैं ब्राह्मणके भोजनकर एकमहीने व्रती रहै. अज्ञानसे करनेमें तो छागलेयका कथन है कि, एक तीन पांच सात रात्रतक भोजन न करै, फिर शुद्ध ब्राह्मण पंचगव्य पान करै, यह वर्णके क्रमसे है, और अभ्यासमें दूना आदि मिताक्षरा माधवीय आदिमें लिखा है, मिताक्षरा और माधवीयने तो श्राद्धमें कर्त्ता और भोक्ताको सर्वप्रकार दोषका अभाव लिखा है, अशौचके मध्यमें श्राद्धका दिन आन पड़ै, तो माधवीय और कालादर्शमें ऋष्यशृंगका यह वाक्य है कि, पितरोंको श्राद्ध देना हो और अशौच आन पड़ै तो अशौचके बीतनेपर श्राद्ध करै ॥

श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे-"प्रतिसांवत्सरं श्राद्धमाशौचात्पतितं च यत् । मलमासेपि तत्कार्यमिति भागुरिभाषितम् ॥" आशौचान्त्यदिनत्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः । एतन्मासिकादिपरं, न दार्शिकादौ ॥ अत एव सुदर्शनभाष्ये अपरपक्षे पित्र्याणीति नियमात् कृष्णपक्षश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव । न तु गौणकाले करणम् । तच्चोपवासः-"वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्" इति मनूक्तेरित्युक्तम् ॥ आशौचे तु प्रायश्चित्तमपि न ॥ मुख्यकाले अनधिकारात् ॥ आशौचान्ते सम्भवे तु व्यासः-"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरामृतसूतके । अमावास्यां प्रकुर्यात्द्वै शुद्धावेके मनीषिणः ॥"

श्राद्धचिन्तामणिमें ज्योतिषका कथन है कि, यदि वार्षिक श्राद्ध अशौचसे न किया होय तो, भागुरिने यह लिखा है कि, वह मलमासमें करना चाहिये, अशौचान्त दिनको निमित्त होनेसे उसमें करै, यह मासिक और वार्षिक श्राद्धके विषयमें लिखाहै दर्श आदिके विषयमें नहीं, इसीसे सुदर्शन भाष्यमें कहा है कि, पितृकर्म कृष्णपक्षमें होतेहैं, इस नियमसे श्राद्धकर्मका लोप होजाय तो प्रायश्चित्तहीहै, गौणकालमें उसको न करना, यह प्रायश्चित्त भी व्रतहै कारण कि, मनुका कथन है कि, वेदमें कहे नित्यकर्मोंका उल्लंघन और ब्रह्मचारीके व्रतका लोप होजाय तो भोजनका अभावही उसका प्रायश्चित्त है, अशौचमें तो प्रायश्चित्त नहीं लगता कारण कि, मुख्य समयमें अधिकार नहीं, अशौचके अन्तमें न हुआ होय तो व्यासने लिखाहै कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय वा मरण और सूतक बीचमें हो जाय तो अमावस्याको करना. कोई पंडित कहते हैं कि शुद्धि होनेपर करना ॥

हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतेपि-"मासिके चाब्दिके त्वह्नि संप्राप्ते मृतसूतके । वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे चापि विचक्षणाः ॥" गोभिलः-"देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके । आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेंदुक्षये तथा ॥" मरीचिः-"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" विशेषतः इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि ॥ आशौचेतरविघ्ने एतदिति माधवपृथ्वीचन्द्रौ ॥

हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतमें लिखाहै कि, मासिक और वार्षिक श्राद्धके दिन मरण और सूतक होजाय तो विद्वान् यह कहतेहैं कि, शुद्धिमें वा अमावस्याको श्राद्ध करना, गोभिलका कथनहै कि, वार्षिक श्राद्ध देनेके बीचमें यदि मरण और सूतक होजाय तो अशौचके अन्तमें वा उस महीनेकी अमावस्याको करै, मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न हो वा मरणतिथिका ज्ञान न होय तो विशेषकर कृष्णपक्षकी एकादशीको करना चाहिये, विशेषकर यह कहनेसे शुक्लपक्ष एकादशीमें भी करना, माधव पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखते हैं कि, अशौचसे इतरमें यदि विघ्न हो तो यह कथन है ॥

यत्त्वत्रिः–"तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतकानन्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव च" इति ॥ तत् पूर्वकालाभावे ज्ञेयम् ॥ एतदाब्दिकेतरश्राद्धपरम् ॥ यच्च देवलः– "एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिञ्च्छ्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः" इति ॥ तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च ॥ इदमपि पूर्वकाला-संभवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम् ॥

जो अत्रिने यह लिखाहै कि, सूतक आदिसे जो श्राद्धका दिन दूषित होजाय तो सूतकके अनन्तर उसीही तिथिमें श्राद्धको करै, यह पूर्वकाल न प्राप्त हो तब जानना, यह वार्षिक श्राद्ध विषय अन्यके लेखहै, जो देवलने कहाहै कि, एकोद्दिष्टके समय यदि विघ्न हो जाय तो और मासको उसीतिथिमें जिसमें एको-द्दिष्ट हो प्रयत्नसे करै वहभी मासिक श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्न और हेमाद्रिने कहाहै यहभी पूर्व-कालके न मिलनेपर रोग आदि और विस्मृतिमें जानना ॥

अथ भार्यारजोदर्शने ।

तत्र दार्शिकमामेन कार्यम् ॥ "श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्या-दिनियतं माससंवत्सराहृते" इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ व्याघ्रपादोपि–"आर्तवे देश-कालानां विप्लवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि" इति ॥ दीपिकापि–'दर्शे तु भार्यार्तवेप्यामश्राद्धविधिं प्रवासिविधुराद्याश्चाचरेयुर्द्विजाः' वस्तु-तस्तु–'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः पाककर्त्रन्तरसत्त्वे-ऽन्नेनान्यथामेनेत्युक्तम् ॥ "मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला" इति कलिकायां वचनाच्च ॥

अब स्त्रीके रजोदर्शन होय तो उसमें श्राद्धका निर्णय कहतेहैं, इसमें दर्शका श्राद्ध आमान्नसे करना कारण कि, हेमाद्रिमें हारीतका कथन है कि, श्राद्धके विघ्नमें द्विजातियोंको आमश्राद्ध, मासिक और वार्षिकके विना अमावस्यामें करना लिखाहै व्याघ्रपादकाभी कथन है कि, रजोदर्शन देश और कालका उपद्रव ये उपस्थित होंय तो द्विजोंको आमश्राद्ध करना, और शूद्र तो निरन्तर आमश्राद्ध करै, दीपिकामें भी कहाहै कि, अमावस्या होय तो स्त्रीके रजोदर्शनमें भी प्रवासी (परदेशी) विधुर (स्त्रीहीन) आदि द्विज आमश्राद्धकी विधिको करै, सिद्धान्त तो यह है यदि पाक न होय तो द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखाहै, इस सुमंतुके लेखसे पाक कर्ता और कोई होय तो अन्नके सिवाय आमान्नसे करै यह युक्त है, कारण कि कलिकामें भी लिखा है कि, मासिक, सापिंडी अमावस्याका श्राद्ध और वार्षिक ये जिसकी स्त्री रजस्वला हो उसे आम अन्नसेही करने ॥

कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेहनीति पक्षान्तरमुक्तम् ॥ पारिजातेप्येवम् ॥ एवं महालययुगादावपि ॥ आब्दिकं तु रजोदर्शनेपि तद्दिने एव कार्यम् ॥ " पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोप्यनग्निकः। अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित्" इति माधवीये लौगाक्षिस्मृतेः ॥

कालादर्शमें तो यह और पक्ष कहाहै कि, स्त्रीके रजोदर्शनमें अमावस्याका श्राद्ध पांचवें दिन करना चाहिये. पारिजातमेंभी इसी प्रकार लिखाहै, इसीप्रकार महालय और युगादि श्राद्धमें भी जानना चाहिये, वार्षिक श्राद्ध तो रजोदर्शनमें भी उसीदिन करना चाहिये कारण कि, माधवीयमें लौगाक्षिस्मृतिका कथनहै कि, यदि स्त्री रजस्वला होय तो परदेशमें स्थितभी अनग्नि ब्राह्मण अन्नसेही वार्षिक श्राद्ध करै कभी सुवर्ण वा आमान्नसे न करै ॥

मरीचिरपि–" अनग्निकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत् कुर्यान्मृतेहनि ॥ " कार्ष्णाजिनिः–" आपन्नोप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित् । अन्नेन तदमायां वा कृष्णे वा हरिवासरे ॥ " प्रयोगपारिजाते–" रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ मासिकानि सपिण्डं च अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥ २ ॥'

मरीचिकाभी कथन है कि, जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह अनग्नि और परदेशमें स्थित ब्राह्मण क्षयाहको त्यागकर आमश्राद्ध करै, कार्ष्णाजिनिका कथन है कि, आपत्तिमें प्राप्त हुआ भी मनुष्य वार्षिक श्राद्धको कभी भी आमान्नसे न करै, अमावस्या कृष्णपक्षकी एकादशी इनमें वह करना, प्रयोगपारिजातमें कहाहै कि, भार्याके रजस्वला होनेपर जो क्षयाहको छोडताहै वह प्रलयपर्यंत नरकमें निवास करताहै, जिसकी स्त्री रजस्वला हो उसे मासिक सपिंडी आमश्राद्ध और वार्षिक ये अन्नसेही करने ॥

देवयाज्ञिकनिबन्धेपि–" भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेह्नि कुर्याद्भार्या रजस्वला । पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीत मृताहनि शुचिर्यतः ॥ " कालादर्शेपि–" रजस्वलाङ्गनोऽनग्निर्विदेशस्थोथ वाब्दिके । दर्शादाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ॥ " अन्यत्रापि–" विदेशको वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम् । श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हेम्ना न तु पञ्चमेह्नि ॥ " एवं मासिकेपि ॥ यत्तु मरीचिः–" आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत् कुर्यान्मृतेहनि ॥ "

देवयाज्ञिकनिबंधमें भी कहा है कि, रजस्वला स्त्री पांचवें दिन पतिका श्राद्ध करै, कारण कि, पुत्रभी मातापिताका श्राद्ध क्षयाहदिनमें करताहै, कालादर्शमेंभी कहाहै कि, जिसकी स्त्री रजस्वला हो वा जो अग्निहोत्री न हो वा जो विदेशमें हो वह वार्षिक श्राद्ध अमावस्याके तुल्य आम अन्नसे न करै, किन्तु पकान्नसेही करै, और स्थानमेंभी लिखाहै कि, परदेशमें हो वा अनग्नि हो वा जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह क्षयाह श्राद्ध पाकसे करै आमान्नसे न करै और न पांचवें दिन करै, ऐसेही मासिक श्राद्धमें जानना, जो तो मरीचिने यह लिखाहै कि, वार्षिक श्राद्धके आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला होय वह पांचवेंदिन श्राद्ध करै, मरणदिनमें न करै ॥

माधवीये–" श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेहनि' इत्युत्तरार्द्धं तदपुत्रकर्तृकश्राद्धविषयम् ॥ अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्च-

मेहनि " इति श्लोकगौतमोक्तेः ॥ 'दैवे कर्मणि पित्र्ये वा पञ्चमेहनि शुद्ध्यति' इति प्रभासखण्डाच्च ॥ नन्वशुचित्वादेव तत्र पञ्चमेहन्यर्थात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम् ॥ मैवम् ॥ " गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी वाप्यरोगिणी । यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् " इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः ॥

माधवीयमें कहाहै कि, पिछला आधा श्लोक यह है कि, तब श्राद्ध न करै पांचवें दिन करै वह पुत्र-हीन स्त्री जिसे करै उस श्राद्धके विषयमें है कारण कि, श्लोकगौतमने यह लिखाहै कि, जब पुत्रहीन स्त्रीके स्वामीका वार्षिक आन पडै और रजस्वला होय तो पांचवें दिन करै और प्रभासखण्डमेंभी यही लिखाहै कि, दैव और पितृकर्ममें पांचवें दिन श्राद्ध होना प्राप्त है इससे वाक्य व्यर्थहै, ऐसे मत कहो कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, गर्भवती सूतिका आदि और कुमारी रोगिणी ये जब अपवित्र हों तब औरसे प्रयत्नपूर्वक श्राद्धको करादें ॥

अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च श्राद्धमृत्विजा वा कारयेयुः ॥ 'स्वयं वाऽमन्त्रकं कुर्युः' इति स्मृत्यर्थसाराच्चान्यद्वारा करणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तादिशा आशौचानन्तरं श्राद्धकर्तव्यताऽऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च ॥ अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेहनीति युक्तम् ॥ यत्तु—'सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने' इति, तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबन्धसिद्धान्तः ॥ हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारात्तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृत्तेरेकभार्येण पञ्चमेहनि कार्यं प्रागुक्तमरीच्युक्तेः, भार्यान्तरसत्त्वे तु पुष्पवत्स्वपीतिवचनात्तद्दिने एवेत्याह ॥

जिनका यज्ञोपवीत न हुआ हो स्त्री वा शूद्र जो हों वे ऋत्विजसे श्राद्ध करावें, वा मंत्रोंको त्यागकर स्वयं करैं, यह स्मृत्यर्थसारमें कहाहै, वह औरसे करवानेकी निवृत्तिके निमित्त है वह उक्त प्रकारसे अशौचके उपरान्त श्राद्ध करनेके समान वाक्य व्यर्थ हो जायगा इससे पत्नी पांचवें दिन करै यह युक्त है। जो यह कहाहै कि, सातदिनमें पितर देवता इनके व्रत और पूजाके योग्य होतीहै वह रजकी निवृत्तिके विषयमें है, यह हेमाद्रिसे भिन्न सबहीका सिद्धान्त है, हेमाद्रिने तो यह लिखाहै कि, श्राद्ध आदिमें स्त्रीके संगही अधिकारहै, और वह जब रजसे दुष्ट है उसकी निवृत्ति होनेपर एक स्त्रीवाला मनुष्य पांचवेंदिन श्राद्ध करै कारण कि, पूर्वोक्त मरीचिका कथन है, यदि और भार्या होय तो स्त्री पुष्पवाली होनेपर भी इस वाक्यसे उसदिनही करै ॥

दीपिकापि—'भार्यर्तौ सति पञ्चमे च दिवसे स्याद्वार्षिकं मासिकं पक्वान्नैर्बहुभार्यकस्त्वधिकृते पत्न्यन्तरे तिष्ठति । कुर्यात्तद्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति तच्चिन्त्यम् ॥ सहाधिकारः—सहत्वश्रुत्या वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा ॥ नाद्यः । तदभावात् । 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात् ॥ आब्दिकस्य च निरग्नेरपि पाकेनैवोक्तेः ॥ स्मार्ताग्निसाध्यत्वानियमात् 'तामपरुध्य' इति पूर्वोक्तवचनासत्त्वाच्च ॥

दीपिकाकाभी कथन है कि, भार्याको ऋतु होय तो पांचवे दिन पकान्नसे वार्षिक वा मासिक होतेहैं, जिसके बहुत स्त्री हों वह तो और स्त्रीको वैठाकर उन दोनोंको मुख्य दिनमेंही करले, सो उचित नहीं

कारण कि, संग अधिकार, संग सुननेसे है वा एकफलभागिनी होनेसे, वा पाक बनानेसे है, प्रथम पक्ष तो नहीं कारण कि, उस सहका अभाव कहा है विवाहसे सहत्व कर्मोंमें कहोगे वह वाक्य उन कर्मोंमें लिखा है जो अग्निसे सिद्ध हों, और वार्षिक क्षयी निरग्निसे भी पाकसेही लिखा है यह नियम नहीं कि, वह स्मार्त अग्निसे साध्य है, उसको रोककर इसके समान पुष्पवती यह पूर्वोक्त कथन है ॥

कथं च भार्यान्तरसत्त्वेधिकारः । ज्येष्ठया न विनेतरा, इति नियमात् ॥ ज्येष्ठापरत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात् ॥ न द्वितीयः ॥ अविभक्तभ्रातृष्वेकस्याऽशुचित्वेन्यस्याविकारापत्तेः ॥ न तृतीयः ॥ प्रवासनिर्देशसूतिकारोगिण्यादिष्वप्यकरणापत्तेः ॥ 'आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः' इति देवलोक्तावात्मनेपदात्स्वस्य बान्धवानां च पाककर्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च ॥ 'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी' इति पाद्मादिलिङ्गात् प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते ॥ न तत् कस्याप्यनिष्टम् ॥

और दूसरी भार्याके होनेपर कैसे अधिकार है कारण कि, ज्येष्ठापत्नीके विना अन्य स्त्री अधिकारिणी नहीं है, इस नियमसे ज्येष्ठाके विषयमें मानोगे तो उससेही सिद्ध था यह कथन व्यर्थ हो जायगा. दूसरा पक्ष भी नहीं है कारण कि, इकट्ठे भाइयोंमें एकके अशुद्ध होनेपर औरका अधिकार न होगा, तीसरा पक्ष भी उचित नहीं कारण कि, प्रवास विदेश सूतिका रोगिणी आदि होनेपर भी न करना होगा, और अपने बान्धवोंद्वारा नहीं ये पात्रोंसे अन्नका प्रारम्भ करै, इस देवलके कथनमें 'आरभेत' यह आत्मनेपदका प्रयोग है, इससे अपनेको और अपने बान्धवोंको पाक करना लिखा है, उसका विरोध आवैगा, यदि कोई फिर उन्हें जनकनन्दिनी सीताने शीघ्र पकाया इस पद्मपुराणके वाक्यसे स्त्रीका किया पाकही श्रेष्ठ है, सो कुछ नहीं कारण कि, वह किसीको भी अनिष्ट नहीं ॥

तेनैतद्वचनं युक्त्याद्यभावात् पूर्वोक्तवचोविरोधाच्च यत्किंचिदेव ॥ यदपि-"श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेहनि" इति श्लोकगौतमपाठोन्यथा दर्शितः ॥ माधवीये च तद्बशात् पक्षान्तरमुक्तम् ॥ तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः ॥ यस्य प्रेतस्येत्यर्थात् ॥ तेनात्र हेमाद्रिर्बभ्रामेति बहु वक्तव्येपि नोच्यते ॥

और इस वाक्यसे उक्तिआदिके अभावसे और पूर्वोक्त कथनके विरोधसे यह यथार्थ नहीं और जो श्राद्धका दिन आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला हो वहां श्राद्ध न करना, किंतु पांचवें दिन करना, इस श्लोकगौतमका पाठ अन्यथा कर दिखलाया है, और माधवीयमें उसके बलसे दूसरा पक्ष लिखा है, उसमें भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, कारण कि, यह उसका अर्थ है कि, जिस मृतकका तिससे, यहां हेमाद्रिको भ्रम हो गया, यहां बहुत भी कहना था पर नहीं कथन करते ॥

अथान्वारोहणे निर्णयः ।

लौगाक्षिः-"मृताहानि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक् ॥ नवश्राद्धं च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु ॥" समासेन तु तन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवद्द्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च ॥ पिण्डशब्दः श्राद्धपरः ॥ नवश्राद्धं पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ ॥ अत्र मृताहनीत्येकत्वात् ॥ दिनभेदे दिनैक्ये वा मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं च ॥

"एकचित्यधिरोहे तु तिथिरेकैव जायते। एकपाकेन पिण्डैक्ये: द्वयोर्गृह्णीत नामनी" इति स्मृत्यन्तराच्च ॥

अब अन्वारोहणका निर्णय कथन करते हैं। लौगाक्षिका कथन है कि, क्षयाहके दिन एक तन्त्रसे स्त्री और पुरुषके निमित्त पृथक् २ पिण्डदान नवश्राद्ध करै, इसको अन्वारोहण कहते हैं, दो पितरोंके श्राद्धकी तुल्य दोनोंका एकपिंड और एकही ब्राह्मण हो. यहां ब्राह्मणपदसे श्राद्धका ग्रहण करना, नवश्राद्ध पृथक् करना, यह हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्र कहते हैं, यहां मृताहनि इस एक वाक्यसे दिनभेद और दिनके एक होनेपर मरणकी तिथि एक हो, समय एक हो, कर्ता एक हो पाक भी एक होता है, जब स्त्री पुरुष एकही चितामें चढैं तब एकही तिथि होती है, एक पाक और एक पिंडमें दोनोंके नाम लेले यह किसी और स्मृतिका भी कथन है॥

अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम्-"अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया। पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ॥ नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक्। एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥ २ ॥" इति ॥ तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव ॥ तथा वार्षिके समासविधानादन्यत्र सर्वत्र पृथक्त्वे प्राप्ते नवश्राद्धमेव पृथगिति परिसंख्ययान्यत्र पृथगुक्तेष्वपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसपिण्डान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मदनपारिजातनिर्णयामृतादयः ॥ अतः समासविधिबलात् ज्येष्ठपुत्रस्य कर्तृत्वे सपत्नमातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्वार्षिकादिकमविभक्तः सापत्नपुत्र एव ज्येष्ठः कुर्यात्, न औरसः ॥ वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव मातुः पृथक्कुर्यात् ॥ एवं बह्वीष्वपि मातृषु ज्ञेयम् ॥

अन्त्येष्टिपद्धतिमें भट्टोंने भी लिखा है कि, स्त्रियोंके अन्वारोहमें पतिको जलदान पिंडदान एकतंत्रसे और वार्षिक श्राद्ध नवश्राद्ध आदि सब और सपिंडी भिन्न २ होती हैं, और एकही वृषोत्सर्ग और एकही गोदान होता है, इस वाक्यसे तिथिभेदमें भी वार्षिक पृथक्ही होता है, तैसेही वार्षिकमें समास (तन्त्र)के विधानसे और सब स्थानमें पृथक् पाया, नवश्राद्धही पृथक् करै, इस (गिनती) से और श्राद्धोंमें पृथक् होनेपर भी वार्षिक षोडश श्राद्ध तीर्थ सपिंडी अन्वष्टकाआदिमें इकट्ठा यह मदनपारिजात निर्णयामृत आदिका मत है, इससे तन्त्रविधिके बलसे जहां ज्येठा पुत्र कर्ता है वहां सपत्नी माताके अन्वारोहणमें उसका पुत्र होय तो भी उस सपत्नी माताके वार्षिक आदिको वह सपत्नीका पुत्रही करै, जो पृथक् न हो औरस न करै, आगे कहने योग्य पृथ्वीचन्द्र आदिके मतमें तो औरसही माताका वार्षिक पृथक् करै, इसी प्रकार बहुत माताओंमें भी जानना उचित है॥

त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणैरप्येवमुक्तम् ॥ यत्तु गार्ग्यः-"एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ। पृथक्श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक्पृथक् ॥" ओदनं पिण्डः ॥ तन्नवश्राद्धविषयम् ॥ यत्तु भृगुः-"या समारोहणं कुर्याद्भर्तुश्चित्यां पतिव्रता। तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिंडे नियोजयेत् ॥ प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत्तु समाचरेत् ॥" तद्येषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम् ॥ 'प्रत्यब्दं च मृताहनि' इत्यन्वयः ॥ नवश्राद्धं युगपदिति दर्शे वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगित्यर्थमाह हेमाद्रिः ॥ 'एतन्मृततिथेर्भेदविषयम्' इति पृथ्वीचन्द्रनिर्णयामृताद्याः ॥ देवयाज्ञिकोप्येवम् ॥

त्रिस्थलीसेतुमें हमारे पितामहजीने भी ऐसेही लिखा है, जो गार्ग्यने यह लिखाहै कि, मरेहुए स्त्री पुरुष एक चितामें दग्ध हुए होंय तो उनका श्राद्ध और ओदन (पिंड) पृथक् करै, वह नव श्राद्धके विषयमें कहा है, जो भृगुका कथन है कि, जो पतिव्रता स्त्री पतिकी चितामें आरोहण करै, उसको मरनेके दिन आनेपर पृथक् पिंड दे, और वार्षिक वा नवश्राद्धको एकवारही पूर्ण करै, वह उनके विषयमें है जिनका वार्षिक एकोद्दिष्ट कहा है, यहां प्रतिवर्ष क्षयदिनमें नवश्राद्ध ऐसा अर्थ है अमावस्याको स्थानके समान पृथक् श्राद्ध और नवश्राद्ध भी ऐसे होतहैं, यह अर्थ हेमाद्रिने लिखा है, यह मरनेकी तिथिके भेदमें है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय निर्णयामृत आदिका कथन है, देवयाज्ञिकभी ऐसेही कहते हैं ॥

पराशरमाधवस्तु–'गार्ग्यभृग्वादिवचनाल्लौगाक्षिवाक्ये समासेन पाकादि तंत्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत् पृथक्श्राद्धं कुर्यात् नवश्राद्धं च तथा' इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु–'द्वयोरेकपिण्डदानं लौगाक्षिवचनं चापद्विषयम् ॥ पृथक्पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः ॥'

पराशरमाधव तो यह लिखतेहैं कि, गार्ग्य भृगु आदिके वाक्यसे लौगाक्षिके वाक्यमें संक्षेपसे पाक आदि तन्त्रकी एकतासे अमावस्यामें दो वर्गके समान पृथक्ही श्राद्ध, नवश्राद्ध होते हैं, पृथ्वीचन्द्र चन्द्रिक आदि तो यह कहते हैं कि, दोनोंको एक पिण्डदान होता है लौगाक्षिका वाक्य आपत्तिके विषयमें है, पृथक् पिण्ड देना तो मुख्य पक्ष है ॥

तदाह वृद्धपराशरः–"आरुह्य भर्तुश्चितिमङ्गना या प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्त्वयुक्ता। एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक् स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥ एकत्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्योः। ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्त्वघातान्नरकाधिवासम् ॥ भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती। सोहंच्छ्राद्धं पृथक् पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः ॥ पृथगेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् ॥ यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥

सोई बृहत्पराशरने लिखा है कि, जो सत्ययुक्त स्त्री पतिकी चितामें आरूढ होकर मृत्युको प्राप्त होती है एकादशाहके दिन उसके श्राद्ध पृथक् करै, जो मतिसेहीन पुरुष एकादशाहके दिन एकता चाहतेहैं वे स्वर्गमार्गको नष्ट करके स्त्रीके सत्वका नाश, और नरकमें वास करतेहैं, जो स्वर्गकी इच्छा करतीहुई पतिके संग मरी हो वह श्राद्ध और पिंड पृथक् चाहती हैं, उनकी एकता नहीं कही है, एकादशाह आदि श्राद्ध पृथक्ही करने जो सब श्राद्ध हैं वे पृथक् २ ही वर्णन कियेहैं ॥

विश्वादर्शेपि–"मातुर्गयाष्टकावृद्धिर्मृताहेषु महालये। श्राद्धं कुर्यात् पृथग्दैवं तन्त्रं वानुगतावपि ॥ एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकबर्हिषि। पित्रोः पिण्डान् पथग्दद्यात् पिण्डं त्वापत्सु तत्सुतः ॥ २ ॥" इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः ॥ यत्तु षट्त्रिंशन्मते–"एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके। न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात्पत्नीषु विद्यते" इति, तद्दर्शादिपरम् ॥

विश्वादर्शमें भी कहा है कि, माताके अन्वारोहणमें भी गया अष्टका वृद्धि क्षयाह महालय यह श्राद्ध भिन्न भिन्न करै, और देवश्राद्ध तन्त्रसे करै, एकचितामें आरूढ होकर जो मृत्युको प्राप्त हुएके पिण्ड पृथक्२ पिण्ड तो आपत्तिमें पुत्रदे यह अग्निकी स्मृतिमें लिखा है, और जो षट्त्रिंशन्मतमें लिखा है कि, सती स्त्री पतिके संग पिण्डगोत्र सूतकमें एक होगई उससे पत्नियोंको पृथक् पिण्डदान नहीं है, वह अमावस्याके श्राद्धमें जानना ॥

चन्द्रप्रकाशेपि-"एकचित्यां समारूढौ दंपती प्रमितौ यदि । पृथक्श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेहनि ॥ मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना सह । पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षयेहनि । तृतीयस्य ततः कुर्यात्संनिपातेष्वयं क्रमः ॥ ३ ॥" इति ॥ सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थमेकपाक इत्याह मदनरत्ने प्रचेताः-"एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समावपेत् ॥"

चन्द्रप्रकाशमेंभी लिखाहै, यदि मरेहुये स्त्रीपुरुष एकचितामें आरूढ हुए होंय तो पतिकी मृत्युदिनमें पृथक् श्राद्ध करै मरेहुए भृत्योंका भार्याओंका भी श्राद्ध पतिके साथ स्वामीकी मरणतिथिमें एकस्थानमें पाक बनाकर करै, पहिले प्रथम मरेको फिर द्वितीयको फिर तृतीयको पिंडदे, यही इकट्ठोंमें क्रम कहाहै संग मरणमें सर्वत्र श्राद्धके निमित्त एक पाक होताहै. मदनरत्नमें प्रचेताका कथन है कि, यदि स्त्रीपुरुष एक चितामें स्थित होकर मरजाँय तो एकस्थानमें पाक करै और पिंड पृथक् २ दे ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ अत्र भर्तुराशौचमध्येऽन्यदिने स्त्रीमरणे पतिमरणदिनगणनयाशौचपिण्डदानैकादशाहादि कार्यम्, नात्र पक्षिणीवृद्धिः-"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥ २ ॥" इति षडशीतिमतात् ॥ "यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि" इति लघुहारीतोक्तेश्च॥ भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्यहमाशौचम्॥ "ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शाश्वतः" इति ब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रापरार्कौ एतदन्वारोहणे एव, न त्वेकचितौ ॥ ऋग्वेदवादः-'इमा नारीरविधवा' इत्यादि ॥ एतत्सवर्णापरमित्यन्ये ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसेही लिखाहै, यहां पतिके अशौच दिनोंके मध्यमें और दिनमें अनुगमनसे स्त्री मरे तो पतिके मरणदिनको गिनतीसे आशौच पिंडदान एकादशाह आदिको करना, यहां पक्षिणी (दो दिन एकरात) की वृद्धि नहीं होती, कारण कि, षडशीतिका यह कथन है कि, मरेहुये पतिके अनुगमनसे जो पत्नी अग्निमें सती हुई हो वहां पक्षिणी न करै पिताके अशौच बीतनेपरही शुद्ध होतीहै, पुत्र वा और जो उसको अग्निका देनेवालाहै वहभी तबतकही पवित्र है, उनके नव श्राद्ध सपिंडी संग करै, और लघुहारीतनेभी लिखाहै कि, अपने पतिके प्यारकी इच्छासे यदि नारी अग्निमें प्रवेश करै, तो पतिके अशौच क्रमसेही अशौच करै, यदि पतिके अशौचके अनन्तर अन्वारोहण करै तो तीन दिन अशौच लगताहै, यह ब्रह्मपुराणमें लिखाहै, ऋग्वेदके विवादसे साध्वी स्त्री आत्मघात न करै, तीनदिनके अशौचकी निवृत्ति होनेपर शास्त्रोक्त श्राद्धको प्राप्त होतीहै, यह पृथ्वीचन्द्रोदय और अपरार्क कहतेहैं यह भी अन्वारोहणमें ही जानना. एकचितामें ऋग्वेद वाद नहीं कि, यह नारी अविधवा है इत्यादि, कोई यह कहतेहैं कि, यह असवर्ण स्त्रीके विषय है ॥

स्मार्तगौडास्तु-'देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्' इत्युपक्रम्य, ब्राह्मे-'त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते इत्युक्ते भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्र्यहः, सहगमने तु पूर्णं दशाहादि । पिण्डास्तु दशापि सहैव ।' तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः-"संस्थितं पति-

मालिंग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं ज्ञेयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥ अन्विता पिंडदानं तु यथा भर्तुर्दिनेदिने। तदर्थारोहिणी यस्मात्तस्मात्सा नात्मघातिनी॥" इति विष्णूक्तेश्च ॥ पृथक्चितौ तु भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा सत्यां त्र्यहेण दशपिण्डाः— "अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डास्त्र्यहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते ॥" इति तत्रैव पैठीनसिस्मृतेः ॥ भर्त्राशौचोत्तरं मृतौ तु चतुर्थेऽह्नि श्राद्धम् ॥

स्मार्त गौड तो यह लिखते हैं कि, देशान्तरमें पति मरजाय तो साध्वी स्त्री उसकी दोनों खडाऊं लेकर भस्म होजाय, इस प्रकरणमें अशौचके तीनदिन वीतनेपर इस ब्रह्मपुराणके वाक्यसे पतिके अशौचके पीछे अन्वारोहण होय तो तीनदिन और साथ गमनमें परे दशदिनका अशौच होताहै, पिण्ड तो दश संगही होते हैं, यही जनक शूलपाणि शुद्धितत्त्वमें व्यासका कथन है कि, मरेहुये पतिका स्पर्श करके जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करतीहै, उसके सब पिंड आदि पतिके पिंडकी समान देने, विष्णुकाभी वाक्य है कि, अनुगमन करनेवाली स्त्री दिन २ पतिके समान पिंडदानको प्राप्त होतीहै उसीके निमित्तही वह अन्वारोहिणी है, आत्महत्यारी नहीं. यदि एक चिता न होय तो स्वामीके अशौचके मध्यमें अथवा उसके उपरान्त सती होय तो तीन दिनमें दश पिंड देने, कारण कि, वहांही पैठीनसि स्मृतिमें लिखा है कि, पीछे गई स्त्रीको तीनदिनमें दश पिण्ड देने, और स्वामीके अशौच बीतनेपर उसको श्राद्ध देना स्वामीके अशौच उपरान्त मरी हो तो चौथे दिन श्राद्ध करै ॥

शूलपाणिना त्विदमग्निपुराणीयत्वेनोक्तम्—'युद्धहतस्य सद्यः शौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम् । एकचितौ तु संस्थितपतिम्' इति प्रागुक्तव्यासोक्तेः सद्यः शौचमित्याहुः, अन्यसपिण्डाशौचमध्ये विदेशमृतान्वारोहणं त्वनाशक्यमेव ॥ शुचितायाः अङ्गत्वात् ॥ अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्च गमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः ॥ अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः ॥ तन्मूलवचनं विना चिन्त्यमेव ॥

शूलपाणिने तो यह वाक्य अग्निपुराणका लिखा है, युद्धमें मरे स्वामीका जब सद्यःशौच है तब अन्वारोहणमें तीन रात्रिका अशौच होता है, कारण कि, पूर्वोक्त व्यासका कथन है कि, एक चितामें मृतकहुये पतिके साथ जो सती होय तो सद्यःशौच लगता है, अन्य सपिंडोंके अशौचके बीचमें तो अन्वारोहणकी शंकाही नहीं होसक्ती, कारण कि, अशौच वहां अंगमात्र है और तो यह कहतेहैं कि, रजस्वला और सूतिका हुई स्त्रीको सती होनेका निषेधहै इससे इतरके अशौचका निषेधहै, नहीं तो प्रत्यक्ष स्वामीके मरणमें क्या गति होगी, सो मूलवाक्यके विना विचारणीय है, अर्थात् उचित नहीं ॥

स्मृत्यर्थसारेपि—'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं कर्त्रैक्यं च' इति ॥ या तु पतिमुद्दिश्याऽन्यकालेन्यातिथावन्वारूढा, तस्याः श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्यम् । न भर्तृतिथौ—'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता' इति स्कान्दात् 'तिथिरेकैव जायते' इत्यादिवचनाच्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्रादयः ॥

स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि; सती होनेमें सर्वत्र—श्राद्ध पिण्ड आदिमें एकपाक एककाल एककर्ता होता है; जो तो पतिके निमित्तसे और काल और तिथिमें अन्वारूढ हुई है, उसका श्राद्ध उसही मरण तिथिमें करना, पतिकी मरणतिथिमें न करना, कारण कि, पार्वण और मरणमें मनुष्योंकी वही तिथि

लेनी जो उस समय वर्तमान हो, तिथि एकही होती है, इत्यादि स्कन्दपुराणका कथन है, यह मदनरत्न-पारिजात पृथ्वीचन्द्र आदि लिखते हैं ॥

अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात् । "सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक् पत्युः क्षयेहनि ॥" इति स्मृत्यन्तरात् ॥ "अग्रतः पृष्ठतो वापि तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेहनि ॥" इति पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे–"माता मङ्गलसूत्रेण म्रियते यदि तद्दिने । उद्दिश्य विप्रपङ्क्तौ तां भोजयेच्च सुवासिनीम् ॥"

और तो यह कहतेहैं कि, वह पतिके मरनेसे मृतककेही समान है; संगसे पहिले पतिकी प्रीतिसे यदि मृतक होजाय तो उसका पृथक् श्राद्ध पतिकी मृत्युके दिन करना, यह स्मृत्यन्तरमें कहाहै, पुराणसमुच्चयका भी कथन है कि, आगे वा पीछे पतिकी प्रीतिसे मरजाय तो पुत्र उसका श्राद्ध पतिकी क्षयीके दिन करै, इससे स्वामीकी तिथिकोही होताहै, इसमें मूल नहीं है, यहां विशेष हेमाद्रिमें जानना, स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि, माता मंगलसूत्रको धारण करके पिताके दिन मृतक होजाय तो पिताके दिन ब्राह्मणपंक्तिमें एक सौभाग्यवती स्त्रीको भोजन करादे ॥

अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः ।

अत्र पित्रोर्मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्शे वर्गद्वयवत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यात् ॥ पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वकं कुर्यादिति हेमाद्रिः ॥ माधवादयस्तु–"पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेपि वा । पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासतिः योगतः ॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ सर्वत्र पितृपूर्वं भिन्नप्रयोगमाहुः ॥ पार्वणैकोद्दिष्टयोः संप्राप्ते माधवीये जाबालिः–"यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥"

अब श्राद्धके संपातमें निर्णय लिखतेहैं, वहां जो मातापिताके मरनेका दिन एक हो मरणके क्रमसे अमावस्याको वर्गद्वयके समान तन्त्रसे श्राद्ध करै, जो पूर्वापर विदित न होय तो पितृक्रमसे करै, हेमाद्रि-माधवआदि तो यह लिखतेहैं कि, पिताका श्राद्ध नया वा पुराना प्राप्त हुआ होय तो पुत्रको पितृक्रमसे करना चाहिये और अन्यत्र पृथक् २ करै, इस कार्ष्णाजिनकी स्मृतिसे सर्वत्र पितृक्रमसे भिन्न २ प्रयोग पायाजाता है, पार्वण एकोद्दिष्टका संपात होय तो माधवीयमें जाबालिका कथन है कि, यदि एकवार एकोद्दिष्ट और पार्वण प्राप्त होय तो पार्वण करकेही एकोद्दिष्ट करै ॥

युगपन्मरणे निर्णयः ।

गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः "एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥ २ ॥" ऋष्यशृङ्गः–"भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा ॥ सम्बंधासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत् ॥

गृहदाह आदिसे एकवार मरनेमें तो भृगुका कथन है कि, एककालमें बहुत अथवा दो मृत्युको प्राप्त होजाँय तो तन्त्रसे पाक करके पृथक् २ श्राद्ध करै, पहले मरेको प्रथम, फिर दूसरेको, फिर तीसरेको पिंड दे,

यही सन्निपातमें क्रम है ऋष्यशृंगने कहा है कि, जो सपिंडोंका एकवार मरण होजाय तो सम्बन्धकी निकटताके अनुसार क्रमसे श्राद्ध करना चाहिये ॥

गारुडे-" एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेऽत्र हि। विकिरं त्वेकतः कुर्यातिपण्डान् दद्यात्पृथक् पृथक् ॥" अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥ अत्रिः- "बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा पृथक्श्राद्धानि कारयेत् ॥

गरुडपुराणमें लिखाहै कि, पाकसे ऐसे विषयमें श्राद्ध करतेहैं, उस स्थलमें विकिर एक करै और पिंड पृथक् २ प्रदान करै, यहां अनुगमनका विशेष दाह सपिंडन आदिमें लिखेंगे. अत्रिका कथन है कि, दोका वहुतका श्राद्ध एकदिनमें होय तो तंत्रोंसे पाक करके भिन्न भिन्न श्राद्ध करै ॥

पुलस्त्यः-" महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥" इदं च पृथक्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ ॥ पथक्पाकेन सम्बन्धासत्त्या श्राद्धभेदस्तु मुख्यः पक्षः ॥ 'एकत्रैव दिने श्राद्धं द्वयं प्राप्तं यदा तदा । चरेदेव पुरा वर्षातिपतुर्मातुश्च यत्सुतः ॥ एकस्मिन् यः करोत्यह्नि द्वयोः श्राद्धं यदा द्विजः । तदा पूर्वमृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ पश्चात् पश्चान्मृतस्यैव पथक्पाकैः समाचरेत् । नकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचित् द्विजः ॥ एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते त्वन्यो भ्राता समाचरेत् । भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेह्नि समाचरेत् ॥ अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् ॥ ९ ॥" इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥

पुलस्त्यने लिखाहै कि, महालय और गयाश्राद्धमें मरे हुओंके क्षयीके दिन तंत्रसे पाक करके पृथक्२ श्राद्ध करै यहभी तब है जब पृथक् पाकसे भिन्न करनेकी शक्ति न होय, पृथक् पाकसे श्राद्धका भेद जानना तो मुख्य पक्ष है कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, जब एक दिन दो श्राद्ध आजांय पुत्र प्रथम पिता माताका श्राद्ध करै, जब द्विज एकदिन दो श्राद्ध करता है तब प्रथम मृतकका श्राद्ध प्रथम करके यथाविधि स्नान करके फिर पीछे मृतकका श्राद्ध पृथक् पाक बनाकर करना चाहिये, और एकदिन एकही मनुष्य तीन मृतकोंका श्राद्ध न करै, यदि ऐसा आपडै तो दूसरा श्राद्ध दूसरा भ्राता करले, भ्राता न होय तो उस श्राद्धको दूसरे दिन करना चाहिये, ऐसे न करनेसे श्राद्धका नाशक और श्राद्धके संकरका कर्ता होता है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है ॥

कात्यायनः-"द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥" जाबालिः-" श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने । नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ॥ "

कात्यायनने लिखाहै कि, दो वा बहुत दिन आपडै तो नैमित्तिक कार्य उसी क्रमसे करै, जिस क्रमसे निमित्त उत्पन्न हुये हों, जाबालिका कथन है कि, एक मनुष्यको श्राद्ध करके उस दिन फिर श्राद्ध न करना चाहिये, निमित्तके क्रमसे नैमित्तिक श्राद्धको तो करलेना चाहिये ॥

कालादर्शे-" नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भं मासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः । प्रसंगादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥ २ ॥ " अस्य देवताभेदेऽपवादमाह स एव-" नित्यस्य चोदकुम्भस्य

नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि ॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि । युगाद्याब्दिकयोश्चैव मन्वाद्याब्दिकयोस्तथा ॥ प्रत्याब्दिकस्य चालभ्य योगेषु विहितस्य च । संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥ निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ॥ ४ ॥ " माधवीये स्मृतिसंग्रहे–' काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्ध्यति ' ॥

कालादर्शमें कहा है कि, नित्य श्राद्ध और अमावस्याका श्राद्ध जलका घडा (उदकुंभ) और मासिक श्राद्ध अमावस्या और युगादि श्राद्ध अमावस्या और अलभ्ययोग श्राद्ध, अमावस्या और मन्वादि श्राद्ध यह श्राद्ध एक साथ आपडैं तो प्रसंगसे एकको करकै दूसरा श्राद्ध करै, देवताके भेदसे इसकी सिद्धिसे उत्तर श्राद्धका अपवाद कालादर्शमें लिखाहै. नित्य और जलघट, नित्य और मासिक, दर्श और उदकुंभ, दर्श और मासिक, नित्य और आब्दिक, अमावस्या और वार्षिक, युगादि और वार्षिक, मन्वादि और वार्षिक, प्रतिवार्षिक और अलभ्य योग यह एकसाथ आपडै तो देवताके भेदसे दो श्राद्धोंको करना चाहिये. इसमें निमित्तका नियम नहींहै, पहले श्राद्धका करना कारण है, मातापिताके श्राद्धमें तो सब श्राद्धोंमें पिताका श्राद्ध प्रथम होता है, माधवीयमें स्मृतिसंग्रहका कथन है कि, काम श्राद्धके तन्त्रसे नित्यश्राद्धका तन्त्र सिद्ध होता है ॥

अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् ।

पारिजाते पृथ्वीचन्द्रोदये च गर्गः–" पूर्वं तिलोदकं कृत्वा ह्यामश्राद्धं तु कारयेत् । प्रत्याब्देन भवेत् पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धं हिरण्येन अनुव्रज्य तिलोदकम् ॥" न च नित्यतर्पणस्यायं परेह्नयुत्कर्षः ॥ न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्तीति वाच्यम् ॥ " यस्तर्पयति तान् विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेहनि । पितरस्तेन तृप्यन्ति न चेत्कुप्यन्ति वै भृशम् ॥ " इति गार्ग्येण फलनिन्दार्थवादाभ्यामङ्गत्वेनोक्तेः ॥ श्राद्धप्रक्रमाद्वार्षिकम् ॥

अब श्राद्धके अंग तर्पणको लिखतेहैं. पारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें गर्गका कथन है कि, पहले तिल जल दान करके आमश्राद्ध करै, वार्षिकमें पहले वा दूसरेदिन तिलांजलि देनी चाहिये, यदि कोई कहै कि, नित्यके तर्पणकाही प्रथम दिन यह उत्कर्ष लिखा है श्राद्धके अंगतर्पणका नहीं है, सो यथार्थ नहीं है, कारण कि, इस गर्गके कथनसे फलकी निन्दा और अर्थवादसे अंग लिखा है कि, जो ब्राह्मण श्राद्धसे पितरोंको दूसरेदिन तृप्त करता है, उसके पितर तृप्ति पातेहैं, और कभी क्रोधित नहीं होते श्राद्धके प्रकरणसे वार्षिक लेनी चाहिये ॥

बृहन्नारदीयेप्याब्दिकं प्रक्रम्य–"परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन् । तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्वा व्रजन्ति हि ॥ " पितृशब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः ॥ तेन तर्पणस्य पशुपुरोडाशयागवत् प्रस्तरप्रहरणवच्चेष्टदेवतासंस्कारकता । तेनाब्दिके दिने नित्यं स्वपित्रादितर्पणं कार्यमेव ॥ श्राद्धाङ्गभूतस्यैव परेद्युरुक्तेः ॥ तदुक्तं–" प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषिद्धेपि परेहनि । वर्गैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत् ॥ "

बृहन्नारदीयमें भी वार्षिकके प्रकरणमें यह कहा है कि, श्राद्धका करनेवाला जो मनुष्य दूसरे दिन पितरोंको तर्पण नहीं करता, वे पितर उसको क्रोधसे शापदेकर चले जातेहैं, इस वाक्यमें पितृशब्द श्राद्धमें पूजने योग्योंके वर्गका बोधक है, तिससे तर्पण पशु पुरोडाश यज्ञ और प्रस्तर प्रहरणके

तुल्य देवताओंका संस्कार है, इससे वार्षिकके दिन अपने पिता आदिका तर्पण सदा करना, श्राद्धका अंगही तर्पण दूसरे दिन लिखा है, वही कहा है कि, प्रतिवर्ष निषिद्ध तिथि पहले दिन श्राद्धके अंग तिल उनको दे, जो एक कुलमें हों, औरोंको त्याग देना ॥

क्वचिद्विशेषमाह गर्गः–"कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥" तर्पणं तिलतर्पणम् ॥ निषिद्धाहेपीत्युक्तेः ॥ 'सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥' अत्र सप्तमीनिर्देशात् अङ्गिता स्फुटैव ॥ तत्र जयान् जुहुयात् ॥ मन्द्रं प्रायणीयायां मन्द्रं प्रातःसवने इत्यादिवत् ॥

किसी स्थलमें तो गर्गने विशेष लिखाहै कि, भाद्रपदमासके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होता है, उसमें प्रतिदिन पितरोंका तर्पण निषिद्ध दिनमें भी करना चाहिये, यहाँ निषिद्ध दिनमें भी कहनेसे तर्पण तिलोंसे लेना चाहिये, महालयमें तर्पण एकवार अगले दिन, और अष्टकाओंमें पीछेमें होता है, यहां सप्तमीके निर्देशसे अंगता प्रत्यक्ष है, वहां जयोंका होम (प्रातःसवन) में करना, इसकेही समान तर्पण करै ॥

अस्यापवादो बृहन्नारदीये–"वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके। संवत्सरविमोके च कुर्यात्तु तिलतर्पणम् ॥" तदयमर्थः–दर्शे विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यतर्पणम् ॥ नैव श्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वा सिद्धिः ॥ ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यम् ॥ पित्रोर्वार्षिके तु नित्यतर्पणं तिलवर्ज्यं कार्यम् ॥ "नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणम् । श्राद्धं कृत्वापराह्णे च तर्पणं तु तिलैः सह ॥" इति वचनात् ॥

इसका अपवाद बृहन्नारदीयमें कहाहै कि, वृद्धिश्राद्ध सपिंडी प्रेतश्राद्ध मासिक, वर्षका अंत, इनमें तिलसे तर्पण करै, इसकारण यह अर्थ है कि, अमावस्याको ब्राह्मणोंके निमंत्रण वा पाकके प्रारम्भके उपरान्त श्राद्धका आरम्भ होताहै, इससे ब्रह्मयज्ञके उपरान्त नित्यके तर्पणसेही श्राद्धका अंगतर्पणभी तंत्रसे वा प्रसंगसे सिद्ध हो सकताहै, इससे प्रथम और विश्वेदेवाओंके उपरान्त ब्रह्मयज्ञ करनेमें तो श्राद्धका अंग तर्पण पृथक् करना चाहिये, मातापिताके वार्षिकमें तो नित्य तर्पण तिलोंके विना उचित है कारण कि; यह कथन है कि, श्राद्धके दिन तिलोंसे पितृतर्पण न करना चाहिये, श्राद्ध करनेके उपरान्त अपराह्णमें तिलोंसे तर्पण करै ॥

"सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः" इति स्मृतिरत्नावल्यां वृद्धमनूक्तेश्च ॥ अत्र नित्यतिलतर्पणे तिलमात्रनिषेधो न तु तर्पणस्य तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । यत्तु कार्तीयम्–"उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे । निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत्" इति ॥ तत् परेद्युः श्राद्धाङ्गतर्पणविषयमिति केचित् ॥ श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति युक्तम् ॥ सकृन्महालये परेद्युस्तर्पणम् ॥ अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य ॥ अन्वष्टक्ये तु मातृवर्गस्यापि, तीर्थश्राद्धे दर्शवत् । माघाद्यादिष्वष्टकावदन्ते अनेकश्राद्धसंपाते तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् । तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यत्वे आदावन्ते वा विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति ॥ तस्माच्छ्राद्धाङ्गतर्पणं सिद्धम् ॥

स्मृतिरत्नावलीमें वृद्धमनुकाभी कथन है कि, सप्तमी रविवार, मातापिताके मरणदिनमें जो तिलोंसे पितृतर्पण करताहै वह पितृघातक कहाताहै, यहां नित्यतर्पणमें तिलोंका निषेध लिखाहै. तर्पणका नहीं, नहीं तो 'तिलैः' यह पद व्यर्थ हो जायगा जो कातीयने लिखाहै कि, ग्रहण पिताका श्राद्ध व्यतीपात अमावस्या संक्रांति इनमें निषिद्ध समय हो तोभी तिलोंसेही तर्पण करै, वह पहले दिन श्राद्धके अंगतर्पणके विषयमें है यह कोई कथन करतेहैं, यह तो युक्त है कि, जो श्राद्ध करनेमें सामर्थ्य न हो तो उसके तर्पणमें यह कथन है, महालयमें एकवार अगले दिन तर्पण करै, अष्टका सप्तमी और अष्टमीके श्राद्धमें श्राद्ध किये उपरान्त दोनों वर्गोंका तर्पण करै, अन्वष्टकामें तो मातृवर्गकाभी तर्पण तीर्थश्राद्धमें दर्शके समान करना चाहिये, माघकी पूर्णिमा वर्षाआदिमें तो अष्टकाके समान अन्तमें करै, जहां अनेक श्राद्ध एकसाथ आपडें वहां यदि प्रसंगसे सिद्धि होय तो उसी श्राद्धका तर्पण करै, तंत्र होय और श्राद्धोंकी संख्या तुल्य होय तो आदिमें वा अन्तमें करै, संख्या विषम होय तो बहुतोंके अनुरोधसे करै, इससे श्राद्धका अंग तर्पण सिद्ध हुआ ॥

तद्विधिः संग्रहे—"स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने । संतर्पयेत्पितॄन्सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥" तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः ॥ "अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले । नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ॥" अत्र वस्वादिरूपतोक्ता स्मृत्यर्थसारे—'वसुरुद्रादितिसुतान् श्राद्धार्थं तर्पयेत्पितॄन् ॥' तत्र बह्वृचानां दक्षिणेनैव ॥ 'अनादेशे दक्षिणं प्रतीयात्' इति सूत्रात् ॥

उसकी विधि संग्रहमें इसप्रकार है कि, स्नान करके किनारेपर आकर और कुशासनपर बैठकर सब पितरोंको तृप्त करै, और तर्पणके उपरान्त नित्य स्नान करके वस्त्रोंको पहरे, फिर अपसव्य होकर और बांये घुटनेको भूमिपर नवायकर नामगोत्र स्वधाकर कहकर द्वितीयांत (पितर) उच्चारणकर तर्पण करै, वहां वसु आदि रूपता स्मृत्यर्थसारमें लिखीहै, वसुरूप रुद्ररूप आदित्यरूप पितरोंको श्राद्धके अर्थ तृप्त कर, वह तर्पण बह्वृचोंको दक्षिणसे करै, कारण कि, जहां कहीं आज्ञा न हो वहां दक्षिण ओरसे करै यह सूत्र है ॥

अत्र प्रत्यञ्जलिमन्त्रावृत्तिः ॥ निर्वापवत्तत्संध्याघ्र्यदानवच्च द्रव्यभेदात् ॥ अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वान्न मन्त्रावृत्तिः । केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्सकृदिच्छन्ति । तन्न ॥ तत्रापूपद्रव्यैक्यात् परवीरसीतिकरणीभूतमन्त्रांतरसत्त्वादन्यतरेण व्यवधानापत्त्योभयोः कारणत्वायोगात् कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्वम् ॥ न त्वत्र तथेति बौधायनादिवचनात् करणत्वमेव ॥ तेनावृत्तिरेव युक्ता ॥ एवं नित्येपि ॥

यहां प्रतिअंजलि मंत्र पढे, निर्वाप और संध्याके अर्घ्यदानके समान द्रव्योंसे भेद होताहै, अवघात (कूटना) वेदीप्रोक्षण आदिमें एक द्रव्य होनेसे मन्त्रोंकी आवृत्ति नहीं होती, कोई तो 'परिव्याण' मंत्रके सदृश क्रियमाण कर्मका अनुवाद होनेसे करणत्वका अभाव कहतेहैं, एकवारही मंत्र पढना चाहते हैं, सो उचित नहीं कारण कि, वहां यूपद्रव्यको एकतासे 'परवीरसि' इस कारणभूत (रूप) मन्त्रान्तरके होनेसे किसीसे व्यवधानकी आपत्तिसे दोनोंको कारणताका अयोग है, और कर्ताके भेदसे विकल्पकाभी अयोग है, इससे होनेवाले कर्मका अपवाद है यहां वैसा नहीं जानना तिससे बौधायन आदिके कथनसे करणत्वही है, इससे आवृत्तिही करनी युक्त है, इसीप्रकार नित्यमेंभी जानना ॥

यत्तु संग्रहनाम्ना पठन्ति–"पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् । मृताहे नैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत् ॥ २ ॥" तत्समूलत्वे सति फलविषयम् ॥ यच्च पठन्ति–कपिलः–"मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च । पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम्॥ अर्धोदये गजच्छाये षष्ठीषु च महालये। भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः॥२॥" शौनकः–"मातापित्रोर्मृताहे च परेहनि तिलोदकम् । कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम् ॥" एतन्निर्मूलम् ॥

जो तो संग्रहके नामसे पढते हैं कि, माताके मरणदिनमें जो नित्य तर्पण करता है वह श्राद्ध आसुर और वह जल रुधिररूप होता है, ब्रह्मयज्ञके उपरांत सदा तर्पण करै,[1] क्षयाहके दिन न करै, करै तो फलहीन होता है, यह प्रमाण सहित होय तो तिलविषयक जानना, जो पढते हैं कि, कपिलका कथन है कि, मन्वादि युगादि अमावस्या संक्रांति पूर्णिमा व्यतीपात इनमें पहले तिल जल दे, अर्धोदय गजच्छाया षष्ठी महालय भरणी मघा श्राद्ध इनमें श्राद्धके पीछे तर्पण कथन करते हैं. शौनकने कहा है कि, मातापिताके मरण दिनमें अगले दिन तिलाञ्जली दे, करुणाके श्राद्धमें तो उसी समय तिलजल देना, यह वाक्य निर्मूल है ॥

अथ तिलतर्पणनिषेधः ।

गार्ग्यः–"भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" स्मृत्यर्थसारे–'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।' अर्धं तदेव । 'वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम् ॥' हेमाद्रौ मरीचिः–"सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा । निशासंध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥"

अब तिलतर्पणका निषेध लिखते हैं, गार्ग्यने कहा है कि, आदित्यवार मंगलकी त्रयोदशी भृगुवार नन्दा और मघामें पिंडदान मिट्टीसे स्नान तिलतर्पण न करना चाहिये, स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, विवाह व्रतचूडाकर्म वर्ष आधावर्ष चौथाई वर्ष और वृद्धि तथा मासिक इनमें तिलतर्पण न करै, हेमाद्रिमें मरीचिने लिखा है कि, आदित्यवार सातैं ग्रहण, जन्मका दिन, रात्रि, संध्या इनमें पुत्रकी इच्छावाले मनुष्यको तिलोंसे तर्पण न करना चाहिये ॥

यत्तु संग्रहे–"नंदायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च । भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाद्वये तथा ॥ अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ॥ पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ २ ॥" इति तच्चिन्त्यम् ॥ 'पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः' इत्यादिविरोधात् ॥

जो संग्रहमें लिखा है कि, शुक्रवार, नन्दा, कृत्तिका, मघा, भरणी, रविवार, गजच्छाया इसी प्रकार दोनों अयन मन्वादि युगादि इनमें पिंडदान मिट्टीसे स्नान तिलतर्पण न करना सो चिन्त्य है, कारण कि, सावधान होकर जो मनुष्य श्राद्धमें तिल मिला जल भी देता है इत्यादि वचनोंसे विरोध है ॥

---

१ जो शीघ्र जलमें स्नान करके पितरोंका तिलकुशासे तर्पण करताहै उसका परम गति होती है. मन्वादियुगादिमें जो तिलाञ्जलि देते हैं उनके पितरोंकी सहस्रवार्षिकी तृप्ति होती है.

अत्रापवादः पृथ्वीचन्द्रोदये–"तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥" स्मृत्यर्थसारेपि–'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा' इति ॥ गोभिलः–"तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् । तदभावे निषिंचेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः ॥" पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः ।

इसका अपवाद पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, तीर्थ, विशेष तिथि, गया, प्रेतपक्ष इनमें निषिद्ध दिनमें भी तिलतर्पण करना, स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, उत्तमतीर्थ और तिथिमें और प्रेतकर्ममें, सदा तर्पण करै, गोभिलका कथन है कि, तिल न होंय तो निषिद्ध दिनमें भी सुवर्ण चांदीसे, वे न होंय तो कुशा वा मंत्रोंसे तर्पण करना चाहिये । पतितका तिलोदक वर्णन करैंगे ॥

अथ वृद्धिश्राद्धम् ।

तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–"जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ देवव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च । नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन्पूर्वेद्युः सद्य एव वा । पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत् कर्मसिद्धये ॥ ४ ॥"

अब वृद्धिश्राद्ध वर्णन करते हैं, उसका निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, जन्म, यज्ञोपवीत, पुत्रका विवाह, इनमें नान्दीमुख श्राद्ध करै, पितरोंको विधिसे तृप्त करै, और वेदके व्रत, आधान, पुंसवन, नवान्न भोजन, स्नान, विवाही स्त्रीकी प्रथम ऋतु, देव, बाग, सरोवरकी प्रतिष्ठा, उत्सव, राजाका अभिषेक, बालको अन्नप्राशन, वानप्रस्थ और संन्यासके निमित्त गमन, ये वृद्धि हैं इनमें प्रथम दिन वा शीघ्र उसीदिन कर्मकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्त विधिसे तर्पण करना चाहिये ॥

विष्णुपुराणे–"यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥ पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥" तत्रैव–'नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा' इत्युक्तेर्निष्क्रमान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः । पूर्वोक्तविरोधात् ॥ 'नानिष्ट्वा' इति विरोधात् ॥ 'सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके तथा' इति राजमार्तण्डाच्च ॥

विष्णुपुराणमें यह कहा है कि, यज्ञ विवाह प्रतिष्टा मेखलाका बंधन और त्याग, पुत्रजन्म वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये, इसमें मैथिल यह कहते हैं कि, बालकके नामकरण और मुंडनमें करै, इस कथनसे निष्क्रमण और अन्नप्राशनमें श्राद्ध न करै, सो यथार्थ नहीं कारण कि, पूर्वोक्त वाक्योंका विरोध है और 'नानिष्ट्वा' यह निषेध है, और राजमार्तण्डका भी कथन है कि, पुत्रजन्म और अन्नप्राशनमें श्राद्ध होता है ॥

यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे–'सूर्येन्द्वोः कर्मणि ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते' इति, तत्तेषामेवेति कल्पतरुः ॥ बह्वृचकारिकायां–"स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्तेषु कर्मसु । पुंसःसवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहे चानलाधेयप्रभृतिश्रौतकर्मणि । इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् ॥ अन्यैः षोडशसंस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्याद्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तकम् ॥ २ ॥"

जो छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, सूर्य और चन्द्रमाके जो कर्म हैं उनमें श्राद्ध नहीं है वह उन छंदोगोंके निमित्तहै, यह कल्पतरु लिखतेहैं, बह्वृचकारिकामें कहा है कि, वृद्धिसे पूर्व जो पुंसवन, सीमन्त, मुण्डन, यज्ञोपवीत इनमें वृद्धिश्राद्ध होताहै, और विवाह और अग्न्याधान आदि वेदोक्त कर्मोंमें वृद्धिनिमित्तक आभ्युदयिक श्राद्ध होतेहैं, और षोडश संस्कार और श्रावणी आदिमें भी इष्टहै, और वापी आदिके उद्यापन आदिमें पूर्त कर्मके निमित्त करते हैं ॥

बोपदेवकालादर्शौ–'सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकद्यितायर्तौ च नान्दीमुखम् ॥ ' यत्तु कामधेनौ–" जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु । वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत् " इति ॥ तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधो, न तु कर्माङ्गस्येति केचित् ॥ अन्ये त्वस्य निर्मूलतामाहुः ॥

बोपदेव और कालादर्शका कथन है कि, सीमंतोन्नयन यज्ञोपवीत मुण्डन नामकरण अन्नप्राशन स्नान अग्न्याधान विवाह यज्ञ पुत्रजन्म प्रतिष्ठा पुंसवन गृहप्रवेश पुत्रमुखदर्शन आश्रमका स्वीकार राज्याभिषेक स्त्रीकी प्रथम ऋतु इनमें नांदीमुख श्राद्ध किया जाता है, जो कामधेनुमें कहा है कि, जलाशयकी प्रतिष्ठा वृषोत्सर्ग आदि कर्म वर्षके भीतर माता पिताका वृषोत्सर्ग इनमें वृद्धिश्राद्ध न करै, इसके सिवाय अन्यत्र करै, यह वाक्य जलाशयमें वृद्धिश्राद्धका निषेधक है, कर्मांगका निषेधक नहीं है, यह कोई कहते हैं और तो इस वाक्यको निर्मूल कहते हैं ॥

श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये–" अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नवे वेश्मप्रवेशने ॥ देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ " इदं चावश्यकम् ॥ " वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः । तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः " इति शातातपोक्तेः ॥ अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह–" मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " तत्कालमाह पृथ्वीचन्द्रोदये गार्ग्यः–" मातृश्राद्धं तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम् । मातामहं चोत्तरेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " अत्राप्यशक्तौ स एव–" पृथक्दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन् पूर्ववासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् " इति ॥

श्राद्धकौमुदी और निर्णयामृतमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, अन्नप्राशन सीमंत पुत्रकी उत्पत्ति पुंसवन गर्भाधान नयेगृहमें प्रवेश और देव जल वृक्ष आदिकी प्रतिष्ठामें, विशेषकर तीर्थयात्रा वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है, और यह आवश्यक है, कारण कि, शातातपका कथन है कि, जिन गृहस्थियोंने वृद्धिमें पितरोंको तृप्त नहीं किया उसका हीनफल जानना, वह विधि राक्षसहै, वृद्धिमें तीन श्राद्ध उसनेही लिखेहैं कि, पहले मातृश्राद्ध फिर पितृश्राद्ध फिर मातामहोंका श्राद्ध, उसका काल पृथ्वीचन्द्रोदयमें गार्ग्यने लिखाहै कि, पूर्वाह्णमें मातृश्राद्ध मध्याह्नमें पितृश्राद्ध अपराह्णमें मातामहश्राद्ध हुआ करताहै, इसमें भी अशक्ति होय तो वृद्धशातातपने लिखाहै कि, पूर्वोक्त तीनोंके एकदिनमें अशक्त होय तो भिन्न २ दिनोंमें तीन श्राद्ध करै, और विश्वेदेवा तंत्रसे करै ॥

वृद्धमनुरपि-" अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ " अत्र-' महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु ' इति गृह्यपरिशिष्टाद्व्यवस्था ज्ञेया । तच्च प्रातरेव ॥ 'पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति शातातपोक्तेः । अत्र प्रातः-शब्दः सार्धप्रहरपरः ॥ ' प्रहरोप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते ' इति गार्ग्योक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ इदं च पुत्रजन्मातिरिक्तविषयम् ॥

वृद्धमनुकाभी कथनहै कि, पृथक्समय न मिले तो पहलेदिन बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वाह्णमें मातृपूर्वक करै, यहां बहुतोंके मतमें पहलेदिन और अल्पोंके मतमें उसीदिन करै, इस गृह्यपरिशिष्टके कथनसे व्यवस्था जाननी उचितहै, वह प्रातःकाल होताहै, कारण कि, शातातपने कहाहै कि, पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातः-कालमें होताहै, यहां प्रातःकालसे डेढपहर १॥ लेना कारण कि, गार्ग्यने कहाहै कि, आधेसे युक्त प्रहरको प्रातःकाल कहतेहैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, यह पुत्रजन्मसे पृथक्के विषयमें है ॥

तदाहात्रिः-" पूर्वाह्णे वै भवेद्वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् । पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः " इति ॥ एतदनियतनिमित्तपरम् ॥ " नियतेषु निमित्तेषु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते " इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह्ण एव ॥ " आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः । पार्वणं वाऽपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्निकम् " इति निर्णयामृते गालवोक्तेः ॥ ' नान्दीमुखाह्वयं प्रातराब्दिकं त्वपराह्णतः ' इति विष्णूक्तेश्च ॥ इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम् ॥ तत्र-' मातामहाः सपत्नीकाः वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम् ' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे गद्यरूपेण पाठात् ॥

वही अत्रिने लिखाहै कि, जन्मनिमित्तकको त्यागकर वृद्धिश्राद्ध पूर्वाह्णमें होता है, पुत्रजन्ममें तो बुद्धिमान् मनुष्य उसीसमय श्राद्ध करै, यह वाक्य उन निमित्तोंमें है जिनका नियम नहीं है, कारण कि, लौगाक्षिकी स्मृतिमें लिखा है कि नियत निमित्तोंमें प्रातःकाल और अनियत निमित्तोंमें क्रमसे वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये, आधानका अंग तो नान्दीमुख अपराह्णमें होता है, कारण कि, निर्णयामृतमें गालवका कथन है कि, आमान्नसे श्राद्ध पूर्वाह्णमें सिद्धान्नसे मध्याह्नमें पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्धभी साग्निकको अपराह्णमें होता है, नान्दीमुख प्रभातमें और आब्दिक अपराह्णमें करै यह विष्णुने कहाहै इस श्राद्धमें माता पिता मातामह आदि नौ (९) देवता करने उनमें मातामह आदि तीन सपत्नीक करने कारण कि पृथ्वी-चन्द्रोदयमें गरुडका संस्कृतरूप वाक्य लिखाहै कि, वृद्धिमें सपत्नीक मातामहोंको देना ॥

हेमाद्रौ शङ्खः-' नान्दीमुखे सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके ॥ ' वृद्धपराशरः-" नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृव्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥ " यत्तु वृद्धवसिष्ठः-" नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥ " यच्च स्मृत्यर्थसारे-' वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते ' इति॥

हेमाद्रिमें शंखका कथन है कि, नान्दीमुखमें सत्यवसु विश्वेदेवा कहने चाहिये, वृद्धपराशरने लिखा है कि, नांदीमुख श्राद्ध देवताओंको प्रदक्षिणा क्रमसे कुशासनदे, प्रधान पितरवाले देवताओंको भी

इसीप्रकार प्रदक्षिण क्रमसे आसन देना, यह स्मृति है, जो वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि, नांदीमुख और विवाहमें प्रपितामहसे लेकर और दूसरे कर्मोंमें पितासे लेकर बुद्धिमान् मनुष्य नामोंको उच्चारण करै, और जो स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, वृद्धिश्राद्धमें वृद्ध मुख्य पितर भोजन करते हैं ॥

यच्च गारुडे–'व्युत्क्रमप्रतिपादनं' तच्च शाखान्तरविषयम् ॥ 'पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः' इति बह्वृचपरिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्याम्नातात् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ यत्तु केचिद्वृद्धिपदं पित्रादिषु प्रयुञ्जते, तन्न ॥ "अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् । अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं तु सव्यवत्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः ॥ न च निषेधादेव विधिः कल्प्यत इति वाच्यम् । प्रौष्ठपदी श्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नान्दीश्राद्धत्वसाम्येनेहापि तत्प्राप्तौ निषेधात् ॥

और जो गारुडमें इसके विपरीत लिखाहै, वह शाखांतरके विषयमें जानना कारण कि, बह्वृचपरिशिष्ट और कात्यायनने यह अनुलोम लिखा है कि, पितर, पितामह और प्रपितामहोंके निमित्त स्वधा है. पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसीप्रकार कहा है, जो कोई पिताआदिकोंमें वृद्धपद लगाते हैं सो उचित नहीं कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका कथन है कि, जिनमें वृद्धिशब्द नहीं और जिनका रूप गोत्र नाम नहीं उनका तिल आदिके विना सव्य होकर नांदीमुख श्राद्ध करै, यदि कोई कहै कि, निषेधसेही विधिकी कल्पना करैंगे सो यथार्थ नहीं. प्रोष्ठपदीके श्राद्धमें प्रपितामहसे अगले वृद्धप्रपितामह आदिको देवता होनेसे नांदीश्राद्धकी समता है, इससे यहां भी उसकी प्राप्तिका निषेध कहा है ॥

गोत्रनामादिनिषेधस्तु–'शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत्' इत्युपक्रम्य 'अनस्मद्वृद्धशब्दानाम्' इत्युक्तेः संकल्पश्राद्धपरः ॥ 'सपिण्डके तु सर्वं भवति' इति प्रयोगपारिजातः ॥ 'गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योर्घ्यं प्रदापयेत्' इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात् ॥ यत्तु ब्राह्मे–"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येत पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते ॥ २ ॥" इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणे–'ये स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः' इति तज्जीवत्पित्रादित्रिककर्तृकवृद्धिश्राद्धविषयम् ॥ तेन तस्येदमावश्यकम् ॥ यत्तु विष्णुः–'पितरि पितामहे च जीवति नैव कुर्यात्' इति, तद्दर्शादिविषयम् । इति कल्पतरुः ॥ मदनपारिजातेप्येवम् ॥

गोत्रनामआदिका निषेध तो संकल्प श्राद्धके विषयमें है, कारण कि, यह वाक्य है कि, शुभार्थी प्रथमांत पदसे वृद्धिमें संकल्प करै, इस प्रकरणमें यह भी लिखा है कि, जिसमें अस्मद्वृद्ध शब्द न हो, सपिंडीमें तो सब होता है यह प्रयोगपारिजातमें कहा है कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें सपिंडीका यह विधान है कि, गोत्र और नामको कहकर पितरोंको अर्घ्य देना, जो ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, पिता पितामह प्रपितामह यह तीन पितर अश्रुमुख लिखे हैं, और उनसे पहले जो प्रजा और सुखवाले हैं वे पितर नांदीमुख कहाते हैं, कारण कि, नांदी नाम समृद्धिका है, जो मार्कण्डेय पुराणमें कहा है कि, जो पितामहसे ऊपरके हैं वे नांदीमुख लिखे हैं, ये दोनों वाक्य उस वृद्धिश्राद्धके विषयमें हैं, जिसको जीवत्पिता आदि करते हैं, यह कल्पतरुका मत है, तिससे उसके निमित्त यह आवश्यक है, यही विष्णुका कथन है और पारिजातमें भी ऐसेही लिखा है ॥

हेमाद्रिस्तु—"नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥" इति—प्रौष्ठपदीश्राद्धैकवाक्यत्वात्तत्रैव पूर्वेषां देवतात्वमित्याह ॥ अत्र सत्यवसू विश्वेदेवावित्युक्तं प्राग्वत् ॥ यत्तु शातातपः—'मातुः श्राद्धं तु युग्मैः स्याद्दैवं प्राङ्मुखैः पृथक्' इति, तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेवविकल्पार्थम् ॥ प्रयोगैक्ये तु—'विश्वेदेवविहीनं तु केचिदिच्छन्ति मानवाः' इति । तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेवविकल्पार्थम् ॥ प्रयोगैक्ये तु देवनियमः । इति हेमाद्रिः ॥ एतच्च मातृपूजापूर्वकं कार्यम् ॥ "अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तस्य क्रोधतमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः" इति शातातपोक्तेः ॥

हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि, कन्याके सूर्यमें पूर्णिमाको नांदीमुख पितरोंका श्राद्ध वराहपुराणके कथनानुसार करै, इस कथनसे भादोंकी पूर्णिमासी श्राद्धकी एकवाक्यतासे उसी स्थानमें पूर्वपितर देवता हैं, यहां सत्य वसुविश्वेदेवा पूर्वाभिमुख होते हैं, यह पहले कथनकर आये. जो शातातपने लिखा है कि, मातृश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन दो ब्राह्मणोंसे पितासे भिन्न २ होता है, यह उस मातृश्राद्धके विषयमें है जो पितासे भिन्न किया जाता है. जो मार्कण्डेयने लिखा है कि, कोई मनुष्य विश्वेदेवाओंसे हीनकी इच्छा करते हैं, यह वाक्य भी पृथक् २ किये मातृश्राद्ध आदि दो श्राद्धोंमें विश्वेदेवाओंके विकल्पकेही निमित्त है, एक प्रयोगमें तो विश्वेदेवाओंका नियम है यह हेमाद्रिने कहा है, यह मातृपूजापूर्वक करना चाहिये, कारण कि, शातातपका कथन है कि, मातृकाओंकी अर्चा किये विना जो श्राद्धमें परोसता है, तो रोषमें भरकर मातृका उसकी हिंसा करनेकी इच्छा करती हैं ॥

कौर्मेऽपि—"पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि । पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः" इति ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—"कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥ कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु । कारयेत् पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥ षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ ४ ॥" अत्र सर्वेष्विति ग्रहणात् ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धम् ॥ 'नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धे कर्म किंचित्समाचरेत्' इति शातातपोक्तेश्च ॥

कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि, फूल, धूप, नैवेद्य, गंध, भूषण आदिसे मातृकाओंकी अर्चा करके बुद्धिमान् मनुष्यको तीनों श्राद्ध करने चाहिये, छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, सब कर्मोंमें गणेशसहित मातृकोंको प्रयत्नसे पूजना चाहिये कारण कि, जो उनकी पूजा करता है उसकी वे करती हैं, शुद्ध प्रतिमामें वा कपडेपर लिखकर वा अक्षतोंके समूहोंमें भिन्न २ नैवेद्योंसे पूजा करै, दीवालपर लगाकर घीसे सात वा पांच 'वसोर्धारा' करै, वे न बहुत नीची न बहुत ऊंची करनी और आयु देनेवाले मंत्र सावधानीसे जपकर पीछेसे छः पितरोंके श्राद्धको प्रारम्भ करै, यहां 'सर्वेषु' इस पदके ग्रहणसे ग्रहयज्ञ और उसके विकारोंमें भी श्राद्ध नित्य जानना कारण कि, शातातपने लिखा है कि, श्राद्धमें पितरोंकी पूजा किये विना कुछभी कर्म न करै ॥

इयं च वसोर्धारा तच्छाखीयानां नियता। अन्येषां त्वनियता ॥ 'बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तम्' इत्युक्तेः ॥ करणे त्वभ्युदयः ॥ 'यन्नाम्नातं स्वशाखायाम्' इत्युक्तेः। आयुष्याणि 'आनो भद्राः' इत्यादीनि ॥ षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ छन्दोगानां षड्दैवत्यमन्येषां नवदैवत्यमित्याशार्कः ॥ मम तु मतं कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रा सहैव मातामहश्राद्धकरणात् तद्विषयमिदं षड्भ्य इति ॥

यह वसोर्धारा उनकी शाखावालोंको नियमसे जाननी और दूसरोंको नहीं कारण कि, यह लिखा है कि, थोडा वा बहुत जो अपने गृह्यसूत्रमें लिखाहै उसे करै, और दूसरी शाखाके करै तो अभ्युदय होताहै कारण कि, जो अपनी शाखामें नहीं कहा उसको भी करे और आयुष्य मन्त्र 'आनोभद्रा' इत्यादि जपै और षड्भ्यः यह माता आदि तीनका उपलक्षण है, यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं, छन्दोगोंके श्राद्धमें छः देवता और दूसरेकेमें नौ देवता होतेहैं, यह आशार्क लिखतेहैं. मेरे मतमें तो कोकिलमतके अनुसारियोंमें माता मातामह प्रमातामह यह माताके संगही मातामहोंका श्राद्ध करनेसे उनके विषे षड्भ्यः यह पूर्वोक्त कथन लिखा है ॥

मातरस्तत्रैवोक्ताः ॥ "गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥" इति सर्वविशेषणं तेन चतुर्दशत्वम्। यदा षोडशेति पाठस्तदा देवतान्तरम् ॥ चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या उक्ताः–"तिस्रः पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा। इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसाष्टमी ॥" आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् ॥ मृतानां त्वक्षतपुञ्जेषु इति हेमाद्रिः ॥

मातरभी वहांही लिखी हैं कि, गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, आत्मदेवता, गणेश, अधिकके सहित चौदह लोककी माता मातर हैं, इस श्लोकमें 'मातरः लोकमातरः' ये दोनों पद सबके विशेषण हैं, इससे चौदह यथार्थ हैं, जब षोडश यह पाठ है, तब मातर और लोकमातर येभी भिन्न देवताहैं, चन्द्रिकामें तो चतुर्विंशतिके कथनसे अन्य मातर लिखीहैं कि, तीन पिता पक्षमें और तीन मातामह पक्षमें इन पिता आदिकी छः स्त्रियोंको और दो पिता और माताकी भगिनियोंको मातर लिखते हैं, जीती हुई इनका प्रत्यक्ष पूजन और मरी हुईयोंका अक्षत समूहपर पूजन करै. यह हेमाद्रिका कथन है ॥

"ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान्। वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान् पितॄन् ॥ मातृपूर्वान् पितॄन् पूज्य ततो मातामहानपि। मातामहीस्ततः केचिद्युग्मा भोज्या द्विजातयः ॥ २ ॥" इति ॥ अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचाराद्व्यवस्था ॥ ब्रह्माण्याद्याः–"ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथैन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः" इत्यपरार्के उक्ताः ॥ अत्र चौलादीनां यौगपद्ये तन्त्रतोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे–'गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥" मातृभ्यः इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ गणशः एकानेकपुत्राणां संस्कारेष्वेकदिने एकदेशकालकर्तृक्यादित्यर्थः ॥

ब्रह्माणी आदि सात दुर्गा, क्षेत्रपाल, गणेश इनका वृद्धि आदिमें पूजन करके पश्चात् नान्दीमुख पितरोंका और मातृपूर्वक पितरोंका और मातामहपूर्वक पितरोंका पूजन करके मातामही आदि तीनका

अर्चन करै यह कोई लिखतेहैं, और इसमें युग्म ब्राह्मणभोजन करावै, यहां द्वादश देवतावाले श्राद्धकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी, ब्रह्माणी आदि सात मातर अपरार्कमें ये लिखीहैं. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, यहां मुण्डन आदि एकबार आनपड़ै, तो छंदोगपरिशिष्टमें उनकी (कर्तव्यता एकबार करनी) कहीहै, जो कर्म समूहसे किये जांय उनमें मातृओंका अर्चन और वृद्धिश्राद्ध एकबार होताहै, भिन्न २ नहीं, इसका यह अर्थहै कि, एक अनेक पुत्रवालोंके संस्कारोंमें एकदिन एकदेश एककाल एककर्ता होताहै ॥

तथा–"असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः । प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः सगणाधिपाः ॥" कर्मावृत्तावपि कुत्र श्राद्धं कार्यं क्व च नेत्युक्तं तत्रैव ॥ "आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पूर्णमासे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥" एतेषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किंत्वादौ ॥ एतद्भिन्ने सोमयागादौ प्रतिप्रयोगमावर्तते एव ॥ श्राद्धमित्यर्थः ॥

इसप्रकार वाक्यहै कि, कर्मोंके कर्ता जिन कर्मोंको भिन्न २ करतेहैं उनमें कर्मके प्रति गणेश और मातृका नहीं होतीहैं, अर्थात् एकबारही हुआ करतीहैं, कर्मकी आवृत्तिमें भी किसकर्ममें श्राद्ध करना चाहिये और किसमें नहीं लिखा यहभी वहांही लिखाहै, अग्न्याधान, होम, विश्वेदेवा, बलिकर्म, अमावस्या, पूर्णिमा, नवयज्ञ इनमें यज्ञके जाननेवाले बुद्धिमान् इसप्रकार लिखतेहैं, कि, एकही श्राद्ध होताहै भिन्न २ नहीं अर्थात् इनमें प्रयोग २ के प्रति श्राद्धकी कर्तव्यता नहीं किन्तु प्रथममें होतीहै, यदि इनसे भिन्न सोमयाग होय तो प्रत्येक प्रयोगमें श्राद्धकी आवृत्ति होतीहै ॥

क्वचिदादावपि निषेधमाह स एव "नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ॥ विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुमो यस्य चान्ते ॥ विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥" सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः 'सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य' इत्युक्तं कर्म ॥

कहीं आदिमेंभी निषेध उसीने लिखाहै कि, अष्टका और श्राद्ध और प्रसवकरनेवालीका जातकर्म और परदेशसे आनेके कर्म इनमें श्राद्ध नहीं होताहै, विवाह आदि कर्मोंका जो समूह: लिखाहै और गर्भाधान जो श्रवण कियाहै उसके अन्तमें और विवाहके प्रथममें एकही श्राद्ध होताहै, प्रत्येक की आदिमें नहीं, सोष्यंती उसे कहतेहैं, जिसे प्रसव होनेवाला हो, वह कर्म यह है कि, सोष्यंतीका अभ्युक्षण करके श्राद्ध करना चाहिये ॥

कात्यायनोक्तस्य श्राद्धस्य पाकस्य प्राधान्यात्तस्य च ॥ 'जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि' इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशार्कः ॥ आमान्नेन वा कार्यमित्यपि तेनैवोक्तम् ॥ गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः । पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव । 'जन्मन्यथोपनयने' इत्युक्तेः । "नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम् । पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्म समं नरैः" इति मार्कण्डेयपुराणाच्चेत्याहुः ॥

कात्यायनके कहे हुए श्राद्धमें पाकही प्रधानहै उसका इस वाक्यसे निषेधही लिखाहै कि, जातश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पक्वान्न न देना चाहिये, इससे जातकर्ममें नान्दीश्राद्ध न करना, आमान्नसे तो करना यह आशार्कका कथन है, गौड तो यह मानतेहैं कि, जातकर्ममें ही निषेध है, सुतजन्मके निमित्तक

तो अवश्यही करना चाहिये कारण कि, जन्ममें और यज्ञोपवीतमें करै मार्कण्डेयपुराणमें लिखाहै कि, नैमित्तिक आभ्युदयश्राद्धको कहताहूं पुत्रजन्ममें जातकर्मके संग उसे मनुष्योंको करना चाहिये ॥

हारलतायां श्राद्धविवेके चैवम् ॥ एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्धनिषेधो न पुत्रजन्मदिने इति वाचस्पतिमतं परास्तम् ॥ अथ 'निषेककाले' इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः ॥ "निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम् ।' इति पारस्करः ॥ प्रोषितेति–'प्रोष्यैत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपति' इति विहितं कर्म विवाहादिगर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण ॥ तत्रापि प्रतिकर्म नेत्यर्थः। अन्येपि हलाभियोगादयो अपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः॥ त इहाप्रचारान्नोच्यन्ते ॥

हारलता और श्राद्धविवेकमें भी इसीप्रकार लिखाहै, इससे यह वाचस्पतिका मत परास्त होगया निषेककाले इसवचनसे गर्भाधानमेंभी निषेध नहीं है, पारस्कर कहतेहैं कि, निषेककाल सोम सीमन्तोन्नयन और पुंसवनमें श्राद्ध विधिपूर्वक किया हुआ कर्मांग होताहै, जातकर्ममें कालांतरमें श्राद्धका निषेध कहाहै, जन्मदिनमें नहीं, यहां निषेक समयमें करै, इस कथनसे गर्भाधानमें निषेध नहीं है, 'प्रोषितागतकर्म' यह है कि, परदेशसे घरमें आकर जो पितरोंकी पूजा करताहै वह पितरोंके जपको पाताहै, इससे जो कहा विवाह आदि गर्भाधान पर्यंत गृहप्रवेश धृतिहोम चतुर्थी कर्म आदि कर्मसमूह जो सूत्रकारने लिखेहैं, वहांही कर्म २ में श्राद्ध न करना, और भी हलके अभियोग आदि निषेधके विषय वहांही जान लेने, उनका प्रचार नहींहै इसकारण नहीं लिखते ॥

अथ जातश्राद्धाधिकारिणः ।

अथात्राधिकारिणः ॥ विष्णुपुराणे–"जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः । पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ॥" अत्र केचित् जीवत्पितुः साग्नेरेव वृद्धिश्राद्धेधिकारः नतु निरग्नेः । "न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः ॥ पितामहेप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः । साग्निकोपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ॥" इति चन्द्रिकायां सुमन्तूक्तेरित्याहुः ॥ प्रयोगपारिजातेप्यनाहिताग्निर्न कुर्यादिति यद् व्याख्यातं, तन्न । "अनग्निकोपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवोद्दिश्य तर्पयेत् ॥" इति हारीतोक्तेः ॥

अब अधिकारियोंको लिखतेहैं, विष्णुपुराणमें कहाहै कि, उत्पन्न हुये पुत्रके जातकर्म आदि सम्पूर्ण कर्मको और आभ्युदय श्राद्ध पिताको करना चाहिये, जहां कोई यह कहतेहैं कि, जिसका पिता जीताहो उस अग्निहोत्रीकोही अधिकार है, निरग्निको नहीं है कारण कि, चंद्रिकामें सुमंतुका कथनहै कि, अग्निहोत्रीसे भिन्न जीवत्पितृक द्विजको श्राद्ध न करना चाहिये, और पिता जिनको श्राद्ध देताहो साग्निक तो उनकोही दे, और पितामहके जीते हुये अग्निहोत्री इसीप्रकार करै, और प्रपितामहके जीवते साग्निकोभी न करना चाहिये, प्रयोगपारिजातमें भी लिखाहै कि, जो अग्निहोत्री न हो वह श्राद्ध न करै, सो उचित नहीं कारण कि, हारीतने लिखाहै कि, अनग्नि भी उनकेही निमित्त श्राद्ध और तर्पण करै, जिनको जन्म आदिके वृद्धिश्राद्धमें पिता देताहै ॥

सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धपरमित्युक्तं मदनरत्ने ॥ श्राद्धपदं पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ निर्णयामृते तु हारीतीयेऽनग्निकोनाहिताग्निरभिप्रेतः ॥ पूर्ववचने तु साग्निकः श्रौताग्निः स्मार्ताग्निश्चोच्यते ॥ तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तं तन्न । पूर्वोक्तदिशा गतिसम्भवेऽनग्निपदस्य स्मार्ताग्निपरत्वे मानाभावात् ॥ वक्ष्यमाणनित्यानित्यसंयोगाविरोधात् ॥ "पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान् ॥ " इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमवचोविरोधाच्च ॥

सुमंतुका मत तो वृद्धिश्राद्धसे पृथक् २ श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखाहै, पिंडपितृयज्ञके विषयमें लिखाहै यह पृथ्वीचन्द्र लिखतेहैं. निर्णयामृतमें तो यह लिखाहै कि, हारीतके कथनमें अनग्निसे वह लियाहै जिसने अग्न्याधान न लियाहो और पूर्वोक्त वचनमें साग्निसे वह लियाहै जो स्मार्त्ताग्नि हो तिससे जो दोनों अग्निसे रहित हों वह न करै सो उचित नहीं कारण कि, पूर्वोक्त रीतिसे जब गतिका संभव है अनग्निपदको स्मार्त्ताग्निबोधक माननेमें कोई प्रमाण नहींहै आगे कहे हुए नित्य अनित्यके संयोगका विरोध है, और पृथ्वीचन्द्रोदयमें इस यमवाक्यकाभी विरोध लिखाहै कि, जहांतक पितरोंकी पिता अर्चा करताहै वहांतक सावधान होकर पुत्रहीको करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी अर्चा करै ॥

अपरार्कोपि-' समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्' इत्याह ॥ अतः पूर्वमेव साधु ॥ बोपदेवोप्येवमाह ॥ यत्तु मतं जीवत्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धम् । हारीतीये जन्मादावित्यादिशब्देन तत्प्राप्तावपि-" उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः " इति मैत्रपरिशिष्टे-' उद्वाह एव तस्योपसंहारात् ॥ एवं यत्र तु संस्कारादिपदं तदप्युद्वाहादिपरमेव' इति तन्न ॥ उद्वाहपदस्य स्वविवाहपरत्वस्यापि संभवात् ॥ पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात् ॥ ' नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ' इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वावगतौ नित्यानित्यसंयोगाविरोधाच्च ॥ अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसंग्रहः ॥

अपरार्कमें भी लिखाहै कि, समावर्तनमें ब्रह्मचारी स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करै, इससे पूर्वोक्तही अच्छा है. बोपदेवने भी ऐसेही लिखाहै, जो यह मत है कि, जीवत्पिताको पुत्रके नामकर्मसे प्रथम वृद्धिश्राद्ध न करना चाहिये, हारीतके 'जन्मादौ ' इस आदि पदसे उसकी प्राप्तिभी थी तो भी विवाह पुत्रजन्म पितरोंका पूजन सोमयज्ञ तीर्थमें ब्राह्मणका आगमन ये छः जीवत्पितृके श्राद्धकालीनहैं, इस मैत्रपरिशिष्टमें विवाहमें उसकी पूर्णता लिखी है, इसी भाँति जहां पुत्रसंस्कार आदि वाक्य हैं वेभी विवाह आदि परत्व हैं, सो उचित नहीं, विवाह पदको अपने विवाहके भी बोधककी सम्भावनासे पुत्रविवाहके बोधकमें मानका अभाव है और बालोंके नामकर्म और चूडादिकर्मोंमें इत्यादि वाक्योंसे नित्यश्राद्धको चौलाद्यंगता निश्चित होनेसे नित्यानित्यसंयोगका विरोध है इससे जन्मादौ इस पदसे सब संस्कारोंका संग्रह कहा है ॥

तथा कात्यायनः-" स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ " ' सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं ।पिण्डदोंशहरश्चैषाम् ' इति दर्शनादोद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तं दद्यात्॥विवाहश्च प्रथमः॥ "नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु

नान्दिकम् ॥" इति स्मृतेः ॥ तस्य पितुरभावे तत् क्रमात्–'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।' इति–यः कर्तृक्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिर्दद्यादिति चन्द्रिकादयः॥

यही कात्यायनने लिखा है कि, पुत्रके संस्कार कर्मोंमें पिता अपने पितरोंको दे, पुत्रोंका विवाह होनेपर पिताके अभावमें उसी क्रमसे पुत्रको पिंड देना चाहिये, इसका यह आशय है कि, पिता पुत्रोंके मुण्डन आदि संस्कारोंमें विवाह पर्यन्त पिंड देवे कारण कि, पितरोंको पिण्डका दाता और उनके अंशका भागी बेटा होता है. विवाह पहले लेना कारण कि, यह स्मृतिमें लिखा है कि, पहले विवाहमें नान्दीश्राद्ध पिता करै, और इसके उपरांत पुत्र स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करै, और उस पिताके अभावमें इस कर्ताके क्रमसे कि, जिनका संस्कार नहीं हुआ है उनका संस्कार वे भ्राता करैं, जिनका संस्कार पूर्व होचुका हो. इस क्रमसे बडे भाई आदि दें, यह चन्द्रिकादिक लिखते हैं ॥

हेमाद्रिस्तु तस्य पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्कुर्यात्स तत्क्रमात्संस्कार्यपितृक्रमाद्यान्नतु स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ ॥ समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात् पितैव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् ॥ तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिभिः ॥ तदभावे स्वयमेव कुर्यात् ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् ॥ एवमाद्यविवाहेपीति पृथ्वीचन्द्रोदयचन्द्रिकादयः ॥

हेमाद्रिने यह व्याख्या लिखी है कि, उस पिताके अभावमें जो पितृव्य मामा आदिक संस्कार करै, वह संस्कार करनेयोग्यके पितृक्रमसे प्रदान करै, अपने पितृक्रमसे नहीं करै. समावर्तनभी विवाहसे प्रथम पुत्रका संस्कार है उसमें भी पिताहीका नान्दीमुख श्राद्ध करना उचित है, उसके अभावमें बडा भाई और उसके अभावमें स्वयं करै, कारण कि, यज्ञोपवीत होनेसे कर्मका अधिकार होगया, इसी भांति प्रथम विवाहमेंभी स्वयं करै यह पृथ्वीचन्द्र और चन्द्रिका आदि लिखते हैं ॥

मदनरत्नेप्येवम् ॥ यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते पतिते वा धर्मार्थं तत्पुत्रमन्यः संस्कुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादिभ्यो दद्यात् ॥ "पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमोक्तेः ॥ जीवत्पितृकस्य विशेषमाह कात्यायनः "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति ॥

मदनरत्नमें भी यही है, यदि पिता संन्यासी होगयाहो, परदेशमें हो, पतित हो और उसके पुत्रका धर्मार्थ कोई और संस्कार करै, तो पितृ पितामह आदिका श्राद्ध करै कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमने लिखा है कि, जितनी पिता पितरोंकी पूजा करता है, उतनीही सावधान होकर पुत्रको करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी करै, जीवत्पितृकके निमित्त विशेष कात्यायनने लिखा है कि, वृद्धिश्राद्ध, तीर्थश्राद्धको, पिता संन्यासी होगया हो वा पतित होगया हो तो जिनको पिता श्राद्ध दे, उनकोही पुत्र स्वयं दे ॥

यत्तु बह्वृचपरिशिष्टे–'जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात् ॥ तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैवेति, तत्तच्छाखीयानामेवेति दिक् ॥' स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु तु जीवन्मातृकः पितामहादिभ्यो वृद्धौ दद्यात् 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः' इति कात्यायनोक्तेः । जीवे तस्मिन्सुताः कुर्युः पितामह्या सहैव तु । तस्यां चैव तु जीव-

न्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः' इति हारीतोक्तेश्चेत्युक्तम् ॥ तस्मिन् भर्तरि । दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषयत्वात् ॥ 'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति वचनात्तद्वर्गस्य लोप एवेत्याहुः ॥

जो बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, जीवत्पिता पुत्रके संस्कारमें माता और मातामहका श्राद्ध करै, माता जीती होय तो, मातामहका ही श्राद्ध करै, वह बह्वृच शाखावालोंके ही निमित्त है यह कुछ कहा है. स्मृतितत्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि, जीवन्मातृक पितामही आदिको वृद्धिमें दे कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, द्विजको जीवतीहुईको वा मृतकको अन्नोदक देना चाहिये, उस पतिके जीवते हुये पितामहीके संग पुत्र करै, वह भी जीती होय तो उसकी सासू करै, यह हारीतका कथन है कि, 'तस्मिन् भर्तरि' और दाक्षिणात्य तो पूर्वोक्त सपिंडीकरणादिके विषयसे कहते हैं यदि वर्गका प्रथम जीता होय तो उसको त्याग दे, इस वाक्यसे उसका लोपही है ॥

यत्तु चन्द्रिकायां पारस्करः—"निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवच्च तत्" इति । तत्र गर्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादावुक्तं तु वृद्धिश्राद्धं पृथगेव विधिवदित्युक्तेः ॥ गौडनिबन्धे मात्स्ये—"अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ वेदव्रतजलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥" अत्र भूतनिमित्तानां वृद्धित्वम्, भाविनिमित्तानामङ्गत्वम् ॥ वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थ इति गौडाः ॥ अन्येतु निषेकादौ कर्मांगवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः ॥ नान्दीश्राद्धसंज्ञा तूभयानुगता ॥

जो चंद्रिकामें पारस्करने लिखा है कि, गर्भाधान, सोमयज्ञ, सीमंत, पुंसवनमें श्राद्ध कर्मका अंग जानना और वृद्धिश्राद्ध भिन्नही है, कारण कि, वहां वृद्धिके समान लिखा है. गौडनिबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रजन्म, पुंसवन, गर्भाधान, नये घरमें प्रवेश, वेदका व्रत, जल आदिकी प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, वृषोत्सर्ग इनमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है, इनमें जिनका निमित्त होचुका है उनमें वृद्धि और जिनका निमित्त होनेयोग्य है उनमें अंग है. वृद्धिशब्द तो वृद्धिके धर्मोंके अतिदेश (बताने) के निमित्त है, यह गौड लिखते हैं, और तो निषेक आदिमें कर्मांग और वृद्धिश्राद्धकी एकत्रता कहते हैं. नांदीश्राद्ध यह संज्ञा तो दोनोंमें मिली है ॥

श्राद्धसर्वकर्तव्यनिर्णयः ।

अथेतिकर्तव्यता ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—'मालत्याः शतपत्राया मल्लिकाकुब्जयोरपि । केतक्याः पाटलाया वा देया माला न लोहिता ॥' श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः ॥ तथा—'सुवेषभूषणैस्तत्र सालंकारैस्तथा नरैः ॥ कुंकुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥' हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—'कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये ।' कुशा अपि वक्ष्यन्ते ॥

अब श्राद्धकी इतिकर्तव्यता लिखतेहैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपराशरका वाक्यहै कि, मालती, कमल, चमेली, कुब्ज, केतकी, पाटला, माला श्राद्धमें दे; और लालमाला न दे. श्राद्धमें मालाके निषेधका यह अपवाद है. इसीप्रकार लिखाहै कि, सुन्दर वेष भूषण अलंकार सहित और कुंकुम आदि अंगको लगाये हुये मनुष्य श्राद्धमें ब्राह्मणोंके सहित रहैं, और स्त्री भी उसी प्रकार गीत नृत्य आदिसे प्रसन्न

रहैं. हेमाद्रिमें ब्रह्मांडपुराणका कथन है कि, मंगलकी वृद्धिके निमित्त कुशाओंके स्थानमें दूर्वा होतीहै, कुशाभी लिखेंगे ॥

छन्दोगपरिशिष्टे–"प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा ॥' उभयतः दैवे पित्र्ये च ॥ वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ द्वाविति विंशतिः ॥ त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः ॥ अत्र विप्रालाभे स्त्रियोपि भोज्या इत्याहाशार्के वृद्धवसिष्ठः–"मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ॥" मातृत्रिके चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति हेमाद्रिः ॥ अत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा विप्राः पाद्ये पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन्तः ॥

छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, प्रातःकाल न्योतादियें युग्म ब्राह्मणोंको दैव और पितृश्राद्धमें बैठावै विश्वेदेवाओंके दो ब्राह्मण और पिताआदि एक २ के दो दो ब्राह्मण, इससे बीस ब्राह्मण, वा एक २ त्रिकमें दो दो इससे आठ ब्राह्मणोंका भोजन करावै. यहां ब्राह्मण न मिलैं तो स्त्रियोंको भी भोजन कराना, यह आशार्कमें वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, मातृश्राद्धमें ब्राह्मण न मिलैं तो पतिपुत्रयुक्त और सुन्दर कुलीन आठ स्त्रियोंको भोजन करावे और पूजा करै, चार माताके त्रिकमें, और चार मातामहीके त्रिकमें ये आठ हुईं, हेमाद्रिने कहाहै कि, यहां पितृश्राद्धमें प्राङ्मुख ब्राह्मण होतेहैं, पाद्यके निमित्त पितृपक्षमें चौकोर मंडल होताहै, यह जयंत लिखतेहैं ॥

हेमाद्रौ ब्राह्मे–'विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥' छन्दोगपरिशिष्टे–"गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् । नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥ ज्येष्ठोत्तरकारान्युग्मान्करात्राग्रपवित्रकान् । कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥" पित्रादेर्द्वौ द्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ संयोज्य प्रथमोपवेशितविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः ॥

हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, ब्राह्मणोंको प्रदक्षिण क्रमसे पूर्वाभिमुख बैठावै. छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि गोत्र नाम लेकर पितरोंको अर्घ्य दे, न यहां अपसव्य करनाहै और न पितृतीर्थ है. उत्तरके बडे करवाले दोकरके अग्रसे पवित्री रखकर अर्घ तन्त्रसे दे, एक २ को यहां अर्घ नहीं दिया जाता यहां यह सिद्धान्तहै कि, पिता आदिके दो २ ब्राह्मण उनके दक्षिण हाथ मिलाकर प्रथम बैठे हुये ब्राह्मणके हाथके ऊपर तंत्रसे दोनोंको अर्घ्य दे ॥

बह्वृचकारिकायां तु–"दत्ताघ्र्योदकदेशः स्यादर्घ्यदानं प्रतिद्विजम् । आवृत्तिरपि मन्त्रस्य प्रतिब्राह्मणमिष्यते ॥ प्रतिद्विजं पृथक्कुर्यान्निवीत्यर्घ्यानुमन्त्रणम् ॥" इत्युक्तम् ॥ "मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् । गायत्र्यानन्तरं स्तोत्रं मधुमन्त्रविवर्जितम् ॥ न चाश्नंस्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तकम् ॥" तथा–"संपन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते । सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ अक्षय्योदकदानं च अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥"

बह्वृचकारिकामें तो लिखाहै कि, दिये हुये अर्घ्यका एकभाग प्रति ब्राह्मणको दे, और प्रत्येक ब्राह्मणको मन्त्र पढना चाहिये, और प्रत्येक ब्राह्मण निवीती अर्थात् (अपसव्य) होकर अर्घ्यका अनुमन्त्रण

करै, और जब भोजन करनेकी इच्छा करै तब मधु ३ ये तीनवार कहै, गायत्रीके उपरान्त मधु मन्त्रको त्यागकर स्तोत्रको पढै और भोजन करनेके समय कभीभी पितृसूक्तको न जपै, इसीप्रकार सम्पन्न हुआ, तृप्त हुए यह पूछै जब ब्राह्मण सुसम्पन्न कहदें, तब शेष बचा अन्न उनको निवेदन करै. अक्षय्य जलका दानभी अर्घदानके तुल्य है उसमेंभी नियमसे षष्ठी विभक्ति करै, चतुर्थी कभी न करै ॥

चन्द्रोदये ब्राह्मे–"पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा । नान्दीमुखान्पितॄन्भक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ॥" तथा–"शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवास्तथा । मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डाञ्छ्रीफलसंनिभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् । द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥"

चन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखाहै कि, शकुनिसूक्त और स्वस्तिसूक्त जपै, कर जोडकर नान्दीमुख पितरोंको बुलावै, ऐसेही वाक्य है कि, चावल दही मधु बेर जौ इनको मिलाकर बेलफलके तुल्य पिंडोंको नान्दीमुख पितरोंके निमित्त विधिसे दे, मुनक्का आमला मूली जौकोभी प्रदान करै और इन्हींको दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको दे ॥

तत्रैव चतुर्विंशतिमते–"द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनिःक्षिपेत् । एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात् पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥" वसिष्ठः–"प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥" नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः ॥ अत्र पिण्डाः कृताकृता इत्युक्तम् ॥ तत्रैव भविष्ये–"पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥"

वहांही चतुर्विंशतिमतमें लिखाहै कि, अभ्युदयमें एक २ को दो दो पिंड दे, उन दोनोंमें एक नाम लेकर दूसरा मौन हो दे इसीप्रकार भिन्न २ पिंड देने. वसिष्ठका कथन है कि, पूर्वाभिमुख दैवतीर्थसे पूर्वको मुखवाली कुशाओंपर बैठा हुआ यजमान पिंडके पात्रको अधोमुख न करै, वृत्तिग्रन्थमें पिंडदानका यह मंत्र कहा है कि, नान्दीमुख पितरोंको स्वाहा उच्चारण करै. यहां पिंड करने वा न करने यह वहांही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे महाबाहो ! वृद्धिश्राद्धमें कुलधर्मको देखकर पिंड करै वा न करै ॥

छागलेयः–"अग्नौकरणमर्घ्यं वावाहनं चावनेजनम् । पिण्डश्राद्धे प्रकुर्वीत पिण्डहीने निवर्तते ॥" तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विप्रस्य वमनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धम् ॥ अत्र सांकल्पे विशेषः प्रयोगपारिजाते संग्रहे । "शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् ॥ न षष्ठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोभिजायते" नामगोत्रादिनिषेधोप्यत्रैव न तु सपिण्डकश्राद्धे इति स एव ॥ अत्रायं क्रमः । 'नान्दीश्राद्धे दैवे क्षणः क्रियताम्' इति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ओंतथेतिविप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भवन्तौ, प्राप्नुवाव इति वैश्वदेववत् पित्र्ये च द्विवचनान्तेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात् ॥

छागलेयका कथन है कि, अग्नौकरण अर्घ आवाहन अवनेजन ये पिंडश्राद्धमें करै, और जिसमें पिंड न हो वहां न करै तिससे यहां भोजनही प्रधान है. यदि भोजन करते समय ब्राह्मणको उलटी होजाय तो फिर उसी पार्वणको फिर करै यह सिद्ध हुआ. यहां संकल्पमें विशेष प्रयोगविधि पारिजातमें संग्रहके वाक्यसे लिखाहै कि, शुभार्थी मनुष्य वृद्धिश्राद्धमें प्रथमांत पदसे संकल्प करै, षष्ठीविभक्तिसे न करै, करै तो बडा दोष होताहै. नामगोत्रका निषेध भी इसमेंही लिखाहै सपिंडक श्राद्धमें नहीं यहभी उसनेही लिखाहै, यहां यह क्रम है कि, नान्दीश्राद्धमें यह कहकर दोब्राह्मणोंको एकवार ऐसे निमंत्रण देकर कि, दैवश्राद्धमें समय रखियो जब दोनों ब्राह्मण इसको (ॐ) ऐसा स्वीकार करैं तब कहदे कि, तुम प्राप्त हो, इसप्रकार ऐसे कहनेके उपरान्त ब्राह्मण हम आवैंगे कहै, विश्वेदेवाओंकी तुल्य पितरोंके दो ब्राह्मणोंमेंभी द्विवचनांत पदसे प्रयोग करै ॥

आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे–" योग्नौ तु विद्यमानेपि वृद्धौ पिण्डान्न निर्वपेत् । पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते । " बह्वृचपरिशिष्टे–'द्वौ दर्भौ पवित्रे पवित्राणि चत्वारि ॥ शन्नोदेवीत्यनुमन्त्रितासु यवानावपति॥' " यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा " इति स्वाहार्घ्या इति पृच्छति ॥ विश्वेदेवा इदं वो अर्घ्यं नान्दीमुखाः पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विर्द्विः॥ पाणौ होमोग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेत्यतो देवा अवंतु नो इत्यङ्गुष्ठग्रहणम् ॥ ' पावमानीः शंवतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेन्मधुवाता ऋचः स्थाने उपास्मै गायतेति पञ्च मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदंतेति च षष्ठी भुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्' इति ॥

आहिताग्निके निमित्त तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्यहै कि, जो अग्निके विद्यमान होते हुए वृद्धिमें पिंड नहीं देताहै उसके पितर नरकमें पचतेहैं बह्वृचपरिशिष्टमें कहाहै कि, दो कुशा दो पवित्रे और चार पवित्री शन्नोदेवी० इस मंत्रसे अनुमंत्रित करै,इस मंत्रसे (यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तःपुष्ट्या नांदीमुखान् पितॄन् इमान् लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा) जो बखेरै, फिर स्वाहार्घ्या यह प्रश्न करै कि, हे विश्वेदेवाओ यह अर्घ तुमको है, हे नान्दीमुख पितरो यह अर्घ्य तुमको है, यह कहकर नामके अनुसार अर्घ्य दे, फिर गंध आदि दे, फिर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, सोमाय पितृमते नमः०' इन मंत्रोंसे दो २ बार हाथमें हवन करै, फिर हे देव हमारी रक्षा करो यह कहकर ब्राह्मणोंका अंगूठा पकडे, फिर पावमानी ऋचा, पुनः शंवती, फिर ऐंद्री अप्रतिरथ पांच मधुमती और अक्षन्नमीमदन्त इस छठीऋचाको सुनावै, और मधुवाता ऋचाके स्थानमें उपास्मैगायता० इस ऋचाको पढै, और भोजनके बचे अन्नसे एक २ को दो २ पिंड दे ॥

चन्द्रिकायां वृद्धवसिष्ठः–" पितृप्रश्ने तु संपन्नं दैवे रुचितमित्यपि । दधिकर्कन्धुमिश्राश्च पिण्डाः कार्या यथाक्रमम् ॥" कात्यायनः–' त्यमू षुवाजिनम् ' इति विप्रांश्च विसर्जयेत् । ' नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् ' इत्यक्षय्यस्थाने स्वधां वाचयिष्य इत्यस्य स्थाने ' नान्दीमुखान्पितॄन् वाचयिष्ये ' इति ॥ न स्वधां प्रयुञ्जतीति ॥ अत्र साग्निरन-

---

१ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ऋ० १ । ६ । १८ ।

२ उपास्मैगायतानरः पवमानायेन्दवे । अभिदेवांइयक्षते ॥ ऋ० ६ । ७ । ३६ ।

ग्निर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात् । "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे ॥ एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते" इत्याशार्के शांखायनपरिशिष्टात् ॥

चन्द्रिकामें वृद्धवसिष्ठका कथन है कि, तृप्तिके प्रश्नमें सम्पन्न और दैवश्राद्धमें उचित पूछे, और दही बेर मिलाकर क्रमसे पिंडदे. कात्यायनका कथन है कि, 'त्वमूषुवाजिनं' यह कहकर ब्राह्मणोंका विसर्जन करै, नान्दीमुख पितर प्रसन्न हों, इस अक्षय्य जलके स्थानमें और 'स्वधां वाचयिष्ये' इसके स्थानमें नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये यह उच्चारण करै, स्वधा शब्दका प्रयोग न करै, यहां साग्नि हो वा निरग्नि हो पहले वैश्वदेव करै कारण कि, आशार्कमें सांख्यायन परिशिष्टका वाक्य है कि, वृद्धिश्राद्धके आदिमें, क्षयके अन्तमें, पार्वणके वीचमें और एकोद्दिष्टकी निवृत्ति होनेपर वैश्वदेव करना चाहिये ॥

हेमाद्रौ तु–"शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः । श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्" इति चतुर्विंशतिमतान्नान्दीश्राद्धेप्यन्ते वैश्वदेव उक्तः ॥ बह्वृचानामपि वृत्त्यालोचनात्तथैव ॥ पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयम् ॥ अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं वेत्युक्तं प्राक् ॥ इति निर्णयसिन्धौ वृद्धिश्राद्धम् ॥

हेमाद्रिमें तो लिखाहै कि, शेष बचा अन्न ब्राह्मणोंकी आज्ञासे लेकर वैश्वदेव क्रियाको संपादन करै, श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नमेंसे वैश्वदेव करै, यह चतुर्विंशतिका मतहै, नान्दीश्राद्धकेभी अन्तमें वैश्वदेव लिखा है, बह्वृचोंकीभी वृत्ति देखनेसे इसीप्रकार प्रतीत होताहै, पूर्वोक्त कथन तो जिनका परिशिष्ट हो उनके विषयमें है वा किसी औरके विषयमें है, यह जानना चाहिये. इसमें श्राद्धका अंग तर्पण नहीं होता यह पहले कह आयेहैं ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वृद्धिश्राद्धप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

अथ जीवत्पितृकश्राद्धनिर्णयः ।

अथ जीवत्पितृकश्राद्धम् ॥ तत्रानेकपक्षा दृश्यन्ते ॥ जीवन्तं पितरं भोजयित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः ॥ होमान्तमेव कुर्यादित्यन्यः ॥ "होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः । पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निपृणुयात् परौ" इति यज्ञपार्श्वोक्तेः ॥ 'यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ 'जीवतां पिण्डानग्नौ हुत्वा परेभ्यो ज्ञेयम्' इत्यपरः ॥ 'जुहुयाज्जीवेभ्यः' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीतरः ॥ 'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः' इति निगमात् ॥ 'तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद्द्वाभ्यामेव न संशयः' इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः॥ एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः ॥ "प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत् । पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदयभविष्योक्तेः ॥

अब जीवत्पितृक श्राद्धको लिखतेहैं, उसमें अनेक पक्ष हैं कि, जीते पिताको भोजन कराके पिछले दोनोंका श्राद्ध करै, यह एक मत है, होमान्तही करै वह दूसरा मतहै, कारण कि, यज्ञपार्श्वका कथन है कि, होमके अन्ततक पितृयज्ञ होताहै यदि पिता जीवते होंय तो परले दोको पिण्डप्रदान करै. और आपस्तम्बने भी यह लिखा है कि, यदि पिता जीवै तो न दे, किन्तु होमपर्यन्त कर्मको करके पूरा करै;

आश्वलायनने लिखा है कि, जीतेहुओंके पिंड अग्निमें होमकर पिछलोंको दे यह दूसरा पक्ष है, जीते हुएके पिंडोंका अग्निमें होम करै, जीवतोंको और मृतकोंको पिंड दे यह तीसरा पक्ष है, कारण कि, ऐसा शास्त्रमें लिखा है कि, जीते हुये और मृतक हुओंको अवश्य दे, यह हिरण्यकेतुका कथन है, इससे जीवत्पिता दोके निमित्त करै, इसमें संशय नहीं इस भविष्यपुराणके वाक्यसे दोकोही दे, यह और पक्ष है, ये सब पक्ष कलियुगमें वर्जित हैं. पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यका यह वचन है कि, मनुने श्राद्धमें प्रत्यक्ष पूजनको वर्जित किया है और उनको पिंडोंका देना भी महापातकके समान है ॥

चन्द्रिकाप्येवम् । तस्मात् पितरि जीवति श्राद्धानारंभ एवेत्येकः पक्षः 'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते' इति कात्यायनोक्तेः ॥ 'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्' इति हारीतोक्तेश्च ॥ पितुः पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः ॥ ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्' इति मनूक्तेः ॥ 'पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अयं बहुसंमतः पक्षः ॥

चंद्रिकामें भी ऐसेही लिखा है, तिससे पिताके जीवते श्राद्धका प्रारम्भही नहीं होता यह एक पक्ष है कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, पिता सहितको पितृकर्ममें अधिकार नहीं है. हारीतका कथन है कि, जिसका पिता जीता हो वह पुत्र श्राद्धकालको त्याग दे यह सिद्धांत है, पिताके पिता आदिको दे, कारण कि मनुका कथन है कि, पिता जीवित होय तो पहलोंको पिंड दे, और कात्यायनने यह और श्रुति लिखी है कि, पितासहित पुत्र पिताके पितरोंको दे, यह पक्ष बहुतोंको सम्मत है ॥

अन्ये शाखाभेदेन ज्ञेयाः ॥ एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम् ॥ "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्" इति विष्णूक्तेः ॥ 'एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके' इति पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणाच्च ॥ 'पितरि जीवति तु स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमातामहयोः कुर्यात् ॥' 'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति वक्ष्यमाणवचनात्, इति पितामहचरणाः ॥

और पक्ष शाखाभेदोंसे जान लेने, इसीप्रकार मातामहके जीवित रहते भी ऊहसे श्राद्ध करना, कारण कि विष्णुका कथन है कि, बुद्धिमान् मनुष्य मातामहोंका भी इसीप्रकार मन्त्रोंके ऊहसे यथायोग्य प्रीतिसे श्राद्ध करै, शेषोंका श्राद्ध मंत्रहीन करै, इसी प्रकार माता आदिकोंका भी श्राद्ध करै,कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका कथन है कि, इसी प्रकार मातामहादिवर्गमें है, पिता जीता होय और माताकी मृत्यु होगई होय तो पिताकी माता और मातामहका श्राद्ध करै, कारण कि, यह वाक्य लिखैंगे कि, जिनको पिता दे उनको पुत्र दे, यह हमारे पितामह लिखते हैं ॥

मदनरत्ने तु 'जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात्' इत्युक्तम् ॥ कालादर्शेप्येवम् ॥ 'मृते तु पितरि जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात्' इति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः ॥ दाक्षिणात्यास्तु–"पितृवर्गे मातृवर्गे तथा मातामहस्य च । जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्" इति वचनात्तद्वर्गत्याग एवेत्याहुः ॥ एवं पतितसंन्यस्तपितृकादेरपि ज्ञेयम् ॥ "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः" इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥ संन्यस्ते जीवतीत्यर्थः ॥ मृते तु संन्यस्ते तदाद्ये एव देयम् ॥ मृतेपि परेभ्य एवेति गौडाः ॥

मदनरत्नमें तो यह लिखा है कि, जिसका पिता जीवित हो वह अपनी माता और माता महको दे, कालादर्शमें भी इसीप्रकार लिखा है. पिता मरगया होय और माता जीवित होय तो वृद्धिश्राद्धमें पितामही आदिको दे, यह स्मृतितत्व आदि गौड ग्रन्थोंमें लिखा है. दाक्षिणात्योंका तो यह मत है कि. पितृवर्ग मातृवर्ग और मातामहवर्गमें जिस वर्गमें आदिका जीवित होय तो उस वर्गको त्याग दे, इस वाक्यसे उस वर्गका निषेधही है, इसी प्रकार जिसका पिता पतित व संन्यासी होय उसको भी जानना चाहिये, कारण कि, यह षट्त्रिंशत्का मत है कि, वृद्धिश्राद्ध तीर्थश्राद्धमें और पिता संन्यासी होगया हो वा पतित हो तो जिनको पिता दे उनको स्वयं पुत्र दे, संन्यासी जीता होय तो पिछलोंको दे, और मरगया होय तो संन्यासी आदि तीनोंको प्रदान करै, मरनेपर भी दूसरोंकोही दे यह गौडोंका मत है ॥

कात्यायनोपि—"ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥" अयं च संन्यस्तपित्रादेरपि शेषात्सर्वश्राद्धेधिकारः ॥ एतत्त्रिदण्डिपरम् ॥ एकादशाहपार्वणवार्षिकाद्यपि तस्यैव ॥ 'अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ।' इत्युक्त्वा—'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते' इत्युशनसा विशेषोक्तेः ॥ 'ब्राह्मणादिहते' इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः ॥ अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः ॥ इदमेव तु युक्तम् ॥

कात्यायनने कहा है कि, पिता ब्राह्मण आदिसे मराहो, पतित हो, संन्यासी हो, वा क्रमसे मृत्युको प्राप्त हुआ होय तो पुत्र उनको पिंड दे, जिनको पिता देता था. यह संपूर्ण श्राद्धोंमें अधिकार अविशेषसे उसके निमित्त है जिसका पिता संन्यासी हो यह भी त्रिदण्डके विषयमें कहा है, एकादशाहमें पार्वण और वार्षिक आदिभी उसकेही होते हैं, कारण कि, कथन है कि, ग्यारहवें दिन संन्यासीका पार्वण करै, उशनाने यह विशेष लिखा है कि, त्रिदंडके ग्रहणसेही वह प्रेत नहीं होता, ब्राह्मण आदिसे मरेका न करै, यह निषेध तो एक दंडीके विषयमें है, इससे परमहंसोंका वार्षिक श्राद्ध आदि भी न करै यह शूलपाणि श्राद्धतत्व आदि गौडग्रन्थोंमें लिखा है यही तो युक्त है ॥

यत्तु हेमाद्रौ कौण्डिन्यः—"दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च" इति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् ॥ मैत्रायणीयपरिशिष्टे—"उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे ॥ तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥" तत्रैव—"महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते । जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवित् ॥" गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम् ॥ "अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति" इति तत्रैवोक्तेः ॥ गयाप्राप्तौ प्रासङ्गिक्यात् ॥ 'गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समाचरेत्' इति वचनात् ॥ तेन मृतमातृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात् ॥

जो हेमाद्रिमें कौण्डिन्यका कथन है कि, दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध और महालयश्राद्ध तिलोंसे तर्पण इनको जीवत्पितक न करै, वह संन्यासीसे पृथक् पिताके विषयमें है, मैत्रायणीय परिशिष्टमें कहा है कि, विवाह पुत्रजन्म पितरोंका पूजन तीर्थ ब्राह्मणका आवाहन ये छः जीवत्पितकको श्राद्धके काल हैं, वहांही कथन

है कि, संपूर्ण महानदी तीर्थ गयामें मरण इनमें जीवत्पिता भी पार्वण विधिसे श्राद्ध करै. गयामरण मातासे भिन्नका लेना कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, अन्वष्टका गया इनमें क्षयाहके दिन माताका श्राद्ध माताके जीवते भी पुत्र करै. गयाकी प्राप्ति भी प्रसंगसे लेनी कारण कि, ऐसा कथन है कि, प्रसंगसे गयामें जाकर माताका श्राद्ध करै, तिससे जिसकी माता मृत हुई हो वह गयामें उसीका पार्वणश्राद्ध करै ॥

तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्शस्मृतिदर्पणादयः ॥ अन्ये तु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्राद्धं भवत्येव गयायामित्याहुः ॥ यदा तु पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति, तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्येवं श्राद्धम् ॥ तत्र मातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यादिति त्रिस्थलीसेतौ ॥ तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेति केचित् ॥ आद्यान्ते एवेत्यन्ये ॥ मध्यमान्ते इत्यपरे ॥ संकोचे हेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीत्युक्तं प्रतिभाति ॥

वह जीती होय तो तीर्थश्राद्ध भी न करै, यह कालादर्श और स्मृतिदर्पण आदिमें लिखाहै और तो यह लिखतेहैं कि, जाकर श्राद्ध न करै, साधारणसे प्राप्त तीर्थश्राद्ध गयामें तो होताहीहै, जब पिताका प्रतिनिधि होकर पुत्र गयाको गमन करै, तब यजमानके पिता पितामह प्रपितामहोंका श्राद्ध करै, और माताका पिताकी पत्नीरूपसे एकोदिष्ट श्राद्ध करके अपनी मातृरूपसे फिर पार्वणश्राद्ध करै, यह त्रिस्थलीसेतुमें कहाहै, वहभी फल्गु विष्णुपद अक्षयवटमेंही करना यह किन्हीका कथन है, आदि अन्तमें करना यह कोई लिखतेहैं, मध्य और अन्तमें करना यह दूसरे कहतेहैं; हमें तो यह उचित प्रतीत होताहै कि, संकोचमें कोई कारण नहीं इससे गयाका सब श्राद्ध माताके निमित्त करना चाहिये ॥

यत्तु मदनपारिजाते—"न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः" इति सुमन्तूक्तेः ॥ साग्नेरेव जीवत्पितृकस्य तीर्थादिश्राद्धमुक्तम् । साग्नेरपि मैत्रायणीयशाखीयस्यैव नान्येषाम् । 'षडेते जीवतः पितुः' इति तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावलीदिवोदासाद्यास्तदयुक्तम् ॥ सौमन्तवं पिण्डपितृयज्ञविषयं संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं वेति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः ॥ वृद्धौ तीर्थे चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वाच्च ॥ तथा निरग्नेरपि नान्दीश्राद्धमुक्तं प्राक् ॥ एवं पितामहजीवनेऽपि ज्ञेयम् ॥ विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः ॥

जो मदनपारिजातमें यह कहाहै कि, जीवत्पितृक द्विजको अग्निके विना श्राद्ध न करना चाहिये, और साग्निभी उसकोही लिखाहै कि, जिसकी शाखा मैत्रायणीय होय औरको नहीं; कारण कि, परिशिष्टमें यह लिखा है कि, ये छः (६) जीवत्पितृकको करने यह रत्नावली दिवोदास आदिका कथन है सो अनुचितहै, कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखाहै कि, सुमन्तुका कथन पिंडपितृयज्ञमें है, वा संन्यासी पितासे पथक् विषयमें है और वृद्धि तिथिकी प्राप्ति इत्यादि वाक्यको साधारण होनेसे औरको भी मानने योग्य है. इसीप्रकार निरग्निको नान्दीमुख श्राद्ध पहले लिखा है, ऐसेही पितामहके जीवनमें जानो. विशेष तो हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें स्पष्टरूपसे देखलेना चाहिये ॥

अथ पितामहे जीवति मृते च पितरि यद्यपि 'पितामहो वा तच्छ्राद्धे भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः' इति मनुना जीवतः पितामहस्य भोजनमुक्तम्, तथापि प्रत्यक्षार्चनस्य पूर्वं निषिद्धत्वात्

पितामहं विहाय पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यो देयम्। "पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः। पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्" इति मनूक्तेः॥ अयमेव सर्वसंमतः पक्षः॥

अब उसका निर्णय कहते हैं, जिसका पितामह जीवितहो और पिता मृतक होगया हो, यद्यपि मनुने वा पितामह उस श्राद्धको भोजन करै इससे जीते हुये पितामहको भोजन कराना लिखाहै, तथापि प्रत्यक्ष पूजनका पूर्वमें निषेध कह आये हैं इससे पितामहको छोडकर पिता प्रपितामह वृद्धप्रपितामहोंको ही जानना चाहिये, कारण कि, मनुका कथन है कि, जिसका पिता मृतक होगया हो, और पितामह जीवित होय वह पिताका नाम लेकर प्रपितामहका ले, यही पक्ष सबको सम्मत है॥

यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे-"पितामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत्॥ पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रपितामहः" इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणमाह, तत्तीर्थपितृयज्ञपरम्॥ वृद्धौ पूर्वोक्तमेव॥ एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमात्रे मृते परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम्॥ 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः' इति कात्यायनोक्तेश्च॥

जो छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, पितामह जीता होय तो मरे हुये पिताको पिण्डदान करै उसका भी पिता मरगया होय और प्रपितामह जीता होय तो एक पुरुष वा दो पुरुषका पार्वण करै, वह तीर्थपर पितृयज्ञके विषयमें हो, वृद्धिश्राद्धमें तो पूर्वोक्त ही उचित है, इसीप्रकार पहले दोनों मृतक हुये हों और प्रपितामह जीता होय पिता मृतक होगया होय और अगले दोनों जीते होंय तो वृद्धप्रपितामहादिको जानना, कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, ब्राह्मण जीते हुएको वा मरे हुएको जलदान करै वा पिताके पितरोंको वह दान करै जो जीवत्पितृक हो यहभी अपर श्रुति है॥

एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽह हेमाद्रौ विष्णुः-पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्॥ यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात्॥ यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां दद्यात्॥ यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात्॥ यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहप्रपितामहाय दद्यात्॥ "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्" इति अत्र पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रादिभ्यः यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथात्रापीत्यादि सर्वमतिदेश्यम्॥ एवं मातृजीवनेपीति शूलपाणिकालादर्शौ। तन्न॥

इस सबको विचार करके हेमाद्रिमें विष्णुका कथन है कि, पिताके जीते जो श्राद्ध करै वह उनका करै जिनका पिता करता हो, पिता पितामह प्रपितामहके जीते न करै जिसका पिता मृतक हुआ हो वह पिताके निमित्त पिण्ड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे जिसके पिता प्रपितामह दोनों मृत्युको प्राप्तहुये होंय वह पितृके निमित्त पिण्ड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे जिसके पिता पितामह मृत्युको प्राप्तहुए होंय वह उन दोनोंके पिण्डको देकर पितामहके पितामहको दे, मातामहोंका भी श्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्य

इसीप्रकार मंत्रके ऊहसे न्यायके अनुसार करै, और शेषोंका मंत्रसे भिन्न करै. यहां पिताके मातामहके जीवते उसके पिता आदिको दे जैसे वहां तीनके जीवते न करै तैसेही यहांभी न करै, यह सब अतिदेश करै इसी प्रकार माताके जीवनमें भी समझना चाहिये यह शूलपाणि कालादर्शमें लिखाहै सो उचित नहीं ॥

येभ्य एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसङ्गादिति दिक् ॥ उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक् ॥ यत्त्वत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं पित्रे पिण्डं निधायेति पितुरेकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात् ॥ तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञेयम् ॥ 'व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना' इति वचनात् ॥ दर्शादौ तु पितुरेकोद्दिष्टमेव कार्यम् ॥ 'न जीवन्तमतिददाति' इति श्रुतेः ॥ "जीवेत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत् । पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः" इति यज्ञपार्श्वोक्तेः ॥

कारण कि, 'येभ्य' एव इत्यादि यत् शब्द आदि व्यक्तिविशेषके कथन करनेवाले हैं इससे प्राप्तिका प्रसंगही नहीं है, यह संक्षेपसे कहाहै. उत्तरके आधे श्लोकका पहिले अर्थ होचुका, जो यहां विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, पिताको पिंडदेकर, पिताका एकोद्दिष्टविधिसे श्राद्ध करके प्रपितामह आदिका पार्वणश्राद्ध करै, वह व्युत्क्रमसे मृतकहुएके सपिंडी न करनेके पक्षमें है वही सपिंडीके स्थानमें जानना. व्युत्क्रमसे जो मरें उनकी सपिंडी न करनी चाहिये, यह कथन है. अमावस्या आदिमें तो पिताका एकोद्दिष्टही करै, कारण कि यह श्रुति है कि, जीवतेको नदे, जिसका दादा जीता हो और पिता मरगया हो वह एक पिताकोही दे ऐसा बुद्धिमानोंका कथन है यह यज्ञपार्श्व लिखतेहैं ॥

'पितामहे जीवति वै पितर्येव समापयेत्' इति हारीतोक्तेश्च ॥ शिष्टास्तु—"व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ॥ यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः ॥" इति माधवीये स्कान्दोक्तेर्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः ॥ एष विधिर्निषेधरूपः ॥ त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह—'त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्' इति तद्दर्शादिविषयम् । नान्दीश्राद्धं तु परेभ्यस्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पतरुः ॥

और हारीतने भी कहाहै कि पितामह जीता होय तो पितापर ही श्राद्धको पूर्णकर दे, शिष्ट तो कहते हैं कि, व्युत्क्रमसे मरोंकी सपिण्डी नकरै, यदि माता पिता भर्ता जीताहो तो यह विधि नहीं है ऐसा माधवीयमें स्कंदके कथनसे व्युत्क्रमसे मरेको सपिंडीका अभाव पितृव्य आदिके विषयमें लिखाहै, यह कहते हैं (एष) इसीविधिसे त्यागरूप लेना, तीन जीते होंय तो विष्णुने यह लिखाहै कि तीन जीवित हों तो न करै यह अमावस्याके विषयमें है, नान्दीश्राद्ध तो पिछले तीनोंका होताहीहै यह कल्पतरुने लिखाहै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—'दद्यात्त्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत्त्रितयं यदि' इति मनूक्तेः सर्वत्र विकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इत्याहुः ॥ सुदर्शनभाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवत्पित्रादिना व्युत्क्रममृतपित्रादिना च कार्यमेवेत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने क्रतुः—'अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । चन्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोगतः ॥ जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाखिलम् ॥" अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णय भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ च ज्ञेयाः ॥ इति निर्णयसिन्धौ जीवत्पितृकादिश्राद्धम् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदय तो, तीन जीते होंय तो परले तीनोंको दे इस मनुके वाक्यसे सर्वत्र विकल्प होताहै उसके देशाचारसे व्यवस्था जानना ऐसा कहतेहैं. सुदर्शन भाष्यमें तो लिखा है कि, मासिक श्राद्ध व्युत्क्रमसे

न्यरे पिता आदिका उसको न करना चाहिये, जिसका पिता जीताहो उसे मदनरत्नमें क्रतुका कथन है कि, अष्टका आदि संक्रान्ति मन्वादि, युगादि, चन्द्रसूर्य ग्रहण, व्यतीपात, इनमें अपनी इच्छासे यथायोग्य अर्चन करके जीवत्पिता सम्पूर्ण काम्य श्राद्ध न करै, और विशेष हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें और भट्ट-कृत त्रिस्थलीसेतुमें लिखाहै वहां विस्तारपूर्वक देखलेना चाहिये ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ जीवत्पितृकश्राद्धम् ।

अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः ।

पृथ्वीचन्द्रोये मरीचिः–'बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥' ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः ॥ तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितसंस्कारत्वात्सर्वैः कार्याः एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् ॥ मिताक्षरायां नारदः–''भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक् ॥''

अब विभक्त और अविभक्तका निर्णय लिखतेहैं । पृथ्वीचन्द्रोदयमें मरीचिने लिखाहै कि, यदि पिताके बहुत पुत्र एकत्र रहते हों तो सबका मत जानकर बडे भ्राताकोही करना चाहिये, कारण कि, इकट्ठे द्रव्यसे एकने किया वह सबने किया जानना चाहिये, जेठा भी करै, तोभी उसके फलभागी सबही होतेहैं, इससे जो ब्रह्मचर्य आदि नियम कहेहैं वे संस्कारके अंग होनेसे सबको करने चाहिये. इसीप्रकार बराबर होनेसे संसृष्टियोंको भी जानना चाहिये, मिताक्षरामें नारदका कथन है कि, अविभक्त भाइयोंका धर्म एकही प्रवृत्त होताहै, और विभाग होनेपर उनका धर्मभी भिन्न २ होजाताहै ॥

बृहस्पतिरपि–'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् । एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥' अत्र यद्यप्यविशेषश्रवणात् ब्रह्मयज्ञसंध्यादिष्वप्यविभक्तानां पृथङ्निषेधः प्राप्नोति, तथापि द्रव्यसाध्यश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव सः ॥ द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् ॥ यानि तु द्रव्यासाध्यानि मन्त्रजपोपवाससंध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवाधिकारः, द्रव्यव्ययाभावेनुमत्यनपेक्षणात् ॥ 'द्रव्येण वा विभक्तेन' इत्यस्याविषयत्वात् ॥

बृहस्पतिने भी कहाहै कि, एकपाकसे वसते हुये भाइयोंका पितृ देव ब्राह्मण इनका अर्चन एक होता है, और भिन्नोंका तो वही घर २ में होजाता है. यहां यद्यपि विशेषके अभावसे ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या आदिकाभी अविभक्तोंको भिन्न २ निषेध पाता है, तोभी, द्रव्यसे साध्य श्राद्ध वैश्वदेव आदिमेंही निषेध कहाहै, कारण कि, द्रव्यके स्वामी अनेकहैं, इससे एकको व्यय करनेका अधिकार नहीं है, और जो देहसे साध्य मन्त्र, जप, व्रत, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, पारायण आदि नित्य, नैमित्तिक, वा काम्य कर्म हैं उनमें तो भिन्न २ ही अधिकार है, कारण कि इनमें द्रव्यका व्यय नहीं इस कारण उनकी अनुमतिकी अपेक्षासे ''द्रव्येण चाविभक्तेन'' इस पूर्वोक्त वाक्यका विषयही नहीं है ॥

'पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्तथा' इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च ॥ अग्निहोत्रशब्दोग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः । तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् ॥ पितृश्राद्धादिषु तुल्यफलेषु

नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः "एकोपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम् । आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ।" इति वचनात् ॥

प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने लिखा है कि, एक पाकवाले द्विज भ्राताओंके भी ब्रह्मयज्ञ अग्निहोत्र देवपूजा संध्या भिन्न २ होती है. अग्निहोत्र शब्दसे अग्निसे साध्य वेद और स्मृतिसे कहे नित्य कर्मका ग्रहण करना, उनमें भी औरकी अनुमतिसेही न्यायकी साम्यतासे अधिकार है, और समान फलवाले पितृश्राद्ध आदि नित्य कर्मोंमें तो अनुमति विना भी एकका अधिकार है, कारण कि, ऐसा कथन है कि, एक भी भाई आपत्कालमें कुटुम्बके निमित्त और विशेषकर धर्मके निमित्त स्थावर धनका दान गिरवी और विक्रय करै ॥

धर्मार्थेऽवश्यकर्तव्ये पितृश्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः ॥ केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्पाकत्वे देशान्तरे च दार्शिकाब्दिकयोः पृथक्त्वमाहुः । "भ्रातॄणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि । वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक्" इति हारीतोक्तेः ॥ "अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि । देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च" इति यमोक्तेश्चेति ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तदयमर्थः ॥ पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृमनुष्ययज्ञानन्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् ॥ "होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम्" इति व्यासोक्तेश्च ॥

विज्ञानेश्वरने "धर्मार्थे" इसका यह अर्थ कहा है कि, अवश्य करने योग्य पिता आदिके श्राद्धके निमित्त कोई तो यह कथन करते हैं कि, अविभक्त भाइयोंके भिन्न २ पाक होनेपर और देशान्तरमें अमावस्याका और वार्षिक श्राद्ध भिन्न २ होते हैं, कारण हारीतका कथन है कि, अविभक्त भाइयोंका पृथक् पाक होय तो वे वैश्वदेव आदि श्राद्ध भिन्न २ करैं, और यमका भी कथन है कि, अविभक्त पुत्र पिताके क्षयाहदिनमें और अमावस्याके देशान्तरमें भिन्न २ श्राद्ध करैं, उसमें मूल नहीं है, इससे यह अर्थ है कि, पञ्चमहायज्ञके मध्यमें देवभूतपितृमनुष्यके यज्ञोंको अन्य भ्राताओंकी अनुमतिसे ज्येष्ठही भ्राता करै, और व्यासका भी कथन है कि, होम अग्निदानको त्यागकर अविभक्त और साझी भ्राताओंमें कभी भी पदार्थको एक भाई न भोगे ॥

यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेन्नं सिद्ध्येत्तेन तूष्णीमग्नौ किंचित् क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् ॥ यस्य त्वेषामग्रतोन्नं सिद्ध्येत्स नियुक्तमग्नौ कृत्वाग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः । आश्वलयनस्तु पाकपार्थक्ये पृथक्त्वं तदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह—"वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः । एकस्तु चतुरो यज्ञान्कुर्याद्गाग्यज्ञपूर्वकम् ॥ अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः । कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान्भोजनात्प्राग्दिने दिने" इति ॥

और जहां जेठने वैश्वदेव न किया हो वहां कनिष्ठ भ्राता अग्निमें मौन हो कुछ अन्नको फेंककर भोजन करै, और जिसका सब भाइयोंकी अग्निसे अन्न सिद्ध हो वह आज्ञासे अग्निमें अन्न डालकर और ब्राह्मणको देकर फिर भोजन करै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयके अविभक्ताधिकारमें गोभिलने कहा है. आश्वलायनने तो यह लिखा है कि, पाक पृथक् होय तो भिन्न २ एक होय तो एकही वैश्वदेव आदि होते हैं; कारण कि, यह कथन है कि, विभक्त भाई यदि एकपाकसे होते होंय तो ब्रह्मयज्ञ आदि चार यज्ञोंको एकही करै, अविभक्त वा विभक्त द्विजाति यदि भिन्न पाकवाले होंय तो भोजनसे प्रथम प्रतिदिन भिन्न २ यज्ञ करैं ॥

ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव ॥ देवपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथग्वा ॥ दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव ॥ तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्य । भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् ॥ गयाश्राद्धेप्येवम् । "एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषां तु समवेतानां यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां गतिम्" इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः ॥ काम्येपि दानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिकारः ॥ द्रव्यासाध्यजपादौ तां विनापि ॥

ब्रह्मयज्ञ, स्नान, संध्या, तर्पण आदि तो पूर्वकहे हेतुसे भिन्न २ होते हैं, देवपूजा तो ऊपर कहे वाक्योंसे एकत्र वा भिन्न २ करनी अमावस्या ग्रहण श्राद्ध आदि तो एकको और तैसेही तीर्थश्राद्ध आदि भी एकवार सबको करने चाहिये, भेदसे भिन्न २ प्राप्त होय तो पृथक् २ करने. गयाश्राद्धमें भी इसीप्रकार जानना. हेमाद्रिमें कौर्मका कथन है कि, बहुतसे शीलवान् और गुणवान् पुत्रोंकी इच्छा करनी, यदि इकट्ठे रहते हुये उनमें एक भी गयाको गमन करै, तो उसने पितर तारदिये और वह परमगतिको प्राप्त होता है, काम्यकर्मके दान होम आदिमें भी औरकी अनुमतिसे और जिनमें द्रव्य न लगै ऐसे जप आदिमें तो अनुमतिके विना भी अधिकार है ॥

अपरार्के पैठीनसिः–विभक्तैस्तु पृथक्कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥" सांवत्सरात्पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव । तदाह लघुहारीतः– "सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥" सपिण्डनं मासिकोपलक्षणम् ॥ "अर्वाक्संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य तु । ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक् ॥" इति व्यासोक्तेः ॥

अपरार्कमें पैठीनसिका कथन है कि, विभक्त भाई वार्षिक श्राद्ध भिन्न २ करैं, और अविभक्तोंमें तो एकने जो किया वह सबका किया होता है, वर्षदिनसे पहले मासिक तो एकत्र होते हैं, सोई लघुहारीतने लिखाहै कि, सपिंडीकरण पर्यन्त जो षोडश श्राद्ध हैं, उनको विभक्त भाई भी भिन्न २ करैं, इस वाक्यसे सपिंडी मासिकका उपलक्षण कहा है. व्यासका कथन है कि, वर्षदिनसे प्रथम सब श्राद्धोंको बडा भाई एकत्र करै, और सपिंडीके पीछे सब भाई भिन्न २ करैं ॥

उशनाः "नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥" मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं प्राक् ॥ यत्तु वृद्धवसिष्ठः–"मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं तथा । ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा" इति ॥ तन्निर्मूलम्॥ बह्वृचपरिशिष्टे 'नवश्राद्धं सह दद्युः' ॥

उशनाका कथन है कि, नव श्राद्ध सपिंडी और अन्य षोडश श्राद्धोंको विभक्त भाइयोंमें एकही करै, मघा त्रयोदशीके श्राद्धको तो अविभक्त भ्राताभी भिन्न करैं, यह पहले कथनकर आये. जो वृद्धवसिष्ठका कथनहै कि, मासिक वृषोत्सर्ग सपिंडी प्रथम वार्षिकको ज्येष्ठ भाईही करै, सो निर्मूल है, कारण कि, बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, नव श्राद्धको एकत्र ही देना चाहिये ॥

अथ तीर्थश्राद्धनिर्णयः ।

अथ तीर्थश्राद्धम् ॥ तत्र यद्यप्यस्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुरेव जागर्ति, तथापि किंचिदुच्यते ॥ तत्र यात्रायां–"सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः । प्रायश्चित्ती

व्रती तीर्थं पत्नीविरहितोपि वा ॥ यज्ञेष्वनधिकारी वा यश्च वा मन्त्रसाधकः ॥ " इति कौर्मादिवचनात्साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः ॥ भारते-"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम । न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः ॥" स्कान्दे विधवाधर्मेषु-'स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं मुहुः ।' एतत्पुत्राद्यनुमत्यैव ॥ सधवायाः पत्या सहैवेति प्रागुक्तम् ॥

अब तीर्थश्राद्धको लिखतेहैं । उसमें यद्यपि हमारे पितामहके रचे त्रिस्थलीसतुमें पूर्णनिर्णय है तथापि कुछ कहते हैं, वहां इन कूर्मपुराणोंके वाक्यसे अग्नि और पत्नीसहितकाही अधिकार है कि, अग्नि और पत्नीसहित इन्द्रियोंको रोककर तीर्थयात्रा करै, जो स्त्रीके विना तीर्थको गमन करताहै, वहभी प्रायश्चित्तका भागीहै भारतमें कहाहै कि, हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षत्री वा वैश्य वा शूद्र तीर्थमें स्नानकरनेसे ये महात्मा निन्दित योनिमें जन्म नहीं लेते. स्कन्दपुराणके विधवाधर्ममें कहाहै कि, स्नान दान तीर्थयात्रा विष्णुके नामका जप वारम्बार करै, यह भी पुत्रकी अनुमतिसे जानना चाहिये, और सुहागिनी तो पतिके संगही गमन करै ॥

काशीखण्डे-'मातुः पितुः क्षेप्तुमनास्तथास्थि सुतस्तु कुर्यात्खलु तीर्थयात्राम् ।' तद्विधिः स्कान्दे-"तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे । गणेशं च पितॄन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च ॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः । आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥" उपवासात् प्राग् मुण्डनं च कार्यम् ॥ "प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः । कचानां वपनं कुर्याद्यथा न विकचो भवेत् ॥" इति विष्णूक्तेः ॥ प्रायश्चित्तार्थयात्रायां गयायां चैतदित्येके ॥

काशीखण्डमें कहाहै कि, जब पुत्रके मनमें माता पिताके अस्थि डालनेकी अभिलाषा हो, तब तीर्थयात्रा कर उसकी विधि स्कंदपुराणमें यह कही है कि, तीर्थयात्राको गमन करताहुआ मनुष्य व्रत करै गणेश पितर ब्राह्मण साधु इनकी यथाशक्तिसे पूजा करके पारणाके अनन्तर नियमोंको धारणकर फिर आकर पितरोंकी अर्चा करनेसे यथोक्त फलभागी होताहै. व्रतमें प्रथम मुण्डनभी करना चाहिये, कारण कि, विष्णुका कथन है कि प्रयागतीर्थकी यात्रा पितामाताका मरण इनमें केशोंका मुण्डन करावे, वृथा केशोंसे रहित न हो किन्हीका कथन है कि; प्रायश्चित्तके निमित्त यात्रामें और गयामेंभी मुण्डन करावै ॥

केचित्तु हेमाद्रौ भारते-"केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न च शस्यते । अतो न कार्यं वपनं गयाश्राद्धार्थिना सदा ॥ ये भारतेस्मिन् पितृकर्मतत्पराः संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः । ऋणक्षयार्थं पितृतीर्थमागतास्तेषामृणं संक्षयमेष्यति ध्रुवम् ॥" इति निषेधात् ॥ गयायात्राङ्गं वपनं न कार्यमित्याहुः ॥ वस्तुतस्तु-गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः । नतु यात्राङ्गस्य 'श्राद्धार्थिना' इत्युक्तेः ॥ 'विशालां विरजां गयाम्' इत्यनेनैकवाक्यत्वाच्च ॥ श्राद्धं च षण्णवद्वादशदैवतं वा घृतेन कार्यम् ॥ 'गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा' इति विष्णुपुराणात् ॥ यात्राङ्गवृद्धिश्राद्धोक्तेश्च ॥ श्राद्धं च पारणादिन एव ॥ "उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च । गणेशं ब्राह्मणान्नत्वा भुक्त्वा प्रस्थितवान् सुधीः ॥" इति स्कान्दालिङ्गात् ॥

कोई तो हेमाद्रिमें महाभारतका यह वाक्य कहतेहैं कि, बाल नख श्मश्रुका मुण्डन अच्छा नहीं, इसमें गयाश्राद्धकी इच्छावाले मुंडन न करावें, जो इस भारतखण्डमें पितृकर्ममें तत्पर हैं, अत्यन्त भक्तिसे वे केशोंको धारकर पितरोंके ऋण दूर करनेके निमित्त पिततीर्थ (गया) में आयेहैं उनका ऋण निश्चयसे नष्ट होगा इन निषेधोंसे गया यात्राका अंग मुंडन न करना चाहिये. सिद्धान्त तो यहहै कि, गयाधिकारके अंगका यह निषेध है, यात्राके अंग मुंडनका नहीं है, कारण कि, श्लोकमें 'श्राद्धार्थिना' लिखाहै और इसके संग एकवाक्यताभी है, कि, विशाला विरजा और गया इनमें मुण्डन करै, छः नौ द्वादश दैवताका श्राद्धभी घीसे करना चाहिये, कारण कि, विष्णुपुराणका कथनहै कि, जो मनुष्य देशान्तरको गमन करै, वह घीसे श्राद्ध करै, इससे भी यात्राका अंग वृद्धि लिखाहै, और श्राद्धभी पारणाके दिन करना चाहिये कारण कि, स्कन्दपुराणका प्रमाण है कि, एकरात्र उपवास और प्रातःकालको श्राद्ध करके गणेश और ब्राह्मणको नमस्कार कर भोजनके अनन्तर बुद्धिमान् मनुष्य गमन करै ॥

गौडनिबन्धे गौतमः–"तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेपि च । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिःसमन्वितम् ॥" वृद्धिपदं तद्धर्मार्थं श्राद्धोत्तरं यात्रासंकल्प इति भट्टाः । वायवीये–"उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं गत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ॥" घृतस्य भोजनं, तच्च क्रोशमध्ये, श्राद्धोत्तरं क्रोशगमननिषेधात् ॥ 'ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः ।' गयायामेव तन्नान्यत्रेति केचित् ॥

गौडनिबन्धमें गौतमका कथनहै कि, तीर्थयात्राके प्रारम्भ और तीर्थयात्रासे लौटनेमें बहुत घीसे वृद्धिश्राद्ध करै, वृद्धिपद वृद्धिके धर्मोंके निमित्तहै. भट्ट तो यह लिखतेहैं कि, श्राद्धके अनन्तर यात्राका संकल्प करै, वायवीयपुराणमें लिखाहै कि, गया जानेको उद्यत मनुष्य विधिसे श्राद्ध करके और कर्पटके वेषको धारणकर ग्रामकी परिक्रमा करै. फिर ग्रामान्तरमें गमन कर श्राद्धके शेष घृतका भोजन करै, वह भोजन भी क्रोशके मध्यमें करै कारण कि, श्राद्धके अनन्तर क्रोशसे उत्तर (अधिक) जानेका निषेध है, फिर प्रतिग्रहको छोडकर प्रतिदिन गमन करै, गयामें ही सब नियम हैं और स्थानमें नहीं यह कोई लिखते हैं ॥

हेमाद्रिस्तु–गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानम् ॥ तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिन इत्याहुः ॥ प्रभासखण्डे॥"यत्रान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः । स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥" यात्रामध्ये आशौचे रजसि वा शुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत्॥ मार्गवैषम्ये त्वदोषः ॥ यात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादिकार्यमेव वाणिज्याद्यर्थं गतेन तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति प्रयागसेतौ भट्टाः ॥ वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम् ॥ 'अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति' इति ब्राह्मोक्तेः ॥

हेमाद्रि तो यह लिखते हैं कि, गयामें तो श्राद्धके दिन ही गमन करै अन्य तीर्थमें तो श्राद्धसे अगले दिन. प्रभास खण्डमें कहाहै कि, हे राजन् ! जो मनुष्य अपने द्रव्य और सवारीसे दूसरेको तीर्थयात्रा करता है उसको चौगुना पुण्य होता है, यात्राके मध्यमें आशौच वा रजोधर्म होनेपर शुद्धिपर्य्यन्त ठहरकर उसके पीछे गमन करै. यदि विषम मार्ग हो तो दोष नहीं यात्राके मध्यमें कोई तीर्थ आजाय तो वहां भी श्राद्ध आदि करै, व्यापार आदिके निमित्त गयामें गया होय तो मुण्डन व्रत आदि न करने यह

प्रयागसेतुमें भट्टोंने लिखाहै, सिद्धान्तसे तो वहां भी मुण्डन व्रतआदि करने, कारण कि, ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जो प्रसंगसे गमन करता है उसको भी तीर्थका आधा पुण्य प्राप्त होताहै ॥

स्कान्दे-"द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरेत्तीर्थफलस्य च । वाणिज्यं त्रींस्तथाभागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः ॥" 'यानं धर्मचतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च' इत्युत्तरार्धपाठान्तरम् ॥ अत्र नदीषु विशेषः-"मार्गेन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः । अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥" यत्तु-"पितॄन्तस्य तर्पयित्वा तु नदीस्तरति यो नरः । तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिताः" इति तत्सरस्वतीपरम् ॥ शंखः-"तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् । स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं नतु ॥" स एव-'न स्रवन्तीमतिक्रामेत् ॥'

स्कंदपुराणका कथन है कि, दूसरीबार भोजन तीर्थफलके तीसरे भागको, व्यापार और स्त्री एक २ भागको, और प्रतिग्रह सम्पूर्ण फलको नष्ट करतेहैं. यहां नदीमें यह विशेष लिखाहै कि, यदि मार्गमें नदी आजाय तो स्नानआदिको पार उतरकर करना चाहिये, और सरस्वतीके तो इधरपारही करै, यह मार्गके गमनकी विधि है. जो यह कथनहै कि, जो मनुष्य पितरोंको तृप्त करके नदीको पार तरताहै तो अत्यन्त दुःखितहुये पितर उसके रक्तपानकी इच्छा करतेहैं, यह वाक्य सरस्वतीके विषयमें है. शंखका कथनहै कि, प्रसंगसे तीर्थमें जाकर जो तीर्थस्नान करताहै वह स्नानके फलको प्राप्तहोताहै, तीर्थयात्राके फलको प्राप्त नहीं होता, स्नान किये विना नदीका अवलंघन न करै ॥

अनवसिच्य तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखण्डे-"यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः । लुठित्वा लोठनीं तत्र कृत्वा कार्पटिकाकृतिम् ॥" कृत्वेति गृहान्निर्गमसमये करणे इदम् ॥ प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि । अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः ॥" मन्त्रश्च प्रभासखण्डे-"नमोस्तु देवदेवाय शितिकण्ठाय दंडिने । रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी । सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी" इति मन्त्रवत्स्नानं च वपनोत्तरं कार्यम् ॥ "पूर्वमावाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् ॥ ततः स्नानादिकं कुर्यात् पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् " इत्युक्तेः ॥ यत्तु-'गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम् ' इति तन्मुशलस्नानपरम् ॥

तीर्थपर प्राप्त होनेपर तो प्रभासखंडमें यह कहाहै कि, यानोंको त्यागकर मनुष्य चरणोंसे चले, रेतमें लौटकर कर्पूरके वेशको धारण करै, यदि घरसे चलते समय (सवारी) न कीहो तो प्रथम ॐकारसे तीर्थके शुद्धजलको हिलावै, फिर हाथको जलसे विलोडकर और मंत्रको पढकर यथायोग्य स्नान करै, मन्त्रतो प्रभासखंडमें यह लिखाहै कि, देवोंके देव शितिकंठ दंडधारी रुद्र धनुष और चक्रको हाथमें लिये वेधा (ब्रह्मा) रूप आपको प्रणाम है, सरस्वती और वेदोंकी माता सावित्री इस तीर्थमें पापोंके नाशकरनेवाली प्राप्त हो, मंत्रसहित स्नान मुण्डनके अन्तमें करनी चाहिये कारण कि, यह कथन है कि, तीर्थमें प्रथम आवाहन फिर मुण्डन और उसके पीछे स्नान आदिकर फिर श्राद्ध करै. जो कि, यह कथन है कि, जाकर स्नान करै, फिर मुण्डन करै यह वाक्य मुशलस्नानके निमित्त है ॥

काशीखण्डे-'तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ॥' उपवासे तत्रैवोक्तम् ॥ "यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे । उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेह्नि श्राद्धदो भवेत् ॥" अत्र-'उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः' इति प्राप्तिदिनेपूपवासोक्तेर्विकल्पः ॥ मुण्डने तु स्कान्ददेवलौ-"मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम् ॥" विरजं लोणारप्रसिद्धम् । महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ॥

तीर्थका उपवास काशीखंडमें कहा है कि, तीर्थमें जाकर स्नान और मुण्डन करना व्रतभी वहीं कहाहै, जिस दिन तीर्थकी प्राप्ति हो उससे प्रथम दिन व्रत करना, जिस दिन तीर्थ प्राप्त हो उस दिन श्राद्ध करै, यहां उस वाक्यसे विकल्प कहाहै. सुव्रत मनुष्य उसी प्राप्तिके दिन व्रत करै, मुण्डनमें तो स्कन्द और देवलका कथन है कि, मुण्डन व्रत सब तीर्थोंकी विधिहै, कुरुक्षेत्र विशाला, विरजा (लौडार), गया इनको त्यागकर, सर्वतीर्थ शब्दसे प्रसिद्ध बडे २ तीर्थ ग्रहण करने ॥

अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे-"ऊर्ध्वमब्दाद्द्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि । मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत् । तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज" इति वा पाठः ॥ "प्रयागे प्रतियात्रे तु योजनत्रय इष्यते ॥ क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते ॥" तथा च बृहस्पतिः-"क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेथ तीर्थके॥" अपरार्के स्कान्दे-"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत्" ॥ इदं प्रयागे सधवानामपि समूलं भवतीति भट्टाः ॥

यहां विशेष स्मृत्यंतरमें कहाहै कि, दो महीने कम वर्षदिनसे प्रथम फिर तीर्थको जाय तो मुण्डन उपवास यत्नसे करै. अथवा यह लिखाहै कि, हे ब्राह्मण ! प्रायश्चित्तके विना तो वे दोनों (मुण्डन और उपवास) श्रेष्ठ नहीं कहेहैं. प्रयागमें तो यात्रा २ में बारहकोशपर्यन्त यह मुण्डन कहाहै. क्षौर कराकर विधिसे त्रिवेणीमें स्नान करै, यह बृहस्पति कहतेहैं कि, निषेध होनेपर भी क्षौर और नैमित्तिक कर्म करना, पित्रादिकी मृत्युदीक्षा प्रायश्चित्त और तीर्थमें मुण्डन करै. अपरार्कमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, उत्तरको वा पूर्वको मुख करके बुद्धिमान् मनुष्य मुण्डन करावै, और केश श्मश्रु नख ये पहले उत्तरकेही मुँडवावै यह मुण्डन प्रयागमें सुहागिनोंका भी मूलसे होता है, यह भट्ट लिखते हैं ॥

युक्तं तु-"सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् । एवमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया" इति ॥ तच्चाकृतचूडानां न कार्यमिति केचित् ॥ तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात् पित्रादिमृतवत् कार्यमेवेति ॥ तदपि प्रयागे नित्यम् ॥ नान्यत्र ॥ तच्च यतिभिस्तीर्थेपि ऋतुसंधिष्वेव कार्यं नान्यदा ॥ 'कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत्' इति स्मृतेः ॥ इदं जीवत्पितृकेणापि तीर्थे कार्यम् ॥ नच 'मुण्डनं पिण्डदानं च' इति दक्षवचनेन निषेधः ॥ "विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृतिं विना । यो वापयति लोमानि स पुत्रः पितृघातकः" इति स्मृत्या तत्संकोचात् ॥ तदपि प्रयागे प्रतियात्रम् । अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः ॥ ततः स्नानम् ॥

यथार्थ तो यह है कि, सब केशोंको उभार कर ऊपरसे दो २ अंगुल छेदन करै, इसी प्रकार स्त्रियोंका मुण्डन कराना उचित है, वह मुण्डन उनका न करना चाहिये जिनका चौल संस्कार न हुआ

होय यह किन्हीका मत है. सिद्धान्त तो यह है कि, निमित्तसे मुण्डनके होनेसे पिता आदिके मरनेके तुल्य करना उचित है, वह भी प्रयागमें ही नित्य है और स्थानमें नहीं और वह भी यति तीर्थमें भी ऋतु ऋतुकी संधिमें ही करै, अन्य कालमें नहीं, कारण कि, यह स्मृति है कि, बगल उपस्थ शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधिमें मुण्डवावै, इसको जीवत्पितृक भी तीर्थमें करै. यदि कोई शंका करै कि, मुण्डन पिंडदान न करै, इस दक्षवाक्यसे निषेध है सो उचित नहीं, कारण कि, इस स्मृतिसे उस स्मृतिका संकोच कहा है कि, तीर्थ यज्ञ माता पिताका मरण इनको त्यागकर जो मुण्डन करता है वह पुत्र पितृघातक है, वह भी प्रयागमें यात्रा २ में और दूसरे तीर्थमें प्रथम यात्रामें करना, यह श्रेष्ठोंका सम्मत है, फिर स्नान करै ॥

परार्थे तु मार्कण्डेयपुराणे–"मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् । यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः ॥" पैठीनसिः–"प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् ॥ मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टभागफलं लभेत् ॥" ततस्तर्पणश्राद्धे पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्मदेवीपुराणकाशीखण्डादिषु ॥ "अकालेऽप्यथ वा काले तीर्थश्राद्धं च तर्पणम् । अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥" मात्स्ये–'पितॄणां चैव तर्पणम्' इति तुर्यपादः ॥ तत्र देवता महालये प्रागुक्ताः ॥ शङ्खदेवलौ–"तीर्थद्रव्योपपत्तौ च न कालमवधारयेत् । पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य सद्यः श्राद्धं समाचरेत् ॥"

दूसरेके निमित्त स्नानमें तो मार्कण्डेयपुराणमें यह कहा है कि, माता पिता स्त्री भाई मित्र गुरु इनमें जिसके निमित्त स्नान करै वह आठवे अंशका भागी होता है, पैठीनसिका कथन है कि, कुशाकी मूर्त्ति जिसकी बनाकर तीर्थमें अपने संग स्नान करावै उसको आठवां भाग प्राप्त होताहै, फिर तर्पण और श्राद्ध करै. पृथ्वीचन्द्रोदय और ब्रह्मदेवीपुराणकाशीखंड आदिमें कहाहै कि, समय हो या न हो तीर्थमें श्राद्ध और तर्पण अवश्य करै, और विलम्ब और विघ्न न करै. मत्स्यपुराणका कथन है कि, पितरोंका तर्पण करै, यह चौथापाद पूर्वश्लोकका है उसके देवता महालय निर्णयमें पहले कथनकर आयेहैं. शंख और देवलका कथन है कि, तीर्थ और द्रव्यकी प्राप्ति और सुपात्र ब्राह्मणकी प्राप्ति होनेपर समयका विचार न करै शीघ्रही श्राद्ध करदे ॥

हारीतः–'दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो वोपोषितोऽपि वा । न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥" भारते–"भुक्तो वाप्यथ वाभुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा । पर्वकालेऽथ वा काले शुचिर्वाप्यथ वाशुचिः ॥ यदैव दृश्यते तत्र नदी च त्रिपथा प्रिय ॥ प्रमाणदर्शनं तस्मान्न कालस्तत्र कारणम् ॥" आशौचेऽपि कार्यम् "विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि ॥ न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत्" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ तदानीमकरणे त्वाशौचान्ते एव कुर्यात् ॥

हारीतका कथन है कि, नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको प्राप्त होकर भोजनके अनन्तर व्रतमें दिन वा रातमें श्राद्धका नियम नहीं है. भारतमें लिखाहै कि, भुक्त वा अभुक्त दिन या रात पर्वकालमें वा अकालमें पवित्रतामें वा अपवित्रतामें अर्थात् समय हो वा न हो शुद्ध हो वा अशुद्ध हो, जब गंगाजीका दर्शन हो उसी समय प्रणाम करके कर्म करे, उसमें काल अनिमित्त नहीं है. अशौचमें भी तीर्थश्राद्ध करना चाहिये, क्योंकि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, विवाह, कठिनमार्ग, यात्रा, तीर्थकर्म इनमें सूतक नहींहै इससे सबकर्म करै, उससमय न करै तो अशौचके अन्तमें करै ॥

प्रभासखण्डे-"न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् । यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥" मलमासेपि कार्यम् । "नित्ये नैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलिम्लुचे । तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च" इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥ एतच्चाशौचे प्रकृत-भोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावामहेमश्राद्धविषयं ग्रहणा-दिवत् ॥ नतु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या ॥ मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चन्द्रिकायां देवीपुराणे-'श्राद्धं च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥'

प्रभासखण्डमें कहाहै कि, वार नक्षत्र काल उसमें कारण नहींहै, जब तीर्थका दर्शनहो तभी सहस्र पर्वहैं, मलमासमें करै, कारण कि, बृहस्पतिकी स्मृति है, मलमासमें नित्य और नैमित्तिक कर्म तीर्थश्राद्ध गज-च्छाया प्रेतश्राद्ध इन सबको करनेका दोष नहींहै, यह वाक्य उस मनुष्यके निमित्त आमश्राद्ध और सुवर्ण श्राद्धके विषयमें ग्रहणके तुल्य है, जिसने अशौचमें भोजन करलियाहो और उसको रात्रिमें स्नान श्राद्ध आदि-कर्म करनेहों और अकस्मात् तीर्थपर गयाहो और जानकर तो अशौचमें तीर्थआदिमें कदाचित् नजाय, मल-मासमें तो दोनों मासोंमें तीर्थश्राद्ध करना चाहिये. चन्द्रिकामें देवीपुराणका कथनहै कि, वहां अर्घ और आवाहनको त्यागकर तीर्थश्राद्ध करना ॥

हेमाद्रौ-"अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" भविष्ये-"आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न विद्यते । आवाहनं न तीर्थे स्यान्नार्घ्यदानं तथा भवेत् ॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्घ्याः संति वै यतः ॥" अग्नौकरणं च नेति रत्नावल्याम् ॥ अत्र षड्दैवते श्राद्धेपि मात्रादीनां पिण्डमात्रं ज्ञेयम् । "हविः शेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः । क्रमशः पितृपत्नीनां पिण्डनिर्वपणं चरेत् ॥" इति तीर्थोपक्रमे देवलोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ततः सामान्यपिण्डं दद्यात् ॥ "ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च । ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृ-जेत्" इति तेनैवोक्तेः ॥

हेमाद्रिमें कहाहै कि, अर्घ आवाहन ब्राह्मणोंके अन्नपर अंगुष्ठका लगाना तृप्तिका पूछना विकिर इनको तीर्थश्राद्धमें त्यागदे, भविष्यका वाक्यहै कि, आवाहन और विसर्जन न करै, और अर्घ न दे, क्योंकि तीर्थमें बुलायेहुये पितरोंको अर्घदियाहुआही है. रत्नावलीमें कहाहै कि, अग्नौकरण भी न करै, यहां श्राद्धके छः देवता होनेपरभी माताआदिको पिंडमात्रदे कारण कि, तीर्थके प्रकरणमें देवलका यह कथनहै कि, हविका शेष एक २ मुट्ठी लेकर आदरसे पिताआदिकी पत्नियोंको क्रमसे पिंडदे, यह पृथ्वीचन्द्र लिखतेहैं, फिर सामान्य-पिंडदे, कारण कि, देवलने ही लिखाहै कि, फिर संस्कृतहविके पिंडको लेकर अपने सम्पूर्ण जातिसमूहके निमित्त एक सामान्य पिंड दे ॥

पाद्मे-"तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः । आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलै-रपि ॥" पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च "सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा ।" पिण्डानां तीर्थप्रक्षेप एव नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् ॥ एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यम् । न सपुत्रयेत्युक्तं प्राक् 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन' इति स्मृतश्च । अनुपनीतेनापि कार्यम् ।

एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु' इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः ॥ एतच्च जीवत्पितृकेणापि कार्यमित्युक्तं प्राक् ॥ "न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम् । त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमातृकुलं धनम्" इति स्मृतेः ॥

पद्मपुराणका कथन है कि, विशेषकर तीर्थश्राद्ध पक्वान्नसे करै, अथवा आमान्न, सुवर्ण कन्द मूल फलोंसे करै. देवीपुराणमें पिण्डके द्रव्य कथन किये हैं,हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सत्तू मोहनभोग खीरखल गुडसे पिंड करने. पिंडोंको तीर्थमें डाल दे, और कोई युक्ति नहीं है यह प्रथम कथन करचुके हैं. इसको उस विधवाको भी करना चाहिये, जिसके पुत्र न हो और सुहागिनीको न करना चाहिये, यह प्रथम कहआये हैं, यह स्मृति भी है कि, पुत्रवाली स्त्री पतिका श्राद्ध कभी न करै. यज्ञोपवीतहीन भी इसको करै, कारण कि, पद्मपुराणमें तीर्थश्राद्धके प्रकरणमें लिखाहै कि, अनुपनीत भी सब पर्वोंमें तीर्थश्राद्ध करै, इसको जीवत्पितावाला भी करै, यह पहले कथन कर आये हैं. संन्यासीको तो इसे न करना चाहिये, कारण कि, यह स्मृति है कि, संन्यासी सूतक, श्राद्ध, पिंड जलदान और संन्यासके योगसे त्यागे गृहस्थधर्म, व्रत, गोत्र, ऋण, धन, पिता, माताका कुल यह सब वह त्याग करचुका इससे इनको न करै ॥

गयायां तूक्तं वायवीये–"दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः । दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते । गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वटे तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥" कृतरत्ने प्रभासखण्डे–"तीर्थे चेत् प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः ॥ दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन्न हीयते" इति ॥ विशेषान्तराणि भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ ज्ञेयानीति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

गयामें संन्यासी जाय तो वायुपुराणमें यह कहा है कि, गयामें जाकर संन्यासी दण्डको दर्शन करादे, पिंडदान कर विष्णुपदमें दंडको छूकर पितरोंके संग मुक्त होता है. गयामें मुण्ड पृष्ठ कूप यूप वटमें दण्डको दिखाता हुआ संन्यासी पितरोंके संग मुक्त होता है. कृत्यरत्नके प्रभासखण्डमें भी कहा है कि, जीविका सहित ब्राह्मण तीर्थमें प्रतिग्रह लेय तो उसमेंसे दशांश दान करनेसे प्रायश्चित्तका भागी नहीं होता है, इससे अधिक देखना हो तो भट्टरचित त्रिस्थलीसेतुमें देखलेना यहां थोडासा लिखाहै ॥ इति तीर्थश्राद्धविधिः ।

इति श्रीमिश्रोपाह्वश्रीयुतपण्डितसुखानन्दपुत्रपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतायां निर्णयसिंधुभाषाटीकायां तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

निर्णयसिन्धौ-

अशौचप्रकरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथाशौचप्रकरणं प्रारभ्यते ॥ नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णस्य सूनुना ॥ कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेऽधुना ॥ १ ॥

अब अशौचनिर्णय लिखते हैं कि, नारायणभट्टके पुत्र श्रीमान् रामकृष्ण, उनके पुत्र कमलाकर भट्ट अब अशौचका निर्णय लिखते हैं ॥

मरीचिः–"आचतुर्थात् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम् । पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम् ॥"

मरीचिने कहा है कि, चार महीनेतक गर्भके नाशको स्राव और पांचवें छठे महीनेतक गर्भपात और इससे आगे तो प्रसूति कहाती है इसमें भी दशदिनका सूतक होता है, स्रावमें माताको तीनरात सूतक लगता है और सपिंडोंको नहीं लगता, पातमें माताको उतने दिनतक अशौच होता है, जितने महीनेका गर्भपात हुआ हो, सपिण्डोंको तो तीन दिन अशौच लगता है ॥

जननाशौचनिर्णयः ।

अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां ज्ञेयम् ॥ अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुवादः ॥ रजस्वलात्वेनैव तत्सिद्धेः ॥ यद्यप्यनेन चतुर्थमासेपि त्रिरात्रं प्राप्नोति तथापि–"षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि । तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते"–इत्यादिपुराणात् । 'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति' इति मनूक्तेः ॥ 'गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः' इति मरीच्युक्तेश्चतूरात्रं ज्ञेयम् ॥ अचिरे त्रिमासमध्ये ॥ उत्तमे ब्राह्मणे ॥ अत्र सपिण्डानां स्नानम् ॥ 'सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति' इति तत्रैवोक्तेः ॥ एतदाचतुर्थमासात्पाते त्रिदिनस्योक्तेः ॥ अकारणायाः शुद्धेरसंभवात्सद्यः पदं स्नानपरम् ॥ एवमग्रेपि ॥ 'गर्भस्रावे स्नानमात्रं पुरुषस्य' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणम् ॥ पूर्वोक्तवचनात् ॥ आचतुर्थमासं सपिण्डानां न स्नानं किंतु पुंस एव ॥ पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम् ॥ गुणवतस्तु–"अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वेषामेकरात्रमशौचकम्" इति यमोक्तेरकाह इति मदनपारिजातः ॥ सप्तममासादि दशाहम् ॥ एतत्सर्ववर्णविषयम् ॥ 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रोक्तेः ॥

इन सबका मूल मिताक्षराआदिमें देखलेना यहां तीन रातका अशौच अनुवाद है, कारण कि, रजस्वलासेही तीन दिनका अशौच सिद्ध था, यद्यपि इस रीतिसे चौथे महीनेमेंभी तीन रातका अनुवाद

पाया जाता है, तथापि छः महीनेके मध्यमें गर्भका स्राव होजाय तो महीनोंके तुल्य दिनोंसे स्त्रियोंकी शुद्धि इष्ट है, यह आदिपुराणसे जाना जाता है और महीनोंके समान रात्रियोंसे गर्भस्रावमें पवित्रता होती है यह मनुने कहा है, और गर्भस्रावमें महीनेके अनुसार अशौच लगता है, जो गर्भ थोडे समयका हो ब्राह्मणके यहां तो तीन दिनमें शुद्धि होती है, इस मरीचिके वाक्यसे चार रात्रका अशौच जानना. यहां सपिंड स्नान करै, कारण कि, उसी स्थलमें कहा है कि, गर्भके पातमें सपिंडोंको तुरत शौच होता है, यह भी चौथे महीनेतक लेना कारण कि, पातमें तीन दिनका अशौच सपिंडोंको लिख आये हैं और विनाकारण पवित्रता नहीं होती, और सद्यःपद स्नानका कथन करनेवाला है, इसीप्रकार आगे भी जानना, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि, गर्भस्रावमें पुरुषको स्नानमात्र करना उचित है, यहां पुरुषपद पूर्वोक्त कथनोंसे सपिंडोंको उपलक्षण करता है. चार महीनेतक सपिंडोंको स्नान नहीं किन्तु पतिकोही करना कहा है, पातमें तीन दिनका अशौच निर्गुणोंको लिखा है, गुणवानोंको तो इस यमके कथनसे, एक दिनका अशौच है. मदनपारिजातमें कहा है कि, ऐसा बालक मृतक होजाय कि, जिसके दांत न निकले हों और गर्भसे बालकका पात होजाय, तो सब सपिंडोंको एकदिनका अशौच लगता है, और सातवें महीने आदिमें तो दशदिनका अशौच लगता है, ये सब वर्णोंके विषयमें है, कारण कि, व्याघ्रने लिखा है कि, अवस्थाका और अतिक्रांत अशौच सबको समान लगता है ॥

पराशरः–"जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥" संवर्तः–"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते। माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥" पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ न पितुः स्नानमिति हारलतायाम् ॥ तन्न। पुत्रपदस्य 'पौत्री मातामहस्तेन' इति कन्यायामपि प्रयोगात् ॥ यच्च तत्रैवोक्तम्–"सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः। कृत्वा सचैलं स्नानं तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्" इत्यादिपुराणान्मुखदर्शनोत्तरमेव पितुः स्नानमिति ॥ तन्न ॥ विदेशे मुखदर्शनावध्यस्पृश्यतापत्तेः ॥ मुखदर्शनोत्तरं पुनः स्नानार्थमिदमिति स्मार्तगौडाः ॥ तन्न ॥ मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात्। इदं सर्ववर्णसमम् ॥ "सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्ध्यति। ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं विधिः" इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः ॥

पराशरने लिखा है कि, जन्मसूतकमें ब्राह्मण दशदिनमें, क्षत्रिय बारहदिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है. संवर्त्तने कहा है कि, पुत्रके जन्ममें पिताको सवस्त्र स्नान कथन किया है, माता दशदिनमें शुद्ध होती है और पिताके स्नान कर लेनेसे छूनेका दोष नहीं लगता। इस वाक्यसे पुत्रीके जन्ममें पिताको स्नान नहीं करना, यह हारलतामें कहा है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, पुत्रपदका कन्यामें भी प्रयोग आया है कि, नाना पुत्रीके पुत्रसे पौत्रवाला होता है, जो उसी स्थलमें यह लिखा है कि, उत्पन्न हुये पुत्रके सूतकमें मुखको देखकर और सवस्त्र स्नान करके उसीसमयमें शुद्ध होता है, इस आदिपुराणके कथनसे पुत्रके मुखको अवलोकन करकेही पिता स्नान करै, सो उचित नहीं कारण कि, विदेशमें पुत्रका मुख दर्शन नहीं करसकता तो कदाचित् स्नानके योग्य नहीं होगा. गौड तो यह लिखते हैं कि, मुखदर्शनके उपरांत फिर स्नान करनेके निमित्त यह कथन है, सोभी सत्य नहीं कारण कि, मूलकी एकतासे पुत्रके ज्ञानमात्रका निषेध करनेवाला यह वाक्य है यह सब वर्णोंके निमित्त तुल्य है, कारण कि, हारलतामें प्रचेताका वाक्य लिखा है कि, सूतिका

सब वर्णोंमें दश दिनमें पवित्र होती है, ऋतुमें भी पृथक् २ अशौच नहीं होता, यह सब वर्णोंकी विधि है ॥

यत्तु ब्राह्मे-"ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः ॥ गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभिरेव च" इति ॥ प्रयोगपारिजाते पारस्करः-"द्विजातेः सूतिका या स्यात्सा दशाहेन शुद्ध्यति । त्रयोदशेह्नि संप्राप्ते शूद्रा शुद्ध्यत्यसंशयः" इति । तदस्पृश्यत्वपरम् ॥ अङ्गिराः-"सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते" संसर्गो मैथुनम् ॥ स्पर्श इत्यन्ये ॥ मातुरेव सूतकम् । तां स्पृशतश्चेति हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति ॥ तन्न ॥ 'संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते' इति स्नानमात्रोक्तेः सौमन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् ॥ एवकारो बालस्पृश्यत्वार्थः ॥

जो ब्रह्मपुराणका कथन है कि, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, ये प्रसूता दशदिनमें और शूद्रा तेरह दिनमें पवित्र होती है, प्रयोगपारिजातमें पारस्करका वाक्य लिखा है कि, द्विजातियोंकी सूतिका दशदिनमें और शूद्राकी सूतिकाकी तेरह दिनमें शुद्धि होती है, ये वाक्य असत् शूद्राके विषयमें जानना. अंगिराने लिखा है कि, सूतकमें सूतिकासे भिन्नके छूनेका निषेध नहीं है और सूतिकाके छूनेमें स्नान करना कहा है, सूतकमें संसर्ग न करै तो पुरुषको दोष नहीं लगता, सूतकमें रजको अशुद्ध जानना चाहिये, और वह रज पुरुषमें नहीं होता, संसर्ग नाम मैथुनका है, और कोई तो छूनेका कहते हैं. हारलतामें सुमंतुका कथन है कि, माताको और उसके छूनेवालेको सूतक है, सो उचित नहीं है, यहां केवल स्नानमात्र कहा है सो उचित नहीं है तो विधि दिखाचुके हैं. सुमंतुके वचनका स्नानपर्यन्त अस्पृश्यमात्रका बोध होनेसे एवकार बालकके छूनेमात्रका बोधक है ॥

माधवस्तु-"यस्तैः सह सपिण्डोपि प्रकुर्याच्छयनाशनम् । बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति" इति बृहस्पतिस्मृतेः शयनासनादिरूपं संसर्गमाह ॥ पराशरः-"यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमृच्छति । सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥" पितृवत्सापत्नमातुः प्राक्स्नानादस्पृश्यत्वम् । सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचम् 'अन्याश्च मातरस्तद्वत्तद्गृहं न व्रजन्ति च' इति ब्राह्मोक्तेरिति शुद्धितत्त्वादयः ॥ तन्न ॥ तद्गेहं गत्वा सूतिकां यदि न स्पृशति, तदा स्पृश्याः अन्यथा नेति । तस्यार्थः ॥ कर्मानधिकारमाह पैठीनसिः-'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम्' ॥ इदमाशौचोत्तरम् ॥ अन्यथा शूद्र्याः सपिण्डानामाशौचे तदभावः स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च ॥ एतच्च सोमयागादिश्रौतभिन्नपरम्॥ 'प्रजातायाश्च दशरात्रादूर्ध्वस्नानात्' इतिकात्यायनोक्तेः॥

माधव तो कहते हैं सपिंडभी जिनके साथ शयन भोजन करै वह बन्धु वा दूसरा कोई हो दशदिनमें शुद्ध होता है, यह बृहस्पतिस्मृतिमें कहा है, शयन आसनादिरूपका पराशरने संसर्ग कहा है, यदि प्रसूतापत्नीका सम्पर्क ब्राह्मण करै जो षडंगका ज्ञाता ब्राह्मण हो तो उसको सूतक लगता है, पिताकी समान सपत्नमातोंके प्रथम स्नानसे अस्पृशत्व है सूतिकाके, स्पर्शमें तो तबतक आशौच है और मातायें जबतक उस

घरमें जायें, वह ब्रह्मपुराणका कथन शुद्धितत्वादि कहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि उसके घरजाकर यदि सूतिकाको न छुए तो सूतक नहीं है अर्थात् वे स्पर्शयोग्य हैं, कर्मोंका अधिकार पैठीनसिस्मृतिमें लिखा है. पुत्रवाली सूतिकाको वीसदिनमें कामका अधिकार दे, कन्याजननीको महीनेमें यह आशौचके उत्तर जानना, अन्यथा शूद्रासपिण्डाके आशौचमें उसका अभाव होकर विधिअनुवादका विरोध होगा यह सोमयागादि श्रौतसे भिन्नमें जानना कारण कि, प्रसूताका दशरातसे पर स्नान होताहै, यह कात्यायनने कहाहै ॥

व्यासः–"प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥" पुत्रशब्दोपत्यमात्रपरः ॥ ब्राह्मे–"देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा ।" जनने विशेषः प्रागुक्तः ॥ अत्र प्रयोगपारिजातः–पुंप्रसवे दशाहः । स्त्र्यपत्ये तु त्र्यहः । "पुंजन्मनि सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते । त्र्यहादेकोदकानां च एकाहं सूतकं क्वचित् । स्त्रीजन्मनि सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः । स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं सपिण्डत्वं द्विजोत्तमाः" इत्यग्निस्मृतेरित्याह ॥

व्यासजी कहते हैं पहले छठे दशवें दिन सदा पुत्रजन्ममें सूतक नहीं लगता. यहां पुत्रशब्द अपत्यमात्रपर जानना, ब्राह्मपुराणमें लिखाहै द्विजातिके पुत्रहोनेमें देवता पितर छठीके दिन आतेहैं इससे वह पवित्र दिन है. जननमें विशेष पहले कहचुके हैं यहां प्रयोगपारिजातका कथन है कि, पुरुषप्रसवमें दशदिन, कन्याप्रसवमें तीन दिन, अर्थात् पुत्रसपिण्डमें दशदिनकी शुद्धि होती है, एकोदकोंकी तीन दिनमें, कहीं एकही दिनमें शुद्धि होतीहै और स्त्रीजन्ममें सपिण्ड समानोदक तीनदिनमें शुद्धहोते हैं, हे द्विजोत्तमो ! स्त्रियोंमें तीन पुरुषतक सपिंडत्व जानै ऐसी अग्निस्मृति है ॥

मेधातिथिरपि–'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठमुक्त्वा 'आशौचे एवैतत्' विवाहे तु अवधिर्दर्शित एव इत्याह ॥ अन्ये तु त्रिपुरुषसापिण्ड्यस्य कानीनकन्यापरत्वमाहुः ॥ "अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः" इति कौर्मविरोधाच्च ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ 'पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वहेद् द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः' इत्यादिविरोधात्त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम् ॥

मेधातिथि भी कहते हैं अप्रत्तस्त्रियोंकी त्रिपुरुषी कहीहै यह वासिष्ठका कथन कहकर आशौचमें है, विवाहमें तो अवधिदेखने तक है ऐसा कहा है. और तो यह लिखतेहैं कि, तीन पुरुषतक सपिंड कानीन कन्याओंके होतेहैं, इस वचनसे कूर्मपुराणका विरोध भी है कि, बिना विवाही कन्याओंको सापिंड्य सात पुरुषतक होताहै, और विवाही कन्याओंको सापिंड्य भर्ताके होतेहैं, यह देवप्रजापतिने लिखाहै. यहां यह तत्व है कि, पांचवीं और सातवीं पीढीसे इधरकी कन्याको जो ब्राह्मण विवाहताहै वह गुरुशय्यागामी जानना इत्यादि वाक्योंके विरोधसे त्रिपुरुषतक सापिंड्य प्रकरणके बलसे मरण अशौचमें लिखेहैं ॥

वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः ॥ तेन कन्याप्रसवेपि साप्तपौरुषं दशरात्रमेव ॥ नच कन्यापुत्रकृतं प्रसवे बलाबलं क्वाप्युक्तम् ॥ अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीता वेति सर्वसिद्धान्तः ॥ अन्यथा त्रिपुरुषं सपिण्डानामष्टमादिसोदकानां च त्र्यहं साम्यायोगात्

चतुर्थादिसप्तमान्तानां च किमपि न स्यात् ॥ तेन कन्याप्रसवे दशाह एव ॥ किंच–स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं तेषां च त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् ॥ वाक्यभेदापत्तेः ॥ नच चतुर्थादीनां सोदकत्वं क्वापि सिद्धम् ॥ तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादीनां स्त्रीजन्मनि-सोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यसंवादार्थाग्निस्मृतिर्हेया ॥

वसिष्ठके कथनमें उसके आगे जलदान करना है तिससे कन्याके जन्ममें भी दशरात्रितक अशौच है, और कन्या और पुत्रके प्रसवमें कहीं भी बल अबल नहीं कहा है, पूर्वोक्त अग्निकी स्मृति तो अनुकल्प है, वा असंगत है यह सबका सिद्धान्त है, ऐसा न हो तो तीन पुरुष तक सपिंडोंका और अष्टम आदि समानोंका तीनदिन सूतककी साम्यताका योग नहीं है, चौथेसे सातवेंतकमें किंचित्भी नहीं होगा, इससे कन्याजन्ममें दशदिनही है और स्त्रीजन्मके निमित्त तीन पुरुषतक सपिंडता और उनको वाक्य तीन रात्रिका अशौच वाक्यभेदकी आपत्तिसे किसप्रकार होगा और चतुर्थ आदि सोदक कहीं भी नहीं किये इससे चतुर्थ आदिकोंको स्त्रीके जन्ममें सन्मानी लिखकर फिर उन्हें तीन रात्रिके अशौचकी विधि मानोगे तो विधि और अनुवादका विरोध हो जायगा, दो वाक्यभेद होंगे इससे असंबद्ध अर्थवाली स्मृतिके ऐसे वचनवाली अग्निस्मृतिका इसमें त्याग करना चाहिये ॥

मृताशौचनिर्णयः ।

अथ मृताशौचम् ॥ हारीतः–'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्' इति स्वाशौचपरम् ॥ जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम् । "यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते" इति जैमिन्युक्तेः 'नाड्यां छिन्नायामाशौचम्' इति हारीतोक्तेश्च ॥ नाडीछेदात्प्राक् मातुः स्पर्शोपि न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता ॥

अब मरणाशौचको लिखते हैं हारीतने लिखाहै कि, उत्पन्न होकर मृतक होजाय, वा मृतक उत्पन्न होय तो सपिण्डोंको दशदिन अशौच लगताहै और दशदिन भी अपने अशौचका कथन करताहै अर्थात् जिस जातिको जितना हो उतनाही होताहै, होतेही मरनेमें भी नालछेदनसे उपरान्त लेना कारण जैमिनीने लिखाहै कि, जबतक नालछेदन नहीं होता तबतक सूतक नहीं लगता नालछेदनसे पीछे लगताहै. हारीतने यह लिखाहै कि, नाडीछेदनके पीछे अशौच होताहै यह भी मरणाशौचमें जानना. जन्मसूतक तो नालछेदनके बढनेपर भी जन्मसे ही लगताहै और मरा हुआ बालक जब उत्पन्न होताहै, वहां नालछेदनका अभावही है, और नालछेदनसे वृद्धि मानोगे तो षष्ठीपूजाकी भी वृद्धि आजायगी इससे नाडीछेदनसे प्रथम माताके छूनेमें दोष नहीं है यह शुद्धितत्वका वाक्य खंडन हुआ ॥

नाडीच्छेदात्प्राक्मृतौ तु बृहन्मनुः–"जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम् ॥" इदं च प्रसवाशौचमेव । शावनिमित्तं स्नानमात्रम् 'प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्' इति शंखोक्तेः ॥ अत्र कश्चिदाह–'नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम्' ॥ 'आशौचव्यपगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः 'आशौच च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते' इति मनूक्तेश्च नाम्नो नियतकालत्वात् ॥

नाडीछेदनसे पहले बालक मृतक होजाय तो बृहन्मनुका कथनहै कि, जीता उत्पन्नहुआ हो और मरगया हो और मराहुआ होय तो माताको सम्पूर्ण और पिता आदिको तीनरात सूतक लगाता है, यह प्रसवाशौचके विषयमें है, कारण कि, शंखने लिखा है कि, मरणके निमित्तक स्नानमात्र और नाम करणसे पहले तत्काल शौच होता है. यहां कोई यह लिखतेहैं कि, नामकरण अशौचान्त कालका उपलक्षण होताहै कारण कि, विष्णुका कथन है कि, अशौचके बीतनेपर नामकर्म करै, नामका समय नियतहै॥

नच-"नामधेयं दशम्यां तु द्वाद्यां वापि कारयेत् ॥ पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते" इति मनूक्तेरनियतकालत्वम्। दशम्यामतीतायां विप्रः । द्वादश्यामतीतायां क्षत्रियः । वैश्यः षोडशे । शूद्र एकत्रिंशे इत्यपि ज्ञेयम् । पुण्य इत्याद्यनुकल्पः ॥ तेन नाम्नः कालोपलक्षणम् ॥ एवं दन्तजननेपि 'दन्तजन्म सप्तमे मासि' इत्युपनिषदि नियतकालत्वात् । चौले तु न कालोपलक्षणम् 'प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्' इति मनूक्तेः ॥ "ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात्" इति यमोक्तेश्च तस्यानियतकालत्वात् इति ॥ तन्मन्दम् ॥

यदि कोई शंका करै कि दशमी वा द्वादशीको नामकरण करै, पुण्यतिथि मुहूर्त्त वा गुणोंसे युक्त नक्षत्रोंमें नाम रक्खै इस मनुके कहे वाक्यसे कालका नियम नहीं, सो उचित नहीं. दशदिन बीतने उपरान्त ब्राह्मण, बारह दिन बीतने उपरान्त क्षत्री, सोलह दिन बीतने उपरान्त वैश्य, इक्कीस दिन बीतनेपर शूद्र करै, यह समय जानना चाहिये. पुण्य यह अनुकल्प है, इससे नामकालका उपलक्षण होताहै, इसीप्रकार दांत निकलनेमें भी नियत समय है, कारण कि, यह उपनिषदमें है कि, सातवें महीनेमें दांत निकलतेहैं. मुण्डनमें तो समयका उपलक्षण नहीं है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, श्रुतिकी आज्ञासे तीसरे वा पहले वर्षमें मुण्डन करना चाहिये यह यमने भी लिखाहै कि, पूर्ण वर्ष होनेपर वा दूसरे तीसरे वर्षमें मुण्डन करै, कारण कि, स्मृतियोंमें ऐसा ही लिखा है इससे मुण्डनका भी समय नियत नहीं यह जो यम कहते हैं सो वह कथन मन्द है ॥

'चौलवन्नामदन्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वोपपत्तेस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात्' सप्तममासादर्वाग्दन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्च ॥ यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्यात्स नूनं 'शतायुः पुरुषः' इति श्रुतेरर्वाक्पितृमरणे तदन्त्यकर्मापि त्यजेत् ॥ ननु कालानुपलक्षणे नामोत्कर्षे तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात् ॥ ततः किम् ॥ अस्तु ॥ अत एवोक्तं 'आदंतजन्मनः सद्यः' इति ॥ सा च विष्णुवचनाद्दाहाभावविषयेति वक्ष्यामः ॥ त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेत् ॥ न ॥ दाहदन्तादिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् ॥ तदुक्तम्-'पूर्वाबाधेन नोतपत्तिरुत्तरस्य हि सिध्यति' इति जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे च इति परिशिष्टे "द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथापरे । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः" इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च ॥ नच प्राथम्याद्दशरात्रेऽतीते इति मुख्यः कालः, अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् ॥ चौलेपि तथापत्तेः ॥ नच दन्तजननकालानुपलक्षणे सदन्तजातमृतस्य दाहैकाहप्रसङ्गः ॥ दशाहेन बाधात् ॥ नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः ॥ "दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते" इति बृहन्मनूक्तेश्च ॥ आशौचं दाहोपलक्षणम् ॥ 'सूतकवत्' इति पारस्करोक्तेः ॥

कारण कि, मुण्डनके समान नामकर्म और दांत निकलना भी स्वरूपसे निमित्त है, इनसे विशिष्ट समयका अनुवाद मानोगे तो वाक्यभेद होगा, और सात महीनेसे प्रथम दांत निकल आवेंगे तो उस समयके अभावका प्रसंग होजायगा, जो पूर्वोक्त उपनिषद्को देखकर निर्णय करेंगे, वह अवश्य सौवर्षका पुरुष होता है, इस श्रुतिके बलसे सौ वर्षसे पहले उस पिताके मरणमें उसके अन्तके कर्मको भी त्यागेंगे. यदि कोई सन्देह करै कि, समयको उपलक्षण न मानकर नामकी वृद्धि स्वीकार करोगे वा न करोगे तो स्नानमात्रसे शुद्धि होजायगी, फिर क्या होगा इसीसे लिखा है कि, दांत निकलनेसे पहले शीघ्र शुद्धि होती है, वह शुद्धि विष्णुके कथनसे दाहके विना अभावमें जानना, यह कहेंगे, तीन वर्ष आदिमें भी शुद्धि होजायगी, सो यथार्थ नहीं कारण कि, दाह दंत आदि निमित्तके जो विशेष अशौचहैं वे प्रथम अशौचके बाधकहैं, यही कहाहै कि, पहलेके बाधसे उत्तरकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती. परिशिष्टमें कहा है कि, जन्मसे दशरात्र वा सौरात्र वा वर्ष नामकरण करै, इनसे और इस भविष्यपुराणके लिखे वाक्यसे नामके समयका नियम नहीं कि, कोई बारह दिनमें कोई पूरे महीनेमें और कोई बुद्धिमान् अठारवें दिन नामकरना लिखतेहैं. यह भविष्यमें नामका काल नियम होनेसे यदि कोई शंका करै कि, दशदिन बीतने पर मुख्य समय है और दूसरे गौणहैं सो ठीक नहीं कारण कि, चौलमें भी ऐसाही होजायगा. यदि कोई शंका करै कि, दंतनिकलनेके समयको उपलक्षण न मानोगे तो जो बालक दाँतोंसहित उत्पन्न होकर मृतक हो गयाहै वहां दाहके एक दिनके अशौचका प्रसंग आजायगा सो उचित नहीं कारण कि, दशाहका अशौच बाधक है नामकरणके उपरान्तही दाहकी प्रवृत्ति होती है, बृहन्मनुने लिखा है कि, दशदिनके भीतर बालक मृतक होजाय तो उसके बांधव मरणका अशौच न करैं, जन्म अशौच मानें, यहां अशौच दाहका उपलक्षण है, पारस्करने भी लिखा है कि, सूतकके समान, अशौच होताहै ॥

यत्तु विष्णुः–"अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया" इति–तदपि प्रेताशौचनिषेधार्थं न तु सद्यस्त्वपरम् ॥ वाक्यभेदात् ॥ किंच–नामकालात्प्राक्मृतस्य स्नानम् । तदुत्तरं त्वेकाहादि, नामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात् ॥ अथ शङ्खवचने ल्यब्लोपे पञ्चमी, तदा प्रागिति नोपपद्येत ॥ 'नाम्नि वापि कृते सति' इति मन्वादिविरोधात् ॥ कृतनाम्न इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं क्वापीति दिक् ॥

जो विष्णुने लिखाहै कि, दशदिन बीतनेसे प्रथम यदि बालक मरजाय तो शीघ्रही शुद्धि होती है, प्रेत पिंड जलदान नहीं होता है यह वाक्य भी प्रेताशौचके निषेध निमित्त है, सद्यःशौच पर नहीं है कारण कि, वाक्यभेद होजायगा, और नामकालसे प्रथम मरे तो स्नानमात्र और पीछे एकदिन आदि अशौच लगता है, नामकालमें मरै तो ग्यारहवें दिन मृतकका कोई कर्म न होगा यदि कोई कहै कि, शंखके वाक्यमें ल्यप्लोपमें पञ्चमी है अर्थात् नामकरणको छोडकर सद्यःशौचहै सो यथार्थ नहीं मानोगे तो प्रथमभी अशौच न होगा, और नाम किये पीछे भी अशौच लगता है इस मन्वादिके विरोधसे जिनका नामकरण होगयाहो इस माधव और मिताक्षरा आदिके विरोधसे कहीं भी समय उपलक्षण नहीं यह संक्षिप्त कहा है ॥

दन्तोत्पत्तेः प्रागाशौचनिर्णयः ।

नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहे सत्यहः ॥ "अदन्तजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम्" इति यमोक्तेः ॥ दाहाभावे तु स्नानमात्रम् ॥

'अदन्तजाते मृते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारः' इति विष्णुना दाहाभाव तदुक्तेः ॥ 'आ दन्तजन्मनः सद्यः' इति याज्ञवल्कीयाच्च ॥ दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः–"तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च । सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥" अन्यत्राकृतचूडे। अत्र चूडाकरणं तृतीयवर्षरूपकालोपलक्षणार्थमितिमेधातिथिहरदत्तौ ॥ मनुरपि 'न त्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति' इति ॥ उदकं दाहोपलक्षणम् ॥

नामकरणसे पीछे दंतजन्मसे प्रथम दाह होय तो एकदिन अशौच लगता है, कारण कि, यमका कथन है कि, दांत निकलनेसे प्रथम पुत्र मरजाय वा गर्भसे पतित हो जाय तो सब सपिंडोंको दिनरात अशौच लगता है, दाह न हुआ होय तो स्नानमात्र करै, दांत निकलनेसे पहले मरजाय तो सद्यः शुद्धि होती है, इसको अग्निका संस्कार नहीं होता इस विष्णुके वाक्यसे दाह लिखा प्राप्त है. याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम मृतक होनेमें शीघ्रही पवित्रता होती है, दाहका विकल्प लौगाक्षिने लिखा है कि, जिनका मुण्डन होगया हो वा न हो चुका हो उन सबको जलदान और संस्कार ये मौनतासे करै. यहां मेधातिथि और हरदत्तने यह लिखा है कि, चूडाकर्म्म तीसरे वर्षमें रूपकालका उपलक्षण है मनुने भी लिखा है कि, तीनवर्षका न हुआ हो उसके बांधव जल दान न करैं, दांत निकलनेपर वा नाम करनेपर करैं, यहां जलदान दाहका उपलक्षण है॥

दन्तोत्पत्त्यनन्तरमाशौचनिर्णयः ।

दन्तोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽहः ॥ 'दन्तजातेप्यकृतचूडे त्वहोरात्रेण शुद्धिः' इति विष्णूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडेऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात् त्र्यहः ॥ "यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः । तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्" इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वं दाहादि नियतम् ॥ 'नात्रिवर्षस्य' इति वचनात् ॥ कृतायां वर्षत्रयात्प्रागपि तन्नियतं तूष्णीमेव ॥ अत्र जातदन्तत्वमुद्देश्य विशेषणत्वादविवक्षितं दाहयित्वेत्यप्यनुवादः ॥ उभयविधौ वाक्यभेदात् ॥ त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने त्र्यहस्तदभावे विष्णूक्तेरेकाह इति माधवः ॥ यत्तु कश्चिदाह–अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धिः ॥

दांत निकलनेके उपरान्त तीन वर्षसे प्रथम मरनेमें एक दिन अशौच कहा है, कारण कि, विष्णुने लिखा है कि, दांत निकलनेपर वा मुंडनसे प्रथम मरनेमें दिनरातसे शुद्धि होती है, तीनवर्षसे पीछे मुंडन हुआ वा न हुआ मृतक होजाय तो तीन दिनका अशौच होता है, कारण कि, अंगिराने लिखा है कि, मुंडन न हुआ हो और दांत निकल आये हों यदि वह मृत्युको प्राप्त हुआ होय तो उसको दाह कराकर तीन दिन अशौच करै, यहां जातदंत उद्देश्यका विशेषण होनेसे विवक्षा नहीं है और दाह कराकर यह, अनुवाद जानना चाहिये, दोनोंके विधानमें वाक्यका भेद हो जायगा. तीनवर्षसे प्रथम मुण्डनके न होनेपर अग्निके दाहमें तीनदिन, और दाह न होनेपर विष्णुका लिखा एकदिन अशौच होता है यह माधव लिखते हैं, जो किसीने लिखा है कि, तीनवर्षपर्यन्तका विषय अर्थात् तीनवर्षसे आगेही उसकी शुद्धि होती है ॥

विज्ञानेश्वरोक्तं च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चिन्त्यम् ॥ जातदन्तपदवैयर्थ्यादिति तत्तुच्छम् ॥ दाहस्याविधेयत्वात् ॥ नृणामकृतचूडानां न शुद्धिर्नैशिकी स्मृता' इति-

मनूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् त्र्यहासिद्धेः ॥ त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्यस्य साम्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन ॥ प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदा त्र्यहः 'निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इति मनूक्तेः ॥ एतत्सर्वं प्रागुक्तं सपिण्डानाम् ॥ मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम् ॥ बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः' इति कश्यपोक्तेः ॥ 'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्' इति मनूक्तेश्च ॥

जो विज्ञानेश्वरने यह लिखाहै इससेही तीनवर्षके उपरांत जिसका मुण्डन न हुआहो उसके विषयमें इसको मानना चिन्त्य है, कारण कि, दाहविधेय वाक्य नहीं है, जिन कुमारोंका चूडाकर्म नहीं हुआ उनकी अशुद्धि एकरात्रिकी लिखी है इस मनुके वाक्यसे तीन वर्षके उपरांत अर्थात् एकदिन आजायगा तीन दिन अशौच सिद्ध नहीं है, तुम भी आगे वही मानोगे इससे पदका व्यर्थत्व तुल्य है, और वाक्यसे अर्थका ज्ञान नहीं है इससे मिताक्षराके अर्थको न विचार दूषण देनेसे दूषण देना वृथा है, प्रथम वर्ष आदिमें मुण्डन होनेपर सदा तीनदिन और जिनका मुंडन न हुआ हो उनकी शुद्धि तीनरातसे होती है, इस मनुके कथनमें तीन रात हैं, पूर्व कथित अशौच सपिंडोंको है, मातापिताको तो दशदिनसे पीछे मरनेमें सब स्थानमें तीनरात होता है, कारण कि; कश्यपजीने लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम बालकके मरनेमें तीनरात्रिमें शुद्धि होती है, मनुका भी कथन है कि, बीजके संबन्धसे तीन दिन पापनिरोध किये हैं ॥

शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—"अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते । दन्तजाते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ" इति कौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम् ॥ 'अनूढानां तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम्' इति त्र्यहानुवृत्तौ शंखोक्तेः ॥ 'त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रे षण्मासेपि शिशौ मृते' इति मात्स्यसूक्ताच्च ॥ दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः ॥

शुद्धितत्व आदि गौड ग्रंथोंमें तो यह लिखा है कि, बालकके मरनेमें माताको एक दिन और दांतयुक्तके मृतक होनेमें तीन रात्र अशुद्धि होती है. यदि माता पिता निर्गुण हों तो इस कूर्मके कथनसे कश्यपजीका यह कथन शूद्रके निमित्त है, और विना विवाही कन्या और शूद्रको तीन दिन अशौच लिखा है, और छः मासके भी बालकके मृत्यु होनेमें तीन रात इस मत्स्यके वाक्यसे और दांतयुक्त मरजाय तो शूद्रको पांच दिन है ।

यथाहाङ्गिराः—"शूद्रे त्रिवर्षान्न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संम्रियते यदि । मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम्" इति ॥ यत्तु 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु' इति शंखोक्तं मासाशौचं, तत्सगुणशूद्रपरम् ॥ निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं मासः ॥ षडब्दात् प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः ॥ एतत् 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति विरोधाच्छिष्टविगर्हितत्वान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः ॥ दाक्षिणात्यानां तथैव ॥ अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः ॥ एवं कन्यास्वपि ॥ तास्वप्यजातदन्तासु मृतासु पित्रोरेकरात्रमिति माधवः ॥

सोई अंगिराने लिखा है कि, तीन वर्षसे न्यूनका बालक मृतक होजाय तो पांच दिनमें और इससे ऊपर मृतक हो तो बारह दिनमें शूद्रकी शुद्धि होती है, छः वर्षसे पीछे शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो एक महीनेका आशौच होता है, यह अंगिराने लिखा है. जो यह कथन है कि, विवाहसे प्रथम शूद्र मृतक हो जाय इस कथनसे शंखने जो अशौच लिखा है वह गुणयुक्त शूद्रके विषय है, निर्गुणके विषय तो तीनवर्षसे पश्चात् द्वादशाह है, छः वर्षका मरै तो पंद्रह दिन छः वर्षतक विवाह होनेपर मृतक होय तो एक महीने अशौच होताहै यह शुद्धितत्व आदि गौडोंका कहना आदर करनेके योग्य नहींहै यह विज्ञानेश्वर आदिका कथनहै कारण कि पूर्वमें कहे इस वाक्यका विरोध है कि, अवस्था निमित्तक अशौच सबको बराबर है और शिष्टोंकोभी यह निंदित है, दक्षिणीभी इसीप्रकार कहतेहैं, और देशका अशौच प्रथम कथनकर आयेहैं, यह गौडोंने कहाहै, इसीप्रकार कन्याओंमें भी जानना चाहिये, कन्याभी दांत निकलनेसे प्रथम मरजाय तो माता पिताको एक रात्र अशौच होताहै यह माधवने कहाहै ॥

यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्—'ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं जाते उभयोः कृतनाम्नि सोदराणां चेति पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति तन्नेदानीं प्रचरति ॥ अत एव स्मृत्यर्थसारे तन्नादृतम् ॥ कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम् ॥ 'अचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते' इत्यापस्तम्बोक्तेः इदं त्रिपुरुषमध्ये ॥'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठोक्तेः ॥

जो विज्ञानेश्वरने लिखाहै कि, दो वर्षसे प्रथम मरजाय तो माताहीको सूतक लगताहै, गर्भमें स्थित बालक मरजाय तो माताको दशदिन और जन्म होनेपर मरै तो दोनोंको, और नाम धरनेपर मरै तो सगे भाइयोंको दशदिन अशौच लगताहै. इस पैंगके कथनसे पिता माता सगे भाई ये दशदिनतक स्पर्श करने योग्य नहीं हैं. इसका इस समय प्रचार नहीं है, इसीसे स्मृत्यर्थसारमें इसका सत्कार नहीं कियाहै. मुण्डनसे प्रथम कन्या मरजाय तो स्नानमात्र करै, कारण कि, आपस्तम्बमें लिखा है, मुण्डनसे पहले कन्याओंके मरनेमें तत्काल शौच लिखा है, यह भी तीन पीढियोंमें है, कारण कि, वसिष्ठने कहा है कि, विना विवाही कन्याओंका अशौच तीन पुरुषतक माना गयाहै ॥

इदं वाग्दानोत्तरम् इति गौडाः ॥ तन्न ॥ 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिड्यं साप्तपौरुषम्' इति वचनात् ॥ चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः ॥ "अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते" इत्यङ्गिरसा त्रिरात्रविषयेऽह्नोविधानात् ॥ अप्रत्तानां विवाहितानां त्रिपुरुषी पितृपितामहप्रपितामहैः सकन्यायाः चतुर्थ्याः सापिण्ड्यम् एवंच कन्यापेक्षया पंचमे वृद्धप्रपितामहे सापिण्ड्यं निवर्तते इति तत्संतानेन्यस्मिन्नविवाह्यत्वाशौचादिधर्मा न भवन्तीत्यर्थः इति गोविन्दार्णवे संस्कारवीचौ ॥ स्त्रीणां तु पितृपक्षे पंचावधिकं सपिण्डत्वम् अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषमित्यादि संस्कारवीचौ प्रपंचितम् अतश्च कन्याया वृद्धप्रपितामहं संतत्या सह सापिंड्याभावात् कन्यामरणे सपिण्डोक्तमाशौचं नास्तीति शुद्धवीचौ गोविन्दार्णवे ॥

गौड तो ये लिखतेहैं कि, यह वाग्दानके उपरान्त है, कारण कि, यह वाक्य है कि, विना विवाही कन्याओंका सापिंड्य सातपुरुषतक है सो ठीक नहीं. मुण्डनसे पीछे वाग्दानसे प्रथम कन्या मरै तो एकदिन अशौच लगताहै, कारण कि, इसी अंगिराके कथनसे तीन रातके विषयमें एकदिन लिखाहै,

संस्कार करनेसे प्रथम सब वर्णोंमें तीन रात और कन्याओंकी मृत्युमें एकदिन अशौच लिखाहै, विना विवाही कन्याओंका सापिंडय पिता पितामह प्रपितामह और चौथी कन्या इन चारमें होता है, इससे कन्याकी अपेक्षा पांचवें वृद्ध प्रपितामहमें सापिंडय निवृत्त होजाता है, इससे उसकी सन्तानमें विवाहका अभाव और अशौचआदि धर्म नहीं होते हैं, यह गोविंदार्णव और संस्कारवीचिमें कहा है. कन्याओंका पितृपक्षमें पांचपीढीतक सापिंडय कहा है और विवाहसे प्रथम तीन पुरुषतक इत्यादि सब संस्कार बीचमें कहे हैं, इससे वृद्ध प्रपितामहकी सन्ततिके संग कन्याका सापिंडय न होनेसे कन्याके मरणमें सपिण्डोंका अशौच नहीं होता है, यह शुद्धिवीचि और गोविन्दार्णवने लिखा है ॥

अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् ॥ विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपरार्काद्याः ॥ शूद्रे निर्गुणे तु त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे पूर्णाशौचं वक्ष्यते ॥ तदुत्तरं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् ॥ "अवारिपूर्वं प्रत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम्" इति मरीच्युक्तेः ॥

इससे शूद्रके यज्ञोपवीत रूप विवाहसे प्रथम तीनरात अशौच होता है, विवाहसे परे सोलह वर्षके मध्यमें भी तीन राततक होता है, यह अपरार्क आदिका मतहै, निर्गुण शूद्रको तीन वर्षसे प्रथम पांच दिन अशौच लगता है, और छः वर्षसे पीछे विवाह न हुआ होय तो बारहदिन, यह गौड लिखतेहैं, गुणवालोंको तो, सोलह वर्षसे पीछे विवाह न हुआ होय तो पूरा अशौच लिखेंगे, और उसके आगे पति और पिताके वंशमें सात पुरुषतक तीनरात अशौच लगता है, कारण कि, मरीचिने लिखा है कि, जिसका जलसे संकल्पपूर्वक विवाह न हुआ हो और वाग्दान होगया हो वह कन्या असंस्कृत जाननी चाहिये, उसके मरनेका अशौच दोनों कुलमें तीन रात होता है ॥

रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शंखः—"पितृवेश्मनि या नारी रजः पश्यत्यसंस्कृता । तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥" यावज्जीवमाशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः ॥ अथानुपनीते किंचिदुच्यते ॥ नाम्नः पूर्वं खननमेव ॥ तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्पूर्वं चौलाभावेऽग्न्युदकदानविकल्पः "नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति" इति मनूक्तेः ॥ उदकक्रियासाहचर्याद्दाहोपलक्षणम् ॥ खनने तु नान्यदौर्ध्वदैहिकम् ॥ 'ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः ॥

रत्नाकर और शुद्धितत्वमें शंखने लिखा है कि, जो विना विवाही पिताके घर रज देखले, तो उसके मरनेका अशौच कभी भी दूर नहीं होता अर्थात् जबतक जीवित रहै, तबतक नहीं जाता यह वाचस्पति मिश्रका कथन है. अब यज्ञोपवीतरहित विषयमें कुछ लिखतेहैं, नामकरणसे प्रथम बालकके मरनेमें गाडना लिखा है, और उसके पीछे तीनवर्षसे प्रथम यदि मुण्डन न हुआ होय तो उसको अग्नि और जलदानका विकल्प लिखा है, अर्थात् अग्निदाह आदि करै, चाहे न करै, कारण कि, मनुने लिखा है कि, तीन वर्षके बालककी क्रियाको बांधव न करैं, अथवा जिसके दांत निकल आये हों वा नामकर्म होगया होय तो करै. जल क्रिया साहचर्य्यसे दाहकाभी उपलक्षण है, गाडनेमें तो अन्य और्ध्वदैहिक कर्म नहीं होता कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, दोवर्षसे न्यून गाडदे जलदान न करै, उदक अन्त्यकर्मपर है, अपरार्क कहतेहैं ॥

यमः-"ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥" माधवीये ब्राह्मेपि-"स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथ वा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः सद्भिर्गतैर्बहिः ॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्तं तु काष्ठवत् ॥ खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते ॥" अलंकरणमपि वक्ष्यते ॥ कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं वाग्न्युदकदानं नियतम् ॥

यमका वचन है कि, दोवर्षसे न्यून प्रेतको घी लगाकर यमगाथा और यमसूक्तको गाता हुआ गाडदे. माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, स्त्रियोंका गर्भपात हुआ हो या उत्पन्न होतेही मरगयाहो वा दांत जमनेसे प्रथम छः महीनेसे अधिकका मराहो तो उसको वस्त्र आदिसे भूषित करके काष्ठके तुल्य भूमिपर डालदे वा शनैः २ भूमिमें खोदकर गाडदे तो उसी समय शौच लिखा है, भूषणभी कहैंगे, मुण्डन हुए उपरान्त तीन वर्षसे पहले वा पीछे जलदानका नियम है ॥

यत्त वसिष्ठः-'ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम्' इति तत्प्रथमाब्दचूडापरम् ॥ वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् ॥ वर्षत्रयोर्ध्वमुपनयनात्पूर्वं च तूष्णीमग्न्युदकदानम् ॥ 'तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च' इति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः, पिण्डदानमपि कार्यम् ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ 'उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य' इति गौतमोक्तेः ॥ उदकग्रहणमौर्ध्वदैहिकपरमिति हरदत्तः ॥ "द्वादशाद्वत्सरादर्वाक् पौगण्डं मरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोद्दिष्टानि कारयेत्" इति हरदत्तधृतदेवलोक्तेश्च ॥

जो तो यह वसिष्ठने लिखा है कि, दो वर्षसे न्यून मृतक होजाय वा गर्भपात होजाय तो सपिंडोंको तीन रात अशौच लगताहै, यह वाक्य प्रथम वर्षके मुण्डनमें है, कारण कि, तीन वर्षके उपरान्त मुण्डन न हुआ होय और उपनयनसे प्रथम अग्नि और जलदानका नियम है, कारण कि, पूर्वोक्त लौगाक्षिकी स्मृति है कि, जलदान और संस्कार मौन हो करै, पिंडदानभी करै, कारण कि, प्रचेताका कथन है कि, संस्कार होनेको भूमिपर और संस्कृतोंको कुशापर पिंडदे. गौतमने लिखा है कि, मुंडन होगया होय तो सपिंड जलदान करै, यहां जलग्रहण और्ध्वदैहिक कर्मका बोधक है, यह हरदत्तने कहा है, और हरदत्तहीका लिखा यह देवलका भी कथन है कि, बारह वर्षसे प्रथम पौगंड मृतक होजाय तो सपिंडीकरण और एकोद्दिष्ट न करै ॥

मरीचिरपि-'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम्' इत्येतदनुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः॥ अत्र चूडैव पूर्वावधिः ॥ पूर्ववाक्ये तु तद्ग्रहणात् ॥ उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वाद्दाहः पूर्वावधिरिति केचित् ॥ द्वादशाद्वत्सरादित्यनुपनीतद्विजानूढशूद्रविषयम् ॥ त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः-"प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः" इति ॥

मरीचिकाभी कथनहै कि, कुश और मन्त्रोंके विना ग्रामसे बाहिर प्रेतको पिंडदेना, यह यज्ञोपवीतरहितके निमित्तहै यह विज्ञानेश्वरने लिखाहै. यहां मुंडनही पहली अवधि है, कारण कि, पहले वाक्योंमें उसका स्वीकारहै. उदक ग्रहणको उपलक्षण होनेसे पहला दिन अवधि है यह किन्हीका मतहै, बारह वर्षसे प्रथम अवधि है, यह अनुपनीत ब्राह्मण और विना विवाहे शूद्रके विषयमें लिखाहै. तीनदिनके अशौ-

चमें पिंडदानकी विधि पारस्करने लिखी है कि, प्रथम दिन सावधान होकर तीन पिंड, दूसरे दिन चार पिंड, और अस्थिसंचयन, और तीसरे दिन तीनपिंड दान करै और फिर कपडोंको धोवै ॥

अत्र देवयाज्ञिकनिबन्धे विशेषः—"शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखः । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥ आपञ्चवर्षात्कौमारं पौगण्डो नवहायनः ।" तथा—"गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना ॥" तथा—"यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते । किंचित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुखभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥"

यहां देवयाज्ञिक निबन्धमें विशेष लिखाहै कि, दांत निकलनेसे प्रथम शिशु, शिखाधारनतक बालक, यज्ञोपवीत होनेतक कुमार सब शास्त्रोंमें लिखाहै. पांचवर्षतक कौमार, नौवर्षका पौगंड होताहै, इसी-प्रकारके वाक्य हैं कि, गर्भ नष्ट होनेपर कोई कर्म नहींहै, शिशुके मरनेपर दूधदे, और बालकके मरनेपर खीर और दूधदे, एकादशाह और द्वादशाह विधिको न करै. ऐसेही बालकवाक्य है कि, जहां बालक मृतक होजाय वहां उसकी अवस्थाके बालकोंको विधिसे पकान्न बनाकर जिमावै, भक्ष्य भोज्य और सुख-भक्षिका (खीर) दे, और उसके वस्त्र और उपानह भी बालकोंको देवे कुमार और बालकोंको भोजन वस्त्र देने चाहिये, जिस २ वस्तुको बालक भोगताहो वह २ वस्तु ब्राह्मणको दे ॥

तथा—"भूमिनिक्षेपणं बाले आवर्षद्वयमाशिखम् । ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि" ॥ अचूडेप्यूर्ध्वं खनननिवृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति ॥ प्रागपि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति ॥ तथा—"चूडाकर्मणि संजाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् । सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥ तत्र दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम् । श्राद्धानि षोडशापि स्युः सपिण्डीकरणं विना ॥" इदं पञ्चवर्षोत्तरम् "जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम् । पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते । वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकं ततः । अहन्यहनि संप्राप्ते कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गुडेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम् । उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च ॥ दीपदानानि यत्किंचित्पञ्चवर्षाधिके सदा । कर्तव्यं तु खगश्रेष्ठ व्रतार्वाक् प्रेततृप्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोद्दिष्टानि षोडश । ऋजुदर्भैस्तिलैः शुक्लैः प्राचीनावीतिना तथा" इति तत्रैवोक्तेः ॥

ऐसेही वाक्य हैं कि, दो वर्षसे प्रथम शिखा रखनेतक भूमिमें दाबै, हे गरुड ! इसके उपरान्त विधिसे देहका दाह करै, जिसका मुण्डन न हुआ हो उसको दाबनेकी निवृत्तिके निमित्त दोवर्षपर्यन्त वाक्यमें लिखा है और जिसका मुंडन होगया हो उसको भी प्रथम कर्मनिवृत्तिके निमित्त शिखा धारनेतक लिखाहै, ऐसाही वाक्य है कि, मुण्डनके उपरान्त मरण होजाय तो सूतकके अन्तमें वृषोत्सर्ग करना चाहिये, वहां दाह और जलदान करै, और सपिंडीके विना सोलह श्राद्ध होतेहैं, यह पांच वर्षके पीछे जानना, जन्मसे पांच वर्षतक असंस्कृत अन्नको खाता है, पांच वर्षसे अधिकका बालक मृतक होजाय तो वृषोत्सर्ग आदि कर्म और जलदान करै, और प्रतिदिन सोलह श्राद्ध करै, खीर वा गुडसे पिण्ड क्रमसे दान करै, जलका घडा, पददान, दीपदान आदि जो हैं, वे सब पांच वर्षसे अधिकमें करने. हे गरुड ! श्रेष्ठ व्रत जनेऊसे प्रथम

प्रेततृप्तिके निमित्त करने, और स्वाहाकारसे षोडश १६ एकोद्दिष्ट करने, और ऋजु कुशा और शुक्ल तिलोंसे अपसव्य होकर करै, यह सब उसीस्थलमें कहा है ॥

अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ वार्षिकादि तु न भवत्येव सपिण्डनाभावे पितृत्वायोगाद्वचनाभावाच्च ॥ दिवोदासीये–"अव्रते निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत् । क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डीकरणं विना ॥ उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते" इति ॥ स्त्रीणां तूद्वाहात्प्रागुदकपिण्डदानविकल्पः ॥ "स्त्रीणां चैके प्रत्तानाम्" इति गौतमोक्तेः ॥ 'स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः' इतिवचनात् शूद्रेष्येवम् ॥ एतद्वयोनिमित्ताशौचं सर्ववर्णसमम् । 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रपादोक्तेः ॥

इसमें मूल नहीं है, दिवोदासीयमें कहा है कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह मरजाय तो ब्राह्मण आदि जातियोंमें भी सपिंडके विना सब क्रिया शूद्र जातिके तुल्य करनी लिखी है, जल और पिंडदान मुण्डनके पीछे लिखे हैं. कन्याओंको तो दाहसे प्रथम जल और पिंडदान दे वा न दे, कारण कि, गौतमका कथन है कि, कोई आचार्य विवाही हुई कन्याकोही जलदान लिखते हैं, स्त्री शूद्रोंका एक धर्म है, इससे शूद्रोंमें भी इसीप्रकार जानना. इन दोनोंको निमित्तसे अशौच सब वर्णोंमें तुल्य है, कारण कि, व्याघ्रपादका कथन है कि, सब वर्णोंमें अवस्थाके बीतनेपर समान अशौच लिखा है ॥

यानि तु–'निर्वृत्तचूडके विप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इति । "निर्वृत्ते क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते । शूद्रे त्रिवर्षे न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते । षड्वर्षान्तमतीते तु शूद्रे मासमशौचकम्" इत्याङ्गिरसादीनि । तानि विशिष्टविगानान्नादर्तव्यानीति विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः ॥ तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रागुक्ता हेयैव ॥ 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम् ॥ अन्यदेशे कौर्मोक्ता व्यवस्थेति शुद्धितत्त्वे ॥

जो ये वाक्य अंगिरस आदिके लिखे हैं कि, मुण्डनके पीछे ब्राह्मण मरे तो तीन रातमें, क्षत्रिय मृतक हो तो छः रातमें, वैश्य मरे तो नौरातमें, तीन वर्षसे कमका शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो पांच रातमें शुद्धि होती है, इससे अधिकका शूद्र मरै तो बारह दिन और छः वर्षसे ऊपरका मरै तो एक महीनेका अशौच होता है, यह सब वाक्य शिष्टोंके निंदित करनेके कारण आदर करने योग्य नहीं हैं, यह विज्ञानेश्वर मदनपारिजात आदिका मत है, इससे इस कथनके बदले पूर्वोक्त जो शूद्रोंकी व्यवस्था है, वह त्यागनेही योग्य है. अवस्थाका अशौच सबको समान है, यह दाक्षिणात्योंके निमित्त है अन्य देशके निमित्त तो वही व्यवस्था उचित है, सो कूर्मपुराणमें लिखा है, यह शुद्धितत्वमें वर्णन किया है ॥

अथ जात्याशौचम् ।

तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्तते "त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् । क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ॥ त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः" इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ यत्तु स एव–'त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते' इत्याह–तत्र दशाहे त्रिरात्रमस्पृश्यत्वम् ॥ एकादिनोत्पन्ने आशौचद्वये दशाहमस्पृश्यत्वम् "मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन कथंचन । अस्पृश्यं तु भवेद्गोत्रं सर्वमेव सबान्धवम्" इत्याङ्गिरसोक्तेः । दशाहाशौचपरत्वे 'दशरात्रमतः परम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवेकादयः ॥ तन्न स्मृतिभेदात्त्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च ॥

अब जातिके अशौचको लिखते हैं, वह अशौच द्विजोंमें बालकोंके यज्ञोपवीतके उपरान्त प्रवृत्त होताहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम तीन रात और उससे पीछे दश रात, क्षत्रियके बारह दिन, वैश्यके पंद्रह दिन, और शूद्रको तीस दिन, और जो शूद्रन्यायसे युक्त हो उसको पन्द्रह दिन अशौच लगता है, जो उसकाही कथन है कि, तीन वा दशरात मरनेका अशौच लगता है, वह इस कारण है कि, दश दिनमें तीन दिनतक स्पर्श न करै, यदि एकदिन दो अशौच प्राप्त होजांय तो दश दिनतक अशौच न करै, कारण कि, अंगिराका कथन है कि, यदि मरनेमें अन्यका मरण होजाय तो सब गोत्र बांधवोंसहित स्पर्श करनेयोग्य नहीं होता. दशाहके अशौचका कथन करनेवाला मानोगे तो इससे आगे दशरातका अशौच होता है इसके संग पुनरुक्तिदोष होजायगा, यह शुद्धिविवेक आदिने कहा है, सो यथार्थ नहीं, कारण कि, स्मृतियोंका भेद है, और तीनरात वा दशरात अशौच होता है, इस विकल्पका योग है ॥

यस्तु पुत्राणां वेदानध्याप्य वृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः–'द्वादशरात्रं महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन्' इति ॥ अत्र यावदुक्तनिषेधो वा स्पृश्यत्वमात्रं वा न तु कर्मानधिकारः। एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः । 'एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते' इति ॥ शुद्धितत्त्वे तु–'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः । पित्रादयो महागुरवः । भर्ताप्युक्तो रामायणे–'पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ॥'

जो पुत्रोंको वेद पढाकर जीविका करनेकी इच्छा करता है वहां आश्वलायनने लिखा है कि, बारह राततक महागुरुसे दान और अध्ययनको त्याग दे, यहां बारह दिन पर्यन्त पूर्वोक्त निषेध है, वा स्पर्शका त्याग है, कुछ कर्मका अनधिकार नहीं है, कारण कि, एकादशाहके अन्तमें आश्वलायननेही लिखा है कि, एकादशाहको त्यागकर अन्तमें बलिवैश्वदेव करै, शुद्धितत्वमें तो कहा है कि, माता, पिता, आचार्य्य यह तीन पुरुषके महागुरु होते हैं. इस विष्णुके कथनमें मातापिता महागुरु कहे हैं, और रामायणमें स्वामी भी महागुरु हैं, बन्धु गति देवता गुरु स्त्रियोंका पतिही है ॥

शातातपः–'पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥' एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थम् ॥ सोदकानां त्रिरात्रम् 'त्र्यहात्तूदकदायिनः' इति मनूक्तेः ॥ अग्निपुराणे–"सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ समानोदकभावस्तु निवर्तेत चतुर्दशे ॥ जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्परं गोत्रमुच्यते ॥" बृहस्पतिः"दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥ स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् ॥ 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः' इत्युक्तेः ॥ 'दत्तानां भर्तुरेव हि' ॥ 'स्वजात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातके तथा' इति माधवीये ब्राह्माच्च ॥ शूद्रस्य विवाहाभावेपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः ॥ "अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः॥ शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा" इत्यपरार्के शङ्खोक्तेः ॥

शातातपने कहा है कि, स्त्रियोंका गुरु एक पतिही है, और सबका गुरु अभ्यागत होता है, ये वाक्य पिता माताको गुरुनिषेधके निमित्त हैं, सोदकोंको तीन रात अशौच होता है, कारण कि, मनुका कथन है कि, जलके दाता तीनदिनमें पवित्र होते हैं. अग्निपुराणमें लिखा है कि, सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त

होती है, और चौदह पीढीतक समानोदक होतेहैं. जहांतक बडे पुरुषके नामका ज्ञान हो, उससे परे गोत्र कहाता है. बृहस्पतिका कथन है कि, प्रेत सूतकमें सपिंड दशदिनमें, सवंश तीन रातमें और सगोत्री स्नान करनेसे शुद्ध होतेहैं. स्त्री और शूद्रको तो विवाहके उपरान्त जातिका अशौच लगता है कारण कि,यह वाक्य है कि, स्त्रियोंका विवाहही यज्ञोपवीत कहाताहै, विवाही हुई कन्याओंको स्वामीके कुलका अशौच लगता है, कारण कि, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जन्म और मरणमें अपनी जातिका अशौच होता है, शूद्रका विवाह न होय तो भी एकमहीनेका अशौच लगताहै, कारण कि, अपरार्कमें शंखका कथन है कि, जिसका विवाह न हुआ हो वह शूद्र सोलह वर्षसे पीछे मृतक होजाय तो उसके बांधव एक-महीनेमें पवित्र होतेहैं. इसमें विचार नहीं करना ॥

निर्णयामृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम्। हारीतः-"आमौञ्जीवन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात्। आप्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात्।" धनुःप्रतोदावष्टमेऽब्दे द्वादशे वस्त्र-द्वयमिति॥ मेधातिथिस्तु-'त्रिरात्रमाव्रतादेशात्' इत्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम्। स च कालः स्वकीयः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः। तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेप्यष्टमा-दूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम्। तत्रापि-'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं संपूर्ण-मर्वाक्त्रिरात्रम्। येपि 'आषोडशाद्भवेद्बालः' इत्याहुः। तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव 'ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी' इति वचनादित्याह॥

निर्णयामृतपारिजात आदिमें तो और प्रकार कहाहै, हारीतका कथन है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम ब्राह्मण, धनुष ग्रहण करनेसे प्रथम क्षत्री, और प्रतोद (कोडा) के ग्रहण करनेसे प्रथम वैश्य, और दो वस्त्रोंके ग्रहण करनेसे प्रथम शूद्रको अशौच लगताहै. धनुष और कोडा आठवें वर्षमें और दो वस्त्र बारहवें वर्षमें कहेहैं. मेधातिथिने तो यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम तीनरात अशौच लगताहै, यहां यज्ञोपवीत शब्द कालके उपलक्षण निमित्त है, वह काल अपना २ लेना, वा सबका अष्टमवर्षरूप होताहै इससे 'चतुर्णां' (चारों) वर्णोंका यज्ञोपवीत अभावमें भी आठवर्षके उपरान्त पूर्ण अशौच होताहै वहांभी अष्टमसे प्रथम शिशु कहातेहैं. इस दूसरी स्मृतिके कथनसे आठसे उपरान्त पूर्ण और पहले त्रिरात्र होताहै, जैसे सोलहसे प्रथम बालक कहतेहैं, उनकेभी मतमें आठवर्षसे उपरान्त शूद्रके यहां महीनेकी शुद्धिहै, यह कहाहै कि, आठ-वर्षके आगे शूद्रको महीनेकी शुद्धि है ॥

हारलताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम् 'अनुपनीतो विप्रः' इत्युक्त्वा-"म्रियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि। द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः" इत्या-दिपुराणोक्तेरुपनयनं कालोपलक्षणम्॥ षडब्दपदं मासत्रयाधिकपरम्॥ 'गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे' इत्युक्तेः॥ यत्तु जावालः-"व्रतचूडा द्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम्। दशाह-त्र्यहएकाहैः शुद्ध्यन्त्यापि हि निर्गुणाः" इति। द्विजा दन्ताः। इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः पञ्चाब्दोपनीतपरमिति॥ तदेतन्नाद्रियन्ते वृद्धाः॥

हारलता शुद्धितत्व आदि गौड ग्रन्थोंमें भी ऐसेही लिखाहै यज्ञोपवीतहीन विप्र यह कहकर जो आदि-पुराणका कथन है कि, जहां मरै वहां तीनदिनका अशौच लगताहै यह तीनों ब्राह्मणोंका छः वर्षतकका समय है वह उपनयनके समयका उपलक्षण है, षडब्द (छः वर्ष) पद तीनमहीनोंसे अधिकका बोधक है, कारण कि, यह कथन है कि, गर्भसे वा जन्मसे आठवेंमें करै, और जो जाबालने लिखाहै कि, यज्ञोपवीत

मुण्डन तथा द्विज (दात) के प्रत्यक्ष होनेपर निर्गुण भी दश दिन तीन दिन एक दिनमें तीनों द्विज क्रमसे पवित्र होतेहैं. यहां प्रतीति (प्रत्यक्ष) कहनेसे उसके विषयमें है. जिसका यज्ञोपवीत पांच वर्षकी अवस्थामें हुआहो, इसको वृद्ध नहीं मानते ॥

यानि तु पराशरः–"एकाहाद्ब्राह्मणः शुद्ध्येद्योऽग्निवेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥" केवलवेदः केवलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणम् ॥ अयं संकोचो होमाध्ययनपर एव नतु संध्यादाविति हारलतायाम् ॥ अङ्गिराः–"सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" देवलः–"आशौचं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः । निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम् ॥" अत्यन्तोत्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरम् ॥ शूद्रे दशरात्रमिति हारलतायाम् ॥

जो वाक्य पराशरने लिखेहैं कि, जो अग्नि और वेद दोनोंसे युक्त है, वह ब्राह्मण एक दिनमें, और केवल वेदपाठी तीन दिनमें, और उससे भी हीन दश दिनमें पवित्र होताहै. यहां केवल वेदशब्द केवल श्रौताग्निकाभी उपलक्षण है, और यह संकोच होम और पढानेके विषयमें है, संध्या आदिमें नहीं यह हारलतामें वर्णन कियाहै,अंगिराने लिखाहै कि, सबवर्णोंकी सूतक और मृतकमें दशदिनमें पवित्रता होती है, यह शातातपने लिखाहै, कि, मरण और जन्ममें कर्मका क्षय देखतेहुये और ऋषि सब वर्णोंको दशदिनका अशौच लिखतेहैं. जो शूद्र अति श्रेष्ठ हैं और कर्मकी हानिमें दुःख मानतेहैं ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर रहतेहैं उनको दश रातका अशौच हारलतामें लिखाहै ॥

दक्षः–"सद्यः शौचं तथैकाहस्त्र्यहश्चतुरहस्तथा । षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ मरणान्तं तथा चान्यद्दशपक्षास्तु सूतके ॥" मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे–"चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त्वहरेव तु ॥" इत्यादीनि तान्यापदनापद्गुणवद्गुणवद्विषयाणि देशान्तरभेदाद्वा ज्ञेयानि । सद्यःशौचादिषडहान्ताः पक्षा यायावरादिपराः । अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भिन्नम् ॥ 'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु' इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपश्वालम्भवत् शिष्टविगानान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरः ॥ "अस्नात्वा चाप्यहुत्वा च अदत्त्वाश्नंस्तथा द्विजः । एवंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं भवेत्" इति दक्षोक्त्या "अन्यपूर्वा यस्य गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः । आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा" इति ब्राह्मादिवशाद्व्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः ॥

दक्षने कहाहै कि, सूतकमें ये दश पक्षहैं, कि, सद्यःशौच, एक दिन, तीन दिन, चार दिन, छैदिन, दशदिन, बारहदिन, पक्ष, महीना, मरणपर्यन्त, मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, चौथी पीढीमें दशरात, पांचवींमें छःदिन, छठीमें चारदिन, सातवींमें एक दिनमें पवित्रता होतीहै, इत्यादि वाक्य आपत्तिमें और अनापत्तिमें और गुणवान् और निर्गुणके विषयमें हैं, वा देशाचारके भेदसे जानने, और सद्यःशौचसे छः दिनतकके सूतक यायावरों (उंछवृत्ति) आदिके विषयमेंहैं, यहां मरणांत अशौच जन्म आदि निमित्तसे पृथक् है, विज्ञानेश्वर तो यह लिखतेहैं कि, शिष्टोंमें निन्दित होनेसे पूर्वोक्त वाक्य सत्कार करनेके योग्य नहींहै, स्नान होम और दान किये विना जो ब्राह्मण भोजन करताहै ऐसे उस द्विजको सदैव सूतक लगता है, इस दक्षके कथनसे और जिसके घरमें ऐसी स्त्रीहो जिसका दूसरा पति होचुकाहो, उस ब्राह्मणके यहां सब कार्योंमें

देहमें निरन्तर अशौच रहताहै, इन ब्रह्मपुराण आदिके वाक्योंसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यह अपरार्क मदनपारिजात आदि लिखते हैं ॥

माधवस्तु–'वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथा' इति कलिवर्ज्येषूक्तेः–"दशाह एव विप्रस्य सपिण्डे मरणे सति । कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्बिषी" इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपक्षा युगान्तरविषयाः । मरणान्तादिपक्षास्तु निन्दार्थवादः । अन्यथा–"नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत्" इति विरोधः स्यादित्याह ॥

माधवने कहाहै कि, आचार और वेदपाठकी अपेक्षासे पापका संकोच होताहै, यह कलियुगमें निषेध है, और सपिण्डकी मृत्युमें ब्राह्मणको दश दिनकाही अशौच लगताहै और पक्षोंको जो मानताहै वह कलियुगमें पापका भागी होताहै, इस हारीतके कथनसे न्यून अशौचके पक्ष युगान्तरोंके विषयमें हैं, मरणांत अशौचके पक्ष तो निन्दासे अर्थवाद लिखे हैं अन्यथा इस वाक्यका विरोध होगा, कि, नामधारक ब्राह्मणको दशदिनका सूतक प्राप्त होताहै ॥

यत्तु देवलः–"दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात् । अङ्गस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः" इति पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह । यच्चानुपनीतातिक्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तं–'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः' इति–तदपि युगान्तरेषु ॥ 'अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च' इति माधवीये कलौ तन्निषेधात् ॥

जो देवलने यह लिखाहै कि, दशाह आदि तीन भागसे अस्थिसंचयन करै, पश्चात् वर्णोंके स्पर्शकी इच्छा तत्त्वके देखनेवाले करतेहैं, इस कथनसे पूर्ण अशौचमें ही स्पर्श करै, और जो अनुपनीत और अतिक्रान्ताशौचमें तीन रात आदि उसनेही लिखेहैं कि, अपने अशौचके समयके तीसरे भागमें स्पर्श करै यहभी और युगोंमें है कारण कि, अस्थिसंचयनके उपरान्त अंगका स्पर्श करै, माधवीयके इस कथनसे कलियुगमें उनका निषेध है ॥

यत्तु हारलतायाम्–'चतुर्थेहनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणेन तु' इति प्रचेतसोक्तेस्त्र्यहैकाहाशौचेपि चतुर्थाह एवाङ्गस्पर्श इति ॥ तन्न ॥ देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात् ॥ ये तु वर्णसंकरजा मूर्धावसिक्ताद्यास्तेषामाशौचे विशेषः कलौ नोपयुक्त इति नोच्यते ॥ प्रतिलोमजानां नाशौचम् ॥ मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः ॥

जो हारलतामें लिखाहै कि, चौथे दिन ब्राह्मणके अंगका स्पर्श करै, इसप्रचेताके कथनसे तीनदिन और एकदिनकी अपवित्रतामें भी चौथे दिनही अंगस्पर्श करै, सो उचित नहीं कारण कि, देवलआदिके अनुरोधसे यह वाक्यभी दशाह आदि अशौचके विषयमें है, जो किसीने यह लिखाहै कि, वर्णसंकरोंसे उत्पन्न हुये मूर्द्धावसिक्त आदिकोंका अशौच विशेष कलियुगमें उपयोगी नहीं है, इससे उसको नहीं लिखते, प्रतिलोमजोंको अशौच नहीं लगता, मल दूर करनेके निमित्त स्नानमात्र होताहै, यह विज्ञानेश्वरका मत है ॥

माधवस्तु–'शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवर्णस्य संकराः' इति ब्राह्मोक्तेः शूद्रवदाह ॥ हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अहीनवर्णगासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेपि

१ जो बात कलिमें वर्जित कीहै इसका विशेष अभिप्राय यह है कि, सतयुगादिमें जप तप संयम नियमसे मनुष्योंमें पूर्ण सामर्थ्य थी उनको दोष नहीं लगता था सब विधान करसकते थे कलियुगमें जप तप सामर्थ्यकी हनितासे निषेध कियाहै इससे 'न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि' यही वाक्य सिद्धहै ॥

प्रसवे मरणे च पूर्वापरपित्रोर्भर्तुश्च त्रिरात्रमेव न दशाहादि । "अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च" इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णूक्तेः ॥ सपिण्डानां त्वेकाहः । "परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डतः" इति माधवीये हारीतोक्तेः "सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः" इति मरीच्युक्तेश्च ॥

माधव तो शौच और अशौचको वर्णसंकर शूद्रके तुल्य करै, इस ब्रह्मपुराणके कथनसे शूद्रके समान अशौच लिखतेहैं, हारलतामें भी इसीप्रकार लिखाहै, दत्तक, क्रीत, कृत्रिम आदि पुत्रोंसे और हीन (ऊंचे) वर्णकी स्त्रियोंमें सपिंड होय तो भी जन्म और मरणसे प्रथम और पिछले माता पिताको और पतिको तीनरातका अशौच लगता है, दशदिन आदिका नहीं, कारण कि, विष्णुने लिखाहै कि, औरससे भिन्न पुत्रोंको जन्म और मरणमें और पर पूर्वास्त्रियोंके प्रसूत (जन्म) और मरणमें तीनरातका अशौच लगता है, और सपिंडोंको तो एकदिन लगता है, कारण कि, माधवीयमें हारीतका कथन है कि, परपतिवाली स्त्री और किये हुये पुत्रोंके मरने आदिमें पति और मातापिताको तीनरात और सपिंडोंको एकदिनका अशौच लगता है, और मरीचिने भी लिखाहै कि, पहले और पिछले मातापिताका सूतक और मरणमें तीनरात और सपिंडोंका एकदिन अशौच लगताहै ॥

शङ्खः–"अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥" परपूर्वा पुनर्भूः ॥ इदं सवर्णासु ॥ हीनवर्णासु तु शंखलिखितौ–"परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकक्रिया ॥" ब्राह्मेपि–'आशौचं तु त्रिरात्रं स्यात्समवर्णेषु निश्चितम् ॥' यत्तु षडशीतौ–"अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते । तास्वेवानन्यपूर्वासु पञ्चाहोभिर्विशुद्ध्यति ॥" तत्र पञ्चाहे मूलं चिन्त्यम् ॥

शखने यह लिखा है कि, औरससे भिन्न पुत्रोंमें और अन्यमें आसक्त और भार्या और पुनर्भूभार्यामें तीन रातमें शुद्धि मानी है, यहभी सवर्णाओंमें जानना उचित है, हीनवर्णाओंमें तो शंख और लिखितका कथन है कि, पुनर्भूस्त्री और कियेहुये पुत्रोंके मरनेमें न उसे अनध्याय न अशौच और न जलदान होता है. ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, समानवर्णोंमें तीनरात अशौच निश्चयसे होता है. जो षडशीतिमें लिखा है कि, पुनर्भू और अवरुद्धा (करीहुयी) स्त्रियोंमें तीनसे शुद्धि इष्ट है, वा उनमें और अन्य पूर्वाओंसे भिन्नोंमें पांच दिनमें शुद्धि होती है उनमें पांचदिनकी शुद्धिमें मूल कहीं नहीं मिलताहै ॥

यत्तु याज्ञवल्क्यः–"अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च' इत्येकाहमाह तदसंनिधौ ज्ञेयम् । यदा पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम् ॥ "अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च । गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता" इति प्रजापत्युक्तेः ॥ पितेति वोढुरुपलक्षणम् ॥ तथोपक्रमात् ॥ यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्न त्रिरात्रम् ॥ पूर्वसंबन्धनिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित् ॥ तन्न ॥ जनकेपि–'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्' इति वाचनिकाशौचस्यानिर्वार्यत्वात् ॥ पितृमरणेपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् ॥

जो याज्ञवल्क्यने एकदिन लिखाहै कि, औरससे भिन्नपुत्रोंमें और अन्यमें अनुरक्तभार्यामें एकदिन अशौच लगताहै, वह निकटमें न होयतो जानना, जब पिताको एकदिन है तब सपिंडोंको स्नानमात्र

लगता है, कारण कि, प्रजापतिका कथन है कि, अन्यके आश्रय स्त्री और परपत्नियोंमें सगोत्री स्नानमात्रसे, और उनके पिता तीनरातमें पवित्र होते हैं, यहां पितापद उनके वरका भी उपलक्षण है, कारण कि प्रकरण है, जो किसीने लिखा है कि, दत्तकमें पुत्रभाव रखनेवालेका किया है, इससे प्रथम पिताको तीन रात नहीं, और पहले संबन्धकी निवृत्तिसे दशदिन आदिका भी अशौच नहीं कथन करसक्ते, सो उचित नहीं कारण कि, जनक पितामें भी बीजके संबन्धसे तीनदिन पापका अनुरोध करै, इस कथनसे सिद्ध अशौचको निवारण नहीं करसक्ते, पिताके मरनेमें भी दत्तक आदिको तीनरातका अशौच लगता है॥

शुचित्वे ब्राह्मे–'दत्तकश्च स्वयं दत्तः कृत्रिमः क्रीत एव च' इत्युपक्रम्य 'सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः' इत्युक्तेः ॥ स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने मरणे वा सपिण्डानामेकाहः ॥ बीजिनश्चेति गौतमेन साप्तपौरुषसापिण्डचोक्तेः ॥ सपिण्डानां चैकाहस्योक्तत्वात् सपिण्डे तु पुत्रीकृते सपिण्डदत्तौरसयोर्भ्रात्रोस्तत्पुत्रयोर्दशाह एव । तत्राकाङ्क्षाभावात्सपिण्डत्वेन दशाहप्राबल्याच्च ॥ पूर्वापरयोर्भर्तुरुत्पन्नयोः पुत्रयोस्त्वाह ॥ माधवीये मरीचिः–"मातुरैक्याद्द्विपितृकौ भ्रातरावन्यगोत्रजौ । एकाहं सूतकं तत्र त्रिरात्रं मृतके तयोः" इति दिक् ॥

शुद्धितत्वमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दत्तक, स्वयंदत्त, कृत्रिम, क्रुत इनके प्रकरणमें लिखा है कि, ये सूतक और मृतकमें तीनदिन अशौचके भागी होते हैं, यह कहा है, स्मृतिकौमुदी और हारलतामें भी ऐसेही कहा है, दत्तकके पुत्रपौत्रोंके जन्म और मरणमें सपिंडोंको, एकदिनका अशौच होता है, कारण कि, 'बीजिनश्च' इस वाक्यसे गौतमने सातपुरुषतक सपिंड लिखे हैं और सपिंडीका एकदिनका अशौच लिख आये हैं, यदि सपिण्डही पुत्र किया होय तो सपिण्ड दत्तक औरस दोनों भाइयोंको और उनके पुत्रोंको दशदिनकाही होता है कारण कि, वहां आकांक्षा नहीं है और दशदिनका अशौच बलिष्ठ है. पूर्व और पिछले भर्तासे उत्पन्नहुये पुत्रोंको तो माधवीयमें मरीचिने लिखा है कि, एकमातासे दो पिता जिनके ऐसे भिन्नगोत्री भाई होंय तो वहां एकदिन सूतक होता है और उनके ही मरनेमें तीनरात अशौच होता है, यह संक्षेपसे लिखाहै ॥

ऊढकन्यानामाशौचम् ।

ऊढकन्यानां तु विष्णुराह–'संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च' इति ॥ प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेश्वरापरार्कौ ॥ माधवस्तु–'प्रसवेपि त्रिरात्रं पित्रोः' एकरात्रं भ्रात्रादिबन्धुवर्गस्य । "दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयेताथ म्रियेत वा । तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः" इति ब्राह्मोक्तेरित्याह ॥ यत्तु कश्चिदाह–पक्षपदेन भ्रातरो गृह्यन्ते ॥ वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम् । तदभावे तद्विरोधाच्च । भ्रातुः प्रसवे एकाहः । मृतौ त्रिरात्रमिति केचित् ॥ युक्ता तु पक्षिणी । 'परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्' इति ब्राह्मात् ॥ भ्रातृभिन्नानामेकाहः । वर्गोक्तेः । 'इतरेषां तु यथाविधि' इति वक्ष्यमाणवचनाच्च ॥ यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातुस्त्र्यह इति कश्चित् स निर्मूलत्वात् 'नाशौचं पितृपक्षे' इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः ॥

विवाहीहुई कन्यामें तो विष्णुने यह लिखा है कि, विवाही स्त्रियोंका अशौच पितृपक्षमें नहीं होता, यदि उनका प्रसव और मृत्यु पिताके यहांही होय तो एक दिन तीन दिन अशौच होता है. प्रसवमें एक रात मरणमें त्रिरात्र यह विज्ञानेश्वर और अपरार्क लिखते हैं, माधवने तो प्रसवमें भी तीन रात, माता पिता और भाई बन्धुओंको एक दिनका कहा है, कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि दान किई हुई कन्याके सुतजन्म और मृत्यु पिताके घर होंय तो उसके बन्धुओंको एक दिन और मातापिताको तीन दिन अशौच लगता है, जो किसीने यह लिखा है कि, पक्षपदसे भ्राता लेते हैं, कारण कि, वाक्यान्तरमें बहनकी मृत्युमें तीन रात अशौचके कहे हैं, सो ठीक नहीं उसका अभाव है, और इस वाक्यका विरोध है, भ्राताको तो प्रसवमें एकदिन है, और मृत्युमें तीनदिन यह कोई लिखते हैं, और युक्त तौ पक्षिणी है कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, भाई और भगिनीके मरनेमें परस्पर पक्षिणीका अशौच लगता है, भ्रातासे भिन्नोंको एक दिन होता है, कारण कि, पीछे वाक्यमें वर्गपद पढा है और यह वाक्य आगे भी कहेंगे कि, औरको यथाविधि अशौच होता है, जो कोई यह कहते हैं कि प्रधानघरमें मृत्यु होय तो मातापिताको पूर्ण और भ्राताको तीन दिन अशौच लगता है, वह इससे भ्रांत है, प्रथम तो यह वाक्यही निर्मूल है दूसरे पितृपक्षमें अशौच नहीं लगता इस पूर्वोक्त वाक्यसे विरोध है ॥

"दत्ता नारी पितुर्गेहे प्रधाने सूयते यदा ॥ म्रियते वा सदा तस्याः पिता शुध्येत्त्रिभिर्दिनैः" इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च ॥ पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति ॥ मृतौ पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव ॥ "प्रत्ताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च । मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥" 'अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्' इति माधवीये शंखकार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ 'बैजिकादभिसंबन्धात्' इत्युक्तेश्च ॥

कल्पतरु और शुद्धितत्वमें कहा है कि, विवाही हुई नारी पिताके यहां प्रधान करके प्रसूता होय वा मरजाय तो उसका पिता तीन दिनमें शुद्ध होता है, पतिके घरमें जन्म होय तो पिता आदिकोंको अशौच नहीं है, मरणमें तो मातापिताको भी तीनरात अशुद्धि लगतीही है, कारण कि, यह कथन है कि दी वा नहीं दी विवाही वा विना विवाही कन्याओंके मरनेमें मातापिताको तीनरात और दूसरोंको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अशौच लगता है, और जिनका वाग्दान नहीं हुआ उनके मरनेमें तो मातापिताको एकदिनका होता है; कारण कि, माधवीयमें शंख और कार्ष्णाजिनकी स्मृति है, और पीछे भी बीजके सम्बन्धसे लिख आये हैं ॥

स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोः । "सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । प्रदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत्" इति पुलस्त्योक्तेः । अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः पक्षिणीत्याह ॥ षडशीतावपि–"पितृगेहादतोन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते । पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यात्नान्येषामिति निश्चयः" इति । ग्रामान्तरे इयमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ भ्रातुस्तु पक्षिणी ॥ "श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले । पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्" इति वृद्धबृहस्पतिस्मृतेः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मे–'आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥

स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसेही लिखा है, माधव तो यह लिखते हैं यह त्रिरात्र दांत निकलनेके विषयमें है, दांतोंकी उत्पत्तिसे प्रथम मातापिताको एकरात और विना विवाही कन्याओंमें सद्यः और प्रौढोंमें एक

दिनमें शुद्धि होती है, और विना विवाहीमें तीनरातमें और दत्तामें पक्षिणीका अशौच कहा है, इस पुलस्त्यके वाक्यसे अन्यत्र कन्या मरै तो मातापिताको पक्षिणी अशौच लगताहै, षडशीतिमें भी कहाहै कि, पिताके घरसे और जगह यदि कन्याका प्रसव होय तो वहां मातापिताको पक्षिणी (दो दिन एक रात्र) अशौच लगताहै, और औरोंको नहीं लगता यह निश्चयहै, और ग्राममें मरनेके विषयमें यह वाक्यहै, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै, भ्राताको भी दोदिन एकरात अशौच लगताहै कारण कि, बृहस्पति स्मृतिमें कहाहै कि, सास ससुर भगिनी भ्राता मामा बुआ मौसी इनके मरणमें पक्षिणी होतीहै, शुद्धितत्वमें कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, दांतजमनेतक सहोदरभाईके मरणमें उसीसमय चूडातक मृत्यु होजाय तो एकरात और विवाहके उपरान्त तीन रात और इससे पीछे दशरात अशौच लगताहै ॥

पित्रोर्मृतौ स्त्रीणामाशौचनिर्णयः।

पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रम् "पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत् ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः" इति माधवीये वृद्धमनूक्तेः ॥ इदं दशाहान्तः ॥ ऊर्ध्वं तु पक्षिणी ॥ भ्रातुर्भगिनीगृहे तस्या वा तद्गृहे मृतौ त्रिरात्रम् अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् ॥ ब्राह्मेपि—"परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्। मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यते" इति ॥ शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः ॥

पितामाताके मरणमें स्त्रियोंको तीनरात अशौच लगताहै, कारण कि, माधवीयमें बृहन्मनुका वाक्यहै कि, पितामाताके मरणमें विवाहीहुई स्त्रियोंको कैसे अशौच होताहै, तीन रातमें शुद्धि प्राप्त होतीहै यह भगवान् यमका कथनहै यहभी दशदिनके भीतर है और पश्चात् पक्षिणीअशौच होताहै, भगिनीके घर भ्राता और भ्राताके घर भगिनीके मरणमें दोनोंको त्रिरात्र होताहै और स्थानमें मरै तो पक्षिणी होतीहै यह षडशीतिमें लिखाहै. ब्रह्मपुराणमें भी कहाहै कि, भ्राता और भगिनीके मरणमें आपसमें पक्षिणी अशौच प्राप्त होताहै और मामाके अशौचके तुल्य चाचाका अशौच कन्याको होताहै, शिष्टतो यह कथन करतेहैं कि, इसवाक्यको निर्मूल होनेसे चाचाके मरणमें स्नान होताहै ॥

त्रिंशच्छ्लोक्यां—"प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्त्विक्सयाज्यस्वस्रीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र । पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिबन्धुत्रयान्तेवासिश्वश्रूसुमित्रश्वशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे ॥ मातामह्यां च पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्रामनाथे च नष्टे। शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम्। रात्रि सब्रह्मचारिण्यथ तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम्" इति ॥ अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम् ॥

त्रिंशत्श्लोकीमें कहाहै कि, आचार्य मातामह दुहिताका पुत्र श्रोत्रिय अपना यजमान भानजा इनके मरणमें तीनरात अशौच लगताहै, और सोदक तीनदिनमें पवित्र होताहै और ऋत्विक् दुहिताका पुत्र सहपाठी और तीन बन्धुओंतक शिष्य, सास, मित्र, ससुर, भगिनी और भानजा इनके मरणमें दोनोकुलोंमें पक्षिणी अशौच लगताहै, मातामही पिता माताकी बहन, मातुल मामी इनके मरणमें पक्षिणी अशौच लगताहै, अपने देशका राजा और गांवका स्वामी ये मृत होजांय तो सूर्यके अस्तहोनेतक अशौच

लगताहै, शिष्य उपाध्याय तीन बन्धु गुरु पुत्र आचार्य स्त्री सगोत्र और सबसे श्रेष्ठ सगोत्री और अपने स्थानमें मातुल मरै तो एकरात अशौच लगताहै, सब ब्रह्मचारियोंके मरणमें एक रातही अशौच लगताहै और किसीप्रकार थोडे संबंधसे युक्तके मरनेमें सवस्त्र स्नान होताहै, यह सम्पूर्ण अशौच सबवर्णोंमें बराबर है, इसका मूल मिताक्षराआदिमें स्पष्ट लिखा है ॥

दौहित्रभागिनेययोर्निर्णयः ।

दौहित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रम् ॥ अनुपनीतयोः पक्षिणी ॥ "संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः" इति वृद्धमनूक्तेः ॥ संस्कृते दाहेन ॥ तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः ॥ तन्न ॥ विशेषवैयर्थ्यात् ॥ मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था ॥ मनुः—"त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥"

दौहित्र भानजा उपनीत होय तो तीनरात और यज्ञोपवीत न होय तो पक्षिणी अशौच लगताहै, कारण कि, वृद्धमनुने लिखाहै कि, दौहित्र और भगिनीके पुत्र मृतक होजांय तो पक्षिणी, और संस्कृत मरै तो तीनरात होताहै, यह धर्मकी व्यवस्थाहै, संस्कृतनाम जिसका दाह हुआहो तिससे दाहमें तीनरात होताहै और भांति नहीं यह गौड लिखतेहैं सो उचित नहीं कारण कि, संस्कृतका विशेष अर्थ करना यथार्थ नहीं विदितआदि निकट मरे होंय तो पक्षिणी, और विशेषमें मरे होयँ तो एकदिन लगताहै यह व्यवस्थाहै । मनुने कहाहै कि, आचार्यके मरनेमें तीनदिन और उसके पुत्र और पत्नीके मरनेमें दिन-रातका अशौच लगताहै, यह मर्यादाहै ॥

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते निर्णयः ।

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इति स्मृतेरिति माधवः ॥ एकग्रामीणे त्वेकाहः ॥

वेदपाठी अपने घर मरै तो तीनरात अशौच होताहै, कारण कि, यह स्मृतिहै कि, श्रोत्रिय निकटमें मरै तो तीनरात अशुद्धि होतीहै यह माधव लिखते हैं, एकग्रामका होय तो एकदिन ॥

ऋत्विग्विषये ।

ऋत्विक्षु बह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये ॥ यद्यपि कर्म कुर्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्विक्त्वमुक्तं तथापि कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयम् ॥ गौडास्तु—"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा" इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः ॥ शिष्ये स्वोपनीते त्र्यहः ॥ 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति माधवीये बौधायनोक्तेः ॥ अन्यत्र तु मनुः—'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च' इति ॥ बन्धुत्रयम्—आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः पितुःपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः ॥ मातुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राश्चेति विज्ञानेश्वरः ॥

और ऋत्विक् बहुतकालसे वेद और धर्मशास्त्रोक्त यज्ञ कराता होय तो तीनरात और थोडेकालसे कराता होय तो एकदिन अशौच जानना, यद्यपि कर्म करानेवालेका वाचक ऋत्विक्शब्द है, इससे कर्मके

समयहीमें ऋत्विक् लिखाहै तथापि कर्ममें अशौचके निषेधसे उसके उत्तरहीमें निषेध जानना चाहिये, गौडतो यह लिखतेहैं कि, माताके बन्धु गुरु मित्र देशका राजा मृतक होनेमें समानोदकोंको तीनदिन सगोत्रोंको एकदिन लिखाहै, इस जाबालके वाक्यसे मातृबन्धुका अशौच एकदिनका लिखाहै, उपनीतशिष्यके मृतक होनेमें तीनरात अशौच लगताहै, कारण कि, माधवीयमें बौधायनका कथनहै कि, शिष्य सतीर्थ सब्रह्मचारी, इनके मृतक होनेमें क्रमसे त्रिरात्र एकदिनका अशौच लगताहै, औरके मरनेमें तो मनुने लिखाहै कि, मातुलके मरनेमें पक्षिणी शिष्य ऋत्विज बांधवोंके मरनेमें एकरात होताहै, बांधव तीन होतेहैं, अपनी फूफी मौसी और मामाके पुत्र और पिताकी फूफी और मौसी मामाके पुत्र, और माताकी फूफी मौसी और मामाके पुत्र यह विज्ञानेश्वरका मतहै ॥

पितृष्वस्रादिकन्यानाम् ।

'अत्र पक्षिणी। पितृष्वस्रादिकन्यानामूढानां त्वेकाहः ॥ तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्त-ब्राह्मात् यत्तु षडशीत्याम्–"एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामहयोस्तथा । ये मातामह-योश्चैव भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः ॥ मातुलाः स्वस्य पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः ॥ भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे त्र्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम् ॥" यच्च यमः–"जामातरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता ॥ पक्षिणी शालकानां स्यादिति शातातपोऽब्रवीत्" इति ॥ निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम् ॥

यहां फूफी आदि विवाही होयँ तो पक्षिणी और उसके बन्धुसमूहमें एकदिनका अशौच पूर्वोक्त ब्रह्म-पुराणके वाक्यसे विदित होताहै, जो षडशीतिमें कहाहै कि, जो पिताकी पितामह और मातामहकी बहन हैं, और अपने और मातापिताके मामा और उनकी स्त्री संतान और उनके जो पिता इन सबके मृतक होनेमें पक्षिणी अशौच लगताहै इसीप्रकार श्वशुर और जामाता और दौहित्रके मरनेमें जानना चाहिये, जो यमने लिखाहै कि, जमाईके मरनेमें दोनोंकी शुद्धि तीनदिनमें और शालेके मरनेमें पक्षिणी अशौच लगताहै, यह शातातपने लिखा है सो निर्मूल होनेसे और मिताक्षरा आदिके विरोधसे त्यागने योग्यहै ॥

मदनपारिजाते विष्णुः–'असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम् ॥ अत्र हरदत्तः–'अन्तः शवे च' इत्यापस्तम्बसूत्रमन्तः शवे ग्रामे धनुःशतादर्वागन्नमभोज्यम् । दीपमुदकुम्भं वोपनिधाय तु भुञ्जीत यदि समानवंशं न गृहमेवं सूतिकायामित्याह ॥ प्रधानगृहमृतौ तु–"गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन । तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः" इत्याङ्गिरसोक्तमिति माधवः ॥ एतेन 'त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च' इति कौर्मं व्याख्यातम् ॥

मदनपारिजातमें विष्णुने लिखा है कि, सपिंड अपने घरमें मृतक होजाय तो एकदिन अशौच लगता है, यह हरदत्तने तो "अन्तःशवे च" इस आपस्तम्बके सूत्रमें लिखाहै कि, ग्राममें शव (मृतक) होय तो सौ धनुषके मध्यतक भोजन न करै. करै तो दीपक और जलका घडा रखकर करै, यदि घर अपने कुलका न हो तो सूतिकामें इसी प्रकार जानना, प्रधान घरमें मृतक हो तो यह आंगिरसका कहा मानना यह माधव लिखते हैं कि, जिसके घरमें कोई असपिंड किसीप्रकार मृतक होजाय तो उसको भी तीनरात अशौच लगता है, इसमें संदेह नहीं इसमें यह कूर्मका कथन भी व्याख्यात हुआ कि, असपिंड अपने घर मृतक होजाय तो तीन दिनतक अशौच लगता है ॥

शुद्धितत्त्वे बृहन्मनुः-"श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद्दिजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ॥ दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः ॥ द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात् ॥ अत्यन्ते वर्जयेद्गेहमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥" अन्त्यो म्लेच्छः । अत्यन्त्यः श्वपाक इति वाचस्पतिः ॥ तत्रैव यमः-'द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात् ॥' संवर्तः-"गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदूषिते । प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेद्बुधः ॥ ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः ॥ सर्वमभ्युक्षयेद्वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम् ॥"

शुद्धितत्वमें बृहन्मनुका वाक्यहै कि, कुत्ता शूद्र पतित अंत्यज ये ब्राह्मणोंके मन्दिरमें मृतक होजांय तो वहां मनुके कथनके अनुसार, अशौच कहताहूँ कुत्तेके मरनेमें दशरात, शूद्रके मरनेमें एकमहीने; पतितके मरनेमें दो महीने, और चाण्डालके मरनेमें चार महीनेमें शुद्धि होती है, ऐसे मनुने लिखाहै, और अन्त्यज मराहोय तो उस घरको सदाके निमित्त त्यागदे, अन्त्यनाम म्लेच्छका है, वाचस्पतिने कुत्तेके पकानेवालेको अत्यन्त्य कहाहै, वहांही यमका कथनहै कि, द्विजके मरनेमें घर तीनदिनमें पवित्र होताहै, संवर्तमें लिखाहै कि, मध्यमें मरे मृतकसे दूषित सिद्धिको लिखताहूं, मृत्तिकाके पात्र और सिद्ध अन्नको फेंककर गोबरसे लीपकर बुद्धिमान् मनुष्य बकरीसे सुंघावै, और ब्राह्मणके द्वारा मन्त्रसे पवित्र सुवर्ण और कुशाके जलसे सब घरको छिडकै फिर वह घर शुद्ध होताहै इसमें संदेह नहीं ॥

बृहद्विष्णुः-"ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्" ॥ गृहे पश्वादौ मृतेप्येवम् ॥ यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्रादिषु त्रिरात्रमुक्तम् । "मातृष्वसा मातुलयोः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः । मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति" इति । गुरुराचार्यः । ऋत्विक्कुलागतः ॥ तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयम् ॥ श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि संनिधौ त्रिरात्रम् ॥ असंनिधौ पक्षिणी ॥ देशान्तरे एकरात्रम् ॥ वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः ॥ अन्यत्र तु मातृष्वस्रादिषु पक्षिणी ॥ 'पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्' इति वृद्धमनूक्तेः ॥

बृहद्विष्णुने लिखाहै कि, ग्रामके मध्यमें जबतक मृतक रहै तबतक ग्रामको अशौच है, जब ग्रामसे बाहर निकलजाय तब ग्राम शुद्ध होताहै, गृहपशु आदिके मृतक होनेमें भी इसीप्रकारका जानो, जो माधवीयमें प्रचेताने माताकी भगिनी आदिके मृतक होनेमें तीनदिन लिखाहै कि, माता बहन मामाकी सास और श्वशुर गुरु ऋत्विज यजमानके मरनेमें तीनदिनमें शुद्धि होती है, गुरुसे आचार्य और ऋत्विग् वह लेना जो कुलपरंपरासे चला आयाहो, वह घरके मरनेमें जानना, सास और श्वशुर और कहीं मरेहुए तो निकटमें तीन दिन और दूरमें पक्षिणी, और देशान्तरमें एकदिन अशौच मानना कारण कि, विष्णुने आगे ऐसा लिखाहै कि, यह माधव गौड आदि लिखतेहैं माताकी बहन आदि और स्थानमें मरेहोंय तो पक्षिणी अशौच लगता है, कारण कि, वृद्धमनुने लिखा है कि, पिताकी बहनके मरनेमें पक्षिणी रात्रिको अशौचमें बितावै ॥

यत्तु वृद्धमनुः-"भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति" इति ॥ तद्भ्रातृदौहित्रादौ देशान्तरे शालकसुतजामात्रोः स्वदेशे ज्ञेयम् ॥ शालके तु स्वदेशे एकाहः आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुलश्वशुरश्वश्रूश्वशुर्यसहाध्यायिशिष्येष्वेकरात्रम् ॥" इति

माधवीये विष्णूक्तेः ॥ हरदत्तीये दशश्लोक्यामप्येवम् ॥ श्वशुर्यः शालकः ॥ देशान्तरे स्नानम् ॥ श्वशुरयोर्देशान्तरे एकाहः ॥

जो वृद्धमनुने यह लिखा है कि, विवाही बहन और संस्कृतभ्राता मित्र जमाई धेवता (भानजा) शाला उसका पुत्र ये और स्थानमें मरजांय तो स्नान करनेसे तत्काल शुद्धि होती है, वहां जानना जहां भाई और धेवता देशान्तरमें हो, और शालेका पुत्र और जमाई अपने देशमें हो, कारण कि, माधवीयमें विष्णुने लिखा है कि, शाला, अपने देशमें होय तो एकदिन आचार्यकी स्त्री और पुत्र उपाध्याय मामा श्वशुर शाला सहपाठी शिष्य इनके मरनेमें एकदिन अशौच लगता है, हरदत्तकी दशश्लोकीमें भी ऐसेही लिखा है देशान्तरमें मरे तो स्नान मात्र और साला श्वशुर देशांतरमें मरैं तो एकदिन अशौच लगता है।

जाबालिः—"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । सर्वत्र मूल्याभावेपि क्रियाकर्तुर्दशाहतः ॥ गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् । प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति" इति मनूक्तेः ॥ शिष्य इत्युपलक्षणम् ॥ "निरन्वये सपिण्डे तु मृते सति दयान्वितः । तदशौचं पुरा चीर्त्वा कुर्यात्तु पितृवत्क्रियाम्" इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः ॥

जाबालिने कहा है कि, समानोदकोंको तीन दिन, और सगोत्रियोंको एकदिन अशौच लगता है, सब स्थानमें प्रमाण न होय तो भी क्रिया करनेवालेको दशदिनका अशौच लगता है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, मरेहुये गुरुका यदि शिष्य पितृमेध (क्रिया) करै, तो वह और कांधीवाले दशदिनमें पवित्र होते हैं, शिष्यपद औरका भी उपलक्षण है यदि अपने कुलसे भिन्नका सपिंड मृतक होजाय तो दयावान् मनुष्य उसके अशौचको मानकरके पिताकी समान क्रिया करे, यह माधवीयमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है ॥

दिवोदासीये—"सगोत्रो वासगोत्रो वा योग्निं दद्यात्सखे नरः । सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येच्च दशमेहनि ॥" यत्रैकविषये पक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं तत्र सन्निधिविदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था ॥ त्रिंशच्छ्लोक्याम्—'वानप्रस्थे यतौ चोपरमति कुलजे षण्ढके वा प्लवः स्याद्योषिद्गोविप्रगुप्त्यै मृतवति तु दिनं युद्धविद्धे च सद्यः ॥' अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ॥

दिवोदासीयमें कथन है कि, जो सगोत्री वा असगोत्री अपने मित्रको अग्नि दे वह भी नवश्राद्ध करै, और दशवें दिन शुद्ध होता है, यहां एकही विषयमें पक्षिणी और एकही दिन आदि अशौच लिखे हैं, वहां सन्निद्धि और विदेशसे वा मैत्री आदिसे व्यवस्था जाननी उचित है, त्रिंशत्श्लोकीमें कहा है कि, वानप्रस्थ संन्यासी और वंशका नपुंसक मृतक होजाय तो स्नानसे, स्त्री, गौ, ब्राह्मण, इनकी रक्षाके निमित्त मरै तो एकदिन, युद्धसे मृतक हो तो उसी समय पवित्रता होती है इसमें प्रमाण आकरमें स्पष्ट लिखा है.

युद्धे मृतस्य निर्णयः ।

युद्धमूर्ध्नि मृतस्य स्नानम् ॥ "उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः" इति मनूक्तेः ॥ यज्ञोन्त्यकर्म ॥ सर्वं तदैवेत्यर्थः ॥ यस्तु भारते राजधर्मेषु—"अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते । न ह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम्" इति ॥ श्राद्धादिनिषेधः स पुत्राद्यभावपरः ॥ अतएव तत्र

कर्णादीनां श्राद्धमुक्तम् ॥ अन्ये तु दर्शपिण्डनिषेधमाहुर्यतिवत् ॥ यत्तु पराशरः- "आहवेपि हतानां च एकरात्रमशौचकम्" इति तद्युद्धक्षते न कालान्तरमृतेर्ज्ञेयम् ॥ 'असन्निधौ स्नानम्' इति माधवः ॥

युद्धमें प्रधान मरनेमें स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, कारण कि, मनुने कहा है कि, संग्राममें उठाये हुए शस्त्रसे जो क्षत्रियोंके धर्मसे मृतक होता है, उसका अन्त्येष्टिकर्म और अशौच उसीकालमें होजाता है, यह मर्यादाहै, और जो महाभारतके राजधर्ममें कहा है कि, शूरवीरके मृतक होनेका अशौच नहीं करना वह स्वर्गलोकमें गमन करता है, उसको अन्न और जलका दान स्नान अशौच नहीं होते, यह श्राद्ध आदिका निषेध तब जानना जब उसके पुत्र नहों, इसीनिमित्त भारतमें कर्ण आदिका श्राद्ध लिखा है, और तो संन्यासीके तुल्य श्राद्धका निषेध कहते हैं, जो पराशरने लिखा है कि, युद्धमें मरोंका एकरात अशौच लगता है वहभी तब है जब युद्धमें घाव लगकर कालान्तरमें मृत्यु हो, निकटमें न होय तो स्नानसे शुद्ध है, यह माधव लिखते हैं ॥

शुद्धितत्त्वे अग्निपुराणे-"दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन्स्वर्गं न संशयः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥" यत्तु बृहस्पतिः-"डिम्बाहवे विद्युता च राज्ञां गोविप्रपालने । सद्यः शौचं मृतस्याहुस्त्र्यहं चान्ये महर्षयः ॥ तच्छस्त्रं विना पराङ्मुखहते च त्रिरात्रम् ॥ राज्ञा वध्ये हते सद्यः शौचमन्यत्र त्रिरात्रम् ॥ तथैव व्याघ्रः-"क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद्विधा । आसप्ताहात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥ शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित्प्रमीयते । अशौचं प्राकृतं तस्य सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥"

शुद्धितत्वमें अग्निपुराणका वाक्य है कि, दाढ और सींगवाले म्लेच्छ और तस्करोंमें जो मृतक हुएहैं और जो स्वामीके निमित्त मरे हैं हे राजन्! ये सब वर्ण, और विशेषकर क्षत्री ये सब स्वर्गमें गमन करते हैं, जो बृहस्पतिने लिखाहै कि, डिंभ संग्राममें और बिजलीसे मृतक हुये हैं राजा गौ ब्राह्मणकी पालनाके निमित्त जो मरे हैं, उनको शीघ्र शौच और कोई महर्षि तीनदिनका अशौच लिखते हैं, शस्त्रके विना पराङ्मुख होकर जो मृतक हुआहो उसका तीनदिन अशौच होताहै, राजाने जिसे माराहो उसका तत्काल शौच है और अन्यत्र तीनदिन होता है वहांही व्याघ्रका कथन है कि, घाव होकर जो मरे उसका दो प्रकार अशौच लगता है कि, सात दिनतक तीनदिन और उसके आगे दशदिन होता है घाव लगकर तीन दिन पीछे कोई मर जाय उसका सब वर्णोंमें सदा प्राकृतही शौच है ॥

शस्त्राघाते क्षतं विना शवस्पर्शे तु हारीतः-'शवस्पृशो ग्रामं न प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात् रात्रौ चेदादित्यस्य ॥' यत्तु मनुः-"अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहात्तूदकदायिनः ॥" इति । अह्ना रात्र्या चेत्यहोरात्रमित्युक्तम् । त्रिभिस्त्रिरात्रैरिति नवरात्रमेवं, दशरात्रमित्यर्थः । तत्तदन्नाशने तद्गृहवासेनापदि च ज्ञेयम् ॥ अङ्गिराः-"आशौचं यस्य संसर्गादापतेद्गृहमेधिनः । क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥

शस्त्रके लगनेसे घावसे रहित मृतकके स्पर्शमें है हारीतका यह वाक्यहै कि, मृतकके स्पर्श करनेवाले नक्षत्रोंके दर्शनतक और रात्रि होय तो सूर्यके दर्शनतक ग्राममें न आवे, जो मनुने यह लिखा है

कि, शवके स्पर्श करनेवाले दिनरात वा नवरात वा दशरातसे पवित्र होते हैं, और जल देनेवाले तीनरातमें पवित्र होते हैं वह उनके अन्नभक्षण और उनके घरमें, निवास और आपत्तिमें जानना, कारण कि मनुने यह लिखाहै कि, उनके अन्नको न खाय, और उनके घरमें न रहे तो एकदिनमें पवित्र होताहै. अंगिराने लिखाहै कि, जिस गृहस्थीको सम्बन्धसे अशौच लगे उसके कर्मोंका लोप नहीं होता, और वह अशौच गृहस्थके कर्मोंमें नहीं होता ऐसा जानना ॥

निर्हाराद्याशौचनिर्णयः ।

अथ निर्हाराद्याशौचम् ॥ स्नेहेन सवर्णनिर्हारे तदन्नाशने तद्गृहवासे च दशाहः ॥ तदन्नानशने तद्गृहवासे त्र्यहः गृहावासेऽन्नाभक्षणे चैकाहः ॥ भृतिग्रहणेन निर्हारे दाहे च तज्जात्याशौचम् "यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥ दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेन भूमिपः ॥ मासार्धेन तु वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति" इति कौर्मोक्तेः ॥ विजातीयनिर्हारे तु शवजातीयमाशौचम् ॥ अत्र भृतिग्रहे द्विगुणम् "अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाप्यवरं यदि । वहेच्छवं तदाशौचं द्रव्यार्थे द्विगुणं भवेत्" इति व्याघ्रोक्तेः ॥ कौर्ममेतदिति गौडाः ॥ दाहेप्येवम् ॥

अब मृतकके श्मशानमें लेजानेका अशौच वर्णन करतेहैं. प्रेमसे अपने सवर्णको लेजाय, और उसके अन्नको भोजन करै और उसके घरमें रहै तो दशदिनका अशौच लगताहै, उसके अन्नको न खाय और उसके घरमें रहै तो तीनदिनका और घरमें न रहै और अन्न न खाय तो एकदिनका है. वेतन लेकर लेजाय और दाह करै तो जातिका अशौच लगताहै, कारण कि, कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, लोभमें मनकरके प्रेतको लेजाय तो ब्राह्मण दशदिनमें, क्षत्रिय बारहदिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें, शूद्र एक मासमें शुद्ध होतेहैं, विजातीयप्रेतको लेजाय तो शवकी जातिका अशौच लगताहै और भृति लेकर करै तो दूना अशौच लगताहै. कारण कि, व्याघ्रने लिखाहै कि, छोटा वर्ण बडेवर्णको और बडा वर्ण छोटेवर्णको द्रव्यलेकर लेजाय तो अशौच दूना लगताहै, यह वाक्य कूर्मपुराणमें लिखाहै यह गौड कहतेहैं, दाहमेंभी इसी प्रकार जानो ॥

यत्तु ब्राह्मे–"यो सवर्णं तु मूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः । आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेतजातिसमं नृप" इति तदापदि ज्ञेयम् ॥ सोदकनिर्हारे तु दशाह इति माधवः ॥ अलंकरणे तु शङ्खः–"कृच्छ्रपादो सपिण्डस्य प्रेतालंकरणे कृते । अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते ॥" धर्मार्थमनाथसवर्णहरणे क्रियाकरणे च द्विजस्यानन्तयज्ञफलम् 'स्नानं प्राणायामोऽग्निस्पर्शश्चेति माधवीये' । अग्निदेप्येवम् ॥ "प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो नैव दुष्यति। वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति" इत्यपरार्के वृद्धपराशरोक्तेः ॥ मातुलत्वादिसम्बन्धे त्रिरात्रम् । असंबन्धिद्विजान्वहित्वा दहित्वा च सद्यः शौचात् । संबन्धे त्रिरात्रात्, इति पैठीनसिस्मृतेः ॥

जो ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, जो मनुष्य सवर्ण प्रेतको द्रव्यके निमित्त श्मशानमें लेजाकर दाहकरै हे राजन्! उसको प्रेतजातिके तुल्य अशौच लगता है, वह आपत्कालमें जानना, समानोदकको लेजाय तो दशदिन अशौच लगताहै, यह माधवका कथनहै, शवके अलंकार करनेमें तो शंखने यह लिखाहै कि, प्रेतके अलंकार करनेमें चौथाई कृच्छ्र और अज्ञानसे व्रत और अशक्तिमें स्नान करना चाहिये, धर्मके निमित्त

अनाथ और सवर्ण प्रेतके लेजाने और क्रिया करनेमें ब्राह्मणको यज्ञका फल प्राप्त होताहै और वह स्नान प्राणायाम और अग्निका स्पर्श करै. यह माधवीयमें कहाहै, जो अग्निदे, उसके निमित्त भी ऐसेही कहाहै, कारण कि, अपरार्कमें वृद्धपराशरका वचन है कि, प्रेतके छूने और संस्कारसे ब्राह्मण दूषित नहीं होता, लेजानेवाला और अग्निका देनेवाला स्नान करके शीघ्र शुद्ध होताहै. मातुल आदिका सम्बन्ध होय तो तीनदिनतक अशौच है, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, असम्बन्धी द्विजको लेजायकर और दाह करके शीघ्र शुद्धि और सम्बंधमें तीनदिनके अनन्तर शुद्धि होतीहै ॥

गौतममिताक्षरायां वृद्धात्रिः—"सूतकाद्द्विगुणं शावं शावाद्द्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥" अत्र पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिरित्यर्थः ॥ विष्णुः—"मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेन्न शूद्रं द्विजेन" ॥ देवलः—"ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम् ॥ यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥" याज्ञवल्क्यः—'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती ।' अनुगमने तु सपिण्डे न दोषः ॥ "विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनिर्हरणादिकम् । तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधिक्यं न विद्यते" इति देवलोक्तेः॥ 'दोषः स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना' इति हारीतोक्तेश्च ॥

गौतममिताक्षरामें वृद्धात्रिका कथन है कि, सूतकसे दूना मृतकका और शवसे दूना ऋतुका और ऋतुसे दुगुना प्रसवका और प्रसवसे दुगुना मृतकके दाहका अशौच लगताहै. इनमें प्रथम अशौचसे पिछलेकी निवृत्ति नहीं होती. विष्णुने यह लिखाहै कि, मरे द्विजको शूद्रसे और शूद्रको द्विजसे कभी न लिवालेजाय. देवलने लिखाहै कि, ब्रह्मचारीको प्रेतकी दाहक्रिया आदि न करनी चाहिये,यदि करै तो कृच्छ्र और फिर संस्कार करै । याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, आचार्य पिता उपाध्यायको लेजाय तो ब्रह्मचारीको दोष नहीं लगता सपिंडके संग जानेमें दोष नहींहै कारण कि, देवलने कहाहै कि, सपिंडोंको प्रेत लेजाना चाहिये, जो कोई उसको करताहै उससे अधिक पुण्यात्मा कोई नहींहै. हारीतने कहाहै कि, अनाथकी क्रियाको छोडकर असपिंडके लेजानेमें दोष होताहै ॥

समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः—"अनुगम्य शवं बुद्ध्या स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम् ॥ सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति" इति ॥ 'हीनवर्णे तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रम्,क्षत्रियस्य वैश्येऽहः,शूद्रे पक्षिणी, वैश्यस्य शूद्रेऽहः' इति विज्ञानेश्वरः॥ माधवस्तु—'विप्रस्य वैश्ये द्व्यहः,क्षत्रस्य शूद्रेप्येवम् । अन्यत् प्राग्वत्' स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानि सर्वत्रेत्याह ॥ हीनवर्णस्य दाहौर्ध्वदेहिककरणे तु ब्राह्मे—"ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादाौर्ध्वदेहिकम् ॥ कामाल्लोभात्तथा मोहात्कृत्वा तज्ज्ञातितां व्रजेत् ॥" मनुः—"व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च । अभीचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥" परेषां सर्ववर्णानां हीनेषु तद्द्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्याद्यूह्यम् ॥

समान और उत्कृष्ट वर्णके लेजानेमें तो माधवीयमें कण्वका वाक्य है कि, जानकर प्रेतके संग जाकर स्नान, अग्निका स्पर्श, घृतका भक्षण और फिर स्नान और प्राणायाम करके पवित्र होताहै, हीनवर्णोंमें तो क्षत्रियके संग जायतो एक दिन, वैश्यके संग जायतो पक्षिणी, और शूद्रके संग गमन करै तो तीन दिन अशौच लगताहै. क्षत्रियको वैश्यके संग जानेमें एकदिन, शूद्रके संग जानेमें पक्षिणी, वैश्यको शूद्रके संग जानेमें एकदिन, अशौच लगताहै यह विज्ञानेश्वर लिखतेहैं. माधवका तो यह कथन है कि, ब्राह्मणको वैश्यके संग जानेमें दो दिन, और इसीप्रकार क्षत्रियको शूद्रके संगजानेमें दोदिन अशौच लगताहै

और पूर्वके समान जानो। स्नान अग्निका स्पर्श और घृतका भक्षण सर्वत्र तुल्यहै, हीनवर्णके दाह और और्ध्वदेहिक करनेमें तो ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि,ब्राह्मण हीनवर्णका और्ध्वदेहिक न करै,काम,मोह, लोभसे करै तो उसी जातिको प्राप्त होताहै. मनुने कहाहै कि, जिनका शास्त्रोक्त समयपर संस्कार न हुआ हो उन नीचोंके यज्ञकराकर और सब वर्णोंके अन्त्यकर्मको कराकर और तथा अपने सवर्णकी हिंसा वा दुःख देकरके तीन कृच्छ्र व्रतको करके पापसे छूटता है, हीनवर्णके यहां पूर्वोक्त कर्म करै, तो दुगुना, तिगुना, चौगुना पाप जानना ॥

रोदननिर्णयः।

अथ रोदने समोत्तमवर्णयोः संचयनात्पूर्वं सचैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम्। हीनवर्णेषु तु संचयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं स्नानमात्रम्॥ विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये तु ब्राह्मे–"अस्थिसंचयने विप्रो रौति चेत्क्षत्रवैश्ययोः। तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेहनि शुद्ध्यति॥ कृते तु संचये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत्॥" क्षत्रस्य वैश्येप्येवम्। शूद्रे तु संचयात्प्राक् विप्रस्य त्रिरात्रम्। क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम्। ऊर्ध्वं तु द्विजानामेकाहः। शूद्रस्य शूद्रे स्पर्शं विना संचयात्पूर्वमेकाहः। ऊर्ध्वं सज्योतिरिति माधवीये ज्ञेयम्।

अब समान और उत्तम वर्णके यहां रोनेका प्रायश्चित्त लिखतेहैं अस्थिसंचयनसे पूर्व सचैल स्नान और पीछे रोवै तो आचमन करै, हीनवर्णके यहां अस्थिसंचयनसे प्रथम सचैल स्नान और पीछे स्नानमात्र करै. ब्राह्मणको क्षत्री वैश्यके यहां रोनेमें तो ब्रह्मपुराणमें कहाहै कि, यदि ब्राह्मण क्षत्री वैश्यके यहां अस्थिसंचयनके दिन रुदन करै, तो सचैल स्नान करै, दूसरे दिन और अस्थिसंचयनसे पश्चात् रुदन करै; तो स्नानसेही शुद्ध होताहै, वैश्यके यहां क्षत्रियको भी ऐसेही जानना. शूद्रके यहां अस्थिसंचयनसे प्रथम रुदन करै, तो तीनदिन क्षत्रिय और वैश्यके दोदिन क्षत्रिय और वैश्यके दोदिन और उससे पीछे रुदन करनेमें द्विजोंको एकदिनका अशौच लगता है, शूद्र शूद्रके यहां रुदन करै, और स्पर्श न करै, तो एकदिनका अस्थिसंचयनसे उपरान्त सूर्यास्ततकका अशौच लगताहै यह माधवीयमें लिखाहै ॥

शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु–"अस्थिसंचयनादूर्ध्वं मासं यावद्द्विजातयः। दिवसेनैव शुध्यन्ति वाससां क्षालनेन च॥ सजातेर्दिवसेनैव त्र्यहात्क्षत्रियवैश्ययोः" इत्युक्तम्॥ सपिण्डानां रोदननिर्हारादावदोष इत्युक्तं प्राक्॥ विज्ञानेश्वरस्तु–"मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम्। वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकर्म च" इति पारस्करोक्तेः सर्वत्रैक-रात्रमाह॥

शुद्धितत्वमें पारस्करने तो यह लिखाहै कि, अस्थिसंचयनके उपरान्त मासपर्यन्तके रोनेमें द्विजाति एक दिनमें, और वस्त्रोंके धोनेसे शुद्ध होतेहैं, और सजातीयके यहां एकदिनमें और क्षत्रिय और वैश्यके यहां रोनेसे तीन दिनमें पवित्रता होती है, सपिंडोंके रोने और लेजानेमें दोष नहीं, यह पहले कह आयेहैं, विज्ञाने-श्वरने तो सब जगह एकरात लिखाहै, कारण कि, यह पारस्करने लिखाहै कि, बांधवोंके संग प्रेतका शोक करके उस रात दिनमें श्राद्ध और दान आदि कर्मको त्यागदेना चाहिये ॥

अशौचान्नभक्षणे निर्णयः।

अथाशौचान्नभक्षणे विष्णुः–'ब्राह्मणादीनामाशाचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदा-शौचम्। यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तम्' इति॥ अज्ञाने त्वङ्गिराः–"अन्त-

दशाहे भुक्त्वान्नं सूतके मृतकेपि वा ॥ अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः ॥" प्रायश्चित्तं त्वमत्या विप्रस्य वर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपञ्चाहसप्ताहोपवासाः, दश विंशतिः षष्टिः शतं च प्राणायामाः, पञ्चगव्याशनं च अभ्यासे द्विगुणम् । आपदि तु प्राणायाम- शतं पंचशतमष्टशतमष्टसहस्रं गायत्रीजपश्च । मत्यापदि तु सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवासस्तच्च वैश्याशौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शूद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं गायत्रीजपः । उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम् । मत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सांतपनकृच्छ्रमहासांतपनचान्द्राणि । अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषाण्मासिकानीत्यादि माधवीयादौ ज्ञेयम् ॥

अब अशौचके अन्न खानेमें दोष लिखतेहैं विष्णुने कहाहै कि, ब्राह्मण आदिके अशौचमें एकवार जो अन्न भोजन करताहै, उसको तबतक अशौच लगताहै, जबतक उनको होताहै, और अशौचके उपरान्त प्रायश्चित्त लगताहै. अज्ञानसे करै, तो अंगिराने कहाहै कि, सूतक वा मृतकमें दशदिनके भीतर खानेसे इतने कालतक उसको अशौच लगताहै. जबतक वह अन्न बाहिर न निकलजाय और विना जाने भोजन करनेका प्रायश्चित्त तो ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे, एक, तीन, पांच, सातदिनका व्रत करना तथा दश, वीस, साठ, सौ प्राणायाम और पंचगव्यका भक्षण करै, और वारंवार करनेमें दूना प्रायश्चित्तहै, और आपत्कालमें तो सौ प्राणायाम पांचसौ प्राणायाम और आठ हजार गायत्रीका जप कहाहै, जानकर सवर्णके अशौचमें भोजन करै, तो तीनवार अघमर्षण और आठहजार गायत्रीका जप करै, और क्षत्रियके अशौचमें भोजन करै, तो उपवासभी कहाहै, और वैश्यके अशौचमें तीनरातका व्रतहै, शूद्रके अशौचमें कृच्छ्रव्रतहै. क्षत्रिय और वैश्य उत्तम वर्णके अशौचमें खाय तो पांचसौ और आठसौ गायत्रीका जप करै, और शूद्रको सर्वत्र स्नानमात्रका प्रायश्चित्त कहा है, जानकर और आपत्तिके विना ब्राह्मण तीनों वर्णोंके अशौचमें भोजन करै तो सांतपन, कृच्छ्र, महासांतपन, चान्द्रायण करै, और बारम्बार भोजन करनेमें तो मासिक दोमहीने तीनमहीने छःमहीने व्रत आदि माधवीय आदिमें जानने ॥

अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य सपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम् ॥ भक्तदासस्य त्र्यहोर्ध्वम् ॥ 'सद्यः स्पृश्यो गर्भदासोभक्तदासस्त्र्यहाच्छुचिः' इति स्मृत्यन्तरोक्तः "मूल्यकर्मकराः शूद्रदासीदासास्तथैव च । स्नाने शरीरसंस्कारे गृह- कर्मण्यदूषिताः" इति शातातपोक्तेश्च ॥ एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे ॥ अन्यत्र मासाद्याशौचमस्त्येव ॥ एवं दास्यामपि । सूतिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि मास- मात्रम् "दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूतकम्" इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ षडशीतावपि–"स्वामिशौचेन दासाद्याः स्पृश्या मासात्तु कर्मसु । योग्याः स्युर्मासतो दासी सूती चेत्स्पृश्यतामियात् ॥

अब अपनी दासीमें उत्पन्न दासका अशौच लिखतेहैं. अपना सपिंड मृतक होजाय तो स्नान करनेसे स्वामीके कार्यमें छूनेके योग्य होताहै और (और भोजन करनेवाले दासका) तीन दिन अधिक अशौच होता है, कारण कि, अन्यस्मृतिका कथनहै कि, गर्भदास शीघ्र स्पर्शसे योग्य है, और भक्तदास तीन दिनमें पवित्र होता है. और शातातपने भी लिखाहै कि, मोलसे कार्य करनेवाले शूद्र, और दासीके दास जो हैं वे शरीरका संस्कार स्नान करनेसे घरके काम करनेमें दूषित नहीं हैं, यह भी उस कार्यमें है, जिसको दूसरे न करसकें, औरमें दो महीने आदिका अशौचहै, इसीप्रकार दासीमें भी समझना चाहिये,

सूतिका दासीको तो महीनेतक स्पर्श न करै, कारण कि, अंगिरसने कहा है, दासी वा दास जो जिस वर्णका होता है उसको उसी बर्णका अशौच लगता है, दासीको सूतक तो महीनेभरका लगता है. षडशीतिमें भी कहा है कि, दास आदि स्वामीकी शुद्धिके छूनेके योग्य होते हैं, और दासी प्रसूता होय तो एक महीनेमें स्पर्शके योग्य होती है ॥

दत्तदासादीनां स्वसपिण्डमरणादौ स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः ॥ "दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शौचेन शुध्यन्ति मृतसूतके" इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥ दासश्चात्र– "गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः । अन्नकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणे जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः ॥ विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः" इति नारदोक्तेषु गर्भभक्तदासौ विना ज्ञेयाः ॥ वडवा दासीतयाहृतस्तासुद्वाह्य दासो जात इत्यर्थः ॥ अन्तेवास्यपि तेनैवोक्तः "स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदन्ते कृत्वा कालं सुनिश्चितम् ॥ आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहे दत्तभोजनम्" इति ॥ शिष्यस्तत्तुल्यो विद्यार्थी ॥ दासादेः स्वामितत्सपिण्डमरणे तु विष्णुः–'पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम् मृते स्वामिन्यात्मीयम्' इति प्रतिलोमदासानामाशौचाभावः ॥ 'वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥

जो दास दत्त हैं उनके अपने सपिंडके मरण आदिमें स्वामीका अशौच लगता है, और तुल्य संख्याके दिनोंके पीछे महीने आदिके अशौच होनेपर स्वामीके कार्यमें स्पर्श करनेकी योग्यता होती है, यह हरदत्तने कहा है, कारण कि, बृहस्पतिकी स्मृति है कि, दास अन्तेवासी (शिष्य) भृत्य और एकत्र रहनेवाले शिष्य ये मरण और सूतकमें स्वामीके अशौचसे पवित्र होते हैं. यहां दाससे इन पन्द्रह भांतिके दासोंमें भक्तदाससे पृथक् लेना कि, घरमें उत्पन्न हुआ, मोल लिया, मिलगया, दायके क्रमसे आया, अन्नके अकालमें प्राप्त हुआ, स्वामीका बुलाया, वडे ऋणसे छुटाया, युद्धसे प्राप्त और दांवसे जीता हुआ, मैं तुम्हारा हूं यह कहकर आया, संन्यासका त्याग किया हुआ भक्तदास, विवाही हुई दासीमें उत्पन्न (वडवाहृत) अपना बेचनेवाला, यह पन्द्रह जन शास्त्रमें दास लिखे हैं, अन्तेवासी भी उसनेही लिखा है कि, बान्धवोंकी आज्ञासे शिल्प सीखनेकी इच्छा करताहुआ जो आचार्यके निकट कालका नियम करके रहै और आचार्य उसको अपने घरसे भोजन देकर उपदेश दे उसे अन्तेवासी कहा है, और शिष्य भी विद्याकी इच्छावाला उसके समान होता है. स्वामी और उसके सपिंडोंके मृतक होनेमें दासादिकोंके निमित्त विष्णुने यह लिखा है कि, अनुलोम पत्नी और दासोंको स्वामीका अशौच लगता है, और स्वामीके मरनेमें अपनी जातिका अशौच लगता है, और प्रतिलोम दासोंको तो अशौच नहीं लगता है कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, वर्ण अनुलोमसे दास होते हैं, प्रतिलोमसे नहीं होते ॥

रात्रौ जनने मरणे वा निर्णयः ।

अथ रात्रौ जनने मरणे वा रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वं दिनम्, अन्त्ये तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ॥ यत्तु प्रागर्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वं दिनमित्युक्तं, तत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ सर्वं चाशौचमाहिताग्नेर्दाहं तद्भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम् ॥

अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादिद्विजातिषु । दाहादग्निमतो विन्ध्याद्विदेशस्थे मृते सति" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ आहिताग्निः साग्निः ॥ 'आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्' इतिं वसिष्ठे विशेषोक्तेः ॥ 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः' इति ब्राह्माच्च ॥

इसके उपरांत रात्रिको जन्म वा मृत्यु होय तो रात्रिके तीनभाग करके पहले दो भागमें होय तो पूर्वदिन, और पिछले भागमें होय तो अगला दिन अशौच लगता है यह मिताक्षरामें कहा है और जो अर्द्धरात्र और सूर्योदयसे प्रथम पहिला दिन लिखा है वहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये, संपूर्ण अशौच अग्निहोत्रीको दाहसे और दूसरोंको मरणसे जानना चाहिये, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि, द्विजातियोंमें अग्निहोत्रीसे पृथकको अशौच मृत्युसे और अग्निहोत्रीको दाहसे लगता है, यदि वह विदेशमें मृतक हो तो ऐसा जानना. और वसिष्ठस्मृतिमें यह विशेष लिखा है कि, यदि आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो फिर संस्कार करके सबके तुल्य अशौच माने, और ब्रह्मपुराणका वाक्य भी है कि, जो अग्निहोत्री है उसका अशौच दाहसे जानना ॥

यत्तु-'धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम् 'आहिताग्नेरपि मरणाद्येव दशरात्रं दशाहं शावमाशौचम्' इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य । यत्तु दाहादेव तस्याशौचमुक्तं, तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन गृह्याग्नेः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम् । श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं तूभयोर्दशाहम् । दाहात्प्रागपीति ॥ तद्वचनविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम् ॥

और जो धूर्तस्वामी और रामांडारने लिखा है कि, आहिताग्निको भी मरणसेही दशरात अशौच लगता है, कारण कि, शवका अशौच दशदिन होता है, उसका निमित्त मृत्यु है और जो उसको दाहसेही अशौच लिखा है वह संस्कारके निमित्त अशौच पृथक्ही है, इससे गृह्याग्निहोत्रीको संस्कारका अंग अशौच तीन दिन और श्रौताग्निको दशदिन होता है और मृत्युनिमित्त अशौच तो दोनोंको दाहसे प्रथम भी दशदिनका लगता है, यह सब वाक्यकेही विरोधसे और पूर्वकी उत्कृष्टतासे और मूलकल्पनाकी लघुतासे करनेयोग्य हैं ॥

अतिक्रान्ताशौचनिर्णयः ।

अथातिक्रान्ताशौचम् ॥ तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः ॥ "विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्" इति मनूक्तः ॥ अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयम् ॥ तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेपि तदाद्येव दशाहादि । "पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥" इत्यस्य सर्वापवादत्वादित्याहुस्तन्न ॥ ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात् 'अनग्निमत उत्क्रान्तेः' इत्यादिविरोधाच्च ॥

अतिक्रांत अशौचको वर्णन करते हैं. यदि अशौचके बीचमें जन्मादि होजाय तो पूर्वअशौचके शेषसे शुद्धि होती है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, विशेषमें मृतक हुयेको जो दशदिनके भीतर सुने तो जितने दिन दशमें शेष हों उनसेही पवित्र होता है. यहां कोई लिखते हैं कि, यह पुत्र आदिसे भिन्नके विषयमें है उनके मतमें अशौचके बीचमें सुननेपर भी सुननेके दिनसेही दश दिन आदिका अशौच लगता है, कारण कि, यह वाक्य सबका अपवाद है

कि, पिता मृतक हो जाय तो दूरस्थित भी पुत्र जिस दिन सुने उस दिनसे लेकर दशदिन सूतकी होताहै, सो यथार्थ नहीं कारण कि, ज्ञातमें मृत्यु निमित्तहै, और अग्निहोत्रीसे पृथक् मरणसे अशौच लगता है, इत्यादि वाक्योंका बिरोध आताहै ॥

स्मृत्यर्थसारेपि–'जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः' इति ॥ षडशीतावपरार्के चैवम् ॥ दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः–"मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा। अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥" जनने त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव 'नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि' इति देवलोक्तेः ॥ पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव "निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः' इति मनूक्तेः ॥ तच्चातिक्रान्ताशौचं दशाहादिजात्याशौचविषयम् ॥ न त्वनुपनीतादिनिमित्तत्रिरात्रादौ–'उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम्' इति व्याघ्रोक्तेः ॥ 'निर्दशं ज्ञातिमरणम्' 'अतिक्रान्ते दशाहे तु' इति मनूक्तेश्च ॥

स्मृत्यर्थसारमेंभी लिखाहै कि, जन्म वा मरणके पहले दिनसे पीछे ज्ञान होय तो पुत्र आदिकी पवित्रता शेषसे होतीहै, षडशीति और अपरार्कमेंभी ऐसेहीं लिखाहै, दशदिनसे उपरान्त प्रतीत होय तो वृद्धवसिष्ठने यह लिखाहै कि, तीनमहीनेतक सुननेमें त्रिरात्र, छःमहीनेतक पक्षिणी, नौ महीनेसे पूर्वतक एकदिन अशौच लगताहै और इसके पीछे स्नानसे पवित्रता होतीहै. जन्ममें तो अतिक्रांत अशौच लगताही नहीं, कारण कि, देवलने लिखाहै कि, प्रसवके अशौचमें दिनोंके बीतनेपर अशुद्धि नहीं होती. पिताके मरनेमें स्नान तो वहांभी होताहै कारण कि, मनुने लिखाहै कि, दशदिनके उपरान्त ज्ञातिका मरण और पुत्रजन्मको सुनकर सवस्त्र स्नान करके उसी क्षणमें मनुष्य पवित्र होताहै, वह अतिक्रांताशौच दशाह आदि जातिके अशौचविषयमें है. और अनुपनीत आदिके त्रिरात्र इत्यादि अशौचमें नहींहै, कारण कि, व्याघ्रका कथनहै कि, यज्ञोपवीतीको तो अतिकालका अशौच पूर्वोक्तसे विषम लगताहै. और मनुनेभी दशदिनके पीछे ज्ञातिमरण, और दशदिनके उपरान्त सुने तो स्नानमात्रसे शुद्धि कहीहै ॥

माधवीये देवलस्तु–"आ त्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी ततः। परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुध्यति" इत्याह ॥ तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था। इदं चकदेशे ॥ देशान्तरे तु स्नानमात्रम् ॥ "देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ। मृते स्नानेन शुध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः" इति पराशरोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः ॥ स्नानं वत्सरान्ते "अर्वाक्त्रिपक्षात्त्रिनिशं षण्मासाच्च दिवानिशम्। अहः संवत्सरादर्वाग्देशान्तरमृतेष्वपि" इति विष्णूक्तेरिति माधवः ॥ इदं सपिण्डानां देशान्तरे स्नानं सोदकानामिति युक्तम् ॥

माधवीयमें देवलका यह कथनहै–तीन पखवारेसे प्रथम सुने तो त्रिरात्र, छः महीनेतक पक्षिणी, फिर वर्षतक एकदिन, इसके अनन्तर स्नानसे पवित्रता होतीहै. वहां विपत्ति और विना विपत्तिके विषयसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यहभी एकदेशमें है देशान्तरमें तो स्नानमात्र कहाहै, कारण कि, यह पराशरने लिखाहै कि, देशान्तरमें मृतकको सुनकर और नपुंसक वानप्रस्थ संन्यासीका मरण और गर्भके स्रावमें गोत्री स्नानसे पवित्र होतेहैं यह विज्ञानेश्वरका मतहै. वर्षके पीछे स्नानहै, कारण कि, विष्णुने लिखाहै कि, तीन

पखवारेसे पहले तीनरात, छः महीने तक दिनरात, वर्षसे पहले देशान्तरमें मृतक हुओंका एकदिन अशौच होताहै यह माधवका मतहै, यह सपिंडोंके निमित्तहै देशान्तरमें समानोदकोंको तो स्नानहै ॥

लक्षणं त्वाह बृहस्पतिः–"महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः । वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च" इति ॥ एतत्सर्वं मातापितृभिन्नविषयम् । 'तयोस्तु पितरौ चेत्' इति पूर्वपैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्णमेव दशाहादि ॥

उसका लक्षण बृहस्पतिने लिखाहै कि, जहां महानदीका अन्तरहो, वा पर्वत बीचमें हो और वाणीका भेद हो उसे देशान्तर कहतेहैं. कोई साठ योजन लम्बा, और कोई चालीस योजन, और कोई तीस योजनका देशांतर कहतेहैं, यह सब माता पितासे भिन्नके विषयमें जानना. उनके माता पिता मृत्यु हुये होंय तो इस पूर्वोक्त पैठीनसि स्मृतिके वाक्यसे पुत्रोंको सदा दशाह आदि अशौच लगताहै ॥

स्मृत्यर्थसारेपि–'मातापितृमरणे दूरदेशेपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति ॥ शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु–"ऊर्ध्वं संवत्सरादाद्याद्बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु ॥" इति देवलोक्तेः । पित्रोरब्दमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमेकाहः । बन्धुर्माता पिता भर्ता च । पूर्वोक्तदशाहस्तु कलिङ्गादिदेशपर इत्याहुः ॥ ते बन्धुपदस्य पुत्रादिपरत्वे मानाभावादुपेक्ष्याः । सापत्नमातुस्तु दक्षः–"पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः । संवत्सरे व्यतीतेपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" 'हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवम्' इति स्मृत्यर्थसारे ॥ केचित् 'पितुः पत्न्यां प्रमीतायामौरसे तनये तथा' इति ब्राह्मोक्तेरौरसेपीदमाहुः ॥ षडशीतावप्येवम् । एतत्सर्ववर्णतुल्यम् 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रोक्तेः ॥

स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, मातापिताके मरणमें दूरदेश और वर्षके पीछे भी पुत्र दशाह आदि पूर्ण अशौच करै, स्त्री पुरुष और परस्पर सवर्ण और उत्तम वर्णकी पत्नियोंमें भी ऐसेहीहै. शुद्धितत्व आदि गौड तो यह लिखतेहैं कि, प्रथम वर्षके उपरांत यदि मृतक हुआ बंधु श्रवण कियाजाय तो एकदिन अशौच लगता है, और वह संन्यासियोंको नहीं लगता, इस देवलके वाक्यसे पिता माताका अशौच वर्षके बीचमें त्रिरात्र और पीछे एकदिन लगता है, बन्धुपदसे पिता माता भर्ताको जानना, पूर्वोक्त दशदिनका अशौच तो कलिंग आदि देशमें होताहै, वे इस निमित्त उपेक्षा करने योग्य हैं कि, बंधुपदको पिता आदिके बोधक होनेमें प्रमाण नहीं है, सपत्नीके अशौचमें तो दक्षका वाक्य है कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! माताके सिवाय और पिताकी पत्नी मरै तो वर्षदिनके उपरांतमें शुद्धि होतीहै, मातासे भिन्न हीनवर्णकी सपत्नियोंमें भी ऐसेही लिखा है, स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसेही लिखा है कि, पिताकी पत्नी मृतक होजाय तो और सपुत्रको ऐसेही अशौच लगता है, इस ब्राह्मके वाक्यसे कोई और सपुत्रको भी यह त्रिरात्रका अशौच लिखतेहैं, षडशीतिमें भी ऐसेही कहाहै, यह सब वर्णोंमें बराबर हैं, कारण कि, व्याघ्रने कहाहै कि, अतिक्रान्ताशौच सबवर्णोंको समान हुआ करतेहैं ॥

अशौचसंपातनिर्णयः ।

अथाशौचसंपाते उच्यते ॥ तत्र शावे शावं, सूतके सूतकम् ॥ शावे सूतकं सूतके शावं वा ॥ तत्राप्युत्तरं कालतः पूर्वेण समं न्यूनमधिकं चेति द्वादश भेदाः ॥ यदैक-

दिने समं न्यूनमधिकं वाशौचद्वयं तत्र तन्त्रेणान्यासिद्धिः ॥ द्वयोरेककालत्वात् । यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावे जननं वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सु पक्षेषु पूर्वशेषेण शुद्धिः ॥ 'अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ अन्तरा ज्ञाते इत्यर्थः ॥ ज्ञातस्यैव जननादेर्निमित्तत्वात् ॥ पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्योत्पन्ने जाते तूत्तरमेव कार्यम् ॥

अब अशौचका संपात वर्णन करतेहैं, मृत्युमें मृत्यु, सूतकमें सूतक, मरणमें सूतक, सूतकमें मरण, उनमें भी पीछेतक पूर्वके समान न्यून वा अधिक ये बारह १२ प्रकारके संपात अशौच कहातेहैं. यदि तुल्य न्यून वा अधिक दो अशौच एकदिन होजांय तो दोनों एकसमयमें होनेके तन्त्रसे दूसरेकी भी सिद्धि होतीहै, जब द्वितीय आदि दिनोंमें दूसरा अशौच सजातीय होजाय वा मृत्युके दिनही सूतक होजाय वा न्यून समयका दूसरा अशौच होजाय तो इन छहों पक्षोंमें पूर्वके पूर्ण होनेसे शुद्धि होतीहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, मध्यमें जन्म वा मृत्यु होजाय तो शेषदिनोंमें ही शुद्धि होतीहै, बीचमें जानलिया हो यह अर्थहै, कारण कि, जन्म आदिका ज्ञान होना अशौचका कारण है पूर्व अशौचके उपरान्त मध्यमें उत्पन्न हुयेका ज्ञान होय तो पीछे अशौच करना चाहिये ॥

शुद्धितत्त्वेप्युक्तम्–'पूर्वाशौचान्तरुत्पन्नं समानं लघु वा निमित्तं तत्कालादुपरिश्रुतं स्वाशौचहेतुरेव । अज्ञातं तु न ॥' 'अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन' इत्यस्याशौचसांकर्येपि प्रवृत्ते । तेनाज्ञानाद्वृषोत्सर्गादौ कृते पश्चाज्ज्ञातेपि नावृत्तिरिति ॥ माधवीये यमोपि–"जनने जननं चेत्स्यान्मरणे मरणं तथा । पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जनम् ॥" अत्र केचित्–"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम्" इति मनुपराशराद्यैर्दशाहग्रहणात्पूर्णाशौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः । त्र्यहाद्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिरित्याहुः ॥

शुद्धितत्वमें भी लिखाहै कि, पूर्व अशौचके बीचमें हुयेकी तुल्य वा लघु निमित्त अशौच, उसके समयसे पीछे श्रवण किया होय तो वह अपने अशौचका कारण है, और ज्ञान न हो तो हेतु नहीं होता, कारण कि, श्राद्ध आदिमें विना जाने कदाचित् भी दोष नहीं होताहै. इसकी अशौचके सांकर्यमें भी प्रवृत्तिहै, इससे अज्ञानसे वृषोत्सर्ग आदि करनेपर पीछे उसके ज्ञान होनेपर भी उसकी आवृत्ति नहीं होती, माधवीयमें यमका लेख है कि, जन्ममें जन्म और मरणमें मरण होजाय तो पहलेके शेषसे शुद्धि होती है, उत्तर अशौच नहीं लगता. यहां कोई यह लिखतेहैं कि, दशदिनके भीतर फिर मरण वा जन्म होजाय तो तितने कालतक ब्राह्मण अशुचि रहता है, इतने उस प्रथमके दशदिन नहों. इन मनु पराशर आदिके वाक्योंमें दशाह पदका ग्रहण किया है, पूर्ण अशौचमें भी पूर्वशेषसे शुद्धि होती है, और तीनदिन आदि अल्प अशौचके सम्पातमें तो पूर्वशेषसे पवित्रता होतीहै ॥

हरदत्तोप्येवमाह ॥ गौडा अप्येवम् ॥ तन्न ॥ याज्ञवल्क्यादिवशेन दशाहस्य तुल्यकालाशौचोपलक्षणत्वात् । "समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत् ॥ असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा" इति माधवीये शंखोक्तेः ॥ अपरार्कमिताक्षरादिविरोधाच्च ॥ यदा तु सूतके शावं समन्यूनमधिकं वा तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः । तदाहांगिराः–'सूतके

मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतके ॥" षट्त्रिंशन्मते-"शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥"

हरदत्तने भी ऐसेही लिखा है, गौड भी ऐसेही कथन करते हैं, सो उचित नहीं कारण कि, याज्ञवल्क्य आदिके वाक्योंसे दशाहपद समान कालके अशौचमें कहा है, और माधवीयमें शंखका कथन है कि, समान अशौचके संपातमें प्रथमसे समाप्त करै, और असमान अशौचको दूसरेसे धर्मराजके वचनानुसार समाप्त करै, और अपरार्क और मिताक्षरा आदिकाभी इससे विरोधहै. जब सूतकमें मरणाशौच तुल्य न्यून वा अधिक होजायतो पहलेकी पूर्तिसे पवित्रता होतीहै, यही अंगिराने लिखाहै कि, सूतकमें मृतक और मृतकमें सूतक होजाय तो मृतकसे लेकर सूतक करै, सूतकसे मृतक न करना चाहिये. षड्विंशका कथनहै कि, मरणके अशौचमें यदि सूतक होजाय तो मरणके अशौचसे सूतक शुद्ध होताहै, सूतकसे मृतक नहीं ॥

चतुर्विंशतिमतेपि-'मृतेन शुध्यते जातं न मृतं जातकेन तु ॥' अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि शावं, तदा पूर्वेण शुद्धावपि तन्निमित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव ॥ 'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्' इति कौर्माच्च ॥ गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रिरपि-"सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥" अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्पृश्यत्वाधिक्यादित्यर्थः ॥

चतुर्विंशतिके मतमें भी कहाहै कि, मरणसे जातक पवित्र होताहै, जातकसे मृतक नहीं, इससे जब जन्म दशाहके मध्यमें वा उसके अन्तमें मरणाशौच होजाय तब पहलेकी पूर्तिसे शुद्धि होनेपर भी उसके निमित्तको अस्पृश्यत्व होता है. कूर्मपुराणमें भी लिखाहै कि, मरण और जन्मके योगमें मरण बडा होताहै, गौतमकी व्याख्यामें वृद्ध अत्रिकाभी कथन है कि, सूतकसे दूना मरण अशौच, और मरणसे दूना आर्तव, आर्तवसे दूनी सूती और उससे भी दुगुना मृतकके दाह करनेवालेको होताहै. यहां पूर्वसे उत्तर उत्तरकी निवृत्ति नहीं होती कारण कि, स्पर्शका अभाव अधिक है ॥

षडशीतावपि-'स्वभावबहुसूतिस्तु न्यूनशावविशोधिनी' इति ॥ रात्रिशेषादा वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्बहुत्वं न स्वभावेन । अतस्तत्र न्यूनशावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावेनेत्युक्तम् ॥

षडशीतिमें भी कहा है कि, स्वभावसे अधिक सूति न्यून मरणके अशौचकी विशोधनी होतीहै, रात्रिशेष आदिमें बडे दो तीन आनेवाले दिनोंसे सूति अधिक होती है, कुछ स्वभावसे नहीं, इससे वहां न्यून मृत्युकी भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती, यह कहनेको 'स्वभावेन' यह पद कहाहै ॥

ब्राह्मेपि-"नागन्तुकैरथाहोभिराशौचमपनुद्यते । न च पातनिमित्तेन शावस्यान्यस्य शोधनम्" इति ॥ एवं नव पक्षाः ॥ यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं विजातीयं वा दीर्घकालमुत्तरं, तदाप्युत्तरं पूर्णं कार्यम्, न पूर्वेण शुद्धिः ॥ "स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुध्यति" इत्युशनसोक्तेः ॥ तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकेपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्यत्वं च भवत्येव ॥

ब्राह्मका कथन है कि, आनेवाले पापके दिनोंसे अशौच दूर नहीं किया जासकता और पातके कारणसे शाव अशौच दूसरेका शोधक नहीं है, ऐसे नौ पक्ष हैं, जब तीन दिन आदि अल्पाशौचके बीचमें सजातीय वा विजातीय दीर्घ अशौच पीछेसे होजाय, तो भी पिछलाही पूर्ण मानना चाहिये, पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती, कारण कि, उशनाने कहा है कि, अल्प अशौचके बीचमें दीर्घाशौच होजाय तो पूर्वाशौचसे शुद्धि नहीं होती, अपने कालसे शुद्धि होती है, इसमें तीन दिन आदि मरणाशौचके मध्यमें दशाह आदि सूतक होनेपर भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती यह अपरार्कका कथन है, मरण निमित्तक अस्पर्श तो होताही है ॥

शुद्धिविवेके तु–'शावेन शुध्यते सूतिः' इति प्रागुक्तेस्तत्राप्युत्तराशौचनिवृत्तिरुक्ता ॥ तन्न ॥ उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् ॥ माधवीये यमोपि–"अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्यदि ॥ आशौचं पुनरागच्छेत्तत्समाप्य विशुध्यति ॥" हारीतोपि–'गुरुणा लघु शुध्येत्तु लघुना नैव तद्गुरु' इति गुरुत्वं लघुत्वं च कालकृतमेव ॥ पूर्वानुरोधात् ॥ एतच्च हरदत्तेन स्पष्टमुक्तम् ॥

शुद्धिविवेकने तो यथार्थ मरणमें सूति पवित्र होती है इस पूर्व कहे उस स्थलमें भी उत्तराशौचकी निवृत्ति लिखी है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, उत्तर अधिक समयका होनेसे बलवान् है, माधवीयमें यमका भी कथन है कि, पापकी वृद्धिवाले अशौचको पिछलेसे समाप्त करै, जैसे त्रिरात्राशौचमें दशाहका प्रवेश होजाय तो फिर अशौच आजाता है, उसको पूर्ण करके शुद्ध होता है. हारीतने भी लिखा है कि, औरके मध्यमें गुरु अशौच होजाय तो लघुसे वह गुरु सूतक शुद्ध नहीं होता, गुरु और लघु कालसे समझने, कारण कि, पूर्व ऐसेही लिखा है यह हरदत्तने स्पष्ट लिखा है ॥

मिताक्षरायामप्येवम् ॥ यत्त "अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसी । मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्" इति हारीतकौर्मादि ॥ तत्रास्पृश्यत्वाभिप्रायं शावस्य गुरुत्वं ज्ञेयम् ॥ क्वचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह देवलः –"परतः परतोशुद्धिरघवृद्धौ विधीयते । स्याच्चेत्पञ्चतमादह्नः पूर्वेणैवात्र शिष्यते ॥" अस्यार्थः ॥ अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतः शुद्धिः परमाशौचम् ॥ यदि पूर्वाशौचमुत्तरस्य पञ्चमदिनात्परतोऽनुवर्तते तदा पूर्वेणैव शुद्धिः ॥ पूर्वस्योत्तराशौचार्धाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः ॥ यथा षष्ठमासे गर्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिः । यथा वा त्र्यहमध्ये स्रावपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित् ॥ तन्न ॥

मिताक्षरामें भी इसी प्रकार लिखा है कि, जो पापोंका मेल एक साथ होजाय तो शुद्धिकोही गुरु न जानना मरण और जन्मके योगमें मरण ही अधिक गुरु होता है, यह हारीत कूर्मपुराण आदिका कथन है, वहां अस्पर्शके अभिप्रायसे ही मरणाशौचको गुरु जानना, कहीं थोडे कालसे भी दीर्घकालके अशौचकी निवृत्ति देवलने लिखी है कि, पापकी वृद्धि, होनेपर पिछले २ से शुद्धि लिखी है. यदि पांच दिनके मध्यमें होय तो पूर्वका ही शेष रहता है, इसका अर्थ यह है कि, दीर्घ अशौचमें पिछले अशौचसे शुद्धि होती है, यदि प्रथम अशौच पिछलेके पांच दिनसे परे तक हो तब पूर्वसे ही शुद्धि होती है, यदि पूर्वका अशौच आगेके अशौचके आधेसे अधिक समयतक व्याप्त होय तो पूर्वके शेषसे शुद्धि होती है. जैसे छठे महीनेमें गर्भपातके छः दिनके अशौचमें दशाहका पात होजाय, तो पहलेसे उत्तरकी

निवृत्ति होती है, और वो तब, जब तीन दिनके बीचमें गर्भस्राव वा पातनिमित्त चार वा पांच दिनका आन पडै यह कोई कहते हैं, सो उचित नहीं ॥

दशाहावधिपूर्वशेषशुद्धावेकवाक्यविरोधात् ॥ षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमन्त्यरात्रौ तु द्व्यह इत्यनौचित्याच्च ॥ अस्मद्गुरवस्तु पञ्चतमादह्न आशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादि चेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः शिष्यते दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादिपाते त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्व्यहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः । क्वचित्पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादमाह गौतमः—'रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति ॥ प्रभाऽतेन्त्यामे 'रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्' इति शातातपोक्तेः ॥ इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यम् ॥ अत्र केचित् ॥ रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः ॥ 'अहः शेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति शङ्खलिखितोक्तेः ॥

कारण कि, दशदिनपर्यन्त पूर्व शेषकी शुद्धिसे एक वाक्यका विरोध कहा है, और छः आदि दिनोंमें पूर्ण अशौच और अन्त्यरात्रिमें तो दो दिन यह उचित नहीं. हमारे गुरु तो यह लिखते हैं कि, पांचवें दिनसे प्रथमतक उससे न्यून तीनदिन आदि अशौच होजाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसेही अशुद्धि शेष रहती है, दशाह आदिके रात्रि शेषमें तीनदिन आदि अशौच होजाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसेही अशुद्धि शेष रहती है, दशाह आदिके रात्रिशेषमें तीनदिन आदि लघु अशौचोंका परस्पर रात्रिशेषमें योग होय तो आदिकी वृद्धि नहीं होती, कहीं तो पूर्वशेषसे शुद्धिका अपवाद गौतमने लिखा है कि, रात्रिके शेषमें होय तो दो दिनमें, और पिछले प्रहर (प्रभात) में होय तो तीनदिनमें पवित्रता होती है, और शातातपने भी यही लिखा है कि, रात्रिके शेषमें दो दिनसे, और पहरके शेषमें दूसरा अशौच होय तो तीन दिनमें शुद्धि जाननी, यह मरणाशौचके पीछेमें सूतक वा मृत्यु होजाय तो दोनोंके समान है. इस स्थलमें कोई रात्रिपदसे दिनरात ग्रहण करते हैं कारण कि, शंखलिखित आदिने यह लिखा है कि, दिनके शेषमें दो दिनमें, और प्रभातकाल होय तो तीन दिनमें शुद्धि होती है ॥

'अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमाद्दिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनोक्तेः ॥ "पुनः पाते दशाहात्प्राक् पूर्वेण सह गच्छति । दशमेऽह्नि पतेद्यस्याहर्द्वयात्स विशुध्यति" इति ॥ 'प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः' इति देवलोक्तेश्च ॥ नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यदिनपरौ ॥ तेन क्षत्रियादावपि तथेत्याहुः ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ अन्ये त्वाहुः—"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्" इति ॥

अब यदि दशदिनके बीच नवदिनतक होय तो दशदिन अशौच लगता है, तब बौधायनके इस कथनसे दो दिनसे और प्रभातमें होय तो तीन दिनसे शुद्धि होती है और देवलने भी कहा है कि, दशदिनसे प्रथम दूसरा अशौच आनलगे तो पहलेके संग जाता है, जो दशवें दिन होय तो दो दिनमें, और प्रभातमें होय तो तीन दिनमें शुद्धि जाननी यह दशदिनका विधान है. नवम दशम शब्दोंसे अंत्यका निकट दिन और अन्त्य दिन लेना तिससे क्षत्रिय आदिमें भी इसीप्रकार जानो, माधवीयमें भी ऐसेही लिखा है और तो यह लिखते हैं कि, दशदिनके भीतर फिर मरण वा जन्म होजाय तो तबतक ब्राह्मण अशुद्ध रहता है जबतक दशदिन न बीतैं ॥

मनुपराशराद्यैर्दशमादिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोधः स्पष्ट एव ॥ विरोधे च–'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजम्' इति । 'कलौ पाराशरस्मृतिः' इत्यनेन पूर्ववचसां बाधः ॥ अत एव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम् ॥ साकरत्वेपि जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं वा युगान्तरविषयं वास्तु ॥ तेन गौतमीये रात्रिशब्दो नाहोरात्रपरः ॥ 'रात्रिमात्रावशिष्टे' इति मिताक्षरोक्तेश्च ॥ न कुकविकृतिरिवान्यथा व्याख्या युक्ता ॥

इस कथनसे मनु पराशर आदिने दशवें दिनसे पिछलेकी शुद्धि मानीहै इससे विरोध स्पष्ट है, और विरोधमें जो मनुने लिखाहै वह औषधवत् जानना चाहिये और कलियुगमें पराशरकी स्मृति यथार्थ है इससे पहले वाक्योंका बाधहै, इसीसे वाचस्पतिने उन कथनोंको बडे २ ग्रन्थोंका नहीं कहाहै और शास्त्रोंके होंय भी तो जातिमात्र ब्राह्मणके विषयमें देशांतरमें वा अन्ययुगोंमें उनकी सफलता होगी तिससे गौतमके कथनमें रात्रिशब्द दिनरातका बाचक नहींहै कारण कि, मिताक्षरामें रात्रिमात्रका शेष कहाहै, सो यह बात कविकी रचनाके तुल्य अन्यथा व्याख्या करने योग्यहै ॥

माधवस्तु–'अनिर्गतदशाहम्' इति पूर्वस्वग्रन्थविरोधादुपेक्ष्य इति ॥ अस्मत्पितृचरणास्तु बौधायनीये–'आनवमाद्दिवसात्' इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य दशममेवाहुः । द्व्यहादिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् तस्य च न्यायतो द्वितीयदिनादेव प्रवृत्तेः । अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम् । शङ्खलिखितोक्तौ देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेह्नि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः । दशम्यां पिता नाम कुर्यादितिवत् । तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो नापि मिताक्षराद्यैरित्याहुः ॥

माधव तो जब दश दिन न बीतेंहों इस पहले अपने ग्रन्थके विरोधसे वह त्यागने योग्यहै ऐसा कहते हैं. हमारे पिताके तो 'आनवमाद्दिवसात्' इसवाक्यसे दूसरे अशौचका नवम और प्रथमका दशम दिन लेतेहैं, कारण कि, दो दिन आदिकी वृद्धि पूर्वशेषका अपवाद है, और न्यायसे उसको प्रवृत्ति दूसरेही दिनसे प्रारम्भ होतीहै, इसके पीछे यह वाक्य दशम रात्रिका बोधक है. शंख लिखित और देवलके कथनोंमें दिनके शेषमें, और दशवें दिन रात्रिशेषमें सूतक लगजायगा, जैसे दशमीको पिता नाम करै, यह इस कथनसे न मनुआदिके संगके विरोधहै न मिताक्षरा आदिके संग विरोधहै यह कहतेहैं ॥

अपरार्के निर्णयामृतस्वरसोप्येवम् ॥ यत्तु तत्रैव ब्राह्मे–"आद्यं भागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके । द्वितीये पतिते त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ॥ अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः । एवमेव विचार्यं स्यान्मृतके मृतकान्तरे ॥ मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं प्रतिपद्यते । सूतकस्यान्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते ॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः" इति ॥ अस्यार्थस्तत्रैवोक्तः पूर्वाशौचचरमाहोरात्रस्य दिनरूपे आद्यभागद्वये ऽन्याशौचपाते पूर्वेण शुद्धिः भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीयात्पूर्वभिन्नात्सूतकान्ताद्द्व्यहादिरूपाच्छुद्धिरिति ॥

अपरार्कमें निर्णयामृत आदिकाभी आशय ऐसाही है, जो तो वहां ही ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि, प्रथमके दोभागतक सूतकमें सूतक होजाय तो प्रथम सूतकसे पवित्रता जाननी चाहिये, इससे परे दूसरे सूतकसे शुद्धि लिखी है, यही विचार एकमरणमें दूसरेके मरनेकाहै. मरणके मध्यमें जहां सूतक होजाय वा सूतकके बीचमें मृत्यु होजाय वहां मृतकके उपरान्त सब वर्णोंमें शुद्धि होती है, इसका अर्थ

यहांही लिखा है कि, पहले अशौचसे आगे अहोरात्रके दिन रूप पहले दो भागोंमें और अशौच होजाय तो पूर्वसे शुद्धि होती है, दो भागसे आधीरातमेंसे आधीरातमें सूतक और दूसरा होजाय तो दूसरेसे शुद्धि है, पूर्वभिन्न सूतकके पीछे दोदिन आदि प्रथमकी अशुद्धि है ॥

अपरार्के त्वाशौचकालं त्रिधा विभज्य निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम् ॥ अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ अतः पूर्वाशौचान्त्यरात्रावन्याशौचेहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनद्वयमिति भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः ॥ एतत्संपूर्णाशौचसंपाते एव ॥ रात्रिशेषे त्रिरात्रादिसंपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः ॥ द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवादाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः ॥

अपरार्कमें तो अशौच समयके तीनभाग करके निर्गुणोंके विषयमें यह वाक्य लिखाहै, इस वाक्यको जो अप्रमाण कहै, वह मूर्खका प्रलापहै, इससे पूर्वाशौचकी पिछली रातमें अन्य अशौच होजाय तो दो दिन अधिक अशौच लगताहै. रात्रिके पिछले प्रहरमें होय तो तीनदिन अशौच लगताहै, यह मार्ग भट्टचरणोंने लिखा है, परन्तु तभी जानना जब सम्पूर्ण अशौचके संयोगमेंही हो, और रात्रि शेषमें तीन दिन आदिका संयोग होय तो पूर्व शेषसेही शुद्धि जानो कारण कि, दो २ दिन आदिकी वृद्धिको पहले वाक्योंसे दशदिनके विषयमें होनेसे अपवादका नहीं होसकता है, इससे शेषसे शुद्धिही तुल्यताके प्रवृत्तिसे होती है ॥

षडशीतौ तु दशाहान्ते त्र्यहपातेपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता–"रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत् । ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वाद्यामशेषे दिनत्रयम्" इति ॥ अनधिकं समं न्यूनं वा तत्तुच्छम् ॥ निर्मूलत्वादन्ते पक्षिण्यादिपातेपि द्विरात्रादिवृद्ध्यापत्तेश्च ॥ पूर्वाशौचान्तर्वर्धितद्वित्रिदिनमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वादधिकेनैव शुद्धिः ॥ नच वर्धितस्य पूर्वशेषत्वं शङ्कनीयम् ॥ रात्रिशेषपूर्वशेषशुद्ध्यपवादे नैमित्तिकावृत्तिन्यायोज्जीवनात् ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः ॥

षडशीतिमें तो दशाहके पीछेमें तीनदिनके अशौचके योगमें भी दो तीन दिनकी वृद्धि लिखी है कि, रात्रिके शेषमें जब पहलेकी तुल्य वा न्यून अशौच लगता है तो पहलेसे दो दिन अधिक और प्रहरके पीछेसे होय तो तीन दिन अधिक अशौच लगताहै. सो कुछ नहीं है, कारण कि, वह वाक्य निर्मूलहैं. और पीछेसे पक्षिणी आदिके योगमें भी दो दिन आदिकी वृद्धि होजायगी, प्रथम अशौचके बीचमें बढे हुये दो तीन दिनके बीचमें बढा और अशौचका योग होजाय तो बढे हुएसे थोडा होनेसे अधिकसे ही पवित्रता होती है. यदि कोई यह शंका करै कि, बढा हुआ पूर्वका शेष है, सो उचित नहीं, कारण कि, रात्रिके शेष पूर्व शेषकी शुद्धिका अपवाद है, न्यायसे नैमित्तिक अशौचका होनाहै, अपवादके न होनेमें उत्सर्गकी प्राप्ति यहां जाननी चाहिये ॥

अपवादान्तरमाह शङ्खः–"मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता । पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥" पादत्रयं स्पष्टम् । तुर्यस्य त्वयमर्थः–पित्राशौचमध्ये मातृमृतौ पित्राशौचान्ते भ्रातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यादिति ॥ अत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेः पितुराशौचाभावान्मातृमरणे न पक्षिणी ॥ किंतु पूर्णमेवाशौचम् ॥ इयं च पक्षिणी तृतीयादिदिनपरा ॥ नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्या-

यापवादपूर्वशेषापवादत्वादिति पितृचरणाः ॥ सपिण्डाद्याशौचेन मातापित्रोराशौचापगमो नास्त्येव ॥ एवं भर्तुरपि ॥ इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वं मातृमरणे ज्ञेया। दशम्यां रात्रौ तत्प्रभाते वा मातृमरणे द्व्यहत्र्यहसमुच्चिता पक्षिणीति कश्चित् ॥ तन्न ॥

अपवादान्तर शंखने कहाहै कि, माता प्रथम मरी हो और अशुद्धिमें ही पिता मृतक होजाय तो पिताके शेष अशौचसे पवित्रता होतीहै. माताकी पक्षिणी अशौच करै, इस श्लोकके तीन पाद तो स्पष्ट हैं चौथेका यह अर्थ है, पिताके अशौचमें माताकी मृत्यु हो तो पिताके अशौच उपरान्त माताकी पक्षिणी विशेषरूपसे करै, इस स्थलमें अशुद्धौ पद कहनेसे आत्महत्याकारी पिताके अशौचके अभावसे माताके मरनेमें पक्षिणी न करनी किन्तु पूर्ण अशौच करै. यह पक्षिणी तृतीयादि दिनपरत्व जाननी न कि, पहले दो दिनमें निमित्त नहीं नैमित्तिक प्राप्तके न्यायसे उसका अपवाद है, यह हमारे पिताका कथन है. सपिण्डादिके अशौचमें मातापिताके अशौचका अभाव नहीं होता, इसीप्रकार पतिकाभी जानना चाहिये, यह पक्षिणी दशमें दिनसे प्रथम न माताके मरणमें जाननी चाहिये. दशमीकी रात वा उसके प्रातःकालमें माताकी मृत्यु होय तो तीनदिन सहित पक्षिणी करनी चाहिये, यह किन्हीका मत है, सो ठीक नहीं ॥

संख्यान्तरोपजननापत्त्या त्र्यहादिश्रुतिबाधापत्तेः। अत एवैका देया षड् देया इत्यादौ श्रुतसंख्याबाधापत्तेः समुच्चयो निरस्तो द्वादशे । गुरुणि लघोरन्तर्गते–'गुरुणा लघु शुद्ध्येत्' इत्युक्तेश्च ॥ मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणी "यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया। तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि" इति पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः ॥ तत्रैव षडशीतिमतेपि–"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता। न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः। नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥" गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे नायं निर्णयः ॥ अतिक्रान्तकालाद्विद्यमाननिमित्तस्य बलवत्त्वात् ॥ द्वादशवर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये सपिण्डमरणेप्येवम् ॥

कारण कि, दूसरी संख्या उत्पन्न होनेसे तीन दिन आदिकी श्रुतिका बाध प्राप्त होगा, इस कारण एक देनी छः देनी इत्यादि श्रुतिका बाध प्राप्त होनेसे बारहमें उसके समुच्चयका निरास लिखा है, और लघु अशौचमें गुरु अशौच आजाय तो गुरुसे लघु शुद्ध होताहै. यह भी लिखा है कि, माता पतिके साथ मृतक हो तो पक्षिणी न करै, जो स्त्री पतिके प्रियकी इच्छासे अग्निमें प्रवेश करै, तो पतिके अशौच क्रमसे उसका अशौच करना, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लघुहारीतका कथनहै, वहां भी षडशीतिके मतमें भी कहा है जो नारी मृतक पतिके पीछे अग्निमें प्रवेश करै, वहां पक्षिणी न करनी वह पिताके अशौचसे ही शुद्ध होता है, पुत्र वा और कोई जो उसे अग्नि दे उसके पिताके अशौचतकही अशुद्धता है, नवश्राद्ध और सपिण्डी एकत्र करनी चाहिये, यदि प्राप्त अशौचवाले पुत्र पिताका संस्कार करै, और माता वा सपिण्डका मरण होजाय तो यह निर्णय नहीं जानना कारण कि अतिक्रान्त जिसका समय बीत गया हो उससे निमित्त विद्यमानवाला बलवान् है. बारह वर्षके उपरान्त संस्कार अशौचके मरण सपिण्डमरणमेंभी यही अशौच है ॥

यत्तु अपरार्के ब्राह्मे–"ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत्" इति तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्राशौचपरम्, इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेल्पाशौचपरमित्यपरार्कः ॥ शुद्धितत्त्वा-

दयो गौडास्तु भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम् ॥ सहगमने तु संपूर्णम् । युद्धहतस्य सद्यः शौचेन्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वात् ॥ भर्तुरपि त्र्यहेण पिण्डदानम् ॥ एकचितौ तु सद्यः शौचमित्याहुः ॥ अन्यत्प्रागुक्तम् ॥ पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम् "पूर्वाशौचेन या शुद्धिः सूतके मृतके च सा । सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥"

जो अपरार्कमें ब्रह्माका कथन है कि, ऋग्वेदके कथनसे साध्वी स्त्री आत्मत्याग न करै, तो तीन दिनके अशौच उपरान्त शास्त्रमें कहे श्राद्धको प्राप्त होती है, वह वाक्य पतिके अशौच उपरान्त चितामें प्राप्त होनेमें तीन दिनके अशौचमें जानना यह पृथ्वीचन्द्रका कथन है. अपरार्क तो यह लिखतेहैं कि, ब्राह्मणी आदि क्षत्रिय आदिके अनुगमनके अशौचमें यह वाक्यहै. शुद्धितत्त्वादिमें गौड तो यह कहतेहैं कि, पतिके अशौच उपरान्त अन्वारोहणमें तीनरात और सहगमनमें सम्पूर्ण अशौच लगता है, और युद्धमें मृतक हुएका सद्यः अशौचमें अन्वारोहणमें ब्राह्मणके तीन रात कहनेसे पतिको भी तीन रातमेंही पिण्डदान दे एक चिता होय तो तत्काल शौच होता है. और प्रथम कथनकर आये हैं पूर्वशेषसे शुद्धिका अन्यभी अपवाद षडशीतिमें कहा है कि, सूतक वा मृतकमें पहले अशौचसे जो शुद्धि होतीहै वह सूतिका अग्निका देनेवाला और प्रेतके पुत्रोंको त्यागकर है ॥

निर्णयामृते स्मृतिसंग्रहेपि—'इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना ॥' इदं मूल्येन दाहकरणे मातुलादिसंबन्धेन । दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक् ॥ वृद्धात्रिः—"सूतकाद्द्विगुणं शावं शावाद्द्विगुणमार्तवम् ॥ आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥" तथाशौचसंपातेपि न शावजनननिमित्तकार्यप्रतिबन्धः ॥ "आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ॥ कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति" इति प्रजापतिस्मृतेः ॥

निर्णयामृत और स्मृतिसंग्रहमें भी कहाहै कि, सूतिका और अग्निके देनेवालेको त्यागकर इसप्रकार शुद्धि लिखीहै, यह मोललेकर दाह करनेमें है, मामा आदिरूप संबंधसे दाहकरनेमें तो त्रिरात्र होताहै, यह प्रथम कहआयेहैं. वृद्धात्रिने लिखाहै कि, सूतकसे दूनी मृत्यु और मृत्युसे दूनी आर्तव और आर्तवसे दूनी सूतिका उससे भी दूना अशुद्ध शवका अग्निसंस्कार है, ऐसे ही अशौचके संपातमें भी मृत्यु और जन्मनिमित्तक कार्योंका प्रतिबंध नहीं होताहै कारण कि, प्रजापतिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, अशौचकी प्राप्तिमें जब पुत्रजन्म होजाय तो कर्मके करनेवालेकी उसीसमय शुद्धि होतीहै, और प्रथम अशौचसे शुद्ध होताहै ॥

आशौचं तु द्विविधेपि शातातपः"अन्तर्दाहे च जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि । प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत् । तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि ॥" मातुः पक्षिणी ॥ मध्ये पितुरेकादशाहं कुर्यात् 'आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेहनि' इति स्मृतेः ॥ केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम् । विप्रादेस्त्वाशौचान्तर एकादशाहश्राद्धं नेत्याहुः ॥ अत एव विज्ञानेश्वरेण—'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्' इति शुचित्वं महैकोद्दिष्टाङ्गविप्रनिमन्त्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम् ॥ एवं वृषोत्सर्गशय्यादानादावपि । देवयाज्ञिकेन त्वाशौचान्तरोपि भवत्येवेत्युक्तम् ॥

दो प्रकारके अशौचमें भी शातातपने लिखा है कि, जन्मसे उपरान्त दशदिनके भीतर मृत्यु हो जाय तो प्रेतके निमित्त विधिसे पिण्डदान करै. माताकी पक्षिणीके बीचमें पिताका एकादशाह भी करना कारण कि, ऐसा स्मृतिने कहा है कि, अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहको प्रथम श्राद्ध करै. कोई तो यह लिखते हैं कि, यह क्षत्रिय आदिके विषयमें है, ब्राह्मण आदिको तो और अशौचमें एकादशाह श्राद्ध करनेकी विधि नहीं है, इसीसे विज्ञानेश्वरने दशपिंड देकर रात्रिके शेषसे शुद्ध होताहै, यह शुद्ध होना एकोद्दिष्टके अंग है, जो ब्राह्मणके निमंत्रणमें है यह कहकर शुद्धिको अंग कहाहै, इसीप्रकार वृषोत्सर्ग आदिमें भी जानना. देवयाज्ञिकने तो लिखा है कि, अन्य अशौचमें भी यह होताहै सो जानना चाहिये ॥

आशौचापवादनिर्णयः ।

अथाशौचापवादः ॥ स च पञ्चधा ॥ कर्तृतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः विधानाच्च ॥ आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु "नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते" इति कौर्मोक्तेः । तुर्यपादे 'शावे वापि तथैव च' इति देवलपाठः । आशौचमन्त्यकर्मोपलक्षणम् । "ब्रह्मचारी न कुर्वीत शवदाहादिकाः क्रियाः । यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च" इति देवलोक्तेः ॥ एतत्पित्राद्यतिरिक्तविषयम् ॥ "आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥" इति मनूक्तेः ॥

अब अशौचका अपवाद वर्णन करते हैं, वह पांच प्रकार कहा है कि, कर्तासे, कर्मसे, द्रव्यसे, मृत्युके दोषसे, विधिसे, प्रथमके दो ब्रह्मचारी यति आदिकोंमें हैं, कारण कि, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी और पतितके मृतक होनेपर महात्माओंने अशौच नहीं लिखाहै, यह कूर्ममें लिखाहै. चौथे पादमें देवलने यह पाठ लिखाहै कि, मरण अशौचमें यहां अशौचसे अन्त्यकर्मका उपलक्षण जानना कारण कि, देवलने कहा है कि, ब्रह्मचारीके मृतककी दाह आदि क्रिया न करनी चाहिये, यदि करै तो कृच्छ्रव्रत और फिर संस्कार करै, यह पिता आदिसे भिन्नके विषयमें जानना कारण कि, मनुने लिखा है कि, आचार्य अपना उपाध्याय माता पिता गुरु इनका दाह आदि करकै भी ब्रह्मचारी व्रतसे हीन नहीं होताहै ॥

हारीतः—"आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥ मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम् ॥ भवत्यशौचं नैवास्य न वाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिदर्शितम् ॥" संवर्तः—"अन्यगोत्रोपसंबन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समाचरेत् ॥ निर्हरणमन्त्यकर्मपरम्'॥ एवं मातामहस्य—"यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति" इत्यपरार्के भविष्योक्तेः ॥ "मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् ॥ कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्" इति कालादर्शाच्च ॥ तत्रान्त्यकर्मनिमित्तमस्पृश्यत्वं दशाहमस्त्येव ॥ "सगोत्रो वासगोत्रो वा योग्निं दद्यात्सखे नरः । सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेत्तु दशमेऽहनि" इति दिवोदासोक्तवचनात् ॥ अत एव 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च' इति गौतमीये व्रतनिवृत्तेरेव पर्युदासो नाशौचस्य ॥

इसीप्रकार नानाका भी करना कारण कि, हारीत कहते हैं आचार्य अपना उपाध्याय माता पिता गुरु इनका दाहादि करके व्रती व्रतसे वियुक्त नहीं होता, माता पिताका जो कहाहै कि, व्रत करनेवाला पुत्र व्रतमें स्थित हुआ भी पिण्डदान और जलक्रिया करै तो इसको अशौच नहीं लगता न अग्नि लुप्त होतीहै, पूर्वकी समान विधिदर्शित स्वाध्याय करै. संवर्त कहतेहैं अन्य गोत्रके संबन्धसे जो प्रेतको अग्नि देताहै पिण्ड और जलदान करताहै वह दशाह करै. अपरार्कमें भविष्यपुराणका कथन है कि, जिसप्रकार व्रतमें भी स्थित पुत्र पिताकी क्रिया करै, इसीप्रकार धेवता नानाकी करै. कालादर्शमें कहाहै कि, माता पिता उपाध्याय आचार्य और नानाके और्ध्वदेहिक कर्मको करके ब्रह्मचारी अपने व्रतसे पतित नहींहोता-है, वहां अंत्यकर्मका किया अस्पर्श तो दशदिनतक होताहीहै, कारण कि, वह वचन दिवोदासका वाक्य है कि, सगोत्री वा असगोत्री जो अग्नि दे, वह भी नवश्राद्ध करै, और दशवें दिन पवित्र होताहै इसीसे मृतकके कर्म करनेवाले ब्रह्मचारीको माता पिता गुरुको त्यागकर व्रतसे निवृत्ति है, इस गौतमके कथनमें व्रत निवृत्तिका निषेध है, अशौचका नहीं है ॥

संध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति 'न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ "पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः । सुव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥ तेनाशौचं न कर्तव्यं संध्या चैव न लुप्यते । अग्निकार्यं च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः" इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तेश्च ॥ अत्र कर्मानधिकाररूपाशौचनिषेध एव ॥

संध्या आदिका लोप तो नहीं लिखाहै, कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, सूतकमें ब्रह्मचा-रीको अपना कर्म कभी भी त्याग न करना चाहिये, और चंद्रिकामें यह सम्वर्तका भी वाक्य है कि, पिता और गुरुके मृतक होनेमें सुव्रत ब्रह्मचारी भी पुत्र विपत्तिके समयमें भी अग्निदान और जलदान करै, वह अशौच न करै, और सन्ध्या तो करै, और सायंसमय और प्रातःसमय प्रतिदिन अग्निहोत्र कर्म करै, यह कर्मके अनधिकार रूप अशौचका त्यागहीहै ॥

अपरार्कमाधवादयस्तु—एकाहमाशौचमाहुः "आचार्यं वाप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं च वा ॥ मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥ कृत्वा पतति नो तस्मात् प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत् । अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः सह संवसेत् ॥ एकाहमशुचिर्भूत्वाद्वितीयेऽहनि शुध्यति" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तदन्नभोजने तु प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचं च ॥

अपरार्क माधव आदिने तो एक दिनका अशौच मानाहै, कारण कि, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, आचार्य उपाध्याय गुरु पिता माताको स्वयं दाह करके व्रतमें स्थित मनुष्य वहां भोजन करके भ्रष्ट होताहै इससे प्रेतान्न भोजन न करै, और स्थानमें भोजन करै, और सूतक-वालोंके संग न रहै, तो एकदिन अशुद्ध रहकर दूसरे दिन शुद्ध होजाताहै, उनके अन्नका भोजन करै, तो प्रायश्चित्त करै, फिर उपनयन करना पडताहै और अशौच लगताहै ॥

दिवोदासादयस्तु ब्राह्मोक्तेः प्रथमेह्नि संध्यादिलोपः "ब्रह्मचारी यदा कुर्यात् पिण्डनिर्वपणं पितुः । तावत्कालमशौचं स्यात् पुनः स्नात्वा विशुद्ध्यति" इति प्रजापतिवचनात् । द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवास्पृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्याहुः ॥ दशाहमस्पृश्यत्वेपि कर्माङ्गस्नानविधानार्थमेतदिति युक्तम् ॥ अन्त्यकर्माकरणे तु

ब्रह्मचारिणः पित्रादिमरणेप्याशौचाभाव एव ॥ सोपि ब्रह्मचर्यकाल एव । समावर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं भवत्येव ॥ "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इति मनूक्तेः ॥ तत्रापि विकल्पः "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥

दिवोदास आदि तो ब्रह्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन सन्ध्या आदिका लोप होताहै, यह कहते हैं. जब ब्रह्मचारी पिताका पिंडदान करै, उतने ही समयतक अशुद्ध रहताहै, फिर स्नान करके पवित्र होताहैं, इस प्रजापतिके कथनसे द्वितीय आदि दिनोंमें पिंडदानके समयही उसका अस्पर्श मात्रहै, फिर नहीं होता, यह कहते हैं. यह तो युक्त है कि, दशदिनके अस्पर्शमें भी कर्मका अंग स्नान करनेके निमित्त यह कथन है, अंत्यकर्म न करै तो पिता आदिके मरनेमें भी ब्रह्मचारीको अशौच नहींहै, वहभी ब्रह्मचर्यके समयमें है. समावर्तनके उपरान्त तो प्रथम मरोंका तीनदिन अशौच लगताहीहै, कारण कि, मनुने लिखाहै कि, ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तितक जलदान करै और व्रतके उपरान्त तो जल देकर तीनदिन अशुद्ध रहताहै. उसमें भी लिखा है, कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टका कथनहै कि, ब्रह्मचारियोंको पिता आदिकी मृत्युसे कभी दोष नहीं होता, वा कर्मके पीछेमें तीनदिनका अशौच लगताहै, जैसे जीवित मनुष्यके श्राद्धमें कुछ भी अशौच न करना, यह हेमाद्रि लिखतेहैं ॥

शुद्धितत्त्वे कौर्मे–"सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे । डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजः ॥" उपद्रवेत्यन्तमरके ॥ 'उपसर्गमृते चैव सद्यः शौचं विधीयते' इति पराशरोक्तेः । उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः ॥ याज्ञवल्क्योपि–'आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते' इति मरणसमयेपि नाशौचम् ॥ तथाच शुद्धिरत्नाकरे दक्षः–"स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥" अतः सति वैराग्ये संन्यासोप्यातुरस्य भवतीति केचित् ॥

शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका कथनहै कि, दुर्भिक्ष उपद्रव डिम्भ संग्राममें और बिजली राजा द्विजोंसे मृतक हुओंका सद्यः शौच लिखाहै और पराशरका कथनहै कि, उपसर्ग (युद्ध) में मृतक हुएकाभी सद्यः शौच लिखा है. उपसर्ग और उपद्रव अतिमृत्युको कहते हैं अर्थात् जहां वहुतसे मनुष्य मरजांय, यह शूलपाणि और अनिरुद्ध भट्ट आदिका मत है, मरीचि और याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, अत्यन्त आपत्ति आपडै तो सद्यः शौच करना ऐसे समय मरणकेमेंभी अशौच नहीं लगता, यही शुद्धिरत्नाकरमें दक्षका वाक्यहै कि, यह सब सूतक स्वस्थ समयमें जानने आपत्कालमें सबको सूतकमेंही सूतक नहीं लगता इससे वैराग्य होय तो आतुरको संन्यास भी होताहै यहभी किन्हीं २ का कथन है ॥

कर्मत आशौचनिर्णयः ।

अथ कर्मतः त्रिंशच्छ्लोक्यां-"तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपनृपवद्दीक्षितर्त्विक्स्वदेशभ्रंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषक्कारुशिल्पातुराणाम् ॥ संप्रारब्धेषु दानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयनाद्युत्सवेष्वेतदर्थे ॥" नाशौचमिति शेषः ॥ सत्री अन्नसत्र-

वान् ॥ मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धेः ॥ व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान् ॥ 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेः ॥

अब कर्मसे अशौचके अपवादको वर्णन करते हैं, त्रिंशत्श्लोकीमें कहाहै कि, अन्न यज्ञ करनेवाला, व्रती, राजा, दीक्षित, ऋत्विज, अपने देशका नाश, विपत्ति, अनेक वेदोंका पाठ, वैद्य, कारु, शिल्पी, रोगी, दान, यज्ञोपवीत, यजन, श्राद्ध, युद्ध, प्रतिष्ठा, मुण्डन, तीर्थकी यात्रा, जप, विवाह इनका प्रारम्भ इनके उत्सवोंके उस २ कार्योंमें अशौच नहीं होता, यहां सत्रिपदसे अन्नका सत्र लेना, मुख्य सत्रीका तो दीक्षित पदसे ग्रहण सिद्धहै, व्रती पदसे अनंतव्रती लेना, कारण कि, विष्णुने कहाहै कि, व्रतवालोंको व्रतमें अशौच नहींहै ॥

प्रचेताः-"कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥" कारवः सूपकाराद्याः । शिल्पिनश्चैलनिर्णेजकाद्याः । आतुरस्य व्याधिनाशार्थे दानादौ तुलादानादेः । प्रारम्भो नान्दीश्राद्धं संकल्पो वा । यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादिः ॥ लघुविष्णुः-"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ॥ आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ पाकस्य परिसमंतात्क्रिया ॥ पाकप्रोक्षणमिति शुद्धिप्रदीपस्तन्मन्दम् ॥ रूढेर्योगाद्बलवत्त्वात् ॥ तीर्थेति आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ "विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत् कर्म यज्ञादि कारयेत्" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ अत्र विशेषः प्रागुक्तः ॥ जपः पुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठः अविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादिश्च ॥

प्रचेताने कहाहै कि, कारु, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, राजा, राजाके सेवक इनको तत्काल शौच लिखाहै. कारुपदसे रसोइया और शिल्पीपदसे धोबी आदिका ग्रहण है. रोग नाशके निमित्त आतुरको तुलादान आदिमें दोष नहीं है प्रारम्भपदसे नांदीश्राद्ध वा संकल्प करलेना, यजन पदसे सरोवरका उत्सर्ग कोटिहोम आदि लेना. लघुविष्णुका कथनहै कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, होम, जप, पूजा, श्राद्धके आरंभ होनेपर सूतक नहीं है, और आरम्भ न हुआ होयतो सूतक है. यज्ञका वरणसे, व्रतसत्रका संकल्पसे, विवाह-आदिका नान्दीश्राद्धसे श्राद्धका पाक होनेसे आरंभ जानना. शुद्धिप्रदीपमें तो यह लिखाहै कि, पाकको चारोंओरसे छिडकना पाकक्रिया होतीहै, सो उत्तम नहींहै, कारण कि, योगसे रूढी बलवान् होती है तीर्थ पदसे अकस्मात् तीर्थ प्राप्तिमें अशौच नहीं है कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, विवाह, दुर्ग, यज्ञ, यात्रा, तीर्थ, कर्म इनमें सूतक नहीं, यज्ञ आदिकर्म इससे समस्त करै, यह विशेष प्रथम कहआये, जप करके पुरश्चरण आदि स्तोत्रपाठ अथवा संकल्पपूर्वक हरिवंशका निरन्तर श्रवण लेना ॥

अत एवोक्तं ब्राह्मे-'गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित्' इति ॥ एवं देवपूजादि ॥ मदनपारिजाते यमोपि-"शिवविष्णवर्चनं दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः । श्रौतकर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥" गौडशुद्धितत्त्वे मन्त्रमुक्तावल्यां-"जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः । नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥" राघवभट्टीये नारदः-"अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य

मानस्या क्रियया तु वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ॥ यदि कामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥"

इसीसे ब्रह्माने लिखाहै कि. जो कोई नियमपूर्वक करै उसको सूतक नहीं करना चाहिये, इसीप्रकार देवपूजा आदिमें जानना. मदनपारिजातमें यमकार्भी कथन लिखाहै कि, शिव और विष्णुकी पूजा, दीक्षा और अग्निका ग्रहण जिसको है उसे वेदोक्त कर्म करना चाहिये, और स्नानसे पवित्र होताहै. गौड शुद्धितत्वमें मंत्रमुक्तावलीका वाक्य है कि, दीक्षावाले मनुष्योंको जप और देव पूजनकी विधि करनी चाहिये, कारण कि, वशीभूत मनवाले पुरुषको पाप और सूतक नहीं लगता, राघवभट्टीयमें नारदका वाक्यहै कि, वेदोक्तसूतककी पूजाको लिखतेहैं कि, स्नानके उपरान्त नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर मानसी पूजा और ध्यानयोगसे बाह्यपूजा की समान पूजा करै, सकामहो वा न हो नित्य प्रथमके तुल्य आचरण करै ॥

यत्तु नृसिंहकल्पे-"सदा मन्त्रजपं मुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥" तन्मूत्राद्याशौचपरम् ॥ रामार्चनचन्द्रिकायाम्-"अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ॥" कालनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव ॥ उत्सवो रथयात्रादिः ॥ एषु नाशौचम् ॥ अयं चाशौचाभावोनन्यगतित्वे आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ॥ अत्र दीक्षितस्य अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादि त्वाशौचमस्त्येव ॥ 'तेन वैतानोपासनाः कार्याः' इति वैतानत्वेप्यवभृथादि न भवत्येव ॥

जो नृसिंहकल्पमें कहाहै कि, जो मनुष्य अशुद्ध होय तो सदाके मंत्रजपको त्यागकर मनमें मंत्रका स्मरणही करै, उच्चारण न करै, यह मूत्रआदिका अशौच जानना. रामार्चनचन्द्रिकामें कहाहै, कि, अशुद्धहो वा शुद्ध हो चलते, स्थित होते, सोतेसमय बुद्धिमान् मनुष्य मंत्रके स्मरणका मनसेही अभ्यास करै, कालका नियम न हो तो स्तोत्र और हरिवंशआदिका पाठ उससमय न करै उत्सवपदसे रथयात्रा आदि लेना, इनमें अशौच नहीं लगताहै, यह अशौचका अभाव उससमय जानना. जब दूसरीगति न हो और रोगयुक्त हो. इसका मूल प्रमाणमें स्पष्टहै यहां दीक्षितको यज्ञांतस्नानसे प्रथम ही अशौचकी प्राप्ति है और अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) आदिमें तो हैही, तिससे वैतान (अर्थात् यज्ञविस्तार) उपासना करनी वैतान होनेपरभी अवभृथ आदि नहीं होतेहैं ॥

अत एवोक्तं माधवीये ब्राह्मे-"तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नाने त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम्" इति ॥ वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैव सिद्धेर्ऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं यजमाने स्वयंकर्तृत्वार्थं स्नानप्राप्त्यर्थं वेति विज्ञानेश्वरः ॥ वस्तुतस्तु दीक्षया संस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्राप्त्यर्थं दीक्षितग्रहणम् ॥ तेन ततः पूर्वं निषेध एव ॥ यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तदृत्विक्परम् ॥ तथा च छन्दोगपरिशिष्टे-'न दीक्षिण्याः परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन्' इति ॥ शुद्धितत्त्वेप्येवम् ॥ ऋत्विजां च मधुपर्कोत्तरमाशौचाभावः ॥ "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः" इति ब्राह्मात् ॥

इसीसे माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य कहाहै कि, जिसने दीक्षाग्रहण कीहै और जो तीनवेदका पाठ करताहै उसकी बडे यज्ञमें जितने कालमें अवभृथयज्ञान्त स्नान हो उतने समयतक सूतक नहीं लगता, वैतानकी उपासना करनी इससे ही सिद्धथी. ऋत्विज और दीक्षितोंको नहीं करनी, इसमें फिर दीक्षितपदका ग्रहण

कियाहै यह यजमानके स्वयंकर्म करनेमें और स्नानकी प्राप्तिके निमित्तहै, यह विज्ञानेश्वरका मतहै, सिद्धांत तो यहहै कि, दीक्षिणी अर्थात् (दीक्षा लेनेका) यज्ञसे प्रथम जिसका संस्कार न हुआहो उसको कर्मकी प्राप्ति के निमित्त दीक्षित ग्रहणहै, इसमें इससे पहले निषेध जानना, और जो यह वाक्यहै कि, यज्ञमें आरम्भ वरण है, सो ऋत्विक्के विषय जानना चाहिये क्योंकि, छंदोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, दीक्षिणी इष्टिसे आगे यज्ञमें और कृच्छ्रआदि तपकरनेमें अशौच नहीं लगता कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, यजमानसे मधुपर्क ग्रहण करने उपरान्त अशौच होय तो ऋत्विजोंको नहीं लगता ॥

अत एव रामाण्डारः-'चतुर्णां वरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य आगमयितव्यः' इत्याह ॥ एवं स्मार्तोपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो ज्ञेयः ॥ यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तत्रापि मधुपर्कान्तं ज्ञेयम् ॥ तेनाधानेष्टिपशुबन्धादौ तदभावादन्ये भवन्तीति सिद्धम् ॥ अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः--'वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात् ॥' तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वयं कर्तृत्वम् ॥ 'श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात्' इति स्मृतेः ॥ त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ "सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत्" इति बृहस्पत्युक्तेः ॥ 'नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्ज्यम् । शालाग्नौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः' इतिपैठीनसिस्मृतेश्चेति विज्ञानेश्वरः ॥ एकग्रहणं पूजार्थं तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हारलतायाम् ॥ दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः ॥

इसीसे रामाण्डारने तो यह लिखाहै कि, जब चार ब्राह्मणोंके वरण करनेका पक्ष होय, औरोंको अशौच होय तो दूसरे बुला लेने. इसीप्रकार स्मार्तकर्ममें भी तुलाकोटिहोम आदिके विषे मधुपर्क होनेपर दोषका अभाव जानना. और जो यह कहाहै कि, यज्ञका प्रारम्भ वरणसे होनाहै उसमेंभी मधुपर्कतकही जानना चाहिये, और इससे आधीन इष्टि पशुबंध आदिमें मधुपर्कके विनाहीसे सब कार्य होतेहैं यह सिद्ध होताहै, और अपवादतो याज्ञवल्क्यने लिखेहैं कि, वैतान उपासना, और वेदोक्त कर्म अशौचमें करने, वहां दानमात्रतो स्नानके उपरान्त स्वयं करना, कारण कि, यह स्मृतिमें लिखाहै कि, वेदोक्तकर्ममें स्नान करनेसे तुरंत शुद्धि होतीहै, और दानसे पृथक् वेद और स्मृतिके कर्ममें और कर्ता होताहै, कारण कि, बृहस्पतिने लिखाहै कि, सूतक और मरण असामर्थ्य श्राद्ध भोजन प्रवास आदि निमित्त होयतो औरसे होम करादेना स्वयं न करना. पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, वैतान कर्मके सिवाय और कर्मकी निवृत्ति होतीहै, कोई यह कहतेहैं कि, शालाग्निमें इन कर्मोंको कोई और करै, यह विज्ञानेश्वरका मतहै. एकपदका ग्रहण अर्चाके निमित्तहै, इससे स्मार्त कर्मको प्रथमही करलेना चाहिये. यह हारलतामें लिखाहै, दाक्षिणात्य तो विकल्प लिखतेहैं ॥

अपरार्कादिनिबन्धास्तु-'श्रौतं सर्वं स्वयं कार्यं, स्मार्ते तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ त्यागमात्रे तु स्वस्य-'कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शवान् स्वयम्' इति हारीतोक्तेः ॥"दर्शं च पूर्णमासं च कर्म वैतानिकं च यत् ॥ सूतकेपि त्यजेन्मोहात्प्रायश्चित्ती पतेद्द्विजः" इति मरीच्युक्तेः ।

अपरार्क आदि ग्रन्थोंमें तो लिखाहै कि, वेदोक्त सम्पूर्ण कर्मको स्वयंही करै, और दानके सिवाय स्मार्त्त कर्मको औरसे करावै कारण कि, हारीतने कहाहै कि, दान और वैतानिककर्मको स्नान और स्पर्श

करके स्वयंही करना चाहिये और मरीचिने भी कहा है कि, अमावस्या और पूर्णिमाका श्राद्ध वैतानिककर्म, इनको सूतकमें भी जो ब्राह्मण त्यागता है वह प्रायश्चित्तका भागी होता है ॥

"जन्महान्योर्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते । शालाग्नौ केवलो होमः कार्य एवान्यगोत्रजैः ।" इति जाबालोक्तेश्चेत्याहुः ॥ आशार्केप्येवम् ॥ याज्ञिका अप्येवम् ॥ "सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत्" इति जातूकर्ण्योक्तेश्च ॥ चरुः स्मार्तस्थालीपाकः ॥ श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः ॥ प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम् ॥ 'न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेत्' इति मनूक्तेः ॥

जाबालनेभी कहा है कि, जन्म और मरणमें वितानकर्मका त्याग नहीं करना केवल होमको शालाग्निमें दूसरे गोत्रवाले करैं, अपरार्कमें भी इसीप्रकार कहा है, जातूकर्ण्यने लिखा है कि, सूतकके होनेपर स्मार्तकर्म कैसे होसकते हैं, पिण्डयज्ञ चरुहोम इनको भिन्नगोत्रसे करावै, चरुपदसे स्थालीपाकका ग्रहण करते हैं, और विज्ञानेश्वरने तो यह लिखाहै कि, श्रावणीके कर्म आदिका ग्रहण है, प्रारम्भ किये कर्मको तो सपिंडको भी करना चाहिये, कारण कि, मनुजीने लिखा है कि, उस कर्मको करता हुआ सगाभाई भी अशुद्ध नहींहोता कि, जिस कर्मका प्रारम्भ होगयाहो ॥

छन्दोगपरिशिष्टेपि–"होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा । अकृतं हावयत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥" अकृतं व्रीह्यादि ॥ कृताकृतं तन्दुलादि ॥ स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः ॥ 'शालाग्नौ चैके' इति प्रागुक्तेः ॥ यदा करणं तदान्यद्वारा ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ येषां बह्वृचादानां द्वादशरात्रमहोमेपि नाग्निविच्छेदस्तैर्न कार्यम् ॥ तैत्तिरीयाद्यैः कार्यम् ॥ 'त्रिरात्रमहूयमानोग्निर्लौकिकः संपद्यते' इति सुदर्शनभाष्ये वचनात् ॥ समारूढे त्वग्नौ तेनापि न कार्यम् ॥ किंतु पुनराधानमेव ॥ समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च ॥ अन्यथा पुनराधानमपि स्यात् ॥

छन्दोगपरिशिष्टमें भी कहा है कि, वेदोक्तकर्ममें सूखे अन्न वा फलसे हवन करना, और स्मार्तकर्ममें किये वा कृताकृतसे हवन करावे अकृतपदसे व्रीहि जौ आदि और कृताकृत पदसे चावल आदिका ग्रहण करते हैं. स्मार्त होम आदिमें तो विकल्प जानना चाहिये. कोई तो यह लिखते हैं कि, शालाग्निमें करै, इस वाक्यसे जब करै तब दूसरोंद्वारा करै, यहां यह लिखाहै कि, जिन वह बह्वृचआदिकोंकी बारह दिनतक होम न होनेपर अग्नि नष्ट न हो वे न करैं, और तैत्तिरीय आदि तो करैं कारण कि, सुदर्शन भाष्यमें लिखा है कि, चारदिन हवन न होय तो वह अग्नि लौकिक हो जाती है, स्थापित अग्निमें तो वे भी न करै, किंतु फिर आधान करै, अग्निके स्थापन और प्रत्यवरोहको अशौचके अभावका अपवाद कहाहै और उससे दूसरा कोई नहीं करता, नहीं तो फिर आधान भी हो जावेगा ॥

यत्त्वाश्वलायनः–"तौ चापि सूतके शावपर्वणीष्टिं महापदि । पुष्पवत्यां च भार्यायां न कुर्यात्तां कदाचन ॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद् द्विजः । श्रौताग्निस्तु सकृद्धुत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत्" इति तदपि समारूढपरम् ॥ तदाह स एव–"स्मार्ताग्निरात्मनोन्येषामभावे सूतकादिषु । समारोप्य तदन्तेषु विहृत्य जुहुयात्स्वयम् ।" इति ॥

जो आश्वलायनने यह लिखाहै कि, समारोप और प्रत्यवरोहको भी सूतक, मरण, पर्व, यज्ञ महाआपत्तिमें स्त्री रजस्वलामें किसी प्रकार न करै. स्मार्ताग्निमें सूतक और मृत्युमें ब्राह्मण स्वयं होम न करै, श्रौतअग्निमें तो एकवार हवन करै, वा पूर्तितक स्वयं हवन करै, यह भी समारूढ़के विषयमें कहाहै, सोई उन्होंनेही कहाहै कि, सूतक आदिमें अपनेसे दूसरा कोई न होय तो स्मार्त्ताग्निको स्वयंही स्थापन करके प्रसन्नचित्त होकर स्वयं हवन करै ॥

तथा च मनुः–'प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः' इति वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेपि वचनान्निवृत्तिः॥ 'विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः' इति संवर्तोक्तेः ॥ यद्यपि–'पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनोः' इति तेनैवोक्तेः पूर्वनिषेधो व्यर्थः तथाप्यापस्तम्बादीनां वैश्वदेवस्य पञ्चयज्ञाभिन्नत्वात् पृथङ् निषेधः ॥ हरदत्तस्त्वाशौचेपि बह्वृचैर्वैश्वदेवः कार्यः 'तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माशुचिर्यद्देशः' इति ब्रह्मयज्ञस्येवाशौचे विशिष्य निषेधात् ॥

यही मनुने लिखाहै कि, अग्निमें कर्मका प्रत्यूह न करना वैश्वदेवकर्म तो अग्निसे साध्य भी है, तथापि वाक्यसे उसकी निवृत्ति होतीहै कारण कि, संवर्तने कहा है कि, ब्राह्मण दश दिनतक वैश्वदेव न करै, यद्यपि पञ्चयज्ञकी विधिको मरण और जन्ममें न करै, इस उसकेही कथनसे पूर्वनिषेध व्यर्थ है, तो भी आपस्तंब आदिके मतमें वैश्वदेव पञ्चयज्ञसे भिन्न कहाहै इससे पृथक् निषेध है. हरदत्तने तो यह कहा है कि, अशौचमें भी बह्वृच वैश्वदेवकर्म करै, उसके दो अनध्याय होते हैं, जो आत्मा और देश अशुचि हो इसप्रकार ब्रह्मयज्ञका अशौचमें विशेष निषेध है ॥

सन्ध्यादीनामप्यपवादमाहापरार्के पुलस्त्यः–"संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके मृतके चैव संध्याकर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायाममृते द्विजः ॥" यत्तु चन्द्रिकायां जाबालः–"संध्या पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च । तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया" इति ॥ यच्च संवर्तः–'सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥'

संध्या आदिका अपवाद भी अपरार्कमें पुलस्त्यजीने कहाहै कि, संध्या, यज्ञ, चरु, होमको जीवनपर्यन्त करै, कभी न त्यागै, छोडै तो निकृष्ट गतिको प्राप्त होताहै, सूतक और मृत्युमें द्विजको सन्ध्याकर्म करना चाहिये, प्राणायामके सिवाय मनमें मन्त्रोंको उच्चारण करै, जो चंद्रिकामें जाबालने कहाहै कि, संध्या पञ्चमहायज्ञ नित्य स्मार्तकर्मको दशदिनके बीचमें त्याग दे और दशदिनके पीछे करै, जो सम्वर्तने कहाहै कि, संध्या आदि कर्मको सूतकमें छोड दे ॥

यच्च विष्णुपुराणम् ॥ "सर्वकालमुपास्या तु संध्ययोः पार्थिवेष्यते । अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः" इति तत्पूर्णसंध्यापरम् ॥ 'अर्घ्यान्ता मानसी संध्या कुशवारिविवर्जिता' इति शुद्धिदीपे च्यवनोक्तेः ॥ पैठीनसिस्त्वर्घ्ये मन्त्रोच्चारणमाह ॥ 'सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ॥' प्रयोगपारिजाते भारद्वाजोपि–सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम् । तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥"

जो विष्णुपुराणमें लिखाहै कि, हेराजन् ! सबकालमें सन्ध्याकी उपासना, सूतक श्रम रोगभयको त्यागकर करै, यह वाक्य सम्पूर्ण संध्याके विषयमें है, कारण कि, शुद्धिदीपमें च्यवनने लिखा है कि, कुश और जलको त्यागकर अर्घ्यपर्यन्त मानसी संध्या कर, पैठीनसिस्मृतिमें तो अर्घ्यमें मन्त्रका उच्चारण लिखा है कि, सूतकमें गायत्रीसे अञ्जलिजल दे और प्रदक्षिणा करके सूर्यका ध्यान करता हुआ प्रणाम करै. प्रयोगपारिजातमें भरद्वाजका वाक्य है कि, सूतक और मृत्युमें विना मन्त्रके प्राणायाम करै, और मार्जन-मन्त्र मनसे उच्चारणकर मार्जन करै, गायत्री को भलीप्रकार पढकर सूर्यको अर्घ्यदेना अथवा मार्जन और सूर्यकी स्तुति करै वा न करै ॥

ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह व्याघ्रः-'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' इति ॥ लैङ्गेऽपि-"सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥" प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः-'कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन ॥' वृद्धशातातपः "यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः ॥ भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुध्यति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥" इदमविशेषात्सूतकादिपरमपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च ॥

ग्रहणके श्राद्ध आदिमें अशौचका अपवाद व्याघ्रने लिखाहै कि, राहुके सूतकको त्यागकर स्मार्त्त-कर्मका परिनिषेध है. लिंगपुराणमेंभी कहाहै कि, राहुके सूतकमें सूतक वा मृत्युमें दोष नहीं, इतनीही शुद्धि होतीहै, जबतक (उग्रहण) न हो. प्रयोगपारिजातमें बृहस्पतिका वाक्य लिखाहै कि, कन्याका विवाह और संक्रान्तिमें कदाचित्भी सूतक नहीं. वृद्धशातातपने कहाहै कि, जब भोजनके समयमें द्विज अशुद्ध होजाय, तो पृथ्वीमें उस ग्रासको फैंक और स्नान करके शुद्ध होताहै, उस ग्रासको भक्षण करके, अहोरात्रसे और सब अन्नको खाकर तीनरातसे शुद्ध होताहै, यह वाक्य पूर्णतासे सूतकआदिमें भी है यह शुद्धितत्व और शूलपाणिमें कहाहै ॥

अथ द्रव्यतः शुद्धिनिर्णयः ।

मरीचिः-"लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च । शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयः-सु च । तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयंग्रहः ॥ पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके।" स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः ॥ क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः ॥ पक्वं लड्डुकादि ॥ अपक्वं तण्डुलादि ॥ एतदन्नसत्रपरम् ॥ "अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमग-र्हितम्। भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्" इत्याङ्गिरसोक्तेः ॥ पक्वान्नमोदनादि नतु भक्ष्यम् ॥

अब द्रव्यसे अशौचका अपवाद लिखतेहैं मरीचिने लिखाहै कि, लवण, मधु, मांस, पुष्प, मूल, फल, शाक, काठ, तृण, जल, दही, घी, दूध, तिल, औषधी, मृगचर्म, पक्वमोदक आदि विनापके तंडुल आदिको ग्रहण करले, और बेचनेकी सब वस्तुओंमें मृत्यु और सूतकमें दोष नहींहै, इन पूर्वोक्त मोदक आदिको स्वामीकी अनुज्ञासे स्वयं ग्रहण करै, उसके हाथसे न ले, बेचनेमें तो स्वामीके हाथसे भी दोष नहींहै, यह अन्नसत्रमें है, कारण कि, आंगिरसने लिखाहै कि, जो अन्नसत्र करै उनका आम अन्न निंदित नहींहै और इससे पक्के अन्नको भोजनकर तीनदिन व्रत करै, पक्वान्नसे मोदक आदि ग्रहणकरने भक्ष्य नहीं ॥

षट्त्रिंशन्मते-"उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥" बृहस्पतिः-'विवाहोत्सव'-इत्याद्युक्त्वा-'पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥' षडशीतौ-"संसर्गाद्यस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता । तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥" शुद्धितत्त्वे-"शुद्धचेदित्यनुवृत्तौ विष्णुः-'प्रोक्षणेन पुस्तकम्' इति ॥

षट्त्रिंशत्के मतमें कहाहै कि, दोनोंको ज्ञान न होय तो सूतकका दोष नहीं लगता, एकको भी ज्ञान होय तो खानेवालेको दोष होताहै, विवाह उत्सव यज्ञ मध्यमें मरण और सूतक होजाय तो और पुरुष अन्नदें, और ब्राह्मण भोजन करलैं, ब्राह्मणोंके भोजन करते हुये मरण वा सूतक होजाय तो और जलसे आचमन करके वे सब पवित्र कहे हैं, बृहस्पतिने कहा है कि, विवाह उत्सव आदिमें पूर्व संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं है, षडशीतिमें कहा है कि, जिसको संसर्गसे अशौच लगताहै वा जिसका समय बीतगया हो उसके पदार्थको कभी दोष नहीं है, शुद्धितत्त्वमें विष्णुका कथन है कि, जल छिडकनेसे पुस्तकको शुद्धि होती है ॥

मृतदोषे निर्णयः ।

अथ मृतदोषे हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मे च-"व्यापादयेद्य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया ॥" शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव॥ हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मे-'सद्यः शौचं समाख्यातं शापादिमरणे तथा ।' आदिपदादभिचारहते ॥ भविष्ये-"स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । अन्त्यान्त्यजविषोद्बन्धैरात्मना चैव ताडनैः । पाखण्डमाश्रिताश्चैव महापातकिनस्तथा ॥ स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा । न तेषां स्नानसंस्कारो न श्राद्धं न सपिण्डनम् ॥"

अब मरणके दोषमें लिखतेहैं, हेमाद्रिमें षट्त्रिंशन्मत और कूर्म पुराणमें लिखाहै कि, अग्नि वा जल आदिसे जो अपनी हत्या करै, उसका अशौच नहीं है, और न उसका जलदान करै, जबतक उसका मृतक शरीर न देखै तबतक अशौच हैही, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, राजा गौ ब्राह्मणसे मरे और हत्यारेका अशौच देखनेतक है, शुद्धितत्वमें कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, शापआदिसे मरनेमें तत्काल शौच कहाहै आदिपदसे अभिचार मारणप्रयोगसे मृत्यु लेनी, भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, अपनी इच्छासे मरे और ब्राह्मण, पशु, दाढवाले, सांप अन्त्य, अंत्यज, विष, बन्धन, आत्माकी ताडनासे मरे, पाखंडी, महापातकी, व्यभिचारिणी स्त्री, ब्रह्मचर्यआदिसे पतित इनके स्नान संस्कार श्राद्ध सपिंडी नहीं होते हैं ॥

गौतमः-' प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति ॥ नाशौचमिति शेषः । अङ्गिराः-"चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति" ॥ षट्त्रिंशन्मतेप्येवम् ॥

गौतमने कहा है कि, शाप, अनशनव्रत, अग्नि, जल, बन्धन, पतन (गिरने) का भी अशौच नहीं होता है, अंगिराने कहा है कि, चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दाढवाले पशुसे पापियोंकी मृत्यु होती है, इनको जल, पिण्डदान जो मरनेपर दिया जाता है, वह नहीं प्राप्त होता है, अन्तरिक्षमें ही नष्ट होजाता है, षट्त्रिंशन्मतमें भी ऐसेही लिखा है ॥

ब्राह्मेपि–'शृङ्गिदंष्ट्रिनखव्यालविषवह्निक्रियाजलैः ॥' व्यालो गजः ॥ ''सुदूरात्परिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडां मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् हतश्चाप्यथ विद्युता । निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान्हरन्तश्च द्वेषात्तु पतिभिर्हताः ॥ असमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहात् ॥ कृत्वा तैर्निहतास्तद्वच्चण्डालादीन् समाश्रिताः ॥ शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम् ॥ गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्पजीविनो ये च सूनालंकारधारिणः ॥ मुखेभगास्तु ये केचित् क्लीबप्राया नपुंसकाः ॥ ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हताः । महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥ पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः । न चाश्रुपातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः ॥ ततः कृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्नचान्यथा ॥'' एतद्बुद्धिपूर्वे ॥

ब्रह्मपुराणमें भी लिखाहै कि, सींग और दाढ नखवाले सर्प (अजगर) विष अग्निकी क्रिया जलसे मरे हुओंको पिंडदान नहीं मिलता, क्रीडा करनेमें जो मरता है, उसे दूरसे त्याग दे, नागोंका वैर करनेवाला, और बिजलीसे जो मरा है, और जो राजाने कभी चोरीके दोषमें पकडे हैं, जो पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं, और द्वेषसे उनके पतियोंने उनको मारदिया है, और अपनेसे अधिक वा न्यून चाण्डाल आदिसे वैर करते हैं, और वैरसे उन्होंने मारदिये हैं, और जो चाण्डालोंके आश्रय हैं, शस्त्र, अग्नि, विषके देनेवाले पाखण्डी और क्रूरबुद्धि जो क्रूर क्रोधसे विष, अग्नि, शस्त्र बन्धन, जलसे मरे हों, और पहाड वृक्षोंसे जो नीचे गिरकर मरे, खोटे शिल्पसे जो जीविकावाले हिंसाके अलंकारको धारण करें, मुखसे निरन्तर भग उच्चारण करनेवाले, अयोनिमें गमन करता, नपुंसक हैं, ब्रह्मदण्ड और ब्राह्मणसे मृतक हुए जो महापातकी हैं, वे पतित कहाते हैं, पतितोंका दाह अन्त्येष्टिकर्म और अस्थिसञ्चय रोना पिण्डश्राद्ध आदि कर्मभी न करै, जो पतितोंके निमित्त अज्ञानसे श्राद्धादि करता है, उसकी शुद्धि दो तप्त कृच्छ्रव्रतोंसे होती है, अन्यथा नहीं, यह सब जानकर करनेमें है ॥

सर्वेषां करणे तु माधवीये वसिष्ठः–''य आत्मत्यागिनां कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥'' अज्ञाने तु–''कृत्वाग्निमुदकं स्नानं संस्पर्शं वहनं कथाम् । रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति'' इति ज्ञेयम् ॥ प्रत्येकं बुद्धिपूर्वे एतदिति मदनपारिजातः ॥ प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायाम्–''तच्छवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि । पूर्वोक्तनामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ॥ एकरात्रं तु नाश्नीयात् त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम्'' इति माधवीये उत्तरार्द्धम् । अन्येषु तु संवर्तः–''एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।'' अज्ञाने त्वर्धम् ॥ एतदनाहिताग्नेः ॥ आहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति माधवः ॥

कारण कि, इन सबकी क्रिया करनेमें माधवीयमें वसिष्ठने लिखा है कि, जो द्विज आत्महत्यारोंकी प्रीतिके निमित्त प्रेतक्रिया करता है, वह तप्तकृच्छ्रके सहित चांद्रायणव्रत करै, तो शुद्ध हो, अज्ञानसे करै, तो उस समय यह विधान है कि, अग्नि और जलदान, स्नान और स्पर्श, श्मशानमें लेजाना, तथा रज्जुका छेदन, रुदन इनको करै तो तप्तकृच्छ्रसे पवित्र होता है कि, यदि प्रत्येक जानकर यह मदनपारिजातमें कहा है, इन प्रत्येकका स्पर्श करै, और रोवै, मिताक्षरामें यह कहा है कि, उन सबका केवल स्पर्श करै, वा अश्रुपात करै, और पूर्वोक्त कर्म न करै,तो एकरात उपवास करनेसे शुद्ध होता है, माधवीयमें तो इस श्लोकका पिछला आधा इस प्रकार लिखाहै कि, एकरात भोजन न करै, और जानकर इनका स्पर्श आदि करै, तो तीनरात भोजन त्यागने, औरोंको सम्वर्तने यह कहा है कि, इनमेंसे किसी प्रेतको जो शरीरपर लेजाता है वा कट (पिंजरी) जल क्रिया करता है वह सान्तपन कृच्छ्र करै, तो शुद्ध हो अज्ञानसे आधा करै, यहभी अनाहिताग्निके निमित्त है, और आहिताग्नि तो कृच्छ्रव्रतही करै, यह माधवका मत है ॥

मिताक्षरायाम्–"आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया । तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥" आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे । पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि ॥" छन्दोगपरिशिष्टेपि–"महापातकसंयुक्तो दौरात्म्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि । गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् । पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥"

मिताक्षरामें तो यह कहा है कि, आत्माके त्यागी और पतितोंकी क्रिया नहीं होती उनको गंगाजीमें स्थापन करदेनाही उनका हित है, आहिताग्निके निमित्त विशेष तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, वैतान अग्निको जलमें और आवसथ्य अग्निको चौराहेमें डाल दे, और अग्निहोत्रीके पापी होनेपर उसके यज्ञपात्रोंको फैंकदेना चाहिये, छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, यदि पापी होनेसे अग्निहोत्री महापातकी होजाय तो उसका वे पुत्र उसके शुद्ध होनेतक युक्त होकर अग्निकी पालना करैं, और जो वह पापके प्रायश्चित्त न करै, वा प्रायश्चित्त करता हुआ मृतक होजाय तो वह उस गृह्य अग्निको बुझादे और श्रौतअग्निको सामग्रीके सहित अग्निमें निर्वाण करदे, फिर सामग्रीसहित श्रौतअग्निको जलमें डालदे, उसके पात्रोंको ब्राह्मणको प्रदान करै वा जलमें डालदे वा अग्निमें जलादे ॥

माधवीये पराशरः–"आहिताग्निर्मृतो विप्रश्चण्डालेनात्मघातकः । दहेत ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामानुशासनात् । दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः ॥ स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेनं पुनर्दहेत् ॥" हेमाद्रौ तु 'दाहयित्वा शवं तेषां शूद्रैरविधिपूर्वकम्' इत्युक्तम् ॥ एतद्दर्पादिना मरणे ज्ञेयम् ॥ 'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः' इति श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः ॥ प्रमादमरणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव ।

माधवीयमें पराशरने लिखाहै कि, अग्निहोत्री ब्राह्मण चाण्डालसे मृतक हुआहो वा आत्महत्यारा होय तो उस ब्राह्मणको मन्त्रोंके विना लौकिक अग्निमें दाह करै, फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्यव्रतको करै, दग्ध हुई अस्थिको फिर लेकर दूधमें धोवै, उन अस्थिओंको फिर अपनी अग्निसे मन्त्र पढकर पृथक् जलादे, हेमाद्रिमें यह कहा है कि, उस सबके विना यह विधान है कि, शूद्रोंसे दग्ध करादे, यहभी अभिमान

आदिसे मृत्युको प्राप्त होनेमें जानना कारण कि, इस श्रुतिमें आत्महत्यामें ही दोष लिखाहै कि, जो आत्महत्या करनेवाले मनुष्य हैं, वे उन नरकोंमें जातेहैं, प्रमादसे मृतक होनेमें अशौच आदि तो सम्पूर्ण होतेही हैं ॥

तदाहाङ्गिराः–"अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥" ब्राह्मेपि–"प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः । चण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः" इति ॥ प्रमादमरणे त्रिरात्रमशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वादयः ॥ दशाहादीति दाक्षिणात्याः ॥ अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये–'प्रमादादिच्छया वापि न कुर्यात्सर्पतो मृते ॥' नागपूजां विना न कुर्यादित्यर्थः ॥ बौधायनोपि–'बुद्धिपूर्वात्महन्तॄणां क्रियालोपो विधीयते ॥' क्रियान्त्यकर्म ॥ तत्र ॥ दुर्मरणनिमित्तं दानादि कार्यम् ॥

यही अंगिराने लिखाहै कि, जो कोई प्रमादसे अग्निसे वा जलसे मरे उसका अशौच और जलदान करै ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, प्रमादसे भी जो प्रारब्धवश, सींग दाढ नखवाले अजगर विष बिजली जल आदि चाण्डाल वा चोरसे मृतक होजाय तो उसका दाह आदि करना, कारण कि, वह पतित नहीं है, शुद्धितत्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह कहाहै कि, प्रमादसे मरनेमें तीनरात अशौच लगताहै, और दाक्षिणात्योंमें दशदिनका कहा है. इसका अपवाद हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, प्रमाद वा इच्छासे सर्पसे जो मरे उसकी क्रिया नागपूजाके विना न करै, बौधायनका भी कथन यही है कि, जानकर जिन्होंने अपनी हत्या कीहै उनकी क्रिया नहीं है किन्तु दुर्मरणके निमित्त दान आदि करना चाहिये ॥

तत्र विश्वप्रकाशादौ शातातपीये च–"व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् । सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः ॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद्गजैर्हते । राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्मयम् ॥ चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या तु काञ्चनम् ॥ शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता । निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥ निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ सूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमान्पञ्चखारिकाः ॥ वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते दद्यादृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन हते दद्याद्रथं सोपस्करान्वितम् । भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥ अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः । दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥ शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् । अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं हेमनिर्मिताम् । उद्बन्धनेन च मृते कपिं कनकनिर्मितम् ॥ मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद्द्विनिष्कजम् । विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्नकवले मृते । कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत् ॥ अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् । शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद्रुद्रं यथोदितम् । विद्यु-

त्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् । अन्तरिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो मृते । पतिते च मृते कुर्यात्प्राज्यापत्यांस्तु षोडश ॥ मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् । एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥" तथा वधमरणेपि न दोषः ॥

यही विश्वप्रकाश और शातातपीयमें कहाहै कि, व्याघ्रसे जो मृतकहो उसके निमित्त ब्राह्मणकी कन्याविवाह दे, सर्पसे जिसकी मृत्युहो उसके निमित्त नागबलि और सुवर्णका सर्प देना चाहिये, हाथीसे जिसकी मृत्युहो उसके निमित्त चारनिष्कभर सोनेका हाथी दान करे, राजासे मृत्यु हो तो सोनेका पुरुषदे, चौरसे मरनेमें गौ और वैरीसे मृत्युहोनेमें बैल और बैलसे मृत्युहोनेमें यथाशक्ति सुवर्ण देना, शय्यापर मरै तो रुई और निष्कमात्र सोनेकी विष्णुप्रतिमाके सहित शय्या देनी चाहिये, अशुद्ध मरै तो दो निष्कभर सोनेकी प्रतिमा विष्णुकी देनी चाहिये, संस्कारसे हीन मरै तो बालकको दान करै, घोडेसे मरै तो निष्कमात्र सुवर्णके अश्वदे, कुत्तेसे मरै तो अपनी शक्तिसे क्षेत्रपालका स्थापन करना, सूकरसे मृत्युहो तो दक्षिणासहित भैंसा देना, कृमियोंसे मरे तो खारीभर गोधूम देने, वृक्षसे मृत्यु होतो वस्त्रसहित सोनेका वृक्ष देना, सींगवाले जीवसे मृत्युहो तो वस्त्रसहित बैल देना, गार्डीसे मरे तो सामग्री सहित हव्य देना, भृगुपातसे मृत्यु हो तो अन्नका पर्वत देना, अग्निसे मृत्यु होतो यथाशक्ति दान करना, काष्ठसे मृत्यु हो तो गृहमें सभा करै, शस्त्रसे मृत्युहो तो दक्षिणा सहित भैंसा देना, पत्थरसे मृत्युहो तो सवत्सा गौ देनी विषसे मृत्यु होतो सुवर्णकी पृथ्वी देनी, बन्धनमें मृत्यु होतो सुवर्णका वन्दर देना, जलमें मृत्यु हो तो दोनिष्क सुवर्णका वरुण देना, विषूचिकासे मृत्यु हो तो स्वादुअन्नसे सौ ब्राह्मण जिमावै, कंठमें ग्रास अटककर मृत्यु होतो घीकी गौ देनी, खांसीके रोगसे मृत्युहो तो आठ कृच्छ्रव्रत करै, अतीसारसे मृत्यु हो तो सावधानीसे लाखगायत्री जपै, शाकिनी आदि ग्रहसे मृत्यु होतो शास्त्रोक्तरीतिसे रुद्रीका पाठ करना चाहिये, बिजलीसे मृत्यु होतो विद्यादान करै, अन्तरिक्षमें मृत्यु होतो वेदपारायण करै, स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे मृत्यु हो तो उत्तम शास्त्रकी पुस्तक देना, पतित मरै तो सोलह प्राजापत्यव्रत करै, सन्तानहीन मरै तो नव्वे ९० कृच्छ करै, इसप्रकार विधिको करके और्ध्वदेहिक कर्म करै, इसप्रकार विधिसे मृत्युका विधान करनेमें दोष नहीं ॥

तदाहतुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ—"वृद्धः शौचमृते लुप्तप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्" इति ॥ हेमाद्रौ विष्णुधर्मेपि—"नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदात्मनस्तनुम् । असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः ॥ अरिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितम् । व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुषि चात्मनः ॥ यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् । तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात् ॥ आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च ॥" नेति गौडानामपपाठ उत्तरार्धे असंगतः ॥ 'क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृते भर्तरि योषितः ॥'

यही मनु और वृद्धगार्ग्यने कहाहै कि, जो वृद्धमनुष्य शौच न करकै और जिसकी वैद्य चिकित्सा न करसकै वह अपनेको पहाड अग्नि अनशनव्रत जलसे नष्ट करदे तो उसका तीनरात अशौच है, दूसरे दिन अस्थिसंचयन तीसरे दिन जलदान चौथे दिन श्राद्ध करै, हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका वाक्य लिखाहै कि, व्याधिसे हीन मनुष्य अपने देहको त्याग न करै, कारण कि जो आत्महत्या करनेवाले हैं वे उन लोकोंमें

गमन करतेहैं. जिनमें सूर्य नहींहै और जो अन्धकारसे आच्छादितहैं, दुःखसे अपनी मृत्युको निकट जानकर और रोगसे वैद्योंका त्याग और अपनी अवस्थाकी समाप्ति देख युगके अनुसार अपने देहको त्याग करै, उसकालमें देहके त्यागसे यथेच्छ फलको प्राप्त होताहै, अवस्थासे प्रथम ब्राह्मणोंका मरण देखाहै, और नहीं देखा, यह गौडोंका किया पाठ ठीक नहीं, कारण कि, यह पिछला आधा श्लोक असंगत होगा, संग्राममें क्षत्रीके, और स्वामीके मरनेपर स्त्रीका मरण देखागया है ॥

अपरार्के वृद्धगर्गः-"यो जीवितुं न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः । सोग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्नात्र न दुष्यति।" अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगाद्युपहतानामधिकारः ॥ सोपि जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदेवयाज्ञिकादयः ॥ अत एव मिताक्षरादौ भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम् ॥ मनुरपि- "आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते" इति ॥

अपरार्कमें वृद्धगर्गने लिखाहै कि, जो मनुष्य महाव्याधिकी पीडासे न जीसकै उसको वह अग्नि जल और महायात्रा करनेसे दोष नहीं लगता, यहां पूर्वकहे उक्त और वक्ष्यमाण वाक्योंके समूहसे चिकित्साके योग्य न रहनेसे रोगोंसे पीडित मनुष्योंका अधिकार प्रयागसे भिन्न तीर्थके विषयमें है, वह भी जीर्ण वानप्रस्थको ही लिखा गयाहै, इसप्रकार विज्ञानेश्वर देवयाज्ञिकआदि कथन करतेहैं, इसीकारणसे मिताक्षराआदिमें शिलासे गिरना, और अनशन व्रतआदि वानप्रस्थको ही लिखेहैं, मनुनेभी लिखाहै कि, इन महर्षियोंके आचरणोंसे जिसने शरीरको त्यागकियाहै वह ब्राह्मण शोक और भयरहित हो ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै ॥

तेनान्यत्रापि तद्विषयतव मूलैक्यादिति केचित् ॥ तन्न ॥ वानप्रस्थमरणे आशौचनिषेधात् ॥ तेन गृहस्थादिपरमेवेदम् ॥ तेन यतेर्नाधिकारः ॥ काम्येऽनधिकाराच्च ॥ नैमित्तिकत्वे त्वकरणे दोषो नित्यता च स्यात् । प्रयागे त्वरोगिणां रोगिणां च ॥ यत्तु-"शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्च तथाधमाः । एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप ॥ पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत्" इति ॥ तन्निर्मूलमिति भट्टाः ॥

इसीसे और स्थानमें भी मूलकी एकतासे वानप्रस्थके विषयमें ही है, यह कोई कथन करतेहैं, सो उचित नहीं कारण कि, वानप्रस्थके मरनेमें अशौचका निषेधहै, तिससे गृहस्थ आदिके विषयमें यह जानना, इससे संन्यासीको अधिकार नहींहै और उसको काम्यकर्मका निषेधभी कहाहै, नैमित्तिकके न करनेमें दोष और नित्यता प्राप्त होगी, प्रयागमें तो अरोगियोंके निमित्त लिखाहै, और जो यह वाक्यहै कि, शूद्र क्षत्रिय वैश्य अन्त्यज अधम ये सब द्विजको छोडकर प्राणोंको त्यागदें और ब्राह्मण पतित होकर ब्राह्मणहत्यारा और आत्महत्यारा होताहै सो वचन निर्मूलहै यह भट्टोंका मतहै ॥

तत्त्वं तु हेमाद्रौ व्रतकाण्डेऽलिखनान्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव ॥ प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं युक्तम् ॥ ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातामिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च ॥ यत्त्वादित्यपुराणे- "अब्राह्मणो वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया । प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा" इति तत्प्रयागातिरिक्तपरमिति केचित् ॥ हेमाद्रौ त्वेतदग्रे 'प्रयागवटशाखाग्रात्' इत्युक्तेर्ब्राह्मणस्य प्रयागेपि नेति प्रतीयते ॥

तत्वतो यहहै कि, हेमाद्रिके व्रतकांडमें लिखा न रहनेसे निर्मूल कहना चिन्त्यहै, प्रकरणसे तो (पतित्वा) गिरकर यहां भृगुसे ही पातहोना युक्तहै और ब्राह्मणको भी इसकी आज्ञा लिखीहै और आगे-कहे कथनोंका विरोधभी है, जो तो आदित्यपुराणमें कहाहै कि, ब्राह्मण स्वर्गआदिमहाफलकी इच्छासे अग्निजलमें प्रवेश करै, और अनशन व्रत करै, वह प्रयागसे पृथक् विषयमें कहाहै ऐसा कोई कहतेहैं, हेमाद्रिमें तो इससे आगे विदित होताहै कि, प्रयागमें वटकी शाखाके अग्रभागसे गिरे, इस कथनसे ब्राह्मण प्रयागमें भी न गिरै यह विदित होताहै ॥

माधवीयेऽपरार्के चादित्यपुराणे–"दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि । प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोत्यनशनं तथा ॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव च । गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयागवटशाखाग्राद्देहत्यागं करोति च । स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत् कचित् । महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगान् समश्नुते ॥ एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु । नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥ ईदृशं मरणं येषां जीवतां कुत्रचिद्भवेत् । आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा ॥ वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः ॥ अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलं गतो हरः । प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित्कचित् ॥

माधवीय अपरार्कमेंभी आदित्यपुराणका यह वाक्यहै कि, चिकित्साके अयोग्य महारोगोंसे पीडित जो पुरुष प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करै वा अनशनव्रत करै, गहरे जलमें गिरै, भृगुसे गिरै, वा महामार्गमें चले, हिमालयमें चलाजाय, प्रयागवटकी शाखाके अग्रभागसे गिरकर देहको त्यागे, वा स्वयं देहविनाशका समय प्राप्त होय तो ऐसे समय बुद्धिमान् उत्तमलोकोंको प्राप्त होताहै, और आत्मघाती नहीं होता, महापापके क्षयसे स्वर्गमें दिव्यलोकोंको प्राप्त होता है, इनका अधिकार तो सब जीवोंके निमित्त है, नर और नारियोंकोभी है, उनका और वज्र अग्निसे मृतकोंका अशौच तीनरात तक लगता है, जो वैद्योंका त्यागा हुआ काशीमें काठ शिला गंगाजलमें मरै, तो अविमुक्तके सामने महादेव जो उसके कानमें तारक (ॐकार) मन्त्रको कहते हैं इससे अन्यथा कभी नहीं होता, मुक्त होताहै ॥

हेमाद्रौ चैवम् ॥ अत्र प्राप्ते काल इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे संपूर्णमेवाशौचम् ॥ पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि त्र्यहमाह ॥ शुद्धितत्वादिगौडग्रन्थेष्वप्येवम् ॥ एतच्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम् ॥ 'भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा' इति ॥ माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिवर्ज्येषूक्तेः नचात्र यावदुक्तनिषेधः ॥ विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् ॥ नच कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् ॥ सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्ताद्भिन्नस्यापि प्राप्तेः काम्यं भवत्येव ॥ 'ये वै तन्वां विसृजन्ति' इतिश्रुतेः स्मृत्या संकोचायोगात् ॥ नचेयं स्वाभाविकमृत्युपरा धीरपदोक्तेः ॥

हेमाद्रिमें भी ऐसेही लिखाहै, यहां 'काल प्राप्त होनेपर' यह कथन करनेसे जिसके मरणका समय न आया हो ऐसी स्त्री यदि सती होय तो पूर्ण अशौच प्राप्त होताहै, पृथ्वीचन्द्रोदयने तो उसके निमित्त भी तीन दिनका अशौच लिखाहै, शुद्धितत्व आदि गौडग्रन्थोंमें भी ऐसेही लिखाहै, और यह वृद्ध आदिकी मृत्यु कलियुगमें निषेध है, भृगु अग्नि आदिमें गिरकर वृद्धोंको मरना माधव और पृथ्वीचन्द्रने यहां निषिद्ध

लिखाहै, यदि कोई सन्देह करै कि, पूर्वसे कहे सबका निषेध यहां नहीं है. सो उचित नहीं, कारण कि, वसिष्ठके उद्देश्यमें वाक्यभेदका भाव नहीं है. यदि कोई शंका करै कि, कलियुगमें वानप्रस्थ आश्रमके निषेधसेही यह बात सिद्ध थी, फिर मरणका निषेध करना व्यर्थ है, सो भी ठीक नहीं, कारण कि, 'सर्ववर्णेषु' इन वाक्योंसे वानप्रस्थसे भिन्नको भी यह बात प्राप्त होतीहै. काम्यमरण तो होताहीहै, जो शरीरको त्यागते हैं, इन श्रुतिस्मृतियोंसे संकोच नहीं होसक्ता. यदि कोई कहै, कि, यह स्वाभाविक मृत्युके विषय लेखहै सो भी ठीक नहीं, कारण कि, इसमें धीरपद पडा है ॥

मात्स्यभारतादिषु—"न लोकवचनात्तात न वेदवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति" इत्युक्तेः ॥ अत एव विष्णुधर्मे रोग्यादिमरणमुक्त्वोक्तम् 'यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम्' इति ॥ काश्यामप्युक्तं मात्स्ये—"अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥" हेमाद्रौ विवस्वान्—"सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथः ॥ धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च । ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम् ॥"

मत्स्यपुराण महाभारत आदिमें कहाहै कि, हे तात! लौकिक और वेदोक्त वाक्योंसे प्रयागमें मरनेसे मतिको चलायमान न करना, इसीसे विष्णुधर्ममें रोगी आदिके मरणको कहकर लिखाहै कि, युगके अनुसार अपने देहको त्यागना. काशीमें भी मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, अविमुक्तक्षेत्रमें जो अग्निमें प्रवेश करतेहैं, हे वरानने! वे निःसंदेह मेरे मुखमें प्रविष्ट होतेहैं, हेमाद्रिमें यमका वाक्यहै कि, जिसकी सब इन्द्रिय शिथिलहैं, और जो अपने कार्य करनेमें असमर्थ है, उसका प्रायश्चित्त अग्निमें गिरना वा महामार्ग लिखाहै धर्मके संचय करनेमें असमर्थ तथा पापसे युक्त ब्राह्मणको भी तीर्थमें प्राणोंका त्याग लिखाहै ॥

अपरार्के चैवम् ॥ सहगमनं कलौ भवत्येव ॥ 'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तं काशीखंडादौ चातुर्वर्ण्यस्य ॥ तनुत्यागविधयश्च युगान्तरपरा एव ॥ प्रयागेपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे—"यथाकथंचित्तीर्थेस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥" पाद्मे विष्णुः—"देहत्यागं तथा धीराः कुर्वन्ति मम संनिधौ । मत्तनुं प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्म ते नराः ॥"

अपरार्कमेंभी इसीप्रकार लिखाहै सती होनेको जानो कलियुगमें होताहीहै कारण कि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि, सहअनुगमनको त्यागकर कलियुगमें स्त्रियोंकी दूसरी गति नहीं है, इससे मरणांतिकही प्रायश्चित्त है. काशीखंड आदिमें चारोंवर्णोंको देहत्यागकी जो विधि लिखीहै वह अन्ययुगोंमें है, प्रयागमें भी त्रिस्थलीसेतुमें स्कंदपुराणका वाक्यहै कि, जो जैसे तैसे तीर्थमें प्राणोंको त्याग करै, उसको आत्मघातका दोष नहीं लगता और वह यथेष्ट लोकोंको गमन करताहै. पद्मपुराणमें विष्णुने कहाहै कि, हे शूरो! जो मेरे निकट देहको त्यागताहै, वह मेरे देहमें प्रवेश करताहै फिर उसका जन्म नहीं होता ॥

कौर्मे—"व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ईप्सिताँल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुंगवाः ॥" तथा—"या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे ॥" वाराहे—"तत्र यो मुञ्चति प्राणान् वटमूलेषु सुन्दरि । सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते ॥" तथा—"अकामो वा सकामो वा वटमूलेषु सुन्दरि ॥ शीघ्रं प्राणान्प्रमु-

श्वत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥" तथा-"पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले । व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥"

कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, व्याधीसे युक्त दीन वा क्रोधी जो मनुष्य गंगायमुनामें प्राणोंको त्यागताहै, वह यथेष्ट कामनाको प्राप्त होताहै यह मुनिश्रेष्ठोंके वाक्यहैं. तैसे ही कथन है कि, जो योगीकी गतिहै जो तत्वगुणीकी गतिहै वही गति गंगायमुनाके संगममें प्राणोंके त्यागनेवालेकी होतीहै. वराहपुराणमें लिखाहै कि, हे सुन्दरि ! प्रयागमें वटके मूलमें जो प्राणोंको त्यागताहै वह सब लोकोंको लंघकर मेरे लोकमें गमन करताहै, ऐसेही वाक्यहै कि, पांच योजन पर्यन्त प्रयागके मंडलमें जो प्राणोंको त्यागताहै वह पिछले और अगले चौदह पुरुषोंको तार देताहै ॥

ब्राह्मे-"ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः । तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ दुष्कृतोपि दुराचारो ब्रह्महत्यादिपातकी । हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रायशो मुक्तिमान्भवेत् ॥" भविष्योत्तरे-"समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश । महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥" इति सामान्यतोपि फलम् ॥ एवमन्येपि विधयो ज्ञेयाः ॥ यत्तु गौडाः प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तद्दूषणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ कृतमिति नात्रोच्यते ॥ अत्र दशाहमाशौचम् । त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति भट्टाः ॥ युक्तं तु त्रिरात्रम् ॥ दिवोदासीयेप्येवम् ॥

ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, विष्णुके चरणोंका ध्यान करके विष्णुमें तत्पर होकर जो मनुष्य माघमहीनेमें शरीर त्यागताहै, वह मुक्त होजाताहै, इसमें सन्देह नहीं, दुष्टकर्मा हो दुराचारी ब्रह्महत्या आदि पातकी हो भगवान्का ध्यान करके प्रयागमें शरीर छोडै तो मुक्त होजाता है. भविष्योत्तरका वाक्य है कि, जलमें प्राणत्यागै, तो सात सहस्रवर्ष, अग्निमें दशसहस्र, गिरनेमें सोलह सहस्र, महासंग्राममें साठसहस्र, गौशालामें त्यागै तो अस्सी सहस्र वर्ष स्वर्गमें निवास होता है. हे भारत ! अनशन व्रतमें अक्षयगति होती है, यह सामान्यभी फलहै, इसीप्रकार और भी विधि जाननी, और जो गौडोंने कहाहै कि, प्रयाग आदिका मरण ब्राह्मणसे भिन्नके विषयमें है, उसका दूषण हमारे पितामहके चरणोंने प्रयागविधिमें लिखाहै इससे उसको नहीं लिखते इसमें दशदिनका अशौच है, त्रिरात्र अशौच प्राप्तकालके विषयमें जानना, यह भट्टोंका मतहै, तीनरात करना युक्तहै, दिवोदासीयमें भी ऐसेही लिखाहै ॥

शुद्धितत्त्वेपि काश्यपः-"अनशनमृतानामशनिहतानामग्निजलप्रविष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम्' इति ॥ एवं मरणान्तप्रायश्चित्तेपि ॥ पूर्वोक्तश्चात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव ॥ वत्सरान्ते तु सर्वमौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् ॥ "गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । ऊर्ध्वं संवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् " इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ एवं म्लेच्छीकृतानामपि गयाश्राद्धमपि कार्यम् ॥ "ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्चपातकी । सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात् " इत्यग्निपुराणात् ॥

शुद्धितत्वमें भी कश्यपका कथन है कि, अनशनसे मरै वज्रसे मरै वा अग्नि वा जलमें प्रविष्ट हुये शिला संग्राम देशान्तरमें मृतक हुए दांत निकलनेमें मरोंका तीनदिन अशौच लगता है, इसीप्रकार मरणांत प्रायश्चित्तमें भी जानना चाहिये. पूर्वोक्त आत्महत्या करनेवाले आदिको दाह अशौच आदिका निषेध तौ तभी है अर्थात् अशौचके समयमें ही है, वर्षके पीछेमें तो सब और्ध्वदेहिक कृत्य करै, कारण कि, हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखाहै कि, जो ब्राह्मणद्वारा मरा हो और पतित हो उनका वर्षदिनके उपरांत सब और्ध्वदेहिक करै, इसीसे जो म्लेच्छ किये गये हैं, उनका भी गयाश्राद्ध करना, कारण कि, अग्निपुराणमें लिखा है कि, ब्रह्महत्यारे, कृतघ्न, गौका घातक, पांचोंपातकी ये सब गयामें पिंडदानसे मुक्त होते हैं ॥

एवं ब्राह्मेपि–"क्रियते पतितानां तु गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपे स्वबन्धुभिः ॥ मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् ॥" सूर्यपद इत्यर्थः ॥ तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपरार्के वायुपुराणे–"शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्यात् श्राद्धं तु वत्सरम् । द्वादशाहानि वा कुर्याच्छुक्ले च प्रथमेऽहनि ॥" छागलेयः–"नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥"

ऐसेही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, वर्षदिनके उपरान्त पतितोंका कर्म देशधर्मके अनुसार गयाकूपमें वा मार्तण्डके पादमूलमें हरिहरको स्मरणकरके वा सूर्यपदमें बांधव श्राद्ध करै, उनका वर्षके बीचमें कृत्य करना. अपरार्कमें वायुपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, शुक्लपक्षकी द्वादशीको वर्षदिनतक श्राद्ध करना चाहिये वा शुक्लपक्षके पहले दिनसे बारह दिनतक करना. छागलेयने लिखाहै कि, लोकनिन्दाके डरसे मनुष्य नारायणबलि करै, तैसेही उनकी पवित्रता होती है और प्रकार नहीं. यह यमने लिखाहै ॥

व्यासः–"नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा" इति ॥ स चात्मघातादिप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यः ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–"कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । पिण्डोदकक्रियाः पश्चाद्वृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा ॥"

व्यासने कहा है कि, नारायण वा शिवके निमित्त जो दिया जाता है वही उसकी शुद्धिका कार्य है और नहीं, वह भी आत्महत्याका प्रायश्चित्त करके करना चाहिये. यही हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि, प्रथम चांद्रायण करके विधिपूर्वक क्रिया करनी, लोकअपवादके भयसे नारायणबलि करै, फिर पिंड जलदान और वृषोत्सर्ग आदि और एकोद्दिष्ट करै ॥

दिवोदासीये वृद्धशातातपस्तु–"पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यांस्तु षोडश । मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत्" इत्याह ॥ इदं प्रायश्चित्तार्हपित्रादिविषयम् ॥ "इंद्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः । घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः । यथा श्राद्धं प्रतन्वंति विष्णुनामप्रतिष्ठितम्॥ तथा ते संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे ॥" हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः ॥

दिवोदासीयमें वृद्धशातातपने लिखा है कि, पतितके मरनेमें शुद्धिके निमित्त सोलह प्राजापत्य, और अपत्यरहित मरनेमें नव्वे ९० कृच्छ्रव्रत करै, यह प्रायश्चित्तके योग्य पिता आदिके विषयमें लेख है कारण

कि, हेमाद्रिमें उसनेही यह लिखा है कि, जो इन्द्रियोंसे हीन मूढ और दुःखी हैं, और अपनी आत्माको नष्ट करते हैं, और जो चाण्डालआदिसे मृतक हुए हैं दयासे युक्त उनके पुत्रपौत्रोंको जैसे नारायणबलि करनी चाहिये, तैसे ब्रह्माको नमस्कार करके तुझसे कथन करताहूँ ॥

तत्रैव बौधायनोपि–'नारायणबलिं व्याख्यास्यामोऽभिशस्तपतितसुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीत' इति ॥ गृह्यपरिशिष्टे तु–चण्डालादित्याद्युक्त्वा–"दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः ॥ प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम्" इत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने ब्राह्मणहतानां च द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीतेति ॥

वहांही बौधायनने लिखा है कि, नारायणबलिको कहते हैं. जिसे शाप लगाहो, जो पतितहो, मदिरासे मृतक हुआहो, ब्राह्मणने माराहो उसकी बारह वा तीन वर्षतक नारायणबलि करनी चाहिये. गृह्यपरिशिष्टमें तो यह लिखा है कि, चाण्डालआदिसे जो मृतक हो उसके शरीरको दग्ध करके अस्थियोंको यत्नसे स्थापन करना चाहिये. पुनः उसका पुत्र यत्नसे तीन चांद्रायण करै, मदनरत्नमें कहा है कि, ब्राह्मणसे जो मृतक हुएहों उनको प्रायश्चित्त बारह वा तीन वर्ष करै ॥

मदनरत्ने ब्राह्मे–"प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः । चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये ॥ यद्वा कृच्छ्रान्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत् । बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेत्" इत्युक्तम् ॥

मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, प्रमादसे वा अकस्मात् ब्राह्मण चांडाल वा चोरोंसे जो मृतकहुआ हो उसका दाह आदि करै, कारण कि, वह पतित नहीं, और उसकी शुद्धिके निमित्त चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करै, अथवा पन्द्रह तप्तकृच्छ्र करके विधिसे दाह करै, जानकर मरे होंय तो तीस कृच्छ्र करै ॥

स्मृतिरत्नावल्यां तु–'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वार्वागप्यब्दात्सर्वं कार्यम्' इत्युक्तम् ॥ "आत्मतो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् । तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा पुनः ॥ अर्वाक् संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् । कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः" इति ॥ इदं चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचितं कार्यम् ॥ अत एव बौधायनोक्तं–'द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा' इति ॥

स्मृतिरत्नावलीमें तो यह लिखा है कि, दुगुना प्रायश्चित्त करके वर्षदिनसे प्रथम भी सब क्रिया करै, आत्महत्याकी शुद्धिके निमित्त दो चांद्रायण और चार तप्तकृच्छ्र व्रत करै, वा तीस कृच्छ्र करैं. फिर वर्षदिनसे प्रथम भी दाह आदि नारायणबलिके उपरांत अवस्थाके अनित्य होनेसे करै, और यह प्रायश्चित्त और जातिवधका प्रायश्चित्त एकसाथ करै, इसीसे बौधायन बारह वा तीन वर्ष लिखते हैं ॥

मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च–'ब्रह्महादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः' इत्युक्तम् ॥ एवं म्लेच्छीकृतानामपि ॥ यत्तु कश्चिदाह–'पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु । महापातके तु कथं स्यादिति ॥

स स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयं वदन् हृदयशून्य एव ॥ नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति ॥ पुत्रकर्तृकसर्वप्रायश्चित्तादिविप्लवापत्तेः ॥ प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक् ॥"

मदनपारिजात और स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै कि, ब्रह्महत्यारोंका यथायोग्य प्रायश्चित्त करके नारायणबलि करनी, इसीप्रकार जो म्लेच्छ होगये हों उनका भी जानना. जो किसीने यह लिखाहै कि, पुत्रके किये प्रायश्चित्तसे पिताका पापनाश होताहै इसमें प्रमाण नहीं है, आत्महत्यामें तो वाक्यसे रहो पर महापातकमें कैसेहो, ऐसा कहनेवाला ज्ञानशून्य है. कारण कि, उसने स्वयं आत्महत्याके प्रायश्चित्तके संग जातिहत्याका प्रायश्चित्त लिखाहै कोई वाक्य ऐसा नहींहै कि, जातिहत्याका प्रायश्चित्त पुत्र करै, कारण कि, पुत्रके करनेयोग्य सब प्रायश्चित्त वृथा होजायँगे और पूर्वोक्त बौधायनका कथनभी पुत्रको प्रायश्चित्त करनेमें प्रमाण है, यह संक्षेपसे लिखाहै ॥

इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव प्रायाश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम् इति केचित् ॥ मदनपारिजातादिस्वरसोप्येवम् ॥ वस्तुतस्तु–'तदर्हानर्हयोर्वचनेनुपादानादानादविशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम् ॥' 'पतितोदकविधिस्तु : पित्राद्यतिरिक्तविषयः' इत्यपरे ॥

यहभी प्रायश्चित्तयोग्योंके लिये है, प्रायश्चित्तके अयोग्योंको तो जलमात्र दे यह कोई कहते हैं, मदनपारिजात आदिकाआशयभी इसीप्रकार है, सिद्धान्त तो यह है कि, वाक्योंमें प्रायश्चित्तके अयोग्य नहीं पढे, इससे सर्वथा उनका भी नारायणबलि और गयाश्राद्ध करना युक्त है, पतितकी जलक्रिया तो पितासे भिन्नके विषयमें है, यह बात अपर कहते हैं ॥

स यथा हेमाद्रौ ब्राह्मे–"पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति । स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम् ॥ अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि । हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम् ॥ तोयपूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी । उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥ कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वदेः । निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत् ॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां च नान्यथा" इति ॥ इदं च मृताहे कार्यम् ॥ पतितस्य दासी मृताह्नि यदा घटमपवर्जयेदेतावतायमुपचरितो भवतीति मदनरत्ने विष्णूक्तेः ॥ इदं चात्मत्यागिविषयम् ॥

वह विधि इस प्रकार हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जो अपनी दयासे पतितको तृप्त करनेकी इच्छा करै वह सबके संग गमन करनेवाली दासीको बुलावे, और अशुद्ध घडा हाथमें देकर यह कहै कि, हे दासी ! तू शीघ्र जा और तिल मोल ले आ, और जलसे भरे और तिलसहित इस घडेको दक्षिणमुख बैठी बायें पैरसे फेंकदे और पातकीका नाम लेकर वारंवार कहना कि, तू इस जलको पी. इस वाक्यको सुनकर दासी उसी प्रकार करै, ऐसे करनेसे पतितोंकी तृप्ति होती है, और भांति नहीं. यह पतितोदक विधि मरनेके दिन करनी, कारण कि, मदनरत्नमें लिखा है कि, दासी पतितके मरनेदिन चरणसे घडेको औंधादे, इतनेहीसे वह पतित कृतार्थ होजाता है, यह भी आत्मत्यागीके विषयमें है ॥

आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचोदकभाजः स्युरित्युपक्रम्य विष्णुना एतस्याभिधानादिति गौडाः ॥ यत्तु कश्चिदाह यः पतितो घटस्फोटेन बान्धवैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणि क्रियानिषेधवाक्यानि जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः कृतत्वात्तत्पुनः करणाभावादिति ॥

स बन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्तेर्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन् मूर्ख इत्युपेक्षणीयः ॥ नच कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधिर्नेति वाच्यम् ॥

कारण कि, विष्णुने कहाहै आत्मत्यागी जो पतित है वह, जल और अशौचका भागी नहीं इस प्रकरणमें यह वाक्यहै, यह गौड लिखतेहैं युक्त तो यह है कि, यह वाक्य उपलक्षण होनेसे सब पतितोंके निमित्त है, जो किसीने यह लिखाहै कि, जिस पतितका घटस्फोट करदिया फिर उसके और कृत्य करनेका अभाव है ऐसे कहनेवाला मूर्ख उपेक्षा करने योग्यहै, कारण कि, बन्धुओंके त्यागसे जिसका वैराग्य प्राप्त होगया है, और जो प्रायश्चित्त करचुकाहै उसकी क्रिया भी कोई न करैगा, इस मिताक्षरा आदिके विरोधको उसने नहीं देखा है, यदि कोई शंका करै कि, जिसका घटस्फोट कर्म हो उसका फिर संग्रह नहीं सो उचित नहीं ॥

मनुनाऽकृतघटस्फोटस्य त्यागमुक्त्वा–"प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये" इत्युक्तेः । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥ अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादेरब्दान्ते नारायणबलिः ॥ निषेधास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् ॥ केचित्तु नारायणबलौ कृतेप्यन्त्यकर्म सपिण्डनवर्जं कार्यम् ॥ "गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना" इति वचनात् । 'ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते' इति श्राद्धप्रकारोक्तेश्चेत्याहुः ॥ ते हेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्राद्धप्रकारस्य वृद्धिश्राद्धविषयत्वादुपेक्ष्याः ॥

कारण कि, मनुने जिसका घटस्फोट हुआ हो उसके त्यागको कहकर लिखा है कि, प्रायश्चित्त किये पीछे जलसे भरे नये घडेको पवित्र जलके स्थानमें उसी पतितको संग लेकर स्नान करके फेंकदे, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इसका प्रसंग होजायगा. इससे घटस्फोटसे जातिबाह्य किये पिताकी भी नारायणबलि वर्षके अन्तमें करनी पाई, सो चाचा आदिके विषयमें निषेध है यह इसका सिद्धान्त है, कोई तो यह लिखतेहैं कि, नारायणबलि करनेके पीछे भी सपिंडीको त्यागकर अन्तकर्म करै, कारण कि, श्राद्धप्रकरणमें यह लिखाहै कि, और भी यह कथन है कि, गौ ब्राह्मणसे मरे और पतित और निषिद्ध कर्मोंसे मरोंकी सपिण्डी न करै, ब्राह्मण आदिमें मृतक हुए और संन्यासी पिताकी सपिंडी न करै, वेभी इससे उपेक्षा करनेको योग्यहैं कि, हेमाद्रिमें कहे पूर्वोक्त षट्त्रिंशत् मतका इससे विरोध है, और वह निर्मूल होनेसे श्राद्ध प्रकारका वचन वृद्धिश्राद्धके विषयमें जाननेसे उपेक्ष्य है ॥

नारायणबलिनिर्णयः ।

नारायणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुसारेणोच्यते ॥ तत्रादौ क्रियानिबन्धे गारुडे तर्पणमुक्तम्– "कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥ अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव" इति॥ शुक्लैकादश्यां देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये इति संकल्प्य 'ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं च पञ्चकुम्भेषु ॥'

नारायणबलि तो हेमाद्रिके अनुसारसे लिखतेहैं, उसकी आदिमें क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणके वाक्यसे तर्पण लिखाहै कि, पुरुषसूक्तसे वा विष्णुके मन्त्रसे दक्षिणको मुखकर प्रेतको विष्णुरूप स्मरण

करताहुआ तर्पण करै, और कहै कि, आदि अन्तसे रहित शंख चक्र गदाधारी अक्षय पुंडरीकाक्ष जो देवहैं वे प्रेतको मोक्षप्रदान करैं, शुक्लपक्षकी एकादशीको देशकालको कहकर अमुक गोत्र और अमुक नामके दुष्ट मृत्यु और आत्महत्याके दोषनाशार्थ और्ध्वदेहिक कर्ममें संप्रदान (जिसको दियाजाय) की योग्यता सिद्धिके निमित्त नारायणवलि कहताहूं यह संकल्प करके ब्रह्मा विष्णु शिव यम प्रेतको पांच घडोंपर स्थापन करै॥

"विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा। ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत्॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना" इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् नामगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् यज्ञोपवीत्येवामुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाय ते पिण्ड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य तेनैव शङ्खोदकेनाभिषिच्याभ्यर्च्यामुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि, इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तर्पयित्वा एकमामान्नं ब्रह्मादिपञ्चभ्यो दद्यात्॥

सोनेके विष्णु चांदीके ब्रह्मा ताम्रनिर्मित शिवलिंग लोहका यम कुशाका प्रेत यमके कथनानुसार निर्माण करै वा सब प्रतिमा सुवर्णकी बनाकर पुरुषसूक्तसे षोडशोपचार अर्चन करके अग्निका स्थापन करने उपरान्त पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे नारायणके निमित्त हवन करके देवताओंके आगे दक्षिणाग्र कुशाओंपर विष्णुरूप प्रेतका नाम गोत्र उच्चारणकर स्मरण करताहुआ मधु घी तिलसे युक्त दशपिंडोंको सव्य होकर प्रदान करै. अमुक गोत्र अमुक शर्मन् प्रेत विष्णुरूप यह पिंड तुमको प्राप्त हो इसप्रकार देकर कुशा पुरुषसूक्त और यमसूक्तसे पिंडोंका अभिमंत्रण करना चाहिये, और शंखके जलसे छिडक और पूजा करके अमुक नाम अमुक गोत्र विष्णुरूप प्रेतको तृप्त करता हूं यह कहकर पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्रसे तर्पण करके ब्रह्मा आदि पांच देवताओंके निमित्त एक आमान्न (सीधा) देदे॥

मन्त्रस्तु–"ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिंकरः। बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभाङ्गतिम्" इति॥ मिताक्षरायां तु होमबल्यादि नोक्तम्॥ ततः प्रतिदैवतं त्रिविधं फलं शर्करामधुगुडघृतानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ नव सप्त पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुं यमं संपूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा विष्णुयमप्रेतान् स्मरन् विप्रानुपवेश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्यावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वोल्लेखनादि कृत्वान्नशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय सपरिवाराय चतुरः पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाभ्यर्च्याचान्तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलोदकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति॥

यह मन्त्र पढै कि, ब्रह्मा विष्णु महादेव और चरोंसहित यमबलि लेकर प्रेतको शुभ गतिप्रदान करैं, मिताक्षरामें तो हवन बलि आदि नहीं लिखे फिर प्रत्येक देवताको तीन प्रकारके फल शक्कर मधु घृत गुड देकर पिंडोंका पूजनकर नदीमें विसर्जनकर रात्रिमें तो सात वा पांच ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर व्रत और रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल हुये पर विष्णु और यमकी पूजा करके कहै कि, एकोद्दिष्ट विधिसे पांच

श्राद्ध करताहूं विष्णु यम प्रेतका स्मरण करताहुआ पाद्य आवाहन आदि अर्घ्यसे युक्त तृप्तिको पूछ करके और वेदीपर उल्लेखन आदि करके ब्राह्मणोंके भोजनके शेष अन्नसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सानुचर यमके निमित्त चार पिंड देकर प्रेतके नाम गोत्रका स्मरण करके विष्णुके नामसे पांचवां पिंड देकर अर्चा करै, और आचमन कराकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर, और विशेषकर एक प्रेतका स्मरण करके ब्राह्मणोंके संतोष करनेपूर्वक और प्रेतको यह तिलजल प्राप्त हो यह कहलाकर तिलसहित जल प्रदान कराय भोजन करै ॥

अत्र विशेषान्तरं भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥ सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वेह्न्येकभक्तपूर्वं शुक्लपञ्चम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं 'नागमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशङ्खपालकालितयक्षककपिलेतिनामभिः प्रतिमासं संपूज्य पायसेन विप्रान् संभोज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च दत्त्वा नारायणबलिं कुर्यात् ॥ एतन्मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥

इसका अन्य विशेष वर्णन भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धतिमें देखलेना, जो सर्पसे मृतक हुआहो उसके निमित्त वर्षपर्यन्त एक समय भोजन करके शुक्लपंचमीको उपवास व्रत वा रात्रि व्रत करके पिट्ठीके सर्प नागकी प्रतिमहीनोंमें इन नामोंसे पूजा करै कि, अनन्त वासुकी शंख पद्म कंबल कर्कोटक अश्वतर धृतराष्ट्र शंखपाल कालीय तक्षक कपिल नाम हैं, फिर पायससे ब्राह्मणोंको भोजन कराय वर्षके अन्तमें सुवर्णका नाग और प्रत्यक्ष गौ देकर नारायणबलि करै, इसका मूल तो हेमाद्रिमें लिखा है ॥

बौधायनसूत्रे सर्पमृतानां 'नमोस्तु सर्पेभ्यः'[1] इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां 'समुद्राय वयुनाय हुत्वेति' क्रियां कुर्यादिति शेषः ॥ व्यासः ॥ "सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्तवान् ॥ हेमाद्रौ भविष्ये–"पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना" इति ॥

बौधायन सूत्रमें तो यह लिखा है कि, सर्पसे मृतक हुओंके निमित्त "नमोस्तु सर्पेभ्यः" इस मन्त्रसे तीन आहुति देकर और जलसे मृतक हुएकी "समुद्राय वयुनाय" इस मन्त्रसे होम करके मन्त्र क्रिया करै, व्यासने लिखाहै कि, सुवर्णके भारसे नाग और गौको निर्माणकर विधिसे व्यासको देकर पिताके ऋणसे उरिण होता है. हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, पंचमीके दिन एक सोनेका नाग बनावै, दूध और घीके पात्रमें रखकर उसको अर्चा करके ब्राह्मणको दे यह नागदष्ट मनुष्यका प्रायश्चित्त शंभुने लिखा है ॥

अपरार्के स्मृत्यन्तरेपि–"तदैव शुद्ध्यति प्रेतो नारायणबलौ कृते । यो ददाति क्रियापिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः ॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं त्र्यहमेव न संशयः । विष्णुश्राद्धसमाप्तौ तु त्रयोदश्यां दिनत्रयम् ॥ आशौचं पिण्डदः कुर्यान्न तु तद्बन्धुगोत्रजाः । यस्य वै मृत्युकाले तु व्युच्छिन्ना संततिर्भवेत् ॥ स वसेन्नरके नित्यं पङ्कमग्नः करी यथा" इत्युपक्रम्य–'बलिं नारायणं कुर्यात्तस्योद्देशेन भक्तिमान्' इति गारुडात्करपुत्रस्यापि पत्न्याद्यैः कार्य इत्युक्तं देवयाज्ञिकेन ॥

---

१ नमास्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु येन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ य० ॥

अपरार्कमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, नारायणबलि संपादन करतेही प्रेत शुद्ध होताहै, जो पुत्र उसके निमित्त पिंड और क्रियाको करै उसको तीन दिन अशौच लिखा है, त्रयोदशीके दिन विष्णुश्राद्धकी पूर्ति होनेपर पिंड देनेवालेको तीन दिन अशौच करना चाहिये. उसके बन्धु और सगोत्री न करैं. मरण-कालमें जिसके संतति न हो वह नरकमें इसप्रकार बसताहै, जैसे कीचमें मग्न हुआ हाथी. इस प्रकरणमें गरुडकी उक्तिसे देवयाज्ञिकने लिखाहै कि, भक्तिमान् पुरुषको उसके निमित्त नारायणबलि करनी चाहिये. इस प्रकार अपुत्रकी पत्नी आदिको उसकी क्रिया करनी चाहिये ॥

अथ विधानादाशौचाभावः ।

यथा यतियुद्धमृतादिषु–"त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्दाहादिकाः क्रियाः । यतेः किंचिन्न कर्तव्यं नचान्येषां करोति सः" इति ब्राह्मात् ॥ उशनाः–"एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥ सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥"

अब विधिद्वारा अशौचके अभावको कथन करतेहैं जिस प्रकार संन्यासी और युद्धमें मृतक हुओंको अशौच नहीं लगताहै कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, तीन आश्रमोंकी दाहआदि क्रिया करे, और संन्यासीके निमित्त कुछ भी न करै, कारण कि, यह भी किसीका नहीं करताहै. उशनाने लिखा है कि, संन्यासियोंका एकोद्दिष्ट सदा न करना चाहिये. ग्यारहवें दिन पार्वण करै, पुत्रआदिको उनकी सपिंडी करनेका विधान नहीं, कारण कि, त्रिदण्डके ग्रहणसेही वे प्रेत नहीं होतेहैं ॥

भिक्षुप्रेतसंस्कारः ।

अथ तत्संस्कारं वक्ष्यामः ॥ दत्तात्रेयः–"एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रिया । न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥" वार्षिकादिति पूर्वभावि मासिकादिनिषेधो नतु दर्शादेः ॥ 'संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि' इति वायवीयोक्तेः ॥

संन्यासीका संस्कार आगे लिखेंगे. दत्तात्रेयने लिखाहै कि, वार्षिक श्राद्धके सिवाय ब्रह्मरूप भिक्षुके निमित्त एकोद्दिष्ट जल पिंड अशौच और प्रेतकृत्य न करै, वार्षिक श्राद्धसे प्रथम होनेवाले मासिक श्राद्धोंका निषेध कहाहै अमावस्याके श्राद्धका नहीं कहा, कारण कि, वायुपुराणमें लिखा है कि, संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध पुत्र करै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये प्रजापतिः–"अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः ॥" एषु सपिण्डनादिनिषेधानुवादेन पार्वणोक्तेस्तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते ॥ 'न गिरागिरेति ब्रूयादैरंकृत्वोद्गेयम्' इतिवत् ॥ इदं वार्षिकादिविधानं च त्रिदण्डिनामेव । एकदण्डिपरमहंसादीनां तु न किमपि कार्यम् । पूर्वोक्तोशनोवाक्ये त्रिदण्डिग्रहणादिति शूलपाण्यादयो गौडाः ॥ त्रिदण्डिशब्देन मनोदण्डादिदण्डत्रयोक्तेः ॥ 'यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते' इति स्मृतेः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रजापतिका वाक्य है कि, ग्यारहवें दिन पार्वण करै, और पुत्रआदिको उसकी सपिंडी न करनी चाहिये. इन वाक्योंमें सपिंडीके अनुवादसे पार्वण करना लिखाहै. इस सपिंडीके स्थानमें पार्वणश्राद्ध जानना. जैसे वाणीसे २ ऐसे न उच्चार करै किन्तु वाणीको उच्चारण करके गावै. यह वार्षिक आदिका विधान त्रिदंडीके विषयमेंही जानना, एक दंडी परमहंसआदिके निमित्त कुछ भी न करै,

कारण कि, पूर्वोक्त उशनाके कथनमें त्रिदंडीका ग्रहण है, यह शूलपाणि आदि गौडोंका कथन है और त्रिदंडी पदसे मनोदंड आदि तीन दंड ग्रहण किये हैं, कारण कि, यह स्मृतिमें कहा है कि, जिसके पास ये दंड विहित हैं वही त्रिदंडी कहाता है ॥

बौधायनः-'नारायणबलिश्चास्य कर्तव्यो द्वादशेऽहनि ॥' अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः॥ तं च स एवाह-''कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् । अग्नौ कृत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान्साधून्वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ संभोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणां च निवेदयेत् । त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथातथाभ्यर्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः । दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ वस्त्रालंकरणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् । उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवः स्वः स्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद्बलित्रयम् । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ तत्फलं लभते देव यः करोति यतिक्रियाम् ॥''

बौधायनने कहा है कि, इसकी नारायणबलि बारहवें दिन करनी चाहिये इसका पार्वणके संग समुच्चय समझना वह भी उसनेही लिखाहै कि, विष्णुकी महापूजा करने उपरांत खीर निवेदन करै. और सावधान चित्त होकर महाव्याहृतियोंसे उसे अग्निमें होम करै. संन्यासी गृहस्थ साधु महात्माओंको न्यूनसे न्यून बारह निमन्त्रण देकर और बारह नामोंसे गंध पुष्प आदिसे अर्चाकर हव्य अन्नसे जिमाकर दक्षिणा दे और तेरहवें आत्मसंज्ञक जितेंद्रिय ब्राह्मण विष्णुरूपको यथायोग्य पाद्यआदिसे पूजन कर पुरुषसूक्तका पाठकर क्रमसे गंध पुष्प आदिसे और शक्तिके अनुसार वस्त्र अलंकार देने और उस ब्राह्मणके उच्छिष्टके निकट भूमिमें कुशा बिछाय, भूः भुवः स्वः स्वधासे युक्त इन तीनोंसे तीन बलि उसके निमित्त दे, जो मनुष्य संन्यासीकी इस क्रियाको करताहै उसको सहस्र अश्वमेधके और सौ वाजपेयके यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥

शौनकस्तु-''शौनकोहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम् । चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वान्यसाधनैः ॥ जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकांक्षिणाम् ॥ पुण्यायाघक्षयार्थाय द्वादशेहनि कारयेत् ॥ द्वादश्यां श्रवणेऽब्दान्ते पञ्चम्यां पर्वणोस्तु वा'' इत्युक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वं विधिमुक्त्वा अतो देवेति षड्भिः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादिद्वादशनामभिस्तद्रूपिणे पित्रे द्वादशविप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान्दद्यादित्यधिकमाह ॥ युद्धमृते तु प्रागुक्तम् ॥ कृतजीवच्छ्राद्धमृते सपिण्डैराशौचादि कार्यं न वा ॥

शौनकने यह लिखाहै कि, मैं शौनक श्रेष्ठ नारायणबलिको लिखताहूं, चांडाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली दाढवाले, पशु, रज्जु, शस्त्र, विष, पत्थर इनसे मृतक हुए, देशान्तरमें वा साधनोंसे मरोंका जीवत् श्राद्ध और छोटोंका श्राद्ध, और संन्यासी योगी और दूसरे मोक्षके अभिलाषियोंके निमित्त पुण्य और अघक्षयके निमित्त बारहवें दिन करै, वा वर्षके उपरांत श्रवणयुक्त द्वादशीको वा पञ्चमीको पार्वण करै. यह कहकर और पूर्वोक्त सब विधिको कहकर 'अतोदेव०' इन छः मन्त्रोंसे और पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्र पाठकर पायसका होम करके, केशवआदि बारह नामोंसे विष्णुरूप पिताके निमित्त बारह

ब्राह्मणोंको भोजन करायकर उन्हीं नामोंसे बारह पिंडदे यह अधिक लिखाहै. युद्धमें मृतकका तो पूर्व लिखाहै, जिसका जीवतेमें श्राद्ध करदियाहो वह मृतक हो तो सपिंड उसके अशौच आदिको करै वा न करै ॥

तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे–"मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम् । कालं गते द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते ॥" जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः–"नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा । बान्धवेपि मृते तस्य नैवाशौचं विधीयते ॥ सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण शुद्धयति ॥" एतद्योगिविषयम् ॥

यही हेमाद्रिमें लिंगपुराणके वाक्यसे लिखाहै कारण कि, जिससे वह स्वयं जीवन्मुक्त है अतः इस कारण उसके मृतक होनेपर अन्त्यक्रिया करै वा न करै ऐसे समय मृत्यु होनेपर ऐसे द्विजको भूमिमें गाडदे वा जलादे, और सम्पूर्ण पुत्रका कार्य करनेका दोष नहीं. जीवतेहुएका भी वहांही विशेष लिखाहै कि, नित्य नैमित्त कर्मको करै, वा त्यागदे, उसकी मृत्युसे बांधवोंको अशौच और सूतक नहीं है, केवल स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, यह योगीके विषयमें जानना ॥

'योगमार्गरतोपि च' इति तस्याप्युक्तेः ॥ तथाऽऽहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पित्रादीनामाशौचं संध्यादिकर्मलोपश्च नास्ति ॥ "अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति" इति स्मृतेः ॥ आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः ॥ संस्काराङ्गं च भिन्नो दशाह इति धूर्तस्वामी रामाण्डारश्च ॥ तच्चिन्त्यम् ॥

कारण कि 'योगमार्गरतोऽपि च' ऐसा कहाहै कि, आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसकी अस्थियोंके दाहसे प्रथम पुत्र आदिको अशौच और सन्ध्या आदिके कर्मका लोप नहीं होताहै कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, अग्निहोत्रीसे पृथक्के मरनेमें द्विजातियोंमें अशौचआदि लगताहै, और अग्निहोत्री विदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसकी अस्थियोंके दाहसे प्रथम पुत्र आदिको अशौच और सन्ध्याआदि कर्मको लोप नहीं होता है, कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, अग्निहोत्रीसे पृथक्के मरनेमें द्विजातियोंमें अशौचआदि लगता है और अग्निहोत्री विदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो दाहसे अशौचआदि जानना चाहिये. आहिताग्निका दाहसे प्रथम भी दशदिनका और संस्कारका अंग अशौच दशदिनका पृथक् होताहै यह धूर्तस्वामी और रामांडारका कथन है सो अप्रमाण है ॥

मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च ॥ एतत्प्रागुक्तम् ॥ अत्र देहस्यैव संभवे दाहः "आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम् ॥ विधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे–"विदेशमरणेस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा । दाहयेदूर्हिषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थ्नामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयावृता । दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥" हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–"कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं दर्भैस्त्रिशतषष्टिभिः । पालाशिभिः समिद्भिर्वा संख्या चैव प्रकीर्तिता ॥" भविष्ये–"चत्वारिंशच्छिरस्थाने ग्रीवायां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे विंशतिं दद्यात्त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघयोः ॥ पादाङ्गुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ॥'

कारण कि, प्रमाण एकही है और वाक्योंका विरोध भी पडता है, यह कथन लिखआये हैं, यहां देह मिले तो दाह है, आहिताग्निकी विदेशमें मृत्यु होजाय तो देहको रख ले, कारण कि, जबतक उसका ही अग्निसे दाह नहीं होता तबतक गति नहीं होती यह ब्राह्मपुराणका वाक्य है, वह न होसके तो छन्दोगपरिशिष्टमें वर्णन किया है कि, विदेशमें मृत्यु हो तो अस्थियोंको लाकर और घृत लगाय कुशाओंसे ढककर दग्ध करावे, और पात्रोंका त्यागादि पूर्वके समान करै. अस्थि न मिले तो पूर्व प्रकारसे अस्थियोंकी संख्याके समान पत्तोंको दाह करै. उसी दिनसे सूतक लगताहै. हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखाहै कि, कुशाओंका प्रेत बनावे, और उसमें तीनसौ साठ कुशा हों, और इतनी ही संख्या ढांककी समिधोंकी है. भविष्यपुराणका वाक्य है कि, शिरके स्थानमें चालीस, ग्रीवामें दश, भुजाओंमें सौ, छातीमें वीस, पेटमें वीस, कटिमें तीस, जंघाओंमें सौ, जानु और जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दश लगावे यह प्रेतकी कल्पना है ॥

मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—"शिरस्यर्शात्यर्धं दद्याद् ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैकशतं दद्याद्दश चैवाङ्गुलीषु च ॥ उरसि त्रिंशतं दद्यात्त्रिंशतिं जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयारष्टार्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चैकशतं दद्यात्त्रिंशतं जंघयोर्द्वयोः । पादांगुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥ मस्तके नारिकेरं तु अलाबुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपर्दौ द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु अन्त्रस्थाने विनिक्षिपेत् । मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्रे तु पारदं दद्यात्पुरीषे पित्तलं तथा । संधिषु तिलपिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्वचास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्जर्जके देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्याद्वृन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः" इति क्रियानिबन्धे गारुडेप्येवमुक्त्वान्यदपि—"घृतं नाभ्यां तु देयं स्यात्कौपीने च त्रपु स्मृतम् । मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुंकुमेन विलेपनम् । सिन्दूरं नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्यमहारकैः । सर्वौषधियुतं कृत्वा पूजां चैव यथोदिताम् ॥" इदं निरग्नेरपि । तत्रैव वृद्धमनुः—"प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद् द्वादशाब्दिकः । प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥"

मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वका कथनहै कि, शिरमें चालीस, ग्रीवामें दश, बांहोंमें सौ, अंगुलियोंमें दश, छातीमें तीस, उदरमें तीस, वृषण (अण्डकोष) में छः, लिंगमें चार, जंघाओंमें सौ, और छोटी जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दो २ दे यह प्रेतकी कल्पना (बनाना) है. मस्तकपर नारियल, तालूपर तूंबी, मुखमें पंचरत्न, जिह्वामें केलेकी फली, नेत्रोंमें दो कौडी, नासिकामें काले तिलका फूल, कानोंमें ब्राह्मीके पत्ते, केशोंमें बडके अंकुर, कमलोंकी नाली आंतोंमें रक्खे, वसा (चर्बी) के स्थानमें मिट्टी, धातुके स्थानमें हरताल गन्धक, वीर्यमें पारा, विष्टामें पित्तल, सन्धियोंमें तिनकी खल, मांसमें जौकी मिट्टी, रुधिरमें शहत, त्वचामें मृगछाला, स्तनोंमें चौटली, नासिकामें कमल, नाभिमें कमल, वृषणोंमें बैंगन लिंगमें लालमूली दे और ढकनेके निमित्त दुपट्टा, गोमूत्र गोबर गन्ध सर्वौषधी आदिको सर्वत्र लगावे. क्रियानिबन्ध और गरुडमें इसप्रकार लिखकर और भी कहाहै कि, नाभिमें घी, कौपीनमें लाख, स्तनोंमें मोती, मस्तकपर कुंकुम और नेत्रके कोणोंमें सिंदूर लगाना और ताम्बूलआदि सामग्री और सर्वौषधिसे युक्त

करके विधिसे पूजा करै, यह निरग्निके निमित्त भी है, वहांही वृद्धमनुने लिखाहै कि, यदि परदेशमें गयेको बारहवर्ष बीतगये हों तो तेरहवें वर्षमें प्रेतकर्म करै ॥

बृहस्पतिः-"यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्द्वादशवत्सरात् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणा ॥" भविष्ये-"पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः । ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥ कुर्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः ॥ तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकर्माणि कारयेत् ।" द्वादशाब्दप्रतीक्षा पितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम् ॥

बृहस्पतिने लिखाहै कि, बारहवर्षतक जिसकी वार्ता न सुने उसका कुशाके पुत्तलसे दाहका निश्चय करै. भविष्यपुराणमें भी लिखाहै कि, जिसके पिताकी परदेशसे न वार्ता सुनाई आवे न वह आवे पन्द्रहवर्षके पीछे उसका पुतला बनाकर यथोक्तविधिसे संस्कार करै, और दाहआदि प्रेतकर्म करावै, बारहवर्षकी वाट देखना पितासे भिन्नके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखाहै ॥

गृह्यकारिकायां तु-"तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया । ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता । द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता । चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत् कृच्छ्राणि वा सुतैः ॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा कार्याः शौचादिकाः क्रियाः" इत्युक्तम् ॥

गृह्यकारिकामें तो वह प्रथम अवस्थाका होय तो वीसवर्षके उपरान्त और मध्यम अवस्थामें पन्द्रहवर्षके उपरान्त और उत्तर अवस्थामें बारहवर्षके उपरान्त क्रिया करै, तीन चांद्रायण वा तीस कृच्छ्र पुत्र करके कुशाओंका पुतला निर्माण कराय और दग्धकरके शौचआदि क्रिया करनी यह लिखाहै ॥

पराशरः-"देशान्तरगतो नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ।" इदं मासज्ञाने ॥ तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् ॥ अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम् ॥ "अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम् । तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि । वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णासूत्रेण बद्ध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः ॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इति ब्राह्मोक्तेः ॥

पराशरने कहाहै कि, देशान्तरमें जाकर मराहो और तिथिका ज्ञान न होय तो कृष्णपक्षकी अष्टमी अमावस्या एकादशीमें जल पिंडदान और श्राद्ध करना चाहिये, यह मासके जाननेपर है, वहां आहिताग्निका पूर्ण अशौच और अनाहिताग्निका तीनदिन लगताहै और अनाहिताग्निको शरीरको गृह्यअग्निसे स्वयं दग्ध करै, वह न मिले तो पलाशोंके डांठलोंका पुतला निर्माण करै, और काली मृगछालासे उसे आच्छादित करै ऊनका सूत लपेटकर जलमें पिसे जौसे लीपे और अग्निसे दाह करै और बांधव इसप्रकार कहैं कि, परमेश्वरके निमित्त यह स्वाहाहै, इसप्रकार पत्तोंके मृतकको जलाकर तीनदिन अशौच लगताहै. यह ब्रह्मपुराणमें लिखाहै ॥

इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे तत्र 'प्रोषिते कालशेषः स्यात्' इत्युक्तेः ॥ किंतु तदूर्ध्वम् ॥ तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहाद्येव ॥ गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् ॥ पत्नी मृतौ भर्तुश्चैवं सपत्न्योश्चैवमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ अन्यसपिण्डानां तु सर्वत्र

पर्णशरदाहे त्रिरात्रम् ॥ तदाहाङ्गिराः-'देशान्तरमृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथंचन ॥' गृहीतमितिशेषः ॥ 'कालात्ययेपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम्' इति । स्मृत्यर्थसारे तु-'गृहीताशौचानां स्नानमात्रमुक्तम् ॥' बह्वृचपरिशिष्टेपि ॥

यह त्रिरात्र दशदिनके मध्यमें होय तो नहीं है, दशाहमें दाह होय तो परदेशीकी मृत्युमें कालका शेष लिखाहै. किन्तु वह दशदिनके उपरान्त जानना. वहांभी भार्या वा पुत्रने प्रथम अशौच न माना होय तो दशाह आदिही होताहै, और मानलिया हो तो तीन दिन इसीप्रकार पत्नीके मरनेमें पतिको है, कारण कि, सपत्नियोंको इसी प्रकार है, यह स्मृत्यर्थसारमें कहाहै. और सपिंडोंको तो पर्णशरदाहमें सब स्थानमें तीन दिन होताहै. यही अंगिराने लिखाहै कि, देशान्तरमें मृतक हुएका सुनकर कदाचित् अशौच नहीं लगता, समय बीतनेपरभी दाहके समयमें तीन दिन अशौच करै. स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै कि, जिन्होंने अशौच मानलियाहो उनको स्नानमात्र करना वह बह्वृचपरिशिष्टमेंभी इसीप्रकार लिखाहै ॥

अथातीतसंस्कारः ।

स चेदन्तर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यादन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः सर्वमाशौचम् । गृहीताशौचयोः कर्माङ्गमिति त्रिरात्रम् ॥ षडशीतावप्येवम् ॥ विश्वादर्शे तु 'प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्' इत्युक्तम् ॥ द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः ॥

अब अतीतका संस्कार वर्णन करतेहैं. यदि वह संस्कार दशदिनके उपरान्त होय तो वहांही सम्पूर्णको करदे, इसके उपरान्त आहिताग्निको दाहसे सम्पूर्ण अशौच है, और उसका कर्म कालके अनुसार करना चाहिये. अन्योंमें तो जिन स्वामी भार्याने प्रथम अशौच न मानलियाहो, उनको कर्मका अंग तीनदिन अशौच लगताहै, षडशीतिमें भी इसीप्रकार लिखाहै. विश्वादर्श ग्रन्थमें तो, प्रतिकृतिके दाह करनेमें अग्नि देनेसे तीनदिन अशौच लिखाहै. बारह वर्ष आदि प्रतीक्षाके उपरान्त दाह होय तो पुत्र आदि सबको तीन दिन लगता है. यह कल्पतरु दिवोदास आदिका कथन है ॥

अथ प्रेतसंस्कारे कालः ।

हेमाद्रौ गार्ग्यः-"प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् । आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु संभवे ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ॥ प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनत्रयम् ॥" वाराहे-"चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपात वैधृतौ परिघे तथा ॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषण जन्मताराज्ञये तथा ॥" जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः । भारते-"नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेये च भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ॥"

अब प्रेतके संस्कारकालको लिखतेहैं. हेमाद्रिमें गार्ग्यका कथन है कि, प्रत्यक्ष मृतकके संस्कारमें दिनको न शोधै, अशौचके मध्यमें सम्भव होसकै तो दिनको शोधै, अशौचकी निवृत्ति हुये पर फिर मृतकका संस्कार किया जाय तो दिन शोधकरही लेना. यदि वर्षदिनसे उपरान्त हो, प्रेतकर्मोंको करै, उसमें उत्तरायण उत्तम है और उसमें भी कृष्णपक्षके तीनदिन त्यागदे. वाराहपुराणका वाक्य है कि, चतुर्थ, अष्टम,

द्वादश चन्द्रमा त्यागदे, और व्यतीपात, वैधृति, परिघ, विष्टि, करण और शनिवार विशेषकर त्रयोदशी तिथि जन्मका दशवां और उनइसवां इन तीन जन्मके तारोंमें प्रेतकर्म न करना चाहिये. महाभारतमें कहा है कि, जिसमें उत्पन्न हो उस नक्षत्रमें मनुष्य न करै, और प्रोष्ठपद कृत्तिकामें हे भारत! न करै, और दारुणसंज्ञक नक्षत्र और प्रत्यरितारेमें वर्जदे ॥

काश्यपः–"भरण्यार्द्रामघाश्लेषामूलद्विचरणानि च । प्रेतकृत्येतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥" ज्योतिर्नारदः–"चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यङ्घ्रिभं विषमाऽङ्घ्रिभम् ॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कुलनाशनम् ॥" अस्यापवादमाह तत्रैव वैजवापः–"प्रेतस्य साक्षाद्दग्धस्य प्राप्ते त्वेकादशेहनि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किंचन ॥ युगमन्वादिसंक्रांतिदर्शे प्रेतक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥"

काश्यपका वाक्य है कि, भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, मूलके दो चरण और धनिष्ठा आदि पञ्चक ये प्रेतकर्ममें निषिद्ध हैं. दोनों पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसु, दोनों पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, विशाखा और दो चरणवाले नक्षत्र ये भी किञ्चित् निषिद्ध हैं, यथासम्भव इनको भी त्यागदे. ज्योतिर्नारदका कथन है कि, चौदश नंदा, भद्रा तिथि, शुक्र और मंगलवार, गुरु शुक्रके अस्त, दोचरणके और विषमचरणके नक्षत्र, और शुक्लपक्षको त्यागकर फिर दाह करना उत्तम है. धनिष्ठाके उत्तरार्द्धसे पांचनक्षत्र, जन्मके तीन नक्षत्र, रेवती रोहिणीमें दाहसे कुलक्षय होताहै, इसका अपवाद उसीस्थलीमें वैजवापने लिखाहै कि, साक्षात् दाह किये प्रेतके ग्यारहवें दिन नक्षत्रतिथिवारआदि कुछ न शोधै. युगादि मन्वादि संक्रांति अमावस्यामें प्रेतक्रिया यदि दैवसे आपडै तो वहां दिन नक्षत्र आदिका शोधन न करै ॥

विश्वप्रकाशेपि–"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे । नातीतः पितृमेधः स्याद्गयां गोदावरीं विना ॥" दानमपि तत्रैवोक्तम्–"भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपादर्क्षे हिरण्यदः । वारेषु तत्तद्वर्णं तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥" इत्यलं प्रसङ्गेन ॥

विश्वप्रकाशमें कहा है कि, गुरु और शुक्रका अस्त, पौष मलमासमें गया, गोदावरीको त्यागकर अतीतप्रेतका संस्कार नहीं होता. दानभी वहांही लिखाहै कि, भद्रामें करै तो भूमिका दान, त्रिपाद नक्षत्रमें सुवर्णदान, वारोंमें तिस २ वर्णका वस्त्रदान, धनिष्ठा आदि पंचकोंमें मृतक हो तो पंचरत्नका दान करै, इक्यासी ८१ पल कांसी उससे आधी वा उससे भी आधी वा नौ छः तीन पल कांसी ब्राह्मणको शक्तिसे दान करै, इस अप्रसंगसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥

हेमाद्रौ वृद्धमनुः–"अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदेहिकम् । प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥ जीवन्यदि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्य तम् ॥ उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवास्य तु । स्नात्वोद्वहेत

तां भार्यामन्यां वा तदभावतः । अग्नीनाधाय विधिवद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् । अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ॥ इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः ॥''

हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखाहै कि, जिसकी मृत्यु न हुई हो और मृत्यु सुनकर उसका और्ध्वदेहिक कर दिया हो वह प्रायश्चित्त करके अग्निका आधान करै. यदि वह जीवित आजाय तो घीके बडेमें उसे मग्नकर और निकालकर जातकर्म आदि करै, उसकी बारहदिनतक ब्रह्मचर्या वा तीनदिन ब्रह्मचर्या करै, फिर स्नान करके दूसरी स्त्रीको वा उसको ही: विवाहै, पीछे विधिसे अग्निस्थापन करके व्रात्यस्तोमयज्ञ करना चाहिये, अथवा इन्द्राग्निके निमित्त पशुयज्ञ करना चाहिये, पर्वतमें जाकर आयुष्मतीनामक यज्ञ और दूसरेयज्ञोंको करै ॥

अनाहिताग्नेस्तु चरुः ॥ मृतवार्ताश्रवणे त्वाश्वलायनः-'सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः' इति ॥ यस्य तु जीवत एव मृतिवार्तां श्रुत्वा स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव भर्तुर्मरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । प्रमात्वस्य गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् ॥ तन्न ॥ मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेऽतीतानागतयोरपि तत्त्वापत्तेः । भर्तुर्वैधदाहाभावेन तस्याः सहगमनाभावाच्च ॥ तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरणस्यैव निमित्तत्वम् ॥ नचात्र तदस्ति ॥ परं काम्यं मरणमस्तु ॥ अत आत्महननदोषोस्तीति तातपादाः ॥

अनाहिताग्निका तो मृतहुएकी वार्ता सुननेपर चरु निर्माण करै, यह आश्वलायनने लिख है. और जीवते जी जिसमें मृतक शब्द हो उसके निमित्त गोदान करै. जिसकी जीतेहुयेकी मृतवार्ताको सुनकर स्त्रीने सहगमन (सतीहोना) कियाहो तब तो वह स्वधापूर्वक है, कारण कि, स्वामीके मरणका ज्ञानही उसका निमित्त है, प्रमाणका खोज करना, तो गौरवसे युक्त नहीं है, यह किन्हीका कथन है, सो उचित नहीं, कारण कि, यदि मरण ज्ञानको निमित्त मानोगे तो भूत और भविष्यत्मरणमें भी सतीहोना प्राप्त होगा और जब स्वामीका विधिसे दाह नहीं है, तब उसका सतीहोना भी असंभव है, इससे अशौचके तुल्य ज्ञात मरणही वहां निमित्त कारण है, सो वहां है ही नहीं, होय तो इच्छित मरण हो इससे आत्महत्याका दोष है, यह हमारे पूज्यपिताजीने कहाहै ॥

सर्पसंस्कारविधिः ।

तथा सर्पसंस्कारे कृते त्रिरात्रमाशौचं तद्विधिं चाह शौनकः-''अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधिमुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥ कृतसर्पवधो विप्रः पूर्वजन्मनि वा यदि । वधं प्रख्यापयेत्पापी चरेत्कृच्छ्रांश्चतुर्दश ॥ विप्राय लोहदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ॥'' मूल्यमाह-''निष्कत्रयं द्विनिष्कं वा निष्कमेकं कनीयसम् । अनुमत्यादिकर्तॄणां निष्कमर्धं तदर्धकम् ॥ '' इदं स्वर्णरूप्ययोः शक्त्या ज्ञेयम् ॥

ऐसेही सर्पके संस्कार करनेमेंभी तीनदिनका अशौच लगता है, उसकी विधि शौनकने इसीप्रकार लिखी है , अब सर्पसंस्कारका श्रेष्ठ विधान वर्णन करतेहैं, अमावस्या पूर्णिमा पंचमीके दिन सर्पसंस्कार करै, जिस ब्राह्मणने पूर्वजन्ममें सर्पका वध किया हो, वह पापी उस मारणको प्रगट करके चौदह कृच्छ्रव्रत करै, और ब्राह्मणके निमित्त लोहेका दंड वा उसका मूल्य देना चाहिये, याज्ञवल्क्यने भी कहा है कि, सर्पके मारनेमें लोहेका दण्ड देना, मूल्य यह लिखा है कि, तीन वा दो निष्क वा एक निष्क आधा वा चौथाई शक्तिसे चांदी वा सुवर्ण देने ॥

संस्कारमाह "प्रियङ्गुव्रीहिगोधूमतिलपिष्टेन वा पुनः । कृत्वा सर्पाकृतिं शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् ॥ एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समासतः ॥ वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः संपूज्य च हरेद्बहिः । कुर्यात्संस्कारसंकल्पं प्राणायामपुरःसरम् ॥ यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म तु । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य समिदाधानमाचरेत् ॥ ततोऽग्नेरग्निदिग्भागे भूमिं संप्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं कृत्वाथ संस्तीर्य कुशैराग्नेयकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृत्वेध्माधानमावारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः । स्रुवेण जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पास्ये जुहुयादाज्यं व्याहृत्या च समग्रया । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥ चमसस्थैर्जलैः सर्पं व्याहृत्याभ्युक्ष्य पाणिना । अग्ने रक्षाण इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥ उपतिष्ठेद्दह्यमानं नमोस्तु सर्पमन्त्रतः । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥ पूर्वजन्मनि वा सर्प तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । क्षीराज्येन ततश्चाग्निं प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः ॥ नास्थिसंचयनं कुर्यात् स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् । ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते ॥ सचैलं तु चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा विप्रान् समर्चयेत् ॥ सर्पोनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च ॥ कालिकः शंखपालश्च भूधरश्चेति नामभिः । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद्द्विजान् ॥ घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजानष्टौ तु भोजयेत् । एवंकृते विधानेन सर्पसंस्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥" इति सर्पसंस्कारः ॥

संस्कार यह लिखा है कि, कांगनी, व्रीहि, गोधूम वा तिलकी खलसे सर्पकी मूर्ति बनाय और छाजमें रखकर सर्पकी स्तुति करै कि, हे पहिले मरा सर्प तू आ और इस मिट्टीमें प्रवेश कर मैं संस्कारके निमित्त संक्षेपसे भक्तिपूर्वक तेरी प्रार्थना करता हूँ. वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध आदिसे पूजकर और उसे बाहिर लेजाकर प्राणायामपूर्वक संस्कार करै, फिर संकल्प करै, यह संस्कार सव्य होकर करना चाहिये लौकिक अग्निको स्थापन करके समिधा रक्खे, फिर अग्निसे अग्निकोणमें अग्निको छिडककर चिता बनावे, अग्निकोणको अग्रभागवाली कुशा बिछाकर चितामें अग्नि स्थापन कर, जलसे छिडक पूजा करै. फिर इंधन रखकर आघार और चक्षुषी आहुति प्रदान कर बुद्धिमान् यत्नसे सर्पको लेकर चितामें रक्खे, फिर स्रुवसे तीनों व्याहृति पढकर अग्निमें घृतकी आहुति दे, सर्पके मुखमें सब व्याहृतियोंके घृतका होम करै और उसके देहमें स्रुवेसे घृतका शेष सींचे. चमसके जलोंसे सर्पको सींचकर हाथसे स्पर्श करके 'अग्नेरक्षण' इस मंत्रसे सर्पको अग्नि दे, जब प्रज्वलित होने लगे तब 'नमोस्तु सर्पेभ्यः०' इस मंत्रसे प्रार्थना करै कि, हे सर्प ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने पूर्वजन्ममें सर्पका वध किया हो तो उस सबको तू क्षमा करना. दूध और घृतसे व्याहृति पढै; जलोंसे अग्नि छिडके और फिर अस्थि संचयन न करै, और स्नान करके घरको आगमन करै, ब्रह्मचर्य आदि करै, और इसका तीन दिन अशौच करना चाहिये, चौथे दिन सचैल स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करै, और सर्प, अनन्त, शेष, कपिल, नाग, कालिक, शंखपाल, भूधर इन आठ नामोंसे गंध पुष्प धूप दीप आदिसे ब्राह्मणोंकी अर्चा करै. घृत, दुग्ध, भक्ष्योंसे आठ ब्राह्मण जिमावै, इस विधिसे संस्कार करनेसे सर्पकी हत्यासे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं, इति सर्पसंस्कारः ॥

जीवतोऽन्त्यकर्माशौचं च ।

क्वचित्तु जीवतोप्यन्त्यकर्माशौचं च कार्यम् ॥ यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य

घटस्फोटे–"पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्तदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ।" इति मनूक्तेः ॥

कहीं तो जीवित हुयेके भी अन्तकर्मका अशौच करना लिखाहै, जैसे प्रायश्चित्तकी इच्छा करते हुएके घटस्फोटमें मनुने लिखाहै कि, बांधवोंसहित सपिंड रिक्ताआदि निन्दित तिथि दिनमें सायाह्नके समय ज्ञाति ऋत्विक् गुरुके निकट जलसे भरे घटको दासी इसप्रकार फैंकदे जैसे प्रेतके निमित्त डालतेहैं, बांधवोंसे सहित एक दिन रात बैठे रहै, और अशौच नहीं लगता ॥

निन्दिते रिक्तादौ अपरार्के वसिष्ठोपि–'वेदविप्लावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसङ्करादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोसवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापः पूर्णपात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशाज्ञातयोन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयन्तः' इति ॥ उत्तमवर्णा ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्तस्मात्पतिता ब्रह्महादयः । अपात्रसङ्करः कुत्सितपात्रसमूहः । प्रवृत्ताग्राः छिन्नाग्राः । स्वैरं यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः । अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात्प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कः ॥

अपरार्कमें वसिष्ठने लिखाहै कि, वेदके नाशक शूद्रको यज्ञ करानेवाले जो विप्रआदि वर्णोंके संघट्टसे पतित होगयेहैं, उनके पात्रका दान कुत्सित पात्रोंमेंसे करै, अर्थात् निंदित पात्रोंमेंसे एक पात्र उनको दे. असवर्ण भार्याका पुत्र वा असवर्ण बन्धु उस पात्रको लेकर बाँये पगसे अग्रभागसे छिन्न हुई वा लाल कुशा बिछाकर जलसे पूर्ण उस पात्रको पतितके निमित्त दान करै, उस पात्रके लेजानेवालेको बालोंको खोलकर सब जातिके मनुष्य छुए फिर अपसव्य यथेच्छ घर आवै, यह करने उपरान्त उसके संग धर्मआदि व्यवहार करै, न करै तो उसके तुल्यही होते हैं. इस वाक्यके सामर्थ्यसे पात्र नियतसे प्रथम पतित ज्ञातियोंको धर्ममें अधिकार है नहीं यह अपरार्क लिखते हैं ॥

'तस्य विद्यागुरुयोनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः पात्रं वास्य विपर्यस्येयुः' 'दासः कर्मकरोवाऽवकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकं करोमि इति नामग्राहं सर्वेन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः' इति गौतमोक्तेश्च ॥ उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः । प्रेतकार्याण्येकादशाहश्राद्धान्तानि ॥ दास्याहृतोऽम्बुघटो दासीघटः । तेनोदकेनामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासादिर्न्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः ॥ अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जनत्वार्थम् ॥ तेन तत्तूष्णीं भवति ॥ एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः ॥ 'तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेति सपद्येवमप्यनवास्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्' इति शंखोक्तेः ॥ जीवन्तमेवोद्दिश्य पिण्डोदकश्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः ॥

उसके विद्यागुरु, योनिसम्बन्ध, सब एकत्र होकर जलदानआदि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करैं, और इसके पात्रके औंधे करनेका निषेध है. कोई कर्मकर (भृत्य) पात्रोंमेंसे अपवित्र पात्रको लेकर दासीके घड़ोंमेंसे

भरकर दक्षिण मुख किये जलसे फैंक दे, नाम लेकर यह जल देते हैं, यह कहकर सब जातिके मनुष्य देनेवालेको छुएं और शिखा खोलेहुये विद्यागुरु और योनिसम्बन्धवाले देखते रहैं, और जलका स्पर्श करके ग्राममें प्रवेश करैं, यह गौतमने लिखा है. जलदान कथनसे यहां दाहकी निवृत्ति है, और प्रेतकार्य एकादशाहपर्यन्त लेना. हरदत्तने तो यह लिखा है कि, दासीके लिये जलके घडेको दासीघट कहते हैं, उसके जलसे अपवित्र पात्रको भरकर दास आदि बांये चरणसे औंधा करैं, यहां नाम लेकर कथन इस कारण है कि, प्रेतकर्ममें जलदान आदि नाम लेकर न करना किंतु मौन होकर, यह भी उसके निमित्त है. जो प्रायश्चित्तकी इच्छा न करता हो कारण कि, शंखने लिखा है कि, गुरु, बांधव, राजाके आगे उसके दोषोंको कहकर उससे कहैं कि, आचार्यके निकट जा. यह कहनेपरभी उसकी बुद्धि ठिकाने न होय तो उसका घडा फैंक दे. अपरार्क तो यह लिखते हैं कि, जीतेहुये उसके निमित्त जल पिंडदान और श्राद्ध नाम लेकर दे ॥

पुनः संग्रहविधिः ।

कृतप्रायश्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि संग्रहविधिमाह गौतमः "यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यह्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनमुपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्ततस प्रतिगृह्य जपेच्छान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद्गां चाचार्याय ॥ यस्य तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्ध्येत्सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु" इति ॥

घट फोडनेके उपरांत जिसने प्रायश्चित्त किया हो उसकी संग्रहकी विधि गौतमनें लिखी है कि, जो प्रायश्चित्तसे पवित्र हो इसकी शुद्धिके उपरांत सुवर्णके पात्रको पवित्र कुंड वा नदियोंमेंसे भरकर फिर इसका स्पर्श करै, और इसको वह पात्र दे, वह पतित उस पात्रको लेकर यह पढै कि, 'शांता द्यौः शान्ता पृथ्वी० शांतमन्तरिक्षम्० योरोचनस्तमिह गृह्णामि' फिर यजुर्वेदके मन्त्रोंसे और 'पावमानी, तरत्समन्दी, कूष्मांडी' ऋचाओंसे घृतका हवन करै, सुवर्ण और गाय घृत आचार्यके निमित्त दे, जिसका प्रायश्चित्त मरणांतिक हो वह मरकर पवित्र होताहै, और जल आदि सब प्रेतके कर्म करै, यही शांत्युदक सब उपपातकोंमें होताहै ॥

घटस्फोटोत्तरं प्राणान्तिकप्रायश्चित्ते कृते तु मृत एव शुद्ध्येन्न तत्र संग्रहविधिः ॥ अतस्तेन विनापि प्रेतकर्म कुर्यादित्यर्थः ॥ उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृत एवं कार्यमित्यर्थः ॥ याज्ञवल्क्यः—"चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्सेरन्नचाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः ॥" कृतघटस्फोटस्यैवायं परिग्रहविधिरिति मिताक्षरायामपरार्के च ॥ अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥ मनुरपि घटस्फोटमुक्त्वा—'निवर्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासनैः' इत्युक्त्वा—"प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये" इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त ॥

घट फोडनेके उपरांत प्राणांतिक प्रायश्चित्त करने उपरांतही शुद्ध होता है, उसमें संग्रहकी विधि नहीं है, इससे संग्रहके विना भी प्रेतकर्म करै. उपपातकोंमें भी घट फोडनेके उपरांत ऐसे करना. याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि, जब प्रायश्चित्त करके वह आवै तब नया घडा लेजाय और उसकी निन्दा न

करैं, और उसके संग रहैं, यह ग्रहण करनेकी विधि है. जिसका घट फोडा हो, यह मिताक्षरा और अपरार्कमें कहा है, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इस विधिका प्रसंग प्राप्त होगा. मनुने भी घटस्फोटको लिखकर और उसके संग संभाषण और स्थिति नहीं करते हैं, यह कहकर इस वाक्यमें तत् शब्दका प्रयोग किया है कि, प्रायश्चित्त किये उपरांत पानीसे भरे नये घडेको उसके संग पवित्र जलस्थानमें स्नान करके फेंक देना चाहिये ॥

अपरार्के वसिष्ठोपि–पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरन्ति "अग्रेऽत्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडन्निव हसन्निव । पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव ।" इत्याचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादादपगतपापा एतेषां प्रत्यापत्तिः पूर्णह्रदात्प्रवृत्ताद्वा सकाश्चनं पात्रं माहेयं वाद्भिः पूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्भिरभिषिञ्चेयुः, सर्व एवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः' इति ॥ प्रत्युधारः परिग्रहः ॥ तत्रोद्धरतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोचन्निव पश्चाद्गच्छेत् । मातापित्रादिहन्तॄणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्रतानां कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरं जातकर्मादयः संस्काराः पुत्रजन्मवत्कार्या इत्यपरार्को व्याचख्यौ ॥

अपरार्कमें वसिष्ठका भी कथन है कि, जिन पतितोंने प्रायश्चित्त किया है, उनके प्रत्युद्धारको लिखतेहैं. उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और क्रीडा करता और पातयितोंके पीछे रुदन करता हुआ चले, यह आचार्य माता पिताके मारनेवालोंकी उनके प्रसादसे पाप निवृत्ति होनेपर प्रत्यापत्ति लिखी है. पूर्ण कुंडमेंसे वा नदीमेंसे सोनेके बर्तनको जलसे पूरा कर आपोहिष्ठाआदि ऋचाओंको पढकर पातकियोंपर छिडके, और अभिषेक कियेका प्रत्युद्धार पुत्रजन्मके तुल्य लिखा है, प्रत्युद्धार नाम परिग्रहका है. उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और घडा फोडनेवालोंके पीछे शोचताहुआ चलै माता पिताके मारनेवालोंका परिग्रह न करै, उनकी प्रसन्नतासे करै, प्रवृत्त नाम झरनेका है, पुत्रजन्मसे यह कहनेसे अभिषेकके उपरांत जातकर्म आदि संस्कार पुत्रजन्मके तुल्य करने चाहिये, यह अपरार्कने इसकी व्याख्या लिखीहै ॥

अत एव विज्ञानेश्वरः "घटेपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् ॥ प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया" इत्यत्र गवां भक्षणाभावे पुनर्व्रतं चरेदित्येतत्प्रकृते, एवं चरितव्रतविधौ विशेषोयमिति वदन् घटस्फोटोत्तरं परिग्रह एवैतन्न सर्वत्रेत्याह ॥ तस्मात्कृतेपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रहविधिः पुनः संस्कारा भवन्तीति सिद्धम् ॥ तथा जीवच्छ्राद्धे कृते हेमाद्रौ बौधायनः–'तत्राशौचं दशाहं स्यात्स्वस्य ज्ञातेर्न विद्यते' इत्यलं प्रसङ्गेन ॥

इसीसे विज्ञानेश्वरने कहाहै कि, घट दिये उपरांत जातिके मध्यमें बैठकर गौओंको घास देनी उसकी ही श्रेष्ठ क्रिया होतीहै, जिसका गौओंसे संस्कार हो, गौओं द्वारा घासका भक्षण न होय तो फिर व्रत करै, यह प्रकृत (यहां) मेंही जिसने प्रायश्चित विधि करलीहै, उसके निमित्त यह विशेष है, यह कथन करताहुआ घडा फूटनेके पीछे परिग्रह विधि और फिर संस्कार होताहै, इसप्रकार जीवच्छ्राद्ध किये उपरांत, हेमाद्रिमें बौधायनने लिखाहै कि, वहां दशदिनका अशौच लगताहै, प्रसंगसे कहना इतनाही बहुत है ॥

अन्त्यकर्मसाधारणविधिः ।

एवं सापवादे आशौचे उक्ते प्रतिशाखं भिन्नेप्यन्त्यकर्मणि साधारणं किञ्चिदुच्यते ॥ तत्राधिकारिणः प्रागुक्ताः ॥ सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कार्यः "अपुत्रेण सुतः

कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः । पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनाय च " इति व्यासवचनात् ॥

इसप्रकार अपवादसहित अशौच वर्णन किया, शाखा २ के प्रति भिन्नभी अन्तका कर्महै तो भी सबके निमित्त साधारण कुछ वर्णन करतेहैं, उसके अधिकारी प्रथम वर्णन करआये हैं. यदि कोई भी न हो तो उसको धर्म पुत्रको करना चाहिये, जिसके पुत्र न हो वह पिंड और जलदान और नाम चलनेके निमित्त जैसे तैसे पुत्रको यत्नसे ग्रहण करै, यह व्यासजीने कहाहै ॥

गृह्यपरिशिष्टे–कर्तृदेशविषये विशेषो मैत्रायणीयगृह्यपरिशिष्टे–"स्वगृहे विद्यते पुत्रः पिता ग्रामान्तरे मृतः । केनापि तत्रै चारब्धमग्निपिण्डोदकादिकम् ॥ पुनः संचयनात्प्राक् चेद्गच्छेदूर्ध्वं स आचरेत् । स्वगृहे तत्र वा सर्वं प्रेतकार्यं सपिण्डनम्" ॥ तथा ॥ "भयस्थानेऽथवा मार्गे मृतस्तत्र च संस्कृतः । न तिष्ठति जनः पिण्डं तत्र तत्र च वर्तयेत्" ॥ मंत्रेण दाहोस्थिसंचयनं च संस्कारस्तस्मिन्कृते तत्र च भयादिना स्थातुमशक्तौ यत्र तत्र प्रेतकार्यकृद्गच्छेत्तत्रतत्रैव पिण्डोदकदानादि सपिण्डनान्तं समापयेदिति श्राद्धसंकल्पः ॥

गृह्यपरिशिष्टमें लिखाहै और कर्ताके देशविषयमें मैत्रायणीय गृह्यपरिशिष्टमें कहाहै कि, पुत्र अपने घरहो और पिता ग्रामान्तरमें मृतक होजाय और वहां उसके निमित्त किसीने अग्नि और पिंड जलदान आदिका प्रारम्भ करदिया हो और अस्थिसंचयनसे प्रथम पुत्र चलाजाय तो फिर वह कृत्य करै, अथवा अपने घरमें प्रेतकर्म और सपिंडीश्राद्ध करै, इसीप्रकारके वाक्य है कि, भयस्थानमें अथवा मार्गमें कोई मृतक होगयाहो और संस्कार होचुका होय तौ मनुष्य मार्गमें जहां २ स्थित हो वहां २ पिंड दे. आशय यहहै कि, मन्त्रसे अस्थिसंचयन और संस्कार करचुकनेपर और वहां भयआदिसे स्थित न होसके तो प्रेतकर्म करनेवाला जहां २ गमन करै वहां २ पिंड जलदान आदिकर्मको सपिंडीतक पूरा करै ॥ इति श्राद्धसंकल्पः ॥

तदेवं परिशिष्टयोर्विरोधे यथाचारमापदनापदादिभेदेन व्यवस्था ज्ञेया । केचित्त्वस्यापवादत्वमाहुः ॥ "असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥" दद्यात्पिण्डमिति शेषः ॥ भविष्ये–'यत्राद्यो दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत्' ॥ ब्राह्मेऽपि–"प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥" विज्ञानेश्वरादयस्तु–'केचित्तु अग्निं दद्यात्' इति व्याचक्षते ॥ "सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येत्तु दशमेऽहनि ।" इति दिवोदासीये वचनाच्च ॥ तत्रैव–"दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नमर्धोन्मीलितलोचनम् । भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ॥ तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥"

इससे इसप्रकार दोनोंपरिशिष्टोंके विरोधमें आचारके अनुसार आपत्ति और अनापत्तिके भेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये. कोई तो इसको अपवाद लिखते हैं, असगोत्रीहो वा सगोत्रीहो स्त्री हो वा पुरुष प्रथमदिन जो पिण्डदे वही दशदिनतक क्रियापूर्ति करै. भविष्यमें लिखाहै कि, जो प्रथमदिन पिण्ड दियाजाय उसीसे सब पूर्ति करै, ब्रह्मपुराणका वाक्यहै कि, प्रथमदिन जो मनुष्य प्रेतके नीमित्त अन्नदे, वही सावधानीसे अन्न नौ दिनोंमें दे. विज्ञानेश्वर कहते हैं कोई तो यह व्याख्या लिखतेहैं कि, जो अग्निदे वहही क्रिया करै कारण कि, दिवोदासीयमें लिखाहै कि, सगोत्री वा असगोत्री जो मित्रको अग्निदे वहभी नवश्राद्ध करै,

और दशवेंदिन पवित्र होताहै, वहांही कहाहै कि, आधेनेत्रमिचे और भूमिपर लेटे पिताको पुत्र अपने घरमें देखकर जो दानदे वह गयाश्राद्ध देताहै, और सौ अश्वमेधोंसेभी श्रेष्ठहै ॥

तानि यथा–"मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम ॥" इति मोक्षधेनुमन्त्रः ॥ "ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् । तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम ॥" इति ऋणधेनोः ॥ "आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः । तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥" इति पापधेनोः ॥ भारते–"शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥" हेमाद्रौ वाराहे–"व्यतीपातोथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालस्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥"

वे दान ऐसे हैं, हे हृषीकेश ! हे जनार्दन ! मोक्षदो, मोक्षधेनुके दानसे मुकुन्दभगवान् मुझपर प्रसन्नहो यह मोक्षधेनुका मन्त्रहै. और इसलोक और परलोकका सातजन्मसे संचित सब ऋण इस धेनुके दानसे निवृत्त होजाय और मनवाणीकायाकर्मसे, जन्मसे लेकर जो पाप कियाहै वह सब इस गोदानसे दूरहो यह पापधेनुका मन्त्रहै. भारतमें लिखाहै कि, हे तात ! शुक्लपक्ष दिन भूमि गंगा उत्तरायणमें जनार्दन भगवान्को हृदयमें धारण करके जो मरतेहैं उन्हें धन्यहै. हेमाद्रिमें वाराहपुराणका वाक्यहै कि, व्यतीपात, संक्रांति सूर्यका ग्रहण, मृत्युके समयमें वे सब पुण्यकाल होतेहैं ॥

व्यासः–"आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् । तदभावे तु गौरेव नरकोत्तरणाय वै ॥ तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गाम् । शक्तोन्योरुक्तदा दत्त्वा दद्याच्छ्रेयो मृतस्य तु ॥" मदनरत्ने जातूकर्ण्यः–उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् ॥ एतानि दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः । कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेपि हि परत्र वै ॥"

व्यासने लिखाहै कि, जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट हो उस मनुष्यको पूर्वोक्त प्रकारसे सवत्सा गौ देनी चाहिये, सवत्सा न होय तो नरकसे पार होनेके निमित्त गौ दे. यदि वह. मरणके समय आपत्तिमें वैतरणी गौ न प्रदान करसकै तो और पुत्र आदि समस्त मृतकके कल्याणके निमित्त पूर्वोक्त गौका दान करै. मदनरत्नमें जातूकर्ण्यका कथनहै कि, मृत्युके समयमें मृतकके दशदान देने, वे क्रमसे इसप्रकार हैं–गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, अन्न, गुड, चांदी, लवण ये दश महादान मनुष्योंके मरण और जन्ममें कल्याणके निमित्त और परलोकमें मृतकके सुखके निमित्त करने चाहिये ॥

ब्राह्मे–"ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु । सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम् ॥ उत्क्रान्तवैतरिण्यौ च दशदानानि चैव हि । प्रेतेपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् ॥" तत्रैव परिशिष्टे–'म्रियमाणस्य कर्णे तु पुण्यमन्त्रान् जपेत्ततः ॥' क्रियानिबन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्युक्तानि ॥ "तुलसीं संनिधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा । तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्" इति ॥

ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, तिलोंसे भरा तांबेका सुवर्णसहित सेरभर पात्र अपने वित्तके अनुसार जो मनुष्य ब्राह्मणोंको देताहै वह सर्व पापोंसे शुद्ध आत्मा होकर उत्तम गतिको प्राप्त होताहै. मृतक समयके दशदान और वैतरणी गौ देनी चाहिये. प्रेतके निमित्त इन सबको देकर शवके धर्मसे उस प्रेतको दग्ध करै, वहांही परिशिष्टमें यह लिखाहै कि, मृतक होतेहुये मनुष्योंके कानमें पवित्र मंत्रोंको जपै. क्रियानिबन्ध और गारुडमें आठ दान लिखेहैं कि, तुलसी और शालिग्रामकी शिलाको निकट रखकर तिल, लोहा, सुवर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी, गौ, ये एकसे एक पवित्र हैं ॥

दशदानवैतरिणीधेनूत्क्रान्तधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥ कर्ताऽन्त्यकर्माधिकारार्थं त्रीन् कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम् ॥ अत्र देवयाज्ञिकेन मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम्, तदुक्तं वाराहे—"दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणम्। प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ॥ मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्" ॥ "ॐएतद्गृहाण रुचिरं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं ह्यमृतेन तुल्यम्। नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सुरलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम्। नरस्य मृत्युकाले तु परलोकसुखावहम् ॥"

दशदान, वैतरणी गौ, उत्क्रांति और गोदान आदि भट्टकी रची अन्त्येष्टिपद्धतिमें लिखे हैं और ये भी वहांही लिखाहै कि, कर्ता अन्त्यकर्मके अधिकारके निमित्त तीन कृच्छ्र करै. यहां देवयाज्ञिकने मृत्युको प्राप्त होते मनुष्यको मधुपर्कका दान लिखाहै, यही वराहपुराणमें कहाहै कि, यममार्गको गमन करनेवाले इसको विह्वल देखकर मरनेके समयमें मनुष्य विधिपूर्वक और शीघ्र मधुपर्कको ग्रहण करके यह मन्त्र उच्चारण करै कि, सनातन संसारके नाशक अमृतकी समान नारायणके निमित्त भगवान्के भक्तोंको दाहमें शांत करनेवाले और देवलोकमें पूजित इस मधुपर्कको ग्रहण करो इस मन्त्रसे परलोकमें सुख देनेवाले मधुपर्कको मनुष्यके मृत्युसमयमें दे ॥

दुर्मरणे।

अथ दुर्मरणे दिवोदासीये—"चण्डालादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षमृतेपि वा। कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकीर्तिता ॥" देवजानीये जाबालिः—"शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम्। प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः प्रापशुद्धये ॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम्।" गृह्यकारिकायाम्—"उदक्या सूतिका वापि यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि। तस्यैष विधिरादिष्टो वात्स्येनैव महात्मना ॥" एष सूतिकोक्तः ॥

अब दुर्मरणके विषयमें लिखतेहैं, दिवोदासीयका कथन है कि, चाण्डाल आदिसे और अन्तरिक्षमें ब्राह्मणकी मृत्यु हो तो कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र और चांद्रायण आदिसे शुद्धि होती है. देवजानीयमें जाबालिने कहा है कि, शूद्रद्वारा दग्ध किया जो ब्राह्मण उत्तम गतिको प्राप्त नहीं होता और पापकी शुद्धिके निमित्त वह ब्राह्मण चांद्रायण पराक प्राजापत्य प्रायश्चित्त करै. गृह्यकारिकामें कहा है कि, रजस्वला सूतिका जिस प्रेतको स्पर्श करै, उसके निमित्त महात्मा वात्स्य मुनीने वही प्रायश्चित्त लिखा है जो सूतिकाको है ॥

मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—"ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टो भयोच्छिष्टे तथैव च। अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेपि च। एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा। शुद्ध्यै तदानीं सम्पाद्य शावधर्मेण दाहयेत् ॥" गृह्य-

कारिकायाम्-"खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत् । सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टे मृतो दैवात्कथंचन ॥ एकत्रिंशत्सुकृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । कुणपे त्वर्धदग्धे तु चितास्पृष्टान्त्यजादिभिः । तत्स्पर्शने दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥"

मदनरत्न और स्मृतिका कथन है कि, उच्छिष्टसे प्रथम वा पश्चात् वा भयसे उच्छिष्ट और स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे और जो खाटपर मरे कुत्ता मांसभक्षक कृमिकीटके स्पर्शसे जो मृतक हुए हों इनमें दोषके अनुसार प्रायश्चित्त करैं. तीन छः पांच दश कृच्छ्र तीन चांद्रायण करनेसे शुद्ध किये उपरान्त दान देकर शवधर्मसे दग्ध करै. गृह्यकारिकामें कहाहै कि, खाटपर मरनेमें तीन कृच्छ्र व्रत अन्त्यजके स्पर्शसे मृत्यु होय तो सात वा इकतीस कृच्छ्रोंसे बुद्धिमानोंने शुद्धि कही है, यदि आधे शरीरके दाह किये उपरांत अन्त्यज चिताको छूले तो उनके छूनेका दोष तीन कृच्छ्रोंसे जाता है ॥

धर्मप्रदीपे-"चाण्डालसूतिकोदक्यास्पृष्टे प्रेते तथैव च । तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान्पञ्चदशाचरेत्" इत्युक्तम् ॥ मनुः-'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्क दूषिता ॥' अत्रापि कृच्छ्रत्रयम् 'अस्पृश्यस्पर्शने चैव' इत्युक्तेः ॥ तत्रैव कर्मप्रदीपे-"रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्ते चेद्द्विजातयः । दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः ।" रजस्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः ॥ निर्णयामृते पारिजाते यमः-"सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च । नवश्राद्धं च नो कुर्यात्कृतं निष्फलतां व्रजेत् ॥" एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थम् ॥

धर्मप्रदीपमें तो यह लिखाहै कि, चाण्डाल सूतिका रजस्वला ये प्रेतको छूलैं तो उस पापीकी शुद्धिके निमित्त पन्द्रह कृच्छ्र करै. मनुने लिखाहै कि, शूद्रके छूनेसे दूषित जो आहुति है, इससे स्वर्ग नहीं मिलता है, इसमें और स्पर्शके अयोग्यके छूनेसे तीन कृच्छ्र करै, इस वाक्यसे तीन कृच्छ्र करै, वहांही कर्मप्रदीपमें कहा है कि, रात्रि वा रात्रिके शेषमें जो द्विजाति मृत्युको प्राप्त हो तो नीतिपूर्वक दाह करके पुत्र दो पिण्ड दे. रजस्वला आदि गर्भिणीके मरनेका निर्णय आगे लिखैंगे. निर्णयामृत और मदनपारिजातमें यमका कथन है कि, संध्या वा रात्रिमें दाह और यममार्गका कृत्य करै, तथा नौश्राद्ध न करै, तो निष्फल होजाते हैं. यदि दिनमें मरे मनुष्यका आलस्य आदिसे दाह न किया होय तो रात्रिमें दाहके निषेधके निमित्त वचन है ॥

यत्तु स्कान्दे-"यदि रात्रौ दहेत्तस्य समाप्तिर्दहनस्य तु । परेऽहन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया ॥ दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया" इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ रात्रिमृतस्य तु तत्रैव संग्रहे-"रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डांतं कृत्वा वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया ॥" इति ॥ वपनं तु प्रातः ॥ तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम् 'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥" इति मिताक्षरायां स्मृतेः ॥ मरणस्याऽनङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम् ॥ तदेव संग्रहवचनेन परेद्युरुत्कृष्यते तीर्थवत् ॥ तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या ॥

जो स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, जो रात्रिमें दाह करै, तो उसकी पूर्ति अगले दिन सूर्योदयके समयमें करै और दाह किये हुयेका जलदान रात्रिमें कभी न करै. वह वाक्य निर्मूल है, रातमें जो मरे उसके

निमित्त वहांही संग्रहमें लिखाहै कि, रातको दाह और मुण्डनके विना पिंड करके अगलेदिन मुण्डन करै, कारण कि, रात्रिमें मुण्डनका निषेध है, प्रातःकालमें शिरका मुण्डन तो सब पुत्रोंको करना चाहिये, कारण कि, मिताक्षरामें स्मृतिका वाक्य है कि, गया, भास्करक्षेत्र, माता, पिता, गुरुके मरण तथा अग्निके आधान और सोमयज्ञ इन सातमें मुण्डन लिखाहै. मरणका मुण्डन अंग नहीं, किन्तु मुण्डनको हेतु मरणहै, उसीकी श्रेष्ठता अगलेदिन तीर्थके समान लिखीहै, इससे मुण्डनको जो किसीने दाहका अंग लिखाहै वह अशुद्ध है ॥

मदनरत्ने गालवः—"प्रथमेऽहनि कर्त्तव्यं वपनं चानुभाविनाम् । प्रेतस्य केशश्मश्र्वादि वापयित्वाऽथ दाहयेत् ॥" आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात् ॥ मदनपारिजातेऽप्येवम् ॥ तेन सर्वस्यास्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—'शवं रात्र्युषितं चेत्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत्सुतः ॥' मदनरत्नेऽङ्गिराः—"ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेपि च ॥"

मदनरत्नमें गालवने लिखाहै कि, विचारवान् मनुष्य पहले दिन मुंडन करै, बाल, डाढी, मूंछ आदि मुँडवाकर प्रेतका दाह करै, और अशौचके उपरान्त विधिके बलसे फिर मुंडन करै. मदनपारिजातमें भी ऐसेही कहाहै, इससे यह निर्मूल ही है. स्मृतिरत्नावलीमें कहाहै कि, यदि मृतक रात्रिमें मृतक हुआ होय तो पुत्र तीन कृच्छ्र करके दाह करै. मदनरत्नमें अंगिराका कथन है कि, उच्छिष्टसे प्रथम वा उपरान्त और अंतरिक्षमें वा अशौचमें मृतक हो तो तीन कृच्छ्र करना चाहिये ॥

अथ साग्नेर्विशेषः ।

कारिकायाम्—"कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्यह्नि प्रातराहुतीः । शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत् ॥" प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः ॥ 'यद्याहिताग्निरपरपक्षे म्रियेताहुतिभिरेनं पूर्वपक्षे हरेयुः' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ "तदानीमेव हुजुयात् सायंकालाहुतीरपि । सायं म्रियेत चेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहुयात् प्रातःकालाहुतीरपि । सकृद्गृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नतन्त्रं च होमयोः ॥ दार्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु॥" छन्दोगपरिशिष्टे—"हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् । प्रातर्होमस्तदैव स्यात् जीवेच्च स पुनर्नवा ॥" इदं शुक्लपक्षपरम् ॥ दुर्बलो मुमूर्षुः ॥

अब साग्निके निमित्त विशेष लिखते हैं कारिकामें लिखा है कि, कृष्ण पक्षमें मृतक हो तो दिनमें प्रातःकाल आहुति देकर शेष आहुति पक्षहोमके तुल्य अमावस्यापर्यन्त देना, कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, यदि आहिताग्नि कृष्णपक्षमें मृतक हो तो प्रतिदिनकी आहुतिसे इसे शुक्लपक्षमें लेजाना. फिर शुक्ल पक्षमें प्रातःकाल आहुति दे. यहां दोनों होमोंका भेद और तन्त्र इष्ट है, और तभी अमावस्याका होम और स्थालीपाक करै. छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, सायंकालकी आहुतिके उपरान्त गृहस्थी दुर्बल (असमर्थ) होय और जीवै तो प्रातःकाल हवन होता है, यह शुक्लपक्षके विषयमें है ॥

---

१ जो क्रिया करै उसका मुण्डन तो उसी समय होना चाहिये और छोटों तथा पुत्रोंका दशाहमें मुण्डन होता है, दिन वा रात्रिमें यदि कहीं शव स्थित रहजाय तो वह पर्युषित कहाता है तब पंचगव्यस स्नान करके तीन प्राजापत्य व्रत करै ॥

त्रिकाण्डमण्डनः-"दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् । देवतानां प्रधानानामेकैकस्य हुनेत्पृथक् ॥ पुरोनुवाक्या याज्याभ्यां चतुरस्तु घृताहुतीः ।" तथा-"अग्नावरुण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि । प्रेतं स्पृष्ट्वा माथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूर्ष्णीं हुत्वा शवक्रिया ॥" विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम् "प्रेतं स्वाम्यालये क्षिप्त्वा मथित्वाग्न्यानलेरणी । सन्निधायारणीं मन्थेत् यस्येति यजुषा ततः ॥ यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् ॥ जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु ।" इति मन्त्रतः । "प्रणीय पावकं तूर्ष्णीं द्वादशोपात्तसर्पिषा । तूर्ष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते माल्या इति क्रियाम् ॥ नष्टेष्वाग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेतते चेत् । आहरेदरणीद्वन्द्वं मनोज्योतिर्ऋचा ततः ॥"

त्रिकांडमण्डनका कथनहै कि, यदि यज्ञ न हुआ होय तो अमावस्याको यज्ञ करै, और प्रधान देवताओंकी आहुति देनी, पुरोनुवाक और याज्यमन्त्रोंसे चार घीकी आहुति दे, इसी प्रकारके मन्त्र हैं कि, खाटआदिपै आरूढ पति मृतक होजाय तो अग्नावरुण मन्त्रसे प्रेतका स्पर्श और अग्निका मथन और उपारोहण मन्त्रको जपकर और घृतकी बारह आहुति दे मौन होकर सबकी क्रिया करै. जिसकी श्रौत अग्नि नष्ट होगई हो वह मृतक होजाय तो वहांही प्रेताधान लिखा है कि, प्रेतको स्वामीके घरमें रखकर और अरणीमें मथी अग्निका स्थापन करके मथनके दण्डमें 'यस्य यजुषा' यह मन्त्र पढकर (यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् । जायंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयंतु) अरणीकी अग्निको लाकर बारहवार लिये घीसे मौन हो आहुति देकर प्रेतकी अन्त्येष्टि करै, अग्नि और अरणी दोनोंके नष्ट होनेपर स्वामीकी मृत्यु हो तो मनोज्योति ऋचासे दो अरणी लावै ॥

यज्ञपार्श्वः-"यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति । वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्थनं तत्र कारयेत् । तच्छेषा लाभतोन्येन दग्धशेषेण वा पुनः ॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ हुतशेषं दहेत्तु वा ॥" अत्राग्निषु सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः ॥ शरीरे वासति प्रेताधानेनाग्न्युत्पत्तिः ॥

यज्ञपार्श्वका कथनहै कि, जब यजमान चितामें आरूढ होजाय और पुत्रोंको त्याग करचुका हो और वर्षा आदिसे अग्नि नष्ट होजाय तो यज्ञके कर्ता किसप्रकार करै, तब आधे जले काष्ठसे मथन बनाकर उसका शेष न मिले तो और आधे जलेहुये काष्ठसे मथनी बनावे लौकिक अग्निमें घृतका होम करके दग्धसे शेषका दाह करै, यहां अग्नि होय तो पर्णशरोंसे शरीरको निर्माण करै शरीर होय तो प्रेतके पूर्वोक्त आधानसे अग्निको उत्पन्न करै ॥

उभयाभावे तु प्रेताधानेऽनधिकाराद्दाहादिसंस्कारलोपः ॥ उदकदानाद्येव कार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः ॥ तन्न ॥ 'निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः' इति विरोधात् ॥ 'क्रियालोपगता ये च' इति निषेधात्तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः ॥ पुमानपीत्यभावे विधानस्याग्न्यभावेपि साम्याच्च ॥ तेन प्रेताहुत्यभावेपि स्विष्टकृद्द्रव्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् ॥ प्रेताधानं दाहोपि भवत्येव ॥ प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोज-

१ अग्निनाशसे मृति होजाय तो आहिताग्निको अग्नि मथन कर भस्म करै, यह न हो तो उस भस्मसे काष्ठ छुवाय अग्नि मथन कर भस्म करै यह कारिकामें कहा है ॥

कृत्वापतेः ॥ पत्न्या अप्येवम् ॥ 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥

दोनों न होंय तो प्रेतके आधानका अधिकार न होनेसे अधिकारका लोप होजाता है, जलदान आदिही करने यह केशवीकार शतद्वयी आदिका कथन है सो यथार्थ नहीं है कारण कि, गर्भाधानसे श्मशानक्रियातक जिनके कर्म मन्त्रसे होतेहैं, इस वाक्यसे विरोध है और जिनकी क्रियाका लोप है, इस निषेधसे उसके अभावमें ढाकके डंठलोंसे पुरुषका निर्माण करै. इस विधिको अग्निकी अप्राप्तिमें माननेकी समानता है, इससे प्रात:काल आहुतिके अभाव होनेपरभी स्विष्टकृत्के निमित्त अन्य द्रव्य लिखाहै, इससे अर्थात् प्रेताधान होगा. उसका दाहर्भा होगा, कारण कि, प्रतिकृति और अग्नि ये दोनों प्रेताधानके कथन करनेवाले हैं, इसमें हानि नहीं. पत्नीका भी ऐसेहीहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, आचरणवाली भार्याको पति अग्निहोत्रसे दाह करके दूसरा विवाह करै ॥

यत्तु-"द्वितीयां चैव यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवन्त्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं स्मृतम्" इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ मदनरत्ने ब्राह्मेपि- "आहिताग्न्योश्च दंपत्योर्यस्त्वादौ म्रियते भुवि । तस्य देहः सपिण्डश्च दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥ पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ॥"

जो यह कथन है कि, जो दूसरी भार्या वैतानकी अग्निसे प्रथमके जीते दाह करै, वह कृत्य सुरापानके सदृश है, वह वाक्य उस भार्याके निमित्त है, जिसका आधानमें सह अधिकार न कियाहो, यह विज्ञानेश्वरका कथन है. मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, आहिताग्नि स्त्रीपुरुषोंमें जो प्रथम पृथ्वीपर मृतक होजाय उसके देहको सपिंड तीनों अग्नियोंसे दग्ध करैं, और जो पश्चात् मरै, उसको लौकिक अग्नि से दाह करैं, और अनाहिताग्निके देहको तो ब्राह्मण गृह्याग्निसे भस्म करै ॥

त्रिकाण्डमण्डनस्तु विकल्पमाह-"ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोषिते । काम्यं नित्याग्निहोत्रं वा न कथंचित्प्रयच्छति ॥ स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान्यैर्वैदिकादिभिः । विवाह्यादधते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वधूः ॥" इति ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ ॥ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्दहेदित्येकः पक्षः । "भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥" इति मनूक्तेः ॥

त्रिकांडमण्डनने तो विकल्प लिखाहै कि, बडी विद्यमान होय तो दूसरी अपनी स्त्रीको काम्य नित्यका अग्निहोत्र कदाचित् न दे, स्त्रीमात्रको वैदिक अग्नियोंसे दग्ध करके विवाही भार्यायुक्त आधान करै. जो वधू विद्यमान हो तो यहां यह विचार है कि, साग्निकी स्त्रीके मृतक होनेमें दो पक्ष हैं, फिर विवाह करनेकी इच्छा होय तो पूर्वाग्नियोंसे दाह करै, यह एक पक्षहै. कारण कि, मनुने लिखाहै कि, प्रथम मरी स्त्रीको अन्त्यकर्ममें अग्नियोंको प्रदान कर फिर विवाह और आधान करै ॥

'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ पुनर्विवाहशक्तौ निर्मन्थ्येन तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रेष्ट्यादिकार्यमित्यर्थः ॥ "आहार्येणाहिताग्निं पत्नीं च" इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ भरद्वाजोपि-'निर्मन्थ्येन पत्नीम्' इति ॥ पूर्वाग्न्येक-

देशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः ॥ यानि च-'तस्मादपत्नीकोप्यग्निहोत्रमाहरेत्' इति श्रुतिः ॥

याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, आचारवाली स्त्रीको अग्निहोत्रसे दग्ध करके फिर विवाह करै, फिर विवाहकी सामर्थ्य न होय तो मथन कीहुई अग्निसे दाह करके पूर्व अग्नियोंमेंही अग्निहोत्र आदि करना यह दूसरा पक्षहै. कारण कि, आश्वलायनने कहा कि, आहार्य (अन्यकुलसे लाई) अग्निसे अनाहिताग्निको और पत्नीको दग्ध करै. भरद्वाजने लिखाहै कि, मथी अग्निसे भार्याको दग्ध करै. देवयाज्ञिक यज्ञपार्श्व आदि तो यह लिखते हैं कि, पूर्व अग्निके एक देशसे दाह करै. जो वाक्य है कि, इससे पत्नीरहितको भी अग्निहोत्र करना चाहिये यह श्रुति है ॥

विष्णुः छन्दोगपरिशिष्टं च-"मृतायामपि भार्यायां लौकिकाग्निं नहि त्यजेत् । उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत् ॥" उपाधिर्हेमकुशपत्न्यादिः ॥ "अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः ॥" इत्यपरार्के स्मृत्यन्तरात् ॥ कात्यायनोपि-"रामोपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥" इत्यादीनि तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि, नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि क्रतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् ॥ अपत्नीकस्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्च ॥ 'सोमो न भवत्येव अपत्नीकोप्यसोमपः' इति श्रुतेः ॥

विष्णु और छन्दोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, भार्याकी मृत्यु होनेपर भी लौकिक अग्निको न त्यागे, उपाधि (सुवर्ण वा कुशाकी पत्नी) से भी जीवनपर्यन्त उस कृत्यको करै. अपरार्कमें यह दूसरी स्मृति है की, और गृहस्थी कुशाकी पत्नी बनाकर उस व्रतमें तत्पर हुए जीवनपर्यन्त अग्निहोत्रकी उपासना करते रहते हैं. कात्यायनने भी लिखाहै कि, रामचन्द्रने भी सोनेकी यशस्विनी सीतास्त्रीको बनाकर भाइयोंसहित बहुत यज्ञ किये इत्यादि वाक्य हैं, वे पूर्व अग्नियोंमें ही अग्निहोत्रके विषयमें लिखे हैं. पत्नीरहितको आधानके कहनेवाले बाधक नहींहैं, कारण कि, यज्ञकी विधि आधानकी प्रेरक नहीं होसकती और मानवपरिशिष्टमें भी कहाहै कि, भार्यारहितको आधानमें प्रवृत्त होना नहींहै, सोम यज्ञभी नहीं होता कारण कि, यह श्रुति है कि, जो पत्नीरहित है वह सोम नहीं कर सकता ॥

यत्तु भरद्वाजापस्तम्बसूत्रम्-'दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयम्' इति ॥ अस्यार्थः पुनर्विवाहाशक्तौ यदग्न्याधेयं पूर्वं कृतमस्ति तदात्मार्थमेव न पत्न्यै दद्यादिति॥ ब्राह्मणभाष्यापरार्काशार्करामाण्डारादितत्त्वमप्येवम् ॥ त्रिकाण्डमण्डनस्तु पक्षद्वयमाह ॥ अन्येप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः ॥ याज्ञवल्क्यः-"आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ॥" क्रतुः-"एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥"

जो भारद्वाज और आपस्तंबका यह सूत्र है कि, स्त्रीके कर्ममें जो असमान है, वह अपने निमित्त अग्निका आधान करै, इसका अर्थ यहहै कि, फिर विवाह करनेमें असमर्थ होय और जो अग्न्याधान प्रथम कियाहुआ है वह अपने निमित्त है, पत्नीके न देना. ब्राह्मणभाष्य, अपरार्क, आशार्क, रामाण्डार आदिका तत्त्व भी इसी प्रकार है. त्रिकांडमंडनमें तो दो पक्ष लिखेहैं, औरोंने भी भार्यारहितको अधिकार लिखाहै, उनके अभिप्रायको हम नहीं जानते, अर्थात् वह यथार्थ नहीं, वृद्धयाज्ञवल्क्यने

लिखा है कि, आहिताग्निको नीतिके अनुसार तीन अग्नियोंसे दग्ध करै और अनाहिताग्निको लौकिक एक अग्निसे दग्ध करै. ऋतुने कहाहै कि, इस प्रकार आचरणवाली पूर्व मरी सवर्ण स्त्रीको धर्मका ज्ञाता द्विजाति अग्निहोत्र और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करै ॥

कारिकायाम्–"पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि । अनग्निकां दहेदेवं कपालेन हविर्भुजा ॥" छन्दोगपरिशिष्टे–"अनयैवावृता नारी दग्धव्या याव्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥" इदं छन्दोगानामेव । तथा "अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतंत्रां पतिता न चेत् । तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगन्तिके ॥" इदमपि तेषामेव ॥

कारिकामें कहा है कि, भर्ताके प्रथम मृतक हुई होय तो पत्नीको भी इसी प्रकार दाह करै, और अग्निहोत्र न करती होय तो कपालकी अग्निसे दग्ध करै. छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, जो स्त्री स्थितिसे रहती हो उसको भी इसी प्रकारसे दाह करना चाहिये और उसके निमित्त अग्नि देनेका मन्त्र न पढे, यह स्थिति है, यह भी छन्दोगोंके निमित्त है. तैसे ही कथन है कि, पतित न होय तो स्वतन्त्र भार्याको भी अग्निसे दाह करै और उसके शरीरसे उत्तरकी ओर वा उत्तर दिशामें अग्निके पात्र दाह करै यह भी छांदोगोंके निमित्त है ॥

आशौचप्रकाशे ऋतुः–"विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत् । ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्तपनाग्निना ॥ तुषाग्निना च दग्धव्या कन्यका बाल एव च । अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिःक्षिपेत् ॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः ॥" अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापि तस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः ॥

अशौचप्रकाशमें ऋतुने लिखा है कि, भार्यारहित पुरुष और विधवा स्त्रीको कपालकी अग्निसे, ब्रह्मचारी और संन्यासीको उत्तपन की अग्निसे, कन्या और बालकको तुषकी अग्निसे दग्ध करै. मृत्तिकाके कपालको अग्निके तुल्य लाल करके उस कालमें (सूखा गोवर) आदि डालदे, उससे उत्पन्न हुई अग्निको कपालअग्नि कहते हैं. यद्यपि जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो उसके निमित्त अरणीसे उत्पन्न हुई अग्नि लिखी है तो भी वह कलियुगमें निषिद्ध है इससे वही पूर्वोक्त जाननी ॥

स्मृत्यन्तरे–"गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः ॥ औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः ॥" उत्तपनस्तु–"दर्भाग्नेर्ग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः । पुनर्दर्भैस्तृतीयेग्निरेष उत्तपनः स्मृतः ॥" यमः–"यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि च । प्रेतत्वं च सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ॥"

और स्मृतिमें लिखाहै कि, गृहस्थी ब्रह्मचारी स्त्रीसे हीन विधवाके निमित्त क्रमसे औपासन उत्पन्न कुशाग्नि और कपालाग्नि होती है. उत्तपन अग्नि यह होती है कि, कुशाके अग्निको प्रज्वलित करै फिर उसे कुशामें मिलावे फिर और कुशाओंमें मिलावे, उस तीसरी अग्निको उत्तपन कहते हैं. यमने कहा है कि, जिसके निमित्त शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ, हवि लेजाय वह सदा प्रेत रहता है, और वह अधर्मसे संयुक्त होता है ॥

देवलः–"चण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥" मनुः–"दक्षिणेन मृतं शूद्रं परद्वारेण निर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु

यथासंख्यं द्विजातयः ॥ अत्र प्रातिलोम्येन क्रमः । "पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात् । उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा ॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः ॥" इत्यादिपुराणादित्यपरार्कः ॥ तेन त्रिंशच्छ्लोक्युक्तानुलोमक्रमो हेयः ॥ आश्वलायनः-'ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्या गच्छेयुः ॥' आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे श्रौतस्मार्ताग्न्योः संसर्गः ॥

देवलने कहा है कि, चाण्डालाग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका और पतितकी अग्नि, और चिताकी अग्नि ये किसी प्रकार भी श्रेष्ठोंको ग्रहण करने योग्य नहीं. पश्चिम उत्तर पूर्व द्वारोंसे क्रमसे मरेहुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको लेजाय. मनुका कथन है कि, शूद्रको दक्षिण और पुरीके द्वारसे लेजाना चाहिये. यहां क्रम प्रतिलोमसे जानना कारण कि, यह आद्य पुराणमें लिखाहै कि, पूर्वाभिमुख ब्राह्मणको उत्तराभिमुख क्षत्रीको और पश्चिमाभिमुख वैश्यको और दक्षिणाभिमुख शूद्रको कुटुम्बी घरसे लेजांय, यह अपरार्क लिखते हैं, इससे त्रिंशत्श्लोकीमें कहा अनुलोम क्रम छोडने योग्य है. आश्वलायनने कहा है कि, ज्येष्ठ पहिले और कनिष्ठ पीछे जाय इसके उपरांत आधानके उपरांत दूसरा विवाह करनेके पीछे यजमान मरजाय तो श्रौत और स्मार्त अग्निका संयोग होता है ॥

बौधायनसूत्रे-'अथ यद्याहिताग्निर्द्वे भार्ये विन्देत प्राक् संयोगान्म्रियेतौपासनं संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धाग्नौ जुहोति संमितं संकल्पयेथामिति मिदाहुतीर्व्याहृतीश्च हुत्वा अथैतमग्निमयं ते योनिर्ऋत्विज इति समिधि समारोप्य गार्हपत्ये समिधमभ्यादधाति भवतं नः समनसाविति गार्हपत्य आज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गार्हपत्ये जुहोत्यग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट इत्यपरं चतुर्गृहीत्वा चित्तिः स्रुगिति सग्रहं जुहोति, अथ गार्हपत्ये स्रुवाहुतीर्जुहोति ब्राह्मण एक होतेति दशभीः, अथ प्राचीनावीत्यन्वाहार्यपचने जुहोति ये समाना ये सजाता इति द्वाभ्याम्, अथ तत्रैव स्रुवाहुतिं जुहोत्यग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहेति, अथ यज्ञोपवीती द्वादशगृहीतेन स्रुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेनाहवनीये जुहोति, अथ स्रुवाहुतीर्जुहोत्यग्नये विविचये स्वाहाग्नये व्रतपतयेग्नये पवमानायाग्नये पावकायाग्नये शुचये स्वाहाग्नये पथिकृते स्वाहाग्नये तन्तुमतेग्नये वैश्वानरायेति, अथ चतुर्गृहीतं जुहोति मनोज्योतिरित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते' इति ॥ आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्दाहः । पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योस्मतिपतामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येप्युपरम्यते ॥

बौधायन सूत्रमें कहा है कि, इसके अनन्तर लिखते हैं कि, यदि आहिताग्नि दो भार्याओंको विवाहै, और संयोगसे प्रथम मरजाय तो उपासनाग्निका स्थापन और घीको तपाकर चारवार स्रुवेसे लेकर प्रज्वलित अग्निमें हवन 'समितं सङ्कल्पेयाम्' इस मन्त्रसे और व्याहृतियोंसे हवन करके उस अग्निको अप ते योनि ऋत्विज० इस मन्त्रसे समिधपर रखकर उस समिधको गार्हपत्य अग्निपर रक्खे भवतंनः सुमनसौ० इस मन्त्रसे गार्हपत्य अग्निपर घीको तपाकर और चार वार घीको ग्रहण करके गार्हपत्य अग्निमें अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः० इस मन्त्रसे आहुति दे, फिर चारवार ग्रहण करके चित्तिस्रुक् आदिको अग्निमें होम करदे, फिर गार्हपत्य अग्निमें स्रुवेसे आहुति दे, और एक ब्राह्मण होता है, फिर अपसव्य हुये ये समाना० ये सजाता० इन दो मन्त्रोंसे अन्वाहार्य वाक्य आहुतिं दे, फिर अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमःस्वाहा, इस मन्त्रसे स्रुवाहुति दे, फिर सव्य होकर बारह बार लिये घीको

स्रुवेमें भरकर पुरुषसूक्तसे आहवनीय अग्निमें आहुति दे. फिर स्रुवेसे यह आहुति दे कि, अग्नये विविचये स्वाहा अग्नये व्रतपतये अग्नये पवमानाय अग्नये पावकाय अग्नये शुचये स्वाहा० अग्नये पथि कृते स्वाहा० अग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा० फिर चार बार ग्रहण करके मनोज्योति इस मन्त्रसे आहुति दे, ऐसे करने उपरान्त पैतृक कर्म सिद्ध होताहै. आहिताग्नि विदेशमें मृतक होय तो मार्गका यज्ञ और मृतकका अग्निहोत्र और उसका दाह पात्रोंका योजन कल्पसूत्र आदिके अनुसार हमारे पितामहकी निर्माण की हुई पद्धतिमें जानना चाहिये, यहां बहुत कुछ कहना था तो भी विस्तार होनेसे नहीं कहतेहैं ॥

प्रेतनिर्हरणदाहौ ।

स्मार्ताग्निसूत्रे मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च-"दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतिनम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत् । हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु । मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ आमपात्रेऽग्निमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् । एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजेद्भुवि ॥ ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः । सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥ अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत् । तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णं स्रुवं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि स्रुचम् । पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात् । सुसमे तु न्यसेद्युग्मजमन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥ चान्त्रोविलीढमत्रैव अग्नेयरप्ययं विधिः । अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः । अथाग्निं सव्यमावृत्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ अस्मात्त्वमधिजातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत् ॥"

स्मार्त अग्निवालेका दाह तो मदनरत्न और छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, दुर्बल (मरनेयोग्य) को स्नान कराकर शुद्धवस्त्रसे ढककर और दक्षिणको ओर शिर करके भूमिमें कुशाओंपर लिटादे, घृतमलकर स्नान कराकर और शुद्धवस्त्र और यज्ञोपवीत पहरावै, सब अंगपर चन्दन छिडकै और फूलोंसे भूषित करै, सुवर्णके टुकडे सातों छिद्रोंमें डालकर और मुख ढककर पुत्रआदि इसको श्मशानमें लेजांय. आमपात्रमें अन्न लेकर अग्निको आगे कर एक मनुष्य चलै, उस अन्नके आधे भागको आधेमार्गमें भूमिपर त्यागदे, फिर दक्षिणको मुख करके और पिण्डदानके समान बायें गोडको नवायकर तिलके सहित दग्ध करना चाहिये, फिर पुत्रआदि स्नान करके श्रेष्ठ दाहकी चरु निर्माण करै, फिर सीधे इस प्रेतको चितामें लिटाकर मुखमें घीसे भरे स्रुवेको दे, और दक्षिणको अग्रभाग करके नासिकामें दे, चरणोंमें प्राक्अरणी और छातीपर ऊपरकी अरणी, और सूप और चमस सव्यदक्षिण पार्श्वोंमें क्रमसे रखदेने, और प्रेतकी जंघाओंमें समान देशमें ऊखल रक्खै, और चांत्रविलीढ वहांही स्थापन करै, अग्निकी भी यही विधिहै. अपसव्य होकर यह सब करै, और दक्षिण-कोण मुख किये बैठे, फिर अग्निको सव्य होकर लेकर शनैः २ दक्षिणदिशामें अग्निदे, यह मन्त्र उच्चारण करै कि, इस अग्निसे उत्पन्न हुआ और ब्रह्मरूप तुझसे यह अग्नि फिर उत्पन्न हो यह स्वाहा स्वर्गलोकके निमित्त है ॥

तथा-"एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत् । कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषोऽध्वर्यु-चोदितः ॥" तत्रैव-"अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥" इदं छन्दोगानामेव । पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं साग्नि-

परम्, निरग्निस्तु पुमानधोमुखः, स्त्रीतूत्ताना दाह्या ॥ "सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः । अधोमुखो दक्षिणदिक्चरणस्तु पुमानिति । उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः ॥" इत्यादिपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः ॥ उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम् ॥

तैसेही वाक्यहै कि, इसीप्रकार आहिताग्निके पात्रोंका रखना होताहै, और अध्वर्युका कहा काले मृगका चर्म यहां विशेष लिखाहै, वहांही लिखाहै कि, जो नारी श्रेष्ठ आचरणवाली है, उसेभी इसीप्रकार दग्ध करना. केवल अग्निदेनेका मन्त्र इसके निमित्त नहीं कहना, यह स्थितिहै, यह छन्दोगोंके निमित्त है. पात्रोंका रखना कहनेसे सीधा देह रखना, सगोत्री ग्रहण करके मृतकको चितामें रक्खै, नीचामुख और दक्षिणको शिर पुरुषका करै, और सपिंडबांधव स्त्रीको उत्तान मुख ग्रहण करै, यह आदिपुराणमें लिखाहै, यह शुद्धितत्व हारलता आदि लिखते हैं, उत्तरको शिर करना, सामवेदियोंसे पृथक् वेदियोंके विषयमें है ॥

वाराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः "कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान्स गच्छतु ॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत् । चतुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके ॥" अत्र क्रियानिबन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम् ॥ "मृतस्योत्क्रान्तिसमये षट् पिण्डान् क्रमशो दहेत् । मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वरे ताक्ष्र्यकारणात् ॥ विश्रामे काष्ठचयने तथा संचयने च षट् ॥" तथा-"आदौ देयास्तु षट् पिण्डा दश देया दशाहिकाः । स्थाने चार्धपथेतीते चितायां शवहस्तके ॥ श्मशानवासिभूतेभ्यः षष्ठं संचयने तथा ॥"

वराहपुराणमें तो अग्निके दानका दूसरा मन्त्रहै कि, जानकर वा न जानकर पापकर्मोंको करके और मृत्युकालके वशमें होकर मृतक हुये धर्म अधर्मसे युक्त और लोभ मोह सहित मनुष्यके सब गात्रोंको दाह करै और वह जीव स्वर्गलोकमें जाओ इस मन्त्रसे जलती हुई अग्निको शिरके स्थानमें लगावै, और हे पुत्रो ! चारों वर्णोंमें इसीप्रकार स्थिति होतीहै, यहां क्रियानिबंधमें गरुडके वाक्यसे छः पिण्डोंका देना लिखाहै कि, हे गरुड ! मृतकके मरणके समय क्रमसे छः पिंड देने, एक मृतस्थानमें, एक द्वारमें, चौराहेमें, विश्राम और चिता और अस्थिसंचय ये छः कहेहैं, ऐसेही वाक्य हैं कि, छः पिंड आदिमें देने, और दश पिंड दशदिनके, मृतस्थान, अर्द्धमार्ग, चिता, शवका हाथ, श्मशानवासीभूतोंको, छठाँ संचयनमें दे ॥

ततः-"त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः ॥ उक्तः संहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय" इत्यग्निं दत्त्वा । अस्मात्त्वमिति मन्त्रेणार्धदग्धे आज्याहुतिरुक्ता । आहिताग्नौ पराशरः-"शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणीं मुष्कयोरपि । जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ शिश्ने तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् ॥ उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे । श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥ कर्णे नेत्रमुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् । अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निःक्षिपेत् ॥"

फिर हे अग्निदेव ! तुम भूतोंके करनेवाले जगत्के करनेवाले और लोकके पालक हो इससे इस मृतकको स्वर्गमें लेजाओ, इस मन्त्रसे अग्निदेकर और अस्मात्त्वमधिजात० इस पूर्वोक्त मन्त्रसे आधा शरीर दग्ध हुयेपर घीकी आहुति देनी लिखी है. आहिताग्निके निमित्त पराशरने लिखाहै कि, शमीको लिंगके स्थानपर और अरणीको अंडकोशोंपर, जुहूको दक्षिणहाथपर और उपभृतको वाम हाथपर उलूखलको

ओठोंपर मुशलको, छातीपर पत्थर, तण्डुल घी तिलोंको मुखमें, कानोंमें प्रोक्षणी, और घृतस्थालीको नेत्रोंमें सोनेके खण्ड, कान, मुख, नेत्र, नासिकामें रक्खे, और सम्पूर्ण अग्निहोत्रकी सामग्री वहां रखदे ॥

प्रचेताः-"स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत् ॥" यमः-'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।' आश्वलायनसूत्रे-'संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति' इति ॥ माधवीये ब्राह्मे-'दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्यांचिदापदि ॥' तथा-'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्त्यजेन्नरः ॥'

प्रचेताने लिखाहै कि, पुत्र आदि प्रेतका स्नान और वस्त्र आदिसे पूजन करै, नग्नका दाह न करै, और कुछ देनेकी वस्तु दे. यमने कहा है कि, प्रेतका दाह शुभ गन्धोंसे करना चाहिये, स्नान और वस्त्रोंसे भूषित करै. आश्वलायन सूत्रमें कहा है कि, मृत्युके पीछे प्रेतका अलंकार करतेहैं, केश, श्मश्रु, लोम, नख, मुडाते हैं, चन्दनलिप्त करतेहैं, चन्दनकी माला पहराते हैं, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, कैसी भी आपत्ति क्यों न हो दरिद्रीको भी नग्न करके दग्ध न करै, इसीप्रकारके वाक्य हैं कि, सब दाह न करै, कुछ शेषको मनुष्य छोडदे ॥

दाहकालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः-"यजमाने मृते क्वापि चितादौ वा प्रवेशिते । वर्षाद्यभिहतेऽग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मथ्यैव तु कारयेत् ॥" अथ पर्णशरादिदाहेनाग्निनाशे पश्चात्तद्देहालाभे मदनरत्ने ब्राह्मे-"अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वग्निषु तद्देहो यदूर्ध्वं लभ्यते क्वचित् ॥ तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् ॥ यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निःक्षेप्तव्यं महाजले ॥"

दाहके समय अग्नि नष्ट होजाय तो मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वने लिखाहै कि, मृतक हुआ यजमान कहीं वा चिता आदिमें प्रविष्ट कियाहो और अग्नि वर्षाआदिसे नष्ट होजाय तो प्रेतकी कल्पना कैसेहो, तो शेषका दाह करै वा अग्निको मथकर दाह करै. क्रियानिबंधमें कहाहै कि,निरन्तर जलकी धारा प्रदक्षिण क्रमसे कर्ता दे और धाराको कांधेपर घट रखकर चरणके चारों ओर चिताके डाले. जो पुतले आदिके दाहमें अग्नि नष्ट होजाय और पीछे उसका देह मिलजाय तब मदनरत्नमें ब्रह्माका वचन है कि, पर्णशरदग्ध और पात्रन्यास करनेपर अग्नि बुझनेपर उसका देह मिलजाय तो आधेजले हुये उन काष्ठोंको ही मथकर दाह करै, जो आधा जला काष्ठ न मिले तो तब अस्थियोंके टुकडोंको महान जलमें फेंकदे ॥

दम्पत्योरेकदामृतौ ।

दंपत्योरेकदा मृतौ विशेषमाहापस्तम्बः-'तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्विवचनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयन्ति ॥' पितृमेधो दाहान्तं कर्म ॥ 'दाहान्तमेकतन्त्रत्वम्' इति बौधायनोक्तेः ॥ अस्थिसंचयनमप्येवम् ॥ उदकपिण्डदानादि पृथगेव ॥ सहगमनेऽप्येवम् ॥ तदाह मदनरत्ने भाष्यार्थसंग्रहकारः-"एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद् द्वयोः । तन्त्रेण दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक् पृथक् ॥ एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः । विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसांप्रतम् ॥ दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसंमतम् ॥ मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता । अस्थि-

संचयनान्तोस्या भर्त्तुः संस्कार एव हि ॥ कीकसानां तु संस्कारो न्यायसिद्धोपि यो मतः ॥ एककाले मृतेप्येवं कीकसानां विधिः स्मृतः ॥ नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ॥"

स्त्रीपुरुष एकवार मृतक होजांय तो आपस्तंबने लिखाहै कि, उससमयमें मरनेमें संगही पितृयज्ञ करैं, और जिनमें द्विवचनहो ऐसे मन्त्रोंको स्वीकारकरतेहैं, कारण कि, बौधायनने लिखाहै कि, दाहपर्यन्त प्रेतकर्ममें तन्त्र होताहै, अस्थियोंके संचयन भी एकही होताहै, जल और पिंडदान पृथक् होतेहैं. सतीहोनेमें भी इसीप्रकारहै यही मदनरत्नमें कहाहै कि, भाष्यार्थसंग्रहकारने लिखाहै कि, एकसमयमें भर्ता और भार्या मृतक होजांय तो उनका दाह एकचितामें करै, और पिंडश्राद्ध भिन्न २ करै. जो किसीने यह लिखाहै कि, एककालमें स्त्री पुरुष मृतक होजांय तो पिताका दाह पृथक् करै, यह अनुचितहै. यज्ञके कर्ताओंकी यह सम्मति है कि, यहां पर्यन्त एकतंत्र करै, मृतकपतिके उपरांत जो स्त्री सती होगई हो, अस्थिसंचयनतक पतिका संस्कार ही उसका संस्कारहै, और (नीचों) का तो संस्कार न्यायसिद्ध नहीं है, एकसमयमें मरे अधमभी ऐसेही विधि लिखीहै जैसे नवश्राद्ध सपिंडीपर्यन्तकी विधिसे होताहै ॥

कपर्दिकारिकापि—"मृते भर्त्तरि तद्दाहात्प्राक् पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहादर्वाक्पतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकसानां तु संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् ॥ एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता ॥ तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगस्थिक्रिया भवेत् ॥" अस्थिसंचयनपृथक्त्वे विकल्पः ॥ सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्रचेताः—"एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक् पिण्डं समाचरेत् ॥"

कपर्दीकी कारिकामें लिखाहै कि, स्वामीके पीछे दाहसे प्रथम स्त्री मृतक होजाय वा स्त्रीके दाहसे प्रथम पति मृतक होजाय तो वहां एक चितामें दाह होताहै, और मन्त्रोंमें द्विवचनका ऊह करना. कीकस (नीच) जातिमें तो उनका संस्कार भिन्न २ होताहै, और एकदिन मरनेमें उनके नवश्राद्ध एकवार संयुक्त होतेहैं, मृतकपतिके पीछे पत्नी सती होय तो वहांभी दाह संग और अस्थिसंचयन भिन्न होताहै, अस्थिसंचयनके पृथक् होनेमें विकल्पहै, सतीहोनेमें सर्वत्र एकपाक प्रचेताने लिखाहै कि, यदि मरेहुए स्त्रीपुरुष एकचितामें दग्धकिये होंय तो पाक एक करै, और पिंड पृथक् २ दे ॥

उदकदानम् ।

अथोदकदानं वसिष्ठः—"शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्षमाणा अपोऽभ्यवयन्ति सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मम् ॥" आपस्तम्बः—"मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः पितुश्चासप्तमात् पुरुषाद्यावतां वा सम्बन्धो ज्ञायते तेषां प्रेतेषूदकक्रिया" इति ॥ याज्ञवल्क्यः—"सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः । अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।" सप्तमाद्दशमाद्वा दिवसादातदन्तमिति विज्ञानेश्वरः ॥ कातीयास्तु सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषादित्याहुः ॥ 'सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः' इति पारस्करोक्तेः ॥ मन्त्रस्नानांगमेवेति हेमाद्रिः ॥

अब जलदानको लिखते हैं, वसिष्ठने कहा है कि, अग्निमें शरीरको मिलाकर और उसको नहीं देखतेहुये जलके निकट जांय, वाम और दक्षिण हाथोंसे विषम मनुष्य जलदान करै. आपस्तम्बमें लिखाहै

कि, माताके योनिसम्बन्धी और पिताके सात पीढ़ियोंमें वा जितनोंका सम्बन्ध है विदित हो मरेहुये उतनोंको जलदान होता है, और गर्भसे वर्षपर्यन्तके बालकोंका निषेध है. याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, सातवीं वा दशवीं पीढीतक जातिके मनुष्य जलके निकट जांय, दक्षिणको मुख करके जल हमारे पापको दूर करो, यह कहकर नाम गोत्र उच्चारण कर और मौन होकर जलदान करैं, सातवें दशवें दिनसे दांत निकलनेतक जलदान होता है यह विज्ञानेश्वरने लिखा है. कातीय तो यह लिखते हैं कि, सातवें वा बारहवें पुरुषतक जलदान करना चाहिये, कारण कि, पारस्करने लिखा है कि, सातवें वा दशवें पुरुषतक एक ग्राममें जितने मनुष्य निवास करते हों उनमें जितनोंका संबन्ध विदित हो उनको जलदान करैं, दानका मन्त्र वही है जो स्नानसे है, यह हेमाद्रि लिखते हैं ॥

प्रचेताः–"प्रेतस्य बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्धर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिश्चेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणामुखाः ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः ॥" स एव 'नदीकूलं ततो गत्वा' इत्युक्त्वा "सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशाञ्जलीन् ॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पञ्चदश स्मृताः । त्रिंशच्छूद्राय दातव्यास्ततस्तु प्रविशेद्गृहम् ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ॥"

प्रचेताने लिखा है कि, प्रेतके बांधव वृद्ध वृद्ध के क्रमसे जलमें उतरकर स्नान करैं, और जलके निकट बैठकर और यज्ञोपवीत और वस्त्रको अपसव्य करके शूद्र दक्षिणमुख और ब्राह्मण उत्तरको और क्षत्रिय वैश्य पूर्वको मुख होकर जलदान करैं. प्रचेताने कहा है कि, नदीके किनारे जाकर सवस्त्र स्नानके पीछे शुद्ध और सावधान मनुष्य पत्थरको लेकर उसके ऊपर ब्राह्मणको दशअञ्जलि, क्षत्रियको बारह, वैश्यको पन्द्रह, शूद्रको तीस दें, फिर घरमें आवैं वहां फिर स्नान और घरकी शुद्धि करैं ॥

प्रेतस्नानम् ।

प्रेतस्नाने विशेषः शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे–"आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितस्ततः । कर्त्तव्यं तैः सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम् ॥" पूर्वपरिहितं वस्त्रं प्रक्षाल्य पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः ॥ अपन इति मन्त्रेण वामहस्तानामिकया जलालोडनम् ॥ अवतरणे वृद्धपुरःसरत्वोक्तेः 'यथाबालं पुरस्कृत्य' इति बौधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलतादयः ॥

प्रेतके स्नानमें विशेष शुद्धितत्त्वमें आदिपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, पहले वस्त्रको धोकर फिर धुले उसी वस्त्रको ओढकर सचैलस्नान करै, जैसे सब मल दूरहो अर्थात् पूर्वको त्यागे हुये वस्त्रको धोकर और धुले हुये वस्त्रको ओढकर फिर सचैलस्नान करै. जल हमारे पापको दूर करो, इस मन्त्रको उच्चारणकर बांये हाथकी अनामिका कनउंगलीसे जलको बिलावै. जलमें घुसनेमें वृद्धोंको आगे कहनेसे यह बौधायनका वाक्य है कि, बालकोंको आगे करके जलसे निकलनेमें है, यह हारलता आदि लिखते हैं ॥

अञ्जलिदानम् ।

आश्वलायनः–'सव्यावृता व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद्भवति, तत्प्राप्य सकृदुन्मृज्यैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा' इति ॥ प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयमप्युक्तं

'त्रिः प्रत्येकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति ॥ तथा–"दिनेदिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । बावद्वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते ॥" एकवृद्धिस्त्रिकवृद्धिर्वेत्यर्थः ॥

आश्वलायनने लिखाहै कि, सव्य होकर प्रेतको नहीं देखते, जहां जल अधिक हो वहां जाय, और जाकर प्रेतका नामगोत्र लेकर एक २ अञ्जली देनी. प्रचेताने तो प्रतिदिन तीन अञ्जली देना कहा है कि, प्रेत तृप्त हो यह कहकर प्रत्येक तीन २ अञ्जली दे, ऐसेही वाक्य है कि, प्रेतके निमित्त दिन २ जलसे पूर्ण अञ्जली दे, और जबतक पिंड समाप्त हो तबतक एक वा तीन अञ्जली प्रतिदिन बढाताजाय ॥

मदनरत्ने भरद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता "आशौचान्ते प्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽह्नि सकृद्दद्यात्पिण्डयज्ञावृतो दिवा ॥ त्रींश्च दद्याद्द्वितीयेऽह्नि तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥ षष्ठेऽह्नि चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे पञ्चदशका नवमे दश सप्त च ! एकोनविंशतिं चाग्रे शताञ्जलिमतं स्मृतम् । केचिद्दशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् । पञ्चपञ्चाशतं चान्ये स्वशाखोक्तव्यवस्थया ॥"

मदनरत्न और भरद्वाज गृह्यमें तो दो अञ्जलिकी भी वृद्धि लिखी है कि, अशौचके पीछे प्रेतका पुत्र तिलाञ्जलि दे पहले दिन अपसव्य होकर एक अञ्जली, दूसरे दिन तीन, तीसरे दिन पांच, चौथेदिन सात, पांचवें दिन ९ नौ, छठे दिन ग्यारह ११, सातवें दिन १३, आठवें दिन पंद्रह १५, नौवे दिन १७, दशवें दिन १९ उसके आगे सौ अञ्जली लिखी हैं. और कोई दशअञ्जली कोई सौ अंजली कोई ५५ अंजलि अपनी २ शाखामें लिखीहुई व्यवस्थासे कथन करते हैं, असमर्थमें गौतमने लिखाहै, प्रथम तीसरे सातवें नौवें दिन जलदान करे ॥

छन्दोगपरिशिष्टे–"अथानवेक्षयेत्पापः ? सर्वे चैव शवस्पृशः । गोत्रनामपदान्ते तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ॥" विष्णुपुराणे–सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥" रामायणे–"इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु पानीयं मद्दत्तमुपतिष्ठताम् ॥" दानवाक्ये विकल्पः ॥ याज्ञवल्क्यः–'कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥' काम इच्छा ॥ प्रेततृप्तीच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः ॥

छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, शव (मृतक) स्पर्श करनेवालेको न देखकर गोत्र और नामके पीछे मैं तर्पयामि उच्चारणकर दक्षिणको अग्रभागवाली कुशा और तिल लेकर पृथक् २ जलदान करना चाहिये, विष्णुपुराणमें कहा है कि, सपिंडीतक ऋजु सीधी एक २ कुशासे पितृकार्य करे, और सपिंडोंके पश्चात् दूनी कुशाओंसे विधिपूर्वक पितृकर्म करना चाहिये. रामायणमें कहा है कि, हे पुरुषशार्दूल ! निर्मल-दिव्य मेरा दिया हुआ यह जल पितृलोकमें अक्षय पूर्वक प्राप्तहो, दानके वाक्यमें विकल्प है, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, विवाही कन्या भानजा श्वशुर ऋत्विज इनको इच्छाके अनुसार अर्थात् प्रेततृप्तिकी इच्छा होय तो देना नहीं तो न देना ॥

शङ्खपारस्करौ–'आचार्ये चैवं' "मातामहयोश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वीरंस्ताश्च तेषाम्" इति ॥ द्विवचनान्मातामह्या अपि ॥ शङ्खलिखितौ–'उदकक्रिया कामं श्वशुरमातुलयोः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि:च' इति ॥ वृद्धमनुः–"क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना

व्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः" याज्ञवल्क्यः–'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा ॥'

शंख और पारस्करने लिखाहै कि, आचार्य नाना नानी विवाही कन्याओंको जलदें. और वे उनको दें. शंखलिखितका कथनहै कि, श्वशुर और मामाको यथेच्छ जल दान देना चाहिये, और शिष्य संन्यासी राजाको भी दे. वृद्धमनुने कहाहै कि, नपुंसक आदि, चोर, व्रात्य, और विधर्मी, गर्भ और स्वामीके द्रोही, मद्यपी स्त्री इनको जलदान न करना चाहिये. याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, ब्रह्मचारी और पतितको जलदान करना उचित नहीं ॥

षडशीतौ–"स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः पतिता ये च दूषिताः। न कुर्युरुदकं ते वै तेभ्योऽप्यन्ये न चैव हि ॥" मदनरत्ने हारीतः–"पतितानामवृद्धानां चरन्तीनां च कामतः। प्रत्तानां चैव कन्यानां निर्वर्त्या सलिलक्रिया" अपरार्के शङ्खलिखितौ–'अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि व्यावर्तन्ते ॥' अपपात्रितः कृतघटस्फोटः ॥ तस्यापि संग्रहविधौ कृते आशौचोदकादि कुर्यादेवेत्याशौचप्रकाशः ॥

षडशीतिमें कहाहै कि, निज आचरणमें भ्रष्ट, पतित, दूषित ये जल न दें, और औरभी इनको न दे मदनरत्नमें हारीतने कहाहै कि, पतित त्यागीहुई यथेच्छविचरती विवाही कन्याको जलदानका निषेधहै, अपरार्कमें शंखलिखितका वाक्य है कि, जो पात्रोंसे बाह्यहै उसका भाग, पिंड, जलदान निवृत्त होतेहैं, पात्रोंसे बाहिर वह होताहै, जिसका घटस्फोट हुआहो, यदि उसकी संग्रहविधि करदी होय तो अशौच और जलदान आदि करने, यह अशौचप्रकाशमें कहाहै ॥

अथाशौचे नियमाः।

याज्ञवल्क्यः–"इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः ॥ विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान्। प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि। क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्क्षितौ ॥" इदं चाद्येह्नि ॥ वसिष्ठः–'आद्ये प्रस्तरे गृहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वा वर्त्तेरन्' ॥

अब अशौचनियम लिखतेहैं. याज्ञवल्क्यने कहाहै, कि, यह सुनकर और बालकोंको आगे करके घरको जांय और मंदिरके द्वारपर नीमके पत्ते चाबकर आचमन करके अग्नि जल गोबर श्वेतसरसोंको छूकरके पत्थरपर चरण रखकर शनैः २ घरमें प्रवेश करें. यह प्रवेश आदिका कर्म प्रेतके छूनेवालोंको भी है, मोल-लेकर भोजनकरें और भूमिपर पृथक् २ शयन करें, यह प्रथमदिन है, वसिष्ठने कहाहै कि, प्रथमदिन भूमिपर सोवें और भोजनको त्यागकर रहैं, वा मोलके लिये वा औरका अन्न भक्षण करें ॥

शुद्धितत्त्वे बैजवापः–'शमीमालभन्ते शमी पापं शमयतु इति, आश्मानमश्मेव स्थिरो भूयासमिति, अग्निमग्निर्नः शर्म यच्छत्विति, ज्योतित्वन्तरा गामजमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वान्यगेहोदकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भुञ्जीरंस्त्रिरात्रं च कर्मोपरमणम्, क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य ॥' आश्वलायनस्तु–'नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन्, त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युः, द्वादशरात्रं वा' इत्याह ॥

शुद्धितत्वमें बैजवापने कहाहै कि, शमी पापको दूरकरो यह उच्चारणकर शमीको छुए; पत्थरके समान स्थिर रहूं यह कहकर पत्थरको, अग्नि हमें सुखदो यह कहकर अग्निको, ज्योतिरूप है यह कहकर बकरीको छुए, मोललिये वा औरके घरसे मिले लवणसे हीन अन्नजलको एकदिन भोजन करै, तीन दिनतक कर्मको छोडदे, मोललेकर भोजन करना उसके निमित्त है, जिसको व्रत करनेकी सामर्थ्य नहीं हो. आश्वलायनने तो लिखाहै कि, उसरातमें अन्नका पाक न करै, वा मोलका भोजन करै तीनराततक खारा और लवण न भोजन करै, वा बारहराततक न भोजन करै ॥

अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तम्बः–'नार्याः परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् ॥' यदा मृतिः परदिने तावत्कालमित्यर्थः ॥ बृहस्पतिः–"अधःशय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः। अक्षारालवणान्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥" भोगोऽभ्यङ्गताम्बूलादिः ॥ क्षाराः परिभाषायामुक्ताः ॥

असामर्थ्यमें तो रत्नाकरमें आपस्तम्बका कथन लिखाहै, भार्या परमगुरुके मृतक होनेपर मरनेके समयसे दूसरेदिन उसीसमयतक अकालमें भोजन करैं, बृहस्पतिने कहाहै कि, नीचे सोवें, दीनरहें, मलिन और भोगोंसे वर्जित रहैं, खारा और लवणहीन अन्नखावें, वा मिलाहुआ वा मोलका भोजन करैं, भोगपदसे उबटना तांबूल आदिलेना, खारे पदार्थपरिभाषामें लिखेहैं ॥

यत्तु मार्कण्डेयपुराणे–'तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्। तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः ॥ प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा। वस्त्रत्यागं बहिः स्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्" इति ॥ तदन्त्यदिनपरम् 'आशौचान्ते तिलकल्कैः स्नाता गृहं प्रविशेयुः' इति विष्णूक्तेः ॥ विष्णुपुराणे त्वस्थिसंचयोर्ध्वं भोगोऽप्युक्तः ॥ "शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते। अस्थिसंचयनादूर्ध्वं संयोगस्तु न योषिताम् ॥" भारते–"तिलान् ददत पानीयं दीपं ददत चाग्रतः। ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥"

और जो तो मार्कण्डेयपुराणमें कहाहै कि, तेलसे स्नान, अंगका दबवाना यह कर्म बान्धव करैं जो बांधव भोजन करतेहैं, उससे वह (प्रेत) पुष्ट होताहै, पहले तृतीय सप्तम नवम इन दिनोंमें वस्त्रोंको त्याग बाहिर स्नान करके तिलजल दें, वह वाक्य अंत्यदिनके विषयमें है,कारण कि, विष्णुने लिखाहै कि, अशौचके पीछे तिलकी खलसे स्नान करके घरमें प्रवेश करै. विष्णुपुराणमें तो अस्थिसंचयनके उपरान्त भोगभी लिखाहै, कि, शय्या आसनका भोग अस्थिसंचयनके सपिंडोंको इष्टहै, परन्तु स्त्रियोंका संग इष्ट नहीं. भारतमें कहाहै कि, तिल जल दीप दो, और जागो, ज्ञातिमें बैठकर भोजन करना यह प्रेतोंमें दुर्लभहै ॥

मनुः–'मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक्क्षितौ ॥' देवजानीये कारिकायाम्–"लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम्। वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत् ॥" मरीचिः–"प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा। ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥" भोजनं च दिवैव ॥ 'दिवा चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ' इति विष्णुपुराणात् ॥ 'क्रीत्वा लब्ध्वा

वा दिवान्नमश्नीयुः' इतिपारस्करोक्तेश्च ॥ मदनरत्ने हारीतः–'पाणिषु मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्नीरन् ॥'

मनुने लिखाहै कि, मांस भोजन न करैं, और पृथ्वीपर भिन्न हो शयन करैं. देवजानीयमें कारिका लिखीहै कि, लवण दूध उडद पूवे मांस खीरको बालक वृद्ध आतुरको छोडकर मंगवाये हुये अन्नमें त्यागदें, गुरुभार्या बेटेके मरनेमें व्रत होताहै. मरीचिने कहाहै कि, प्रथम तृतीय चौथे सातवें दिनोंमें ज्ञातियोंके संग भोजन करना प्रेतोंको दुर्लभ है, भोजनदिनमें ही करै, कारण कि, विष्णुपुराणमें लिखाहै कि, हे मनुष्योंमें उत्तम! मांसको त्याग कर दिनमें ही भोजन करैं. और पारस्करने भी कहा है कि, मोल लिये वा मिलेहुए अन्नको दिनमें भोजन करै, मदनरत्नमें हारीतका कथन है कि, हाथ मिट्टीके बरतन वा पत्तोंके दोनोंमें भोजन करना चाहिये ॥

देवजानीये ब्राह्मे शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे–'आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान् ।' अन्त्यादिने तु मदनरत्ने ब्राह्मे–"यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र गृहशुद्धिं च वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि ॥" अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तु तन्त्रेणैवोक्तम् "ग्रामाद्बहिस्ततो गत्वा प्रेतपृष्ठे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यथ ।" इति ॥ शङ्खः–"दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । प्रेतपिण्डक्रियावर्ज्यमाशौचे विनिवर्तते ॥"

देवजानीयमें ब्रह्मपुराणका कथनहै, और शुद्धितत्त्वमें आदिपुराणका कथन है कि, अशौचके बीचमें यत्नसे अपने सगोत्रियोंको जिमाना चाहिये. अन्त्यके दिन तो मदनरत्नमें ब्रह्माका वाक्य लिखाहै कि, जिस २ वर्णका जो २ पिछला दिवस है, वह उस दिन घरकी और वस्त्रोंकी शुद्धि करै, अन्त्यकर्म करनेके वस्त्रोंका उसी स्थलमें यह लिखा है कि, ग्रामसे बाहिर जाकर प्रेतस्पर्शके दोनों कपडे अन्त्यज और सेवकोंको देकर स्नान करै. शंखका कथन है कि, दान प्रतिग्रह होम वेदपाठ पितरोंका कर्म ये सब प्रेतकी पिंडक्रियाको त्यागकर अशौचमें निवृत्त होजातेहैं ॥

काठकगृह्ये–'यत्र प्राणोत्क्रमस्तत्रान्वहं महाबलिं कुर्यात्' ॥ इति ॥ पारस्करः 'तदानीमेव वस्त्रं तण्डुलं दीपं कांस्यभाजनं प्रेताय दद्यात्' ॥ आशौचप्रकाशे भरद्वाजः--वासोऽन्नं च जलं कुम्भे प्रदीपं कांस्यभाजनम् । नग्नप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥" भृगुः--"तिलोदकं तथा पिण्डान् नग्नप्रच्छादनादिकम् । रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम् ॥"

काठकगृह्यमें कहाहै कि, जहां प्राण निकले हों, वहां प्रतिदिन महाबलि देनी चाहिये, यह पारस्कर लिखतेहैं, और उसी समय वस्त्र चावल दीप कांसीका वर्तन प्रेतको दे. अशौचप्रकाशमें भरद्वाजका कथन है कि, वस्त्र अन्न जल घडा कांसीका पात्र धोती ये श्राद्धमें ब्राह्मणको देनी, भृगुका कथनहै कि, तिल जल पिण्ड धोतीका दान, इनको रात्रि और संध्यामें न करै, यदि करै, तो वह फल नहीं देता व्यर्थ है ॥

प्रेतपिण्डनिर्णयः ।

अथ प्रेतपिण्डः ॥ यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण–"ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः । वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः" ॥ इत्युक्तं तथापि–'प्रेतेभ्यः

सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान्दद्याद्दशैव तु' इति तेनैवोक्तेः सर्वेषां दशैव ज्ञेयाः ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ तथा च हेमाद्रौ ब्राह्मपाद्मयोः--"जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां क्वचिदेव हि । देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान्वपन्त्यपि" इत्युक्त्वा--विप्रान्नेषु दशमपिण्डोत्कर्ष उक्तः "देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेहनि । वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा ॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेह्नि दीयते ।" इति युद्धमृतादेः सद्यः शौचे त्र्यहादौ च तेनैवोक्तम् 'सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा ।' दैवतैक्येपि न सांतपनं प्राजापत्यवत्तंत्रेण किन्तु दशपिण्डान् पृथक् दद्यात् शिरस्त्वाद्येन पिण्डेनेति दशत्वविच्छिन्नायेव शरीरोत्पादकत्वात् ॥ "त्र्यहाशौचे प्रदातव्यः प्रथमेह्न्येक एव हि । द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पंच चैव हि ॥ " त्र्यहे प्रकारान्तरं प्रागुक्तम् ॥

अब प्रेतपिण्डको लिखतेहैं, यद्यपि हेमाद्रिमें पारस्करने ब्राह्मणको दश पिण्ड क्षत्रियको बारह वैश्यको पन्द्रह शूद्रको तीस लिखे हैं, तथापि सब वर्णोंके प्रेतोंको दश पिण्ड देने, यह उसने ही लिखा है, इससे सबके दशही जानने. मदनरत्नमेंभी ऐसेही लिखा है, सोई हेमाद्रिमें ब्राह्म और पद्मपुराणके वाक्य हैं कि, वर्णोंकी जातिके अशौचकी समान कहीं २ पिण्ड देतेहैं, और देशधर्मके अनुसार भी पिण्ड देतेहैं, यह लिखकर ब्राह्मणसे भिन्न जातियोंमें दशवें दिनका उत्कर्ष लिखा है कि, राजाओंको दशवां पिण्ड बारहवें दिन वैश्योंको पन्द्रहवें दिन, और शूद्रको महीनेकी पूर्तिपर होना चाहिये. युद्धमें मृतक हुये आदिके अशौचमें और तीनदिन आदिके अशौचमें उसनेही लिखाहै कि, सद्यःशौचमें सब पिण्ड एकवार देने चाहिये. देवता एकभी होय तो भी सांतपन और प्राजापत्यके समान तन्त्रसे न करै, किन्तु भिन्न २ दशों पिण्ड देने, कारण कि, प्रथम पिंडसे शिर होता है, इत्यादि वाक्यसे दशोंही शरीरके उत्पादक हैं. तीन दिनके अशौचमें प्रथम दिन एक दूसरेमें चार तीसरेमें पांच दे, तीन दिनका प्रकार पहले कहा ॥

शातातपः--'आशौचस्य च ह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु ।' तत्रैकपात्रे सकृत्त्यक्त्वा दश पिण्डान् दद्यात् ॥ "उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात्पूर्वपिण्डांस्तथैव च ॥" इति गृह्यकारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः ॥ शिलाविपर्ययघटस्फोटादेर्नावृत्तिः ॥ अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मण एकहायनिनयनवदप्रयोजकत्वात् ॥ तद्वच्चात्रालौकिकग्रहणम् ॥ केचित्तु--'नवान्यादाय भाण्डानि आरुकं चरुकं तथा' इति प्रचेतसोक्तेः पात्रानेकत्वमाहुः ॥ क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीयः । 'एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपद्यते । तद्बन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः ॥" इति शुद्धितत्त्वे बृहस्पतिस्मृतेः ॥ पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदन्ते कुर्यात् 'शावाद्द्विगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः ॥ आशौचान्ते आर्तवे कर्तुरस्वास्थ्ये वान्येन क्रिया सर्वावर्तनीया कर्तुर्विपर्ययात्कालातिक्रमयोगाच्च ॥

शातातपने कहाहै कि, अशौचका ह्रास होजाय तोभी दशही पिण्ड दे, वहां एक पात्रमें एकबार देकर दश पिंड देने, डुपट्टा, शिला, पात्र करता द्रव्यकी नष्टता होजाय तो पूर्व दी हुई अंजलि और दिये पिंडोंको दे, यह गृह्यकारिकामें पात्रके नष्ट होनेमें दोष लिखा है, शिलाका विपर्यय होजाय तो घटस्फोट दूसरी बार करना चाहिये, नेत्रोंके अभ्यंजन आदिकर्मोंको एक हायन (एकवर्ष) के लेजानेकी तुल्य बोधकता नहीं है, इसी प्रकार यहां लौकिक पदका ग्रहणहै, कोई तो नये पात्र आरुक और

चरुको लेकर इस प्रचेताके वाक्यसे अनेक पात्रोंको लिखतेहैं, क्रिया करनेवाला मृतक होजाय तो औरसे क्रियाको पूर्ण करावै, कारण कि, शुद्धितत्त्वमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, इसीप्रकार क्रिया करनेवालोंमें कोई यदि मृतक होजाय तो उसके बंधु क्रिया करैं, वा सब सहायता पूर्वक करैं, भार्या करती हो और रजोदर्शन होजाय तो रजके अन्तमें कर्म करै, कारण कि, मृतकके अशौचसे दूना आर्तवको मानै, अशौचके पीछे आर्तव होय, वा करनेवाला अस्वस्थ होय तो दूसरे सब क्रियाको करावैं, कारण कि, करनेवालेका विपर्यय है, और समयका अवलंबन हो नहीं सकताहै ॥

वाराहे-"स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । कृत्वा तु पिण्डं संकल्प्य नामगोत्रेण सुन्दरि ॥ " मरीचिः-"प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥" दर्भवर्जनमनुपनीतपरम् 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे-'भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयमुपलेपं वा दद्युः ॥' शुनः पुच्छः-"फैलमूलश्च पयसा शाकेन च गुडेन च । तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च । शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ॥"

वाराहपुराणमें लिखाहै कि, स्थंडिलपर प्रेतका भाग पूर्वाह्णमें नाम और गोत्र लेकर हे सुन्दरी ! पिण्डको संकल्पकर देना. मरीचिने लिखाहै कि, कुशा और मन्त्रसे वर्जित प्रेत पिंडको ईशानदिशामें चरुको सावधानीसे स्नान करके बनाकर बाहिर दे, कुशाका त्याग यज्ञोपवीत रहितके निमित्त है, जो संस्कार हीन हैं, उनको भूमिपर पिंड दे. संस्कारियोंको कुशापर दे. यह प्रचेताने कहाहै. मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, भूमिमें माल्यपिण्ड और पानी पत्थर पर है, शुनःपुच्छमें कहाहै कि, फल मूल दूध शाक गुडमें तिल मिलाकर कुशाओंपर दक्षिणदिशामें पिंड देने, और सेचन फूल धूप दीपको मंत्रके विना दे, वा सांठी सतू शाकका पिण्ड दे, प्रथम दिन जो द्रव्य हो वही दशदिनतक होना चाहिये ॥

मदनरत्ने मात्स्ये-"तैजसं मृन्मयं वाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः । लौकिकाग्नावधिश्रित्य पचेदन्नं घृतप्लुतम् ॥ स्नात्वाथ तिलसंमिश्रं प्रदद्याद्दर्भसंस्तरे ॥" शुद्धितत्त्वे देवजानीये च ब्राह्मे-"प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥ मृन्मयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसंयतः । तण्डुलप्रसृतिं तत्र त्रिः प्रक्षाल्य पचेत्स्वयम् ॥ सपवित्रैस्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशविवर्जितम् । द्वारोपान्ते ततः क्षिप्त्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम् ॥ भूपृष्ठे संस्तरे दर्भान् याम्याग्रान्देशसंभवान् । ततोऽवनेऽजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्रनामनी ॥ तिलसर्पिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तत्तमेव हि ॥ दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शीतलैः । ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासोभिः पिण्डमर्चयेत् ॥ दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु । सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा ॥ त्र्यहाशौचेपि दातव्यास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि

१ पिताका दशाह करते यदि पुत्रकी मृत्यु होजाय तो दूसरा पुत्र शेष पिण्ड दे, वह न होय तो उसका पुत्र प्रतिदिन पहले अपने पिताको पिण्ड दे, फिर स्नान कर पितामहको शेष पिण्ड दे कारण कि, औरका अधिकार नहीं है ।

क्षालयेत्ततः । दशाहेपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि ॥ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन् ॥" इत्याद्युक्त्वा-"एवं स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् ॥ तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः" इति ॥ पात्रं कुम्भः ॥ अत्राहःपदमहोरात्रपरम्, तेन रात्रावपि देय इति गौडाः ॥

मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, सुवर्ण वा मृत्तिकाके पात्रको यत्नपूर्वक पवित्र करके और लौकिक अग्निपर रखकर घी डाल अन्नको पकावे, और स्नान करके तिलोंसे युक्त पिण्ड कुशाओंपर दे, शुद्धितत्त्व और देवजानीयमें ब्रह्माका कथन है कि, प्रथम दिन जो मनुष्य सावधानीसे प्रेतको अन्न दे, उसीको और नौ दिनोंमें देने चाहिये. मिट्टीके नये बरतनको लेकर स्नान कर और जितेन्द्रिय हो तीनवार धोकर यह एक प्रसृति अंजलि तंडुल उस पात्रमें डाल दे, और स्वयं पक्व करै, पवित्री तिलोंसे युक्त और कीट और बालोंसे रहितको द्वारके समीप फेंककर वा शुद्ध श्वेत मृत्तिकाको फेंककर वेदीपर दक्षिणाग्रदेशमें उत्पन्न हुई कुशा रक्खे, फिर नाम गोत्र उच्चारण करके अवनेजन दे, तिल घी मधु दूध और वस्त्रसे पिण्डकी अर्चा करै. प्रतिदिन इसी क्रमसे पिण्ड देने और सद्यः शौचमें सब पिण्ड एकत्र देने और तीन दिनके अशौचमें भी सावधानीसे तीन पिण्ड देने चाहिये. और चार पिण्ड दूसरे दिन देने और एक अस्थिसञ्चयनमें देना तीन तीसरे दिन दे. फिर वस्त्रआदि धोकर एक दशवें दिन दे और प्रथम दिन एक दे और एकही जलकी अंजलि और एकही पात्र दे, दूसरे दिन दो तीसरे दिन तीन अंजली दे इत्यादि कहकर इस जलकी पचपन ५५ अंजली क्रमसे होती हैं, और तिल आदिसे युक्त जलके पात्रभी उतनेही होते हैं. पात्र कुंभ लिखतेहैं. यहां दिन पदसे दिनरात लेना इससे रात्रिमें भी दे, यह गौडोंका कथन है ॥

दिवसपदाद्रात्रौ नेति मैथिलाः ॥ स एवेत्युक्तेः सपिण्डेन दशपिण्डे प्रक्रान्ते पुत्रागमेपि स न दद्यात् ॥ 'असगोत्रः सगोत्रो वा' इति प्रागुक्तेः ॥ दाहकर्त्रैव दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् ॥ शुद्धितत्त्वे वायवीयेपि-"असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि" इति ॥ तत्रैव-"पूरकेण तु पिण्डेन देहो निष्पाद्यते यतः । कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तते क्रिया ॥"

दिवसके पदसे रात्रिमें न दे. यह मैथिलोंका कथन है. वही दे यह कहनेसे सपिण्डने जब दश पिण्डका प्रारम्भ करदियाहो पुत्रके आनेपर भी उसेही देनेचाहिये, कारण कि, असगोत्र हो, वा सगोत्र हो यह कहा है कि, जिसने दाह कियाहो वही दशाह करै यह मिताक्षरामें कहा है, शुद्धितत्वमें वायुपुराणका वाक्य लिखाहै कि, असगोत्र हो वा सगोत्र स्त्री हो वा पुरुष जो प्रेतको अग्नि दे वही पिंड दे. वहांही कथन है कि, जिससे पूरकपिंडसे देह उत्पन्न होताहै इससे कृतका करना अयोग्य है इससे फिर क्रिया न करै ॥

शुद्धिप्रकाशे वायवीयेपि-"निवर्तयति यो मोहात् क्रियामन्यनिर्वर्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥ तस्मात् प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि । न तां निर्वर्तयेत्प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन्" इति ॥ आदिपुराणे-"पितृशब्दं स्वधां चैव न प्रयुञ्जीत कर्हिचित् । अनुशब्दं तथा चेह प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ उपतिष्ठतामयं पिण्डः प्रेतायेति समुच्चरेत् ॥" क्रियानिबन्धे व्यासः-'प्रेताय पिण्डं दत्त्वा तु ततोऽश्नीयाद्दिनात्यये ॥'

शुद्धिप्रकाशमें वायुपुराणका कथनहै कि, औरकी कीहुई क्रियाको जो मनुष्य मोहसे निवृत्त करताहै वह उससे विधिका हनन करनेवाला और पिताका नाश करनेवाला होताहै, इससे जो जिस किसीने प्रेतक्रिया करदी होय तो सत्पुरुषोंका स्मरण करते हुए बुद्धिमान् पुरुषको उसकी निवृत्ति करनी न चाहिये. आदि पुराणमें कहाहै कि, पितृशब्द और स्वधाको किसीप्रकार न कहै, और अनु और इदं शब्दको यत्नपूर्वक त्यागदे, प्रेतको यह पिंड प्राप्त हो यह कहै. क्रियानिबंधमें व्यासका कथन है कि, प्रेतको पिण्ड देकर सूर्यास्त होनेपर भोजन न करै ॥

भविष्ये–"ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिषु। प्रथमेऽहनि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥ गृहद्वारि श्मशाने वा तीर्थे देवगृहेपि वा। यत्राद्ये दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ॥" ब्राह्मे–"शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम्। चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानू जंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा। सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥ दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च। दशमे स्यात्तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः" इति ॥

भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, चावल, मांस, सत्तू, शाक, मूल, फलमेंसे प्रथम दिन जो दे, दूसरे दिनभी वही देनी. गृह द्वार, श्मशान, तीर्थ, देवमंदिरमेंसे जहां प्रथम पिंड दे. वहांही सब दे. ब्रह्माका कथन है कि, प्रथम पिण्डसे प्रेतका शिर बनता है, दूसरेसे कान नेत्र नासिका, तीसरेसे कण्ठ कांधे भुजा छाती, चौथेसे नाभि लिंग गुदा, और पांचवेंसे जानु जंघा पाद, छठेसे सब मर्म, सातवेंसे नाडी, आठवेंसे दांत लोम, नौमेंसे वीर्य, दशवेंसे पूर्णता होकर क्षुधाका नाश होताहै ॥

याज्ञवल्क्येन तु–'पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्' इत्युक्तम् ॥ अत्र फलतारतम्यं ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ तेन त्र्यहाशौचपरत्वं देवयाज्ञिकोक्तं चिन्त्यम् ॥ 'आशौचस्य हि ह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु' इति वचनाच्च ॥ दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति हारलतादयः ॥ शातातपः–'जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥' पारस्करः–'मृन्मये तां रात्रिं क्षीरोदके विहायसि निदध्युः, प्रेतात्र स्नाहीत्युदकं पिब चेदमिति क्षीरम् ॥' इदं रात्रावेवेति गौडाः ॥

याज्ञवल्क्यने तो पिंड और अन्न अपसव्य होकर प्रेतको देने, इसी कथनसे यहां फलकी न्यून अधिकता जानना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर लिखतेहैं, इससे देवयाज्ञिकने जो तीन दिनके अशौचमें यह वाक्य लिखाहै वह निर्मूलहै और यह भी वाक्यहै कि, अशौचकी न्यूनतामें भी दशही पिंड दे, तीन दिनकी आवश्यकताके निमित्त यह हारलता आदि लिखतेहैं शातातपने लिखाहै कि,एकदिन आकाशमें रक्खे, मिट्टीके पात्रमें दूध रक्खे, पारस्करने लिखाहै कि, उस रात्रिमें दूध और जल मृत्तिकाके पात्रमें आकाशमें दे और यह कहे कि, हे प्रेत! यहां स्नान कर और दूध पी. यह रात्रिमें दे यह गौड कहतेहैं ॥

गारुडे–तु 'अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम्' इत्युक्तम् ॥ हेमाद्रौ पाद्मे तु दशाहमुक्तम् ॥"तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयो जलम्। सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥" देवजानीये कारिकायाम्–"तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम्। कुर्या-

त्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्त्तिकम् । भोज्याद्‌ भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥ नामगोत्रेण संबुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत् ॥" शातातपः–"भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत् ॥ तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु ॥"

गारुडमें तो यह लिखाहै कि, कच्चे मिट्टीके पात्रमें तीन दिन दूध दे. हेमाद्रिमें तो पद्मपुराणके वाक्यसे दश दिनतक दूध देना लिखाहै कि, इससे सब तापोंकी शांति और मार्गके श्रमनाशके अर्थ दश राततक आकाशमें दूध जल रक्खे. देवजानीयमें कारिका लिखीहै कि, वहां प्रेतके हितके निमित्त दश रात्रतक तेलका अखण्डित दीप मृत्तिकाके पात्रमें परलोकके सुखनिमित्त दे, और भोजनके समय भोजनके पदार्थमेंसे एक मुट्ठी अन्न नाम गोत्र और संबोधनसे भूमिपर अपसव्य होकर रखदे, शातातपने लिखाहै कि, भूलोकसे प्रेतलोकमें जानेकेलिये श्राद्ध करै, वही मृतकके मार्ग चलनेमें प्राप्त होताहै ॥

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः ।

भविष्ये–"प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते । समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत् ॥" ऋष्यशृङ्गः–"आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् । समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥" पैठीनसिः–"आद्येन्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया । द्वितीयेन्दवे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते ॥" मातापित्रोस्तु श्लोकगौतमः– "अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन् ॥" इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते ॥ तदूर्ध्वं दर्शे तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्यमेव "पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापयेत् । तावदेवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम्" इति गालवोक्तेः ॥

अब यदि दश दिनके मध्यमें अमावस्या आजाय तो उसका निश्चय कहतेहैं. भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, यदि अशौचके मध्यमें अमावस आजाय तो जल और पिंड समाप्त करके स्नान करै. ऋष्यशृङ्गने कहाहै कि, यदि अशौचके बीचमें अमावस्या आजाय तो प्रेतके तंत्रकी पूर्ति होतीहै यह गौतमका मतहै, पैठीनसिमें लिखाहै कि, पहले चन्द्रमामें प्रेतपिंड और जलदान करै, दूसरे चन्द्रमामें महीनेमें करै तो फिर शावसूतक लगता है. माता पिताके विषयमें गौतमने कहाहै कि, दश दिनके भीतर अमावस्या होजाय तो वहां सब पूर्ति करै, और माता पिताका तो जबतक अशौच हो तबतक जलकी अंजली दे, यहभी तबहै जब तीन दिनके बीचमें अमावस्या हो. उसके उपरान्त अमावस्या होय तो माता पिताका भी तन्त्र पूर्ण करने योग्यहै, कारण कि, माता पिताके अशौचमें यदि अमावस्या होजाय तो तबतकही तीन दिनके अनन्तर तंत्रको पूर्ण करदे. यह गालवने लिखाहै ॥

अन्येषां तु त्र्यहमध्येपि समाप्तिरिति पराशरमाधवीये निर्णयामृते चोक्तम् ॥ कालादर्शेपि–"दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत् । त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृताविति विनिश्चयः ॥ मदनपारिजाते तु गालवीयमापदनौरसपुत्रादिविषयम् ॥ त्र्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तन्त्रसमाप्तिरित्युक्तम् ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ मम तु देशाचाराद्व्यवस्थेति प्रतिभाति ॥

औरोंमें तो तीन दिन इसकी पूर्ति होती है, यह पराशर माधवीय और निर्णयामृतमें कहाहै, कालादर्शमें भी लिखाहै कि, दर्श दशाहके बीचमें होय तो उसके उपरान्त तन्त्रकी पूर्ति करै. यदि पिता माताके

मरे पीछे तीन दिनके मध्यमें हो यह निश्चय है, मदनपारिजातमें तो गालवका वाक्य आपत्ति और औरससे भिन्न पुत्रके विषयमें है, तीन दिनके पीछे भी माता पिताके मरणमें दर्श होय तो तन्त्रकी पूर्ति नहीं होती यह लिखा है. मदनरत्नमें भी इसीप्रकार है । मुझे तो यह यथार्थ प्रतीत होताहै कि, ऐसी व्यवस्था देशके आचारसे लिखीहै ॥

अथास्थिसंचयः ।

तत्राश्वलायनेन च कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु आषाढीफाल्गुनीप्रौष्ठपदीभिन्नर्क्षे उक्तम् । तदाशौचमध्येऽसंभवे तदूर्ध्वं च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयम् ॥ आशौचमध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः–"प्रथमेह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥" छंदोगपरिशिष्टे तु–'अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसंचयनं भवेत्' इति द्वितीये युक्तम् ॥

अब अस्थिसंचयको कथन करते हैं, उसमें आश्वलायनने कृष्णपक्षकी एकादशीमें, दर्शमें, पूर्वाषाढ, फाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद इनसे पृथक् नक्षत्र होय तो दोष लिखाहै कि, वह अशौचके बीचमें न होसके और उसके पश्चात् वर्षसे प्रथम करनेमें जानना चाहिये, अशौचके बीचमें तो मदनरत्नमें संवर्तका वाक्यहै कि, पहले दिन तीसरे सातवें नवमें दिन सगोत्रियोंके संग अस्थिसंचय करै. छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, दूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचय होताहै, इस वाक्यसे दूसरे दिनभी लिखाहै ॥

विष्णुकात्यायनौ–'संचयनं चतुर्थ्याम्' इति ॥ माधवीये यमः–"भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत् । वर्जयेदेकपादर्क्षे द्विपादर्क्षेऽस्थिसंचयम् ॥ प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्क्षे विशेषतः ॥" ब्राह्मे–"चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेऽहनि भूभृताम् । नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम् ॥" दशमेहनीति वा पाठः ॥ शौनकः–'पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः संचयनं भवेत् ॥' काम्यमरणे तु तस्य त्रिरात्रमाशौचम् । द्वितीये त्वस्थिसंचय इत्युक्तम् ॥

विष्णु और कात्यायनका वाक्यहै कि, चौथे दिन संचयन करै, माधवीयमें यमका वाक्यहै कि, मंगल, सूर्य, शनैश्चर और युग्म तिथि और एकपाद और द्विपाद नक्षत्र इनमें अस्थिसंचयन त्यागने योग्यहै, और विशेषकर पिंड देनेवालेका जन्म नक्षत्र और त्रिपाद नक्षत्रोंमें भी त्यागने योग्यहै, ब्रह्माका वाक्यहै कि, ब्राह्मणोंके चौथे दिन, राजाओंके पांचवें दिन, वैश्योंके यहां नौमें दिन, शूद्रके यहां दशवें दिन पीछे अस्थिसंचय करना, वा दशवें दिन यह पाठहै. शौनकका वाक्यहै कि, यदि ढाकके काठमें अस्थियोंका दाह हुआ होय तो सद्यः अस्थिसंचयन प्राप्त होताहै, यदि काम्य (इच्छासे) मृत्यु होय तो उसका अशौच त्रिरात्र होताहै, दूसरे दिन अस्थिसंचय करै यह कथन कर आये हैं ॥

अङ्गिराः–"प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः ॥" तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ ज्ञेयः ॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे–"त्रीणि संचयनस्यार्थे तानि वै शृणु सांप्रतम् । यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः ॥ ततः संचयनस्यार्थे तृतीये श्राद्धमिष्यते ॥"

अंगिराका वाक्यहै कि, प्रेतके निमित्त जो मनुष्य देवताओंका पूजन पवित्र होकर नहीं करता, उसको देवता शाप देतेहैं, उसकी विधि भट्टके रचे अपने २ सूत्रमें जाननी चाहिये. हेमाद्रिके नागरखंडमें

कहा है कि, संचयनके निमित्त तीन श्राद्धहैं उनको तू अब श्रवण कर. जहां मृत्यु हो वहां श्राद्ध करै, जहां विश्राम किया हो उस जगहमें एकोद्दिष्ट कर फिर अस्थिसंचयनके निमित्त तीसरा श्राद्ध करना कहाहै ॥

अपरार्के मदनरत्ने च ब्राह्मे—"सद्यः शौचे तथैकाहे सद्यः संचयनं भवेत् । त्र्यहाशौचे तृतीयेह्नि कर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः ॥" तत्रैव—"श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत् । मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥ सुपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा । फलैर्मूलैर्वनोत्थैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः ॥ धूपो दीपस्तथामाल्यमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः । तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्रेः समन्ततः ॥ निवेदयद्भिर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः । नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा ॥ येऽत्र श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः । तेस्मत्सकाशाद्गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमक्षणम् ॥ प्रेतस्यास्य शुभाँल्लोकान् प्रयच्छन्तु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च ददतां चिरम् ॥ एवं कृत्वा बलीन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः । एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम् । तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः ॥ प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥ शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वाभ्यां चैव पादतः । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्ट्य च ॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे ॥ अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयत्यपि । गृहीत्वास्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिःक्षिपेत् ॥ ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः । पूजां च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववत्क्रमात्" इति ॥

अपरार्क और मदनरत्नमें ब्राह्मका वाक्यहै कि, सद्यः शौचमें पहले दिनही सद्यः अस्थिसंचयन होता है, और तीन दिनके अशौचमें तीसरे दिन अस्थिसंचय करना होता है. वहांही कहाहै कि, श्मशान देवताओंका पूजन चोथे दिन मृत्तिकाके पात्रोंमें कुम्भ और दोनोंमें भलीप्रकार पके भक्ष्य भोज्य पायस और जल पानोंसे करै, और वनके फल मूलोंसे क्रव्याद देवताको पूजे और धूप, दीप, माला, अर्घ्यको त्यागकर कहैं कि, क्रव्याद मुख्य देवताओंको नमस्कारहै, और जो इस श्मशानमें ऐश्वर्यवाले सनातन देवताहैं, वे हमारे निकटसे अष्टांग अक्षय बलिको स्वीकार करो और इस प्रेतको सुन्दर लोक और हमैं बहुत कालतक आयु आरोग्य सुख दो, इस प्रकार बलि देकर और दूधसे छिडककर मौन हो तीन पिंड दे, एक तो श्मशानवासी भूतोंके निमित्त, दूसरा मध्यमें प्रेतको और तीसरा प्रेतके मित्रोंको अपसव्य होकर देना, फिर यज्ञके वृक्षकी शाखाको लेकर और मौन होकर यह प्रेतको प्रधान अंगकी अस्थियोंको ग्रहण करै. शिर छाती हाथ पार्श्व और पादोंके ग्रहण करै, पश्चात् गव्यमें स्थापन करके पाटके वस्त्रसे लपेटे और मृत्तिकाके नये पात्रमें रक्खै, और वस्त्रसे ढकै और वनके वृक्षको मूलमें स्थापन करै, अस्थि और भस्मको ग्रहण करके जलमें डालदे, फिर पृथ्वीको मार्जन करके गोबर और जलसे लीपै और फूल धूप बलि आदिसे पीछे कहे अनुसार पूजा करनी चाहिये ॥

अथ तीर्थेस्थिक्षेपविधिः ।

तत्रैव—"तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवीजले । कश्चित्क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥ मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य

नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे-"अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथंचित् । सद्बान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य । ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोस्तु धर्माय वदेत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं स दक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात् ॥ एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या" ॥

अब तीर्थमें अस्थिनिक्षेपकी विधि लिखतेहैं, वहांही कहाहै कि, उस स्थानमें जाकर पुत्र दौहित्र वा सहोदर शनैः गंगाजलमें अस्थि डालै, माता पिता कुलको छोड नीच और कुलमें उत्पन्न हुएकी अस्थि लेजाताहै, उसे चान्द्रायण करना होता है, वहांही ब्रह्माण्डपुराणका कथनहै कि, माता पिताके पूर्ववंशियोंके अस्थि जो गंगामें दया करके और अपने बांधवकी किसीप्रकार डालतेहैं उनको तीर्थका फल प्राप्त होता है, फिर स्नान करके पञ्चगव्य छिडककर सुवर्ण मधु घी तिल मिलाकर मिट्टीके बरतनमें रखकर दक्षिणदिशाको देखता और धर्मको नमस्कार है, यह कहता हुआ जलमें प्रविष्ट होकर वह प्रेत मुझपर प्रसन्न हो, यह कहकर डालदे और उठकर सूर्यको दर्शन कर ब्राह्मणोंमें मुख्यको श्रेष्ठदक्षिणा दे, इसप्रकार करनेसे प्रेतकी स्वर्गमें इन्द्रके तुल्य गति होती है ॥

यमः-"गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥" तथा-"अस्तंगते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे । गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥" दशाहान्तर्न दोषः "दशाहस्यान्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति । गंगायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात्" इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः ॥

यमने कहाहै कि, जिन शुभकर्मियोंकी अस्थि गंगाजलमें डालीजाती हैं, वह सनातन ब्रह्मलोकसे फिर नहीं आते, इसी प्रकारका वाक्यहै कि, गुरु और शुक्रके अस्तमें मलमासमें गंगामें अस्थि न सिलावै यह गौतम लिखतेहैं, दश दिनके बीचमें दोष नहीं कारण कि, मदनरत्नमें वृद्धमनुने लिखाहै कि, दश दिनके भीतर जिसकी अस्थि गंगाजलमें पडतीहैं वह गंगाजलमें मरनेके फलको प्राप्त होताहै ॥

शौनकः-"शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात् । आदौ ग्रामाद्बहिर्गत्वा स्नानं कुर्यात्सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत्पंचगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः ॥" गायत्र्याद्यैः पंचगव्यमन्त्रैर्निखातास्थिभूमिं प्रोक्षेदित्यर्थः ॥ "उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा । मृत्तिकोद्धरणं चास्थ्नां ग्रहणं च यथाक्रमम् ॥" उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम् ॥ "स्नात्वास्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विद्रेतिसूक्ततः । स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । भस्म मृन्मधु आदीनि मन्त्रतस्तानि वै दश ॥ कुशैः संमार्जयेदस्थीन्यतोदेवेतिमन्त्रतः । एतोन्विद्रं शुचीवेति नतमंह इतीति च ॥ पावमानीर्ममाग्नेश्च रुद्रसूक्तं यथाक्रमम् ॥" एतैः कुशैर्मार्जनम् ॥

मैं शौनक अस्थियोंके सिलानेकी विधि क्रमसे लिखताहूँ, पहले ग्रामसे बाहिर जाकर और सचैल स्नान कर मंत्रोंसे पृथ्वीको छिडककर अर्थात् गायत्री आदि मंत्रोंसे पञ्चगव्यसे भूमिको सिंचन कर उपसर्प

आदि मंत्रोंसे पृथ्वीकी प्रार्थना और खोदे, मिट्टीको उखाडे, और अस्थियोंका ग्रहण करै, उपसर्प आदि चार मंत्रोंसे क्रमसे प्रार्थना आदि जाननी, स्नान करके 'एतोन्विद्रं' इस सूक्तसे अस्थियोंकी शुद्धि करै, और स्नान और पंचगव्यसे अस्थियोंके स्पर्शकी शुद्धि होतीहै, और तिस २ मंत्रसे बुद्धिमान् मनुष्यके दश स्नान करना चाहिये और मंत्रसे वे दश स्नान ये हैं कि, गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशाका जल, भस्म, मिट्टी, मधु और जलसे, फिर 'अतो देवा' इस मंत्रसे अस्थियोंका मार्जन करै, और इन मंत्रोंसे कुशाओंसे मार्जन करै कि, एतोन्विद्रं शुचीवो० नतमंहो० पावमानी ऋचा, इमं मे० रुद्रसूक्त पढ कुशासे मार्जन करै ॥

"हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितॄनुद्दिश्य यत्नतः । पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥" अस्थिक्षेपांगं चेदम् ॥ "अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाः शाणमेव च । भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥ हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा । निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः ॥ उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते ॥ मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नास्थीनि धारयेत् ॥

फिर यत्नसे सोनासे श्राद्ध पितरोंके निमित्त करै, फिर पिंडदान और तिलोंसे तर्पण करना. यह [illegible] अस्थि सिलानेका अंग है, इन सातोंसे अस्थियोंका लपेटना लिखाहै कि, मृगछाला, कंबल, कुशा, गौके केश शण, भोजपत्र, ताडपत्र, और सुवर्ण, मोती, चांदी, मूंगा, नीलक, इनको अस्थियोंके मध्यमें डाले अन्यथा शुद्धि नहीं होती, पुनः बुद्धिमान् मनुष्य तिल घीसे होम करै. और 'उदीरता' इस सूक्तसे एकसौ आठ १०८ आहुति दे, फिर जाकर तीर्थमें फैंके, स्पर्शका दोष नहीं लगता, मूत्र और पुरीष करने उपरान्त आचमन करके फिर अस्थियोंको धारण करै ॥

अत्र दशदानं वैतरणीऋणमोक्षपापधेनुयानमुक्तम् । दिवोदासीये काशीखण्डे–"धनंजयोपि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः । आदायास्थीन्यथो मातुर्गंगामार्गस्थितोभवत् ॥ पंचगव्येन संस्नाप्य तथा पंचामृतेन वै । यक्षकर्दमलेपेन क्षिप्त्वा पुष्पैः प्रपूज्य च ॥ आवेष्ट्य नेत्रवस्त्रेण ततः पट्टाम्बरेण च ॥ ततः सुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥ नेपालकम्बलेनाथ मृदा चाथ विशुद्धया ॥ ताम्रसंपुटके कृत्वा मातुरंगान्यथो वहेत् ॥"

यहां दश महादान और ऋणमोक्ष पापधेनुओंका दान दिवोदासीयमें लिखाहै, काशीखंडमें लिखाहै कि, माताकी भक्तिमें तत्पर धर्मात्मा धनंजयके समान माताकी अस्थिको लेकर गंगाके मार्गमें नहीं स्थितहुए वहां पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराकर चंदनसे लीप और फूलोंसे पूजकर और वस्त्र और रेशमके वस्त्रसे लपेट कर और सुरस वस्त्रसे फिर मंजीठके वस्त्रसे फिर नेपालके कंबलसे फिर शुद्ध मृत्तिकासे लपेट कर और तांबेके तष्टेमें करके माताके अंगोंको लेचले ॥

व्यासः–"पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपट्टं च अजिनं च तथोत्तरम् ॥" एषां विकल्पः ॥ अन्यश्चात्र ॥ विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः ॥ संचयनोत्तरं श्राद्धमाहाश्वलायनः 'श्राद्धमस्मै दद्युः' इति स्मृत्यर्थसारे–'संचयने कृते मनुष्यलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यमिति ॥ अनुपनीतस्य न संचयनम् ॥

---

१ उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीम्सुशेवाम् ॥ ऊर्णम्रदायुवतिर्दक्षिणावत् एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ ऋ० ७ । ६ । २७ ॥

व्यासने कहा है कि, पाटका, कुशाका, मंजीठका, वस्त्र, श्वेतवस्त्र, कंबल, शण, मृगछालाके लपेटनेमें विकल्प है, अर्थात् चाहै जिसमें लपेटे, इसमें जो कुछ और विशेष है, वह त्रिस्थलीसेतुमें और दिवोदासीयमें लिखा देखना, अस्थिसञ्चयनके उपरांत आश्वलायनने श्राद्ध लिखाहै कि, प्रेतको श्राद्ध दे, स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, अस्थिसञ्चयन किये उपरांत मनुष्यलोकमें जाओ, और पाथेयका श्राद्ध सीधेसे करना, जिसका उपनयन नहीं हुआ उसका सञ्चयन नहीं होता ॥

नवश्राद्धनिर्णयः ।

अथ नवश्राद्धं पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः—"प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥" शिवस्वामी—"नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥" पञ्च एकादशाहिकं विना 'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमाद्, यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात्' इति मदनरत्ने बौधायनोक्तेः ॥ भविष्ये—"नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥"

अब नवश्राद्धको लिखते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें अंगिराका कथन है कि, पहले तीसरे सातवें नवमें दिन जो हो उसे नवश्राद्ध कहते हैं. शिवस्वामीने लिखाहै कि, आश्वलायनशाखावाले पांच नवश्राद्ध लिखते हैं, आपस्तंब छः लिखते हैं, दूसरोंमें विकल्प है, कारण कि, मदनरत्नमें बौधायनने यह लिखाहै कि, पञ्चम और एकादशाह आदिके विना मृत्युसे विषम एक २ दिनमें नौदिनपर्यन्त एक २ श्राद्ध करै, यदि नौवें दिन न होसके तो ग्यारहवें दिनमें श्राद्ध करै. भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, वैश्य और क्षत्रियोंके नव और सात श्राद्ध क्रमसे होते हैं, और पहले और पीछेके वर्णोंके छः होते हैं, यह महर्षि कहते हैं ॥

हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः—"अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्न विमुच्यते । अर्वाक् तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तराति दुष्कृतम् ॥" अतः षडेव ॥ एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते ॥ नागरखण्डे तु—"पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्राद्धानि तानि च" इत्युक्तम् ॥ कात्यायनस्तु—"चतुर्थ पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥" प्रथमे सप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यासपाठः ॥ बह्वृचानां तु—'नवश्राद्धदशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्' इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ॥

हेमाद्रिमें वृद्धवसिष्ठने कहा है कि, नवश्राद्ध न मिले तो प्रेतयोनिसे छुटकारा नहीं होता और द्वादशाहसे प्रथम नवश्राद्धको प्राप्तहोकर पापसे तरजाता है, इससे छःहीहैं, इनकोही विषमश्राद्ध कहाहै. नागरखण्डमें तो यह लिखाहै कि, पञ्चम सप्तम अष्टम नवम दशम एकादश इन दिनके श्राद्ध नवश्राद्ध कहातेहैं. कात्यायनने लिखाहै कि, चौथा पांचवां नौमाँ ग्यारहवां इनमें जो कुछ जंतुको दियाजाय वह नवश्राद्ध कहाताहै, पहले और सातवेंमें यह पहले पादमें पाठहै. बह्वृचोंके निमित्त तो यह कहा है कि, दशदिनतक और नवमें दिन और छः ऋतुपर्यन्त नवश्राद्ध लिखेहैं यह नारायणवृत्तिमें कहाहै ॥

चतुर्थदिनकृत्यम् ।

दीपिकायाम् ॥ अथ तनुयादाद्ये चतुर्थे दिने श्राद्धे पञ्चमसप्तमाष्टनवादिग्रुद्रेषु युग्मद्विजैः ॥ "प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चसप्तनवस्वपि । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकं तु

विन्यसेत् ॥" एको विषमश्राद्धेवयवपिण्डश्चैक इति द्वावित्यर्थः ॥ अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्था ॥ अपरार्के भविष्ये-"नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च । न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः ॥" वाराहे-"गतोसिं दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये । पूजयिष्यामि भोगैस्त्वामेवं विप्रं निमन्त्रयेत् ॥" आवाहनेपि तत्रैव-"इहलोकं परित्यज्य गतोसि परमां गतिम् । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये" इति ॥

दीपिकामें लिखाहै कि, उसके पीछे चौथे दिन पहले प्रहरमें श्राद्ध करै, पांचवें सातवें आठवें नौमें दशमें ग्यारहवें दिनोंमें दोदो पिंड देने, और शेष दिनोंमें एक २ पिंड दे यह अर्थ है कि, एक पिण्ड विषम श्राद्धका और एक पिंड शरीरके अवयवका ये दो दे, इसकी व्यवस्था शाखाके भेदसे है. अपरार्कमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, नवश्राद्ध त्रिपक्ष, षण्मास और मासिक इन श्राद्धोंको जो पुत्र नहीं करता उसके पितर नरकमें जाते हैं. वाराहपुराणमें लिखा है कि, मृत्युके रचेमार्गसे दिव्यलोकमें तू वायुरूप मनके द्वारा गयाहै, हे प्रेत तुझे मैं ब्राह्मणमें नियुक्त करताहूं, मैं तेरा भोगोंसे सत्कार करूंगा, इसप्रकार ब्राह्मणको निमन्त्रण दे आवाहनमें भी वहांही लिखाहै कि, इस लोकको त्यागकर तू परमगतिको पवनरूप मनसे प्राप्त हुआहै मैं तुझे ब्राह्मणमें नियुक्त करताहूं ॥

तत्रैव बह्वृचपरिशिष्टे-"अनूदकमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम् । नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥" उदकमर्घ्यः ॥ पिण्डोदकं शुन्धंतां पितर इत्यवनेजनादि । "एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । नाग्नौकरणमन्त्रश्च एकं वात्र तिलोदकम् ॥ अनपत्येषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥ एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न विद्यते । पितृशब्दं न कुर्वीत पितृहा चोपजायते ॥" सपिण्डनात्प्रागिति हेमाद्रिः । 'तेन स्वधां प्रयुञ्जीत प्रेतश्राद्धे दशाहिके ॥' इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहे स्वधाप्रयोग एवेति हारलता परास्ता ॥

वहांही बह्वृचपरिशिष्टमें कहाहै कि, अर्घ धूप गन्ध पुष्प मन्त्र पिंड जल इतने कर्मोंका नवश्राद्धमें निषेध है पितर पिंड जलसे शुद्ध होवैं इस मन्त्रसे अवनेजन आदि लेने. सब एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें स्वधा और अभिरम्यताम् अग्नौकरण मन्त्र और तिलोदक इतने कर्म नहीं होतेहैं, सन्तानसे हीन सबके श्राद्धमें स्वधा अभिरम्यताम् नहीं कहे जाते और ॐकारसे हीन स्वस्तिको कहकर विसर्जन करै. एकोद्दिष्टके पिण्डमें अनुशब्द नहीं होता, और पितृशब्द न उच्चारण करै, करै तो पितरोंको मारनेवाला होता है, यह सब वार्ता सपिंडीसे प्रथम होनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रिने कहाहै, इस दश दिनतकके श्राद्धमें स्वधा और प्रेतशब्द उच्चारण करै, इस ऋष्यशृंगके वाक्यमें दशाहिक कहनेसे एकादशाहमें स्वधाशब्दका प्रयोग होताहै इस वाक्यसे यहां हारलता परास्त होती है ॥

रत्नावल्याम्-"आशिषो द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः स्वसंबद्धः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् । तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणा विसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा । अष्टादश पदार्थांश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥"

रत्नावलीमें कहाहै कि, आशीर्वाद, द्विगुण कुशा, जयका आशीर्वाद, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, अपना सम्बन्ध और शर्मशब्द, पात्रोंका आलम्भ, अवगाह, उल्मुक उल्लेखन, तृप्तिप्रश्न, विकिर, शेषका प्रश्न, प्रदक्षिण, विसर्जन और सीमाके अन्ततक जाना यह अठारह १८ पदार्थ प्रेतश्राद्धमें त्यागने चाहिये ॥

अत्र स्वधापितृनमःशब्दानां तिलोसीतिमन्त्रे प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् ॥ तूष्णीमर्घ्यदानम् ॥ अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः ॥ नाम्ना एकः पिण्डः ॥ निनयनमन्त्रे ऊहः ॥ अनुमन्त्रणादि त्वमन्त्रकम् ॥ अभिरम्यतामिति विसर्जनम् ॥ एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु ॥ 'नवश्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वम्' इति नारायणवृत्तिः ॥

इस श्राद्धमें स्वधापितृनमः शब्दसे, तिलोसि इस मन्त्रसे प्रेतशब्दके ऊहसे वा मौन हो तिलोंको डाल दे, और मौनहो अर्घ दे, और अमुष्मै स्वाहा कहकर प्रेतके नामसे हाथमें हवन करै, नाम लेकर एक पिण्ड देना. निनयनके मन्त्रमें ऊह करना चाहिये, अनुमन्त्रण आदि विना मन्त्रके करना, अभिरम्यतां कहकर विसर्जन करना, यहभी नवश्राद्धसे भिन्न एकोद्दिष्ट जानना, नवश्राद्धमें तो विना मन्त्र सब होता है, यह नारायणवृत्तिमें कहा है ॥

क्रियानिबन्धे-"उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः । न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशान्न्यसेत् ॥ नवश्राद्धं गृहे कुर्याद्भार्या यत्राग्नयोपि वा । सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्राद्धानि यानि वै । तानि स्युर्लौकिके वह्नावित्याह त्वाश्वलायनः ॥" इदं संभवेऽन्नेन कार्यम् ॥ "नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहपर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशेषं च न तद्भुञ्जीत कर्हिचित्" इत्यङ्गिरोवचनलिङ्गात् ॥ 'द्वाभ्यां तदा तु कृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम् इति ब्राह्मे उक्तम् ॥ विघ्ने तु निर्णयामृते कण्वः-"नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥"

क्रियानिबन्धमें कहाहै कि, बुद्धिमान् मनुष्यको एकोद्दिष्टमें सदा सीधा पात्र रखना चाहिये, और पार्वणमें औंधा करना चाहिये. और उसके ऊपर कुशा रखदे, नवश्राद्ध जहां पत्नी और अग्नि हो वहां करै, सपिंडीतक जितने प्रेत श्राद्धहैं, वे सब लौकिक अग्निमें होते हैं, यह आश्वलायनने लिखा है. यह संभव होय तो अन्नसे करना चाहिये, कारण कि, यह अंगिराका लिखा वाक्यहै । प्रमाण है कि, नवश्राद्धका शेष, घरका बासी अन्न, स्त्री पुरुषको भोजनका शेष इनको कभी भोजन न करै. ज्ञानियोंकी तो दो कृच्छ्रोंसे शुद्धि होतीहै यह ब्राह्ममें लिखाहै. विघ्न होजाय तो निर्णयामृतमें कण्वका कथनहै कि, जिस नवश्राद्ध वा मासिकमें विघ्न होजाय वह २ उत्तरश्राद्धके तंत्रसे करना चाहिये ॥

हेमाद्रौ गालवः-"शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ तथा । नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाक्रमम् ॥" निशायामाशौचान्ते द्व्यहवृद्धौ ॥ अन्वारोहणे तु-"नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥" आशौचान्तदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे-"यस्ययस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥ श्मश्रुलोमनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि । गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥"

हेमाद्रिमें गालवका वाक्यहै कि, मृतकमें सूतक होजाय और रात्रिमें मरण होजाय तो नवश्राद्धका समय और क्रमके अनुसार करना, रात्रिमें कहनेका आशय यहहै कि, अशौचके अन्तमें दो दिनकी वृद्धिमें अर्थहै सती होनेमें तो सब नवश्राद्ध और सपिंडी भिन्न २ होतीहैं एक वृषोत्सर्ग और एकही गोदान होताहै, अशौच अन्त्यदिनका कार्य ब्राह्ममें लिखाहै कि, जिस वर्णका जो २ पिछला दिन होताहै, वह उस दिन वस्त्र और घरकी पवित्रता करता है. दशम पिंड और प्रेतके स्पर्श किये कपडोंका त्याग करके और अन्त्यज और आश्रितोंको देकर स्नान करै, डाढी मूंछ बाल नख इनमें जो त्यागने योग्य हो उसका भी त्याग करै, श्वेत सरसों वा तिलकी खलसे शिरको धोकर और जलसे आचमन करके और तूष्णीं होकर बैल गौ सुवर्णका स्पर्श करके मनुष्य पवित्र होताहै ॥

क्रियानिबन्धे गृह्यकारिकायाम् ॥ "अत्र पिण्डत्रयं दद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् । प्रेताय मध्यमं तद्वत्तृतीयं च यमाय वै ॥" तथा—"कर्त्रात्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः । दद्युरभ्यङ्गतः पूर्वं त्रींस्त्रीन्धर्मोदकाञ्जलीन् ॥ पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमो नेह कश्चन ॥" मदनरत्ने विष्णुहारीतौ—'आशौचान्ते कृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकल्कैः सर्षपकल्कैर्वा स्नाताः शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः' इति ॥

क्रियानिबंधमें गृह्यकारिकाका वाक्यहै—कि, इसमें तीन पिंड दे, प्रथम पिंड उसके सखाओंको दूसरा प्रेतको और तीसरा यमको दे. ऐसेही वाक्यहै कि, कर्ताकी प्रार्थनासे सज्जन ज्ञाति और बान्धव उबटनसे प्रथम तीन २ अंजलि धर्मजलकी दे, और पूर्वके तुल्य नाम गोत्रका उच्चारण करै, उसका यहां कोई नियम नहीं है. मदनरत्नमें विष्णु और हारीतके कहे वाक्यहैं कि, अशौचके पीछे मुण्डन कराकर तिल वा सरसोंकी खलसे न्हाय और श्वेत वस्त्रोंको धारण करके घरमें प्रवेश करै, वहां शांति करके ब्राह्मणोंका सत्कार करै ॥

देवलः—"दशमेहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥" अपरार्के बृहस्पतिः—'नवमे वाससां त्यागो नखरोम्णां तथान्तिमे ॥' तत्रैव व्यासः—'आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते ॥' एतत्प्रेताल्पवयसामित्याहापस्तम्बः । 'अनुभाविनां च परिवापनम्' इति ॥ अनुभाविनः कनिष्ठा इति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयः ॥ 'आशौचमनुभवता पुंसां सर्वाशौचे तु मुण्डनम्' । "आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु ॥" इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेपीति शुद्धितत्त्वादयः ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ परं शिखावर्ज्यम् 'केशश्मश्रुनखलोमानि वापयीत शिखावर्ज्यम्' इति गोभिलोक्तेः ॥

देवलने लिखाहै कि, दशवें दिन ग्रामसे बाहिर स्नान करै. वहां वस्त्र और केश श्मश्रु नखको त्याग करै. अपरार्कमें बृहस्पतिका कथनहै कि, नवमें दिन वस्त्रोंका त्याग और पिछले दिन नख और रोमोंका त्याग करै. वहांही व्यासका कथनहै कि, माता और गुरुकी मृत्यु होनेपर अशौचके अन्त्यदिनमें हजामत बनवावै, यह भी थोडी अवस्थाके प्रेतोंमें लेख है, यह आपस्तम्बने लिखा है, अनुभावियों (छोटों) का तो मुण्डन होता है, यह विज्ञानेश्वर रत्नाकर आदिका मत है. जिनको अशौच हो उनका मुण्डन सब अशौचोंमें होता है, अपने राजाकी आज्ञा, द्विजातियोंका विवाह, मरण

और सूतक, बन्धनसे मुक्ति, छुटना, यज्ञकी दीक्षामें और सब अमावस्यामें क्षौर है, इस रत्नमालाके वाक्यसे जन्मके अशौचमें भी मुण्डन होताहै, यह शुद्धितत्वआदि लिखतेहैं, यहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी, परन्तु मुंडन शिखाको छोडकर करना, कारण कि, गोभिलने लिखाहै कि, केश डाढी लोम नखको शिखा त्यागकर मुंडवावे ॥

यत्त्वापस्तम्बः–'न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारादित्येके ॥' विहारो दर्शादियागः ॥ तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः ॥ यच्च–'वृथा छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्' इति तत्–'केशश्मश्रुधारयतामग्र्या भवति संततिः' इति दानधर्मोक्तकाम्यपरम् ॥ अनुभाविनः पुत्रादय इत्येके ॥ "पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथाविधि । पिण्डदानोचितोऽन्योपि कुर्यादित्थं समाहितः" इत्यपरार्के व्यासोक्तेः ॥

जो आपस्तंबने लिखाहै कि, समावृत्तादिविहार (दर्शआदि यज्ञ) को छोडकर मुण्डन कराना, इससे यह अर्थ है कि, गृहस्थीके विना मुण्डन न करावें, जो वृथा केशोंका छेदन करताहै उसको ब्रह्महत्यारा कहते हैं, वह वाक्य जो केशश्मश्रु धारण करतेहैं उनकी सन्तान मुख्य होती है, इस दानधर्ममें कहे काम्यमें है. कोई यह लिखतेहैं कि, अनुभावीपुत्र आदिही होतेहैं, कारण कि, अपरार्कमें व्यासने कहा है कि, पुत्र और पत्नी अशौचके पीछेमें यथाविधि मुण्डन करावें और भी पिंड देने योग्य मनुष्य सावधानीसे मुण्डन करावे ॥

यत्तु मिताक्षरायाम्–"द्वितीयेहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वाप्रदानतः" इति ॥ 'आप्रदानतः' इति चतुर्थादीनि ॥ तत्प्रथमदिने संभवे ज्ञेयम् ॥ 'अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोत्र केशान्प्रवापयेत् । द्वितीयेह्नि तृतीयेह्नि पञ्चमे सप्तमेपि वा ॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत तावदित्यपरं मतम्" इति माधवीये मदनरत्ने च बौधायनोक्तेः ॥ मदनपारिजाते तु दशमे प्रथमे च समुच्चय उक्तः ॥ यत्तु–'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्' इति–तदेकादशाहश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम् ॥

जो मिताक्षरामें लिखाहै कि, दूसरे दिन प्रयत्नसे क्षौरकर्म करे, वा पिंण्डदानपर्यन्त तीसरे पांचवें दशवेंदिन करै, पिण्डदानपर्यन्त करना तब है जब पहिलेदिन न होसके कारण कि, माधवीय और मदनरत्नमें बौधायनने लिखा है कि, जिसके केश पहले न मुँडहों वह दूसरे तीसरे पांचवें सातवेंदिन जबतक श्राद्ध दिया जाय तबतक मुण्डन करावे, यह दूसरा पक्षहै. मदनपारिजातमें तो दशवें और प्रथमदिन समुच्चय लिखाहै, जो यह कथन हैकि, दशवें पिंडको देकर रात्रिशेषमें शुद्धहो, वह एकादशाह श्राद्धके अंग ब्राह्मणनिमंत्रणार्थ जानना चाहिये ॥

एकादशाहनिर्णयः ।

अथैकादशाहः ॥ मनुः–"विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधैः । वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥" शुद्धितत्त्वे देवलः–"आद्याहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः । आशौचाद्द्विज सुच्यन्ते ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥" याज्ञवल्क्यः–'आद्यमेकादशेहनि' क्षत्रियाद्यैराशौचेप्येकादशेह्नि श्राद्धं कार्यम् । "आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥

अब एकादशाहका कथन करतेहैं, मनुने लिखाहै कि, ब्राह्मण जलके छूनेसे, क्षत्रिय वाहन आयुधोंके छूनेसे, वैश्य कोडे वा रस्सियोंके छूनेसे और शूद्र क्रिया करनेसे शुद्ध होताहै. शुद्धितत्वमें देवलने लिखा है कि, पापके दिन बीतनेपर भलीप्रकार स्नान मंगल और स्वस्तिवाचन करनेसे ब्राह्मण अशौचसे छूटजातेहैं । याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, एकादशाहको प्रथमश्राद्ध होताहै, क्षत्रियआदिने अशौचमें आद्यश्राद्ध करना कारण कि, हेमाद्रिमें शंखने लिखाहै कि, अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहके दिन आद्य श्राद्ध करै, तो कर्ताकी श्राद्ध करनेके समयमें पवित्रता होतीहै, और फिर वह अशुद्ध होजाताहै ॥

पैठीनसिः–"एकादशेह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक् ॥" यत्तु मरीचिः–"आशौचान्ते ततः सम्यक् पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः" इति ॥ तत्सर्ववर्णानां दशाहाशौचपरम् ॥ यत्तु विष्णुः–'अथाशौचापगमः' इति ॥ यच्च गौडग्रन्थे हारीतः–'श्वोभूते एकोद्दिष्टं कुर्यात्' ॥

पैठीनसिने कहाहै कि, एकादशाहका जो श्राद्ध है वह सामान्य वर्णन कियाहै और सूतक तो चारों वर्णोंका भिन्न २ है. जो मरीचिने लिखाहै कि, अशौचके पीछेमें भलीप्रकार पिंडदान समाप्त होताहै, फिर श्राद्ध करना सब वर्णोंमें वह विधि लिखीहै; यह तब है जब सब वर्णोंमें दश दिनका अशौच मानाजाय. जो विष्णुने लिखाहै कि, अब अशौच दूरहुआ, जो गौडग्रन्थमें हारीतका कथनहै कि, प्रातःकाल होनेपर एकोदिष्ट करै ॥

यच्च बैजवापः–'ऊर्ध्वं दशम्या अपरेद्युः' इति तद्विप्रविषयम् ॥ एतेन दशमपिण्डापकर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ वचनादाशौचमध्ये इव तत्राप्यविरोधात् ॥ भविष्ये–"एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेहनि । भोजनं तत्र वैकस्मै ब्राह्मणाय महात्मने ॥" यत्तु मात्स्ये–"एकादशेहनि तथा विप्रानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्" इति ॥ तद्रुद्रगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजातः ॥ गौडास्त्वस्माद्वचनात्क्षत्रियादीनामाशौचान्त एवेत्याहुः ॥

जो बैजवापने लिखाहै कि, दशमीसे ऊपर अपरदिनमें करै, वह ब्राह्मणके विषयमें है, इससे यह मूर्खकथन निरस्तहुआ कि, जब [1]दशपिंड करनेका श्रेष्ठपक्षहै, अंगपिण्डोंकी पूर्ति न होनेपर एकादशाहमें श्राद्ध किसप्रकार होगा, कारण कि, वाक्यसे अशौचमध्यमें तुल्य वहां भी करनेमें विरोधकी प्राप्ति नहींहै. भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, एकादशाहको ग्यारह ब्राह्मणोंको दान और एकमहात्माको भोजन देना. जो मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, एकादशाहके दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको और क्षत्रियादि सूतकके अन्तमें विषमब्राह्मणोंको भोजन करावे, वह रुद्रगण श्राद्धमें है, यह मदनपारिजातमें लिखाहै, गौड़ तो यह लिखते हैं कि, इस पूर्वोक्त वाक्यसे क्षत्रियआदिको अशौचके पीछे ही ब्राह्मण भोजनहै ॥

रामायणेपि–"समतीते दशाहे तु कृतशौचो यथाविधि । चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च ॥" द्वादशाहेन निर्वर्त्य त्रयोदशाहश्राद्धं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि ॥ क्षत्रियाणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टं

---

१ सब प्रेतोंके निमित्त दशपिण्ड होतेहैं, राजाका दशवां पिण्ड बारहवें दिनमें, वैश्यका पन्द्रहवें दिन और शूद्रका दशमां पिण्ड मासकी पूर्तिमें होताहै यह आदिपुराणमें लिखाहै ॥

चतुर्दशे सपिण्डनम् ॥ द्विविधवाक्यादेकादशाहाशौचान्तयोर्विकल्प इत्येके ॥ सद्यः-शौचादौ युद्धहतादेरेकादशाहः ॥ अन्येषामाशौचान्ते इति वयम् ॥

रामायणमें भी लिखाहै कि, दशदिनके बीतनेपर शास्त्रोक्तविधिसे शौचकरनेके उपरान्त द्वादशिक और त्रयोदशिक श्राद्धकरता हुआ, द्वादशिकपदसे बारहदिनबीतनेपर श्राद्धका ग्रहणकरना और त्रयोदशिक-पदसे चौदह १४ दिनमें करनेयोग्य सपिंडीका पाथेय ग्रहण करतेहैं. क्षत्रिय आदिके द्वादशाह अशौचमें तेरह-दिनमें महैकोद्दिष्ट होताहै, और चौदवेंदिनमें सपिंडी. दोनोंप्रकारके वाक्योंके मिलनेसे एकादशाह अशौच और दूसरे अशौचोंका विकल्पहै, यह कोई लिखतेहैं, हैमतो यह कथन करतेहैं कि, आद्यश्राद्ध अशौचके प्रारम्भमें युद्धमें मरे आदिका ग्यारहदिनमें और अन्योंका अशौचके पीछेमें होताहै ॥

कौर्मे–"एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः। द्वादशे वाह्नि कर्तव्यमनिन्द्येप्यथ-वाहनि" ॥ निन्द्यं प्रेतक्रियाकालयुक्तम् ॥ एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं प्राक् ॥ बृहस्पतिः–"वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् ॥ गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्ध-भोक्त्रे तदर्पयेत् ॥ श्रोत्रिया भोजनीयास्तु नव सप्त त्रयोदश। जातयो बान्धवा न:स्वास्तथा चातिथयोपरे ॥" देवयाज्ञिकनिबन्धे–"एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत् ॥ तत्राद्याय च शय्यादिं दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ॥"

कूर्मपुराणका वाक्यहै कि, ग्यारहवें दिनमें प्रेतके निमित्त भावसे बारह दिन वा श्रेष्ठदिनमें श्राद्ध करै, निन्द्यदिन प्रेत क्रियाके वर्णनमें लिखआयेहैं, ग्यारहवें दिनका तो निषेधहै यह पहले कहआये हैं. बृहस्पतिने लिखाहै कि, पिताके वस्त्रभूषण शय्यावाहनआदि सबको गन्धपुष्पोंसे पूजनकर श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणको देदे, और नौ सात तेरह श्रोत्रिय (वेदपाठी ब्राह्मण) जिमाने, ज्ञाति बांधव निर्धन अतिथियोंकोभी जिमावे. देवयाज्ञिकनिबन्धमें कहाहै कि, ग्यारह ब्राह्मणोंमें प्रेतका आवाहन करके जिमावे, उनमें प्रथमको शय्याआदि दे यह आद्यश्राद्ध लिखाहै ॥

विष्णुः–"एकवन्मन्त्रानूहेनैकोद्दिष्टे ॥" बहुवचनान्तानेकवचनान्तान्वदेदित्यर्थः ॥ एतत् दृष्टार्थत्वे ॥ अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः–"एकोद्दिष्टं श्व एव स्याद्द्वादशेऽहनि वा पुनः ॥ अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहःसु शक्तितः ॥ अर्धमासे-थवा मासि ऋतौ संवत्सरेपि वा" इति ॥ तत्रैव लघुहारीतः–"एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम्। अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम् ॥"

---

१ वायवीयप्रेतदेह प्रायः एकवर्षतक रहताहै. उसके आरंभके निमित्त शरीरारंभके धर्म कियेजातेहैं पितृत्वप्राप्तिमें प्रतिबन्धक उसदेहके भोग्यदुःख भोगनाश और उस अधर्मके नाशनिमित्त दुःख भोग होताहै उसके निमित्त प्रेतदेहकी आवश्यकताहै, उसकी उत्पत्तिके निमित्त पिण्डदान कियाजाताहै, इससे अवश्य प्रेतदेहकी उत्पत्ति होतीहै, एकादशाहादि श्राद्धकी पूर्तिहोनेसे प्रेतका देह पूर्णहोजाताहै, यम कहतेहैं जिसको सोलह श्राद्ध नादियेगये उसका पिशाचत्व सौश्राद्धोंसे भी नहीं जाता, एकादशादि-श्राद्धोंसे मृतककी तृप्ति होतीहै वर्षकी पूर्तिमें वह पितरोंके स्थानको प्राप्तहोताहै इसप्रकार देवलके कथनसे आप्यायन और प्रेतत्वका परिहारहै सर्वथा पिण्डदानसे विलम्ब और क्लेशसे कार्यसिद्धहै यह सिद्धहुआ, दशमपिण्डदानसे पहले प्रेतदेहकी अनिष्पत्ति होनेसे उसकी निवृत्तिके निमित्त एकादशा-हादिश्राद्धोंका आशौचमें किसप्रकार करण होगा ॥

विष्णुने कहाहै एकोद्दिष्टमें, मंत्रोंमें एक वचनका ऊहकरना अर्थात् बहुवचनांतपदोंको एकवचनांत पढना चाहिये यहभी दृष्टार्थ (इसलोकके निमित्त) है, इसमें विघ्नहोनेपर गौणकरलेना, हेमाद्रिमें बौधायनके वचन हैं कि, इसप्रकार एकोद्दिष्ट बारहवें दिन होताहै, इससे आगे शक्ति न होय तो विषमदिनोंमें करै, वा आधे महीने मास, ऋतु (२ दोमहीने) वा वर्षमें करै, वहांही लघुहारीतका कथनहै कि, एकोद्दिष्ट श्राद्ध सदा स्वयं और पाकबनाकर करै, पाकके पात्र न मिलै तो उसदिन व्रत करै ॥

गोभिलः--"ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथवा । पुनश्च भोजयेदेकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" एतदाद्यमासिकाद्याब्दिकयोः सिद्ध्यर्थमिति भट्टाः ॥ तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव ॥ अत एवाद्यं सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतमेकादश इति विज्ञानेश्वरः ॥ अन्येत्वाद्यमासिकाब्दिकयोः । 'आद्यमेकादशेहनि' इति नियमादभेदमाहुः ॥ द्वयोस्तन्त्रत्वबाधार्थम् । गालवीयमित्यन्ये ॥ युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः । "सद्यः शौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥" एवमेकादशाहादौ ॥ अतोत्र द्वितीये ह्येकादशाहं वदन् ढौढ्ढः शूलपाणिः स्मार्तगौडश्च परास्तः ॥ एतेन 'आद्यमेकादशेहनि' इत्याशौचानन्तरदिनपरम्, विष्णूक्तेः । प्रागुक्तशंखादिवचनानां चानाकरत्वादिति वदन्तः कल्पतरुवाचस्पतिप्रमुखाः सर्वमहानिबन्धविरोधादुपेक्ष्याः ॥

गोभिलने कहाहै कि, आद्य श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन नहीं करावै वा अग्निमें होम करै, फिर एक ब्राह्मण जिमावै. इसप्रकार दो आवृत्ति होती हैं यह प्रथम मासिक वार्षिक श्राद्धोंकी सिद्धिके निमित्त है, यह भट्ट लिखते हैं, इससे यह एकोद्दिष्ट षोडश श्राद्धसे भिन्न है इससे सबकी आदि एकोद्दिष्ट और २ प्रकृति भूत एकादश जानना यह विज्ञानेश्वर कहते हैं और तो आद्यमासिक आब्दिकको कहते हैं. आद्यमेकादशेहनि इस नियमसे अभेद कहते हैं, कोई गालवीयमें दोनोंके तन्त्रत्वबाधाके निमित्त कहतेहैं, युद्धमें मृतक हुए आदिके निमित्त तो हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें पैठीनसिका कथनहै कि, सद्यःशौचमें भी प्रेतको एकादशाह दिनमें श्राद्ध आदि दे कारण कि श्राद्ध शय्या आसन आदि देनेके निमित्त उसका वही दिन है इसीप्रकारका एकादशाह आदिमें जानो. इससे यहां दूसरे दिन एकादशाहको लिखते हुए ढौढ्ढ शूलपाणि और स्मार्त गौड परास्तहुये, इससे प्रथमश्राद्ध ग्यारहवें दिन होता है, यह वाक्य अशौचके उपरान्त दिनका बोधक है इस विष्णुके कथनसे पूर्वोक्त शंखादिकेके वचनोंको तिरस्कार कहते हुये कल्पतरु वाचस्पति आदि सब बडे २ ग्रन्थोंके विरोध होनेसे यह वाक्य उपेक्षा करनेके योग्य हैं ॥

उशनाः--"त्र्यहाशौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेहनि । अतीतविषये सद्यस्त्र्यहोर्ध्वं वा तदिष्यते ॥" याज्ञवल्क्यः--एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेयुस्तेभिरताः स्म ह" इति अग्नौकरणनिषेधोन्यपरः ॥ बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् ॥ स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति कात्यायनः ॥ प्रथमे पात्रे संस्रवानित्यस्य तृतीयेनापिधानस्य च बाधान्न पात्रन्युब्जतेति शूलपाणिः ॥

उशनाने लिखाहै कि, तीनदिनके अशौचमें भी आद्यश्राद्ध ग्यारहदिनमें करना और बीते हुए अशौचमें सद्यः वा तीनदिनके उपरान्त आद्यश्राद्ध कहाहै. याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, एकोद्दिष्ट देवसे हीन और एकअर्घ एक पवित्री आवाहन और अग्नौकरणसे हीन और अपसव्यसे होताहै, अक्षयजल और स्नानमें (उपतिष्ठतां) कहै और ब्राह्मणोंके विसर्जनमें (अभिरम्यतां) कहना चाहिये, और ब्राह्मण (अभिरताः स्मः) कहैं, और तृप्तिके पूछनेमें (स्वदितं) कहै, ब्राह्मण सुस्वदितं (अच्छाखाया) कहैं, और आज्ञाका वाक्य ले. कात्यायनने लिखा है कि, अग्नौकरणका निषेध औरोंके निमित्त है, बह्वृचोंके यहां तो सब एकोद्दिष्टोंमें अग्नौकरण होता है, यह पहले कथनकर आये, पहले पात्रमें संश्रव रक्खै, इसका तीसरेसे बाध हो तो पात्रोंको औंधा नकरै, यह शूलपाणि लिखते हैं ॥

प्रचेताः—'नात्र पात्रालम्भो नाशिषः प्रार्थयेत् ॥' अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे— "श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखछेदं तथैव च । स्नपनाभ्यञ्जनं दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम् ॥" तथा—"उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत् । पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च ॥"

प्रचेताने कहाहै कि, एकोद्दिष्टमें पात्रोंका (स्पर्श) और आशीर्वादकी प्रार्थना नहीं होती, इसमें विशेष हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, श्मश्रुकर्म (क्षौर) नखोंका छेदन करै, और स्नान और अभ्यंग ब्राह्मणको विधिसे दे, इसप्रकारकेही वाक्य हैं कि, उत्तम आसनपर बैठाय क्षत्री दे. और पीछेसे जूता और सब भूषण दे ॥

विष्णुः—दक्षिणान्तं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुलपृथ्वीतस्तावदन्तरालास्तावदधःखाता वितस्त्यायतास्तिस्रः कर्षूः कुर्यात् । कर्षूणां समीपेऽग्निमाधाय परिस्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधानमोऽग्नये कव्यवाहनाय यमायाङ्गिरस्वते इति ॥' स्थानत्रये प्राग्वत्पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्ते इति जपेत् ॥ शेषं नवश्राद्धवत् ॥ अत्र साग्नेरप्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् ॥ इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तं क्रियानिबन्धे ॥

विष्णुने कहाहै कि, दक्षिणापर्यंत श्राद्धको करके जहां अक्षय दिया हो वहां चारअंगुल पृथ्वीके अन्तरसे और उतनीही नीचे खोदकर वितस्तिभर खोदकर तीन कर्षू रेखा करै, कर्षूके निकट तीन अग्नि स्थापन करके कुशा फैलाय एकमें तीन २ आहुति दे, कि, सोमाय पितृमते स्वधा १, नमोऽग्नये कव्यवाहनाय २, यमायांगिरस्वते ३, तीनों स्थानोंमें पूर्वके समान पिंड दे, दधिमधुमांसोंसे तीनों कर्षूओंको पूर्णकर यह मेरा नहीं है, यह उच्चारण करै, शेषकर्म नवश्राद्धके तुल्य करै. यहां साग्निको भी अन्तमें वैश्वदेवहै, यह पहले लिख आयेहैं, वा इसको दशाहका कर्ता पुत्र करै, यह क्रियानिबन्धमें लिखाहै ॥

गृह्यकारिकायां—"तिलोसि प्रेतदेवत्यः प्रेतं लोकान्हि नोन्तकम् । मन्त्रमुक्त्वा तिलानेवं प्रक्षिपेदर्घ्यपात्रतः ॥ दक्षिणामुदकुम्भं च सान्नं दत्त्वा तथैव गाम् । तस्मै दद्याद्भुक्तशेषं तद्भाण्डान्यपि भाजनम् ॥" विप्राभावेऽग्नावेकोद्दिष्टम् ॥ 'अग्नौ पायसं श्रपयित्वाज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य पृथिवी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्तीभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्' इति ॥ याज्ञवल्क्यः—'एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥'

गृह्यकारिकामें कहाहै कि, 'तिलोसि प्रेतदेवत्यः प्रतं लोकान् हि नोन्तकम्' यह मन्त्र पढकर अर्घ-पात्रसे दक्षिणकी ओर तिलडाले, अन्नसहित जलका घडा और गौ देकर प्रेतके भागका शेष भांड और भाजन उस ब्राह्मणको दे, ब्राह्मण न होय तो अग्निमें एकोद्दिष्ट इसप्रकार करै कि, अग्निमें खीर पकाकर आज्यभागके उपरान्त उसके आगे श्राद्ध योग करके अग्निमें प्रेतको आवाहन और गन्ध आदिसे पूजाकरके पृथ्वीते पात्रं० इत्यादिमन्त्रोंसे अन्नका संकल्प और उदीरताम इन आठ ऋचाओंकी चार २ आहुति देकर पिंडदान आदि श्राद्धपूर्ति करै, ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा है कि सपिंडी और एकोद्दिष्ट स्त्रीके भी होतेहैं ॥

अथ वृषोत्सर्गनिर्णयः ।

स च नित्यः काम्यः ॥ "न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् । न ददाति सुतो यस्तु पितुरुच्चार एव सः ॥" उच्चारः पुरीषम् ॥ "एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्" इति मत्स्यकौर्मोक्तेः "एकादशोह्नि प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥" इति षट्त्रिंशन्मते निन्दाश्रुतेः ॥ "एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान्दशापरान्" इति देवीपुराणे भविष्यादौ फलश्रुतेश्च ॥

अब वृषोत्सर्ग लिखते हैं, वह नित्य और काम्यहै, कारण कि, मात्स्य और कौर्मके कथन हैं कि (अच्छे) सुतीर्थमें जो पुत्र जलकी अंजली और वृषोत्सर्गको नहीं करता वह माताका उच्चार (विष्ठा) है, बहुतसे भी पुत्र हों उनमेंसे एकभी गयामें जाय वा अश्वमेध करै वा नील वृषको छोडै, वही पुत्र है. षट्त्रिंशत्के मतमें यह निन्दा सुनी है कि, एकादशाहको जिस प्रेतके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं होता उसको चाहै सौ श्राद्ध करो तो भी प्रेतत्व नहीं छूटता है, और देवीपुराण भविष्यआदिमें यह फल लिखा है कि, जिसके निमित्त नील वृष छोडै उसकी परमगति होती है, वृषका छोडना दश पिछले और दश अगलोंको पवित्र करताहै ॥

अयं द्वादशाहे उक्तो भविष्ये-'चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशोह्नि वा ।' इति ॥ विष्णुधर्मे तु मृताहेप्युक्तः ॥ 'विषुवद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च' इति ॥ अयं गृहे न कार्य्यः 'न गृहे मोचयेन्नीलं कामयन्पुष्कलं फलम्' इति कालिकापुराणात् ॥ कामधेनौ-"वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्माणि । वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ॥" तल्लक्षणं तु ब्राह्मे-"लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः। श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥" श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोपि नील उक्तो मात्स्यादौ ॥

यह भविष्यपुराणमें द्वादशदिनमें भी कहाहै कि, चैत्र वा वैशाखकी तृतीयाको वा द्वादशाहको वृषोत्सर्ग करै । विष्णुधर्ममें मरनेके दिन भी लिखाहै कि, दोनों विषुवत् तुलमेषसंक्रांतियोंमें और बांधवके मरणदिनमें वृषोत्सर्ग करै, इसको घरमें नकरै, कारण कि कालिकापुराणमें लिखाहै कि, अधिक फलकी इच्छा करै तो घरमें वृषोत्सर्ग न करै. कामधेनुमें कहाहै कि, वर्षके भीतर मातापिताके वृषोत्सर्गमें

वृद्धिश्राद्ध न करै, उसको अन्यत्र करै, उसके चिह्न तौ ब्राह्ममें यह लिखेहैं कि, जिसका रंग लाल मुख और पूंछ पीली खुर और सींग सफेद हों वह नीलवृष है, जिस श्वेतके मुख आदि श्याम हों और जिस श्यामके मुख आदि श्वेत हों वह भी मात्स्य आदिमें नील लिखाहै ॥

देवीपुराणे—'चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वे वासंभवतोपि वा' यत्तु पठन्ति "वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथंचन । मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् ॥ न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत्" इति । तन्निर्मूलम् ॥ तद्विधिर्हेमाद्रौ भट्टकृतौ च ज्ञेयः ॥ अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्णुरूपिप्रेतोद्देशेन विष्णुतर्पणमुक्तम् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

देवीपुराणमें लिखा है कि, चार वा दो वा जो होसके उतनी सुंदरीवत्सी (बछिया) हों, जो यह लिखतेहैं कि, यदि वृषोत्सर्गके समय वृषका अभाव हो तो मृत्तिका चून कुशाका वृष बनाकर छोडदे. वृषोत्सर्ग न करसके तो वहां होम करादे, सो ठीक नहीं है, उसकी विधि हेमाद्रि और भट्टकृतिमें जाननी. यहां देवयाज्ञिकने वृषोत्सर्गसे प्रथम पुरुषसूक्तसे विष्णुका तर्पण लिखाहै उसमें मूल नहीं है ॥

पारस्करः—"सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥ प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिःक्षिपेत् ॥" ॥ तथा—"विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोहयेच्च तां धेनूर्नच कश्चन बन्धयेत् ॥" स्त्रीषु विशेषः संग्रहे ॥ "पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि । वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥" पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम् ॥ अन्वारोहणेपि गोदानमेवेत्युक्तं प्राक् ॥ आशौचान्तःपरेपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम् ॥ क्रियानिबन्धे स्मृत्यन्तरे—"सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि ॥ पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च ॥ न हन्यात्सूतके कर्म द्वादशैकादशाहिकम् । शुद्धो वा यदि वाशुद्धः कुर्यादेवाविचारयन्" इति ॥

पारस्करने लिखाहै कि, बांये हाथसे बैलकी पूंछ पकडे और दक्षिणसे तिल जल कुशा लेकर फिर प्रेतका गोत्र उच्चारण करके अमुकस्मै (इसको) यह कहता हुआ यह वृष मैंने प्रदान कियाहै उसको सदा तारो, यह कहकर सोने और तिलसहित जलको भूमिमें गेरदे, ऐसेही वाक्यहैं कि, उसको कोई बांधेभी नहीं और न जोते और गौको भी कोई न दुहै और न बांधै. स्त्रियोंके निमित्त विशेष संग्रहमें लिखा है कि, पति पुत्र जिसके दोनों विद्यमान हों वह पतिसे प्रथम मरजाय तो वृषोत्सर्ग न करै किन्तु दूधदेती गौ दे, यहां पति पुत्रका साहित्य (दोनों) विवक्षित हैं. सती होनेमें भी गोदानही होताहै यह पहले लिखआये हैं. अशौचके मध्यमें भी वृषोत्सर्ग आद्यमासिक शय्यादान आदिको देना यह लिखआये हैं. क्रियानिबंधमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि, सूतक और मृतकमें दूसरा मरजाय तो पिण्डदान और वृषोत्सर्ग करै, और द्वादशाह और एकादशाहके सूतककर्मको त्यागे, शुद्ध वा अशुद्धके विचारको त्यागकरें अवश्य ही करना चाहिये ॥

अथ पददाननिर्णयः ।

अत्र पददानमुक्तं देवजानीये गारुडे—'एकादशाहं प्रक्रम्य'—"तदाह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः । पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोप्यात्म-

हेतवे । सुखी भूत्वा महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥" तथा-"आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः । भाजनं भाजनाधारो वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥"

अब पददान लिखतेहैं देवजानीय और गारुडमें एकादशाहके प्रकरणमें लिखाहै कि, उस दिन और विशेष कर द्वादशाहके दिन सब वस्तु और सुन्दर तेरह पद दियेजातेहैं. जो मनुष्य मृतकके निमित्त जीवता हुआ अपने निमित्त देताहै, हे गरुड ! वह महामार्गमें आनन्द होकर जाताहै, तैसेही वाक्यहैं कि, आसन, उपानह, छत्री, मुद्रिका, कमंडलु, भाजन, भोजनका आधार, वस्त्र यह आठ प्रकारका पद लिखाहै ॥

तथा-"भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च । आज्ययज्ञोपवीतेन पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् । सर्वोपस्करयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे । स गच्छति परं स्थानं महाकष्टविवर्जितः ॥ त्रयोदशपदानीत्यं प्रेतायैकादशेहनि । दातव्यानि यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत् ॥ अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः । छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं तथाष्टमम् ॥ अग्नीष्टिकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च । चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश ॥ योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् । स्वमहिम्नोनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात्" इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

तैसेही वाक्य हैं कि, भाजन आसन मुद्रिका भोजन, आज्य यज्ञोपवीतसे पद संपूर्ण होताहै, भैंस रथ गौके दानसे निश्चय सुखी होताहै. सब सामग्रियोंसे युक्त तेरह पद यहां होतेहैं, जो इनको मृतकके और जीवता हुआ अपने निमित्त देताहै, वह श्रेष्ठस्थानमें महाकष्टसे छूटकर गमन करताहै. तेरह पद इस प्रकार हैं. प्रेतके निमित्त दशवें दिन यथाशक्तिसे देने उससे वह प्रेत सुखी होताहै. अन्न, जल, उपानह, कमण्डलु, छत्र, वस्त्र, लाठी, आठवां लोह दण्ड, अग्नि, ईंट, दीप, तिल, पान, चन्दन, पुष्पदान ये चौदह उपदान हैं. जो मनुष्य घोड़ा रथ आदि ब्राह्मणोंको देताहै वह अपनी महिमाके अनुसार उस २ सुखको प्राप्त होता है, इनमें मूल नहींहै ॥

अथ शय्यादाननिर्णयः ।

हेमाद्रौ भविष्ये-"तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभदण्डोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् । तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥" अत्र हरिस्थाने प्रेतम् ॥ "उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् । ताम्बूलं कुङ्कमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥ दीपिकोपानहौ छत्रं चाधरासनभाजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥ शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्च वर्णवितानकम् ॥"

इसमें शय्यादान भी है, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, इससे सालके काठकी दृढ शय्या हाथी दांतके पत्तोंसे चिता और सुवर्णके पायोंसे शोभित हंसके तुल्य श्वेतरुईसे ढकी और सुंदर तकियासे युक्त और आच्छादनके वस्त्रोंसे युक्त, गन्धधूपोंसे सुगन्धित शय्यापर लक्ष्मीनारायणकी मूर्तिको स्थापन करै, यहां हरि स्थानमें प्रेतका स्थापन करै, शिरकी ओर घीसे भरा कलश रक्खे, पान कुंकुम सहत कपूर

अगुरु, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्री, चवँर, आसन, भाजन इन्हें और सप्तधान्यको शय्याके पार्श्वोंमें स्थापन करै, सोतेहुये मनुष्यका जो कुछ और उपकारकहो शृंगारकरके (लोटा) आदि और पांचवर्णका चंदोवा वह सब रखदे ॥

मन्त्रस्तु—"यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ॥ शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च।" अर्धं तदेव ॥ "दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत्। एकादशाहेपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥ विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय। तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत्। तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥"

मंत्र तो यह है कि, जिसप्रकार कृष्णकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं है, तैसेही जन्म २ में मेरी शय्या अशून्य हो इस विष्णु और शिवकी वह शय्या पूर्ण हो तैसेही मेरी हो. इसप्रकार देकर और नमस्कार करके विदा करै. एकादशाहमें भी यह विधि लिखीहै, हे राजन्! इसमें मेरेकहे विशेषको सुनो प्रेतका भोगाहुआ जो वस्त्र वाहन भाजनहै और जो जो उसको प्रिय था वह सब दे, और उसकीही सुवर्णकी मूर्ति शय्यापर स्थापन करै, और पूजाकरके यथोचित मृतशय्याको प्रदान करै ॥

पाद्मे—"मृतकान्ते द्वितीयेह्नि शय्यां दद्यात्सलक्षणाम्। काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत्यं नानामणिविभूषितम्। उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदेत् ॥ रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्धसमन्वितम्। अस्थि लालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद् द्विजदांपत्यं विधिरेष सनातनः। एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥" एतत्प्रतिग्रहे तत्रैवोक्तम्—'गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति ॥' शय्यादानफलं भविष्ये—"स्वर्गे पुरंदरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा। सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः" इति ॥

पद्मपुराणका वाक्य है कि, मृतकके अन्तके दूसरे दिन सुलक्षण शय्या दे, और तैसेही फलवस्त्रसे युक्त सुवर्ण पुरुषको दे, नानाभूषणोंसे शोभित ब्राह्मणी और ब्राह्मणको पूजकर और शय्यापर बैठाकर मधुपर्क देना और वह मधुपर्क दही दूधसे युक्त चांदीके पात्रमें हो, शिरकी अस्थि लेकर और पीसकर खीरमें मिलाकर स्त्री पुरुषको जिमावै. यह सनातन विधि है. यही विधि पर्वतनिवासी ब्राह्मणोंमें देखी है, इसके प्रतिग्रहमें वहां ही लिखाहै कि, ऐसी शय्याको ग्रहण करके फिर संस्कारके योग्य होताहै. भविष्यपुराणमें शय्यादानका फल कहाहै कि, इन्द्रपुरी, स्वर्ग, यमराजकी पुरी इनमें यह जीव शय्यादानके प्रभावसे सुखपूर्वक निवास करता है, और प्रलयपर्यन्त दुःखसे रहित होताहै ॥

अथोदकुम्भदाननिर्णयः।

हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये—"एकादशाहात्प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः। दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥" लौगाक्षिः—"यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥" उत्तरार्धे—'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे।' इति याज्ञवल्क्यपाठः ॥ सपिण्डनापकर्षेऽस्याप्रकर्षप्राप्ते बाधकमिति शूलपाणिः तन्न। प्रकृतिविकाराभावेन तदन्तन्यायविषयत्वात् ॥ मात्स्ये—"यावदब्दं च यो दद्यादुद-

कुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" केचित्त्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्निर्मूलम् ॥

अब जलघटको लिखते हैं, हेमाद्रिमें स्मृतिसमुच्चयका लेख है कि, एकादशाहसे लेकर जल और अन्नसे युक्त घटको वर्षदिनतक पुत्र प्रतिदिन दे. लौगाक्षिने कहाहै कि, जिसकी सपिंडी वर्षसे प्रथम होजाय उसको मासिक और जलका घट वर्षदिनतक देना, उत्तरार्द्धमें याज्ञवल्क्यका पाठ है कि, उसको अन्न जलका घडा वर्षदिनतक ब्राह्मणको दे. शूलपाणि यह लिखते हैं कि, सपिंडीकी न्यूनतासे इसकी जो न्यूनता पायी उसका यह बाधक है, सो यथार्थ नहीं प्रकृतिके विकारके अभावसे तदंतन्यायका विषय नहींहै. मात्स्यका कथन है कि, जो मनुष्य वर्षदिनतक क्रोधको त्यागकर घटदान अन्नसहित प्रेतके निमित्त देता है वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होताहै. कोई तो त्रयोदशाहसे लेकर कहतेहैं, सो उचित नहींहै ॥

देवयाज्ञिकः-'सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भम् अर्वागेव दद्यात्, नोर्ध्वम्।' 'प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत' इति गोविन्दराजधृतविष्णूक्तेः । "अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाब्दिकावधि । दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्धघटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः । दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्युदकुम्भकम्" इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य विधानादूर्ध्वं निषेधादित्याह ॥ तन्न ॥

यहां देवयाज्ञिक लिखतेहैं कि, सपिंडीके अपकर्षमें इतने वर्ष हो जलघट उससे पहिले ही दे, पीछे न दे प्रेतलोकमें गयेके निमित्त जलका घट दे, यह गोविंदराजमें लिखा विष्णुका वाक्य है, अपनी शक्तिसे वर्षदिनतक की संख्या करके अन्न दे. वा स्कन्दघट आदिमें उसका निष्क्रय (मोल) दे. हे मनुष्यो ! चाहें सौ श्राद्ध दो परन्तु जबतक घटदान न हो तबतक दुःखित हुये संसाररूपी समुद्रमें भ्रमते हैं, इससे अपकर्ष पहलेसे भी प्रेतके निमित्त जलका कुंभ दे. यह गोभिलभाष्यमें स्कन्दका कथन है कि, इससे सपिंडीसे प्रथमही उसकी विधि है, और पीछे निषेध है, सो उचित नहींहै ॥

उदकुम्भे पार्वणविधिनानुपपत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च ॥ वचनं च यदि समूलं तदा वृद्धावपकर्षे विधत्ते ॥ 'प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा' इति हेमाद्रौ शाठ्यायनोक्तेः ॥ 'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भम्' इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च ॥ मदनरत्ने गौतमः-"अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥" अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम् ॥ एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टं पार्वणं कार्यम् ॥

कारण कि, कुंभमें पार्वणकी विधि न होनेसे ऐसी व्याख्यामें कोई प्रमाण नहींहै और मिताक्षराका उससे विरोध है. यदि वाक्य प्रमाणयुक्त है तो वृद्धजन इसको अपकर्ष कहते हैं, कारण कि, सम्पूर्ण प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको करै, यह शाठ्यायनने कथन कियाहै. उसको भी अन्न जलघट दे, इस याज्ञवल्क्यके वाक्यका भी विरोध है. मदनरत्नमें गौतमने लिखाहैं कि, विना दैव पार्वण श्राद्ध और अधर्मक जलघट और प्रतिअब्द वर्षके धर्म श्राद्ध संकल्पविधिसे प्रतिदिन करने यह मासिकके समान एकोदिष्ट वा पार्वणश्राद्ध करना चाहिये ॥

अपरार्कस्तु "सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वेनोपपद्यते । पृथक्कृत्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डना ॥" इति ॥ लघुहारीतोक्तावपि–'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे' इति । याज्ञवल्क्यीये तस्येत्येकत्वोक्तेः सपिण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह ॥ अत्र पिण्डदानं कृताकृतम् ॥ 'अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति' इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः ॥ श्राद्धाशक्तौ पिण्डमात्रमिति गौडाः ॥ तन्न ॥ अपिशब्दबाधापत्तेः ॥

अपरार्कमें तो यह लिखाहै कि, सपिंडीकरणके उपरान्त भिन्नता नहीं होती यदि पृथक श्राद्ध किया होय तो फिर सपिंडी करनी इस लघुहारीतके वचनमें भी और उसके निमित्त भी जलका घट और ब्राह्मणको दे. इसयाज्ञवल्क्यके वाक्यमें (तस्य) यह एक वाक्य लिखाहै इससे सपिंडीके उपरान्त भी एकोद्दिष्टही होताहै, इसमें पिण्डदान (कृताऽकृतम्) किया भी न कियाहै, कारण कि, हेमाद्रिमें पारस्करका कथन है कि, प्रतिदिन प्रेतके निमित्त अन्न और जलका वडा ब्राह्मणको दे, और कोई कहतेहैं कि, पिंडभी दे. श्राद्धकी सामर्थ्य न हो तो पिंडही दे. यह गौडोंका कथन है सो यथार्थ नहीं, कारण कि, अपिशब्दका बाध होजायगा ॥

हारीतः–"मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत् ॥ अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः" प्रेतशब्दोच्चारणेनेति हलायुधः ॥ यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मकमित्यर्थः ॥ अत्राशौचान्तदिनाद्यब्दान्तं यावद्वत्सरापूर्तेः शौचं नाधिकारिविशेषणम् ॥ तेन मृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमिति केचित् ॥ तन्न ॥ हेमाद्रिधृतवचोविरोधात् ॥ मध्ये अशौचादिना बाधे तु लोप एव दार्शवत् ॥ तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम् ॥ देवजानीये गारुडे–"प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये । कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थितम् ॥"

हारीतने कहाहै कि, पिताके मरने उपरान्त पुत्र वर्षदिनतक पिंड दे, और प्रेतके निमित्त धर्मसे अन्नघट दे, प्रेतशब्दका उच्चारण करके दे, यह हलायुधका कथन है. अथवा प्रेतके उच्चारणवाले एकोद्दिष्टको धर्मपूर्वक करैं, वहां अशौचांत दिनसे वर्षकी पूर्तितक शौच अधिकारीका विशेषण नहींहै, इससे मरणके दिनसे लेकर यह करना यह कोई कहतेहैं, सो उचित नहीं कारण कि, हेमाद्रिमें लिखे वाक्यका इसमें विरोध है, मध्यमें आशौच आदिसे बाध होजाय तो लोप न करना.अमावस्याके तुल्य होताहै, तैसेही प्रथम वर्षमें गरुडके कथनसे दीपदान लिखाहै कि, विषममार्गमें प्रतिदिन दीपक प्रेतके सुख निमित्त वर्षदिनतक दे, पूर्वाभिमुख वा उत्तरमुख दीपक देवमन्दिर वा ब्राह्मणके घरमें दे और पितरोंके निमित्त दक्षिणमुख हो संकल्प करके देना ॥

अथ मासिकनिर्णयः ।

अथ मासिकानि ॥ तानि च कृत्वैव सपिण्डनं कार्यम् ॥ तथा गोभिललौगाक्षी । "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम् । श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ।" तानि त्वाह जातूकर्ण्यः–"द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं

तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ॥" आद्यषाण्मासिकाब्दिक-शब्दा ऊनमासिकोनषष्ठोनाब्दिकपराः ॥

अब मासिकोंको वर्णन करतेहैं. उनको करकेही सपिण्डी करनी चाहिये. षोडश श्राद्ध करके सपिंडीको करै यह वचन जातूकर्ण्यने लिखेहैं कि, द्वादशमहीनोंके बारह और आद्य ऊनषाण्मासिक त्रैपक्षिक (तीनपखवारे) और ऊनाब्दिक ये षोडशश्राद्ध हैं, यहां आद्यषाण्मासिक आब्दिक शब्द क्रमसे ऊनमासिक ऊनषष्ठ ऊनाब्दिकके बोधक हैं ॥

हेमाद्रौ तु सपिण्डीकरणं चैव इत्येतत् 'श्राद्धषोडशम्' इत्युत्तरार्द्धे पाठः-तदा आद्य-मूनमासिकं द्वादशाहे; षाण्मासिकम् ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः ॥ कात्यायनस्त्वन्यथाह "द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोड-शम् ॥ एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षण्मासिके तदा ॥" द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थमाह पृथ्वीचन्द्रः ॥

हेमाद्रिमें तो (सपिण्डीकरणं चैव) यह उत्तरार्द्धमें पाठहै, तब आद्य ऊनमासिक द्वादशाहमें होताहै, और षाण्मासिक ऊनषष्ठ आब्दिक ऊनाब्दिक यह अर्थ है. कात्यायनने तो अन्यप्रकार लिखाहै कि, द्वादश प्रतिमासके आद्य षाण्मासिक और सपिंडी ये षोडश १६ श्राद्ध हैं, एकदिनमें तीनदिनमें जब षण्मास होतेहैं वा ज़ब कम तीनवर्ष हो तब षाण्मासिकमें होतेहैं. पृथ्वीचन्द्रने यह लिखाहै कि, पूर्वकहे कात्यायनके वाक्यमें (षाण्मासिक) के इस द्विवचनसे ऊनषष्ठ और ऊनाब्दिक लेने ॥

व्यासस्त्वन्यथाह "द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके ॥ श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ॥" द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वादशाहेप्युक्तेरिति काला-दर्शः । मदनरत्ने ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम् "नणां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वदा । चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धा द्वादश संख्यया" इति ॥ चतुर्थादीनि दिनानि ॥

व्यासने तो और भांति कहाहै कि, बारहदिन तीन पक्ष छःमास मासिक वार्षिकमें ये षोडश श्राद्ध बुद्धिमानोंने लिखे हैं, द्वादशदिन पद ऊनमासिकका ज्ञापक है. वह द्वादशाहमें भी लिखाहै. यह कालादर्श लिखते हैं, मदनरत्नमें ब्राह्मके वाक्यसे तो अन्यथा लिखाहै कि, मृतकमनुष्योंके सदा षोडशश्राद्ध होतेहैं, चौथे पांचवें नौमें ग्यारहवें दिननें और फिर बारहमहीनोंमें जो श्राद्ध वे षोडश श्राद्ध हैं ॥

भविष्येत्वन्यथोक्तम् ॥ "अस्थिसंचयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु । रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेतश्राद्धानि षोडश" इति ॥ रिक्तयोस्तिथ्योरिति न्यूनषष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः ॥ अत्र देशकुलशाखाभेदाद्व्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः ॥ गालवः-"ऊन-षाण्मासिकं षष्ठे मासे वा न्यूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा ॥" ऊनमासिके तु गोभिलः-"मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम् ॥" मदन-रत्ने कालादर्शे च श्लोकगौतमः "एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा । श्राद्धा-न्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥"

१ जिसने नवश्राद्ध नहीं किया वह षाण्मासिक और मासिकका अधिकारी नहीं है ॥

भविष्यमें तो और भांति कहाहै कि, अस्थिसंचयन श्राद्ध, त्रिपक्ष और द्वादशमासिक ये रिक्तातिथियोंमें होते हैं। रिक्तातिथियोंके ऊनषष्ठ ऊनाब्दिक पर हैं, यह हेमाद्रिका कथन है, इनकी देश कुल शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यह सब निबन्ध लिखते हैं, गालवने लिखाहै कि, ऊनषाण्मासिक छठे मासमें और ऊनमासिक मासमें त्रैपाक्षिक त्रिपक्षमें ऊनाब्दिक बारहमासमें होते हैं, ऊनमासमें तो गोभिलने लिखाहै कि, मरणसे द्वादशाहमें वा महीनेमें ऊनमासिक होताहै, मदनरत्न और कालादर्शमें गौतमका कथन है कि, एक दो तीन वा त्रिभागसे कर्ममें ऊनआदि श्राद्ध होतेहैं ॥

क्रियानिबन्धे क्रतुस्तु–"सार्ध एकादशे मासे सार्द्धे वै पञ्चमे तथा । ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि ।" इत्युक्तम् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ ऊनेषु वर्ज्यान्याह मरीचिः– "द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ॥" ज्योतिषे–"त्रिपादर्क्षं तिथिर्भद्रा भौमेज्यरविभिः सह । तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥" गालवः–"त्रिभिर्वा दिवसैरूने त्वेकेन द्वितयेन वा । आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम् ॥" एकन्यूनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपदि द्व्यूने द्वितीयायामिति केचित् ॥

क्रियानिबंधमें क्रतुने तो यह लिखा है कि, साढेग्यारहमें और साढेपांचमें ऊनाब्द और ऊनषण्मास श्राद्ध होतेहैं, इसमें मूल नहीं है, ऊन श्राद्धोंमें निषेध मरीचिने लिखाहै कि, द्विपुष्करयोग नन्दा सिनीवाली शुक्रवार चतुर्दशी कृत्तिका त्रिपुष्कर इनमें ऊन श्राद्ध नहीं होते, ज्योतिषमें लिखाहै कि, त्रिपाद नक्षत्र भद्रा तिथि मंगल बृहस्पति रविवार तीनों होंय तो त्रिपुष्कर योग और दोका योग होय तो द्विपुष्कर योग होताहै, गालवने लिखा है कि, तीनदिन वा दोदिन कममें पहले आदि मासोंमें ऊनाब्दिक आदि श्राद्ध करै, एक न्यून पक्षमें पञ्चमीको मृतककी तृतीया, तीनसे न्यूनमें मरेकी प्रतिपदा, दोसे न्यूनमें मृतककी द्वितीयामें होता है, यह कोई लिखते हैं ॥

माधवस्तु–"षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्युरेव ते । मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेपि च ॥" इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषाण्मासिकं सप्तममासगतमृताहात्पूर्वेद्युः कार्यम्, ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वेद्युः कार्यमित्यर्थमाह । 'मासिकानि स्वकीये तु दिवसे' इत्युक्तेः ॥ इदमेव युक्तम्, मदनरत्नेप्येवम् ॥ याज्ञवल्क्यः–"मृतेहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि ॥" अत्राद्यमासिकमाब्दिकं चैकादशेहीति निर्णयामृतादयः । "ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा । पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" इति गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः ॥

माधवने तो यह लिखाहै कि, षाण्मासिक आदि श्राद्ध पूर्वदिनमेंही होतेहैं, मासिक आदि श्राद्ध अपने दिनमें वा बारहदिनमें होतेहैं, इस पैठीनसिके कथनमें ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक मरणदिनसे प्रथमदिन करने। कारण कि, यह लिखाहै कि, मासिक अपने दिनमें होतेहैं यही युक्त है, मदनरत्नमें भी ऐसाही लिखाहै, याज्ञवल्क्यने लिखाहै कि, वर्षके मध्य मासिक और प्रतिवर्ष वार्षिकश्राद्ध मृत्युके दिन और आद्य श्राद्ध ग्यारहदिनमें करने, यहां निर्णयामृत आदि यह लिखतेहैं कि, आद्यमासिक और आद्यआब्दिक ग्यारहदिनमें करने, आद्य श्राद्धमें ब्राह्मणको जिमावे वा अग्निमें हवन करै और फिर ब्राह्मणको जिमावे इस प्रकार द्विरावृत्ति होतीहै, इस गोभिलके कथनको भी उसी विषयमें लिखतेहैं ॥

अन्ये तु 'मासपक्षतिथिस्पष्टे' इत्यादिविरोधादाब्दिकं वर्षान्तमेव ॥ मासिकं तु मासादौ ॥ द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा ॥ देवयाज्ञिकोप्येवमाह ॥ लौगाक्षिरपि- "मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते ॥ आद्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत्॥" दीपिकायां तु-'आद्यं रुद्रमितेर्कसंमितदिने वा स्यात्' इत्युक्तम् ॥

और तो यह लिखतेहैं कि, मासपक्षतिथिसे स्पष्ट (युक्त) इत्यादि वाक्यके विरोधसे वार्षिक श्राद्ध वर्षके भीतरमें ही होताहै, मासिक तो मासके पीछेमें होताहै, द्विरावृत्ति तो एकादशाहके और आद्य- मासिकके विषयमें वर्णन कीगई है, देवयाज्ञिकने भी इसी प्रकार लिखाहै, लौगाक्षिने भी यही लिखाहै कि, महीनेकी आदिमें मासिक और वर्ष बीतेपर वार्षिक और ग्यारहदिनमें आद्य और अधिकमासमें अधिकश्राद्ध होताहै, दीपिकामें तो यह लिखाहै कि, आद्यश्राद्ध ग्यारहवें वा द्वादशवें दिन होताहै ॥

गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकदिनाधिके माससंवत्सरपदं गौणम् । पूर्णेब्दे इति ईषदसमाप्त- परत्वमिति शूलपाणिः ॥ तेन द्वितीयमासादावाद्यमासिकादीनि तन्मौर्ख्यकृतम् ॥ अशक्तौ तु हारीतः-"मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति । द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा ॥ " ऋतुं प्रति द्वेद्वे इत्यर्थः ॥ यदा पितुर्मरणात्त्रयोविंशतितमे दिने दर्शो वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः ॥ त्रैपक्षिकं तु त्रिपक्षे- तीते मृताहे कार्यम् ॥ 'त्रैपक्षिकं भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम्' इति भविष्योक्तेः । इति मद- नरत्ने उक्तम् ॥

गौडोंने तो यह लिखाहै कि, मृत्युकी तिथिसे एकदिन अधिक मासमें संवत्सरपद गौण है, पूर्ण वर्षमें यह कुछेक असमाप्तपर है, यह शूलपाणिका कथन है, तिससे दूसरे महीनेकी आदिमें आद्यमासिक आदि होतेहैं, वह मूढकृत है, अशक्तिम तो हारीतने कहाहै कि, मास २ में तो श्राद्ध मुख्य होता है, पूर्ण न हो सके तो ऋतु २ में दोदो होते हैं, बारहदिनमें वा ग्यारहदिनमें बारह ब्राह्मण जिमावै, जब पिताके मरनेसे तेईसवें दिन अमावस वा वृद्धि होजाय तब बारहदिनोंमें बारह श्राद्ध मासिक करने, त्रैपक्षिक तो तीन पक्ष बीतनेपर मृत्युके दिनमें करना । कारण कि, त्रिपक्षबीतरनेपर त्रैपक्षिक होता है, यह भविष्य- पुराणका वाक्य है, यह मदनरत्नमें लिखा है ॥

पृथ्वीचन्द्रकालादर्शनिर्णयामृतादयस्तु-"ऊनान्यूनेषु मासेषु विषमाहे समेपि वा । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ पूर्वत्र वृत्ते प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः, ते तदनन्तरशब्दविरोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावा- च्चोपेक्ष्याः ॥ त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम् ॥ यत्तु-क्रियानिबन्धे गारुडे-"त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने । मासिकान्यपि चोनानि अष्टाविंशतिमे दिने ॥" इति तन्निर्मूलम् ॥

पृथ्वीचन्द्र निर्णयामृत कालादर्श आदिका तो यह कथन है कि, कमती वा तुल्यमासमें वा विष- मदिन वा समदिनमें ऊनश्राद्ध और तीनपक्षमें त्रैपक्षिक और इतर श्राद्ध मरणदिनमें होते हैं, इस कार्ष्णा- जिनिकी स्मृतिसे पूर्वके वृत्ते पदको प्रवृत्तअर्थ करतेहैं, वे इससे छोडने योग्य हैं कि, उससे अनन्तर शब्दका विरोध त्रैपक्षिक और द्वितीय मासिक पदके एकत्र होनेसे हो जायगा, त्रिपाक्षिकी सपिण्डीमें तो एवं शब्दके न

होनेसे अधिकरणताहीकी प्राप्ति जाननी, जो क्रियानिबंधमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, त्रैपक्षिक तीसरे पक्षकी प्रवृत्ति होनेपर विषमदिनमें होताहै, और ऊनमासिक श्राद्ध अट्ठाईसवें दिन होतेहैं वह निष्प्रमाण है॥

स्मृतिरत्नावल्याम्–"द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम्। एकादशेह्नि कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश॥" पैठीनसिः–"सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्ट-विधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः। प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि॥" मदनरत्ने कात्यायनः–"श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादे-कादशेहनि। ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा॥" ध्रुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि॥

स्मृतिरत्नावलीमें लिखाहै कि, जब पुत्र पिताकी सपिंडी द्वादशाहश्राद्धको करै तब एकादशाहके दिन षोडश प्रेतश्राद्ध करै, पैठीनसिमें कहाहै कि सपिंडीके प्रथम षोडश श्राद्धको करै तो एकोद्दिष्टकी विधिसे उन सबको करले, जब सपिंडीके उपरान्त करै तो प्रतिवर्षका श्राद्ध जैसे किया है वैसेही उनको भी करै, मदन-रत्नमें कात्यायनका कथन है कि, अग्निहोत्रीका श्राद्ध दाहसे ग्यारहवें दिन करै और ध्रुव (त्रिपक्षसे अगले) श्राद्धोंको तो मरनेके दिन निरन्तर करै॥

क्रियानिबन्धे गारुडे–'त्रिपक्षात्पूर्वतः साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे। ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनग्नेः सर्वाण्येव मृताहतः॥' एतानि च यदा सपिण्डनात्पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदा देशकालकर्त्रैक्यतन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित्॥ पाकभेद इति भट्टचरणाः॥ अत्र केचिदाहुः देशकालदैवतैक्ये तन्त्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेः–"द्वादशाहेथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत्। तान्येव तु पुनः कुर्या-त्प्रेतशब्दं न कारयेत्॥" इतिकात्यायनोक्तेः। 'नैव श्राद्धद्वयं कुर्यात् समानेहनि कुत्रचित्' इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेप्यत्र तत्सत्त्वात्॥

क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, अग्निहोत्रीके त्रिपक्षसे प्रथम श्राद्ध संस्कार (दाह) के दिनमें और त्रिपक्षके पीछे मरणदिनमें होतेहैं, और अनग्निके सब मरणदिनमें ही होतेहैं, इनको जब सपिंडीसे प्रथम एकत्र करै तब देश काल कर्ता एक है, इससे तंत्रसे एकपाक होताहै, यह कोई लिखतेहैं, भट्टचरण तो यह वर्णन करतेहैं कि, भिन्न २ पाक होताहै, यहां कोई यह लिखतेहैं कि, देशकालदेवता ये एक हैं, तंत्रसे श्राद्धकालका अतिक्रम होजायगा, इससे द्वादशाहको सबकी संक्षेपसे मूर्ति करै और उनकोही फिर करै परन्तु प्रेतशब्द न कहै, इस कात्यायनके कथनसे और एकमनुष्य एकदिनमें कभीभी दो श्राद्ध न करै यह वाक्य चाहै देवताके एक होनेमें भी हो यहां एकदेवता है॥

'श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न कारयेत्' इति जाबाल्युक्तेः षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये प्राजापत्ययागसप्तदशत्ववत्सान्नाय्ययागद्वित्ववच्च दर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवद्युगपदनु-ष्ठानेप्युपपत्तेः–'आद्यमासिकाद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रियताम्' इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः पिण्डोर्घश्चेति॥ विरुद्धविधिविध्वंसेप्येवं तन्मन्दम्॥ 'द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा' इति हेमाद्रौ हारीतवचोविरोधात्तेन विप्रभेदात् पिण्डार्घ्याद्यपि भिन्नमिति सिद्धम्॥ एतानि द्वादशाहादौ सपिण्डनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनापकर्षे पुनः

स्वकाले कार्याणि ॥ " यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥" इति मदनरत्ने आङ्गिरसोक्तेः ॥ नचेदं मासिकानामपकर्षं किंतु सपिण्डनोर्ध्वं स्वकालेनुष्ठानमेवेति वाच्यम् ॥ 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिण्डताम्' इति विरोधात् ॥ " यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिण्डता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥ " इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च । " अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः " इति तत्रैव गालवोक्तेः ॥ षोडशत्वं चैकादशाहात्सपिण्डनपक्षे॥तत्राद्यमासिकस्य कालसत्त्वादन्यपक्षेषु यथासंभवं ज्ञेयम्॥

और श्राद्धकरके फिर श्राद्ध न करै इस जाबालिके कथनसे, और षोडशसंख्याकी (सिद्धि) वाजपेयमें प्राजापत्ययज्ञकी सप्तदश १७ संख्याके समान और सान्नाय्यकी द्वित्वसंख्याके समान और दर्शमें पडी संक्रान्तिके तुल्य एकबार करनेमें भी होजायगी, इससे प्रथममासिकआदि ऊनाब्दिकपर्यन्त षोडशश्राद्धोंमें क्षण (समय) करो इसप्रकार एकही ब्राह्मण और एकही पिंड और अर्घ होतेहैं । विरुद्धविधिके नाशमें भी इसीप्रकार होताहै सो मंद है कारण कि, हेमाद्रिमें इसहारीतके वाक्यका विरोध कियाहै कि, बारहदिनमें वा ग्यारहदिन बारहब्राह्मण जिमावें, जिससे ब्राह्मणके भेदसे पिंडअर्घआदि भी पृथक् होतेहैं, यह सिद्ध हुआ, ये द्वादशदिनआदिमें सपिंडीसे प्रथम कियेभी वृद्धिके बिना अपकर्ष होजाय तो फिर अपने समयमें करने कारण कि, मदनरत्नमें आंगिरसने लिखाहै कि, जिसकी सपिंडी वर्षदिनसे प्रथम होजाय उसको भी मासिक और जलका घडा वर्षदिनतक दे, यह वाक्य कुछ मासिकश्राद्धोंके अपकर्षको नहीं करता, किन्तु सपिंडीके उपरान्त अपने समयमें करनेको कहताहै, यह शंका उचित नहीं कारण कि, इस वाक्यका विरोध है कि, षोडशश्राद्ध विनादिये सपिंडी न करै, और माधवीयमें गोभिलका भी कथन है कि, वर्षदिनसे प्रथम सपिंडी होगई हो फिरभी विधिपूर्वक षोडशश्राद्ध करै । वर्षदिनसे प्रथम जिसकी सपिंडी होजाय, षोडशश्राद्धोंकी दूसरी आवृत्ति करै यह गौतमने और गालवने लिखीहै, षोडशाहमें सपिंडी करनेके पक्षमें है, वहां आद्यमासिकका समय है, और पक्षोंमें यथासम्भव (जैसा होसके) जानना ॥

यत्तु दीपिकायाम्—'अनुमासिकानि तु चरेत्तान्येव सापिण्ड्यतः पश्चात्' ॥ द्वादशेत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् ॥ यत्तु गौडाः—'सपिण्डीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः' इति शातातपोक्तेर्मासिकानां प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिण्डनापकर्षे तदन्तन्यायेन तेषामपकर्षान्मासिकानां न पुनः कृतिः । यत्तु 'मासिकं चोदकुम्भं च' इति लौगाक्ष्यादिवचनं, तन्निर्मूलम् । समूलत्वेपि दार्शपरं चेत्याहुः ॥ ते उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविरोधान्मूर्खा इत्युपेक्ष्याः ॥

जो दीपिकामें कहाहै कि, अनुमासिक तो सपिंडीसे पश्चात् करै इससे पीछे द्वादश कहनेसे ऊनश्राद्धोंको फिर न करै, सो इसके विरोधसे यह चिन्ता है, जो गौड लिखतेहैं कि, बुद्धिमानोंको सपिंडीकर्मपर्यन्त प्रेतक्रिया जाननी चाहिये, इस शातातपके कथनसे मासिकश्राद्ध प्रेतत्त्व दूर करनेके निमित्त है इससे सपिंडीके अपकर्षमें तदंत्यन्यायसे मासिकोंका भी अपकर्ष होनेसे मासिकश्राद्धोंका फिर करना नहीं होता, और जो लौगाक्षिआदिने लिखाहै कि, मासिक और जलघट वर्षदिनतक दे वह निर्मूल है, समूलभी होय तो दर्शके विषयमें है, वे गौड उक्त और आगे कहे वाक्यवाले ग्रन्थोंके विरोधसे मूर्ख होनेसे त्यागनेयोग्य हैं ॥

यत्तु मिताक्षरायां सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम्, तदपि पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ तेन वृद्धिं विनापकर्षे पुनः कृतिः । 'अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप' इत्यग्निपुराणात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः । अन्यथा वृद्धावसंभवादिति शूलपाणिः ॥

जो मिताक्षरामें लिखाहै कि, सपिंडीके उपरान्त अपने समयमें करने, अपकर्ष तो अनुकल्प है, वह भी पूर्वके विरोधसे चिन्तनीय है, इससे वृद्धिके विना अपकर्ष होजाय तो फिर करना होताहै, और हे राजन्! वर्षदिनके प्रथम जिसकी सपिंडी होजाय उसको भी वर्षदिनतक प्रेतत्व जानना, इस अग्निपुराणके कथनसे वृद्धिके निमित्तवाला अपकर्ष होनेपर इसके तुल्य उसकी भी निवृत्ति होतीहै, नहीं तो अन्यथा वृद्धिकी सम्भावना नहीं है यह शूलपाणि कहतेहैं ॥

कार्ष्णाजिनिः—"सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥ " निषेधं चाह कात्यायनः—"निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ॥ अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु" इति ॥ द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव, न पूर्वेषां स्वस्वकालकृतानाम् । तदाह माधवीये कार्ष्णाजिनिः—"अर्वागब्दाद्यत्रयत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वमासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥

कार्ष्णाजिनिने लिखाहै कि, सपिंडीसे प्रथम अपकर्षसे कियेभी श्राद्ध पुनः भी (संक्षेपसे) किये-जातेहैं, कारण कि, वृद्धिके पीछे निषेध है, वह निषेध कात्यायनने लिखाहै कि, वृद्धिके तन्त्रोंको निवृत्त करके मासिक श्राद्धोंको तन्त्रसे न करै, कारण इस प्रेतका (कुत्सित) मरण न हो दूसरी वार करना भी पिछलोंका है, अपने समयमें किये पहिलोंका नहीं, सोई माधवीयमें कार्ष्णाजिनिने कहाहै कि, वर्षदिनसे प्रथम जहां २ सपिंडी की है वहां २ उसके उपरान्त मासिकश्राद्धोंको अपने २ समयमें करै ॥

हेमाद्रौ शाठ्यायनिः—"प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः ॥ " वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशनाः—"वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥" इति आधानेपकर्षमाह हेमाद्रावुशनाः—"पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥" विशेषस्तूक्तो विवाहनिर्णये ॥ अण्वः—"नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ॥ तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥ " गारुडेपि—'आपादाद्यकृतं यत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृताहनि ॥'

हेमाद्रिमें शांठ्यायनिका वाक्य है कि, प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको संक्षेपसे भी वह ब्राह्मण करै, जो नांदीमुखकी इच्छा करै, वृद्धिके विना अपकर्षमें उशनाने दोष लिखाहै कि, वृद्धिश्राद्धके विना जो मनुष्य प्रेतश्राद्ध करताहै वह पितरों सहित घोर नरकमें जाताहै। आधानमें संक्षेप उशनाने हेमाद्रिमें लिखाहै कि, पिताकी सपिंडी वार्षिक मरनेके दिन होती है, और आधान आदि आजाय तो वर्षसे प्रथम भी होती-है, विशेष तो विवाहनिर्णयमें लिखाहै, कण्वने कहाहै कि, नवश्राद्ध और मासिक जो अन्तमें पडै वह

उत्तरतन्त्रमें अनुष्ठान करना चाहिये, गरुडमें लिखाहै कि, मृत्युके दिन आपत्ति आदिसे यदि न किया हो तो वह उससे आगे न करना चाहिये ॥

अथ सपिण्डीकरणनिर्णयः ।

माधवीये हारीतः "या तु पूर्वममावास्या मृताहाद्दशमी भवेत् ॥ सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोऽग्निमान् ॥" मृताहादूर्ध्वं दशमी एकादशीत्यर्थः ॥ "सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्ववच्चाग्निमान्सुतः । परतो दशरात्राच्चेत्कुहूरब्दे परेतरः" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ आहिताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः ॥ तदाह गालवः–"सपिण्डीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते" ॥

अब सपिंडीकरणको लिखतेहैं । माधवीयमें हारीतका कथन है कि, जो अमावस्या मृत्युके दिनसे दशदिनमें होय तो अग्निहोत्रीपुत्रको उसमें सपिंडी करनी चाहिये, मरनेके दिनसे दशमी नाम एकादशी होय यह अर्थ है, कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, अग्निहोत्री पुत्र प्रथम अमावसमें सपिंडी करै, दशरात्रसे पीछे पूर्व होय तो पूर्ण वर्षमें करै, कारण कि, आहिताग्निके विना वेदोक्त कर्म और पिंडपितृयज्ञकी सिद्धि नहीं होसकती; यहां गालवने लिखा है कि, सपिंडी करनेसे जब प्रेत पितर पदवीको प्राप्त होते हैं, तब अग्निहोत्रीका अमावसमें यज्ञ होता है ॥

मदनरत्ने प्रजापतिः–'नासपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् ।' अपरार्के कात्यायनः–"एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम्" । आशौचान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिदहनीत्यर्थः ॥ पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन मातुरपि प्राग्दर्शात्सापिण्डनं युक्तमित्यपरार्कः ॥ एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कार्यम् ॥ तेन विना पार्वणायोगाद् द्वादशाहे वा कार्यम् ॥ "साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् ॥ द्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः" इति गोभिलोक्तेः ॥

मदनरत्नमें प्रजापतिने लिखाहै कि, विना सपिंडी किये अग्निहोत्री पुत्र पिंडपितृयज्ञ न करै, अपरार्कमें कात्यायनका कथन है कि, दर्शसे प्रथम विधिपूर्वक एकादशाहकी निवृत्ति करके अग्निहोत्री पुत्र माता पिताकी सपिण्डी करै, अर्थात् अशौचांत और प्रथम दर्शके बीचमें जिसकिसीदिन करै, जब सपत्नीक पिता आदि देवता है तो माताका भी उनमें प्रवेश है, इससे माताकी भी सपिण्डी दर्शसे प्रथम युक्त है यह अपरार्क लिखतेहैं, इसी प्रकार पितामह आदिकी भी सपिंडी दर्शसे प्रथम करनी, कारण कि, उसके विना पार्वण नहीं होसकता अथवा द्वादशाहको करनी कारण कि, गोभिलने लिखा है कि, जब कर्ता अग्निहोत्री हो और प्रेत अग्निहोत्री न हो तब पुत्र द्वादशाहमें सपिंडी करै ॥

साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे–"प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात् कर्तानग्निर्यदा भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके" इति सुमन्तूक्तेः ॥ मदनरत्ने लघुहारीतोपि "अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही ॥ प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात् त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ॥" द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव "साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत्॥द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः" इति तेनैवोक्तेः ॥ द्वयोरनग्नित्वे तु भविष्ये–"सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनाग्निमान् ।

अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेब्दे भरतर्षभ ॥ द्वादशाहनि षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा ॥ एकादशेपि वा मासि मङ्गलस्याप्युपस्थितौ ॥ "

और अग्निहोत्री प्रेतकी तो तीन पक्षमें करै, कारण कि सुमंतुका वाक्य है कि, यदि आहिताग्नि प्रेत हो और कर्त्ता अनग्नि होय तो तीसरे पक्षमें सपिंडी करै, मदनरत्नमें साग्निके निमित्त लघुहारीतका वाक्य है कि, हे वीरगृहस्थ अग्निहोत्री न हो और प्रेत अग्निहोत्री होय तो तीनपक्षमें सपिंडी करै, दोनों अग्निहोत्री होंय तो द्वादशाहमें करै, कारण कि, उसकाही कथन है कि, कर्ता और प्रेत दोनों अग्निहोत्री होयं तो पिताकी सपिंडी द्वादशाहमें करै, दोनों अग्निहोत्री न होंय तो भविष्यमें यह लिखाहै कि, हे भरतश्रेष्ठ अनग्नि प्रेतकी सपिंडी पूर्णवर्षमें अनग्नियजमान करै, वा बारहदिन षण्मास त्रिपक्ष तीन महीने और ग्यारहमासमें तब करै, जब कोई मंगलकार्य उपस्थित हो ॥

कात्यायनगोभिलौ–'यदहर्वा वृद्धिरापद्यते' । तच्च वृद्धिदिन एवेति वाचस्पतिः । तन्न । 'प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति नियमात्सपिण्डनस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः ॥ वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने चेति श्रीदत्तः ॥ स्मार्तगौडस्तु–'वृद्धिपूर्वो वर्षान्त्यश्च क्षणः सपिण्डनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी । तेन परेद्युर्विघ्नाद्वृद्ध्यभावेपि तत्कर्तव्यतानिश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकम्' इत्याह ॥

कात्यायन और गोभिलका वाक्य है कि, जिस दिन वृद्धि हो उस वृद्धिदिनमेंही सपिंडी करै, यह वाचस्पति कहते हैं, सो ठीक नहीं, कारण कि, वृद्धि निमित्तक श्राद्ध प्रातःसमय होताहै, इस नियमसे सपिंडीका अपराह्ण काल होनेसे पूर्वत्व पहले होनेका बाध होजायगा, श्रीदत्त तो यह कथन करते हैं कि, वृद्धि दिनमें वा उसके पूर्वदिनमें करै, स्मार्त्त गौडने तो यह लिखाहै कि, वृद्धिसे पूर्व और वर्षाके अन्तका समय सपिंडीसे प्रेतत्वके नाशमें सहायक है, तीसरे पहले दिन विघ्नसे वृद्धिके अभाव होनेपर भी उसके करनेका निश्चय सहित कालान्तरमें (क्रियमाण) करने योग्य वृद्धिसे पूर्व समयमें किया प्रेतत्वका नाशक है, सो ठीक नहीं ॥

तन्न ॥ अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात् ॥ एतेन निमित्तनिश्चयवत एवाधिकाराद्वृद्ध्यभावेपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता ॥ वृद्धिपूर्वदिनस्य च कालस्याङ्गत्वेन निमित्तत्वाभावात्तेन पुनः कार्यमित्यन्ये ॥ मदनरत्ने पुलस्त्यः–"निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः । पूर्णे संवत्सरे कुर्याद्वृद्धिर्वा यदहर्भवेत् ॥ " चतुर्विंशतिमते–"सपिण्डीकरणं चाब्दे संपूर्णेभ्युदयेपि वा । द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥ "

कारण कि, असमयमें किये फलका जनक नहीं होता, तिससे यह मिश्रका कथन परास्त हुआ कि, निमित्तके निश्चयवालेकाही कर्ममें अधिकार है, इससे वृद्धिके अभावमें भी सपिंडी करनेमें कुछ क्षति नहीं । वृद्धिसे पूर्वका दिन और वर्षका अन्त ये कालके अंग हैं इससे निमित्त नहीं हो सकते तिससे फिर करना यह और कथन करतेहैं, मदनरत्नमें पुलस्त्यका वाक्य है कि, निरग्निपुत्र पिता माताकी सपिंडी पूरे वर्षमें वा वृद्धिके दिन करै, चतुर्विंशतिके मतमें लिखा है कि, पूर्ण वर्षमें वा वृद्धिके दिन द्वादश वा एकादश दिनमें सपिंडी करै ॥

अथ सपिण्डीकरणनिर्णयः ।

पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः–'त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि, षष्ठे चैकादशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे वा' इति ॥ एतत्प्रक्रमे विष्णुः ॥ 'मासिकार्थं द्वादशाहं कृत्वा त्रयोदशेह्नि वा कुर्यान्म-

न्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत्' इति ॥ आशौचोत्तरं द्वादशस्वहस्सु मासिकानि ॥ तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषु मासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं कुर्यात् ॥ अधिमासे तु चतुर्दशेऽह्नि कुर्यात् ॥ शूद्रस्त्रयोदशे द्वादशेऽह्नीत्यस्य मासिकान्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः ॥

अब सपिंडीको लिखतेहैं:—पृथ्वीचन्द्रोदयमें बौधायनका वाक्य है कि, तीनपक्ष तीसरे महीने छठे महीनेमें वा ग्यारहवें वा बारहवें दिनमें सपिंडी होती है, इसी प्रकरणमें विष्णुने कहाहै कि, मासिकके निमित्त बारहदिनमें श्राद्ध करके तेरहदिनमें सपिंडी करै, शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंके विना बारहदिनमें वर्षके भीतर जो अधिकमास हो उस महीनेमें मासिकके निमित्त एकदिन बढाले, अशौचके पीछे बारहदिनोंमें मासिक करै, उन्हीं दिनोंमें प्रथम आठ द्वादशदिनोंमें ऊनमासिक आदि करके तेरहदिनमें सपिंडी करै, अधिमासमें तो चौदहदिनमें करै, शूद्र तेरह वा बारह दिनमें करै, यह मासिकके अन्त्यदिनका ज्ञापक है यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं॥

पैठीनसिः—'संवत्सरान्ते संसर्जनं नवमे मासीत्येके ॥ ' अत्र साग्नेरनग्नेर्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्तानामनुकल्पा ज्ञेयाः ॥ कल्पतरुस्त्वग्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह ॥ तन्न 'यदहर्वा' इति स्वातन्त्र्यश्रुतेः ॥ यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरग्नेरेवोक्तः तथापि साग्नावपि ज्ञेयः ॥ उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्वृद्धेरपि प्राप्तेः ॥ वक्ष्यमाणगोभिलवचनात् ॥ 'अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ' इति दोषश्रुत्यविशेषाच्च ॥ अपरार्कपृथ्वीचन्द्रादिस्वरसोऽप्येवम् ॥ अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् । सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्धलोप एवेत्याचार्यचूडामणिः ॥ पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धविवेकः ॥

पैठीनसिने कहाहै कि, संवत्सरके अंतमें वा किसीके मतसे नौमें महीनेमें सपिंडी होतीहै, यहां साग्नि पूर्वोक्तकालमें न कर सके तो तीनपक्षसे वर्षके अन्ततक इसका अनुकल्प जानना, कल्पतरुने तो यह लिखाहै कि, सब अपकर्षके प्रकार वृद्धिके निश्चय होनेपर ही होरहें, सो योग्य नहीं कारण कि, जिसदिन वृद्धि हो उसदिन करै यह स्वतंत्र वाक्य है, यद्यपि वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष निरग्निको लिखाहै तथापि साग्निको भी जानना कारण कि, उक्तकालकी असम्भवतामें वर्षका अन्त आदि गौणकालके समान वृद्धिभी प्राप्त है, आगे कहे गोभिलके वाक्यसे और पिछलेका अयातयाम (बुरा) मरण न हो इसदोषके सुननेमें अविशेषसे अपरार्कमें पृथ्वीचन्द्रोदयका आशयभी यही है, यहां वृद्धिपद मुंडन यज्ञोपवीत विवाहमात्रका ज्ञापक है, सीमंतोन्नयनादिमें तो वृद्धिश्राद्धका लोपही होताहै, यह आचार्य्यचूडामणि लिखतेहैं, पुंसवन अन्नप्राशनपर्यन्तोंमें आवश्यकता होनेसे अपकर्ष होताहै यह श्राद्धविवेक लिखतेहैं ॥

श्रुतिसागरेऽपि बृहस्पतिः—"प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्न कृते वृद्धिकर्मणि । तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥ " गर्भाधानस्य त्वन्तरेऽपि संभवात् ॥ ' अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् ' इति देवलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयस्तन्न ॥ ' ऋतुस्नातां तु यो भार्याम् ' इति निषेधात् 'ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च

वर्जयेत्' इति मैथुने दोषाभावाच्च पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ नापकर्षः॥ तस्य महागुरुत्वाभावात्॥ तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचन्द्रिका। तन्न। 'भ्राता च' इत्यादौ तदभावेप्यपकर्षोक्तेः तेन निर्देशोप्युपलक्षणम्॥

श्रुतिसागरमें भी बृहस्पतिका वाक्य है कि, जिस कर्ममें वृद्धिकर्मके न करनेसे पाप हो उसके निमित्त अपकर्षसे मातापिताकी सपिंडी करै, गर्भाधान तो और ऋतुमेंभी हो सकताहै और श्राद्ध परान्न गंध माल्य मैथुन इनको पहले वर्षमें न करै, इस देवलके कथनसे मैथुनका निषेध है, इसके गर्भाधानमें अपकर्ष न करना, यह श्राद्धकौमुदी आदि लिखतेहैं कारण कि, गर्भाधानमें इस वाक्यसे मैथुन करनेका दोष नहीं कि, ऋतुस्नाता भार्याके निकट जो गमन नहीं करता उसको भ्रूणहत्या प्राप्त होतीहै, पर्व और आदिकी चार रात्रिको जो ऋतुकालमें त्यागताहै वह ब्रह्मचारीही कहाताहै, पितामहकी मृत्युमें पौत्रवृद्धिमें अपकर्ष न करै कारण कि, वह महागुरु नहीं उसमें उससे ऊर्ध्वोंके निमित्त वृद्धिश्राद्ध होताहै यह श्राद्धचंद्रिकामें लिखाहै सो यथार्थ नहीं है कारण कि, 'भ्राता च' इत्यादिमें गुरुके अभावमें भी अपकर्ष लिखाहै तिससे निर्देश उपलक्षण है॥

व्याघ्रः—"आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्। अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥" एतदाशौचान्तोपलक्षणम्॥ 'सर्वेषामेव वर्णानामशौचान्ते सपिण्डनम्' इति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेः॥ सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरम्॥ शूद्राणां त्वाशौचमध्ये॥ 'मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां द्वादशेहनि कीर्तितम्' इति विष्णूक्तेः एतद्दर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपरार्के कल्पतरौ च॥

व्याघ्रने लिखाहै कि, कुलके धर्म असंख्य हैं, और पुरुषोंकी अवस्थाका क्षय है और शरीर अनित्य है इससे बारहवां दिन श्रेष्ठ है, यह अशौचांतदिनका उपलक्षण है कारण कि, निर्णयामृतमें कात्यायनका वाक्य है कि, सब वर्णोंमें अशौचके पीछे सपिंडी करै, सब वर्णोंके यह वाक्य त्रैवर्णिकके विषयमें लिखेहैं, शूद्रोंके तो अशौचके मध्यमें होताहै कारण कि, विष्णुने कहाहै कि, शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंसे रहित बारहदिनमें लिखीहै, यहभी दर्शश्राद्धके अधिकारी शूद्रके विषयमें है, यह अपरार्क और कल्पतरुमें कहाहै॥

वृद्धमनुः—"द्वादशेहनि विप्राणामशौचान्ते तु भूभुजाम्। वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथ वा स्यात्सपिण्डनम्" निर्णयामृते गोभिलः—"द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम्। सपिण्डीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु॥" इदं साग्नेरुक्तकालासंभवे गौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः॥ मदनरत्नेप्येवम्॥ ऋष्यशृङ्गः—"सपिण्डीकरणं श्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम्॥ रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत्॥" कालादर्शेपि—"एकादशे द्वादशेह्नि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा॥ षष्ठे चैकादशे वाब्दे संपूर्णे वा शुभागमे॥ सपिण्डीकरणस्येत्थमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः। साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः। रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चरेत्॥"

वृद्धमनुने लिखाहै कि, ब्राह्मणोंके बारह दिनमें, राजाओंके अशौचके अन्तमें, वैश्योंके त्रिपक्षआदिमें सपिंडी होती है, निर्णयामृतमें गोभिलका वाक्य है कि, बारहदिनआदि कालमें जो प्रमादसे सपिंडी आगेके कालोंमें सपिंडी करै, यह साग्निके कहे समयमें असम्भव होनेपर गौणकालमें करनेके निमित्त है यह मदनपारिजातमें लिखतेहैं। मदनरत्नमें भी इसीप्रकार लिखाहै, ऋष्यशृंगने लिखाहै कि, यदि सपिंडीश्राद्ध पूर्वोक्त

समयमें न किया होय तो भादोंमें हस्त रोहिणी अनुराधा नक्षत्रमें करना चाहिये, कालादर्शमें भी कहाहै कि, ग्यारह वा बारहदिनमें तीन पक्ष वा तीसरे छठे वा ग्यारहवें महीनेमें पूर्णवर्षमें वा श्रेष्ठमुहूर्तमें इस भांति सपिंडीके आठ समय लिखेहैं, अग्निहोत्री कर्त्ता होय तो प्रथम समय और साग्नि प्रेत होय तो तीसरे समय आठोंमें होताहै और अनग्निको तो दूसरे आदि सात समय मुनियोंने लिखेहैं वा रोहिणी आर्द्रा हस्त अनुराधामें उसको करै ॥

नारदसंहितायां तु–"सपिण्डीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेऽह्नि वा ॥" इत्युक्तम् ॥ वत्सरेऽतीतेऽपि ज्ञेयम् ॥ 'ततः सपिण्डीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम्' इति भविष्योक्तेः 'पितुः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम्' इति नागरखण्डोक्तेः ॥ 'पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे' इत्युशनसोक्तेश्च ॥ "पूर्णे संवत्सरे पिण्डाः षोडषः परिकीर्तितः । तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते ॥" इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव ॥ यत्तु–"पूर्णे संवत्सरे कुर्यात् सपिण्डीकरणं सुतः । एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत् ॥" इति धवलनिबन्धे जाबाल्युक्तेः ॥ "पुत्रः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यात्स्नानं सचैलकम् । एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात् कुतपं न विचारयेत् ॥" इति स्वल्पमात्स्योक्तेश्चाब्दिकं तद्दिने पुनः कार्यमिति केचित् ॥ ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्ष्याः ॥ षोडशत्वं च सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे ॥

नारदसंहितामें तो वर्ष वा अर्द्धवर्षमें तीनमहीने वा त्रिपक्षमें वा बारहदिनमें सपिंडी करै, यह लिखा है, वह वर्ष समाप्त होनेपर जानना, कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, सपिंडीकरण वर्षसे आगे स्थित जानना और नागरखंडमें भी लिखा है कि, पिताकी सपिंडी वर्षके आगे करै, और उशनाने भी लिखा है कि, पिताकी सपिंडी संवत्सरमें मरणदिनमें करै, और हेमाद्रिमें भी लिखाहै कि, पूर्णवर्षमें सोलहवां पिंड होताहै, उससेही सपिंडी वार्षिक दोनों होतेहैं इसको हटाकर करना मूढताहै, जो किसीने यह लिखाहै कि, बेटा पूरे वर्षमें सपिंडी और उसी मरणमें एकोद्दिष्ट पूर्ण करै, तथा धवलनिबंधमें इस जाबालिके कथनसे और पुत्रको सपिंडी करके सचैल स्नान करना चाहिये, फिर कुतुपसे प्रथम एकोद्दिष्ट करै, इस स्वल्प मात्स्योक्तके कथनसे उसी दिन फिर वार्षिक करै, यह कोई लिखतेहैं वे निर्मूल होनेसे तथा हेमाद्रिके विरोधसे त्याग करने योग्य हैं । सोलह कहना तो उस पक्षमें है, जब सपिंडीको षोडशश्राद्धके अन्तर्गत मानतेहैं ॥

स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षे श्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥ तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात् ॥ 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिण्डताम् । प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि॥' इति वायवीयोक्तेः षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वं कालाभावेपि तान्यदत्त्वा न कुर्यात् ॥ किं तु दत्त्वैव ॥ तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिण्डनमेव कुर्यादित्यपरार्कः ॥ सपिण्डने तु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः ॥ तत्रैव–"अज्ञानादथ वा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता । तत्रापि विधिवत्कार्या कालादपि चिरादपि ॥" तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः ॥ 'ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः' । इति मनूक्तेः ॥

स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि वर्षके अन्तदिनमें संवत्सरविमोक्ष श्राद्ध और मरण दिनमें वार्षिक श्राद्ध करै, गौडभी ऐसेही लिखतेहैं, वह पूर्वविरोध होनेसे त्यागनेयोग्य है, वह सपिण्डी पुत्रके होते औरको न करनी चाहिये कारण कि, वायवीयमें यह लिखाहै कि षोडशश्राद्ध देकर भी परदेशसे आया पुत्र बहुतकाल बीतजानेपर सपिंडीको सम्पादन करै। वर्षके उपरान्त षोडशश्राद्धोंको विना दिये समयके अभावमें भी सपिंडी न करै, किन्तु देकरही करै, यदि छोटेभाईआदिने करदिये होयँ तो सपिंडी न करै, यह अपरार्कका कथन है, सपिंडीमें तो कनिष्ठोंका अधिकार नहीं, वहांही लिखाहै कि अज्ञान वा मोहसे सपिण्डी न की होय तो बहुत कालमें भी विधिसे करनी, उनमें भी ज्येष्ठका ही अधिकार है, कारण कि ज्येष्ठके उत्पन्न होतेही मनुष्य पुत्रवान् होता है, यह मनुजी कहते हैं ॥

अपरार्के प्रचेता अपि–"एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः । कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्दिकं तु पृथक्पृथक् ॥" मरीचिः–"सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ " यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथक्कार्यमिति । तन्न । एवकारस्य तदभावेपि पृथक्करणाभावार्थत्वात् ॥ अन्धादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च ॥ अतस्तेषां प्रत्यवायमात्रम् ॥ आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव ॥ अन्यथा पितृयज्ञासिद्धेः ॥ एवमावश्यकवृद्धावपि कनिष्ठोन्यः सपिण्डो वा कुर्यात् ॥

अपरार्कमें प्रचेताने भी कहाहै कि, एकादशाहसे लेकर सम्पूर्ण कर्म ज्येष्ठको क्रमसे करने उचित हैं और उनको पुत्रोंमें एकही करै, और (क्षयाह) को तो भिन्न २ को करना चाहिये, मरीचिने तो यह लिखा है कि, सबकी सम्मतिपूर्वक इकठे द्रव्यसे बडेने जो कृत्य कियाहै वह सबका किया होजाताहै, वाचस्पति और शूलपाणिने यह लिखा है कि, द्रव्य देनेकी सम्मति न होय तो छोटा भ्राता पृथक् करै, सो उचित नहीं कारण कि, एवपद सम्मतिके अभावमें भी पृथक् न करनेके निमित्त इसप्रकार है जैसे अन्धको और कनिष्ठोंको ज्येष्ठके होते अधिकार भी नहीं है, इससे छोटोंको पापमात्र होताहै, आहिताग्नि होय तो छोटा भी करै, अन्यथा उसका पितृयज्ञ न हो सकेगा इसी प्रकार आवश्यक वृद्धिको भी छोटा वा और सपिंड करै ॥

"भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः ॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते । " इति मदनरत्ने लघुहारीतवचनात् ॥ वृद्ध्यनन्तरं प्रथमाब्दमध्योपि काम्यं कुर्यात् ॥ वृद्ध्यभावे तु प्रथमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः ॥ काम्योक्तेरनावश्यके इष्टापूर्तादौ नापकर्षः ॥ एतद्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नान्दीश्राद्धाधिकारार्थम् ॥ अभ्युदयपदं च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपरमिति हेमाद्रिः ॥ तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता ॥ भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नान्दीश्राद्धेज्यदेवतामात्रपरोपकर्ष इत्यपास्तम् ॥ अस्य क्रममा-

---

१ सोलह श्राद्ध करने उपरान्तही सपिण्डी करै सोलह श्राद्ध न देकर सपिंडी नहीं कर सकता ॥

२ एकादशाहादि निवृत्तकरके फिर यथाविधि अग्निमान् पुत्र मातापिताकी सपिण्डी करै सपिण्डी किये विना अग्निमान् पुत्र पितृयज्ञ नहीं करसकता ॥

त्रपरत्वाद्वृद्धिकर्त्रैव सपिण्डनं कुर्यादिति न नियम इति गौडाः ॥ अत एव कन्याया मातृमरणे भ्रात्रा सपिण्डने कृते पितुर्नाधिकारः ॥

कारण कि, यह मदनरत्नमें लघुहारीतने कहा है कि, भाई, भाईका पुत्र, शिष्य सपिण्डी करके अभ्युदय श्राद्ध करै, और तैसेही पहले वर्षको त्यागकर काम्यश्राद्ध करना चाहिये, वृद्धिश्राद्धके उपरान्त पहले वर्षमें भी काम्यश्राद्ध करै, वृद्धिके अभाव होनेमें तो पहिले वर्षके उपरान्तही करै, काम्यश्राद्ध कहनेसे अनावश्यक इष्टापूर्त आदिमें अपकर्ष नहीं है यह भी भाईके पुत्र आदिके संस्कारमें जिसको अधिकार कहा है उसको नान्दीश्राद्धके अधिकार निमित्त है, और अभ्युदय पद नन्दीमुख श्राद्धके निमित्त सम्पूर्ण कर्मोंका बोधक है, यह हेमाद्रि कहते हैं इससे यह श्रीदत्तका कथन परास्त होताहै कि, बडाभाई देशान्तरमें होय तो कनिष्ठको सपिंडीके विनाही वृद्धि श्राद्ध करके पुत्रका संस्कार करना चाहिये, और भ्रातृशिष्य आदिके कहनेसे यह परास्त हुआ कि, नान्दीश्राद्धमें पूजने योग्य देवतामात्रमें अपकर्ष होताहै, गौड तो यह लिखतेहैं कि यह वचन क्रममात्रका जनानेवालाहै इससे वृद्धिश्राद्धके करनेवालेहीको सपिण्डी करनी चाहिये, यह नियम नहीं है इससे माताकी मृत्युमें भ्राता जब सपिंडी करले तब पिताको कन्यादान करनेका अधिकार नहीं है ॥

शूलपाणिस्तु 'महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते' इति निषेधात् मृतस्य भ्रात्रादेः सपिण्डनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्नतु स्वपुत्रसंस्कारे संस्कार्यपितुः सपिण्डनं विना वृद्धौ दैवतत्वाभावादित्याह ॥ तन्न । विदेशस्थेन ज्येष्ठेन पुनः कार्यम्—"यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः" इति स्मृतेः ॥ 'ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिण्डीकरणे कृते ।' आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति वा पाठः ॥ "देशान्तरगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत् । श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशाहान्तं तिलोदकम् ॥ ततः सपिण्डीकरणं कुर्यादेकादशेहनि । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" इति- वचनाच्चेति भट्टाः ॥

शूलपाणिने तो यह कहा है कि, गुरु (बडे भ्राता) की मृत्यु होनेपर वृद्धि कर्मकी पूजा नहीं होती इस निषेधसे मृतक भाई आदिकी सपिंडी करके उसके पुत्र और भाई आदिका अभ्युदय करना चाहिये, जब अपना पुत्र संस्कार करै, तो संस्कार करनेयोग्य पिता सपिंडीके बिना वृद्धिश्राद्धमें देवता नहीं हो सकता सो उचित नहीं । देवताके किये अपकर्षका पूर्वमें खण्डन करचुके हैं, यदि वृद्धिश्राद्धके विना छोटेने सपिंडी करदी होय तो परदेशमें स्थित बडा फिर सपिंडी करै, कारण कि यह स्मृतिमें लिखाहै कि, छोटे भ्राताके किये कर्मको प्रेतशब्दको छोडकर बडा भ्राता फिर सपिंडीको करै, ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता सपिंडी करले, वह कनिष्ठ माता पिताकी सपिंडी करले तो देशान्तरके रहनेवाले पुत्र कैसे करैं, वे सुनकर मुण्डन करावें, और दशदिन तक तिलांजलि दें, फिर ग्यारहवें बारहवें दिनमें सपिण्डी करैं यह शातातपने लिखा है इससे भी वह उचित नहीं यह भट्ट लिखते हैं ॥

सिन्धुभट्टीयेप्येवम् ॥ पूर्ववचनेऽत्र च मूलं चिन्त्यम् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'विभक्ता ऋद्धिकामा-श्चेत्पुत्राः पृथक्सपिण्डीकरणं कुर्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां विशेषः प्रागु-क्तः ॥ केचित्तु वृद्धिं विनापि कनिष्ठस्य सपिण्डनमाहुः ॥ 'मातापित्रोर्मृते काले ज्येष्ठे देशान्तरस्थिते।कनिष्ठेन प्रकर्तव्यं सपिण्डीकरणं तथा।'' इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः॥ "गते वा रो-

धिते ज्येष्ठे पित्रा वा प्रेषिते सति । षण्मासान्न निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा" ॥ संवर्तः- " पुनः सपिण्डीकरणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत् । अर्घ्यसंयोजनं नैव पिंडसंयोजनं न च" इति॥ तेषां वचसां निर्मूलत्वात्-'प्रोषितावसिते पुत्रे' इत्यादिविरोधाच्चोपेक्ष्याः ॥

सिंगाभट्टीयमें भी इसी प्रकार लिखाहै, पूर्व और इस वाक्यमें मूल नहीं है, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखाहै कि, पृथक् हुए पुत्र वृद्धिकी इच्छा करें, तो पृथक् सपिंडी करें, इसमें दत्तक और उसके पुत्रआदि-कोंका विशेष प्रथम कह आये हैं । कोई तो वृद्धिके विना भी कनिष्ठको सपिंडी करनेका विधान कहते हैं कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, ज्येष्ठ पुत्र कहीं गया हो वा बंधनमें हो वा पिताने कहीं भेजा हो और छै महीनेतक न आवै तो छोटा भाई सपिंडी करले । संवर्तने कहाहै कि, फिर सपिंडी श्राद्धको पार्वणके समान करै, अर्घ और पिंडोंको न मिलावै, वे वाक्योंके निर्मूल होनेसे और पूर्वोक्त 'प्रोषितावसिते पुत्रः' इत्यादि वाक्योंके विरोधसे उपेक्षा करनेके योग्य हैं ॥

व्युत्क्रममृतौ ।

व्युत्क्रममृतौ तु हेमाद्रौ ब्राह्मे-"मृते पितरि यस्याथ विद्यन्ते च पितामहाः । तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः॥तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत् । मातर्यथ मृतायां च विद्यते च पितामही ॥ प्रपितामहीपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः॥" एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम् ॥ तदाह सुमन्तुः-" त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ " यत्तु-' व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता' इति तन्मातापितृभिन्नविषयम् ॥ " व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते । यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः॥" इति माधवीये स्कान्दोक्तेः॥ मदनरत्नादौ चैवम् ॥

क्रमसे मृत्यु न होनेमें तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखाहै कि, जिसका पिता मृतक होगया हो और पितामह जीवित हो वह प्रपितामहसे लेकर प्रारम्भ कर तीन पिंड दे, और उनमें पूर्वके तुल्य पिताके पिण्डको मिलादे, और माताकी मृत्यु हुई होय और दादी जीती हो तो परदादी आदिको देना । और योंही परदादाके जीते हुए उनके पिताआदिमें जानना चाहिये, सुमंतुने लिखा है कि तीन पिंडोंमें एकके संग सपिंडी होनेपर भी प्रेत पितर होताहै, यह धर्मकी व्यवस्था हैं और जो किसीने यह कहाहै कि, क्रमरहित मरोंकी सपिंडी न करै वह माता पिता और पतिसें भिन्नविषयमें है क्योंकि माधवीयमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, व्युत्क्रमसे मृतकोंकी सपिंडी इष्ट नहीं है, यदि पिता माता पति मृतक हुए होंय तो यह विधि नहींहै, मदनरत्नआदिमें भी इसी प्रकार लिखाहै ॥

अत्र ' प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते कृतसापिण्डने सति पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम्' इति हेमाद्रिर्मतमाह ॥ अन्ये नैव तन्मन्यन्ते ॥ तत्त्वं तु पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं न तत्सत्त्वे ॥ " त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ " इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेप्यसंस्कृताभ्यामेव पितुः सपिण्डनं कुर्यात् ॥ " असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकौ ॥ पितरं तत्र संस्कुर्यात् इति कात्यायनोऽब्रवीत्" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥

यहां हेमाद्रिने यह बात लिखीहै कि, प्रपितामहआदिके संग पिताकी सपिंडी करने उपरान्त पितामहके मृत्यु होनेपर पितामहकी सपिंडीके पीछे फिर पितामहके संग पिताकी सपिंडी करै, परन्तु दूसरे कोई इस मतको स्वीकार नहीं करते । सिद्धान्ततो यह है कि, यदि पिताकी सपिंडी न हुई हो तो दादाके संग फिर करै, यदि हुई होय तो न करना । कारण कि, यह विष्णुधर्मका कथन है कि, तीन पिंडोंके बीचमें एकके संगभी सपिंडी होनेपर प्रेत पितर होजाय तो यह धर्मकी व्यवस्था है, पितामह वा प्रपितामहका और पुत्रोंने संस्कार न किया होय तो संस्कारविनाही उनके संग पिताकी सपिंडी करनी । कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, प्रथम संस्कार न कियेहुए पोते और परपोतेका संस्कार न करै, और पिताका तो संस्कार असंस्कृत हुएका भी करदे, यह कात्यायनने लिखाहै ॥

असंस्कृतौ दाहाद्यैरिति केचित्॥ असपिण्डीकृताविति तु तत्त्वम् । अत एवोक्तं तत्रैव "पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा । पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः ॥ " पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न तु पतितादि । ' अभिशस्तपतितभ्रूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत्' इति बैजवापोक्तेः ॥ ' पापकर्मिणो न संसृजेरन्' इति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तं निर्णयामृते ॥ पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव ॥ 'पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः । पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्" इति कात्यायनोक्तेः ॥

कोई असंस्कृतपदसे दाहआदि संस्कार न होना कहतेहैं, सपिंडी होगई हो तो यह सिद्धान्त है इसीसे वहांही लिखाहै कि पापीभी शुद्धके संग वा पापीके संग शुद्धका संस्कार होनेसे पवित्र होताहै इससे दादाके संग पिताका संस्कार करै, यहां पापीपदसे वह ग्रहण करना जिसकी सपिंडी न हुई हो वह पतितआदिका ग्रहण नहीं है, कारण कि; बैजवापने कहाहै कि, शापित भ्रूणहत्यारे व्यभिचारणी स्त्रीकी सपिंडी न करै और गौतमने भी कहाहै कि, पापकर्मियोंकी सपिंडी न करै यह निर्णयामृतमें लिखाहै, पहले दोनोंके पुत्र न होंय तो पौत्र सपिंडी करै, कारण कि, कात्यायनने कहाहै कि, पिताके पीछे पितामहकी मृत्यु होय तो पौत्र एकादशाह आदि षोडश श्राद्ध करै, यदि दादा पुत्रवाला होय तो पुत्र पिताकी सपिंडी करके मासिक आदि श्राद्ध करै ॥

अपरार्के शूलपाणौ चैवम् ॥ तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसपिण्डनयोरेव पार्वणानुप्रवेश इति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ ' कृते सपिण्डीकरणे प्रेतः पार्वणभाग्भवेत्' इति हारीतविरोधाच्च ॥ केचित्पुत्रान्तराभावे पितामहवार्षिकमप्याहुः । तन्न ॥ श्राद्धषोडशमिति निगमात् ॥ इच्छया भवत्येव ॥ 'पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।' इति वाचस्पतिधृतगार्ग्योक्तेः त्रयाणां यौगपद्ये तु प्राधान्यात्पितुःसपिण्डनं कृत्वा पूर्वयोः कुर्यात् ॥

अपरार्क और शूलपाणिमें भी इसी प्रकार कहाहै, इससे यह मूर्खका कथन परास्त हुआ कि, सपिंडी अनित्य है, इससे जिनकी सपिंडी हुई उनका ही पार्वणमें प्रवेश है और इस हारीतऋषिके वाक्यका भी विरोधहै कि, सपिंडीकरणेपर प्रेत पार्वणका भागी होताहै, यह कोई लिखतेहैं और पुत्र न हो तो पितामहके वार्षिकको भी लिखतेहैं, सो ठीक नहीं, वहां सोलह श्राद्ध होतेहैं यह नियम है, इच्छापूर्वक तो श्राद्ध होताहीहै, कारण कि, वाचस्पतिमें यह गार्ग्यका वाक्य कहाहै कि, पितामहको श्राद्ध दे तो एकोद्दिष्ट दे, पार्वण न देना चाहिये, तीनों एकवार मृतक होंय तो प्रधान होनेसे पिताकी सपिंडी सम्पादन कर पहिले दोनोंकी करै ॥

पितामहे मृते दशाहान्तः पितुर्मृतौ पितुः संस्कारं कृत्वा पितामहस्य पुनः सर्वमावर्त्तयेत् ॥ वृत्ते दशाहे नैव ॥ अशक्त्या पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहश्राद्धे प्रक्रान्ते पितृमृतौ तदाशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वादिति मदनपारिजातपृथ्वीचन्द्रौ ॥ यत्तु— "उत्तरात्रितयरौद्ररोहिणीयाम्यसर्पपितृभेषु चाग्निभे । श्मश्रुकर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥" इति सपिण्डनप्रकरणे पाठान्मुख्यकाले निषिद्धर्क्षे सपिण्डनापकर्षः॥ सर्वकालेषु तद्वत्त्वे तद्वर्ज्यान्येव ॥ पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पतिमिश्राः, तन्न ॥ अस्य परिभाषात्वेन वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात् ॥ अस्य प्रेतमात्रदैवत्यभावाच्च ॥

पितामहकी मृत्यु होनेपर दशदिनके भीतर पिताकी मृत्यु हुई होय तो पिताका संस्कार करके फिर पितामहके सब कर्मको करै दशदिन बीतगये होंय तो इसप्रकार न करना, अशक्तिमें पिताकी आज्ञासे करना चाहिये, तिससे पौत्रने पितामहका श्राद्ध प्रारम्भ करदिया होय तो पौत्र पिताके अशौचमें ही दादाके कर्म करै कारण कि, उसका आरंभ होचुका है, यह मदनपारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै, जो यह वाचस्पतिने लिखाहै कि, तीनों उत्तरा आर्द्रा रोहिणी आश्लेषा मघा कृत्तिकामें बुद्धिमान् मनुष्य क्षौर और प्रेतकर्मको न करै, इस वाक्यसे मुख्यकालमें निषिद्ध नक्षत्र होयँ तो सपिंडीका अपकर्ष होताहै, सब कालमें निषिद्ध नक्षत्र होयँ तो सपिंडीसे पृथक्ही पूर्वोक्त ब्राह्मणोक्त षोडश श्राद्धोंको करै; यह वाचस्पतिमिश्र कहतेहैं सो यथार्थ नहीं कारण कि, इस वाक्यको पारिभाषिक होनेसे सावकाशकर्मकी विषयता प्राप्त है, और सपिंडीमें प्रेतमात्रको देवत्वका भाव है ॥

स्त्रीणां सपिण्डननिर्णयः।

अथ स्त्रीषूच्यते ॥ हेमाद्रौ बृहस्पतिः—"भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः कुर्यात्सपिण्डनम्।" यत्तु भविष्ये—"पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः" इति तदासुरादिविवाहोढापरम् 'आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्' इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥ तत्रानेकवचनेषु पितामह्या पत्या मातामहेन वा सहोक्तम् ॥ तत्र व्यवस्थोक्ता भविष्ये—'जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् । प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः ॥' तत्पित्रा मातुः पित्रा ॥ लौगाक्षिः—"पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि ध्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति ॥"

अब स्त्रियोंके विषयमें वर्णन करतेहैं—हेमाद्रिमें बृहस्पतिने लिखाहै कि, पतिके गोत्र और नामसे माताकी सपिंडी करै जो भविष्यपुराणमें कहाहै कि, पिताके गोत्रको त्यागकर पतिके गोत्रसे न करै वह उस माताके विषयमें है जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाहीगई हों, कारण कि, बृहत्शातातपने कहाहै कि,धर्मजाननेवाला आसुर आदिविवाहोंमें पिताके गोत्रसे सपिंडी करै, वह माताकी सपिंडी अनेक कथनोंमें दादीपति नानाके संग लिखीहै उसकी व्यवस्था भविष्यपुराणमें कहीहै जिसका पिता जीवित हो वह माताकी सपिंडी पितामहीके संग करै, और पिता मृतक होगया होय तो पिताके संग करै लौगाक्षि कहतेहैं पितामहीआदिके साथ माताकी सपिंडी करै पिताके धरण और मरणमें जाने ॥

शंखः—"मातुः सापिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः । पितामह्यादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥" येन केनापि मातुः सापिण्ड्ये यत्रान्वष्टकादौ मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम् ॥ "नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि । पितामह्यादिभिः सार्धं

मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥ " इति शातातपोक्तेः ॥ अपुत्रायां तु पैठीनसिः–"अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ " यत्तु लघुहारीतः–"पुत्रेणैव तु कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोपि ये । " इति ॥

शंखका कथन है कि, पुत्र माताकी सपिंडी किस प्रकार करै, पितामही आदिके संग सपिंडी करना लिखाहै जिसकिसीके संग माताकी सपिंडी होय तो अन्वष्टका आदिमें माताका श्राद्ध भिन्न लिखाहै वह पितामहीके संग करना चाहिये, कारण कि, शातातपने कहाहै कि, नान्दीमुख अष्टकाश्राद्ध मरणदिन गयामें माताका श्राद्ध पितामहीआदिके संग करना, पुत्र न होय तो पैठीनसिस्मृतिमें कहाहै कि, पुत्ररहित माता मृतक होजाय तो पति सासआदिके संग सपिंडी करै, जो लघुहारीतका यह वचन है कि, स्त्रीकी सपिंडी पुत्रही करै, और पुरुषकी तो भाईके पुत्र आदि औरभी करैं ॥

यच्च मार्कण्डेयपुराणे–'सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते । ' इति ॥ तत्पुत्रपत्यभावे ज्ञेयम् ॥ अत्र सपत्नी पुत्रोपि ज्ञेयः " बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ " इति मनूक्तेरेतत्परत्वात् ॥ यत्तु शातातपः–"मृते पितरि मातुस्तु न कार्या सहपिण्डता । पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् " इति तदशक्तपरम् ॥ केषांचिद्वा मतमिति हेमाद्रिः ॥ अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिंड्यम् ॥ "मृता यानुगता नाथं सा तेन सहपिण्डताम् । अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंप्लवम् । " इति शातातपोक्तेः ॥ "पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः । " इति यमोक्तेश्च ॥ अत्रैकशब्दः पितामह्यादिपक्षनिवृत्त्यर्थः ॥ पतिपदं वर्गपरम् ॥ सपिण्डनस्य पार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्पतरुमदनरत्नादयः ॥ अन्ये तु भर्त्रैवैकेनाहुः 'स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् । ' इत्येवकारश्रवणात् ॥

जो मार्कण्डेयपुराणके वाक्य हैं कि, पुत्रके अभावमें स्त्रियोंकी सपिंडी नहीं होती, वे वाक्य पुत्र और भर्ताके अभावमें जानने चाहियें, यहां सपत्नी का पुत्र भी मानना कारण कि, इसमें मनुका प्रमाण है कि, एककीही बहुत पत्नी हों इनमें एकपुत्रवाली होय तो वे सब उस पुत्रसे पुत्रवाली हैं, यह मनुने कहाहै, जो शातातपने लिखा है कि, पिताके मरनेपर माताकी सपिंडी न करनी कारण कि, पिताकी सपिंडीसे ही उसकी सपिंडी होगई, वह अशक्तके विषयमें है; वा किसी २ का सम्मत है यह हेमाद्रि लिखतेहैं, अन्वारोहणमें तो पतिके संग सपिंडी होती है, कारण कि, शातातपने कहाहै कि, स्त्री मरकर अपने स्वामीके संग सपिंडी तथा प्रलयपर्यंत स्वर्गनिवासके योग्य होती है, यमने कहाहै कि, एक भर्ताके संगही स्त्रीकी सपिंडी करै, कारण कि, वह मृतक होकर भी पतिके संगही मन्त्रोंकी आहुति और मन्त्रोंसे एकताको प्राप्त हुई है, यहां एकशब्द पितामही आदिके संग करै, इस पक्षकी निवृत्तिके निमित्त है, पतिपद पतिके कुलका पक्ष है, कारण कि, सपिंडी पार्वण और एकोद्दिष्ट रूप है, यह माधव, कल्पतरु, मदनरत्न, आदिका मत है, और तो एकपतिके संगहीं लिखतेहैं, कारण कि, पतिके संगही इसकी सपिंडी होती है, इस वाक्यमें एव (ही) पद सुनाहै ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयेपि विकल्प उक्तः ॥ इदं तु तत्त्वम् ॥ यदा हेमाद्र्यादिमते द्वयोरेकः पिण्डस्तदा वर्गेण सह ॥ यदा माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक् पिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चक-

नापि ॥ अतो मातृपिण्डमसपिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादिभिः संयोजयेत् ॥ अन्त्यपक्ष एव युक्तः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी विकल्प लिखा है, सिद्धान्त तो यह है कि, जब हेमाद्रि आदिके मतसे दोनोंको एक पिंड दियाजाय तब पतिकुलके संग, और माधव पृथ्वीचन्द्र आदिके मतसे पृथक् पिंड दियाजाय तब एकपतिके संगही सपिंडी करनी चाहिये और वचनसेभी एकके संग सपिंडी प्राप्त होतीहै, इससे माताके पिंडको असपिंडी कियेहुए पतिपिंडके संग मिलाकर एक किये हुए दोनों पिण्डोंको दादा आदिके संग मिलादे, इन दोनोंमें पिछला पक्षही योग्य और उचित है ॥

स्मृत्यर्थसारे तु–'अन्वारोहणेनैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् सपिण्डनं नास्ति ॥ भर्तुः कृते स्त्रिया अपि कृतं भवति ' इत्युक्तम् ॥ तन्मतान्तरमस्तु ॥ इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम् ॥ आसुरादिषु तु शातातपः–"तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छ्वश्र्वा वा सपिण्डनम् । आसुरादिविवाहेषु विन्नानां योषितां भवेत् ॥ " मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्रपितामह्या चेत्यर्थः ॥

स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखतेहैं कि, सती होनेमें स्त्री पुरुष एकदिन मृतक हुए होंय तो स्त्रीकी सपिंडी नहीं होती, पतिके सपिंडी करनेसे स्त्रीकी भी होजाती है, वहभी मतांतर विद्यमान रहो, यह भी ब्राह्मआदि विवाहोंमें जानना चाहिये, आसुर आदि विवाहोंमें तो शातातपने कहा है कि, माता, पितामही, सासके संग उन स्त्रियोंकी सपिंडी होतीहै, जो आसुर आदि विवाहोंसे परिणीत हों अर्थात् मातामही और माताकी पितामही वा प्रपितामहीके संग सपिंडी करनी ॥

सुमन्तुः–" पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे तद्वदित्याह भगवाञ्शिवः ॥ " इदमासुरादिपरं पुत्रिकापुत्रपरं चोक्तं प्राक् ॥ हेमाद्रिस्तु ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पमाह ॥ अतो गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति श्राद्धप्रयोगसपिण्डने च दृश्यते ॥ हेमाद्रावापस्तम्बोपि–"कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसंचयजीविनः । पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नारी मृता सती ॥"

सुमंतुने कहाहै कि, पूर्ण वर्षमें पुत्र पिताको पितामहमें माताको मातामहमें मिलावे, यह भगवान् शिवने कहाहै, यह आसुर आदि विवाहोंमें और पुत्रिकाके पुत्रमें है, यह प्रथम कह आये हैं, हेमाद्रिने तो ब्राह्मआदि विवाहोंमेंभी है, तोभी सर्वत्र देशभेदसे विकल्प लिखा है इसीसे गुर्जरोंमें जो कोकिलमतके अनुसरण करनेवाले हैं उनका यह श्राद्धप्रयोग है, कि, माता, मातामह, प्रमातामह और इनकी सपिंडीभी देखतेहैं, हेमाद्रिमें आपस्तंबकाभी कथन है कि, जैसे औरके संचयसे कोकिलके पुत्र पुष्ट हुए अपने कुलमें जातेहैं, इसी प्रकार मरकर सती नारी पतिलोकको जाती है ॥

यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्ड्येन पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नित्यमित्याह । यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टे–'षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत ' इति, तदेतद्विषयमेव ॥ मातुः पृथक्श्राद्धाभावात् ॥ अत एव हेमाद्रौ भविष्ये–मातुः सपिण्डनं प्रक्रम्य "उदितेनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत् । तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद् बुधः ॥ "

इत्युक्तम् ॥ अस्य वृद्धावपवादमाह तत्रैव व्याघ्रपात् "कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा मातृपूर्वकम् । विधिज्ञो विधिमास्थाय वृद्धो मातामहादिवत् ॥ " केचिदेतत्पुत्रिकापुत्रपरमाहुः । पत्युः सापिण्ड्यमाह लौगाक्षिः–"सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" इति । यत्तु वचनम्–'अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिण्डताम् ' इति ॥

और जो विज्ञानेश्वरने मातामहके संग माताकी सपिंडीमें पितृश्राद्धके संग माताका श्राद्ध नित्य लिखा है, और जो वृद्धिश्राद्धमें छंदोगपरिशिष्टका कथन है कि, उसके पीछे छः पितरोंको श्राद्ध देनेका प्रारम्भ करै वह उसी विषयमें है कारण कि, माताका पृथक् श्राद्ध नहीं हो सकता, इसीसे हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य माताके सपिंडीप्रकरणमें लिखाहै कि, उदित और अनुदित सूर्यमें जैसे होमका भेद होता है तैसेही कुलके क्रमसे चले आये आचारको बुद्धिमान् मनुष्य करै, वृद्धिमें इसका अपवाद वहांही व्याघ्रपादने लिखाहै कि, मातामहका श्राद्ध निरन्तरके क्रमसे करै, और विधिका ज्ञाता विधिसे वृद्धिश्राद्धमें मातामहके क्रमसे करै, कोई इस वाक्यको पुत्रिकाके विषयमें लिखते हैं, पतिकी सपिंडी लौगाक्षिने लिखीहै कि, सबके अभावमें पत्नी स्वयं अपने भर्त्ताओंकी सपिंडी विना मंत्र करैं, और फिर पार्वण करैं, जो यह वाक्य है कि, मरेहुए पुत्रहीनकी सपिंडी न करै ॥

यच्चापस्तम्बः–"अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोपि वा । तेषां सपिण्डनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ ' इति, तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः । "सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥ " इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च ॥ अन्ये तु द्विविधवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः ॥

और जो आपस्तम्बने कहा है कि, जो पुत्रहीन स्त्री वा पुरुष मृतक हुए हैं इनकी सपिंडीके अभावसे एकोद्दिष्ट होताहै, पार्वण नहीं होता, वे वाक्य पुत्र उत्पन्न करनेकी अनेक प्रशंसाके विषयमें हैं यह माधवका कथन है, और हेमाद्रिमें प्रचेताका भी कथन है कि, जो सम्पूर्ण पुत्रहीन और पत्नीसे रहित हैं उनकी सपिंडी करनेपर एकोद्दिष्ट करै, और तो यह लिखतेहैं कि, विधवाओंकी सपिण्डी नहीं देखते, इससे विकल्प है ॥

स्मृत्यर्थसारेपि–'ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च पिण्डनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिण्ड्यं कार्यं न वा ॥ केचित्सर्वत्र सपिण्डनमाहुरिति' ॥ अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकाकारिकायाम्–"भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा । सपिण्डीकरणं कुर्यात्पुत्रहीने मृते सति ॥ सर्वबन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सपिण्डताम् । ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥ वसुरुद्रादितिसुतैः कार्या तेषां सपिण्डता ॥ व्युत्क्रमाच्च प्रमीता ये तद्विना प्रेतता ध्रुवम् । पुनः सपिण्डनं तेषां कुर्यात्प्रेते पितामहे ॥ " इति ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ यतीनां सपिण्डनं नास्ति किंत्वेकादशेह्नि पार्वणं कार्यम् ॥ तदपि त्रिदण्डिनः ॥ एकदण्ड्यादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक् ॥ दण्डग्रहणात्पूर्वं मृते तु दाहादिसपिण्डनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टचरणाः ॥

स्मृत्यर्थसारमेंभी लिखाहै, ब्रह्मचारी, संततिहीनकी सपिंडी नहीं होती, इनका सदा एकोद्दिष्ट होता है। क्रमके विना जो मरेहैं उनकी सपिंडी करैं, वा न करैं, कोई तो सबकी सपिंडी करनी कथन करतेहैं, अपुत्र और क्रमहीन मरेका विशेष रेणुकाकारिकामें लिखा है कि, पुत्रहीन मरै तो भाई, भाईका पुत्र, सपिंड वा शिष्य सपिंडी करै, जिसके कोई बंधु न हो उसकी सपिंडी भार्या करै, अथवा ऋत्विज वा पुरोहित करै, क्रमहीनसे मरोंकी और पूर्वोक्तोंकी सपिंडी वसु रुद्र आदित्योंके संग करै, सपिंडी न करै तो निश्चय प्रेत होते-हैं, और पुनः उनकी सपिंडी दादाके संग करै, इन सपिंडीवाक्योंमें मूल नहीं मिलता। संन्यासियोंकी सपिंडी नहीं होती किन्तु ग्यारहवें दिन पार्वण करना चाहिये, यह भी त्रिदण्डीके निमित्त है, एकदंडीके निमित्त तो वह भी नहीं, यह प्रथम कह आये हैं, दण्डके लेनेसे प्रथम मरजाय तो दाहसे लेकर सपिंडीपर्यन्त सब कर्म करना चाहिये, यह भट्टचरण कहते हैं ॥

सपिण्डनविधिमाह ।

वैजवापः–'समाप्ते संवत्सरे चत्वार्युदपात्राणि प्रयुनक्ति, एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः, प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिंचति ये समाना इति, द्वाभ्यामेव पिण्डोथाभिमृशति ॥ "एष वोनुगतः प्रेतः पितरस्तं ददामि वः । शिवं भवतु शेषाणां जायन्तां चिरजीविनः ॥" समानीवः संगच्छध्वं संवदध्वम् ।' इति ॥ यद्यपि–"तत्रापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥" इति मार्कण्डेयेनोक्तम् । तथापि–" सपिण्डीकरणं श्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत् ॥" इत्यादिविरोधाद्विकल्पः प्रेतांशे वा ज्ञेयम् ॥ अत्र कामकालौ वैश्वदेवावपीत्युक्तं प्राक् ॥

सपिण्डीकी विधि वैजवापने लिखीहै, वर्षकी समाप्ति होनेपर चार जलके पात्र रक्खै, एक प्रेतका और तीन पितरोंके, प्रेतके पात्रको पितरोंके पात्रोंमें 'ये समानाः०'इन दो ऋचाओंसे मिलावै, फिर पिंडोंको छूकर कहै कि, 'हे पितरो ! यह प्रेत तुमको दिया शेष रहोंके मंगल हो और चिरजीवी हो और ये तुम्हारे संग मिलै, यद्यपि मार्कण्डेयने लिखा है कि, वह सपिंडी विश्वेदेवाओंसे हीन एक पवित्री और एक अर्घ्य-वाली होतीहै, और उसमें अग्नौकरण आवाहन यह दोनों नहीं होते हैं तथापि सपिण्डी श्राद्धको देवपूर्वक करना चाहिये, इत्यादि वाक्यसे विकल्प है, अथवा पूर्ववाक्य प्रेतभागमें जानना चाहिये, सपिण्डीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं, यह पहले लिख आये हैं ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टे–'पित्र्यविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह' । यत्तु गोभिलः–"अनुक्तकाले ष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि । आमेन वापि सापिण्ड्यं हेम्ना वापि प्रकल्पयेत् ॥" इति तदापदि मातापितृभिन्नपरम् ॥ 'आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ।' इति तेनैवो-क्तेः ॥ शुद्धितत्त्वे कामधेनौ च लघुहारीतः "सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम् ।

---

१ जिसका पिता मृतक होगया हो पितामह जीवित हो वह पिताका नाम लेकर प्रपितामहका कीर्तन करै ऐसा मनु कहते हैं । पिताका नाम लेकर पितरको देवतात्वसे निर्देश कर प्रपितामहकोभी तीन दे । जिसका पिता प्रेत हो वह पिताके स्थानमें पिण्ड रखकर पितामहसे परे दे ऐसा विष्णु कहते-हैं । पितृस्थानपर पिण्ड रखकर पितामहसे आगे दोनोंको दे । व्युत्क्रमसे मरनेमें पुत्रको दशाहादिमें पिता-महादिकोंकाही पार्वण करना चाहिये, जो तात ब्राह्मणादिसे हत पतित संगवर्जित हो व्युत्क्रमसे मर-नेमें जिसके निमित्त देता हो, दे, ऐसा कात्यायन कहते हैं ॥

२ ये समानाः समनसः पितरोयमराज्ये । तेषाँल्लोकः स्वधानमो यज्ञोदेवेषु कल्पताम् । यजु० ॥

पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः ॥ " विश्वप्रकाशे-" प्रेतः सपिण्डनादूर्ध्वं पितृलोकेनुगच्छति । कुर्यात्तस्य तु पाथेयं द्वितीयेह्नि सपिण्डनात् ॥ " स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् ॥ एतन्मलमासेपि कार्यम् ॥ " अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा । तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ॥ " इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ सपिण्डीकरणम् ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टमें यह कहाहै कि, सपिंडीमें पितृब्राह्मणके हाथमें अग्निहोत्री भी होम करै, जो गोभिलने कहाहै कि, अनुक्त समयमें व्युत्क्रमसे मरनेपर भी आम अन्नसे वा सुवर्णसे सपिंडी करै, वह आपत्तिमें माता पिताके भिन्न विषयमें है, कारण कि, उसनेही यह लिखाहै कि, आपत्तिमें भी कभी आमान्नसे श्राद्ध न करै । शुद्धितत्त्व और कामधेनुमें लवुहारीतका कथन है कि, सपिंडीपर्यन्त षोडश प्रेतश्राद्ध मांससहित पक्वान्नसे द्विजाति करै । विश्वप्रकाशमें कहाहै कि, सपिंडीसे उपरान्त प्रेत पितृलोकमें गमन करते हैं, सपिंडीके दूसरे दिन प्रेतको पाथेय (मार्गका व्यय) करै, स्मृत्यर्थसारमें भी इसीप्रकार लिखा है, फिर वृद्धिश्राद्ध करै । यह मलमासमें भी करै । यह हेमाद्रिमें हारीत ऋषिने कहा है कि, अधिकमासमें वृद्धिश्राद्ध और इसी प्रकार काम्य कर्म पहले वर्षको त्यागकर न करै ॥

इति श्रीनिर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां सपिंडीकरणम् ॥

अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि ।

हेमाद्रौ-"स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम् । प्रथमेब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने॥" अग्नितर्पणं लक्षहोमादि, न त्वाधानम्, तत्तु प्रथमाब्दे भवत्येव । तदाह हेमाद्रावुशनाः- " पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥ " अन्यतर्पणमिति शुद्धितत्त्वे पाठः ॥ आदिपदं वृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरम् ॥ दिवोदासीये- "महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च । संवत्सरं न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥ " इदं श्राद्धकौमुद्यां देवीपुराणस्थमुक्तम् ॥

अब पहले वर्षमें निषिद्धोंको वर्णन करतेहैं । हेमाद्रिमें कहाहै कि, महागुरुकी मृत्युमें स्नान, महादान, वेदपाठ, अग्नितर्पण (हवन) को पहले वर्षमें न करै, शुद्धितत्त्वमें तो अन्यका तर्पण करना, यह पाठ है । अग्नितर्पणसे लक्षहोम होतेहैं, आधान नहीं । आधान तो पहले वर्षमें भी होताहै । यही हेमाद्रिमें उशनाने लिखाहै । पिताकी सपिंडी मृत्युके दिन वर्षीके दिन करै, आधान आदि आन पडैं तो वर्षसे प्रथम भी करै । आदि पदसे वृद्धिके निमित्त नित्यकर्म ग्रहण करतेहैं । दिवोदासीयमें कहाहै कि, महातीर्थमें गमन, उपवास, व्रत महागुरुकी मृत्युमें वर्षदिनतक न करना चाहिये, यह श्राद्धकौमुदीमें देवीपुराणका वाक्य लिखाहै ॥

गौडनिबन्धे मात्स्ये-" सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् । वृद्धीष्टापूर्तयोग्यश्च गृहस्थश्च सदा भवेत् ॥ " वर्षान्तसपिण्डनाभावे नाधिकारीत्यर्थः ॥ गृहस्थः सपिण्डोपीत्यर्थः । अत एव-" प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥" इति ज्योतिषे उक्तम् ॥ माधवीये देवलः-" प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥ " इदं वर्षान्तसपिण्डनपरम् ॥

'तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमाद्दते ।' इति लघुहारीताद्यैकवाक्यत्वात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु काम्यादि भवत्येवेति गौडाः ॥ पित्र्यं सपिण्डनम् ॥

गौडनिबंधमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, सपिंडीके उपरान्त प्रेतपार्वणके योग्य और गृहस्थ वृद्धिश्राद्ध और इष्टापूर्तके योग्य होतेहैं, वर्षके पीछे सपिंडीके विना अधिकारी नहीं हैं, गृहस्थ पदसे सपिंडको भी लेना । इसीसे ज्योतिषमें लिखाहै कि, प्रेतकर्मकी जबतक निवृत्ति न हो तबतक वृद्धिश्राद्ध चौथी पीढीतक न करै, और पांचवीं पीढीमें करना श्रेष्ठ है, माधवीयमें देवलका कथन है कि, जिसके माता पिता मृतक होजायँ उसका देह अपवित्र होताहै, उसे वर्षदिनतक देवता और पितृकर्म न करना चाहिये, यह वाक्य भी तब है जब वर्षके पश्चात् सपिंडी हो, कारण कि, इस लघुहारीतआदिके कथनके संग एकवाक्यता है कि, इसीही प्रथमवर्षको त्यागकर काम्यकर्म न करै, वृद्धिश्राद्धके निमित्त अपकर्ष होय तो वर्षके बीचमें भी काम्य आदि कर्म होतेहैं, यह गौडोंका कथन हैं, पितृकर्मसे सपिंडी लेना ॥

अत एव लौगाक्षिः—"अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने। कुर्यात्संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ॥" दाहाद्येकादशाहान्तं कार्यम् ॥ तत्राशौचान्तरस्याप्रतिबन्धकत्वात् ॥ 'आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेहनि ।' इत्युक्तेश्च ॥ एकं सपिण्डनम् ॥ पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋष्यशृङ्गः—"पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेषु च । स्नुषास्वस्रोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि ॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं साफिण्ड्यमाचरेत् ॥" लौगाक्षिः—"पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि । पितरौ च यदैकस्मिन् म्रियेरन्वासरे तदा ॥ आद्यमेकादशे कुर्यात्त्रिपक्षे तु सपिण्डनम् ॥"

इसीसे लौगाक्षिने कहाहै कि, और कर्म प्रेतकर्मके बन्धक नहीं हैं, यहभी वाक्य है कि, अशुद्ध भी मनुष्य एकादशाहको प्रथम श्राद्ध करै, पत्नी आदिकी एकसपिंडीमें तो अपवाद माधवीयमें ऋष्यशृंगने लिखाहै कि, पत्नीके संग बेटेका और पोतेका, भाई और भाईके बेटोंका, बधू और सासका, माता और पिताकी यदि एकसाथ मृत्यु होजाय तो वर्षके बीचमें भी माता पिताकी क्रमसे सपिंडी करै, लौगाक्षिने कहा है कि, भार्या, पुत्र, पौत्र और भाई, भाईके बेटे, माता, पिता ये यदि एकदिन मृतक होजायँ तो एकादशाहको आद्य श्राद्ध और त्रिपक्षमें सपिंडी करनी चाहिये ॥

धवलनिबन्धे—"महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि । कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥" भृगुः—"माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्नुषा । एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः ॥" एतदपि सपिण्डनपरम् ॥ पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः ॥ शुद्धितत्त्वे देवलः—"अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् । वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥" पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—"पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते । मातर्यपि च वृत्तायां पितृश्राद्धादृते समम् ॥" समं पितरं विनान्यश्राद्धं नेत्यर्थः ॥

धवलनिबन्धमें लिखा है कि, महागुरुकी मृत्युमें यथाविधि प्रेतकर्म वर्षसे प्रथमभी करै, परन्तु एकोद्दिष्ट करना पार्वण न करना, भृगुने कहाहै कि, माता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, बन्धु इनके मरनेमें श्राद्ध औरका करै और पिता मृतक होजाय तो औरका न करै, यहभी सपिंडीके विषयमें जानना, शुद्धितत्त्वमें देवलका

वाक्य है कि औरका श्राद्ध पराया अन्न, गन्ध, पुष्प, मैथुनको पिताकी मृत्युमें वर्षदिनतक त्यागदे, पारस्करभाष्यमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, पिताकी मृत्युमें पुत्रको माताका श्राद्ध न करना चाहिये और माताकी मृत्युमें भी पिताके श्राद्धसे औरोंका श्राद्ध न करना ॥

शुद्धितत्त्वे देवलः—"महागुरुनिपाते तु काम्यं किंचिन्न चाचरेत् । आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥ " एतत्सपिण्डनात्प्रागिति केचित् ॥ तदुत्तरमपीत्यन्ये ॥ श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वार्द्धे—" विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः । यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥ " केचित्तु—" पित्रोरब्दमशौचं स्यात्षण्मासं मातुरेव च । त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ " इति स्मृतेः सपत्नमातुरब्दार्धमाहुः ॥

शुद्धितत्त्वमें देवलका कथन है कि, पिताकी मृत्युमें किंचित्भी काम्य कर्म यज्ञ करना ब्रह्मचर्य देवपूजाको न करै, यहभी सपिंडीसे प्रथम जानना, ऐसा कोई कहते हैं और इससे आगे कहतेहैं, श्राद्धकौमुदीमें कालिकापुराणके पूर्वार्धमें लिखाहै—विशेषकर प्रमीतपितृक पुरुष मनसे भी शिवपूजाको न करै, कोई कहतेहैं कि, पिताका वर्षदिन, माताका छः महीने, स्त्रीका तीनमहीने, भाईके पुत्रका डेढ़महीने अशौच होताहै, इसीस्मृतिसे सौतेली माताका छः महीनेतक कहतेहैं ॥

श्राद्धकौमुदीकारस्तु—"द्वयोरेव महागुर्वोरब्दमेकमशौचकम् । नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किल " इति समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह ॥ हेमाद्रौ भविष्ये—"गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते ॥" त्रिस्थलीसेतौ गारुडे—" तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम् । अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु ॥" इदं वृद्ध्यर्थसपिण्डनाभावे ॥ वृद्धौ सपिण्डनापकर्षेऽब्दमध्येपि दर्शादि कार्यमेव ॥

श्राद्धकौमुदीकारने मूलसहित इस जातूकर्ण्यके विरोधसे पूर्वोक्त वाक्यमें निर्मूल लिखाहै कि, दोनों माता और पिता महागुरुओंका अशौच एकवर्षतक होता है और दूसरोंका अधिक अशौच नहीं होता किन्तु अपनी २ जातिके अनुसार ही होताहै, हेमाद्रिमें भविष्यका वाक्य है कि, मृतक हुओंका गयाश्राद्ध पूर्णवर्षमें उत्तम कहाहै, त्रिस्थलीसेतुमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, तीर्थश्राद्ध गयाश्राद्ध और अन्य पितृश्राद्धको महागुरुकी मृत्युमें वर्षके बीचमें न करना । यह वाक्य भी वृद्धिके निमित्त सपिंडीके अभावमें है, वृद्धिके निमित्त सपिंडीका अपकर्ष होय तो संवत्सरके बीचमें भी दर्श आदि करने ॥

' पितुः सपिण्डनां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् । ' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ ' सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् ।' इति मात्स्यात् ॥ "ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते । विन्दते पितृलोकं च ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ " इति हारीताच्चेति शूलपाणिः ॥ यत्तु कातीयं—"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्टविधानेन दद्यादित्याह शौनकः ॥"

---

१ जहां माताकी मृत्यु उपरान्त पिताकी मृत्यु हो वहां माताके सपिण्डनकी आवश्यकतासे पुत्रादिको सपिण्डी करनी चाहिये अथवा जहां माताकी सपिण्डी नहीं की वह औरकी सपिण्डीमें क्या कहना, यह और सपिण्डोंकी निन्दामें तात्पर्य है ॥

इति ॥ तत्रैकोद्दिष्टविधिनान्नं दद्यादित्यन्वयः ॥ तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः ॥

कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, पिताकी सपिंडी करनेके पीछे मासिक और अनुमासिक श्राद्ध करै, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, सपिंडी किये उपरान्त प्रेत पार्वण श्राद्धका भोक्ता होताहै, और हारीतऋषिने भी कहा है कि, सपिंडीके पश्चात् प्रेत पितरोंके तुल्य होताहै और पितृलोकमें गमन करताहै और श्राद्धकी प्रवृत्तिभी तभी होतीहै, यही शूलपाणि लिखतेहैं, जो कातीयका कथन है कि, सपिंडीके उपरान्त प्रतिमासके श्राद्ध न देने चाहियें किन्तु एकोद्दिष्टकी विधिसे देने, यह शौनकने लिखाहै, वहां एकोद्दिष्टकी विधिसे न दे यह अन्वय जानना चाहिये, किन्तु पार्वण श्राद्ध करै और चौथे चरणसेभी पार्वणका विकल्प लिखा है ॥

ब्रह्मवैवर्ते–"उद्वाहश्चोपनयनं प्रथमेऽब्दे महीपते । कृते सपिण्डनेऽप्यूर्ध्वमस्थनां चोद्धरणं त्यजेत् ॥ तथापि कर्तुमिच्छन्ति त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्य चरेत्पुनः॥" अत्रेदं तत्त्वम् ॥ वृद्धिं विनार्वागपि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव ॥ "कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥ " इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ " अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमपि तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप ॥ " इत्यग्निपुराणाच्च ॥ तेन तत्सत्त्वेपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारवृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव ॥ " अर्वाक्संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा । ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां तु पृथक् क्रिया " इति शातातपोक्तेः ॥

ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि; हे राजन् ! पहले वर्षमें विवाह उपनयन यह सपिंडी करनेपरभी न करै तो भी पुत्र तीन करनेकी इच्छा करते हैं, मासिक अवशिष्टका अपकर्ष करके फिर करैं यहां यह सिद्धान्त है कि, वृद्धिके विना वर्षकी पूर्तिसे प्रथमभी सपिण्डीका अपकर्ष आजाय तो पितृत्वकी प्राप्ति वर्षके अन्तमेंही होजाती है कारण कि, विष्णुधर्ममेंभी लिखाहै कि, सपिंडी करनेके उपरान्त मनुष्य वर्षदिनसे आगे प्रेतदेहको त्यागकर भोगदेहको प्राप्त होताहै और अग्निपुराणमें भी लिखाहै कि, हे राजन् ! वर्षसे प्रथमभी जिसकी सपिंडी होजाय उसकोभी प्रेतत्व प्राप्त रहताहै, इससे सपिंडी होनेपरभी दैव और पितृकर्ममें अधिकार नहीं होता, वृद्धिश्राद्धनिमित्तक सपिंडीमें तो सपिंडीके उपरान्तही देव और पितृकर्ममें अधिकार होजाता है कारण कि, शातातपने लिखाहै कि, वृद्धिके निमित्त वर्षसे प्रथम वा पूर्ण वर्षमें जिन प्रेतोंकी सपिंडी होगई है उनका कर्म पृथक् नहीं होता ॥

तथैव काम्यमिति हेमाद्रिधृतहारीतादिवशाच्चैवमिति । तथा "अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृतेऽपि तु सपिण्डने । " अस्यापवादः–" अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्सुतः ॥ " भक्त्याख्यं श्राद्धं तद्वानिति मदनपारिजातादयः ॥ अन्ये यथाश्रुतमाहुः ॥ तत्त्वं तु–यदीदं समूलं तदा वृद्धिं विनापकर्षे पूर्वं, वृद्ध्यर्थं तु परमिति योज्यम् ॥ पतितानां गयायां विशेषो ब्राह्मे–"क्रियते पतितानां च गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाश्राद्धं स्वबन्धुभिः ॥ "

और इसी प्रकार काम्यकर्मको करै, इस हेमाद्रिमें लिखे हारीतके वाक्यसे भी इसी प्रकार है, तैसेही वाक्य है कि, तीर्थमें अस्थियोंका डालना गया और अपरपक्षके श्राद्धको पिताकी सपिंडी करनेपरभी वर्षके

बीचमें न करै, इसका अपवाद लिखाहै कि, भक्तिमान् पुत्र होय तो अस्थि मिलाना, गया और अपरपक्षके श्राद्धको प्रथमवर्षमें भी करै, मदनपारिजातमें तो यह अर्थ लिखाहै कि, भक्ति नामके श्राद्धवाला पुत्र, और तो पूर्वोक्तही अर्थ कहतेहैं, सिद्धान्त तो यह है कि, यदि यह वाक्य मूलसहित है तो वृद्धिके विना अपकर्षमें प्रथम और वृद्धिके निमित्त श्राद्धमें उपरान्त करै, पतितोंके निमित्त गयामें श्राद्ध करना, विशेष ब्राह्ममें लिखाहै कि, कहीं २० वर्षके बीतनेपर देशधर्मके प्रमाणसे बान्धवलोग वर्षके पीछे पतितोंका गयाश्राद्ध सम्पादन करते हैं ॥

अथ विधानानि ।

तत्र पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे—"आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य तु समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा । दर्भमयास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः" ॥ "ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥ पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः ॥ तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं दहेत् ॥" क्रियानिबन्धे—"भाजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रा च वाससी । दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी ॥"

अब विधियोंको वर्णन करतेहैं उनमें पंचकोंमें मृतक हो तो मदनरत्नमें गरुडपुराणका यह कथन है कि, धनिष्ठानक्षत्रके उत्तरार्धसे लेकर रेवतीपर्यन्त पांच नक्षत्र दूषित और दाह करनेमें अशुद्ध हैं, यदि ऐसा हो तो शवके समीप कुशाके चार पुतले बनाकर नक्षत्रोंके मन्त्रोंको पढकर रक्खै फिर उन पुतलों सहित दाह करै, फिर पुत्र सूतकके पीछे शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंको करै, जिस मनुष्यकी पंचकोंमें मृत्यु होती है उसकी गति नहीं होती, उसके निमित्त तिल सुवर्ण घी देना चाहियें, क्रियानिबंधमें कहाहै कि, पात्र, जूता, छत्र, सोनेकी मुद्रा दो वस्त्र और सब पापोंकी दूर करनेवाली दक्षिणा ब्राह्मणको देनी चाहिये ॥

मदनरत्ने गार्ग्यः—"यदि भद्रातिथीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः । त्रिपादर्क्षैश्च संयोगो द्वयोर्योगो द्विपुष्करः ॥ द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपुष्करे ॥ खननेप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वापि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालंकृत्य दाहयेत्पैतृकोपरि ॥"

मदनरत्नमें गार्ग्यका कथन है कि, भद्रा तिथि, सूर्य, मंगल, शनैश्चर वार और त्रिपादनक्षत्र इन तीनोंके योगमें त्रिपुष्कर और दोनोंके योगमें द्विपुष्करयोग होताहै, इन दोनों योगोंमें दोनों मृत्यु दूसरेकी मृत्यु करनेवाले हैं, इनमें दाह और मृत्यु होय तो दूना और त्रिष्पुकरमें त्रिगुना होताहै ऐसेही माड़नेमें है, इस दोषशान्तिके निमित्त तिलकी पिट्ठीसे अथवा यवोंसे शरीरनिर्माण करै और उसको छाजमें रख और शोभित करके पिताके ऊपर रखकर दाह करै ॥

तद्दाहे मन्त्रमाह बौधायनः—"अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ वासवे मरणं चेत्स्याद् गृहे वापि पुनर्मृतिः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥"वासवं धनिष्ठा ॥ ब्राह्मे—"कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततौ न शुभं भवेत् ॥ न तस्य दाहः कर्तव्यो विना शास्त्रेषु जन्तुषु ।

अथ वा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथंचन । त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान्मारयेद् ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते । दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् ॥ प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः । प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ॥ " अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूजयित्वा ॥ प्रथमां शिरसि । द्वितीयां नेत्रयोः । तृतीयां वामकुक्षौ । चतुर्थीं नाभौ । पञ्चमीं पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्घृतं हुत्वा–यमाय सोमं त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः ॥ "सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद्द्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः । माषमुद्गयवव्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम् । गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ॥ "

उसके दाहका मन्त्र बौधायनने लिखाहै, 'अस्मात्त्वमधिजातोसि' इस मन्त्रको पढकर उस तिलपिट्ठीके शरीरको दाह करै, द्विपुष्कर और त्रिपुष्करका दोष तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे नष्ट होताहै, धनिष्ठामें मृत्यु होय तौ घरमें फिर मृत्यु होतीहै, उस दोषशान्तिके निमित्त सुवर्ण वा कृष्ण वस्त्रकी दक्षिणा देनी चाहिये, ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि कुंभ मीनके चन्द्रमामें जिसकी मृत्यु होतीहै उसकी ऊर्ध्वगति नहीं देखी जाती और संतानमें भी श्रेय नहीं होता, अपने जीवोंके नाशके डरसे उसका दाह न करै, अथवा उसदिन विधिपूर्वक दाह करै, किसी प्रकार धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्र त्रिपुष्कर योग भरणी नक्षत्र इनमें किसीकी मृत्यु होजाय तौ कुलमें उत्पन्न हुएकी अवश्य मृत्यु करताहै, उस अनिष्टके दूर करनेकी विधि लिखतेहैं कि, कुशाकी पांच प्रतिमा बनावै उनको ऊनसे लपेटे और यवोंके चूनसे लीपकर उनके संग मृतकका दाह करै, उन मूर्तियोंके क्रमसे ये नाम हैं कि प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप, पांचवां प्रेतहर्ता इन मूर्तियोंकी गन्ध पुष्पोंसे अर्चा कर पहली शिरमें, दूसरीको नेत्रोंमें, तीसरीको बाईं कोखमें, चौथीको नाभिमें और पांचवींको मृतकके पैरोंमें रखकर और पूर्वोक्त पांचौ नामोंसे उनके ऊपर घृतसे हवन करै. यमायसोमन्त्र्यम्बकं यजामहे यह मन्त्र पढकर आहुति दे, यह भट्ट कहतेहैं, सूतकके अन्तमें पुत्र फिर शान्तिक पौष्टिक करै, कांसीके पात्रमें तेलको रखकर और उसमें मुख अवलोकन कर ब्राह्मणको देदे ऐसा करनेसे ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र वरुण प्रसन्न होतेहैं, उडद मूँग जौ व्रीहि कांगनी आदिभी दे, सुवर्णका दान, रुद्रका जप, लक्ष होम, ब्राह्मणोंका पूजन, गौ भूमि दान इन सबको अपने उपार्जितधनके छठे भागसे पंचकदोषकी शांतिके निमित्त अवश्य देना चाहिये ॥

अपरार्के–"धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे । प्रास्याहुतित्रयं तत्र हुनेद्वहवपामिति ॥ ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः । इतरं निखनेदेव जले वा प्रतिपादयेत् ॥ त्रिपादृक्षमृते तद्वद्धिरण्यशकलं मुखे । तस्य पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषत्रितयं ततः ॥ होमं प्रतिमुखं कुर्यात्तथा वहवपामिति । कार्ष्णायसं च कार्पासं कुसुम्भं प्रतिपाद्य च ॥ निर्यात्य साग्निं संस्कुर्याद्व्यग्नौ वान्यमुत्सृजेत् ॥ " तत्रैव–"कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च । सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ "

अपरार्कमें कहाहै कि, धनिष्ठाआदि पंचकोंमें जिसकी मृत्यु हो उसके मुखमें पंचरत्न रक्खै, फिर वहेवपाम इस मन्त्रसे तीन आहुति देनी, फिर श्मशानमें लेजाय यह साग्निको विधि वर्णन की है, और दूसरोंको तो गाडदे वा जलमें डालदे, त्रिपादनक्षत्रमें जिसकी मृत्यु हो उसके भी मुखमें सुवर्णका खण्ड डालना चाहिये, और पिट्ठीके तीन पुरुष निर्माण करै उन तीनोंके मुखमें वहवपाम इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये, काला लोहा, कपाल, कुसुंभका दान करके साग्निको श्मशानमें लेजाकर भस्म करै, वा पृथ्वी और अग्निमें त्यागदे, वहांही लिखाहै कि, सुवर्ण, हीरा, नील, पद्मराग, मोती ये ऋषियोंने पंचरत्न कहेहैं। रत्नोंका अभाव होय तौ आधा कर्ष सुवर्ण और सुवर्णका भी अभाव होय तो बुद्धिमान् मनुष्य घृतको डाले॥

मदनरत्नेप्येवम् ॥ तथा–"एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् । नवषट्त्रि पलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥" तथान्यच्च–"स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेः स्थापनं ततः। अन्वाधानं निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् । कृष्णां गां कृष्णवस्त्रां च हैमनिष्कसमन्विताम् ॥ दद्याद्विप्राय शान्त्याय प्रीतो भवतु मे यमः ॥" त्रिपादर्क्षेप्येतदेव ॥

मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखाहै, तैसेही वाक्य है कि, ग्यारह ११ पल वा उससे भी आधी वा नौ छः तीन पल कांसीको स्वशक्तिके अनुसार ब्राह्मणको देना, इसी प्रकार और जगह लिखा है कि, अपने गृह्यकी स्थितिसे अग्निका स्थापन करै, अन्वाधान निर्वपणको संपादन करकै इन देवताओंको क्रमसे आहुति दे कि, यम धर्मराज मृत्यु अंतक वैवस्वत काल सर्वभूतक्षय औदुंबर दध्न नील परमेष्ठी वृकोदर चित्र चित्रगुप्त । विधिसे श्रपण करकै इनके निमित्त आहुति देनी चाहिये, कालीगौ, कालावस्त्र, निष्कप्रमाण सोना, इनको यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करै कि, यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न हो, त्रिपादनक्षत्रमें मृत्युकी भी इसी प्रकार शांति है ॥

अपरार्के–"पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वा भाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपाद्भम् ॥" मयूरचित्रे गर्गः–"मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति मानवः। गृहे यस्य प्रविष्टोसौ तिष्ठेदथ कदाचन॥ अचिरान्मृत्युमायाति हृतदारपरिग्रहः। तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा॥ सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः। औदुम्बरीणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् । कपिलां तिलकांस्यं च हुतांते भूरिदक्षिणा" इति ॥

अपरार्कमें लिखाहै कि, पुनर्वसु उत्तराषाढ, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा ये त्रिपादनक्षत्र हैं, मयूरचित्रमें गर्गका कथन है कि, जो मृतक मनुष्य श्मशानमें जाकर फिर जीउठे वह जिसके

---

१ वहवपांजातवेदः पितृभ्योयत्रैनान्वेत्थनिहितान्नपराके । मेदसः कुल्याउपतान्स्रवन्तुसत्याएषामाशिषः सन्नमन्ता ॐ स्वाहा । यजु० ३५। २०॥

घरमें प्रविष्ट होकर टिके वह शीघ्रही स्त्री कुटुंबसहित मृत्युको प्राप्त होता है, धर्मराजके मतसे उसकी शांति लिखी है, वह मनुष्य घीमिले दूधकी अग्निके मुखमें आहुति दे और गूलरोंमें घी भरकर विधिपूर्वक होम करै और आठसहस्र गायत्रीसे दूधकी शांति करावै, कपिला गौ, तिल, कांसीकी बहुतसी दक्षिणा होमके पश्चात् प्रदान करै ॥

अथ ब्रह्मचारिमृतौ निर्णयः ।

शौनकः—"ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः।तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याथ वाचरेत् । स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥" देशकालौ स्मृत्वा 'अमुकगोत्रामुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये' इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिरग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानसंपादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य पुनर्देशकालौ स्मृत्वार्कविवाहं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वार्कशाखां शवं च हरिद्रया लिप्त्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्तेऽग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय च यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय व्याहृतिभिश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् ॥

अब ब्रह्मचारीकी मृत्युमें लिखतेहैं—शौनकने कहाहै कि ब्रह्मचारीकी मृत्युमें संक्षेपसे रीतिको लिखताहूं, स्वप्नमें वीर्य गिरनेकी शान्तिके निमित्त बारह वा तीन वर्षतक यथाशक्ति ब्रह्मचारी व्रत करै, स्नातक ब्रह्मचारीकी यदि मृत्यु होजाय तो सूर्यमें विधिसे मिलाकर सूर्य और ब्रह्मचारीको संयुक्त करै, फिर देश और कालका स्मरण करके इस गोत्र और इस नामके ब्रह्मचारीका व्रत विसर्जन करताहूं यह उच्चारण कर और सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्ध करके होमकी प्रतिष्ठा आदि आघार आहुतिके अन्तमें चार व्याहृतियोंसे और अग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानकामसम्पादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यः इनके निमित्त घृतका हवन करके स्विष्टकृत् आदि आहुतियोंको पूर्ण करके फिर देश कालका स्मरण करके कहै कि, अर्कविवाहको सम्पादन करताहूं; सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्धको करके आककी शाखा और मृतकको हरिद्रासे लेपन करके और पीले दो वस्त्रोंसे लपेटकर अग्निस्थापन करके आधार आहुतिके 'अग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय' इस मंत्रको पढ़ इसके उपरान्त चार घीकी आहुति देकर पृथक् २ और मिली व्याहृतियोंसे घृतका होम करके स्विष्टकृत् आदि होमके कर्मको पूर्ण करके श्राद्धकी शाखा और उस मृतकका दाह करै ॥

विधानमालायाम्—"येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् । त्रिंशद्वयो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान्॥ हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च । पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नः कोपि न जायते ॥" अत्र मूलं मृग्यम् ॥

विधानमालामें कहाहै कि, जिनके कुलमें ब्रह्मचारीकी मृत्यु होजाय वह कुल नष्ट होजाताहै और ब्रह्मचारीकी भी दुर्गति होतीहै, मरे और मरनेयोग्य उन ब्रह्मचारीके निमित्त छः वर्षतक व्रत करै, और

तीस ब्रह्मचारियोंको कौपीन दे, हाथ वा कान भर प्रमाण काली मृगछाला दे, खडाऊं छत्री पुष्प गोपीचंदन मणि मूंगा माला भूषणआदि दे इसप्रकार विधि करनेसे कोई विघ्न नहीं होता, इसमें मूल नहीं मिलता ॥

अथ कुष्ठिमरणे निर्णयः ।

कुष्ठिमृतौ तु यमः-" मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखनेद्गोष्ठभूमिषु । वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत् ॥ न गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते । षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनांत्यं क्रतुं चरेत् ॥ ततोस्थिसंचयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः । मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणात् ॥ इत्येतत्कुष्ठिमरणे कतिथं शास्त्रकोविदैः ॥"

कुष्ठीके मरणमें यमने कहाहै कि, मरेहुए कुष्ठीके देहको गोष्ठकी भूमिमें तीनदिनतक गाडदे, फिर उसे निकालकर और स्थानमें दाह करै, उसे गंगामें बहाना उचित नहीं, उसके फैंकनेकी विधिको लिखतेहैं, पूर्वोक्त छःवर्षके व्रतकी विधि पूर्ण होनेपर उस विधिको करै फिर उसकी अस्थियोंको बुद्धिमान् मनुष्य गंगामें डालदे, फिर महीने २ में पार्वणकी विधिसे मासिकश्राद्ध करै, यह बुद्धिमानोंने कुष्ठीके मरणमें कहाहै, कोई बुद्धिमान् मनुष्य संकल्पविधिसे श्राद्धकरना वर्णन करतेहैं, कुष्ठीकी मृत्युमें शास्त्रोंके ज्ञाताओंने यह विधि लिखीहै ॥

शुद्धितत्त्वे भाविष्ये-" शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम् । विचर्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीयस्तृतीयकः । विकर्चूर्व्रणताम्रौ च कृष्णश्वेते तथाष्टकम् ॥" इत्युक्त्वा-"मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासीयत्रिमासीयमृतः कुष्ठी कदाचन । यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत् ॥" अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठ्यादिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् ॥ अत एव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोपि द्वादशरात्रं शूलपाणिनोक्तम् । अत एवान्यदीयं कुष्ठिनो मरणान्तमाशौचमुक्तम् ॥ कौर्मे-" क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥"महारोगास्तु—"वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ॥ अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥" इति ॥

शुद्धितत्त्वमें भविष्य पुराणका वाक्य है कि, हे विप्र ! उत्तरोत्तरसे उत्कृष्ट कुष्ठियोंके समूहको श्रवण करो, विचर्चिका दुश्चर्मा चर्चरी विकर्चू व्रण ताम्र कृष्ण श्वेत यह आठ कुष्ठी हैं, ये मरैं तो तीर्थ वा वृक्षकी जड़में पहुंचादेना चाहिये, इसके निमित्त पिंडदान उदकआदि दान न करना । छःमहीने वा तीन महीनेके कुष्ठीकी मृत्यु होजाय उसका स्नेहसे दाह करनेसे यतिचान्द्रायणको करना होताहै, यह उस कुष्ठीके दाहमें है जिसका प्रायश्चित्त न हुआ हो, इसीसे कुनखीआदिके समान द्वादशरात्रका प्रायश्चित्त शूलपाणिने कहा है कुष्ठीकाभी लिखाहै, इसीसे और कुष्ठियोंका मरणांतपर्यन्त आशौच लिखाहै, कूर्ममें कहाहै-क्रियाहीन मूर्ख महारोगी यथेष्टआचरण इनको मरणान्त अशौच कहाहै, महारोग तो यह लिखेहैं कि, वातकी व्याधि, पथरी, कुष्ठ, प्रमेह, जलोदर, भगंदर, बवासीर, ग्रहणी ये आठ महारोग हैं ॥

अथ रजस्वलामृतौ निर्णयः ।

रजस्वलायास्तु वृद्धशातातपः-"रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् । ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥" अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्दग्ध्वा त्र्यहोर्ध्वहीनं दहेत् ॥ संकटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे-"उदक्या सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा । अशौचे त्वनति-

क्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृतन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः। आपोहिष्ठेतितिसृभि-र्हिरण्यवर्णाश्चतसृभिः ॥ पवमानानुवाकेन यदतीति च सप्तभिः। ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः ॥ स्नापयित्वान्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः। दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचा यथा ॥" यज्ञपवित्रमापोअस्मानिति मिताक्षरायाम् ॥ "पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम्। वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥"

रजस्वलाके निमित्त वृद्ध शातातपने यह लिखाहै कि; रजस्वलाकी मृत्यु होजाय तो उसके संस्कार आदि न करने चाहिये, तीनदिनके पश्चात् स्नान कराकर शवके धर्मसे दग्ध करना चाहिये, अतः काष्ठवत् तीन दिनके उपरान्त दग्ध करै, संकटमें तो मदनरत्नमें स्मृत्यंतरका कथन है कि, रजस्वला वा सूतिकाकी मृत्यु होजाय तो अशौचके उपरान्त उसका दाह करना, और आपत्ति होय तो इस विधिसे बीचमेंही करै, निकालेहुए जलसे इन मन्त्रोंसे स्नान कराकर कि, 'आपोहिष्ठा' तीनऋचा और चार 'हिरण्यवर्ण' पवमान अनुवाक और सात यदंतीऋचा फिर यज्ञपवित्र और गोमूत्रसे स्नान करावै फिर और वस्त्रसे ढककर मृतकके धर्मसे प्रजापतिके कथनके अनुसार दाह आदि करै, आपोऽस्मान्शुन्धध्वं यह मन्त्र यज्ञपवित्र है, यह मिताक्षरामें कहाहै, मृतक रजस्वलाको पंचगव्यसे स्नान कराकर और पंचगव्यसे ढककर विधिसे दाह करै ॥

गृह्यकारिकायाम्-"अन्तरिक्षमृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः। उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥ ततो यवपिष्टेनानुलिप्याष्टोत्तरशतं शूर्पोदकैः संस्नाप्य भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्यशुद्धोदकैरापोहिष्ठापावमानीभिः संस्नाप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः। अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—'उदक्यासूतिकामृत्यौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम्' इति ॥

गृह्यकारिकामें कहाहै, अन्तरिक्षमें वा प्रमादसे अग्नि और जलमें जिनकी मृत्यु हुई है और रजस्वला और सूतिका जो स्त्री मरी हो तो तीन चान्द्रायण करै, फिर जौके चूनसे लीपकर एकसो आठ सूपके जलोंसे स्नान कराकर भस्म गोमय मृत्तिका कुशोदक पंचगव्य शुद्धोदक इनसे आपोहिष्ठा और पावमानीऋचा पढकर स्नान कराकर और दूसरे वस्त्र पहनाकर दग्ध करै यह भट्ट कथन करतेहैं, इसका प्रायश्चित्त बौधायनने लिखाहै कि, रजस्वला और सूतिकाकी मृत्युमें तीन चांद्रायण करै ॥

सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्-" सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः ॥ पुण्याद्भिरभिमन्त्र्याथो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः ॥ तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ अब्लिङ्गाभिर्मन्त्रिताभिर्वामदेव्याभिरेव च ॥ अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत् ॥" गृह्यकारिकायम्-"सूतिकामरणे प्राप्ते सर्वौषध्यनुलेपनम्। असूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत् ॥"

सूतिकाके निमित्त तो मिताक्षरामें यह लिखाहै कि, सूतिकाकी मृत्युमें यज्ञके कर्ता किसप्रकार करैं। घडेमें जल लेकर पंचगव्य डाले, फिर पवित्र मंत्रोंको पढकर वे जल पवित्रताको प्राप्त होते हैं उस जलसे सूतिकाको स्नान कराय विधिपूर्वक दग्ध करै। जलके लिंगवाले और बामदेवमन्त्रोंसे विधिपूर्वक स्नान कराय तथा वरुणमन्त्रोंसे स्नान कराय विधिपूर्वक दाह करै। गृह्यकारिकामें लिखा है कि, सूतिकाके मरण प्राप्त होनेमें सर्वोषधियोंको देहपर लगावे, जिसको सूतक न हो वह स्पर्श करले तो सौ १०० सूप जलके प्रक्षेप करने चाहिये ॥

प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव–"सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता । त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा ॥ " इदं चाद्यत्र्यहे ॥ " सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता । म्रियेत चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥ " इदं द्वितीयत्र्यहे ॥ " सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता । अब्दकृच्छ्रेण शुद्ध्येत व्यासस्य वचनं यथा ॥ " इदं तृतीयत्र्यहे ॥ अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव–"सूतिका तु यदा नारी विस्नाता मरणं गता । त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति ॥ " ऊर्ध्वं तु–"सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् । मासमेकावधिं यावत्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ " गर्भिणीमृतौ तु मदनरत्ने शौनकः–"गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च । प्रवक्ष्यामि समासेन शौनकोहं द्विजन्मनाम् ॥ गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः ॥ प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथोल्लिख्य सव्योदरं ततः । पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वा सुताय तु ॥ यस्ते स्तनः शशय इत्यृचा ग्रामे निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्यात्पृषदाज्येन पूर्य च ॥ मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । स्नाप्य चाच्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥ "

प्रायश्चित्तमें विशेष वहांही लिखाहै कि, सती स्त्री सूतिकास्नानसे प्रथम मरगई होय तो तीनवर्षके कृच्छ्रसे सदा शुद्ध होतीहै, यह पहले तीन दिनमें है । सूतिका नारी रजसे युक्त हो मरे तो दो वर्ष कृच्छ्रव्रत करना, यहभी दूसरे तीसरे दिनकी मृत्युमें है, सती सूतिकास्नानसे प्रथम तीन छः नौदिनके बीचमें मृतक होजाय तो एक वर्षके कृच्छ्रसे पवित्र होतीहै यह व्यासने कहाहै । यह तीसरे त्रिदिनमें जानना इसमें अशक्तहो तो पक्षान्तर है कि, सूतिकानारी विनास्नानके मरजाय तो तीन छः नौ दिन ऊपर एकवर्षमें शुद्धि होतीहै । आगे तो कहाहै कि, जो सूतिका स्त्री मरजाय तो एकमहीनेमें तीनकृच्छ्रसे शुद्धि होतीहै । गर्भिणीकी मृत्युमें तो मदनरत्नमें शौनकका कथन है कि, मैं शौनक गर्भिणी रजस्वला बालक इनके संस्कारको संक्षेपसे द्विजातियोंके निमित्त वर्णन करताहूं, गर्भिणीकी मृत्युमें गोमूत्र जल और आपोहिष्ठादि मंत्रोंसे प्रोक्षण करके सावधान हुआ पति मरी स्त्रीको श्मशानमें लेजाकर उसकी वामकोखको चीरै और पुत्रको निकाले ,जीता होय तो यस्तेस्तनः० इस ऋचासे स्तन देकर अग्निका स्पर्श करके स्त्रीके उदरको पृषदाज्यसे व्रणरहित करै । मृत्तिका भस्म कुशा गोमूत्रसे आपोहिष्ठा आदि तीनऋचाओंसे स्नानकराय वस्त्र ओढाय शवके धर्मसे दग्ध करै ॥

तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि 'गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणाशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्यमुदरं चतुरंगुलं हिरण्यगर्भः समवर्ततेति छित्त्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि जीवन् ' जीव त्वं मम पुत्रक ' इत्युक्त्वा क्षेत्रियेत्वेतिपञ्चभिः स्नापयित्वा हिरण्यमन्तर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनः शशय इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् ॥ गर्भच्छेदस्थले शतायुधायेति पञ्चाहुतीर्हुत्वा प्राणाय स्वाहा पूष्णे स्वाहेत्यनुवाकाभ्यां व्याहृत्या वाज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं सूत्रेण संग्रथ्य घृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान् गां भूमिं सुवर्णं दद्यादथ यथोक्तेन कल्पेन दहेत् ॥ '

वहांही षडशीतिमतमें गद्यवार्तिक लिखेहैं, कि, गर्भिणी मृतक होजाय तो दक्षिणदिशाको शिर करके रक्खै और उसके नाभिछिद्रसे बांई ओरमें चारअंगुल अन्तरपर हिरण्यगर्भःसमवर्तते० इस ऋचासे चीरे, यदि गर्भमें प्राण न होय तो उसे जलसे स्नान कराय गाडदे, यदि वह सजीव होय तो जी तू मेरा पुत्र है, यह कहकर और क्षेत्रिय० इन पांच ऋचाओंसे स्नान कराय सुवर्णका अन्तर कर भूमिपर रक्खै, सुवर्णपर बालकको रखकर घीकी आहुति देकर, यस्तेस्तनः शशय० इस मन्त्रसे स्तन पियाकर बालकको ग्राममें पहुंचादे, गर्भच्छेदके स्थानमें शतायुधाम० इस मन्त्रसे पांच आहुति देकर प्राणय स्वाहा० पूष्णे स्वाहा इन मन्त्रोंका पाठ कर घीकी आहुति दे और चीरे, उदरमें सूत लपेटकर और घी लपेटकर ब्राह्मणको तिल गौ भूमि सुवर्ण दान कर फिर यथोक्त विधिसे दाह करै ॥

बौधायनेन तु शतायुधायेति पञ्चहोमानन्तरं प्रयासायायासाय वियासाय संयासायोद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै ब्रह्महत्यायै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोप्यधिका उक्ताः ॥ गृह्यकारिकायाम्–"यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् । कुक्षिं भित्त्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति ॥ प्रमीतं निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम् । सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैः शुद्ध्यते शल्यदोषतः ॥ स गर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् । प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ति पापकारिणः ॥ दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥ "

बौधायनने तो यहां आहुति अधिक लिखी है शतायुधाय इन पांच आहुतियोंके पीछे प्रयासाय० आयासाय० वियासाय० संयासाय० उद्यासाय० अवयासाय० शुचे० शोकाय० तप्यते० तपत्यै० ब्रह्महत्यायै० सर्वस्मै० स्वाहा यह पद सबके अन्तमें कहै, गृह्यकारिकामें लिखा है कि, जब गर्भवती स्त्री पीडायुक्त मरजाय तो कुक्षिको चीरकर जो बालक जीता होय तो निकालले, मरगया होय तो गाडदे, जीता होय तो ग्रहण करै, फिर यह प्रायश्चित्त करै, अर्थात् तेतीस ३३ कृच्छ्र करनेसे वह शल्यके दोषसे पवित्र होताहै, गर्भसहित उसका दाह करै, तो वर्णके वधका प्रायश्चित्त लगताहै, प्रायश्चित्तसे इस पापके कर्ता शुद्ध होतेहैं, जो सगर्भा स्त्रीको दग्ध करै तो तीन वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना होताहै ॥

स्त्रीणामन्वारोहणम् ।

"अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च । सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च ॥ अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च । जन्मान्तरे च सौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदम् ॥ " देशकालौ स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसंख्याब्दावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुरकुलत्रयपूतत्वब्रह्मघ्नमित्रघ्नकृतघ्नपतिपूतत्वपत्यवियोगकामा भर्तृज्वलच्चितारोहणं करिष्ये ॥ अनुगमने तु फलमुल्लिख्यान्वारोहणं करिष्ये इत्युक्त्वा हरिद्राकुंकुमाञ्जनादियुतशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात् ॥

अब स्त्रियोंका सतीहोना लिखते हैं–जो सती होना अपने और स्वामीके पापका नाशक और नरकसे उद्धार करनेवाला है, अनेक स्वर्गका फल और मुक्तिका देनेवाला, दूसरे जन्ममें सौभाग्य और धन पुत्र आदिको देता है, देश कालको स्मरण करके अरुंधतीके समान आचरणवाली और स्वर्गलोकमें पूज्य, मानता और मनुष्यके लोमसंख्याके तुल्य वर्षोंतक स्वर्गवासकी इच्छावाली, चौदह इन्द्रोंके राज्यतक पतिके संग

---

१ यस्तेस्तनःशशयोयोभयोभूयारक्तधावसुविद्यः सुदेवः । येनविश्वायुष्यसिवार्य्याणि सरस्वतितमऽहधातवेदकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि य० ३८ । ५ ॥

क्रीडा, माता पिता श्वशुर तीनों कुलोंको पवित्र करती, ब्रह्मघ्न मित्रघ्न और कृतघ्नभी पतिके योगकी कामना और पतिके अवियोगकी इच्छावाली मैं प्रज्वलित हुई भर्ताकी चितामें आरोहरण करतीहूं यह संकल्प पढै, अनुगमनमें तो फलको कहकर अन्वारोहण करतीहूं यह कहै, फिर हल्दी कुंकुम अंजनादिसे युक्त सूप और वायने सुहागिनीको दे ॥

मन्त्रस्तु–"लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः । गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वाणकैः परितोषितः ॥ सोपस्कराणि शूर्पाणि वाणकैः संयुतानि च । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥ अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि पल्लवे । नीलाञ्जनं तथा बद्ध्वा मुखे मुक्ताफलं न्यसेत् ॥ ततोग्निप्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन मिश्रितम् । स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगोत्रहुताशन ॥ स त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥" ततोग्रावाज्येनाग्नये तेजोधिपतये, विष्णवे सत्त्वाधिपतये, कालाय धर्माधिपतये, पृथिव्यै लोकाधिपतये,अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः, वायवे बलाधिपतये, आकाशाय सर्वाधिपतये, कालाय धर्माधिष्ठात्रे, कलाभ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः, ब्रह्मणे वेदाधिपतये, रुद्राय श्मशानाधिपतये च हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलं च संपूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् ॥ "त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः॥ अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता । स त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ॥ "

मन्त्र यह है कि, बल और तत्त्वका आश्रय लक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नता हो वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे महासत्त्व प्रदान करे, सामग्रीरहित छाज सुवासिनी स्त्रियोंको दे यह मन्त्र है कि, बल और सत्त्वके आश्रय लक्ष्मीनारायण देव वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे महान् दृढता प्रदान करै, सामग्रीसहित सूप और वायने तत्त्वकी कामनासे लक्ष्मी नारायणकी प्रसन्नताके लिये प्रदान करती हूँ, अग्निके निकट आकर पञ्चरत्नोंको पत्तोंपर रख नेत्रोमें सुरमा लगाय और दृढ बांधकर मुखमें मोती रक्खै, फिर इस मन्त्रसे निश्चयपूर्वक अग्निकी प्रार्थना करै कि, हे अग्ने ! हे हुताशन ! तू स्वाहा अपनी स्त्रीके संयोगसे निर्विण्ण (विरक्त) हे सर्वगोत्र ! तुम सत्त्वमार्गको देनेवाले हो इससे मुझे भी पतिके निकट प्राप्त करो । फिर अग्निमें स्वाहा अन्तमें कहकर घीकी यह आहुति दे कि, अग्नये० तेजोऽधिपतये० विष्णवे० सत्त्वाधिपतये० कालाय० धर्माधिपतये० पृथिव्यै० लोकाधिष्ठात्र्यै० अद्भ्यो रसाधिष्ठातृभ्यो० वायवे बलाधिपतये० आकाशाय सर्वाधिपतये० कालाय धर्माधिष्ठात्रे० अद्भ्यः सर्वसाक्षिभ्यः ब्रह्मणे वेदाधिपतये० रुद्राय श्मशानाधिपतये० स्वाहा यह आहुति प्रदानकर अग्निकी प्रदक्षिणा करै । पत्थर और शिलाकी पूजा करकेपुष्पाञ्जलिको ले अग्निकी प्रार्थना करै, हे अग्नि ! तुम सब प्राणियोंके मध्य साक्षी होकर विचरते हो । जिन बातोंको मनुष्य नहीं जानते उनको तुम जानते हो । विधवापनके डरसे पीडित हुई मैं पतिके [illegible] अनुगत करतीहूं । हे सत्त्वमार्गके देनेवाले ! इससे मुझे पतिके निकट पाप्त करो , इस मन्त्रको उच्चारण कर शनैः २ अग्निमें प्रवेश करै ॥

तुगम

गौडास्तु–'इमा नारीरविधवाः' इति॥"ॐ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो या याः शुशोभनाः । सह भर्तुः शरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ॥ " इति च विप्रः पठेदित्याहुः ॥ कातरान्तु–प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत् ॥ एतन्महिमा मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे–"अनुव्रजति भर्त्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेश्वमेधस्य

फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥" यस्त्वङ्गिराः-"या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्। सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥" इति ॥

गौड यह लिखतेहैं कि, ब्राह्मण इन दो मन्त्रोंको पढै कि, यह नारी अविधवा हो और यह पतिव्रता स्त्री पवित्र और पापरहित और शोभायमान है, इससे स्वामीके शरीर सहित अग्निमें प्रवेश करो. जो स्त्री भयमाने तो उसको प्रेतके निकटसे देवर वा शिष्य उदीर्ष्व० इन दो मन्त्रोंसे उठाले. इसकी महिमा मिताक्षरामें समझनी. पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दवाक्य है कि, जो स्त्री प्रसन्न होकर पतिके पीछे जानेकी इच्छासे श्मशानमें जाती है, वह पग २ में सर्व श्रेष्ठ अश्वमेधके फलको प्राप्त होती है, और जो अंगिराका कहा है कि, जो ब्राह्मणी स्त्री मृतक पतिके पीछे जाती है वह आत्महत्याके दोषसे अपनेको और पतिको स्वर्गमें नहीं लेजाती ॥

यच्च व्याघ्रपात्-"न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्शिता। न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी।" इति, तत् पृथक्चितिपरम् ॥ "पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति। अन्यासां चैव [illegible] स्त्रीधर्मोयं परः स्मृतः ॥" इत्युशनसोक्तेः ॥ पृथक्चितिस्तु क्षत्रियादिपरा ॥ तद्विविब्राह्मे "देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्। निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी। त्र्यहाशौचे निवृत्ते तु श्राद्धं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥" इमा नारीरविधवा इति ऋग्वेदवादः ॥ त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः ॥ निषेधवाक्यानि प्रायश्चित्तार्थं मृतेन पतितेन वा सहमरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः ॥ अस्थिदाहे पलाशदाहे वा न पृथक्चितिदोषः ॥ अङ्गत्वे [illegible]स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्यत्वात् ॥ यत्तु-"ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा [illegible] पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या ॥" इति हारीतीयं, तत्पतितदाहादिनिषेधेन [illegible] दूरापास्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ जन्मान्तरीयपापवता सह मरणेनोद्धार इति स्मार्तगौडाः ॥

और जो व्याघ्रपादने कहाहै कि, [illegible] हुई ब्राह्मणी पतिके संग सती न होवे कारण कि, वह आत्मघातिनी ब्रह्मगतिको न [illegible] होती. [illegible] दोनों वाक्य पृथक् चिताके विषयमें जानने, कारण कि उशनाने कहाहै कि, पृथक् [illegible]में बैठकर ब्राह्मणी [illegible] सती होना न चाहिये. अन्यजातिकी स्त्रियोंका तो यह परमधर्म है पृथक्चिता तो [illegible] क्षत्रियादिके विषयमें है. उसकी विधि ब्राह्ममें लिखीहै कि, देशान्तरमें पति मृतक होजाय तो उसके दोनों खड़ाऊं हृदयपर [illegible] अग्निमें प्रवेशकरै. ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्री आत्मघातिनी नहीं होती तीन दिनके [illegible] होकर शास्त्रोक्तश्राद्धको प्राप्त होतीहै, यह सती नारी अविधवा है यह ऋग्वेदवाद है. तीनदिनका [illegible] अन्वारोहणके विषयमें लिखाहै यह स्मार्त्त लिखतेहैं निषेधके वाक्य तो प्रायश्चित्तके निमित्त जौनसे [illegible] वहां [illegible] मृतकके संग मरनेके निषेधमें हैं, यदि पतिके अस्थियोंका दाह वा [illegible] का दाह होय तो पृथक् चिताप्रवेशका दोष नहीं कारण कि, अंग होनेसे वा उसके स्थानमें जो हो वह उसकी सदृश है इस न्यायसे अस्थिभी शरीरकी समानहै जो यह हारीतने कहा है कि, ब्रह्महत्यारा कृतघ्नी मित्रघ्नभी [illegible] हो उसको भी वह अविधवा नारी पवित्र करतीहै. जो जिसको लेकर सती होतीहै वह वाक्य इससे अर्थवादमात्र जानना जब कि, पतितके दाहआदिका निषेध है तो सहगमन दूरसे दूरही अपास्त है यह अर्थवादमात्र है यह पृथ्वीचन्द्रका मतहै. जन्मान्तरके पापीके संग सती होनेमें उद्धार नहीं होता यह स्मार्त्तगौड कथन करतेहैं ॥

शुद्धितत्त्वे व्यासः–"दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया । न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत् ॥" तत्रैव भविष्ये–"तृतीयेह्नि[१] उदक्या या मृते भर्तरि वै द्विजाः । तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम् । एकां चितां समासाद्य भर्तारं यानुगच्छति । तद्भर्तुर्यः क्रियाकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥" एतद्दशाहान्तम् ॥ 'यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि' ॥ इति वायवीयोक्तेः ॥

शुद्धितत्त्वमें व्यासका वाक्य है कि, जो सती स्त्री इतनीदूर पर ग्राममें स्थित हो जितनी दूरसे एक दिनमें पहुंचसके तो निश्चयवाली उस स्त्रीके पतिको उसके आनेतक दाहकरना उचित नहीं. वहांही भविष्यपुराणका वाक्यहै कि, यदि रजस्वलास्त्रीका पति तीसरेदिन मरे तो हे ब्राह्मणों ! उसके पतिको उस स्त्रीके मरनेके निमित्त एकरात्र रक्खे. एकचितामें बैठकर जो स्त्री पतिका अनुगमन करतीहै उसके भर्ताकी जो क्रिया करे, वही उसकी क्रिया करे, यहभी दशदिन पर्यन्त है. कारण कि, वायुपुराणमें लिखाहै कि, जो प्रेतका अग्निसंस्कार करता है उसीको पिंड देने चाहिये ॥ [illegible]

आपस्तम्बः–"चितिभ्रष्टा तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत् ॥ प्राजापत्येन शुध्येत तस्माद्वै पापकर्मणः ॥" तथा–"अन्वारोहे तु नारीणां[२] त्युश्चैकोदकक्रियाम् । पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्य[illegible] कं तथा ॥ अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्जलीन् । पृथक्शिले न कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा ॥" अन्यत्प्रागुक्तम् । इदं गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्वलाव्यभिचारिणीभिर्न कार्यम् ॥ "स्वैरिण्यन्त्र [illegible]र्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । [illegible]ति पत्याग्निसंवेशः पतितौ हि [illegible] उभौ ॥ [illegible] मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहोक्तेः [illegible] बृहस्पतिः–'बालसंव[illegible] बालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियत[illegible] च गर्भिणी ॥' तृतीयपा[illegible] जस्वला सूतिका च' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्त्वे च पाठः ॥

आपस्तम्बमें लिखाहै कि, चितासे भ्रष्टहुई [illegible] होजाय तो वह इस पापकर्मसे प्राजापत्य व्रतसे पवित्र होतीहै. इसीप्रकार[illegible] स्त्री और पतिकी एक जलदानक्रिया है, तथा एक पिण्डदानक्रिया होतीहै, [illegible] और कहने योग्य पहिले कहआयेहैं, यहभी गर्भवती, जिसकी बालक स[illegible] व्यभिचारिणी इनसे भिन्नका करना, कारण कि, मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका वाक[illegible] गर्भिणी पतित स्त्रियोंका पतिके संग अग्निमें प्रवेश नहीं होता यदि प्रवेश होय तो द[illegible] रत्नमें बृहस्पतिने [illegible]है कि, बालकके भरण पोषणको त्यागकर बालक संतानवा[illegible] न मरे और गर्भि[illegible] को व्रतउपवासमें तत्पर रहकर गर्भकी रक्षा करनी चाहिये, पूर्वो[illegible] तीसरे पादमें सू[illegible] रजस्वलाको भी पृथ्वीचन्द्रोदय और गौडोंने शुद्धितत्वमें पढा है कि, उनकोभी [illegible] न करना चाहिये ॥

---

१ कोई कहतेहैं यदि मृतककी भिन्नमाता और अनेकपुत्र हों तो पिताका सबसे बडा पुत्रही और्ध्वदेहिक कर अन्वारूढा (सती) में तो छोटापुत्रभी करसकताहै आर सौतका ज्येष्ठपुत्र भी नहीं करसके कारण कि ऐसे स्थलमें उसमें पुत्रता नहीं ॥

२ नवश्राद्ध सब सपिण्डीकरण पृथक् २ एक वृषोत्सर्ग और एक गौ दीजातीहै ॥

तत्रैव बृहन्नारदीयेपि-"बालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला राजसुता नारोहन्ति चितां तु ताः" इति ॥ अत्र-'पतिव्रता सा संदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम्' इति भारतात् 'ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री' इति ब्राह्मणाच्च । पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् ॥ यत्तु-"अवमत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तन्ते याश्च सततं भर्तॄणां प्रतिकूलतः ॥ तत्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवन्त्युत" इति भारतम् ॥ तत् कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मण्या एकचितिरेव न पृथक्चितिः ॥ क्षत्रियादीनां पृथगेका वेति कल्पतरुरत्नाकरमदनपारिजातादयः ॥

वहांही बृहन्नारदीयका वाक्य है कि, हे राजपुत्री! जिसकी सन्तान बालक है वह तथा गर्भिणी और जिसको ऋतु न हुई हो और रजस्वला, उनको चितामें आरोहण न करना चाहिये इनमें वह पतिव्रता स्त्री जलती हुई अग्निमें प्रवेश करे इस भारतके [illegible] और ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्रीको आत्मघात न करना चाहिये, इस ब्राह्मके वाक्यसे केवल पतिव्रताकोही सहगमनका अधिकारहै दुराचारिणियोंको नहीं. जो यह भारतका वाक्य है कि, जो स्त्री प्रथम दुष्टचित्तसे पतिका तिरस्कार करके और सदा पतिके प्रतिकूल रहती हैं यदि वेभी समयपर पतिके पश्चात् मरें [illegible], तो वेभी काम क्रोध भय मोह [illegible]सबसे पवित्र होती हैं, यह भारतका वाक्य कैमुतिकन्यायसे स्तुतिके निमित्त है. यह पृथ्वीचन्द्रका मतहै, ब्राह्मणीकी एकचिताही होती है पृथक् नहीं होती, क्षत्रियां आदिकी तो पृथक् वा एकचिता होती है यह कल्पतरु [illegible]कर मदनपारिजात आदिका कथन है ॥

शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् ॥ तत्रान्वा[illegible]शौचमध्ये तदूर्ध्वं वा [illegible] एव दश पिण्डाः ॥ सहगमने तु [illegible]र [illegible]चतुल्यमशौचं पिण्डदा[illegible] अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डास्त्र्यहेण त[illegible]याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते" इति शुद्धितत्त्वे शूलपाणि[illegible] होती [illegible]मृतेः ॥ "संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः [illegible] बैठकर ब्राह्मण [illegible] क्रमशः पतिपिण्डवत्" इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः ॥ [illegible]यादिके विप[illegible] उसकी [illegible]

शुद्धिचिन्तामणिमें भी इसीप्रकार [illegible] अग्निमें पतिके अशौचके बीचमें वा उसके पश्चात् अन्वारोहण होय तो तीनदिनके [illegible] हे[illegible] रहिये, और संग मृत्युमें तो पतिके संग अशौच और पिंडदान होताहै, कारण [illegible] अन्वारोहण[illegible]पाणिमें पैठीनसिकी स्मृतिका कथन है कि, (पीछे मरकर सती हुई) स्त्रीको तीन दिन [illegible] वहां [illegible] भर्ताके अशौच बीतनेपर उसको श्राद्ध दियाजाताहै, यह शूलपाणि[illegible]शुद्धितत्वमें व्यासका [illegible] कि, मृतकहुए पतिको आलिंगनकर जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करतीहै उसके पिण्ड आदि क्रमसे पतिपिंडके तुल्य देने चाहिये ॥

अन्यत्प्रागुक्तम् ॥ यदा तु रजस्वलापि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तत्र विधिः देवयाज्ञिकनिबन्धे-"यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान्समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये । मुसलाघातैस्तदसृक्स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्च-

मृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशतिर्दश च गवां दत्त्वा त्वहः क्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेद्धुताशनम् । नारीणां सरजस्काणामियं शुद्धिरुदाहृता ॥' अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः ॥ इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धावन्त्यकर्मनिर्णयः ॥

और पहले कहआयेहैं, जो रजस्वला स्त्री भी पतिके मरनेपर देशकालके वशसे उसी समय सती होनेकी इच्छा करै, अनुगमन चाहै और शुद्धिकी प्रतीक्षा न करै उसका विधान देवयाज्ञिकमें लिखाहै कि, जब स्त्री रजस्वला हो, और पति प्राणोंको त्यागदे तो वह एक द्रोणभर चावल शुद्धिके निमित्त मुसलसे कूटै, मुसलकी चोटसे उसके योनिमण्डलसे रक्त गिरजाताहै, उस रुधिरके प्राप्त होनेसे अपने मनमें रजसे रहित मानती हुई पांच मृत्तिका खण्डसे पृथक् २ शौच करै. तीस वीस वा दश गोदान करके और ब्राह्मणोंके वाक्यसे शुद्ध होकर अग्निमें प्रवेश करै. रजस्वला स्त्रियोंकी इस प्रकार शुद्धि लिखी है, इसमें श्राद्धका निर्णय पहले लिख आयेहैं ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामन्त्यकर्मनिर्णयः ।

अग्निप्रवेशाशक्तौ ।

अग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः-'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं च' इति ॥ ब्रह्मवैवर्ते-'सहानुगम[illegible]रस्तं वैधव्यस्याथ पालनम् ॥' यत्तु तत्रैव-'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमन[illegible]' इति ब्रह्मचर्याशक्यत्वपरम् ॥ तथा च मनुः-'ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम् ।' काशीखण्डेपि-"पत्यौ मृतेपि या यो[illegible] पालयेत्क्वचित् । सा पुनः प्राप्य [illegible] स्वर्गलोकं समश्नुते ॥ [illegible]यदि न भर्ता[illegible] यदि दैवात्कथंचन । तत्रापि [illegible]च्छीलभङ्गात्पतत्यधः ॥ तु[illegible] स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा । तस्याः पि[illegible] च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च [illegible]

अग्निप्रवेशकी शक्ति न होय तो विष्णुने कहा[illegible] ब्रह्मचर्य करै, वा अन्वारोह करै. ब्रह्मवैवर्तमें कहाहै कि, स्त्रीको सहगमन वा वैधव्यका[illegible] जो वहांही लिखाहै कि, सहगमनके विना कलियुगमें स्त्रियोंकी और गति नहीं है, वह [illegible] ब्रह्मचर्य्य न करसकै. सोई मनुने लिखाहै कि, ब्रह्मचर्य्य वा अग्निमें प्रवेश [illegible], पतिके मृतक होनेपर भी जो स्त्री वैधव्यकी पालना करती है, वह [illegible] और [illegible]र्गमें प्राप्त होती है, यदि भाग्यवश किसीप्रकार पतिका अनुगमन न करै [illegible] कारण कि, शीलके भंगसे नरकमें गिरती है, और उसीके अवगुणोंसे पित[illegible] भी स्वर्गसे गिर[illegible]हैं ॥

अथ [illegible]र्माः ।

मदनरत्ने स्कांदे-"विधवाकबरीबन्धो [illegible]बन्धाय जायते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा । एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । मासोपवासं वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ॥ पर्यंकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तया पुनः । तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः॥ तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम्॥" इदमपुत्रापरमिति

मदनपारिजातः–"नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत् ॥ वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत् ॥" प्रचेताः–"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥" श्राद्धादौ तु विशेषः प्रागुक्तः ॥ यत्तु बौधायनः–"संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्जयेत् । अधः शयीत षण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम् ।" इति एतदसवर्णापरमित्यपरार्कः॥

अब विधवाके धर्म लिखतेहैं, मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्यहै कि, विधवाका वेणीबन्धन पतिके बन्धनार्थहै, इससे विधवा शिरका मुण्डन करावे, सदा एकवार भोजन करै किसीप्रकारभी दूसरीवार भोजन नकरै, मासोपवास वा चांद्रायणव्रत करै, जो विधवास्त्री शय्यापर शयनकरतीहै वह पतिको पतित करतीहै, विधवास्त्रीको कभी उबटना और गन्धद्रव्यका भोग नकरना चाहिये. तिल कुशाजलसे पति और उसके पिता और पितामहके निमित्त नामगोत्र उच्चारण कर प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये, यहभी अपुत्राके निमित्त है यह मदनपारिजातमें कहाहै. विधवा स्त्रीको उचितहै कि, कण्ठमें प्राणआनेपरभी बैलपर आरोहण नकरै (नचढे) कंचुक (चोली) और विकारकरनेवाले वस्त्रकोभी कदाचित् धारण न करै. वैशाख कार्तिक माघमासमें विशेष नियम करै. प्रचेताने कहाहै कि, पान अंजन कांसीके पात्रमें भोजन इनको संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवाको त्यागने चाहिये. श्राद्धआदिमें विशेष प्रथम लिखआयेहैं, और जो बौधायन कहतेहैं मृतककी स्त्री वर्षदिनतक मधुमांस त्यागकर नीचे शयन करै यह मौद्गल्यभी कहतेहैं, अपरार्क इस वाक्यको असवर्णविषयक कहतेहैं ॥

अथ संन्यासनिर्णयः ।

अथ संन्यासः ॥ या[illegible]:–"वनाद् गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥ [illegible] जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् [illegible] । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु [illegible] ॥" एतदाश्रमसमुच्चयपक्षे [illegible] बालश्रुतौ त्वन्येपि पक्षा उक्ताः ॥ 'ब्रह्मचर्यादेव [illegible] प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा ॥ अथ पुनरव्रती वा स्नातको वास्नातको [illegible] वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति ॥ अङ्गिराः–"प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा [illegible] पि । वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वान्नातुरो वाथ दुःखितः ॥" आतुरो मुमूर्षु [illegible] व्याघ्रा [illegible] ॥

अब संन्यासको वर्णन करते [illegible] अग्निमें [illegible] गृहमें सब वेदोंके मन्त्रोंसे दक्षिणा सहित प्राजापत्य यज्ञकरके फिर उन [illegible] वेद पढनेवाला, वेद पढेहुए, जपमें तत्पर, पुत्रवान्, [illegible] दाता, अग्निवाला [illegible] मनको करै, इससे अन्यथा न करै, यहभी आश्रमके समुच्चय पक्षमें जानना [illegible] पक्ष लिखेहैं यदि अन्यथा देखे तो ब्रह्मचर्यसे ही गमनकरै वा [illegible] वा वनसे गमन [illegible] न होय स्नातक न होय वा स्नात होय नष्टअग्निहो वा अग्निहोत्री नहो [illegible] मनुष्यके मनमें जिस [illegible] उसीदिन संन्यासलेना चाहिये. अंगिराने लिखाहै कि, ब्रह्मचर्यसे गृहस्थसे वा वनसे गमन करै (संन्यासले) विद्वान् मनुष्य आतुर (मरनेयोग्य) दुःखित (चौर व्याघ्रआदिसे डराहुआ) संन्यासको न ग्रहण करै ॥

१ संन्यासका यही नियम नहीं कि क्रमसे आश्रममें आवै वामदेवादिके समान जब पूर्णज्ञानहो संन्यास स्वीकार करै ॥

भारते–"आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥" जाबालश्रुतावपि–'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्' इति ॥ अत्र विप्रस्यैवाधिकारः 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः–'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्' इति मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरादयः ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्योपि-"चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः । क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः" इति ॥

भारतमें लिखाहै कि, रोगियोंके संन्यासमें न विधि और न कर्महै, प्रेषमात्रका उच्चारण करके संन्यासका स्वीकर करना चाहिये. जाबालश्रुतिमें कहाहै कि, यदि मनुष्य आतुरहोय तो मन वा वाणीसे ही संन्यास ग्रहण करले, इसमें ब्राह्मणकाही अधिकारहै, कारण कि, यह जाबालश्रुतिमें लिखाहै कि, ब्राह्मण संन्यासी होतेहैं, मनुने भी कहाहै कि, आत्मामें अग्नियोंका आरोपकरके ब्राह्मणको संन्यासलेना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर आदिने कहाहै. वृद्धयाज्ञवल्क्यने भी कहाहै कि, श्रुतिमें कहेहुये ब्राह्मणको चारों आश्रम, क्षत्रियको तीन, वैश्यको दो और शूद्रको एक आश्रम लिखाहै ॥

माधवस्तु–'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात्' इति कौर्माद्युक्तेर्वर्णत्रयस्याप्यधिकारः । पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थम् । "मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः ।" इति बौधायनोक्तेरिति पक्षान्तरमाह ॥ तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेतदिति ॥ योपि 'संन्यासं पलपैतृकम्' इति कलौ निषेधः, सोपि त्रिदण्डादिपरः इत्युक्तं प्राक् ॥

माधव तो यह पक्षभी लिखतेहैं, कि, ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य व[illegible]गमनकरै, इस कौर्मआदिके वाक्यसे तीनोंवर्णोंका [illegible]कार है. पहलावाक्य तो काषायवस्त्र और दंडआदि[illegible] निषेधके निमित्त है, कारण कि, बौधायनने कहाहै कि, विष्णुके चिह्नका धारण (सं[illegible] ब्राह्मणोंका धर्महै, क्षत्रिय वैश्यका नहीं, यह दत्तात्रेय कहतेहैं बौधायनोक्तिसे पक्षान्तरहै कि, य[illegible] जैस[illegible] चक आदि परहै, जो यह लिखाहै कि, संन्यास और मांससे श्राद्ध कलियुगमें [illegible] त्रिदंड आदिके विषयमें है, यह पहिले लिखआयेहैं ॥

स च संन्यासश्चतुर्धेत्याह हारीतः–"कुटीच[illegible] [illegible]श्चैव तृतीयकः । चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तमः;" [illegible] कुटीं कारयित्वा तत्र गृहे वा वसन् काषायवासाः शिखो[illegible] [illegible]हे वा भुञ्जान आत्मज्ञो भवेत् । एतदत्यन्ताशक्तपरम[illegible] सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात् ॥ हंस[illegible]तु [illegible] तु वैणवं दण्ड[illegible]धारयेन्नित्यमादरात्' इति स्कान्दात् ॥

वह संन्यास चौथा लेना यह हारीतने [illegible] कि, कुटीचक, बहूद[illegible], [illegible], और चौथा परमहंस उत्तमहै. कुटीचक वह होताहै, जो पुत्रआदिके द्वा[illegible] कुटी बनाकर उसमें वा घरमें काषायवस्त्रको धारण करके निवासकरै शिखा यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड धारण करै, अपने बन्धु वा घरमें भोजन करै, और आत्मज्ञानी होय, यह उसके निमित्त है जो अत्यन्त अशक्तहो. जो अपने बन्धुओंको त्यागकर सातघरमें भिक्षमांगे और पूर्वोक्त वेषको धारै वह बहूदक संन्यासी होता है. तीसरा हंस वह है जो पूर्वोक्तवेष धारै, और एक २ दण्डको धारण करै कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, एकवांसके दण्डको आदरपूर्वक नियमसे धारण करै

विष्णुरपि–"यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् । तावान्परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥" चतुर्थोपि स्कान्दे–"परहंसस्त्रिदण्डं च रज्जुं गोवालनिर्मिताम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥" अयमप्येकदण्ड एव ॥ ये तु शिखोपवीतादि त्यागनिषेधाः, ते कुटीचकादिपराः ॥ यत्तु मेधातिथिः–'यावन्न स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत्' इति ॥ तदपि तत्परमेव ॥

विष्णुने भी लिखाहै कि, यज्ञोपवीत दंड जन्तुनिवारण वस्त्र इतनाही परिग्रह हंसको लिखा और नहीं. चौथा परमहंस, स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, त्रिदंड गौके बालोंकी रज्जु शिखा यज्ञोपवीत नित्य कर्म इनको परमहंस त्यागदे, यहभी एकदंडीके निमित्तहै. और जो शिखायज्ञोपवीत आदि त्याग न करनेके निषेध हैं वे कुटीचक आदिके निमित्त हैं. जो मेधातिथिका यह वाक्य लिखाहै कि, जबतक तीनदंड न हों तबतक एकसे ही वर्त्तना चाहिये वह भी एक दंडीके विषयमें है ॥

यच्चात्रिः–"चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः" इति,–तद्वाग्दण्डादिपरं न यष्टिपरम् ॥ "वाग्दण्डोथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च । यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते ।" इति मनूक्तेः ॥ तस्मात्परमहंसस्यैकदण्ड एव ॥ सोप्यविदुषः, विदुषस्तु सोपि नास्ति "न दण्डं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंसः" इति महोपनिषदुक्तेः ॥ 'ज्ञानमेव [illegible]स्य दण्डः' इति वाक्यशेषाच्च ॥ यत्तु यमः–"काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । स याति नरकान्घोरान् महारौरवसंज्ञितान्" इति तद्वैराग्यं विना जीवनार्थसंन्यासपरम् । 'एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नर[illegible] रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते' [illegible]ति स्मृतेः ॥ यच्चाश्वमेधिके–"एकदण्डी त्रिदण्डी वा शिखामुण्डित एव वा । का[illegible]मात्र[illegible]पि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥" इति तस्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया ॥

जो अत्रि कहते हैं कि, चार प्र[illegible]र [illegible] सब त्रिदंडी होतेहैं यह वाग्दंडादिमें जानना (लाठी) के दंडमें नहीं कारण कि, म[illegible] वा[illegible]दंड, मनोदंड, कर्मदंड जिसमें ये दंड नियमसे हैं वही त्रिदंडी कहाताहै तिस[illegible] होती. [illegible] दंड होताहै, वह भी अज्ञानीको होताहै ज्ञानीको तो वहभी नहीं, कारण कि, [illegible] बैठकर ब्राह्मण[illegible] कि दंड शिखा आच्छादन वस्त्र इनको परमहंस नहीं रखते और यहभी [illegible]दिके वि[illegible] नहीं उसकी [illegible]डि है. जो यमने यह लिखा है कि, जिसने काष्ठके दंडको धारण [illegible] अग्निमें [illegible] खाया, और ज्ञानसे हीन रहा वह महारौरव नाम घोरनरकोंमें गमन [illegible] हो[illegible]र [illegible]ना जीवनके निमित्त संन्यासके निमित्त है, कार[illegible] कि, यह स्मृ[illegible] [illegible] मनुष्य एकदंडके आश्रयसे जीतेहैं, वे कर्मके त्यागसे घोर रौर[illegible]कमें जाते हैं वहां [illegible] [illegible]डी, त्रिदंडी, शिखावाला वा मुंडी हो केवल काषायको धारण [illegible] भी संन्यासी पूजने [illegible] है, उसकी भी पूर्वोक्त व्यवस्था जाननी चाहिये, यह अश्वमेध पर्वमें कहा है ॥

अथ संन्यासविधिः ।

बौधायनः–"कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योष्टकं पृथक् ॥ वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥" सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः ॥ स्मृत्यर्थसारेपि–"एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश । अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना

निर्वपेत्स्वयम् ॥" इति ॥ कात्यायनः-"कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत् ॥" बौधायनः-"सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे । भौतिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥"

अब संन्यासीकी विधिको बर्णन करतेहैं, बौधायनने लिखा है कि, संपूर्ण श्राद्ध और पिता-आदिके अष्टका श्राद्ध भिन्न २ करके मुंडन कराय इन मंत्रोंसे मार्जन करै. संपूर्ण श्राद्धोंसे अपने नवश्राद्ध षोडशश्राद्धका ग्रहण है. स्मृत्यर्थसारमें भी लिखाहै कि, एकोद्दिष्टके विधानसे षोडश श्राद्ध करै अग्निहोत्री होय सो पार्वणकी विधिसे स्वयं श्राद्ध करै. कात्यायनने कहाहै कि, किसी आश्रममें न होय तो चार ४ कृच्छ्र और आश्रमी होय तो पवित्रताके लिये तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये, तिससे यह संन्यासके योग्य होताहै. बौधायनने कहा है कि देव ऋषि दिव्य पित्र्य मातृक मानुष भौतिक और अपना यह आठ श्राद्ध करै ॥

अत्र क्रममाह हेमाद्रौ शौनकः-'देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः । आर्षे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः, देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयो वा ॥' मरीच्यादिऋषय इति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् ॥ दिव्ये वसुरुद्रादित्याः ॥ मानुषे सनकसनंदनसनातनाः ॥ भूतश्राद्धे पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः ॥ पित्र्ये पित्रादित्रयो मातामहाश्च ॥ मातृके मात्रादयस्तिस्रः ॥ आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहा देवताः ॥ आत्मश्राद्धं परमात्मदैवत्यमिति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् ॥ सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम् ॥ सर्वत्र पिण्डदानम् ॥ युग्मा विप्राः ॥ दक्षक्रतू सत्यवसू वा विश्वेदेवौ ॥ अन्यन्नान्दीश्राद्धवदिति हेमाद्रिः ॥ स्मृत्यर्थसारे-'केशश्मश्रुलोमनखं वापयित्वोपकल्पयेत् । दण्डं जलं पवित्रं च शिक्यं पात्रं कमण्डलुम् ॥' आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्था पादुके इति दश पञ्च वा ॥ एतच्च पूर्वेद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं कृत्वा कार्यमिति शौनकः ॥

इसमें क्रम हेमाद्रिमें शौनकने कहा है कि, [illegible] विष्णु महेश्वर देवता हैं इनका श्राद्ध करै. आर्षमें देवर्षि ब्रह्मर्षि क्षत्रियर्षि मनुष्यर्षि [illegible] ले लेने, यह संन्यासपद्धतिमें लिखाहै वह चिन्ता करनेयोग्य है. दिव्यश्राद्धमें वसु [illegible] मानुषमें सनक सनन्दन सनातन, भूतश्राद्धमें पृथ्वीआदि भूत और नेत्र [illegible] चार प्रकारका भूतग्राम होताहै, पितृश्राद्धमें पिताआदि तीन, और [illegible] माताआदि तीन, आत्मश्राद्धमें आत्मा पिता पितामह ये तीन [illegible] आत्मा देवता [illegible] यह संन्यास पद्धतिमें कहाहै सो चिन्त्य है. सब [illegible] जगह पिण्डदान करना और युग्म ब्राह्मण होतेहैं. दक्ष, [illegible] विश्वेदे[illegible] कर्म नांदीमुखके समान होताहै यह हेमाद्रि कथन करते [illegible] र्थसारमें कहाहै [illegible], श्मश्रु, लोम, नखको मुंडाकर दंड जल पवित्र शिक्य छीका पात्र कमंडलुको वा आसन कौपीन आच्छादन कन्था खडाऊं इन पांचोंको धारण करै, यह भी पहिले दिन नांदीमुख और दूसरेदिन पुण्याहवाचन करके करना, ये शौनकने कहाहै ॥

बौधायनः-"त्रीन्दण्डानंगुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्धसंमितान् । एकादश नव द्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् ॥ वेष्टितान् कृष्णगोबालरज्ज्वा तु चतुरंगुलान् । एको वा तादृशो

दण्डो गोवालसदृशो भवेत् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः । "पृष्टो दिविनिधानेनेत्यर्थः ॥ "स्वाग्नावेवाग्निमान्कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्रिवृद्धा जलमेव वा ॥ ॐभूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्तसमयात्पूर्वमग्नीन् विहृत्य सः ॥ आज्यमग्नौ गार्हपत्ये संस्कृत्यैतेन च स्रुचा ॥ पूर्णमाहवनीये तु जुहुयात्प्रणवेन तत् । ब्रह्मान्वाधानमतस्यादग्निहोत्रं हुनेत्ततः ॥ संस्तीर्य गार्हपत्यस्य दर्भानुत्तरतोत्र तु । पात्राण्यासाद्य दर्भेषु ब्रह्मायतन एव तु ॥ जागृयाद्रात्रिमेतां तु यावद्ब्राह्मो मुहूर्त्तकः । अग्निहोत्रं स्वकाले तु हुत्वा प्रातस्तनं ततः ॥ इष्ट वैश्वानरीं कुर्यात्प्राजापत्यमथापि वा ॥"

बौधायनने लिखाहै कि, अंगुलीके समान स्थूल और मस्तकपर्यंत बांसके तीन दण्ड रक्खै, जिनमें ग्यारह नौ दो तीन चार वा सात गांठें हों और कालीगौके बालोंकी रस्सीके चार ४ अंगुलके वेष्टन हों, वा गौके बालोंके तुल्य एकही वैसा दण्ड हो. जो अग्निहोत्री नहो वह पृष्टोदिविआदि विधानसे और अग्निहोत्री अपनी अग्निमें आदिसे अग्निको उत्पादन करके क्रमपूर्वक संन्यास ले घी, दूध, दही ये तीनों वा केवल जलको ॐभूः इत्यादिसे भक्षण करके एकरात्रि व्रत करै. फिर सूर्यके अस्त होनेसे प्रथम अग्निहोत्र करके फिर गार्हपत्य अग्निमें घृतका संस्कार करके उस घीसे भरे स्रुवेसे आहवनीय अग्निमें ॐकार उच्चारणकर आहुति दे ब्रह्मका आयतन (घर) समझकर उस रात्रि [illegible] जागरण करै, और जबतक ब्राह्ममुहूर्त हो तबतक समय २ पर अग्निहोत्र करै, फिर वैश्वानरी और प्राजापत्य यज्ञ करै ॥

जावालश्रुतौ–'तद्धैके प्रा[illegible]पत्यामेवेष्टिं कुर्वीत तदु तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात्पश्चात् त्रैधातवीयामेव कुर्यात् [illegible]इत्युक्तम् ॥ तेनात्र विकल्पः ॥ [illegible]राहुः–'त्रेताग्नेः प्राजापत्यात[illegible]शेषेग्नीनिति [illegible] ॥ 'एकाग्नेस्त्वाग्नेयी' इति ॥ अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानर आग्नेयो [illegible] माधवः [illegible] कात्यायनः–"आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्यस्थितो [illegible] हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत् ॥" कपिलः–"विधिवत्प्रैषमुक्त्[illegible] [illegible]रुच्चकैः । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यथो भुवि ॥ निनीय [illegible] [illegible]त्वाथ बहिर्व्रजेत् ॥" अभयमितिमंत्रेण अपां पूर्णमंजलिं निनीयेत्[illegible] –'उस[illegible]त्यादिना दण्डं येन देवाः पवित्रे[illegible] । यदस्य पारे [illegible] [illegible] ॥ युवा सुवासाः कौपीनं गृहीत्वा वा [illegible]स्त्यजेत् ॥"

जावालश्रु[illegible] [illegible] का उत्थान करै फिर आग्नेयीयज्ञ करै, फिर त्रैधातवी यज्ञकरै [illegible] विकल्प [illegible] रखतेहैं कि, जो तीनअग्निवालाहै उसका प्राजापत्ययज्ञ करना चाहिये, [illegible] कि, उससे वाक्य [illegible]ग्नीन् यह बहुवचन श्रवणकियाहै और जो एक अग्निहोत्रीहै वह आग्नेयीको [illegible], कारण कि, मा[illegible]वने लिखाहै कि, अनाहिताग्निको इष्टिके स्थानमें वैश्वानर वा आग्नेयचरु होतीहै. कात्या[illegible]नने लिखाहै कि, आत्मामें अग्नियोंका आरोपकरके वेदीके मध्यमें स्थित ब्राह्मण हृदयमें नारायणका ध्यान करके गुरुकी आज्ञासे प्रैषमंत्रका उच्चारणकरै. कपिलने कहाहै कि, फिर विधिवत् प्रैषमंत्रको उच्चारणकर तीनवार सूक्ष्मस्वरसे तीनवार ऊंचेस्वरसे यह कहै कि, 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' सब प्राणियोंको मुझसे अभयहो. फिर भूमिपर झुककर दंड और शिक्यआदि

लेकर ग्रामसे बाहर चलाजाय. भूमिपर झुकनेका यह अर्थहै कि, पूर्वोक्त अभयं इसमंत्रसे भूमिपर जलोंकी तीन अञ्जली देनीचाहिये. बौधायनने कहाहै कि, सखे मे इत्यादि मंत्रसे दंड, येनदेवा० इसमंत्रसे पवित्री यदस्यपारे० इसमंत्रसे शिक्य व्याहृतियोंसे पात्र, युवासुवासा, इसमंत्रसे कौपीनको ग्रहणकरके बांधवोंको त्यागदेना चाहिये ॥

संन्यासग्रहणक्रमः ।

अथ क्रमः ॥ तत्र संन्यासेधिकारसिद्ध्यर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डनानि साग्निः पार्वणान्य ग्निस्त्वेकोद्दिष्टविधिनाकृत्वाऽनाश्रमी चेत्कृच्छ्रचतुष्टयम्, अन्यस्तु तप्त-कृच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां वा साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथा पर्वणि प्राजापत्यं स्यात् ॥ तत्र देशकालौ स्मृत्वा परमहंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्ये इतिसंकल्प्य गणेशं संपूज्य पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौपासनं समिध्याहिताग्निस्तु गार्हपत्ये, विधुरोग्निहोत्री तु त्रिकाण्ड-मण्डनोक्तदिशा कुशपत्न्या सह पवमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात् ॥ ब्रह्म-चारी, चेल्लौकिके विधुरश्चेद्व्याहृतिभिः प्रणवेन चाग्निमादायान्वग्निरुषसामित्यानीय पृष्टोदिवीति निधाय तेनैव समिध्य तत्सवितुः, तां सवितुः विश्वानिन इति तिस्रः समिधोऽभ्यादध्यात् ॥

अब क्रमको वर्णन करतेहैं—उसमें संन्यासके अधिकार सिद्धिके निमित्त अपने नवश्राद्ध षोडशश्राद्ध सपिंडीको साग्नि पार्वणविधिसे और अनग्नि एकोद्दिष्टविधिसे सम्पादन करके, अनाश्रमी होय तो चारकृच्छ्र और आश्रमी होय तो तप्तकृच्छ्र करके उत्तरायण समयमें एकादशी वा द्वादशीको साग्नि [illegible] वस्या पूर्णमासी वा चतुर्दशीको पर्वके अनुसार प्राजापत्यव्रत करै, फिर देशकाल [illegible] स्मरण करके परमह[illegible] आदि संन्यासको ग्रहण करताहूं यह संकल्प करके गणेशजीकी पूजा पुण्या[illegible] मातृकापूजा और वृद्धिश्राद्ध सम्पादन करके, सूर्यास्तसे प्रथम औपासनअग्निको प्रज्वलि[illegible] करै और आहिताग्नि गार्हपत्यअग्निसे वा पत्नीसे रहितहोय और अग्निहोत्री होय तो त्रिकाण्डमंडनमें लिखे [illegible] निकट [illegible] कुशाकी पत्नीसहित पवमानेष्टिपर्यंत वा पूर्णाहुतिपर्यंत गार्हपत्यअग्निमें आधानकरै. ब्रह्मचारी हो[illegible] [illegible]र्यपतये० [illegible]त्री अग्निमें आधानकरै, और विधुर होय तो व्याहृति वा ॐकारसे अग्निको लेकर, अग्निरुषसा[illegible] [illegible]तृभ्यो० वायवे [illegible] दिवि० इसमंत्रसे वेदीपर अग्निको स्थापनकर और उसीमंत्रसे प्रज्वलित तत्सवितुः, [illegible] [illegible]ह्मणे वेदादि [illegible] यमि[illegible]तीन समिधा स्थापन करै ॥

एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवर्ज्यं वपनं [illegible] [illegible] पत्नी और [illegible] गर्भिणी [illegible] साक्षी हो[illegible] [illegible]प्सो वा [illegible] दण्डं [illegible] सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमिति [illegible] [illegible]दरे [illegible]दाय ॐ [illegible] [illegible]वित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहीति द्वितीयम्, ॐ [illegible] [illegible]त्रीं प्रविशामि धियो [illegible] प्रचोदयादिति तृतीयम्, समस्तया चतुर्थं ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि० तत्सवितु० यात् इति संन्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति प्रथमं प्रवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीप्रवेश उक्तः ॥ तत आहवनीयं विहृत्य ब्रह्माणमुप-

---

१ युवासुवासाः परिवीत आगात्सउश्रेयान्भवति जायमानः । तंधीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसादेवयन्तः । ३ । १ । ३ । ऋ० ॥

वेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा समित्पूर्वामों स्वाहा परमात्मन इदमिति हुत्वोपवसेत् ॥ ततः सायंहोमं वैश्वदेवं च कृत्वा अग्नेरुदक्कुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वासाद्य ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो रात्रौ जागरं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं प्राजापत्यां वैश्वानरीं वा कृत्वा ऋत्विग्भ्यः सर्वस्वं ब्रह्मणे च मधुपूर्णं तैजसपात्रं दत्वा दारुपात्राण्याहवनीयेऽश्ममृन्मयानि च जले क्षिपेत् ॥ कृष्णाजिनं त्वाददीत ॥ अनाहिताग्निस्तु वैश्वानरमाग्नेयं वा चरुं हुत्वा पात्राण्यग्नौ क्षिप्त्वा भूर्भुवः स्वरित्यपः स्पृष्ट्वा तरत्समन्दीति जप्त्वा विप्रान्संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा अत्र व वपनं कृत्वा हैमरूप्यकुशजलैः स्नात्वा पुरुषाय चरुं कृत्वा प्राणाय स्वाहेति पञ्चाहु[illegible]र्हुत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यचरुं च जुहुयात् ॥ अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः ॥

इसप्रकार जब अग्नि सिद्ध होजाय तब कक्ष और लिंगको त्यागकर वमनकराय दूध दहीसे युक्त वा केवल जलको ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि, तत्सवितुर्वरेण्यं० इस मन्त्रसे पहलीवार पीकर और जलपीकर फिर लेकर ॐभुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गोदेवस्य धीमहि० इससे द्वितीयवार ॐस्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो योनः प्रचोदयात्० इस मन्त्रसे तीसरीवार पानकर फिर समस्तसे ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्० चतुर्थसे चौथीवार जलको पानकरै । संन्यासपद्धतिमें तो, त्रिवृदसि इससे प्रथम और [illegible]दसि० इससे दूसरी और विवृदसि० इससे तीसरीवार भक्षणकरके आपः पुनंतु० इस मन्त्रसे तीनवार जलपानकर सावित्री (गायत्री) में प्रवेश लिखाहै फिर आहवनीय अग्निको लाकर और ब्रह्माको बैठायकर और घृतको संस्कार करके चार वा बारहवार घृतको ग्रहणकरके समित् पूर्वामोंस्वाहा परमात्मने इद० इस मन्त्रसे हवनकरके उपवास करै, इसीको ब्रह्मान्वाधान कथन करते हैं. [illegible] को हवन, वैश्वदेवकरके अग्निकी उत्तर ओर कुशा बिछाय पूर्वोक्त दंडआदि दश वा पांच र[illegible] ब्रह्मासन और कृष्ण[illegible] रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल हवनके अनन्तर प्राजापत्य वा वैश्वानरी यज्ञको संपा[illegible] ऋत्विजोंको सर्वस्व और ब्रह्माको मधुसेभरा सुवर्ण वा चांदीका पात्र देकर काष्ठके पात्रको आहवनी[illegible] र पत्थरके पात्रोंको जलमें डालदे, कृष्णमृगछालाको तो ग्रहण करै. अनाहिताग्नि तो वैश्वान[illegible] होती. [illegible] चरुका हवनकरके पात्रोंको अग्निमें डालकर भूर्भुवः स्वः इस मन्त्रसे आचमनकरके त[illegible] बैठकर ब्राह्मण[illegible] जप[illegible] पुण्याहवाचनपूर्वक और मुण्डनकराकर सोना चांदी और कुशाके जल[illegible] यादिके वि[illegible] निमित्त चरुकर प्राणाय स्वाहा इस मन्त्रसे पांच आहुति प्रदानकर पुरुष[illegible] ह[illegible] [illegible] वा चरुका हवन करै, यहां कोई आचार्य विरजाहोम कहते हैं [illegible]

यथोक्तं शिवग।कि, [illegible] भिस्त[illegible] । अनुवाकान्तमेकाग्नैः समिदाज्यचरू रौर[illegible] ।"आत्मन्यग्नी[illegible] अग्नेतिमन्त्रतः । भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि [illegible] [illegible] ॥ पापे[illegible] यं मुच्यते नात्र संशयः ॥" तथा-'प्राणापानव्यानोदानसमाना [illegible] शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इदमिति त्यागः ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम् [illegible] ज्योति० त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोस्थीनि शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजंघशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं० उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गललोहिताक्ष देहिदेहि ददापयिता मे

शुध्यन्ताम् ॥ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं० शब्दस्पर्शरूप-रसगन्धा मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिः आत्मा मे शुध्यताम् ॥ क्षुधे स्वाहा । क्षुत्पिपासाय स्वाहा । विविध्यै स्वाहा । ऋग्विधानाय स्वाहा । कषोत्काय स्वाहा । क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठा-मलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मान[१] स्वाहा ॥ अन्न-मयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयआत्मा मे शुध्यताम् ॥ ज्योति० ॥ ततः स्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्त्वा समासिञ्चत्वित्युपतिष्ठेत्' ॥

यहां शिवगीतामें लिखाहै कि, बिरजाके मन्त्रोंसे हवन करै प्राणअपान आदिसे करै, फिर अनुवाकांत एकाग्नि मन्त्रसे समिध घृत चरुका ए[illegible] २ हवन करै पश्चात् आत्मामें अग्निका आरोप करकै, यातें अग्ने० इस मन्त्रसे भस्म लेकर और अग्नि इत्यादि मन्त्रोंसे उस भस्मको मलकर अंगसे लेपन करै. इस प्रकार करनेसे निश्चय करकै पापोंसे छूटता है इसमें सन्देह नहीं. वह होम इस प्रकार है कि, प्राण अपान समान उदान व्यान मेरे पवित्र हों और मैं ज्योतिरूप रजोगुण और पापोंसे रहितहूं स्वाहा० सब मन्त्रोंसे लिंगोक्त देवताओंके लिये स्वाहा है यह कहकर आहुतिका प्रदान करै. वाणी मन चक्षु श्रोत्र जिह्वा नासिका श्रोत्र बुद्धि आकृति संकल्प मेरे पवित्र हों मैं ज्योतिरूप रजोगुण पापहीन हूं स्वाहा ज्यो० । त्वक्चर्ममांस रुधिर मेद मज्जा स्नायु अस्थि मे[illegible] शुद्ध हैं ज्यो० स्वा० । शिर पाणि पाद पार्श्व पृष्ठ ऊरु उदर जंघ शिश्न उप[illegible] शास्त्रके शुद्ध हों [illegible]योति० उत्तिष्ठ पुरुष ह[illegible] पिंगल लोहिताक्ष दे और ददापयिता मेरी शुद्धहों ज्यो० कहाहै कि, [illegible]थवी जल वायु अग्नि आकाश मेरे पवित्र हों मैं ज्योतिरूप० शब्द स्पर्श रूप रस गंध मेरे शुद्ध हों ज्योति० । मन वाणी काय कर्म मेरे शुद्ध हों ज्यो० । अव्यक्त भावोंसे मेरे अहंकारोंसे ज्योतिरूप मेरा [illegible] शुद्धहो क्षुधे स्वाहा० क्षुत्पिपासाय स्वाहा० ऋग्विधाना[illegible] क[illegible] कवोत्काय स्वाहा० क्षुत्पिपासा मलं ज्येष्ठा लक्ष्मीर्ना[illegible] च सर्वान् निर्णुद मे पाप्मा[illegible], अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आ[illegible] द[illegible] [illegible]योतिरूप रजोगुण पापरहित हूं स्वाहा० ज्यो० फिर स्विष्टकृत आदि होम संप[illegible] [illegible] धेनु देकर और जल सींचकर स्तुति करै

अत्र केचिदनग्नेः सावित्रीप्रवेशं [illegible] [illegible] अग्ने यज्ञिया तनूरिति तिसृभिरेकैकं जिघ्रन्नात्मन्य[illegible]ारोप्य [illegible] यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति [illegible] तं ह [illegible] मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इत्युपस्थाय दक्षिणां ज[illegible] ब्रह्मेति [illegible]भूः ॥ ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्या[illegible] [illegible]शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र इति शान्ति पठित्वा मम, ॐ [illegible] [illegible]वा मम व्रते हृदयं ते दधामीति च जप्त्वा [illegible] [illegible] प्रणवमुपदिश्य, तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य, अथमा[illegible] तत्त्वमसि प्रज्ञानं ब्रह्मेत्याद्युपदिशेत् ॥ तदर्थं च वदेत् ॥ ततो नाम दद्यात् ॥ ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो हरिं स्मरन्नूर्ध्वबाहुस्तिष्ठन् देवान्साक्षिणः कृत्वा ॐभूर्भुवःस्वः संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैस्त्रिरत्युच्चैश्चोक्त्वा, जलसमीपं गत्वा, स्नात्वा अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति त्रिरञ्जलीन्

१ क्षुधापिपासामलवड़ीअलक्ष्मी अभूति असमृद्धि यह सब दूर होकर मैं पाप रहितहू।

क्षिप्त्वा, युवासुवासा इति काषायं कौपीनं वासश्च परिधाय, सखा मे गोपायेति मुख्यवैणवं पालाशं बैल्वमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात् ॥

यहां कोई अनग्निकी पूर्णाहुती और सावित्रीका प्रवेश वर्णन करते हैं, फिर याते अग्ने यज्ञियातनूः इन तीन ऋचाओंसे एक २ अंगको सूँघकर आत्मामें अग्निका आरोपण करे, गुरुको सर्वस्व प्रदान कर और जिसने प्रथम ब्रह्माको रचकर उसीको वेद प्रदान किया है अपनी बुद्धिके प्रकाश करनेवाले उस नारायणदेवकी मैं मुमुक्षु शरणहूं इस मन्त्रसे स्तुति करके और दक्षिण घुटुएको नवांकर गुरुके चरण पकड़कर कहै कि हे भगवन्! ब्रह्मका ध्यान करताहूं फिर गुरु ब्रह्मरूप और आत्माको ब्रह्मरूप ध्यान करके द्वादश ओंकारोंसे जलभरे शंखको अभिमन्त्रण करके उस शंखके ज[illegible]से शिष्यको सिंचन कर और शन्नो मित्र० इस शांतिको पढकर, उसके शिरपर हाथ धरकर और [illegible]को जपकर तेरा हृदय मेरेमें हो, यह जपकर उत्तर मुख किये ओंकारके अर्थको स्मरण करताहुआ आचार्य शिष्यके दहिने कानमें ओंकारका उपदेश करके, ओंकारका अर्थ और पंचीकरणका बोध कराय यह उपदेश करै कि, यह आत्मा ब्रह्म है और वही प्रज्ञान ब्रह्मरूप तू है (अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि प्रज्ञानं ब्रह्म) और इस मंत्रके अर्थको भी उच्चारण करै, फिर गुरु शिष्यका नामस्मरण करै, फिर गुरुके उपदेशवाला शिष्य नारायणका स्मरण करता हुआ ऊपरको भुजा किये देवताओंको साक्षी करके ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया (मैंने संन्यास ग्रहणकर लिया) इस मंत्रको तीन बार नीचे और तीन बार ऊंचे स्वरसे जपकर और जलके निकट जाय और स्नान करके अभयं [illegible]भ्यो मत्तः स्वाहा० इस मंत्रसे तीन अञ्जलि डालकर, युवा सुवासा:० इस मंत्रसे गेरूसे [illegible] और वस्त्रको धारण करकै सखा मे गोपाय इस मन्त्रसे बांसका मुख्य दंड वा ढाक बेल गूलरका [illegible] करै ॥

अत्र पु[illegible] गृहस्थः शङ्खेन पुरुषसूक्तेन [illegible]भिषिञ्च्य [illegible]दध्यादित्याचारः ॥ ततः शिखामुत्[illegible] ॐ भूः स्वाहेत्यग्नौ जले वा [illegible] हुत्वा, येन देवाः पवित्रेणेति जले पवित्रं यदस्य पार इति शि[illegible] [illegible]स्त्याहृतिभिर्भोजनपात्रमिदं विष्णुरित्यासनं बृसीं वा गृहीत्वा [illegible] [illegible]स्ताभिर्महर्नम इति तर्पयित्वा, ॐ भूःस्वधोंभुवःस्वधोंभूर्भु[illegible] [illegible]तर्पयित्वा, उदुत्यं [illegible]त्रं तच्चक्षुर्हंसःशुचिषन्नमोमित्रस्येति सू[illegible] [illegible]हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिश्च मार्जयित्वा, आ[illegible] [illegible]श्च [illegible], ॐ भूर्भुवःसुवरिति च पठित्वा, नमःसवि[illegible] [illegible] क्षालयित्वा, ओमितिब्रह्मोमितीदं [illegible]र्वमोमितिब्रह्म [illegible] [illegible]पति वेद्यमेवैतद्य एष वेदो यदवनमस्तीति जपि[illegible]

यहां जो ग[illegible] [illegible]हुए शंखके जलसे दंडको सिञ्चनकर संन्यासीको दे य[illegible] [illegible]शि[illegible] उखाडकर ॐ भूः स्वाहा०—इस मन्त्रसे अग्नि वा जलमें हवन करके इसीप्र[illegible]का हवन करै येन देवा० इस मन्त्रसे जल पवित्रको, यदस्य पारे० इस मन्त्रसे शिक्यको, गायत्रीसे कमण्डलुको सात व्याहृतियोंसे भोजनपात्रको, होम देना चाहिये, फिर इदंविष्णु० इस मन्त्रसे आसन वा बृसी (व्रतियोंके आसन) को ग्रहण करकै ओंभूस्तर्पयामि० इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे महर्नमः इस मन्त्रसे तर्पण करके कि, ॐ भूः स्वधोम् भवः स्वधोम् स्वः स्वधोम् भूर्भुवःस्वर्महर्नमः स्वधा । इन मंत्रोंसे पितरोंका तर्पण करकै,

उदत्यं० चित्रं[2] देवानां० तच्चक्षु० हंसः[3]शुचिष० नमो मित्र० इन मन्त्रोंसे स्नान करके सुगंधित और सुवर्णके तुल्य वर्ण जलोंसे आपोहिष्ठा० और हिरण्यवर्णा पावमानी० और व्याहृतियोंसे मार्जन करनेके उपरान्त अष्टोत्तरशत अघमर्षण और प्राणायाम करके ॐ भूर्भुवः स्वः यह पढकर, नमस्सवित्रे० इस मंत्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके फिर स्नान कर और जंवाओंको धोकर कहै कि, यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म और ओंकाररूप है, यह फिर ज्योति यह वेद जो यह तपताहै यह सूर्य, यह ज्ञानके योग्य, यह रक्षण सब ब्रह्मरूप हैं यह ज्योतिरूप हैं इसप्र[illegible]र जपकर आठ सहस्र गायत्रीका जप करै ॥

अथ यतिकृत्यानि ।

प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पते इति [illegible]थमं पिबेत् [illegible] दण्डं च निधाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्य पर्वद्वादशीव[illegible] [illegible]वनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिःकटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जं[illegible]य वस्त्रादीनि गृहीत्वा मार्जनान्तं कृत्वा केशवादिनमोन्तनामभिस्तर्पयित्वा, ॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् ॥ ॐभूःस्वाहेति स्वाहाशब्दांतैः स्वधाशब्दांतैश्चैभिरेव पुनस्तर्पयेदिति केचित् ॥ तत आचम्याञ्जलिना प्रणवेन ज[illegible] [illegible]हृतिभिरुद्धृत्य गायत्र्या त्रिःक्षिप्त्वा गायत्रीं जपेत् ॥ उदिते [illegible] [illegible] साम्बरः ॥" [illegible]त्त्वा मित्रस्य चर्षणी त्याद्यैः पूर्वोक्तसौरीभिर्विवि[illegible] [illegible] सदा [illegible] सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिण[illegible] [illegible] शास्त्रे [illegible] [illegible] दिगंबरो भू[illegible] [illegible]को [illegible]महि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयादिति [illegible] कहाहै कि [illegible] ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् [illegible] [illegible] । एवं विरक्तस्यातुर[illegible] [illegible] तदनुष्ठानपूर्वं प्रधानं प्रेषा[illegible] [illegible]त्तरकाल[illegible] [illegible]गति [illegible] [illegible]च [illegible] वेदव [illegible]तेति [illegible] [illegible] [illegible]तु [illegible]

अब संन्यासीके धर्मोंको [illegible]ने साक्षी कार्य [illegible] जपकर दंड आदि और मंत्र जपकर, मूत्र और प[illegible]ध [illegible] पर्व और द्वादशीको त्यागकर [illegible]ओंकारसे दन्त[illegible] [illegible]स्योप[illegible] कर जल तर्पण छोडकर फिर जंवाओंको [illegible] [illegible]शवाय नमः इत्यादि नामोंसे तर्पण [illegible] ॐ भूस्तर्पयामि० [illegible] [illegible] स[illegible] [illegible]र्पयामि कहकर तर्पण करे. कोई तो यहां यह लिखते हैं [illegible] स्वाहा वा स्वधा शब्दको उच्चारणकर फिर तर्पण करे [illegible] [illegible] दु[illegible] जल लेकर व्याहृतियोंसे तीनवार छोडकर ग[illegible] [illegible]स्मरण[illegible] [illegible]र अर्घ लेकर मित्रस्यचर्षणी० इत्यादि पूर्वोक्त स[illegible] परम पु[illegible] [illegible]की प्रार्थना करके सब भूतोंको नमस्कार है यह न[illegible] [illegible] उच्चार[illegible] [illegible]ाय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् " [illegible] [illegible] विष्णुपूजा और ब्रह्मयज्ञ करै ॥

"विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तव[illegible] [illegible] नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत्"

१ उदुत्यंजातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशेविश्वायसूर्यम् ॥ य० ३३ । ३१ ॥

२ चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चस्वाहा ॥ य० ७ । ४२ ॥

३ हंसःशुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जागोजा ऋतजाऽअद्रिजा ऋतं बृहत् ॥